जिन-सूत्र, भाग एक

प्रवचन-क्रम

1. जिन-शासन की आधारशिलाः संकल्प..3
2. प्यास ही प्रार्थना है..22
3. बोध--गहन बोध--मुक्ति है...43
4. धर्मः निजी और वैयक्तिक..63
5. परम औषधिः साक्षी-भाव..85
6. तुम मिटो तो मिलन हो...109
7. जीवन एक सुअवसर है..133
8. सम्यक ज्ञान मुक्ति है..154
9. अनुकरण नहीं--आत्म-अनुसंधान...177 10..जिंदगी नाम है रवानी का
.... 199
11...अध्यात्म प्रक्रिया है जागरण की
.... 223
12...संकल्प की अंतिम निष्पत्तिः समर्पण
.... 248
13..वासना ढपोरशंख है
.... 268
14..प्रेम से मुझे प्रेम है
.... 293
15..मनुष्यो, सतत जाग्रत रहो
.... 317
16..उठो, जागो--सुबह करीब है
.... 338
17...आत्मा परम आधार है
.... 359
18..धर्म आविष्कार है स्वयं का
.... 386
19..धर्म की मूल भित्तिः अभय
.... 406
20...पलकन पग पोंछूं आज पिया के
.... 427
21...जिन-शासन अर्थात आध्यात्मिक ज्यामिति
.... 448
22..परमात्मा के मंदिर का द्वारः प्रेम
.... 468

23...जीवन की भव्यताः अभी और यहीं 489

24...मांग नहीं--अहोभाव, अहोगीत 507

25...दर्शन, ज्ञान, चरित्र--और मोक्ष 529

26..तुम्हारी संपदा--तुम हो 548

27...साधु का सेवनः आत्मसेवन 571

28...जीवन का ऋत्ः भाव, प्रेम, भक्ति 595

29...मोक्ष का द्वारः सम्यक दृष्टि 615

30...प्रेम है आत्यंतिक मुक्ति 635

31..सम्यक दर्शन के आठ अंग 652

2

जिन-सूत्र, भाग एक
पहला प्रवचन

जिन-शासन की आधारशिलाः संकल्प

वेद कहते हैं, परमात्मा अकेला था। एकाकीपन उसे खला, अकेलेपन से ऊबा।
सोचा उसने, बहुत हो जाऊं। फिर उसने बहुत रूप धरे। ऐसे संसार निर्मित हुआ। सृष्टि की यह कथा है।
स एकाकी न रेमे, एकोऽहं बहुस्याम्!
अकेला वह ऊबने लगा। सोचा बहुत रूपों को सृजूं, बहुत रूपों में रमूं।
ब्राह्मण-संस्कृति इसी सूत्र का विस्तार है--परमात्मा का अवतरण, परमात्मा का फैलाव। ब्रह्म शब्द का यही अर्थ हैः जो फैलता चला जाए, जो बहुत रूप धरे, जो बहुत लीला करे, जो अनेक-अनेक ढंगों से अभिव्यक्त हो, सागर जैसे अनंत-अनंत लहरों में विभाजित हो जाए।
एक अनेक बनता है, एक अनेक में उत्सव मनाता है। एक अनेक में डूबता है, स्वप्न देखता है। माया सर्जित होती है।
संसार परमात्मा का स्वप्न है। संसार परमात्मा के गहन में उठी विचार
की तरंगें हैं।
ब्राह्मण-संस्कृति ने परमात्मा के इस फैलाव के अनूठे गीत गाए। उससे भक्ति-शास्त्र का जन्म हुआ। भक्ति-शास्त्र का अर्थ हैः परमात्मा का यह फैलता हुआ रूप, अहोभाग्य है। परमात्मा का यह फैलता हुआ रूप परम आनंद है। इसलिए भक्ति में रस है, फैलाव है। एक शब्द में कहें तो महावीर का जो बचपन का नाम है, वह ब्राह्मण-संस्कृति का सूचक है। महावीर का बचपन का नाम थाः वर्द्धमान--जो फैले, जो विकासमान हो। फिर महावीर को दूसरी ऊर्जा का, दूसरे अनुभव का, दूसरे साक्षात का सूत्रपात हुआ। वह ठीक वेद से उलटा है।
वेद कहते हैं, वह अकेला था, ऊबा, उसने बहुत को रचा। महावीर बहुत से ऊब गए, भीड़ से थक गए और उन्होंने चाहा, अकेला हो जाऊं। परमात्मा का उतरना संसार में, फैलना और महावीर का लौटना वापिस परमात्मा में! इसलिए श्रमण-संस्कृति के पास अवतार जैसा कोई शब्द नहीं है। तीर्थंकर! अवतार का अर्थ हैः परमात्मा उतरे, अवतरित हो। तीर्थंकर का अर्थ हैः उस पार जाए, इस पार को छोड़े। अवतार का अर्थ हैः उस पार से इस पार आए। तीर्थंकर का अर्थ हैः घाट बनाए इस पार से उस पार जाने का। संसार कैसे तिरोहित हो जाए, स्वप्न कैसे बंद हो, भीड़ कैसे विदा हो; फिर हम अकेले कैसे हो जाएं--वही श्रमण-संस्कृति का आधार है। वर्द्धमान कैसे महावीर बने, फैलाव कैसे रुके; क्योंकि जो फैलता चला जा रहा है उसका कोई अंत नहीं है। वह पसारा बड़ा है। वह कहीं समाप्त न होगा। स्वप्न फैलते ही चले जाएंगे, फैलते ही चले जाएंगे--और हम उनमें खोते ही चले जाएंगे। जागना होगा!
भक्ति-शास्त्र ने परमात्मा के इस संसार के अनेक-अनेक रूपों के गीत गाए, महावीर ने इस फैलती हुई ऊर्जा से संघर्ष किया--इसलिए "महावीर" नाम-- लड़े, धारा के उलटे बहे।
गंगा बहती है गंगोत्री से गंगासागर तक--ऐसी ब्राह्मण-संस्कृति है। ब्राह्मण-संस्कृति का सूत्र हैः समर्पण; छोड़ दो उसके हाथ में, जहां वह जा रहा है; चले चलो; भरोसा करो; शरणागति!
महावीर की सारी चेष्टा ऐसी है जैसे गंगा गंगोत्री की तरफ बहे-- मूलस्रोत की तरफ, उत्स की तरफ। लड़ो! दुस्साहस करो--संघर्ष, समर्पण नहीं। महान संघर्ष से गुजरना होगा, क्योंकि धारा को उलटा ले जाना है, विपरीत ले जाना है।
धारा का अर्थ हैः जाए गंगोत्री से गंगा सागर की तरफ। धारा को उलटा करना है--राधा बनाना है। गंगा चले, बहे उलटी, ऊपर की तरफ, पानी पहाड़ चढ़े। मूल उदगम की खोज हो।
ब्राह्मण-संस्कृति आधी है। श्रमण-संस्कृति भी आधी है। दोनों से मिलकर पूरा वर्तुल निर्मित होता है। और इसलिए इस देश में ब्राह्मण और श्रमणों के बीच जो संघर्ष चला, उसने दोनों को पंगु किया। तब ब्राह्मणों के पास फैलने के सूत्र रह गए, श्रमणों के पास सिकुड़ने के सूत्र रह गए! दोनों

ही अधूरे हो गए; सत्य आधा-आधा कट गया। मेरे देखे, जहां ब्राह्मण और श्रमण राजी होते हैं, सहमत होते हैं, मिल जाते हैं, वहीं परिपूर्ण धर्म का आविर्भाव होता है।
निश्चित ही परमात्मा थक गया अकेलेपन से, बहुत रूप उसने धरे; लेकिन फिर बहुत रूप से भी तो थकेगा, फिर विश्राम भी तो मांगेगा। इसलिए महावीर के वचन वेद-विरोधी मालूम होंगे; क्योंकि वेद बह रहा है गंगोत्री से गंगासागर की तरफ। इसलिए हिंदुओं ने समझा कि महावीर वेद-विरोधी हैं--प्रतीत होते हैं। परमात्मा अपने घर वापिस लौटने लगा। ऊब गया बाजार से, देख ली भीड़-भाड़, बहुत रूप धर लिये, थक गया उनसे भी। उसने फिर कहा, अब हो गया बहुत अनेक, अब एक होना चाहता हूं। इसलिए महावीर के पास एक शब्द है जो बड़ा बहुमूल्य है। महावीर ने कहा, मनुष्य बहुचित्तवान है; बहुत-बहुत खंडों में विभाजित है--उसे एक होना है। बहुत रूपों में बंटा है--उसे संगृहीत होना है। इस संगृहीत चैतन्य का नाम ही महावीर की भाषा में परमात्मा है। वर्द्धमान को महावीर होना है। फैलते को वापिस लौटना है, क्योंकि सब फैलाव कामना का है। परमात्मा भी फैला संसार में कामना से। कामना ही फैलती है। तो जिसे मुक्त होना है, उसे सिकुड़ना होगा। उसे मूल स्वभाव में लौट आना होगा।
परमात्मा उतरा है, हिंदू विचार में--अवतरण हुआ। महावीर कहते हैं, ऊर्ध्वगमन, वापिस लौटना है घर; देख लिया संसार!
इसलिए महावीर के सूत्र भक्ति-सूत्र से बिल्कुल विपरीत मालूम होंगे। घबड़ाना मत। श्रवण और ब्राह्मण मिलकर ही पूर्ण संस्कृति का जन्म होता है। नहीं हो पाया ऐसा, होना चाहिए था। अब भी कुछ देर नहीं हुई, हो सकता है। जहां नारद और वर्द्धमान महावीर राजी हो जाते हैं, वहां पूर्ण वर्तुल पैदा होता है।
पर महावीर की भाषा संघर्ष की है। महावीर के पास शरणागति जैसा कोई शब्द ही नहीं है। महावीर कहते हैं, अशरण-भावना। किसी की शरण मत जाना। अपनी ही शरण लौटना है। घर जाना है। किसी का सहारा मत पकड़ना। सहारे से तो दूसरा हो जाएगा। सहारे में तो दूसरा महत्वपूर्ण हो जाएगा। नहीं, दूसरे को तो त्यागना है, छोड़ना है, भूलना है। बस एक ही याद रह जाए, जो अपना स्वभाव है, जो अपना स्वरूप है--इसलिए कोई शरणागति नहीं।
महावीर गुरु नहीं हैं। महावीर कल्याणमित्र हैं। वे कहते हैं, मैं कुछ कहता हूं, उसे समझ लो; मेरे सहारे लेने की जरूरत नहीं है। मेरी शरण आने से तुम मुक्त न हो जाओगे। मेरी शरण आने से तो नया बंधन निर्मित होगा, क्योंकि दो बने रहेंगे। भक्त और भगवान बना रहेगा। शिष्य और गुरु बना रहेगा। नहीं, दो को तो मिटाना है।
इसलिए महावीर ने भगवान शब्द का उपयोग ही नहीं किया। कहा कि भक्त ही भगवान हो जाता है।
इसे समझना। विपरीत दिखाई पड़ते हुए भी ये बातें विपरीत नहीं हैं।
नारद कहते हैं, भक्त भगवान में लीन हो जाता है। भगवान ही बचता है, भक्त
खो जाता है। महावीर कहते हैं, भक्त जाग जाता है अपनी परिपूर्णता में, भगवान खो जाता है, भक्त में लीन हो जाता है। भक्त ने पहचान लिया अपना स्वरूप--भगवान हो गया। स्वरूप को पहचान लेना भगवत्ता है। इसलिए महावीर के धर्म में भगवान नहीं है, शरणागति नहीं है। शरण जाने को ही कोई नहीं है, जिसकी शरण चले जाओ। कोई प्रार्थना नहीं, कोई पूजा नहीं--हो नहीं सकती; क्योंकि पूजा में तो दूसरा जरूरी होगा। "पर" चाहिए पूजा को।
महावीर की भाषा ध्यान की है, पूजा की नहीं। और ध्यान और प्रार्थना में यही फर्क है। प्रार्थना में दूसरा चाहिए। ध्यान में दूसरे को मिटाना है, भुलाना है। इस तरह भुला देना है कि बस अकेले तुम ही बचो, शुद्ध चैतन्य बचे; दूसरे की रेखा भी न रहे, छाया भी न पड़े। पर दोनों ही रास्तों से वहीं पहुंचना हो जाता है। जो समर्पण से बहते हैं, जो धारा बनते हैं, आखिर सागर से बादलों पर चढ़ कर गंगोत्री पहुंच ही जाते हैं। उन्होंने सुगम मार्ग चुना।
नारद की यात्रा बड़ी सरल है। महावीर की यात्रा ब.ड़ी कठिन है। इसीलिए तो "महावीर"! वह योद्धा का मार्ग है, प्रेमी का नहीं; संघर्ष का। लेकिन कुछ

हैं जिनके लिए वही स्वाभाविक है। इसलिए अपने भीतर देखना। इसकी फिक्र मत करना कि किस घर में पैदा हुए। वह तो सांयोगिक है। जैन घर में पैदा हुए कि हिंदू घर में कि मुसलमान घर में कि ईसाई घर में, वह तो सांयोगिक है। अपने जीवन की अंतर्दशा समझना। योद्धा बनने की रुझान है? योद्धा बनने की तरफ सहज प्रवाह है? योद्धा होने में लगता है स्वरूप खिलेगा? तो योद्धा बनना! तो फिर महावीर के पीछे चलना। और लगे कि लड़ना अपने से न होगा, वह अपनी भाषा नहीं है, लगे कि समर्पण ही उचित है, तो फिर नारद को चुन लेना।
नारद एक छोर हैं, महावीर दूसरे छोर हैं। और कहीं न कहीं नारद और महावीर के बीच सारे महापुरुष हैं--बुद्ध हों, कृष्ण हों, राम हों, मुहम्मद हों, जरथुस्त्र हों, जीसस हों--महावीर और नारद के बीच कहीं न कहीं! लेकिन महावीर और नारद परम छोर हैं। और इसलिए जैसा नारद ने भक्ति को उसकी परम प्रगाढ़ता में प्रगट किया है, शरणागति को आखिरी रूप दिया, आखिरी परिभाषा दे दी--उसके पार परिष्कार संभव नहीं है--वैसे महावीर ने संघर्ष को आखिरी रूप दिया है। अब उसको और ऊपर उठाने का कोई उपाय नहीं है। महावीर ने आखिरी बात कह दी है संघर्ष के रास्ते पर। चुनाव तुम्हें यह नहीं करना है कि कौन ठीक है। दोनों ठीक हैं। चुनाव तुम्हें यह करना है कि कौन हमें जंचता है।
फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे
पर हमें उनमें तुम्हीं भाए बहुत।
--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कितने फूल खिले!
फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे!
चंपा है, चमेली है, जूही है, केतकी है, गुलाब है, कमल है।
फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे
पर हमें उनमें तुम्हीं भाए बहुत!
फिर तुम्हें जो भा जाए वही तुम्हारा फूल है। तुम्हें कमल भा जाए, तुम्हारे बेटे को गुलाब भा जाए, तो झगड़ा मत करना। जो तुम्हें भा जाए, वही तुम्हारे लिए मार्ग है।
लोग अकसर उलटा करते हैं। लोग सोचते हैं, "कौन ठीक?" गलत प्रश्न उठा लिया। "महावीर ठीक कि नारद ठीक?"--तुमने प्रश्न ही गलत पूछ लिया। यही पूछो, कौन जंचता है। ठीक-गलत, तुम कैसे निर्णय करोगे? उस परम की बातें, वे ही जानें जो परम को उपलब्ध हुए हैं। तुम तो इतना ही तय कर लो, कौन-सा तुमको जंचता है, कौन-सा तुम्हारे मन को भा जाता है।
मैं, अगर मुझसे पूछो, तो कहूंगा, सभी ठीक। लेकिन सभी ठीक से तो हल न होगा। क्योंकि सभी रास्तों पर तो तुम चल न सकोगे। द्वार तो तुम्हें चुनना ही होगा। सभी द्वार उसी के मंदिर के हैं। लेकिन फिर भी तुम एक ही द्वार से गुजर सकोगे, सभी द्वारों से न गुजर सकोगे। सभी द्वारों से गुजरने में तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। एक पैर एक द्वार में डाल दोगे, एक हाथ दूसरे द्वार में डाल दोगे--तुम अटक जाओगे। एक से ज्यादा द्वार चुन लिये तो द्वार पहुंचाएंगे न, अटकाएंगे। तुम अपना द्वार चुन लेना। तुम अपना फूल चुन लेना। तुम अपनी रुझान को पहचानो। तुम्हें जो भा जाए वही सत्य है। जो तुम्हारे काम आ जाए वही सत्य है। जो द्वार तुम्हें पहुंचा दे वही गुरुद्वारा है। पहुंचकर तो तुम भी पाओगे, अरे! सभी द्वार यहीं आ गए। पहुंचकर तो तुम मिलोगे उनसे जो दूसरे द्वारों से आते थे और दुश्मन मालूम पड़ते थे। क्योंकि मैंने तो उस मंदिर में महावीर और नारद को आलिंगन करते देखा है। लेकिन तुम चुन लेना। तुम्हारा चुनाव यह न हो कि कौन ठीक है। वह तो बात ही अभद्र हो गई। तुम्हारा चुनाव तो बस इतना होः
फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे
पर हमें उनमें तुम्हीं भाए बहुत!
जब देखिए कुछ और ही आलम है तुम्हारा
हर बार अजब रंग है, हर बार अजब रूप!
बहुत रूपों में सत्य प्रगट हुआ है। बहुत रंगों में, बहुत ढंगों में प्रगट हुआ है। और हर बार जब प्रगट हुआ है तो अजब ही! तो बड़ा आश्चर्यचकित करनेवाला है, अवाक कर जानेवाला है। नारद को समझोगे, अवाक रह जाओगे। महावीर को समझोगे, ठगे रह जाओगे।

जब देखिए कुछ और ही आलम है तुम्हारा
हर बार अजब रंग है, हर बार अजब रूप
मगर ये रूप सब एक के ही हैं। यह यात्रा एक ही है।
ईसाइयत कहती है, अदम को परमात्मा ने स्वर्ग से बहिष्कृत किया। निकाला स्वर्ग के राज्य से; क्योंकि आज्ञा उसने न मानी थी, अनाज्ञाकारी था। फिर जीसस ने आज्ञा मानी। जीसस वापिस समारोहपूर्वक स्वर्ग में प्रविष्ट हुए। जिसे अदम में निकाला था, वही जीसस में लौटा। अदम पहला आदमी है, जीसस आखिरी आदमी हैं। अदम संसार की तरफ यात्रा है--धारा। जीसस संसार से विपरीत यात्रा है--राधा।
यहूदियों की कथाएं थोड़ी कठोर हैं। पूरब में लोग ज्यादा कोमल भाषा बोलते हैं।
यहूदी कहते हैं, परमात्मा ने बहिष्कृत किया अदम को। हम ऐसा नहीं कहते। हम कहते हैं, स एकाकी न रेमे। वह अकेला था। एकोऽहं बहुस्याम। उसने कहा, बहुत को रचूं। बहिष्कृत नहीं हुआ, अवतरित हुआ। आया, मर्जी से आया।
और इसे भी समझ लेना जरूरी है। तुम जहां हो, अपनी मर्जी से हो। संसार में हो तो अपनी मर्जी से हो। तुम्हारे भीतर के परमात्मा ने यही चुना। कुछ परेशान होने की बात नहीं। बेमर्जी से तुम नहीं हो। अपने ही कारण हो। अपनी ही आकांक्षा से हो। और यह बड़े सौभाग्य की बात है कि बेमर्जी से नहीं हो। क्योंकि जिस दिन चाहो, उसी दिन घर का द्वार खुला है, लौट आ सकते हो। जब तक चाहो, जा सकते हो दूर। जिस दिन निर्णय करोगे, उसी दिन लौटना शुरू हो जाएगा। ब्राह्मण-संस्कृति परमात्मा के फैलाव की कथा है। श्रमण-संस्कृति परमात्मा के घर लौटने की कथा है। तो निश्चित ही, जो अकेले में थक गया था, वह भीड़ में भी थक ही जाएगा।
तुमने अपने भीतर भी देखा! यही होता है। बाजार में थक जाते हो, मंदिर की आकांक्षा पैदा होती है। भीड़ में ऊब जाते हो, बस्ती से ऊब जाते हो, हिमालय जाने की आकांक्षा पैदा होती है। हिमालय पर जो बैठे हैं, एकांत में, उनके मन में बाजार आकर्षण निर्मित करता है।
मैं कुछ मित्रों को लेकर कश्मीर की यात्रा पर था। कश्मीर के पहाड़ों में, झरनों में, वे बड़ा आनंद अनुभव कर रहे थे। डल झील पर उनके साथ मैं ठहरा था। हमारा जो माझी था, जब हम लौटने लगे तो वह कहने लगा, "ऐसा आशीर्वाद दें कि एक दफा बंबई देखनी है!"
"तू बंबई देखकर क्या करेगा?"
उसने कहा, "यहां मन नहीं लगता। और बंबई बिना देखे मर गए तो एक आस रह जाएगी।"
जो मेरे साथ आए थे, वे बंबई के मित्र थे। वे चौंके। वे आए थे कश्मीर।
वे आए थे हिमालय की शरण में। और जो हिमालय की शरण में पैदा हुआ था, वह बंबई आना चाह रहा था।
तुम अगर अपने मन को भी पहचानोगे तो यही पाओगे। परमात्मा की कथा वस्तुतः तुम्हारी ही कथा है। कोई परमात्मा और तो नहीं। तुम कोई और तो नहीं। परमात्मा की कथा शुद्ध चेतना के स्वभाव की कथा है। ठीक ही कहते हैं वेद, "ऊब गया, अकेला था। कहा, बहुत को रचूं। उसने बहुत रचे।"
महावीर कहते हैं, अब हम बहुत से ऊब गए; अब घर वापिस जाने की आकांक्षा पैदा होती है।
इसलिए महावीर के सूत्रों में लौटती यात्रा के सूत्र हैं। निश्चित ही
वे भिन्न होंगे। रस की बात न होगी यहां। यहां विरसता की बात होगी। यहां कामना की, वासना की बात न होगी। यहां त्याग, वैराग्य की बात होगी। यहां राग नहीं, वीतरागता लक्ष्य होगा। मगर ध्यान रखना, राग ही वीतरागता बनता है। वही है ऊर्जा, जो सागर की तरफ जाती है। वही है ऊर्जा, जो गंगोत्री की तरफ जाती है। ऊर्जा वही है। पर महावीर का मार्ग थोड़ा कठिन है, क्योंकि धारा के विपरीत लड़ना होगा।
किश्ती को भंवर में घिरने दे, मौजों के थपेड़े सहने दे
जिंदों में अगर जीना है तुझे, तूफान की हलचल रहने दे
धारे के मुआफिक बहना क्या, तौहीने-दस्तो-बाजू है

परवर्द-ए-तूफां किश्ती को धारे के मुखालिफ बहने दे!
किश्ती को भंवर में घिरने दे!
महावीर कहते हैं, संघर्ष न हो तो सत्य आविर्भूत न होगा। जैसे सागर के मंथन से अमृत निकला, ऐसे जीवन के मंथन से सत्य निकलता है। सत्य कोई वस्तु थोड़े ही है कि कहीं रखी है, तुम गए और उठा ली, कि खरीद ली, कि पूजा की, प्रार्थना की और मांग ली! सत्य तो तुम्हारे जीवन का परिष्कार है। सत्य तो तुम्हारे ही होने का शुद्धतम ढंग है। सत्य कोई संज्ञा नहीं है, क्रिया है। सत्य कोई वस्तु नहीं है, भाव है। तो तुम जितने संघर्ष में उतरोगे, जितने मथे जाओगे, जितने जलोगे, जितने तूफानों की टक्कर लोगे, उतना ही तुम्हारे भीतर सत्य आविर्भूत होगा; उतनी ही तुम्हारी धूल झड़ेगी; गलत अलग होगा; निर्जरा होगी व्यर्थ से। झाड़-झंखाड़ ऊग गए हैं, घास-फूस ऊग आया है--आग लगानी होगी, ताकि वही बचे, जिसके मिटने का कोई उपाय नहीं। अमृत ही बचे; मृत्यु को तो खाक कर देना होगा। यह बैठे-बैठे न होगा। इसके लिए बड़े प्रबल आह्वान की, बड़ी प्रगाढ़ चुनौती की जरूरत है।
किश्ती को भंवर में घिरने दे, मौजों के थपेड़े सहने दे!
भंवर दुश्मन नहीं है। महावीर के रास्ते पर भंवर मित्र है, क्योंकि उसी से लड़कर तो तुम जगोगे; उसी से उलझकर तो तुम उठोगे। उसी की टक्कर को झेलकर, संघर्ष करके, विजय करके, तुम उसके पार हो सकोगे। इसलिए महावीर का मार्ग कहा जाता है, "जिन का मार्ग", जिनों का मार्ग; उनने, जिन्होंने जीता। जिन शब्द का अर्थ हैः जिसने जीता। जैन शब्द उसी जिन से बना। जिन का अर्थ हैः जिसने जीता।
सभी शब्द बड़े अर्थपूर्ण होते हैं। बुद्ध का अर्थ हैः जो जागा। जिन का अर्थ हैः जो जीता।
जिंदों में अगर जीना है तुझे, तूफान की हलचल रहने दे।
--यह प्रार्थना मत कर कि तूफान को हटा लो! फिर तू क्या करेगा?
धारे के मुआफिक बहना क्या, तौहीने-दस्तो-बाजू है।
--यह तो तेरे बाहुओं का अपमान हो जाएगा, अगर तू धारा के साथ बहा।
धारे के मुआफिक बहना क्या--.
--फिर तेरे हाथों का क्या होगा? फिर तेरी बाजुओं का क्या होगा? फिर तेरे बल को चुनौती कहां मिलेगी? यह तो अपमान होगा तेरी ऊर्जा का! समर्पण-- नहीं!
परवर्द-ए-तूफां किश्ती को धारे के मुखालिफ बहने दे!
यह किश्ती तो तूफान से ही पैदा होती है। यह किश्ती तो तूफान में ही पलती है। यह किश्ती तो जन्मती ही तूफान में है।
परवर्द-ए-तूफां किश्ती को...
--इस तूफान में पैदा हुई जीवन की किश्ती को, धार के मुखालिफ बहने दे, उलटा चलने दे। चल गंगोत्री की यात्रा पर!
महावीर का मार्ग योद्धा का मार्ग है--क्षत्रिय थे, स्वाभाविक है! जैनों के चौबीस ही तीर्थंकर क्षत्रिय थे। लड़ाकों की बात है। लड़ना ही जानते थे। तूफान में ही किश्ती पली थी। तलवार ही उनकी भाषा थी। युद्ध ही उनका अनुभव था। यद्यपि सब युद्ध छोड़ दिया, अहिंसक हो गए; पर क्या होता है, इससे क्या फर्क पड़ता है? चींटी को भी नहीं मारते थे, लेकिन योद्धा होना तो जारी रहा। अपने स्वभाव से कोई भिन्न हो नहीं पाता। संसार भी छोड़ दिया, प्रतियोगिता के सारे स्थान भी छोड़ दिये, जहां-जहां संघर्ष, युद्ध की बात थी, हिंसा थी, सब छोड़ दिया--लेकिन फिर भी योद्धा तो नहीं मिट पाता।
जैनों के सारे तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। यह आकस्मिक नहीं है। एक भी ब्राह्मण तीर्थंकर न हुआ। ब्राह्मण की भाषा लड़ने की भाषा नहीं है; समर्पण की भाषा है; शरणागति की भाषा है।
बड़ी मधुर कहानी है। झूठ ही होगी, पर मधुर है। और माधुर्य इतना गहरा है उसमें कि झूठ की मैं फिक्र नहीं करता; मेरे लिए मधुर ही सत्य है। इतनी सुंदर है कि सत्य होनी ही चाहिए। वही कसौटी है सत्य की।
कहानी है कि महावीर का जन्म तो हुआ था एक ब्राह्मणी के गर्भ में; पैदा
तो हुए थे ब्राह्मणी के गर्भ में--लेकिन देवताओं ने कहा, "ऐसा कभी हुआ है

कि जैन तीर्थंकर और ब्राह्मण के घर पैदा हो? ऐसा तो कभी सुना नहीं। और ब्राह्मण के घर पैदा होगा तो फिर जिन तीर्थंकर कैसे होगा? फिर तूफान में किश्ती पल ही न पाएगी। फिर संघर्ष की भाषा ही न होगी। फिर उसके जीवन में तलवार की धार और चमक न होगी। देवता बड़े बिबूचन में पड़े। और दुनिया का पहला आपरेशन हुआ। उन्होंने निकाल लिया ब्राह्मणी के गर्भ से महावीर को। तीन या चार महीने के थे, तब उन्होंने गर्भ निकाल लिया। बदल दिया गर्भ एक क्षत्राणी के गर्भ से। वहां एक लड़की पैदा होने को थी, उसे निकालकर ब्राह्मणी के गर्भ में रख दिया, महावीर को एक क्षत्रिय के गर्भ में रख दिया।
यह भी बड़ी सूचक है बात। स्त्री स्वभावतः समर्पण की भाषा जानती है।
इसलिए ठीक ही किया कि स्त्री को निकाल लिया क्षत्रिय के गर्भ से, ब्राह्मण के गर्भ में रख दिया। स्त्रैण भाषा समर्पण की है।
जिनके मन कोमल हैं, फूल जैसे कोमल हैं, उनके लिए नारद का ही मार्ग है।
पर जिनके हृदय में तलवार की चमक और कौंध है, उनके लिए महावीर का मार्ग है।
कहानी सुंदर है, अर्थपूर्ण है। इतना कहती है कहानी कि "ब्राह्मण के घर कभी कोई योद्धा पैदा हुआ? योद्धा पैदा होने के लिए रोएं-रोएं में, खून-खून में, हड्डी-मांस-मज्जा में युद्ध का स्वर चाहिए।
दूसरी मजे की बात है कि चौबीस ही जैनों के तीर्थंकर क्षत्रिय घर में पैदा हुए और चौबीस ही तीर्थंकर अहिंसक हो गए, उन्होंने हिंसा छोड़ दी। तलवार लेकर भी क्या लड़ना! वह कमजोर के लड़ने का ढंग है; कमजोरी को तलवार से पूरा कर लेता है। इसलिए आदमी जितना कमजोर होता गया है, उतने ही उसके शस्त्र मजबूत होते चले गए हैं। अब आज तो लड़ने के लिए कमजोर और ताकत का कोई सवाल ही नहीं है; एटमबम गिराना हो, बच्चा भी गिरा दे सकता है। एक बटन दबा देगा हवाई जहाज में से, एटमबम गिर जाएंगे। जिस आदमी ने एटम गिराया हिरोशिमा, नागासाकी पर, वह कोई बलशाली आदमी थोड़े ही था; साधारण आदमी! और एक लाख आदमी क्षण में मार डाले! यह कमजोर की बात हो गई।
महावीर कहते हैं, जो जितना ही योद्धा होता जाएगा उतने ही शस्त्र छोड़ देगा; उसका खुद होना ही पर्याप्त है। फिर वह मारेगा भी नहीं, क्योंकि मारने की भाषा भी कमजोर की भाषा है। तुम दूसरे को मिटाना चाहते हो, क्योंकि तुम दूसरे से डरते हो--कहीं उसे जीवित छोड़ दिया, हानि न करे; कहीं तुम्हें न मार डाले! तुम उसी को मारते हो जिससे तुम्हें डर है कि कहीं तुम्हारी मौत न आ जाए। महावीर ने कहा, वह भी कमजोर की भाषा है, हम किसी को मारेंगे नहीं। अगर कोई मारने भी आएगा तो हम मरने को राजी रहेंगे, भागेंगे नहीं, लड़ेंगे भी नहीं।
साधारणतः दो उपाय हैंः जब भी तुम पर कोई हमला करे तो या तो भागो या जूझो--दोनों ही कमजोर के हैं। जो बहुत कमजोर है, वह भाग जाता है; जो उतना कमजोर नहीं है, वह लड़ता है। लेकिन हैं दोनों ही कमजोर।
महावीर कहते हैं, जो सच में कमजोरी के पार हो गया, अभय हो गया, वह न तो भागता है न लड़ता है। वह कहता है, "खड़े हैं! हम यहीं खड़े हैं। तुम्हें मारना हो मार डालो।" वह मर जाता है, लेकिन उसके हृदय में हिंसा का भाव नहीं उठता। वह मर जाता है, लेकिन उसके हृदय में प्रतिहिंसा नहीं उठती।
यहां एक बात और समझ लें, क्योंकि फिर सूत्रों को समझना आसान होता जाएगा।
जब परमात्मा ने सोचा कि अकेला हूं, थक गया हूं, बहुत हो जाऊं, तो जीवन पैदा हुआ। निश्चित ही महावीर मृत्यु का साधन करेंगे। उलटे लौटना है। तो जिस तरह परमात्मा ने जीवन के धागे फैलाए थे, उसी तरह उनको मृत्यु के धागे फैलाने हैं, या जीवन के धागे काटने हैं। वृक्ष खड़ा है, तो वासना की जड़ें फैलती हैं पृथ्वी में, तो ही खड़ा है। रस लेता है, आकाश में फैलाता है शाखाओं को, सूरज की किरणें पीता है। वृक्ष को मरना हो, वृक्ष को सिकुड़ना हो, बीज में डूबना हो, वापिस लौटना हो, तो फिर जड़ों को खींच लेगा, फिर शाखाओं को झुका लेगा, क्योंकि फिर सूर्य की ऊर्जा की कोई जरूरत न रही। फिर पृथ्वी के रस की कोई जरूरत न रही।

महावीर के सारे सूत्र एक गहन अर्थ में आत्मघात के सूत्र हैं। इसलिए तुम चकित होओगे कि महावीर अकेले जाग्रत पुरुष हैं जिन्होंने अपने संन्यासी को आत्मघात की भी आज्ञा दी है। दुनिया में किसी ने नहीं दी। आत्मघात की भी आज्ञा! दुनिया का कोई कानून और दुनिया का कोई शास्त्र स्वीकार नहीं करता कि आदमी को हक है कि वह मरना चाहे तो मर जाए; महावीर स्वीकार करते हैं--करना ही पड़ेगा। यह तर्कयुक्त है, क्योंकि वे सिकुड़ने की तरफ जा रहे हैं, लौट रहे हैं वापिस, तो जीवन के सब तरफ से संबंध तोड़ देने हैं। अगर कोई यह भी चाहे कि मुझे पूरे संबंध अभी छोड़ देने हैं, तो कौन दूसरा उसे रोकने का हकदार है! महावीर ने आखिरी स्वतंत्रता आदमी को दी है कि वह आत्मघात करना चाहे तो भी निर्णायक स्वयं है। अगर वह मरना चाहे तो भी हक है उसका! मृत्यु मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है। लेकिन ये सब बातें संगत हैं उनके साथ। और उनके सारे सूत्र, कैसे जीवन से हमारे संबंध छिन्न-भिन्न हो जाएं, कैसे यह फैलाव बंद हो जाए, कैसे हम वापिस घर की तरफ लौट पड़ें, इसके ही सूत्र हैं। यह सारा शास्त्र मृत्यु का शास्त्र है।
तबीबों से मैं क्या पूछूं इलाजे-दर्दे-दिल।
मरज जब जिंदगी खुद हो तो फिर उसकी दवा क्या है!
महावीर के लिए जीवन ही रोग है। और रोग तो गौण हैं। और रोग तो मूल रोग
की छायाएं हैं। जीवन ही रोग है। जीवन ही बंधन है। उसी से मुक्त हो जाना है। तो महावीर का जो मोक्ष है, वह महामृत्यु है--जहां तुम बिल्कुल ही मिट
गए हो; जहां कुछ भी नहीं बचा; जहां परम शून्य अवतरित होता है।
अब हम सूत्रों को लेंः
महावीर ने कहा है, "जो तुम अपने लिए चाहते हो वही दूसरों के लिए भी चाहो। और जो तुम अपने लिए नहीं चाहते, वह दूसरों के लिए भी मत चाहो। यही जिन शासन है। तीर्थंकर का यही उपदेश है।
समझें! साधारणतः तुम जो अपने लिए चाहते हो, वह तुम दूसरों के लिए नहीं चाहते; क्योंकि फिर तो अपने लिए चाहने का कोई अर्थ ही न रहा। तुम एक महल बनाना चाहते हो अपने लिए, तो बहुत गहरे में तुम पाओगे कि तुम चाहते हो कि दूसरा कोई ऐसा महल न बना ले, अन्यथा मजा ही गया। अगर सभी के पास महल हों तो तुम्हारे पास महल होने का अर्थ ही क्या रहा! तुम एक सुंदर स्त्री चाहते हो कि सुंदर पुरुष चाहते हो, तो तुम भीतर यह भी चाहते हो कि ऐसी सुंदर स्त्री किसी और को न मिल जाए, अन्यथा कांटा चुभेगा। तुम ऐसी सुंदर स्त्री चाहते हो जो बस तुम्हारी हो, और वैसी सुंदर स्त्री किसी के पास न हो। सुंदर स्त्री में भी तुम अपने अहंकार को ही भरना चाहते हो। अपने महल में भी अहंकार को भरना चाहते हो।
तुम जो अपने लिए चाहते हो, वह तुम दूसरे के लिए कभी नहीं चाहते। उससे विपरीत तुम दूसरे के लिए चाहते हो--अपने लिए सुख, दूसरे के लिए दुख। लाख तुम कुछ और कहो, लाख तुम ऊपर से कहो कि नहीं, ऐसा नहीं है, हम सब के लिए सुख चाहते हैं--लेकिन जरा गौर से खोजना! सब के लिए सुख तो तुम तभी चाह सकते हो जब तुमने जीवन से अपनी जड़ें तोड़नी शुरू कर दीं, उसके पहले नहीं। क्योंकि जीवन प्रतिस्पर्धा है, प्रतियोगिता है, महत्वाकांक्षा है, पागलपन है, छीन-झपट है, गलाघोंट संघर्ष है।
बड़ी पुरानी कहानी है कि एक आदमी ने बड़ी प्रार्थना-पूजा की और किसी देवता को प्रसन्न कर लिया। वर्षों की साधना के बाद देवता बोला और देवता ने कहा, "क्या चाहते हो?" उसने कहा, "जो भी मैं मांगू वह मुझे मिल जाए।" देवता ने कहा, "निश्चित मिलेगा। लेकिन एक शर्त हैः तुमसे दुगुना तुम्हारे पड़ोसियों को भी मिल जाएगा।" बस सब पूजा-प्रार्थना व्यर्थ हो गई। वह आदमी उदास हो गया। यह भी क्या आशीर्वाद हुआ! क्योंकि मजा ही इसमें था कि जो मेरे पास हो, मेरे पड़ोसियों के पास न हो। आशीर्वाद तो मिल गया। आशीर्वाद में कोई कमी न थी। देवता ने कहा, जो तू चाहेगा उसी क्षण पूरा होगा। इसमें कुछ रुकावट न थी। लेकिन मन सुखी न हुआ, प्रसन्न न हुआ, फूल खिले नहीं। बड़ा उदास हो गया। बड़े उदास मन से देखा कि देखें, वरदान काम भी करता है या नहीं। यह कोई वरदान हुआ! यह तो खाली, चली हुई कारतूस जैसा वरदान हुआ। इसमें कुछ रस ही न रहा।

फिर भी उसने कहा, देखें शायद... । कहा कि एक महल बन जाए। एक महल बन गया। लेकिन जब बाहर आकर देखा तो बड़ा मुश्किल में पड़ गयाः दो-दो महल बन गए थे पड़ोसियों के। छाती पीट ली। यह कोई वरदान हुआ! यह तो अभिशाप हो गया। इससे तो पहली ही भले थे। अपनी ही मेहनत से कर लेते। लेकिन उसने रास्ते खोज लिये। आदमी की हिंसा बड़ी गहन है! उसने कहा, "ठीक है! देवता धोखा दे गये, हम भी रास्ता खोज लेंगे!" मिला होगा वकीलों से, सलाह ली होगी। किसी वकील ने सुझा दिया कि इसमें कुछ घबड़ाने की बात नहीं है। जहां-जहां कानून हैं वहां-वहां निकलने का उपाय है। तू ऐसा कर, तू जाकर मांग कि मेरे घर के सामने दो कुएं खुद जाएं। उसने कहा, "इससे क्या होगा?" उसने कहा, "तू पहले कोशिश तो कर।" दो कुएं उसके घर के सामने खुद गए, पड़ोसियों के सामने चार-चार कुएं खुद गए। वकील ने कहा, "अब तू प्रार्थना कर कि मेरी एक आंख फूट जाए।" तब समझा वह राज। उसने कहा, अरे! मुझे ख्याल में ही न आया। एक आंख फोड़ने का वरदान मांग लिया, पड़ोसियों की दोनों आंखें फूट गईं। अब अंधे पड़ोसी और चार-चार कुएं घर के समाने; जो हुआ, वह हम समझ सकते हैं।
लेकिन सुख हमारा दूसरे के दुख में है। और जीवन हमारा दूसरे की मौत में है। और हमारी सारी प्रसन्नता किसी की उदासी पर खड़ी है। हमारा सारा धन दूसरे की निर्धनता में है। लाख तुम दूसरे के दुख में सहानुभूति प्रगट करो, जब भी दूसरा दुखी होता है, कहीं गहरे में तुम सुखी होते हो। और तुम्हारी सहानुभूति में भी तुम्हारे सुख की भनक होती है।
तुमने कभी पकड़ा अपने को सहानुभूति प्रगट करते हुए? किसी का दिवाला निकल गया, तुम सहानुभूति प्रकट करने जाते हो। कहते हो, बड़ा बुरा हुआ! लेकिन कभी अपना चेहरा आईने में देखा, जब तुम कहते हो, बड़ा बुरा हुआ, तो कैसी रसधार बहती है! तुम कभी गए, जब किसी को लाटरी मिल गई हो, तब तुम कहने गए कि बहुत अच्छा हुआ?
जब कोई सुखी होता है तब तुम अपना सुख प्रगट करने नहीं जाते; तब तो ईर्ष्या पकड़ती है, जलन पकड़ती है। अंगारे छाती में बैठ जाते हैं। फफोले उठ आते हैं भीतर, घाव महसूस होते हैं, पीड़ा होती है कि फिर कोई आगे निकल गया। तब तो तुम दूसरी बातें करते हो। तुम तो कहते हो, धोखेबाज है, बेईमान है। तब तो तुम परमात्मा से कहते हो, "यह क्या हो रहा है तेरे जगत में? अन्याय हो रहा है! यहां पापी और व्यभिचारी जीत रहे हैं और पुण्यात्मा हार रहे हैं।" पुण्यात्मा यानी तुम! पापी यानी वे सब जो जीत रहे हैं!
तुमने कभी ख्याल किया, जब भी कोई जीत जाता है, तुम अपने को समझाते हो, सांत्वना देते हो कि जरूर किसी गलत ढंग से जीत गया होगा, कोई बेईमानी की होगी, रिश्वत दी होगी, चालबाजी की होगी, कोई रिश्तेदारी खोज ली होगी कहीं। एक महिला मेरे पास आई। उसका बच्चा फेल हो गया। वह कहने लगी कि बड़ा अन्याय हो रहा है। ये सब शिक्षक और यह सब शिक्षा की व्यवस्था, सब धोखेबाज, बेईमान हैं। जिन्होंने शिक्षकों को रिश्वतें खिला दीं, वे तो सब उत्तीर्ण हो गए, मेरा लड़का फेल हो गया। मैंने कहा, इसके पहले भी तेरा लड़का पास होता आया था, तब तू कभी भी न आई कहने कि मेरा लड़का पास हो गया, जरूर किसी न किसी ने रिश्वत खिलाई होगी। जब तेरा लड़का पास होता है, तब अपनी मेहनत से पास होता है; जब दूसरों के लड़के पास होते हैं, तब रिश्वत से पास होते हैं! तुमने कभी देखे ये दोहरे मापदंड? जब तुम सफल होते हो तो होना ही था, तुम प्रतिभाशाली हो। और जब दूसरा सफल होता है, बेईमान! कहीं कोई धोखे का रास्ता निकाल लिया। कोई चालबाजी कर गया। जब तुम हारते हो तो अपने पुण्यात्मा होने की वजह से हारते हो। और जब दूसरा हारता है तो पापी है, अपने कर्मों की वजह से हारता है। तुमने कभी ये दोहरे मापदंड देखे? पर यह मापदंड ठीक हैं फैलाव के रास्ते पर, क्योंकि फैलाव यानी प्रतिस्पर्धा। फैलाव यानी गलाघोंट संघर्ष। फैलाव यानी लड़ना है दूसरे से। एक-एक इंच जमीन के लिए लड़ना है। एक-एक इंच पद के लिए लड़ना है। एक-एक इंच धन के लिए लड़ना है। महावीर इस पहले सूत्र में ही तुम्हें मौत का पहला पाठ देते हैं। वे कहते हैं, जो तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरों के लिए भी चाहो। चाह मरेगी ऐसे। फिर चाह जी न सकेगी। चाह की जड़ ही काट दी। जो तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरों के लिए भी चाहो।

जरा सोचो तुम चाहते थे कि एक महल बन जाए--दूसरों के लिए भी! उस चाह में
ही तुम पाओगे कि तुम्हारे महल बनाने की चाह गिर गई। तुम चाहते थे, ऐसा हो वैसा हो, वही सबको भी हो जाए--अचानक तुम पाओगे, पैरों के नीचे से किसी ने जमीन खींच ली।
और जो तुम अपने लिए नहीं चाहते, वह दूसरों के लिए भी मत चाहो। लोगों ने अपने लिए तो स्वर्ग की कल्पनाएं की हैं, और दूसरों के लिए नर्क का इंतजाम किया है। जब भी तुम सोचते हो अपने लिए तो स्वर्ग में सोचते हो, कल्पना करते हो। नहीं, अगर तुम अपने लिए नर्क नहीं चाहते तो दूसरे के लिए भी मत चाहो। क्यों महावीर इस सूत्र को इतना मूल्य देते हैं? यह उनका आधार-सूत्र है। यह बड़ा सीधा और सरल दिखता है ऊपर, लेकिन इसका जाल बहुत गहरा है और सूत्र बड़ी गहराई में तुम्हारे अचेतन को रूपांतरित करने वाला है। अगर तुम एक सूत्र को भी पालन कर लो तो तुम्हें पूरा धर्म उपलब्ध हो जाएगा। अपने लिए वही चाहो जो तुम दूसरे के लिए भी चाहते हो और जो तुम अपने लिए नहीं चाहते वह दूसरे के लिए भी मत चाहो--अचानक तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन की आपाधापी खो गई। अचानक तुम पाओगे, प्रतिस्पर्धा मिट गई, महत्वाकांक्षा को जगह न रही, बीज सूखने लगे, जलने लगे।
यही जिन शासन है।
एतियगं जिणसासणं। यही तीर्थंकर का उपदेश है। जिन्होंने जीता है स्वयं को, उनका यह उपदेश है।
"अध्रुव, अशाश्वत और दुखबहुल संसार में ऐसा कौन-सा कर्म है जिससे मैं दुर्गति में न जाऊं?"
महावीर पूछते हैं, अध्रुव, अशाश्वत... । सभी चीजें प्रतिक्षण बदली जाती हैं। यहां कुछ भी तो शाश्वत नहीं। पानी पर खींची लकीर जैसा है जीवन। यहां तुम खींच भी नहीं पाते लकीर कि मिट जाती है। यहां तुम बना भी नहीं पाते महल कि विदा होने का क्षण आ जाता है। साज-सामान जुटा पाते हो, गीत गा भी नहीं पाते कि विदाई उपस्थित हो जाती है। जीवन की तैयारी ही करने में जीवन बीत जाता है और मौत आ जाती है।
"अध्रुव, अशाश्वत, दुखबहुल... ।" और जहां दुख ज्यादा है और सुख तो केवल आशा है जहां; जहां सुख के केवल सपने हैं, सत्य तो जहां दुख है--यहां ऐसे इस जगत में कौन-सा ऐसा कर्म है, जिससे मैं दुर्गति में न जाऊं? क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि व्यर्थ लकीरें खींचने में मैं अपने लिए दुर्गति बना रहा होऊं। हम बना रहे हैं। व्यर्थ की आकांक्षा में हम अपने लिए ऐसा जाल बुन रहे हैं, जैसे कभी-कभी मकड़ा जाल बुनता है और खुद ही उसमें फंस जाता है। और जो हम बुन रहे हैं उससे कुछ मिलने का नहीं है। उससे कुछ खो जाता है।
धन पाने के लिए लोग कितना दौड़ते हैं! पाकर भी क्या पाते हैं? क्या मिल पाता है? हाथ तो खाली के खाली रह जाते हैं। मरते वक्त निर्धन के निर्धन ही रहते हैं। मगर सारा जीवन गंवा देते हैं। वही जीवन ध्यान भी बन सकता था, जिसे तुमने धन बनाया। वही जीवन-ऊर्जा ध्यान भी बन सकती थी, जिसे तुमने धन में गंवाया। वही जीवन-ऊर्जा तुम्हारे जीवन का आत्यंतिक समाधान बन सकती थी, समाधि बन सकती थी, और तुम व्यर्थ सामान जुटाने में लगे रहे। और सामान भी ऐसा जुटाया जो मौत के क्षण में साथ न ले जा सकोगे, मौत जिसे छीन लेगी। और सामान भी ऐसा जुटाया कि न मालूम कितनों को दुख दिया, न मालूम कितनों की पीड़ा निर्मित की, न मालूम कितनों के लिए नर्क बनाया। इतना दुख देकर तुम सुखी हो कैसे सकोगे? इतना दुख तुम पर लौट-लौट आएगा, अनंत गुना होकर बरसेगा। क्योंकि जगत तो एक प्रतिध्वनि है। तुम गीत गाओ, तुम्हारा ही गीत प्रतिध्वनित होकर तुम पर बरस जाता है। तुम गालियां बको, तुम्हारी ही गालियां लौटकर तुम पर बरस जाती हैं, छिद जाती हैं।
यह जगत तो एक प्रतिध्वनि मात्र है।
तो महावीर कहते हैं, मौलिक सवाल यह है कि मैं कौन-सा कर्म करूं! इस दुखबहुल संसार में, इस अशाश्वत संसार में, जहां सभी कुछ क्षण-क्षण में बदला जा रहा है, जहां न तो वस्तुओं का भरोसा है, न देह का भरोसा है, न मन का भरोसा है... ।
मुझे दिल की धड़कनों का नहीं एतिबार "माहिर"

कभी हो गईं शिकवे, कभी बन गईं दुआएं।
यहां अपने ही दिल का भरोसा नहीं है। क्षणभर में प्रसन्न है, क्षणभर में रोता है। क्षणभर पहले दुआएं दे रहा था, क्षणभर बाद शिकायतों से भर गया। क्षणभर पहले ऐसा प्रकाशोज्ज्वल मालूम होता था और क्षणभर बाद गहन अंधकार से घिर गया। यहां अपने ही दिल का भरोसा नहीं, जो इतने करीब है! दिल यानी तुमसे जो करीब से करीब है। उसका भी भरोसा नहीं है। यहां किस और चीज का भरोसा करें!
कलियों के जिगर अफसुर्दा हैं, कांटों की जबानें सूखी हैं
हम बाग के धोखे में शायद, जंगल के किनारे आ बैठे।
कहीं कुछ धोखा हो गया है। सभी लोग सुख चाहते हैं, मिलता दुख है। सभी लोग फूल मांगते हैं, मिलते कांटे हैं। सभी लोग आनंद के लिए आतुर और व्यथित हैं, पाते संताप हैं।
कलियों के जिगर अफसुर्दा हैं, कांटों की जबानें सूखी हैं
हम बाग के धोखे में शायद, जंगल के किनारे आ बैठे।
कहीं कुछ भूल हो गई है। कहीं कोई बुनियादी चूक हो गई है। हम शायद समझ नहीं पा रहे। हम शायद रेत से तेल निकालने की चेष्टा में संलग्न हैं, अन्यथा इतना दुख कैसे होता? सभी सुख चाहते हों, इतना दुख कैसे होता? सभी लोग अमृत चाहते हों और मौत ही घटती है, अमृत तो घटता दिखाई नहीं पड़ता। सभी लोग चाहते हैं कि नाचते, प्रसन्न होते; लेकिन रसधार रोज-रोज सूखती चली जाती है। न नाच है जीवन में, न उमंग है, न कोई उत्सव है।
"ऐसा कौन-सा कर्म करूं, जिससे इस दुर्गति से बचूं।"
क्या करूं? क्या करना मुझे इस उपद्र्रव के बाहर ले जाएगा?
"ये काम-भोग क्षणभर सुख और चिरकाल तक दुख देनेवाले हैं; बहुत दुख और थोड़ा सुख देनेवाले हैं; संसार-मुक्ति के विरोधी, और अनर्थों की खान हैं।" थोड़ा-सा सुख! ऐसे ही है जैसे कोई मछलियों को पकड़ने जाता है, कांटे पर आटा लगा देता है। मछलियां आटे के लिए आती हैं, कांटे के लिए नहीं; मिलता कांटा है। ऐसा ही लगता है कि जैसे कोई मछुआ मजाक किए जा रहा है। सभी दौड़ते हैं सुख के लिए और आखिर में पाते हैं, कांटे छिद गए।
तुमने भी कितनी बार सुख नहीं चाहा! पाया है? महावीर कहते हैं, शायद थोड़ा-सा आभास मिला हो, प्रथम क्षण में, शायद उल्लास के क्षण में कि मिल गया, तुमने अपने को धोखा दे लिया हो; पर जल्दी ही झूठी पर्तेंं उघड़ जाती हैं। जल्दी ही पता चल जाता है।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन अपने दफ्तर में अपने मालिक से बोला कि शादी की है, हनीमून के लिए पहाड़ जाना चाहता हूं--दो सप्ताह, तीन सप्ताह की छुट्टी! मालिक ने कहा, हनीमून कितने दिन चलेगा--एक सप्ताह, दो सप्ताह, तीन सप्ताह! उतनी छुट्टी ले लो। मुल्ला ने कहा, आप ही बता दें। मालिक ने कहा, मैंने तुम्हारी पत्नी को अभी देखा ही नहीं, मैं बताऊं कैसे कितनी देर चलेगा?
देर-अबेर हो सकती है, पर जल्दी ही घड़ी आ जाती है, जब प्रेम राख हो जाता है। कोई थोड़ी देर तक अपने को भुलाए रखता है, कोई थोड़ी जल्दी जाग जाता है। पर देर-अबेर सभी जाग जाते हैं। इस संसार में जो भी प्रेम है, वह चाहे धन का हो, चाहे रूप का हो, चाहे पद का हो, वह देर-अबेर उखड़ ही जाता है। असलियत कब तक छिपाए छिपेगी?
असलियत दुख है। सुख तो ऊपर का रंग-रोगन है; जरा वर्षा पड़ी, बह गया रंग-रोगन। वह तो कागज के फूलों जैसा है; जरा वर्षा पड़ी, बिखर गये, गल गए।
"ये काम-भोग क्षणभर सुख और चिरकाल तक दुख देनेवाले हैं; बहुत दुख और थोड़ा सुख देनेवाले हैं; संसार-मुक्ति के विरोधी... " संसार से मुक्त होने के विरोधी हैं, क्योंकि इन्हीं की आशा में तो लोग अटके रहते हैं, क्यू लगाए खड़े रहते हैंः अब मिला, अब मिला! अब तक नहीं मिला, मिलता ही होगा! लोग राह ही देखते रहते हैं, बिना यह सोचे कि जिस क्यू में खड़े हैं उसमें किसी को भी कभी मिला? माना कि कुछ लोग क्यू में बिल्कुल आगे पहुंच गए हैं--कोई सिकंदर--मगर सिकंदर से भी तो पूछो, मिला?

सिकंदर मर रहा था तो उसने अपने चिकित्सकों से कहा कि मैं अपनी मां को बिना देखे नहीं मरना चाहता हूं। लेकिन मां दूसरे गांव में थी। या तो वह आए या सिकंदर वहां तक पहुंचे। चौबीस घंटे की कम से कम जरूरत थी। और सिकंदर ने कहा कि मैं सब कुछ देने को तैयार हूं; जो भी तुम्हारी फीस हो ले लो, लेकिन चौबीस घंटे मुझे और जिला लो; जिससे मैं पैदा हुआ हूं उससे विदा तो ले लेने दो; मां को देखकर जाना चाहता हूं। चिकित्सकों ने कहा, असंभव है। सिकंदर ने कहा, अपना आधा साम्राज्य दे दूंगा। उदास खड़े चिकित्सक! उसने कहा, पूरा ले लो। काश! मुझे पहले पता होता कि पूरा साम्राज्य देकर भी एक सांस नहीं मिलती, तो अपने जीवनभर की सांसें इस साम्राज्य के लिए क्यों खराब करता! लेकिन इसी आपा-धापी में, इसी दौड़-धूप में सब गया।
एक-एक सांस इतनी बहुमूल्य है, तुम्हें पता नहीं। इसलिए महावीर कहते हैं, सोच लो, कहां लगा रहे हो अपनी श्वासों को! जो मिलेगा, वह पाने योग्य भी है? कहीं ऐसा न हो कि गंवाने के बाद पता चले कि जो मूल्य दिया था, बहुत ज्यादा था, और जो पाया वह कुछ भी न था। असली हीरों के धोखे में नकली हीरे ले बैठे!
कम से कम मौत से ऐसी मुझे उम्मीद नहीं
जिंदगी तूने तो धोखे पे दिया है धोखा!
जिंदगी सिलसिला हैः धोखे पर धोखा।
"बहुत खोजने पर भी जैसे केले के पेड़ में कोई सार दिखाई नहीं देता, वैसे
ही इंद्रिय-विषयों में भी कोई सुख दिखाई नहीं देता।"
लगता है--लगता है, मूर्च्छा के कारण।
कभी किसी कुत्ते को देखा, सूखी हड्डी को चबाते! चबाता है कितने रस से! तुम बैठे चकित भी होओगे कि सूखी हड्डी में चबाता क्या होगा! सूखी हड्डी में कोई रस तो है नहीं। सूखी हड्डी में चबाता क्या होगा! लेकिन होता यह है कि जब सूखी हड्डी को कुत्ता चबाता है तो उसके ही जबड़ों, जीभ से, तालू से लहू--सूखी हड्डी की टकराहट से लहू बहने लगता है। उसी लहू को वह चूसता है। सोचता है, हड्डी से रस आ रहा है। हड्डी से कहीं रस आया है! अपना ही खून पीता है। अपने ही मुंह में घाव बनाता है। भ्रांति यह रखता है कि हड्डी से रस आता है। हड्डी से खून आ रहा है। जिन्होंने भी जागकर देखा है, थोड़ा अपना मुंह खोलकर देखा है, उन्होंने यही पाया है कि इंद्रिय-सुख सूखी हड्डियों जैसे हैं, उनसे कुछ आता नहीं। अगर कुछ आता भी मालूम पड़ता है तो वह हमारी ही जीवन की रसधार है। और वह घाव हम व्यर्थ ही पैदा कर रहे हैं। जो खून हमारा ही है, उसी को हम घाव पैदा कर-कर के वापिस ले रहे हैं।
काम-भोग में जो सुख मिलता है, वह सुख तुम्हारा ही है जो तुम उसमें डालते हो। वह तुम्हारे काम-विषय से नहीं आता। स्त्री को प्रेम करने में, पुरुष को प्रेम करने में तुम्हें जो सुख की झलक मिलती है, वह न तो स्त्री से आती है न पुरुष से आती है, तुम्हीं डालते हो। वह तुम्हारा ही खून है, जो तुम व्यर्थ उछालते हो। पर भ्रांति होती है कि सुख मिल रहा है। कुत्ते को कोई कैसे समझाए! कुत्ता मानेगा भी नहीं। कुत्ते को इतना होश नहीं। लेकिन तुम तो आदमी हो! तुम तो थोड़े होश के मालिक हो सकते हो! तुम तो थोड़े जाग सकते हो!
"बहुत खोजने पर भी जैसे केले के पेड़ में कोई सार दिखाई नहीं देता, वैसे
ही इंद्रिय-विषयों में भी कोई सुख दिखाई नहीं देता।"
"खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर दुख को भी सुख मानता है, वैसे ही मोहातुर मनुष्य काम-जन्य दुख को सुख मानता है।"
खुजली हो जाती है। जानते हो, खुजलाने से और दुख होगा, लहू बहेगा, घाव
हो जाएंगे, खुजली बिगड़ेगी और, सुधरेगी न। सब जानते हुए, फिर भी खुजलाते हो। एक अदम्य वेग पकड़ लेता है खुजलाने का। जानते हुए, समझते हुए, अतीत के अनुभव से परिचित होते हुए, पहले भी ऐसा हुआ है, बहुत बार ऐसा हुआ है; फिर भी कोई तमस, कोई मोह-निद्रा, कोई अंधेरी रात, कोई मूर्च्छा मन को पकड़ लेती है, फिर भी तुम खुजलाए चले जाते हो!
तुमने कभी ख्याल किया, लोग जब खुजली को खुजलाते हैं तो बड़ी तेजी से खुजलाते हैं। क्योंकि वे डरते हैं। उन्हें भी पता है कि अगर धीरे-धीरे

खुजलाया तो रुक जाएंगे। बड़े जल्दी खुजला लेते हैं, अपने को ही धोखा दे रहे हैं। मांस निकल आता है, लहू बह जाता है। पीड़ा होती है, जलन होती है। फिर वही अनुभव! लेकिन दुबारा फिर खुजली होगी तो तुम भरोसा कर सकते हो कि तुम न खुजलाओगे?
कितनी बार तुमने क्रोध किया, कितनी बार क्रोध से तुम विषाद से भरे, कितनी बार तुम काम में गए, कितनी बार हताश वापिस आए, कितनी बार आकांक्षा की और हर बार आकांक्षा टूटी और बिखरी, कितनी बार स्वप्न संजोए--हाथ क्या लगा? बस राख ही राख हाथ लगी। फिर भी, दुबारा जब आकांक्षा पकड़ेगी, दुबारा जब क्रोध आएगा, दुबारा जब काम का वेग उठेगा, तुम फिर भटकोगे।
मनुष्य अनुभव से सीखता ही नहीं। जो सीख लेता है, वही जाग जाता है। मनुष्य अनुभव से निचोड़ता ही नहीं कुछ। तुम्हारे अनुभव ऐसे हैं जैसे फूलों का ढेर लगा हो, तुमने उनकी माला नहीं बनाई। तुमने फूलों को किसी एक धागे में नहीं पिरोया कि तुम्हारे सभी अनुभव एक धागे में संगृहीत हो जाते और तुम्हारे जीवन में एक जीवन-सूत्र उपलब्ध हो जाता, एक जीवन-दृष्टि आ जाती। अनुभव तुम्हें भी वही हुए हैं जो महावीर को। अनुभव में कोई भेद नहीं। तुमने भी दुख पाया है, कुछ महावीर ने ही नहीं। तुमने भी सुख में धोखा पाया है, कुछ महावीर ने ही नहीं। फर्क कहां है? अनुभव तो एक से हुए हैं। महावीर ने अनुभवों की माला बना ली। उन्होंने एक अनुभव को दूसरे अनुभव से जोड़ लिया। उन्होंने सारे अनुभवों के सार को पकड़ लिया। उन्होंने उस सार का एक धागा बना लिया। उस सूत्र को हाथ में पकड़कर वे पार हो गए। तुमने अभी धागा नहीं पिरोया। अनुभव का ढेर लगा है, माला नहीं बनाई। माला बना लेना ही साधना है। उसी की तरफ ये इशारे हैं।
"खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर दुख को भी सुख मानता है, वैसे ही मोहातुर मनुष्य काम-जन्य दुख को सुख मानता है।"
थोड़ा समझो। हमारी मान्यता से बड़ा फर्क पड़ता है। हमारी मान्यता से, हमारी व्याख्या से बहुत फर्क पड़ता है।
तुमने कभी ख्याल किया? एक स्त्री को तुम आलिंगन कर लेते हो, सोचते हो, सुख मिला। सोचने का ही सुख है। ऐसा ही तो सपने में भी तुम सोच लेते हो, तब भी सुख मिल जाता है। सपने में कोई स्त्री तो नहीं होती, तुम्हीं होते हो। सपने में कोई स्त्री तो नहीं होती, तुम्हारी ही धारणा होती है। हो सकता है, अपनी ही दुलाई को छाती से चिपटाए पड़े हो, सपना देख रहे हो। जागकर हंसते हो कि कैसा पागलपन है!
लेकिन सपने में भी उतना ही सुख मिल जाता है; शायद थोड़ा ज्यादा ही मिल जाता है, जितना कि जागने की स्त्री से मिलता है। क्योंकि जागते हुए स्त्री की मौजूदगी कुछ बाधा भी पैदा करती है। सपने में तो कोई भी नहीं, तुम अकेले ही हो, तुम्हारा ही सारा भावनाओं का खेल है।
सपने में तुम सुख ले लेते हो स्त्री को आलिंगन करने का, तो थोड़ा सोचो तो! सुख तुम्हारी ही धारणा का होगा। जागते में भी इतना सुख नहीं मिलता, क्योंकि जागते में एक जीवित स्त्री उस तरफ खड़ी है। जीवित स्त्री में पसीने की बदबू भी है। जीवित स्त्री में कांटे भी हैं। जैसे तुममें हैं, ऐसे उसमें हैं। जीवित स्त्री की मौजूदगी थोड़ी बाधा भी डालती है। दूसरे व्यक्ति की मौजूदगी परतंत्र भी करती है। परतंत्रता की पीड़ा भी होती हैं। स्त्री हो सकता है, अभी राजी न हो कि आलिंगन करो, हाथ से हटा दे। लेकिन सपने में तो कोई तुम्हें हाथ से न हटा सकेगा।
एक आदमी एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और उसने कहा कि मेरी बड़ी मुसीबत है, मेरी सहायता करें। मैं रात सपना देखता हूं कि हजारों सुंदरियां नग्न मेरे चारों तरफ नाचती हैं। मनोवैज्ञानिक अपनी कुर्सी से टिका बैठा था, सम्हलकर बैठ गया। उसने कहा, "यह परेशानी है? अरे पागल! और क्या चाहता है? इसमें परेशानी कहां है? तू अपना राज बता, कैसे तू यह सपना पैदा करता है? क्या तेरी फीस है, बोल!"
उस आदमी ने कहा, "परेशानी यह है कि सपने में मैं भी लड़की होता हूं। यही झंझट है। मुझे किसी तरह सपने में आदमी रहने दो। यही पूछने आया हूं।"

सपनों में सुख मिल जाता है। सपने में तुम कभी सम्राट हुए? जरूर हुए होओगे। कोई कमी नहीं रह जाती।
चीन में एक बड़ा सम्राट हुआ। उसका एक ही लड़का था। वह मरणासन्न पड़ा था।
वह उसके पास तीन दिन से बैठा था, तीन रात से बैठा था। सारी आशा वही था। सारी महत्वाकांक्षा वही था। फिर झपकी लग गई उसकी; तीन दिन का जागा हुआ सम्राट, बैठे-बैठे सो गया। उसने एक सपना देखा कि उसके बारह लड़के हैं--एक से एक सुंदर, बलिष्ठ, प्रतिभाशाली, मेधावी। बड़ा उसका स्वर्ण से बना हुआ महल है। महल के रास्ते पर हीरे-जवाहरात जड़े हैं। बड़ा उसका साम्राज्य है। वह चक्रवर्ती है। तभी बाहर जो बेटा बिस्तर पर पड़ा था, वह मर गया। पत्नी चीख मारकर चिल्लाई, सपना टूटा और सम्राट ने सामने मरे हुए लड़के को पड़ा देखा। पत्नी को चीखते देखा। पत्नी जानती थी कि पति को बड़ा सदमा पहुंचेगा। घबड़ा गई, क्योंकि पति देखता ही रहा। न केवल रोया नहीं, हंसने लगा। पत्नी समझी कि पागल हो गया। उसने कहा, "यह तुम्हें क्या हुआ? तुम हंस क्यों रहे हो?" उसने कहा, "मैं हंस रहा हूं इसलिए कि अब किसके लिए रोऊं! अभी सपने में बारह लड़के थे, बड़े सुंदर थे, यह कुछ भी नहीं! बड़े स्वस्थ, बलिष्ठ थे। जैसे उनकी मौत कभी आएगी ही न, ऐसे थे। अमृत-पुत्र थे। और बड़ा महल था, यह महल झोपड़ा है! सोने का बना था। राह पर हीरे-जवाहरात लगे थे। तेरी चीख ने सब गड़बड़ कर दिया। न तेरा मुझे पता था, न इस बेटे का मुझे पता था; सपने में तुम ऐसे ही खो गए थे, जैसे अब सपना खो गया। अब मैं सोचता हूं, किसके लिए रोना! उन बारह के लिए रोऊं पहले कि इस एक के लिए रोऊं? इसलिए हंसी आती है। हंसी आती है कि रोना व्यर्थ है। हंसी आती है कि वह भी एक सपना था, यह भी एक सपना है। वह आंख-बंद का सपना था, यह आंख-खुली का सपना है।"
तुम जिसे सुख मान लेते हो, वह सुख मालूम पड़ता है। कई दफा दुख को भी तुम सुख मान लेते हो, सुख मालूम पड़ता है। पहली दफा जब कोई सिगरेट पीता है तो सुख नहीं मिलता, दुख ही मिलता है, खांसी आ जाती है, धुआं सिर में चढ़ जाता है, चक्कर मालूम होता है, घबड़ाहट लगती है। आखिर धुआं ही है--गंदा धुआं है। उसको भीतर ले जाने से सुख कैसे हो सकता है? लेकिन फिर धीरे-धीरे अभ्यास करने से...
"रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान।" फिर घिसते-घिसते रस्सी के, अभ्यास करते-करते... "करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।" पहले जड़मति थे, अकल न थी, इसलिए धुआं पीया और मजा न आया। फिर बुद्धि आ जाती है अभ्यास से। फिर मजे से पीने लगते हैं। फिर बिना पीए कष्ट मिलने लगता है। शराब पहली दफे पीकर देखी, बेस्वाद है, तिक्त है। फिर धीरे-धीरे वही मधुर होने लगती है। शराब जैसी तिक्त वस्तु मधु जैसी मधुर मालूम होने लगती है। अभ्यास... । तुम अगर अपने जीवन के सुख-दुख की ठीक से छानबीन करोगे तो तुम पाओगेः
जो तुमने सुख मान लिया, वह सुख; जो तुमने दुख मान लिया, वह दुख।
पूरब, सुदूर पूर्व में कुछ छोटे-छोटे कबीले हैं। वे चुंबन नहीं करते। उन्हें पता ही न था जब तक वे सभ्यता के संपर्क में न आए कि लोग चुंबन भी करते हैं। और जब उन्होंने देखा कि स्त्री-पुरुष चुंबन करते हैं तो वे बहुत घबड़ाए, बड़ा वीभत्स उन्हें मालूम हुआ। यह भी कोई बात हुई! ओंठ, झूठे ओंठ, गंदे ओंठ, लार और थूक से सने ओंठ, एक-दूसरे पर रगड़ रहे हैं और कहते हैं, मजा आ रहा है! उन्होंने कभी सदियों में चुंबन नहीं लिया। उन्हें पता ही न था। वे जो करते हैं, अगर तुम करोगे तो बहुत हैरान होओगे। वे एक-दूसरे से नाक रगड़ते हैं। तुमने कभी रगड़ी नाक? रगड़ोगे तो पागल मालूम पड़ोगे, यह क्या कर रहे हो! कोई देख न ले! अपनी प्रेयसी से भी नाक न रगड़ोगे, क्योंकि वह भी सोचेगी कि तुम्हारा दिमाग खराब है, नाक रगड़ते हो! लेकिन वह कबीला सदियों से नाक रगड़ता रहा है। वही उनका चुंबन है। ज्यादा हाइजिनिक! अगर चिकित्साशास्त्रियों से पूछो तो तुमसे बेहतर है। कम से कम नाक ही रगड़ते हैं, कोई कीड़ों का और कीटाणुओं का आदान-प्रदान तो नहीं करते। अब चुंबन में तो कोई लाखों कीटाणुओं का आदान-प्रदान हो जाता है।
मैंने सुना, एक आदमी अपने डाक्टर के पास गया। बड़ा घबड़ाया हुआ था। और उसने कहा कि यह चेचक की बीमारी बड़े जोर से फैल रही है। और मेरे लड़के को भी लग गई है।

डाक्टर ने कहा, "घबड़ाने की कोई बात नहीं है। फैली है। महाकोप उसका है। सावधान रहो, संक्रामक है, पर घबड़ाने की कोई बात नहीं। लड़का भी ठीक हो जाएगा।" उसने कहा, "ठीक हो जाएगा जब, बात अलग। लड़का मेरी नौकरानी को चूमता है, इससे मुझे घबड़ाहट हो गई है।"
"और तुम समझाये नहीं?"
उसने कहा कि "अब समझाने का क्या है, मैं भी उसको चूम लिया हूं। और इतना
ही नहीं है... ।"
फिर भी डाक्टर ने कहा, "घबड़ाओ मत, ठीक हो जाएगा।"
पर उसने कहा, "इतना ही मामला नहीं है, मैंने पत्नी को भी चूम लिया है।" डाक्टर घबराया। उसने कहा कि "रुको जी, बकवास बंद करो! पत्नी को भी चूमा है? पहले मैं अपनी जांच करवाऊं, क्योंकि तुम्हारी पत्नी को मैं भी चूम बैठा हूं!"
अब तक शांत था। बीमारियां... लेन-देन हो रहा है! लोग कह रहे हैं, बड़ा सुख मिल रहा है। चुंबन जैसा सुख... ! पर कभी तुमने सोचा, कभी जागकर देखा? सुख क्या हो सकता है? तुम भी चौंकोगे, क्योंकि तुमने कभी जागकर सोचा नहीं, ध्यान नहीं किया। तुमने जिन-जिन बातों में सुख माना है, उनमें फिर से तो विचार करो! फिर से एक बार पुनर्विचार करो। तटस्थ भाव से, वैज्ञानिक दृष्टि से निरीक्षण करो। तुम बहुत हैरान हो जाओगे, तुम्हारे सुख तुम्हारी मान्यताओं के सुख हैं। जो मान लिया, जो पकड़ लिया अचेतन में, वही सुख मालूम हो रहा है। जैसे ही जागोगे, वैसे ही तुम्हारे सुख विदा हो जाएंगे। तुम इस जीवन में दुख ही दुख पाओगे।
महावीर का सारा साधना-शास्त्र इस अनुभूति पर निर्भर है कि तुम्हें जीवन में परम दुख का अनुभव हो जाए।
खुदा की देन है जिसको नसीब हो जाए
हर एक दिल को गमे-जाविंदा नहीं मिलता
--यह जो परम दुख है, यह परमात्मा की अनुकंपा से मिलता है। यह परम दुख,
यह स्थायी दुख का बोध कि यहां सब दुख है--"गमे-जाविंदा"--यह स्थायी गम... खुदा की देन है जिसको नसीब हो जाए
हर एक दिल को गमे-जाविंदा नहीं मिलता
महावीर को मिला। तुम्हें भी मिल सकता है। है तो, मिला तो है। तुम देखते ही नहीं। तुम छिटकते हो। तुम देखने से बचना चाहते हो।
लोग अपने जीवन के सत्य को देखने से बचना चाहते हैं, क्योंकि डरते हैं।
और डर उनका स्वाभाविक है। डरते हैं कि कहीं जीवन का सत्य देखा तो कहीं दुख ही दुख हाथ में न रह जाए। इसलिए पीठ किए रहते हैं। इसलिए आंख बचाए चले जाते हैं। इसलिए आंख बंद कर लेते हैं। मगर ऐसे तुम किसे धोखा दे रहे हो? यह धोखा स्वयं को ही दिया गया धोखा है।
एक कहानी मैंने सुनी है। एक शहर में एक नई दुकान खुली। जहां कोई भी युवक जाकर अपने लिए एक योग्य पत्नी ढ.ूंढ सकता था। एक युवक उस दुकान पर पहुंचा। दुकान के अंदर उसे दो दरवाजे मिले। एक पर लिखा था, युवा पत्नी; और दूसरे पर लिखा था, अधिक उम्र वाली पत्नी! युवक ने पहले द्वार पर धक्का लगाया और अंदर पहुंचा। फिर उसे दो दरवाजे मिले। पत्नी वगैरह कुछ भी न मिली। फिर दो दरवाजे! पहले पर लिखा था, सुंदर; दूसरे पर लिखा था, साधारण। युवक ने पुनः पहले द्वार में प्रवेश किया। न कोई सुंदर था न कोई साधारण, वहां कोई था ही नहीं। सामरे फिर दो दरवाजे मिले, जिन पर लिखा थाः अच्छा खाना बनानेवाली और खाना न बनानेवाली। युवक ने फिर पहला दरवाजा चुना। स्वाभाविक, तुम भी यही करते। उसके समक्ष फिर दो दरवाजे आए, जिन पर लिखा थाः अच्छा गाने वाली और गाना न गाने वाली। युवक ने पुनः पहले द्वार का सहारा लिया और अब की उसके सामने दो दरवाजों पर लिखा थाः दहेज लानेवाली और न दहेज लानेवाली। युवक ने फिर पहला दरवाजा चुना। ठीक हिसाब से चला। गणित से चला। समझदारी से चला। परंतु इस बार उसके सामने एक दर्पण लगा था, और उस पर लिखा था, "आप बहुत अधिक गुणों के इच्छुक हैं। समय आ गया है कि आप एक बार अपना चेहरा भी देख लें।"

ऐसी ही जिंदगी हैः चाह, चाह, चाह! दरवाजों की टटोल। भूल ही गए, अपना चेहरा देखना ही भूल गए! जिसने अपना चेहरा देखा, उसकी चाह गिरी। जो चाह में चला, वह धीरे-धीरे अपने चेहरे को ही भूल गया। जिसने चाह का सहारा पकड़ लिया, एक चाह दूसरे में ले गई, हर दरवाजे दो दरवाजों पर ले गए, कोई मिलता नहीं। जिंदगी बस खाली है। यहां कभी कोई किसी को नहीं मिला। हां, हर दरवाजे पर आशा लगी है कि और दरवाजे हैं। हर दरवाजे पर तख्ती मिली कि जरा और चेष्टा करो। आशा बंधाई। आशा बंधी। फिर सपना देखा। लेकिन खाली ही रहे। अब समय आ गया, आप भी दर्पण के सामने खड़े होकर देखो। अपने को पहचानो!
जिसने अपने को पहचाना वह संसार से फिर कुछ भी नहीं मांगता। क्योंकि यहां कुछ मांगने जैसा है ही नहीं। जिसने अपने को पहचाना, उसे वह सब मिल जाता है जो मांगा था, नहीं मांगा था। और जो मांगता ही चलता है, उसे कुछ भी नहीं मिलता है।
इस जिंदगी में तुम न केवल अपने को धोखा दे रहो हो; तुम्हारे, जिनको तुम अपने कहते हो, उनको भी धोखा दे रहे हो। घर में एक बच्चा पैदा होता है। तुम तो धोखे में जीए ही, तुम यही धोखा उसको भी सिखाते हो। तुम तो दुख में जीए ही, तुम इसी दुख का शिक्षण उसे भी देते हो। ऐसे पागलपन हटता नहीं संसार से, बढ़ता है। हम अपनी बीमारियां दूसरों को दिये चले जाते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने लड़के पर रौब गांठने के लिए एक दिन शिकार पर उसे साथ ले गया। वहां एक पक्षी पर निशाना साधते हुए लड़के से बोला, "देख बेटे! मेरा निशाना कितना अचूक होता है!" यह कहकर उसने गोली दागी। हमेशा की तरह, निशाना चूक गया। यह देखकर कि लड़का बहुत ध्यान से उड़ते पक्षी की ओर देख रहा है, मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "देख बेटे, देख! आश्चर्य देख! मरकर भी पक्षी उड़ान भर रहा है!"
मगर कोई मानने को राजी नहीं है कि निशाना अपना चूक गया है। बाप का निशाना चूक गया है, लेकिन बेटे से कह रहा है, "देख, बेटे देख! निशाना तो लग गया, चमत्कार देख! फिर कभी मौका मिले न मिले। पक्षी मरकर भी उड़ रहा है!" अगर तुम्हारा निशाना चूक गया हो तो किसी को भूलकर भी यह आभास मत देना
कि लग गया है। अपनी हार को स्वीकार कर लेना। इससे तुम्हें भी लाभ होगा, औरों को भी लाभ होगा। अपनी पराजय को मान लेना, क्योंकि तुम्हारी पराजय ही तुम्हारी विजय-यात्रा का पहला कदम बनेगी। धोखा मत दिये चले जाना। यह अकड़ व्यर्थ है। इस अकड़ का कोई सार नहीं है।
महावीर इस अकड़ को तोड़ने के लिए ही ये सूत्र कह रहे हैं। हम वही-वही मांगे चले जाते हैं। हर बार हारते हैं, फिर वही मांगते हैं। कभी-कभी तो हमारी मांगें ऐसी असंगत और मूढ़तापूर्ण होती हैं, लेकिन चूंकि हमारी मांगें हैं, हम न तो उनकी मूढ़ता देखते, न असंगति देखते हैं।
एक भिखारी ने लाटरी का टिकट खरीदा और भगवान से प्रार्थना की कि हे प्रभु! मुझे लाटरी का पहला इनाम दे दो, जिससे मैं कार खरीद सकूं। पैदल भीख मांगते-मांगते तो मेरी टांगें टूटी जाती हैं।
कार में भी भीख ही मांगेगा! जैसे हमें कोई होश ही नहीं है। तुम क्या मांग रहे हो? तुम जो मांगते हो, उसमें फिर तुम वही मांग रहे हो, वही पुराना ढांचा जिसमें तुम जन्मों-जन्मों से जी रहे हो; और जिसमें सिवाय दुख, सिवाय पीड़ा और संताप के कुछ भी नहीं पाया है।
एक छोटे शहर के चौधरी घूमने के ख्याल से दिल्ली पहुंचे। तो एक मामूली
से परिचित सज्जन के घर जा धमके और बातें करने लगे।
बहुत देर तक, जब उसने वहां से जाने का नाम न लिया तो घर वाले सज्जन ने अपने नौकर को आवाज देकर बुलाया और कहा, "भाई सामान बांधो और चलने की तैयारी करो।"
चौधरी और नौकर दोनों आश्चर्य में पड़ गए कि एकाएक कहां जाने की तैयारी है। आखिर में चौधरी के पूछने पर कि इस वक्त कहां जा रहे हैं, सज्जन ने कहा, "भाई! मकान पर तो आपने अधिकार कर ही लिया है.। कहीं सामान भी हाथ से न जाता रहे, इसलिए यहां से भागना अच्छा है।"
इससे उलटी हालत तुम्हारी है। मकान पर तो अधिकार हो ही गया है संसार का, सामान पर भी अधिकार हो गया है! तुम ही बचे हो, और तो सब खो दिया है। अब

अपने को ही खो रहे हो। भागो! महावीर की साधना-विधि जीवन में आग लगी है, ऐसा देखकर तुम्हें जगाने की और इस घर को छोड़ देने के लिए है। बाहर आओ! लोग तुमसे कहेंगे, "पलायनवादी हो रहे हो?"
महावीर कहते हैं, घर में जब आग लगी हो तो पलायन ही समझदारी है। जहां दुख हो, वहां से भाग जाना ही समझदारी है।
और ध्यान रखना, अगर तुम दुख से बच सको तो सुख की संभावना का द्वार खुलता है। लेकिन सुख कहीं बाहर नहीं है। सुख तुम्हारा स्वभाव है। संसार बाहर है। सुख तुम्हारा स्वभाव है। जितने तुम बाहर जाओगे उतने सुख से दूर होते चले जाओगे। जितने तुम बाहर न जाओगे उतनी ही सुख की धुन बजने लगेगी। सुख का सितार बजने को तैयार रखा है, सिर्फ तुम घर आओ।
मुल्ला नसरुद्दीन एक धनपति के घर नौकरी करता था। एक दिन उसने कहा, "सेठ जी, मैं आपके यहां से नौकरी छोड़ देना चाहता हूं। क्योंकि यहां मुझे काम करते हुए कई साल हो गए, पर अभी तक मुझ पर आप को भरोसा नहीं है।" सेठ ने कहा, "अरे पागल! कैसी बात करता है! नसरुद्दीन होश में आ! तिजोरी की सभी चाबियां तो तुझे सौंप रखी हैं। और क्या चाहता है? और कैसा भरोसा?" नसरुद्दीन ने कहा, "बुरा मत मानना, हुजूर! लेकिन उसमें से एक भी ताली तिजोरी में लगती कहां है!"
जिस संसार में तुम अपने को मालिक समझ रहे हो, तालियों का गुच्छा लटकाए फिरते हो, बजाते फिरते हो, कभी उसमें से ताली कोई एकाध लगी, कोई ताला खुला? कि बस तालियों का गुच्छा लटकाए हो। और उसकी आवाज का ही मजा ले रहे हो। कई स्त्रियां लेती हैं, बड़ा गुच्छा लटकाए रहती हैं। इतने ताले भी मुझे उनके घर में नहीं दिखाई पड़ते जितनी तालियां लटकाई हैं। मगर आवाज, खनक सुख देती है।
जरा गौर से देखो, तुम्हारी सब तालियां व्यर्थ गई हैं। क्रोध करके देखा, लोभ करके देखा, मोह करके देखा, काम में डूबे, धन कमाया, पद पाया, शास्त्र पढ़े, पूजा की, प्रार्थना की--कोई ताली लगती है?
महावीर कहते हैं, संसार की कोई ताली लगती नहीं। और जब तुम सब तालियां फेंक देते हो, उसी क्षण द्वार खुल जाते हैं। संसार से सब तरह से वीतराग हो जाने में ही ताली है, चाबी है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
दूसरा प्रवचन

प्यास ही प्रार्थना है

पहला प्रश्नः क्या यह आरोप सही है कि महावीर और बुद्ध, यह कहकर कि जीवन दुख ही दुख है, भारत और एशिया के जीवन को सदियों-सदियों के लिए विपन्न और दुखी बना गए? और क्या यह जीवन अस्वीकार की दृष्टि स्वस्थ अध्यात्म कही जा सकती है?

पहली बात, न तो कोई तुम्हें आनंदित कर सकता है, न कोई तुम्हें विपन्न
कर सकता है। जो भी तुम होते हो, तुम्हारा ही निर्णय है। बहाने तुम कोई भी खोज लो।
महावीर ने कहा, जीवन व्यर्थ है। कहा, ताकि तुम महाजीवन में जाग सको। तुमने अगर गलत पकड़ा और तुमने इस जीवन को भी छोड़ दिया--और नीचे गिर गए, महाजीवन में न उठे। एक जगह तुम खड़े थे सीढ़ी पर और महावीर ने कहा, छोड़ो इसे, आगे बढ़ो। छोड़ा तो तुमने जरूर, लेकिन पीछे हट गए। कसूर तुम्हारी समझ का है। जीवन में सदा ही उत्तरदायित्व हमारा है। दूसरों पर टालने की आदत छोड़ो। महावीर ने कहा था, ताकि तुम महाजीवन की तरफ उठो। जीवन की निंदा की थी, किसी परम जीवन की प्रशंसा के लिए।
इस जीवन को जिसे तुम जीवन कहते हो, जीवन कहने जैसा क्या है? इसमें संपन्न होकर भी क्या मिलेगा? यह मिल भी जाए तो कुछ मिलता नहीं; खो भी जाए तो कुछ खोता नहीं। स्वप्नवत है। स्वप्न से जागने को कहा था। तुम स्वप्न से जागे तो नहीं, और महातंद्रा में खो गए। तुम्हारे दृष्टिकोण में, तुम्हारी व्याख्या में कहीं भूल हो गई। तुम्हारा भाष्य भ्रांत है।
महावीर को तो देखो, विपन्न दिखाई पड़ते हैं? और संपन्नता क्या होगी? महावीर से ज्यादा सुंदर महिमा-मंडित परमात्मा की कोई और छवि देखी है? महावीर से ज्यादा आलोकित, विभामय और कोई विभूति देखी? कहीं और देखा है ऐसा ऐश्वर्य, जैसा महावीर में प्रगट हुआ? जैसी मस्ती और जैसा आनंद, और जैसा संगीत इस आदमी के पास बजा, कहीं और सुना है? कृष्ण को तो बांसुरी लेनी पड़ती है तब बजता है संगीत; महावीर के पास बिना बांसुरी के बजा है। मीरा को तो नाचना पड़ता है, तब बजता है संगीत; महावीर के पास बिना नाचे नचा है। कोई सहारा न लिया--वीणा का भी नहीं, नृत्य का भी नहीं, बांसुरी का भी नहीं। कृष्ण तो सुंदर लगते हैं--मोर-मुकुट बांधे हैं। महावीर के पास तो सौंदर्य के लिए कोई भी सहारा नहीं--बेसहारे, निरालंब! लेकिन कहीं और देखा है परमात्मा का ऐसा आविष्कार--जीवन की ऐसी प्रगाढ़ता, ऐसा घना आनंद! तो महावीर जीवन के विपरीत तो नहीं हो सकते। नहीं तो सूख जाते, जैसे जैन मुनि सूखे हैं। जीवन के विपरीत तो नहीं हो सकते; नहीं तो कुरूप हो जाते, जैसे जैन मुनि हो गए हैं। सिकुड़ जाते। जीवन को छोड़ा है, लेकिन सिकुड़े नहीं हैं। मृत्यु को वरण किया है, महामृत्यु को वरण किया है--लेकिन मरे नहीं हैं। मृत्यु उन्हें और निखार दे गई। मृत्यु को स्वीकार करके उनका जीवन और भी संपन्न हुआ है, और भी गहन धन की वर्षा हुई है।
तुम मृत्यु से डरे-डरे जीते हो। महावीर को वह डर भी न रहा, उनका जीवन अभय हुआ है। तुम घबड़ाए हो, धन छिन न जाए! तो धन भी हो, धन से ज्यादा तो घबड़ाहट आ जाती है कि छिन न जाए! महावीर ने धन छोड़ा, इतना ही मत देखो; साथ ही घबड़ाहट भी तिरोहित हो गई है। जब धन ही न रहा तो छिनने की बात ही कहां उठती है! महावीर ने वह सब छोड़ दिया जिसके साथ भय आता हो; वह सब छोड़ दिया जिसके साथ चिंता आती हो।
लेकिन ध्यान रखना, छोड़ने पर जोर नहीं है। पाया! चिंतामुक्त जीवन-दशा पायी। अपूर्व शांति पायी। अभय पाया। सत्य प्रगट हुआ महावीर से। ऐसा बहुत कम हुआ है।
महावीर को अगर गौर से समझो तो पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि महावीर
के पास कोई भी कारण नहीं है। जीसस का सम्मान है--सूली कारण है। जीसस अगर सूली पर न चढ़े होते, न चढ़ाए गए होते, ईसाइयत पैदा न होती। इसलिए क्रास

प्रतीक बन गया। जीसस के दुख ने करोड़ों लोगों की सहानुभूति को आकर्षित कर लिया। दुख सदा सहानुभूति आकर्षित करता है।
कृष्ण की बांसुरी के स्वर हैं। पशु भी नाच उठे, पक्षी भी आनंदित हुए, दौड़ पड़े स्त्री-पुरुष! महावीर के पास क्या है? न बांसुरी है, न सूली है। महावीर निपट खड़े हैं नग्न, वस्त्र भी नहीं। कुछ भी नहीं है, जिस कारण लोग महावीर के पास जाएं। फिर भी लोग गए। फिर भी उन चरणों में लोग झुके हैं। कृष्ण ने तो कहाः "सर्वधर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज। सब छोड़, मेरी शरण आ!" तो भी अर्जुन झिझका-झिझका शरण आया। उसकी झिझक से ही तो गीता पैदा हुई। संदेह करता ही चला गया।
महावीर ने कहाः "किसी की शरण जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। मेरी शरण
मत आओ, अपनी शरण जाओ!" फिर भी लोग महावीर के चरणों में आए, जरूर कुछ महिमापूर्ण घटित हुआ है! कुछ अनूठा लोगों को दिखा है!
जैन धर्म से खो गई वह अनूठी बात--वह दूसरी बात है। उससे महावीर को मत जोड़ो। जैन धर्म तुम्हारा है। जैन धर्म तुम्हारी व्याख्या है महावीर के संबंध में। जैन धर्म वह नहीं है जो महावीर ने दिया है। जैन धर्म वह है जो तुमने लिया है। महावीर ने जो कहा है, वह तो कुछ और है। तुमने जो पकड़ा है, समझा है, वह कुछ और है। तुम्हारी समझ के संग्रह का नाम तुम्हारा शास्त्र, तुम्हारा धर्म, तुम्हारी सभ्यता, संस्कृति है।
निश्चित ही, कल ही मैं आपसे कहता था कि चौबीसों तीर्थंकर जैनों के क्षत्रिय हैं। युद्ध के मैदान से आए। युद्ध की पीड़ा और युद्ध की हिंसा और युद्ध की व्यर्थता देखकर आए। उनकी अहिंसा भय की अहिंसा नहीं है, कायर की अहिंसा नहीं है--महावीरों की अहिंसा है। देखकर कि हिंसा में तो कायरता ही है, उन्होंने हिंसा का त्याग किया। लेकिन फिर क्या हुआ? जैन धर्म बना तो वणिकों से, वैश्यों से। जैनियों में तुम्हें क्षत्रिय न मिलेगा। सब दुकानदार हैं। कैसी दुर्घटना घटी। जिनके सब तीर्थंकर क्षत्रिय हैं, उनके सब अनुयायी दुकानदार हैं! नहीं, जिन्होंने पकड़ा है उन्होंने कुछ और अर्थ से पकड़ा है। उन्होंने कहा, न किसी को मारेंगे, न कोई हमें मारेगा; न झगड़ा- झांसा करेंगे, न पिटेंगे। उन्होंने "अहिंसा परमोधर्मः" का उदघोष किया। उन्होंने कहा, यह बात बड़ी अच्छी है। यह तो ढाल की तरह है कि हम मरने-मारने में विश्वास ही नहीं रखते।
मगर जरा जैनियों की तरफ देखो, इनकी अहिंसा में अभय है? भय ही भय को तिलमिलाता पाओगे। ये भय के कारण अहिंसक हैं।
ये डरे हैं कि कोई मारे न, कोई लूटे न, कोई खसोटे न, कोई झंझट न करे, तो स्वाभाविक है कि अहिंसा की चर्चा करो।
महावीर की अहिंसा मृत्यु के पार जो अनुभव है उससे आती है। जैनों की जो अहिंसा है, जीवन का ही अनुभव नहीं, मृत्यु के अनुभव की तो बात दूर!

एक जैन ने प्रश्न पूछा है कि "आप कहते हैं कि वह परम अवस्था तो शून्य
की है, तो ऐसे शून्य को पाकर क्या करेंगे? इससे तो यही जीवन ठीक है। कम से कम सुख-दुख का अनुभव तो होता है!"

शून्य का डर! इससे वे स्वर्ग-नर्क, सुख-दुख, कुछ भी हो झेलने को तैयार हैं; मिटने को तैयार नहीं हैं। शून्य यानी मिटना! न तुम यहां मिटने को तैयार हो, न तुम वहां मिटने को तैयार हो। बचना चाहते हो। बचाव भय की अभिव्यक्ति है। अब जिन मित्र ने पूछा है, दुख को भी पकड़ने को तैयार हैं, कम से कम रहेंगे तो! बचेंगे तो! दुख ही सही, नर्क ही सही--मगर मिटने को तैयार नहीं हैं।
और जीवन का परम सत्य यही है कि जब तक तुम अपने को पकड़े हो तब तक मिटते रहोगे। और जिस दिन तुम अपने को छोड़ दोगे और जिस दिन तुम शून्य होने को तैयार हो जाओगे, उसी क्षण पूर्ण घटित होता है--तत्क्षण घटित होता है। उस क्रांति में फिर एक क्षण भी प्रतीक्षा नहीं करनी होती। तुम इधर शून्य होने को तैयार हुए कि तुम पूर्ण हुए। फिर कोई बाधा न रही। कोई भय न रहा तो बाधा कैसी? तुम जब मिटने तक को तत्पर हो गए तो तुम्हारी कोई पकड़ न रही। जो

शून्य होने को राजी है वह धन को थोड़े ही पकड़ेगा! जिसने अपने को ही न पकड़ा वह धन को क्या पकड़ेगा! सारी पकड़ के भीतर पहली पकड़ तो अपनी पकड़ है। तुम धन को किसलिए पकड़ते हो? धन के लिए ही थोड़ी कोई धन को पकड़ता है--अपने को पकड़ता है, इसलिए धन को पकड़ता है। क्योंकि धन सुरक्षा देता है, भविष्य में व्यवस्था देता है। कल घबड़ाहट न होगी, तिजोरी है, बैंक में बैलेंस है। बीमारी आए, बुढ़ापा आए, कुछ भी हो, तो धन सुरक्षा का आश्वासन देता है।
तुम अपने को पकड़ते हो, इसलिए धन को पकड़ते हो। तुम अपने को पकड़ते हो, इसलिए पत्नी को, बच्चे को पकड़ते हो।
उपनिषद कहते हैं, कोई पत्नी को थोड़े ही प्रेम करता है; लोग अपने को प्रेम करते हैं, इसलिए पत्नी को प्रेम करते हैं। पत्नी तो बहाना है।
तुम कहते हो कि तुमसे मुझे प्रेम है। लेकिन तुम्हारे प्रेम का अर्थ कितना है? क्या है अर्थ? इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे होने के कारण मैं प्रफुल्लित होता हूं; तुम हो तो मैं सुख पाता हूं--लेकिन तुम साधन हो, साध्य तो मैं ही हूं। तुम अपने बच्चों को प्रेम करते हो, उनको पकड़ते हो-- किसलिए? बुढ़ापे के सहारे हैं। तुम्हारी महत्वाकांक्षाओं के लिए कंधा देंगे। भविष्य में तुम्हारी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करेंगे। तुम तो पूरा न कर पाओगे, यह तुम्हें पता है। महत्वाकांक्षाएं अनंत हैं। वासनाएं दुष्पूर हैं--बहुत हैं। जीवन बड़ा छोटा हैः गया-गया, हाथ से बहा-बहा है! तुम तो पूरा न कर पाओगे, तुम्हारे बच्चे तुम्हारी याद पूरी करेंगे; परंपरा को जारी रखेंगे; बाप का नाम बचाएंगे। तुम तो जा चुके होओगे, लेकिन बच्चों के सहारे किसी तरह तुम अपनी शाश्वतता खोजते हो। तुम सोचते हो, चलो और तरह का अमरत्व तो संभव नहीं है, इसी बहाने बच्चों में जीते रहेंगे; मेरा ही तो खून है; मेरे ही तो जीवाणु हैं! चलो यह देह न रहेगी, बच्चों में जीएंगे।
बाप बेटे में जीता है। मां बेटे में जीती है। ऐसी परंपरा बनती है। "हम
न रहेंगे, हमारा तो कोई रहेगा!" इसलिए तुम "हमारे" को पकड़ते हो। पर सारी पकड़ भीतर "मैं" की है। जिसने समझने की कोशिश की, वह धन को नहीं छोड़ेगा। धन छोड़ने से क्या लेना-देना है! क्योंकि धन तो गौण है; असली बात तो "मैं" की पकड़ छोड़ने की है। तुम्हें राजी होना है, ऐसी घड़ी के लिए कि जहां मैं भी न रह जाऊं, तो भी क्या हर्ज है! क्या हर्ज है? क्या मिटेगा? क्या खो जाएगा? तुम्हारे हाथ में क्या है? तुम मुट्ठी खोलने से डरते हो, क्योंकि मैं कहता हूं मुट्ठी खाली है। तुम कहते हो, इससे तो मुट्ठी बंधी ही रहे, चाहे तकलीफ होती है बांधे रखने में, होती रहे--कम से कम बंधी तो है! लोग कहते हैं, बंधी लाख की! खाली है, मगर कहते हैं, बंधी लाख की! क्योंकि जो दिखाई ही नहीं पड़ता तो मान लो लाख हैं, करोड़ हैं, जो भी मानना है मान लो। खोलो, लाख गए! मुट्ठी खाली है! लेकिन तुम बांधो कि खोलो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, मुट्ठी खाली है!
तुम कहते हो, इससे तो दुख ही बेहतर; सुख का आभास ही बेहतर--कम से कम हैं तो! यह अनुयायी की आवाज है। जिसने पूछा है वह जैन है। यह महावीर की आवाज नहीं है। महावीर तो कहते ही यही हैं कि छोड़ो परिग्रह, छोड़ो संसार, छोड़ो वासना; ताकि इस सब छोड़ने में, जो इन सब के पीछे छिपा है और अपने को बचा रहा है, वह तुम्हें प्रगट हो जाए कि मूल में तो तुम अहंकार को बचा रहे हो, अपने को बचा रहे हो। सब बहाने छोड़ो तो साफ दिखाई पड़ जाएगा कि अपने को बचाने में लगे हो! लेकिन बचाने में सार क्या है? और बचा-बचाकर तुम बचाओगे कैसे? या तो तुम बचोगे ही, अगर वह तुम्हारा स्वभाव है; और अगर स्वभाव में ही अमरत्व नहीं है तो तुम लाख बचाओ, बच न सकोगे!
इसलिए महावीर कहते हैंः छोड़ो यह आपा-धापी! छोड़ो यह बचने की आकांक्षा!
यह जीवेषणा छोड़ो। जीवेषणा सभी पापों का आधार है। मैं जीना चाहता हूं, चाहे फिर दूसरों को मारकर भी जीना पड़े, तो भी जीऊंगा! मैं जीना चाहता हूं, मुझे क्या फिक्र है कि कौन मरता है!
तो महावीर की सारी अहिंसा का सूत्र यही है, कि तुम्हारे जैसे ही सभी जीना चाहते हैं। तुम वही करो उनके साथ जो तुम अपने साथ करना चाहते हो। तो तुम किसी को मारो मत! लेकिन जो किसीको न मारेगा, वह मरना शुरू हो जाएगा।

यह जीवन तो बड़ा संघर्ष है। यहां तो तुम दूसरे की गर्दन न दबाओ तो कोई तुम्हारी गर्दन दबाएगा। यहां तो सुरक्षा का सबसे श्रेष्ठ उपाय आक्रमण है। मैक्यावली से पूछो! महावीर से अहिंसा समझ लो, मैक्यावली से हिंसा समझ लो। मैक्यावली कहता है कि इसके पहले कि कोई हमला करे, हमला करो; इसके पहले कि कोई तुम पर हमला करे, हमला कर दो। मौका मत दो पहल का, अन्यथा तुम पिछड़ ही गए संघर्ष में। मार लो, मार डालो, इसके पहले कि कोई तुम्हें मारे। यही सूत्र है--जीवन में संघर्ष का, अपने को बचाने का। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। तुम शक्तिशाली बनो और दूसरों को पीते चले जाओ। उसी में तुम्हारा जीवन है।
महावीर कहते हैं, ऐसे जीवन को क्या करोगे? इस जीवन का सार भी क्या है, अर्थ भी क्या है? बच भी जाएगा तो क्या बचेगा, हाथ क्या लगेगा? हाथ-लाई क्या होगी?
महावीर कहते हैं, सब देखा! सारा जीवन झूठा है, भ्रांत है। यह दूसरे को मारने योग्य तो है ही नहीं। अगर दूसरे को बचाने में अपने को मिटा भी देना पड़े तो मिटा दो--इसमें कुछ हर्जा नहीं है, कुछ जा नहीं रहा है। और महावीर इतने आश्वस्त होकर यह कहते हैं, क्योंकि वे जानते हैं; जो तुम्हारे भीतर अंतर्तम में छिपा है उसकी कोई मृत्यु नहीं है। जिसे तुम बचा रहे हो, वह तुम्हारी झूठी प्रतिमा है; वह तुम्हारा स्वयं के प्रति झूठा भाव है। जिसे तुम बचा रहे हो, अहंकार, वह तो मरेगा। वह तो समाज का दिया हुआ है; मौत के साथ समाप्त हो जाएगा। तुम जैसे आए थे, कोरे, कुंआरे, जन्म के साथ, ऐसे ही कुंआरे-कुंआरे तुम मृत्यु के साथ जाओगे। तुम्हारा नाम-धाम, पता-ठिकाना, सब यहीं छूट जाएगा। और वह जो मृत्यु के पीछे भी चला जाता है तुम्हारे साथ और जन्म के पहले भी तुम्हारे पास था, उसकी कोई मृत्यु नहीं है। तुम दौड़ छोड़ो बचने की, तो तुम्हें उसका पता चलेगा जो सदा ही बचा हुआ है। तुम अपनी सुरक्षा न करो, तो तुम्हें उसका पता चल जाएगा जो सदा सुरक्षित है।
जब मैं कहता हूं शून्य होने की बात, तो उसका कुल इतना ही अर्थ है कि पूर्ण तुम हो। इधर तुम शून्य होने को राजी हुए तो तुम्हारी दौड़-धूप मिटी। दा.ैड-धूप मिटी तो सारी चेतना मुक्त हुई दौड़-धूप से, चेतना घर लौटी। बाहर नहीं जाओगे तो कहां जाओगे? घर आओगे! घर आने का कोई रास्ता थोड़े ही है--बस बाहर जाना छोड़ देना है कि घर आ गए। घर तो तुम हो ही, तुम्हारी वासना ही भटकती है दूर-दूर।
यहां तुम बैठे मुझे सुन रहे होः हो सकता है, तुम यहां सिर्फ बैठे हो शरीर की भांति, तुम्हारी वासना कहीं और भटकती है--कलकत्ते में होओ, दिल्ली में होओ, बंबई में होओ। तो जितना तुम्हारा मन बंबई में चला गया मुझे सुनते वक्त, उतने तुम यहां नहीं हो। अगर तुम्हारा पूरा मन ही बंबई में चला गया, तो तुम यहां बिल्कुल नहीं हो। यहां तुम्हारा होना न होना बराबर है। तुम होते न होते कोई फर्क नहीं पड़ता। सिर्फ एक प्रतिमा बैठी है, जिसमें कोई प्राण नहीं है। क्योंकि प्राण तो वासना में भटक गए। तुम कहीं जाते थोड़े ही हो बाहर; वासना में मन उलझा कि तुम बाहर गए! वासना बहिर्गमन का मार्ग है। वासना बाहर जाना है। क्षणभर को भी अगर तुम बाहर न जाओ तो तुम जाओगे कहां फिर? जब बाहर जाने के सब सेतु टूट गए, सब द्वार-दरवाजे बंद हो गए, सब मार्ग व्यर्थ हो गए, न तुम धन में गए, न तुम पद में गए, न तुम प्रेम में गए, तुम कहीं बाहर गए ही नहीं, तो तुम अचानक अपने को घर में बैठा हुआ पाओगे--जहां तुम सदा से बैठे हुए हो; जहां से तुम क्षणभर को भी हटे नहीं, तिलभर को भी हटे नहीं; जहां से हटने का कोई उपाय नहीं। उसी को महावीर स्वभाव कहते हैं। उसी को महावीर धर्म कहते हैं, जिससे हटा न जा सके, जिसे खोकर भी खोया न जा सके, जिसे मिटाकर भी मिटाया न जा सके। जिसे तुम लाखों जन्मों में चेष्टा कर-कर के, भटक-भटककर भी नहीं अपने से छुड़ा पाए हो, वही तुम्हारा स्वभाव है। जो छूट जाए, वह पर-भाव है।
तुम्हारे वस्त्र छीने जा सकते हैं; वह तुम्हारा स्वभाव नहीं।
तुम्हारा शरीर छिन जाता है; वह तुम्हारा स्वभाव नहीं। तुम्हारा मन भी छिन जाता है, वह भी तुम्हारा स्वभाव नहीं। देह और मन के पार कुछ है-- अनिर्वचनीय, जिसे न कभी छीना जा सका है, न छीना जा सकता है।

बादल घिरते हैं आकाश में, इससे कुछ आकाश नष्ट नहीं हो जाता। क्षणभर को दिखाई नहीं पड़ता। खो जाता है। ओझल हो जाता है। पर मिटता थोड़े ही है! फिर बादल चले जाते हैं, वर्षा समाप्त हुई, बादल विदा हो गए--आकाश अपनी जगह खड़ा है! ऐसी ही वासनाएं आती हैं तुम्हारे अंतर-आकाश में, क्षणभर को घिरती हैं, शोरगुल मचता है, गड़गड़ाहट होती है, बिजलियां चमकती हैं--क्रोध है, लोभ है, मोह है, माया है--हजार तरह के बादल घिरते हैं, गड़गड़ाहट होती है, वासना बरसती है। फिर जिस दिन भी बोध सम्हलेगा--गए बादल! इससे तुम खराब थोड़े ही हो गए। तुम्हारा कुंआरापन कुछ ऐसा है कि खराब हो ही नहीं सकता। बादल सदा आएगा- जाएगा, आकाश तो कुंआरा बना रहता है। आकाश व्यभिचारित थोड़े ही होता है! रेखा भी तो नहीं छूट जाती बादल की। छाया भी तो नहीं छूट जाती बादल की। पद-चिह्न खोजकर भी तो न खोज पाओगे। कोई हस्ताक्षर तो बादल कर नहीं जाता कि यहां मैं आया था। कोई नाम-ठिकाना भी नहीं छूट जाता। ऐसे ही तो तुम्हारी देह खो जाती है।
कितनी देहें इस पृथ्वी पर रही हैं तुमसे पहले! तुम कुछ नये हो? वैज्ञानिक कहते हैं, जहां तुम बैठे हो वहां कम से कम दस लाशें गड़ी हैं। जितनी जगह तुम बैठने के लिए लेते हो, वहां कम से कम दस आदमी मर चुके, गड़ चुके, खो चुके। वहीं तुम भी खो जाओगे। यह तो आदमियों की बात हुई। अब जानवरों का हिसाब करो, कीड़े-मकोड़ों का हिसाब करो, मक्खी-मच्छरों का हिसाब करो, वृक्ष-पौधों का हिसाब करो, तो तुम जहां बैठे हो वहां अनंत जीवन हुए और खो गए। वहीं तुम भी खो जाओगे। खोते ही चले जा रहे हो। प्रतिक्षण खिसकते जा रहे हो गड्ढे में। मौत पास आती चली जाती है। एक-एक क्षण जीवन रिक्त होता चला जाता है। बूंद-बूंद कर के घड़ा खाली हो जाएगा। लेकिन फिर भी तुम हो--जो कभी खाली नहीं होगा।
जो संसार से मिला है, संसार वापिस ले लेता है। लेकिन कुछ तुम्हारे पास
है जो तुम्हें किसी से भी नहीं मिला--जो बस तुम्हारा है! वही तुम्हारी संपदा है। वही तुम्हारी आत्मा है।
जब कहते हैं, शून्य हो जाओ तो उसका कुल इतना ही अर्थ हैः बादलों से शून्य हो जाओ, ताकि आकाश से पूर्ण हो जाओ। उसका इतना ही अर्थ हैः व्यर्थ से शून्य हो जाओ, ताकि सार्थक का आविर्भाव होने लगे। बाहर से शून्य हो जाओ, ताकि भीतर की धुन बजने लगे। बाजार में खड़े हो। भीतर तो धुन बजती ही रहती है, सुनाई नहीं पड़ती; बाजार का शोरगुल भारी है। भीतर आओ! थोड़े आंख-कान बंद करो! छोड़ो बाजार को! भूलो बाजार को! तो भीतर की धुन सुनाई पड़ने लगे, अनाहत का नाद सुनाई पड़ने लगे।
अहर्निश बज रही है वह वीणा। क्षणभर को भी उस कलकल-नाद में बाधा नहीं पड़ती। पर बड़ा सूक्ष्म है नाद! जब तुम सुनने में सजग होओगे, जब तुम्हारा श्रवण सधेगा, जब तुम्हारे कान भीतर की तरफ मुड़ेंगे और जब तुम धीरे-धीरे बारीक को, बारीकतम को पकड़ने में कुशल हो जाओगे--तब, तब तुम्हें उस वीणा का नाद सुनाई पड़ेगा, जिसको योगी अनाहत कहते हैं।
और सब नाद तो आहत हैं, दो चीजों की टक्कर से पैदा होते हैं। मैं ताली बजाऊं तो दो हाथ टकराते हैं। एक हाथ से तो ताली बजती नहीं। लेकिन एक नाद है तुम्हारे भीतर, जो अहर्निश चल रहा है। वह आहत-नाद नहीं है। वह दो हाथ की ताली नहीं है, एक हाथ की ताली है। वह किन्हीं दो चीजों की टकराहट से पैदा नहीं हुआ, अन्यथा किसी न किसी दिन बंद हो जाएगा। जब दो चीजें न टकराएंगी तो बंद हो जाएगा। वह तुम्हरा स्वभाव है। ओंकार! प्रणव! वह तुम्हारा स्वभाव है।
यह तुमने कभी सोचा? हिंदू हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, भारत में ये तीन महाधर्म पैदा हुए। तीनों के विचारों में बड़ा भेद है, जमीन-आसमान का भेद है। तीनों की सैद्धांतिक धारणाएं भिन्न हैं। तीनों के ढांचे अलग हैं, मार्ग अलग हैं, पथ अलग हैं। कोई समर्पण का मार्ग है, कोई संकल्प का। कोई संघर्ष का मार्ग है, कोई शरणागति का--कोई पूजा-प्रार्थना, भक्ति का, कोई ध्यान-समाधि का। लेकिन एक बात इन तीनों धर्मों ने स्वीकार की है--वह है ओंकार। वह है ओऽम का नाद। उसे इनकार करने का उपाय नहीं। क्योंकि जब भी कोई

भीतर गया है, तो उस नाद को सुना है। जब भी कोई भीतर गया है तो ऐसा कभी हुआ ही नहीं, कोई अपवाद नहीं कि वह नाद न सुना हो। वह जीवन-नाद है, ब्रह्म-नाद है।

तो जब हम कहते हैं, शून्य हो जाओ, तो अर्थ इतना ही है कि बाहर के शोरगुल से शून्य हो जाओ। और अभी तो तुम जो भी जानते हो, सब बाहर का शोरगुल है। इसलिए कहते हैं, तुम जो हो उससे बिल्कुल शून्य हो जाओ! अभी तो तुमने व्यर्थ को ही जोड़-जोड़कर अपनी प्रतिमा बनायी है। अभी तो तुमने कागज-पत्तर को जोड़-जोड़कर अपनी प्रतिमा बनायी है। अभी तो शाश्वत का तुम्हारी प्रतिमा से कोई भी संबंध नहीं है। अभी तो तुम कहते हो, यह मेरा नाम है, यह मेरी जाति है, यह मेरा धर्म है, यह मेरा घर है; यह मेरा कुल है, यह मेरा देश है, यह मैं हिंदू हूं कि जैन हूं, कि मुसलमान हूं कि ईसाई हूं, कि मैं गरीब हूं कि अमीर हूं, कि शिक्षित कि अशिक्षित, कि गोरा कि काला, कि सम्मानित कि अपमानित, कि साधु कि असाधु--अभी तो तुमने जो भी जोड़ा है, बाहर से जोड़ा है। यह तो दूसरों ने जो कहा है, उसको ही तुमने इकट्ठा कर लिया है।

इसलिए कहते हैं, तुम अपने से खाली हो जाओ। यह सब कूड़ा-कर्कट हटाओ। और घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं। तुम बेफिक्र कूड़ा-कर्कट हटाओ, क्योंकि जो कूड़ा-कर्कट नहीं है, उसे तुम हटाओ भी, तो भी हटा न सकोगे। इसलिए भय की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए डर-डरकर हटाने की जरूरत नहीं कि कहीं ऐसा न हो कि हीरे खो जाएं। वे हीरे कुछ ऐसे हैं कि खो ही नहीं सकते। इसलिए तुम आग भी लगा दो इस मकान में, तो भी कुछ बिगड़ेगा नहीं। तुम खालिस, साबित निकल आओगे; क्योंकि तुम्हारा स्वभाव जलता नहीं।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः!

न आग उसे जलाती, न शस्त्र उसे छेदते हैं। अमरत्व तुम्हारा स्वभाव है।

लेकिन अनुयायी की भाषा है, वह घबड़ाता है। वह कहता है, इससे तो संसार में बने ही रहे; चलो झूठे ही सही, कुछ तो हैं सुख! मान्यता ही सही, मिलते नहीं, आशा ही बंधाते हैं, कुछ तो हैं! दुख हैं, चलो कोई हर्जा नहीं, हम तो हैं! कांटे भी चुभते हैं, चलो सह लेंगे, जूते पहन लेंगे, दवा खोज लेंगे, मलहम कर लेंगे, ऐसे रास्तों पर न जाएंगे जहां कांटे हैं--लेकिन कम से कम हम तो हैं! लेकिन इस "हम" को करोगे क्या? इस अहं को करोगे क्या?

मुश्किल नहीं है मौत, आजमाओ तो सही

मर जाने से पहले क्यों मरे जाते हो?

महावीर का सारा शिक्षण मृत्यु का शिक्षण है--शून्य होने की कला है। पर शून्य होने की कला ही पूर्ण होने की कला है। चाहे दोनों में से कुछ भी शब्द चुन लो; लेकिन मैं कहूंगा, तुम शून्य ही चुनना। पूर्ण को चुना कि तुम चूके। क्योंकि पूर्ण के साथ लोभ आया। तुमने कहा, "अरे! तो हम पूर्ण हो जाएंगे! गजब!" पकड़ा अहंकार ने रस! वही अहंकार जिसको छुड़ाना है, छूटना है जिससे, पूर्ण होने की आकांक्षा से भर गया! फिर तुम्हारे गुब्बारे में और हवा भरने लगेगी। फिर अहंकार और बड़ा होने लगेगा। पूर्ण होने का नशा छा गया! इसलिए ज्ञानियों ने शून्य की भाषा कही है--जानते हुए कि अंतिमतः पूर्ण घटता है लेकिन तुमसे कहना उचित नहीं। तुमसे कहना खतरनाक है।

महावीर ने जो कहा, उसको तुमने वैसा ही नहीं सुना है जैसा उन्होंने कहा था। अन्यथा ये दुर्दिन, यह दुर्दशा, यह दारिद्र्य, यह दीनता न घटती। इसलिए जो लोग ऐसा लांछन लगाते हैं, ऐसा विवाद खड़ा करते हैं, उनके विवाद में तथ्य तो है; लेकिन तथ्य का इशारा तुम्हारी तरफ है, उन्हीं की तरफ है। तथ्य का इशारा महावीर की तरफ नहीं है। काश! तुम महावीर को समझते तो इस देश में जैसा धन्यभाग फलता, इस देश में जैसे महिमावान फूलों का जमघट जुड़ जाता, वैसा कहीं भी नहीं हो पाता। अगर महावीर को समझे होते तो तुम्हारे भीतर जो अपरिसीम है, वह प्रगट होता। तुम्हारे चारों तरफ प्रकाश-मंडल निर्मित होता। न भी कुछ तुम्हारे पास होता तो भी तुम समृद्ध होते। और अभी तो हालत ऐसी है कि सब कुछ भी तुम्हारे पास हो, तो भी दरिद्रता कहां मिटती है?

तुमने धनी आदमियों की दरिद्रता नहीं देखी, तो फिर तुमने कुछ भी नहीं देखा! तुमने शक्तिशालियों की शक्तिहीनता नहीं देखी! तुमने पदधारियों की नपुंसकता नहीं देखी! अकड़ के झंडों के पीछे कमजोरी के सिवाय और क्या है? जितने बड़े झंडे हाथ में हैं, जितने ऊंचे डंडे हाथ में हैं, उतनी ही हीनता

भीतर छिपी है। हीनता न हो तो कौन डंडे और झंडे लेकर यात्राएं करता है! क्या जरूरत है? किसको दिखाना है? जिसको अपना स्वरूप दिख गया, उसको दिखाने को अब कुछ भी न बचा।
फिर तुम जिसे जिंदगी कहते हो, और कहते हो जीवन का स्वीकार, उसमें जिंदगी जैसा क्या है?
था ख्वाब में ख्याल को तुझसे मुआमला
जब आंख खुल गई न जियां था न सूद था।
मेरा-तेरा संयोग सपने की कल्पना थी, क्योंकि जब आंख खुल गई तो--बकौल तुलसीदास "हानि-लाभ न कछु!" बड़ा हिसाब था! बड़ा धंधा किया था सपने में! सुबह उठकर पाते हैं, "हानि-लाभ न कछु!"
जिसे तुम जीवन कहते हो वह स्वप्न है। अच्छा हो, तुम उसे सपना कहो। जीवन को अभी तुमने जाना नहीं। और जिसे तुमने जाना है वह जीवन नहीं है। कोई मुझको दौरे जमां ओ मकां से निकलने की सूरत बता दो
कोई यह सुझा दो कि हासिल है क्या हस्ती-ए-रायगां से!
इस फिजूल की जिंदगी से मिलता क्या है! कोई मुझे सुझा दो कि इसमें क्या अर्थपूर्ण है! कोई मुझे राह बता दो कि कैसे इस व्यर्थ के कारागृह से मैं बाहर हो जाऊं!
कोई मुझको दौरे जमां ओ मकां से निकलने की सूरत बता दो
कोई यह सुझा दो कि हासिल है क्या हस्ती-ए-रायगां से!
इस व्यर्थ की दौड़-धूप से क्या हासिल है?
कोई पुकारो कि उम्र होने आई है
फलक को काफिला-ए-रोज-ओ-शाम ठहराए।
कोई पुकारो, कहो आकाश को कि रोक, अब यह काफिला सुबह और शाम का, समय के पार होने की यात्रा होने दे! समय में बहुत जी लिये!
सुबह होती शाम होती, उम्र तमाम होती!
फिर वही सुबह, फिर वही सांझ, फिर वही दोहरावा--कोल्हू के बैल की तरह घूमते हैं! आंख पर पट्टियां, अंधे की तरह! लगता है, यात्रा हो रही है, पहुंचते कहीं भी नहीं। अगर यात्रा होती होती तो कहीं तो पहुंचते। कभी यह तो सोचो, पहुंचे कहां? चलते बहुत हैं, थक गए हैं बहुत, पहुंचते कभी भी नहीं, खड़े वहीं के वहीं हैं! कैसी पागल यह दौड़ है, जहां रत्तीभर यात्रा नहीं होती और जीवन पर जीवन चुकते चले जाते हैं!
कोई पुकारो कि उम्र होने आई है
फलक को काफिला-ए-रोज-ओ-शाम ठहराए।
मगर यह सुबह और शाम का काफिला आकाश नहीं ठहराता--तुम्हीं को ठहराना पड़ेगा! यह किसी के पुकारने की बात नहीं। कोई दूसरा तुम्हारे सुबह-शाम के काफिले को नहीं ठहरा सकता। यह तो सुबह-शाम की धारा चलती ही रहेगी, तुम ही धारा के बाहर हो जाओ। यह संसार तो चलता ही रहेगा, चलता ही रहा है। तुम्हीं छलांग लगा लो। तुम्हीं किनारे खड़े हो जाओ। बस इतना ही हो सकता है कि तुम अलग हो जाओ इस उपद्रव से, तुम सपने से जाग जाओ।
जिंदगी किसे कहते हो तुम? जन्म और मृत्यु के बीच जो है, उसे तुम जिंदगी कहते हो? महावीर कहते हैं उसे जिंदगी, जो जन्म और मृत्यु के पार है। जन्म और मृत्यु के बीच जो है, वह जिंदगी नहीं, एक लंबा सपना है। जन्म के समय तुम सो जाते हो, मृत्यु के समय जागते हो--तब पता चलता है कि यह जिंदगी एक सपना थी।
खत्म न होगा जिंदगी का सफर
मौत बस रास्ता बदलती है।
मौत रास्ता बदलती जाती है। मौत बस रास्ता बदलती है। एक जिंदगी खत्म हुई, दूसरी जिंदगी शुरू; दूसरी जिंदगी खत्म हुई, तीसरी जिंदगी शुरू। मौत सिर्फ रास्ता बदलती है। जब तक कि तुम जागकर अलग न हो जाओ इस धारा से, इस मूर्च्छा और तंद्रा से... ।
नहीं, महावीर ने इस देश को न तो दीनता दी है न दरिद्रता दी है। हां, यह
हो सकता है कि महावीर को सुनकर तुमने जो समझा, उससे तुमने दीनता-दरिद्रता में अपने को आरोपित कर लिया हो। महावीर ने तो तुम्हें महाजीवन का सूत्र

दिया था। महावीर का जो जीवन-अस्वीकार है, उसे इतना ही कहना चाहिए कि वह भ्रामक जीवन का अस्वीकार है। और भ्रामक जीवन का अस्वीकार वास्तविक जीवन की बुनियाद है। भ्रामक जीवन का अस्वीकार, अध्यात्म की शुरुआत है। और सत्य-जीवन की उपलब्धि अध्यात्म की पूर्णता है।

दूसरा प्रश्नः प्रतिक्रमण, घर वापिस लौटना, हमें असहज, कठिन और असंभव
सा क्यों लगता है?

स्वाभाविक है, क्योंकि अब तक घर से दूर आने को ही जीवन समझा। उसी की आदत बनी। उसी में रंगे, पगे, बड़े हुए। वही हमारे मन का शिक्षण है। वही हमारा संस्कार है। वही हमारे कर्मों की थाती है। वही हमारे सारे जीवनों का निचोड़ है।... बाहर जाने को ही जाना है। कभी भीतर तो गए ही नहीं, एक कदम न उठाया।
तो जहां कदम कभी न डाले हों, जिस तरफ कभी आंख न उठाई हो, उस तरफ जाने में मन अगर डरे, भयभीत हो--अपरिचित, अनजान रास्ता, पता नहीं कैसा हो कैसा न हो--स्वाभाविक है। इसलिए तो अध्यात्म की लोग बातें करते हैं, लेकिन जाते नहीं; चर्चा करके समझा लेते हैं, उतरते नहीं।
चर्चा में कुछ हर्जा नहीं है; मन बहलाव है; मनोरंजन है। सुन लेते, समझ लेते, पढ़ लेते, शास्त्र को पकड़ लेते, मंदिर हो आते, मस्जिद हो आते--भीतर नहीं जाते।
इसीलिए तो लोगों ने बाहर मंदिर और मस्जिद बनाए हैं कि अगर मंदिर-मस्जिद जाने की भी धुन पकड़ जाए तो बाहर ही जाएं; कहीं ऐसा न हो कि किसी धुन में भीतर की तरफ कदम उठा लें और मुश्किल में पड़ जाएं।
रास्ता अपरिचित है, बीहड़ है। फिर, बाहर के रास्ते पर भीड़ है। तुम अकेले नहीं, और सब साथ हैं। भीतर के रास्ते पर तुम अकेले हो जाओगे, वह भी डर है। वहां कोई साथ न जा सकेगा--न मित्र, न संगी, न साथी, न पति, न पत्नी, न बेटे, न मां, न पिता--कोई साथ न जा सकेगा वहां। वहां तो तुम्हें निपट अकेले जाना होगा। जैसे मौत में तुम अकेले जाओगे, वैसे ही स्वयं में भी अकेले जाना होगा। न कोई दूसरा तुम्हारे लिए मर सकता और न कोई दूसरा तुम्हारे लिए भीतर जा सकता। तो जैसे लोग मौत से डरते हैं, वैसे ही लोग ध्यान से डरते हैं। हां, ध्यान की चर्चा वगैरह करनी हो, कर लेते हैं। इस देश में से जिससे पूछ लो, जिससे-जिससे पूछ लो, ध्यान क्या है--जवाब दे देगा; प्रार्थना क्या है, पूजा क्या है--प्रवचन दे देगा। ऐसी कोई बात ही नहीं जिसको इस देश में लोग न जानते हों। ब्रह्म की बात उठाओ, हर कोई, राह चलता ब्रह्मज्ञान बघार देगा। आसान है, उसमें कुछ हर्जा नहीं है। लेकिन भीतर जाने की बात मत करो। पांव डगमगाते हैं! घबड़ाहट होती है!
पहली तो घबड़ाहट यह कि रास्ता नया! दूसरी और गहरी घबड़ाहट यह कि अकेले हैं! अकेले तो कभी कहीं गए नहीं, जब भी गए किसी के साथ गए। कोई यात्रा अकेले न की, तो अकेले की आदत ही छूट गई है। इसीलिए तो संन्यासी अकेले के अभ्यास के लिए एकांत में चला जाता है। वह सिर्फ बाहर से अकेलेपन का अभ्यास कर रहा है, ताकि धीरे-धीरे भीतर भी अकेले होने की हिम्मत आ जाए, कुशलता आ जाए। बाहर एकांत के अभ्यास का इतना ही प्रयोजन है कि थोड़ा अकेले होने की हिम्मत आ जाए। बैठता है अंधेरी गुफा में, कोई नहीं, अकेला, अंधकार घिरता है, रात आ जाती है, जंगली जानवर सब तरफ, अकेला! धीरे-धीरे रमता है। धीरे-धीरे भूलने लगता है कि दूसरे की जरूरत है। धीरे-धीरे साहस आता, आत्म-विश्वास बढ़ता है कि नहीं, अकेला भी हो सकता हूं। ऐसे बाहर का एकांत फिर भीतर ले जाने में सीढ़ी बन जाता है।
बाहर का एकांत अंत नहीं है--साधन है। इसलिए जिसने यह समझ लिया कि गुफा में बैठना आ गया तो अंतरज्ञान हो गया, वह भटक गया। गुफा में बैठे रहो लाखों वर्षों तक, कुछ भी न होगा। गुफा में बैठना तो सिर्फ एक कदम था। ऐसे ही जैसे कोई तैरना चाहता है, तैरना सीखना चाहता है, तो एकदम से गहरे में नहीं जाता; किनारे पर, जहां गहराई नहीं है, गले-गले पानी है, कमर-कमर पानी है, वहीं तड़फड़ाता है, वहीं सीखता है। सीख ले एक दफा तो फिर गहरे में जाता है। पर

सीखकर भी वहीं तड़फड़ाता रहे किनारे पर ही, तो तैरना सीखा न सीखा बराबर। उस किनारे पर तो बिना ही सीखे खड़े हो जाते; गले-गले पानी था, सुरक्षित थे।
तो जो लोग गुफाओं में बैठकर बंद हो गए हैं और सोचते हैं, पा लिया है, वे
भी भ्रांति में हैं।
कुछ संसार में खोए हैं, कुछ संन्यास में खो गए हैं।
संन्यास तो केवल साधन है, ताकि तुम्हें थोड़ा भीड़ से बाहर निकाल ले; थोड़ी झलक दे, और इस बात का भरोसा दे कि अकेले में भी मजा है, कि अकेले में और ज्यादा मजा है, कि अकेले की भी धुन है, कि अकेले का भी नशा है, कि मस्ती है, कि ऐसी मस्ती तो कभी न पायी थी जो अकेले में मिली! थोड़ा गुफा में बैठकर, बाजार से दूर, भीड़ से दूर, अपनों से दूर, संसार की चिंताओं और फिक्रों से दूर, एक बार स्वाद आ जाए कि अरे! बाहर के अकेलेपन में इतना स्वाद है तो कितना न होगा भीतर के अकेलेपन में! फिर तो भीतर की भी पुकार उठने लगती है। निश्चित ही कोई गुफा इतनी अकेली नहीं है जितनी अकेली भीतर की गुफा है। क्योंकि गुफा में भी वृक्ष हिलते हैं बाहर, आवाज होती है, हवा गुजरती है, कोयल गीत गाती है, सिंह दहाड़ता है। कोई है! आकाश में चांद-तारे हैं! हिमालय की गुफा में भी बैठे हो तो हवाई जहाज निकल जाता है। कोई है! कोई इतने अकेले नहीं हो, कहीं भी इतने अकेले नहीं हो। संसार किसी न किसी रूप में अपनी खबर भेजता ही रहता है। एक चींटी काट जाती है, एक बिच्छू आ जाता है--उचककर खड़े हो जाते हो! कोई है! एकदम अकेले नहीं हो!
भीतर की गुफा में कोई भी नहीं है। न कोई हवाई जहाज गुजरता, न कोई चींटी चढ़ती, न कोई बिच्छू आता, न कोई सिंह दहाड़ता, न वृक्षों में हवा की सरसराहट होती, न पानी का कलकल-नाद है--कोई भी नहीं है, कोई भी नहीं है! वहां बस विराट, विराट, निस्तब्ध, निबिड़ तुम हो! बड़ा गहन, परम गहन शून्य है वहां! वहां ऐसी शांति है जैसी तब थी जब परमात्मा ने सोचा भी न था, "अकेला हूं, संसार को बनाऊं", वैसी शांति!
उस घड़ी में तुम फिर पहुंच जाते हो जहां परमात्मा रहा होगा, संसार को बनाने के पहले। तुम प्रथम को छू लेते हो। तुम उस सूर्योदय के क्षण में पहुंच जाते हो, जहां संसार शुरू न हुआ था; जहां अभी संसार प्रगट न हुआ था, बीज में छिपा था; जहां ब्रह्मांड अभी अंड में खोया था; जहां अभी सपना परमात्मा का फैलना शुरू न हुआ था। तुम सृष्टि के प्रथम चरण में पहुंच जाते हो। वैसी गहन शांति है। अनंत शांति है। शाश्वत शांति है।
स्वाभाविक, घबड़ाहट होती है। वह शांति वैसी ही है, जैसी मृत्यु में है।
सब खो जाता है, तो डर लगता है। इसलिए भीतर जाने की लोग बातें सुनते हैं, विचार भी करते हैं कि कभी जाएंगे।
दो व्यक्ति बात कर रहे थे। एक-दूसरे के ऊपर अपने-अपने जीवन की छाप डालने की चेष्टा कर रहे थे। बड़ी हांक रहे थे। एक ने कहा कि मैं रोज सुबह पांच बजे उठता हूं। दूसरे ने कहा, यह कुछ भी नहीं, मैं तीन बजे उठता हूं। ऋषि-मुनि सदा तीन बजे ही उठते रहे। पांच बजे भी कोई उठना है! आलसी हो! मैं तीन बजे उठता हूं--स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ, फिर घूमने जाता हूं सूर्योदय के समय; फिर आकर शास्त्र-अध्ययन, मनन; फिर दफ्तर जाता हूं; फिर दफ्तर से लौटता हूं; फिर खेलने जाता हूं; फिर सांझ घर आता हूं--बच्चों के पास बैठना, चर्चा, संगीत; फिर ठीक समय पर, नौ बजे सो जाता हूं।
दूसरा सुनकर बड़ा चकित हुआ। उसने कहा, "कब से ऐसा कर रहे हो?" वह व्यक्ति बोला, "यह मत पूछो। कल से शुरू करने का इरादा है।"
बस लोग इरादे बांधते हैं। ध्यान-करेंगे! जिसने कहा, करेंगे, चूका। करो! इस क्षण है क्षण। उतरो, योजना मत बनाओ। योजना मन का धोखा है। मन बड़ा चालाक है। वह कहता है, कल करेंगे!
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, संन्यास में उतरना है। मैं कहता हूं, "उतर जाओ, उतरना है तो! कौन रोक रहा है? मैं तो नहीं रोक रहा!" वे कहते हैं, "नहीं, उतरेंगे!" फिर तुम्हारी मर्जी। कल पर तुम्हारा भरोसा है? कल होगा? ऐसा आश्वस्त हो? बीच में मौत आ जाएगी तो क्या करोगे? कहोगे कि संन्यास लेना है, जरा ठहर?

संन्यासिनी है हमारीः गीता। उसके पिता संन्यास लेना चाहते थे। कोई सालभर से मुझसे कहते थे। सुनते हैं मुझे कोई दस वर्षों से। अभी कोई दो महीने पहले आए थे। महीनेभर यहां रहे। दो तीन बार मिलने आए। मैंने उनसे कहा, "अब किसलिए देर कर रहे हो?" वे कहते हैं, "कुछ देर नहीं है बस... ! अब आप तो समझते हैं। लेना है, और लेकर रहूंगा!" आखिरी बार मुझे मिलने आए थे, मैंने उनसे कहा कि "पक्का है, कल होगा?" उन्होंने कहा, "अभी तो कोई बूढ़ा नहीं हो गया हूं।" लेकिन गए! वह आखिरी मिलना हुआ। उस दिन यहां से उठकर गए, अस्पताल में ही गए सीधे। रात हार्ट-अटैक हो गया। फिर बचे नहीं।
कल पर टालते हैं, कल कर लेंगे। जिसने कल पर टाला, वह असल में करना नहीं चाहता। अच्छा हो कि कहो, करना नहीं है। तो भी कम से कम ईमानदारी तो होगी, सत्य तो होगा, प्रामाणिकता तो होगी। लेकिन बेईमानी बड़ी है, तुम कहते हो, करेंगे! इससे तुम छिपाते हो। करना भी नहीं चाहते और यह भी अपने को आश्वासन दिला लेते हो कि कोई बुरा आदमी थोड़े ही हूं, धार्मिक आदमी हूं, करना तो है ही।
लोग बहाने खोजते हैं--न मालूम कितने-कितने! पति कहता है कि पत्नी रोकती है। कौन किसको रोक सका हैः कौन किसको रोक सका है, कब रोक सका है! मौत जब आएगी तो पत्नी रोकेगी? और किसी चीज में पत्नी नहीं रोक पाती। पत्नी जिंदगीभर से रोक रही है कि दूसरी औरतों को मत देखो, नहीं रोक पायी। तुम कहते हो, क्या करें, मजबूरी है! मगर जब कहती है, ध्यान मत करो--तत्क्षण राजी हो जाते हो, बिल्कुल ठीक है। पत्नी रोकती है, क्या करें!
तुम जिसमें रुकना चाहते हो, किसी का भी बहाना खोज लेते हो। जिसमें तुम रुकना नहीं चाहते, तुम कोई बहाना मानने को राजी नहीं होते। तुम कहते हो, विवशता है। वासना पकड़ लेती है, क्या करें? चिकित्सक रोक रहा है कि ज्यादा खाना मत खाओ। पत्नी रोक रही है, बच्चे समझा रहे हैं, पड़ोसी मित्र समझाते हैं।
एक मेरे मित्र हैं, खाए चले जाते हैं। बहुत भारी हो गई देह, सम्हाले नहीं सम्हलती। चिकित्सक समझा-समझाकर परेशान हो गया है। अभी आखिरी बार चिकित्सक के पास गए थे तो कहने लगे कि बड़ी अजीब-सी बात है! रात सोता हूं तो आंख खुली की खुली रह जाती है। चिकित्सक ने कहा कि रहेगी, चमड़ी इतनी तन गई है कि जब मुंह बंद करते हो तो आंख खुल जाती है; जब मुंह खोले रहते हो तो थोड़ी चमड़ी शिथिल रहती है, तो आंख बंद रहती है। होगा! सारी दुनिया रोक रही है। खुद भी कहते हैं, रोकना चाहते हैं, मगर क्या करें, विवशता है!
ऐसी विवशता कभी ध्यान के लिए पकड़ती है? ऐसी विवशता कभी संन्यास के लिए पकड़ती है? ऐसी विवशता कभी आत्मखोज के लिए पकड़ती है? नहीं, तब तुम बहाने खोज लेते हो। तुम कोई न कोई रास्ता खोज लेते हो--बच्चे छोटे हैं, विवाह करना है; जैसे कि बच्चे तुम्हें उठा-उठाकर बड़े करने हैं। वे अपने से बड़े हो जाएंगे। तुम न भी हुए तो भी बड़े हो जाएंगे। तुम न भी हुए तो भी विवाह कर लेंगे। तुम जरा उनको विवाह से रोककर तो देखना! तब तुम्हें पता चल जाएगा कि तुम्हारे रोके नहीं रुकते, करने का तो सवाल ही दूर है। तुम्हें कौन रोक सका? तुम बच्चों को कैसे रोक सकोगे?
कोई किसी को रोकता नहीं, लेकिन आदमी बेईमान है। आदमी रास्ते खोज लेता है। जो तुम नहीं करना चाहते उसके लिए तुम दूसरों पर बहाना डाल देते हो। जो तुम करना चाहते हो, तुम करते ही हो। इसे ईमानदारी से समझना उचित है।
लोग ध्यान की बात करते हैं। लोग आत्मा की बात करते हैं, परमात्मा की बात करते हैं। वे कहते हैं, किसी दिन यात्रा करनी है, तैयारी कर लें! यात्रा कभी होती दिखाई नहीं पड़ती। वे टाइम-टेबल ही पढ़ते रहते हैं। कुछ लोग हैं जो टाइम-टेबल पढ़ते हैं।
जाओ भी! कभी यात्रा पर भी निकलो! डर स्वाभाविक है। डर के रहते भी जाना होगा। डर के रहते ही जाना होगा। अगर तुमने सोचा कि जब डर मिट जाएगा तब जाएंगे, तो तुम कभी जाओगे न।
कुछ न देखा फिर वजुज एक शोला-ए-पुर पेचोताब
शमा तक तो हमने भी देखा कि परवाना गया।

--बस परवाना शमा तक जाता हुआ दिखाई पड़ता है, फिर थोड़े ही दिखाई पड़ता है। फिर तो एक झपट और एक लपट--और गया!
कुछ न देखा फिर वजुज एक शोला-ए-पुर पेचोताब
शमा तक तो हमने भी देखा कि परवाना गया।
बस परवाने को लोग शमा तक ही देख पाते हैं। जब शमा छू गई, एक लपट--और समाप्त!
लोगों ने ध्यान के पास जाते लोगों को देखा है। बस, फिर खो जाते देखा है। इसलिए घबड़ाहट है। लोगों ने देखा वर्द्धमान को जाते हुए ध्यान की तरफ; फिर एक लपट--वर्द्धमान खो गया! जो आदमी लौटा, वह कोई और ही था। महावीर कुछ और ही हैं, वर्द्धमान से क्या लेना-देना! वर्द्धमान तो राख हो गया, जल गया ध्यान में! सिद्धार्थ को जाते देखा; जो लौटा--बुद्ध। वह कोई और ही।
इसलिए घबड़ाहट होती है कि तुम कहीं मिट गए! मिटोगे निश्चित! लेकिन यह
भी तो देखो कि मिटकर जो लौटता है, वह कैसा शुभ है, कैसा सुंदर है!
परवाने को जाते देखा है तुमने, लपट के सौंदर्य को भी तो देखो! परवाना,
जब खो जाता है प्रकाश में, उस प्रकाश को भी तो देखो! तो घबड़ाहट कम होगी। इसलिए सदगुरु का अर्थ हैः किसी ऐसे व्यक्ति के पास होना, जो खो गया; ताकि तुम्हें भी थोड़ी हिम्मत बढ़े, खो जाने में थोड़ा रस आए। तुम कहो कि चलो, देखें, चलो एक कदम हम भी उठाएं।
मिटना तो होता है, लेकिन मिटने के पार कोई जागरण भी है। सूली तो लगती है, लेकिन सूली के पीछे कोई पुनरुज्जीवन भी है। शास्त्र ही पढ़ोगे तो अड़चन होगी। शास्त्र में कहानी ही वहां तक है, जहां तक परवाना शमा तक जाता है। उसके आगे की कहानी शास्त्र में हो नहीं सकती। कोई महावीर खोजो! कोई बुद्ध खोजो! किसी ऐसे आदमी को खोजो, जो वहां तक गया हो; परवाना मिट भी गया हो और फिर भी उस मिटे से उठती हो धूप, उठती हो गंध, उठती हो सुवास; कोई जो "न" हो गया हो और फिर भी जिसमें होने की परम वर्षा हो रही हो! कोई ऐसा व्यक्ति खोजो!
सदगुरु न मिले तो शास्त्र। जब तक सदगुरु मिले, तब तक सदगुरु। शास्त्र
तो मजबूरी है। वह तो दुर्भाग्य है। वह तो अंधेरे में टटोलना है। शास्त्र पढ़-पढ़कर घबड़ाहट होगी। और घबड़ाहट को आश्वासन शास्त्र से न मिलेगा; लाख शास्त्र कहे, मगर किताब का क्या भरोसा! जीवंत कोई चाहिए!
इसलिए जगत में जब भी धर्म की लपट आती है, वह किसी जीवंत व्यक्ति के कारण आती है। महावीर जब हुए, लाखों लोग संन्यस्त हुए! एक आग लग गई सारे जंगल में! वृक्ष-वृक्षों पर आग के फूल खिले! जिनने कभी सपने में भी न सोचा होगा, वे भी संन्यस्त हुए!
तुमने कभी जंगल देखा है, पलाश-वन देखा है? जब पलाश के फूल खिलते हैं तो पूरा जंगल गैरिक हो उठता है, लपटों से भर जाता है! ऐसा जब महावीर चले इस जमीन पर थोड़े दिन, वे दिन परम सौभाग्य के थे। वैसे चरण इस पृथ्वी पर बहुत कम पड़ते हैं। तो जिनको भी उनकी गंध लग गई, जिनको भी थोड़ी-सी उनकी हवा लग गई, उन्हीं को पर लग गए! वही परवाने हो गए! फिर उन्होंने फिक्र न की। इस आदमी को देखकर भरोसा आ गया। उन्होंने कहा कि ठीक है, तो हम भी छलांग लेते हैं! एक श्रद्धा जन्मी। श्रद्धा शास्त्र से कभी पैदा नहीं होती; शास्त्र से ज्यादा से ज्यादा विश्वास पैदा होता है। श्रद्धा के लिए कोई जीवंत चाहिए, कोई प्रमाण चाहिए, कोई प्रत्यक्ष चाहिए--जिसमें वेद खड़े हों! कोई शास्ता चाहिए, जिसमें शास्त्र जीवंत हों! फिर जब महावीर खो जाते हैं तो लोग शास्त्रों में उनकी वाणी इकट्ठी कर लेते हैं, फिर पूजा चलती है, पाठ चलता है, पंडित इकट्ठे होते हैं, सब मुर्दा हो जाता है, फिर सब मरघट है। महावीर जीवित थे तब जिन-धर्म जीवित था; फिर तो सब मरघट है।
और ध्यान रखना, हताश मत होना; ऐसा कभी भी नहीं होता कि पृथ्वी पर कोई चरण न हों जिनकी वजह से पृथ्वी धन्यभागी न हो। ऐसा कभी नहीं होता। इसलिए यह मत सोचना कि क्या करें, अभागे हैं हम, महावीर के समय में न हुए! महावीर के समय में भी तुम्हारे जैसे बहुत अभागे थे, जो महावीर को न देख पाए। महावीर उनके गांव से गुजरे और उन्होंने न देखा। उन्होंने महावीर में कुछ और देखा। किसी ने देखाः "यह आदमी नंगा खड़ा है, अनैतिक है। अश्लीलता है यह

तो। परम साधु हो चुके हैं; मगर नग्न खड़ा होना, यह तो समाज के विपरीत व्यवहार है।" खदेड़ा महावीर को गांव के बाहर, पत्थर मारे। जिसके चरणों में मिट जाना था, उसका विरोध किया। और यह मत सोचना कि वे नासमझ लोग थे--वे तुम्हीं हो। वे तुम जैसे ही लोग थे। इसमें कुछ फिर फर्क नहीं है, जरा भी फर्क नहीं है। और जब उन्होंने ऐसे तर्क खोजे थे तो उनका भी कारण था, कि यह आदमी वेद-विरोधी है--और वेद तो परम ज्ञान है! अब शास्ता सदा ही शास्त्र-विरोधी होगा। उसका कारण है, विरोधी होने का; क्योंकि जब जीवंत घटना घट रही हो धर्म की तो तुम बासी बातें मत उठाओ। बासी बातों से क्या लेना-देना? जब ताजा भोजन तैयार हो तो ताजा भोजन बासी भोजन के विपरीत होगा ही, क्योंकि तुम बासे को फेंक दोगे। तुम कहोगे, जब ताजा मिल रहा है तो बासे को कौन खाए! बासे को तो तभी तक खाते हो जब ताजा नहीं मिलता; मजबूरी में खाते हो।
जब शास्ता पैदा होता है तो शास्त्रों को लोग हटा देते हैं। वे कहते हैं, "रखो भी, फिर पीछे देख लेंगे! यह घड़ी पता नहीं कब विदा हो जाए! अभी तो जो सामने मौजूद हुआ है, अभी तो जो प्रगट हुआ है, अवतरित हुआ है, अभी तो जो लपट जीवंत खड़ी है--इसके साथ थोड़ा रास रचा लें, थोड़ा खेल खेल लें; इसके साथ तो थोड़े पास हो लें। यह तो थोड़ा सत्संग का अवसर मिला है, शास्त्र तो फिर देख लेंगे। कोई जल्दी नहीं है, जन्म पड़े हैं, जीवन पड़े हैं।"
तो जब भी कोई शास्ता पैदा होता है, पुराने शास्त्रों को माननेवाले लोग उसके विपरीत हो जाते हैं, क्योंकि उस आदमी के कारण शास्त्रों को लोग हटाने लगते हैं। शास्त्रों को हटाते हैं तो पंडितों को हटाते हैं, तो सारा व्यवसाय हटाते हैं। कठिन हो जाता है। पंडित दुश्मन हो जाते हैं। फिर जब यह शास्ता मर जाता है, वही पंडित जो इसके दुश्मन थे, मरघट पर इकट्ठे हो जाते हैं--श्रद्धांजलि चढ़ाने को। फिर वे ही शास्त्र बना लेते हैं। उनकी दुश्मनी जीवंत से थी, शास्त्र से थोड़े ही थी। फिर वे ही शास्त्र बना लेते हैं।
यह बड़े मजे की बात है। महावीर तो क्षत्रिय, लेकिन महावीर के जितने गणधर, सब ब्राह्मण! तो बड़ी हैरानी की बात है। क्या, मामला क्या है? महावीर के मरते ही ब्राह्मण झपटे, उन्होंने कहा, यह तो अच्छा अवसर मिला, फिर शास्त्र बना लो। उन्होंने तत्क्षण शास्त्र खड़े कर दिए। जैन धर्म निर्मित हो गया। अब अगर कोई पुनः जीवंत धर्म को लाए, तो फिर शास्त्री, पंडित, शास्त्र का पूजक, फिर कठिनाई में पड़ जाता है, फिर मुश्किल में पड़ जाता है। वह कहता है, यह फिर गड़बड़ हुई। फिर उसके व्यवसाय में व्याघात हुआ।
ध्यान रखना, भीतर अगर तुम जाना चाहते हो तो कोई न कोई द्वार कहीं न कहीं पृथ्वी पर सदा खुला है। तुम जरा आंखें खुली रखना, शास्त्रों से भरी मत रखना; तुम जरा मन ताजा रखना, शब्दों से बोझिल मत रखना; सिद्धांतों से दबे मत रहना, जरा सिद्धांतों के पत्तों को हटाकर तुम जीवंत धारा को देखने की क्षमता बनाए रखना। तो कहीं न कहीं तुम्हें कोई सदगुरु मिल जाएगा। उसके पास ही तुम्हारा भय मिटेगा भीतर जाने का। अभी तो तुम शास्त्र पढ़ते रहो, मंदिर में घंटियां बजाते रहो, पूजा करते रहो, अर्चना के थाल सजाते रहो--सब धोखा है।
दिल को महवे-गमे-दिलदार किए बैठे हैं
रिंद बनते हैं मगर जहर पिए बैठे हैं।
लोग बनते हैं कि मद्यप हैं, कि शराब पिए हैं, कि मस्ती में हैं।
रिंद बनते हैं मगर जहर पिए बैठे हैं! ख्याल ही देते हैं कि बड़ी मस्ती में हैं; लेकिन गौर से भीतर देखो तो हृदय में सिवाय घावों के और कुछ भी नहीं, जहर पिए बैठे हैं।
मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजाघरों में, जो तुम्हें लोग पूजा और प्रार्थना में डोलते हुए मालूम पड़ते हैं, धोखे में मत पड़ जाना, जरा उनके भीतर देखना; कुछ भी नहीं डोल रहा है! वे नाहक का व्यायाम कर रहे हैं। जब भीतर कोई डोलता है तो फिर क्या मंदिर और क्या मस्जिद! फिर पूजा के थाल क्या सजाना। फिर तो जहां भी वे होते हैं, वहीं डोलते हैं। कबीर ने कहा हैः "जहां-जहां डोलूं सो-सो परिक्रमा, खाऊं-पिऊं सो सेवा।" परमात्मा की सेवा हो गई, खा-पी लिया, मजे से खा-पी लिया, चढ़ गया भोग। और कहां जाना है?

जिस दिन तुम्हारे जीवन में मधु का अवतरण होता है, जिस दिन तुम्हारे जीवन में अंतरात्मा की झलक भी मिलने लगती है, उस दिन तुम जहां हो वहीं मंदिर है। अंतर्यात्रा! तुम्हारी ही देह मंदिर बन जाती है।
"प्रतिक्रमण, घर वापिस लौटना, हमें असहज, कठिन, असंभव-सा क्यों लगता है?"
स्वाभाविक है। कभी गए नहीं उस द्वार, कभी चखा नहीं उसे, कोई संबंध न बना, अजनबी हो--इसलिए। थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करो। बैठो उन लोगों के पास जो पहले से पीये हों। थोड़ी उनकी मस्ती को संक्रामक होने दो। थोड़े उनके साथ डोलो, उठो, बैठो, परिक्रमा करो, सेवा करो। थोड़ा झुको उनके पास, जो लबालब हैं और ऊपर से बहे जा रहे हैं। थोड़े न बहुत छींटे तुम तक भी पहुंच ही जाएंगे।
बस इतनी ही चेष्टा है यहां कि थोड़े छींटे तुम तक पहुंच जाएं। एक बार
भी तुम्हें भीतर की धुन का जरा-सा नशा आ जाए, फिर तुम न रुकोगे, फिर तुम्हें कोई भी न रोक पाएगा। फिर कोई कभी किसी को रोक ही नहीं पाया।

तीसरा प्रश्नः मुझे मालूम नहीं, प्रसाद संकल्प से मिला या समर्पण से,
पर मिला, और मिल रहा है, और अकारण, और अयाचित, और असमय, और भरपूर--वर्षा की भांति!?

अब इससे प्रश्न मत उठाओ। डूबो! अब चिंता मत करोः कहां से मिल रहा है, क्यों मिल रहा है! परमात्मा जब मिलता है तो ऐसे ही बेबूझ मिलता है। तुम्हारे हिसाब-किताब से थोड़े ही मिलता है! तुमने कुछ किया, इसलिए थोड़े ही मिलता है। तुम ने चाहा... !
अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर
अगर है तश्नगी कामिल तो पैमाने भी आएंगे।
बस प्यास पूरी हो, तो प्याले भर जाएंगे।
अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर!
प्यास हो तो परमात्मा तुम्हें खोजता है। फिर गिड़गिड़ाना थोड़े ही पड़ता है! फिर भिखारी की तरह रोना थोड़े ही पड़ता है, झोली थोड़ी फैलानी पड़ती है! अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर!
कहीं भी बैठे होओ, अलग कि भीड़ में, क्या फर्क पड़ता है! जहां प्यास है, वहां साकी की नजर पहुंच ही जाती है। प्यास ही उसके लिए निमंत्रण है। प्यास ही प्रार्थना है। जो प्यास नहीं जानते, वे और शब्द दोहराते हैं। जिनको प्यास की समझ आ गई, वे सिर्फ प्यास ही प्यास में डूब जाते हैं। वे इतने प्यासे हो जाते हैं कि भीतर कोई प्यासा भी नहीं होता, बस प्यास ही प्यास होती है--इस पार से उस पार, रोएं-रोएं में, धड़कन-धड़कन में, श्वास-श्वास में! अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर
अगर है तश्नगी कामिल तो पैमाने भी आएंगे।
अगर प्यास पूरी है तो तुमने प्याला तो तैयार कर दिया। अब, अब तुम फिक्र छोड़ो! अब शराब भी आ जाएगी। अब कोई भर भी देगा प्याले को, तुम प्याला तो बनाओ!
सदा ही परमात्मा अकारण घटित होता है। इससे तुम गलत मत समझ लेना मुझे। तुम यह मत समझ लेना कि फिर क्या करना। जब मैं कहता हूं कि अकारण घटित होता है, तो मैं यह कह रहा हूं कि तुम जो भी करते हो, वह तो ना-कुछ है। जब परमात्मा घटित होगा तो तुम जानोगे, अरे! मैंने कुछ भी तो नहीं किया था! यद्यपि तुमने बहुत किया था, लेकिन अब तुम जानोगे कि कुछ भी तो न किया था। जो मिला है, वह इतना ज्यादा है कि जो किया था अब उसकी बात भी करनी फिजूल है। मिला है खजाना अकूत, जो तुमने किया था वह कौड़ी-कौड़ी था। अब उसकी बात भी उठाने में शर्म लगेगी। फिर तुम यह थोड़े ही कहोगे परमात्मा से कि "सुनो जी! कितने उपवास किए, याद है? कि कितने ध्यान में बैठता था, भूल तो नहीं गए? कितना दान-पुण्य किया था!"
सुना है मैंने, एक कंजूस मरा। स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा। द्वारपाल
ने पूछा कि "कुछ पुण्य वगैरह किए हैं?" ध्यान रखना, ठीक से कहानी सुन लेना, पूछेगा, तुम भी जब जाओगे! और वही गलती मत कर देना जो इस आदमी ने की। उसने

कहा, "हां किये हैं।" बस यही तो पापी का लक्षण है। अगर वह कह देता "कहां! क्या पुण्य! सामर्थ्य कहां! करने को मेरे पास क्या था!" द्वार खुल जाते, लेकिन चूक गया। उसने कहा, "किए हैं।" तो द्वारपाल ने कहा, "फिर ठहरो। फिर खाते-बही देखने पड़ेंगे। हिसाबी-किताबी आदमी हो।" खाते-बही देखे तो पता चला, एक भिखारी को चार पैसे उसने दान दिए थे।
तुम कहोगे "बस इतना?" लेकिन "बस इतना" ही सिद्ध होता है जो तुमने किया है। क्या किया है? कभी एक पैसा किसी भिखारी को दे दिया है। और उसी की जेब काटी थी पहले; नहीं तो भिखारी ही कैसे होता, यह भी तो सोचो। फिर उसी को समझाने लिए एक पैसा भी दे दिया है कि उपद्रव न कर, हड़ताल वगैरह पर मत जा, शांत रह। क्या किया है तुमने? चार पैसे भिखारी को दिए थे!
द्वारपाल चिंतित हो गया। उसने अपने सहयोगी से पूछा, बोल भाई, क्या करें? उसने कहा, "करना क्या है! चार पैसे वापस दो और कहो कि नर्क जा, नर्क जा, खत्म कर मामला, हिसाब साफ कर!"
तुम्हारा किया कितना हो सकेगा? चम्मच-चम्मच से सागर के किनारे हम बैठे हैं। चम्मचें भर रहे हैं, इससे कहीं सागर उलिचता है! इससे कहीं कुछ होता नहीं।
लेकिन इससे तुम यह मत समझ लेना कि मैं यह कह रहा हूं कि चलो, झंझट मिटी, चार पैसे भी अब देने की कोई जरूरत नहीं। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं तुमसे कहता हूं, देना! दिल खोलकर देना! लेकिन आखिर में याद रखना कि वे चार पैसे ही दिये। कितना ही दिया हो, सब दे दिया हो, सब लुटा दिया हो, तो भी चार पैसे ही तुम्हारे पास थे, ज्यादा तो तुम्हारे पास ही न था, ज्यादा तुम देते भी कैसे!
इसलिए जिन्होंने पाया है, उनको हमेशा लगाः कुछ भी तो नहीं किया, प्रसाद-स्वरूप है। यहीं भूल पैदा होती है। सुननेवाला समझ लेता है, चलो तब अब यह भी झंझट नहीं। अब कुछ करना ही नहीं; जब मिलना है प्रसाद रूप तो जब मिलेगा, मिलेगा। लेकिन प्रसाद उन्हीं को मिलता है जो अपनी समग्र चेष्टा करते हैं। मिलता प्रसाद रूप है लेकिन प्रसाद उन्हीं को मिलता है जो समग्र चेष्टा करते हैं।
इसलिए चिंता मत करो। संकल्प से मिला या समर्पण से, यह भी छोड़ो। कैसे मिला, इसकी क्या फिक्र! मिला! अब तो थोड़ा नाचो! अब विचार छोड़ो, अब तो थोड़ा समारोह करो! अब तो कुछ उत्सव करो!
जमीं पे जाम को रख दे, जरा ठहर साकी
मैं इस पे हो लूं तसद्दुक तो फिर उठा के पिऊं।
अब तो जरा बलिहारी हो जाओ। कहो कि जरा रख जमीन पर, पहले मैं नाच लूं, थोड़ा बलिहारी हो जाऊं इस पर, फिर उठाकर पीऊं। अब तो थोड़ा नाचो!
ध्यान रखना, प्रसाद जब क्षणभर को भी मिलता हो, कणभर को भी मिलता हो-- तुम नाचना! तुम्हारे नाचने से प्रसाद बढ़ेगा। उत्सव में ही बढ़ता है। तुम्हारी प्रसन्नता में ही बढ़ता है। तुम्हारे अनुग्रह के भाव में बढ़ता है। सिकुड़ मत जाना। सोचने मत लगना कि कैसे मिला, कहां से मिला, क्यों मिला, मैंने क्या किया था, अब मैं क्या करूं कि और ज्यादा मिले! इसमें तो खो जाएगा; जो मिला है वह भी खो जाएगा; जो द्वार खुला था क्षणभर को वह भी बंद हो जाएगा--तुम्हारे सोच-विचार में! सोच-विचार से तो पर्दे पड़ जाते हैं। नाचना! गाना! गुनगुनाना! जो मिला है, उस पर बलिहारी जाना। कहनाः जमीं पर जाम को रख दे, जरा ठहर साकी! परमात्मा से भी कहना, "जल्दी मत कर, रख! जरा मैं नाच तो लूं! मैं इस पे हो लूं तसद्दुक तो फिर उठाके पिऊं। पहले बलिहारी जाऊं, पहले नाचूं, पहले थोड़ा उत्सव मना लूं, तेरा स्वागत कर लूं! अकारण मिला है! बिना मेरे कुछ किए मिला है। तो ऐसे ही उठाकर पी लेना तो अशोभन होगा। शोभा न होगी। ऐसे ही उठाकर पी लेना असंस्कृत होगा। थोड़ा नाचकर, गुनगुनाकर, थोड़ी गहन कृतज्ञता में डूबकर!
"मुझे मालूम नहीं, प्रसाद संकल्प से मिला या समर्पण से!"
भाड़ में जाने दो! मालूम करने की फिक्र ही मत करो। मिल गया! कैसे मिलती
है कोई चीज, यह तो तब सोचना चाहिए जब न मिली हो। तब आदमी साधन खोजता है। तब कहता है, कहां से जाऊं! चलो मंजिल ही तुम्हें खोजती आ गई, अब तुम फिक्र

छोड़ो; कहीं ऐसा न हो कि तुम उधेड़-बुन में पड़ जाओ, और मंजिल हट जाए! क्योंकि जो आ गई है अपने से तुम्हारे पास, अपने से हट भी जा सकती है।
"... पर मिला और मिल रहा है--और अकारण!"
सदा ही अकारण मिलता है। अकारण का बोध बनाए रखना! क्योंकि मन की वृत्ति
है कि वह सोचने लगता है जल्दी कि जो मिल रहा है वह कारण से मिल रहा है। अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति हुआः मार्गन। वह एक भिखारी को हर महीने सौ डालर देता था। भिखारी पर प्रसन्न था। कुछ भिखारी की आवाज में बड़ी जान थी। जब भिखारी गीत गाता तो... । तो उसने कहा कि अब तुझे बार-बार आने की जरूरत नहीं, एक तारीख को सौ डालर तू ले ही जाया कर। तो वह नियम से सौ डालर एक तारीख को ले आता था। ऐसा वर्षों चला। एक दिन एक तारीख को... वह एक तारीख को एक दिन भी नहीं चूकता था... वह आकर एक तारीख को खड़ा हुआ दफ्तर में और मैनेजर ने कहा कि भई सुनो, अब से पचास डालर! उसने कहा, "क्या? पचास डालर? क्या मतलब?" उसने कहा कि ऐसा है कि मालिक की लड़की की शादी हो रही है, पैसे की उन्हें खुद ही तंगी है। धंधा भी घाटे में जा रहा है। थोड़ी मुसीबत में हैं। इसलिए पचास! उसने कहा, "हद्द हो गई! मेरे रुपयों पर लड़की की शादी की जा रही है? और घाटा तुम्हें लगे, भोगूं मैं? समझा क्या है? बुलाओ मालिक को!" मन की वृत्ति है कि अगर तुम्हें मिलता चला जाए तो तुम सोचते हो, तुम्हारी पात्रता है। जो तुम्हें मुफ्त मिलता है, तुम धीरे-धीरे सोचने लगते हो, यह भी मेरी पात्रता है। तुम न केवल यह सोचने लगते हो बल्कि तुम प्रतीक्षा करते हो कि मिलना ही चाहिए। अगर न मिले तो शिकायत शुरू हो जाती है।
सोचो! कहां धन्यवाद और कहां शिकायत! कहां आभार और कहां शिकवे! लेकिन
मन की यह आदत है। और इस आदत के कारण बहुत-से लोग परमात्मा के द्वार से लौट जाते हैं। सत्य आ ही रहा था, करीब आ ही रहा था कि उनकी अकड़ आने लगी। अकड़ आई कि अरे, जब आ रहा है तो निश्चित ही हमने अर्जित किया होगा! जब आ रहा है तो कोई कारण होगा! कुछ हममें होगी खूबी, तभी आ रहा है!
सदा याद रखना, तुम जब भी पात्रता के बोध से भर जाओगे, तभी अपात्र हो जाओगे। जब तक अपात्र होने का तुम्हें स्मरण रहेगा, तुम्हारी पात्रता बढ़ती रहेगी। इस विरोधाभास को महामंत्र की तरह स्मरण रखना।
और, जिन्होंने भी उसको पीया है, उनमें से कोई भी नहीं बता सका कि क्यों
और क्या! पीने के पहले की सब बातें हैं। पीने के पहले के लिए सब रास्ते और साधन हैं। पी लेने के बाद तो फिर राज है, फिर तो रहस्य है।
क्या हमने छलकते हुए पैमाने में देखा
ये राज है मैखाने का इफ्शां न करेंगे।
क्या देखा है लोगों ने परमात्मा में छलकते हुए? उसे कहा नहीं जा सकता।
ये राज है मैखाने का इफ्शां न करेंगे।
क्या हमने छलकते हुए पैमाने में देखा
वहां जाकर लोग चुप हो गए हैं।
वाणी की एक सीमा है। बुद्धि की एक सीमा है। जहां तक साधन है वहां तक बुद्धि की सीमा है। जहां साध्य आया, बुद्धि की सीमा गई। क्योंकि बुद्धि स्वयं साधन है। बुद्धि खोज का उपाय है। जब पहुंच गए, तो बुद्धि की कोई जरूरत न रही।
तो इस सौभाग्य को बढ़ाना! और बढ़ाने की कला यह है कि उसे अकारण ही रहने देना। कोई कारण मत खोजना, समझ में न आए, नासमझी में रस लेना। समझने की जरूरत कहां है! समझ कहीं खराब न कर दे, कहीं विश्लेषण खंडित न कर दे! उसे राज ही रहने देना। और तब धीरे-धीरे तुम पाओगे कि जो तुम्हें मिला है, वह मिला ही नहीं, वह तुम्हारे भीतर आवास कर लिया है। वह तुम्हारी आंखों में समा गया। वह तुम्हारी आंखों का नूर हो गया! वह तुम्हारे हृदय की धड़कन बन गया। और ऐसा ही नहीं कि तुम्हें मिला है; अगर तुमने उसे ठीक से पीया तो तुम्हारे द्वारा दूसरों पर भी छलकने लगेगा।
हम लिए फिरते हैं आंखों में चमन ऐ बागवां
जिस तरफ उठी निगाहे-शौक गुलशन हो गया।

और जहां आंख उठ जाती है ऐसे आदमी की, वहीं बगीचे हो जाते हैं, वहीं बगीचे खिल जाते हैं।
जिस तरफ देख लोगे, वहीं परमात्मा का फैलाव हो जाएगा। जिस पर तुम्हारी नजर पड़ जाएगी, वह भी चौंक जाएगा। जिसके हृदय में तुम गौर से देख लोगे, वहां भी कोई बीज तड़फकर टूट पड़ेगा और अंकुर हो जाएगा।
पर सम्हालना, मन की आदतें बड़ी पुरानी हैं! मन कर्ता बनना चाहता है। वह कहता है, मैंने किया; मेरे कर्मों का फल है, देखो! बस वहीं चूक हो जाएगी। जल्दी ही तुम पाओगे, आई थी जो झलक, खो गई; दिखा था जो प्रकाश अब दिखाई नहीं पड़ता; खुला था जो द्वार, बंद हो गया!
ऐसा न हो पाए। अपने को अपात्र, और भी अपात्र, अपने को ना-कुछ, कर्ता नहीं, सिर्फ भोक्ता जानना--परमात्मा का भोक्ता! प्यासा जानना, अधिकारी नहीं। और, और-और वर्षा होगी, और-और घने मेघ घिरेंगे, और-और तुम तृप्त होओगे, महातृप्त होओगे।

आखिरी प्रश्नः जब आपको सुनता हूं तो आपका प्रत्येक शब्द दिल की गहराई
तक उतर जाता है और हलचल पैदा करता है। लेकिन जब आपको पढ़ता हूं तो वह दिमागी खेल बनकर रह जाता है। कृपया बताएं कि ऐसा क्यों होता है?

साफ-साफ है। गणित बिल्कुल सीधा है। जब तुम पढ़ते हो तब तुम्हीं होते
हो, तब मैं नहीं होता। जो तुम पढ़ते हो, वह तुम ही तुम हो। दिमागी खेल बनकर रह जाता है। जब तुम मुझे सुनते हो तो कभी-कभी तुम्हारे जाने-अनजाने मैं भी तुम में प्रवेश कर जाता हूं। कम ही तुम ऐसा मौका देते हो। लेकिन कभी-कभी चूक तुमसे हो जाती है। कभी-कभी बे-भान, तुम जरा दरवाजा खुला छोड़ देते हो, मैं भीतर आ जाता हूं।
इसलिए तुम जब मुझे सुन रहे हो तो बात और है। इसलिए सत्य सदा कहा गया है, लिखा नहीं गया। लिखा जा नहीं सकता। कहना भी बहुत मुश्किल है, लेकिन फिर भी कहा जा सकता है, थोड़ा-सा कहा जा सकता है। ऐसी थोड़ी-सी खबर दी जा सकती है। क्योंकि कहने में कई बातें सम्मिलित हैं, जो लिखने में खो जाती हैं।
जब तुम किताब पढ़ोगे तो किताब तो मुर्दा होगी। किताब तुम्हारे पास कोई वातावरण तो पैदा न कर सकेगी। किताब का कोई माहौल तो नहीं होता। किताब तुम्हारे पास कोई जीवंत वातावरण निर्मित नहीं कर सकती। वातावरण तुम्हारा होगा; उसमें ही किताब प्रवेश करेगी।
जब तुम मेरे पास हो, जब तुम मुझे सुन रहे हो, यदि सच में सुन रहे हो, तो तुम्हारा वातावरण यहां नहीं है, वातावरण मेरा है, हवा यहां मेरी है। तुम मेहमान की तरह उसमें हो। और जो समझदार हैं वे अपने को वहीं रख आते हैं जहां जूते उतारते हैं; ताकि तुम यहां गड़बड़ी न कर सको; ताकि तुम पूरे मुझ में डूब जाओ; ताकि निर्वस्त्र, नग्न; ताकि पूरे के पूरे, बिना किसी आवरण के, अनावृत्त होकर तुम मुझ में डूब जाओ; यह थोड़ी-सी देर को जो लहरें मैं तुम्हारे आसपास पैदा करता हूं, ये तुम्हें छू लें! बोलना तो बहाना है। बोलना तो बहाना है, ताकि तुम उलझे रहो सुनने में। यह तो ऐसा है, जैसे छोटा बच्चा उपद्रव करता है, खिलौना दे दिया कि खेल, उलझ गया। बिना बोले, तुम मुश्किल में पड़ोगे। मैं न बोलूं तो तुम्हारा मन हजार-हजार जगह जाएगा। बोलता हूं, बोलने में तुम्हारा मन उलझ गया, सुनने में लग गया; पर यह तो ऊपर-ऊपर की बात है, भीतर कुछ और हो रहा है। इधर तुम उलझे कि उधर मैंने तुम्हारे हृदय को टटोला। एक हाथ से तुम्हें खिलौना देता हूं, दूसरे हाथ से तुम्हारे हृदय को टटोल रहा हूं। कभी-कभी... तुम्हारी आदतें पुरानी हैं, मजबूत हैं। आदतें ऐसी हो गई हैं जड़ कि तुम खिलौने में उलझे भी रहते हो और फिर भी हृदय को बांधे रहते हो, बंद रखते हो। कभी-कभी खुल जाता है। उस घड़ी, मैं तुम्हारे भीतर पहुंच जाता हूं। उस घड़ी, मेरा और तुम्हारा होना मिट जाता है। उस घड़ी हम एक ही वातावरण के हिस्से हो जाते हैं। एक सागर की तरंगें! इसलिए स्वाभाविक है कि उस क्षण कुछ हो जाए, जो किताब से न हो सकेगा।
फिर, जब तुम मेरे पास हो तो बोलना तो मेरे पास होने का एक अंश मात्र है। पास होना बड़ी घटना है! सान्निध्य बड़ी घटना है। निकट होना... तो मेरी

तरंगें और तुम्हारी तरंगें एक रासलीला में लीन होती हैं। तुम मेरे आसपास नाचते हो, मैं तुम्हारे आसपास नाचता हूं। कुछ घटता है, जो खाली आंखों से नहीं देखा जा सकता! कुछ घटता है, चर्म-च्रु उसे नहीं देख पाते! कुछ अदृश्य में घटता है!
तुम दृश्य ही तो नहीं हो। मैं जो तुम्हें दिखाई पड़ रहा हूं, उसी पर तो सीमित नहीं हूं। तुम्हें अपने अदृश्य का पता नहीं है, मुझे मेरे अदृश्य का पता है। इसलिए मैं तुम्हारे अदृश्य को भी पुकारता हूं। तुम्हारा अदृश्य भी बाहर आ जाता है। एक नृत्य शुरू होता है। उस नृत्य में ही तुम्हारे हृदय में कुछ फूल खिलते हैं, कमल खिलते हैं।
यह सवाल बोलने का ही नहीं है। और यह जो मैं बोल रहा हूं, ये कोरे शब्द नहीं हैं; ये किसी गहन अनुभव में डूबकर आए हैं; ये किसी गहन अनुभव से सिक्त हैं, किसी गहन अनुभव में पगे हैं। यह कोई शब्दों का काव्य नहीं है, जीवन का काव्य है। कवि कहते हैंः
दिल में घर करने के अंदाज कहां से लाऊं
हो असर जिसमें वह आवाज कहां से लाऊं!
ऋषि यह कहते नहीं। आवाज सहज आती है, जो दिल में घर कर जाती है।
दिल में घर करने के अंदाज कहां से लाऊं! जब तुम्हारे पास कुछ संपदा होती है अनुभव की, तो आवाज अपने-आप उस अंदाज को पा लेती है जो दिल में घर कर जाता है। नहीं कि इसका कोई अभ्यास है; नहीं कि इसकी कोई वक्तृत्व शैली है; नहीं कि इसका कोई विधि-विधान है--नहीं, कुछ भी नहीं है। जब तुम पाते हो सत्य को, तो सत्य का पाना ही इतना विराट है कि तुम्हारे हर शब्द में उसकी धुन, हर शब्द में उसका रस, हर शब्द में उसका संगीत और सुवास फैलने लगती है।
दिल में घर करने के अंदाज कहां से लाऊं
हो असर जिसमें वह आवाज कहां से लाऊं!
आ जाती है। पहले उसे ले आओ जिसे प्रगट करना है; फिर प्रगट करने की आवाज अपने से आ जाती है। यही तो कवि और ऋषि में फर्क है। कवि आवाज की फिक्र करता है। कवि फिक्र करता है वाहन की। ऋषि फिक्र करता है वाहक की। ऋषि फिक्र करता है विषय-वस्तु की। जब बोलने को कुछ हो तो बोलना आ जाता है। ऐसे बोलना आ जाए तो जरूरी नहीं है कि बोलने को कुछ हो। बोलना तो सभी को आता है। बोलने मात्र से पता नहीं चलता कि कुछ बोलने को तुम्हारे पास है। बोलते तो तुम चौबीस घंटे हो--बिना कुछ हुए। कुछ भी नहीं देने को, फिर भी बोले जाते हो। उसी को तो हम बड़बड़ कहते हैं, बकबक कहते हैं। बड़बड़ का इतना ही अर्थ है कि कुछ है नहीं बोलने को, लेकिन बोले चले जाते हो; क्या करें, चुप होने की आदत नहीं है! क्या करें, चुप होना भारी पड़ता है, बोले चले जाते हैं!
लेकिन फिर एक और बोलना भी है, जब तुम्हारे पास कुछ देने को होता है। वाणी वाहन बनती है। वाणी घोड़ा बनती है।
तो जो शब्द मैं तुम्हारे पास पहुंचा रहा हूं, वे तो घोड़ों की भांति हैं; उन पर बैठा सवार भी कभी-कभी तुम्हें दिखायी पड़ जाता है। वही तुम्हारे हृदय को पकड़ लेता है। वही तुम्हें मंथन में डुबा देता है।
किताब से यह न हो सकेगा; लेकिन किताब से भी हो सकता है, अगर तुम धीरे- धीरे मुझे सुनने में समर्थ हो जाओ। इसलिए मैंने कहा है लोगों को कि मैं जैसा बोलता हूं वैसी ही किताबें रहें, उनमें जरा भी फर्क न किया जाए। उनको बदला न जाए; क्योंकि लिखने का ढंग और होता है, बोलने को ढंग और होता है। बोला हुआ शब्द अलग बात है, लिखा हुआ शब्द अलग बात है। तो मैंने कहा है कि जैसा मैं बोलता हूं, वैसा ही लिखे में हो; ताकि अगर एक बार तुम्हारा मुझसे तारतम्य बंध जाए तो किताब को पढ़ते-पढ़ते भी तुम मुझे सुनने लगोगे। तो जिन्होंने मुझे ठीक से सुना है, वे किताब को पढ़ते वक्त भी किताब को नहीं पढ़ेंगे, मुझे सुनेंगे। किताब उनसे बोलने लगेगी। एक बार तुमने मुझे अपने हृदय में जगह दे दी, तो फिर किताब से भी मैं तुम्हारे पास आ सकूंगा। बिना किताब के भी आ सकूंगा। तुमने जरा मेरी याद की तो भी पास आ जाऊंगा। तुम पर निर्भर है।
और जब मैं कहता हूं "अगर ठीक से सुना", तो मेरा अर्थ हैः अगर प्रेम से सुना, सहानुभूति से सुना, सहयोग किया मुझसे, श्रद्धा से सुना, संदेह को

हटाकर सुना, अपने मन को हटाकर सुना; कहा अपने मन को कि हट, थोड़ी जगह दे। तो, तो मेरा प्रेम तुम्हें बेहोश भी बनाएगा और मेरा प्रेम तुम्हें होश में भी लाएगा। यह बेहोशी कुछ ऐसी है कि इसमें होश बढ़ता चला जाता है। यह होश कुछ ऐसा है कि इसमें बेहोशी बढ़ती चली जाती है।
हमें भी देख जो इस दर्द से कुछ होश में आए
अरे दीवाना हो जाना मुहब्बत में तो आसां है।
प्रेम में पागल हो जाना तो बहुत आसान है। हमें भी देख जो इस दर्द से कुछ होश में आए हैं!
मैं तुम्हें जो प्रेम दे रहा हूं, वह एक दर्द है, वह एक पीड़ा है। उस पीड़ा से तुम निखरो! वह एक आग है जो तुम्हें जलाएगी। तुम घबड़ा मत जाना! तुम मेरे साथ चलना, सहयोग करना।
हमें भी देख जो इस दर्द से कुछ होश में आए
अरे दीवाना हो जाना मुहब्बत में तो आसां है।
बहुत आसान है पागल हो जाना प्रेम में, लेकिन जागना बड़ा कठिन है! यह प्रेम तुम्हें जगाए तो ही सार्थक हुआ। यह प्रेम तुम्हें उठाए तो ही सार्थक हुआ। यह प्रेम तुम्हें तुम तक पहुंचा दे तो ही सार्थक हुआ। हो सकता है। मेरा हाथ बढ़ा है, तुम भी अपना हाथ बढ़ाओ और उसे पकड़ लो!
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
तीसरा प्रवचन

बोध--गहन बोध--मुक्ति है

पहला सूत्रः
जाणिज्जइ चिन्तिज्जइ, जन्मजरामरणंसंभवं दुक्खं।
न य विसएसु विरज्जई, अहो सुबद्धो कवडगंठी।।
"जीव जरा, जन्म और मरण से होनेवाले दुख को जानता है, उसका विचार भी करता है; किंतु विषयों से विरक्त नहीं हो पाता है। अहो, माया की गांठ कितनी सुदृढ़ है!"
जीवन में गुजरते तो हम सभी एक ही राह से हैं। उसी राह से महावीर भी गुजरते हैं। राह में कोई भेद नहीं है। जीवन का ताना-बाना एक जैसा है। विस्तार में थोड़े फर्क होंगे। कोई इस गांव में पैदा होता कोई उस गांव में, कोई इस देह में कोई उस देह में, कोई स्त्री की तरह कोई पुरुष की तरह, कोई गरीब कोई अमीर--ये विस्तार के भेद हैं, लेकिन जीवन का ताना-बाना एक ही है। जन्म, जीवन, मृत्यु--और सब में अनुस्यूत दुख की धारा है। कहां जन्मे, इससे फर्क नहीं पड़ता। कहां मरे, इससे फर्क नहीं पड़ता। जन्म और मृत्यु का स्वाद तो एक ही है।
सभी एक ही रास्ते से गुजरते हैं। फिर भी उसी रास्ते से सभी अलग-अलग अनुभव और निष्कर्ष लेते हैं। घटनाएं तो एक-सी घटती हैं, लेकिन जीवन के निष्कर्ष बड़े अलग हो जाते हैं। और जब तक कोई घटना अनुभव न बने, तब तक घटी न घटी बराबर।
दुख आता है--सभी को आता है। दुख भोगा जाता है। लेकिन दुख भोगना दो ढंग
से हो सकता हैः कोई जागकर भोगता है, कोई सोए-सोए भोगता है। जो सोए-सोए भोगता है वह फिर-फिर भोगेगा, क्योंकि जो पाठ लेना था लिया नहीं, जो सीखना था सीखा नहीं। उसे पुनः पुनः उसी विद्यालय में वापिस लौट आना पड़ेगा।
दुख को कोई जागकर भोगता है, तो अनुभव हाथ आता है। अनुभव हाथ आता है कि दुख को मैंने ही पैदा किया था, कैसे पैदा किया था, अब दुबारा वैसा न करूंगा। इसकी कोई कसम नहीं लेनी पड़ती, न कोई व्रत लेना पड़ता है; क्योंकि व्रत और कसमें तो सब नासमझी के हिस्से हैं, वे तो सोनेवाले आदमी की तरकीबें हैं। जिसने एक बार देख लिया कि आग में हाथ डालने से हाथ जल जाता है, वह किसी मंदिर में, किसी साधु के सत्संग में प्रतिज्ञा नहीं लेता कि अब आग में हाथ दुबारा न डालूंगा। समझ आ गयी।
समझ काफी है। प्रतिज्ञा से समझ का कोई संबंध नहीं है। नासमझ प्रतिज्ञा लेते हैं। नासमझ व्रत लेते हैं। समझदार तो समझ से जीना शुरू कर देता है। वही उसका व्रत है, वही उसकी प्रतिज्ञा है।
एक बार देखा कि हाथ जल गया, अब दुबारा जलना मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि हाथ मैं ही डालूं तभी जलता है।
आग का स्वभाव जलाना है। लेकिन आग तुम्हारे पीछे नहीं दौड़ती; तुम ही आग में हाथ डालो तो ही जलते हो। तो अपनी ही बात है, अपना ही निर्णय है, अपना ही दायित्व है। डालें तो जलेंगे, न डालें तो नहीं जलेंगे। यद्यपि जीवन इतना सरल नहीं है। आज हाथ डालते हो, हो सकता है कल पता चले, जला। खबर आते-आते देर लग जाए। बीज की तरह जो आज घटा है, वृक्ष बनते-बनते समय लग जाए। यह हो सकता है कि तुम्हारे कृत्य में और तुम्हारे फल में थोड़ा समय का फासला हो। तो शायद तुम जोड़ भी न पाओ कि किस कारण से दुख मिला।
जो समझ नहीं पाते, जाग नहीं पाते, दुख को जागकर भोगते नहीं, वे चिंतन
तो बहुत करते हैं, मनन तो बहुत करते हैं कि दुख न हो। ऐसा कौन होगा मनुष्य जो चाहता है दुख हो! दुख न हो, ऐसा तो सभी चाहते हैं। लेकिन चाह से थोड़े ही दुख रुकता है! जो समझे हैं, उन्होंने तो पाया है कि चाह से ही दुख पैदा होता है! दुख न हो, इस चाह से भी दुख पैदा होता है। चाह मात्र दुख के बीज बोती है। फिर फसल काटनी होती है। चाह मात्र जहर है।
चिंतन, विचार तो बहुत लोग करते हैं।

महावीर कहते हैंः जाणिज्जइ चिन्तिज्जइ! लोग जानते भी हैं। ऐसा भी नहीं कि नहीं जानते। लोग जानते हैं, कहां-कहां दुख होता है, लेकिन फिर भी सो-सो जाते हैं। शायद जहां-जहां दुख होता है, वहां-वहां मोह का बड़ा आवरण है। ऐसे ऊपर से लगता है कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है, लेकिन भीतर कोई प्रबल वासना है जो बार-बार आग के पास ले आती है; जो कहती है आग में हाथ डालो, बड़ा सुख होगा। तो यह जानकारी ऊपर-ऊपर रह जाती है। तो जब भीतर की वासना प्रबल नहीं होती, तब तो तुम बड़े समझदार होते हो। वासना के अभाव में कौन समझदार नहीं होता!
जब तुम पर क्रोध का तूफान नहीं है, तब तुम भी समझदार होते हो; तुम भी समझा सकते हो, सलाह दे सकते हो कि क्रोध व्यर्थ है, जहर है, अपने लिए दुख का निमंत्रण है। लेकिन जब क्रोध का आवेश उठता है, जब तुम आविष्ट होते हो, जब तुम तूफान में घिर जाते हो और क्रोध का बवंडर तुम्हारे चारों तरफ होता है, तब सब समझ खो जाती है। तो ऐसा लगता है, तुम्हारी समझ तो ऊपर-ऊपर है और क्रोध का उत्पात बहुत गहरा है; वहां तक तुम्हारा जानना नहीं है।
सोचते हो, विचारते हो, पर सब सतह पर है, लहरों-लहरों में है। सागर की गहराई में तुम्हारा उतरना नहीं हुआ। वह जागने से ही संभव होता है, क्योंकि तुम चैतन्य हो। जितने जागोगे, जितने चेतन बनोगे, उतने ही भीतर जाओगे। चैतन्य तुम्हारा स्वभाव है। चैतन्य तुम्हारी गहराई, तुम्हारी ऊंचाई है। तो जितने चेतोगे उतने ही गहरे उतरोगे। जिस दिन तुम्हारी चेतना उतनी ही गहरी हो जाएगी जितनी तुम्हारी वासना, उसी क्षण मुक्ति हो जाएगी। जिस क्षण, आग में हाथ डालने से हाथ जलता है, यह सत्य उतना ही गहरा उतर जाएगा जितना आग में हाथ डालने की प्रबल वासना गहरी है, उसी दिन वासना कट जाएगी।
वृक्ष की शाखाओं को मत काटते रहो। उससे कुछ भी न होगा। जड़ें काटनी होंगी। जमीन में गहरे उतरना होगा। अपनी ही चेतना के अंधकार में दीये ले जाने होंगे।
तो महावीर कहते हैं, सोचते हैं लोग, जानते-से भी लगते हैं, किंतु विषयों से विरक्त नहीं हो पाते हैं। अहो, माया की गांठ कितनी सुदृढ़ होती है!
बड़े आश्चर्यचकित हो महावीर कहते हैंः अहो! कैसी आश्चर्यचकित करनेवाली है यह माया की गांठ! जानते, सोचते, सूझते हुए लोग भी अंधे हो जाते हैं। आंखवाले अंधे हो जाते हैं! समझवाले भ्रांत हो जाते हैं! शांति के क्षणों में जो सलाह तुम दूसरे को दे सकते हो, अशांति के क्षणों में खुद के ही काम नहीं आती। अपना ही दीया बुझा लेते हो। अपनी ही सलाह के विपरीत चले जाते हो। अपनी ही समझ को फिर-फिर खंडित कर देते हो। आश्चर्यचकित करनेवाली बात है।
महावीर का वचन, "अहो! माया की गांठ कितनी सुदृढ़ है"--बड़ा सोचने जैसा है, बड़ा ध्यान करने जैसा है। महावीर दुखित होते हैं तुम्हारे लिए, करुणा से भरे हैं। पर हंसते भी हैं कि मूढ़ता बड़ी गहरी है!
तुमने कभी किसी व्यक्ति को सम्मोहित दशा में देखा? किसी को सम्मोहित
कर दिया जाता है, मूर्च्छित कर दिया जाता है। कठिन नहीं, बड़ा सरल है। कोई भी होने को राजी हो तो तुम भी कर सकते हो।
कभी छोटा प्रयोग करके देखना। तुम्हारा छोटा बच्चा भी तुम्हें सम्मोहित कर सकता है, तुम भर राजी हो जाना। वह तुमसे दोहराए जाए कि तुम गहरी तंद्रा में जा रहे हो, मूर्च्छा में जा रहे हो, बेहोश होते जा रहे हो-- तुम स्वीकार करते जाना। तुम इनकार मत करना कि नहीं। तुम यह मत कहना कि अरे, छोड़! तेरे कहने से कि हम सोये जा रहे हैं, कहीं हम सो जाएंगे? तुम प्रतिरोध मत करना। तुम सहयोग करना। तुम उसके सुझाव के साथ बहे जाना। वह जो कहे, माने चले जाना। थोड़ी देर में तुम पाओगे कि खो गये किसी बड़ी गहरी तंद्रा में। तब तुम्हारा छोटा-सा बच्चा भी अगर कहे कि यह लो, यह आम है मीठा, और प्याज दे दे हाथ में, तो तुम चखोगे; होगी प्याज, लेकिन तुम कहोगे, बड़ा स्वादिष्ट आम है! तुम्हारा सब स्वाद, प्याज की दुर्गंध, कुछ भी काम न आएगी। क्योंकि तंद्रा की गहराई में सुझाव उससे ज्यादा गहरे पहुंच गया जहां तक प्याज की गंध पहुंचती। तुम शांत भाव से स्वीकार कर लिये।

तो तुमने अगर सम्मोहन करनेवाले को, बाजार में मदारी को देखा हो तो तुम चकित हो जाओगे; वह जो कह देता है, लोग वैसा ही व्यवहार करने लगते हैं! खासा तगड़ा जवान है, चौड़ी छाती है, बलिष्ठ भुजाएं हैं, चलता है तो मंच हिलता है-- उसको वह बेहोश कर देता है और कहता है, "तुम एक कोमल तन्वंगी, एक सुंदर युवती हो गये। इस किनारे से मंच के उस किनारे तक चलो।" तुम चकित हो जाओगे, वह ऐसे चलने लगता है जैसे स्त्री चलती हो, जो कि अति कठिन है पुरुष को चलना। पुरुष के पास वैसे कूल्हे नहीं हैं। स्त्री के पेट में गर्भ के लिए जगह है। उस जगह के कारण उसकी अस्थियों का ढांचा अलग है। इसलिए उसकी चाल अलग है। लेकिन वह पुरुष चलने लगता है स्त्री की चाल से, जो कभी जीवन में न चला होगा। उसे कुर्सी के सामने बिठा देता है और कहता है, यह गाय खड़ी है, दूध लगाओ। वह कुर्सी के पास उकडू बैठकर--उसी आसन में जिसमें महावीर ज्ञान को उपलब्ध हुए थे, गो-दुग्ध-आसन में महावीर ज्ञान को उपलब्ध हुए थे, पता नहीं क्या करते थे, बैठे थे उकडू--दूध खींचने लगता है। बिल्कुल वैसे ही कृत्य करेगा जैसे गाय सामने खड़ी हो। तुम सब हंसोगे कि कैसा पागल बन रहा है यह। लेकिन सम्मोहन ने इतने गहरे डाल दिया है विचार कि इतने गहरे आंख का विचार भी नहीं जाता। आंख से तो उसको भी कुर्सी दिखायी पड़ती है। लेकिन जहां तक कुर्सी दिखायी पड़ती है उससे भी गहरा सम्मोहन का विचार पहुंच गया। तो अब कुर्सी के ऊपर गाय आरोपित हो जाती है।
सम्मोहन के सत्य को समझना जरूरी है, क्योंकि मनुष्य का जीवन करीब-करीब सम्मोहित जीवन है। जन्मों-जन्मों में तुमने अपने को ही आत्म सम्मोहित किया है। जन्मों-जन्मों में तुमने कहा है, स्त्री सुंदर है-- स्त्री सुंदर हो गयी है। जन्मों-जन्मों में तुमने दोहराया है, "स्त्री सुंदर है"--स्त्री सुंदर हो गयी है। यह तुम्हारा सम्मोहन है। बहुत बार तुम स्त्री की कुरूपता के करीब भी आ जाते हो। बहुत बार पुरुष की कुरूपता के करीब आ जाते हो। बहुत बार जीवन में सिवाय व्यर्थता के कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता है। लेकिन जन्मों-जन्मों का सम्मोहन है। तुमने ही अपने को समझाया है, जीवन बड़ा बहुमूल्य है। तुमने ही अपने को समझाया है कि जीने का बड़ा मूल्य है। किसी भी कीमत पर जीना है, जीये चले जाना है। जीवेषणा! नर्क में भी पड़े हों तो भी जीये चले जाना है; जीवन का जैसे अपने-आप में ही मूल्य है। कुछ भी न घटता हो, हाथ-पैर गल गये हों कोढ़ में, सड़क पर घिसटते होओ, तो भी कोई आशा, कोई बड़ी गहन आकांक्षा पकड़े रहती है कि जीये चले जाओ, जीये चले जाओ।
यह जो जीने की आकांक्षा है, इस पर पुनर्विचार, इस पर पुनर्ध्यान तुम्हें जगायेगा और तुम्हें बतायेगा कि यह तुमने ही अपने मन में धारणा बना ली, धारणा बना ली तो मजबूत हो गयी। अलग-अलग जातियों में, अलग-अलग समयों में, अलग-अलग धारणाएं महत्वपूर्ण हो गयी हैं। जो धारणा महत्वपूर्ण हो जाती है वही तुम्हारे जीवन का सत्य हो जाती है। जैसे अफ्रीका में, मध्य अफ्रीका में, सदियों से स्त्रियां बाल घोट लेती रही हैं। अब तुमने सिर-घुटी स्त्री में सौंदर्य कभी न देखा होगा। कोई स्त्री राजी न होगी सिर घोंटने को। हमने मान रखा है, बाल सुंदर हैं। अफ्रीका में उन्होंने मान रखा है कि घुटा हुआ सिर सुंदर है। करोगे क्या? वहां जिस स्त्री के बाल हों, उसको पति मिलना मुश्किल हो जाएगा; जैसे यहां घुटे-सिर स्त्री को पति मिलना मुश्किल हो जाए, लोग दूर से ही छिटकेंगे। घुटा हुआ सिर तो हमें मुर्दे की याद दिलाता है। इसलिए तो संन्यासी सिर घोंटते रहे। वे यह कहते हैं कि हम मर गये संसार से, अब तुम हमें मुर्दा समझो। न केवल उतने से ही अफ्रीका में सौंदर्य का बोध पूरा नहीं होता, तो आड़ी-तिरछी लकीरें, आग की सलाखों से शरीर पर, मुंह पर, आंख पर, सिर पर लोग सजा लेते हैं। तुम तो पाओगे, ये तो घाव बना लिये। लेकिन वह सौंदर्य है। उन्होंने सदियों तक इसी को सौंदर्य माना है, यही उनका सम्मोहन हो गया है।
जो तुम मान लो वही सत्य हो जाता है। इस जीवन के सत्य माने हुए सत्य हैं। दस रुपये का नोट कागज का टुकड़ा है, लेकिन मान्यता है कि दस का नोट है; सम्हालकर रख लेते हो। छोटे बच्चे को दस रुपये का नोट और एक पैसा, दोनों बताओ, वह पैसा चुन लेगा। अभी पैसे तक ही उसकी मान्यता है, दस रुपये का नोट वह जानता ही नहीं।

मैंने सुना है, अमरीका के एक समुद्र तट पर एक आदमी था, बूढ़ा हो गया था
और लोग उसके सामने रुपये लाते, पैसे लाते, लेकिन वह हमेशा पैसे चुन लेता। कभी-कभी सौ-सौ डालर का नोट उसके सामने रखते, कहते, चुन लो जो भी चुन लो दो हाथों में से। वह पैसे चुन लेता। ऐसा वर्षों से हो रहा था। और जो भी आते समुद्र-तट पर, यह प्रयोग करते, और हंसते हुए जाते। एक दिन एक आदमी ने उससे पूछा कि कोई बीस साल से मैं तुम्हें देख रहा हूं, तुम्हें अब तक अकल नहीं आई? जब लोग तुम्हारे सामने सौ डालर का नोट करते हैं और पैसे करते हैं, तुम पैसे चुन लेते हो। उसने कहा, अकल तो मुझे भी है। लेकिन जिस दिन भी मैंने नोट चुना, खेल बंद हुआ! यह खेल चल रहा है। पैसे चुन-चुनकर मैंने हजारों डालर चुन लिये धीरे-धीरे। कोई मैं मूर्ख, कोई पागल नहीं हूं। लेकिन उनको मजा आता है समझकर कि मैं पागल हूं, इसी बहाने वे पैसे मेरे सामने लाते हैं। छोटा बच्चा पैसा चुन लेगा। पैसे का उसके लिए मूल्य है। यह आदमी भी पैसा चुन रहा है, क्योंकि जानता है, जिस दिन इसने नोट चुना उसी दिन खेल बंद हुआ, फिर कोई नहीं लाएगा। चुन तो यह भी नोट ही रहा है, लेकिन तुमसे ज्यादा चालाक है। तुम समझे कि यह नासमझ, बुद्धू है। तुम मजा ले रहे हो इसके बुद्धूपन में, यह तुम्हारे बुद्धूपन में मजा ले रहा है।
मान्यताएं हैं। जो हम मान लेते हैं सुंदर, वह सुंदर हो जाता है। जो हम मान लेते हैं कुरूप, वह कुरूप हो जाता है। जो हम मान लेते हैं मूल्यवान, वह मूल्यवान हो जाता है।
अफ्रीका में हड्डियों का आभूषण बनाते हैं, तो मूल्यवान है।
एक युवक संन्यासी हिमालय से वापस लौटा और एक माला ले आया, किसी तिब्बतन लामा ने उसे दे दी। उसने मेरे हाथ में रखी, मैंने कहा, "पागल! तू यह कहां से उठा लाया?" वह तो किसी जानवर के दांतों की बनी माला थी, बड़ी गंदी और बेहूदी थी। पर उसने कहा, एक तिब्बती लामा ने मुझे दी है और उसने कहा कि यह बड़ी बहुमूल्य है। तिब्बत में माना जाता है कि बड़ी बहुमूल्य है। हड्डी की माला, हड्डी के गुरिये बना लेते हैं, उनकी माला। तुम्हें कोई हाथ में देगा तो तुम हाथ धोओगे, तिब्बती उसे सम्हालकर रखते हैं।
तुम्हारी भी मान्यताएं ऐसी ही हैं। लेकिन सदियों तक जो हम मानते हैं
वह संस्कार हो जाता है।
इसलिए महावीर कहते हैं, लोग जानते भी मालूम पड़ते हैं, फिर भी अनजाने
की तरह व्यवहार करते हैं, क्योंकि जानना ऊपर-ऊपर है। गहरे में वासना पड़ी है, विषय-भोग की आकांक्षा पड़ी है, जीवेषणा पड़ी है।
विचार करता है, चिंतन करता है, जानता मालूम होता है, फिर भी विरक्त नहीं होता। ऐसे विचार का क्या अर्थ जो विराग न ले आए! विचार की यह कसौटी है महावीर के लिए कि जिससे वैराग्य पैदा हो, वही विचार। यह उनका मापदंड है। इसी पर वे कसते हैं। वे कहते हैं, जिससे वैराग्य आ जाए, वही विचार। जिससे वैराग्य न आए, उसे क्या विचार कहना! वही तो अविचार है। पतंजलि भी यही कहते हैं, विवेक वही जिससे वैराग्य आ जाए। विचार वही जिससे वैराग्य आ जाए। फल से ही तो वृक्ष जाना जाता है--आम लगे तो आम, नीम के कड़वे फल लग जाएं तो नीम। वृक्ष से थोड़े ही वृक्ष जाना जाता है, फल से जाना जाता है! वैराग्य फल है विचार का।
तो तुम विचारवान हो या नहीं, तुम्हारे जीवन के वैराग्य से पता चलेगा। तुम लाख बैठकर ऊहापोह करते हो। तुम्हारे सिर में बड़ी दौड़-धूप मचती है विचारों की। तुम बड़े शास्त्र लिख सकते हो। इससे कुछ हल न होगा। असली प्रमाण यह होगा कि तुम्हारे जीवन में वैराग्य फला, वैराग्य के फल लगे, वैराग्य के मीठे फल आए? तुमने वैराग्य की फसल काटी? चीजों की व्यर्थता तुम्हें दिखायी पड़ी? तुम्हारा ज्ञान वासना से गहरा गया? इतना गहरा गया कि वासना उठनी असंभव हो गयी? नहीं कि तुम्हें नियंत्रण करना पड़ा। नियंत्रण तो सब थोथे हैं। अनुशासन तो सब ऊपरी हैं। बोध, इतना गहरा बोध कि बोध ही मुक्ति बन जाए, तो वैराग्य!
तो अब तुम सोचना कि विचार करने का अर्थ, तार्किक विचार करना नहीं है। विचार करने का अर्थ, सम्यक विचारणा है। विचार करने का अर्थ है, सत्य जैसा है वैसा ही जानने की क्षमता।

वासना और विचार के फर्क को समझो। वासना प्रक्षेपण है। तुम जो चाहते
हो वही तुम प्रक्षेपण कर लेते हो। तुम वह नहीं देखते, जो है--कृष्णमूर्ति जिसे कहते हैं, दैट व्हिच इज। जो है, उसे तुम नहीं देखते। तुम वही देख लेते हो, जो तुम देखना चाहते हो। तुम्हारी आंख केवल ग्राहक नहीं होती, प्रक्षेपक होती है।
एक रुपया पड़ा है रास्ते पर या कि एक हीरा पड़ा है रास्ते पर। हीरा एक पत्थर है, जैसे और पत्थर हैं। अगर आदमी न हो जमीन पर तो हीरे और दूसरे पत्थरों में कोई फर्क मूल्य का न होगा। हीरे भी वहीं पड़े रहेंगे, साधारण कंकड़ भी वहीं पड़े रहेंगे। हीरा यह न कह सकेगा कि "हटो कंकड़ो, मैं कोहिनूर हूं! रास्ता दो! सिंहासन बनाओ!" कोहिनूर भी साधारण पत्थर है, आदमी न हो तो। आदमी आया कि झंझट आयी। आदमी आया कि वह कहता है, हटो कंक.ड़ो! तुम तो शूद्र रहे, यह सम्राट है। यह है कोहिनूर! इसे सिंहासन पर बिठाओ!
आदमी मूल्य लाता है। कोहिनूर में कोई मूल्य नहीं है--हो नहीं सकता। सदियों तक पड़ा था जमीन में। न कंकड़-पत्थरों ने उसकी फिक्र की, न कीड़े- मकोड़ों ने फिक्र की, न सांप-बिच्छुओं ने कोई आदर दिया, न पशु-पक्षियों ने कोई चिंता ली--किसी ने कोई फिक्र न की। फिर आदमी के हाथ पड़ गया। जिस आदमी के हाथ पड़ा, वह भी सीधा-सादा आदमी था। वह उसे ले आया और उसने अपने बच्चों को खेलने को दे दिया। करता भी क्या, पत्थर ही था!
बड़ी प्यारी कहानी है, उस घर में एक संन्यासी मेहमान हुआ। और उस गरीब किसान को देखकर उसे बड़ी दया आ गयी। और उसने कहा कि "तू यहां कब तक इस गोलकुंडा की सूखी जमीन पर अपना श्रम गंवाता रहेगा? मैंने ऐसी जगहें देखी हैं कि जहां तू जरा-सी मेहनत कर कि हीरे-जवाहरात इकट्ठे कर ले। इतनी खोदा- खादी, इतनी मुश्किल--क्या पैदा कर पाता है? पेट भी तो नहीं भरता। बच्चे तेरे सूख रहे हैं।"
संन्यासी तो दूसरे दिन सुबह चला गया अपनी यात्रा पर, लेकिन किसान के
मन में वासना पकड़ गयी। सम्मोहित हो गया किसान। उसने अपना खेत-वेत सब बेच दिया। छोटी-सी नदी के किनारे उसका खेत था। वह उसने बेच दिया, मकान बेच दिया। निकल पड़ा हीरों की खोज में। कहते हैं, वर्षों भटकता रहा, कहीं कोई हीरे न मिले, घर आ गया। लेकिन इस बरसों के भटकाव में, हीरे क्या होते हैं, यह समझ आ गयी, यह सम्मोहन आ गया। कई जौहरियों को मिला। हीरे जिनके पास थे उनको मिला। हीरे देखे। जो था उसके पास पैसा, उसने इसी में गंवा दिया। घर लौटकर आया तो चकित हो गया, बच्चा उस हीरे से खेल रहा था जिसकी वह खोज में था। कोहिनूर! और तब रोया, छाती पीटी, क्योंकि खेत उसने बेच दिया। वही खेत बाद में गोलकुंडा की सबसे बड़ी खदान बना। हैदराबाद निजाम के महलों में जो हीरे हैं, वे सब उसी गरीब आदमी के खेत से निकले हैं। वह बेच दिया उसने। लेकिन तब तक सम्मोहन न था, मन पर कोई परत न थी--सीधा-सादा आदमी था, प्राकृतिक आदमी था, सभ्य न हुआ था, जौहरी पैदा न हुआ था।
हीरा भी कंकड़-पत्थर है। आदमी न हो तो हीरे का कोई विशेष सम्मान न होगा। जब तुम हीरे को विशेष सम्मान देते हो, राह पर पड़ा हीरा तुम्हें मिलता है, झपटकर उठा लेते हो, कंकड़ को तो नहीं उठाते--तब तुमने वह नहीं देखा जो था; तुमने वह देख लिया जो तुम देखना चाहते थे। तुमने अपनी वासना को आरोपित किया। तुम्हारी आंखें शुद्ध ग्राहक न रहीं। तुम्हारी आंखों ने हीरे के पर्दे पर कुछ फेंका, कोई वासना फेंकी। साधारण कंकड़-पत्थर भी वासना से अभिभूत हो जाए, महिमावान हो जाता है। जहां तुमने वासना रख दी, वहीं महिमा आ गयी।
यह संसार इतना महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है, क्योंकि तुमने जगह-जगह वासना को नियोजित कर दिया है। किसी ने धन में रख दी है वासना, तो धन बहुमूल्य हो गया है। तब वह अपने जीवन को गंवाये चला जाता है, लेकिन धन कमाये चला जाता है। वह मरेगा। तिजोड़ी यहीं रहेगी, भरकर छोड़ जाएगा। ठीक से भोजन भी न करेगा, कपड़े भी न पहनेगा। धन इकट्ठा करना है! वासना रख दी धन में तो जीवन से बहुमूल्य हो गया धन। तुमने अगर पद में वासना रख दी, पद बहुमूल्य हो गया।

तुम्हें कभी-कभी हैरानी नहीं होती देखकर! राजनीति के दीवाने हैं, पदों के पागल हैं, भीख मांगते फिरते हैंः सहारा दो, वोट दो, मत दो, साथ दो! हाथ जोड़ते फिरते हैं। कभी तुम चकित नहीं हुए, तुम सोचे नहीं कि क्या पागलपन चढ़ा है! और जो पद पर पहुंच जाते हैं उन्हें कुछ मिलता दिखायी नहीं पड़ता। गालियां मिलती हैं, निंदाएं मिलती हैं। सम्मान भी मिलता है, लेकिन सम्मान सब झूठा है; पद से उतरते ही खो जाता है। फिर कोई नहीं पूछता। फिर कोई विचार नहीं करता। फिर कोई नमस्कार भी करने नहीं आता। लेकिन इतना क्या पागलपन है? पद में वासना रख दी! तुमने नहीं रखी तो तुम्हें हंसी आएगी कि यह भी क्या पागलपन है!
देखा तुमने! कोई फुटबाल के पागल हैं, कोई क्रिकेट के पागल हैं। एक सज्जन को मैं जानता हूं, जब क्रिकेट चल रही हो तो वे रेडियो पर सारी दुनिया का सब काम छोड़कर बैठ जाते हैं। एक बार उनकी जो टीम जीतनी चाहिए थी, हार गयी तो उन्होंने रेडियो उठाकर पटक दिया। नाराजगी में! इतना क्रोध आ गया। दंगे हो जाते हैं। तुम्हारी टीम हार गयी, दंगे हो जाते हैं। लूट-पाट हो जाती है। मारे जाते हैं लोग। जो नहीं हैं उस जगत में, वह हंसेंगे कि मामला क्या है! आखिर यह हो क्या रहा है? फुटबाल है क्या? कुछ लोग गेंद को उधर ले जा रहे हैं, कुछ लोग इधर ला रहे हैं, कुछ लोग उधर ले जा रहे हैं--मगर है क्या? मामला क्या है? ऐसा इतना... और लाखों लोग देखने क्या चले आये हैं? क्या देख रहे हैं! और बड़े उत्तेजित हैं! पागल हुए जा रहे हैं।
हां, जो वासना के बाहर है उसे हंसी आएगी। जो वासना के भीतर है, वह मूर्च्छित है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात घर लौटा, नशे में धुत्त। बड़ी उसने चेष्टा की। चाबी तो हाथ में है, ताला न मिले। पत्नी ऊपर से देख रही है। उसने कहा, "बहुत हो चुका। अगर चाबी खो गयी हो तो बोलो, दूसरी चाबी फेंक दूं।" उसने कहा, "चाबी तो है, ताला खो गया है, दूसरा ताला फेंक दे।"
लेकिन कभी तुम अगर बेहोश रहे हो, तो तुम्हें पता चलेगा कि हंसने की बात नहीं है। ऐसी ही दशा हो जाती है। वह जो बेहोश है, वह किसी और ही दुनिया में है--अविचार की दुनिया में। जो तुम्हारी वासना नहीं है, वहां तुम विचारवान मालूम पड़ोगे। बूढ़े विचारवान हो जाते हैं, जवानों को समझाने लगते हैं कि यह सब पागलपन है, यह जवानी दो दिन का नशा है। यही उनके बूढ़ों ने भी उनसे कहा था, तब उन्होंने नहीं सुना था। कोई किसी की सुनता ही नहीं।
जब तक नशा है तब तक विचार पैदा नहीं होता; या विचार पैदा हो जाए तो नशा टूटने लगता है। समझने की बात यह है कि वासना में तुम वही देखते हो जो तुम देखना चाहते हो। तुमने कभी देखा, शतरंज के खिलाड़ी बैठे हैं! कुछ भी नहीं है, लकड़ी के, हड्डियों के या प्लास्टिक के हाथी-घोड़े, राजा-रानी हैं--और तलवारें चल गयी हैं शतरंज पर, लोग कट गये हैं। जो नहीं है खेल में, वह हंसता है। वह हंसता हुआ निकल जाएगा कि पागल हो गये हो, कहां हाथी-घोड़े कुछ भी नहीं है! जिसकी समझ गहरी है उसे तो असली हाथी-घोड़े में भी हाथी-घोड़े नहीं दिखायी पड़ते; असली राजा-रानी में भी राजा-रानी नहीं दिखायी पड़ते। मगर जहां वासना हो... ।
मैंने सुना है, एक बिल्ली इंग्लैंड गयी। सांस्कृतिक मिशन पर गयी। तो इंग्लैंड की रानी ने मिलने के लिए बुलाया। फिर वह लौटी, तो दिल्ली में बिल्लियों ने बड़ी सभा की। उन्होंने पूछा कि "अरे, कहो। क्या-क्या हुआ? रानी को मिलने गयी थी कि नहीं?"
उसने कहा, "गयी थी।"
"क्या देखा?"
उसने कहा कि बड़ा गजब देखा! कुर्सी के नीचे चूहा बैठा था।
रानी से क्या लेना-देना बिल्ली को! जो दिखा वह चूहा था। जहां वासना है, वहीं दर्शन है। तुम्हें रानी दिखायी पड़ती, चूहा दिखायी न पड़ता, क्योंकि तुम्हारी वासना बिल्ली की वासना नहीं है। रानी भी तुम्हें तभी दिखायी पड़ती जब तुम्हारी पद की वासना हो, राज्य की वासना हो; नहीं तो रानी में देखने जैसा क्या है! साधारण स्त्री है। चाहे कितना ही मोर-मुकुट बांधो, इससे क्या होता है! कितने ही बड़े सिंहासन पर बैठ जाओ, इससे क्या होता है!

अगर महावीर जैसा व्यक्ति जाए तो न तो चूहा दिखायी पड़े न रानी दिखायी पड़े। तुमको रानी दिखायी पड़ती, बिल्ली को चूहा दिखायी पड़ा। जो-जो वासना थी, वह दिखायी पड़ा। अगर कोई हीरों का पारखी हो, तो उसे रानी न दिखायी पड़ेगी, उसके मुकुट में लगे हीरे दिखायी पड़ेंगे। अगर कोई चमार चला जाए तो रानी के जूते दिखायी पड़ेंगे, और कुछ दिखायी न पड़ेगा। चमार को जूते ही दिखायी पड़ते हैं; वह जूते ही देखता रहा जिंदगीभर। वहीं उसकी वासना लिप्त है। राह पर देखता रहता है लोगों के जूते। जूते को ही देखकर वह आदमियों की परख करता है। जूते की कहानी पढ़ लेता है तो आदमी की कथा प्रगट हो जाती है। जूते में उसे सारी आदमी की आत्मकथा लिखी मालूम पड़ती है। जूते पर चमक है तो वह जानता है, जेब गर्म है। जूता मुर्झाया, पिटा-पिटाया है तो वह जानता है कि आगे बढ़ो, यहां लाने की जरूरत नहीं है।
वासना का अर्थ हैः हम अपने सम्मोहन के अनुसार जगत को देखते हैं। विचार का अर्थ हैः सम्मोहन को हटाकर देखते हैं, जो है उसे वैसा ही देखते हैं जैसा है। आम को आम देखते हैं, नीम को नीम देखते हैं। जहर को जहर देखते हैं, अमृत को अमृत देखते हैं; अपनी वासना डालकर, कुछ और नहीं देखते।
तो महावीर कहते हैं, लगते हैं लोग सोच रहे, विचार रहे, फिर भी विरक्त नहीं हो पाते। कहीं कुछ धोखा है। क्योंकि अगर कोई जीवन को ठीक से देख ले तो विरक्त होगा ही। यहां कुछ भी तो नहीं है। यहां उलझाने योग्य कुछ भी तो नहीं है। जो तुम्हें अटका ले, ऐसा कुछ भी तो नहीं है।
दोरंगियां यह जमाने की जीते जी हैं सब
कि मुर्दों को न बदलते हुए कफन देखा।
ये सब रंगरेलियां, ये बदलाहटें, ये फैशनें... ।
दोरंगियां यह जमाने की जीते जी हैं सब
कि मुर्दों को न बदलते हुए कफन देखा।
जो जीवन को बहुत गौर से देखेगा, दोरंगियों को हटाकर गहराई में देखेगा,
वह पायेगाः यहां सब मरा ही हुआ है, समय की बात है।
ऋषियों ने कहा है, क्षरति इति शरीरम्। जो क्षीण होता जाता उसी का नाम शरीर। क्षरति इति शरीरम्। जो प्रतिपल क्षीण होता जाता है, जीर्ण होता जाता, वही शरीर है। यह घर नहीं है। जो खंडहर होता जाता है, वही शरीर है। इसीलिए शरीर नाम दिया उसे, क्योंकि वह क्षीण होता है, जीर्ण होता है, सड़ता है; मरा ही है, समय की बात है; क्यू में खड़ा ही है, जब नंबर आ जाएगा गिर जाएगा।
अगर शरीर को कोई गौर से देखे तो क्या पाएगा! मृत्यु को रूप धरते देखेगा वहां। मृत्यु को गर्भ में पाएगा वहां। रोएं-रोएं में शरीर के मृत्यु को छिपा पाएगा। प्रगट होने की प्रतीक्षा चल रही है। आज नहीं कल प्रगट हो जाएगी। जो शरीर को गौर से देखेगा, वह मृत्यु को देख लेगा। फिर तुम शरीर से बंधोगे कैसे, आसक्त कैसे होओगे? मुर्दे से तो कोई बंधता नहीं। मुर्दे से तो कोई संबंध नहीं रखता।
मैंने सुना है, एक मुसलमान फकीर के पास एक युवक आता था। वह युवक कहता
था कि मुझे भी संन्यास की यात्रा करनी है। मुझे भी सूफियों के रंग-ढंग मन को भाते हैं। लेकिन क्या करूं, पत्नी है और उसका बड़ा प्रेम है! क्या करूं बच्चे हैं, और उनका मुझसे बड़ा लगाव है। मेरे बिना वे न जी सकेंगे। मैं सच कहता हूं, वे मर जाएंगे। मैं पत्नी से संन्यास की बात भी करता हूं तो वह कहती है, फांसी लगा लूंगी।
उस फकीर ने कहा, "तू ऐसा कर... । कल सुबह मैं आता हूं। तू रातभर, एक छोटा-
सा तुझे प्रयोग देता हूं, इसका अभ्यास कर ले और सुबह उठकर एकदम गिर पड़ना।" प्रयोग उसने दिया सांस को साधने का कि इसका रातभर अभ्यास कर ले, सुबह तू सांस साध कर पड़ जाना। लोग समझेंगे, मर गया। फिर बाकी मैं समझ लूंगा।
उसने कहा, "चलो! क्या हर्ज है... ? देख लें करके। क्या होगा इससे?"
उसने कहा कि तुझे दिखायी पड़ जाएगा, कौन-कौन तेरे साथ मरता है। पत्नी मरती है, बच्चे मरते, पिता मरते, मां मरती, भाई मरते, मित्र मरते--कौन-कौन मरता है, पता चल जाएगा। एक दस मिनट तक सांस साध कर पड़े रहना है, बस। सब

जाहिर हो जाएगा। तू मौजूद रहेगा, तू देख लेना, फिर दिल खोलकर सांस ले लेना, फिर तुझे जो करना हो कर लेना।
वह मर गया सुबह। सांस साध ली। पत्नी छाती पीटने लगी, बच्चे रोने लगे, मां-बाप चिल्लाने-चीखने लगे, पड़ोसी इकट्ठे हो गये। वह फकीर भी आ गया इसी भीड़ में भीतर। फकीर को देखकर परिवार के लोगों ने कहा कि आपकी बड़ी कृपा, इस मौके पर आ गये। परमात्मा से प्रार्थना करो। हम तो सब मर जाएंगे! बचा लो किसी तरह! यही हम सबके सहारे थे।
फकीर ने कहा, घबड़ाओ मत! यह बच सकता है। लेकिन मौत जब आ गयी तो किसी को जाना पड़ेगा। तो तुम में से जो भी जाने को राजी हो, वह हाथ उठा दे। वह चला जाएगा, यह बच जाएगा। इसमें देर नहीं है, जल्दी करो।
एक-एक से पूछा। पिता से पूछा। पिता ने कहा, अभी तो बहुत मुश्किल है। मेरे और भी बच्चे हैं। कोई यह एक ही मेरा बेटा नहीं है। उनमें कई अभी अविवाहित हैं। कोई अभी स्कूल में पढ़ रहा है। मेरा होना तो बहुत जरूरी है, कैसे जा सकता हूं!
मां ने भी कुछ बहाना बताया। बेटों ने भी कहा कि हमने तो अभी जीवन देखा
ही नहीं। पत्नी से पूछा, पत्नी के आंसू एकदम रुक गये। उसने कहा, अब ये तो मर ही गये, और हम किसी तरह चला लेंगे। अब आप झंझट न करो और।
फकीर ने कहा, अब उठ! तो वह आदमी आंख खोलकर उठ आया। उसने कहा, "अब तेरा क्या इरादा है?" उसने कहा, अब क्या इरादा है, आपके साथ चलता हूं। ये तो मर ही गये। अब ये लोग चला लेंगे! देख लिया राज। समझ गये, सब बातों की बात थी। कहने की बातें थीं।
कौन किसके बिना रुकता है! कौन कब रुका है! कौन किसको रोक सका है!
दृष्टि आ जाए तो वैराग्य उत्पन्न होता है। उस घड़ी उस युवक ने देखा। इसके पहले सोचा था बहुत। उस घड़ी दर्शन हुआ। इसके पहले विचार बहुत किया था, लेकिन वे विचार विचार न थे, विवेक न था; क्योंकि उनसे वैराग्य न फलित होता था, उलटा राग फलित होता था।
तो कसौटी हैः जिसमें राग लगे, वह विचार नहीं; वह भीड़-भाड़ है विचारों की। थोथा है सब, असार है, राख है। उसमें अंगार नहीं है। जिसमें वैराग्य की लपट उठे--अंगार है, जीवन है, विचार है, विवेक है।
जिंदगी एक हादिसा है और कैसा हादिसा
मौत से भी खत्म जिसका सिलसिला होता नहीं।
यह जिसे हम जिंदगी कहते हैं, यह हमारी जीवेषणा है। जिसे हम जिंदगी कहते हैं, यह हमारे जन्मों-जन्मों का संकलित सम्मोहन है।
जिंदगी एक हादिसा है और कैसा हादिसा
मौत से भी खत्म जिसका सिलसिला होता नहीं।
मौत आती है, जाती है, लेकिन सम्मोहन चलता रहता है। जीवेषणा को मौत नहीं मार पाती। शरीर छूट जाता है, हम नया शरीर ग्रहण कर लेते हैं। तुम शरीर में इसलिए नहीं हो कि शरीर ने तुम्हें चुना है; तुम शरीर में इसलिए हो कि तुमने शरीर को चुना है। तुम दुख में इसलिए नहीं हो कि दुख तुम पर आया है; तुम दुख में इसलिए हो कि तुमने दुख को बुलाया है।
महावीर का मौलिक सूत्र है कि तुम्हारा उत्तरदायित्व आत्यंतिक है। न कोई भाग्य, न कोई भगवान--तुम ही जिम्मेवार हो। सार-सूत्र महावीर का यह है कि तुम अपनी बागडोर अपने हाथ में ले लो। दुख है तो तुम कारण हो। अंधेरा है तो तुमने ही दीया छिपाकर रखा है। अगर कांटों में चल रहे हो तो तुमने ही कांटे बोए हैं।
महावीर ने मनुष्य को सीधा मनुष्य के ऊपर फेंक दिया; कोई सहारा न दिया, कोई सांत्वना न दी; नहीं कहा कि भगवान है, खेल खेल रहा है, उसका खेल है, घबड़ाओ मत, प्रार्थना करो, उसका सहारा मिलेगा। कोई सांत्वना न दी।
महावीर का धर्म सांत्वना-रहित है। अति कठोर मालूम पड़ता है। लेकिन उतनी कठोरता हो तो ही कोई घर वापिस लौटता है।
कैदे-हस्ती की भी तारीक बदल दूं तो सही
खेल समझे हो मेरा दाखिले-जिंदा होना।

कारागृह में आ गया हूं तो अगर कारागृह का ढंग ही न बदल दूं तो मेरे आने
का अर्थ ही नहीं है।
कैदे-हस्ती की भी तारीक बदल दूं तो सही! यह जो जिंदगी और जिंदगी का जाल
है और जिंदगी के बंधन हैं, इनका भी इतिहास बदल दूं तो सही। खेल समझे हो मेरा दाखिले-जिंदा होना। एक बार कारागृह में आ गया, तो अब कारागृह को भी स्वतंत्रता बनाकर छोडूंगा।
ऐसा महावीर का भाव है। और महावीर ने ऐसा किया। कोई सहारा न लिया, कोई भीख न मांगी। महावीर जैसा अकेला कोई भी जीवन के पथ पर नहीं चला है। कोई न कोई सहारा आदमी खोज लेता है। सहारे के सहारे संसार आ जाता है। सहारे के सहारे फिर सब उतर आता है। एक के बाद एक सिलसिला लग जाता है।
फक्र को मेरे वैर है जज्बए-इकसार से
जिंसे-जुनूं भी हो तो मैं भीख न लूं बहार से।
स्वाभिमान के विपरीत है। अगर प्रेमियों का पागलपन भी बहार से मिलता हो, अगर भक्तों का भी पागलपन बहार से मिलता हो, तो भी मैं भीख न लूं।
स्वाभिमान के विपरीत है।
महावीर कहते हैं, भीख मत लेना। क्योंकि भीख में जो मिलेगा वह भीख ही होगी, स्वामित्व न मिलेगा।
इसलिए महावीर के विचार में प्रार्थना की कोई जगह नहीं है, विचार काफी है। विचार का ही सम्यक रूप ध्यान बन जाता है। ध्यान का सम्यक रूप समाधि बन जाता है। समाधि यानी समाधान! तुम जीवन को ठीक से देख लो, वहीं मुक्ति है। "अहो! माया की गांठ कितनी सुदृढ़ होती है!" सब लोग जानते हुए मालूम पड़ते हैं। सब लोग सोचते हुए मालूम पड़ते हैं। यहां बुद्धिहीन खोजना तो बहुत मुश्किल है, सभी बुद्धिमान हैं। फिर भी जब माया पकड़ती है तो सभी उसकी पकड़ में आ जाते हैं, गांठ बड़ी सुद.ृढ मालूम होती है। और गांठ कहीं इतने गहरे है! तुम जहां हो अभी वहां से कहीं ज्यादा गहरी तुम्हारी गांठ है। जब तुम गांठ से ज्यादा गहरे हो जाओगे तभी गांठ खुल जाएगी। इसलिए असली सवाल भीतर यात्रा का है। अपनी गहराई से गहराई खोजनी है। तुम जिस चीज के ज्यादा गहरे उतर गये, उससे ही मुक्त हो गये।
"जन्म दुख है, बुढ़ापा दुख है, रोग दुख है, मृत्यु दुख है। अहो! संसार दुख ही है, जिसमें जीव क्लेश पा रहे हैं।"
"जन्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा या मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ की संति जंतवो।।"
आश्चर्य है, महावीर कहते हैं, सब दुख है, फिर भी लोग पकड़े हैं। दुख ही दुख है, फिर भी लोग छोड़ते नहीं। मूर्च्छा बड़ी गहरी होगी। इसलिए कहते हैं, आश्चर्य है। लोग अपने ही पैरों से कारागृह में चले आ रहे हैं, आश्चर्य! लोग अपने ही हाथों से अपनी जंजीरें ढाल रहे हैं, आश्चर्य! और लोग रोते भी हैं, चिल्लाते भी हैं कि मुक्त होना है, कि आनंदित होना है। और जो करते हैं, वह बिल्कुल विपरीत है। जो करते हैं उससे बंधन निर्मित होता है।
तो लोग जो कहते हैं, उस पर मत ध्यान देना; लोग जो करते हैं, उस पर ध्यान देना। लोग क्या कहते हैं, यह तो छोड़ ही देना। अकसर तो ऐसा है, लोग उलटा ही कहते हैं। उसका भी कारण समझ लेना चाहिए। लोग उलटा कहते हैं, क्योंकि उस तरह से वे अपने को संतोष बंधाए रखते हैं। अपने हाथों से तो वे बनाते जाते हैं कारागृह और अपनी वाणी से गीत गाते रहते हैं स्वतंत्रता का। यह स्वतंत्रता कारागृह के मिटाने के काम नहीं आती। यह स्वतंत्रता की बातचीत कारागृह को बनाने में सुविधापूर्ण है। कारागृह भी बनता जाता है, स्वतंत्रता की बात भी चलती चली जाती है।
तुम देखते हो, दुनिया में सब तरफ ऐसा होता है! राजनीतिज्ञ शांति की बात करते हैं, युद्ध की तैयारी करते हैं। सारे राजनीतिज्ञ कबूतर उड़ाते हैं शांति के--शांति-कपोत! और हर राज्य अपनी संपत्ति का साठ, सत्तर, अस्सी प्रतिशत युद्ध की तैयारी पर खर्च करता है। कबूतर भी उड़ाये चले जाते हैं, अणु-बम भी बनाये चले जाते हैं। किसको सच मानें? यह जो शांति की चर्चा है, यह युद्ध को करने में सहायता देती है। यह विपरीत नहीं है। अगर यह विपरीत

होती और ये कबूतर सच्चे होते, तो कोई कारण न था, लोग क्यों युद्ध के लिए तैयारियां करें।
शांति की तुमने कहीं कोई तैयारी होते देखी? कोई शांति की कहीं तैयारी नहीं होती। शांति की लोग सिर्फ बात करते हैं, शांति चाहिए! युद्ध की तैयारी करते हैं। ध्यान रखना, जिसकी तैयारी करते हैं वही चाहते हैं। अगर शांति चाहते होते तो कुछ शांति पर भी खर्च करते, शांति की सेनाएं खड़ी करते, लोगों को शांति का प्रशिक्षण देते। लेकिन वैसा तो कहीं कुछ नहीं होता। सब प्रशिक्षण युद्ध का है। सब प्रशिक्षण लड़ने, मरने, मारने का है। और कौन कितना कुशल है मारने में, उसकी दौड़ है। अमरीका है, रूस है, चीन है--नीचे तो अणु-बम के ढेर लगाये चले जाते हैं, ऊपर से शांति-कांफ्रेंस करते चले जाते हैं। वह जो शांति-कांफ्रेंस है, वह उस ढेर को छुपाने की तरकीब है; वह तंबू है शांति का, जिसके अंदर बम छिप जाएंगे और पता भी न चलेगा। आदमी ऐसा धोखेबाज है! और ऐसा राज्यों के संबंध में ही नहीं है, सभी के संबंध में यही है।
तुमने कभी ख्याल किया, तुम जो कहते हो उससे तुम्हारा जीवन बिल्कुल विपरीत है! और अगर ऐसा ही चलते जाना है तो कृपा करो, कहना बंद करो। क्योंकि कहने से क्या सार है? क्यों उतनी शक्ति व्यय करते हो? व्यर्थ कबूतर मत उड़ाओ। उतना पैसा और बम बनाने में लगा दो! कम से कम सफाई तो हो, सचाई तो हो, सीधी-सीधी बात तो हो।
अब तक जितने युद्ध हुए दुनिया में, थोड़े नहीं हुए, कोई तीन हजार साल में पांच हजार युद्ध हुए हैं। जितने युद्ध हुए वे सभी युद्ध इसीलिए हुए कि दुनिया में शांति होनी चाहिए। इससे तो बेहतर है, शांति की बकवास बंद करो। अगर शांति के लिए पांच हजार युद्ध करने पड़े तीन हजार सालों में तो छोड़ो यह शांति काम की नहीं है, यह तो बड़ी खतरनाक है, बड़ी महंगी है। सारी दुनिया के राज्य अपने युद्ध के इंतजाम का नाम--देखा, "सुरक्षा-मंत्रालय", "डिफेंस" कहते हैं! सब अटैक करते हैं और सब डिफेंस कहते हैं। सब आक्रामक हैं, लेकिन किसी राज्य का... हिटलर का भी जो युद्ध-मंत्रालय था वह सुरक्षा... । कहते हैं, हम अपनी रक्षा के लिए तैयारियां कर रहे हैं। बड़े मजे की बात है, अगर सभी रक्षा के लिए तैयारियां कर रहे हैं तो हमला कौन कर रहा है? डर किसका है फिर? सभी सुरक्षा चाहते हैं तो फिर तो भय का कोई कारण नहीं है।
लेकिन झूठी हैं ये बातें। सुरक्षा ऊपर-ऊपर है, बातचीत है, दिखावा है।
और इसलिए आज तक यह भी तय नहीं हो पाया कि किसने कब आक्रमण किया। किसने किया? हिटलर कहता है, हमने नहीं किया; दूसरों ने किया। दूसरे कहते हैं, हिटलर ने किया। जो जीत जाता है अंततः वह इतिहास लिखता है। इसलिए वह इतिहास में लिख देता है कि दूसरे ने किया। जो हार जाता है, वह तो इतिहास लिख नहीं सकता। इसलिए बड़ा मजा चलता है। पक्का नहीं है कि जो हार गया है, हो सकता है सुरक्षा ही कर रहा हो, जो जीत गया वही आक्रामक हो। आक्रामक बड़े कुशल हैं, आक्रमण करने के पहले वे ऐसा इंतजाम करते हैं कि ऐसा प्रतीत हो कि वे सुरक्षा कर रहे हैं।
और ऐसा समाज, राष्ट्र और व्यक्ति, सभी के संबंध में सही है। तुम अपनी तरफ सोचना। तुम जरा अपने दांव-पेंच पहचानना। तुम जरा अपनी स्ट्रेटेजि, वह जो तुम्हारी कूटनीति है भीतर, उसको देखना।
तुम अपने बेटे को मारते हो, तुम कहते हो, "तेरे ही लिए, तेरे ही हित के लिए... ।" यही तो राजनीति है।
क्रोध आया था, बेटे ने घड़ी तोड़ दी; या तुमने चाहा था बेटा चुप बैठे और
वह चुप नहीं बैठा; या तुमने चाहा था वह सिनेमा न जाए और चला गया--चोट तुम्हारे अहंकार को लगती है। लेकिन तुम कहते हो, तेरे सुधार के लिए। अब यह बड़े मजे की बात है, हर बाप सुधार रहा है, लेकिन कोई बेटा सुधरता नहीं मालूम होता। तो जरूर कहीं सुधार में कुछ भूल है, नहीं तो कुछ तो सुधरते। इतना बड़ा आयोजन चलता है!
नहीं, कोई किसी को सुधारने में उत्सुक नहीं है; लोग अपनी चलाने में उत्सुक हैं। अपना अहंकार! बाप का भी अहंकार है। उसकी आज्ञा तुमने तोड़ी, यह

बरदाश्त के बाहर है। सिनेमा गये, यह बड़ा सवाल नहीं है; यह तो बहाना है, सिनेमा तो वे खुद भी जाते हैं।
एक सज्जन को मैं जानता हूं। अपने बेटे को मना किए थे, क्योंकि कोई गंदी फिल्म आयी थी, कोई अमरीकन। बेटे को मना किए थे, लेकिन बेटे को मना किया तो बेटा भी उत्सुक हुआ। बेटा पहुंच गया। घर लौटकर बहुत नाराज हुए, नाराज हुए क्योंकि वे भी खुद वहां थे। बड़ा कष्ट जो हुआ वह यह हुआ कि बेटे ने उनको भी वहां पा लिया। उनके बेटे से मैंने पूछा, फिर कहा क्या उन्होंने? बेटा हंसने लगा। कहने लगा, "कहते क्या! कहने लगे, मैं यही देखने आया था कि तुम आये तो नहीं हो!" इसके लिए तीन घंटे फिल्म में बैठे रहे!
पर ऐसा ही चलता है। तुम अपने को देखना शुरू करो। जागना शुरू करो। लंबी
और कठिन यात्रा है। सहारे और सांत्वनाओं से काम न चलेगा। पूजा- प्रार्थनाओं से काम न चलेगा। एक-एक इंच अपने जीवन को रूपांतरण करना होगा। एक प्रामाणिकता चाहिए।
"जन्म दुख है, बुढ़ापा दुख है, रोग दुख है, मृत्यु दुख है!" और है क्या जीवन में? यहां विफलता मिले तो दुख है, यहां सफलता मिलती है तो भी दुख लाती है। यहां गरीब रह जाओ तो दुख है, यहां अमीर हो जाओ तो भी सुख नहीं आता। यहां हार जाओ तो, तो दुख है ही, यहां जीत जाओ तो भी हाथ में कुछ लगता नहीं। यहां हारे और जीते सब बराबर हैं; सफल और असफल सब बराबर हैं।
"अहो! संसार दुख है, जिसमें जीव क्लेश पा रहा है। अहो दुक्खो हु संसारो।" महावीर कहते हैं, आश्चर्य! चकित होकर कहते हैं, आश्चर्य! इतना दुख है, फिर भी लोग उसमें डुबकी लगाये जा रहे हैं। इस दुख की धारा को गंगा समझा है! डुबकी लगा रहे हैं!
यहां दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलो यहां से चलें और उम्र भर के लिए।
यहां तो दरख्तों का जो साया है उसके पास भी धूप ही खड़ी है। यहां तो साये में भी धूप लगती है। यहां तो सुख के साथ भी दुख ही खड़ा है। यहां तो शांति के आसपास भी अशांति ने ही घेरा बांधा है।
यहां दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलो यहां से चलें और उम्र भर के लिए।
जो जीवन को देखेंगे, जो जरा आंख खोलकर जीवन को देखेंगे, जो विचार करके जीवन को देखेंगे, जो विवेक से जीवन को देखेंगे, वे कहेंगेः "चलो। चलो यहां से चलें और उम्र भर के लिए, सदा के लिए।"
यही वैराग्य है।
मुझे जिंदगी की दुआ देनेवाले
हंसी आ रही है तेरी सादगी पर।
लोग जिंदगी की दुआ देते हैं कि खूब जीयो, जुग-जुग जीयो! जरा पूछो भी तो किसलिए दुआ दे रहे हो? क्या पाया तुमने जुग-जुग जीकर? जुग-जुग जीयो यानी जुग-जुग दुख भोगो। सीधी कहो न बात, काहे छिपाते हो?
मैं विश्वविद्यालय से घर लौटा, तो मेरी मां, मेरे पिता, परिवार के लोग बड़े चिंतित थेः शादी! शादी! शादी! डरते भी थे मुझसे पूछने में, क्योंकि वे जानते रहे सदा से कि मैं "हां" कह दूं तो "हां" और "ना" कह दूं तो "ना"--फिर "हां" करना मुश्किल है। तो पूछते नहीं थे सीधा; यहां-वहां से खबर भेजते-- कोई रिश्तेदार, कोई मित्र। तो मेरे पिता के एक मित्र थे, वकील थे। उन्होंने सोचा कि वकील आदमी है, यही ठीक रहेगा। उनको कहा कि तुम ही कुछ समझाओ। वकील ने कहा, "समझा लेंगे। बड़े मुकदमे जीते हैं, यह भी कोई बात है।" वकील तैयार होकर आए। वे मुझसे विवाद करने लगे कि शादी के क्या-क्या लाभ हैं। मैंने सब सुना। मैंने कहा, "सुनो। अगर तुमने सिद्ध कर दिया कि शादी में लाभ हैं तो मैं शादी कर लूंगा; अगर तुम सिद्ध न कर पाए तो तुम्हारी तरफ से दांव पर क्या है? तुम छोड़ोगे पत्नी-बच्चे, अगर सिद्ध हो गया कि शादी ठीक नहीं... ? एकतरफा तो मत करो।"
वे थोड़े चौंके। आदमी ईमानदार थे। उन्होंने कहा, यह मैंने सोचा न था कि मेरा भी कुछ दांव पर लगेगा। तो फिर मुझे सोचने दो। मैंने कहा कि तुम सोच कर ही आना। अगर मैं हार गया तो उसी वक्त तैयार हो जाऊंगा, फिर यह भी फिक्र न

करूंगा, किससे शादी करते हो। कर देना किसी से भी। लेकिन अगर नहीं हरा पाए तो फिर घर लौटकर नहीं जाने दूंगा। छुट्टी लेकर ही आना।
वे कभी आए ही नहीं। रास्ते पर मुझे मिलते थे, इधर-उधर बचकर निकलते थे। दो-चार बार मैं उनके घर भी गया तो वे कहने लगे, "क्यों मेरे पीछे पड़े हो?" मैंने कहा, "मैं क्यों पीछे पड़ा हूं। तुम ही मेरे पीछे पड़े थे!"
एक बार गया तो पत्नी को बाहर भेज दिया। पत्नी ने कहा कि "आप किसलिए आते
हो बार-बार?" मैंने कहा, "तुमको भी पता होना चाहिए, तभी तुम नाराज मालूम होती हो। वह एक दांव की बात है।"
कहने लगी कि हमारे छोटे बच्चे हैं, क्यों फिजूल के... ? क्योंकि जब से तुमसे मिलना उनका हुआ है, वे बड़े चिंतित रहते हैं और उदास रहने लगे हैं। मेरी मां ने मुझे कहा, तो मैंने कहा, "तू ऐसा कर, पंद्रह दिन तू भी सोच ले। अगर तुझे तेरे जीवन में और तेरी शादी से और तेरे बच्चों से कोई सुख मिला हो --ऐसा सुख जो तू चाहे कि तेरे बेटे को भी मिलना चाहिए, अगर ऐसा कुछ तूने पाया हो, जो कि तेरे मन में दुख रहेगा कि तेरे बेटे को न मिला--तो पंद्रह दिन बाद मुझे कह देना, मैं शादी कर लूंगा। और अगर ऐसा कुछ भी न पाया हो, दुख ही पाया हो तो इतनी तो कृपा कर कि मुझे चेता दे, मुझे बता दे कि दुख ही पाया है, तो किसी भूल-चूक से मैं न उलझ जाऊं।"
मेरी मां, सीधी-सादी! उसने पंद्रह दिन बाद कहा कि यह झंझट की बात है। तुम्हें करना हो करो, न करना हो न करो। और हमें सोचने को मत कहो, क्योंकि सोचने से और घबड़ाहट होती है, सच में पाया तो कुछ भी नहीं। मैं तुमसे न कह सकूंगी कि तुम शादी करो, क्योंकि ऐसा कुछ भी मुझे नहीं मिला है।
जीवन में हम अगर गौर से देखें तो हम बहुत चकित होंगे। दुख में लोग जी रहे हैं, हम दुख में और लोगों को भी धकेले चले जाते हैं।
मुझे जिंदगी की दुआ देनेवाले
हंसी आ रही है तेरी सादगी पर!
जिंदगी की लंबाई का कोई मूल्य नहीं है। जिंदगी के विस्तार का कोई मूल्य नहीं है। जिंदगी की गहराई का कुछ मूल्य है। वासना से जिंदगी लंबी होती है, विचार से जिंदगी गहरी होती है। लंबे होने से संसार मिलता है, गहरे होने से स्वयं की सत्ता मिलती है, भगवत्ता मिलती है।
"हा! खेद है कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मैं मूढ़मति भयानक तथा घोर भव वन में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।"
जब भी कोई जागा है, जब भी कोई महावीर जैसी जिनावस्था में पहुंचा है, तो उसे यह लगा ही है कि हा! खेद! अब तक क्यों न जागा! इतना समय कैसे सोया रहा! कैसे-कैसे दुखस्वप्नों में दबा रहा, फिर भी आंख न खोली!
"हा! खेद है कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मैं मूढ़मति भयानक तथा घोर भव वन में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।"
यहीं श्रमण और ब्राह्मण-संस्कृति के बुनियादी भेद साफ होते हैं। ब्राह्मण-संस्कृति कहती है, राम अवतरित हुए, कृष्ण अवतरित हुए। वे भगवान के अवतार हैं। ऊपर से नीचे आये। वे मनुष्य नहीं हैं, वे भगवान हैं। महावीर ऊपर से नीचे नहीं आए, नीचे से ऊपर आए। वे उसी जगह से गुजरे जहां
से तुम गुजर रहे हो। उन्होंने वही दुख भोगे जो तुमने भोगे। उन्होंने वही पीड़ाएं जानीं जो तुमने जानी हैं। तुम उनके लिए अपरिचित नहीं हो। तुम्हारा जो वर्तमान है वह उनका अतीत था। और उनका जो वर्तमान है, वह तुम्हारा भविष्य है। उनकी कड़ी तुमसे जुड़ी है।
इसलिए अगर जैन तीर्थंकरों की भाषा मनुष्य के हृदय के बहुत करीब है और जैन तीर्थंर्करों और मनुष्यों के बीच कोई खाई-खंदक नहीं है, तो कारण साफ है। जैन तीर्थंकर उसी जगह से आए जहां से तुम गुजर रहे हो। तुम्हारे दुख उन्होंने जाने हैं। तुम्हारे कष्ट उन्होंने जाने हैं। तुम्हारा अनुभव उनका अनुभव भी है। इसलिए जब कृष्ण कुछ कहते हैं तो अर्जुन और कृष्ण की बातचीत में बड़ा अंतराल है। ऐसा लगता है, कृष्ण किसी और ही जगत की कह रहे हैं, अर्जुन किसी और ही जगत की कह रहा है--जैसे संवाद हो ही नहीं पाता। राम का महिमापूर्ण चरित्र! लेकिन उसमें महिमा कुछ भी नहीं है, क्योंकि वह ईश्वर का चरित्र है।

लेकिन महावीर का चरित्र महिमापूर्ण है, क्योंकि वह मनुष्य का चरित्र है। राम भगवान से मनुष्य हो रहे हैं। उन्हें मनुष्यों का क्या पता, कुछ भी पता नहीं है। महावीर मनुष्य से भगवान हुए हैं; उन्हें मनुष्यों का रत्ती- रत्ती पता है; उसका दुख, उसकी पीड़ा, उसका संकट, उसकी मूढ़ता, अज्ञान, भ्रांतियां, माया-मोह, उसका भटकना उन्हें पूरी तरह पता है।
इसलिए महावीर के वचनों की एक वैज्ञानिकता है। कृष्ण के वचनों में एक दार्शनिकता है। बड़ी ऊंची हवा ही बात है, आकाश की बात है। लेकिन महावीर के पैर जमीन में अड़े हैं; उनका सिर आकाश में उठा है, लेकिन पैर उनके जमीन पर हैं। बड़ा यथार्थ, बड़ा अनुभव-पूरित, अनुभव-गम्य मार्ग है। इसलिए महावीर के वचनों में रहस्यवाद नहीं है। वे कोई मिस्टिक नहीं हैं। वे किसी धुंधले लोक की, किसी आकाश की बात नहीं कर रहे हैं, वे तुम्हारी बात कर रहे हैं। और जब वे तुमसे बात कर रहे हैं, तो उनके मन में ऐसा भाव नहीं है कि तुम क्षुद्र... । वे जानते हैं कि वे भी यही थे। वे चकित होते हैं तुम पर, लेकिन तुम पर क्रोधित नहीं हैं। यह समझने जैसी बात है।
उनके मन में तुम्हारी निंदा नहीं है, करुणा है, गहन करुणा है। आश्चर्य
से भरे हैं, लेकिन उस आश्चर्य में तुम पर ही आश्चर्य नहीं है, स्वयं पर भी आश्चर्य है। इसलिए तत्क्षण जैसे ही उन्होंने कहा कि अहो! संसार में दुख ही दुख है, फिर भी जीव क्लेश पा रहे हैं--उसके बाद ही वे कहते हैं, "हा! खेद है कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मैं मूढ़मति भयानक तथा घोर भव-वन में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।" वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुमसे मैं कुछ ऊपर हूं, पवित्र हूं, श्रेष्ठ हूं--मैं तुम में से हूं। मैं तुम्हारी ही भीड़ से आया हूं, मैं अपरिचित, अनजान नहीं। मैं कोई परदेशी नहीं। मैं तुम्हारे ही देश का वासी हूं। और जो तुम भोग रहे हो, वह मैंने भी भोगा है। तुम्हारी मूढ़ता मेरी भी मूढ़ता है। तुम्हारा अज्ञान मेरा भी अज्ञान है।
"सुगति का मार्ग न जानने के कारण... ।"
सुगति का मार्ग हैः ध्यान, विवेक, विचार, जागरूकता, अमूर्च्छा, अप्रमाद। न जानने के कारण--
रोती है शबनम कली दिलतंग है गुल सीनाचाक
क्या इसी मजमूआ-ए-गम का गुलिस्तां नाम है।
रोती है शबनम--आंसू हैं शबनम में। आंसू ही शबनम है। कली दिलतंग है--कली सिकुड़ी है अपने में, खुल नहीं पाती। कली दिलतंग है गुल सीनाचाक। फूल का हृदय टूट गया है। पंखुड़ियां बिखरी जा रही हैं। क्या इसी मजमूआ-ए-गम का गुलिस्तां नाम है। क्या इसीको गुलिस्तां कहें। जहां जन्म भी दुख है, जहां जीवन भी दुख है, जहां मृत्यु भी दुख है, जहां एक दुख के बाद दूसरे दुख की शृंखला है--इसको जीवन कहें, गुलिस्तां कहें। नहीं, इसमें जीवन जैसा कुछ भी नहीं है। एक गहन स्वप्न है, स्वप्न भी मधुर नहीं। स्वप्न भी दुख-स्वप्न है, नाइटमेयर!
लेकिन महावीर कहते हैं, क्या करो? अनंत जन्म ऐसे गये, क्योंकि सुगति
का कोई मार्ग पता न था।
थोड़ा सोचो! सुगति का मार्ग पता न था, क्या ऐसे लोग न थे जो सुगति का मार्ग बता रहे थे? महावीर के पहले जैनों के भी तेईस तीर्थंकर हो गये। महिमावान पुरुष हुए। सुगति का मार्ग तो था, बतानेवाले थे--सुना नहीं महावीर ने। उसी लिए आज रोते हैं। सुगति का मार्ग तो था, लेकिन उस पर चले नहीं। क्योंकि यह मार्ग कुछ ऐसा है कि चलने से ही बनता है। यह कोई बना- बनाया मार्ग नहीं है। कोई पी. डब्ल्यू. डी. नहीं है कहीं आकाश में कि रास्ते बनाती है कि तुम बस तैयार रास्ते हैं, चल पड़ो। जब मौज आ जाए, निकाल लो गैरेज से अपनी गाड़ी और चल पड़ो। नहीं, बने-बनाये रास्ते नहीं हैं। रास्ता चल-चलकर बनता है। पगडंडियों जैसा है, राजपथ नहीं। चलते हो, उतना ही बनता है।
सुनो उनकी जिन्होंने पाया हो। गुनो उनकी जिन्होंने पाया हो। पीयो उनको जिन्होंने पाया हो। और फिर थोड़ा-सा जो तुम्हारे गले में घूंट उतर जाए, उसको सिर्फ ज्ञान बनाकर मत रह जाना। उसको पचाओ। पचाने का अर्थ हैः चलो। जो तुमने सुना और समझा, थोड़ा उसका जीवन में प्रयोग करो। उतना रास्ता

बनता है। और एक कदम उठता है तो दूसरे कदम के लिए सुविधा बनती है। दूसरा कदम उठता है तो तीसरे कदम की सुविधा बनती है। और एक-एक कदम से आदमी हजारों मील की यात्रा कर जाता है।
"हा, खेद है कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मैं मूढ़मति भयानक तथा घोर भव वन में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।"
"जो जीव मिथ्यात्व से ग्रस्त हो गया है, उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है। उसे धर्म भी रुचिकर नहीं लगता; जैसे ज्वरग्रस्त मनुष्य को मीठा रस भी अच्छा नहीं लगता।"
महावीर कहते हैं, नहीं कि मैंने नहीं सुना था; नहीं कि सदगुरु नहीं थे। लेकिन बुद्धि विपरीत थी। सुनता था कुछ, गुनता था कुछ। जो कहा जाता था उससे विपरीत सुन लेता था। जो बताया जाता था, उससे उलटा चल पड़ता था।
एक वकील के दफ्तर में ऐसा घटा। एक बहुत बड़े वकील अपने दफ्तर में कार्य करनेवाले लड़के को सुधारने की कोशिश कर रहे थे। एक दिन लड़का अपनी टोपी उछालते हुए कमरे में आया और बोला, "मिश्रा जी, आज एक बहुत अच्छा नाटक हो रहा है और मैं वहां जाना चाहता हूं।" मिश्रा जी भी चाहते थे कि लड़का नाटक देख ले, पर उसे कुछ तमीज सिखाने के ख्याल से उन्होंने कहा, "छोटे! पूछने का यह कोई तरीका है? टोपी उछालते हुए चले आ रहे हो दफ्तर में। यह कोई ढंग है? तुम मेरी कुर्सी पर बैठो, मैं तुम्हें सही तरीका सिखाता हूं।"
लड़का कुर्सी पर बैठ गया और वकील साहब कमरे के बाहर चले गये।
फिर उन्होंने अंदर आने के लिये धीरे से दरवाजा खोला और कहा, "साहब! आज दोपहर को एक बहुत अच्छा नाटक हो रहा है, यदि आप मुझे छुट्टी दे दें तो मैं उसे देख आऊं!"
"क्यों नहीं", कुर्सी पर बैठे लड़के ने कहा, "और छोटे! यह लो टिकट के पांच रुपये।"
बड़ा मुश्किल है सिखाना! क्योंकि जिसे तुम सिखाने चले हो, वह पहले से
ही सीखा बैठा हुआ है। इस संसार में शिष्य खोजना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि शिष्य पहले से ही गुरु बना बैठा है। लोग जानते ही हैं। उसी जानकारी के कारण अगर कोई जाननेवाला भी मिल जाए तो उससे चूक जाते हैं।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमारे शास्त्र में तो ऐसा लिखा है
और आपने ऐसा कहा। तो मैं उनसे कहता हूं, तुम्हें शास्त्र ठीक लगता हो तो उस पर चलो! चलो! तुम्हें मैं ठीक लगता हूं, मुझ पर चलो। कृपा करके इस झंझट में तो न पड़ो कि शास्त्र ठीक कि मैं ठीक। क्योंकि ठीक का पता सोच-विचार से न चलेगा, चलने से चलेगा। मैंने तुमसे कहा, पूर्व से जाओ तो नदी पहुंच जाओगे। कोई तुमसे कहता है, पश्चिम से जाओ तो नदी पहुंच जाओगे। तो मैं कहता हूं, कैसे तय करोगे यहीं खड़े-खड़े, कौन ठीक कहता है? चलो, जिस पर तुम्हें भरोसा हो। शास्त्र पर भरोसा हो, चलो। अगर नदी न मिले तो हिम्मत रखना स्वीकार करने की कि शास्त्र गलत। अगर मेरी बात मानकर चलो और नदी न मिले, तो हिम्मत रखना यह बात स्वीकार करने की कि जिसको गुरु समझा था वह गलत था। फिर ऐसा मत करना कि जब एक दफा मान लिया किसी की बात को कि पूरब में नदी है, तो अब चाहे पूरब में नदी मिले या न मिले, चाहे जन्म-जन्म भटक जाएं लेकिन हम पूरब में ही खोजेंगे, क्योंकि मान लिया सो मान लिया।
ऐसी हठग्राहिता से कुछ अर्थ नहीं है। लोग माने बैठे हैं, चले भी नहीं, कभी प्रयोग करके भी नहीं देखा। सैद्धांतिक बकवास लोगों के मन में गूंजती रहती है। उसके कारण अगर कोई जतानेवाला भी मिल जाए, कोई जगानेवाला भी मिल जाए, कोई तुम्हारी ज्योति को थोड़ा सहारा भी देनेवाला मिल जाए, तो तुम उसे सहारा नहीं देने देते। तुम कहते हो, "ठहरो! हमारी मान्यता के विपरीत तो नहीं है?" तुम मान्यताओं को क्या संपत्ति समझे हुए हो? तो फिर तुम न सीख पाओगे।
तो महावीर कहते हैं, जो जीव मिथ्यात्व से ग्रस्त होता है उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है। नहीं कि सदपुरुष न थे। नहीं कि ज्योतिर्मय पुरुष न थे। लेकिन कहते हैं, "मैं मूढ़मति! जो उन्होंने कहा, उससे उलटा समझा। जो उन्होंने बताया वह तो सुना ही न, कुछ और सुन लिया। जो उन्होंने कहा, वह तो कभी किया न, उसे सैद्धांतिक बोझ बना लिया।"

"उसे धर्म भी रुचिकर नहीं लगता।" और धर्म की बात रुचिकर नहीं लगती। क्योंकि धर्म की बात को अगर रुचि से सुनो भी, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति सुनिश्चित है। लेकिन क्रांति से घबड़ाहट होती है। तुमने बहुत-से न्यस्त स्वार्थ बना रखे हैं। तुम एक बड़ा मकान बना रहे हो, अब कोई कहता है कि ये सब खंडहर हो जाएंगे। तो तुम कहते हो, यह बातचीत सुनो ही मत, अब यह बना तो लेने दो। अभी अगर यह बीच में बात सुन ली तो यह बनाने का जो उपक्रम चल रहा है, बंद हो जाएगा।
मेरे एक मित्र के साथ, इंदौर के पास मांडू में मैं मेहमान था। मांडू
की संख्या कभी नौ लाख थी--ज्यादा दिन नहीं, सात सौ साल पहले; और आज नौ सौ भी नहीं है। बड़ी विराट नगरी थी मांडू। मांडवगढ़ उसका नाम था। जब बस्ती सिकुड़ गयी तो मांडवगढ़ "मांडू" हो गया--हो ही जाना चाहिए। मांडवगढ़ अब कहने का कोई मतलब नहीं है! इतनी-इतनी बड़ी मस्जिदें हैं, उनके खंडहर हैं, जहां दस-दस हजार लोग इकट्ठे नमाज पढ़ सकते थे। इतनी बड़ी धर्मशालाएं हैं कि जहां दस-दस हजार लोग इकट्ठे उतर सकते थे। मांडव बड़ी नगरी थी। उन जमानों की बंबई थी। क्योंकि ऊंटों का सारा आवागमन था और मांडू मध्य में था। सारा मुल्क मांडू से गुजरता था। मुल्क के बाहर के यात्री भी, चाहे अफगानिस्तान से आते हों, चाहे काबुल से आते हों, चाहे ईरान से आते हों, मांडू से ही गुजरते थे। तो हजारों यात्री बने रहते थे। सैकड़ों मस्जिदें थीं, सैकड़ों मंदिर थे, सैकड़ों धर्मशालाएं थीं। ऊंटों के ठहरने के लिए इतने-इतने बड़े स्थान थे कि हजारों ऊंट इकट्ठे ठहर सकें। फिर अचानक सब खो गया। आज मांडू में नौ सौ आदमी हैं। खंडहर पड़े हैं। विशाल खंडहर हैं। बड़े महल हैं। मीलों तक विस्तार है।
जिन मित्र के साथ मैं ठहरा था, वे इंदौर में एक बड़ा मकान बना रहे थे।
वे इतनी धुन से भरे थे अपने बड़े मकान की कि सुबह उठें तो उसकी बात करें। नये-नये विचार, नयी-नयी तरंगें कि ऐसा कर लेंगे। तो स्विमिंगपूल कैसा बनाना... ! कौन-सा पत्थर लगाना, रात सोते-सोते भी वे वही बात करते, सुबह उठकर भी। दो-तीन दिन के बाद मैंने उनसे कहा कि तुम जरा मांडू भी तो देखो! कहने लगे, क्या देखना मांडू में? मैंने कहा, जरा चारों तरफ नजर भी तो फैलाओ, कितने बड़े महल थे, सब खंडहर हो गये! उन्होंने कहा, रहने दो बाबा! पहले मुझे मकान तो बना लेने दो। जब होगा खंडहर तब होगा! अभी मत छेड़ो बीच में यह बात। वे मुझसे उस दिन बोले कि कभी-कभी तुम्हारे साथ होकर डर लगता है। हो तो जाने दो पहले मकान पूरा, तुम अभी से खंडहर की बात करने लगे! अपशगुन तो मत करो! कोई शुभ कार्य में ऐसी बात तो नहीं कहनी चाहिए!
वे घबड़ा गये। स्वभावतः कोई महल बना रहा हो, उसको तुम खंडहर की बात बताओ, नाराज होगा। समझ में भी आ जाए... समझ में क्यों न आएगा? समझने की क्या अड़चन है इसमें? इतना फैलाव पड़ा है, इतने खंडहर हो गये मकान--तुम्हारा मकान भी खंडहर हो ही जाएगा। तुम बना-बनाकर मर जाओगे, मिट जाओगे। तुम अपने को गंवा दोगे ईंटें रखने में। फिर पछताओगे।
लेकिन आदमी के न्यस्त स्वार्थ हैं।
इसलिए महावीर कहते हैंः
"मिच्छत्तं वेदन्तो जीवो विवरीयदंसणो होइ।
न य धम्म रोचेदु हु, महुरं पि रसं जह जरिदो।।"
जैसे ज्वरग्रस्त आदमी को मीठा रस भी मीठा नहीं मालूम पड़ता, ऐसे वासना
के ज्वर से भरे व्यक्ति को धर्म की बात भी सुनायी नहीं पड़ती, उलटी सुनायी पड़ती है।
एक छोटा बच्चा एक बगीचे में आम तोड़ता हुआ पकड़ा गया। माली ने उसे पकड़ा, पुलिस-थाने ले गया। लड़का भोला-भाला था। भोला-भालापन देखकर दरोगा ने कहा, "बेटे, तुम्हें बुरे लोगों से बचना चाहिए।" उस लड़के ने कहा, "अजी मैंने तो माली से बचने की बहुत कोशिश की, पर उसने मुझे पकड़ ही लिया।"
दरोगा कह रहा है, बुरे सत्संग से बचो, ताकि चोरी न सीखो। लड़का सुन रहा
है कि यह माली बुरा आदमी है; मैं तो भागने की कोशिश कर ही रहा था; इससे बचने की कोशिश कर ही रहा था, फिर भी इसने पकड़ लिया।

तुम अपनी वासना के आधार से सुनते हो। इसलिए अपने सुने हुए पर बहुत भरोसा मत करना। बहुत गौर से सुनना। सुन भी लो तो भी पुनः पुनः विचार करना, यही कहा गया था। तुमने कहीं कुछ मिश्रित तो नहीं कर लिया है, तुमने कहीं कुछ जोड़ तो नहीं लिया, तुमने कहीं कुछ घटा तो नहीं दिया है! एक शब्द भी घटा देने से बड़ा फर्क पड़ जाता है। एक शब्द भी जोड़ लेने से बड़ा फर्क पड़ जाता है। जरा-सा जोर एक शब्द पर ज्यादा दे दो, बड़ा फर्क पड़ जाता है।

"और मिथ्यात्व से भरा हुआ व्यक्ति, उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है।"

"मिथ्यात्व" महावीर का विशेष शब्द है। जैसे "माया" शंकर का, ऐसे "मिथ्यात्व" महावीर का। मिथ्यात्व बड़ा बहुमूल्य शब्द है। इसका अर्थ समझना चाहिए। मिथ्यात्व का अर्थ हैः जैसा है, उसको वैसा न देखना। जैसा है, उसको वैसा देख लेना--सम्यकत्व। जैसा है, उसको वैसा न देखना--मिथ्यात्व। कुछ को कुछ देख लेना...।

अंधेरे में चल रहे हो, दूर से दिखता है कि कोई चोर खड़ा है; पास आते हो तो पाते हो कि बिजली का खंभा है। तो वह जो चोर दिखायी पड़ गया था--"मिथ्यात्व"। नहीं कि चोर वहां था, तुम्हें दिखायी पड़ गया था।

रस्सी पड़ी है। अंधेरे में गुजर रहे हो, घबड़ाकर छलांग लगा जाते हो, लगता है सांप है। रोशनी लाते हो, देखते होः कोई सांप नहीं, रस्सी पड़ी है। रस्सी सांप जैसी दिखायी कैसे पड़ गयी? तुम्हारे भीतर के भय ने लगता है सांप निर्मित कर लिया। रस्सी मिलती-जुलती है सांप से थोड़ी; सांप जैसी लहरें लिये पड़ी है। उस मिलते-जुलतेपन के कारण तुम्हारे भीतर के भय का तूफान उठ गया, आंधी उठ गयी। और तुम्हारे भय ने सांप देख लिया। इतना ही समझो कि तुम्हारे भीतर सांप का भय पड़ा हुआ है। रस्सी में सांप दिख गया, क्योंकि तुम्हारे भीतर सांप का भय पड़ा हुआ है।

तुम थोड़ा सोचो, ऐसा कोई आदमी जिसने सांप कभी देखा ही न हो, या सुना ही न हो, क्या वह आदमी भी इस रस्सी में सांप देख सकेगा? कैसे देखेगा? असंभव!

एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था। वह अपने विद्यार्थियों को ले गया काशी के मंदिर में, विश्वनाथ के मंदिर में। शंकर जी की पिंडी के पास वह अपना हैट रख आया और दरवाजे पर उसने खड़े होकर शिष्यों को पूछा कि क्या है, शंकर जी की पिंडी के पास क्या रखा है?

उन सब ने गौर से देखा और सब ने कहा कि शंकर जी का घंटा। क्योंकि हैट और शंकर जी का संबंध ही नहीं जुड़ता। तो वह जो हैट था, घंटे जैसा दिखायी पड़ने लगा।

तुमने कभी देखा, आकाश में बादल बनते हैं! तुम जो देखना चाहते हो, देख लेते हो। कभी-कभी वर्षा की बूंदें दीवालों पर चित्र अंकित कर जाती हैं, तुम जो देखना चाहते हो देख लेते हो। वहां कुछ भी नहीं है। कभी-कभी चेहरा दिखायी पड़ता है। दीवाल पर पानी की रेखाएं बह गयी हैं। वहां कुछ भी नहीं है। लेकिन तुम आरोपित कर लेते हो।

मिथ्यात्व का अर्थ हैः जो नहीं है वह तुमने देख लिया; और जो था उससे तुम चूक गये। जब तुम उसे देख लोगे जो नहीं है तो उससे तुम चूक ही जाओगे जो है।

दृष्टि को साधना है। दृष्टि को निर्मल करना है। और धीरे-धीरे दृष्टि के साथ जल्दी निष्कर्ष नहीं लेने हैं। निष्कर्ष करने में थोड़ा धैर्य करो। सुनो, देखो, जल्दी निष्कर्ष मत लो। मेरे पास तुम आए हो, सुनते हो। इधर तुम सुन रहे हो, साथ-साथ तुम निष्कर्ष भी लेते जाते हो।

तुम में से कई हैं जो सिर हिलाते हैं; वे कहते हैं, बिल्कुल ठीक। उनके भीतर मेल खा रही है बात। वे जो मानते रहे हैं उससे मेल खा रही है। कोई सिर हिलाता है कि नहीं। वह उसे पता भी नहीं कि वह सिर हिला रहा है; मुझे दिखाई पड़ता है कि वह कह रहा है कि नहीं। यह बात जंचती नहीं।

इतनी जल्दी मत करो, पहले मुझे सिर्फ सुन लो। सिर्फ शुद्ध सुनना काफी है। फिर सुनने के बाद, समझने के बाद फिर तालमेल बिठा लेना। अभी तुमने अगर साथ ही साथ दो प्रक्रियाएं जारी रखीं कि तुम अपने भीतर विचार भी चलाते रहे, तर्क भी करते रहे, विवाद भी करते रहे, तालमेल भी बिठाते रहे, तो तुम

मुझे न सुन पाओगे। तुम्हारा शोरगुल इतना ज्यादा होगा, तुम कैसे मुझे सुन पाओगे? फिर तुम जो निष्कर्ष लोगे वह मिथ्यात्व होगा।
"मिथ्या-दृष्टि जीव तीव्र कषाय से पूरी तरह आविष्ट होकर जीव और शरीर
को एक मानता है। वह बहिरात्मा है।"
महावीर कहते हैं, आत्मा की तीन अवस्थाएं हैंः बहिरात्मा--जब तुम वासना से बाहर बहे जाते हो; अंतरात्मा--जब तुम ध्यान से भीतर चले आते हो; और परमात्मा--जब बाहर-भीतर दोनों खो गये।
हो तो तुम वही। हो तो तुम परमात्मा ही। लेकिन जब परमात्मा बाहर की तरफ
बह रहा है तो बहिरात्मा। जब पदार्थ में रुचि है, वस्तु में रुचि है, दूसरे में रुचि है, विषय-वस्तु में रुचि है; जब तुम अपने को इतना भूल गये हो कि बस पदार्थ ही सब कुछ हो गया, धन के दीवाने हो, पद के दीवाने हो--तब तुम बहिरात्मा। बहिरात्मा यानी आत्मा बाहर की तरफ बहती हुई। फिर विचार शुरू हुआ। बहुत जले, इतने जले कि दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीने लगा! विचार का जन्म हुआ, विवेक उठा, तब तुम भीतर लौटने लगे, अंतर्यात्रा शुरू हुई--तब अंतरात्मा।
हो तो तुम वही--दिशा बदली, आयाम बदला, तुम्हारा गुणधर्म बदला; अभी तुम
घर के बाहर जाते थे, अब तुम घर की तरफ आने लगे; अभी संसार की तरफ मुंह था, अब पीठ हो गयी; अभी सन्मुख संसार था, अब तुम आत्म-सन्मुख हुए; फिर पहुंच गये घर; फिर तुम अपने में लीन हो गये; फिर स्वभाव उपलब्ध हो गया--तब परमात्मा।
अब न कुछ बाहर है, अब न कुछ भीतर है। द्वंद्व गया, दुई मिटी। द्वंद्वात्मकता खोयी, निर्द्वंद्व हुए। निर्ग्रंथ हुए। इसको महावीर कहते हैं मोक्ष-अवस्था।
बहिरात्मा को अंतरात्मा बनाना है, अंतरात्मा को परमात्मा बनाना है। परमात्मा तुम हो ही, सिर्फ यात्रा के रुख बदलने हैं, दिशा बदलनी है। जो तुम हो, वही हो सकते हो। जो तुम हो ही, वही होओगे। लेकिन अगर विपरीत चले जाओ, मिथ्यात्व में खो जाओ, तो तुम रहोगे भी परमात्मा, लेकिन अपने को कीड़ा- मकोड़ा समझने लगोगे; आदमी, स्त्री, हिंदू, मुसलमान, ब्राह्मण, शूद्र समझने लगोगे। रहोगे परमात्मा और किसी छोटी-सी चीज से अपना संबंध बना लोगे; कहोगे--यही मैं हूं, यही मैं हूं, यही मैं हूं!
लौटो भीतर की तरफ! ध्यानस्थ होओ! धीरे-धीरे तुम्हारी दृष्टि क्षुद्र
से छूटेगी। जैसे अपनी तरफ लौटोगे, अचानक पाओगेः न तो मैं शरीर हूं न मैं मन हूं, न मैं हिंदू न मैं मुसलमान, न ब्राह्मण न शूद्र्र, न जैन न ईसाई, न स्त्री न पुरुष, न गरीब न अमीर, न सुखी न दुखी। जैसे-जैसे भीतर आने लगोगे, द्वंद्व छूटने लगे--दूर खोने लगे, आकाश में कहीं! रह गए स्वप्नवत। स्मृति रह गयी। फिर एक दिन अचानक घर में प्रवेश हो जाएगा। तुम अपने स्वरूप में थिर हो जाओगे।
स्वरूप में थिर हो जाना स्वस्थ हो जाना है। स्वस्थ यानी स्वयं में स्थित! परमात्मा हुए, परमात्मा प्रगट हुआ।
महावीर की विचार-सरणी में परमात्मा प्रकृति के प्रारंभ में नहीं है। परमात्मा, जब प्रकृति का परिपूर्ण उन्मेष और विकास हो जाता है, तब है। और परमात्मा एक नहीं है; उतने ही परमात्मा हैं, जितने जीवन-बिंदु हैं। हर बिंदु सागर हो जाता है। उतने ही सागर हैं जितने बिंदु हैं।
इसलिए परमात्मा, महावीर ही दृष्टि में, कोई तानाशाही की धारणा नहीं है; बड़ी लोकतांत्रिक धारणा है। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है। प्रत्येक व्यक्ति की नियति परमात्मा है, स्वभाव परमात्मा है।
महावीर ने तुम्हारे भीतर के परमात्मा को पुकारा है--किसी परमात्मा की पूजा के लिए नहीं; किसी परमात्मा की अर्चना के लिए नहीं--अपने परमात्मा को पाने के लिए। और जब तक कोई परमात्मा की अवस्था को उपलब्ध न हो जाए... ध्यान रखना, परमात्मा अवस्था है, व्यक्ति नहीं... तब तक जीवन दुख से भरा रहता है; तब तक अंधेरी रात नहीं टूटती।
उठो! चलें! उस सूरज की खोज करें जो तुम्हारे भीतर छिपा है! जागो! था.ेडा हलन-चलन करो! थोड़ी गति करो! उसकी खोज करो जो तुम्हारे भीतर पड़ा ही है; जिसे तुम सदा ही अपने भीतर छिपाये रहे हो, लेकिन नजर नहीं दी, उस तरफ

आंख नहीं फेरी। जैसे ही तुम भीतर की तरफ नजर को फेरते हो, मिथ्यात्व सरकने लगता है, खोने लगता है।
जैसे दीये के जलने पर अंधेरा विसर्जित होता है--सम्यकत्व का जन्म होता है। और जब तुम पहुंच गये, तो वहां न मिथ्यात्व है न सम्यकत्व, दोनों द्वंद्व गये! फिर वहां तो केवल-ज्ञान, केवलत्व, कैवल्य है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
चौथा प्रवचन

धर्मः निजी और वैयक्तिक

पहला प्रश्नः कोई आठ वर्षों से आपको सुनती हूं, पढ़ती हूं; लेकिन सब भूल जाता है, सिर्फ आप ही सामने होते हैं। और अब तो रोना ही रोना रहता है। घर पर आपके चित्र के सामने रोती हूं, यहां प्रवचन में रोती हूं। यह क्या है? तेरी यारी में बिहारी सुख न पायो री!

प्रेम जलाता है। और प्रेम में जो जलने को राजी है वही प्रार्थना को उपलब्ध भी होता है। प्रेम दुख देता है, क्योंकि प्रेम काटता है। जैसे मूर्तिकार पत्थर को तोड़ता है, छैनी-हथौड़ी से; लेकिन तभी प्रतिमा का आविर्भाव होता है। जो प्रेम के दुख से डर गया, वह अप्रेम के नर्क में जीयेगा सदा। जिसने प्रेम की पीड़ा को स्वीकार कर लिया, तो दुख जल्दी ही सुख में रूपांतरित होगा--और ऐसे सुख में जिसका कोई अंत नहीं।
आंसुओं से भरा है रास्ता सत्य की खोज का, लेकिन एक-एक आंसू के बदले में करोड़-करोड़ फूल खिलते हैं। ये आंसू साधारण आंसू नहीं हैं। जिसने पूछा है उसे मैं जानता हूं। ये आंसू साधारण आंसू नहीं हैं। और इन आंसुओं का दुख साधारण दुख भी नहीं है। इन आंसुओं में एक रस है। इनको आंसू ही मत समझना, अन्यथा चूक हो जाएगी। दूसरे समझें तो समझने देना। खुद इन आंसुओं को अगर आंसू ही समझ लिया तो बड़ी चूक हो जाएगी। यह तो अनिवार्य चरण है।
परमात्मा की खोज में दो ही उपाय हैं। या तो आंसू बिल्कुल सूख जायें, आंख जरा भी गीली न रहे, गीलापन ही न रहे, लकड़ी सूखी हो जाये कि आग लगाओ तो धुआं न उठे, लपट ही लपट हो। वैसा महावीर का मार्ग है। वहां आंसू सुखाने हैं। वहां आंसुओं को बिल्कुल वाष्पीभूत कर देना है। वहां प्रेम को बचाना नहीं; वहां प्रेम की सारी संभावनाओं को समाप्त कर देना है--ताकि तुम ही बचो, निपट अकेले; बाहर जाने का कोई द्वार भी न बचे। क्योंकि प्रेम बाहर ले जाता है। संसार में भी ले जाता है, परमात्मा में भी ले जा सकता है; लेकिन साधारणतः तो संसार में ही ले जाता है, निन्यान्नबे मौके पर तो संसार में ही ले जाता है।
महावीर का मार्ग कहता है, इन आंसुओं को सुखा डालो। न कोई भक्ति न कोई भाव, न कोई पूजा न कोई प्रार्थना--बुझा दो ये सब दीप अर्चना के! निपट अपने अकेलेपन में राजी हो जाओ। तो भी परमात्मा प्रगट होता है। इस अति पर भी परमात्मा प्रगट होता है!
फिर दूसरा मार्ग है नारद का, चैतन्य का, मीरा का। जिसने पूछा है उसका नाम भी मीरा है। वहां आंसू ही आंसू हो जाओ। वहां तुम न बचो। पिघलो और बह जाओ, कि पीछे कोई रोनेवाला न बचे, रुदन ही रह जाये। इस तरह गलो कि जरा-सी भी गांठ न रह जाये भीतर। सब आंखों के बहाने बह जाये। सब आंसुओं में ढल जाये। तो भी परमात्मा तक पहुंचना हो जाता है। क्योंकि जब सब बह जाता है, तुम बचते ही नहीं, तो परमात्मा ही बचता है।
या तो तुम्हीं बचो और कुछ न बचे, तो परमात्मा मिलता है। या और सब बचे, तुम न बचो, तो परमात्मा मिलता है।
या तो तुम्हारा आत्मभाव इतना विराट हो जाये कि सब उसमें समा जाये; या तुम्हारा आत्मभाव इतना शून्य हो जाये कि सबमें समा जाये।
महावीर का मार्ग आत्मा को सुदृढ़ करने का मार्ग है। नारद का मार्ग आत्मा को विसर्जित कर देने का मार्ग है। इसलिए घबड़ाओ मत। हंसकर रोओ, रोकर नाचो, नाचकर रोओ। नृत्य को उत्सव समझो।
हम पे मुश्तरका हैं अहसान गमे-उलफत के
इतने अहसान कि गिनवाऊं तो गिनवा न सकूं
हमने इस इश्क में क्या खोया है, क्या पाया है
जुज तिरे और को समझाऊं तो समझा न सकूं।
हम पे मुश्तरका हैं अहसान गमे-उलफत के! प्रेम की पीड़ा के इतने अहसान हैं, प्रेम के दुख ने इतना दिया है--गमे-उलफत।

हम पे मुश्तरका हैं अहसान गमे-उलफत के
इतने अहसान कि गिनवाऊं तो गिनवा न सकूं।
अनंत है उनका उपकार। एक-एक आंसू ने भक्त को निखारा है, स्वच्छ किया है, ताजगी दी है, निर्दोष बनाया है।
एक-एक आंसू जहर को लेकर बाहर हो गया है, पीछे अमृत ही छूट गया है।
हम पे मुश्तरका हैं अहसान गमे-उलफत के
इतने अहसान कि गिनवाऊं तो गिनवा न सकूं
हमने इस इश्क में क्या खोया है, क्या पाया है
जुज तिरे और को समझाऊं तो समझा न सकूं।
और कोई समझ भी न सकेगा।
बहुत कुछ खोया भी जाता है प्रेम में। बहुत कुछ पाया भी जाता है प्रेम में। खोना मार्ग है पाने का। खोने से डरे तो पाने से वंचित रह जाओगे। पहले तो खोया ही जाता है; पाना तो बाद में घटता है। पहले तो खोना ही खोना है। सौदा पहले तो घाटे का है। जब सब खो जाता है, तब मिलन के क्षण आते हैं, तब वर्षा होती है। जैसे गर्मी में सब सूख जाता है, धरती तपती है, वृक्ष रूखे हो जाते, पत्ते गिर जाते, वृक्ष नग्न हो जाते, धरती प्यासी और रोती--तब मेघ-मल्हार, तब मेघ घिरते हैं, तब आषाढ़ के दिवस आते और वर्षा होती है।
पहले तो खोना ही खोना है। खोना पाने की पात्रता है। पहले तो खाली होना है, इसलिए खोना पड़ेगा। पात्र जब पूरा खाली होगा तो बरसेगा परमात्मा। हमने इस इश्क में क्या खोया है, क्या पाया है
जुज तिरे और को समझाऊं तो समझा न सकूं।
उस परम प्यारे के अतिरिक्त किसी और को समझा भी न सकोगे। कोई समझेगा भी नहीं, क्योंकि यह सौदा बड़े पागलपन का है। भक्त का रास्ता दीवाने का रास्ता है।
महावीर का रास्ता अत्यंत विचार का रास्ता है, अत्यंत विवेक का, गणित का। वहां चीजें साफ-सुथरी हैं। इसलिए जैन-शास्त्रों में रस नहीं है। पढ़े जाओ, सुने जाओ, मरुस्थल ही मरुस्थल है। जैन शास्त्रों में रस नहीं है--हो नहीं सकता। वह मार्ग वैराग्य का है, विरसता का है। रस है तो भक्ति के शास्त्रों में। वहां तुम्हें कोई सूखी जमीन न मिलेगी। वहां सब कमलों से. ढंका है। लेकिन वे कमल मुफ्त नहीं मिलते। वे कमल यूं ही नहीं खिलते; जब कोई सब गंवाता है, तब खिलते हैं। तो घबड़ाना मत। अब रोने को ही साधना समझना। कंजूसी से मत रोना। रोए और कंजूसी से रोए तो व्यर्थ रोए। दिल भरकर रोना। समग्रता से रोना। और रोने को प्रार्थना समझना, अहोभाव समझना। ये आंसू कम ही सौभाग्यशालियों की आंखों में आते हैं। बहुतों की आंखें तो पथरा गयी हैं, नकली हो गयी हैं।
मैंने सुना है, एक करोड़पति कंजूस की एक आंख नकली थी, पत्थर की थी। एक आदमी भीख मांगने आया था। कंजूस ने कभी किसी को भीख न दी थी। लेकिन उस दिन कुछ शुभ मुहूर्त में आ गया था भिखारी। कंजूस कुछ प्रसन्न था। कोई बड़ी संपदा हाथ लग गयी थी। अभी-अभी खबर मिली थी तो बड़ा प्रफुल्लित था। तो रोज से उस दिन सदय था। कभी किसी भिखारी को कुछ न दिया था। उस दिन भिखारी से कहा, "अच्छा दूंगा कुछ, लेकिन पहले एक शर्त है। क्या तू बता सकता है कि मेरी कौन-सी आंख असली है, कौन-सी नकली है?" उस भिखारी ने देखा और उसने कहा कि बायीं असली होनी चाहिए, दायीं नकली। चकित हुआ धनपति। उसने कहा, "कैसे तूने जाना?" तो उसने कहा, "नकली आंख में थोड़ी-सी करुणा मालूम पड़ती है, थोड़ी दया का भाव मालूम पड़ता है, इससे पहचाना। असली तो बिल्कुल पथरा गयी है।"
बहुत हैं जिनकी आंखें पथरा गयी हैं, जिनके हृदय सूख गये हैं, रसधार नहीं बहती। गंगा खो गयी है, रूखे-सूखे रेत के पहाड़ खड़े रह गये हैं। कहीं कोई अंकुर नहीं फूटता, कोई पक्षी गीत नहीं गाता। सौभाग्यशाली हैं वे जिनकी आंखें अब भी तर हो सकती हैं, भीग सकती हैं। उनकी आत्मा के भीगने का अभी उपाय है। तो अगर रोना आता हो तो आने देना, सहयोग करना, साथ देना, संगी बनना। लड़-लड़कर मत रोना। झिझक-झिझककर मत रोना। सकुचाना मत। शर्माना मत। नहीं तो चूक हो जायेगी।

अगर आंसुओं से तुम पूरे बह जाओ तो कुछ कहने को नहीं बचता। फिर कोई प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। फिर कोई शास्त्र आवश्यक नहीं है। फिर तुम्हारे आंसू सब कह देंगे--जो नहीं कहा जा सकता वह भी; जो कहा जा सकता है वह तो निश्चित ही। फिर तो तुम्हारे आंसू सब गा देंगे--जो गेय है, अगेय है, सभी गा देंगे; जो नहीं गाया जा सकता है, अगेय है, वह भी गा देंगे। फिर तो तुम्हारे आंसुओं की धुन में सब प्रगट हो जाएगा। तुमसे ज्यादा ढंग से कह देंगे वे, परमात्मा से क्या कहना है!
वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़कर आंखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान
सारा काव्य आंसुओं का है। हंसी से कोई काव्य निर्मित होता है? सारा काव्य आंसुओं का है; क्योंकि हंसी बड़ी उथली है, ऊपर-ऊपर है, खोखली है। कोई हंसना आंसुओं की गहराई नहीं छू पाता। हंसना ऊपर-ऊपर लहर की तरह आता है, चला जाता है। आंसू कहीं गहरे में सघन हो जाते हैं। तो आंसू तो गहराई में उतरने की सुविधा है, सौभाग्य है।
और धीरे-धीरे, पहले तो आंसू अपने लिए बहते हैं, फिर आंसू औरों के लिए
भी बहने लगते हैं। पहले-पहले तो कारण से बहते हैं, फिर अकारण बहने लगते हैं। जब अकारण बहने लगते हैं, तब उनका मजा ही और है।
अश्रु अपनी ही व्यथा का निर्वसन तन
गीत जग भर के दुखों की आत्मा है।
पहले तो अपनी ही पीड़ा से बहते हैं, लेकिन जल्दी ही तुम पाओगे कि तुम्हारी पीड़ा सारी मनुष्यता की पीड़ा है। जल्दी ही तुम पाओगेः तुम्हारी पीड़ा सारे अस्तित्व की पीड़ा है। यह तुम ही नहीं रोए हो, यह परमात्मा से बिछुड़ापन रोया है।
वियोगी होगा पहला कवि!
--यह वियोग रोया है।
आह से उपजा होगा गान!
--और जल्दी ही तुम्हारे आंसुओं से गीत उतरने लगेंगे।
मीरा खूब रोयी। इसलिए तो मीरा के गीतों में जो है, वह महाकवियों के गीतों में भी नहीं। मीरा के गीत भाषा और व्याकरण की दृष्टि से तुकबंदियां हैं। हृदय की दृष्टि से तो वैसे गीत कभी-कभार पृथ्वी पर उतरे हैं, किसी दूसरे लोक से आये हैं। बहुतों ने गीत लिखे हैं, लेकिन जैसे मीरा के गीत हृदय-हृदय में उतरे हैं, वैसे किसी के गीत कभी नहीं उतरे। न तो भाषा, न छंद-शास्त्र, न काव्य की मात्राओं का कुछ हिसाब है, न संगीत का कोई गणित है--पर कुछ और है जो इन सब के पार है। यह व्यथा मीरा की अपनी नहीं है अब! जैसे मीरा के कंठ से सारी मनुष्यता, सारा अस्तित्व अपनी पीड़ा को प्रगट किया है।
जब आंसू तुम से मुक्त हो जाते हैं, और सबके हो जाते हैं; तो तुम समाप्त हुए। अब तुम कोई छोटी-मोटी धारा न रहे जो सूख जाती है। वर्षा, गर्मी में... भर जाती है वर्षा में, वर्षा में बाढ़ आ जाती है, गर्मी में पता भी नहीं चलता कहां खो गई! जब तुम्हारी व्यथा सबकी व्यथा से जुड़ जाती है, तो तुम सागर हो गए। तब तुम्हारे भीतर सिर्फ व्यथा ही नहीं रहती, व्यथा के गीत उठते हैं, विरह के गीत उठते हैं।
सारा भक्ति-शास्त्र विरह है, वियोग है। और भक्त ने विरह को दुर्भाग्य नहीं माना है, सौभाग्य जाना है। भक्त ने अपनी पीड़ा को भी स्वर्णिम माना है। है भी स्वर्णिम, क्योंकि जब सब खो जायेगा, जब कुछ भी न बचेगा, केवल एक प्यास बचेगी; एक उत्तप्त हृदय बचेगा--तभी उसी क्षण में, उसी परम सौभाग्य के क्षण में, उसी धन्यता की घड़ी में परमात्मा का अवतरण होता है।
"कोई आठ वर्षों से आपको सुनती हूं, पढ़ती हूं; लेकिन सब भूल जाता है, सिर्फ आप ही सामने होते हैं।"
शुभ हो रहा है। मैं क्या कहता हूं, उसका हिसाब वे रखें जो मुझे नहीं समझ पाते। उनके हाथ कूड़ा-कर्कट पड़ेगा। वे उच्छिष्ट को इकट्ठा कर लेंगे।
जैसे भोजन की टेबल के आसपास थोड़े टुकड़े गिर जाते हैं, ऐसे ही शब्द हैं।

टुकड़े भोजन से गिर गये--रोटी के, साग-सब्जी के, मिष्ठान्न के--ऐसे ही शब्द हैं। क्योंकि जो मैं हूं वह शब्दों में प्रगट नहीं हो सकता। शब्द बड़े छोटे हैं। तो शुभ है कि शब्द भूल जायें और मैं याद रहूं। अशुभ होगा कि शब्द याद रहें और मैं भूल जाऊं। बहुतों को यही होता हैः शब्द याद रह जाते हैं, मैं भूल जाता हूं। कुछ मिला उन्हें, लेकिन जहां बहुत मिल सकता था, वहां अपने ही हाथ वे क्षुद्र को इकट्ठा करके आ गये। जहां हीरे मिल सकते थे वहां से कंकड़-पत्थर बीन लाये।
अच्छा है! भूल ही जाओ। जो सुना है उसे याद रखने की जरूरत नहीं है।
अगर मुझ से मिलन हुआ है, अगर क्षणभर को भी मुझे देखा है, मुझमें झांका है, तो क्या मैं कहता हूं, इसकी क्या फिक्र!
चाहें तो तुमको चाहें, देखें तो तुमको देखें
ख्वाहिश दिलों की तुम हो, आंखों की आरजू तुम।
जिसे दर्शन हुआ, जिसे दिखाई पड़ने लगा, वह कानों की फिक्र छोड़ देता है।
जब आंखें भरने लगीं तो कान की कौन फिक्र करता है!
सुनने पर तो हम तब भरोसा करते हैं जब हम अंधे होते हैं और देखने का उपाय नहीं होता। सुनने को तो हम तब पकड़ते हैं, मजबूरी में, क्योंकि देख नहीं पाते, अंधेरे में टटोलते हैं। कान से ही जीना पड़ता है अंधे को। पर जिसके पास आंख है वह आंख से जीता है। फिर कौन फिक्र करता है कान की!
आंख से ही जीयो! तो तुम डूबोगे। कान से जो जीते हैं, वे डूब नहीं पाते। ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है कि मुझे सुनते समय तुम पर थोड़ी-सी बूंदें बरस जायें, पर वे तुम्हें डुबा न पायेंगी; घर जाते-जाते धूप में उड़ जायेंगी। लेकिन तुम अगर मुझ में डूबो, मुझे अगर देख पाओ... । इसलिए हमने इस देश में तत्व-चिंतन की धारा को दर्शन कहा है--श्रवण नहीं, दर्शन कहा है। कुछ बात देखने की है। कुछ आंख से जुड़ने की बात है। मेरी बात सुनकर तुम मुझ तक आ जाओ, काफी है इतना; फिर मुझे देखो, फिर सुनने में ही मत उलझे रह जाओ। डूबा जो कोई आह, किनारे पै आ गया
तुगयाने बहरे इश्क है साहिल के आसपास।
जो कोई डूबा वह किनारा पा गया। क्योंकि कुछ ऐसा मामला है कि इश्क का
जो तूफान है, प्रेम का जो तूफान है, वह ठीक किनारे के पास है। साधारण तूफान तो किनारे से दूर होते हैं--बहुत दूर होते हैं। जितना बड़ा तूफान हो उतना ही किनारे से दूर होता है। किनारे के पास कहीं तूफान होते हैं! लेकिन प्रेम के नियम उलटे हैं। इस संसार के जो नियम हैं, प्रेम के नियम उससे बिल्कुल उलटे हैं। यहां अगर नदी पार करनी हो तो डूबना मत। प्रेम की दुनिया में अगर नदी पार करनी हो तो डूबने का अवसर आ जाये तो चूकना मत।
डूबा जो कोई आह, किनारे पै आ गया!
डूबते ही किनारा मिल जाता है। डूबना ही किनारा है; और कोई किनारा नहीं। डूबना ही मंजिल है; और कोई मंजिल नहीं। क्योंकि डूबे कि तुम मिटे। तुम मिटे कि वही रह गया, जो है, जो सदा से है। तुम जरा ऊपर-ऊपर की धूल-धवांस हो, उस पर छा गया जो सनातन है, शाश्वत है। डूबे कि धूल-धवांस बह गई; बचा वही जो सदा था--तुम्हारे होने के पहले था, तुम्हारे होने के बाद होगा। बचा वही जो शाश्वत है, कालातीत है।
डूबा जो कोई आह, किनारे पै आ गया!
तुगयाने बहरे इश्क है साहिल के आसपास।
ये जो तूफान हैं, प्रेम की आंधियां हैं, ये किनारे के बहुत आसपास हैं, इनसे घबड़ाना मत। और जब आंधी तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे तो निकल आना, डूबने को राजी हो जाना, आंधी से लड़ना मत।
"सब भूल जाता है, सिर्फ आप ही सामने होते हैं।"
तो वही हो रहा है जो होना चाहिए।
"और अब तो रोना ही रोना रहता है। घर आपके चित्र के सामने रोती हूं, यहां प्रवचन में रोती हूं। यह क्या है?"
प्रश्न मत उठाओ, रोओ। प्रश्न उठाया कि रोना बंद हुआ। क्योंकि प्रश्न जहां से आता है वहां से रोना नहीं आता। प्रश्न आता है बुद्धि से, रोना आता है हृदय से। प्रश्न उठाया कि बुद्धि ने हृदय के बीच में बाधा दी। प्रश्न

उठाया कि बुद्धि ने कहा, यह क्या हो रहा है? प्रश्न उठाया कि बुद्धि ने अड़चन शुरू की, कि बुद्धि ने पहरा बांधा, कि बुद्धि ने कहा, "बंद करो यह पागलपन, यह दीवानगी! सम्हलो, होशियार बनो।"
अब यहीं तुम्हें ख्याल रखना है। अगर महावीर के मार्ग पर चलते हो तो सम्हलो, होशियार बनो। वहां होश आखिरी गुण है। अगर नारद के मार्ग पर चलते हो, मीरा के और चैतन्य के, तो वहां बेहोशी ही मार्ग है। वहां होशियार मत बनना। वहां होशियार बने कि गंवाया। और अपनी-अपनी चुन लेना राह। न महावीर से कुछ लेना है, न नारद से कुछ लेना है--देखना है कि अपनी मौज कहां, हम कहां बहे जाते हैं सरलता से, जहां कोई उपाय नहीं करना पड़ता, जहां हम छोड़ देते हैं और धारा ले चलती है। अगर संकल्प तुम्हारी वृत्ति हो तो रोकना; तो हृदय को तोड़ना और बुद्धि को जगाना; तो हृदय को पोंछ देना बिल्कुल कि राग का शेष भी न रहे, न आंसू हों, न हंसी हो।
तुमने देखा महावीर की प्रतिमा पर? थिर है। मध्य में है। न हंसती है न रोती है। मूर्तिवत। मूर्ति ही मूर्तिवत नहीं है, महावीर भी मूर्तिवत थे। वे ठीक बीच में खड़े थे होश को सम्हालकर। वह भी मार्ग है। जिनको संकल्प में रस हो, उस मार्ग पर जायें। उससे भी लोग पहुंचे हैं।
लेकिन अगर तुम्हें संकल्प में अड़चन पड़ती हो तो घबड़ाना मत, संकल्प ने कोई ठेका नहीं लिया। तुम जिस ढंग से हो, परमात्मा तुम्हें उस ढंग से भी स्वीकार करता है। इसलिए तो हिंदू कहते हैं, उसके हाथ अनेक हैं--सहस्रबाहु। एक ही हाथ होता तो बड़ी मुश्किल हो जाती; किसी एक को उठा लेता, बाकियों का क्या होता। दो हाथ होते, दो को उठा लेता। उसके उतने ही हाथ हैं जितने तुम हो। एक-एक के लिए एक-एक हाथ है। उसने तुम्हारे लिए जगह रखी है। तुम्हारा हाथ तुम्हारे लिए मौजूद है। तुम जरा अपने को पहचानो। और इस भूल में कभी मत पड़ना कि तुम दूसरे के मार्ग से पहुंच सकोगे। अगर तुमने विपरीत मार्ग चुन लिया जो तुम्हारी सहज वृत्ति के अनुकूल न आता था, तो तुम उलझन में पड़ोगे, तुम झंझट में उलझोगे। तुम अपने ऊपर व्यर्थ के अवसाद और संताप इकट्ठे कर लोगे। तुम अपने को व्यर्थ की प्रवंचनाओं में, धोखों में, आत्म-वंचनाओं में उलझा लोगे। तुम पाखंड में पड़ जाओगे। विमुक्ति तो बहुत दूर रही, तुम विक्षिप्त होने लगोगे। जो अपने से अनुकूल न गया, वह विक्षिप्त होने लगता है। स्वयं के अनुकूल होना साधक की पहली समझ है।
तो जो तुम्हें लगता हो, अनुकूल है; जो तुम्हें भाता हो, रुचता हो; जो तुम्हारी रुझान में बैठ जाता हो--बस वही। न महावीर से कुछ लेना है, न नारद से कुछ लेना है--असली सवाल तो तुम्हें अपने घर लौटना है।
अपनी राह पहचानना। और अपनी राह पहचानने का उत्तमतम उपाय हैः अपने थोड़े झुकाव को समझना।
जिसने पूछा है, मैं जानता हूं, रोना उसके लिए मार्ग है। भूल जाओ महावीर को। गुण गाओ प्रभु के! नाचो मस्ती में! बेहोशी में डूबो! और कुछ भी बचा न रखो। जरा भी कृपणता मत करना क्योंकि परमात्मा तुम्हें पूरा का पूरा चाहता है।
वहां त्याग है तो सर्वस्व का है। वहां कुछ-कुछ देने से, अंश-अंश देने
से काम न चलेगा। वहां कुछ और देने से काम न चलेगा, जब तक तुम स्वयं को ही न दे डालो--अशेष भाव से, बिना पीछे कुछ बचाये।
रोओ! रोना शुभ है। अगर सरलता से आता है तो बड़ा शुभ है। अगर न आता हो तो नाहक कोशिश मत करना। मिर्ची इत्यादि पीसकर आंखों में मत आंजना।
वैसे भी लोग हैं। कोई जबर्दस्ती संकल्प की चेष्टा करने लगता है, कोई जबर्दस्ती समर्पण की चेष्टा करने लगता है। जहां भी तुम्हें लगे जबर्दस्ती करनी पड़ रही है, वहीं सचेत हो जाना कि अपना मार्ग न रहा। जहां तुम्हें लगेः अरे खिलने लगे, सरलता से पंखुड़ियां खिलने लगीं, मस्ती आने लगी, चित्त प्रसन्न और प्रफुल्लित होने लगा--तब तुम जानना कि ठीक-ठीक रास्ते पर हो। तुम्हारा अंतर-यंत्र प्रतिपल तुम्हें बता रहा है, कसौटी दे रहा है। जो भोजन तुम्हें रास आता है, उसे खाकर प्रसन्नता होती है। जो भोजन तुम्हें रास नहीं आता, उसे खाने के बाद अप्रसन्नता होती है। जो बात तुम्हें रास आ जाये वही तुम्हारा धर्म है।

धर्म की परिभाषा महावीर ने की हैः बत्थु सहाओ धम्म। वस्तु का स्वभाव धर्म है। बड़ी प्यारी परिभाषा है। स्वभाव धर्म है। तुम धर्म की फिक्र छोड़ो, स्वभाव की फिक्र कर लो। धर्म पीछे-पीछे चला आयेगा। बहुत नासमझ धर्म की फिक्र करते हैं और स्वभाव को पीछे घसीटते हैं। महावीर ने यह नहीं कहा कि धर्म स्वभाव है; महावीर ने कहा, स्वभाव धर्म है। बड़ा फर्क है दोनों में। स्वभाव--जो अनुकूल आ जाये, जो प्रीतिकर लगे, जो प्रेयस है, जिसके पास आते ही तुम नाचने लगते हो, जिसके पास होते ही गंध तुम्हें घेर लेती है--तुम्हारी ही सुगंध!
और पहले से ही ऐसे चलोगे, अपने स्वभाव के अनुकूल तो तुम्हें प्रयास न करना पड़ेगा।
झेन फकीर कहते हैं, अप्रयास से जो सध जाये वही सत्य है; प्रयास से जो सधे, चेष्टा से जो सधे, उसमें कहीं कुछ गड़बड़ है। कली को फूल बनने में कोई अड़चन आती है? कली को खींच-खींचकर फूल बनाना पड़ता है? पौधों को जमीन से खींच-खींचकर बाहर निकालना पड़ता है? अपने से बढ़े चले आते हैं। कलियां लग जाती हैं। कलियां खिल जाती हैं, फूल बन जाते हैं। फूल बन जाते हैं, सुगंध बिखर जाती है--हवाओं में, आकाश की यात्रा पर निकल जाती है। सब चुपचाप होता चला जाता है। ऐसा ही आदमी भी है। पर आदमी की अड़चन यह है कि आदमी के पास सोच-विचार का यंत्र है, उससे अड़चन खड़ी होती है। जरा किसी गुलाब के पौधे को सोच-विचार का यंत्र दे दो, बस मुश्किल हो जायेगी। फिर गुलाब मुश्किल में पड़ा। फिर हजार अड़चनें खड़ी हो जायेंगी। क्योंकि वह सोचेगा, कितना बड़ा फूल चाहिए। पड़ोसी गुलाब से ईर्ष्या भी जगेगी। ईर्ष्या के साथ राजनीति पैदा होगी, महत्वाकांक्षा जगेगी कि मैं सबसे बड़ा गुलाब हो जाऊं। अब अगर वह बटन गुलाब है तो बटन गुलाब है, सबसे बड़ा गुलाब हो नहीं सकता; लेकिन सबसे बड़े गुलाब होने की जद्दो-जहद में बड़ी चिंता खड़ी होगी, रात तनाव रहेगा, नींद न आयेगी, दिनभर उदास रहेगा, गणित बिठायेगाः कैसे बड़ा हो जाऊं! और डर यह है कि इस सब चिंता में जो ऊर्जा नष्ट होगी उससे वह वह भी न हो पायेगा जो हो सकता था।
मनुष्य की तकलीफ यही है--होनी नहीं चाहिए थी। बुद्धि का अगर सदुपयोग
हो तो तुम्हें सहयोग देगी, लेकिन दुरुपयोग हो रहा है। तुम जैन घर में पैदा हो गये अब तुम्हारी बुद्धि कहती है, तुम जैन हो। और तुम्हारी आंखें अगर आंसुओं से भरी हैं तो बड़ी कठिनाई होगी। महावीर के मंदिर में आंसुओं के लिए जगह नहीं है। उस मंदिर में आंसू पाप हैं, वर्जित हैं। तब तुम्हें कृष्ण का कोई मंदिर खोजना पड़े, जहां रोने की छुट्टी है; छुट्टी ही नहीं, जहां रोना साधन है।
अब अगर तुम किसी भक्ति-मार्गी के घर में पैदा हो गये, कृष्ण-मार्गी के
घर में पैदा हो गये और तुम्हारी आंखों में आंसू नहीं हैं--नहीं हैं तो तुम क्या करोगे? परमात्मा ने तुम्हें वैसा नहीं चाहा। सभी रोनेवाले नहीं चाहिए, कुछ हंसनेवाले भी चाहिए। सभी समर्पणवाले नहीं चाहिए, कुछ संकल्पवाले भी चाहिए। जीवन में विरोधों का संतुलन है। जितने यहां समर्पणवाले लोग हैं उतने ही यहां संकल्पवाले लोग हैं। जीवन संतुलन से चलता है। रात और दिन, अंधेरा और प्रकाश, जीवन और मृत्यु, ग्रीष्म और शीत, यहां सब चीजें संतुलित हैं। दो पैर हैं, दो पंख हैं, ताकि संतुलन बना रहे। तो अगर तुम किसी भक्ति-मार्गी के घर में पैदा हो गये और बचपन से ही तुमने नारद के सूत्र सुने कि भक्त भाव-विह्वल हो जाता है, रोमांचित हो जाता है, आंखें आंसुओं से भर जाती हैं, रोता है, उसके गीत गाता है, नाचता है, मदमस्त होता है, मतवाला हो जाता है--अगर तुमने ये सुने और तुम्हारी आंखों में आंसू नहीं आते, तुम क्या करोगे? तुम जबर्दस्ती करोगे। तुमने बुद्धि का सदुपयोग न किया।
अपने को देखो! तुम्हीं महत्वपूर्ण हो; न नारद न महावीर, न मैं न कोई और। तुम्हीं महत्वपूर्ण हो, क्योंकि तुम्हीं तुम्हारे गंतव्य हो। उपयोग कर लो जिसका उपयोग करना हो; लेकिन सदा ध्यान रखना, तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल उपयोग हो, तो तुम पहुंचोगे, नहीं तो भटक जाओगे।
"तेरी यारी में बिहारी सुख न पायो री!"

बिहारी ने बड़े सुख में कहा है यह। तेरी यारी में बिहारी सुख न पायो री! बड़े प्रेम में कहा है। यह उलाहना नहीं है, शिकायत नहीं है। यह प्रेमियों का खेल है, यह प्रेमियों की क्रीड़ा है। भक्त भगवान से कहता है कि तेरे प्रेम में कुछ सुख न मिला। भगवान ही भक्त के साथ थोड़े ही खेलता है, भक्त भी खेलता है! भगवान ही थोड़े ही मजाक करता है भक्त के साथ, भक्त भी करता है। जहां अपनापा है, वहां मजाक भी चलती है।
बिहारी कोई शिकायत नहीं कर रहे हैं। एक पहेली दे रहे हैं परमात्मा को
कि सुनो जी! खूब उलझाया! मगर तुम्हारे प्रेम में कुछ सुख न पाया! लेकिन यह कोई दुख से निकली आवाज नहीं है। इस शब्द में पगे प्रेम को देखते हो! तेरी यारी में बिहारी सुख न पायो री! बड़े सुख में पगे शब्द हैं।
नहीं, उसकी याद में मिला दुख भी सुख है। उसकी राह पर मिले कांटे भी फूल हैं। उसके मार्ग पर मर भी जाना पड़े तो जीवन है। और उसके बिना जीवन भी मिले तो निरर्थक। उसके बिना फूल ही फूल मिलें और कांटे भी न हों तो उनसे मरण-शैय्या ही बनेगी। वे तुम्हारी कब्र पर चढ़ाये गये फूल सिद्ध होंगे। उसके मार्ग पर जो मिल जाये वही सुख है--दुख भी मिलें तो भी। उसके मार्ग पर जा रहे हैं!
तुमने कभी किसी प्रेमी को अपनी प्रेयसी की तरफ जाते देखा! रास्ते में गड़े कांटों की शिकायत करता है? पता भी नहीं चलता। गिर पड़े, चोट खा जाये, लहूलुहान हो जाये, तो भी पता नहीं चलता।
तुलसीदास, कथा कहती है, अपनी पत्नी के प्रेम में सांप को पकड़कर चढ़ गये; समझे कि रस्सी है। मुर्दे की लाश का सहारा लेकर नदी पार उतर गये; समझे कि कोई बहती हुई लकड़ी है।
उसकी दीवानगी में जो डूबे हैं, उन्हें कुछ दुख, दुख मालूम नहीं होता।
दुख भी सुख है उसके मार्ग पर। संसार के मार्ग पर सुख भी दुख हो जाते हैं। प्रभु के मार्ग पर दुख भी सुख हो जाते हैं। यह आध्यात्मिक जीवन की कीमिया है, रसायन है।

दूसरा प्रश्नः शास्त्रीय परंपरा से संन्यासी माया और काम-भोग से विमुख होकर प्रभु-प्राप्ति के लिए उन्मुख होता है; योग और भोग परस्पर विरोधी जाने जाते हैं। लेकिन आपके संन्यास में भोग से विरक्ति पर जोर नहीं है। अतः कृपा कर अपने संन्यास की धारणा को स्पष्ट करें!

धर्म का परंपरा से कोई संबंध नहीं है।
परंपरा यानी वह जो मर चुका। परंपरा यानी पिटी-पिटाई लकीर। परंपरा यानी अतीत के चरण-चिह्न। अतीत जा चुका, चरण-चिह्न रह गये हैं, राहों पर बने।
धर्म परंपरा नहीं है। धर्म तो नित-नूतन है--यद्यपि चिर पुरातन भी। मगर धर्म पुराना नहीं है, परंपरा नहीं है। इसलिए तो धर्म का शिक्षण नहीं हो सकता; परंपरा होती तो शिक्षण हो सकता था। गणित की परंपरा है। विज्ञान की परंपरा है। इसलिए विज्ञान का शिक्षण हो सकता है।
आइंस्टीन ने एक खोज कर ली, सापेक्षता के सिद्धांत की, तो अब कोई हर आदमी को खोजने की जरूरत नहीं है; अब परंपरा बन गई। अब तो सिद्धांत एक दफा खोज लिया गया। अब ऐसा थोड़े है कि हर विद्यार्थी जो पढ़ने जायेगा विश्वविद्यालय में उसको आइंस्टीन के सिद्धांत को फिर-फिर खोजना होगा। बात खतम हो गयी। खोज पूरी हो गयी। एक आदमी ने खोज दिया, फिर परंपरा बन गयी। अब दूसरा तो सिर्फ पढ़ लेगा। आइंस्टीन को जो खोजने में वर्षों लगे होंगे, वह अब किसी विद्यार्थी को पढ़ने में घंटे भी न लगेंगे।
तो विज्ञान की परंपरा बनती है, ट्रेडीशन होती है। धर्म की कोई परंपरा नहीं होती। महावीर को ज्ञान उपलब्ध हुआ, इससे तुम सोचते हो, तुम्हें खोजना न पड़ेगा? बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुआ, इससे क्या तुम सोचते हो बात खतम हो गई, अब तुम पढ़ लोगे धम्मपद? जैसे आइंस्टीन की किताब को पढ़कर कोई सापेक्षता का सिद्धांत समझ लेगा, क्या वैसे ही तुम कृष्ण की गीता पढ़कर कृष्ण के

सिद्धांत को समझ लोगे, या महावीर के वचन पढ़कर महावीर को समझ लोगे? नहीं, तुम्हें फिर-फिर खोजना होगा।
इसे जरा समझना। फिर-फिर खोजना होगा। जो चीज परंपरा बन जाती है उसको दुबारा नहीं खोजना होता; खोज ली गई, बात खतम हो गई।
धर्म परंपरा बनता ही नहीं। उसका प्रत्येक व्यक्ति को पुनः पुनः आविष्कार करना होता है। जो बुद्ध ने खोजा वह बुद्ध का अनुभव है। इतनी ही हमें मिल सकती है उनसे खबर कि खोजनेवाले खोज लेते हैं--बस इतना आश्वासन। सत्य नहीं मिलता, सत्य का आश्वासन मिलता है। सत्य नहीं मिलता, सत्य भी संभव है, इसकी संभावना पर भरोसा मिलता है। महावीर ने खोजा, कृष्ण ने खोजा, क्राइस्ट ने खोजा, इससे हमें केवल इतनी खबर मिलती है कि हम यूं ही व्यर्थ खोज में नहीं लगे हैं, मिल सकता है। बस, इतनी श्रद्धा मिलती है। सत्य नहीं मिलता, इतना आत्म-भरोसा मिलता है कि हम यूं ही अंधेरे में व्यर्थ नहीं टटोल रहे हैं, द्वार है; क्योंकि कुछ लोग निकल गये। कुछ जो भीतर थे बाहर हो गये हैं, तो हम भी हो सकेंगे। लेकिन इससे यह मत सोचना कि उनकी किताब पढ़ ली और चल पड़े द्वार खोजकर और निकल पड़े बाहर। द्वार तुम्हें अपना पुनः खोजना पड़ेगा।
इसलिए धर्म की कोई परंपरा नहीं बनती। और धर्म का कोई शिक्षण नहीं हो सकता। धर्म क्रांति है, परंपरा नहीं--रिवोल्यूशन! और जिस पर घटती है, बस उस पर ही घटती है।
जैसे समझो, तुम्हें अगर प्रेम नहीं हुआ किसी से, तो तुम क्या खाक जानोगे कि प्रेम क्या है! प्रेम-शास्त्र लिखे पड़े हैं, पुस्तकालय अटे पड़े हैं। तुम जाकर पढ़ लो, मजनू को क्या-क्या हुआ, लैला को क्या-क्या हुआ, शीरी- फरिहाद और हीर-रांझा--लेकिन इससे कुछ होगा न!
पढ़ी-लिखी बात कहीं भी जायेगी न, हृदय में छिदेगी न, तीर लगेगा न। तुम वैसे के वैसे खाली लौट आओगे, पांडित्य से भरकर। हां, प्रेम पर अगर कोई कहेगा, तो तुम प्रवचन दे सकोगे। हां, प्रेम पर कोई कहेगा, तुम पी एच. डी. कर सकोगे। लेकिन प्रेम तुम्हारे जीवन में कहीं भी न होगा। प्रेम तो तुम करोगे तो होगा। प्रेम की कोई परंपरा नहीं होती। प्रेम तो हर व्यक्ति को अपना ही खोजना होता है--निजी, वैयक्तिक।
और अच्छा है कि प्रेम की परंपरा नहीं होती; नहीं तो सोचो, कैसा दुर्भाग्य होता, कैसे दुर्दिन आते! लोग प्रेम की किताब पढ़ लेते और समाप्त हो जाते!
सोचो थोड़ा, परमात्मा ऐसे उधार मिलता होता, किसी को मिल गया था पच्चीस
सौ साल पहले, महावीर को, बस खतम! उन्होंने तुम्हारा सारा अभियान छीन लिया। तब तो महावीर ने तुम्हारे जीवन का सारा रस छीन लिया। तब तो वे मित्र न हुए, दुश्मन हो गये। तब तो तुम्हें उन्होंने मौका ही न छोड़ा कुछ खोजने का, तुम्हें यात्रा पर जाने की जगह ही न छोड़ी।
नहीं, परमात्मा कुछ ऐसा है, सत्य कुछ ऐसा है, प्रेम कुछ ऐसा है कि जो खोजता है बस उसी को दर्शन होते हैं। हां, अपने दर्शन की बात दूसरे से कह सकता है। लेकिन उस बात से किसी को दर्शन नहीं होता। उस बात से किसी की सोयी प्यास जग सकती है। उस बात से किसी के भीतर उन्मेष हो सकता है कि चलूं, मैं भी खोजूं; किसी के भीतर चुनौती आ सकती है कि चलूं, मैं क्या कर रहा हूं बैठा-बैठा, उठूं! यह कहां गंवा रहा हूं जीवन बाजार में और दुकान में, उठूं, उसे खोजूं!
इसलिए पहली बातः धर्म परंपरा नहीं है। धर्म चिर-पुरातन, नित-नूतन है।
यह विरोधाभास है। सदा से है, लेकिन फिर भी हर बार नया-नया खोजना पड़ता है। जब धर्म का सूर्योदय होता है तो वह निजी है, वैयक्तिक है, वह सामूहिक नहीं है। वह समाज की संपत्ति और थाती नहीं बनता। अगर तुम भरोसा न करो बुद्ध पर तो बुद्ध के पास कोई उपाय नहीं है तुम्हें भरोसा दिलाने का। कभी तुमने इस पर सोचा? अगर तुम कहो कि हमें शक है कि तुम झूठ बोल रहे हो, कि तुम्हें हुआ है परमात्मा का अनुभव, हम कैसे मानें? तो बुद्ध भी कंधे बिचकाकर रह जायेंगे; वे कहेंगे, अब क्या उपाय है! जो हुआ है वह निजी और वैयक्तिक है। उसे तुम्हारे सामने टेबल पर फैलाकर रख देने की कोई सुविधा नहीं है। जो हुआ

है वह आंतरिक है; उसे बाहर लाकर प्रगट करने का कोई उपाय नहीं है। जो हुआ है वह इतने गहन में हुआ है कि उसकी प्रदर्शनी नहीं सजाई जा सकती, कि जो भी आयें देख लें।
इसीलिए तो दुनिया में इतने परम बुद्धपुरुष हुए, लेकिन फिर भी नास्तिकता नहीं मिटती। मिट नहीं सकती, क्योंकि नास्तिक यह कह रहा है कि हमें दिखला दो। नास्तिक यह कह रहा है, धर्म को परंपरा बना दो। अब यह बड़े मजे की बात हैः जिनको तुम धार्मिक कहते हो वे कहते हैं, धर्म परंपरा है। मैं उनको नास्तिक कहता हूं। नास्तिक भी तो यही कह रहा है कि धर्म को परंपरा बना दो, जैसे विज्ञान परंपरा है; हम जायें प्रयोगशाला में और देख लें; टेस्ट-ट्यूब में पकड़ दो परमात्मा को; बिछा दो टेबल पर सर्जन की तुम्हारी समाधि को; ताकि ठीक-ठीक विश्लेषण हो सके और हम काट-पीट करके जान लें कि मामला क्या है; ले आओ तुम्हारा अनुभव प्रकाश का, सत्य का, बाजार में, जहां हम सब देख लें; क्योंकि जो निज में घटा है, क्या पता सपना हो। क्योंकि साधारण अनुभव में सपने ही निजी होते हैं, बाकी सब चीज तो निजी नहीं है। सिर्फ सपने निजी होते हैं, बाकी तुम जो सपना रात देखते हो, तुम अपनी पत्नी को भी तो उसमें नहीं बुला सकते कि आओ, आज निमंत्रण है। तुम अपनी पत्नी को भी तो नहीं कह सकते कि आज, चलो दोनों साथ-साथ एक ही सपना देखें।
दो आदमी एक मनोवैज्ञानिक के पास इलाज करवा रहे थे। दोनों ने एक दिन सोचा, दफ्तर से बाहर निकलते हुए, एक मजाक करने की बात सोची। एक अप्रैल आ रही थी, तो सोचा कि अप्रैल के दिन एक मजाक करें... मैं भी आऊंगा और एक सपना कहूंगा। और दोनों ने सपना तय कर लिया मनोवैज्ञानिक को सुनाने के लिए। फिर शाम को तुम आना और तुम भी वही सपना कहना। देखें, इस पर क्या गुजरती है! क्योंकि दो आदमी एक ही सपना तो देख ही नहीं सकते। तो उन्होंने सपना तय कर लिया विस्तार से; एक-एक बात कि क्या-क्या हुआ सपने में, लिख लिया, कंठस्थ कर लिया। सुबह एक आया और उसने कहा कि रात एक सपना देखा, इसका अर्थ करें। मनोवैज्ञानिक ने उसका सपना सुना। दोपहर दूसरा आया। उसने भी वही सपना दोहराया। उसने कहा कि रात एक सपना देखा--और विस्तार में इंच-इंच वही! और वह देखता रहा बार-बार कि मनोवैज्ञानिक पर क्या असर हो रहा है। लेकिन वह बड़ा हैरान हुआ कि कुछ खास असर नहीं हो रहा है। पूरा सपना सुनाने के बाद उसने पूछा, "आप क्या सोचते हैं इस सपने के बाबत?" मनोवैज्ञानिक ने कहा कि मैं बड़ा परेशान हूं, क्योंकि तीन आदमी तो यह सपना मुझे दिन में सुना ही चुके हैं। तीन आदमी! वे दोनों बड़े हैरान हुए कि यह तीसरा कौन है! क्योंकि तीसरे को तो उन्होंने बताया नहीं था। सोचते थे, मजाक मनोवैज्ञानिक से कर रहे हैं, लेकिन मनोवैज्ञानिक ने मजाक उनके साथ कर दी। वे बड़ी मुश्किल में पड़ गये कि अब यह तीसरे का कैसे पता चले! और हद्द हो गई, यह तो सपना हम दोनों ने भी देखा नहीं, सिर्फ तय किया था, तीसरा कौन है! दोनों दूसरे दिन आये। उन्होंने कहा, "माफ करें! हम मजाक कर रहे थे। लेकिन तीसरा कौन है?" उन्होंने कहा, "रातभर हम सो नहीं सके।"
मनोवैज्ञानिक ने कहा, "तीसरा कोई नहीं, वह मैं मजाक कर रहा था, क्योंकि
दो आदमी तो देख ही नहीं सकते। वह तो मैं जान ही गया कि जब दो ने एक सपना देखा तो दोनों तय करके आये हैं एक अप्रैल की वजह से। इसलिए मैंने कहा कि तीन तो कह ही चुके। हद्द हो गई!
दो आदमी एक सपना देख ही नहीं सकते। सपना निजी है। इसीलिए तो नास्तिक कहता है, भगवान सपना है। क्योंकि तुम कहते हो, हमने देखा, लेकिन दिखाओ। सपने में और तुम्हारे भगवान के अनुभव में फर्क क्या हुआ? सिर्फ सपना ही ऐसी चीज है जो दूसरे को नहीं दिखाया जा सकता। इसलिए भगवान तुम्हारा सपना है। यह कुंडलिनी-जागरण और प्रकाश के अनुभव--ये सब तुम्हारे सपने हैं। नास्तिक कहता है, इसमें और सपने में फर्क कहां? फर्क तो एक ही होता है सपने में और सचाई में कि सचाई सबकी होती है, सामूहिक होती है, सार्वजनिक होती है। और सपना निजी होता है। इसलिए इतने बुद्धपुरुष हुए और एक नास्तिक को सारे बुद्धपुरुष मिलकर भी राजी नहीं कर सकते, क्योंकि जब तक तुम संदेह किये चले जाओ, कोई उपाय नहीं है, कोई प्रमाण नहीं है।

परमात्मा अनुभव है और उसका कोई प्रमाण नहीं छूटता। जिसको होता है, बस उसको होता है। और जिसको होता है, वह अकेला पड़ जाता है। और जिनको नहीं हुआ है, वे अरबों-खरबों हैं। इसलिए तो बुद्ध हों, महावीर हों, कृष्ण हों, क्राइस्ट हों--वे सभी कहते हैं, श्रद्धा से सुनोगे तो शायद कुछ हो सके; संदेह से सुनोगे तो द्वार तो पहले ही बंद हो गया। श्रद्धा पर इतना जोर क्यों है? इसीलिए कि धर्म की परंपरा नहीं बन सकती। जिसको हुआ है, अगर तुम्हारे मन में उसके प्रति थोड़ी सहानुभूति हो, लगाव हो, थोड़ी चाहत का रंग हो, तुम दोनों में कुछ तालमेल हो, तुम उस आदमी को इतना प्रेम करते हो कि तुम जानते हो कि झूठ वह बोल न सकेगा--तभी। अगर तुम्हारे मन में जरा-सा भी संदेह है कि हो सकता है, यह आदमी झूठ बोल रहा हो; या यह भी हो सकता है कि झूठ न बोल रहा हो, खुद ही धोखा खा गया हो; चाहकर झूठ न बोल रहा हो, लेकिन खुद ही ने सपना इतना गहरा देख लिया हो कि इसे भरोसा आ गया हो; या तो यह धोखा दे रहा है या खुद धोखा खा रहा है--इतना-सा संदेह काफी है, कि सत्य तुम्हारे लिए बंद हो गया।
बुद्धपुरुष तुम्हारे भीतर केवल प्यास को जगा सकते हैं; वह भी तुम्हारी श्रद्धा का सहारा हो तो।
तो पहली तो बात, धर्म कोई परंपरा नहीं है। संन्यास भी कोई परंपरा नहीं है। संन्यास एक-एक व्यक्ति का निजी उदघोषण है; एक-एक व्यक्ति की परमात्मा के द्वारा स्वीकार की गई चुनौती है--अलग-अलग है। इसलिए हर व्यक्ति में जब संन्यास घटित होगा तो भिन्न घटित होगा। संन्यास बड़ी निजी बात है। बड़ी संभावना है।
क्राइस्ट हैं, संन्यस्त पुरुष हैं; पर इनका संन्यास महावीर जैसा नहीं है। क्राइस्ट को कोई अड़चन न थी, कोई मित्र बुलाये और शराब पीने को दे दे तो पी लेते थे। महावीर तो पानी भी न पीयेंगे ऐसा, शराब तो दूर की बात। महावीर तो कहते हैं, किसी के बुलाये वे जायेंगे ही नहीं; क्योंकि किसी के बुलाये गये तो संबंध निर्मित होता है। शराब की तो छोड़ो, पानी पीने भी तुमने महावीर को कहा कि आज मेरे घर आ जाना, भरी दुपहरी है, धूप है, तेज है, थोड़ा छाया में बैठ जाना, पानी पी लेना--तो वे न आयेंगे। क्योंकि वे कहते हैं कि जिसका निमंत्रण तुमने स्वीकार किया उससे संबंध बना लिया।
तो महावीर भीख भी मांगते हैं तो बड़े अनूठे ढंग से मांगते थे। उनकी भीख मांगने का ढंग भी अनूठा है; ऐसा दुनिया में कभी किसी ने भीख नहीं मांगी है। इसलिए कहता हूं, संन्यास बड़ा अनूठा है और प्रत्येक के लिए अलग-अलग घटता है।
महावीर सुबह उठकर ध्यान में निर्णय करते कि आज अगर किसी घर के सामने ऐसी घटना घटी हुई मिलेगी तो वहां मैं हाथ पसार दूंगा। घटना--कि घर के सामने गाय खड़ी हो और उसके सींग में गुड़ लगा हो। कोई ऐसा रोज नहीं घटता ऐसा। एक दफा यह बात उन्होंने तय कर ली, क्योंकि वे कहते थे, अगर अस्तित्व को मुझे भोजन देना है तो वह मेरी शर्त पूरी करेगा, नहीं तो नहीं देगा। इसका मतलब है कि मुझे भूखा रखना चाहता है तो मैं भूखा रहूंगा। अगर मेरे बचने की कोई भी जरूरत है अस्तित्व को, तो मेरी शर्त पूरी करेगा; नहीं तो मैं समझ लूंगा कि ठीक है, बात खतम हो गई, अस्तित्व नहीं चाहता कि मैं बचूं। तो मैं अपनी कोई चेष्टा न करूंगा। अगर अस्तित्व ही चेष्टा करेगा तो ठीक है।
तो एक बार ऐसा हुआ कि तीन महीने तक उन्होंने यह ले लिया व्रत और वे यह किसी को कहते नहीं थे। अब तो जैन मुनि, दिगंबर, जो इसको अब भी मानते हैं, वे कहकर चलते हैं। उन्होंने सब बता रखा है। और उनके सब बंधे हुए प्रतीक हैं, वे सबको मालूम हैं--उनके भक्तों को, कि घर के सामने दो केले लटके हों, तो जितने घरों में दिगंबर जैन मुनि जाता है, वह सब केले लटकाये रखता है। अब उनके बंधे हुए प्रतीक हैं--दो केले लटके हों... इस तरह के कुछ। चार-छह चीजें एक मुनि रखता है, वे उन्हीं-उन्हीं को... । तो वह सब कर देते हैं इंतजाम। एक ही घर में सभी चीजें लटका देते हैं। तो स्वीकार हो गया, यह बेईमानी है। महावीर ने कहा कि गाय खड़ी हो, गुड़ सींग पर लगा हो। तीन महीने तक भोजन न मिला। पर एक दिन मिला। बैलगाड़ी जाती थी गुड़ से भरी और पीछे से एक गाय ने आकर गुड़ खाने की चेष्टा की और उसके सींग में गुड़ लग गया। बस जिस घर के

सामने वह गाय खड़ी थी, वहां महावीर ने अपने हाथ फैला दिये भोजन के लिए। तीन महीने बाद अस्तित्व ने चाहा तो ठीक।
तो महावीर तो निमंत्रण भी स्वीकार न करेंगे। और जीसस हैं, कि न केवल निमंत्रण स्वीकार कर लेते हैं, अगर कोई शराब भी पिलाये तो वह भी पी लेते हैं। वे कहते हैं, क्या अस्वीकार? किस बात का अस्वीकार? क्योंकि सब अस्वीकार अहंकार केंद्रित है। चलो, मित्रों ने चाहा है, पी लो तो पी लेते हैं। अस्वीकार में उन्हें हिंसा मालूम होती है। वे कहते हैं, "नहीं" कहना किसी को दुख पहुंचाना है।
अब बड़ी मुश्किल की बात है।
महावीर नग्न खड़े हैं, कृष्ण सुंदर वस्त्रों से सजे हैं। क्योंकि कृष्ण कहते हैं, जब परमात्मा अवतरित होता है तो उसकी विभूति अवतरित होती है, उसका सौंदर्य अवतरित होता है, उसके हजार-हजार रंग और रूप अवतरित होते हैं। परमात्मा एक इंद्रधनुष है। उसका बड़ा ऐश्वर्य है। उसकी बड़ी महिमा है। इसीलिए तो हम उसे ईश्वर कहते हैं। ईश्वर यानी जिसका ऐश्वर्य है। तो जब कृष्ण में परमात्मा उतरा है, तो वे उसका स्वागत करते हैं, सब तरह से; जैसे तुम्हारे घर कोई मेहमान आ जाये तो तुम घर को सजाते हो। तो कृष्ण कहते हैं, जब परमात्मा उतरा हो तो देह को सजाना होगा। यह घर है। इसमें वह उतरा। उसने अनुकंपा की। तो वे बांसुरी बजाते हैं। वे मोर-मुकुट लगाते हैं।
महावीर नग्न खड़े हैं। सजाने की तो बात दूर, बाल बढ़ जाते हैं तो हाथ से उखाड़ते हैं। नाई के पास नहीं जाते, क्योंकि यह तो नाई के पास जाना समाज में प्रवेश होगा। इसका अर्थ हुआ कि तुम्हें नाई की जरूरत है। समाज का क्या अर्थ होता है? मुझे दूसरे की जरूरत है--यानी समाज। मैं अकेला नहीं रह सकता, नाई की जरूरत पड़ती है--तो भी इतना तो समाज हो ही गया मेरा। कभी नाई की जरूरत पड़ती है, कभी चमार की जरूरत पड़ती है, कभी दर्जी की जरूरत पड़ती है। तो यही तो समाज है। समाज का अर्थ क्या है?
इसलिए मैं कहता हूं, जैनियों का अब तक कोई समाज नहीं है। क्योंकि कोई जैन न तो चमार है, न कोई जैन दर्जी है, न कोई जैन भंगी है। तो जैनियों का कोई समाज नहीं है। जैनी तो हिंदुओं की छाती पर जीते हैं, उनका कोई समाज नहीं है। क्योंकि कोई जैन चमार होने को राजी नहीं है। तो समाज तुम्हारा कैसा? जैनियों से मैं कहता हूं तुम एक बस्ती तो बसाकर बता दो, सिर्फ जैनियों की। तब हम कहेंगे कि तुम्हारा कोई समाज है। कोई जैनी राजी न होगा भंगी बनने को। तो तुम समाज कैसे? तो तुम्हें हिंदुओं की जरूरत है, मुसलमानों की जरूरत है, ईसाइयों की जरूरत है। तो तुम परोपजीवी हो, तुम्हारा अपना कोई समाज नहीं है।
जैन अब तक केवल संस्कृति है, समाज नहीं। वह केवल वायवीय बातें हैं।
इसलिए मैंने पीछे कहा भी कि ये पच्चीस सौ वर्ष महावीर के पूरे हुए, तुम कुछ भी न करो, एक जैनियों की बस्ती तो बना दो--सिर्फ जैनियों की, जो पूरी तरह जैन हो, उससे कम से कम एक नमूना तो मिलेगा कि जैनियों का समाज कैसा होगा। वहां बड़ी कलह मच जायेगी, क्योंकि भंगी कौन बने, जूता कौन सिये, खेती कौन करे! क्योंकि जैन को खेती करनी नहीं चाहिए, हिंसा होती है। सर्जन कौन हो, चीरा-फाड़ी कौन करे! बड़ी कठिनाई खड़ी हो जायेगी। बड़ी मुश्किल हो जायेगी।
समाज का अर्थ होता हैः संबंध, जरूरत। महावीर अकेले जीये--इतने अकेले जीये कि अपने पीछे समाज का कोई सूत्र नहीं छोड़ गये। उन्होंने तो अकेले जी लिया, लेकिन जो उनके पीछे चले, वे बड़ी मुश्किल में पड़े। क्योंकि यह बिल्कुल निजी, एकांत, अकेले होने का आग्रह है महावीर का। उन्होंने कोई समाज बनाया नहीं; लेकिन जो पीछे चलेंगे अनुयायी, वे तो समाज के बिना नहीं जी सकते। उनको तो कपड़े भी चाहिए होंगे, तो कपड़ा कोई बुनेगा, कपास कोई उगायेगा। उन्हें तो भोजन भी चाहिए होगा, तो खेती कोई करेगा, वृक्षों को कोई काटेगा। उन्हें तो दवा भी चाहिए होगी, ऐलोपेथी की दवा भी चाहिए होगी, जो पशुओं को मारकर बनाई जायेगी, किसी के खून से बनेगी, किसी की हड्डी से बनेगी--वह भी कोई करेगा। उन्हें जूते भी पहनने होंगे, तो चमार भी होगा, मरे

हुए जानवरों की चमड़ी भी उधेड़ी जायेगी; मरे हुए काफी न होंगे तो जिंदा मारे भी जायेंगे। यह सब चलेगा।
तो इसमें तो महावीर खड़े हो जाते बाहर, क्योंकि न उनको जूते की जरूरत, न उनको कपड़े की जरूरत।
जरा सोचो तो, उनको समाज की जरूरत नहीं। वे यह कह रहे हैं कि यह हम खड़े हैं हमको कोई समाज की जरूरत नहीं। वे नाई के पास भी नहीं जाते। वे एक साथ में उस्तरा तो रख सकते थे। उस्तरा भी नहीं रखते। वे कहते हैं, उस्तरा रखा तो लोहार... । वे हाथ से उखाड़ते हैं बाल।
इससे ज्यादा स्वतंत्र व्यक्ति पृथ्वी पर दूसरा नहीं हुआ! समाज मुक्त! समाज-शून्य! निपट समाज-शून्य!
तुम कहोगे कि भीख तो मांगते हैं। मगर महावीर की शर्त देखी! महावीर वहां भी धन्यवाद नहीं देते, अगर तुम उनको भीख देते हो। वे कहते हैं कि अस्तित्व ने चाहा। अगर तुम न भी होओगे तो महावीर कहेंगे कि वृक्ष के नीचे खड़ा हो जाऊंगा, अगर फल टपक जाये अपने से तो ठीक, पांच मिनट राह देख लूंगा, हट जाऊंगा। वे महीनों भूखे रहे।
बारह वर्ष की तपश्चर्या के काल में, कहते हैं केवल तीन सौ साठ दिन उन्होंने भोजन लिया। बारह वर्ष के लंबे काल में, केवल एक वर्ष भोजन लिया, ग्यारह वर्ष भूखे रहे। कभी महीना भर भूखे, फिर एक दिन भोजन; कभी पंद्रह दिन भूखे, फिर एक दिन भोजन; कभी आठ दिन भूखे, फिर एक दिन भोजन; ऐसा मिला-जुलाकर बारह साल में एक साल भोजन और ग्यारह साल भूखे। औसत ग्यारह दिन के बाद उन्होंने भोजन लिया, बारहवें दिन। मगर यह भोजन के लिए वे धन्यवाद नहीं देते किसी को। वे कहते हैं, तुम्हारा कोई धन्यवाद नहीं है, तुम्हारा कोई अनुग्रह नहीं। मैंने तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। मैं तो अपने हिसाब से चल रहा हूं। अस्तित्व देना चाहता है, ले लेता हूं; अस्तित्व नहीं देता तो मांग भी नहीं करता हूं। वे द्वार पर आकर खड़े हो जाते हैं, वे मांग भी नहीं करते। वे यह भी नहीं कहते कि दो; क्योंकि देने का मतलब तो होगा, कर्म की शुरुआत हो गई, लेना-देना शुरू हो गया।
इधर कृष्ण हैं। परमात्मा के लिए जगह बनाते हैं तो शरीर सजाते हैं।
उस बात में भी अर्थ मालूम पड़ता है कि जब प्रभु घर आये हों तो ऐसा क्या रूखा-सूखा स्वागत करना! बंदनवार बनाओ! स्वागत द्वार बनाओ! जो भी हो फूल-पत्ती, लटकाओ! लेकिन कुछ तो करो। साज-संगीत बजाओ। सुगंध फैलाओ। धूप-दीप जलाओ। कुछ तो करो। प्रभु द्वार पर आये हैं!
कृष्ण को बिल्कुल न जंचेगा कि नंगे खड़े हो जाओ, प्रभु द्वार पर आये हैं। महावीर को जंचा; क्योंकि महावीर कहते हैं कि प्रभु को किसी ऐश्वर्य की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि वह स्वयं ऐश्वर्यवान है। और हम जो भी करेंगे वह छोटा ही होगा, वह काफी न होगा।
दोनों के तर्क सही हैं। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि अगर तुमने एक का तर्क पकड़ लिया तो तुम अंधे हो जाओगे, दूसरे का तर्क न देख पाओगे। और इस जगत में जितने लोग संन्यास को उपलब्ध हुए, उन सब का अपने संन्यस्त होने का ढंग है।
इसलिए संन्यास की कोई परंपरा नहीं है। संन्यास व्यक्तिगत क्रांति है। अब "संन्यासी माया और काम-भोग से विमुख होकर प्रभु-प्राप्ति के लिए उन्मुख होता है", यह बात भी सच नहीं है। जिसने पूछा है, उनको ठीक-ठीक पता नहीं है; उन्हें भक्ति मार्ग का पता नहीं है। क्योंकि भक्ति मार्ग का संन्यासी भोग से विमुख नहीं होता, परमात्मा का ही भोग शुरू करता है। जिन मित्र ने पूछा है, उन्हें हिंदू, शंकराचार्य, जैन, महावीर, गौतम सिद्धार्थ, बुद्ध--इनकी परंपरा के संन्यासियों का बोध है। और ऐसा हुआ है कि इनकी परंपरा इतनी प्रभावी हो गयी कि धीरे-धीरे ऐसा लगने लगा कि दूसरी कोई परंपरा नहीं है। रामानुज का भी संन्यासी है। निम्बार्क का भी संन्यासी है। चैतन्य महाप्रभु का भी संन्यासी है। मगर वे ओझल हो गये। बुद्ध, महावीर, और शंकराचार्य इतने प्रभावी हो गये--और प्रभावी हो जाने का कारण है, क्योंकि तुम सब भोगी हो। इसे तुम्हें जरा अड़चन होगी समझने में। चूंकि तुम सब भोगी हो, त्यागी की भाषा तुम्हें समझ में आती है। क्योंकि त्यागी

की भाषा तुमसे विपरीत है। जो तुम्हारे पास नहीं है, उसमें आकर्षण पैदा होता है। गरीब अमीर होना चाहता है। तुम भोगी हो, तुम त्यागी होना चाहते हो। तुम कहते हो, भोग में तो दुख ही दुख पाया; इसलिए महावीर, शंकर और बुद्ध ठीक ही कहते होंगे कि त्याग में सुख है, क्योंकि एक तो हमें अनुभव हो गया कि भोग में दुख है।
रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य--इनकी भाषा तुमने नहीं समझी; क्योंकि वे कहते हैं कि तुम्हारे भोग में दुख नहीं है, तुम्हारा भोग गलत चीजों का हो रहा है, इसलिए दुख है। भोग भगवान का करो! तुमने अभी स्त्री को भोगा है; लेकिन कभी स्त्री में भगवान को देखकर भोगो, फिर दुख समाप्त हुआ! तुमने अभी भोजन को भोगा है, दुख है; लेकिन भोजन में भगवान को देखकर भोगो, दुख समाप्त हुआ।
उनकी बात में भी सार है। अब इधर मैं हूं। मैं कहता हूं कि दोनों का संगीत पैदा हो जाये तो संन्यास है। मैं कहता हूं, तुम्हारा त्याग ऐसा हो कि भोगी के भोग से ज्यादा गहरा और तुम्हारा भोग ऐसा हो कि त्यागी के त्याग से ज्यादा गहरा। तो मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि एक परम समन्वय हो। तुम भोगो--त्यागते हुए, तुम त्यागो--भोगते हुए।
उपनिषद कहते हैं, तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। उन्होंने ही भोगा, जिन्होंने त्यागा। या उसका ऐसा भी अर्थ कर सकते हैं कि उन्होंने ही त्यागा जिन्होंने भोगा। वह वचन बड़ा अपूर्व है। ऐसा भोगो, ऐसा गहरा भोगो कि भोग में ही त्याग घटित हो जाये।
अब इसे थोड़ा समझो। जब तुम अधूरा-अधूरा भोगते हो तो भोग सरकता है। जो
भी जीवन में अधूरा अनुभव है, वह पीछा करता है। जब भी अनुभव पूरा हो जाता है, छुटकारा हो जाता है। अगर तुमने स्त्री को ठीक से न भोगा, तो तुम्हारे मन में स्त्री की कामना छाया डालती रहेगी। अगर तुमने ठीक से भोग लिया, एक स्त्री को भी एक संभोग में भी ठीक से अनुभव कर लिया और जान लिया, क्या है, तुम मुक्त हो गये! उसी क्षण तुम भोग के बाहर हो गये।
गहरा भोग त्याग ले आता है। और गहरे त्यागी के भोग की चर्चा करनी मुश्किल है, क्योंकि वही भोगना जानता है।
तुम जरा सोचो! जब कृष्ण भोजन करते होंगे या महावीर भी जब भोजन करते होंगे, तो तुमने ऐसा भोजन कभी भी नहीं किया जैसा महावीर करते होंगे। चाहे उन्हें रूखी-सूखी रोटी ही मिली हो, उस रूखी-सूखी में से भी ब्रह्म को निचोड़ लेते होंगे। उस रूखी-सूखी रोटी में से सिर्फ खून और मांस-मज्जा ही नहीं आती थी उनको, ब्रह्म भी आता था। इसलिए तो उपनिषद कहते हैंः अन्नं ब्रह्म! अन्न ब्रह्म है। जिन्होंने लिखा है, उन्होंने खूब भोगकर लिखा होगा, खूब अन्न को परखकर लिखा होगा।
एक संन्यासी बीमार था। थोड़ा-थोड़ा भोजन लेता था। चिकित्सकों ने उससे कहा कि इतने थोड़े भोजन से काम न चलेगा, थोड़ा और भोजन लो। तो उस संन्यासी ने कहा, इतना काफी है, क्योंकि इसमें से मैं वही नहीं ले रहा हूं जो दिखाई पड़ता है, वह भी ले रहा हूं जो दिखाई नहीं पड़ता। और जब मैं श्वास लेता हूं, तब भी मैं भोजन कर रहा हूं--क्योंकि प्राण... । और जब मैं आकाश को देखता हूं, तब भी भोजन कर रहा हूं--क्योंकि आकाश... । जब सूरज की किरणें मुझ पर पड़ती हैं, तब भी भोजन कर रहा हूं--क्योंकि किरणें प्रवेश करती हैं। भोजन तो चौबीस घंटे चल रहा है। ब्रह्म चौबीस घंटे हजार-हजार मार्गों से तुम में उतर रहा है और नाच रहा है।
जिसने ठीक से भोगा, वह हर भोग में ब्रह्म को खोज लेगा। और जिसने ठीक से त्यागा, उसकी आंख इतनी शुद्ध और निर्मल हो जाती है कि उसे सिवाय ब्रह्म के फिर कुछ दिखाई पड़ता नहीं।
अब तक ब्राह्मण और श्रमण संस्कृतियां विपरीत खड़ी रही हैं। श्रमण-संस्कृति त्याग की संस्कृति है। ब्राह्मण-संस्कृति भोग की संस्कृति है। ब्राह्मण-संस्कृति परमात्मा के ऐश्वर्य की संस्कृति है, परमात्मा के विस्तार की। श्रमण-संस्कृति त्याग की संस्कृति है, वीतराग की, परमात्मा के संकोच की, वापसी यात्रा है। इसीलिए रामानुज, वल्लभ और निम्बार्क; शंकर को हिंदू नहीं मानते। वे कहते हैं, प्रच्छन्न बौद्ध, छिपा हुआ बौद्ध है यह

आदमी। निम्बार्क, शंकर के बीच; वल्लभ, शंकर के बीच; रामानुज, शंकर के बीच बड़ा विवाद है। और मैं भी मानता हूं, शंकर हिंदू नहीं हैं--हो नहीं सकते। शंकर ने बड़े छिपे रास्ते से श्रमण-संस्कृति को ब्राह्मण-संस्कृति की छाती पर हावी कर दिया। इसलिए शंकर के संन्यासी को तुम जानते हो, वही संन्यासी हो गया खास। वह संन्यासी बिल्कुल हिंदू है ही नहीं।
तुमने उपनिषद के ऋषि-मुनियों को देखा है, सुनी है उनकी बात, उनकी खबर, उनकी कहानी सुनी? उपनिषद के ऋषि-मुनि गृहस्थ थे। पत्नी थी उनकी, बच्चे थे उनके, घर-द्वार था उनका, बाग-उपवन थे उनके, गऊएं थीं उनकी, धन-धान्य था; त्यागी नहीं थे। बुद्ध और जैन अर्थों में त्यागी नहीं थे। भोगकर ही भगवान को उन्होंने जाना था। शंकर ने श्रमण-संस्कृति की बात का प्रभाव देखकर... क्योंकि जब श्रमण साधु खड़े हुए तो स्वभावतः हिंदू ब्राह्मण, ऋषि-मुनि फीके पड़ने लगे। क्योंकि ये तेजस्वी मालूम पड़े। सब छोड़ दिया! ये चमत्कारी मालूम पड़े, क्योंकि बड़े उलटे मालूम पड़े। स्वभावतः रास्ते पर सब लोग चलते हैं, कोई जरा शीर्षासन लगाकर खड़ा हो जाये, तो भीड़ इकट्ठी हो जायेगी। वही आदमी पैर के बल खड़ा रहे, कोई न आयेगा; सिर के बल खड़ा हो जाये, सब आ जायेंगे। वे कहेंगे, क्या मामला हो गया! कोई फूल चढ़ाने लगेगा, कोई हाथ जोड़ने लगेगा कि कोई चमत्कार कर रहा है, यह आदमी बड़ा त्यागी है! उलटा आकर्षित करता है। तो जैन और बौद्ध संन्यासियों ने बड़ा आकर्षण पैदा किया। शंकर ने बड़े छिपे द्वार से उनकी ही बात को हिंदू-छाती पर सवार करवा दिया। अगर कोई गौर से देखे तो हिंदू संस्कृति को बचानेवाले शंकर नहीं हैं, नष्ट करनेवाले हैं। हालांकि लोग सोचते हैं, शंकर ने बचा लिया--बचाया नहीं! यह बचाना क्या बचाना हुआ? यह तो नाम का ही फर्क हुआ।
हिंदू संस्कृति भोग का परम स्वीकार है। और भोग में ही परमात्मा का आविष्कार है। श्रमण-संस्कृति त्याग का, संन्यास का, छोड़ने का, विरक्ति का, वैराग्य का मार्ग है। और उसी से परमात्मा को पाना है।
मेरे देखे, त्याग और भोग दो पंखों की तरह हैं।
श्रमण-संस्कृति भी अधूरी है, ब्राह्मण-संस्कृति भी अधूरी है। मैं उसी आदमी को पूरा कहता हूं, उसी को मैं परमहंस कहता हूं, जिसके दोनों पंख सुदृढ़ हैं; जो न भोग की तरफ झुका है न त्याग की तरफ झुका है; जिसका कोई चुनाव ही नहीं है; जो सहज शांत जो भी घट रहा है, उसे स्वीकार किया है; घर में है तो घर में स्वीकार है, मंदिर में है तो मंदिर में; पत्नी है तो ठीक, पत्नी मर गई तो ठीक; पत्नी होनी ही चाहिए, ऐसा भी नहीं है; पत्नी नहीं ही होनी चाहिए, ऐसा भी नहीं है--जिसका कोई आग्रह नहीं है, निराग्रही!
संन्यास का मैं अर्थ करता हूंः सम्यक न्यास। जिसने अपने जीवन को संतुलित कर लिया है; जिसने अपने जीवन को ऐसी बुनियाद दी है जो अपंग नहीं है, जो अधूरी नहीं है, जो परिपूर्ण है। भोग और त्याग दोनों जिसमें समाविष्ट हैं, वही मेरे लिए संन्यासी है।
और मजा ही क्या, छोड़कर भाग गये तब छूटा तो मजा क्या! यहां रहे और छोड़ा, बाजार में खड़े रहे और भीतर हिमालय प्रगट हुआ... !
यह हमीं हैं कि तेरा दर्द छुपाकर दिल में
काम दुनिया के बदस्तूर किए जाते हैं।
छोड़ देना आसान है, पकड़ रखना भी आसान है; पकड़े हुए छोड़ देना अति कठिन है। बड़ी कुशलता चाहिए। कृष्ण ने जिसको कहा हैः योगः कर्मसु कौशलम्। बड़ी कुशलता चाहिए! योग की कुशलता चाहिए! जैसे कि कोई नट सधी हुई रस्सी पर चलता है, दो खाइयों के बीच खिंची हुई रस्सी पर चलता है। तो देखा, कैसा सम्हालता है, संतुलित करता है; कभी बायें झुकता कभी दायें झुकता; जब दिखता है, बायें झुकना ज्यादा हो गया, अब गिरूंगा, तो दायें झुकता है, ताकि बायें की तरफ जो असंतुलन हो गया था, वह संतुलित हो जाये। फिर देखता है, अब दायें तरफ ज्यादा झुकने लगा, तो बायें तरफ झुकता है। बायें को दायें से सम्हालता है, दायें को बायें से सम्हालता है। ऐसे बीच में तनी रस्सी पर चलता है।
और धर्म तो खड्ग की धार है। वह तो बड़ा बारीक रास्ता है, संकीर्ण रास्ता है--ठीक खिंची हुई रस्सी की तरह दो खाइयों के बीच में। इधर संसार

है, उधर परमात्मा है, बीच में खिंची हुई रस्सी है--उस पर चलनेवाले को बड़ा कुशल होना चाहिए।
तो अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम बुझ जाये और फिर वैराग्य हो, तो कुछ खास न हुआ।
प्रेम जलता रहे और वैराग्य हो तो कुछ हुआ।
बुझी इश्क की राख अंधेर है
मुसलमां नहीं राख का ढेर है
शराबे-कुहन फिर पिला साकिया
वही जाम गर्दिश में ला साकिया
मुझे इश्क के पर लगा कर उड़ा
मेरी खाक जुगनू बना कर उड़ा
जिगर में वही तीर फिर पार कर
तमन्ना को सीने में बेदार कर।
बुझी इश्क की राख अंधेर है।
प्रेम का अंगारा बुझ जाये तो फिर जिसे तुम वैराग्य कहते हो, वह राख ही राख है।
प्रेम का अंगारा भी जलता रहे और जलाये न, तो कुछ कुशलता हुई, तो कुछ तुमने साधा, तो तुमने कुछ पाया।
बुझी इश्क की राख अंधेर है
मुसलमां नहीं राख का ढेर है।
--फिर वह आदमी धार्मिक नहीं, मुसलमां नहीं--राख का ढेर है।
तो एक तरफ जलते हुए, उभरते हुए अंगारे ज्वालामुखी हैं, और एक तरफ राख
के ढेर हैं--बुझ गये, ठंडे पड़ गये, प्राण ही खो गये, निष्प्राण हो गये। तो एक तरफ पागल लोग हैं, और एक तरफ मरे हुए लोग हैं। कहीं बीच में... !
पागलपन इतना न मिट जाये कि मौत हो जाये, और पागलपन इतना भी न हो कि होश
खो जाये। पागलपन जिंदा रहे और फिर भी मौत घट जाये। अहंकार मरे, तुम न मरो। संसार का भोग मरे, परमात्मा का भोग न मरे। त्याग हो, लेकिन जीवंत हो, रसधार न सूख जाये।
शराबे-कुहन फिर पिला साकिया!
--बड़ी प्यारी पंक्तियां हैं। पंक्तियां यह कह रही हैं, अगर राख का ढेर
हो गये हम, तो क्या सार! हे परमात्मा, फिर थोड़ी शराब बरसा!
शराबे-कुहन फिर पिला साकिया
वही जाम गर्दिश में ला साकिया
--फिर वही जाम गर्दिश में ला। अभी संसार को प्रेम किया था, अब तुझे प्रेम करेंगे; लेकिन फिर वही जाम दोहरा। प्रेम तो बचे; जो व्यर्थ के लिए था वह सार्थक के लिये हो जाये। दौड़ तो बचे; अभी वस्तुओं के लिए दौड़े थे, अब परमात्मा के लिये दौड़ हो जाये।
शराबे-कुहन फिर पिला साकिया
वही जाम गर्दिश में ला साकिया
मुझे इश्क के पर लगा कर उड़ा!
--अभी इश्क के पर तो थे, लेकिन खिसकते रहे जमीन पर, रगड़ते रहे नाक जमीन पर। मुझे इश्क के पर लगाकर उड़ा! उड़ें परमात्मा की तरफ, लेकिन पर तो इश्क के हों, प्रेम के हों।
मेरी खाक जुगनू बना कर उड़ा
जिगर से वही तीर फिर पार कर।
--वह जो संसार में घटा था, वह जो किसी युवती के लिए घटा था, किसी युवक के लिए घटा था, वह जो धन के लिए घटा था, पद के लिए घटा था--वही तीर!
जिगर से वही तीर फिर पार कर
तमन्ना को सीने में बेदार कर!
--वह जो वासना थी, आकांक्षा थी, अभीप्सा थी, वस्तुओं के लिए, संसार के लिए--उसे फिर जगा, लेकिन अब तेरे लिए!

बहुत लोग हैं, अधिक लोग ऐसे ही हैं--जीते हैं, भोगते हैं, लेकिन भोग करना उन्हें आया नहीं। वासना की है, चाहत में अपने को डुबाया, लेकिन चाहत की कला न आयी।
न आया हमें इश्क करना न आया
मरे उम्र भर और मरना न आया।
जीवन एक कला है और धर्म सबसे बड़ी कीमिया है। इसलिए मेरे लिए संन्यासी
का जो अर्थ है, वह हैः संतुलन, सम्यक संतुलन, सम्यक न्यास; कुछ छोड़ना नहीं और सब छूट जाये; कहीं भागना नहीं और सबसे मुक्ति हो जाये; पैर पड़ते रहें जलधारों पर लेकिन गीले न हों; आग से गुजरना हो जाये, लेकिन कोई घाव न पड़े। और ऐसा संभव है। और ऐसा जिस दिन बहुत बड़ी मात्रा में संभव होगा, उस दिन जीवन की दो धाराएं, श्रमण और ब्राह्मण, मिलेंगी; भक्त और ज्ञानी आलिंगन करेगा। और उस दिन जगत में पहली दफा धर्म की परिपूर्णता प्रगट होगी। अभी तक धर्म अधूरा-अधूरा प्रगट हुआ है, खंड-खंड में प्रगट हुआ है।

तीसरा प्रश्नः एक मार्ग भगवान महावीर का है--संघर्ष का, संकल्प का; दूसरा मार्ग शरणागति का, समर्पण का। और दोनों मुक्ति के लिए हैं।
कृपया बतायें कि भक्ति करने से आदमी को अपने बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ेगा अथवा नहीं?

कर्म की भाषा भक्त की भाषा नहीं है। यह तो ऐसे ही है, जैसे तुम पूछो कि बगीचे से गुजरने पर मरुस्थल बीच में पड़ेगा या नहीं; या मरुस्थल से गुजरने पर फूल कमल के खिले हुए मिलेंगे या नहीं। तुम अलग-अलग धाराओं की बात कर रहे हो।
कर्म की भाषा समर्पण के मार्ग की भाषा नहीं है; संकल्प के मार्ग की भाषा है। संकल्प कहता हैः तुमने जो किया है वही तुम पाओगे। इसलिए महावीर का तो पूरा शास्त्र कर्म के सिद्धांत पर खड़ा है। भगवान तो हटा ही दिया है महावीर ने; कर्म ही भगवान हो गया है--तुम जो करते हो वही; कार्य-कारण; सीधा विज्ञान है।
भक्त को कर्म की भाषा ही नहीं आती। भक्त कहता है, हमने कभी कुछ किया ही नहीं, वही करवा रहा है। भक्त कहता है, हम कर्ता ही नहीं हैं, कर्ता वही है; और उसने जो करवाया हमने किया; गुनहगार हो तो वही हो। भक्त के सामने भगवान को मुश्किल पड़ेगी; क्योंकि भक्त कहेगा, "तूने करवाया, हमने किया, हमको फंसाता है?"
इसलिए भक्त कर्म की भाषा नहीं बोलता। भक्त कहता है, सब तुझ पर छोड़ा, कर्म भी छोड़े। अपने को ही छोड़ा तो अब कर्म का खाता कहां अलग रखें? जब सब छोड़ा तो बैंक-बैलेंस भी तुझे ही दिया। ऐसा थोड़े ही है कि अपना बैंक-बैलेंस बचा लिया और कहा कि बाकी सब दिया।
तुम्हें तो जुहद-ओ-रिया पर बहुत है अपने गरूर
खुदा है शेख जी! हमसे भी गुनहगारों का।
भक्त कहता है, "शेख जी! तुम्हें तो बड़ा गरूर है अपने कर्मों का, शुभ कर्मों का, उपासना, पूजा, प्रार्थना का, साधना, तपश्चर्या का!"
तुम्हें तो जुहद-ओ-रिया पर बहुत है अपने गरूर!
लेकिन भक्त यह भी कहता है कि यह सब जो तुमने किया है, थोथा है; क्योंकि करने का भाव तो भीतर मौजूद ही है। इसलिए यह सब वंचना है। और हम तुम से कहते हैंः खुदा है शेख जी! हमसे भी गुनहगारों का। वह हमारी भी खबर लेगा। वह सिर्फ धार्मिकों का ही नहीं है, गुनहगारों का भी है।
फरिश्ते हश्र में पूछेंगे पाकबाजों से
गुनाह क्यों न किए, क्या खुदा गफूर न था?
वे जो पुण्यात्मा हैं, भक्त कहता है, उनसे जरूर फरिश्ते पूछेंगे स्वर्ग में।
फरिश्ते हश्र में पूछेंगे पाकबाजों से।
--पवित्र लोगों से, धर्मात्माओं से, पुण्यात्माओं से।
गुनाह क्यों न किए, क्या खुदा गफूर न था?

क्या तुम्हें भरोसा न था कि उसकी करुणा अपरंपार है? तुम्हें कुछ संदेह था? कर लेते गुनाह! ऐसे क्या डरे-डरे जीये?
नहीं, भक्त की भाषा अलग है।
ध्यान रखो, अगर कर्मों का हिसाब रखना हो तो भक्ति का रास्ता तुम्हारे लिए नहीं है। गणित और काव्य की भाषा अलग-अलग है। गणित में दो और दो चार ही होते हैं, काव्य में कभी-कभी दो और दो पांच भी हो जाते हैं, कभी तीन भी रह जाते हैं। काव्य तो रहस्य है।
तो अगर तुम्हें गणित की भाषा समझ में आती हो तो तुम भक्ति की भाषा ही छोड़ो, तो फिर कर्मों का हिसाब रखो। जो-जो बुरा किया है, उसके ठीक-ठीक तुलना में गणित की तरह भला करो। एक-एक काटो। कठिन होगा मार्ग, लेकिन किसी की करुणा पर तुम्हें निर्भर न रहना पड़ेगा। जटिल होगा, बड़ा दुर्धर्ष संघर्ष होगा। क्योंकि अनंत-अनंत जन्मों के पाप हैं, उन्हें काटना आसान नहीं है। इसलिए तो महावीर जन्मों-जन्मों यात्रा करते हैं। काटते-काटते, काटते- काटते, पच्चीस सौ वर्ष पहले वह घड़ी आई, जब वह काट पाये। इसलिए महावीर और बुद्ध दोनों ने, श्रमण संस्कृति के दोनों आधार हैं, अपने पिछले जन्मों की कथा कही है।
किसी भक्त ने फिक्र नहीं कीः क्या करना, हिसाब क्या रखना उसका! महावीर
और बुद्ध ने कही है। दोनों ने जाति-स्मरण, पिछले जन्मों के स्मरण को एक खास विधि माना, खास विधि बनाया कि पीछे जन्मों में जाओ; क्योंकि हिसाब पूरा देखना पड़ेगा, कहां-कहां भूल-चूक की है, वहां-वहां सुधार करना है; जहां-जहां गलत किया, उसके मुकाबले ठीक करना है; जहां-जहां पाप हुआ वहां-वहां पुण्य रखना है। धीरे-धीरे-धीरे तराजू को बराबर करना है, दोनों पलड़े जब बराबर हो जायेंगे और कांटा जब बीच में सम्यकत्व पर खड़ा हो जायेगा तब तुम मुक्त हो सकोगे। बड़ा हिसाबी-किताबी मामला है। मगर कुछ हैं जिनको इस में रस है। जरूर वे वैसा करें।
लेकिन भक्तों ने कभी पिछले जन्मों का हिसाब नहीं किया। उन्होंने कहा, "हिसाब कौन रखे! तू ही रख! तू ही सम्हाल! तूने भेजा, हम आये। तूने चलाया, हम चले! तूने जैसा रखा, हम राजी रहे!"
भक्त की तो पूरी बात ही इतनी है कि मैं नहीं हूं, तू ही है! इसलिए भक्त
को कोई सवाल नहीं है।
दोनों मार्ग पहुंचा देते हैं। भक्त छलांग से पहुंचता है, ज्ञानी इंच-इंच काटकर पहुंचता है। भक्त एकबारगी पहुंच जाता है। एक साथ छोड़ देता है अपने "मैं" को। वह पूरा का पूरा उसके चरणों में अपने सिर को रख देता है--एक साथ! ज्ञानी काटता है, पाप को छोड़ता है, पुण्य को पकड़ता है--फिर एक ऐसी घड़ी आती है, तब पुण्य को भी छोड़ता है। नहीं तो पुण्य ही अहंकार बन जाता है। इसलिए महावीर के मार्ग पर जो चलते हैं, पहले पाप को काटो पुण्य से, फिर
एक घड़ी आयेगी तब पुण्य को भी काटो, क्योंकि वह सोने की जंजीरें हैं। पहले पाप को मिटाओ पुण्य से, एक कांटे को दूसरे से निकालो; फिर दोनों कांटों को फेंक दो, फिर पाप भी पुण्य भी दोनों चले जायें। जब सारे कर्म शून्य हो जायेंगे तो कर्ता मिट जाता है। जब कर्म ही न बचे तो कर्ता कौन! यह महावीर का मार्ग है।
भक्त का मार्ग यह है, वह कहता हैः हम कर्ता को ही रखे आते हैं उसके चरणों में। कर्म से शुरू नहीं करता भक्त। भक्त कर्ता का समर्पण करता है। वह कहता है, "यह रहे! बुरे-भले जैसे भी हैं, तू स्वीकार कर! पत्र-पुष्पम्। यह जो कुछ हमारे पास है; पत्ते, फूल, फूल की पंखुड़ी सही, यह तू सम्हाल! ज्यादा कुछ है नहीं!"
वह अपने अहंकार को सीधा रखता है।
ज्ञानी के मार्ग पर, संकल्प के मार्ग पर कर्म को काट-काटकर कर्ता मिटाया जाता है। भक्ति के मार्ग पर कर्ता को छोड़कर ही सारे कर्म मिट जाते हैं।

आखिरी सवालः सुनता था कि इस जहां से आगे जहां और भी हैं, इस मकां से आगे मकां और भी हैं; लेकिन अब आप से मिलने पर ऐसा प्रतीत होता हैः

गर बर रूए जमीं बहिश्त अस्त
हमीं अस्त हमीं अस्त हमीं अस्त।
--यदि इस पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है। ऐसा क्यों हुआ, कृपापूर्वक समझायें!

छोड़ो भी समझ को! समझ के पीछे क्यों इतना लट्ठ लेकर पड़े हो? समझ से ऐसा क्या लेना-देना है? समझ को खाओगे कि पीयोगे कि ओढ़ोगे? जो हुआ है उसके बीच में समझ को मत लाओ। समझ बाधा डालेगी। समझ ने सदा ही बाधा डाली है। विश्लेषण तोड़ देता है उन चीजों को, फोड़ देता है उन चीजों को--जो विश्लेषण के पार हैं।
जैसे मैं एक सुंदर फूल तुम्हें दूं, भोगो इसे! सूंघो इसे! पीयो इसके रस
को आंखों से। नाच लो थोड़ी देर इसके साथ! जल्दी ही यह फूल कुम्हला जायेगा। जल्दी ही फूल फिर जैसे अदृश्य से आया, अदृश्य में लीन हो जायेगा। विश्लेषण मत करो, अन्यथा तुम भागोगे, काटोगे-पीटोगे फूल को, सोचोगे कहां सौंदर्य है, कहां छिपा है! उस काट-पीट में फूल भी खो जायेगा, सौंदर्य भी खो जायेगा। विश्लेषण से सौंदर्य का पता नहीं चलता, न सत्य का पता चलता है; क्योंकि जो है, वह अखंड में है। इसलिए मैं कहता हूं, छोड़ो समझ को! समझ खंडित करती है चीजों को। वह कहती है, काटो-पीटो, जांचो, तोड़ो! सारा विज्ञान तोड़-फोड़ से चलता है। तुम दे दो वैज्ञानिक को फूल, वह फौरन भागेगा प्रयोगशाला में। फूल को देखेगा भी नहीं। फूल को थोड़ा मौका भी न देगा कि फूल थोड़ा गुनगुना ले। भागेगा प्रयोगशाला में। जल्दी ही तुम पाओगे, पंखुड़ियां बिखर गईं। विच्छेद कर डाला उसने फूल का। जल्दी ही तुम पाओगे, लेबिल लगा दिये गये, अलग-अलग बोतलों में उसने फूल से निकालकर रस संजो दिये। बता देगा, कितना लवण है, कितनी मिट्टी है, कितनी शक्कर है, कितना क्या है। सब बता देगा, लेकिन कोई भी ऐसी बोतल न होगी जिसमें सौंदर्य होगा, और सब चीजें पकड़ में आ जायेंगी। पार्थिव पकड़ में आ जायेगा, अपार्थिव छूट जायेगा। तुम पूछोगे, "सौंदर्य कहां है? हमने फूल दिया था, एक सुंदर फूल दिया था--यह फूल का विश्लेषण हुआ, सौंदर्य कहां है?" वह कहेगा, "सौंदर्य था ही नहीं। मैंने बड़े गौर से काटा-पीटा, कोई भी चीज बाहर नहीं जाने दी है। जितना वजन फूल का था--उतना ही इन चीजों का है, तुम तौल ले सकते हो। सौंदर्य कहीं गया नहीं। था ही नहीं। होगा ही नहीं। तुम किसी भ्रांति में पड़े होओगे। तुमने कोई सपना देखा होगा।"
समझ खंड-खंड करती है। समझ यानी विश्लेषण। और सत्य उपलब्ध होता है संश्लेषण से, जोड़ से, अखंड से। तो मैं तुमसे कहता हूं, अगर लगता है कहीं, यहीं स्वर्ग है, तो अब समझने की फिक्र छोड़ो! स्वर्ग में तो समझ मत लाओ! समझ से संसार चलता है। समझ से संसार बनता है। स्वर्ग में तो समझ मत लाओ! अगर काव्य उठा है, अगर हृदय अभिभूत हुआ है तो नाचो! अब स्वर्ग आ गया है, तुम पूछते हो कि ऐसा क्यों हुआ! जो हुआ, हुआ।
"क्यों" में जाने का अर्थ हैः अतीत में जाओ। "क्यों" में जाने का अर्थ हैः कारण में जाओ। "क्यों" में जाने का अर्थ हैः विज्ञान में जाओ। विज्ञान पूछता है, "क्यों?"
नहीं, धर्म स्वीकार करता है। धर्म पूछता ही नहीं। धर्म कोई प्रश्न नहीं है। धर्म एक आश्चर्यभाव है। धर्म कहता है, अहा! यही स्वर्ग है, तो नाच लें, तो गीत गा लें। सुनो इस कोयल को!
स्वर्ग अगर आ गया तो आखिरी दरवाजा आ गया!
तेरी उम्मीद छुट नहीं सकती
तेरे दर के सिवाय दर ही नहीं।
और क्या देखने को बाकी है,
आप से दिल लगा के देख लिया।
अगर परमात्मा से थोड़ा दिल लग गया तो वही स्वर्ग है।
और क्या देखने को बाकी है,
आप से दिल लगा के देख लिया।

पर अब बुद्धि को मत दौड़ाओ। अब बुद्धि के जाल मत बुनो। छोड़ो भी। बुद्धि विरस कर देगी। बुद्धिमान स्वर्ग भी चला जाये, नर्क को निर्मित कर लेगा; क्योंकि वह स्वीकार नहीं कर सकता है। घटना घट भी जाये तो भी पूछता है, "क्यों!" "क्यों" का कोई उत्तर नहीं है। ऐसा है। जब भी तुम्हारा दिल खुला होता है और प्यारे को तुम उपलब्ध होते हो, घट जाता है।
तुमने किसी को भी प्रेम किया, वहीं से परमात्मा की किरणें उतरनी शुरू
हो जाती हैं, वही खिड़की हो जाता है, वही वातायन हो जाता है। तुमने अगर मुझे प्रेम किया तो यहां स्वर्ग बन जायेगा। जिनका मुझ से प्रेम नहीं है, वे तुम्हें पागल समझेंगे। उन्हें सोचने दो कि क्या हुआ, क्यों हुआ, कैसे हुआ! यह काम उन पर छोड़ दो, जिनको नहीं हुआ है। कुछ काम उनके लिए भी तो छोड़ो।
और क्या देखने को बाकी है,
आप से दिल लगा के देख लिया।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
पांचवां प्रवचन

परम औषधिः साक्षी-भाव

घर में आग लगी हो तो बाहर जाने के दो ही उपाय हैंः या तो बाहर आग नहीं
है, ऐसा दिखाई पड़े; या घर की आग जीवन-घाती है, ऐसा दिखाई पड़े।
या तो बाहर सुख है, आनंद है, जीवन है, ऐसी प्रतीति हो, तो व्यक्ति घर के बाहर भागे; और या घर की पीड़ा, घर के भीतर लगी आग जलाने लगे, अनुभव में आये, जगाये, तो व्यक्ति बाहर भागे।
दुनिया में दो ही तरह के धर्म हैं। एक--जो परमात्मा के आनंद का वर्णन करते हैं; उस परम दशा के सुख की महिमा गाते हैं; समाधि का सौरभ, उस सौरभ के गीत गुनगुनाते हैं। और दूसरे धर्म हैं--जो तुम्हारी जीवन-दशा की अग्नि, दुख, पीड़ा, छाती में चुभे कांटों का विचार करते हैं।
महावीर का धर्म दूसरे प्रकार का धर्म है; इसलिए दुख की बार-बार चर्चा होगी। पतंजलि का धर्म पहले प्रकार का धर्म है; इसलिए परमात्मा के प्रसाद, समाधि के आनंद, ध्यान के हर्षोन्माद की बार-बार चर्चा होगी। लेकिन दोनों का लक्ष्य एक है कि तुम घर के बाहर आ जाओ। और यदि गौर से देखो तो महावीर की पकड़ ज्यादा वैज्ञानिक, ज्यादा तर्क-युक्त, ज्यादा व्यवहारिक है। क्योंकि जिस परमात्मा की हम चर्चा कर रहे हैं। उसे देखा नहीं। चर्चा में बहुत बल हो नहीं सकता। तुम कभी घर के बाहर आये नहीं।
मैं तुमसे कहता हूं, "घर के बाहर बड़ा प्रकाश है, क्यों अंधेरे में पड़े हो?" लेकिन तुमने अंधेरे के सिवा कभी कुछ जाना नहीं। प्रकाश की तुम कल्पना भी नहीं कर सकते हो। प्रकाश का सपना भी नहीं देख सकते हो। प्रकाश से तुम्हारी कोई पहचान नहीं हुई। तो तुम सुनोगे, सुन लोगे--लेकिन इससे तुम्हारे जीवन में रूपांतरण न होगा। तुम कहोगे, "क्या भरोसा, प्रकाश होता भी है?"
तुमसे मैं फूलों की बात करूं, फूलों की कथा कहूं; लेकिन फूल तुमने देखे ही न हों और तुम्हारे नासापुटों में कभी गंध ने आवास न किया हो, तो क्या उपाय है? तुम कैसे आकर्षित होओगे? तुम सुन लोगे बात, लेकिन तुम्हारे हृदय को छू न पायेगी; तुम्हारे प्राणों में इससे क्रांति का जन्म न होगा। शायद तुम पंडित हो जाओ, लेकिन प्रज्ञावान न हो सकोगे। शायद तुम भी सुन-सुनकर यही बात औरों से करने लगो। शायद शब्द तुम्हें कंठस्थ हो जायें, शास्त्र तुम्हारी स्मृति में प्रविष्ट हो जायें; लेकिन तुम दौड़ोगे नहीं घर के बाहर। तुम कहोगे, हाथ की आधी को भी छोड़कर सपने की पूरी के लिए दौड़ना ठीक नहीं है; ये बातें सपनीली हैं, अव्यवहारिक हैं, कल्पना-जाल हैं। भीतर तो तुम यही जानते रहोगे। तुम्हारा शब्द-ज्ञान बढ़ता जायेगा, अज्ञान मिटेगा नहीं। तुम धर्म के काव्य में डूब जाओगे; लेकिन धर्म तुम्हारे जीवन का तथ्य न बनेगा। तब तुम एक दुविधा में भी पड़ोगे। क्योंकि जो सुख तुम्हारे शब्दों में छा जायेगा और प्राणों को आंदोलित न करेगा, वह तुम्हें दो हिस्सों में तोड़ देगाः जीवन में तो दुख होगा, जिह्वा पर सुख की बातें होंगी; प्राणों में तो कांटे छिदे होंगे, स्मृति में कल्पना के फूल तैरेंगे। तुम दो हिस्सों में खंडित हो जाओगे।
सारी मनुष्य जाति खंडित हो गई है; क्योंकि एक तरफ परमात्मा खींचता है... और उसकी खींच में बहुत बल नहीं हो सकता। क्योंकि जिसे जाना नहीं, चखा नहीं, जीया नहीं, उसकी पुकार सुनोगे कैसे? वह बहुत दूर की धुंधली-सी आवाज, बस एक गूंज रह जाती है, प्रतिध्वनि-मात्र, छाया-मात्र।
और जीवन की वासनाएं हैं, वे प्रगाढ़ हैं; वे तुम्हें खींचेंगी। तो तुम बंधे तो रहोगे जीवन के ही पहिये से, घसिटते तो रहोगे जीवन के रथ के साथ ही, धूल-धवांस तो जीवन की ही खाते रहोगे। हां, सपने तुम मोक्ष के, बैकुंठ के देखने लगोगे। इससे तुम शांत न होओगे। इससे तुम्हारी अशांति शायद थोड़ी और बढ़ जायेगी। इससे तुम परमात्मा को पा सकोगे, ऐसा तो कम दिखायी पड़ता है; इससे तुम जीवन में उदास और खिन्न और विषाद-युक्त हो जाओगे।

इसलिए महावीर ने दूसरा मार्ग चुना। वे परमात्मा की बात ही नहीं करते। उसे अलग ही कर दिया, बाद ही दे दी; हाशिये पर भी नहीं रखा है, शास्त्र की तो बात छोड़ो। उसे हटा ही दिया। समाधि के प्रसाद-गुण की बात नहीं करते, न आनंद की बात करते--वे तो तुम्हारे जीवन की, जहां तुम हो, उसकी ही बात करते हैं, और कहते हैं, यहां दुख है। वे तुम्हें जीवन के दुख की प्रगाढ़ता से परिचित करा देना चाहते हैं। वे तुम्हारे हृदय में चुभे हुए शूलों से तुम्हारी पहचान करा देना चाहते हैं। उनका सारा आधार तुम्हारी वस्तुस्थिति से तुम्हें परिचित करा देना है। तुम्हें पता चल जाए कि घर में आग लग गई है। तुम जल रहे हो, लपटों से घिरे हो। तो महावीर मानते हैं कि तुम दौड़कर बाहर निकल जाओगे। निकलोगे बाहर तो बाहर को जानोगे।
फूल भी खिले हैं। नहीं कि फूल नहीं खिले हैं। परमात्मा भी है। नहीं कि परमात्मा नहीं है। समाधि के भी मेघ बरस रहे हैं, अमृत की धार बह रही है। सब है। लेकिन महवीर उसकी बात नहीं करते। वे तो सिर्फ तुम्हारे जीवन के दुख की बार-बार पुनरुक्ति करते हैं। तुम्हें जीवन का दुख दिखाई पड़ जाये तो तुम जीवन को छोड़ने लगोगे। उसी छोड़ने में मोक्ष उतरता है।
इसलिए महावीर का मार्ग निषेध का है, नकार का है। महावीर का मार्ग चिकित्सक का है। तुम चिकित्सक के पास जाते हो तो वह स्वास्थ्य की चर्चा नहीं करता। नहीं कि स्वास्थ्य नहीं है, लेकिन बीमार से स्वास्थ्य की क्या चर्चा करनी! वह तुम्हारी बीमारी का निदान करता है; बीमारियों को उघाड़कर रखता है; एक-एक बीमारी की पकड़ करता है, जांच-परीक्षण करता है, डायगनोसिस करता है। बीमारी पकड़ में आ जाती है, बीमारी समझ में आ जाती है--औषधि बता देता है। स्वास्थ्य की कहीं कोई चिकित्सक बात करता है! बीमारी पकड़ में आ गई, चिकित्सा का पता चल गया--अब तुम्हारे ऊपर है। अगर तुम्हें बीमारी दिखाई पड़ती है, बीमारी की पीड़ा दिखाई पड़ती है, तो औषधि तुम वरण करोगे; चाहे औषधि कड़वी भी क्यों न हो। बीमारी से साक्षात्कार हुआ तो औषधि तुम अंगीकर कर लोगे। औषधि बीमारी को काट देगी। जो शेष रह जायेगा बीमारी के कट जाने के बाद, वह अनिर्वचनीय है; उसकी बात ही नहीं की जा सकती; वह अभिव्यक्ति के योग्य नहीं है; उसकी कोई अभिव्यंजना कभी नहीं कर पाया। कहो "ईश्वर", तो भी कुछ पता नहीं चलता। कहो "समाधि", तो भी शब्द ही हाथ में आता है। कहो "कैवल्य", कुछ शब्द की गूंज होती है; हृदय में कोई अनुभूति का तालमेल नहीं बैठता। लेकिन जब तुम्हारी सारी बीमारी हट जाती है, तब अचानक जो घटता है-- जीवंत, अस्तित्वगत--वही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य बताया नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है।
तो इसलिए महावीर के वचनों में तुम्हें बार-बार दुख की चर्चा मिलेगी। इससे तुम्हें थोड़ी बेचैनी भी होगी। क्योंकि तुम सुख की चर्चा सुनना चाहते हो।
तुम कहते हो, यह क्या दुख का राग है!
इसलिए पश्चिम में जब महावीर के वचन पहली दफा पहुंचने शुरू हुए तो लोगों ने समझा, दुखवादी हैं। महावीर दुखवादी नहीं हैं। इनसे परम सुखवादी कभी पैदा नहीं हुआ। क्या चिकित्सक तुम्हारी बीमारी की चर्चा करे, औषधि का निदान करे, तो तुम यह कहोगे कि यह बीमारी का पक्षपाती है? वह चर्चा ही बीमारी की इसलिए कर रहा है कि तुम उससे छूट जाओ। वह स्वास्थ्य की चर्चा नहीं कर रहा है, क्योंकि चर्चा करने से कभी कोई स्वस्थ हुआ! इसलिए महावीर दुख का ही विश्लेषण करते चले जाते हैं। हजार तरफ से एक ही इशारा है उनकाः दुख। तुम्हें यह दिखाई पड़ने लगे कि तुम्हारा सारा जीवन दुख है--सुबह से सांझ तक, जन्म से मृत्यु तक--दुख का ही अंबार है, राशि है।
ऐसी तुम्हारी पहचान जिस दिन हो जायेगी... और यही हो सकता है, क्योंकि इसमें तुम खड़े हो। परमात्मा तो दूर की बातचीत है; हो न हो, दुख है। तो महावीर इसकी भी चिंता नहीं करते, सृष्टि कब बनी; इसकी भी चिंता नहीं करते, किसने बनायी। इन दूर की बातों में जाने से फायदा क्या है? ऐसा तो नहीं है कहीं कि तुम दूर की बातें कर के पास की असलियत को भुलाना चाहते हो? ऐसा तो नहीं है कि सृष्टि किसने बनायी, कौन है बनानेवाला, क्यों बनायी--इस तरह के बड़े-बड़े सवाल उठाकर जिंदगी के असली सवालों को तुम छिपा और ढांक लेना चाहते

हो ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये सब सांत्वना के उपाय हैं, ताकि दुख दिखाई न पड़े; ताकि दुख चुभे न, छिदे न, ताकि दुख की पीड़ा न हो। कहीं तुम्हारे मंदिर-मस्जिद, पूजागृह तुम्हारी सांत्वनाओं का जाल तो नहीं?

महावीर ऐसा ही जानते हैं। यह सब तुम्हारी सांत्वना का जाल है। इसलिए महावीर मित्र भी मालूम नहीं होते। इसलिए तो महावीर बहुत अनुयायी इकट्ठे न कर पाये। सुख की चर्चा की होती, दुखी लोग आ गये होते। उन्होंने दुख की चर्चा की, दुखियों ने सोचा, "हम वैसे ही दुखी हैं, बख्शो!" दुखियों ने कहा, "हम वैसे ही दुखी हैं, तुम्हारे पास आकर और दुख की ही चर्चा, और दुख की ही चर्चा...! ऐसे ही क्या दुख कम हैं, जो अब तुम और चर्चा करके जोड़े जा रहे हो? हमें थोड़ी सांत्वना दो, भरोसा दो, आश्वासन दो, आशा दो। कहो हमें कि आज सब गलत है, कल सब ठीक हो जायेगा। कहो कि यह संसार तो माया है।"

महावीर ने नहीं कहा कि यह संसार माया है; क्योंकि महावीर ने कहा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम दुख को माया कहकर भुलाना चाहते हो! जिस चीज को भी माया कह दो, उसे भुलाने में सुविधा हो जाती है। संसार माया है, तो दुख भी माया है, तो बीमारी भी माया है, तो झेल लो, भोग लो, कुछ असलियत तो इसमें है नहीं, असली चीज तो परमात्मा है।

महावीर ने संसार को बड़ा सत्य माना है; परमात्मा की बात ही नहीं की। जो सत्यों का सत्य है, उसकी तो बात नहीं की; और इस भ्रामक संसार को बड़ा सत्य माना है। क्योंकि महावीर कहते हैं कि तुम्हारे मन को मैं पहचानता हूं। तुम्हारे परमात्मा, तुम्हारे मोक्ष, सब मलहम-पट्टियां हैं; उनसे तुम घाव को छिपाते हो। और यह घाव कुछ ऐसा है, इसकी शल्य-चिकित्सा होनी चाहिए, सर्जरी होनी चाहिए। तो तुम सर्जन के पास जाओगे तो वह दबायेगा भी तुम्हारा घाव, तो तुम चीखोगे भी, मवाद भी निकालेगा--तो तुम यह थोड़ी कहोगे कि दुश्मन हो, कि हम वैसे ही तो दुख में भरे थे, तुमने और मवाद निकाल दी; हम वैसे ही तो तड़फ रहे थे, तुमने यह और क्या किया; ऐसे ही क्या दुख कम था कि तुम छुरी-कांटे लेकर खड़े हो गये हो! नहीं, तुम जानते हो, सर्जन मित्र है। वह उस गलत अंग को काटकर अलग कर देगा, जहां से विष तुम्हारे पूरे जीवन-संस्थान में फैला जा रहा है।

महावीर एक सर्जन हैं; दार्शनिक कम, तत्वचिंतक कम, चिकित्सक ज्यादा हैं। इस शब्द को ख्याल में रखोः चिकित्सक। नानक ने अपने को वैद्य कहा है। बुद्ध ने भी अपने को वैद्य कहा है। महावीर भी वैद्य हैं। ये तुम्हें लोरियां सुनाने में उत्सुक नहीं हैं, कि तुम्हें थोड़ी झपकी लग जाये; तुम रातभर जागे हो, जन्म-जन्म जागे हो, थोड़ा सो लो। नहीं, इनकी उत्सुकता तुम्हें सुलाने में नहीं है, क्योंकि सोने के कारण ही तो तुम्हारे जीवन की सारी पीड़ा और जाल और प्रवंचना का फैलाव है। इसलिए महावीर तुम्हारे दुख से भरी रग को छुएंगे, घबड़ाना मत। दुखवादी नहीं हैं वे। लेकिन तुम दुख में हो। और तुम धीरे-धीरे अपने को इस तरह की भ्रांतियों में डाल लिये हो कि तुम दुख को दुख नहीं मानते; तुम उसे सुख मानने लगे हो--तो तुम्हें बार-बार जगाना पड़ेगा कि दुख दुख है, सुख नहीं।

जिस दिन तुम्हारा सारा जीवन लपटों से भर जायेगा--भरा तो है ही, दिखाई पड़ जायेगा जिस दिन; जिस दिन तुम देखोगे कि यहां कुछ भी तो नहीं है, कीड़े-मकोड़े हैं, घाव, मवाद, पीड़ा ही पीड़ा--उसी दिन छलांग लगाकर इस घर के बाहर हो जाओगे। हां, बाहर खुला आकाश है; सूरज का प्रकाश है; खिले फूल हैं, पक्षियों के गीत हैं; बाहर बड़ी वातास है, बड़ी मधुरिमा है, बड़ा सौंदर्य है! लेकिन वह तो तुम बाहर आओगे, तो ही सुनाई पड़ेगा। वह तो तुम बाहर आओगे, तो ही दिखाई पड़ेगा। इसलिए बाहर की कोई बात नहीं। जहां तुम हो, उसकी बात है। बड़ी व्यवहारिक बात है।

बुद्ध के जीवन में एक उल्लेख है... । और बुद्ध और महावीर इस संबंध में एक ही दृष्टिकोण के हैं। दोनों श्रमण-संस्कृति के आधार हैं। ... कहते हैं बुद्ध को जब परमज्ञान हुआ, तो शैतान प्रगट हुआ। यह कथा बहुत धर्मों में आती हैः जब परम ज्ञान प्रगट होता है तो शैतान भी प्रगट होता है। इस कथा में जरूर कोई सार होगा। यह कथा केवल प्रतीक नहीं हो सकती, क्योंकि यही जीसस के जीवन में भी उल्लेख है, कि जीसस जब ज्ञान के करीब पहुंचे तो शैतान प्रगट

हुआ और शैतान ने उन्हें उत्तेजित किया, उकसाया। और शैतान ने बड़ी वासनाओं के प्रलोभन दिये। और शैतान ने कहा कि सारे जगत का तुझे सम्राट बना दूं, सारी धन-राशि तेरी हो, सुंदरतम स्त्रियां तेरी हों, लंबा तेरा जीवन हो। क्या चाहिए?
वही बुद्ध से भी शैतान ने कहा। बुद्ध हंसते रहे। बुद्ध ने कहा, "मुझे कुछ चाहिए नहीं। मैं बचा नहीं। चाहनेवाला जा चुका, चाह भी जा चुकी। चाहा तो मैंने भी था, बड़े साम्राज्य बनाऊं; चाहा तो मैंने भी था, चक्रवर्ती बनूं। उसी चाह के कारण भिखारी रहा। उसी चाह के कारण भटका जन्मों-जन्मों तक। चाह छोड़ी, तब शांति मिली। चाह जब पूरी गई, तो अब मैं परम आनंद से भरा हूं। अब तू गलत वक्त पर आया है; पहले आता तो शायद तेरे चक्कर में भी पड़ जाता।"
तो शैतान ने कहा कि तुम सोचते हो तुम्हें परमज्ञान हो गया है, तुम्हारा गवाह कौन है? तुम्हारे कहने से ही मान लूंगा? तुम्हारी गवाही कौन दे सकता है?
तो बड़ी अनूठी बात है--तुमने शायद बुद्ध का चित्र या प्रतिमा भी देखी होगी, जिसमें वे एक अंगुली जमीन पर रखे हुए दिखाये गये हैं। बुद्ध ने जमीन पर अंगुली लगाई और कहा, यह पृथ्वी मेरा प्रमाण है, यह मेरी गवाही है। बड़ी हैरानी की बात हैः पृथ्वी को गवाही बता रहे हैं! आकाश में परमात्मा को बताया होता कि परमात्मा मेरा गवाह है तो समझ में आता। लेकिन बुद्ध और महावीर दोनों ही परमात्मा की बात नहीं करते। वे जीवन के यथार्थ की बात कहते हैं। वे कहते हैं, "इस पृथ्वी से पूछ लो। इसी से मैं बना हूं। यही पृथ्वी मेरी देह है। इसी पृथ्वी ने मेरे भीतर हजार-हजार वासनायें उठायी थीं। इसी पृथ्वी से पूछ लो। बहुत दुख मैंने झेले हैं, और अब मैं दुखों के बाहर हो गया हूं। और कौन गवाह हो सकता है?"
पृथ्वी से गवाही दिलवाते हैं बुद्ध। यह बड़ा प्रतीकात्मक है। महावीर
के लिए यह संसार बड़ा वास्तविक है। वे इसको माया नहीं कहते। वे कहते हैं, यह सत्य है। माया कहकर तुम बचो मत। बचकर कुछ सार न पाओगे। इस सत्य से जूझना ही पड़ेगा। और यह सत्य बड़ा कष्टपूर्ण है। इसलिए मन करता है, मान लो यह है ही नहीं। तुम भी जानते हो तुम्हारे मन की प्रक्रिया को। जो चीज बहुत कष्ट देने लगती है, तुम मानने लगते हो यह है ही नहीं।
मेरे एक परिचित थे। उन्हें टी. बी. की बीमारी थी। उनकी पत्नी उन्हें मेरे पास लायीं और कहा, कि आप किसी तरह इनको समझायें कि डाक्टर से चलकर ठीक से निदान करवा लें। पति भड़क उठे। कहा कि "क्या कहती है? जब मैं बीमार ही नहीं हूं तो मैं जाऊं क्यों? परीक्षण के लिए क्यों जाऊं? परीक्षण के लिए वह जाये जो बीमार है। जब मैं बीमार ही नहीं हूं तो जाने की बात ही क्या उठाती है?"
लेकिन उनकी मैंने घबड़ाहट देखी, उनका तमतमाया चेहरा देखा, उनके कंपते हाथ देखे। मैंने उनसे कहा कि आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। आप बीमार ही नहीं हैं। चिकित्सक के पास जाने की कोई जरूरत ही नहीं है।
वे बड़े प्रसन्न हुए। कहा कि जिसके पास ले जाती है यह मेरी पत्नी, वही कहता है कि जाइये, जब यह कहती है तो परीक्षा करवा लीजिये। मैंने कहा कि नहीं आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। कोई बीमारी नहीं है, इसलिए चिकित्सक के पास जाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन यह पत्नी पागल हुई जा रही है, जरा इस पर दया करो! यह मर जायेगी इसी घुटन में; तुम इस पर कृपा करके चिकित्सक के पास चले जाओ! बीमारी तो है ही नहीं तो चिकित्सक भी कहेगा, बीमारी नहीं है। तुम घबड़ाते क्यों हो? मगर इसकी शंका, इसका शल्य दूर हो जायेगा।
वे बड़े उदास हो गये।
कहने लगे, यह तो उलझा दिया आपने। सच यह है, उनकी आंख में आंसू आ गये कि मैं डरता हूं। मुझे भी डर है कि शायद बीमारी है। मैं किसी तरह अपने को समझा रहा हूं कि नहीं है। चिकित्सक के पास तो कैसे छिपा पाऊंगा कि नहीं है। पत्नी को समझाने की कोशिश कर रहा हूं, बच्चों को समझाने की कोशिश कर रहा हूं। मैं मौत से डरता हूं। टी. बी. शब्द ही मुझे घबड़ाता है। अगर चिकित्सक

ने कहा कि टी. बी. है तो मैं मर ही जाऊंगा। टी. बी. से मरूंगा या नहीं, यह सवाल नहीं है; बस यह जानकर कि टी. बी. है, मैं मर जाऊंगा।
मैंने उनसे कहा, तुम पागल हुए हो। टी. बी. से आज कहीं कोई मरता है। तुम पुराने जमाने की बात कर रहे हो।
घबड़ाहट! डाक्टर के पास जाने से लोग डरते हैं। जब बीमारी बहुत ही पकड़ लेती है, कोई उपाय ही नहीं रह जाता है। तब डाक्टर के पास जाते हैं। डाक्टर के पास जाने के पहले और तरह के लोगों के पास जाते हैं--कोई ओझा, कोई मंत्र पढ़नेवाला, कोई फकीर, कोई ताबीज बांध देनेवाला--और जगह जाते हैं, जहां सांत्वना है; लेकिन डाक्टर के पास सीधा-सीधा नहीं जाते। क्योंकि डाक्टर तो सीधा कहेगा, फलां-फलां बीमारी है, इलाज की बात उठेगी। तो पहले मंत्र पढ़ते हैं, ताबीज बांधते हैं, भभूत ले आते हैं। पहले साईंबाबा; फिर जब सब साईंबाबा हार जायें, तब मजबूरी में चिकित्सक के पास जाते हैं।
ठीक वैसा ही धर्म के जगत में भी है। पहले तुम उनकी बात सुनोगे जो कहते हैं, संसार माया है। महावीर के पास जाने में डरोगे, पैर कंपेंगे; क्योंकि महावीर तुम्हारी किसी भ्रांत आकांक्षाओं को सहारा देने में उत्सुक नहीं हैं। महावीर तो ठीक तुम्हारी उस रग पर हाथ रख देंगे, जहां पीड़ा है, जहां दुख है।
ये सूत्र निदान-सूत्र हैं। ये चिकित्सक के वचन हैं। इन्हें तुम गौर
से सुनना। चाहे ये कितना ही कष्ट देते मालूम पड़ें, इनसे ही मुक्ति का मार्ग है। महावीर के पास जाकर अगर तुम कह सको--
फिर मैं आया हूं तेरे पास ऐ अमीरे-कारवां
--हे पथ-प्रदर्शक! मैं फिर तेरे पास आया हूं।
छोड़ आया था जिसे तू, वो मेरी मंजिल न थी।
--जहां तू मुझे छोड़ आया था, या जहां मैंने तुझे छोड़ दिया था, वह मेरी मंजिल न थी। मैं गलत पथ-प्रदर्शकों के साथ भटका।
दुनिया में जहां एक ठीक पथ-प्रदर्शक होता है, वहां निन्यानबे गलत भी होते हैं। होंगे ही, क्योंकि जिंदगी में इतना दुख है, और दुख से बचने की इतनी आकांक्षा है, कि भ्रांत और धोखा देनेवाले लोग भी पैदा होंगे ही। जहां इतने लोग बीमारी से बचना चाहते हैं--बीमारी की चिकित्सा तो बहुत कम लोग करना चाहते हैं; पहली तो कोशिश यही होती है कि कोई समझा दे कि बीमारी है ही नहीं--वहां ऐसे लोग भी जरूर पैदा हो जायेंगे जो समझा देंगे कि बीमारी है ही नहीं; यह ताबीज बांध लेना, सब ठीक हो जायेगा; यह राम-राम जप लेना, सब ठीक हो जायेगा; यह मंत्र की माला फेर लेना रोज, सब ठीक हो जायेगा। काश, इतना आसान होता!
थोड़ा सोचो भी, कैसी बचकानी आकांक्षाएं हैं! क्या तुम सोचते हो जीवन इतना आसान है कि राम-राम जपने से ठीक हो जायेगा? जरा जीवन की जटिलता तो देखो, उलझन तो देखो! इतना आसान है कि एक माला के गुरिए सरका देने से ठीक हो जायेगा? तुम किन मंदिरों के सामने हाथ जोड़े खड़े हो? प्रतिमाएं परमात्मा की तो नहीं हैं--तुम्हारी ही आकांक्षाओं की हैं; तुमने ही बनायी हैं; तुमने ही प्रतिष्ठा दी है; तुमने ही पूजा दी है! पहले तुम भगवान बनाते हो, फिर अपने ही बनाये भगवान के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हो! थोड़ा जाल तो देखो! थोड़ी अपनी चालाकी तो देखो! पहले तुम्हीं भगवान बनाते हो! तुम्हारी मान्यता से ही कोई मूर्ति भगवान हो जाती है। कल तक बाजार में खड़ी थी, बिकती थी, तब भगवान न थी--फिर तुम ले आते हो, मंत्रोच्चार करते हो, पूजा-प्रार्थना करते हो, पंडित-पुरोहित इकट्ठे होते हैं, क्रियाकांड होता है। फिर पत्थर जो बाजार में बिकता था, तुम्हीं खरीद लाये, तुम्हारे ही जैसे लोगों ने बनाया, उसी मूर्ति के सामने तुम हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हो! तुम प्रार्थना करने लगते हो! तुम भी जानते हो गहरे में, प्रार्थना काम न आयेगी। क्योंकि परमात्मा ही तुम्हारा बनाया हुआ है। परमात्मा बनाने के हमने ग्रामोद्योग खोले हुए हैं। बिना परमात्मा के रहना मुश्किल है; क्योंकि भय है, और जीवन है, और कष्ट है और कांटे ही कांटे हैं। तो पृथ्वी से आंख चुराते हैं। आकाश की तरफ देखते हैं। इसलिए सभी का परमात्मा आकाश में है।

बुद्ध ने ठीक किया कि पृथ्वी की तरफ हाथ लगाकर कहा कि यह मेरी गवाह है। किसी और से पूछा होता तो वह आकाश की तरफ इशारा करता कि वहां मेरा परमात्मा है, वह मेरा गवाह है। आकाश की तरफ तुम आंख उठाते हो क्योंकि पृथ्वी से आंख चुराना चाहते हो। लेकिन तुम जानते हो कितना ही झुठलाओ क्या फर्क पड़ेगा?
मैंने सुना हैः
एक ऐसे गांव में जहां बारिश नहीं हो रही थी, एक पुजारी ने घोषणा की कि
वह सब गांववालों के सामने भगवान से प्रार्थना करेगा कि वर्षा हो। ठीक समय पर सब गांववाले उपस्थित हो गये, तो पुजारी ने कहा, "भाइयो और बहनो! इससे पूर्व कि मैं भगवान से प्रार्थना करूं, आपसे एक प्रश्न पूछता हूं कि आप लोगों के छाते कहां हैं?" भगवान से प्रार्थना करने इकट्ठे हुए हैं कि वर्षा हो--होगी वर्षा--छाते कहां हैं? लेकिन जो लोग चले आये हैं प्रार्थना करने, वे भी जानते हैं कि कहीं ऐसे वर्षा होती है! फिर भी चले आये हैं! छाते नहीं लाये हैं! छाता लाये होते तो पता चलता कि श्रद्धा है।
तुम मंदिर तो चले जाते हो--छाता ले जाते हो? मस्जिद तो हो आते हो--छाता
ले जाते हो?
तुम्हें पहले से पता है कि कहीं कुछ होना है! लेकिन कर लो, हर्ज भी क्या है, शायद हो ही जाये!
मुल्ला नसरुद्दीन के साथ मैं एक मकान में ठहरा हुआ था। किसी ने बता दिया उसको कि इस मकान में भूत-प्रेत का वास है। तो वह आया भागा हुआ, उसने जल्दी से सामान बांधा। उसने कहा, "आप रुकना हो रुको, मैं चला! मैं होटल ठहर जाऊंगा, धर्मशाला, कहीं भी, स्टेशन पर सो जाऊंगा।"
मैंने कहा, "मामला क्या है?"
उसने कहा, "किसी ने कहा है कि इस मकान में भूत-प्रेत का वास है।" लेकिन मैंने कहा, "नसरुद्दीन! तुम तो सदा से कहते रहे कि तुम भूत-प्रेत में भरोसा नहीं करते!" उसने कहा कि निश्चित, "मैं भूत-प्रेत में कभी भरोसा नहीं करता।" तो फिर मैंने कहा, "फिर क्यों डरे जा रहे हो?" उसने कहा, "पर क्या पता, मेरा भरोसा गलत हो! मैं गलत भी तो हो सकता हूं! झंझट कौन ले! रात हम स्टेशन पर सो लेंगे।"
एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक जर्मनी में--अभी-अभी उसकी मृत्यु हुई--वह अपनी टेबल के पीछे घोड़े के पैर में लगाए जानेवाला नाल लटकाये हुए था। जर्मनी में ऐसा ख्याल है कि अगर घोड़े के पैर का नाल लटका दो तो परमात्मा से जो भी आशीर्वाद बरसते हैं, वे नाल में अटक जाते हैं, तुम उनके मालिक हो जाते हो। कोई चीज रोकने को चाहिए न! तो नाल जो है, प्याली का काम करता है। एक अमरीकन उस वैज्ञानिक को मिलने गया था। वह बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि तुम जैसा महावैज्ञानिक, नोबेल प्राइ.ज, पुरस्कार-विजेता और तुम यह घोड़े का नाल लगाये हुए हो। तुम्हें शर्म नहीं आती? यह तो मैं भरोसा ही नहीं कर सकता कि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी और ऐसे अंध-विश्वास में भरोसा करता होगा!
उसने कहा, यह तो साफ ही है कि मैं और अंध-विश्वास में भरोसा! कभी नहीं। मेरा कोई भरोसा नहीं है। मैं यह नहीं मानता कि इस नाल से कुछ होनेवाला है। फिर क्यों लटकाये हो?
उसने कहा कि लेकिन जिसने मुझे यह दिया है, उसने कहा कि चाहे तुम भरोसा करो या न करो, फायदा तो होता ही है। उसने कहा कि भरोसे न भरोसे का सवाल ही नहीं है।
आदमी बड़ा बेईमान है! प्रार्थना भी कर लेता है, भीतर-भीतर जानता भी रहता है कि कहीं कुछ होना है! यह स्वाभाविक है; क्योंकि जिसकी तुम प्रार्थना कर रहे हो, उससे परिचय ही नहीं है; प्रेम की बातें कर रहे हो, मुलाकात हुई ही नहीं। किसी अजानी स्त्री से कैसे प्रेम करोगे? अपरिचित पुरुष को कैसे प्रेम करोगे? जिसका नाम नहीं सुना, गांव का पता नहीं, जिसकी कभी छवि नहीं देखी, जिसका कभी कोई पत्र भी नहीं मिला, जिसका तुम्हें पता ही नहीं है कि जो है भी या नहीं--उसे तुम प्रेम कैसे करोगे?

तो महावीर प्रार्थना की बात नहीं करते। वे कहते हैं, कोई ऐसे रास्ते
मत खोजो। जीवन सीधा-साफ है। और सचाई यह है कि जिंदगी में दुख है। इस दुख से ही जूझना है, भागना नहीं, पलायन नहीं। इस दुख की चुनौती स्वीकार करनी है। "राग और द्वेष के बीज मूल कारण हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। यह जन्म-मरण का मूल है। और जन्म-मरण को दुख का मूल कहा गया है।"
एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करें। यह पहला सूत्रः "राग और द्वेष कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। और मोह जन्म-मरण का मूल है। और जन्म-मरण को दुख का मूल कहा गया है।"
यह निदान है। यह चिकित्सक की भाषा है। यहां कोशिश चल रही है कि मूल कारण को पकड़ लें। राग और द्वेषः कोई मेरा है, कोई मेरा नहीं है! राग और द्वेषः चाहता हूं कोई बचे, और चाहता हूं कोई नष्ट हो जाये; कहता हूं यह अच्छा है, और कहता हूं यह बुरा है; चुनाव--जो अच्छा है वह हो, जो बुरा है वह न हो।
महावीर कहते हैं, जब तक चुनाव है; जब तक तुम कहते हो, यह होना चाहिए और
वह नहीं होना चाहिए; स्वास्थ्य होना चाहिए, बीमारी नहीं होनी चाहिए; जवानी मिलनी चाहिए, बुढ़ापा नहीं मिलना चाहिए; मित्र घर आये, शत्रु नष्ट हो जाये... । इसलिए तो महावीर वेदों को धर्म न कह सके; क्योंकि वेद की प्रार्थनाओं में भी राग-द्वेष भरा हुआ मालूम पड़ता है। ऐसी प्रार्थनाएं हैं वेद में कि कोई प्रार्थना करता है इंद्र से कि हे इंद्र! मेरे दुश्मनों को नष्ट कर दे। कोई प्रार्थना करता है वेद में कि हे भगवान! मेरी गउओं के थनों में दूध बढ़ जाये और दुश्मनों की गउओं के थनों से दूध सूख जाये! भोले-भाले किसानों की प्रार्थनायें मालूम पड़ती हैं, धर्म कुछ नहीं मालूम पड़ता। यही तो हमारी आकांक्षायें हैं कि मुझे मिल जाये, दूसरे को न मिले, मेरा सुख--दूसरे का दुख भी हो तो उस कीमत पर भी!
महावीर कहते हैं, राग और द्वेष कर्म के बीज हैं। और जहां तुमने चुना, कर्म शुरू हुआ। तुमने कहा, यह मिलना चाहिए, कि तुम उसे पाने की यात्रा पर निकले। तुमने कहा, कि यह नहीं होना चाहिए, कि तुम उसे मिटाने के लिए चले। तुम्हारे मन में यह विचार भी उठा कि दुश्मन मर जाये तो, महावीर कहते हैं, हिंसा हो गयी, कर्म शुरू हो गया।
विचार कर्म का पहला चरण है।
फिर धीरे-धीरे विचार घना होगा, सघन होगा, कृत्य बनेगा, और आज जो तुम्हारे मन में सिर्फ एक भाव की तरह आया था, वह कल-परसों घटना बन जाएगा। दोस्तोवस्की का बड़ा प्रसिद्ध उपन्यास हैः "क्राइम एंड पनिशमेंट", अपराध और दंड। उसमें रासकलोनिकोव नाम का एक पात्र है। वह एक युवक है विश्वविद्यालय का। और उसके सामने ही एक बूढ़ी महिला रहती है--बड़ी धनपति और महाकंजूस! और उसका कुल धंधा गरीबों को चूसना है। ब्याज का काम करती है, और जितना ब्याज ले सकती है उतना लेती है। जो एक बार उसके जाल में फंस जाता है, वह फिर कभी निकल नहीं पाता। ब्याज ही नहीं चुका पाता, मूल के वापिस का तो सवाल ही नहीं है। ब्याज ही बढ़ता चला जाता है। इतनी ज्यादा मात्रा में ब्याज लेती है कि यह जो रासकलोनिकोव है, यह बैठा-बैठा अपनी किताब पढ़ता रहता है, खिड़की से देखता रहता है उस बुढ़िया को। बुढ़िया अस्सी साल की हो गयी। मरने के करीब है। कोई उसके आगे-पीछे नहीं है। लेकिन उसका शोषण जारी है।
इसके मन में ऐसे ही विचार उठता है कि यह बुढ़िया मर ही जाये तो क्या हर्ज होनेवाला है! इसका न तो कोई आगा, न कोई पीछा; न इसके मरने से कोई रोनेवाला है, सारा गांव खुश होगा उलटे, प्रसन्न होंगे लोग, उत्सव मनाया जायेगा। इसको भगवान उठा क्यों नहीं लेता! और यह किसलिए जी रही है? न इसके जीवन में कोई सुख है, कमर झुक गयी है, आंखों से दिखाई नहीं पड़ता, लकड़ी टेककर चलती है। इसे उठा ही ले भगवान!
अब इसमें कुछ बुरा नहीं हुआ है, लेकिन यह विचार का बीज उसके मन में पड़ गया, पड़ गया, पड़ गया, यह बार-बार दोहरने लगा। जब भी बुढ़िया को देखे, उसे यह भाव कि यह उठ ही जाये... । धीरे-धीरे पहले तो सोचता था, परमात्मा उठा ले; फिर सोचने लगा कि यह गांव भी कैसा है, कोई इसको मार ही क्यों नहीं डालता? सारा

गांव चूसे जा रही है! फिर धीरे-धीरे उसे यह भी ख्याल उठने लगा कि मैं यहां बैठा-बैठा क्या कर रहा हूं! एक झटके में यह खतम हो जायेगी। तब वह बड़ा चौंका भी, कि यह कैसा मेरा विचार उठता है! लेकिन ये विचार डोलते रहे, ये तरंगें घूमती रहीं, ये भाव उसके मन में सरकते रहे, सरकते रहे, सघनीभूत होते गये। परीक्षा उसकी करीब आती है और उसे फीस जमा करनी है और पैसे नहीं हैं, तो वह अपनी घड़ी बुढ़िया के पास रेहन रखने जाता है। सोचा भी नहीं है कुछ उसने, कोई हत्या का आयोजन भी नहीं किया है--बस वह घड़ी रेहन रखने गया है। सांझ का वक्त है, धुंधला होता जा रहा है, धुंधलका उतर रहा है; अभी लोगों के दीये भी नहीं जले। वह बुढ़िया के हाथ में घड़ी देता है, बुढ़िया उसे खिड़की के पास ले जाकर रोशनी में देखने की कोशिश करती है, कितने दाम की होगी। वह पीछे खड़ा है। अचानक वह पाता है कि जैसे आविष्ट हो गया। एक झटके में वह कूदा और उसने बुढ़िया की गर्दन पकड़कर दबा दी। वह तो मरने के करीब थी ही। उसने चीख-पुकार भी न की और मर गई। वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ी। तब इसे होश आया कि यह मैंने क्या कर दिया! तब यह घबड़ाया। तब यह भागा। लेकिन किसी को पता भी नहीं चला है। और कोई यह सोच भी नहीं सकता कि यह युवक जो चुपचाप अपनी किताबों में उलझा रहता है, इसकी हत्या करेगा।
पुलिस खोजबीन करती है, मगर कोई पता नहीं चलता। किसी ने देखा नहीं, कोई गवाह नहीं। लेकिन अब इसके मन के भीतर एक भय समा गया है कि यह मैंने क्या किया, यह मैंने क्या किया! अब वह दिन-रात न सो सकता है, न कुछ और कर सकता है। वह खिड़कियां बंद किये बैठा रहता है। वह सोचता हैः अब पुलिस आई; अब यह जूते की आवाज आने लगी; अब यह गाड़ी आ रही है, पुलिस की ही होगी! कोई दरवाजे पर दस्तक देता है, वह घबड़ा जाता है, पसीने-पसीने हो जाता है। अब एक दूसरा विचार उसको पकड़ रहा है कि मैं पकड़ा जाऊंगा। जैसे पहला विचार एक दिन सघनीभूत होकर कृत्य बन गया, बिना सोचे हत्या हो गई, ऐसा ही अब दूसरा विचार घनीभूत होता चला जाता है। अब वह पत्तों से भी चौंकने लगता है; कोई पत्ता खड़कता है और वह घबड़ा जाता है। आसपास के लोग भी चितिंत हो गये हैं कि यह इतना घबड़ाया-घबड़ाया क्यों है, रास्ते पर चलता है तो बच-बचकर चलता है, देखकर चलता हैः कौन आ रहा है, कौन जा रहा है! पुलिस दिखाई पड़ती है, गली में निकल जाता है, भाग खड़ा होता है। आखिर सारे गांव में खबर हो जाती है कि मामला क्या है! लोग उससे पूछने लगते हैं कि मामला क्या है। वह इनकार करता है कि "मामला क्या है, कोई मामला नहीं है! तुमने पूछा क्यों? तुम हो कौन पूछनेवाले? तुमने संदेह कैसे किया?"
लोग बड़े हैरान होते हैं कि जरूर कोई बात है। अब घनी होने लगती है बात। आखिर वह इतनी पीड़ा में पड़ जाता है कि सो भी नहीं सकता; रात-दिन एक ही सपना कि पुलिस पकड़ती है! एक दिन वह पुलिस थाने पहुंच जाता है। वह जाकर वहां कहता हैः पकड़ ही लो, यह बकवास बंद करो! रात-दिन, सुबह शाम न मैं सो सकता, न मैं भोजन कर सकता। हां, मैंने ही हत्या की है। पुलिस इंसपेक्टर भला आदमी है। वह कहता है, "तू पागल हो गया है? तू और हत्या क्यों करेगा? तुझ से बुढ़िया का लेना-देना क्या है?"
पुलिस उसे समझाती है कि तेरा दिमाग तो खराब नहीं हो गया है! वह कहता है, "नहीं, दिमाग खराब नहीं हो गया है, मैंने हत्या की है।" अदालत में वह यही बयान देता है कि मैंने हत्या की है, लेकिन पुलिस कोई गवाह नहीं जुटा पाती।
एक छोटे-से विचार की तरंग आज नहीं कल घटना में रूपांतरित हो जाती है।
तुम जो सोचते हो, वही हो जाते हो। तुम जो सोचते हो, वही तुम्हारा कृत्य बन जायेगा।
इसलिए महावीर कहते हैं, कृत्य को बदलने के पहले विचार पर जागना होगा।
अगर विचार चल पड़ा तो ज्यादा देर नहीं है कृत्य के पूरे हो जाने में। महावीर कहते थेः सोचा, कि आधा हो गया। महावीर के बड़े प्रख्यात सिद्धांतों में, बड़े उलझन-भरे सिद्धांतों में एक यह है कि सोचा कि आधा हो गया। इसको तर्क-रूप से सिद्ध करना बड़ा मुश्किल है। महावीर के दामाद ने इसी बात को लेकर महावीर के खिलाफ बगावत खड़ी कर दी थी और पांच सौ महावीर के मुनियों को लेकर अलग भी हो गया था। क्योंकि उसने कहा, यह बात तो गलत है;

महावीर कहते हैं, सोचा और आधा हो गया, यह तो बात गलत है। क्योंकि मैं सोचता हूं कि यह मकान गिर जाये, आधा तो नहीं गिरता। सोचना सोचना है; होना होना है। सोचने से कैसे आधा हो जायेगा? हर आदमी सोचता है, मैं धनी हो जाऊं, हो तो नहीं पाता! आधा भी नहीं हो पाता!
एक मालिक ने अपने नौकर को समझायाः देखो, यदि किसी काम की योजना ठीक तरह से बन जाये तो समझना चाहिए कि आधा काम हो गया। तत्पश्चात नौकर को कमरों की सफाई का आदेश देकर वे कहीं चले गये। दो घंटे बाद जब वापिस आये तो उन्होंने पूछा, "कहो, काम हो गया?"
"जी, आधा हो गया," नौकर ने तपाक से कहा।
"अच्छा, कौन-कौन से कमरे साफ कर दिये?" मालिक ने पूछा। "जी, सफाई तो अभी शुरू नहीं की परंतु योजना बना ली है कि किस कमरे की किस क्रम से सफाई करनी है," नौकर ने उत्तर दिया।
महावीर के विरोध में जो लोग खड़े हो गये थे, उनकी बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है, क्योंकि सोच लेने से तो नहीं हो जायेगा कुछ। लेकिन महावीर बड़ी गहरी बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, जब पहली तरंग उठ गई, जब बीज भूमि में पड़ गया तो अब यह किसी को भी दिखाई नहीं पड़ता कि वृक्ष हो गया। लेकिन बीज भूमि में पड़ गया--आधी बात हो गई, असली बात हो गई। अब तो समय की ही बात है। अब तो थोड़े समय की ही बात है और थोड़े ऋतु की बात है, वर्षा के बादल आयेंगे, वर्षा होगी, बीज फूटेगा, अंकुर बनेगा। अब यह सब समय की बात है, लेकिन बीज जमीन में पड़ गया--आधी बात हो गई। असली बात तो हो गई। क्योंकि बिना बीज के पड़े वृक्ष कभी पैदा नहीं हो सकता। और बीज पड़ गया है, तो वृक्ष भी पैदा हो जायेगा।
महावीर कहते हैं, अगर वृक्ष को पैदा होने से रोकना हो तो बीज को ही भूमि में पड़ने से रोक लेना। इसलिए वे कहते हैं, राग और द्वेष कर्म के बीज, मूल कारण हैं।
लोग कर्म से बचना चाहते हैं। लोग कहते हैं, कर्मों से कैसे छुटकारा होगा? लोग कहते हैं, कर्मजाल से कैसे मुक्त हों? महावीर कहते हैं, कर्मजाल से मुक्त होना है तो बीज को पकड़ो; शुरू से ही शुरू करो; प्रारंभ से ही प्रारंभ करो। मध्य से कुछ भी नहीं हो सकता।
राग का अर्थ हैः किसी चीज से लगाव। द्वेष का अर्थ हैः किसी चीज से विरोध। राग का अर्थ हैः मैत्री बनाना। द्वेष का अर्थ हैः शत्रुता बनानी। तो न तुम्हारा कोई मित्र हो न कोई शत्रु। न तुम कुछ चाहो और न तुम किसी चीज से विकर्षित होओ। जो हो रहा है, तुम उसे चुपचाप बिना किसी चुनाव के स्वीकार करते चले जाओ। यह महावीर के ध्यान का सूत्र है। जो हो रहा है--सुबह आये सुबह, सांझ आये सांझ, सुख आये सुख, दुख आये दुख; न तो तुम सुख को कहो कि और-और आना, न तुम दुख को कहो कि अब दुबारा मत आना, न तो तुम सुख के गले में फूल मालायें पहनाओ और न तुम दुख का अपमान करो--जो आ जाये द्वार पर, द्वार खुला हो! दुख आये दुख को बसा लेना, सुख आये सुख को बसा लेना; जाता हो जाने देना, क्षणभर को भी रोकना मत! न तो किसी को धकाना, न किसी को बुलाना। जिसको कृष्णमूर्ति "च्वायसलेस अवेयरनेस" कहते हैं। महावीर उसी को "निर्विकल्प ध्यान" कहते हैं।
तुम चुनाव मत करना, क्योंकि चुनाव से ही जकड़ शुरू होती है। चुनाव से
ही तुम बंध जाते हो। और एक दफा चुनाव की तरंग उठ गई कि जल्दी ही समय पाकर कृत्य भी हो जायेगा।
तो कहां जागना है? जागना है जहां से बीज शुरू होता है।
"कर्म मोह से उत्पन्न होता है।" मोह का अर्थ होता हैः तंद्रा। मोह का अर्थ होता हैः मूर्च्छा, प्रमाद। हम सोए-सोए लोग हैंः जैसे हमने नशा किया हुआ है। नशे हमारे अलग-अलग हैं, शराबें हमारी अलग-अलग हैं; लेकिन हम सबने नशा किया हुआ है। कोई आदमी धन के नशे में है; सबको दिखाई पड़ता है कि यह आदमी पागल है, किसलिए धन इकट्ठा कर रहा है! लेकिन जो नशे में है, उसे भर दिखाई नहीं पड़ता। कोई आदमी पद के नशे में है; सबको दिखाई पड़ता है कि क्यों पागल हुए जा रहे हो! बड़ी से बड़ी कुर्सी पर बैठकर भी क्या हो जायेगा? जो बैठे गये

हैं, जरा उनको तो देखो कि क्या हुआ! बहुत धन के जिन्होंने अंबार लगा लिये हैं, उन्होंने क्या पाया?
एंडरू कारनेगी, अमेरीका का करोड़पति, मर रहा था, तो उसने अपने सेक्रेटरी से पूछा कि एक बात पूछनी है। कई बार सोची, फिर मैं संकोच कर कर रह गया; अब तो मरने का दिन भी आ गया, अब पूछ ही लूं तुझसे। तू मेरे पास कोई तीस साल से काम करता है। करीब-करीब जिंदगीभर का साथ है। एक बात ईमान से बता दे, अगर परमात्मा ने तुझ से पूछा होता पैदा होने के पहले कि तू एंडरू कारनेगी बनना चाहता है या एंडरू कारनेगी का सेक्रेटरी बनना चाहता है, तो तूने क्या मांगा होता?
उसने कहा, "मैं सेक्रेटरी ही बनना मांगता।" एंडरू कारनेगी उठकर बैठ गया। उसने कहा, "तेरा मतलब?" उसने कहा कि मैं आपको तीस साल से देख रहा हूं, आपने कुछ भी नहीं पाया। दौड़े बहुत, पहुंचे कहीं भी नहीं। इकट्ठा बहुत कर लिया, लेकिन जितनी चिंता और संताप आपको है, उसे देख-देखकर मैं रोज भगवान को जब रात प्रार्थना करता हूं तो मैं कहता हूं, हे भगवान! तेरी बड़ी कृपा! एंडरू कारनेगी तूने मुझे न बनाया। अच्छा किया। फंसा देता तो मुश्किल हो जाती।
एंडरू कारनेगी ने अपने सेक्रेटरी को कहा कि मैं तो मर रहा हूं, लेकिन
इस बात को तू सारी दुनिया में प्रचारित कर देना। मैं तुझ से राजी हूं। मैं व्यर्थ ही दौड़ा-धूपा।
इतना धन! दस अरब नगद रुपये एंडरू कारनेगी छोड़कर मरा और अरबों का और फैलाव! कहते हैं, उससे बड़ा धनी आदमी सिवाय निजाम हैदराबाद को छोड़कर और कोई न था। पर पाया क्या? न तो सो सकता था ठीक से। अपने बच्चों को भी ठीक से मिल नहीं सकता था। पत्नी भी अपनी अपरिचित जैसी हो गई थी; क्योंकि काम से फुर्सत कहां थी! कहते हैं कि चपरासी भी दफ्तर में नौ बजे पहुंचता, एंडरू कारनेगी आठ बजे पहुंच जाता। चपरासी नौ बजे आता, क्लर्क दस बजे आते, मैनेजर ग्यारह बजे आते, डायरेक्टरर्स एक बजे आते; डायरेक्टर तीन बजे गये, मैनेजर चार बजे गया, क्लर्क भी पांच बजे गये, चपरासी भी साढ़े पांच बजे चला गया-- एंडरू कारनेगी सुबह आठ से लेकर रात नौ और दस और ग्यारह बजे रात तक दफ्तर में बैठा है। यह तो चपरासी से भी गई-बीती हालत हो गई। फिर रात सो न सके क्योंकि चिंताओं का भार, सारी दुनिया में फैला हुआ धन का साम्राज्य! और मरते वक्त भी जब किसी ने उससे पूछा कि "तुम तृप्त मर रहे हो?" उसने कहा, "तृप्ति कैसी! केवल दस अरब रुपये छोड़कर मर रहा हूं, सौ अरब की आकांक्षा थी। पूरा न हो पाया, यात्रा अधूरी रह गई।"
पर जो धन की दौड़ में है उसे नहीं दिखाई पड़ता; उसे एक नशा है। अगर तुम इतना ही करो कि तुम अपने चारों तरफ दौड़ते हुए लोगों को गौर से देख लो, तो तुम्हारी दौड़ धीमी हो जाये। जो पहुंच गये हैं, जरा उनको तुम देख लो। जिन्होंने पा लिया है, जरा उनको तुम देख लो, तो तुम्हारे सब सपने गिर जायें।
उनकी ऊपरी और झूठी शक्लों को मत देखना, उनकी भीतरी, उनकी आंतरिक दशा
को देखना। राष्ट्रपति है कोई, कोई प्रधानमंत्री है--उनकी भीतरी दशा को देखना, अखबारों में छपती तस्वीर को मत देखना। वे तस्वीरें सब झूठी हैं। वे तस्वीरें आयोजित हैं।
स्टेलिन और हिटलर कोई भी तस्वीर को ऐसे ही न छपने देते थे। स्टेलिन और हिटलर की तस्वीरें पहले एक खुफिया विभाग से गुजरती थीं, जहां उनकी जांच की जाती। वही तस्वीर छप पाती थी अखबार में, जो प्रसन्नता प्रगट करती हो, आनंद प्रगट करती हो, खुशी प्रगट करती हो। स्टेलिन के चेहरे पर चेचक के दाग थे; किसी फोटो में कभी नहीं छपे। वे चेचक के दाग कभी स्वीकार नहीं किये गये कि छपें।
राजनेता बीमार पड़ जाते हैं, महीनों तक खबर नहीं दी जाती।
राजनेता और बीमार कहीं पड़ता है? उससे प्रतिमा खंडित होती है। हाथ-पैर डगमगाने लगते हैं, तो भी इसकी खबर नहीं दी जाती।
तस्वीर बनाई हुई है। भीतर से देखो उन्हें, तो बड़े चकित हो जाओगे। उनसे ज्यादा नर्क में कोई भी जीता नहीं। लेकिन कठिनाई उनकी तुम समझ सकते हो।

इतनी मुश्किल से नर्क पाया है, अब यह स्वीकार भी कैसे करें कि यह नर्क है! इतनी जद्दोजहद से पाया है, इतने संघर्ष से पाया है; अब यह कैसे स्वीकार करें कि यह नर्क है!
एक गांव में एक लफंगे आदमी की लोगों ने नाक काट दी। उससे बहुत परेशान थे। हर किसी से छेड़-खान... । गांव की बहू-बेटियों का जीना दूभर हो गया था। नाक कट गई तो वह बड़ा परेशान हुआ, अब क्या करना! वह साधु हो गया और दूसरे गांव चला गया। दूसरे गांव में एक वृक्ष के नीचे बैठ गया, धूनी रमा कर। गांव के लोग... कुतूहल जगा, कौन है भाई! कुछ विचित्र भी है, नाक भी नहीं है, और बड़ी आंखें बंद किये हुए, और ध्यानमग्न बैठा है! लोग आये। गांव के लोग इकट्ठे हो गये। किसी ने पूछा, "महाराज! आप यहां क्या कर रहे हैं?" उसने कहा कि परमात्मा का स्वाद ले रहे हैं; भोग कर रहे हैं प्रभु का। अहा! कैसा आनंद बरस रहा है।
लोगों ने भी आकाश की तरफ देखा। कहा कि हमें दिखाई नहीं पड़ता। उसने कहा, "तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगा... ! उसके लिए नाक कटवानी जरूरी है। और यह तो हिम्मतवरों का काम है। यह तो कभी कोई... । तो धर्म तो खड्ग की धार है। खानानिधार!"
एकाध हिम्मतवर खड़ा हो गया, क्योंकि यह तो चुनौती हो गई। उसने कहा, "क्या समझा है तुमने? कोई नामर्दों का गांव है! मैं तैयार हूं।" उसने कहा, "तैयार हो तो बस ठीक।" वह उसे पास दूसरे खेत में ले गया, झाड़ की छाया के किनारे जाकर उसने उसकी नाक काट दी। चीख पड़ा वह आदमी। उसने कहा कि दिखाई तो कुछ पड़ता नहीं। उसने कहा, "पागल! किसी से कहना मत! क्या हमको दिखाई पड़ता है। मगर जब कट गई तो अपनी इज्जत तो बचानी है, अब तुम्हारी भी कट गई। अब अगर तुमने लोगों से जाकर कहा कि कुछ दिखाई नहीं पड़ता तो वह लोग हंसेंगे, तुम बुद्धू समझे जाओगे। तुम्हारी मर्जी! अब तो तुम हमारे साथ ही हो जाओ। अब तो तुम जाकर, नाचते हुए जाओ और कहना, अहा! जैसे हजारों सूरज एक साथ निकले हों, करोड़ों कमल खिले हों। हे प्रभु! कैसा आनंद दिखला रहा है, कभी भी दिखाई न पड़ा था। अब तो तुम यही कहो।"
"वैसे तुम्हारी मर्जी", उसने कहा, "तुमको मैं कहता नहीं कि यही कहो। तुम्हें सचाई कहनी हो सचाई कह दो।"
उसने कहा, "अब क्या खाक सचाई कहेंगे! अब नाक तो कट ही गई है, अब और कटवानी है क्या, सचाई कहकर?"
उसने जाकर गांव में शोरगुल मचा दिया। वह नाचता हुआ गया। गांव में कई लोग तैयार हो गये नाक कटवाने को। कहते हैं, धीरे-धीरे उस पूरे गांव की नाक कट गई। खबर राजा तक पहुंची। राजा भी आया देखने, गांव में लोग नाच रहे हैं, चीख रहे हैं, बड़े प्रसन्न हैं। राजा ने कहा, "हद्द हो गई! ईश्वर को पाने की इतनी सरल तरकीब! न सुनी, न शास्त्रों में पढ़ी।"
मगर जब इतने लोगों को हो गया है तो राजा तक तैयार हो गया। उसके वजीर
ने कहा, "ठहरो महाराज! इतनी जल्दी मत करो, क्योंकि इस आदमी को मैं... इसकी शक्ल मुझे पहचानी मालूम पड़ती है। यह तो दूसरे गांव का आदमी है और वहां के लोगों ने इसकी नाक काटी थी। तुम जरा रुको। नाक मत कटवा लेना। तुम्हारे कटवाने पर तो बड़ा उपद्रव हो जायेगा। फिर तो यह पूरा राज्य कटवा लेगा।" जिसकी कट जाती है, वह फिर उसकी बचाने की भी चेष्टा करता है। मैंने अब
तक कोई धनपति नहीं देखा जिसकी नाक कट न गई हो; न कोई राजनेता देखा जिसकी नाक कट न गई हो। लेकिन अब किससे कहें! अब यह दुख अपना किससे कहें, किससे रोयें! अब जो हो गया, हो गया। और अपनी इज्जत यही है, इसी में है कि कहे चले जाओ कि बड़े आनंदित हैं, बड़े प्रसन्न हैं।
तुम, जिन्होंने पा लिया है, उनकी तरफ जरा गौर से देखना। जिन्होंने बड़े महल बना लिये हैं, उनकी तरफ जरा गौर से देखना। जिनके पास तिजोड़ियां भर गई हैं, उनको जरा गौर से देखना। कुछ मिला है?
उनको गौर से देखकर तुम्हारा राग-द्वेष क्षीण होगा। और तुमने भी राग-द्वेष करके बहुत देख लिया है--थोड़ा और ज्यादा, मात्रा में भेद होगा--लेकिन तुमने पाया क्या?

राग से भी दुख मिलता है, द्वेष से भी दुख मिलता है। जो अपने हैं वे भी दुख ही दे जाते हैं; जो पराये हैं वे तो दे ही जाते हैं। दुश्मन तो दुख देता ही है, मित्रों से तुम्हें कुछ सुख मिला?
"राग और द्वेष कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। वह जन्म-मरण का मूल है।"
और फिर जब इस जीवन में तुम अधूरे मरते हो, अतृप्त, तो आकांक्षा रहती है मरते वक्त और नया जीवन पाने की। क्योंकि कुछ पूरा न हुआ; खाली के खाली, रिक्त के रिक्त आ गये; हाथ भिक्षा के पात्र ही बने रहे, कभी कुछ भरा नहीं। तो वह जो याचना है, वह जो अधूरी वासना है, वह जो मांगने की और होने की अतृप्त कामना है, वह फिर नया जन्म देगी। तुम जन्मते हो, क्योंकि तुम्हारा जीवन अतृप्त है। और तुमने यह नहीं देखा कि जीवन का अतृप्त होना स्वभाव है। बहुत बार हम जन्मते हैं--कोई हमें जन्माता नहीं।
महावीर परम वैज्ञानिक हैं। वे यह नहीं कहते कि परमात्मा जन्माता है,
कि वह लीला कर रहा है। क्योंकि यह "लीला" जरा बेहूदी मालूम पड़ती है। यह लीला तो बताती है कि परमात्मा कोई मेसोचिस्ट होगा, कोई पर-पीड़नकारी। और पाप की परिभाषा यही हैः "पापं पर-पीड़नम्!"
पाप की परिभाषा यही है कि दूसरे को सताना पाप है। तो परमात्मा से बड़ा
तो पापी कोई नहीं हो सकता, क्योंकि इतने लोगों को पैदा कर रहा है, और सता रहा है। तो महावीर कहते हैं, ऐसे परमात्मा की बात ही मत उठाओ; ऐसा कोई परमात्मा नहीं है। परमात्मा हो तो यह पीड़ा हो नहीं सकती, क्योंकि परमात्मा पर-पीड़न में थोड़े ही रस लेगा!
दूसरे को दुख देने में क्या लीला हो सकती है? लोग सड़ रहे हैं, गल रहे हैं, रो रहे हैं, संताप से भरे हैं--और परमात्मा मजा ले रहा है! नहीं, यह बात सच नहीं हो सकती। यह मजा जरा रुग्ण है, परवर्टिड। यह मजा विक्षिप्त का है। पागल होगा परमात्मा, अगर यह उसकी लीला है। बच्चा पैदा नहीं हुआ और मर जाता है, मां रो रही है, चीख रही है, बेटे रो रहे हैं, बेटियां रो रही हैं, पति रो रहा है, पत्नी रो रही है, सब तरफ रोना मचा है, हाहाकार है, युद्ध हैं, लाखों लोग मर रहे हैं, गल रहे हैं, सड़ रहे हैं, सब तरफ संघर्ष है, सब तरफ खून-पात है, सब तरफ छीना-झपटी है--और फिर भी पाता कोई कुछ नहीं, हाथ खाली के खाली! यह लीला कैसी है? यह तो दुख-स्वप्न है।
महावीर कहते हैं, नहीं, परमात्मा को बीच में मत लाओ। चीजें सीधी देखो। परमात्मा को बीच में लाने से अड़चन हो जाती है। परमात्मा को बीच में लाने से ऐसा ही हो जाता है जैसे प्रिज्म में से सूरज की किरण निकले, सात टुकड़ों में टूट जाती है, खंड-खंड हो जाती है। हटाओ प्रिज्म को बीच से; सूरज की किरण को सीधा ही देखें; उसके स्वभाव को सीधा ही पहचानें।
महावीर कहते हैं, तुम ही अपने जीवन के कारण हो। महावीर तुम्हारा उत्तरदायित्व तुम्हें परिपूर्णता से देते हैं। महावीर कहते हैं, कोई और नहीं है तुम्हारे ऊपर जो तुम्हें भटका रहा है; तुमने भटकना चाहा है, इसलिए भटक रहे हो।
उत्तरदायित्व गहन है, गंभीर है; लेकिन साथ ही इसी उत्तरदायित्व में छिपी हुई सूरज की किरण भी है, सुबह भी है। इसी उत्तरदायित्व में स्वतत्रंता का बीज भी है। क्योंकि अगर मैं ही अपने दुखों का कारण हूं तो बात खतम हो गई। तो जिस दिन मैं निर्णय करूंगा, उसी दिन दुख समाप्त हो जायेंगे। जिस दिन मैं पैदा न करूंगा और, उसी दिन विलुप्त हो जायेंगे। अगर मैंने ही इस जीवन-जन्म के फैलाव को स्वीकार किया है, अपने ही हाथों से निर्मित किया है, तो जिस दिन मेरा सहारा छूट जायेगा उसी दिन यह धारा खंडित हो जायेगी।
"मोह जन्म-मरण का मूल है, और जन्म-मरण को दुख का मूल कहा है।"
सब कुछ अदीब! इश्क ने जी से भुला दिया
जाना कहां है और आये थे कहां से हम!
मोह की तंद्रा में सब भूल जाता हैः कहां से आये, कहां जा रहे हैं, कौन हैं!
हैं कुछ खराबियां मेरी तामीर में जरूर

सौ मर्तबा बनाकर मिटाया गया हूं मैं।
भक्ति-मार्ग के लोग कहेंगे, परमात्मा तुम्हें बनाता है, मिटाता है, क्योंकि कुछ खराबियां हैं तुम्हारी तामीर में। जैसे कोई चित्रकार चित्र को बनाता है, फिर-फिर बनाता है; कोई मूर्तिकार मूर्ति बनाता है, फिर-फिर बनाता है, क्योंकि मूर्ति बन नहीं पाती, पूरी नहीं बन पाती।
हैं कुछ खराबियां मेरी तामीर में जरूर!
--मेरे होने में ही कुछ खराबी है।
सौ मर्तबा बनाकर मिटाया गया हूं मैं।
--और इसीलिए तो इतने जन्म, इतनी मृत्युएं, इतनी बार बनना, इतनी बार मिटना... ।
लेकिन महावीर कहते हैं, कोई बना और मिटा नहीं रहा है। क्योंकि अगर परमात्मा तुम्हें बना रहा है और फिर भी तुम में खराबी रह जाती है, तो खराबी परमात्मा में है, तुम में नहीं। एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता है और मूर्ति नहीं बन पाती, तो खराबी मूर्ति में थोड़े ही है, मूर्तिकार में है। फिर बनाता है, फिर भी कमी रह जाती है, तो फिर भी खराबी मूर्तिकार में है। अगर परमात्मा है तो सारी जुम्मेवारी परमात्मा की है और फिर मनुष्य परतंत्र है। मनुष्य की स्वतंत्रता की परिपूर्ण घोषणा महावीर ने की है। इससे बड़ी घोषणा मनुष्य की स्वतंत्रता की न पहले कभी हुई, न बाद में कभी हुई। कहा कि मनुष्य सब के ऊपर है। कहा, मनुष्य से ऊपर कोई भी नहीं। बड़ी स्वतंत्रता, बड़ा दायित्व! एक-एक कदम सम्हालकर रखने की बात है फिर! क्योंकि अगर परमात्मा है तो हम चले जा सकते हैं, उसकी प्रार्थना करते हुए, वह हाथ पकड़े रहेगा; उसकी जुम्मेवारी है!
महावीर ने मनुष्य को एक अर्थ में अनाथ कर दिया, क्योंकि कोई नाथ न रहा ऊपर। जैसे किसी बच्चे के मां-बाप छीन लिए। लेकिन तुमने देखा! जैसे ही तुम्हारे ऊपर से कल्पना के जाल हट जायें, कोई नहीं ऊपर, तुम अकेले हो--वैसे ही तुम सम्हलकर चलने लगते हो। तुमने कभी बच्चे को मां के साथ चलते और अकेले चलते देखा?
मैं एक घर में मेहमान था। एक छोटा बच्चा खेल रहा था, वह गिर पड़ा। उसने चारों तरफ उठकर देखा। मां उसकी पास न थी, वह बाजार गई थी। उसने मेरी तरफ भी देखा, फिर सोचा कि पता नहीं... । मैंने उसकी तरफ देखा ही नहीं; जैसे वह गिरा, फिर मैंने कहा, अब देखना ठीक नहीं। मैं दूसरी तरफ ही देखता रहा। वह उठ आया। वह अपने खेल में फिर लग गया। आधा घंटे बाद जब उसकी मां आई, दरवाजे पर देखकर एकदम चीखकर रोने लगा। मैंने उससे पूछा कि देख, बेईमानी कर रहा है तू! आधा घंटा पहले गिरा था। उसने कहा, उससे क्या होता है? कोई यहां था ही नहीं, तो रोने से फायदा क्या! और आप दूसरी तरफ देख रहे थे; आप देख ही नहीं रहे थे इस तरफ। फायदा क्या!
पीड़ा के कारण नहीं रो रहा है; मां आ गई है इसलिए रो रहा है!
महावीर ने ऊपर से सारा छत्र हटा लिया। कहा, कोई परमात्मा नहीं है। आदमी को अकेला छोड़ दिया। अब तो तुम्हें अपने पैर अपने ही हाथ सम्हालने हैं। इससे बड़े होश की संभावना पैदा हुई। इससे बड़ी जागरूकता की संभावना पैदा हुई। जैसे कि तुम कभी पहाड़ के कगार पर चलते हो, तो कितने सम्हलकर चलते हो! अंधेरी रात में चलते हो अकेले, कितने सम्हलकर चलते हो! कितने चौकन्ने! कितने सावधान! कितने सावचेत!
महावीर ने परमात्मा को हटा लिया ताकि तुम सावधान हो सको। कोई सहारा न होगा तो तुम सावधान होओगे ही; क्योंकि फिर सावधानी ही सहारा है। और कोई दूसरा तुम्हें जन्म नहीं दे रहा है; तुम ही अपने राग-द्वेष से... ।
"इस संसार में जन्म, जरा और मरण के दुख से ग्रस्त जीव को कोई सुख नहीं है। अतः मोक्ष ही उपादेय है।"
रत्तीभर भी सुख नहीं है। इस संबंध में महावीर अत्यंत अतिवादी हैं। वे कहते हैं, रत्तीभर भी सुख नहीं है। और तुम्हें अगर कभी-कभी सुख मालूम होता है तो तुम्हारी धारणा है, तुम्हारी मान्यता है। इसलिए जल्दी ही तुम्हारी मान्यता टूट जायेगी। तुम पाओगेः सुख गया।
दुनिया में कोई गम के अलावा खुशी नहीं

वो भी हमें नसीब कभी है, कभी नहीं।
दुख इतना गहन है कि दुख भी सदा नसीब नहीं होता। कभी-कभी तुम ऐसी हालत में होते हो कि दुख भी नहीं होता--इतने खाली, इतने रिक्त! इसलिए तो लोग दुख को पकड़े रखते हैंः सुख न सही, दुख तो है, कुछ तो है! कभी-कभी ऐसी घड़ियां भी आती हैंः सुख तो है ही नहीं, दुख भी नहीं है। तब महादुख की घड़ी आती है। तब तुम एकदम राख हो जाते हो। जीने में कुछ भी सार नहीं रह जाता--इतना भी सार नहीं रह जाता कि दुख है, कम से कम इससे लड़ना है, इसे मिटाना है। दुख भी नहीं है। एक बड़ी गहन ऊब, एक गहन बोरडम, राख-राख सब हो जाता है! हृदय में कोई धड़कन नहीं। श्वासों में कोई कंपन नहीं। जीवन का कोई प्रवाह नहीं, कोई ऊर्जा नहीं। उठ आते हो, एक धक्के में! उठना पड़ता है, सुबह हो गई। रात सो जाते हो, क्योंकि रात हो गई। जिंदा रहते हो, क्योंकि रहना ही पड़ेगा जब तक मौत न आये। करोगे क्या? ऐसे धक्के में चलते चले जाते हो।
महावीर कहते हैं, यहां कोई भी सुख नहीं है। क्योंकि रत्तीभर भी तुम्हें आशा रहे कि थोड़ा भी है, एक प्रतिशत भी है, तो भी तुम जकड़े रहोगे। वह एक प्रतिशत भी काफी रहेगा तुम्हें रोकने को।
ऐसा समझो कि तुम कारागृह में बंद हो। अगर तुम मानते हो कि कारागृह में थोड़ी-सी जमीन है जो कारागृह नहीं है, तो फिर तुम कारागृह के बाहर न जा सकोगे; कम से कम उसी जमीन में अटके रहोगे। कारागृह या तो पूरा कारागृह है और या फिर पूरा घर है। इससे कम में काम न चलेगा। अगर तुमने कहा कि माना, पूरा कारागृह तो कारागृह है, लेकिन यह दीवाल कारागृह नहीं है। इसके पास बैठकर बड़ी शांति मिलती है। मगर यह दीवाल भी कारागृह के भीतर है। तुमने कहा, "और सब तो बुरा है, लेकिन यह पहरेदार बड़ा भला है, मुस्कुराता है कभी- कभी, कभी दो बात भी कर लेता है।" और सब तो बुरा है, लेकिन यह पहरेदार भी तो इसी कारागृह का हिस्सा है!
तो जिंदगी में कभी-कभी मुस्कुराहटें भी होंगी। ख्याल रखना, ये भी कारागृह के ही हिस्से हैं। और कभी-कभी प्रसन्नतायें भी होंगी; लेकिन ये भी कारागृह के ही हिस्से हैं। कभी-कभी दीये जले हुए भी मालूम पड़ेंगे, क्योंकि अगर दीये बिल्कुल न जलें तो तुम सभी अंधेरे को छोड़कर बाहर भाग जाओगे। थोड़ी आशा का दीप जलता रहना चाहिए। तुम्हीं जलाये रहते हो--अपनी ही वासना का तेल डाल-डालकर, ईंधन डाल-डालकर। तुम्हीं सोचते रहते हो।
तुमने कारागृह में देखा! मैं कभी-कभी कारागृह जाया करता था--कैदियों
से मिलने। एक प्रांत के गवर्नर मेरे मित्र थे, तो उन्होंने मुझे पास दिया हुआ था, उस प्रांत के सारे कारागृहों में मैं जा सकता था। वहां मैं बड़ा चकित होता! लोग कारागृह में अपनी कोठरी को भी सजा लेते हैं। कुछ न मिले, अखबार से फिल्म ऐक्टर-ऐक्ट्रेस की फोटो निकालकर चिपका लेते हैं। सोचो थोड़ा! उसको भी घर बना लेते हैं। साफ-सुथरा रखते हैं अपनी कोठरी को। कोई अपनी रामायण ले आता है अपने साथ, कोई अपनी बाइबिल रख लेता है--मगर यह सब कारागृह का हिस्सा है।
यह पूरा कारागृह ही छोड़ने योग्य है। पूरा छोड़ने योग्य है, तो ही छोड़ने योग्य क्षमता पैदा होगी तुममें, अन्यथा नहीं पैदा होगी।
इसलिए महावीर कहते हैं, "इस संसार में जन्म, जरा और मरण के दुख से ग्रस्त जीव को कोई सुख नहीं है। अतः मोक्ष ही उपादेय है।"
मोक्ष का अर्थ हैः कारागृह से मुक्ति; राग-द्वेष के बंधन से मुक्ति; मूर्च्छा, मोह से मुक्ति।
"यदि तू घोर भवसागर के पार जाना चाहता है तो हे सुविहित! शीघ्र ही तप-संयम रूपी नौका को ग्रहण कर।"
इस सूत्र में कुछ बातें समझने जैसी हैं।
"यदि तू भवसागर के पार जाना चाहता है... ।"
इस संसार को हमने भवसागर कहा है। भवसागर का अर्थ होता हैः जहां होने
की तरंगें उठती रहती हैं। भव यानी होना। जहां हम मिट-मिटकर होते रहते हैं। जहां लहर मिटती नहीं कि फिर उठ आती है। जहां एक वृक्ष गिरा नहीं कि हजार बीज छोड़ जाता है। जहां तुम जाने के पहले ही अपने आने का इंतजाम बना जाते हो। जहां मरते-मरते तुम जीवन के बीज बो देते हो। जहां एक असफलता मिलती है,

वहां तुम दस सफलताओं के सपने देखने लगते हो। जहां एक द्वार बंद होता है, तुम दूसरा खोलने लगते हो।
भवसागर का अर्थ हैः जहां होने की तरंगें उठती रहती हैं, उठती रहती हैं--अंतहीन!
"यदि तू इस घोर भवसागर के पार जाना चाहता है"... यदि तुझे दिखाई पड़ने लगा है कि जीवन दुख है, पीड़ा है, संताप है; अगर तूने इससे मुक्त होना चाहा है... "तो हे सुविहित! शीघ्र ही तप-संयमरूपी नौका को ग्रहण कर।" शीघ्र ही... ।
तं जइ इच्छसि गंतुं, तीरं भवसायरस्स घोरस्स।
तो तव संजमभंडं, सुविहिय गिण्हाहि तूरंतो।।
तुरंत! शीघ्र! एक क्षण भी खोये बिना! क्योंकि जितनी देर भी तू क्षण खोता है निर्णय करने में, उतनी ही देर में भवसागर नयी तरंगें उठाये जाता है। जितना तू स्थगित करता है उतनी देर खाली नहीं जाता संसार; नयी इच्छायें, नयी वासनायें, तेरे घर में घोंसला बना लेती हैं, तेरे वृक्ष पर डेरा बना लेती हैं। शीघ्र ही! तत्क्षण! जिस क्षण यह समझ में आ जाये कि जीवन दुख है, उसी क्षण तप-संयम रूपी नौका को ग्रहण कर।
तप का अर्थ महावीर की भाषा में क्या है? दुख को स्वीकार कर लेना तप है। दुख को अस्वीकार करना भोगी की मनोदशा है। भोगी कहता है, दुख को मैं स्वीकार न कर सकूंगा, मुझे सुख चाहिए! तपस्वी कहता है, दुख है तो दुख को स्वीकार करूंगा, मुझे अन्यथा नहीं चाहिए! जो है वह मुझे स्वीकार है।
इसे थोड़ा समझना, क्योंकि महावीर की परंपरा, महावीर के अनुयायी इसे बड़ा गलत समझे। महावीर के अनुयायी समझे कि जैसे दुख पैदा करना है। दुख पैदा करने की जरूरत नहीं है--दुख काफी है, काफी से ज्यादा है। होना ही दुख है; अब और दुख की थोड़े ही जरूरत है कि तुम दुख का आयोजन करो कि तुम भूखे खड़े रहो, कि धूप में खड़े रहो, कि शरीर को गलाओ, कि सड़ाओ, इस सब की कोई जरूरत नहीं है। यह तो फिर तुमने एक नया राग-द्वेष बो दिया। पहले तुम सुख मांगते थे, अब तुम दुख मांगने लगे--मगर मांग जारी रही। पहले तुम कहते थे, महल चाहिए; अब अगर तुम्हें महल में ठहरना पड़े तो तुम रुक नहीं सकते महल में, तुम कहते हो, अब तो सड़क चाहिए--मगर चाहिए कुछ जरूर! पहले तुम कहते थे, सुस्वादु भोजन चाहिए; अब अगर सुस्वादु भोजन मिल जाये तो तुम लेने को तैयार नहीं हो। तुम कहते हो, अब तो कंकड़-पत्थर, मिट्टी उसमें मिला ही होना चाहिए, तो ही हमें सुपाच्य होगा।
दुख को चुनना नहीं है। आये दुख को स्वीकार कर लेना तप है। आये दुख को ऐसे स्वीकार कर लेना कि दुख भी मालूम न पड़े, तप है। अगर तुमने मांगा तो मांग तो जारी रही। कल तुम सुख मांगते थे, अब दुख मांगने लगे; कल तुम कहते थे धन मिले, अब तुम कहते हो कि त्याग; कल तुम कहते थे संसार, अब तुम कहते हो, नहीं संसार नहीं; हिमालय भाग रहे हो--लेकिन कहीं जाना रहा, कोई दिशा रही! महावीर के तप का अर्थ हैः जो अपने से होता हो उसे तुम स्वीकार कर लेना। दुख तो हो ही रहा है--दुख ही हो रहा है, और कुछ भी नहीं हो रहा है। तुम स्वीकार भर कर लेना। उसी स्वीकार में तुम्हारा याचक रूप तिरोहित हो जायेगा, तुम्हारा भिखमंगा मिट जायेगा, तुम सम्राट हो जाओगे।
जिसने दुख स्वीकार कर लिया, उसके भीतर एक महाक्रांति घटित होती है। उसकी सुख की मांग तो रही नहीं; नहीं तो दुख स्वीकार न कर सकता था। और जिसने दुख स्वीकार कर लिया, उसे दुख दुख न रहा।
इसे तुम थोड़ा प्रयोग करना। सिर में दर्द हो तो तुम उसे स्वीकार करके किसी दिन देखना। बैठ जाना शांत, लेट जाना, स्वीकार कर लेना कि सिर में दर्द है, उससे भीतर कोई संघर्ष मत करना, भीतर यह भी मत कहना कि न हो। है तो है। जो है वह है। उसे स्वीकार कर लेना। उसे साक्षी-भाव से देखते रहना। तुम चकित होओगेः कभी-कभी साक्षी-भाव सधेगा, उसी क्षण में तुम पाओगे सिरदर्द खो गया! जब साक्षी-भाव छूट जायेगा, तुम पाओगे, फिर सिरदर्द आ गया! एक बड़ा क्रांतिकारी अनुभव होगा कि जब तुम बिल्कुल स्वीकार कर लेते हो सिरदर्द को, तभी वह खो जाता है। और जैसे ही फिर इच्छा उठती है कि नहीं, यह सिरदर्द

नहीं होना चाहिए, कितनी तकलीफ हो रही है--वैसे ही सिरदर्द फिर घना हो जाता है।
इसे तुम छोटे-छोटे प्रयोग करके देखो। कोई भी दुख आए--और दुख तो रोज आ रहे हैं और सभी को आ रहे हैं। यह तो भवसागर है, यहां तो दुख पैदा हो ही रहे हैं, तरंगें उठ ही रही हैं। और नयी तरंगें पैदा करने की जरूरत नहीं है, जो अपने से आ रहा है, जो तुम्हारे अतीत में किये कर्मों से आ रहा है--उसके ही तुम साक्षी हो जाओ। तो तुमने तप-संयम-रूपी नौका को ग्रहण कर लिया। और इस तपसंयमरूपी नौका में चारों तरफ भवसागर के तूफान उठेंगे और हर तूफान तुम्हें सुदृढ़ कर जायेगा, और हर तूफान तुम्हें भीतर एकजुट, इकट्ठा कर जायेगा। और हर तूफान, और हर तूफान की चुनौती तुम्हारे भीतर आत्मा को जन्म देनेवाली बनेगी।
तूफां से खेलना अगर इंसान सीख ले
मौजों से आप उभरें किनारे नये-नये।
एक बार तूफान से जूझना, एक बार तूफान से खेलना, एक बार तूफान के साक्षी
बन जाना--फिर लहरों में ही नये-नये किनारे उठने लगते हैं। सुख खोजकर किसी ने कभी कुछ नहीं पाया; लेकिन जिसने दुख का साक्षी बनना सीख लिया, उसने महासुख पाया है।
"जिससे विराग उत्पन्न होता है, उसका आदरपूर्वक आचरण करना चाहिए। विरक्त व्यक्ति संसार बंधन से छूट जाता है और आसक्त व्यक्ति का संसार अनंत होता चला जाता है।"
"जिससे विराग उत्पन्न हो उसका आदरपूर्वक आचरण करना चाहिए!" महत्व है "आदरपूर्वक" पर। तुम जबर्दस्ती भी विराग कर सकते हो। तुम बेमन से भी विराग कर सकते हो। तुम दिखावे के लिए भी विराग कर सकते हो। जैसे समझो, उपवास कर लेते हो तुम--पर्यूषण आए, आठ या दस दिन के उपवास कर लिये। अब कैसी चीजें विकृत हो जाती हैं! तुम उपवास करते हो, फिर तुम्हारा आदर किया जाता है, शोभा-यात्रा निकलती है, बैंड-बाजे बजते हैं, लोग प्रशंसा करने आते हैं कि बड़ा काम किया, समाज में बड़ा सम्मान मिलता है। यह तो बड़ी चूक हो गई।
महावीर ने यह नहीं कहा था कि तुम विराग करो--और दूसरे आदर करें।
महावीर कहते हैं, तुम आदरपूर्वक विराग करना। जब तुम उपवास करो तो परम आदर से करना। यह बड़ी घड़ी है। यह बड़ी महिमा की घड़ी है; क्योंकि साधारणतः मनुष्य की जीवन-आकांक्षा भोजन की है, तुम उपवास कर रहे हो। तुम बड़ी पवित्र भूमि पर यात्रा कर रहे हो। यह तीर्थयात्रा है। उन दस दिनों में तुम जितने सम्मानपूर्वक, जितने अहोभाव से, जितने कृतज्ञता-भाव से उपवास कर सको, उतनी ही उपवास की महिमा होगी।
दूसरों को तो पता भी मत चलने देना; क्योंकि दूसरों से आदर पाने की आकांक्षा उपवास का अनादर है। यह तो तुमने उपवास को भी बाजार में बेच दिया। यह तो तुमने उपवास से भी कुछ और खरीद लिया--समाज का सम्मान, रिस्पेक्टेबिलिटी। यह तो तुमने उपवास को भी बाजार की चीज बना दिया; इसको भी बेच दिया, इसको तो कम से कम चुपचाप करते।
मुहम्मद ने कहा हैः जब तुम प्रार्थना करो तो तुम्हारी पत्नी को भी पता न चले। जीसस ने कहा हैः एक हाथ से दान दो, दूसरे हाथ को खबर न हो। तो सम्मान है।
सम्मान का अर्थ हैः तुम जो कर रहे हो, वही साध्य है; उसका तुम साधन की तरह उपयोग न करोगे। अगर तुमने उपवास और तप का भी साधन की तरह उपयोग कर लिया कि अखबार में फोटो छपेगी, चलो किसी तरह दस दिन गुजार दो--तो तुम उपवास से वंचित रह गये। तुमने अनशन किया, उपवास नहीं। तुम भूखे मरे, लेकिन तुम उपवास के आनंद से वंचित रह गये। यह तो किसी को कानों-कान खबर न हो। तुम्हारी तपश्चर्या साध्य बने, साधन नहीं। तुम्हारी पूजा-प्रार्थना, अर्चना, तुम्हारा ध्यान, सामायिक; साध्य बने। रात के अंधेरे में जब सारा जगत सोया हो, चुपचाप उठकर कर लेना अपनी सामायिक। लेकिन तुमने देखा, लोग मंदिर में जाकर करेंगे! लोगों को तुमने सामायिक और ध्यान करते देखा! करते भी जायेंगे, माला भी फेरते जायेंगे--चारों तरफ देखते जायेंगे, कोई देख रहा है कि नहीं! अगर कोई न देख रहा हो तो जल्दी माला फिर जाती है, दो-दो गुरिए

एक साथ चले जाते हैं। कोई अगर देख रहा हो तो आहिस्ता-आहिस्ता चलती है। यह बगुला-भगति है। वह बगुले को देखा, खड़ा एक पैर पर, कैसा भगत, शुभ्र-वेश में, हिलता भी नहीं, लेकिन नजर मछली पर लगी है!
तुम्हारी नजर अगर अभी आदर और सम्मान दूसरों से पाने पर लगी है, तो यह
तो अहंकार की ही पूजा हुई, इससे धर्म का कोई संबंध नहीं है।
महावीर कहते हैं, आदरपूर्वक... । जिससे विराग उत्पन्न होता है उसका आदरपूर्वक आचरण करना चाहिए। एक-एक कृत्य विराग का इतने सम्मान और अहोभाव से करना कि उसके करने में ही तुम्हारे भीतर फूल बरस जायें, तुम्हारे भीतर सुगंध फैल जाये। साधन की तरह नहीं, साध्य की तरह। वही अपने आप में गंतव्य है। उससे कुछ और नहीं पाना है।
उपवास करके स्वर्ग नहीं पाना है। उपवास स्वर्ग है--यह आदर हुआ। ध्यान करके पुण्य नहीं पाना है। ध्यान पुण्य है--यह आदर हुआ। तो जो भी तुम आदरपूर्वक करोगे, वही तुम्हें धर्म की दिशा में गतिमान करेगा।
"विरक्त व्यक्ति संसार-बंधन से छूट जाता है।"
विरक्त का अर्थ हैः जिसने विराग को आदर दिया। विरक्ति ओढ़ी, ऐसा नहीं-- विराग को आदर दिया। विरक्ति ओढ़नी बड़ी आसान है। तुम नग्न खड़े हो जाओ, छोड़ दो वस्त्र, एक दफा भोजन करने लगो--लेकिन अगर तुम्हारी आंखों में प्रसाद न आये, तुम्हारी वाणी में माधुर्य न आये, तुम्हारे उठने-बैठने में प्रतिपल धन्यता न बरसे--तो तुम कर लो यह सब, इससे कुछ हल न होगा, कुछ लाभ न होगा।
एक मुनि के संबंध में मैंने सुना है। क्रोधी थे वे, जब मुनि नहीं थे। महाक्रोधी थे। इतने क्रोधी थे कि अपने बेटे को क्रोध में आकर कुएं में फेंक दिया था। उसकी मौत हो गई थी। उसी से पश्चात्ताप हुआ। गांव में कोई मुनि ठहरे थे, वे गये। मुनि ने कहा कि पश्चात्ताप अगर सच में हुआ है तो छोड़ दो संसार। क्रोधी आदमी थे, छोड़ दिया। लेकिन ध्यान रखना, छोड़ा भी क्रोध में। जिद्द पकड़ गई। "अरे, तुमने कहा और हम न छोड़ें! तुमने समझा क्या है?" और लोगों ने समझाया कि कभी तुमने त्याग साधा नहीं है, कभी ध्यान किया नहीं है, एक दम से छलांग मत लो, आहिस्ता चलो। जिद्द पकड़ गई। हठी थे। वही हठ पुराना। जिस आदमी ने कुएं में धक्का दे दिया था बेटे को और हत्या कर दी थी, उसी ने अपने को भी धक्का दे दिया वैराग्य में। वे मुनि हो गये।
दिगंबर जैनों में पांच सीढ़ियां हैं, वे एक साथ छलांग लगा गये। एक-एक कदम महावीर ने बड़े आहिस्ता बढ़ने को कहा है। क्योंकि महावीर कहते हैं, जीवन एक क्रम है। जैसे वृक्ष धीरे-धीरे बढ़ता है, ऐसे ही धीरे-धीरे बढ़ने की जरूरत है। क्योंकि धीरे-धीरे शाखायें ऊपर उठती हैं। उसी आधार से धीरे-धीरे जड़ें भी नीचे गहरी जाती हैं। वृक्ष अगर एकदम ऊपर चला जाये और जड़ें गहरी भीतर न जा पायें, तो गिरेगा, मरेगा। यह बढ़ना न हुआ, यह तो मौत हो जायेगी। पांच सीढ़ियां बनाई हैं। एक-एक कदम बढ़ना है। मुनि होने की सीढ़ी पांचवीं सीढ़ी है, जब वस्त्र भी छूट जायेंगे, सब छूट जायेगा।
वह एकदम से मुनि हो गया! उसने जाकर मंदिर में वस्त्र फेंक दिये। क्रोधी आदमी था, जिद्दी आदमी था। जिन मुनि ने दीक्षा दी, वे बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने कहा, "व्याख्यान देते-देते जन्म हो गया मेरा, अनेक लोग मिले; मगर लोग कहते हैं, सोचेंगे। तू एक करनेवाला है। तू बड़ा धार्मिक है।" लेकिन वह आदमी धार्मिक नहीं था। उनको नाम मिलाः शांतिनाथ। वह आदमी क्रोधी था।
राजधानी उनका आगमन हुआ, तो पुराने बचपन का एक मित्र भी राजधानी आया था, तो उनसे मिलने गया। देखा कि वह महाक्रोधी, क्रोधनाथ शांतिनाथ हो गये हैं। देखें। जाकर देखा तो कुछ कहीं शांति तो दिखाई न पड़ी, वही तमतमाया चेहरा था, वही जलती हुई आंखें थीं, वही क्रोध और अहंकार था। उसने परीक्षा लेनी चाही। वह पास गया। उसने कहा कि महाराज... ! मुनि पहचान तो गये क्योंकि वे बचपन से परिचित थे उससे; लेकिन जब कोई आदमी पद पर पहुंच जाता है--मुनि पद--तो फिर पहचान कैसी! एैरे-गैरे नत्थू-खैरों से पहचान कैसी! पहचान तो गये और वह आदमी भी पहचान गया कि पहचान गये हैं। आंखें सब कह देती हैं। मगर ऊपर से ऐसे ही रूप रखा कि नहीं पहचाने हैं। उसने पूछा, "महाराज! क्या आपका नाम पूछ सकता हूं?" उसने कहा, "हां-हां! अखबार नहीं पढ़ते? रोज तो अखबार में

छपता है। कौन ऐसा है जो मुझे नहीं जानता? और तू मुझ से नाम पूछता है? मुनि शांतिनाथ मेरा नाम है।"
उस आदमी ने कहा कि यह कुछ बदला नहीं है। वह थोड़ी देर चुप रहा।
उसने फिर पूछा कि "महाराज! मैं भूल गया। आपका नाम क्या है?" उन्होंने डंडा उठा लिया। कहा, "तू होश में है? कह दिया एक दफे कि मेरा नाम शांतिनाथ है।" वह आदमी थोड़ी देर फिर चुप रहा। उसने कहा, "महाराज!" वह महाराज ही कह पाया था कि उन्होंने डंडा उस के सिर पर लगा दिया! उन्होंने कहा कि कह तो चुका इतनी बार! बुद्धि है कि मूढ़ है बिल्कुल? "शांतिनाथ" मेरा नाम है। उसने कहा कि महाराज! लेकिन शांति कहीं पता नहीं चलती। मैं तो वही रूप देख रहा हूं, जिससे बचपन से परिचित हूं, कहीं कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता। ऊपर के आवरण बदल गये, भीतर की अंतरात्मा वही है।
विरक्ति ओढ़ना मत! विरक्ति कोई वस्त्र नहीं है, आवरण नहीं है कि तुम ओढ़ लो; भीतर तुम वही रहो और ऊपर से वस्त्र बदल लो। विरक्ति तो भीतर की भाव-दशा है। धीरे-धीरे सम्मान करना। एक-एक उस घड़ी का जिससे विराग आता हो, उसका सम्मान करना। एक-एक इंच विराग की भूमि पर अपने को जमाना, चलाना। धीरे-धीरे संसार का बंधन छूट जाता है। क्योंकि बंधन राग के कारण है। जब विरक्ति आती है, छूट जाता है। गांठ जैसे बंधी है, जब उससे उलटा करने लगते हो, गांठ खुल जाती है।
"और आसक्त व्यक्ति का संसार अनंत होता चला जाता है।" आसक्त व्यक्ति
का संसार अनंत होता चला जाता है, क्योंकि एक वासना दस वासनाओं को जन्म देती है। वासना संतति-नियमन में भरोसा नहीं रखती। वासना की बड़ी संतान होती है। एक वासना दस को जन्मा देती है। दस वासनायें सौ को जन्मा देती हैं--ऐसा ही गणित फैलता चला जाता है।
तुमने कभी एक कंकड़ फेंककर देखा पानी में! एक कंकड़ फेंकते हो जरा-सा, कितनी लहरें उठती हैं! एक लहर उठती है, एक दूसरी को उठाती है, दूसरी तीसरी को उठती है। दूर कूल-किनारों तक सारा लहरों से भर जाता है सरोवर। एक जरा-सा कंकड़ फेंका था। एक जरा-सा कंकड़ वासना का और तुम्हारा सारा जीवन लहरों से विक्षुब्ध हो जाता है।
तो महावीर कहते हैं, आसक्त व्यक्ति का संसार अनंत होता चला जाता है। अनासक्त व्यक्ति का संसार इसी क्षण टूटने लगता है, बिखरने लगता है; जैसे किसी ने भूमि ही खींच ली, बुनियाद अलग कर ली।
"अपने राग-द्वेषात्मक संकल्प ही सब दोषों के मूल हैं।"
जो इस प्रकार के चिंतन में उद्यत होता है तथा इंद्रिय-विषय दोषों के मूल नहीं हैं, इस प्रकार का संकल्प करता है--उसके मन में समता उत्पन्न होती है। और उससे उसकी काम-गुणों में होनेवाली तृष्णा प्रक्षीण हो जाती है।" एक और महत्वपूर्ण बात महावीर इस सूत्र में कहते हैं। वे कहते हैं, कामवासना के विषय कारण नहीं हैं। धन कारण नहीं है धनासक्ति का। धन पड़ा रहे तुम्हारे चारों तरफ, आसक्ति न हो तो धन मिट्टी है। मिट्टी में भी आसक्ति लग जाये, तो मिट्टी धन है। धन तुम्हारी आसक्ति से निर्मित होता है। तुम महल में रहो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महल किसी को नहीं बांधता है। तुम झोपड़े में रहो और तुम्हारी आसक्ति गहन हो झोपड़े में तो झोपड़ा ही बांध लेगा। एक छोटी-सी लंगोटी बांध ले सकती है, और एक बड़ा साम्राज्य भी न बांधे। सूत्र हैः "अपने राग-द्वेषात्मक संकल्प ही सब दोषों के मूल हैं।" तुम्हारे भीतर ही हैं सारे मूल। विषय भोगों के मूल नहीं हैं। इंद्रिय-विषय-भोग दोषों के मूल नहीं हैं। जो इस प्रकार का संकल्प करता है, उसके मन में समता उत्पन्न होती है।"
जैसे-जैसे तुम जानोगे और इस धारणा में गहरे जमोगे, जड़ें फैलाओगे कि वस्तुएं नहीं हैं, बाहर कुछ भी नहीं है जो मुझे बांधता है--मैंने ही बंधना चाहा है; मेरे बंधने की चाह ही मुझे बांधती है, मेरे भीतर ही मूल है। फिर बाहर के संसार को छोड़कर भाग जाने का बड़ा सवाल नहीं है। अगर कोई भाग भी जाये तो वह केवल प्रशिक्षण है।
महावीर चले गये छोड़कर राजपाट। लेकिन बड़ी मीठी कथा है। महावीर छोड़ना चाहते थे, मां ने कहा, "अभी मैं न छोड़ने दूंगी। जब तक मैं जिंदा हूं, मत

छोड़ो!" महावीर ने फिर बात ही न उठाई। यह बड़ी हैरानी की बात है। बुद्ध तो भाग गये एक रात, बिना किसी को कहे, पत्नी को भी न कहा कि मैं जा रहा हूं। बारह वर्ष बाद जब आये थे तो पत्नी ने यही शिकायत की थी कि तुम्हें जाना ही था, तो मैं कैसे रोक पाती? जानेवाले को कौन रोक पाया है! तुम जाना ही चाहते थे तो तुम गये ही होते, लेकिन कम से कम मुझे कहा तो होता! तुमने मुझे इस योग्य भी न समझा! इसी बात का मुझे दुख रहा है।
यशोधरा ने बारह वर्ष बाद कहा कि तुमने मुझ पर इतना भी भरोसा न किया! इतना तो सम्मान दिया होता मुझे भी! मुझ से पूछ तो लिया होता! मैं रोकती, फिर भी तुम्हें जाना होता तो तुम गये होते! लेकिन तुमने यह कैसे मान लिया कि मैं रोकती ही? क्या जरूरी था कि रोकती ही? मेरे मन में यह घाव की तरह रहा है कि तुमने मुझसे पूछा भी नहीं, रात तुम चोर की तरह भाग गये! जिसके साथ संबंध जोड़ा था, जिसके साथ प्रेम के नाते बनाये थे, उससे कम से कम पूछ तो लेते, विदा तो ले लेते!
महावीर ने ऐसा न किया। महावीर जाना चाहते थे और मां से पूछा। स्वाभाविक, जिसने जीवन दिया, अब जीवन को छोड़ते हैं, कम से कम उससे तो पूछ लें!
और मां ने कहा कि नहीं, मेरे सामने यह बात ही मत उठाना। मैं मर जाऊंगी दुख से। उसका पाप तुम्हीं को लगेगा। फिर तुम्हारी अहिंसा कहां रहेगी?
तो महावीर, कहते हैं, चुप हो गये। यह बड़ी अनूठी घटना है मनुष्य के इतिहास की, कि महावीर ने फिर विवाद भी न किया, तर्क भी न किया, दुबारा आग्रह भी न किया। जब मां मर गई, मरघट से लौटते वक्त अपने बड़े भाई को कहा कि अब क्या ख्याल है? अब तो जा सकता हूं?
घर भी न आ पाये थे।
बड़े भाई ने कहा कि तुम थोड़ा सोचो तो! मां को दफनाकर लौट रहे हैं, अभी घर
भी नहीं पहुंचे हैं, छाती पर पत्थर पड़ा है, तुम्हें त्याग की पड़ी है! यह कोई मौका है?
महावीर ने कहा, "इससे और अच्छा मौका कहां होगा?" इसको वे कहते हैं, वैराग्य की जहां भी संभावना हो उसको सम्मान देना। मृत्यु से बड़ी वैराग्य की संभावना क्या होगी। मां मर गई, इससे बड़ी और क्या जगानेवाली घटना हो सकती है? जब मां मर गई, मुझे जन्म देनेवाली मर गई, तो मैं भी मरूंगा। मुझे जन्म देनेवाली न बच सकी तो मेरे बचने का क्या उपाय है? उसी शृंखला की कड़ी हूं। जाने दो मुझे! भाई ने कहा कि नहीं, तुम न जा सकोगे। जब तक मैं तुम्हें आज्ञा न दूं, न जा सकोगे। बड़े भाई की आज्ञा का ख्याल रखना।
कहते हैं, महावीर फिर चुप हो गये। दो-चार वर्ष बीत गये, लेकिन वे ऐसे रहने लगे उस महल में जैसे न हों। चलते जैसे छाया चलती हो, धूल भी न हिलती। उठते-बैठते, लेकिन किसी के बीच में न आते। घर के, परिवार के, लोगों को पता ही न चलता कि वे हैं या नहीं हैं! ऐसे चुप हो गये। ऐसे गुमसुम हो गये। ऐसे "ना" हो गये। शून्यवत घूमने लगे उस घर में। आखिर घर के लोगों ने भाई से कहा, बड़े भाई से, कि अब व्यर्थ है रोकना। यह तो जा ही चुका। रोककर भी हम क्या रोकें? हम सोचते हैं कि यह है, मगर है नहीं। महीनों बीत जाते हैं, किसी को पता ही नहीं चलता, न किसी बात में भाग लेता, न किसी चर्चा में भाग लेता, न अपना कोई मंतव्य देता, न किसी को बाधा डालता। तो अब "न होने" का और क्या अर्थ होता है? होने से सार क्या है? हम इसे व्यर्थ रोक रहे हैं और हम व्यर्थ ही पाप के भागी हो रहे हैं।
तो भाई और परिवार के लोग इकट्ठे हुए। उन्होंने महावीर से कहा, तुम जा
ही चुके हो, अब हम तुम्हें न रोकेंगे। ऐसे उन्होंने घर छोड़ा। घर छोड़ने के बहुत पहले महावीर ने घर छोड़ दिया था। घर से निकलने के बहुत पहले, घर से निकल गये थे। और मैं जानता हूं कि अगर भाई ने न कहा होता तो वे सदा घर में रहे आते। क्या फर्क पड़ता था? इसलिए महावीर का वैराग्य बड़ा गहन है। वह भगोड़ापन नहीं है। वह क्रांति है, रूपांतरण है। फिर जंगल भी चले गये। बारह वर्ष एक गहरा प्रशिक्षण था। जंगल में बहुत साधा। बहुत निखारा अपने को। सब तरह से शून्य किया। शब्द गंवाये। मौन में उतरे। शब्द छोड़ ही दिये। वाणी खो ही गई। तब फिर वापिस लौटे। क्योंकि जंगल में पाया जा सकता है, लेकिन

बांटना तो बस्ती में ही होगा। वृक्षों, पशुओं के पास पाया जा सकता है, देना तो मनुष्य को ही होगा। और जब मिलता है तो देना होगा। महावीर ने धन ही नहीं छोड़ा; जब उन्होंने परम धन पाया, उसको भी लुटाया। एक बार छोड़ने का मजा आ जाये तो परम धन पाकर भी आदमी लुटाता है।
"अपने राग-द्वेषात्मक संकल्प ही सब दोषों के मूल हैं, जो इस प्रकार के चिंतन में उद्यत होता है तथा इंद्रिय-विषय दोषों के मूल नहीं हैं, इस प्रकार का संकल्प करता है, उसके मन में समता उत्पन्न होती है।"
तत्क्षण भी समता का स्वाद आ जायेगा। तुम जरा घर में बैठे-बैठे ऐसे सोचो कि घर के बाहर हो। तुम पत्नी के पास बैठे-बैठे जरा ऐसे सोचो, कौन किसका है! तुम बाजार में बैठे-बैठे जरा ऐसा सोचो, सब सन्नाटा है! बाजार में भी समता आ जाती है। घर में भी समता आ जाती है। सब काम-धाम करते हुए भी भीतर तुम थिर होने लगते हो। भीतर बुद्धि स्थिर होने लगती है। भीतर की ज्योति डगमगाना छोड़ने लगती है।
समता का अर्थ हैः अकंप चैतन्य का हो जाना।
"और उससे उसकी काम-गुणों में होनेवाली तृष्णा प्रक्षीण हो जाती है।" हस्ती के मत फरेब में आ जाइयो "असद"
आलम तमाम हल्कए-दामे-ख्याल है।
चीजों के चक्कर में बहुत मत पड़ जाना। लेकिन चीजें उलझाती नहीं हैं।
कल्पना ही उलझाती है।
आलम तमाम हल्कए-दामे-ख्याल है।
यह जो सारा चारों तरफ फैलाव दिखाई पड़ रहा है, यह तुम्हें नहीं फांसता-- तुम्हारी कल्पना का जाल फांस लेता है।
"भाव से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त हो जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रहकर भी अनेक दुखों की परंपरा से लिप्त नहीं होता है।"
महावीर संसार छोड़ने को नहीं कह रहे हैं। यह सूत्र प्रमाण है। कहते हैं, कमलिनी के पत्र जैसे हो जाओ!
भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खो परंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं।।
जैसे पोखर में, तालाब में, खिला हुआ कमलिनी का फूल! उसके पत्ते जल में
ही होते हैं, जल की बूंदें भी उन पर पड़ी होती हैं, लेकिन जल स्पर्श भी नहीं कर पाता--ऐसी ही चैतन्य की एक दशा है, विराग की एक दशा है। ठीक संसार में खड़े हुए भी, ठीक गृहस्थी में रुके हुए भी, कुछ छू नहीं पाता।
महावीर ने चार तीर्थ कहे हैंः श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वी। किसी अनजानी दुर्घटना के कारण साधु-साध्वी महत्वपूर्ण हो गये। लेकिन महावीर का पहला जोर श्रावक-श्राविका पर है।
श्रावक का अर्थ हैः ऐसी सम्यक स्थिति का व्यक्ति जो सुनकर ही सत्य को उपलब्ध हो जाता है; सुनने मात्र से ही जो जाग जाता है। साधु का अर्थ हैः सुनना मात्र जिसे काफी नहीं; सुनने के बाद जो साधना भी करेगा, प्रयत्न की भी जरूरत रहेगी--तब मुक्त हो पाता है। श्रावक की गरिमा बड़ी महिमापूर्ण है। श्रावक का अर्थ हैः जिसने सत्य को सुना, सुनते ही जाग गया।
बुद्ध कहते थे, घोड़े कई तरह के होते हैं। एक घोड़ा होता है कि जब तक उसको मारो-पीटो न, तब तक चले न। एक घोड़ा होता है कि मारने-पीटने की धमकी दो, गाली-गलौज दो, उतने से ही चल जाता है, मारने-पीटने की जरूरत नहीं पड़ती। एक घोड़ा होता है, गाली-गलौज की भी जरूरत नहीं पड़ती; हाथ में कोड़ा हो, इतना घोड़ा देख लेता है, बस काफी है। और बुद्ध कहते हैं, एक ऐसा भी घोड़ा होता है कि कोड़े की छाया भी काफी होती है। श्रावक का अर्थ हैः जिसे कोड़े की छाया भी काफी है।
तुम यहां मुझे सुन रहे हो। सुनने से तुम्हारे लिए पहला तीर्थ खुलता है। अगर तुम ठीक से सुन लो, हृदयपूर्वक सुन लो, निमज्जित हो जाओ सुनने में, तो करने को कुछ बचता नहीं, सुनने में ही गांठें खुल जाती हैं; सुनकर ही बात साफ हो जाती है, गांठ खुल जाती है। कुछ अंधेरा था, छंट जाता है। कुछ उलझन

थी, गिर जाती है। द्वार खुल गया, नाव तैयार हैः तुम इसी तीर्थ से पार हो सकते हो!
कुछ हैं जो सुनने से ही पार न हो सकेंगे; उन्हें कोड़े की छाया काफी न होगी, उनके लिए कोड़े काफी होंगे, कोड़े मारने पड़ेंगे।
साधु का अर्थ हैः जो सुनने से न पार हो सका, सत्य की समझ काफी न हुई, सत्य के लिए प्रयास भी करना पड़ा।
वस्तुतः श्रावक की महिमा साधु से ज्यादा है।
लेकिन साधुओं को यह बरदाश्त न हुआ। साधुओं के अहंकार को यह भला न लगा।
तो कोई जैन साधु जैन श्रावक को नमस्कार नहीं करता। साधु और श्रावक को कैसे नमस्कार कर सकता है! साधु ऊपर है, श्रावक नीचे है! साधु को, श्रावक को नमस्कार करनी चाहिए!
हां, यह बात जरूर है कि श्रावक कहां हैं? पर दूसरी बात भी तो है, साधु कहां हैं? सुनकर पहुंचनेवाले बहुत मुश्किल हैं, कोड़े की छाया से चलनेवाले बहुत मुश्किल हैं। कोड़ों से भी अपने को मार-पीट करके कहां कौन चल पाता है! उनकी भी आदत हो जाती है।
"भाव से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त हो जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रहकर भी अनेक दुखों की परंपरा से लिप्त नहीं होता है।"
भाव से मुक्त होते ही--राग और द्वेष के भाव से मुक्त होते ही; चुनाव से मुक्त होते ही; संकल्प-विकल्प से मुक्त होते ही--यह सत्य पहचानकर कि सारा खेल मेरे भीतर है, अपने को सिकोड़ लेता है; जैसे कछुआ अपने को सिकोड़ लेता है! दूर जा पहुंचा गुबारे-कारवां
मेरी मुश्ते-खाक तनहा रह गयी,
सब तमन्नाएं हमारी मर चुकीं
एक मरने की तमन्ना रह गयी।
अपने को सिकोड़ता जाता है। जीवन-जीवेषणा से अपने को हटा लेता है। अब जीने की कोई आकांक्षा नहीं रह जाती। जीता है, क्योंकि जब तक पुराने कर्मों का जाल है, हिसाब-किताब है, चुकतारा है, निपटाता है। नया जाल खड़ा नहीं करता; पुराना लेन-देन तो चुकाना ही पड़ेगा। जीता है, लेकिन अब जीने पर जोर नहीं है। अब उसने एक राज सीखा है--और वह यहः परम मृत्यु! कैसे पूरी तरह मर जाये, ताकि दुबारा पैदा न होना पड़े! और जिसके भीतर ऐसी भाव-दशा आ जाती है, उसकी सुबह ज्यादा दूर नहीं है।
हो चली सुबह फसाना है करीबे-तकमील
घुल चली शमा बस अब है उसे ठंडा होना।
जिसके भीतर जीवेषणा ठंडी हो गई, वह खोने लगा।
हो चली सुबह फसाना है करीबे-तकमील
कहानी पूरी होने के करीब आ गई, सुबह होने लगी। घुल चली शमा--दीया बुझने लगा; बस अब है उसे ठंडा होना। वह ठंडक, वह शीतलता जो जीवेषणा के बुखार के बुझ जाने पर पायी जाती है, उसी का नाम मोक्ष है।
दुख पर ध्यान करना! दुख को सब तरफ से पहचानना, निदान करना। दुख दिख जाये तो औषधि पानी बड़ी कठिन नहीं है। दुख दिख जाये तो छूटने की परम आकांक्षा पैदा होती है, अभीप्सा पैदा होती है।
साक्षी-भाव औषधि है। दुख है निदान--साक्षी-भाव औषधि है--मोक्ष स्वास्थ्य है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
छठवां प्रवचन

तुम मिटो तो मिलन हो

पहला प्रश्नः
शाम शाम कूकदी नूं जिंदगी दी शाम होई।
आया नहीं शाम मेरा, ओसनूं मिलायो जी।।
"श्याम-श्याम रटते जीवन की सांझ हो गयी है, अभी तक मेरा श्याम नहीं आया। मुझे उसके दर्शन कराना।"
आपकी शरण आयी हूं, स्वीकार करो! कहीं चूक न जाऊं!

परमात्मा को पाना मात्र रटन की बात नहीं है। रटने से ही होता होता तो बड़ा आसान होता। रट तो तोते भी लेते हैं। बोध चाहिए! अकेली रटन काम न देगी। रटन ठीक है, उपयोगी है, बहुमूल्य है--लेकिन बोध से संयुक्त हो तभी; अन्यथा रटन यांत्रिक हो जाती है। कोई रटता रहता है श्याम-श्याम-श्याम, लेकिन इस रटन के पीछे और हजार विचार चलते रहते हैं। यह रटन धीरे-धीरे अभ्यास हो जाती है। इसे करने के लिए, रटने के लिए, किसी बोध की जरूरत ही नहीं रह जाती; यंत्रवत सरकती रहती है। तुम न भी चाहो तो होती रहती है। और भीतर गहरे तलों पर हजार-हजार विचार चलते रहते हैं, हजार वासनाएं चलती रहती हैं। जब तक वे भीतर के तल पर विचार और वासनाएं खो न जायें, जब तक रटन अकेली न रह जाये, श्याम के लिए पुकार उठे तो बस पुकार हो, भीतर कुछ और न हो--तब तो पुकारने की भी जरूरत न पड़ेगी, बिन पुकारे परमात्मा पास आ जाता है।
परमात्मा कभी दूर गया नहीं। जो दूर चला जाये वह परमात्मा नहीं। वह सदा तुम्हारे पास है। सब तरफ से उसने ही तुम्हें घेरा है--बाहर भी वही, भीतर भी वही।
जिसे तुम रट रहे हो, वह तो परमात्मा है ही; जो रट रहा है, वह भी परमात्मा है। तो रटन में ज्यादा मत उलझ जाना। पुनरुक्ति कहीं मन को बहुत ज्यादा ग्रसित न कर ले! रटन पर बहुत ज्यादा भरोसा मत कर लेना। उपयोगी है, लेकिन कुछ और भी चाहिए। वह है बोध। वह है ध्यान।
"श्याम-श्याम रटते ही जीवन की सांझ हो गई। अभी तक मेरा श्याम नहीं आया।"
नहीं, पहचान तुम्हारे पास नहीं, श्याम तो बहुत बार आया। श्याम तो आता
ही रहा। श्याम तो आता ही रहता है। उसके सिवाय और कोई है ही नहीं जो आये। जो भी आया है उसमें श्याम ही आया है। कोई और तो आयेगा कैसे? सभी उसके रूप हैं। सभी उसके ढंग हैं। सभी उसके रंग हैं। फूल में भी वही। पत्तों में भी वही। पहाड़ों-पत्थरों में भी वही। पशु-पक्षियों में वही। स्त्री-पुरुषों में वही! जहां "कुछ" है, वही है; और जहां कुछ भी नहीं है, वहां भी वही है। इसलिए आने-जाने की भाषा तो हमारे मन की भाषा है।
परमात्मा हैः न आता न जाता। जो "है" उसका ही नाम परमात्मा है--जो सदा है, जिसमें कोई गति नहीं है, जिसमें कोई प्रक्रिया-क्रिया नहीं है, जो "मात्र होना" है! इस क्षण भी तुम्हें उसी ने घेरा है। तुम राह किसकी देखते हो? कहीं राह देखने में ही तो नहीं चूक रहे हो? क्योंकि जब आंखें किसी की राह देखती हैं, तो और सब चूक जाता है। तुम अगर अपनी प्रेयसी की राह देख रहे हो द्वार पर बैठकर, तो फिर और कोई नहीं दिखायी पड़ता। राह चलती रहती है.। लोग गुजरते रहते हैं। तुम और सबके प्रति अंधे हो जाते हो, क्योंकि तुम्हारा मन एकाग्र है--किसी वासना में, किसी कामना में, किसी आकांक्षा में, अभीप्सा में, तुम एकजुट एकाग्र हो। तुम राह देखते हो किसी चेहरे की। तो श्याम तो तुमने पुकारा होगा, लेकिन तुम किसी चेहरे की राह देख रहे हो--बांसुरी धरे हुए आयेगा, मोर-मुकुट लगाकर आयेगा। तो तुम चूके! तुम्हारी इस आकांक्षा में ही, तुम्हारी इस धारणा में ही पर्दा है। तुम्हारी कोई निश्चित मनोदशा है, जिसमें तुम मांग कर रहे हो, ऐसा होना चाहिए।
कहते हैं, तुलसीदास को कृष्ण के मंदिर में ले गये, तो वे झुके नहीं। तुलसीदास जैसा समझदार आदमी भी नासमझी कर गया। झुके नहीं, क्योंकि वे राम

के भक्त थे, कृष्ण की मूर्ति के सामने झुकें कैसे! खड़े रहे, अड़े रहे। वे तो एक को ही पहचानते थे--धनुर्धारी राम को। यह मुरली-मुरारि को, यह मुरलीधारी को, वे पहचानते न थे, मानते भी न थे। कैसे झुकें!
कहानी बड़ी मधुर है। कहानी यह है कि उन्होंने कहा कि तुम जब धनुष-बाण हाथ लोगे, तभी मैं झुकूंगा, नहीं तो मैं न झुकूंगा। मैं तो एक का ही भक्त हूं।
कहानी कहती है कि तुलसीदास के लिए कृष्ण ने हाथ में धनुष-बाण लिया, मूर्ति बदली। मुरली खो गई, मोर-मुकुट खो गया, धुनर्धारी राम प्रगट हुए--तब, तब तुलसीदास झुके। मैं नहीं मानता हूं कि मूर्ति बदली होगी। तुलसीदास ने ही कोई सपना देखा होगा।
कहीं परमात्मा तुम्हारे पक्षपातों के अनुसार ढलता है? तुम परमात्मा
को आज्ञा दे रहे हो? तुम परमात्मा को कह रहे हो कि अगर मेरी स्तुति चाहिए हो तो इस ढंग से आ जाओ! ऐसे पीत वस्त्र पहनकर, पीतांबर होकर खड़े होना; ऐसा नील वर्ण हो तुम्हारा, ऐसी तुम्हारी आंखें हों, इस तरह से खड़े होना। तुम मुद्रा, ढंग, रूप-रंग, सब तय किये बैठे हो, इसलिए परमात्मा से चूक रहे हो। लोग धार्मिक होने के कारण धर्म से चूक रहे हैं। क्योंकि धार्मिक होने में वे सांप्रदायिक हो गये हैं और उन्होंने एक रुख पकड़ लिया है।
मेरी सारी चेष्टा यहां यही है कि तुम्हारे पक्षपात विसर्जित हो जायें। तुम मांग न करो। तुम कहो, तू जिस रूप में आयेगा, हम पहचानेंगे। तू हमें धोखा न दे पायेगा! तू धनुष-बाण लेकर आयेगा, कोई हर्ज नहीं, तो भी पहचानेंगे। तू मुरली हाथ में लेकर आयेगा तो भी पहचानेंगे। तू महावीर की तरह नग्न खड़ा हो जायेगा, न धनुष-बाण होंगे न मुरली होगी, तो भी हम पहचानेंगे। तू जीसस की तरह सूली पर लटक जायेगा, तो भी हमें धोखा न दे पायेगा!
धार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूं, जिसने परमात्मा को चुनौती दे दी
कि अब तू हमें धोखा न दे पायेगा, हम पहचान ही लेंगे! तू जिस रूप में आये, आ जाना; क्योंकि हमने अब एक बात समझ ली है कि सभी रूप तेरे हैं।
फिर तुम कैसे चूकोगे? फिर जिंदगी की शाम कभी न होगी। फिर जिंदगी सदा सुबह ही बनी रहेगी।
शंकराचार्य के जीवन में एक उल्लेख है।
कल ही मैं सांझ उनकी कहानी कह रहा था। शिष्यों को समझा रहे हैं। कुछ ऐसा उलझा हुआ प्रश्न खड़ा हो गया है। तो उन्होंने दीवाल पर कलम उठाकर एक चित्र बनाया--समझाने के लिए। चित्र में बनाया एक वृक्ष--बोधिवृक्ष। उसके नीचे बैठाया एक युवा संन्यासी को--गुरु की तरह। और फिर उस चित्र के आसपास, युवा संन्यासी के आसपास, बिठाये बड़े बूढ़े शिष्य, जीर्ण-जर्जर, बड़े प्राचीन! एक शिष्य ने खड़े होकर कहा, "यह आप क्या कर रहे हैं? शायद आप चूक गये। इस युवक संन्यासी को गुरु और इन बूढ़े वृद्ध ऋषि-मुनियों को शिष्य! आपसे कुछ गलती हो गई है।"
शंकर ने कहा, गलती नहीं हुई, जानकर बना रहा हूं। क्योंकि शिष्य सदा बूढ़ा है। क्योंकि शिष्य का अर्थ हैः मन। मन बड़ा प्राचीन है। मन बड़ा पुराना है। मन यानी पुराना। मन यानी अतीत। मन यानी जो हो चुका, उसकी धूल-धवांस; जो जा चुका उसके रेखा-चिह्न; जो बीत चुका उसके पद-चिह्न।
मन का अर्थ ही हैः जो बीत चुका, उसकी लकीरें। बड़ा पुराना है मन!
शिष्य के पास मन है। गुरु का मन खो गया है, तो अतीत खो गया। तो शंकर ने कहा, "गुरु तो सदा नित-नवीन है, युवा है, किशोर है।" इसलिए तुमने देखा! राम की तुमने कोई बूढ़ी प्रतिमा देखी? बूढ़े कभी तो हुए होंगे! कोई जगत नियम तो नहीं बदलता--किसी के लिए नहीं बदलता। कृष्ण की तुमने बूढ़ी प्रतिमा देखी? निश्चित बूढ़े हुए थे, अस्सी वर्ष के हो गये थे, तब तीर लगा और मरे। बुद्ध की तुमने बूढ़ी प्रतिमा देखी? महावीर की तुमने बूढ़ी प्रतिमा देखी? नहीं, हमने कोई बूढ़ी उनकी प्रतिमा नहीं बनायी। इसलिए नहीं कि वे बूढ़े नहीं हुए थे; बूढ़े तो हुए थे, लेकिन हम पहचान गये कि उनके भीतर जो घटा था वह नित नवीन था। सद्यःस्नात! अभी-अभी नहाया हुआ! इसी क्षण जन्मा!

मन तो पुराना है। मन की धारणाएं पुरानी हैं। परमात्मा प्रतिपल नया है--नयी फूटती कोंपल की भांति! नयी खिलती कली की भांति!
छोड़ो धारणाएं मन की, तो तुम उसे सब तरफ से आते पाओगे। हर पगध्वनि में उसी की पगध्वनि सुनायी पड़ेगी। कोयल के मधुर कंठ में ही नहीं, कौवे की कांव-कांव में भी वही है। और जब तक तुम कौवे में न पहचान पाओगे, तब तक तुम जानना, पहचान पक्की न हुई। राम में ही नहीं, रावण में भी वही है। और जब तक तुमने कहा कि रावण में नहीं है, तब तक तुम राम में भी न पहचान पाओगे।
तुलसीदास ने तो हद्द कर दी नासमझी की! कृष्ण में भी न पहचान पाये राम को, तो रावण में तो कैसे पहचान पायेंगे! महाकवि रहे होंगे, जाग्रत पुरुष नहीं। काव्य की महिमा है उनकी। बड़े सुंदर उनके वचन हैं। लेकिन कहीं कुछ चूका-चूका है, कहीं कुछ खोया हुआ है--अनुभव खोया हुआ है।
फिर जीवन की कभी शाम न होगी, अगर परमात्मा से पहचान हो गयी। जीवन की सांझ होती है, सुबह होती है, परिवर्तन होता है, जन्म और मौत होती है; क्योंकि उससे हमारी पहचान नहीं हो पाती, जो सनातन है, शाश्वत है।
"शाम शाम कूकदी नूं जिंदगी दी शाम होई।
आया नहीं शाम मेरा, ओस नूं मिलायो जी।।"
श्याम-श्याम रटते जीवन की सांझ हो गयी, अब तो जागो! रटन से कुछ भी न होगा। देखो! दर्शन चाहिए! आंख चाहिए! तुम्हारी रटन के कारण ही श्याम बहुत बार आया और लौट गया। उसने कहा, अरे! यह तो अभी भी रट रही है! अभी भी खाली नहीं है! अभी भी मन इसका मुक्त नहीं है, शांत नहीं है! अभी भी किसी श्याम-श्याम, को रट रही है!
तुम्हारी रटन के कारण ही तो पर्दा खड़ा हो गया है। तुम अपनी रटन में इतने लीन हो कि तुम्हें फुर्सत कहां कि तुम जरा आंख खोलो और देखो कि कौन आया है! रटन जब वस्तुतः हार्दिक होती है तो रटन होती ही नहीं। आवाज कहां उठती है! बोल कहां उठते हैं! सब खो जाता है, सन्नाटा हो जाता है।
परमात्मा की खोज में निकले खोजी, परमात्मा को पाने के पहले खुद खो जाते हैं।
वे ही उसे पाते हैं जो अपने को खो देते हैं।
रटन का हिसाब छोड़ो। माला कितनी जपी, यह फिक्र छोड़ो। कितनी बार उसका नाम लिया, यह फिक्र छोड़ो।
मैं एक घर में मेहमान था। तो पूरा घर शास्त्रों से भरा पड़ा था। तो मैंने कहा, "बड़े शास्त्र हैं, क्या मामला है? कौन-कौन से शास्त्र हैं।" उन्होंने कहा, "कुछ नहीं, सब शास्त्रों में राम-राम लिखा है।" वे जिनके घर मैं ठहरा था, वे राम-भक्त थे। तो उनका काम ही है यह चौबीस घंटे, वे और कोई काम नहीं करते, वे किताब लिये बैठे रहते हैंः राम-राम-राम-राम... । हजारों किताबें उन्होंने खराब कर दी हैं। मैंने उनसे कहा, बच्चों को दे देते, पढ़ने के काम आ जातीं, स्कूल में बांट देते--ये तुमने खराब क्यों कर दीं? अपना भी समय खराब किया। और मैंने उनसे कहा, देखो तुम ऐसे लिखते रहते हो चश्मा चढ़ाये, क्योंकि आंखें धुंधली हो गई हैं, बूढ़े हो गये--राम कई दफे आता है, लौट जाता है। तुम्हें कभी फुर्सत में नहीं पाता। तुम्हें राम-राम लिखने से फुर्सत मिले, तब न! राम हटे तो राम मिले! श्याम हटे तो श्याम मिले! तुम मिटो तो मिलन हो!
थक थक के हर मुकाम पे दो-चार रह गये
तेरा पता न पाएं तो नाचार क्या करें!
यह तसव्वुफ की भाषा है, प्रेम की, सूफियों की!
थक थक के हर मुकाम पे दो-चार रह गये।
परमात्मा की खोज में जो निकलता है, एक घड़ी आती है थक जाता है, खो जाता है।
थक थक के हर मुकाम पे दो-चार रह गये।
तेरा पता न पाएं तो नाचार क्या करें।
हम असहाय करें भी क्या, तेरा पता तो मिलता नहीं। खोजते-खोजते खुद ही
खो जाते हैं, अपना ही पता खो जाता है।

लेकिन जिस क्षण अपना पता खो जाता है, उसी क्षण सब दिशाओं से उसकी मंगल वर्षा होने लगती है। मंगल वर्षा तो पहले भी हो रही थी, लेकिन हम भरे थे, हम किन्हीं ख्यालों से दबे थे।
ईश्वर की सभी धारणाएं छोड़ दो अगर ईश्वर को चाहते हो। अगर सत्य को पहचानना है तो शास्त्र को हटाओ। अगर उसे देखना है जो अभी खड़ा है तुम्हारे सामने; जो हवा के झोंके में तुम्हें सहला गया है; जो पक्षियों के कलरव में तुम्हें बुला रहा है; सूरज की किरण में जिसने अपना हाथ फैलाया है और तुम्हारा स्पर्श किया है--अगर उसे देखना है, उस सहस्रबाहु को, उस अनंत को, तो तुम सारी धारणाओं को हटाओ। तुम नग्न हो जाओ, निर्वस्त्र--धारणाओं से बिल्कुल निर्वस्त्र। यही तो महावीर होने का अर्थ है--निर्ग्रंथ, नग्न, दिगंबर!
जैनों ने बड़ी उलटी बात पकड़ ली। वे समझे कि बस वस्त्र छोड़कर नग्न खड़े
हो जाने पर महावीर की नग्नता पूरी हो जाती है। महावीर की नग्नता तब पूरी होती है जब चित्त के सारे वस्त्र उतर जाते हैं।
तुमने कृष्ण की कहानी पढ़ी है? गोपियां स्नान कर रही हैं, वे उनके वस्त्र चुराकर वृक्ष पर बैठ गये हैं। अश्लील मालूम होती है। आज करें तो पुलिस पकड़ेगी। चल गई उन दिनों, अब न चलेगी। और स्त्रियां ही मुश्किल में डाल देंगी। लेकिन कहानी का अर्थ बड़ा गहरा है। कृष्ण यह कह रहे हैं, जो मेरे प्रेम में पड़ेगा उसके मैं वस्त्र छीन लूंगा। गोपी यानी जो उनके प्रेम में है। कृष्ण कह रहे हैं कि तुम्हारे वस्त्र छीन लूंगा, तुम्हें निर्वस्त्र करूंगा। कृष्ण कह रहे हैं कि जब तक तुम्हारे पास कुछ भी है तुम्हारा, जिसमें तुम अपने को छिपा लो, तब तक मुझसे मिलन न हो सकेगा।
वस्त्र का अर्थ होता है; जिसमें तुम अपने को छिपा लो, ढांक लो। निर्वस्त्र होने का अर्थ हैः छिपाने को कुछ भी न रहा, ढांकने को कुछ भी न रहा; हमने खोला अपना हृदय, सारे शब्द, सारे सिद्धांत हटा डाले। तुम जब कहते हो, मैं हिंदू हूं, तो तुम मन पर कुछ वस्त्र पहने हुए हो। तुम्हारा मन नग्न नहीं। तुम्हारी चेतना का कुछ आवरण है। जब तुम कहते हो, मैं जैन हूं, तब तुम सत्य के लिए खुले नहीं। तुम कहते हो, सत्य के प्रति मेरी कुछ धारणा है; जब सत्य उस धारणा को पूरा करेगा तो ही मैं मानूंगा कि सत्य हैः तुम भटकोगे फिर। एक सांझ नहीं, हजारों सांझ होंगी रटते-रटते, पहुंचना न होगा।
खोने की तैयारी करो! मिटने की तैयारी करो! एक-एक इंच अपने को गलाओ। खोजनेवाला खो जाये, यही शर्त है उसे पाने की।
और फिर से तुम्हें दोहरा दूं, परमात्मा आता-जाता नहीं। आने-जाने की क्रिया संसार है। सदा होने की स्थिति परमात्मा है। जो आता है जाता है, उसी को तो हम मन कहते हैं। जो न आता न जाता, जो सदा है, वही तो चैतन्य है। बादल आते हैं, घिरते हैं, घुमड़ते हैं, नाचते हैं, बिजलियां चमकती हैं, फिर विदा हो जाते हैं! अब आषाढ़ आता है जल्दी; घिरेंगे बादल, घुमड़ेंगे, घड़ी भर को बड़ा रौरव मचायेंगे, बड़ा शोरगुल करेंगे--फिर जा चुके होंगे। जो बचा रहता है वही आकाश है। कितनी बार बादल घिरे और कितनी बार गये! आये और गये--वही संसार है। जो बचा रहा है पीछे, अछूता, अस्पर्शित, पोखर के कमल के पत्तों जैसा, जिस पर कोई बादल की छाया भी न छूटी और जिसे बादल मलिन भी न कर पाये, जिस पर बादलों की स्मृति भी नहीं है... !
आज आकाश को देखो, तो क्या तुम सोचोगे इस पर अरबों-खरबों वर्षों से बादल घिरते रहे हैं? निष्कलुष! निर्मल! कुंआरा! कुंआरा का कुंआरा! इसका कुंआरापन कभी भी खंडित नहीं हुआ। बादल आये और गये, इसके पास उनकी कोई स्मृति भी नहीं है।
ऐसा ही है परमात्मा। हम आते हैं जाते हैं--परमात्मा है।
हम बहुत बार आये हैं, बहुत बार गये हैं--आषाढ़ के बादल--कभी बहुत शोरगुल मचाया--नेपोलियन, चंगेज, तैमूर! कभी चुपचाप भी आकर चले गये--कपसीले बादल-- कोई शोरगुल भी न मचाया, वर्षा भी न की, साधारण! कभी बिजलियां कौंधी, बड़ा रौरव किया, बड़ा रौद्र रूप दिखाया; कभी चुपचाप सपनों जैसे तैर गये, न कोई रौरव नाद किया, न कोई शोरगुल मचाया, किसी को पता भी न चला! कभी इतिहास बनाया

उपद्रव का, कभी चुपचाप गुजर गये, कानों-कान किसी को खबर भी न मिली आने-जाने की। पर हर हालत में हम आये और गये।
उसे जानना है, जो न आया और न गया।
झेन फकीर हुआः तोझान ओसो! वह बड़ा बहुमूल्य फकीर था! कहते हैं जब तोझान ओसो समाधि को उपलब्ध हुआ, परमज्ञान को उपलब्ध हुआ, निर्वाण पा लिया उसने, खो गया सब भांति, बचा वही जो सदा है--तो कहते हैं, देवलोक में देवता आतुर हुए तोझान को देखने को--होना ही चाहिए। क्योंकि देवता कितने ही सुंदर हों, अभी बादल ही हैं; कितने ही स्वर्णमंडित हों, अभी बादल ही हैं; कितने ही सुखमय हों, अभी सपने में ही हैं। उत्सुक हुए तोझान का चेहरा देखने को। जब भी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तो देवता उत्सुक होते हैं। उनको भी आकांक्षा जगती है। क्योंकि यह परम घटना घटी। तो देवता आये तोझान के आश्रम में। उन्होंने सब तरफ से चेष्टा की तोझान को देखने की, पहचानने की; लेकिन कोई चेहरा दिखायी न पड़े। आकाश का कहीं कोई चेहरा है! बादल हो तो रूप-रंग, रेखा, आकृति... । आकाश तो निराकार है। तोझान तो आकाश हो गया। उन्होंने सब तरफ से... उसके भीतर गये, बाहर गये, सब तरफ से खोजा, कुछ भी न पाया। सन्नाटा है, अनंत सन्नाटा है, शून्य है! वे बड़े चिंतित हुए कि क्या हमें दर्शन न होंगे। उसी में से गुजरते थे और उसके दर्शन न हो रहे थे। उसी के आसपास परिक्रमा कर रहे थे और उससे पहचान न हो रही थी! भीतर-बाहर आ जा रहे थे, लेकिन सब सूना सन्नाटा था। मंदिर ही बचा था, प्रतिमा तो खो गई थी--दर्शन किसके हों! राम बचा था, धनुष-बाण खो गये थे, प्रतिमा खो गई थी। कृष्ण बचा था, बांसुरी न बची थी, गीता न बची थी। गीता पर रखी बांसुरी खो गई थी।
आखिर देवताओं में जो सब से ज्यादा कुशल था, उसने कहा, "ठहरो! कुछ उपाय करना पड़ेगा। ऐसे तो दर्शन न होंगे।"
तोझान घूमने निकला था। सुबह की बेला! नया-नया ऊगा सूरज! पक्षियों के गीत! तोझान लौट रहा था आश्रम की तरफ। उस चालाक देवता ने आश्रम के चौके से कुछ चावल मुट्ठियों में भर लिये, कुछ गेहूं मुट्ठी में भर लिये और आकर तोझान के रास्ते पर उन्हें फेंक दिया।
अब... झेन आश्रम में बड़ी सावधानी बरती जाती है। क्योंकि प्रत्येक चीज
का अपरिसीम सम्मान है। अन्न तो ब्रह्म है। इसलिए कोई झेन साधु, कोई झेन साधक ऐसे चावल और गेहूं को फेंक नहीं सकता रास्ते पर। इसमें कोई अर्थशास्त्र का सवाल नहीं है। यह कोई गांधीवादी बचायत और किफायत नहीं है। यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि प्रत्येक चीज का समादर है। यह कोई कंजूसी नहीं है। अर्थशास्त्र से इसका कोई लेना-देना नहीं है। इसका संबंध तो बड़े अध्यात्म से है। प्रत्येक चीज का सम्मान! तो भोजन करते वक्त भोजन को भी नमस्कार कर के ही भोजन शुरू करना है। भोजन करते वक्त पहले परमात्मा को भोग लगा देना है, तब भोजन शुरू करना है। आज फिर उसने अवसर दिया! आज फिर घड़ी आई भोजन की! एक दिन और मिला! उसकी अनुकंपा अपार है--ऐसे भाव से।
तो किसने फेंके ये चावल के दाने? आश्रम में ऐसा कभी भी न हुआ था। तो तोझान के मन में विचार उठा देखकर, किसने फेंके ये चावल के दाने, किसने फेंके ये गेहूं। कहते हैं, उसी वक्त देवताओं ने उसके दर्शन कर लिये। क्योंकि जब विचार उठा तो बादल घिरा। जब बादल घिरा तो आकृति आ गई। उस वक्त पकड़ लिया देवताओं ने तोझान को। एक क्षण को ही उठी लहर, पर उठ गई। एक क्षण को कुछ सघन हो गया, भीतर एक तनाव आ गयाः किसने, क्यों फेंके ये? यह कैसी गैर-सावधानी है? यह कौन है जो असावधानी से जी रहा है? एक प्रश्न उठ गया। एक समस्या आ गई। एक चिंता आ गई। बादल घिरे। क्षणभर को सब अंधेरा हो गया। उस क्षण में देवताओं ने दर्शन कर लिये। फिर खुल गये बादल।
तोझान हंसा। उसने कहा, "तो अच्छा, यह शरारत है!" उसने देवताओं से कहा, "अच्छा तो यह शरारत है!" क्योंकि जब तोझान का चेहरा आया और देवताओं ने तोझान को देखा, तो तोझान ने भी देवताओं को देख लिया। उसने कहा, "अच्छा, तो यह तुम्हारी शरारत है!"
जरा-सा विचार, और तनाव पैदा हो जाता है। निर्विचार, कि आकाश पैदा हो जाता है।

तो श्याम-श्याम रटने से कुछ भी न होगा। रटन ही तनाव बनेगी, बादल बनेगी। राम चदरिया ओढ़ लेने से कुछ भी न होगा। सब चादर उतार देनी है।
जिस क्षण तुम्हें पता भी न रहेगा कि परमात्मा की प्रतिमा कैसी, नाम भी याद न रहेगा कि उसका नाम क्या है, उसका धाम क्या है, पता-ठिकाना क्या है; जिस क्षण तुम अबूझ, आश्चर्यचकित, अवाक, मौन, निराकार में खड़े हो जाओगे--फिर कोई सांझ न होगी; फिर सुबह ही सुबह है।
परमात्मा के जगत में सुबह ही सुबह है; आदमी के जगत में सांझ ही सांझ है। आदमी के जगत में सुबह होती है सिर्फ सांझ को लाने के लिए। आदमी के जगत में जन्म होता है केवल मृत्यु की तरफ जाने के लिए। यहां जन्म भी मौत की तरफ एक कदम है। यहां सुख भी केवल दुख को पाने की व्यवस्था है। परमात्मा के जगत में फिर कोई सांझ नहीं है, वह तो सदा ही मौजूद है।
उलटा उधर नकाब तो परदे इधर पड़े
आंखों को बंद जलवए-दीदार ने किया।
तुम किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो? उसका ही जलवा है। उसके ही दर्शन की रोशनी है सब तरफ। तुम किसे खोजते हो? कहीं उसकी रोशनी के कारण तुम आंखें बंद किये तो नहीं बैठे?
उलटा उधर नकाब तो परदे इधर पड़े।
परमात्मा जैसे ही अपना घूंघट उठाता है, तुम्हारी आंखें बंद हो जाती हैं।
उलटा उधर नकाब तो परदे इधर पड़े
आंखों को बंद जलवए-दीदार ने किया।
उसकी रोशनी तुम झेल नहीं पाते, आंख बंद कर लेते हो। जिस दिन तुम उसकी रोशनी झेल पाओगे, कंकड़-पत्थर में भी उसे छिपा पाओगे। कंकड़-पत्थर मानकर तुमने अपनी आंखें बंद कर ली हैं। फिर से खोलो। आंख खोलो! दर्शन को उपलब्ध होओ!
जिन्होंने उसे पाया है, वे कहते हैंः दो दुख हैं जीवन में। एक, उसे पाने के पहले; एक, उसे पाने के बाद। पाने के पहले का दुख नकारात्मक है। पाने के बाद का दुख बड़ा विधायक है। पाने के बाद के दुख में बड़ा रस है। उस पीड़ा में बड़ी मधुरता है, मधुरिमा है। इसलिए तो नारद कहते हैं, भक्त भगवान से प्रार्थना करता हैः "मेरे विरह को मत मिटा देना।" यह पाने के बाद की पीड़ा है। तब एक खेल शुरू होता है। वह खो-खोकर फिर-फिर पाता है; आंख बंद-बंद करके फिर खोलता है।
तुमने कभी ख्याल किया! कोई बहुत चमत्कारी अनुभव होता हो, बड़ी गहन सुबह हुई हो, सूरज निकला हो, बड़ा प्रीतिकर हो वातावरण--तुम देखते हो, फिर तुम आंख बंद करके, फिर खोलकर देखते हो। एक क्षण को आंख बंद कर लेते हो ताकि खो जाये, ताकि आंख ताजी हो जाये। फिर देखते हो।
परमात्मा को जिन्होंने पाया है, वे कहते हैंः दो दुख हैं। एक तो उसे पाने के पहले का दुख। वह कुछ भी नहीं है। वह तो सिर्फ उजाड़ रेगिस्तान जैसा था। एक उसे पाने के बाद का दुख। क्योंकि पाने के बाद, और पाने की अदम्य लालसा जगती है। यह कोई ऐसी बात थोड़े ही है कि पूरी हो जाती है कभी। परमात्मा कुछ ऐसा थोड़े ही है कि पा लिया, पा लिया। इधर तो पाया कि और भी पाने की आकांक्षा जगती है। यह तो सागर अंतहीन है। इसका कोई कूल-किनारा नहीं है।
जाहिरा दुनिया जिसे महसूस कर सकती नहीं
हो गई है मुझमें इक ऐसी कमी तेरे बगैर।
मगर यह तो जानने के बाद की बात है। जानने के पहले तो हमें पता ही नहीं
कि हम क्या खो रहे हैं। जानने के पहले तो हमें पता ही नहीं है कि हम सम्राट हैं और भिखारी की तरह भटक रहे हैं। जानने के बाद--
जाहिरा दुनिया जिसे महसूस कर सकती नहीं
हो गई है मुझमें इक ऐसी कमी तेरे बगैर
तुझसे छुटकर कितना फीका पड़ गया है रंगेगुल
हो गई बेले की कलियां सांवली तेरे बगैर
कल जहां जर्रा-जर्रा तूरदर आगोश था

आज इस घर में नहीं है रोशनी तेरे बगैर
दिल नहीं झुकता है पहले की तरह सजदों के साथ
नामुकम्मिल है मजाके-बंदगी तेरे बगैर।
और तो और, प्रार्थना में भी मन नहीं लगता अब। जिसने परमात्मा की एकझलक
पा ली, फिर प्रार्थना में भी मन नहीं लगता; क्योंकि प्रार्थना में भी उसकी कमी ही खलती है।
दिल नहीं झुकता है पहले की तरह सजदों के साथ
नामुकम्मिल है मजाके-बंदगी तेरे बगैर।
किसी को दिखाई भी न पड़ेगा बाहर से। परमात्मा को पाना, संसार में कुछ
पा लेने जैसी बात नहीं है। एक मकान बना लिया, बना लिया--बात खतम हो गई। एक पत्नी से विवाह करना था, रचा लिया--बात खतम हो गई। परमात्मा से तो सिर्फ बात शुरू होती है, खतम कभी नहीं होती। इसलिए तो कहता हूंः सुबह ही सुबह है, सांझ नहीं आती। यात्रा का प्रारंभ तो है, फिर अंत नहीं है। सागर में उतरते तो हैं, लेकिन फिर किनारा नहीं मिलता। लेकिन तब एक तरफ तो पीड़ा भी सालती है कि और मिल जाये, गहन अतृप्ति जगती है, एक दिव्य असंतोष पैदा होता है; और दूसरी तरफ हर तरफ से उसकी झलक भी आने लगती है। रह-रहकर उसके झोंके आ जाते हैं हवा के। रह रहकर उसकी गंध तैर जाती है।
बहार जब भी चमन में दीये जलाती है
हुजूमे-गुल से मुझे तेरी आंच आती है।
बहार जब भी चमन में दीये जलाती है--जब बसंत आ जाता है और बगीचों में दीये जलते हैं, फूलों के दीये जलते हैं... हुजूमे-गुल से मुझे तेरी आंच आती है। तब फूलों के गुच्छों से मुझे तेरी आंच आती है। हर तरफ जीवन उसी की आंच देने लगता है। हर श्वास उसी की श्वास है। हृदय में दौड़ते हुए रक्त-कण उसी के हैं। तो एक तरफ तो सब तरफ से उसकी खबर मिलने लगती है; और दूसरी तरफ, और चाहिए, और चाहिए, और चाहिए, क्योंकि दूसरा किनारा नहीं मिलता।
भक्त भगवान को पाकर और भी विरह में पड़ जाता है। यह भक्ति का विरोधाभास है। जिन्होंने नहीं पाया है, वे तो कभी-कभी रोते हैं उसके लिए, कभी-कभी श्याम-श्याम की रटन करते हैं; जिन्होंने पाया है, उनके रोने का तुम्हें कुछ पता ही नहीं। वे रोते ही रहते हैं। कभी रोते हैं, कभी नहीं रोते--ऐसा नहीं; रोते ही रहते हैं। रटन करते हैं, ऐसा भी नहीं है; लेकिन फिर भी रटन होती रहती है। दूर गहन गहरे हृदय में पुकार चलती ही रहती है।
परमात्मा एक अनंत यात्रा है; ऐसा तीर्थ है जिसकी तरफ हम चलते तो हैं, लेकिन कभी पहुंच नहीं पाते। परमात्मा गंतव्य नहीं है। हम उसकी तरफ गति करते हैं, लेकिन ऐसा कभी नहीं होता कि हम कह दें, बस अब आगे और नहीं। अगर ऐसा होता तो परमात्मा को अनंत कहने का कोई भी अर्थ न था। अगर आगे और नहीं तो परमात्मा भी शांत है, पूरा हो गया। नहीं, सदा शेष है। यही दुविधा भी है, यही सौभाग्य भी। नहीं तो सोचो, जिसने पा लिया वह क्या करता? ऊबकर, थककर बैठ जाताः "अब क्या करूं? अब कहां जाऊं? अब क्या बनूं? अब क्या हो जाऊं? अब किसको खोजूं?"
अनंत है। रोज-रोज नये-नये शिखर उसके पुकारते हैं। रोज नयी चुनौती आ जाती है। वह बुलाता ही चला जाता है। तुम पास भी आते चले जाते हो और फिर भी उसे छू नहीं पाते।
"आपकी शरण आयी हूं, स्वीकार करो! कहीं चूक न जाऊं... !"
चूकने का उपाय नहीं है। हां, तुम मानना चाहो तो माने रह सकते हो कि चूके हो। चूकना तुम्हारी भ्रांति है। जिस दिन जानोगे उस दिन हंसोगे-- हंसोगे इस मूढ़ता पर कि अब तक कैसे मैंने माने रखा कि चूक गये थे, परमात्मा को चूक गये थे, भूल गये थे! यह कैसे संभव हुआ था कि अब तक मैं समझ न पाया था कि वह हमेशा मौजूद है, सब तरफ मौजूद है!
कबीर कहते हैं कि मुझे देख-देखकर बड़ी हंसी आती है कि मछली सागर में प्यासी है। मछली सागर में प्यासी है! और सागर को मछली खोज रही है, कहां है। ईश्वर की सारी खोज ऐसे ही है जैसे मछली सागर को खोजती हो, कहां है। इतने निकट है कि खोजने का अवकाश भी कहां है! मछली सागर से ही बनती है, सागर में ही पैदा होती है। सागर ही मछली के भीतर भी लहरें लेता है, बाहर भी

लहरें लेता है। फिर सागर में ही लीन हो जाती है एक दिन, खो जाती है। सागर की ही एक लहर है मछली--थोड़ी ज्यादा ठोस, थोड़ी ज्यादा देर टिक जानेवाली--थोड़े ज्यादा दिन उछल-कूद कर लेती है और लहरों की बजाय; लेकिन लहर सागर की है। इसलिए घबड़ाओ मत। चूकने का उपाय नहीं है। मैं तुम्हें जो समझा रहा हूं,
वह पाने का उपाय नहीं बता रहा हूं; तुम्हें सिर्फ यह समझा रहा हूं कि तुमने चूकने के लिए जो उपाय बना रखे हैं, वे छोड़ दो। साधारणतः लोग कहते हैं कि हमें विधि बताओ कि कैसे हम परमात्मा को पा लें। मैं तुमसे कहता हूं, मैं तुम्हें जो विधि बतला रहा हूं, वह परमात्मा को पाने की नहीं है; क्योंकि उसको तो कभी खोया नहीं, वह तो बात ही छोड़ दो, वह बकवास तो मेरे सामने उठाओ ही मत। कोई मछली मुझसे पूछे सागर कहां है, मैं जवाब देनेवाला नहीं हूं; क्योंकि मैं क्यों फिजूल पंचायत में पडूं। वह तो नासमझ है ही और मुझको भी नासमझ बनाने की तैयारी है। तो मैं तो यही समझने की कोशिश करूंगा कि यह मछली कैसे भूल गई है, यह मछली कैसे अपरिचित रह गई है! इसके अपरिचय को तोड़ देना है।
परमात्मा से परिचय थोड़े ही बनाना है; अपने अपरिचय के जो ढंग हैं, वे तोड़ देने हैं। पर्दे उठा लेने हैं, जो हमने डाले हैं--परमात्मा तो सामने ही है। उसके चेहरे पर कोई घूंघट नहीं है, हमारी ही आंखों पर पर्दा है। फिर पर्दा डाले तुम कहीं भी घूमते रहो, काशी कि काबा, कोई फर्क न पड़ेगा। तुम्हारी आंख पर पर्दा है, तुम जहां जाओगे--तुम्हारी आंख का पर्दा... तुम्हारी आंख का पर्दा जन्मों-जन्मों तक तुम्हें घेरे रहेगा।
इसलिए यह तो पूछो ही मत कि कहीं चूक न जाऊं। कोई उपाय नहीं चूकने का।
अब तक कोई चूक ही नहीं पाया है। हां, लेकिन तुम अगर मानना चाहो कि चूक गये हैं तो क्या करे, सागर भी क्या करे? मछली को कैसे समझाये कि मैं यहां हूं? मछली की अगर यही मौज है कि चूकना चाहती है, चूकती रहे।
और कहा है, आपकी शरण आयी हूं, स्वीकार करो। अस्वीकार कर सकता होता तो स्वीकार करता। मुझसे लोग पूछते हैं कि आप हर किसी को संन्यास दे देते हैं! करूं क्या? अस्वीकार करने का उपाय नहीं है। किसको अस्वीकार करूं? मैं तो उनको भी देना चाहता हूं, जो लेने नहीं आये हैं, मगर क्या करूं! जो आ जाता है उसको इनकार करने का तो सवाल कैसे उठे? तुम्हारे आने के पहले भी तुम्हें स्वीकार किया हुआ है। ऐसा नहीं है कि तुम्हारे बाबत सोचता था कि तुम्हें स्वीकार करना है। स्वीकार मेरी भाव-दशा है। ऐसे एक-एक आदमी के बाबत तो सोचूंगा भी कैसे कि किस-किसको स्वीकार करूं? स्वीकार मेरी भाव-दशा है। अस्वीकार करने का मेरे पास उपाय नहीं है। निर्णय तुम्हारा है, इकतरफा है। मुझे स्वीकार कर लो या मुझे अस्वीकार कर दो, यह तुम्हारी बात है। मेरी तरफ से तुम स्वीकृत हो, स्वीकार करो तो, अस्वीकार करो तो।
और घबड़ाओ मत। प्यास आ गयी है तो पानी भी आयेगा। जाननेवाले तो कहते हैं, पानी पहले आ गया होगा, तभी प्यास आयी है। क्योंकि जाननेवाले कहते हैं, परमात्मा बच्चे को पैदा करता है, उसके पहले मां के स्तन में दूध भर देता है। देखा है चमत्कार! रोज घटता है, लेकिन देखते नहीं! इधर मां गर्भवती हुई, उधर बच्चा बढ़ने लगा। अभी बच्चा आया भी नहीं है बाहर, अभी दूध पीनेवाला तैयार ही हो रहा है, अभी रास्ते पर है--लेकिन दूध तैयार हो गया! मां के स्तन दूध से भर जाते हैं। बच्चा जब आयेगा तब आयेगा, लेकिन परमात्मा तैयारी पहले से कर लेता है।
ऐसा ही सारे जीवन में है। तुम नाहक ही दौड़-धूप करते हो। यह बात अलग है, तुम नाहक शोरगुल मचाते हो। वह तो बच्चे को भी थोड़ी बुद्धि हो तो वह भी बड़ी चिंता करेगा गर्भ में पड़ा-पड़ा कि पता नहीं, अब जन्म के बाद क्या होता है, देखें! न तो कोई बैंक-बैलेंस है, न कोई जान-पहचान है, अपरिचित दुनिया में जाते हैं, भाषा भी पता नहीं कि क्या भाषा बोलनी पड़ेगी! किस तरह के लोगों से मिलना होगा, कुछ पता नहीं है। तो बच्चा भी अगर समझदार हो जाये, जैसा कि कुछ लोग समझदार हैं, तो रुक जाये वहीं कि जाना नहीं। यहां सब मजे से चल रही है, ठीक से चल रही है, कहां की झंझट उठानी! भूख लगेगी तो कौन दूध देगा! प्यास लगेगी तो कौन पानी देगा!

मां के पेट में तो श्वास भी मां ही लेती है, उसी से बच्चे को आक्सीजन मिलती है। श्वास भी वह खुद नहीं लेता। मां के ही भोजन पर पलता है।
लेकिन उसे पता नहीं कि जिसने उसे बनाया है, उसने इंतजाम कर रखा है। वह आये, उसके पहले दूध तैयार है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुषों को इतनी ज्यादा रस की, आकर्षण की बात स्त्री के स्तन में क्यों है? पुरुष के मन में स्त्री के स्तन का बड़ा आकर्षण है! काव्य-शास्त्र भरे पड़े हैं। कविताएं उरोजों के, स्तनों के आसपास घूमती हैं। कहानियां... ! क्या कारण है? वह भी परमात्मा की व्यवस्था है। क्योंकि जो पिता बनने जा रहा है, इसके पहले कि पिता बने, वह अपने बेटे के लिए ठीक उरोज, भरे उरोजों का इंतजाम कर ले रहा है। वह भी परमात्मा का आयोजन है। पुरुष के मन में स्त्री के स्तन का इतना आकर्षण है--वह आकर्षण इसीलिए है। वह प्रकृति की व्यवस्था है, क्योंकि अगर स्त्री के स्तन ठीक न हों, सुडौल न हों, भरे न हों, भरे-पूरे न हों, तो बच्चा भूखा मरेगा। तो पुरुष उस स्त्री को खोजेगा, जिसके स्तन भरे-पूरे हैं। वह उसे सुंदर मालूम होगी। सुंदर वगैरह मालूम होना तो ठीक है, मगर पीछे प्रकृति बड़ा आयोजन कर रही है; वह यह कह रही है कि यह स्त्री है जो तेरे बच्चे की मां बन सकेगी। यह बच्चे को बचाने का आयोजन चल रहा है, तुम धोखे में पड़ रहे हो--तुम समझ रहे हो, तुम सौंदर्य का इंतजाम कर रहे हो।
इसलिए जिन स्त्रियों के स्तन ठीक नहीं हैं, वे धीरे-धीरे खो जायेंगी, उनको पति न मिलेंगे, उनकी संतान न होगी। वे धीरे-धीरे खो जायेंगी।
जीवन के रहस्य को अगर तुम समझो तो यहां प्यास के पहले पानी तैयार है; श्वास के पहले हवा तैयार है। और इसकी समझ जिसको आ गई, उसी के जीवन में श्रद्धा का आविर्भाव होता है।
हो नहीं सकता कि शीशा आए और सहबा न आए
मय भी आएगी "अदम" जब आबगीना आ गया।
--जब प्यालियां आ गईं, जब मधुपात्र आ गये, तो शराब भी आती ही होगी।
हो नहीं सकता कि शीशा आए और सहबा न आए
मय भी आएगी "अदम" जब आबगीना आ गया।
--जब प्यालियों की खनक आने लगी, तो शराब भी आती ही होगी। तो जिसके जीवन में परमात्मा को खोजने की आकांक्षा आ गई, प्यास आ गई--अब घबड़ाओ मत, राह पर हो। ठीक दिशा में उन्मुख हो गये हो। अब डरो मत, अब प्यास को पकड़ने दो कि तुम्हें पकड़ ले झंझावात की तरह, आंधी-अंधड़ की तरह। अब उड़ाने दो प्यास को कि बन जाये तुम्हारे पंख। अब मथने दो प्यास को कि बन जाये आग और जला दे तुम्हारे अहंकार को।
हो नहीं सकता कि शीशा आए और सहबा न आए
मय भी आएगी "अदम" जब आबगीना आ गया।

दूसरा प्रश्नः कल के प्रवचन में आपने नककटे साधु की कहानी सुनायी, जिसके चक्कर में पड़कर पूरा गांव नाक गंवा बैठा था। क्या करीब-करीब यही स्थिति आपके संन्यासियों की नहीं है?

देखो, मेरी नाक तुम्हें साबित दिखाई पड़ती है या नहीं! क्योंकि कहानी
के होने के लिए पहले तो मैं नककटा होना चाहिए! न तो गेरुआ वस्त्र पहने हूं, न माला लटकाई है। अपनी ही नाक नहीं कटी, तुम्हारी क्यों काटूंगा?
इसलिए कहानी यहां लागू हो नहीं सकती।
हां, जिन मित्र ने पूछा है, उनको जरा अपनी नाक टटोलकर देख लेनी चाहिए। कहीं ऐसा तो नहीं है कि है ही नहीं अब कटाने को! कहीं पहले कटा तो नहीं बैठे! क्योंकि मैं मुश्किल से ऐसे आदमी के करीब आता हूं जो नककटा न हो। अगर तुम हिंदू हो तो नाक कटा चुके! हिंदुओं के हाथ कटा ली। अगर मुसलमान हो तो कटा चुके--तो मस्जिद में कटायी, मंदिर में न कटायी। अगर जैन हो तो कटा बैठे।
यह प्रश्न किसी नककटे का होना चाहिए, जो कहीं कटा बैठा है और जिसे बड़ी बेचैनी हो रही है।

और या फिर किसी ऐसे आदमी का होना चाहिए, जिसका अहंकार उसकी नाक पर बैठा है।
अहंकारी की नाक देखी! अहंकारी नाक की भाषा में बोलता है। उसका सारा अहंकार नाक पर होता है। अगर नाक पर अहंकार बैठा हो, इससे बेचैनी मालूम हो रही है, तो कटा ही लो। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी! नाक ही न रहेगी तो अहंकार को बैठने की जगह न रह जाएगी। कटा ही लो प्यारे!
कहीं कोई गहरी अड़चन होगी प्रश्नकर्ता को। मैं जानता हूं, अड़चन होती है। यहां इतने लोग गैरिक वस्त्रों में हैं। यहां इतने लोग संन्यासी के वेश में हैं--तुम जब गैर-संन्यासी की तरह आते हो, तुम हीन-भाव अनुभव करते हो। लक्ष्मी कल ही मुझे कहती थी कि दफ्तर में लोग उससे आकर कहते हैं कि सफेद कपड़ों में हम यहां ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे अजनबी हैं, पराये हैं, बाहर-बाहर हैं। स्वाभाविक है। यह एक परिवार है। यह मेरा परिवार है। वस्त्रों का ही थोड़े ही सवाल है; वस्त्र तो केवल इंगित हैं, इशारे हैं। जिन्होंने गैरिक वस्त्र स्वीकार किये हैं, उन्होंने तो केवल इतना कहा है कि इस इशारे से हम कहते हैं कि अब हम तुमसे राजी हैं। यह तो सिर्फ एक भाव-भंगिमा है। उन्होंने यह कहा है कि अब हम हमारा तर्क छोड़ते, विवाद छोड़ते--अब तुम जहां ले चलोगे, चलेंगे; चलो, गड्ढे में ले चलोगे तो गड्ढे में चलेंगे; भटकाओगे तो भटकेंगे, लेकिन तुम्हारे साथ भटकेंगे। जिन्होंने मुझे चुना है उन्होंने यह मानकर चुना है--इसलिए नहीं कि मैं उन्हें ठीक जगह ही पहुंचा दूंगा। इसका तो पता कैसे होगा जब तक पहुंचोगे न! इसका तो कोई उपाय नहीं है, पहले से जान लेने का। जिन्होंने मुझे चुना है उन्होंने यह मानकर चुना है कि चलो, अब ठीक जगह भी पहुंचना अगर इस आदमी के बिना होता हो तो भी इस आदमी के बिना नहीं चलना है। अगर यह गड्ढे में ले जायेगा तो इसके साथ गड्ढे में सही। उन्होंने अपने विचार करने की, अपना निजी विचार करने की, जो अस्मिता थी, वह छोड़ी है। कपड़े तो गौण हैं। कपड़ों में क्या रखा था? कपड़ों से कहीं कोई संन्यासी हुआ है! लेकिन वह तो इंगित है और इंगित समझने चाहिए। ऐसा हुआ कि रामकृष्ण की एक रात बैठक चलती थी। कुछ बैठे थे लोग। कोई इसी तरह के सज्जन, जिन्होंने यह प्रश्न पूछा है, वहां पहुंच गये। सभी जगह पहुंच जाते हैं। इस तरह के लोग क्यों भटकते रहते हैं, यह भी बड़े आश्चर्य की बात है! अपने घर ही रहें! अपनी नाक बचानी है, अपने घर ही रहो; यहां-वहां जाने में कहीं कट ही जाये! कोई रौ आ जाये, कोई सनक चढ़ जाये, किसी भावावेश में कटवा बैठो, फिर पछताओगे!
रामकृष्ण की बैठक में कोई पहुंच गये ज्ञानी। पंडित थे, जानकार थे शास्त्रों के। रामकृष्ण कह रहे थे कि ओंकार के नाद से बड़ी उपलब्धि होती है। ज्ञानी को अड़चन पड़ी। उसने कहा, ठहरें! ... क्योंकि ज्ञानी जानता है कि रामकृष्ण गैर पढ़े-लिखे हैं, शास्त्र का तो कुछ पता नहीं है, हांक रहे हैं; संस्कृत तो आती नहीं, कुछ भी कहे चल जा रहे हैं! वह अपना ज्ञान दिखाना चाहता था। उसने कहा कि शब्दों में क्या रखा है! ओंकार तो केवल एक शब्द है, इसमें रखा क्या है? इससे कैसे आत्मज्ञान हो जायेगा?
बात तो पते की ही कह रहा था, लेकिन खुद आदमी पते का नहीं था। रामकृष्ण
ने उसकी तरफ देखा, चुप बैठे रहे। वह और जोर-जोर से शास्त्रों के उल्लेख करने लगा और उद्धरण देने लगा। कोई आधा घंटा बीत गया, तब रामकृष्ण एकदम से चिल्लायेः "चुप, उल्लू के पट्ठे! बिल्कुल चुप! अगर एक शब्द बोला आगे तो ठीक नहीं होगा।"
"उल्लू के पट्ठे" तो मैं कह रहा हूं, रामकृष्ण ने ज्यादा वजनी गाली दी। तो रामकृष्ण कोई छोटी-मोटी बकवास नहीं मानते थे; वे जब गाली देते थे तो बिल्कुल नगद! वह आदमी घबड़ा गया, तमतमा गया एकदम! क्रोध भर गया आंख में! जोश आ गया। सांझ थी ठंडी, शीत के दिन थे, पसीना-पसीना हो गया। पर हिम्मत भी न पड़ी, क्योंकि अब रामकृष्ण ने इतने जोर से कहा है, और अगर कुछ गड़बड़ की तो मारपीट हो जायेगी; वहां सब रामकृष्ण के भक्त थे। फिर, रामकृष्ण फिर अपना समझाने लगे कि ओंकार... । कोई पांच-सात मिनट बाद उस आदमी की तरफ देखा और कहा, महानुभाव! माफ करना। वह तो मैंने सिर्फ इसलिए कहा था कि देखें शब्द का असर होता है कि नहीं! तुम तो बिल्कुल तमतमा... । "उल्लू के पट्ठे" का इतना असर,

तो जरा सोचो तो ओंकार का! पसीना-पसीना हुए जा रहे हो, मरने-मारने पर उतारू हो। वह तो यह कहो कि लोग मौजूद हैं, नहीं तो तुम मेरी गर्दन पर सवार हो जाते। हाथ-पैर तुम्हारे कंप रहे हैं। जरा-सा शब्द "उल्लू के पट्ठे" मंत्र का काम कर गया। जरा सोचो तो! शास्त्र काम न आये। इतना तो याद रखते कि "शब्दों में क्या रखा है!"
वस्त्रों में क्या रखा है, पूछते हो? माला में क्या रखा है, पूछते हो? उल्लू के पट्ठे! थोड़ा सोचना, थोड़ा विचार करना!
आदमी जैसा है, छोटी-छोटी बातों से जीता है। क्षुद्र-क्षुद्र बातों से बनकर, मिलकर तुम्हारा व्यक्तित्व बना है। वह जिसने गैरिक वस्त्र स्वीकार किये हैं, वह भी जानता है, तुमसे ज्यादा भलीभांति जानता है कि वस्त्रों से कुछ भी होनेवाला नहीं है; लेकिन उसने एक कदम उठाया है; होने की दिशा में थोड़ी हिम्मत की है; पागल होने की हिम्मत की है। मेरे साथ चलने की हिम्मत पागल होने की हिम्मत है। क्योंकि मेरे साथ चलने का मतलब है समाज में अड़चन होगी, परिवार में अड़चन होगी। अगर पति हो तो पत्नी झंझट देगी। अगर पत्नी हो तो पति झंझट देगा। अगर बाप हो तो बच्चे झंझट देंगे।
संन्यासी मेरे पास आकर कहते हैं कि बेटे कहते हैं, "पिता जी! आप घर में
ही पहनो ये वस्त्र तो ठीक है, क्योंकि स्कूल में दूसरे बच्चे हम पर हंसते हैं कि तुम्हारे पिताजी को क्या हो गया! भले-चंगे थे, यह क्या इनको धुन सवार हुई!" पत्नियां मेरे पास आती हैं। कहती हैं कि जरा समाज में जीना है, कम से कम इतना तो कर दो कि विवाह इत्यादि के अवसर पर पतिदेव गेरुआ पहनकर न पहुंचें, नहीं तो दूल्हा तो एक तरफ रह जाता है, ये दूल्हा मालूम पड़ते हैं। और स्त्रियां देखकर हंसती हैं कि इनको क्या हो गया!
कोई मेरे साथ खड़े होकर तुम्हें कुछ राहत थोड़े ही मिल जायेगी! अड़चन में डालूंगा। यह तो अड़चन में डालने की शुरुआत है। जैसे-जैसे पाऊंगा कि तुम्हारी अंगुली हाथ में आ गई, पहुंचा पकडूंगा। यह तो शुरुआत है। आगे-आगे देखिए होता है क्या!

तीसरा प्रश्नः भीतर विचारों की ऐसी भीड़ है कि ओशो का भी... ओशो जैसा गुरु पाकर भी इस जन्म में पहुंचने की आशा नहीं बंधती। बिना कारण आंसू बहाता हूं, रोता हूं, चीखता-चिल्लाता हूं, फिर भी मौका आने पर न अहंकार से बच पाता हूं और न भीतर की बड़बड़ाहट से। ओशो, यदि इस जन्म में भी नहीं पहुंच पाया, तो फिर क्या अगला पथ वैसा ही कोरा रह जायेगा? आप भी सहायता न कर पायेंगे क्या?

नहीं, चिंता का कोई भी कारण नहीं है। विचारों की भीड़ है। छुटकारा आसान
भी नहीं। लेकिन छुटकारा आसान नहीं है, इससे यह मत समझना कि विचारों की भीड़ बड़ी बलशाली है। नहीं! छुटकारा इसीलिए कठिन मालूम पड़ रहा है कि तुमने विचारों की भीड़ से लड़ना शुरू कर दिया है, वहां भूल हो गई है। ताकत विचारों की नहीं है--तुम्हारे गलत आयोजन की है। जैसे अंधेरा कमरे में भरा हो और तुम धक्के देकर उसे बाहर निकालना चाहो और अंधेरा तो नहीं निकलेगा ऐसे, तो तुम्हारे मन में लगेगा, अंधेरा बड़ा प्रबल है, बड़ा बलशाली है। जन्म-जन्म भी धक्के मारो अंधेरे को तो न निकलेगा, यह सच है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि अंधेरा बलशाली है। इससे केवल इतना ही पता चलता है कि धक्का मारना सम्यक उपाय नहीं है। जितनी ताकत धक्का मारने में लगा रहे हो उतनी ताकत दीये को जलाने में लगाओ। दीया खोजो। जरा-सा, छोटा-सा दीया, जरा-सी दीये की बाती, और अंधेरा बाहर हो जायेगा। धक्के मारने से अंधेरा बाहर नहीं होता, क्योंकि अंधेरा है ही नहीं, धक्का मारोगे कैसे उसे? जो नहीं है उसे धकाया नहीं जा सकता। उसकी ताकत नहीं है कुछ भी। उसका बल इसी में है कि वह नहीं है। कुर्सी होती, फर्नीचर होता, निकाल बाहर कर देते। पति-पत्नी होते, उन्हें भी धक्का देकर बाहर कर देते! अंधेरे को कैसे करोगे? दीया जलाओ! सम्यक आयोजन करो! ठीक साधन खोजो!
विचार अंधेरे की भांति हैं। तुम उन्हें धक्के देकर बाहर न कर पाओगे। जितना धक्का दोगे उतना ही पाओगे कि वे बलशाली होते जा रहे हैं। उतने ही

तुम कमजोर मालूम पड़ोगे। हर बार हारोगे, हर बार हारोगे; आत्मविश्वास खो जायेगा। फिर रोओगे, चीखोगे, चिल्लाओगे। उससे भी क्या होगा? कुछ भी न होगा। क्योंकि न तो अंधेरा सुनेगा रोने को, न चीखने को, न चिल्लाने को। अंधेरा तो मानता है एक ही भाषा--वह है प्रकाश की भाषा। और विचार भी मानते हैं एक ही भाषा--वह है साक्षी-भाव की भाषा।
साक्षी बनो! जितनी बार कहा जाये उतना ही थोड़ा हैः साक्षी बनो! इसमें अतिशयोक्ति नहीं हो सकती। साक्षी एकमात्र सूत्र है। विचारों से लड़ो मत-- देखो! चलने दो, क्या बिगाड़ते हैं! चलने दो जैसे राह चलती है, कारें गुजरती हैं, बसें गुजरती हैं, बैलगाड़ियां गुजरती हैं, अच्छे-बुरे-भले लोग गुजरते हैं, शैतान-साधु गुजरते हैं--राह चलती है, तुम राह के किनारे बैठे रहो; देखते रहो चलती राह को। जैसे राह बाहर चल रही है, ऐसे ही विचारों का कारवां भी भीतर चल रहा है; लेकिन वह भी तुमसे बाहर है। शरीर के भीतर है, तुमसे बाहर है। तुम तो वह चैतन्य हो जो देखता है कि ये विचार चल रहे हैं।
तादात्म्य छोड़ो! दूर खड़े होकर देखते रहो, देखते रहो, देखते रहो--इतना
भी रस मत लो कि इन्हें अलग करना है। इतना भी रस लिया कि अड़चन शुरू हुई, संबंध बने।
मित्र से ही संबंध नहीं बनते, शत्रु से भी बन जाते हैं। जिसके तुम पक्ष में हो उससे भी संबंध बनता है। जिसके तुम विपक्ष में हो उससे भी संबंध बनता है--विपक्ष का सही। संबंध मत बनाओ। साक्षी का इतना ही अर्थ हैः असंबंध, असंग। दूर खड़े देखते रहो। जैसे तुम किसी पहाड़ की चोटी पर बैठे हो और नीचे घाटियों में काफिले गुजर रहे हैं लोगों के; गुजरने दो, तुम्हारा क्या लेना-देना है! बाहर कोयल बोल रही है, कभी कोई कुत्ता भौंकेगा, कभी कोई कौवा कांव-कांव करेगा--इससे तुम अड़चन में नहीं पड़ते। तुम सिर नहीं धुन लेते कि अब क्या करें, यह कुत्ता भौंक रहा है! तुम सिर नहीं धुन लेते कि यह कौवा कांव-कांव कर रहा है! यह तुम्हारा मन भी कांव-कांव कर रहा है, भौंक रहा है--भौंकने दो! तुम इससे भी थोड़े दूर हट जाओ। तुम इससे भी थोड़े पीछे हट जाओ। और हटने में अड़चन नहीं है, क्योंकि तुम्हारा स्वभाव मन के पार है। तो इसी क्षण पहुंचना हो सकता है, पूरे जन्म की बातें क्या करनी, आगे जन्म की चिंता क्या करनी! और ध्यान रखो, मेरी सहायता तुम्हें पूरी उपलब्ध है, उसमें रंचमात्र कमी नहीं है। लेकिन अकेली मेरी सहायता से क्या होगा? मैं इशारा कर सकता हूं, चलना तो तुम्हें ही पड़ेगा। मैं औषधि बता सकता हूं, लेकिन पीना तो तुम्हें ही पड़ेगी। मैं निदान कर सकता हूं, लेकिन मेरे निदान से ही तो कुछ न होगा। औषधि भी दे सकता हूं, उससे भी तो कुछ न होगा। औषधि का तुम्हें उपयोग करना पड़ेगा, तो ही बीमारी कटेगी। साक्षी की बात कर रहा हूं; वह औषधि है। उसका उपयोग करो।
और ध्यान रखना--
हर प्रदीप की पृष्ठभूमि में
अंधकार अनिवार्य है।
बिना सघनता क्षुद्र विरलता
कर सकती विस्तार नहीं
मिले बिना परिवेश शून्य का
सज पाता आकार नहीं।
हर प्रदीप की पृष्ठभूमि में
अंधकार अनिवार्य है।
अंधकार तुम्हारा दुश्मन भी नहीं है। जरा प्रदीप जला लो, फिर तो अंधकार भी सुख देगा। अंधकार की मखमली चादर प्रकाश को और हजार गुना प्रज्वलित कर देती है। इसलिये तो दिन में तारे नहीं दिखाई पड़ते--हैं तो अपनी ही जगह; कहीं चले नहीं गये हैं; दिन में कुछ सो नहीं गये हैं, कहीं खो नहीं गये हैं, अपनी जगह हैं। पूरा आकाश तारों से भरा है, वैसा ही जैसा रात में, लेकिन तारे दिखाई नहीं पड़ते, उनको पृष्ठभूमि चाहिए अंधकार की। जब अंधकार घेर लेता है, तब तारे चमक आते हैं। अमावस की रात जैसे चमकते हैं वैसे कभी नहीं चमकते।

तो जीवन को सृजनात्मक दृष्टि से देखो। यहां कुछ बुरा है, ऐसा कहकर लड़ो मत। जो बुरा है उसे पृष्ठभूमि बना लो; और जो शुभ है उसका दीया जलाओ--और तब तुम पाओगे, अशुभ ने भी शुभ को साथ दिया, अंधेरे ने भी दीये को ज्योतिर्मय किया।
तब विचार भी ध्यान की पृष्ठभूमि बन जाते हैं। तब पाप भी पुण्य की पृष्ठभूमि बन जाते हैं। और तब संसार भी परमात्मा की खोज का उपाय हो जाता है। तब शरीर भी आत्मा का मंदिर हो जाता है।
मेरा पूरा दृष्टिकोण अनिंदा का है। किसी भी चीज की निंदा का एक ही अर्थ होता है कि तुम उसका उपयोग करना न जान पाये; तुम समझ न पाये कि इसका क्या करें। तुमने जिसे मार्ग का पत्थर समझा, वह प्रतिमा भी बन सकती थी। तुमने जिसे मार्ग का पत्थर समझा, वह मार्ग की सीढ़ी भी बन सकती थी। तुम पत्थर मानकर बैठ गये और रोने लगे। मैं कहता हूं, सीढ़ी समझो, चढ़ो! मैं कहता हूं, अनगढ़ पत्थर देखकर नाराज मत होओ, जरा छैनी उठाओ, गढ़ो!
जीवन में कुछ भी ऐसा नहीं है जिसका उपयोग न हो। पाप का भी उपयोग है, क्योंकि उसी से पुण्य की सुवास उठती है। विचार का भी उपयोग है, अन्यथा निर्विचार कैसे हो पाओगे? संसार की जरूरत है, अन्यथा सत्य को कैसे खोजोगे? भटकना भी जरूरी है, अन्यथा पहुंचोगे कैसे? एक बार तुम्हारे जीवन में सृजनात्मक भाव आ जाये और हर चीज का सृजनात्मक मूल्य आ जाये, तो तुम पाओगे, सब चीज का तुमने उपयोग करना शुरू कर दिया।
कूड़ा-कर्कट भी फेंकने जैसा नहीं है; उसका भी उपयोग हो सकता है। लेकिन तुम्हें सदियों से इस तरह की बातें सिखायी गई हैं--यह गलत, यह गलत, यह गलत; गलत और सही को विपरीत, दुश्मन की तरह खड़ा किया गया है; राम और रावण को लड़ाया गया है; भगवान और शैतान को खंडित करके अलग कर दिया गया है; पाप और पुण्य, दिन और रात दुश्मन--इस दुश्मनी के भाव से तुम्हारी परेशानी हो रही है। मैं तुमसे कहता हूं, दिन और रात दुश्मन नहीं हैं, एक ही खेल के हिस्से हैं। राम और रावण दुश्मन नहीं हैं; अन्यथा राम-कथा न बनेगी।
तुमने रामलीला में देखा! पर्दे पर धनुष-बाण लिये खड़े हैं, लड़ रहे हैं,
और पर्दे के पीछे राम और रावण बैठकर गपशप कर रहे हैं, चाय पी रहे हैं। जिंदगी के पर्दे के पीछे भी मैंने ऐसा ही देखा है। वहां जो सामने नाटक करते दिखायी पड़ रहे थे दुश्मनी का, पीछे गले लगकर बैठे हैं। होना भी ऐसा ही चाहिए; नहीं तो जीवन खंड-खंड होकर छितर जाता।
किसने सम्हाला है? ये जिंदगी की सारी ईंटें किस सीमेंट से जुड़ी हैं?
ये शुभ और अशुभ साथ-साथ कैसे खड़े हैं? साधु और असाधु कैसे साथ-साथ जुड़े हैं? संयुक्त हैं। और एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाये तो तनाव कम हो जायेगा। तब तुम पाओगे कि अगर कुछ अड़चन हो रही है, तो मेरी समझ-बूझ में कुछ कमी है।
मैंने सुना है, एक महिला को सितार सीखने की धुन सवार हुई। तो पहले ही दिन चाहती थी कि मेघ-मल्हार हो जाये। पहले दिन चाहती थी कि पशु-पक्षी आ जायें। बार-बार जाकर खिड़की पर देख आती थी, अभी तक नहीं आये! न कोई भीड़ जुड़ी। उलटे पति जो घर में बैठा था वह निकलकर बाहर चला गया। बच्चे जो ऊधम कर रहे थे घर में, वह भी सन्नाटा हो गया, वे भी कहीं निकल गये। पास-पड़ोसियों ने द्वार-दरवाजे बंद कर लिये। तो उसने समझा कि निश्चित ही सितार में कुछ भूल है। जिस दुकान से सितार खरीद लाई थी, फोन किया कि आदमी भेजो, सितार में कुछ गड़बड़ है। आदमी आया, ठोक-पीटकर सब उसने कहा, बिल्कुल ठीक है। आदमी वापस पहुंचा भी नहीं था कि फिर फोन... उसने कहा, "भई इतनी जल्दी कैसे बिगड़ गया?" उसने कहा कि न बजाओ तो सब ठीक रहता है, लेकिन बजाओ कि सब गड़बड़! तब उस आदमी को समझ में आया। उसने कहा कि "देवी! बजाना भी आता है?"
सितार की भूल नहीं है--बजाना आता है कि नहीं!
कहते हैं, परम संगीतज्ञ, जिनको बजाने की कला आ जाती है, अगर बर्तनों को
भी बजा दें तो सितार बज उठते हैं; कंकड़-पत्थरों को टकरा दें तो स्वरों का आरोह-अवरोह हो जाता है। सितार की भूल नहीं है। जीवन की कहीं कोई भूल नहीं है। बजाना न आया। थोड़ा बजाने की फिक्र करो। और बजाने का पहला सूत्र हैः स्वीकृति। सब, जो परमात्मा ने दिया है, उसका कुछ न कुछ उपयोग है, निरुपयोगी

तो हो ही नहीं सकता अस्तित्व में। होगा ही क्यों? फिर तो अस्तित्व न होगा, अराजकता होगी। सब उपयोगी है। और जल्दी मत करना काटने-पीटने की कि यह गलत है, इसे अलग कर दो; यह गलत है, इसे अलग कर दो।
जैसे क्रोध हैः अगर तुम क्रोध को काट डालो... अब वैज्ञानिकों के पास उपाय हैं कि शरीर की कुछ ग्रंथियां काट डाली जायें तो आदमी का क्रोध समाप्त हो जाता है। कुछ ग्रंथियां काट डाली जायें तो कामवासना समाप्त हो जाती है। तुम देखते ही हो, सांड कैसे बैल हो जाता है! ग्रंथि काट दी तो बड़ी सरल बात है यह तो। फिर ब्रह्मचर्य के लिए इतना उपद्रव क्यों मचाना। यह इतना सीधा हो जाता है कि सांड देखते-देखते बैल हो जाता है। तो जरा-सी ग्रंथियां काट डालो। क्रोध की भी ग्रंथियां हैं, उसके भी हारमोन हैं--काट डालो! आज नहीं कल, खतरा है कि दुनिया की सरकारें आदमी से क्रोध की, बगावत की ग्रंथियों को काट देंगी। तो फिर कोई शोरगुल न होगा। फिर कोई हड़ताल न होगी। फिर कोई बगावत, विद्रोह न होगा, कोई क्रांति न होगी।
लेकिन तुम जरा सोचो, जिस आदमी के जीवन से क्रोध की ग्रंथि कट जाती है, उसके जीवन में करुणा पैदा नहीं होती, सिर्फ क्रोध का अभाव हो जाता है। उस आदमी का जीवन पहले से बदतर हो जाता है। अब क्रोध भी न रहा। रूखा-रूखा, सूखा- सूखा अब कोई चीज उसे उद्वेलित नहीं करती, लेकिन करुणा का जन्म नहीं होता। क्योंकि करुणा तो तब पैदा होती है जब तुम क्रोध की वीणा को बजाना सीख जाते हो।
वीणा तोड़ दी तुमने क्रोध की, तो क्रोध तो न होगा। जैसे कि अगर तुम वीणा फेंक आये बाहर, तो विसंगीत पैदा न होगा, लेकिन संगीत भी पैदा न होगा। क्रोध अगर तोड़ दो तो क्रोध तो पैदा न होगा, लेकिन करुणा भी पैदा न होगी, क्योंकि करुणा उसी वीणा का संगीत है। सजे हुए हाथ, सधे हुए हाथ उसी वीणा पर करुणा को बजाते हैं--बुद्ध, महावीर--जिस वीणा पर तुम क्रोध बजाते हो। सधे हुए हाथ उसी जीवन-ऊर्जा से निर्विचार बजाते हैं, जिसमें तुम केवल विचारों की उलझन में पड़ जाते हो। सधे हुए हाथ इसी शरीर में अशरीरी को खोज लेते हैं, जिसमें तुम केवल हड्डी-मांस-मज्जा पाते हो। भूल वीणा की नहीं है, इतना स्मरण रखना।
चूकने का कोई कारण नहीं है, जरा साज को सम्हालना है।
"बेदार" वह तो हरदम सौ-सौ करे है जलवे
इस पर भी गर न देखे तो है कसूर तेरा।
परमात्मा तो कितने-कितने ढंग से नाचता है तुम्हारे चारों तरफ!
"बेदार" वह तो हरदम सौ-सौ करे है जलवे।
इस पर भी गर न देखे तो है कसूर तेरा।
और जैसा मैं देखता हूं, यह किसी एक ही व्यक्ति का प्रश्न नहीं है--"ईश्वर बाबू" ने पूछा है--सबका है। जैसा मैं देखता हूं, हर आदमी मंजिल के सामने ही बैठा रो रहा है कि मंजिल कहां, कि किस मार्ग से जायें!
हसरत पे उस मुसाफिरे-बेकस के रोइये
जो थक के बैठ जाता हो मंजिल के सामने।
तुम्हें देखकर हंसी भी आती है, रोना भी आता है। रोना आता है कि तुम बड़े परेशान हो रहे हो। हंसी आती है कि व्यर्थ परेशान हो रहे हो। सामने ही द्वार है। मंजिल के सामने ही थककर बैठे हो। कहीं चलकर जाना नहीं है। कहीं उठकर भी नहीं जाना है। क्योंकि मंजिल तुम्हारे बाहर नहीं है, तुम्हारे भीतर है, तुम्हारा स्वभाव है, तुम्हारा स्वरूप है। थोड़े साक्षी को साधो! वीणा सुमधुर होने लगेगी। तार तालमेल में आने लगेंगे। थोड़े साक्षी को साधो, संगीत उठेगा! जैसे-जैसे साधते जाओगे वैसे-वैसे संगीत मधुर, सूक्ष्म होता जायेगा। और ऐसी भी घड़ी आती है--तब शून्य का भी संगीत उठता है। आ जायेगी घड़ी, क्योंकि मैं देखता हूं मंजिल के सामने ही तुम बैठे हो।

चौथा प्रश्नः
बेमुरौअत बेवफा बेगाना-ए-दिल आप हैं,
आप मानें या न मानें मेरे कातिल आप हैं।
सांस लेती हूं तो यह महसूस होता है मुझे,

जानती हूं दिल में रखने के ही काबिल आप हैं।
गम नहीं है लाख तूफानों से टकराना पड़े
मैं हूं वह किश्ती कि जिस किश्ती के साहिल आप हैं।

तरु ने पूछा है। बिल्कुल ठीक हैः बेमुरौअत, बेवफा!
मुरौअत की नहीं जा सकती। करूं तो तुम्हें रास्ते पर न ला सकूंगा। कई बार सख्त होना पड़ता है। कई बार तुम्हें गहरी चोट भी करनी पड़ती है।
झेन फकीर डंडा लिये रहते हैं। वे अपने शिष्यों के सिर पर डंडे मारते हैं।
डंडा मेरे पास भी है--सूक्ष्म है, उतना स्थूल नहीं है। जब लगता है, जरूरत है कि तुम नींद में खोये जा रहे हो, तो डंडा भी मारना पड़ता है। तो बेमुरौअत बिल्कुल ठीक है, क्योंकि प्रेम है तुमसे, इसलिए बेमुरौअत होना ही पड़ेगा। क्योंकि प्रेम है, इसलिए तुम्हें जगाना ही पड़ेगा। और माना कि कई बार जब तुम्हें जगा रहा हूं, तब तुम कोई मीठा सपना देख रहे हो, तो तुम नाराज भी होते हो।
"बेवफा बेगाना-ए-दिल"--ठीक है। तुम जितने मेरे करीब आओगे, उतना मैं पीछे दूर हटता जाऊंगा, क्योंकि तुम्हें और आगे ले जाना है। इसलिए बहुत बार बेवफा मालूम पडूंगा। बुलाऊंगा पास और खुद दूर हट जाऊंगा। पुकारूंगा और जब तुम चल पड़ोगे तो तुम पाओगे कि मैं वहां नहीं खड़ा हूं जहां से पुकारा था। इसलिए बहुत-से मित्र मेरे साथ परेशानी में रहते हैं। वे कहते हैं कि
हम जब तक राजी हो पाते हैं एक बात करने को, तब तक आप जा चुके, आप कुछ और कहने लगे!
मुझे रोज ही ऐसा करना पड़ेगा। क्योंकि तुम्हें वहां ले जाना है--उस ला- मंजिल--उस जगह जिसके आगे फिर कोई और मंजिल नहीं है। और अंत समय में भी तुम्हारे बीच से मुझे हट जाना पड़ेगा, क्योंकि मैं तुम्हारा द्वार हूं, दरवाजा हूं; तुम्हारी मंजिल नहीं।
गुरु यानी गुरुद्वारा। गुरु का केवल इतना ही अर्थ है कि वह तुम्हें इशारा कर दे परमात्मा की तरफ और हट जाए। आखिरी घड़ी में मैं भी हट जाऊंगा। जब तुम पहुंचने-पहुंचने के करीब होओगे, तब मुझे हट ही जाना पड़ेगा। अन्यथा मैं तुम्हारे लिए दीवाल हो जाऊंगा, दरवाजा नहीं। फिर मैं तुम्हें रोकूंगा परमात्मा से। तो मुझे बेवफा होना ही पड़ेगा।
"आप मानें या न मानें मेरे कातिल आप हैं"--मानता हूं। यह धंधा ही कातिल होने का धंधा है।
ठहरा गया है ला के जो मिं.जल में इश्क की
क्या जाने रहनुमा था कि रहजन था, कौन था!
प्रेम की मंजिल पर जो तुम्हें ले आता है, तय करना मुश्किल होता है कि
वह पथ-प्रदर्शक था कि लुटेरा था।
ठहरा गया है ला के जो मिं.जल में इश्क की
क्या जाने रहनुमा था कि रहजन था, कौन था!
तय करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि प्रेम की मंजिल पर वही ला सकता है
जो तुम्हें लूटता भी हो। वहां मार्गदर्शक और लुटेरे एक ही हैं, रहनुमा और रहजन एक ही हैं।
पूरा प्रयास यही तो है कि तुम्हें मिटा दूं, ताकि तुम "हो" सको! तुम्हारे अहंकार को तोड़ दूं, ताकि तुम्हारा निरहंकार मुक्त हो सके, उठ सके! तुम्हारे अहंकार की जंजीर टूटे, तो ही तुम्हारे निरहंकार की स्वतंत्रता का आविर्भाव हो। लेकिन अगर तुम जन्मों-जन्मों तक जंजीरों में रहे हो, तो जंजीरों को तुमने आभूषण मान लिया है। तो जब मैं तुम्हारे आभूषण तोडूंगा--मैं समझता हूं जंजीरें, तुम समझते हो आभूषण--तो तुम्हें लगेगा कि यह तो... आए थे गुरु के पास, यह आदमी कातिल सिद्ध हुआ। हम खोजते थे, कोई जो सांत्वना देगा, इसने और सारी सांत्वनाएं छीन लीं। हम खोजते थे, कोई जो हमारे शृंगार को और थोड़ा बढ़ावा देगा, जो हमारे आभूषणों को और थोड़ी सजावट देगा। लेकिन तुम जिसे आभूषण कहते हो, वह आभूषण नहीं। और तुमने जिसे अभी समझा है तुम हो, वह तुम नहीं--उसकी तो हत्या ही करनी पड़ेगी--बेमुरौअत! उस पर

कोई दया नहीं की जा सकती! उसे तो मिटाना होगा। वही तो तुम्हारे पावों को जकड़े है।
"सांस लेती हूं तो यह महसूस होता है मुझे,
जानती हूं दिल में रखने के ही काबिल आप हैं।
गम नहीं है लाख तूफानों से टकराना पड़े
मैं हूं वह किश्ती कि जिस किश्ती के साहिल आप हैं।"
तूफान से टकराने में गम कैसा? क्योंकि तूफान से टकराकर ही कोई किनारे
को उपलब्ध होता है। किनारे के आसपास ही तूफान है, तूफानों के आसपास ही किनारा है। और अगर ठीक से कहें तो तूफान में ही छिपा किनारा है।
मेरे डूब जाने का बाइस तो पूछो
किनारे से टकरा गया था सफीना।
नाव किनारे से टकराकर डूब गई, यह कारण है डूब जाने का!
मेरे डूब जाने का बाइस तो पूछो!
किनारे से टकरा गया था सफीना!
वह किनारा ही क्या जो तुम्हारी नाव को न तोड़ दे! वह किनारा ही क्या जो तुम्हें तुम्हारी नाव से मुक्त न कर दे! नाव नदी के लिए है। किनारा तो तुम्हें नाव से छुड़ा ही देगा, नाव को तोड़ ही देगा। वह मंजिल ही क्या जिसको पाकर रास्ता खो न जाए, मिट न जाए! जिससे चल चुके वह मिट जाना चाहिए, अन्यथा उस पर लौट जाने की संभावना बनी रहती है।
तो जितना-जितना तुम बढ़ते जाओगे उतना-उतना मैं तुम्हारी नाव को तोड़ता जाऊंगा। जब देखूंगा किनारा करीब है तो नाव बिल्कुल तोड़ देनी चाहिए। नहीं तो डर है कि तुम फिर वासनाओं की नाव में सवार हो जाओ।
और ध्यान रखना, जो नाव उस किनारे से इस किनारे तक ले आयी है, वही नाव इस किनारे से उस किनारे ले जा सकती है। नाव तो वही होगी, सिर्फ दिशा बदलती है।
जो सीढ़ी तुम्हें ऊपर ले जाती है, वही सीढ़ी तुम्हें नीचे भी ले जा सकती है।
इसलिए समझदार ऊपर पहुंचकर सीढ़ी तोड़ देते हैं।
"सांस लेती हूं तो यह महसूस होता है मुझे
जानती हूं दिल में रखने के ही काबिल आप हैं।
कब तक जानती रहोगी "तरु"? रखो!
जानने-जानने में कब तक समय गंवाओगी? कहीं ऐसा न हो कि जानने की बात जानने की ही रह जाए! होने की बनाओ! जब कोई बात ऐसी लगती हो कि दिल में रख लेने की है, तो सोचो मत। सोचने में क्षण न खोओ, रख ही लो!
एक बारी धक से होकर दिल की फिर निकली न सांस
किस शिकार अन्दाज का यह तीरे-बेआवाज है!
फिर जब कोई चीज हृदय में जाती हो, तो जाने दो तीर की तरह। सोचो मत! सोचने में ही तीर इधर-उधर हो जाएगा। और हर बात के पकने का क्षण होता है, ऋतु होती है। जो अभी हो सकता है, अभी हो सकता है; कल न हो पाए। और जो अभी न हो सका, ताजा-ताजा न हो सका, वह कल कैसे हो पाएगा? बासा हो जाएगा। तो जो दिल में रख लेने जैसा लगे उसे रखो! अगर जगह न हो तो दिल को बाहर करो! जगह बनाओ! मेरे पास होने का एक ही अर्थ है, कि तुम मिटने की कला सीखो। नहीं कि तुम्हारे दिल में रहने का मेरा कोई इरादा है; यह तो केवल बीच का उपाय है। यह तो केवल बहाना है। यह तो मैं तुम्हें फुसला रहा हूं। यह तो मैं यह कह रहा हूं कि चलो इस बहाने से सही, इस निमित्त सही, तुम अपना दिल तो छोड़ो, अपना दिल तो तोड़ो! मेरे लिए ही सही, जगह तो बनाओ! जगह बनते ही मैं वहां नहीं बैठूंगा। जगह हो जाए तो उसी जगह में तो परमात्मा विराजमान होता है। कबीर ने कहा हैः
गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागूं पांव।
किसके पैर पकडूं! दोनों साथ ही खड़े हैं, किसके पहले चरण छुऊं। कहीं कोई अपमान न हो जाए, कोई अनादर न हो जाए। कहीं शिष्टाचार का कोई भंग न हो जाए।
गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागूं पांव।
बड़ी मुश्किल में पड़ गए होंगे। ऐसा होता नहीं। जब गुरु होता है तो गोविंद नहीं होता; जब गोविंद होता है तो गुरु नहीं होता। कभी ऐसा भी होता

है, जब दोनों साथ खड़े होते हैं। एक बार होता है ऐसा। पहले गुरु को जगह देते हैं। धीरे-धीरे गुरु हृदय में बैठता जाता है, बैठता जाता है, फिर एक दिन गुरु हट जाता है--उस दिन गोविंद। इधर गुरु जाने को होता है, उधर गोविंद आने को होता है। एक घड़ी में ऐसी बात होती है जब गुरु जा रहा होता है, गोविंद आ रहा होता है--तब दोनों साथ खड़े होते हैं।
गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागूं पांव।
फिर कबीर कहते हैं, गुरु के ही पैर लगे।
"बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताए।"
इसके दो अर्थ हो सकते हैं, दोनों महत्वपूर्ण हैं। एक अर्थ तो यह हो सकता है कि जब कबीर बिगूचन में पड़ गए तो गुरु ने गोविंद की तरफ इशारा कर दिया कि गोविंद के ही पैर लगो।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताये... वह मुक्त कर दिया चिंता से। कहा कि फिक्र न कर मेरी, गोविंद के पैर लग।
एक अर्थ तो यह हो सकता है, जो कि सीधा-साधा है। इससे भी महत्वपूर्ण अर्थ है दूसरा, वह यह है कि... बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताये... कबीर कहते हैं, पैर तुम्हारे ही लगूंगा, क्योंकि तुम्हारी ही बलिहारी है कि तुमने गोविंद को बताया। फिर गोविंद के तो पैर अब लगते ही रहेंगे, लगते ही रहेंगे, अब तो पैरों में ही पड़े रहेंगे; लेकिन तुम्हारे पैर अब दोबारा न मिलेंगे।
गुरु जा रहा है, गोविंद आ रहा है। गुरु विदा हो रहा है।
सदगुरु वही है जो तुम्हें मिटाए, तुम्हारे हृदय के सिंहासन पर बैठ जाए--बस उस क्षण तक जब तक तुम तैयार नहीं हो, सिंहासन तैयार नहीं है, फिर हट जाए। असदगुरु वही है जो तुम्हें हटाए, तुम्हारे सिंहासन पर बैठ जाए और फिर हटे न। फिर कहे, छोड़ो भी अब परमात्मा-अरमात्मा की बातचीत! तो यह तो एक झंझट से छूटे, दूसरी में पड़ गए। यह तो अपनी झंझट से छूटे तो दूसरे की झंझट में पड़ गए। इससे तो पहली ही झंझट ठीक थी, कम से कम अपनी तो थी।
"गम नहीं है लाख तूफानों से टकराना पड़े
मैं हूं वह किश्ती कि जिस किश्ती के साहिल आप हैं।"
एक ही तूफान है--और वह तूफान है मूर्च्छा का! एक ही अंधड़ है, आंधी है--
और वह अंधड़, आंधी है मूर्च्छा का, प्रमाद का, सोए-सोए होने का। उससे ठीक से टकराओ! निद्रा से टकराकर ही जागरण पैदा होता है। निद्रा से टकराकर ही--उसी टकराहट में, उसी घर्षण में--जागरण पैदा होता है। वही जागरण किनारा है।

आखिरी प्रश्नः आप कहते हैं कि तुम्हारे पास जो है उसे बांटो। मगर ऐसा
हो रहा है कि संगीत, नृत्य, मस्ती सब अस्तित्व में लीन हो रहा है और एक गहन चुप्पी घेरती जा रही है। बस अब तो एक कोने में बैठकर अस्तित्व की लीला निहारती रहूं और वक्त आए तो उसमें लीन हो जाऊं। पास में क्या बचा है!
बहुत शुक्रिया, बड़ी मेहरबानी
मेरी जिंदगी में हुजूर आप आए,
कदम चूम लूं या आंखें बिछा दूं
करूं क्या, यह मेरी समझ में न आए।

मैं कहता हूं, जो हो बांटो। नाच हो तो नाच। गीत हो तो गीत। मस्ती हो तो मस्ती। अगर चुप्पी घनी हो रही है तो चुप्पी बांटो! मौन भी बांटो।
बड़ी संपदा है मौन की। मस्ती से भी बड़ी मस्ती है मौन की! नाच से भी गहन नाच है मौन का। गीत से भी गीत, गीत से भी गहन गीत है गीत मौन का--बांटो उसे! चुप्पी का अर्थ यह थोड़े ही है कि उसे सम्हालकर बैठो। तो चुप्पी की कंजूसी हो गई।
ध्यान रखना, जीवन में शुभ भी हम इस ढंग से कर सकते हैं कि अशुभ हो जाये
और अशुभ भी इस ढंग से कर सकते हैं कि शुभ हो जाये--सारी कला यही है। इसी कला को जिसने जान लिया उसने धर्म को जान लिया।
अब एक तो मौन है जो कंजूसी का मौन है। एक तो मौन है कि जो अपने-आप को बंद कर लेने का मौन है कि हट जाओ दूर सबसे--सबसे तोड़ लेनेवाला मौन है। अपने

में बंद हो जाओ मोनोड बन जाओ, लीबनेस के। सब द्वार-दरवाजे बंद कर दो, खिड़कियां बंद कर दो। कोई हवा न आये, कोई रोशनी न आये। न अपनी आवाज किसी तक जाये, न किसी की आवाज अपने तक आये। तो यह मौन तो मरघट का मौन होगा। इसका गुण अलग होगा। यह गुण शुभ नहीं है। यह मौन तो मौत जैसा मौन होगा। इससे सड़ी लाश की बदबू आयेगी।
इसलिए तुम बहुत-से त्यागी, तपस्वी, मौनियों के पास जाकर, मुनियों के पास सिर्फ लाश की सड़न पाओगे। मौन वहां खिल न पाया, फूल न बना। मौन वहां केवल अभाव रहा। मौन का अर्थ वहां इतना ही रहा कि बोलते नहीं हैं। यह भी कोई मौन हुआ जो बोल न सके! मौन तो बोलता है--मौन से भी बोलता है।
तो ध्यान रखना, मौन सिर्फ न बोलना भर न हो; नहीं तो वही होगाः क्रोध काट डाला, काम की ग्रंथि काट डाली। काम की ग्रंथि गई तो ब्रह्मचर्य पैदा होने का उपाय भी गया। क्रोध की ग्रंथि गई तो करुणा भी न आई। ऐसा मौन मत कर लेना कि सिर्फ न बोलने पर आग्रह हो कि बोलते नहीं हैं। तो फिर तुम्हारे भीतर जिंदगी सड़ने लगेगी, प्रवाह बंद हो जाएगा। तुम एक पोखर हो जाओगे, सरिता न रहोगे। जल्दी ही कीचड़ मच जायेगी। जल्दी ही तुम अपनी कुंठा में सड़ोगे। क्योंकि जीवन संबंधों में है।
कोई फिक्र नहीं, हजार ढंग हैं बोलने के। बोलना ही थोड़े ही सब कुछ है! किसी का हाथ ही हाथ में ले लो तो क्या तुम बोले नहीं? किसी की तरफ भरी हुई आंखों से देखा तो क्या तुम बोले नहीं? किसी के पास चुपचाप बैठे रहे, लेकिन बंद नहीं; खुले, बहते तो क्या तुम बोले नहीं? सच तो यह है कि जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, ऐसे ही बोला जाता है। जब दो प्रेमी गहन प्रेम में होते हैं तो चुप बैठ जाते हैं। जब प्रेमी बातचीत करने लगें तो समझना कि पति-पत्नी हो गये। पति-पत्नी चुप नहीं बैठ सकते, क्योंकि चुप बैठें तो दोनों बंद हो जाते हैं; दोनों बंद हो जाते हैं तो बोझिल हो जाते हैं। तो पत्नी कहने लगती है, "चुप क्यों बैठे हो? क्या मतलब?" तो कुछ भी बोलो! बोल जारी रखो, ताकि कहीं ऐसा न हो कि एक-दूसरे की मुर्दानगी और एक-दूसरे की ऊब प्रगट हो जाये। तो बोलते हैं, चेष्टा करके बोलते हैं। नहीं बोलना हो, बोलते हैं। कुछ भी बात ले आते हैं--खबर, समाचार--उसकी चर्चा चलाने लगते हैं। न पत्नी को उस में रस है, न पति को रस है; न पत्नी सुन रही है, न पति बोल रहा है--लेकिन वाणी चल रही है। दोनों आसपास शब्दों का जाल बुनते हैं, ताकि कहीं धोखा न टूट जाये, कहीं भ्रम न मिट जाये, कहीं ऐसा न हो जाये कि पता चले कि हम टूट गये, अलग-अलग हो गये!
मेरे एक मित्र हैं। हिमालय की यात्रा को जाते थे। तो मुझसे कहा, आप चलें। मैंने कहा कि हिमालय की यात्रा पर जाते हो, अच्छा है। तुम पति-पत्नी जा रहे हो, मुझे क्यों और बीच में लेते हो? मेरे होने से बाधा पड़ेगी। उन्होंने कहा, आप भी क्या बात करते हैं! तीस साल हो गये शादी हुए, अब क्या बाधा खाक पड़ेगी? अब तो हालत ऐसी है कि अगर तीसरा आदमी मौजूद न हो तो हमारी समझ में नहीं आता, क्या करें! इसलिए तो आपसे प्रार्थना कर रहे हैं कि आप चलो, तो थोड़ा रस रहेगा। किसी न किसी को तो ले जाना ही पड़ेगा।
पति-पत्नी सदा किसी एक को और साथ ले लेते हैं। दोनों के बीच जरा बातचीत चलाने को सेतु बन जाता है। यह बोलना कोई बोलना है? लेकिन दो प्रेमी चुपचाप बैठ जाते हैं। देखते हैं चांद को आकाश में। या सुनते हैं हवा की सरसराहट! या देखते हैं चुपचाप तारों को। कुछ बोलते नहीं। लेकिन खुले हैं। बहते हैं एक-दूसरे में, ऊर्जा मिलती है। मिलन होता है। एक गहन तल पर गहन संभोग होता है। पर चुप!
शब्द बाधा डालते हैं। जब कोई प्रेमी किसी प्रेयसी से बहुत कहने लगे, बार-बार कहने लगे कि मैं तुझे प्रेम करता हूं, तब समझना कि प्रेम जा चुका, अब बातचीत है। अब प्रेम नहीं है, इसलिए बातचीत से परिपूर्ति करनी पड़ती है। नहीं तो प्रेम काफी है, कहने की जरूरत नहीं है।
तो मैं तुमसे कहता हूं, मौन तो आये, लेकिन जीवंत आये, बहता हुआ आये।
तुम्हारा प्रवाह न मिटे। तुम बंद न होओ। तुम खुलो। तो फिर मौन भी बंटे।
यह मैं तुमसे जो बोल रहा हूं, क्या तुम सोचते हो, बोल रहा हूं? अपना मौन बांट रहा हूं। क्योंकि तुम मेरे मौन को सीधा न समझ सकोगे, शब्दों की

सवारी से बांट रहा हूं। शब्दों के ऊपर सवार होकर जो आ रहा है, वह मौन है।
घुड़सवार को देखना, घोड़े को ही मत देखते रहना। शब्दों पर जो सवारी करके आ रहा है, जरा उसे देखो! तुम्हें जो मैं देना चाहता हूं, वह शब्द नहीं है। तुम्हें जो देना चाहता हूं, वह मेरा मौन है।
तो मौन ही बांटो। कहीं छुपता है कुछ! अगर जीवंत मौन हो तो मौन ही दिखाई पड़ने लगता है, सघन हो जाता है। जहां से गुजरोगे, दूसरा आदमी चौंककर सुनने लगेगा मौन को जरा पास से!
"बेदार"! छुपाए से छुपते हैं कहीं तेरे
चेहरे से नुमायां हैं आसार मुहब्बत के।
कहीं प्रेम छुपा! कितना छिपाओ, आंख की झलक, चेहरे का रंग-ढंग, ओंठों की मुस्कुराहट; कितना छिपाओ, चाल की गति, उठने-बैठने का प्रसाद, सब तरफ जैसे प्रेमी के आसपास कुछ सूक्ष्म घुंघरू बजते हैं!
"बेदार"! छुपाए से छुपते हैं कहीं तेरे
चेहरे से नुमायां हैं आसार मुहब्बत के
मौन भी नहीं छुपता। परमात्मा भी नहीं छुपता। तुम चुप भी बैठे रहो तो
भी प्रगट होता चला जाता है।
हम तो चुप थे मगर अब मौजे सबा के हाथों
फैली जाती हैं तेरे हुस्न की खुशबू हर सू
जब कोई प्रभु को उपलब्ध होता है, उस परम शांति को, परम निर्विकार को,
तो चुप भी बैठा रहे तो भी क्या फर्क पड़ता है!
हम तो चुप थे मगर अब मौजे सबा के हाथों
--हम तो चुप ही बैठे थे, लेकिन सुबह की ठंडी हवायें आ गईं, हम क्या करें!
फैली जाती है तेरे हुस्न की खुशबू हर सू
--और तेरे सौंदर्य की खुशबू ये हवायें ले चलीं, और ये फैलाने लगीं।
बुद्ध को परम अनुभव हुआ। कहते हैं, सात दिन वे चुप बैठे रहे। पर देवता भागे चले आये स्वर्ग से। पहुंच गई भनकः कुछ घटा है पृथ्वी पर! अस्तित्व ने कोई नया रंग लिया है! अस्तित्व ने कोई नया नाच नाचा है! कोई शिखर बना है अस्तित्व का! कोई गौरीशंकर उठा है! भागे देवता। वे चुप ही बैठे रहे। देवताओं ने नमस्कार किया, चरणों में सिर रखा, और कहा, कुछ बोलें! बुद्ध ने कहा, "लेकिन तुम्हें पता कैसे चला? मैं तो बिल्कुल चुप हूं। सात दिन से तो मैं बोला ही नहीं। और मैंने तो यही तय किया है कि बोलूंगा नहीं। क्या सार बोलने से? जिनको समझना है, बिना बोले समझ लेंगे। और जिनको नहीं समझना है, वे कहीं बोलकर भी समझ पायेंगे! मगर यह तो बताओ, तुम्हें खबर कैसे मिली?" तो देवताओं ने कहा, आप भी कैसी बात करते हैं! यह घटना कुछ ऐसी है, जब घटती है तब खबर मिल ही जाती है। तुम बैठे रहो चुप, जल्दी ही तुम पाओगे कि रास्ते बनने लगे, तुम्हारी तरफ लोग आने लगे। वे तुम्हें बुलवा कर रहेंगे। तुम्हें बोलना ही पड़ेगा, तुम्हारी करुणा को बोलना ही पड़ेगा। तुम इतने कठोर कैसे हो सकोगे? हम ही आ गये, कितनी दूर से--स्वर्ग से! कोई चुप हो गया है! कुछ घटा है!
तुमने कभी चुप्पी को अनुभव किया है? चुप्पी भी एक घना अस्तित्व है। रेलगाड़ी शोरगुल करती निकल जाती है। उसके बाद तुमने देखा है, चुप्पी कैसी घनी हो जाती है! तूफान आता है, बड़ा शोर मचता है, फिर तूफान जा चुका, फिर शांति कैसी घनी हो जाती है! जब बुद्ध जैसा व्यक्ति शांत होगा, सदियों- सदियों का एक तूफान, जन्मों-जन्मों का एक तूफान, एक अंधड़ जो चलता ही रहा और चलता ही रहा, अचानक आज बंद हो गया--देवताओं को खबर न मिलेगी! चुप होने से ही खबर मिल गई।
जो है वही बांटो। अगर चुप्पी बन रही है, शुभ है। बंद मत होना, चुप्पी
को भी संबंध बनाये रखना। मित्रों को कभी निमंत्रित कर देना कि आओ, चुपचाप बैठेंगे! जिसको चुपचाप बैठना होगा, आ जायेगा। हाथ में हाथ ले लेना; साथ-साथ रो लेना, या हंस लेना। बोलना मत। और तब तुम पाओगे कि एक नया ही द्वार खुला संबंधों का। तुमने किसी और ढंग से दूसरे मनुष्य की चेतना को छुआ और तुमने

मौका दिया, दूसरे को भी कि एक नये ढंग से, शब्दों के अलावा संबंध निर्मित करे।
"गहन चुप्पी घेरती जाती है। एक कोने में बैठकर अस्तित्व की लीला निहारती हूं।"
निहारने को बांटो। जिस ढंग से तुम निहारती हो, उसी ढंग से किसी और को निमंत्रित करो कि आओ, मेरी दृष्टि में सहभागी बनो। इसलिए तो मैंने तुम्हें यहां बुला भेजा है। बुलाये चला जाता हूं; दूर-दूर देशों से, पृथ्वी का कोई कोना नहीं जहां से लोग चले नहीं आते! अपनी दृष्टि में मैं तुम्हें सहभागी बनाना चाहता हूं। चाहता हूं कि तुम भी जरा मेरी आंख से झांककर देखो। जो मैंने देखा है, थोड़ा-सा तुम भी देखो। फिर तुम अपनी आंख खोज लेना। एक दफा स्वाद तो आ जाये।
"और वक्त आये तो उसी में लीन हो जाऊं।"
आ ही जायेगा वक्त। आ ही गया है। बांटो! बांटना भी लीन होने की प्रक्रिया है।
"पास में क्या बचा है?" जब कुछ नहीं बचता, तभी जो बचा है वही संपदा है।
एक झेन फकीर एक रास्ते से गुजर रहा था। वह बड़ा बलिष्ठ आदमी था। बड़ा बलशाली था। दो डाकुओं ने उस पर हमला कर दिया। दुबले-पतले दीन-हीन डाकू थे; नहीं तो डाकू ही क्या होते--दीन-हीन ही डाकू बनते हैं। उसने दोनों की गर्दन पकड़कर उनको उठा लिया और दोनों का सिर टकराने जा रहा था, तो उसे ख्याल आयाः अरे बेचारे! इनके पास कुछ भी तो नहीं है। दोनों को छोड़ दिया। वे तो बड़े चौंके- से, चौकन्ने-से खड़े रह गये कि अब क्या करना। और जो कुछ उसके पास था उसने दे दिया। वे दोनों भागे लेकर। और वह फकीर जोर-जोर से हंसने लगा, तो वे लौटकर आये। उन्होंने कहा कि महाराज! आप हंस क्यों रहे हैं? आप अजीब आदमी हैं! हम तो समझे कि मरे! आपने जब दोनों के सिर पास लाये, तो हम समझे कि गये! फिर क्या हुआ, आपने दोनों को छोड़ भी दिया? हमने मांगा भी नहीं, हम तो भागने की तैयारी कर रहे थे कि आपके पास जो था आपने दे दिया। अब आप हंस किसलिए रहे हैं?
तो उस फकीर ने कहा कि आज मुझे पहली दफे पता चला उसका जो मेरे पास है, और जिसे कोई भी ले नहीं सकता। जो लेने योग्य था, देने योग्य था वह मैंने तुम्हें दे दिया--आज मैं नग्न खड़ा हूं। आज मेरे पास बस वही बचा है, जिसको न कोई ले सकता है, न कोई दे सकता है। आज शुद्ध अस्तित्व बचा है।
उसी शुद्ध अस्तित्व का नाम महावीर ने आत्मा दिया है।
खोओ! जो खो ही जायेगा उसे अपने हाथ से ही खो दो। जो मौत छीन लेगी तुम उसे स्वयं ही दे दो, ताकि मौत जब आये तो छीनने को उसके पास कुछ भी न हो। तुम्हारे पास कुछ भी न हो जिसे वह छीन सके। मौत के पहले जो छीना जा सकता है, उसे बांट दो।
पकड़ो मत! पकड़ छोड़ो! और तब तुम पाओगेः मौत आयेगी, लेकिन तुम्हें मार न पायेगी। क्योंकि मौत घटती है इसीलिए कि तुम उसे पकड़े हो जो छीना जा सकता है। जब मौत छीनती है, तुम समझे कि मरे। जिसने उसे पहले ही छोड़ दिया--मौत आती है, खाली हाथ चली जाती है। कुछ है ही नहीं छीनने को। वही बचा है जिसे छीना नहीं जा सकता--स्वभाव, धर्म, तुम्हारे भीतर का परमात्मा!
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
सातवां प्रवचन

जीवन एक सुअवसर है

पहला सूत्रः "सच्चाम्मि वसदि तवो"--सत्य में तप का वास है। "सच्चामि संजमो तह वसे तेसा वि गुणा।" "सत्य में संयम और समस्त शेष गुणों का भी वास है। जैसे समुद्र मछलियों का आश्रय है, वैसे ही समस्त गुणों का सत्य आश्रय है।"
सत्य का अर्थ समझ लेना अत्यंत अनिवार्य है।
साधारणतः हम सोचते हैं, सत्य कोई वस्तु है, जिसे खोजना है; जैसे सत्य कहीं रखा है, तैयार है; किसी दूर के मंदिर में सुरक्षित है प्रतिमा की भांति--हमें यात्रा करनी है, मंदिर के द्वार खोलने हैं, और सत्य को उपलब्ध कर लेना है। ऐसा सोचा तो भूल हो गई शुरू से ही।
सत्य कोई वस्तु नहीं है। सत्य तो एक प्रतीति है, अनुभूति है। कहीं तैयार रखा नहीं है। जीयोगे तो तैयार होगा। कहीं मौजूद नहीं है कि उघाड़ लेना है। ऐसा नहीं है कि चाबी मिल जायेगी, ताला खोल लोगे, तिजोड़ी तक पहुंच जाओगे--और धन तो तिजोड़ी में रखा ही था; जब चाभी न मिली थी तब भी रखा था; जब ताला न खोला था तब भी रखा था; न खोलते सदा के लिए तो भी रखा रहता--ऐसा नहीं है। सत्य तो जीवंत अनुभूति है। संज्ञा नहीं, क्रिया है।
सत्य का अर्थ हैः ऐसे जीना, जिस जीवन में कोई वंचना न हो; ऐसे जीना कि बाहर और भीतर का तालमेल हो। सत्य एक संगीत है--बाहर और भीतर का तालमेल है। तो कदम-कदम सम्हालना होगा, क्योंकि सत्य आचरण है।
इसलिए महावीर कहते हैंः "सत्य में तप है, संयम है, समस्त गुणों का वास है।" क्योंकि सत्य आचरण है।
जिसने सत्य को साध लिया, सब सध जायेगा। फिर अलग से कुछ साधने को बचता नहीं। क्योंकि जिसने बाहर और भीतर का एक ही जीवन शुरू कर दिया, उसके जीवन में हिंसा नहीं हो सकती; उसके जीवन में झूठ नहीं हो सकता; उसके जीवन में क्रोध नहीं हो सकता; उसके जीवन में प्रतिस्पर्धा नहीं हो सकती। असंभव है। सत्य आया तो जैसे प्रकाश आया; अब अंधेरा नहीं हो सकता।
लेकिन सत्य न तो कोई वस्तु है--वस्तु होती तो उधार भी मिल जाती। सत्य उधार नहीं मिलता। मेरे पास हो तो भी तुम्हें देने का कोई उपाय नहीं। सत्य कोई सिद्धांत भी नहीं है; नहीं तो एक बार कोई खोज लेता, सबके लिए, सदा के लिए मिल जाता। सत्य कोई तर्क की निष्पत्ति भी नहीं है, कि केवल विचार करने से मिल जायेगा, कि ठीक से सोचा तो मिल जायेगा। नहीं, जो ठीक से जीएगा, उसे मिलेगा। सोचना काफी नहीं है--जीना पड़ेगा।
दो ढंग से जीने के उपाय हैं। एक, जिसे हम असत्य का जीवन कहें। तुम कुछ हो, कुछ होना चाहते हो--बस असत्य शुरू हो गया। तुम कुछ हो, कुछ और दिखाना चाहते हो--असत्य हो गया। तुम कुछ हो, और तुमने कुछ मुखौटे ओढ़ लिए; होना तो कुछ था, प्रदर्शन कुछ और हो गया--असत्य हो गया।
इसे समझोगे तो पाओगे कि तुम्हारे तथाकथित धर्मों ने तुम्हें सत्य की तरफ ले जाने में सहायता नहीं दी बाधा डाल दी। क्योंकि उन सबने तुम्हें पाखंड सिखाया। उन सबने कहा, कुछ हो जाओ।
महावीर कहते हैं, तुम जो हो उसमें ही रह जाओ; कुछ और होने की कोशिश मत करना, अन्यथा असत्य शुरू हो जाएगा। कमल कमल हो, गुलाब गुलाब हो; कमल गुलाब होने की कोशिश न करे, अन्यथा असत्य शुरू हो जाएगा। तुम तुम हो। तुम महावीर होने की कोशिश भी करोगे तो असत्य हो जाएगा। तुम बुद्ध होने की कोशिश करोगे तो असत्य हो जायेगा। कभी कोई दूसरा महावीर हो पाया? कितने लोगों ने तो कोशिश की है! कितने लोगों ने कोशिश नहीं की है! पच्चीस सौ वर्षों में हजारों लोग महावीर होने की चेष्टा में रत रहे हैं--कोई दूसरा महावीर हो पाया?
इतिहास के ज्वलंत तथ्यों को भी हम देखते नहीं, आंखें चुराते हैं। कोई दूसरा कभी बुद्ध हो पाया? कभी कोई दूसरा राम मिला इस जीवन के पथ पर? कभी फिर कृष्ण की बांसुरी दुबारा सुनी गई? पुनरुक्ति यहां होती नहीं। अनुकरण

यहां संभव नहीं। यहां प्रत्येक बस स्वयं होने को पैदा हुआ है। और जिसने भी दूसरे होने की कोशिश की वह पाखंडी हो जाता है।
आदर्शों ने तुम्हें असत्य कर दिया। यह बात बड़ी कठिन मालूम होगी; क्योंकि तुम तो सोचते हो, आदर्शवादी जीवन बड़ा महान जीवन है। आदर्शवादी जीवन असत्य का जीवन है। आदर्शवादी का अर्थ है कि मैं कुछ हूं, कुछ होने में लगा हूं। सत्यवादी के जीवन का अर्थ हैः जो है, मैंने उसे स्वीकार किया; अब मैं उसको सरलता से जी रहा हूं; जो है--बुरा भला, शुभ-अशुभ; जैसा हूं, जैसा इस अनंत ने मुझे चाहा है, जैसा इस अनंत ने मुझे सरजा है, जैसा इस अनंत ने मुझे गढ़ा है--मैं उससे राजी हूं।
सत्य है परम स्वीकार स्वयं का, और तब शेष गुण अपने-आप चले आते हैं, छाया की तरह चले आते हैं। शेष गुणों को खोजना भी नहीं पड़ता। आदर्शवादी खोजता है; सत्यवादी के पास अपने से चले आते हैं। आदर्शवादी खोजता रहता है और कभी नहीं पाता। सत्यवादी खोजता नहीं, और पा लेता है।
लेकिन सत्य, समझ में आ जाए तो पहला तो सत्य का अर्थ हैः तुम जैसे हो, निंदा मत करना। तुम जैसे हो, दूसरे से तुलना मत करना। क्योंकि तुलना में ही स्पर्धा शुरू हो गई। तुम जैसे हो, वैसे को परिपूर्णता से स्वीकार कर लेना। रत्तीभर भी ना-नुच न करना, यहां-वहां न डोलना। तुम जो हो सकते हो, तुम हो। तुम्हें जैसा अस्तित्व ने चाहा है, वैसे तुम हो। इसमें कुछ सुधार की जरूरत नहीं है। दौड़-धूप बंद करनी है। और इस होने में थिर हो जाना है। नहीं तो तुम डोलते रहोगे--कभी राम होना चाहोगे, धनुष उठा लोगे; कभी कृष्ण होना चाहोगे, बांसुरी बजाने लगोगे, न बांसुरी बजेगी न धनुष उठेगा। कभी महावीर होना चाहोगे, नग्न खड़े हो जाओगे--प्रदर्शन हो जाएगा। नग्न खड़े हो जाओगे लेकिन महावीर का निर्दोष भाव कहां से लाओगे? तुम्हारी नग्नता तो आरोपित होगी। जो भी आरोपित है, वह निर्दोष नहीं होता। तुम्हारी नग्नता तो चेष्टित होगी, प्रयास से होगी। जो भी प्रयास से होता है, वह निर्दोष नहीं होता। जो भी चेष्टा से होता है, वह तो जबर्दस्ती होता है।
महावीर नग्न कभी हुए नहीं--उन्होंने पाया। नग्न होने का कोई अभ्यास नहीं किया, जैसा जैन मुनि करते हैं। नग्न होने के लिए कोई आयोजन, व्यवस्था नहीं जुटाई--अचानक पाया कि नग्न हो गए हैं।
कथा हैः महावीर घर से निकले तो एक चादर लेकर निकले थे। सोचा जितना कम होगा परिग्रह, उतनी कम असुविधा होगी। सोचा था, जितना कम होगा पास में, उतनी चिंता कम होगी। एक चादर लेकर निकले थे। वही ओढ़नी थी, वही बिछौना था। वही दिन में वस्त्र का काम दे देगी। वर्षा होगी तो सिर पर ढांककर छाता बना लेंगे। राह पर चल रहे थे कि एक नंगे भिखारी ने, भिखमंगे ने कहा, कुछ दे जाएं। सब लुटा चुके थे। यह एक चादर बची थी, तो आधी फाड़कर उसे दे दी। सोचा एक से चलता है, आधे से भी चल जाएगा।
जिनको समझ आ जाए तो कम से कम में भी चल जाता है और जिनको समझ न हो तो ज्यादा से ज्यादा में भी नहीं चलता। सवाल वस्तुओं का नहीं है, सवाल समझ का है।
महावीर ने कहा, इतनी लंबी की जरूरत भी क्या है, थोड़े पैर सिकोड़कर सो जाएंगे। तन पूरा न ढंकेगा, थोड़ा कम ढंकेगा, हर्ज क्या है! हवा आती-जाती रहेगी, थोड़ी सूरज की किरणें शरीर को मिलेंगी।
लेकिन आगे बढ़े, भागे जा रहे हैं जंगल की तरफ, एक गुलाब की झाड़ी से आधी चादर उलझ गई कांटों में। हंसने लगे। तो कहा, मर्जी नहीं है अस्तित्व की, कि चादर को ले जाऊं। राह में कोई मिल गया, आधा बोझ उसने ले लिया। अब यह झाड़ी मिल गई; अब यह मांगती है, आधी मुझे दे दो। तो आधी चादर झाड़ी को दे दी। सोचा कि आधी से चल जाएगा, बिना भी चल जाएगा। आखिर सारे पशु-पक्षी बिना चादर के चला रहे हैं। तो मैं आदमी हूं; जो पशु-पक्षी कर लेते हैं वह मुझसे न हो सकेगा? और अब झाड़ी से छुड़ाना शोभा नहीं देता।
जिसने देना ही जाना हो, छुड़ाने का उसका मन नहीं करता। जिसने देने का
ही रस पाया हो, वह झाड़ी से भी न छीनना चाहेगा। वह चादर झाड़ी को भेंट कर दी, वे नग्न हो गए। ऐसे महावीर नग्न हुए।

यह कोई चेष्टा न थी--यह घटना थी। इसके पीछे कोई आयोजन न था; न कोई शास्त्र थे, न कोई सिद्धांत था। नग्न होने के लिए कोई विचार न था। यह कोई अनुशासन नहीं था, जो उन्होंने थोपा अपने ऊपर। ऐसा जीवन के सहज प्रवाह में पाया कि जो लेकर आए थे वह भी जा चुका। फिर वे नग्न हो गए। फिर नग्न होने में जो मस्ती पायी तो फिर उन्होंने दुबारा चादर पाने का कोई आग्रह न रखा। क्योंकि जो नग्न होकर मिला... क्या मिला नग्न होकर? अपने जीवन का सत्य।
हम नग्न होने से डरते क्यों हैं? शरीर को भी हम छिपा-छिपाकर दिखाते हैं। उतना ही दिखाते हैं जितना हमें लगता है, दिखाने योग्य है। उतना ही दिखाते हैं जितना लगता है कि दूसरों को भी रुचेगा, भाएगा। उसको छिपाते हैं जो हमें लगता है कहीं दूसरों को न रुचे, न भाए। कपड़े तुम अपने लिए थोड़े ही पहनते हो, दूसरों के लिए पहनते हो। इसलिए तो जिस दिन घर में बैठे हो, छुट्टी के दिन बैठे हो तो कैसे ही कपड़े पहने बैठे रहते हो। बाजार चले कि सजे, कि तैयार हुए। विवाह में जा रहे हैं, महोत्सव में जा रहे हैं, तो और सजे, और भी तैयार हुए।
दूसरे के लिए कपड़े पहनते हैं हम। शरीर के उन हिस्सों को छिपाते हैं जो
हम चाहते हैं कोई दूसरा जान न ले। ये कपड़े हम कोई धूप, सर्दी, वर्षा से बचाने को थोड़े ही पहने हुए हैं; इनके पीछे बड़ा मन जुड़ा है, बड़ा आयोजन जुड़ा है।
जिस दिन किसी स्त्री को तुम चाहते हो लुभाना, उस दिन तुम ज्यादा देर रुक जाते हो दर्पण के सामने। उस दिन ज्यादा ढंग से दाढ़ी बनाते हो, कपड़े सजाते हो, इत्र छिड़क लेते हो। दूसरे के लिए है यह आयोजन।
हम दिखाते हैं केवल अपने हाथ, अपना चेहरा; शेष शरीर को हम ढांके हैं।
ढांकने के दो अर्थ हैं। एक तो हम सोचते हैं, दिखाने योग्य नहीं। दूसराः ढांकने से जो ढंका है उसमें आकर्षण बढ़ता है। दूसरे उसे उघाड़ना चाहते हैं।
स्त्रियां अगर नग्न हों तो कोई गौर से देखे भी न। आदि समाजों में, आदिवासियों में स्त्रियां नग्न हैं, कोई चिंता नहीं करता।
स्त्री खूब ढांककर शरीर को चलती है। जो-जो ढंका है, उसे-उसे उघाड़ने का सहज मन होता है।
तो एक तो हम छिपाते भी हैं; हम आकर्षित भी करते हैं, लुभाते भी हैं। इसके पीछे आयोजन है। हमारे वस्त्रों के पीछे भी आयोजन है। किसी दिन हम थक जाते हैं इन वस्त्रों से, इस प्रदर्शन से, इस दिखावे से, इस नाटक से, तो फिर हम दूसरा आयोजन करते हैं--नग्न कैसे हो जाएं! लेकिन वह भी आयोजन है। सरलता से तुम कुछ भी न होने दोगे? सहजता से तुम कुछ भी न होने दोगे? तुम्हारे जीवन में क्या कोई भी निर्दोष ज्योति न जगेगी? सभी प्रयोजन से होगा? सोच-सोचकर होगा? हिसाब लगाकर होगा?
अब जैन मुनि हैं, नग्न खड़े हैं। मगर नग्न खड़ा होना उनका वैसे ही है, जैसे तुमने दांव लगाया हो जुए पर। वे कहते हैं, नग्न हुए बिना मोक्ष न मिलेगा। इसलिए दिगंबर जैन कहते हैं कि स्त्रियों का मोक्ष नहीं है; क्योंकि स्त्रियों को नग्न करना कठिन होगा, समाज डांवांडोल होगा, अड़चन खड़ी होगी। तो स्त्री को पहले पुरुष-योनि में जन्म लेना पड़ेगा। क्योंकि बिना पुरुष-योनि में जन्म लिये वह नग्न न हो सकेगी। नग्न न हो सकेगी, तो मोक्ष कैसे?
अब तुम थोड़ा सोचो! नग्न होने में भी दांव है, हिसाब है, गणित है। यह नग्न होना भी शुद्ध सरल नहीं है। महावीर नग्न हुए थे, मोक्ष का कोई सवाल न था--एक भिखारी ने चादर मांग ली थी। महावीर नग्न हुए थे, मोक्ष का कोई सवाल न था--एक फूलों की झाड़ी ने चादर छीन ली थी। महावीर नग्न हुए थे, इसके पीछे कभी सोचा भी न था।
लेकिन तुम जब नग्न होओगे, तो मोक्ष... । तुम्हारी नग्नता भी सौदा है। कपड़ों में ढांका है हमने अपने शरीर को। और ऐसे ही हमने बहुत-बहुत पर्तें अपने मन में ढांकी हैं। हम वही कहते हैं, जो हम सोचते हैं रुचिकर लगेगा। हम वही कहते हैं, चुन-चुनकर, छांट-छांटकर, जो दूसरे को मोहित करेगा और हमारी एक सुंदर प्रतिमा निर्मित होगी। हम वही नहीं कहते जो हमारे भीतर उठता है। भीतर गालियां भी उठती हों तो भी हम बाहर स्वागत के गीत गाए चले

जाते हैं। भीतर क्रोध भी उठता है तो भी ओंठों पर मुस्कुराहट को फैलाए चले जाते हैं। मुस्कुराहट झूठी होती है। जो भी थोड़ा आंखवाला है, वह देख लेगा, झूठी है; जबर्दस्ती ओंठों को ताना गया है, खींचा गया है--बही नहीं है। मुस्कुराहट भीतर से उठी नहीं है। मुस्कुराहट कहीं से आयी नहीं है, बस ऊपर से लीपी-पोती गयी है। लेकिन हमारी मुस्कुराहट झूठी है। हमारे आंसू झूठे हैं। हमारी सहानुभूति झूठी है, उदासी झूठी है। हमारा सारा जीवन एक झूठ का व्यापार है।
जब महावीर कहते हैं सत्य, तो उनका अर्थ यह नहीं है, जैसा गणित में होता है--दो और दो चार, यह सत्य हुआ गणित का--ऐसे सत्य की बात महावीर नहीं कर रहे हैं। जब महावीर कहते हैं सत्य, तो वे यह कह रहे हैं कि तुम जो हो, जैसे हो, निपट और नग्न, खोल दो अपने को वैसा ही। तुम चिंता न करो कि कौन क्या सोचेगा। तुम अपने में कोई भी आयोजन न करो। जैसे वृक्ष खड़े हैं नग्न और सहज, ऐसे ही तुम भी नग्न और सहज हो जाओ।
महावीर का सत्य बड़ा कठिन है। पर महावीर का सत्य बड़ा गहरा भी है। और महावीर का सत्य ही सत्य है, दार्शनिकों के सत्य में कुछ भी नहीं रखा है। वह तो बातचीत है, शब्दों का जाल है। वह भी शायद कुछ छिपाने की चेष्टा है।
तुम अपने को पकड़ो। तुम अपना पीछा करो और जगह-जगह देखो, चौबीस घंटे में कितना असत्य कर रहे हो! अनजाने ही! ऐसा भी नहीं कि तुम सभी असत्य जान-जानकर बोलते हो, सोच-सोचकर बोलते हो--आदत इतनी प्रगाढ़ हो गई है, ऐसे रग-रोएं में समा गई है, ऐसे खून-खून की बूंद में बैठ गई है, कि अब तो तुम किए चले जाते हो, कोई हिसाब भी नहीं रखना पड़ता। तुमसे असत्य ऐसे ही निकलता है जैसे वृक्षों से पत्ते निकलते हैं। अब कुछ करना भी नहीं पड़ता, कुशलता इतनी गहन हो गई है। कभी तो तुम चौंकोगे कि जहां जरूरत भी नहीं होती, वहां भी असत्य निकलता है। जहां उससे कुछ लाभ भी होने को नहीं है वहां भी असत्य निकलता है। वहां भी सत्य नहीं निकलता, वहां भी असत्य निकलता है।
कभी तुमने पकड़ा अपने को? ऐसे मौकों पर भी, जब कि कोई लाभ भी नहीं दिखाई पड़ता झूठ बोलने में, लेकिन झूठ बोलने की आदत हो गई है! इस आदत को तोड़ना पड़े! कितनी ही मजबूत हो, कितने ही हथौड़े मारने पड़ें, पर तोड़ना पड़े! और धीरे-धीरे तुम जो हो उसके लिए राजी होना पड़े! हो सकता है, प्रतिष्ठा खो जाए; क्योंकि हो सकता है, प्रतिष्ठा तुम्हारे असत्य पर ही खड़ी हो। हो सकता है, तुम्हारा सम्मान खो जाए; क्योंकि अकसर इस बात की संभावना है कि तुम्हारा सम्मान तुम्हारे उन्हीं झूठों पर खड़ा हो, जो तुमने समाज के सामने बोले हैं। तुम्हारा दिखावा, तुम्हारे प्रदर्शन, तुम्हारे नाटक ही बुनियाद में हों, तो सम्मान भी गिर जाएगा। गिर जाने दो! इसे ही मैं संन्यास कहता हूं, जिसको महावीर सत्य कह रहे हैं।
तुम जैसे हो, तुम बेशर्त उसे स्वीकार कर लो। कठिन होगा। आग से गुजरना होगा। मगर आग निखारेगी। कचरा जल जाएगा, कुंदन बाहर आएगा। साफ शुद्ध सोना होकर तुम निकलोगे। जो सोना आग से निकलने से डर गया वह कभी शुद्ध नहीं हो पाता। जो मनुष्य सत्य की आग से निकलने से डरता है, वह कभी मनुष्य नहीं हो पाता।
"सत्य में तप, संयम, शेष समस्त गुणों का वास है।"
तो पहला सत्य तो जो मैं हूं, वैसा ही अपने को स्वीकार कर लूं। जो मैं हूं, उससे अन्यथा होने की चेष्टा भी न करूं; क्योंकि उस सब चेष्टा में ही झूठ प्रवेश करता है।
तुम क्रोधी हो, तो तुम क्या करते हो? तुम अक्रोध की साधना करते हो। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, "मन बड़ा अशांत है, शांति की कोई तरकीब बता दें।" क्या करोगे शांति की तरकीब का? ऊपर-ऊपर लीपा-पोती कर लोगे, भीतर अशांति उबलती रहेगी ज्वालामुखी की तरह। ऊपर-ऊपर तुम शांति के भवन बना लोगे, ज्वालामुखियों पर बैठे होंगे भवन। भूकंप आते ही रहेंगे। शांत तुम हो न पाओगे।
शांत होने की उतनी जरूरत नहीं है, जितनी अशांति को समझने की जरूरत है। पहले तो अशांति को स्वीकार करने की जरूरत है कि मैं अशांत हूं। फिर अशांति को पहचानने की जरूरत है कि यह अशांति क्या है--बिना किसी निंदा के। पहले से

ही अगर तुमने तय कर लिया कि अशांति बुरी है तो तुम जान कैसे पाओगे, देख कैसे पाओगे? जो आंखें पहले ही पक्षपात से भर गईं और जिन्होंने तय कर लिया कि अशांति बुरी है और अशांति से छूटना है, वे आंखें अशांति का अवलोकन न कर पाएंगी। अवलोकन शुद्ध न होगा, अवलोकन प्रामाणिक न होगा। तुम पहले से ही तैयार हो। तुम जूझने को तैयार हो, लड़ने को तैयार हो। दुश्मन को कभी कोई भर आंख देख पाता है! दुश्मन से तो हम आंखें बचा लेते हैं। मित्र को देख पाते हैं। प्रेमी को देख पाते हैं। जिससे हमारा प्रेम हो, उसकी आंखों में आंखें डाल पाते हैं।
तो अपने को प्रेम करो, अगर सत्य होना है। और जैसे भी हो बुरे-भले, यही हो, इसके अतिरिक्त कुछ और हो नहीं सकता था। जो तुम हुए हो, इसको पहचानो, परखो, जांचो, खोलो एक-एक गांठ। अशांति है तो अशांति सही, क्या करोगे? अशांति तुम्हारा तथ्य है। जैसे आग जलाती है, वह उसका गुणधर्म है। अशांति तुम्हारे आज का तथ्य है। आज तुम जैसे हो उसमें अशांति के फूल लगते हैं, अशांति के कांटे लगते हैं। लेकिन देखो, पहचानो, समझो, स्वीकार करो। भागो मत। डरो मत। विपरीत की चेष्टा मत करो। अशांति है तो शांति को लाने के प्रयास में संलग्न मत हो जाओ। वह प्रयास अशांति से बचने का प्रयास है। बचकर कोई कभी बच नहीं पाया। अगर कामवासना है तो उतरो। उस गहरे कुएं में उतरो जिसका नाम कामवासना है। उसकी सीढ़ी दर सीढ़ी नीचे जाओ। उसकी आखिरी तलहटी को खोजो। वहीं से उठेगा ब्रह्मचर्य। जागरण से उठेगा ब्रह्मचर्य। कामवासना की पहचान में से ही ब्रह्मचर्य पैदा होता है। कामवासना में ही छिपा है ब्रह्मचर्य; जैसे कामवासना बीज का खोल है और उसके भीतर छिपा है कोमल तंतु, कोमल पौधा ब्रह्मचर्य का। तुम समझो, बीज को कैसे जमीन में बोएं, फिर कैसे सम्हालें--उसी से निकलेगा। कीचड़ से जैसे कमल निकलता है, ऐसे ही कामवासना से ब्रह्मचर्य निकलता है।
अशांति का ही सार है शांति। उसी के भीतर से निचोड़ना है। जैसे फूलों से इत्र निचोड़ते हैं, ऐसे ही क्रोध से निचुड़कर करुणा आती है।
तो जो तुम्हारे पास है उसके विपरीत होने में मत लग जाओ। जो तुम्हारे पास है उसको ही कैसे रूपांतरित करें, कैसे उसमें से ही सार को खोजें, असार को त्यागें, कैसे उसको निचोड़ें, इत्र बनाएं--तो तुम सत्य हो सकोगे।
महंगा है यह सौदा। इसलिए महावीर कहते हैं, तप है यह सत्य। इसमें तपना पड़ेगा। यह तपना सस्ता तपना नहीं है कि धूप में खड़े हो गए और तप लिए। वह तो बच्चे भी कर लेते हैं। वह तो बुद्धू भी कर लेते हैं। उसके लिए तो कोई बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। जड़ भी कर लेते हैं। वस्तुतः जो जड़बुद्धि हैं, वे ज्यादा आसानी से कर लेते हैं। क्योंकि जितनी जड़बुद्धि होती है उतनी जिद्दी होती है। और जितनी जड़बुद्धि होती है, उतनी संवेदनहीन होती है। धूप में भी खड़े हो जाते हैं, थोड़े दिन में उसका भी अभ्यास हो जाता है। उपवास भी कर लेते हैं, उसका भी अभ्यास हो जाता है। कुछ लोग हैं जो खड़े हैं वर्षों से, बैठे नहीं, लेटे नहीं--उसका भी अभ्यास हो गया। लेकिन तुमने कभी इन लोगों की आंखों में गौर से देखा! वहां तुम्हें प्रतिभा की दमक न मिलेगी। वहां तुम्हें आनंद और शांति के स्वर सुनाई न पड़ेंगे। इनकी छाती के पास, हृदय के पास कान लगाकर सुनना; वहां कोई अनाहत का नाद न मिलेगा। वहां तुम पाओगेः जड़ता, राख, मरे हुए लोग।
अकसर हठी जड़ होता है। और जिसको तुम तप कहते हो, वह हठ से ज्यादा नहीं है, जिद्द है, क्रोध है, अहंकार है--लेकिन सत्य नहीं।
सत्य का तप क्या है? सत्य का तप हैः अपने को जैसा है वैसा स्वीकार किया, वैसा ही प्रगट किया; अपने और अपनी अभिव्यक्ति में कोई भेद न किया। फिर जो हो, समाज अच्छा कहे बुरा कहे, लोग चाहें न चाहें, सम्मान दें अपमान दें, फिर जो हो--यह है असली तप। लोग निंदा करें, वह भी स्वीकार है। लोग प्रशंसा करें, वह भी स्वीकार है। लोग भूल जाएं, उपेक्षा करें, वह भी स्वीकार है। यह है तप। सत्य होने को महावीर कहते हैं तप।
"सच्चामि वसदि तवो"--सत्य में बसता है तप। संयम भी वहीं है।
इन दो शब्दों को समझ लेना चाहिए, क्योंकि महावीर ने इन दो शब्दों का साथ-साथ उपयोग किया।

तप का अर्थ हैः तुम्हारे भीतर ऐसी बहुत-सी सचाइयां हैं जिनके कारण तुम्हें अड़चन होगी। उस अड़चन को झेलने के लिए तैयार होना तप है। तुम्हारे भीतर ऐसी बहुत-सी सचाइयां हैं; जिनके कारण बहुत-से काम तुम जो अभी कर रहे हो, कल न कर पाओगे। वह जो न करने की अवस्था है, वही संयम है।
समझो! अब तक तुम दान दे रहे थे। लेकिन सच्चा आदमी सोचेगाः "दान का भाव उठा है या नहीं?" दान के लिए ही तो सभी दान नहीं देते, और दूसरे कारणों से देते हैं। राह पर भिखमंगा पकड़ लेता है, इज्जत दांव पर लगा देता है। भिखमंगा भी अकेले में तुमसे भीख नहीं मांगता, क्योंकि अकेले में जानता है कि तुम धुतकारोगे। बीच बाजार में पकड़ लेता है। वहां इज्जत सवाल हैः "लोग क्या कहेंगे, दो पैसे भी न देते बने! लोग हंसेंगे!" वहां तुम दो पैसा देकर दानी बन जाना चाहते हो। क्योंकि उस दो पैसे में इज्जत मिल रही है, वह इज्जत तुम दुकान पर काम में ले आओगे। दो पैसे से तुम दो रुपये निकालोगे। जिसने आज तुम्हें दानी की तरह देख लिया है, कल वही ग्राहक की तरह दुकान पर होगा, तो तुम जो भी दाम बताओगे, मान लेगा--आदमी दानी है! बाजार में अगर भिखमंगे ने पकड़ लिया तो तुम्हें देना ही पड़ता है।
एक मारवाड़ी को एक भिखमंगे ने पकड़ लिया बाजार में। तख्ती लगाए था भिखमंगा कि मैं अंधा हूं। और उसने कहा, "सेठ कुछ मिल जाए! बड़े दिन से सिनेमा नहीं गया हूं।" मारवाड़ी तो तैयार ही था कि कैसे छूटे! उसने देखा, "सिनेमा--और तख्ती लगाए हो कि मैं अंधा हूं! सिनेमा जाकर करोगे क्या? धोखा देने की कोशिश कर रहे हो?" उस अंधे ने कहा, "दाता! गाने ही सुन लूंगा! अब देने से न बचो।"
भीड़ लग गई थी। सेठ ने देखा, बचने का उपाय नहीं है, तो पांच पैसे का सिक्का निकालकर उसको देने लगा। अंधे ने कहा कि सेठ, बैंक में जमा करवा देना। मेरा मार्केट तो मत बिगाड़ बाबा! पांच पैसे?
भिखमंगा भी बाजार में है; उसका भी मार्केट है। सेठ भी बाजार में है; उसका भी मार्केट है। न दे तो उसका मार्केट बिगड़ता है। ये लोग देख रहे हैं चारों तरफ, वे कहेंगे, अरे कृपण! अरे कंजूस!
उस सेठ ने कहा कि "तू पहचाना कैसे कि पांच पैसे का सिक्का है, अगर तू अंधा है? अभी मैंने दिया भी नहीं, हाथ में ही लिया है।" उस अंधे ने कहा, "मालिक! अब और क्या प्रमाण चाहिए! मारवाड़ी से भीख मांग रहा हूं, इससे बड़ा प्रमाण अंधे होने का और क्या होगा?"
भिखमंगा भी सोच-समझकर पकड़ता है। भिखमंगा भी जानता है, दान तो कोई देना नहीं चाहता। लेकिन लोग इतने ईमानदार भी नहीं हैं कि कह दें कि हम दान नहीं देना चाहते। लोग दिखाना चाहते हैं कि हम हैं तो दानी। उसी का भिखमंगा शोषण कर रहा है। तुम भी लज्जा से भर जाते हो कि अब कैसे निकलें! चलो, छुटकारा पाने के लिए देते हो। लेकिन अगर तुम ईमानदार हुए तो तुम कहोगे कि बाबा, मेरे मन में देने की कोई इच्छा नहीं है। चाहे बाजार में सारी इज्जत प्रतिष्ठा पर लग जाए, चाहे कल दुकान बंद क्यों न हो जाए, चाहे लोग तुम्हें कृपण समझें, बेईमान समझें, धोखेबाज समझें, धन का आग्रही समझें--लेकिन तुम कहोगे कि क्या करूं, मेरे मन में देने का कोई स्वर नहीं है।
तप पैदा होगा। संयम भी पैदा होगा। क्योंकि बहुत-से काम तुम कर रहे हो इसलिए, क्योंकि करने चाहिए। अगर सब खरीद रहे हैं कोई सामान, नया फर्नीचर, नई कार, तो तुम भी खरीद रहे हो--बिना इसकी फिक्र किए कि तुम्हें जरूरत है। तुमने कभी सोचा कि तुम जो चीजें खरीद लाते हो, उनकी जरूरत थी? लेकिन अगर पड़ोसी खरीद लाए थे तो तुम भी खरीद लाते हो।
तुमने कभी सोचा है कि तुम जो कर रहे हो, जो दिखावा कर रहे हो, उसकी कोई जरूरत है? लेकिन और दिखावा कर रहे हैं तो तुम कैसे रह सकते हो! अगर व्यक्ति सचाई से अपने भीतर देखने लगे, तो पाएगाः अचानक बहुत-से काम तो बंद हो गए, क्योंकि निष्प्रयोजन थे; दूसरे कर रहे थे, दूसरों के दिखावे के लिए तुम भी कर रहे थे।
लड़की की शादी करनी है, लोग हजारों रुपये लुटाते हैं--उनके पास नहीं हैं, कर्ज लेकर लुटाते हैं। क्यों? और दूसरों ने, दुश्मनों ने, पड़ोसियों ने--पड़ोसी यानी दुश्मन--उन्होंने अपनी लड़की की शादी में इतना लगाया... । अब

तुम्हारी इज्जत दांव पर लगी है। तुम्हारे अहंकार का सवाल है। तुम्हें भी लगाना होगा। तुम्हें लड़की से कोई मतलब नहीं है। न तुमने जो दिया है, वह प्रेम से दिया है। न तुमने लड़की को दिया है। तुमने अहंकार को दिया है। तुम अपने झंडे को ऊंचा करके दिखाना चाहते थे कि देख लो! तुम अगर गौर से अपनी सचाई को पहचानने लगो तो तुम पाओगेः तप भी आता, संयम भी आता।
सौ में निन्यान्नबे आकांक्षाएं तुम्हारी बिल्कुल व्यर्थ हैं। वे तुमने न मालूम कैसे उधार ले ली हैं। संक्रामक रोग की तरह तुम्हें लग गई हैं। दुख आएगा तो तुम स्वीकार करोगे। और बहुत-से सुख जो सुख नहीं हैं, तुम दूसरों के कारण ही भोगे चले जाते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन जा रहा था। पूछा, "कहां जा रहे हो?" उसने कहा, "शास्त्रीय संगीत सुनने जा रहा हूं।" मैंने कहा, "लेकिन तुम जानते नहीं।" उसने कहा, "अब क्या करें! सभी जा रहे हैं, न जाओ तो ऐसा लगता है कि शास्त्रीय संगीत नहीं आता। हालांकि कुछ समझ में नहीं आता मेरे। अभी से डरा हुआ हूं कि वहां करूंगा क्या। मुझे तो उलटी घबड़ाहट होती है। जब आऽऽऽऽ करने लगते हैं, मुझे ऐसा लगता है कि अब पता नहीं कब यहां से निकलना हो पाएगा।" उसने बताया मुझे कि पहले भी एक दफा ऐसा हो चुका हैः मैं गया था शास्त्रीय संगीत सुनने और जब संगीतज्ञ बहुत आऽऽऽऽ करने लगा तो मैं रोने लगा। तो मेरे पड़ोस के लोगों ने पूछा कि अरे मुल्ला! हमने तो कभी सोचा भी न था कि तुम इतने संगीत के पारखी हो!
उसने कहा, "पारखी-वारखी कुछ नहीं; यही हालत मेरे बकरे की हुई थी। उसी रात मर गया था। यह आदमी बचेगा नहीं। यह बिल्कुल मरने के करीब है। इसलिए मुझे याद आ रही है बकरे की, कि बेचारा बकरा, इसी तरह शास्त्रीय संगीत करते- करते--!"
मगर जाना पड़ रहा है, क्योंकि सारा मोहल्ला-पड़ोस जा रहा है। इज्जत का सवाल है।
तुमने कभी गौर किया अपने को! तुम बहुत-सी चीजों में सम्मिलित हुए हो, जहां तुम कभी जाना न चाहते थे, लेकिन क्या करते! तुम भीड़ के हिस्से हो! तुमने कभी-कभी अपनी जरूरतों को भी कुर्बान किया है--उन बातों के लिए जो तुम्हारी जरूरतें न थीं। तुमने गहने खरीद लिए हैं, पेट को भूखा रखा है। तुमने बड़ा मकान बना लिया है, बच्चों के लिए औषधि नहीं जुटा पाए। तुमने कार खरीद ली, बच्चों को शिक्षा नहीं दे पाए।
तुमने कभी गौर किया है कि तुम वे चीजें कर गुजरे, जो न करते तो चल जाता;
और उन चीजों को न कर पाए जो कि करनी बिल्कुल जरूरी थीं।
संयम पैदा होता है, जो व्यक्ति सच्चा होने लगता है। उसे दिखाई पड़ता है, जो मेरे लिए जरूरी है वह करूंगा; जो नहीं जरूरी है वह नहीं करूंगा। और ऐसा व्यक्ति धीरे-धीरे भीड़ के बाहर हो जाता है। इस अकेले हो जाने का नाम ही संन्यास है। भीड़ में ही होता है, लेकिन अकेला हो जाता है। अपने ढंग से जीता है। और अपने ढंग को किसी हालत में भी समझौता नहीं करता। कुछ भी हो जाए, सत्य की आकांक्षा करनेवाला समझौतावादी नहीं होता। वह आगे-पीछे नहीं देखता, वह यह हिसाब नहीं लगाता कि इसके क्या परिणाम होंगे। वह कहता है, जो भी परिणाम होंगे उसका तप झेल लूंगा; जो भी खोना पड़ेगा, उसका संयम हो जाएगा। लेकिन जो मैं हूं, उससे अन्यथा मैं नहीं होना चाहता।
एक बड़ी क्रांति घटती है, जब तुम अपने से राजी होते हो। जब तुम अपने से राजी होते हो तो तुम अपने भीतर उतरने लगते हो। जब तुम अपने से राजी होते हो और यहां-वहां नहीं दौड़ते और दूसरों का अनुगमन नहीं करते तो तुम अपने में डूबने लगते हो, एक डुबकी लगती है। उस डुबकी के माध्यम से तुम अपनी सतह से ही परिचित नहीं होते, अपने भीतर की गहराइयों से परिचित होने लगते हो।
और एक दिन ऐसी भी घड़ी आती है कि तुम अपने केंद्र पर आरोपित हो जाते हो। वही है धर्म, आत्मज्ञान कहो।
"सत्य में तप, संयम और शेष समस्त गुणों का वास होता है। जैसे समुद्र मछलियों का आश्रय है, वैसे ही सत्य समस्त गुणों का आश्रय है।"
सत्य जैसे सागर है, सभी नदियां उसी में गिर जाती हैं, ऐसे ही सत्य जीवन
का परम आचरण है; धर्म का पर्यायवाची है; और सभी गुण उसी में गिर जाते हैं।

लेकिन लोग उलटा कर रहे हैं। लोग कहते हैं, तप साध रहे हैं, संयम साध रहे हैं--क्योंकि सत्य पाना है। महावीर कहते हैं, सत्य साधो, तो संयम और तप अपने से आ जाते हैं। अब इतनी सीधी-सी बात भी कैसे चूक जाती है! ऐसा लगता है, लोग चूकना ही चाहते हैं। अब इतना साफ-सा वचन है। "सच्चाम्मि वसदि तवो"... लेकिन किसी जैन मुनि से पूछो, तो वह कहेगा, "तप करोगे तो ही सत्य मिलेगा। तपश्चर्या के बिना कहीं सत्य मिला है!" महावीर ठीक उलटी बात कह रहे हैं कि सत्य के बिना कहीं तपश्चर्या हुई है! दोनों दुश्मन मालूम पड़ते हैं। यह जैन मुनि महावीर के पीछे चलता हुआ मालूम नहीं पड़ता। यह तो उलटा ही काम कर रहा है। यह तो कारण को पकड़कर कार्य को लाना चाहता है, जो कि संभव नहीं है। कार्य से कारण आता है। तुम चलते हो, तुम्हारी छाया तुम्हारे पीछे चलती है। महावीर कहते हैं, तुम चलोगे, तुम्हारी छाया तुम्हारे पीछे चलेगी। जैन मुनि कहता है, छाया का पीछा करो, कहीं ऐसा न हो कि छाया यहां-वहां चली जाए! अब तुम अड़चन में पड़ जाओगे, अगर तुमने छाया का पीछा किया तो तुम तो उलटी यात्रा पर लग गए। यह तो छाया तुम्हारी आत्मा हो गई, तुम छाया हो गए। महावीर कहते हैं, सत्य में तप, संयम और शेष समस्त गुणों का वास हो जाता है। वे नाम भी नहीं गिनाते। गिनाने की कोई जरूरत नहीं है। कह दिया सागर, तो सभी नदियां आ गईं। आ ही जाती हैं देर-अबेर। नदी-नदी का कहां-कहां पीछा करोगे? सागर को ही पकड़ लो। जब सागर ही मिलता हो तो नदियों के पीछे क्यों भटकते हो?
लेकिन अगर जैन मुनि ऐसी बात कहे, तो उसका खुद का क्या हो! क्योंकि वह
भी नदियों के पीछे भटक रहा है।
इसे समझो।
जैनों का शब्द हैः "उपवास"। बड़ा प्यारा शब्द है! उपवास शब्द का अर्थ होता हैः अपने अंतर्तम में वास। उप धन वासः अपने पास होना; अपने निकट होना। इसका खाने न खाने से कुछ भी संबंध नहीं। तुम जिसे उपवास कहते हो, वह अनशन है, उपवास नहीं। फर्क क्या है? महावीर कहते हैं, जब तुम अपने पास हो जाओगे तो उन घड़ियों में भोजन भूल जाता है, क्योंकि शरीर भूल जाता है। जब कोई अपने पास होता है, आत्मा के पास होता है। जब आत्मा का सत्संग चलता है, जब उस रस में कोई डूबता है--कहां याद रहती है भूख-प्यास की!
तुमने कभी ख्याल नहीं किया! कोई मित्र घर आ जाए वर्षों का बिछड़ा हुआ, भूख याद पड़ती है? प्यास पता चलती है? घंटों बीत जाते हैं, बैठे हैं, चर्चा कर रहे हैं, न भूख है न प्यास है।
तुम्हारा प्रेमी मिल जाए, तुम्हारी प्रेयसी मिल जाए--भूख, प्यास भूल जाती है। घड़ियां ऐसे बीतने लगती हैं जैसे पल भागे। दिन-रातें ऐसे गुजर जाती हैं जैसे आईं और गईं, पता ही न चला।
तो जरा सोचो, जिस दिन भीतर का प्यारा, भीतर का प्रियतम मिल जाए, जब उसके पास सरकने लगोगे तो कहां याद आएगी भूख की, कहां याद आएगी प्यास की! महावीर कहते हैं, उपवास के कारण अनशन हो जाता है। जैन मुनि कहता है, अनशन करो तो आत्मा के पास जाओगे।
अब बड़ा मुश्किल है मामला। अनशन करनेवाला और भी शरीर के पास हो जाता है। भूखे मरोगे तो शरीर की ही याद आएगी। नहीं तो करके देख लो। उपवास करके देख लो। जिसको जैन मुनि उपवास कहते हैं, मैं तो अनशन कहता हूं। अनशन करके देख लो। जिस दिन खाना न खाओगे, उस दिन खाने ही खाने की याद आएगी। उस दिन रास्ते पर गुजरोगे तो न तो कपड़े की दुकानें दिखाई पड़ेंगी, न जूतों की दुकानें; बस रेस्तरां, होटल, उन्हीं-उन्हीं के बोर्ड एकदम पढ़ोगे और दिल में बड़ी तरंगें उठेंगी। रसगुल्ले उठेंगे! रसमलाई फैलेगी! संदेशों के संदेश आएंगे।
भूखा आदमी भोजन का ही सोच सकता है।
इसलिए जैन जब उपवास करते हैं पर्यूषण के दिनों में, तो मंदिर में गुजारते हैं ज्यादा समय, क्योंकि घर तो बहुत ज्यादा याद आती है। मंदिर में किसी तरह भुलाए रखते हैं; शोरगुल मचाए रखते हैं! और फिर वहां और भी उन्हीं जैसे भूखे बैठे हैं, उनको देखकर भी ऐसा लगता हैः "कोई अकेले ही थोड़े ही हैं! अपन ही थोड़े ही परेशान हो रहे हैं, और भी सब हो रहे हैं!"

और एक-दूसरे की हिम्मत बंधाए रखते हैं। बैंड-बाजा बजाए रखते हैं। घर
आए तो भोजन की याद आती है। वहां भी भोजन की ही याद आती है। तुम जिस चीज के साथ जबर्दस्ती करोगे, उसका कांटा चुभेगा।
महावीर कहते हैं, उपवास हो जाए--अनशन अपने से हो जाता है।
जैन मुनि कहते हैं, अनशन करो तो उपवास होगा। यही पूरी की पूरी उलट-बांसी चल रही है, उलटी धारा बह रही है।
"समुद्र जैसे सभी नदियों का आश्रय है, ऐसे ही सत्य सभी धर्मों का आश्रय है। कदाचित सोने और चांदी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत हो जाएं तो भी लोभी पुरुष को उनसे कुछ भी नहीं होता, तृप्ति नहीं होती, क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनंत है।"
सोने और चांदी के कैलाश, हिमालय के हिमालय सोने और चांदी के, अनंत हिमालय, असंख्य पर्वत तुम्हें उपलब्ध हो जाएं, तो भी लोभी पुरुष को उनसे कुछ भी नहीं होता। क्योंकि लोभ का इससे कोई संबंध ही नहीं है। लोभ का जो तुम्हारे पास है उससे कोई संबंध ही नहीं है। लोभ की दौड़ तो उसके लिए है जो तुम्हारे पास नहीं है।
लोभ के गणित को समझो। जो तुम्हारे पास है, लोभ उसको देखता ही नहीं; जो तुमसे दूर है, उसी को देखता है।
एक बहुत मोटा आदमी था। डाक्टर ने उसको सलाह दी कि अब तुम कुछ और नहीं करते तो मरोगे। तुम गोल्फ खेलना शुरू कर दो। तो वह सात दिन बाद आया। उसने कहा, बड़ी मुश्किल है। अगर गेंद को बहुत पास रखता हूं तो दिखाई नहीं पड़ती! तोंद बड़ी है। अगर बहुत दूर रखता हूं तो चोट नहीं मार सकता। अब करूं क्या? लोभ की तोंद बड़ी है। जो पास है वह तो दिखाई ही नहीं पड़ता। जो दूर है वही दिखाई पड़ता है। लेकिन जो दूर है वह तभी तक दिखाई पड़ता है जब तक दूर है। जैसे-जैसे तुम पास आए, तुम्हारी तोंद भी गई। जब तुम पास पहुंचे वह तोंद के नीचे फिर ढंक गया। अब फिर दूर रखो। तुम्हारे पास दस हजार हैं तो नहीं दिखाई पड़ते, लाख दिखाई पड़ते हैं। लाख हो गए, वे नहीं दिखाई पड़ते, वे तोंद के नीचे पड़ गए--दस लाख दिखाई पड़ते हैं। अगर यह गणित समझ में आ गया, तो एक हिमालय हो कि हजार हिमालय हो जाएं सोने से भरे हुए तुम्हारे पास, क्या फर्क पड़ता है!
जो तुम्हारे पास है, वह लोभ को दिखाई नहीं पड़ेगा; जो दूर है, जो नहीं है, वही दिखाई पड़ता है।
तो जो इस बात को समझ लेगा, वह एक बात समझ लेगा कि लोभ के तृप्त होने का कोई उपाय नहीं है। चोट लग ही नहीं सकती। पास रखो, दिखाई नहीं पड़ता; दूर रखो, दिखाई पड़ता है--लेकिन दूर को चोट कैसे मारो! चोट तो पास को लग सकती थी। इसलिए लोभ कभी तृप्त नहीं होता। तुम यह मत सोचना कि गरीब आदमी का तृप्त नहीं होता, अमीर का तो हो जाता होगा। किसी का तृप्त नहीं होता। अमीर गरीब से भी ज्यादा गरीब हो जाता है। जितना होता जाता है उतनी ही मुश्किल होती जाती है। इतना हो गया, कुछ भी नहीं हुआ--और बेचैनी बढ़ती है। गरीब को तो कम से कम एक चैन रहता है, एक आशा रहती है कि जब हो जाएगा तो सब ठीक हो जाएगा; अमीर की वह आशा भी छिन जाती है। क्योंकि उसे एक बात... कब तक झुठलाएगा वह कि इतना तो हो गया, और कुछ भी नहीं हुआ!
यह कुछ आश्चर्यजनक नहीं है कि जैनों के चौबीस ही तीर्थंकर राजपुत्र थे। यह कुछ आश्चर्यजनक नहीं है कि बुद्ध भी राजपुत्र थे। और कृष्ण और राम और हिंदुओं के सारे अवतार शाही घरों से आए थे। अगर उनको यह दिखाई पड़ गया, तो इसके दिखाई पड़ने के पीछे एक कारण है। उन्होंने दौड़ को देखा। कितना धन था, कुछ सार नहीं मिलता, लोभ तो पकड़े ही रहता है!
तो एक बात तय है कि लोभ का जिसने साथ रखा, अतृप्ति की छाया बनती रहेगी। लोभ से जिसने तृप्ति चाही, वह असंभव चाह रहा है--जो न हुआ है, न होता है, न हो सकता है। तृप्ति अगर चाहनी हो तो लोभ से जागो।
"कदाचित सोने और चांदी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत हो जाएं... ।" "सुवण्णरूप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया... " असंख्य
हो जाएं कैलास; "नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि... " फिर भी लोभी को कोई तृप्ति नहीं।

"इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया।" इच्छा आकाश की तरह अनंत है। बढ़ो, दिखाई पड़ता है, आकाश छू रहा है पृथ्वी को, यही कोई दस-पांच मील दूर, क्षितिज पास ही दिखाई पड़ता है--पहुंचो, कभी मिलता नहीं।
तुम जितने बढ़ते हो, क्षितिज भी उतना ही तुम्हारे साथ बढ़ता जाता है।
तुम्हारे और क्षितिज के बीच का जो फासला है, वह सदा उतना ही रहता है। उसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। तुम्हारे पास क्या है, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता।
तुम्हारे और तुम्हारे लोभ का अंतर सदा समान रहता है। गरीब और उसकी उपलब्धि में, अमीर और उसकी उपलब्धि में उतना ही अंतर है। अंतर बराबर है। ऐ शेख! अगर खुल्द की तारीफ यही है
मैं इसका तलबगार कभी हो नहीं सकता।
कवि ने कहा है कि अगर तुम्हारे स्वर्ग की यही प्रशंसा है कि वहां सोने
के वृक्ष हैं और हीरे-जवाहरातों, मणि-माणिक्य के फूल हैं, और वहां सुंदर स्त्रियां हैं जिनका रूप कभी ढलता नहीं, और वहां शराब के चश्मे हैं--तो कवि ने कहा हैः ऐ शेख! अगर खुल्द की तारीफ यही है--अगर तेरे स्वर्ग की यही तारीफ है, यही प्रशंसा है, मैं इसका तलबगार कभी हो नहीं सकता--तो फिर मैं इसकी आकांक्षा नहीं कर सकता। क्योंकि यह तो फिर वही मूढ़ता है जो संसार की है। इसमें तो कुछ भेद न हुआ। यहां थोड़े-थोड़े ढेर थे सोने-चांदी के, वहां कैलाश जैसे पर्वत होंगे। यहां सुंदर स्त्रियां थीं, लेकिन उनका रूप ढल जाता था; वहां सुंदर स्त्रियां होंगी जिनका रूप न ढलेगा। अंतर परिमाणात्मक है, गुणात्मक नहीं--क्वांटिटी का है, क्वालिटी का नहीं।
मैं इसका तलबगार कभी हो नहीं सकता!
जिसने जीवन की लोभ की प्रक्रिया को समझ लिया, वह स्वर्ग की मांग न करेगा। और अगर तुम अभी भी स्वर्ग की मांग कर रहे हो तो तुम समझना कि तुम संसार को ही बार-बार मांगे जा रहे हो। तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारे संसार का ही फैलाव है, इसका ही विस्तार है।
तुम जरा स्वर्ग की तारीफ तो देखो! तुम जरा शास्त्रों में स्वर्ग का वर्णन तो देखो! जिनने ये शास्त्र लिखे हैं, वे बुद्धिमान नहीं हो सकते। और जिन्होंने स्वर्ग की ये प्रशंसाएं की हैं, वे लोभ से मुक्त नहीं हो सकते। वस्तुतः स्वर्ग की इन आकांक्षाओं में लोभ ही सघनीभूत होकर प्रगट हुआ है। जो यहां पूरा नहीं होता, जो क्षितिज यहां नहीं मिलते, उनको पूरा कर लेने की आकांक्षा है। लोभ, स्वर्ग में कह रहा है, घबड़ाओ मत, वहां तुम जहां खड़े हो वहीं जमीन आसमान को छुएगा। कल्पवृक्ष! आकांक्षा हुई नहीं कि पूरी हुई। तुमने चाहा नहीं कि पा लूं क्षितिज को और क्षितिज खुद चला आएगा। तुम्हें जाना न पड़ेगा।
ये जो आकांक्षाएं हैं, ये धार्मिक नहीं हैं--ये अधार्मिक आदमी की आकांक्षाएं हैं। संसार में आकांक्षा हार गई तो वह कहता है, कोई हर्ज नहीं, स्वर्ग में पूरी कर लेंगे; जो यहां नहीं हुआ उसे वहां पूरा कर लेंगे।
यह जन्नत मुबारिक रहे जाहिदों को
कि मैं आपका सामना चाहता हूं।
जो जानते हैं, वे कहते हैं "प्रभु! तुम्हारा मुकाबला चाहते हैं।"
यह जन्नत मुबारिक रहे जाहिदों को! यह तुम्हारे तथाकथित त्यागी, विरक्तों को मुबारिक! जिन्होंने यहां बेचारों ने छोड़ा है इस आकांक्षा में कि वहां पा लेंगे, उनको दे देना जन्नत। यहां स्त्रियां छोड़ दी हैं, बैठे हैं आसन लगाए, आशा कर रहे हैं अप्सराओं की। उर्वशी से कम में उनका काम न चलेगा। चौंक-चौंककर देखते हैं, मेनका अभी तक आई नहीं! सुना तो था कि आती है। जब ऋषि-मुनि पहुंच जाते हैं समाधि की अवस्था को, समाधि में भी आंख खोल-खोलकर देख लेते हैं, मेनका अभी तक आई नहीं। इंद्र का आसन नहीं डोला! लेकिन जो आंख खोल-खोलकर मेनका को देख रहा है, उसकी समाधि कहां लगी? उसकी समाधि कैसे लगेगी?
समाधि का अर्थ हैः लोभ व्यर्थ हो गया। ऐसे समाधान का नाम समाधि है। लोभ व्यर्थ हो गया--यहां का नहीं, वहां का नहीं, लोभ मात्र व्यर्थ हो गया। न अब यहां, न अब वहां--अब लोभ की कोई आकांक्षा न रही। जान लिया, पहचान लिया, लोभ का सार पकड़ लिया कि लोभ कभी तृप्त नहीं हो सकता, इसलिए अब लोभ छोड़

दिया। संसार का लोभ नहीं--लोभ को ही छोड़ दिया। क्योंकि जब तक लोभ है, लोभ नए संसार बनाए चले जाता है। लोभ संसार का सूत्र है।
तो लोग कहते हैं, "हम कोई संसारी थोड़े ही हैं! हमने तो संसार छोड़ दिया है। हम तो उस सुख की तलाश कर रहे हैं जो शाश्वत है।" लेकिन सुख की ही तलाश जारी है। ये लोग, जिनको तुम संन्यासी कहते हो, ऋषि-मुनि कहते हो, ये संसारी हैं; ये तुमसे भी गहन संसारी हैं। तुम तो छोटे-मोटे से राजी हो, छोटा-मोटा टीला सोने का काफी है; ये कहते हैं, सुमेरु पर्वत, कैलाश, हिमालय! इनका लोभ तुमसे बड़ा है। "नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि!" इनका लोभ इन्हें गिद्ध बना रहा है। ये बैठे व्यर्थ की आकांक्षा लगाए।
गिद्धों को देखा है! जहां लाश पड़ी है, वहीं मंडराते हैं। ऐसा ही लोभ भी गिद्ध की भांति व्यर्थ पर, असार पर, मुर्दे पर मंडराता है। और जीवन चूका जाता है।
यह जन्नत मुबारिक रहे जाहिदों को
कि मैं आपका सामना चाहता हूं।
जिसने समझा लोभ के सत्य को, वह लोभ से मुक्त हुआ। ऐसा नहीं कि वह चेष्टा करता है मुक्त होने की; क्योंकि चेष्टा तो तभी होती है जब नया लोभ पैदा हो। समझना! तुम तो चेष्टा कर ही नहीं सकते बिना लोभ के।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, "ध्यान तो करें, लेकिन लाभ क्या? कोई लाभ बताएं।" तो मैं उनसे कहता हूं, तुम महर्षि महेश योगी के पास जाओ। वे लाभ बताते हैं। वे कहते हैं, धन भी बढ़ेगा ध्यान करने से। तब तो अमरीका में इतना प्रभाव है। ध्यान में किसकी चिंता है! धन बढ़ाना है! धन भी बढ़ेगा ध्यान करने से! कभी सोचा नहीं था किसी ने कि ध्यान करने से धन बढ़ता है। लेकिन अगर लोगों को ध्यान में लगाना हो तो धन बढ़ाने का प्रलोभन देना जरूरी है। धन में ही लोग उत्सुक हैं, ध्यान में उत्सुक नहीं। उन्हें ध्यान का पता ही नहीं।
ध्यान का अर्थ हैः ऐसी मनोदशा जिसके पार कोई लोभ की आकांक्षा नहीं है।
अब तुम पूछते हो, "ध्यान से लाभ क्या?" कुछ भी लाभ नहीं है। कमल खिलते हैं--लाभ क्या? सूरज निकलता है--लाभ क्या? परमात्मा है--लाभ क्या? बुद्ध और महावीर सिद्धशिलाओं पर बैठे हैं--लाभ क्या?
तुम सोचते हो कि पच्चीस सौ साल में खूब धन इकट्ठा कर लिया होगा महावीर
ने सिद्ध शिला पर बैठे-बैठे, खूब दुकान चलाई होगी? लाभ क्या?
बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि यह पूरब के लोगों का मोक्ष मुझे घबड़ाता है--सीधा साफ गणित वाला आदमी है--मुझे घबड़ाता है। अनंत काल तक वहां बैठे- बैठे करेंगे क्या? एक दफा मुक्त हो गए, हो गए; फिर लौटने का तो उपाय भी नहीं है। संसार से बाहर जाने की व्यवस्था है, भीतर आने की व्यवस्था नहीं है। सोच-समझकर बाहर जाना--गए कि गए; फिर लाख सिर मारो, दरवाजा नहीं खुलता। अब तक जो भी मोक्ष गया, लौटकर नहीं आ पाया। इसीलिए जो समझदार हैं, वे कहते हैं, जल्दी क्या है? वे कहते हैं, पहले इसको तो भोग लें!
देख ले इस चश्मे-दहर को दिल भरकर "न.जीर"
फिर तेरा काहे को इस बाग में आना होगा।
खूब देख लो दिल भरकर! लौटकर आना... कोई आया नहीं। इसलिए लोग कहते हैं, थोड़ा टालो मोक्ष को, इतनी जल्दी कहां है!
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, अभी तो हम जवान हैं। कब तक रहोगे जवान? टालो! चलो जवानी के नाम पर टालो कि जब बूढ़े होंगे तब। बूढ़ा आदमी कहता है, अभी तो मैं जिंदा हूं। टालो! जब मर जाओगे--तब? कोई न कोई बहाना आदमी खोजे जाता है। लेकिन असली बहाना यह है कि तुम्हें वस्तुतः धर्म में कुछ लाभ नहीं दिखाई पड़ रहा। सुनते हो बातें महावीरों की, बुद्धों की--चमत्कृत हो जाते हो। सुनते हो गुणगान उस परम दशा का, तुम्हारे भीतर लोभ जगता है कि अरे, हमें यह भी मिल जाए! लेकिन जो तुम्हें मिल रहा है, मिला हुआ है, या मिलने की आशा में है, उसके साथ-साथ मिल जाए! यह भी तुम्हारा लोभ ही बनता है। और ध्यान? --तुलसी ने कहा हैः स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा! अपनी प्रसन्नता के लिए, आनंद के लिए! कोई पूछता है कि क्यों गाए जाते हो राम के

गीत! स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा--अपने सुख के लिए। कहीं कोई भविष्य में लाभ नहीं है। अभी, यहीं--मजा आ रहा है। मैं ही तुमसे बोल रहा हूं-- स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। बोल रहा हूं--न कोई लाभ है, न कोई लोभ है। बोल रहा हूं, ऐसे ही जैसे पक्षी कलरव कर रहे हैं वृक्षों में। काश, तुम भी ऐसे ही सुन सको जैसे मैं बोल रहा हूं! तो ध्यान हो गया।
ध्यान के लिए कुछ करने का थोड़े ही सवाल है। ध्यान तो एक समझ की दशा है,
एक प्रज्ञा की स्थिति है। जहां लोभ गिर गया वहां ध्यान। जहां तुमने लोभ की असारता संपूर्णता से जान ली और पहचान ली, कि यह असंभव आकांक्षा है, पूरी नहीं होगी। इसमें तुम्हारी कमजोरी का सवाल नहीं है। तुम कितने ही बलशाली होओ तो भी पूरी न होगी। नेपोलियन भी पूरी नहीं करता, सिकंदर भी पूरी नहीं करता, चंगेज और नादिर और तैमूर कोई पूरी नहीं करते। इसमें कमजोरी या ताकत का सवाल नहीं है। यह तो ऐसे ही है जैसे कोई रेत से तेल निचोड़ने की कोशिश कर रहा है। इसमें ताकत और कमजोरी का थोड़े ही सवाल है। रेत में तेल है ही नहीं, तो निचुड़ेगा कैसे?
लोभ से जो आनंद को निचोड़ने की कोशिश कर रहा है, बस उलझ गया। कोशिश जारी रहेगी, हाथ कभी कुछ भी न लगेगा।
"कदाचित सोने और चांदी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत हो जाएं, तो भी लोभी पुरुष को उनसे कुछ भी नहीं होता।"
तृप्ति नहीं होती, क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनंत है। लेकिन इस लोभ
की दौड़ में तुम कुछ गंवा रहे हो, मिलता तो कुछ भी नहीं। एक बात तय है कि मिलता कुछ भी नहीं। लेकिन गंवा तुम बहुत कुछ रहे हो। कमा तो कुछ भी नहीं पाते, गंवाते बहुत हो। अपने को गंवा रहे हो। धन के ठीकरे इकट्ठे करोगे, आत्मा को बेचते जाओगे टुकड़ा-टुकड़ा करके; क्योंकि बिना अपने को बेचे यह धन इकट्ठा न होगा। बिना अपने को बेचे तुम लोभ की दौड़ में न लग पाओगे। हर कदम, लोभ की दिशा में उठाया गया, आत्मघात है। यह जिस दिन जीवन का दीया बुझने लगेगा उस दिन पछताओगे, उस दिन रोओगे; लेकिन तब बहुत देर हो चुकी होगी। तूफाने-दर्दो-गम में न गुल हो सकी मगर
शम-ए-हयात सांस के झोंके से बुझ गई।
बड़े-बड़े तूफान और दुख और दर्द भी जिसे नहीं बुझा पाते, वह जिंदगी बस जरा से सांस के झोंके से बुझ जाती है।
तूफाने-दर्दो-गम में न गुल हो सकी मगर
शम-ए-हयात सांस के झोंके से बुझ गई।
पर जिस दिन वह जीवन की शमा, वह जीवन की ज्योति सांस के जरा-से झोंके में बुझने लगेगी, उस दिन पछताओगे, छाती पीटोगे, रोओगे। मेरे देखे मरते वक्त आदमी का जो रुदन है, मरते वक्त आदमी की जो पीड़ा है, वह मृत्यु के कारण नहीं है--वह व्यर्थ गए जीवन के कारण है। सारा जीवन असार गया, हाथ यह मौत आई अब। क्या-क्या चाहा था! कैसी-कैसी चाहत न की थी! कैसे-कैसे इंद्रधनुष फैलाए थे वासनाओं के! वह तो कुछ भी हाथ न आया। हाथ यह मौत आई है। जिसको कभी न चाहा था वह हाथ आई। जिसको कभी न मांगा था वह मिली। जिसकी कभी आरजू न की थी, मिन्नत न की थी, प्रार्थना न की थी, जिसके लिए परमात्मा के द्वार पर कभी दस्तक न दी थी, वह मिली। और जो-जो चाहा था वह तो मिला ही नहीं। उसको पाने की कोशिश में जो जीवन मिला था वह भी गंवा दिया।
इसलिए धार्मिक व्यक्ति कल का भरोसा नहीं करता। वह कल पर नहीं टालता।
कल पर टालना ही लोभ है। लोभ का अर्थ हैः कल मिलेगा। धार्मिक व्यक्ति कहता है, अभी जिएंगे, यहीं जिएंगे। कल होता कहां? भविष्य है कहां? भविष्य तुम्हारे मन का ही खेल है। जो है वह तो सदा वर्तमान है। जिस दिन तुम्हारे मन में कोई लोभ न होगा, उसी दिन तुम पाओगे, भविष्य भी खो गया। लोभ भविष्य है। भय अतीत है। भय के कारण तुम अतीत को पकड़े रहते हो। क्योंकि कुछ तो सहारा चाहिए, नहीं तो गिर पड़ेंगे अखंड खड्ड में। पकड़े रहते हो कि मैं कौन हूं--जाति, कुल, धर्म, परिवार, वंश, प्रतिष्ठा, पद, उपाधि, जो-जो किया उस सबका सार संग्रह--तुम पकड़े रहते हो। अतीत को पकड़े रहते हो, क्योंकि वही लगता है कि उसी को पकड़कर लटके रहें, अन्यथा शून्य है विराट। अगर कोई सहारा न रहा पीछे, शून्य में गिर जाएंगे।

अतीत को पकड़े हो--भय के कारण। और भविष्य को जिलाए रखते हो, जगाए रखते हो--लोभ के कारण। लोभ और भय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए लोभी कभी भय से मुक्त नहीं हो सकता और भयभीत कभी लोभ से मुक्त नहीं हो सकता।
तुमने देखा! जितना तुम्हारे पास धन इकट्ठा होता जाता है, उतना ही भय
भी बढ़ता जाता है। यह बड़ा अजीब मामला है। लोग धन इकट्ठा करते हैं ताकि भय न रहे जीवन में; लेकिन जैसे-जैसे धन इकट्ठा होता है, वैसे-वैसे भय बढ़ता है, घटता नहीं। अब और एक नया भय लगता है कि कोई धन न छीन ले। अब एक नया भय लगता है कि कहीं जो मिला है वह खो न जाए! मिला कुछ भी नहीं है; लेकिन खो न जाए, यह भय तुम्हारे जीवन को घेर लेता है। तब तुम और ज्यादा दौड़ में लगते हो कि और कमाओ, और इकट्ठा करो। इसलिए तो देने में डरते हो कि कहीं दे दिया तो फिर भय में खड़े हो जाओगे। इकट्ठा होता जाता है, कृपणता बढ़ती चली जाती है। जितना धनी, उतना ज्यादा कृपण हो जाता है। गरीब तो शायद कुछ दे भी दे, क्योंकि वह कहता है, दे भी दिया, तो क्या हर्ज है, वैसे ही कुछ नहीं है; होता तो बचाते, जब है ही नहीं तो बचाना क्या! अमीर तो कुछ भी नहीं दे पाता। एक-एक पैसे का हिसाब रखता है। अब डरता है कि एक भी पैसा खिसका तो कम हुआ। अब यह बड़े मजे की बात है, मिला कुछ भी नहीं है; लेकिन कम होने का डर पकड़ता है। कोई छीन न ले! धन की आकांक्षा भय से होती है--धन पाकर भय और दुगना हो जाता है।
तुमने भय के कदम देखे! लोभ के पीछे-पीछे ही चलते हैं। लेकिन धार्मिक व्यक्ति अभी जीता है।
मैं कल का भरोसा नहीं करता साकी
मुमकिन है कि जाम रहे मैं न रहूं।
मैं कल का भरोसा नहीं करता साकी
मुमकिन है कि जाम रहे मैं न रहूं।
आज काफी है। यह क्षण काफी है। इस क्षण में जो जीता है, वही ध्यान में है। जिसने पूछा, ध्यान का लाभ क्या, वह कल पर सरक गया। उसने पूछा, लाभ क्या? मिलेगा क्या? कृष्ण की पूरी गीता बस इतनी-सी ही बात कहती हैः
मैं कल का भरोसा नहीं करता साकी
मुमकिन है कि जाम रहे मैं न रहूं।
कृष्ण कहते हैं, फलाकांक्षा-रहित होकर तू कर्म में जुट जा--यही ध्यान है, यही धर्म है। फलाकांक्षा यानी लोभ। तू यह मत पूछ कि क्या मिलेगा। जैसे ही कोई व्यक्ति लोभ को हटाकर जीना शुरू कर देता है, उसके जीवन में ध्यान की वर्षा हो जाती है, उसका कण-कण ध्यान से भर जाता है। लोभ के बादल को हटाओ, ध्यान का आकाश उपलब्ध हो जाता है।
"जिस प्रकार जल में उत्पन्न हुआ कमल जल से लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार काम-भोग के वातावरण में उत्पन्न हुआ जो मनुष्य उससे लिप्त नहीं होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"
महावीर की ब्राह्मण की परिभाषाः
"जहा पोम्मं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलितं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं।।"
उसे कहते हैं हम ब्राह्मण, जो कामवासना में पैदा हुआ, कामवासना में ही जन्मा और बड़ा हुआ, कामवासना के ही जगत में जीता है--लेकिन कमल के फूल की भांति, अलिप्त, जगत उसे छू नहीं पाता।
इसे समझें।
हिंदू-शास्त्र भी कहते हैं कि जन्म से तो सभी शूद्र हैं। जन्म से तो सभी शूद्र हैं ही; क्योंकि जन्म ही कीचड़ में होता है, जन्म ही कामवासना में होता है। जन्म ही असंभव है कामवासना के बिना। तो जन्म से तो सभी कीचड़ हैं, शूद्र हैं। फिर इनमें से ब्राह्मण कोई बन सकता है, बनना चाहे। सभी बन सकते हैं, बनना चाहें। लेकिन ब्राह्मण कोई तभी बनता है, जब कमल की भांति कीचड़ से दूर होता जाता है--इतना दूर, इतना पार और इतना अलिप्त कि जल उसे छू भी नहीं पाता; ऐसा निर्दोष कि कुछ भी उसे दोषी नहीं कर पाता; ऐसा पुण्य का फूल कि पाप उसे छू भी नहीं पाता। पाप में ही खड़ा रहेगा, क्योंकि जाओगे कहां? संसार से भागोगे कहां? जहां जाओगे वहां भी संसार है। जहां भी जाना-आना हो सकता है वहां संसार है। इसलिए तो हम संसार को आवागमन कहते हैं--आना-जाना।

तो कहां जाओगे? कहां आओगे? जहां भी जाओगे, जहां भी आओगे, वहीं संसार है। ठहर जाओ! आना-जाना छोड़ो! जहां हो वहीं ठहर जाओ! भीतर उतरो! इतने भीतर उतर जाओ कि बाहर की धुन भी न पहुंचे! इतने भीतर उतर जाओ कि बाजार चलता रहे और चलता रहे और तुम्हें पता भी न चले। इतने भीतर उतर जाओ कि पत्नी पास हो, बच्चे पास हों, मकान हो, घर-गृहस्थी हो, सब हो--लेकिन तुम भीतर अकेले हो जाओ।
सबके बीच जो अकेला हो गया, वही संन्यासी है। भीड़ के बीच जो भीड़ का हिस्सा न रहा, वही संन्यासी है।
जल में कमलवत--महावीर कहते हैं--यही मेरी व्याख्या है ब्राह्मण की!
इसलिए ब्राह्मण कोई जाति से नहीं होता, न जन्म से होता है। जन्म और जाति से तो सभी शूद्र हैं। ब्राह्मण तो कोई उपलब्धि से होता है। इसलिए महावीर ने वर्ण-व्यवस्था नहीं मानी। महावीर ने कहा, यह कैसे हो सकता है कि कोई कहे, कि मैं ब्राह्मण हूं जन्म से! जन्म से तो कोई ब्राह्मण नहीं होता--जागरण से कोई ब्राह्मण होता है। होश से कोई ब्राह्मण होता है।
"जीव ही ब्रह्म है। देहासक्ति से मुक्त होकर मुनि की ब्रह्म के लिए जो चर्या है, वही ब्रह्मचर्य है।"
बड़ी प्यारी परिभाषा है! ब्राह्मण की जो चर्या है, वह ब्रह्मचर्य। और प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ब्रह्म है।
"जीव ही ब्रह्म है। देहासक्ति से मुक्त व्यक्ति की जो चर्या है, वही ब्रह्मचर्या है, वही ब्रह्मचर्य है।"
जैसे ही तुम शरीर के द्वारा नहीं जीते, शरीर का उपयोग करते हो, लेकिन शरीर के मालिक होकर जीते हो; शरीर सेवक हो जाता है, तुम स्वामी हो जाते--उसी क्षण तुम्हारे भीतर के ब्रह्म का आविष्कार हुआ; तुमने जाना, तुम कौन हो। और उस जानने के बाद जो आचरण है, वही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का इतना छोटा-सा अर्थ जो लोग ले लेते हैं--वीर्य-नियमन--काफी नहीं है। एक हिस्सा है, लेकिन पूरा नहीं है। पूरा अर्थ तो ब्रह्मचर्य शब्द में छिपा हुआ है-- ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। तुम्हारे भीतर जो ईश्वर छिपा है उससे जब तुम जीने लगोगे तो ब्रह्मचर्य। स्वभावतः वीर्य-नियमन अपने से आ जाएगा, उसे लाना भी न पड़ेगा। वह उसके साथ आया हुआ अनुषंग है।
अभी तो हम ऐसे जीते हैं जैसे शरीर हैं। शरीर में हैं, ऐसे भी नहीं-- शरीर ही हैं, ऐसे जीते हैं। अभी तो कोई तुम्हारा शरीर काट दे तो तुम समझोगे कि तुम कट गए। अभी तो कोई शरीर को मार डाले तो तुम समझोगे कि तुम मर गए। अभी तो शरीर से तुमने अपने पृथक "होने" को जरा भी नहीं जाना, रत्तीभर फासला नहीं कर पाए।
काट कर पर मुतमईन सैयाद बेपरवा न हो
रूह बुलबुल की इरादा रखती है परवाज का।
ऐसी घड़ी अभी तुम्हारे पास नहीं आई कि तुम मौत से कह सको--
काट कर पर मुतमईन सैयाद बेपरवा न हो
कि हे जल्लाद! पंख काटकर तू निश्चिंत मत बैठ!
रूह बुलबुल की इरादा रखती है परवाज का।
पंखों से क्या लेना-देना है, आत्मा उड़ने का इरादा रखती है आकाश में। पंखों को काटकर तू निश्चिंत मत हो जा। जिस दिन ऐसी घड़ी आती है कि तुम मौत से कह सकोगे कि काट डाल शरीर को, लेकिन इससे निश्चिंत होकर मत बैठना, क्योंकि मैं अनकटा पीछे हूं। शरीर से थोड़े ही चलता था--शरीर मेरे कारण चलता था। मैं चलता रहूंगा। शरीर से थोड़े ही उड़ता था--शरीर मेरे कारण उड़ता था। मैं उड़ता रहूंगा।
काट कर पर मुतमईन सैयाद बेपरवा न हो
रूह बुलबुल की इरादा रखती है परवाज का।
लेकिन जब तुम अपनी रूह को पहचान सको, आत्मा को अलग शरीर से, तब तुम मौत
से भी हंसकर दो बातें कर सकोगे।
"जीव ही ब्रह्म है।" जो अपने भीतर उतरेगा, पाएगा। लेकिन जिनको तुमने धर्म जाना है, वे तुम्हें भीतर तो उतरने की तरफ नहीं ले जाते, वे तुम्हें

बाहर के मंदिरों-मस्जिदों में भटकाते हैं। वे तुम्हारे हाथ में कुछ झूठे धर्म पकड़ा देते हैं। इन्हीं धर्मों के कारण दुनिया में इतना अधर्म है।
हम तो "ताबां" हुए हैं लामजहब
मजहला देख सब के मजहब का।
--यह सब उपद्रव और अज्ञान देखकर, मजहब के नाम पर जो चलता है, बहुत-से धार्मिक व्यक्ति अधार्मिक हो जाते हैं।
तुम्हें पहुंचाना है तुम्हारे भीतर; कहीं और मंदिर नहीं है। तुम्हें लगाना है तुम्हारी पूजा और अर्चना में; कहीं और देवता नहीं है। तुम्हें जगाना है वहां, जहां तुम्हारी चैतन्य की धारा उठती है--उसी गंगोत्री में। धीरे-धीरे उतरो भीतर। शरीर को देखो और पहचानो--मेरी खोल है, मेरे घर की दीवाल है। और भीतर उतरो--विचार को पकड़ो और पहचानो। विचार तुम नहीं हो, क्योंकि तुम उसे भी देख सकते हो। और थोड़े भीतर उतरो--वासना, भावना को पकड़ो, पहचानो। यह भी तुम नहीं हो, क्योंकि तुम पहचाननेवाले हो, देखनेवाले हो, द्रष्टा हो। ऐसे चलते चलो, चलते चलो--उस घड़ी तक, जब केवल द्रष्टा रह जाए, और देखने को कुछ भी न बचे, शुद्ध दर्शन हो!
जिसके पीछे तुम न जा सको--वही तुम हो। जिसके और पीछे तुम न जा सको--वही तुम हो। ऐसे पीछे उतरते-उतरते-उतरते साक्षी पकड़ में आता है। बस उसके पार फिर कोई नहीं जा सकता। साक्षी के साक्षी तुम नहीं हो सकते हो। आखिरी घड़ी आ गई। बुनियाद आ गई अस्तित्व की। भूमि आ गई, जिस पर सब खड़ा है, सारा महल खड़ा है। जिसने इस अस्तित्व की बुनियाद को पकड़ लिया, आत्मा को पकड़ लिया, वही ब्राह्मण है। और उसके जीवन की चर्या ब्रह्मचर्य है।
"विषयरूपी वृक्षों से प्रज्वलित कामाग्नि तीनों लोकरूपी अटवी को जला देती है, किंतु यौवनरूपी तृण पर संचरण करने में कुशल जिस महात्मा को वह नहीं जलाती या विचलित नहीं करती, वह धन्य है।"
"जो रात बीत रही है वह लौटकर नहीं आती। अधर्म करनेवाले की रात्रियां निष्फल चली जाती हैं।"
विषयरूपी वृक्षों से प्रज्वलित कामाग्नि तीनों लोकरूपी अटवी को जला रही है। तीनों लोक जल रहे हैं एक ही कामना में। नर्क तो जल ही रहा है। तुमने नर्क की कथाएं सुनी हैं--अग्नि की लपटें, और लोग जलाए जा रहे हैं। लेकिन तुमने जरा गौर से अपने आसपास देखा, यहां क्या हो रहा है! लपटें यहां भी हैं और लोग जल रहे हैं! लपटें जरा सूक्ष्म हैं--वासना की हैं, काम की हैं, दिखाई नहीं पड़तीं। शायद नर्क की लपटें ज्यादा स्थूल होंगी। लेकिन स्थूल लपटों के साथ तो कुछ उपाय भी किया जा सकता है, क्योंकि दिखाई पड़ती हैं।
मैंने सुना है, एक धनपति मरा। कंजूस था बहुत। तो मरते वक्त उसने अपनी पत्नी से कहा कि मेरे कपड़े पहनाने की लाश को कोई जरूरत नहीं है। सम्हालकर रखना, बच्चों के काम आ जाएंगे। पत्नी ने कहा, "क्या बात करते हो! नंगे जाने का सोचते हो?" धनपति ने कहा, "मुझे पता है, कहां जाना है। वहां काफी गर्मी है। तू फिक्र मत कर।" मर गया, लेकिन दूसरे ही दिन रात आकर दरवाजे पर उसने खटखट की। पत्नी घबड़ाई। उसने कहा कि सुन, मेरा कोट कमीज सब निकालकर दे। पत्नी ने कहा कि तुम तो कहते थे ऐसी जगह जाना है, जहां काफी गर्मी है। उसने कहा, "वहीं गया; लेकिन सभी धनी वहां गए हैं, उन्होंने सब एयरकंडीशन्ड कर डाला। मरा जा रहा हूं ठंड में, सिकुड़ा जा रहा हूं। कपड़े दे। शीत सर्दी के सब कपड़े दे दे।"
भूत लेने आया है कपड़े!
तो नर्क में तो संभव भी है कि एयरकंडीशनिंग हो सके; क्योंकि लपटें बाहर हैं। यहां इस पृथ्वी पर लपटें बहुत अदृश्य हैं। बाहर इतनी नहीं हैं जितनी भीतर हैं। रोएं-रोएं में हैं। तुम्हें कोई आग में फेंक नहीं रहा है, तुम आग में ही खड़े हो।
कामवासना जलाती है, इसे देखा नहीं! कितना जलाती है! किस बुरी तरह जलाती है! तृप्त होती ही नहीं। और तुम जो भी कामवासना की तृप्ति के लिए आयोजन करते हो, वह सब अग्नि में डाले गए घी की तरह सिद्ध होता है। और बढ़ती

है, और लपटें लेती है। एक स्त्री से तृप्त नहीं, दो स्त्री से तृप्त नहीं, तीन स्त्री से तृप्त नहीं--किससे कौन तृप्त है!
पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक मार्शेल ने लिखा है कि जीवन भर के अनुभव
के बाद मैं यह कहता हूं कि मुझे सारी स्त्रियां भी संसार की मिल जाएं, तो भी मैं तृप्त न हो सकूंगा।
तृप्त कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि तृप्ति के लिए हम जो करते हैं वह
घी सिद्ध होता है। अभ्यास और बढ़ता है। और जड़ें मजबूत होती हैं मूढ़ता की। "विषयरूपी वृक्षों से प्रज्वलित कामाग्नि तीनों लोकरूपी अटवी को जला रही है।"
नर्क तो जल ही रहा है; साफ-साफ लपटें हैं उसकी। पृथ्वी भी जल रही है; लपटें उतनी साफ नहीं हैं। स्वर्ग भी जल रहा है; लपटें और भी सूक्ष्म हैं स्वर्ग में। पृथ्वी पर तो लपटें पाप की हैं। स्वर्ग में लपटें पुण्य की हैं--और भी सूक्ष्म हैं। देवता भी जल रहे हैं। देवताओं की भी भाग-दौड़ मची है--वही वासना, वही उपद्रव, वही नाच-गान। और वहां भी घबड़ाहट है। वहां भी तृप्ति मालूम नहीं होती।
कथा है उर्वशी की। पृथ्वी पर विचरण करने आई थी, पुरुरवा के प्रेम में
पड़ गई--एक मृत्य के प्रेम में, एक पृथ्वीवासी के प्रेम में। देवताओं से तृप्ति न मिली। देवता नहीं तृप्त कर पाए। जो भी मिल जाए उससे तृप्ति नहीं होती। अप्सराएं तड़पती हैं पृथ्वी के पुरुषों के लिए। यह कथा है उर्वशी की। पृथ्वी के लोग तड़फ रहे हैं अप्सराओं के लिए। कुछ मामला ऐसा है कि जो जहां है वहां अतृप्त है। कहीं और, कहीं और होते तो तृप्ति हो जाती!
"किंतु यौवनरूपी तृण पर संचरण करने में कुशल जिस महात्मा को वह नहीं जलाती या विचलित नहीं करती, वह धन्य है... ।"
तीनों लोक जल रहे हैं। जो इस विराट दावानल में अलिप्त खड़ा है, अनजला खड़ा है, जिसे कोई लपट भीतर से नहीं पकड़ती, जिसके भीतर कामवासना की लपट नहीं उठती--वह धन्य है।
एक ही धन्यता को महावीर जानते हैं--और वह धन्यता है वासना की दौड़ से छूट जाना। क्योंकि वासना की दौड़ से छूटते ही तुम आत्मा में थिर हो जाते हो। वासना ऐसे है जैसे हवा के थपेड़े, और लौ को डगमागाते हैं तुम्हारी ज्योति की, तुम्हारे दीये को। और वासना से छूट जाना ऐसे है जैसे हवाएं बंद हो गईं और ज्योति निष्कंप हो गई। वासना यानी आत्मा का डगमगाना। आत्मा यानी वासना से मुक्त हो जाना। डगमगाहट गई, अकंप हुए! धन्य है वह व्यक्ति! "जो-जो रात बीत रही है, वह लौटकर नहीं आती। अधर्म करने वाले की रात्रियां निष्फल चली जाती हैं।"
बहादुरशाह जफर ने मरने के पहले कुछ वचन कहेः
न किसी की आंख का नूर हूं
न किसी के दिल का करार हूं
जो किसी के काम न आ सके
मैं वो एक मुश्ते-गुबार हूं।
--एक मुट्ठी भर धूल!
न किसी की आंख का नूर हूं!
--अब किसी के आंख की रोशनी नहीं हूं मैं।
न किसी के दिल का करार हूं!
--न किसी के प्रेम, लागत, चाहत का विषय हूं, विषयवस्तु हूं।
जो किसी के काम न आ सके!
--अब तो बस हालत ऐसी है कि एक मुट्ठी भर धूल हूं जो किसी के भी काम की नहीं है।
आदमी की देखी हालत! जानवर मर जाते हैं तो कुछ काम भी आ जाते हैं। हाथी
मर जाए तो हजारों में बिकता है। जिंदा हाथी की कीमत कम है, मरे की ज्यादा है। जिंदा को पाले कौन! न राजा-महाराजा रहे, न महंत-अधिपति रहे--हाथी को पाले कौन! मर जाता है तो भी कीमत है लेकिन, हड्डियां बिक जाती हैं। आदमी अकेला प्राणी है संसार में जिसका मरने पर कुछ भी, कुछ काम नहीं आता; सब जलाने-योग्य सिद्ध होता है; सब व्यर्थ सिद्ध होता है!

जो किसी के काम न आ सके
मैं वो एक मुश्ते-गुबार हूं।
दिन रात बीते चले जाते हैं...
बजुज गोरेगरीबां नक्शे-पा थे फिर नहीं आगे
यहीं तक हर मुसाफिर ने पता पाया है मंजिल का।
लोगों को देखो! बस उनके पैर उनके मरघट तक जाते हैं। और वहां सब खो जाता है।
बजुज गोरेगरीबां नक्शे-पा थे फिर नहीं आगे--बस मौत तक लोगों के पैरों
के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। यहीं तक हर मुसाफिर ने पता पाया है मंजिल का। पर मौत मंजिल है कि कब्र गंतव्य है? ... कि चले और गिरे कब्र में, तो जीवन का अर्थ क्या हुआ, सार्थकता क्या हुई? नहीं, कुछ और भी लोग हुए हैं, थोड़े-से धन्यभागी लोग, जिन्होंने मौत के आगे का भी पता पाया है। उन्हीं की हम यहां चर्चा कर रहे हैं--महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद, जरथुस्त्र, लाओत्सु। कुछ हैं थोड़े-से धन्यभागी, जिन्होंने जीवन इस तरह से साधा कि मौत से बचकर निकल गये।
उनकी साधना की कला क्या है?
उनकी कला का सूत्र महावीर कह रहे हैंः
"यौवनरूपी तृण पर संचरण करने में कुशल जिस महात्मा को वह नहीं जलाती
या विचलित नहीं करती, वह धन्यभागी है।"
जो जीवन में रहते-रहते जीवन की वासना के पार हो जाता है, उसे मौत के आगे रास्ता मिल जाता है। क्योंकि मौत सिर्फ वासना की है, तुम्हारी नहीं है।
अगर तुमने वासना को जीते-जी त्याग दिया, तो फिर तुम्हारी कोई मौत नहीं है। अन्यथा, जिसको तुम जिंदगी कहते हो वह बस नाममात्र को जिंदगी है--कहने को। जिंदगी जैसा क्या है वहां? कहां हैं अंगार? राख ही राख है।
मुझसे जो पूछिए तो बहरहाल शुक्र है
यूं भी गुजर गई मेरी यूं भी गुजर गई।
बस ऐसी ही गुजरी जाती है।
लोग कहते हैं, सब ठीक है। पर कभी गौर से देखा, जब लोग कहते हैं सब ठीक है; तब उनके चेहरे पर कैसी उदासी होती है! जब वे कहते हैं, सब ठीक है, तो जैसे कहते हैं, कुछ भी ठीक कहां! मगर अब कहने से भी क्या सार है! सब ठीक है! किसी से पूछो, कहो, क्या हालचाल हैं? --कहता है, सब ठीक है, सब मजे में
चल रही है!
मुझसे जो पूछिए तो बहरहाल शुक्र है।
यूं भी गुजर गई मेरी यूं भी गुजर गई।
बस किसी तरह ले-देकर गुजर जाती है। ऐसे-वैसे गुजर जाती है। इसको तुम जिंदगी कहते हो जो ऐसे गुजर जाती है?
अगर इसको जिंदगी कहते हो, तो किसी दिन रोओगे, तड़फोगे और कहोगेः
मैं वो एक मुश्तेगुबार हूं
जो किसी के काम न आ सके... !
गुजारो मत--जीयो! काटो मत--जीयो! गंवाओ मत--जीयो!
"जा जा वज्जई रयणी, ण सा पडिनियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ।।"
जो-जो रात बीत रही, लौटकर नहीं आएगी, नहीं आती है।
"अधर्म करने वाले की रात्रियां निष्फल चली जाती हैं।"
निष्फल मत जाने दो! ये दिवस-रात महंगे हैं। ये दिवस-रात बड़ी मुश्किल
से मिले हैं।
मनुष्य का जन्म दुर्लभ है। कोटि-कोटि योनियों के बाद मनुष्य हो पाता है। कितनी आकांक्षाओं, कितनी अभीप्साओं को लेकर तुम मनुष्य हुए हो! अब इसे ऐसे ही मत गुजर जाने देना! कितनी चेष्टाओं और कितने जन्मों के यात्रा-पथों के बाद, कितनी देहें, कितनी योनियों में भटकने के बाद, सौभाग्य का क्षण आया है कि तुम मनुष्य हुए हो? इसे ऐसे ही मत गंवा देना! ये दिन फिर लौटकर नहीं आते! ये रातें गईं तो गईं। इनमें एक-एक क्षण को इस ढंग से जीना कि क्षण तो

जाए, लेकिन अमृत की तुम्हें खबर दे जाए। क्षण तो जाएगा ही, लेकिन इस ढंग से निचोड़ लेना कि क्षण तो चला जाए, लेकिन सार तुम्हारे साथ रह जाए। क्षण तो जाए, लेकिन अमृत का द्वार खोलता जाए। यह जीवन तो जाएगा ही, लेकिन जाते-जाते तुम जीवन का ऐसा उपयोग कर लेना कि तुम इसके कंधों पर चढ़ जाओ और इसके पार देख लो। इसके पार जो है वही असली जीवन है।
मनुष्य संक्रमण है, एक सेतु है। पीछे अतीत है--जानवरों का, पशु- पक्षियों का, पत्थरों का, पहाड़ों का। आगे परमात्मा है। तुम बीच के सेतु हो। यह मनुष्य कुछ घर नहीं है, जहां बस जाना है--यह धर्मशाला है, जहां रात टिके, सुबह जाना है।
याद रखना, यात्रा अभी होने को है--हो नहीं गई! अभी कुछ घटने को है, घट नहीं गया।
तुम सिर्फ एक अवसर हो। अवसर को ही सत्य मत मान लेना। तुम सिर्फ एक संभावना हो, अनंत संभावना, जिसमें अगर ठीक से तैयारी चली, अगर तुम अपने को मंदिर बना पाए, तो किसी दिन, सत्य कहो, ब्रह्म कहो, या जो नाम तुम्हें पसंद हो, जीवन का वह भगवत रूप, भगवत्ता तुममें उतरेगी।
तो इस जीवन को तुम भोग ही मत समझना--यह जीवन योग भी है। भोग का अर्थ हैः गुजार दो; यह कर लो, वह कर लो; यह भोग लो, वह भोग लो। योग का अर्थ हैः गुजारो ही मत, सुधारो भी। योग का अर्थ है; सजाओ, कोई मेहमान आने को है! अतिथि आ रहा पास। ऐसा न हो कि वह आए और तुम्हें तैयार न पाए। तुम तैयार रहना, द्वार खोले! सिंहासन सजाकर रखना! धूप-दीप, अर्चा, फूल, वंदनवार! तुम्हारे क्षण अमृत की तैयारी में लगें! तुम्हारे दिवस और रात्रि ध्यान बन जाएं। धीरे- धीरे समाधि का संगीत तुम्हारे भीतर उठे, बजे! तो ही, तुम किसी दिन जान पाओगे--उसे, जो तुम हो! जान पाओगे उसे, जो जीवन का अर्थ है, प्रयोजन है! जान पाओगे उसे, जो जीवन का गंतव्य है। उसे जाने बिना जो जीते हैं, वे नाममात्र को जीते हैं। उसे जानकर जो जीते, वही जीते हैं। उसे बिना जाने जो जीते, वे तो सिर्फ मरते। उसे जानकर जो मरते भी हैं, तो भी अमृत को उपलब्ध होते हैं। आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
आठवां प्रवचन

सम्यक ज्ञान मुक्ति है

पहला प्रश्नः आपने कल कहा कि सत्य संज्ञा नहीं है, क्रिया है। क्या इसी भांति प्रेम, आनंद, ध्यान, समाधि जो भी स्वभावगत है, वह भी संज्ञा नहीं, वरन क्रिया है? और क्या क्रिया का समझ से कोई संबंध नहीं है? कृपा कर समझाएं।

क्रिया हैः जीवंतता। संज्ञा हैः लाश। संज्ञा का अर्थ हैः जो चीज हो चुकी। क्रिया का अर्थ हैः जो अभी हो रही, हो रही, हो रही। जैसे नदी बह रही है, नदी क्रिया है; तालाब नहीं बह रहा, तालाब संज्ञा है। बहाव जीवन है, ठहराव मृत्यु है।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, सभी क्रिया जैसा है। प्रेम भी कोई वस्तु नहीं है; प्रेम भी प्रक्रिया है। करो तो है, न करो तो गया। जो तुमसे कहता है, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, उसका प्रेम भी उन्हीं क्षणों में होता है जब वह करता है; जब नहीं करता तब प्रेम खो जाता है।
प्रेम को बनाये रखना हो तो क्रिया को जारी रखना पड़े। ध्यान भी तभी होता है जब तुम करते हो; जब तुम नहीं करते, खो जाता है। जो तुम करते हो वही होता है। श्वास भी तुम जब तक ले रहे हो, तभी तक है; जब न लोगे, तब कैसी श्वास?
जीवन का बड़ा गहनतम सत्य है कि यहां सभी प्रक्रियाएं हैं। विज्ञान ने
भी इस सत्य को उदघोषित किया है।
बड़े वैज्ञानिक एडिंगटन ने लिखा है कि "ठहराव" झूठा शब्द है, क्योंकि कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। सब हो रहा है। इसलिए ठहराव को प्रदर्शित करनेवाले सभी शब्द अज्ञान-सूचक हैं। हम कहते हैं, वृक्ष है। ऐसा कहना नहीं चाहिए। यह सत्य के अनुकूल नहीं है। यह अस्तित्व का सूचक नहीं है। कहना चाहिए, वृक्ष हो रहा है। जब हम कहते हैं वृक्ष है, तब ऐसा लगता है कि होना बंद हो चुका, कोई चीज है। जब हम कहते हैं वृक्ष है, जितनी देर हमने कहने में लगाई कि वृक्ष है, उतनी देर में वृक्ष कुछ और हो चुका। कुछ पुराने पत्ते गिर गये। कुछ नई कोंपलें सरककर बाहर आ गयीं। कोई कली फूल बन गई। कोई फूल बिखर गया। वृक्ष उतनी देर में बूढ़ा हो रहा है। हम कहते हैं, मकान है, लेकिन मकान भी जराजीर्ण हो रहा है; आज है कल नहीं हो जायेगा, अन्यथा महलों के खंडहर कैसे होते! हम कहते हैं, यह आदमी जवान है; अगर हम गौर से देखें तो कहना पड़ेगा, यह आदमी जवान हो रहा है या यह आदमी बूढ़ा हो रहा है। "है" की कोई अवस्था नहीं है।
यूनान के बहुत बड़े मनीषी हैराक्लतु ने कहा है, तुम एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते। दुबारा उतरने को वही नदी पाओगे कहां? पानी बहा जा रहा है।
फिर हैराक्लतु के एक शिष्य ने कहा कि अगर हैराक्लतु सही है तो एक ही नदी में एक बार भी कैसे उतरा जा सकता है? जब तुम्हारे पैर ने नदी की ऊपर की सतह छुई, तब नदी और थी; जरा पैर नीचे गया, तब नदी और हो गई; और तलहटी तक पहुंचा, तब तक नदी और हो गई। गंगा बही जाती है। बहाव में गंगा है। इसलिए सब हो रहा है।
तुम हो, ऐसा नहीं--तुम हो रहे हो।
जीवन एक घटना है, वस्तु नहीं। और जिसने जीवन का यह घटनामय रूप देखा, उसके भीतर जीवन बड़ी प्रज्वलता से जलेगा। तब तुम यह नहीं कहोगे कि प्रेम कोई स्थायी निधि है, कि रखी है हृदय में! प्रेम भी श्वास जैसा है; लो तो है, न लो तो नहीं है।
तुम जो करते हो, उस कृत्य में ही चीजें होती हैं। तुम जो हो उससे तुम्हारी कोई स्थिति का पता नहीं चलता, सिर्फ तुम्हारी क्रिया का पता चलता है। तुम कहते हो, यह आदमी साधु है। इसका केवल इतना ही अर्थ हुआ, यह आदमी साधु होने में लगा है। यह आदमी साधुता को सम्हाल रहा है। तुम कहते हो,

यह आदमी ध्यानी है। इसका इतना ही अर्थ होता है कि यह ध्यान की श्वासें ले रहा है।
यहां सब चीज चल रही है, कोई चीज ठहरी नहीं है। सब रूपांतरित हो रहा है, प्रतिपल रूपांतरित हो रहा है। प्रतिपल नया घट रहा है, पुराना जा रहा है। इसलिए तो कहते हैं, पुराने से मोह मत रखो; क्योंकि तुम्हारा मोह तुम्हें अटकायेगा। और जीवन और तुम्हारा छंद टूट जायेगा। इसलिए तो कहते हैं, भविष्य की चाह मत करो; क्योंकि भविष्य अभी नहीं है। अतीत न हो चुका, भविष्य अभी नहीं है। जो न हो चुका उसे पकड़ोगे तो मुश्किल में पड़ोगे, अड़चन पैदा होगी; जो अभी नहीं है उसे तो पकड़ोगे कैसे? सिर्फ कल्पना करोगे। जो है, उसे देखो। और जो है, वह प्रतिपल बहा जा रहा है। इस बहती गंगा का साक्षात्कार करो।
बुद्ध के ऊपर कोई एक व्यक्ति आया और थूक गया। नाराज था बहुत। बड़े क्रोध में था। बुद्ध जैसे व्यक्तियों का होना भी कुछ लोगों को बड़े क्रोध से भर देता है। क्योंकि बुद्ध जैसे व्यक्तियों के होने से कुछ लोगों के होने की असंभावना पैदा हो जाती है। बुद्ध की मौजूदगी अहंकार को तोड़ती है। बुद्ध की मौजूदगी कहती है कि तुम भी ऐसे हो सकते थे, न हो पाये। बुद्ध की मौजूदगी तुम्हें तुम्हारे सत्य से परिचित कराती है। बुद्ध का फूल तुम्हें तुम्हारे कांटे की तरफ इशारा करवाता है। नाराजगी पैदा होती है। ... थूका बुद्ध के ऊपर। बुद्ध ने पोंछ लिया अपनी चादर से। दूसरे दिन वह आदमी क्षमा मांगने आया। रात भर सो न सका। बुद्ध ने कहा, "नहीं, क्षमा की कोई बात नहीं; क्योंकि जो थूक गया था, वह अब है ही कहां! जिस पर थूक गया था, वह भी अब नहीं है। न मैं वही हूं, न तुम वही हो। छोड़ो भी! जाने भी दो! उन बातों में पड़ने की जरूरत कहां है? एक तो तुमने थूककर गलती की, फिर रातभर व्यर्थ की चिंता की। अब पश्चात्ताप कर रहे हो। अब छोड़ो! मेरी तरफ देखो। मैं वह नहीं हूं, जिस पर तुम थूक गये थे। तुम भी वह नहीं हो।
आनंद, बुद्ध का शिष्य, पास बैठा था। उसने कहा कि ठहरें, यह बात दर्शनशास्त्र की नहीं है। यह आदमी थूक गया था और वही आदमी है। बुद्ध ने कहा, "तुम थोड़ा देखो आनंद! कल यह थूक गया था, आज यह क्षमा मांगने आया है--वही आदमी हो कैसे सकता है? जो थूक गया था और जो क्षमा मांगने आया है, इसमें तुम्हें भेद नहीं दिखायी पड़ता? तुम चेहरे से धोखे में आ रहे हो। जरा भीतर देखो। यह आदमी वही नहीं है, नहीं तो थूकता। यह तो क्षमा मांगता है। यह कोई और है। यह किसी नये का आविर्भाव हुआ है। तुम इस नये के दर्शन करो।"
लेकिन आनंद मानने को राजी नहीं है, क्योंकि आनंद तो कल को ही पकड़े बैठा है। जो तुम्हें कल गाली दे गया था, वह आज जब तुम्हें दुबारा मिले तो तुम कल को पकड़कर मत बैठना; अन्यथा तुम जो आज आया है, उसे न देख पाओगे। हो सकता है, क्षमा मांगने आया हो। कल जो मित्र था, आज शत्रु हो सकता है। जो आज शत्रु है, कल मित्र हो सकता है।
ध्यानी अपने को सतत खाली रखता है, निर्मल रखता है, आंख खुली रखता है। बादल नहीं इकट्ठे करता। तथ्य को देखता है, जैसा अभी है। न तो कल से तौलता है, न आनेवाले कल से तौलता है। जैसा अभी है, उस तथ्य को देखता है। लेकिन इस तथ्य को देखने के लिए तुम्हें भी सत्य होना पड़े। इसलिए महावीर ने सत्य को समस्त धर्म का सार कहा। तप और संयम, और शेष सब गुण उसमें समाविष्ट हैं। सत्य का अर्थ हुआः भीतर तुम जो हो, वही रहो। तो बाहर भी तुम उसी को देख पाओगे, जो है। हम बाहर वही देखते रहते हैं, जो नहीं हैं। अतीत बड़ा बोझिल है। भविष्य भी बड़ा बोझिल है। और इन दोनों की कशमकश में, इन दो चक्कियों के पाट के बीच वर्तमान का छोटा-सा क्षण पिस जाता है। तुम या तो कल्पना करते हो, या याददाश्तों में खोये रहते हो। तुम देखते ही नहीं, जो तुम्हारे पास से गुजर रहा है।
जीवन को तथ्य में देखो। लेकिन उस देखने के लिए तुम्हें सत्यमय होना पड़ेगा। जो सत्य है, वह सत्य को देखेगा। और तब तुम्हें संज्ञाएं न दिखायी पड़ेंगी, क्रियाएं दिखायी पड़ेंगी।
आत्मा कोई वस्तु थोड़े ही है कि तुम उसे मुट्ठी में बांध ले सकते हो-- आत्मा तो तुम्हारे भीतर चैतन्य की सतत प्रक्रिया है। वह जो चैतन्य का

आविर्भाव हो रहा है पल-पल, वह जो साक्षी जन्म रहा है शून्य से निरंतर--वही है आत्मा।
मनस्विद कहते हैं कि आदमी जब पैदा होता है तो शून्य की तरह पैदा होता है। बच्चा पैदा हुआ, शून्य की तरह पैदा होता है। अभी उसे कुछ भी पता नहीं है। वह है, ऐसा भी पता नहीं है। इसे होने के लिए भी थोड़ी देर लगेगी। लेकिन पैदा हुआ है, तो शून्य की तरह--यह उसकी पहली जीवन-घटना है। लेकिन जैसे ही बच्चा पैदा हुआ, मिटने का भय समाने लगता है। जब हुए, तो मिटने का भय भी आता है। भूख लगती है, प्यास लगती है--मिटने का भय पकड़ने लगता है। तो पहली जो तुम्हारे भीतर गहनतम स्थिति है, वह तो शून्य की है। उसे महावीर आत्मा कहते हैं। बुद्ध उसे अनात्मा कहते हैं। दोनों कहे जा सकते हैं--आत्मा, क्योंकि वह तुम्हारा स्वरूप है--अनात्मा, क्योंकि वहां "मैं" जैसा कोई भाव नहीं, शुद्ध स्वरूप है। "मैं" भी नहीं है वहां। लेकिन जैसे ही बच्चा पैदा हुआ कि डर पैदा हुआ कि अब मैं हूं, तो कहीं मिट न जाऊं। जहां "हूं" आया, वहां न होने का भय भी आया। जहां प्रकाश आया, पीछे-पीछे अंधेरा भी आया। तो एक भय की पर्त खड़ी होती है। शून्य है भीतर, उसके आसपास भय की पर्त है। अमृत है भीतर, उसके आसपास मृत्यु की पर्त है।
फिर समाज बच्चे को ढालना शुरू करता है। बच्चे को वैसा ही नहीं छोड़ देता, जैसा वह आया है। संस्कार देने हैं। शिक्षा देनी है। सभ्यता देनी है। बहुत कुछ काटना है, बहुत कुछ बनाना है। बहुत कुछ नया उगाना है, बहुत कुछ हटाना है। समाज कांट-छांट शुरू करता है। छैनी उठा लेता है। तो बच्चे के भीतर एक तीसरी पर्त पैदा होती है--नीति की, समाज की, संस्कार की, संस्कृति की। लेकिन स्वभावतः यह जो संस्कृति, समाज की पर्त है, यह उसके स्वभाव के प्रतिकूल पड़ती है। नहीं तो इसकी जरूरत ही न होती। इसकी जरूरत ही इसलिए होती है कि जैसा बच्चा स्वभाव के अनुसार है, वैसा समाज को अंगीकार नहीं है। बच्चा बेवक्त हंसने लगे, उसके स्वभाव के अनुकूल है कि उसे हंसी आ रही है, लेकिन समाज नियमन करेगा कि सब स्थान सब समय हंसने के योग्य नहीं हैं। कोई मर गया हो और तुम हंसने लगो... ।
मेरे एक शिक्षक मर गये थे। बड़े सीधे-साधे शिक्षक थे। रहने-सहने का ढंग
भी उनका बड़ा सीधा-साधा था। एक बड़ी पगड़ी बांधते थे। अकेले ही थे उस पूरे गांव में, जो उतना बड़ा पग्गड़ बांधते थे। चलते भी ऐसे ढीले-ढाले थे। संस्कृत के शिक्षक थे। तो उनको लोग पोंगा-पंडित ही समझते थे। स्कूल में उनका नाम बच्चों ने "भोलेनाथ" रख लिया था। जैसे ही वे आते, बच्चे कहने लगतेः "जय भोले बाबा!" उनकी कमीज पर पीछे लिख देतेः "जय भोले बाबा!" बोर्ड पर लिख देतेः भोलानाथ। वे नाराज भी होते थे, लेकिन उनकी नाराजगी भी बड़ी प्रीतिकर थी। वे बड़ी नाच-कूद भी मचाते थे, बड़े गुस्से में भी आ जाते थे। मरने-मारने की जैसी हालत होती, लेकिन मारते-करते किसी को न थे। सीधे-साधे आदमी थे। शोरगुल मचाकर चुप हो जाते थे।
वे मरे तो मैं अपने पिता के साथ उनके घर गया। उनकी लाश पड़ी थी। और उनकी पत्नी आयी और उनकी छाती पर गिर पड़ी और कहा, "हाय, मेरे भोलेनाथ!" भोलेनाथ कहकर हम उन्हें चिढ़ाते थे। यह तो किसी और को पता न था, मुझको ही पता था। वहां तो सब बड़े-बूढ़े थे। तो वे तो चुप रहे, लेकिन मुझे बड़ी जोर की हंसी आई कि यह तो हद्द मजाक हो गयी! जिंदगी में भी "भोलेनाथ", मरकर अब कोई और कहने को नहीं तो खुद पत्नी कह रही है, "हाय मेरे, भोलेनाथ।" जितना मैंने रोकने की कोशिश की, उतनी मुश्किल हो गयी। आखिर हंसी निकल ही पड़ी। पिता नाराज हुए। कहा, दुबारा अब कभी ऐसी जगह न ले जायेंगे। और शिष्टाचार सीखो। यह कोई ढंग हुआ? वहां कोई मरा पड़ा है, लोग रो रहे हैं--और तुम हंस रहे हो!
मैंने उनसे कहा, मेरी भी तो सुनो। वहां किसी को पता ही नहीं था, जो राज मुझे पता है। जिस वजह से मुझे हंसी आयी--वह हंसी यह थी कि जिंदगीभर इस आदमी को हम भोलानाथ कहकर चिढ़ाते रहे, मरकर भी मजाक तो देखो! कोई और नहीं तो खुद पत्नी कह रही है, "हाय मेरे भोलेनाथ!" यह आदमी, इसकी आत्मा वहां भी उछलने- कूदने लगी होगी, नाराज हो गई होगी कि हद्द हो गई! आखिरी विदा के क्षण में भी!

लेकिन तब से उन्होंने मुझे ले जाना बंद कर दिया। कहीं कोई मर जाये, कुछ हो तो वे मुझे न ले जाते।
संस्कार देना जरूरी है। परिवार की अपनी अड़चन है। समाज की अपनी असुविधा है। बच्चे को वैसे ही नहीं छोड़ा जा सकता, कुछ न कुछ काट-छांट करनी पड़ेगी। वह जो काट-छांट है, उसमें बच्चे के स्वभाव के प्रतिकूल उस पर कुछ थोपा जाता है। जहां रोना चाहता है, रो नहीं सकता है। जहां हंसना चाहता है, हंस नहीं सकता। जहां क्रोध करना चाहता है, क्रोध नहीं कर सकता। जहां प्रेम नहीं करना है, वहां प्रेम दिखलाना पड़ता है। जिनके पैर नहीं छूने, उनके पैर छूने पड़ते हैं। जो नहीं खाना है, वह खाना पड़ता है। जो खाना है, वह खाने को मिलता नहीं है। तो तीसरी पर्त खड़ी होती है--संस्कार की, समाज की, नियंत्रण की। कारागृह बनता है।
फिर जैसे ही बच्चा बड़ा होता है, धीरे-धीरे जैसे-जैसे उसके पास ताकत आती है, वह पीछे के दरवाजों से अपने स्वभाव की पूर्ति के रास्ते खोजता है। कमजोर है बच्चा, छोटा है, तब तक तो स्वीकार कर लेता है; लेकिन जैसे-जैसे समझ आने लगती है, ताकत आने लगती है, वह कोई रास्ते निकालने लगता है, छिप-छिपकर करने लगता है काम, जो उसे करने हैं। धोखा पैदा होता है। तो चौथी पर्त पैदा होती है जो समझौते की पर्त है। वह समाज जो मानता है, चाहता है, वैसा दिखाता है; और जो उसे करना है, वैसा करता है। तो दोहरा व्यक्तित्व बनता है। यह चौथी पर्त है।

फिर पांचवीं एक पर्त है, जो सबसे ऊपर-ऊपर है--लोकाचार की, शिष्टाचार की। किसी को तुम मिलते हो तो कहते हो, "कहिए, कैसे हैं? बड़ी खुशी हुई मिलकर। बड़े दिनों बाद दर्शन हुए। बड़े दिन से आंखें तरसती थीं।"
ये सब बातें हैं। यह औपचारिक पर्त है। इससे थोड़ा संबंधों में सुगमता बनी रहती है। जयराम जी, हैलो--इससे थोड़ा दो व्यक्तियों के बीच में स्निग्धता बनी रहती है--लुब्रिकेशन। नहीं तो कोई मिला और सीधे खड़े हो गये। वह भी खड़ा है, तुम भी खड़े हो--कहां से चलें, क्या कहें, क्या न कहें! तो अड़चन खड़ी होगी, तो कहा जयराम जी! बातचीत शुरू हुई। "मौसम कैसा है?" "अच्छा है।" "पति-पत्नी, बच्चे, घर, सब कुशल हैं?" सिलसिला चल पड़ा। अब आगे बात चल सकेगी।
कहीं से शुरू तो करना होगा।
तो पांचवीं पर्त है उपचार की। ये तुम्हारी पर्तें हैं। पहली जो घटना
थी शून्य की, वह तुम्हारा सत्य है। अब इन चार पर्तों के नीचे दबा है सत्य। इन पर्तों को धीरे-धीरे छांटना होगा। इन पर्तों को धीरे-धीरे हटाना होगा। जैसे कि नदी पर पत्ते छा जाते हैं, सैवाल फैल जाता है, तो हम हटाकर देखते हैं, नीचे जलधार बह रही है--इन चार पर्तों के नीचे तुम्हारा स्वभाव बह रहा है, तुम्हारी गंगा बह रही है। इनको हटाने का नाम ही साधना है। ये चारों पर्तें जड़ हैं। ये चारों पर्तें संज्ञा की हैं। और तुम्हारा स्वभाव क्रिया का है। इन चारों पर्तों के साथ समाज राजी है, तुम्हारे स्वभाव से राजी नहीं है; क्योंकि ये चारों पर्तें तुम्हें नियंत्रण में ला देती हैं। तुम्हारा स्वभाव तो बड़ी विस्फोटक घटना है।
इसलिए तो महावीर जब जिंदा होते हैं तो स्वीकार नहीं होते। बड़े विस्फोटक आदमी हैं। अपने रंग में जीते हैं। कोई समझौता नहीं करते। अपने स्वभाव में जीते हैं, चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े। अगर नग्न होने में मजा आया तो नग्न जीते हैं। चाहे दुनिया कुछ भी कहे। भला कहे, बुरा कहे--कोई चिंता नहीं लेते।
तो महावीर तो एक बगावती हैं, एक क्रांतिकारी हैं। धर्म बगावत है, क्रांति है। हां, जब महावीर मर जाते हैं तो उनके पीछे जो इकट्ठे होते हैं, वे कोई बगावती नहीं हैं। या हो सकता है, पहली जो संख्या, पहले लोग जो महावीर के पास आये थे, वे बगावती रहे हों; लेकिन उनके बेटे तो बगावती नहीं होंगे। उनके बेटे तो पैदाइश से जैन होंगे। जिन्होंने महावीर को चुना था अपनी स्वेच्छा से, उन्होंने तो बड़ी हिम्मत की थी, बड़ा साहस किया था। क्योंकि महावीर बदनाम थे। गांव-गांव से खदेड़े जाते थे। पत्थर मारे गये।

कान में खीलें ठोंक दिये किसी ने। कहीं स्वीकार न थे। जिन्होंने उन्हें स्वीकार किया था, वे तो बड़े हिम्मतवर लोग रहे होंगे, बड़े साहसी।
तो शिष्यों का जो पहला समूह होता है, वह तो हिम्मतवर होता है। लेकिन
जो दूसरी पीढ़ी आती है, वह तो फिर वैसी ही होती है। इसलिए तो सभी धर्म खो जाते हैं। जब सदगुरु जीवित होता है तो धर्म भी जीवित होता है। जब सदगुरु विदा हो जाता है तो धीरे-धीरे सदधर्म की ध्वनि भी, प्रतिध्वनि बनती जाती है--दूर, दूर, दूर--फिर खो जाती है। फिर महावीर पूज्य हो जाते हैं। फिर कोई अड़चन नहीं रह जाती है। फिर तुम उनकी मूर्ति बनाकर पूजो। फिर तुम्हें जो करना हो महावीर के साथ, बेशक करो।
दिगंबर हैं, नग्न मूर्ति की पूजा करते हैं। उनकी मौज! श्वेतांबर हैं, नग्न मूर्ति की पूजा नहीं करते। उनकी मौज! दिगंबर आंख-बंद महावीर की पूजा करते हैं--उनकी मौज। अब महावीर कुछ कह नहीं सकते कि जरा ठहरो, मुझे आंख खोलनी है। वे फौरन रोक देंगे कि बंद करो बकवास, आंख बंद रखो! नियम से चलो! दिगंबर बंद आंख की पूजा करते हैं; श्वेतांबर खुली आंख की पूजा करते हैं। कुछ मंदिर हैं, जो दोनों के हैं। तो आधा दिन दिगंबर पूजा करते हैं, आधा दिन श्वेतांबर पूजा करते हैं। अब बड़ी मुश्किल है, पत्थर की मूर्तियां हैं। वैसा कुछ आसान भी नहीं है कि आंख खोल दो, लगा दो। तो झूठी आंख चिपका देते हैं। जब सुबह दिगंबर पूजा करेंगे, तो वे खाली मूर्ति की पूजा कर जाते हैं। जब श्वेतांबरों की घड़ी आती है बारह बजे के बाद, तो वे आकर नकली आंख, खुली आंख चिपका देते हैं; कपड़े पहना देते हैं। पूजा शुरू हो जाती है। महावीर न तो कह सकते कि ये कपड़े मुझे पसंद नहीं, न कह सकते कि मुझे नग्न रहना है, न कह सकते हैं कि मुझे ठंडी लग रही है, अभी नग्न मत करो, कि अभी बहुत गर्मी है, कुछ कह नहीं सकते। अब तुम्हारे हाथ के खिलौने हैं। तुम्हारे महावीर, तुम्हारे बुद्ध, तुम्हारे कृष्ण, तुम्हारे हाथ के खिलौने हैं। असली महावीर, असली कृष्ण और बुद्ध जलते हुए अंगारे थे। उनको हाथ में रखने के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए थी। जो दग्ध होने को राजी थे वे उनके पास आये थे। कमजोर तो उनसे दूर भागे थे। कमजोर तो उनके दुश्मन थे। लेकिन पीछे... । मेरे पास संन्यासी आते हैं। कोई पिता आता है, कोई मां आती है। वह कहते हैं, हमारे बेटे को भी संन्यास दे दें। उनका भाव मैं समझता हूं। उन्हें जो सुख मिला है, उन्हें जो शांति मिली है, वे चाहते हैं उनके बेटे को भी मिल जाये। लेकिन उन्होंने तो मुझे चुना है, बेटे को वे ले आये हैं। बेटे ने मुझे नहीं चुना है। बेटे ने स्वेच्छा से मुझे नहीं चुना है, बाप के साथ चला आया है। बाप कहता है, संन्यास तेरा भी करवाना है, तो वह कहता है, ठीक है। लेकिन यह संन्यासी और ढंग का संन्यासी होगा। यह तो मजबूरी का संन्यासी होगा।
ऐसी स्त्रियां मेरे पास आती हैं, वे कहती हैं, "गर्भ में बच्चा है, उसे संन्यास दे दें।" उनका भाव मैं समझता हूं। उनका प्रेम मैं समझता हूं। मगर उनके भाव और प्रेम से थोड़े ही संसार चलता है। उनकी भाव की बात बड़ी शुद्ध है। उनका भाव यह है कि उनका बच्चा पैदा होते से ही संन्यासी हो। ठीक है, शुभ है। लेकिन बेटे से तो पूछो! वह जो अभी पैदा ही नहीं हुआ है, उसे जुआरी बनना है कि शराबी बनना है, कि संन्यासी बनना है, कि हिंदू बनना है कि मुसलमान बनना है--उससे तो पूछो! लेकिन उससे अभी पूछने का कोई उपाय नहीं है। तो जैसे जैन घर में पैदा होने से कोई जैन हो जाता है, मेरे संन्यासी के
घर में पैदा होने से कोई संन्यासी हो जायेगा। लेकिन दूसरी पीढ़ी मुर्दा होगी। शायद दूसरी पीढ़ी में भी थोड़ा घिसटता-लंगड़ता हुआ धर्म रह जाये, क्योंकि उसने पहली पीढ़ी के दर्शन किये होंगे; कम से कम पहली पीढ़ी के पास रही होगी; उस हवा में पली होगी। लेकिन तीसरी पीढ़ी? वह तो और दूर हो जायेगी। चौथी पीढ़ी और... ।
फिर पच्चीस सौ साल हो गये महावीर को हुए, अब तो सब मुर्दे हैं। अब तो जैन के नाम से जो है वह मुर्दा है। वह उतना ही मुर्दा है जैसे मुहम्मद का मुसलमान मुर्दा है और ईसा का ईसाई मुर्दा है। यह स्वाभाविक है। इसे टाला नहीं जा सकता। जैसे व्यक्ति पैदा होते हैं, जवान होते हैं, मर जाते हैं-- ऐसे ही धर्म पैदा होते हैं, जवान होते हैं, बूढ़े होते हैं और मर जाते हैं।

इस संसार में जो भी चीज जन्मती है, वह मरती भी है। वह जो परमधर्म है, जो कभी पैदा नहीं होता, कभी नहीं मरता, उसका तो कोई नाम नहीं है--न हिंदू, न जैन, न मुसलमान, न ईसाई। उसकी हम बात नहीं कर रहे। लेकिन जैन, हिंदू, मुसलमान, ईसाई जिस धर्म का नाम है, यह कभी पैदा हुआ, कभी मरेगा।
ये जो चार पर्तें हैं तुम्हारे ऊपर, ये सब संज्ञा की तरह हैं। तुमने जिसे जैन धर्म कहा है, वह संज्ञा है। मैं जिसे जैन धर्म कह रहा हूं, वह क्रिया है। तुम जिसे जैन धर्म कह रहे हो, वह तुम्हारी पैदाइश, तुम्हारे जन्म, तुम्हारे संयोग की घटना है। मैं जिसे जैन धर्म कह रहा हूं, वह तुम्हारा आविष्कार है, तुम्हारी खोज है। फिर-फिर तुम्हें खोजना होगा। मेरा जो जैन धर्म है, वह हिंदू धर्म के विपरीत नहीं है। मेरा जो जैन धर्म है, वह इस्लाम के विपरीत नहीं है। मेरा जो जैन धर्म है, वह सभी धर्मों का सार है। वहां बाइबिल और कुरान और गीता और धम्मपद और जिन-सूत्र, सब एक हो जाते हैं। तुम्हारा जो जैन धर्म है, वह राजनीति है। वह हिंदू के खिलाफ है, वह मुसलमान के खिलाफ है। तुम्हारा जो जैन धर्म है, वह एक संप्रदाय है, धर्म नहीं। वह एक जड़, मरी हुई वस्तु है।
निश्चित ही, जैसे सत्य एक जीवंत आग है, लपटें जल रही हैं--ऐसे ही प्रेम भी, आनंद भी, ध्यान भी, समाधि भी, जो भी जीवंत है, वह लपट की तरह बहता हुआ है, गंगा की तरह प्रवाहमान है। जो भी मर गया, वह राख की तरह है। फिर उसमें कोई गति नहीं।
तुम मुर्दा से जरा सावधान रहना! और मुर्दे तलों को बहुत मत पकड़ना, अन्यथा तुम उन्हीं के नीचे दबोगे और मर जाओगे। कब्रों में तो लोग बहुत बाद में प्रवेश होते हैं, उनके बहुत पहले मर जाते हैं। मरने के बहुत पहले मर जाते हैं, क्योंकि मुर्दे से साथ जोड़ लेते हैं। बहुत सजग होना; क्योंकि मुर्दे का बड़ा आकर्षण है; क्योंकि मुर्दा प्राचीन है, उसकी परंपरा है। अगर मैं कुछ कहता हूं तो नयी बात होगी। मुझ पर भरोसा करने में खतरा भी
हो सकता है; यह आदमी कुछ जाना-माना तो नहीं है। महावीर की बात में भरोसा करना आसान होता है; पच्चीस सौ साल से जानी-मानी बात है। अगर गलत होता तो पच्चीस सौ साल तक हजारों-लाखों लोग इसे मानते क्यों? जब इतने लोग मानते हैं, तो ठीक ही मानते होंगे। फिर शास्त्र गवाह होंगे कि ठीक है; परंपरा गवाह होगी कि ठीक है; लंबी धारा जो लोगों ने अनुकरण की पैदा की है, वह गवाह होगी कि ठीक है। मेरी बात तो तुम्हें सीधी-सीधी स्वीकार करनी होगी, बिना किसी परंपरा के। बड़ी हिम्मत चाहिए! हां, पच्चीस सौ साल बाद मेरी बात भी इतनी ही आसान हो जायेगी। तब मेरे माननेवाले फिर धर्म के विपरीत खड़े हो जायेंगे।
जो अतीत को पकड़ता है, वह हमेशा धर्म का दुश्मन है। क्योंकि धर्म तो सदा नित नूतन है, नया है, अभी है, ताजा है--अभी खिलते फूल की भांति! धर्म तो सदा खिलता हुआ फूल है! जिसको तुम धर्म कहते हो, वह तो मुर्दा फूलों का निचोड़ा हुआ इत्र है। फूल तो कभी के खो गये। उनका खिलना तो कभी का बंद हो गया। फूल तो बचे भी नहीं, लेकिन तुमने मुर्दा फूलों का लहू निचोड़ लिया है। उसको पकड़कर तुम बैठे हो। और तुमने निश्चित ही अपने मतलब से निचोड़ लिया है। एक आदमी जुआरी है, बड़ा जुआरी है! सब गंवा दिया है। एक रात घर लौटा देर से। जूआ खेलकर ही लौटा था। पत्नी नाराज थी। उसने कहा, "तुम फिर पहुंच गये जुआ-घर! अब बचा क्या है?" उसने कहा, "जुआ-घर नहीं गया था, महाभारत हो रही थी रास्ते में, वहां बैठकर सुन रहा था। रास्ते से निकला, वहां महाभारत हो रही थी, वह देखता आया था।" कुछ और बहाना न मिला तो यही उसने कह दिया। पत्नी ने कहा, "मैं मान नहीं सकती, तुम और महाभारत सुनने गये! तुम्हारे कपड़े से, तुम्हारे चेहरे से जुए-घर की बास आती है।"
उसने कहा, "सुन देवी! और वहां मैंने यह भी सुना महाभारत में कि युधिष्ठिर खुद जुआ खेलते थे। धर्मराज! और जुआ खेलते थे। तू मेरे पीछे नाहक पड़ी है। इससे साफ सिद्ध होता है कि जुआ एक धार्मिक कृत्य है--युधिष्ठिर खेलते थे और धर्मराज थे।"
पत्नी ने कहा, "तो फिर ठीक है। तो सोच राखिओ, कि द्रौपदी के पांच पति थे।"

लोग अपने मतलब की बातें निकाल रहे हैं। तुम जो धर्म खड़ा कर लेते हो, वह तुम्हारा मतलब है। तुम बड़े चालाक हो, होशियार हो, बड़े कुशल हो--अपने को धोखा देने में।
जब कोई जीवित गुरु होता है, महावीर जब जिंदा होते हैं, तब तो तुम धोखा नहीं दे सकते। क्योंकि महावीर जगह-जगह कहेंगे, "गलत! यह मैंने कहा नहीं। यह तुमने सुन लिया होगा।" जब महावीर जा चुके, फिर कोई कहने वाला न रहा; फिर तुम्हें जो कहना है, तुम्हें जो मानना है, उसे तुम बनाये चले जाओ, माने चले जाओ।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या जैन धर्म में चौबीस ही तीर्थंकर हो सकते हैं, ज्यादा नहीं?

सभी धर्म अपने दरवाजे बंद कर लेते हैं देर-अबेर। क्योंकि अगर दरवाजा खुला रहे तो धर्म पुराना कभी भी न हो पायेगा। और अगर दरवाजा खुला रहे तो धर्म संज्ञा कभी न बन पायेगा, क्रिया ही बना रहेगा। तो इतने तूफान और उथल-पुथल होते रहेंगे कि तुम कभी आश्वस्त न हो पाओगे। तो सभी धर्म अपने दरवाजे बंद कर लेते हैं; कोई देर, कोई अबेर। और जब दरवाजे बंद करते हैं, तब याद रखना, ऐसी घड़ी में करते हैं जब उनका सबसे ऊंचा शिखर आ जाता है। महावीर पर जैन दृष्टि ने सबसे ऊंचे शिखर को छू लिया। बस, फिर पीछे चलनेवालों को लगा कि अब दरवाजे बंद कर दो। अब बहुत हो चुका। सबसे ऊंचा शिखर छू लिया--अब दरवाजे बंद! अब कोई तीर्थंकर न होगा। क्योंकि तीर्थंकर और होते रहेंगे, इसका अर्थ है कि नित-नूतन धर्म होता रहेगा। कोई नया तीर्थंकर नयी बात कहेगा। महावीर ने भी बहुत-सी नयी बातें कहीं, जो पार्श्वनाथ ने न कही थीं। महावीर ने बहुत-सी बातें नयी कहीं, जो आदिनाथ ने न कही थीं। और अब तो मजा यह है कि जो महावीर ने कहा, उसी के आधार पर हम सोचते हैं कि ऋषभ ने, आदि ने, नेमी ने क्या कहा होगा। अब तो महावीर प्रमाण हो गये। अंतिम प्रमाण हो जाता है, वह सबको रंग देता है। लेकिन महावीर ने कुछ बातें कही हैं, जो निश्चित ही ऋषभ ने नहीं कही होंगी। कारण भी साफ है।
वेद हिंदुओं के ग्रंथ हैं। ऋषभ का बड़े सम्मान से उल्लेख करते हैं। लेकिन महावीर का किसी हिंदू-गं्रथ ने उल्लेख नहीं किया। ऋषभ में अड़चन मालूम न हुई होगी; कोई बहुत क्रांतिकारी व्यक्ति न रहे होंगे। तो वेद भी उनका उल्लेख करता है--सम्मान से, बड़े सम्मान से। लेकिन महावीर की बात भी नहीं उठाता। महावीर की बात भी कोई हिंदू-शास्त्र में नहीं है। महावीर के अगर माननेवाले न हों, तो महावीर का कोई प्रमाण भी नहीं रह जायेगा। क्योंकि हिंदू-धर्म के ग्रंथों ने कोई उल्लेख नहीं किया। महावीर निश्चित ही बड़े खतरनाक रहे होंगे। इस आदमी की बात भी उठानी खतरनाक थी। बुद्ध से ज्यादा खतरनाक रहे होंगे, क्योंकि बुद्ध को तो हिंदुओं ने बाद में धीरे-धीरे अपना एक अवतार स्वीकार कर लिया। लेकिन महावीर का तो नाम भी उल्लेख न किया। इस आदमी का नाम भी खतरनाक रहा होगा। यह आदमी खतरनाक था!
तुम जरा थोड़ा सोचो! जैन धर्म ने अपनी आखिरी क्रांति छू ली। फिर पीछे चलनेवाला अनुयायी घबड़ा गया कि अब बहुत हो चुका; अब द्वार-दरवाजा बंद करो; अब कहो कि अब और कोई तीर्थंकर न होगा। अन्यथा तीर्थंकर आते रहेंगे। अन्यथा नये-नये उन्मेष, नयी-नयी क्रांतियां--तो हम ठहरेंगे कहां? रोज कोई आयेगा और पुराने भवन को गिरायेगा और नये बनाने की योजना रखेगा, तो भवन बनेगा कब?
मुहम्मद के साथ मुसलमानों ने अपने दरवाजे बंद कर लिये। मुहम्मद के साथ ही इस्लाम ने अपनी आखिरी ऊंचाई छू ली। मुहम्मद पहले और आखिरी तीर्थंकर हैं इस्लाम के। पहले और आखिरी पैगंबर। फिर इस्लाम ने इतनी भी हिम्मत न की, जितनी हिम्मत जैनियों ने की थी, कम से कम चौबीस को तो बरदाश्त किया! मुसलमानों ने इतनी भी हिम्मत न की; बड़ा कमजोर धर्म साबित हुआ। दरवाजे बंद कर लिये। ईसाइयों ने भी यही किया, दरवाजे बंद कर लिये। अब कोई नहीं होगा। आखिरी पैगाम आ गया परमात्मा का, अब इसमें कोई तरमीम न होगी, कोई सुधार न होगा, कोई संशोधन न होगा।

जिंदगी रोज चली जाती है, तुम्हारे धर्म कहीं न कहीं रुक जाते हैं। जो धर्म जिंदगी के साथ नहीं चलता, वह अधर्म हो जाता है।
तो मैं तो तुमसे कहता हूं, प्रतिपल तीर्थंकर होंगे, प्रतिपल पैगंबर होंगे। और तुम्हें अब जब भी कभी मौका मिले और तुम्हें दो पैगंबरों के बीच में चुनना हो, तो नये को चुनना, पुराने को मत चुनना। क्योंकि पुराने को चुनने में तुम अपने को चुनोगे। नये को चुनने में तुम अपने को छोड़ोगे तो ही चुन सकोगे। जब तुम पुराने को चुनते हो तो तुम अपने को ही चुनते हो, क्योंकि पुराने के साथ तो तुम आत्मसात हो गये हो। तुमने पुराने को तो पिघला लिया है। तुमने पुराने को तो अपने ही ढंग का बना लिया है। तुमने तो पुराने में काफी तरमीम और कांट-छांट कर ली है। पुराने से तुम्हें कोई खतरा नहीं रहा है; नया फिर तुम्हें डगमगाता है, फिर तुम्हारी जड़ें उखाड़ता है, फिर तुम्हें जलाता है, फिर अग्नि में फेंकता है। जब भी चुनना हो तो नये को चुनना।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, धर्म परंपरा नहीं है; लेकिन क्या परंपरा की जरूरत नहीं है? क्या परंपरा से हानि ही हानि हुई कि कुछ लाभ भी... ?

यह मैंने कहा नहीं कि परंपरा की जरूरत नहीं है। अगर तुम्हें जड़ रहना हो, परंपरा की बड़ी जरूरत है। अगर तुम्हें मुर्दा रहना हो, तो परंपरा औषधि है। अगर तुम्हें रूपांतरित न होना हो तो परंपरा बड़ी सुरक्षा है। कायरों के लिए, कमजोरों के लिए, परंपरा शरण-स्थल है। बड़ी जरूरत है, क्योंकि कायर हैं दुनिया में। आखिर उनके लिए भी तो कोई जगह होनी चाहिए। आत्महीन लोग हैं दुनिया में--आखिर उनके लिए भी तो कोई सहारा होना चाहिए! आत्मवंचक हैं दुनिया में--आखिर उनको भी तो कोई उपाय होना चाहिए कि अपने को धोखा दे लें! परंपरा की बड़ी जरूरत है।
मैंने नहीं कहा कि जरूरत नहीं है! जरूरत न होती तो परंपरा होती ही न। है, जरूरत होगी कहीं! कहीं बड़ी जरूरत होगी, क्योंकि इतने महापुरुष हुए, जिन्होंने परंपरा को तोड़ने की हजार-हजार कोशिशें की, परंपरा नहीं टूटती। महावीर कोशिश करते, बुद्ध कोशिश करते, कृष्ण कोशिश करते, क्राइस्ट कोशिश करते--परंपरा तोड़ने की; कुछ नहीं होता, परंपरा नहीं टूटती। लोग इन्हीं को छोड़ देते हैं, परंपरा को नहीं छोड़ते। या इन्हीं को परंपरा में आत्मसात कर लेते हैं, लेकिन परंपरा को नहीं छोड़ते। वे इन्हीं को परंपरा में रंग देते हैं। वे कहते हैं, हम तुम्हारी भी पूजा करेंगे, लेकिन हमें बख्शो। हमें परेशान मत करो! तुम भी परंपरा के हिस्से बन जाओ। और तुम्हारे लिए भी हमारे मंदिर में जगह है। तुम्हारी प्रतिमा भी रख देंगे। तुम ज्यादा शोरगुल न मचाओ। तुम भी स्वीकार!
परंपरा की जरूरत जरूर होगी, अन्यथा टूट गयी होती परंपरा। बहुत थोड़े-
से लोग, बड़े हिम्मतवर, जिंदादिल लोग, बिना परंपरा के जीते हैं। क्योंकि बिना परंपरा के जीने का अर्थ होता हैः जागरण से जीना। तब तुम्हें प्रतिपल अपना जीवन-निर्णय करना होगा। परंपरा बड़ी सुविधापूर्ण है, बड़ी सुरक्षापूर्ण है। तुम्हें कुछ तय नहीं करना होता। परंपरा ने तय कर दिया है, तुम चुपचाप अंधे की तरह अनुसरण किये चले जाते हो। सब लिखा है किताब में, नक्शे हाथ में हैं--तुम उनका अनुसरण कर लेते हो। परंपरा मार्गदर्शक जैसी है। वह तुम्हें बताये चली जाती है। तुम कभी गये?
कल एक मित्र ने संन्यास लिया। वे खजुराहो में मार्गदर्शक हैं। खजुराहो के मंदिर-मूर्तियों को, आए यात्रियों को, अतिथियों को समझाते हैं, दिखाते हैं। अगर तुम खजुराहो के मंदिर में बिना किसी मार्गदर्शक के जाओ तो बड़ी अड़चन होगी। वर्षों लग जायेंगे। क्योंकि तुम्हें एक-एक चीज की खुद ही खोजबीन करनी होगी। तुम्हें एक-एक मूर्ति को भर आंख स्वयं देखना होगा। तुम्हें एक-एक मूर्ति पर स्वयं ध्यान करना होगा। तभी शायद तुम थोड़ा-सा रहस्य, थोड़ा-सा राज इकट्ठा कर पाओगे। सस्ता उपाय है, तुम मार्गदर्शक को

साथ ले लेते हो, वह बताये चला जाता है कि यह मूर्ति कितनी पुरानी है, किसने बनाई, कब बनाई इसका क्या इतिहास है। तुम भी बहरे की भांति सुनते चले जाते हो, अंधे की भांति देखे चले जाते हो। घंटे दो घंटे में सब मंदिर देख डाले-- चले आये। जिन मंदिरों को बनने में सदियां लगीं, जिन मूर्तियों पर हजारों लोगों के जीवन निछावर हुए तब बनीं, तुम उनको घड़ी भर में निपटाकर घर आ जाते हो, कहते हो, "खजुराहो हो आये हैं। अजंता देख डाला। ऐलोरा घूम आये।" सारी पृथ्वी का चक्कर लगा लेते हो।
अगर तुम अपने ही हिसाब से चलो तो बड़ी मुश्किल होगी। और यह कोई जिंदगी मूर्तियों का, मंदिरों का हिसाब नहीं है। यहां एक-एक पल तुम्हें अपना निर्णय लेना पड़ेगा, अगर तुम्हारे पास कोई परंपरा न हो। किसी ने गाली दी, अब क्या करना? तुम्हें खुद ही जागकर प्रतिध्वनि करनी होगी। कोई परंपरा नहीं है। तुम परंपरा में मानते नहीं हो। न तुम किसी और की बनाई परंपरा में मानते हो, न अपनी बनाई हुई लीक को मानते हो--क्योंकि कल किसी ने गाली दी थी, तुमने क्रोध किया था; परसों भी किसी ने गाली दी थी, तुमने क्रोध किया था-- क्रोध तुम्हारी परंपरा है। आज फिर कोई गाली देता है, तुम परंपरा की सुनोगे या आज तुम जागकर इस गाली को समझोगे और तय करोगे, क्या करूं? परंपरा के आधार पर नहीं--होश के आधार पर। बीते कल के आधार पर नहीं--आज के, इस क्षण के आघात के आधार पर। यह जो प्रत्याघात अभी हुआ है, इसको तुम सीधा-सीधा दर्पण की तरह लोगे? इसका उत्तर दोगे? कठिन होगा। तब तो प्रतिपल तुम्हारी जिंदगी लहरों में होगी, तूफानों में होगी, आंधियों में होगी। कुछ तय न हो पायेगा। कुछ बंधी लकीरें न होंगी। कुछ पिटी लकीरें न होंगी। राज-पथ न होगा, पगडंडियां होंगी। तुम्हीं को बनाना पड़ेंगी।

लोग सस्ता रास्ता चुनते हैं। परंपरा को मान लेते हैं। ठीक है, परंपरा
की जरूरत है; क्योंकि दुनिया में कायर हैं। दुनिया में बड़े कमजोर दीन-हीन लोग हैं। दुनिया में ऐसे लोग हैं जो अपनी चेतना पर भरोसा नहीं कर सकते। दुनिया में ऐसे लोग हैं जिनकी श्रद्धा जीवन में नहीं है, मृत्यु में है; जो मर जाओ, तभी भरोसा करते हैं।
तुमने कभी ख्याल किया! गांव में कोई मर जाता है, फिर उसके खिलाफ कोई भी नहीं बोलता। सभी कहते हैंः "स्वर्गीय हो गये।" पूरा गांव उनके खिलाफ रहा हो भला, और सभी जानते हैं कि अगर नर्क कहीं है तो वे निश्चित पहुंच गये; या अगर कहीं स्वर्ग है और ये पहुंच गये तो नर्क बनाकर छोड़ेंगे--मगर कहते हैं, स्वर्गीय हो गये!
मुर्दा जब कोई हो जाता है, तो तुम देखते हो, कैसी लोग स्तुति करते हैं, उसके गुणगान करते हैं कि बड़े महापुरुष थे, अंधेरा छा गया, दीया बुझ गया; यह पूर्ति अब कभी हो न सकेगी जो जगह खाली हुई!
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक मित्र को फोन किया। पत्नी फोन पर आयी। मुल्ला
ने घबड़ाकर पूछा कि "कहां हैं, पति कहां हैं?" उसने कहा, "ऐसे क्या घबड़ा रहे हो? क्या मामला है? स्नानगृह में स्नान करते हैं।" मुल्ला ने कहा, "फिर ठीक। क्योंकि गांव में कई लोगों से मैंने उनकी प्रशंसा सुनी है, मैंने समझा कि मर गये।"
क्योंकि बिना मरे तो कोई किसी की प्रशंसा करता ही नहीं है। जिंदा की निंदा है, मुर्दे की प्रशंसा है। क्योंकि मुर्दे के साथ तुम अपना समझौता कर लेते हो।
जिंदा के साथ समझौता नहीं कर पाते।
तुम यह मत सोचना कि महावीर और बुद्ध की तुम जो इतनी प्रशंसा करते हो,
वह कोई धर्म की प्रशंसा है--वह मुर्दा, मृत्यु की प्रशंसा है। जब जीवित थे तो तुम्हीं ने इन पर पत्थर फेंके। तुम जब कहानी पढ़ते हो कि किसी ने महावीर के कानों में खीले ठोक दिये, तुमने कभी सोचा कि यह तुम भी हो सकते हो जिसने खीले ठोके हों? तुमने कभी फिर से सोचा कि अगर महावीर आज आ जायें और बाजार में तुम्हें मिल जायें, तो तुम क्या व्यवहार करोगे? अगर नंग-धड़ंग "ब्लू डायमंड होटल" के सामने खड़े हुए मिल जायें, तो तुम क्या व्यवहार करोगे और कोई बतानेवाला न हो कि ये महावीर हैं? तो पहला तो काम, तुम पुलिस में

इत्तला करोगे। तुम सम्मान करोगे? तुम झुककर पैर छुओगे? हां, अगर कोई कह दे कि महावीर हैं, भगवान महावीर आ गये, तो शायद झुक भी जाओ, क्योंकि भगवान महावीर शब्द के साथ तुम्हारा बड़ा लगाव बन गया है। वह तो कोई और भी खड़ा हो जाये... ।
जैसे देखा, रामलीला होती है, कोई आदमी राम बन जाता है, तो लोग उसके पैर छूते हैं! क्या अंधापन है! जानते हैं भलीभांति, गांव का छोकरा है। लेकिन उसके पैर छूते हैं। राम-नाम की ऐसी गं्रथि बंध गई है। नाटक में राम बना है, तो भी पैर छूते हैं, फूल चढ़ाते हैं, शोभा-यात्रा निकलती है। अंधापन कैसा गहरा है!
मेरे पास लोग आते हैं। अब जैसे कि मैं जिन-सूत्र पर बोल रहा हूं, तो जैन आ गये हैं। मैं जो बोल रहा हूं वही बोल रहा हूं; न मुझे जिन-सूत्र से कुछ लेना है, न शिव-सूत्र से कुछ लेना है। मैं शिव-सूत्र में भी यही बोलता हूं, मगर तब जैन नहीं आतेः "शिव-सूत्र है, अपने को क्या लेना-देना है!" हिंदू आते हैं, वे कहते हैं, "महाराज! गीता पर फिर कब बोलेंगे?" गीता ही बोल रहा हूं। उसी के गीत गा रहा हूं। मगर नहीं, शब्द की पकड़ है। बस शब्द की पकड़ है। लकीरों की पकड़ है। तुम्हें अगर मैं हीरा भी दूं और कहूं कंकड़-पत्थर है, तो तुम कहते हो, क्या करेंगे! और मैं तुम्हें कंकड़-पत्थर भी दूं और कहूं हीरा है, तो तुम कहते हो, लायें सम्हालकर रख लें!
तुम शब्दों से जीते हो? शब्द सत्य हैं? शब्दों से थोड़ा जागो। शब्दों
की परंपरा होती है, सत्यों की कोई परंपरा नहीं।
और पूछते हो, "क्या हानि ही हानि हुई, या लाभ भी हुआ?"
दुकानदारी कब मिटेगी तुम्हारी? तुम हानि-लाभ का ही हिसाब करते रहोगे? धर्म का कोई संबंध हानि-लाभ से नहीं है। धर्म का संबंध दोनों के त्याग से है। हानि भी नहीं, लाभ भी नहीं। क्योंकि लाभ के पीछे हानि छिपी है, हानि के पीछे लाभ छिपा है--वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
धर्म का संबंध उस परम जागरण से है, जहां तुम कहते हो, अब न हानि की कोई चिंता है, न लाभ की कोई आकांक्षा है। धर्म से कोई हानि-लाभ थोड़े ही होता है। धर्म से तो तुम हानि-लाभ से मुक्त होते हो। वह चिंताधारा ही गलत है। अगर उस चिंताधारा से चले, तो जो तुम्हारी मर्जी, वही तुम खोज लोगे। अगर तुम्हें हानि खोजनी है तो परंपरा की हानि खोज लोगे। अगर तुम्हें लाभ खोजने हैं, तुम लाभ खोज लोगे।
एक आदमी ने एक किताब लिखी है। पश्चिम के मुल्कों में तेरह का आंकड़ा बुरा समझा जाता है। तो बड़ी होटलों में तेरहवीं मंजिल ही नहीं होती, क्योंकि वहां कोई ठहरता नहीं तेरहवीं मंजिल पर। बारहवीं मंजिल के बाद सीधी चौदहवीं होती है। चौदहवीं कहने से हल हो जाता है, है वह तेरहवीं; मगर चौदहवीं कह दी तो उतरनेवाले को क्या फिक्र है! लेकिन तेरहवीं कहो तो कोई उतरने को राजी नहीं। तेरह नंबर का कमरा नहीं होता। तेरह तारीख को लोग यात्रा करने नहीं जाते। तो एक आदमी ने बड़ी किताब लिखी है। उसने सारे आंकड़े इकट्ठे किये हैं कि तेरह निश्चित ही खतरनाक आंकड़ा है। तेरह तारीख को कितने युद्ध शुरू हुए, उसने सब हिसाब बनाया है। तेरह तारीख को कितनी कार-दुर्घटनाएं होती हैं; तेरह तारीख को कितने लोग कैंसर से मरते हैं; तेरह तारीख को कितने तलाक होते हैं--तेरह तारीख, तेरहवीं मंजिल, तेरह का जहां- जहां संबंध है, उसने बड़े हजारों आंकड़े इकट्ठे किये हैं।
कोई मित्र मुझे दिखाने लाया था, वह भी बड़ा प्रभावित था। उसने कहा कि देखो, अब तो तथ्य सामने हैं। मैंने उससे कहा, तू चौदह तारीख की खोज कर, इतने ही तथ्य, चौदह तारीख में भी मिल जायेंगे। चौदह को भी लोग मरते हैं। चौदह को भी कार-दुर्घटनाएं होती हैं। और चौदहवीं मंजिल से भी लोग गिरते हैं। तू कोई भी तारीख के पीछे पड़ जा। जिंदगी इतनी बड़ी है, तुम कोई भी पक्ष तय कर लो, तुम्हें प्रमाण मिल जायेंगे।
इसलिए सत्य की खोज पर जो निकलता है, उसे पहले से पक्ष लेकर नहीं चलना चाहिए। नहीं तो वह जो खोज रहा है, खोज लेगा। यही तो बड़े से बड़ा खतरा है जगत में कि तुम जो खोजना चाहते हो खोज ही लोगे। तुम अपनी मान्यता को सिद्ध कर

लोगे। सत्य के खोजी को कोई मान्यता नहीं होनी चाहिए। उसे तो खुली आंख रखनी चाहिए--निष्पक्ष, निर्दोष--तो तथ्य का दर्शन होता है।
परंपरा के लाभ भी हैं, हानियां भी हैं। लेकिन धर्म परंपरा नहीं है। और हानि-लाभ से धर्म का कोई संबंध नहीं है।
तुम्हें हानि-लाभ में रहना हो, धर्म से बचना, सावधान रहना। तुम्हें हानि-लाभ से ऊपर उठना हो, तो धर्म के द्वार पर दस्तक देना। और धर्म के द्वार पर दस्तक देनी हो, परंपरा को वहीं छोड़ आना जहां जूते उतार आते हो। अगर परंपरा को लेकर धर्म के मंदिर में आये तो तुम धर्म के मंदिर में कभी आओगे ही नहीं; तुम्हारी परंपरा तुम्हें घेरे रहेगी। तुम आओगे भी और नहीं भी आ पाओगे।
धर्म के जगत में जिसे जाना हो उसे महावीर जैसा दिगंबर होना चाहिए-- परिपूर्ण नग्न, सारे आवरणों से मुक्त।
लेकिन बुद्धिमान आदमी हानि-लाभ की सोचता है। बुद्धि का ही धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है।
तेरे सीने में दम है, दिल नहीं है
तेरा दिल गर्मि-ए-महफिल नहीं है
गुजर जा अक्ल से आगे कि यह नूर
चिरागे-राह है, मंजिल नहीं है।
यह जो बुद्धि का छोटा-सा टिमटिमाता दीया है, "चिरागे-राह है", राह पर इसका थोड़ा उपयोग कर लो। चिरागे-राह है, मंजिल नहीं है। इस बुद्धि के दीये को आखिरी मंजिल मत समझ लेना। यह टिमटिमाता दीया, इस पर ही उलझ मत जाना। यह हानि-लाभ का विचार, शुभ-अशुभ का विचार, स्वर्ग-नर्क का हिसाब, यह गणित बिठाना--अगर इसमें ही लगे रहे तो तुम धीरे-धीरे पाओगे कि खोपड़ी तो तुम्हारी बड़ी होती जाती है, हृदय सिकुड़ता जाता है। धर्म का संबंध हृदय से है, बुद्धि से नहीं, सोच-विचार से नहीं। गहन भाव की दशा है धर्म।
तेरे सीने में दम है, दिल नहीं है
तेरे सीने में दम है, दिल नहीं है
तेरा दिल गर्मि-ए-महफिल नहीं है
गुजर जा अक्ल से आगे कि यह नूर
चिरागे-राह है, महफिल नहीं है।
ध्यान हम कहते ही उसे हैं जहां तुम इस चिरागे-राह को फूंककर आगे निकल जाते हो। इसलिए तो बुद्ध और महावीर ने उसे "निर्वाण" कहा है। निर्वाण शब्द का शाब्दिक अर्थ होता हैः दीये को बुझा देना। जब सारे दीये बुझा देते हैं तो निर्वाण है।
अब बड़े मजे की बात है, जैन दीवाली मनाते हैं; क्योंकि उस रात महावीर का निर्वाण हुआ। और दीये जलाते हैं। उस रात तो सब दीये बुझा दो, पागलो! निर्वाण का अर्थ होता हैः दीये बुझा दो। जैन दीवाली पर दीये जलाते हैं-- खुशी में कि महावीर का निर्वाण हुआ। लेकिन निर्वाण शब्द का अर्थ होता हैः दीये बुझा दो। ये बुद्धि के, हिसाब के, किताब के दीये बुझा दो। ये तर्क के, विचार के दीये बुझा दो। उस गहन मौन और शून्य और शांत अंधेरे में खो जाओ, जो तुम्हारा स्वभाव है।
महावीर ने भी खूब रात चुनी--अमावस की रात--मुक्त होने को। पूर्णिमा चुनते तो कुछ हिसाब-किताब समझ में आता। अमावस की रात! लेकिन ठीक चुनी। ऐसा ही गहन स्वभाव है। गहन अंधकार, शांत, असीम! प्रकाश में तो थोड़ी उत्तेजना है। इसलिए तो प्रकाश जलता हो कमरे में तो सोना मुश्किल हो जाता है। आंखें उत्तेजित रहती हैं। इसलिए तो दिन में नींद मुश्किल होती है। रात नींद के लिए है। दीये भी बुझा देते हैं। सब उत्तेजना खो जाती है।
कभी तुमने ख्याल किया, प्रकाश को जलाओ तो है, बुझाओ तो मिट जाता है! अंधेरा सदा है, शाश्वत है। अंधेरा सत्य के संबंध में बड़ी गहरी खबर देता है। और अंधेरे में बड़ी गहन शांति है। तुम्हें डर लगता है, यह दूसरी बात है। ध्यान में सभी को डर लगता है, समाधि में सभी को डर लगता है। तुम्हें डर लगता है, इस कारण तुम दीये को पकड़ लो, यह दूसरी बात है। लेकिन महावीर तो कहते हैं, जो अभय को उपलब्ध हुआ, वही उस गहन आत्मभाव में प्रवेश करता है।

वह जो भीतर का शून्य है, वहां तो सब ये चिराग, ये दीये, ये हिसाब-किताब, ये तर्क, ये प्रमाण, ये शास्त्र, ये परंपराएं, सब छोड़कर जाना पड़ता है। जिसकी हिम्मत हो अंधेरे में जाने की, वही आये। जिसकी हिम्मत हो जीते-जी मृत्यु में प्रवेश की, वही आये। क्योंकि समाधि जीते-जी मृत्यु का स्वेच्छा से वरण है। इसीलिए तो हम साधु की कब्र को भी समाधि कहते हैं। सभी की कब्र को समाधि नहीं कहते, लेकिन जिसने अपने भीतर समाधि अनुभव कर ली हो, उसकी मृत्यु को भी हम समाधि कहते हैं। दोनों एक हैं।
ये जो चार पर्तें मैंने तुम्हें बताईं, जब ये मर जाती हैं, तब तुम शून्य में प्रवेश करते हो। तुम वहीं पहुंच जाते हो जहां तुम जन्म के पहले थे।
और यह पहुंचना प्रक्रिया है। यह पहुंचना संज्ञा नहीं है।
जिंदगानी है फकत गर्मि-ए-रफ्तार का नाम
मंजिलें साथ लिये राह पे चलते रहना।
मंजिल कहीं ऐसी दूर नहीं है कि तुम उस तरफ जा रहे हो।
जिंदगानी है फकत गर्मि-ए-रफ्तार का नाम
मंजिलें साथ लिए राह पे चलते रहना।
मंजिल तुम्हारे साथ ही है, तुम्हारे चलने में है, तुम्हारी गति में है। मंजिल गंतव्य नहीं है, तुम्हारी गति की प्रखरता का नाम है; तुम्हारी गति की तीव्रता, त्वरा का नाम है। जब तुम इतने गतिमान होते हो कि तुम्हारे भीतर केवल गत्यात्मकता होती है, कोई और नहीं होता, कोई थिर, जड़ वस्तु नहीं होती, सब प्रवाह होता है, जब तुम गंगा होते हो--तब मंजिल वहीं मिल गई। तुम्हारा होना, अहंकार, एक जड़ वस्तु है, पत्थर की तरह है। इसे पिघला लो। इसे जिंदगी की गर्मी में पिघल जाने दो। तुम मिटो तो ही तुम्हारा शून्य प्रगट हो सकेगा। महावीर उस शून्य को आत्मा कहते हैं, क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव है।
ध्यान रखना, दृष्टि की सारी बात है।
साहिल भी एक लय है अगर कोई सुन सके
उमड़े हुए सकूत से तूफान बन सके।
दृष्टि की बात है। तूफान शांति बन सकता है, शांति तूफान बन सकती है।
तुम्हारी दृष्टि की बात है। तुम अगर शांति से तूफान को देखो तो तूफान भी एक अदभुत लयबद्धता है। और अगर तुम अशांति से शांति को भी देखो, तो शांति भी खो जाती है और केवल एक बेचैनी और एक उन्माद रह जाता है।
यह जो जिंदगी का प्रवाह है, इसे तुम दुश्मन की तरह मत देखो, और इससे लड़ो मत। लड़ने से तुम्हारा अहंकार और मजबूत होता चला जायेगा। इसके साथ बहो। इसे होने दो। इसे स्वीकार करो। इसके सत्य को स्वीकार करो और अपने सत्य को स्वीकार करो। और जब दोनों सत्य मिलते हैं--तुम्हारे भीतर का सत्य, प्रवाहमान; और तुम्हारे बाहर का सत्य, प्रवाहमान--जब इन दोनों प्रवाहों का मिलन होता है, उस मिलन का नाम ही समाधि है। उस आलिंगन का नाम ही समाधि है। और इस प्रश्न का दूसरा हिस्सा हैः "और क्या क्रिया का समय से कोई संबंध नहीं है?"
जब तुम परिपूर्ण क्रिया में होते हो, समय मिट जाता है। जब तुम किसी भी क्रिया में पूरे लीन होते हो, समय मिट जाता है। एक चित्रकार चित्र बना रहा है; जब वह पूरा-पूरा डूबा होता है तो समय मिट जाता है। नहीं कि घड़ी ठहर जाती है, घड़ी चलती रहेगी; घड़ी का समय कोई असली समय थोड़े ही है। लेकिन उस चित्रकार के लिए सब ठहर गया। जब कोई गीतकार गीत गाता है, और सिर्फ प्रदर्शन नहीं करता, वस्तुतः गाता है, और ऐसे ओंठ ही नहीं हिलाता, हृदय से प्रवेश हो जाता है, तो समय ठहर जाता है। जब कोई नर्तक नाचता है और नाच ही हो जाता है, तो समय ठहर जाता है। जहां भी क्रिया परिपूर्ण है, वहीं समय ठहर जाता है। जहां भी क्रिया अपूर्ण है, वहीं समय चलने लगता है। जहां क्रिया बहुत अपूर्ण है, झटके ले लेकर चलती है, तुम चलना भी नहीं चाहते और चलते हो, मजबूरी होती है--वहां समय लंबा होने लगता है।
तुमने कभी ख्याल किया! कोई प्रेमी घर आ जाये, घंटा बीत जाता है, क्षणभर मालूम पड़ता है। और कोई उबानेवाले सज्जन घर आ जायें और बकवास करें, दो-चार-

144

पांच मिनट भी ऐसे लगते हैं जैसे कि घंटों लगाये दे रहे हैं। क्या हो जाता है? समय में इतना अंतर क्यों हो जाता है?
समय बड़ा लोचपूर्ण है। जब तुम सुख अनुभव करते हो, समय छोटा हो जाता है।
तब तुम मित्र की बातें सुन रहे हो, साधारण-सी बातें हैं, बड़ी मधुसिक्त हो जाती हैं। जब कोई आ जाता है उबानेवाला, चाहे बातें वह बड़ी मधुर कर रहा हो, लेकन तुम्हें रास नहीं आता। तो एक भेद पड़ गया। तुम उस चर्चा में डूब नहीं पाते। चर्चा की क्रिया गतिमान नहीं हो पाती, ठहर-ठहर जाती है, लंगड़ाती है। तुम जबर्दस्ती बार-बार घड़ी देखते हो, जम्हाई लेते हो, कोई तरह इशारा करते हो कि भाई देखो, अब जाओ भी!
अल्बर्ट आइंस्टीन के जीवन में उल्लेख है कि एक मित्र के घर गया था। भुलक्कड़ आदमी था। बात चलती रही, भोजन हो गया। फिर बात चलती रही। मित्र बार-बार घड़ी देखे, जम्हाई ले। आइंस्टीन भी बार-बार घड़ी देखे, जम्हाई ले; लेकिन उठे न। आखिर मित्र ने कहा, "दो बज रहे हैं, पत्नी राह देखती होगी... ।" आइंस्टीन ने कहा, "मतलब?"
मित्र ने कहा, "मेरा मतलब यह है कि पत्नी राह देखती होगी... । वैसे कोई हर्जा नहीं है, आप बैठें और।" आइंस्टीन घबड़ाकर खड़ा हो गया। उसने कहा, "हद्द हो गई, मैं तो सोचता था कि कब आप जायें तो मैं सोऊं। मैं तो यही सोच रहा था कि मैं अपने घर में हूं।"
दोनों घड़ी देख रहे हैं, दोनों जम्हाई ले रहे हैं। समय बड़ा लंबा मालूम पड़ता है।
जब तुम किसी क्रिया के साथ लीन नहीं हो पाते, वही क्रिया, ठीक वही क्रिया... ।
तुम नाच रहे हो--किसी और के लिए, नाचना नहीं चाहते, तो समय रहेगा। तुम नाच रहे हो अपने लिए, या किसी के लिए जिसके लिए तुम नाचना चाहते हो--समय मिट जायेगा। समय तनाव है। जहां तनाव नहीं वहां समय नहीं। जहां तुम बे-तनाव हो, वहां समय नहीं; तुम समयातीत हो गये, कालातीत हो गये।
और यही बात जो समय के संबंध में सच है वही बात क्षेत्र के संबंध में भी
सच है। टाइम-स्पेस, समय और क्षेत्र यह दोनों एक साथ खो जाते हैं, जब तुम्हारी लीनता परिपूर्ण होती है। भक्त अपनी भक्ति में भूल जाता है--सब भूल जाता है। भगवान को भी भूल जाता है। धुन रह जाती है। मस्ती रह जाती है। ध्यानी अपने ध्यान में भूल जाता है--ध्यान को भी भूल जाता है। फिर बस एक सुवास रह जाती है। वह सुवास इस पृथ्वी की नहीं है। उस सुवास को न तो समय घेरता है, न स्थान घेरता है। वह सुवास समय-क्षेत्र अतीत है।
दिल की बस्ती अजीब बस्ती है
लूटनेवाले को तरसती है
हिम्मत चाहिए लुटने की। जहां भी लुट जाओ, वहीं से धर्म का द्वार खुल जायेगा। वहीं गुरुद्वारा है।
इसलिए इसकी बहुत फिक्र मत करो कि कैसे। जो तुम्हें रास आ जाये, जो तुम्हें जम जाये--भक्ति तो भक्ति, ज्ञान तो ज्ञान, कर्म तो कर्म--लेकिन कहीं से भी ऐसी घड़ी बना लो, जहां समय मिट जाये; जहां तुम इतने डूब सको, इतने डूब सको कि कोई रेखा तनाव की न रह जाये--समग्र मन से, समग्र तन से। नहीं तो जिंदगी में दुख ही दुख होगा, पीड़ा ही पीड़ा होगी।
पीड़ा का अर्थ हैः तनाव की पर्तें। दुख का अर्थ हैः परमात्मा से चूकते जाना। दुख का अर्थ हैः सत्य से चूकते जाना। दुख का अपने-आप में कोई अस्तित्व नहीं है। सत्य से तुम्हारी जितनी दूरी है उतना ही दुख है।
नारद उसे ईश्वर कहते हैं। महावीर उसे सत्य कहते हैं। पर इशारे उनके
एक ही की तरफ हैं।
हर तरफ छा रही है तारीकी
आओ मिल जुल के जिक्र-यार करें।
जिनको उस परमात्मा का प्रेम की भाषा में स्मरण करना हो--आओ मिल जुल के जिक्रे-यार करें! चलो उस परमात्मा की बात करें, उसका गीत गायें, उसके लिए नाचें।

जिन्हें यह रास न आता हो, जिन्हें यह बात कुछ स्त्रैण लगती हो, जिन्हें यह बात जमती न हो, जिनके संकल्प को यह बात बाधा डालती हो--तो महावीर कहते हैं, छोड़ो यह फिक्र, तुम्हारे लिए भी मार्ग है। जिस दिन तुम बने उसी दिन तुम्हारा मार्ग भी तुम्हारे साथ निर्मित हो गया है। तुम अपना मार्ग अपने साथ लाये हो। ऐसा कोई भी नहीं है जो परमात्मा से चूके। हां, अगर तुम्हारी मर्जी ही चूकने की हो तो परमात्मा बाधा नहीं डाल सकता। जो चूकना चाहता है वही चूकता है। जिसको पहुंचना है वह पहुंच जाता है।
मैंने सुना है, एक शराबी बैठा था राह के किनारे और एक आदमी ने कार रोकी
और उसने कहा कि मुझे स्टेशन जाना है, कहां से जाऊं। रास्ता भूल गया हूं। अजनबी हूं यहां।
शराबी ने झकझोर कर अपने को जरा सजग किया। और उसने कहा, ऐसा करो, पहले बायें जाओ--दो फर्लांग। फिर चौरस्ता पड़ेगा। फिर तुम उससे दायें मुड़ जाना-- दो फर्लांग। फिर उसने कहा कि नहीं-नहीं, यह तो गलत हो गया। तुम यहां से दायें जाओ। चार फर्लांग के बाद मस्जिद पड़ेगी। बस मस्जिद के पास से तुम बायें मुड़ जाना। उसने कहा कि नहीं-नहीं, यह फिर गलत हो गया। अब तो वह अजनबी भी थोड़ा मुश्किल में पड़ा कि यह मामला क्या है। उसने फिर कहा कि तुम ऐसा करो कि जहां से तुम आये हो उसी तरफ लौट जाओ। आठ फर्लांग के बाद नदी पड़ेगी, पुल आयेगा। उसने कहा, कि नहीं-नहीं फिर गलत हो गया।
उस ड्राइवर ने कहा, "महानुभाव! मैं किसी और से पूछ लूंगा।" उसने कहा कि तुम किसी और से ही पूछ लो तो अच्छा, क्योंकि जहां तक मैं समझता हूं, यहां से स्टेशन पहुंचने का कोई उपाय ही नहीं है।
जो जैसा है वहीं से उपाय है। जो जहां है वहीं से उपाय है। निराश मत होना। संकल्प सधे, संकल्प; न सधे, चिंता मत करना। साधनों की बहुत फिक्र मत करना, साध्य को स्मरण रखना। राह की कौन चिंता करता है, वाहन की कौन फिक्र करता है, बैलगाड़ी से पहुंचे कि हवाई जहाज से पहुंचे--पहुंच गये। हवाई जहाज के भी मजे हैं, बैलगाड़ी के भी मजे हैं। हवाई जहाज में समय बच जाता है, लेकिन बैलगाड़ी में जो सौंदर्य का, दोनों तरफ के रास्तों का अनुभव होता है, वह नहीं हो पाता। बैलगाड़ी में थोड़ा समय लगता है, लेकिन दोनों तरफ पृथ्वी के सुहावने दृश्य उभरते हैं।
मेरे एक मित्र हैं, बड़े धनी हैं; लेकिन चलते हमेशा पैसेंजर गाड़ी से।
एक दफा मुझे उनके साथ चलना पड़ा। तीन दिन लग गये पहुंचने में जहां एक घंटे में पहुंच सकते थे।
मैंने कहा कि मामला क्या है। वे कहने लगे कि मुझे पसंद ही नहीं कुछ और। उनके साथ चला तो मुझे भी समझ में आया कि बात तो वे भी ठीक कहते हैं। पैसेंजर गाड़ी का चलना, हर स्टेशन पर ठहरना। और उनको, वे काफी यात्रा करते रहे हैं तो हर स्टेशन पर उनकी पहचान है। कहां के भजिये अच्छे हैं, कहां की गुजिया अच्छी है, कहां का दूध, कहां की चाय, कहां की चाय केसर मिली है--वह सारा हिंदुस्तान का उनको हिसाब है। वे कहते हैं, यह भी कोई चलना कि बैठे हवाई जहाज में, यह कोई यात्रा है! इधर बैठे, उधर उतर गये! यह कोई बात हुई? चलने का मजा ही न रहा।
अपनी-अपनी मौज है। बैलगाड़ी का भी मजा है। हवाई जहाज का भी मजा है। संकल्प से भी पहुंचते हैं लोग, समर्पण से भी पहुंचते हैं लोग।
जैसा उस शराबी ने कहा था, यहां से पहुंचने का कोई उपाय नहीं है--मैं भी
एक शराबी हूं, मैं तुमसे कहता हूं, यहां से पहुंचने के सब उपाय हैं। और जो भी रास्ते हैं सब उसी की तरफ जाते हैं। तुम बायें चलना चाहते हो तो बायें से पहुंचने का उपाय है। तुम दायें चलना चाहते हो तो दायें से पहुंचने का उपाय है। तुम लौटना चाहते हो पीछे तो लौटकर पहुंचने का उपाय है। तुम न चलना चाहो तो खड़े-खड़े पहुंच जाने का उपाय है।

तीसरा प्रश्नः क्या कारण है कि महावीर का "जिन" मात्र जैन बनकर रह गया?

सदा ही ऐसा होता है। महावीर के ही अनुयायी के साथ ऐसा हुआ, नहीं; सभी
के साथ ऐसा होता है। ऐसा ही होगा। प्रकृति का नियम है। जब महावीर जीवित होते हैं तब जिनत्व होता है; जब वे जा चुके होते हैं तब "जैन" का प्रादुर्भाव होता है।
जैन का अर्थ हैः जो जिन तो नहीं हुआ, जो जिन होना भी नहीं चाहता; लेकिन परंपरा से, संस्कार से, जैन घर में पैदा हुआ है। यह संस्कार उधार हैं; स्वेच्छा से वरण नहीं किये गये। और जो धर्म स्वेच्छा से वरण नहीं किया गया है, वह केवल बौद्धिक है, आत्मिक नहीं है। यह सभी के साथ होगा। यह स्वाभाविक है।
एक डाक्टर ने नौकर को आदेश दे रखा था कि कोई काम उनसे पूछे बगैर न करे।
एक दिन वे दवाइयों की डो.ज देख रहे थे कि नौकर आकर बोला, "सर! चाय में कितनी चीनी दूं?"
"दो या तीन चम्मच भर", डाक्टर ने कहा।
नौकर थोड़ी देर बाद फिर आया और बोला, "सर! सब्जी में नमक कितना देना है?"
"दो या तीन चम्मच भर", थोड़ा नाराज होते डाक्टर बोला।
फिर थोड़ी देर में लौटकर नौकर आया और उसने कहा कि सर, चावल कितना बनेगा? "कितनी बार कहा", डाक्टर चीखा, "दो या तीन चम्मच भर।"
चावल दो या तीन चम्मच भर! लेकिन धीरे-धीरे लकीरें बन जाती हैं। उत्तर निर्णीत हो जाते हैं। बहुत बार जो बात तुमने कही है, तुम उसे कहने के लिए धीरे-धीरे अवश हो जाते हो। बहुत बार जिस मंदिर के सामने तुम झुके हो, तुम झुक जाते हो मूर्च्छा में, झुकना सच नहीं होता। तुम्हें पक्का भी नहीं होता।
मेरे एक मित्र हैं। मेरे साथ घूमने जाते थे। हनुमान के भक्त हैं। अब हनुमान के भक्त की बड़ी दिक्कत है, क्योंकि जितने हनुमान के मंदिर, मूर्ति इधर-उधर सब जगह हैं... । जहां जाएं, वहीं उनको... । तो उनको जगह-जगह नमस्कार... ।
और हनुमान के साथ खतरा है कि नाराज न हो जायें! एक और झंझट! तो मैंने उनसे कहा कि यह तुम क्या करते हो दिनभर? तुमको कोई काम दूसरा नहीं सूझता? चलो तो मुसीबत। रिक्शा रोककर उतरते हैं, पहले नमस्कार। हनुमान जी नाराज न हो जायें!
मैंने कहा, "और जहां तक मैं देखता हूं, न तो तुम्हारे नमस्कार में कोई
रस है। मैं देखता हूं, एक तरह की फजीहत, एक तरह की परेशानी! तुम झिझियाये से, खिझियाये से नमस्कार करते हो।"
बोले, "बात तो ठीक है क्योंकि बचपन से यह आदत मेरे पिताजी ने डाल दी है। वे भी यही करते थे। वे भी खिझियाए रहते थे। क्योंकि गांव क्या है, जहां देखो वहीं हनुमान जी बैठे हैं। इस झाड़ के नीचे बैठे हैं, उस झाड़ के नीचे बैठे हैं। हनुमानजी के बैठने में दिक्कत नहीं लगती। कहीं भी पत्थर रख दो, लाल रंग से रंग दो। झंझट खड़ी हो गई। अब ये हनुमान जी हैं, अब अगर न इनको नमस्कार करो तो नाराज हो जायेंगे।
तो मैंने कहा, तुम एक काम करो। तुम एक तीन दिन नियम रखो कि नमस्कार न करोगे हनुमान जी को। बोले कि "अगर नाराज हो गये... तो?"
"वह मेरा जुम्मा। मैं निपट लूंगा। तीन दिन मैं कर लूंगा तुम्हारी तरफ
से नमस्कार। लेकिन तुम तीन दिन... ।"
उन्होंने कहा कि बड़ा मुश्किल होगा। मैंने कहा, तुम कोशिश तो करो। तीन दिन संभव न हो पाया। वे शाम को उसी दिन आये। उन्होंने कहा, मुश्किल है। वह तो याद ही नहीं रहती, एकदम से हाथ झुक जाता है।
अब यह पूजा हुई? यह प्रार्थना हुई? यह तो एक मजबूरी हो गई, एक बेहोशी
हो गई। यह तो एक आदत हो गई; जैसे सिगरेट पीनेवाले को सिगरेट की तलफ लगती है, हाथ खीसे में चला जाता है, पैकेट बाहर निकल आता है, सिगरेट ठोंकने लगता है पैकेट पर। एक यांत्रिक प्रक्रिया हो गई।
जब तुम धर्म को बिना स्वेच्छा के स्वीकार कर लेते हो, आदतवश, संस्कारवश, परंपरावश, तब तुम एक खतरे में पड़ रहे हो, क्योंकि धर्म तो तभी

धर्म होता है जब तुम स्वेच्छा से, सावचेत, सावधानी से स्वीकार करो। धर्म तो तभी धर्म होता है जब तुम्हें जगाये, सुलाये न।
तो तुम दोहरा सकते हो। जैन दोहरा रहा है। "जिन" होना हो तो जीना पड़ेगा; दोहराने से काम न होगा। महावीर के वचन याद कर लेने से कुछ भी न होगा। जीना पड़ेगा। उन्हें फिर से खोजना पड़ेगा कि जीवन की सचाई उनमें है या नहीं। तुम्हें प्रमाण बनना पड़ेगा शास्त्र का। तुम्हें खबर देनी पड़ेगी अपने खुद के अन्वेषण से कि ठीक है, मेरा अन्वेषण भी मुझे वहीं ले आता है जहां महावीर का अन्वेषण ले गया; मैं भी तालमेल पाता हूं; उन्होंने जो कहा, ठीक कहा है; यह मेरा अनुभव भी कहता है--तब तो तुम "जिन" हो पाओगे।
लेकिन अगर तुम दोहराते रहे, तो दोहराते रह सकते हो। तुम जैन बने-बने
सड़ जाओगे।
तुम कहीं पहुंच न पाओगे।
फिर शास्त्रों से हम जो अर्थ लेते हैं, उस अर्थ के लिए भी बड़ी साक्षी भाव-दशा चाहिए, तो ही अर्थ का फूल तुम्हारे भीतर खिलेगा। शब्द तो मिल जाते हैं शास्त्र से, अर्थ कहां से लाओगे? अर्थ तो तुम्हें डालना होगा।
एक रोगी ने अपने डाक्टर से आकर कहा कि बड़ी कठिनाई है; जो आपने कहा था,
हो नहीं पाता। डाक्टर ने कहा कि मैंने ऐसी कोई कठिन बात तुमसे कही न थी। इतना ही तो कहा था कि जो तुम्हारा बच्चा खाता है, वही भोजन तुम लो। इसमें क्या अड़चन है? कुछ दिन तक जो तुम्हारा बच्चा लेता है, वही भोजन तुम लो, तो तुम्हारा शरीर ठीक रास्ते पर आ जायेगा।
उसने कहा कि मैंने प्रयत्न तो किया, पर सफल न हो सका। डाक्टर ने कहा, "क्या बेवकूफी है? इतनी-सी बात तुमसे न हो सकी कि तुम्हारा बच्चा जो खाता है वही तुम खाओ? दूध पीता है तो दूध पीओ। खिचड़ी खाता है तो खिचड़ी खाओ। और जितनी थोड़ी मात्रा में खाता है उतनी ही मात्रा में खाओ। यह भी तुमसे न हो सका?"
उसने कहा कि महाराज, मेरा बच्चा मोमबत्ती, कोयला, मिट्टी, जूते के फीते, ऐसी कौन-सी चीज है जो नहीं खाता! वही तो मैं मरा जा रहा हूं खा-खाकर। मेरी हालत और खराब हो गई है।
थोड़ी सावधानी चाहिए। अर्थ तो तुम डालोगे!
महावीर कहते हैं, उपवास; तुम पढ़ोगे, अनशन। महावीर कहते हैं, सत्य में संयम छिपा है; तुम पढ़ोगे, संयम में सत्य छिपा है। ऐसे चूकते चले जाओगे। फिर तुम अपनी मतलब की बात सदा निकाल लोगे। आदमी अपनी मतलब की बात निकाल लेता है।
मैं जबलपुर बहुत वर्षों तक रहा। एक बूढ़े सिंधी की दुकान थी। पुरानी किताबें, पुराना कागज, खरीदता और बेचता। मैं भी उसकी दुकान पर पुरानी किताबों की तलाश में जाता था। कभी-कभी बड़े महत्वपूर्ण शास्त्र उसकी किताब की दुकान पर से मिल गये। उस सिंधी को... सिंधियों में ऐसी मान्यता थी कि वह कुछ धार्मिक है, वे उसको साईं कहते थे। मैं भी किताबें पुरानी ढ.ूंढते- ढूंढ़ते, सुनता रहता था उसकी बातें; उसके कुछ शिष्य-शागिर्द भी कभी-कभी बैठे रहते थे। एक दिन एक आदमी आया जो फाउन्टेनपेन खरीदकर ले गया था। पुरानी और चीजें भी वह खरीदता-बेचता था। वह आदमी बड़ा नाराज था। उसने कहा कि यह तुमने धोखा दिया। यह तो फाउन्टेनपेन चार आने का भी नहीं है और लिखा है इस पर "मेड इन यू. एस. ए.।" यह है नहीं "अमरीका का बना।"
वह सिंधी नाराज हुआ। उसने कहा, "कहा किसने कि यह अमरीका का बना है?" पर उसने कहा, "इस पर लिखा हुआ हैः मेड इन यू. एस. ए.। तो वह सिंधी नाराज हुआ। उसने कहा, "कोई यू. एस. ए. ने यू. एस. ए. लिखने का ठेका ले रखा है? अरे, यू. एस. ए. का मतलब होता हैः उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन।"
अपने-अपने हिसाब हैं, अपने-अपने मतलब हैं। यू. एस. ए. की चीज खरीदते वक्त उल्हासनगर के सिंधियों को याद रखना। तुम ही तो अर्थ डाल लोगे। शब्द तो बेचारा क्या करेगा! अर्थ तो तुम जोड़ोगे! अर्थ तो तुम निकालोगे!
महावीर की नग्नता हुई--सहज, स्वाभाविक, सहजस्फूर्त।
मेरे एक मित्र हैं जैन-संन्यासी। उनके गांव के पास से गुजरता था तो मैंने गाड़ी रुकवाई। मैंने कहा कि उनको मिलता चलूं, वर्षों से मिला नहीं।

देखा खिड़की से तो वे अपनी छोटी-सी कोठरी में--दूर जंगल में रहते हैं--नग्न टहल रहे थे। जब मैं दरवाजे पर गया और मैंने दस्तक दी तो वे आए तो चादर लपेटे थे। मैंने पूछा, "मामला क्या है? अभी तो मैंने खिड़की से देखा, तुम नग्न थे; चादर क्यों लपेट ली?" वे हंसने लगे। उन्होंने कहा कि जरा अभ्यास कर रहा हूं।
"काहे का अभ्यास कर रहे हो?"
वे अभी ब्रह्मचारी हैं, जैनियों की पहली सीढ़ी पर हैं संन्यास की। मुनि जब नग्न होते हैं, तो वे पांचवीं सीढ़ी हैं। तो उन्होंने कहा, थोड़ा अभ्यास कर रहा हूं। मैंने कहा, कैसे अभ्यास करोगे? उन्होंने कहा, "पहले अकेले में करता हूं। नग्न होने की थोड़ी आदत हो जाये। फिर मित्र, परिचितों के बीच रहूंगा। फिर धीरे-धीरे गांव में जाऊंगा। फिर शहर में भी। ऐसे हिम्मत बढ़ जायेगी। अभी तो बड़ा संकोच लगता है।"
मैंने उनसे पूछा, "तुमने कभी सुना कि महावीर ने ऐसा अभ्यास किया था। नग्नता अभ्यास से आये तो निर्दोष कहां रही? अभ्यास तो हर चीज को दोषी बना देता है। अभ्यास का तो मतलब हुआ--परफार्मेन्स। अभ्यास का तो अर्थ हुआ-- नाटक। यह तुम रिहर्सल कर रहे हो मुनित्व का, मुनि होने का? तैयारी कर रहे हो? यह कोई नाटक है या जीवंत घटना है? माना कि तुम संकोच छोड़ दोगे अभ्यास करने से; अभ्यास से जो संकोच छूट जायेगा उससे क्या निर्दोषता आयेगी? निर्दोषता तो तब आती है जब समझ से संकोच गिरता है, अभ्यास से नहीं।"
समझ अभ्यास बन गई। फिर चूक हो गई। तो "जिन" तो खो गये, जैन हैं।
और ऐसा ही सभी धर्मों के साथ हुआ है। ऐसा ही मैं जो तुमसे कह रहा हूं, मेरे साथ होगा। यह प्रकृति का नियम है। इसलिए इस पर नाराज मत होना। जब तुम्हें समझ में आ जाये तो तुम खिसक जाना इसके घेरे के बाहर, बस। इस पर नाराज होने जैसा कुछ नहीं है। ऐसा सदा होगा। आखिर मैं अपने शब्दों का अर्थ करने कितनी देर बैठा रहूंगा? एक न एक दिन तुम मेरे शब्दों का अर्थ करने के मालिक हो जाओगे। फिर मैं कुछ न कर सकूंगा। तुम जो अर्थ निकालोगे, तुम्हारी मौज।
इसलिए तो इतने धर्मों के संप्रदाय पैदा होते हैं। अब महावीर के भी संप्रदाय हो गये। छोटी-सी संख्या है जैनों की; उसमें भी दिगंबर हैं, श्वेतांबर हैं; फिर श्वेतांबरों में भी स्थानकवासी हैं, और तेरापंथी हैं; और एक गच्छ, दूसरा गच्छ। फिर दिगंबरों में भी तारणपंथी हैं। और छोटे-छोटे पंथ! और उनके झगड़े क्या हैं--बड़े छोटे-छोटे! हंसने जैसे! कुछ मुद्दा नहीं है उनमें।
लेकिन सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि जब सदगुरु जा चुका तो अनुयायी अपने-अपने तरह से अर्थ करेंगे। अर्थों में भेद हो जायेंगे। भेदों के माननेवाले अलग-अलग हो जायेंगे, संप्रदायों में टूट जायेंगे। यह भेद कुछ महावीर के वचनों में नहीं है। यह भेद अर्थ करनेवालों की व्याख्या में है। सब व्याख्याएं तुम्हारी होंगी।
तो क्या उपाय है?
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि अगर तुम्हें कोई जीवित गुरु मिल सके, तो खोज लेना; अगर न मिल सके तो मजबूरी में शास्त्र में उतरना। क्योंकि शास्त्र में तुम अकेले छूट जाओगे। तुम्हीं अर्थ करोगे, तुम्हीं पढ़ोगे। कौन निर्णय देगा कि तुमने जो पढ़ा, ठीक पढ़ा? कि तुमने जो अर्थ किया वह ठीक किया? बहुत बेईमानी की संभावना पैदा हो जाती है, जब तुम अकेले छूट जाते हो। तुम बेईमान हो! अपनी इस बेईमानी के प्रति सावचेत रहना। कहीं ऐसे व्यक्ति को खोजो, जो तुमसे चार कदम भी आगे हो तो भी चलेगा। कम से कम चार कदम तो तुम सुरक्षा से प्रकाश में चल सकोगे! फिर चार कदम के बाद वह काम का न रह जाये, किसी और को खोज लेना।
आदमियों से थोड़े ही बंधना है--सत्य की खोज करनी है! जहां से जितना इशारा मिल जाये, जीवंत, उतना ले लेना और आगे बढ़ते जाना। एक दिन ऐसी घड़ी भी आ जायेगी कि तुम अपना भी प्रकाश पैदा कर लोगे। तब फिर किसी गुरु की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

आखिरी प्रश्नः किसी सुंदर युवती को देखकर जाने क्यों मन उसकी ओर आकर्षित हो जाता है, आंखें उसे निहारने लगती हैं! मेरी उम्र पचास हो गई है, फिर भी ऐसा क्यों होता है? क्या यह वासना है, या प्रेम, या सुंदरता की स्तुति? कृपया मेरा मार्ग-निर्देश करें।

ऐसा होता है निरंतर; क्योंकि जब दिन थे तब दबा लिया। तो रोग बार-बार उभरेगा। जब जवान थे, तब ऐसी किताबें पढ़ते रहे जिनमें लिखा हैः ब्रह्मचर्य ही जीवन है। तब दबा लिया।
जवानी के साथ एक खूबी है कि जवानी के पास ताकत है--दबाने की भी ताकत है। वही ताकत भोग बनती है, वही ताकत दमन बन जाती है। लेकिन जवान दबा सकता है।
मेरे अनुभव में अकसर ऐसी घटना घटती रही है, लोग आते रहे हैं, कि चालीस
और पैंतालीस साल के बाद बड़ी मुश्किल खड़ी होती है, जिन्होंने भी दबाया। क्योंकि चालीस-पैंतालीस साल के बाद, वह ऊर्जा जो दबाने की थी वह भी क्षीण हो जाती है। तो वह जो दबाई गई वासनाएं थीं, वे उभरकर आती हैं। और जब बे-समय आती हैं तो और भी बेहूदी हो जाती हैं।
जवान स्त्रियों के पीछे भागता फिरे, कुछ भी गलत नहीं है; स्वाभाविक है; होना था, वही हो रहा है। बच्चे तितलियों के पीछे दौड़ते फिरें, ठीक है। बूढ़े दौड़ने लगें--तो फिर जरा रोग मालूम होता है। लेकिन रोग तुम्हारे कारण नहीं है, तुम्हारे तथाकथित साधुओं के कारण है--जिनने तुम्हें जीवन को सरलता से जीने की सुविधा नहीं दी है। बचपन से ही जहर डाला गया हैः कामवासना पाप है! तो कामवासना को कभी पूरे प्रफुल्ल मन से स्वीकार नहीं किया। भोगा भी, तो भी अपने को खींचे रखा। भोगा भी, तो कलुषित मन से, अपराधी भाव से; यह मन में बना ही रहा कि पाप कर रहे हैं। संभोग में भी उतरे तो जानकर कि नर्क का इंतजाम कर रहे हैं।
अब तुम सोचो, जब तुम संभोग में उतरोगे और नर्क का भाव बना रहेगा, क्या खाक उतरोगे? संभोग की सुरभि तुम्हें क्या घेरेगी? वह नृत्य पैदा न हो पायेगा। तो तुम बिना उतरे वापिस लौट आओगे। शरीर के तल पर संभोग हो जायेगा; मन के तल पर वासना अधूरी अतृप्त रह जायेगी। मन के तल पर दौड़ जारी रहेगी। तो जब बूढ़े होने लगोगे और शरीर कमजोर होने लगेगा और शरीर की दबाने की पुरानी शक्ति क्षीण होने लगेगी और मौत दस्तक देने लगेगी दरवाजे पर और लगेगा कि अब गये, अब गये--तब ऐसा लगेगा, यह तो बड़ा गड़बड़ हुआ; भोग भी न पाये और चले! डोली तो उठी नहीं, अर्थी सज गई! तो मन बड़े वेग से स्त्रियों की तरफ दौड़ेगा, पुरुषों की तरफ दौड़ेगा।
यह तथाकथित समाज के द्वारा पैदा की गई रुग्ण अवस्था है। बच्चे को उसके बचपन को पूरा जीने दो, ताकि जब वह जवान हो जाये तो बचपन की रेखा भी न रह जाये; ताकि वह पूरा-पूरा जवान हो सके। जवान को पूरा जीने दो, उसे अपने अनुभव से ही जागने दो; ताकि जवानी के जाते-जाते वह जो जवानी की दौड़-धूप थी, आपाधापी थी, मन का जो रोग था, वह भी चला जाये; ताकि बूढ़ा शुद्ध बूढ़ा हो सके। और जब कोई बूढ़ा शुद्ध ब.ूढा होता है तो उससे सुंदर कोई अवस्था नहीं है। लेकिन जब बूढ़े में जवान घुसा होता है, तब एक भूत तुम्हारा पीछा कर रहा है। तब तुम एक प्रेतात्मा के वश में हो। तब तुम्हें बड़ा भटकायेगा। तब तुम्हें बड़ा बेचैन करेगा। और जैसे-जैसे शरीर अशक्त होता जायेगा वैसे-वैसे तुम पाओगे, वेग वासना का बढ़ने लगा।
एक स्त्री के संबंध में मैंने सुना है। वह चालीस से ऊपर की हो चुकी थी। मोटी हो गई थी, बेहूदी हो गई थी, कुरूप हो गई थी। फिर भी बनती बहुत थी। दावत में पास बैठा युवक उसकी बातों से उकता गया था और भाग निकलने के लिए बोला, "क्या आपको वह बच्चा याद है जो स्कूल में आपको बहुत तंग करता था... ?" उसका हाथ पकड़कर स्त्री ने कहा, "अच्छा, तो वह तुम थे?"
उसने कहा, "नहीं, जी नहीं, मैं नहीं। वे मेरे पिताजी थे।"
एक उम्र है तब चीजें शुभ मालूम होती हैं। एक उम्र है तब चीजों को जीना जरूरी है। उसे अगर न जी पाये तो पीछा चीजें करेंगी। और तब चीजें बड़ी वीभत्स हो जाती हैं।

एक सिनेमा-गृह में ऐसा घटा। एक महिला पास में बैठे एक बदतमीज बूढ़े से तंग आ गई थी, जो आधे घंटे से सिनेमा देखने की बजाय उसे ही घूरे जा रहा था। आखिर उसने फुसफुसाकर उस आदमी से कहा, "सुनिए, आप अपना एक फोटो मुझे देंगे?"
आदमी बाग-बाग हो गयाः "जरूर जरूर! एक तो मेरी जेब में ही है। लीजिए! हां, क्या कीजिएगा मेरे फोटो का?"
उसने कहा, "अपने बच्चों को डराऊंगी।"
सावधान रहना। वही जो एक समय में शुभ है, दूसरे समय में अशुभ हो जाता है। वही जो एक समय में ठीक था, सम्यक था, स्वभाव के अनुकूल था, वही दूसरे समय में अरुचिपूर्ण हो जाता है, बेहूदा हो जाता है।
जिन मित्र ने पूछा है, उनको थोड़ा जागकर अपने मन में पड़ी हुई, दबी हुई वासनाओं का अंतर्दर्शन करना होगा। अब मत दबाओ! कम से कम अब मत दबाओ! अभी तक दबाया और, उसका यह दुष्फल है। अब इस पर ध्यान करो। क्योंकि अब उम्र भी नहीं रही कि तुम स्त्रियों के पीछे दौड़ो या मैं तुमसे कहूं कि उनके पीछे दौड़ो। वह बात जंचेगी नहीं। वे तुमसे फोटो मांगने लगेंगी। अब जो जीवन में नहीं हो सका, उसे ध्यान में घटाओ।
अब एक घंटा रोज आंख बंद करके, कल्पना को खुली छूट दो। कल्पना को पूरी खुली छूट दो। वह किन्हीं पापों में ले जाये, जाने दो। तुम रोको मत। तुम साक्षी-भाव से उसे देखो कि यह मन जो-जो कर रहा है, मैं देखूं। जो शरीर के द्वारा नहीं कर पाये, वह मन के द्वारा पूरा हो जाने दो। तुम जल्दी ही पाओगे कुछ दिन के... एक घंटा नियम से कामवासना पर अभ्यास करो, कामवासना के लिए एक घंटा ध्यान में लगा दो, आंख बंद कर लो और जो-जो तुम्हारे मन में कल्पनाएं उठती हैं, सपने उठते हैं, जिनको तुम दबाते होओगे निश्चित ही--उनको प्रगट होने दो! घबड़ाओ मत, क्योंकि तुम अकेले हो। किसी के साथ कोई तुम पाप कर भी नहीं रहे। किसी को तुम कोई चोट पहुंचा भी नहीं रहे। किसी के साथ तुम कोई अभद्र व्यवहार भी नहीं कर रहे कि किसी स्त्री को घूरकर देख रहे हो। तुम अपनी कल्पना को ही घूर रहे हो। लेकिन पूरी तरह घूरो। और उसमें कंजूसी मत करना।
मन बहुत बार कहेगा कि "अरे, इस उम्र में यह क्या कर रहे हो!" मन बहुत बार कहेगा कि यह तो पाप है। मन बहुत बार कहेगा कि शांत हो जाओ, कहां के विचारों में पड़े हो!
मगर इस मन की मत सुनना। कहना कि एक घंटा तो दिया है इसी ध्यान के लिए,
इस पर ही ध्यान करेंगे। और एक घंटा जितनी स्त्रियों को, जितनी सुंदर स्त्रियों को, जितना सुंदर बना सको बना लेना। इस एक घंटा जितना इस कल्पना- भोग में डूब सको, डूब जाना। और साथ-साथ पीछे खड़े देखते रहना कि मन क्या- क्या कर रहा है। बिना रोके, बिना निर्णय किये कि पाप है कि अपराध है। कुछ फिक्र मत करना। तो जल्दी ही तीन-चार महीने के निरंतर प्रयोग के बाद हलके हो जाओगे। वह मन से धुआं निकल जायेगा।
तब तुम अचानक पाओगेः बाहर स्त्रियां हैं, लेकिन तुम्हारे मन में देखने की कोई आकांक्षा नहीं रह गई। और जब तुम्हारे मन में किसी को देखने की आकांक्षा नहीं रह जाती, तब लोगों का सौंदर्य प्रगट होता है। वासना तो अंधा कर देती है, सौंदर्य को देखने कहां देती है! वासना ने कभी सौंदर्य जाना? वासना ने तो अपने ही सपने फैलाये।
और वासना दुष्पूर है; उसका कोई अंत नहीं है। वह बढ़ती ही चली जाती है।
एक बहुत मोटा आदमी दर्जी की दुकान पर पहुंचा। दर्जी ने अचकन के लिए बड़ी कठिनाई से उसका नाप लिया। फिर एक सौ रुपये की सिलाई मांगी। वे महाशय बोले, "टेलीफोन पर तो तुमने पच्चीस रुपये सिलाई कही थी, अब सौ रुपये? हद्द हो गई! बेईमानी की भी कोई सीमा है!"
दर्जी ने कहा, "महाराज! वह अचकन की सिलाई थी, यह शामियाने की है।"
अचकनें शामियाने बन जाती हैं। वासना फैलती ही चली जाती है। तंबू बड़े
से बड़ा होता चला जाता है। अचकन तक ठीक था, लेकिन जब शामियाना ढोना पड़े चारों तरफ तो कठिनाई होती है।

मैं अड़चन समझता हूं। लेकिन अड़चन का तुम मूल कारण ख्याल में ले लेनाः तुमने दबाया है। तुमने दमन किया है। तुम गलत शिक्षा और गलत संस्कारों के द्वारा अभिशापित हुए हो। तुमने जिन्हें साधु-महात्मा समझा है, तुमने जिनकी बातों को पकड़ा है--न वे जानते हैं, न उन्होंने तुम्हें जानने दिया है।
मेरे पास साधु संन्यासी आते हैं तो कहते हैं, "एकांत में आपसे कुछ कहना है।" मैं कहता हूं, सभी के सामने कह दो; एकांत की क्या जरूरत है? वे कहते हैं कि नहीं, एकांत में। अब तो मैंने एकांत में मिलना बंद कर दिया है। क्योंकि एकांत में... जब भी साधु-संन्यासी आयें तो वे एकांत ही मांगते हैं। और एकांत में एक ही प्रश्न है उनका कि यह कामवासना से कैसे छुटकारा हो! कोई सत्तर साल का हो गया है, कोई चालीस साल से मुनि है--तो तुम क्या करते रहे चालीस साल? कहते हैं, क्या बतायें, जो-जो शास्त्र में कहा है, जो-जो सुना है--वह करते रहे हैं। उससे तो हालत और बिगड़ती चली गई है।
मवाद को दबाया है, निकालना था। घाव पर तुमने ऊपर से मलहम-पट्टी की है; आपरेशन की जरूरत थी। तो जिस मवाद को तुमने भीतर छिपा लिया है, वह अब तुम्हारी रग-रग में फैल गई है; अब तुम्हारा पूरा शरीर मवाद से भर गया है। तो थोड़ी सावधानी बरतनी पड़ेगी। आपरेशन से गुजरना होगा। और तुम्हीं कर सकते हो वह आपरेशन; कोई और कर नहीं सकता। तुम्हारा ध्यान ही तुम्हारी शल्यक्रिया होगी। तब एक घंटा रोज... । तुम चकित होओगे, अगर तुमने एक-दो महीने भी इस प्रक्रिया को बिना किसी विरोध के भीतर उठाये, बिना अपराध भाव के निश्चिंत मन से किया, तो तुम अचानक पाओगेः धुएं की तरह कुछ बातें खो गईं! महीने दो महीने के बाद तुम पाओगेः तुम बैठे रहते हो, घड़ी बीत जाती है, कोई कल्पना नहीं आती, कोई वासना नहीं उठती। तब तुम अचानक पाओगेः अब तुम चलते हो बाहर, तुम्हारी आंखों का रंग और! अब तुम्हें सौंदर्य दिखाई पड़ेगा! क्योंकि सब सौंदर्य परमात्मा का सौंदर्य है। स्त्री का, पुरुष का कोई सौंदर्य होता है? फूल का, पत्ती का, कोई सौंदर्य होता है? सौंदर्य कहीं से भी प्रगट हो; सौंदर्य परमात्मा का है, सौंदर्य सत्य का है। लेकिन सौंदर्य को देख ही वही पाता है, जिसने वासना को अपनी आंख से हटाया। वासना का पर्दा आंख पर पड़ा रहे, तुम सौंदर्य थोड़े ही देखते हो! सौंदर्य तुम देख ही नहीं सकते।
वासना कुरूप कर जाती है सभी चीजों को। इसलिए तुमने जिसको भी वासना से देखा, वही तुम पर नाराज हो जाता है। कभी तुमने ख्याल किया? किसी स्त्री को तुम वासना से देखो, वही बेचैन हो जाती है। किसी पुरुष को वासना से देखो, वही थोड़ा उद्विग्न हो जाता है। क्योंकि जिसको भी तुम वासना से देखते हो, उसका अर्थ ही क्या हुआ? उसका अर्थ हुआ कि तुमने उस आदमी या उस स्त्री को कुरूप करना चाहा। जब भी तुम किसी को वासना से देखते हो, उसका अर्थ हुआ कि तुमने किसी का साधन की तरह उपयोग करना चाहा; तुम किसी को भोगना चाहते हो। और प्रत्येक व्यक्ति साध्य है, साधन नहीं है। तुम किसी को चूसना चाहते हो? तुम किसी को अपने हित में उपयोग करना चाहते हो? तुम किसी के व्यक्तित्व को वस्तु की तरह पद-दलित करना चाहते हो?
वस्तुओं का उपयोग होता है, व्यक्तियों का नहीं। लेकिन जब तुम वासना
से किसी को देखते हो, व्यक्ति खो जाता है, वस्तु हो जाती है। इसलिए वासना की आंख को कोई पसंद नहीं करता। जब वासना खो जाती है तो सौंदर्य का अनुभव होता है। और जब सौंदर्य का अनुभव होता है, तो तुम्हारे भीतर प्रेम का आविर्भाव होता है।
प्रेम उस घड़ी का नाम है, जब तुम्हें सब जगह परमात्मा और उसका सौंदर्य दिखाई पड़ने लगता है। तब तुम्हारे भीतर जो ऊर्जा उठती है, जो अहर्निश गीत उठता है--वही प्रेम है। अभी तो तुमने जिसे प्रेम कहा है, उसका प्रेम से कोई दूर का भी संबंध नहीं है। वह प्रेम की प्रतिध्वनि भी नहीं है। वह प्रेम की प्रतिछाया भी नहीं है। वह प्रेम का विकृत रूप भी नहीं है। वह प्रेम से बिल्कुल उलटा है।
इसलिए तो तुम्हारे प्रेम को घृणा बनने में देर कहां लगती है! अभी प्रेम था, अभी घृणा हो गई। एक क्षण पहले जो मित्र था, क्षणभर बाद दुश्मन हो

गया। क्षणभर पहले जिसके लिए मरते थे, क्षणभर बाद उसको मारने को तैयार हो गये।
तुम्हारा प्रेम प्रेम है? घृणा का ही बदला हुआ रूप मालूम पड़ता है। प्रेम सिर्फ तुम्हारी बातचीत है। प्रेम तो उनका अनुभव है जिनकी आंख से वासना गिर गई; जिन्हें सौंदर्य दिखाई पड़ा; जिसे सब तरफ उसके नृत्य का अनुभव हुआ; जिसे सब तरफ परमात्मा की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी। फिर प्रेम का आविर्भाव होता है। प्रेम यानी प्रार्थना। प्रेम यानी पूजा। प्रेम यानी अहोभाव, धन्यता, कृतज्ञता।
नहीं, अभी तुम्हें प्रेम का अनुभव नहीं हुआ। अभी तो तुमने वासना को भी नहीं जाना, प्रार्थना को तुम जानोगे कैसे? वासना को जानो, ताकि वासना से मुक्त हो जाओ। जब मैं निरंतर तुमसे कहता हूं, वासना को जानो, तो मैं यही कह रहा हूं कि वासना से मुक्त होने का एक ही उपाय हैः उसे जान लो। जिसे हम जान लेते हैं, उसी से मुक्ति हो जाती है।
सत्य बड़ा क्रांतिकारी है। जान लेने के अतिरिक्त और कोई रूपांतरण नहीं है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
नौवां प्रवचन

अनुकरण नहीं--आत्म-अनुसंधान

पहला सूत्र:
अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ।।
"आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है। और आत्मा ही सुख-दुख का भोक्ता, विकर्ता है। सत्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा अपना ही मित्र और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा अपना ही शत्रु है।"
महावीर के चिंतन का सारा विश्व आत्मा है। महावीर के उड़ने का सारा आकाश आत्मा है। आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आत्मा से अन्यथा को कोई भी स्थान महावीर की धारणा में नहीं है। न संसार का कोई मूल्य है, न परमात्मा का कोई मूल्य है--दूसरे का कोई मूल्य ही नहीं है। मूल्य है तो अपना।
अगर ठीक से कहें और गलत न समझें तो महावीर से बड़ा स्वार्थी आदमी कभी हुआ नहीं। लेकिन गलत मत समझ लेना।
स्वार्थ का अर्थ होता हैः अपना अर्थ, अपना प्रयोजन। स्वार्थ का अर्थ होता हैः अपना हित, अपना कल्याण, अपना मंगल। जो स्वार्थ को पूरा साध लेते हैं उनसे परार्थ अपने आप सध जाता है। क्योंकि जो अपने हित में करता है वह दूसरे के अहित में कभी कुछ कर ही नहीं पाता। क्योंकि जिसने अपने हित को पहचानना शुरू किया, वह धीरे-धीरे जानने लगता हैः जो अपने हित में है वह दूसरे के हित में भी है; और जो अपने हित में नहीं है, वह दूसरे के हित में भी नहीं है। इससे विपरीत भी, कि जो दूसरे के हित में नहीं है, वह अपने हित में नहीं हो सकता; और जो दूसरे के हित में है वही अपने हित में हो सकता है। क्योंकि दूसरा भी मेरे जैसा ही आत्मा है। मेरे और दूसरे के स्वभाव में रत्तीभर भेद नहीं है। तो जो मुझे प्रीतिकर है वही दूसरे को प्रीतिकर है। जो दूसरे को प्रीतिकर है वही मुझे प्रीतिकर है। मैं और दूसरा दो अलग-अलग आयाम नहीं--एक ही चैतन्य के दो रूप हैं; एक ही स्वभाव के दो संघट हैं।
पर महावीर की शिक्षा परम स्वार्थ की है। परार्थ की तो वे बात ही नहीं करते। परार्थ की वे बात ही कैसे करेंगे! "पर" को तो वे कहते हैं, ख्याल ही छोड़ दो। परार्थ के लिए भी पर का ख्याल रखा तो पर से उलझे रह जाओगे। पर ही तो संसार है। दूसरे पर ध्यान रखना ही तो संसार है। दूसरे से अपने ध्यान को मुक्त कर लेना समाधि है। अपने पर लौट आए, अपने घर आ गए। अपना ध्यान अपने में ही लीन कर लिया। अपने से पार अब कुछ भी न बचा, जिसका कोई मूल्य है। इसलिए तो महावीर ने परमात्मा को स्वीकार न किया। क्योंकि परमात्मा को स्वीकार करने का तो अर्थ ही होता है, दूसरा महत्वपूर्ण बना ही रहेगा। वस्तुओं से छूटेंगे, दुकान से छूटेंगे तो मंदिर महत्वपूर्ण हो जाएगा। धन से छूटेंगे तो धर्म महत्वपूर्ण हो जाएगा। पद से छूटेंगे तो परमात्मा का पद, परमपद, उसकी आकांक्षा पैदा हो जाएगी। लेकिन हर हालत में दूसरा महत्वपूर्ण बना रहेगा। और महावीर का गहरा विश्लेषण यह है कि जब तक दूसरा है तब तक संसार है।
जब तुम अकेले हो--इतने अकेले कि तुम्हें अकेलेपन का पता भी नहीं चलता; अगर अकेलेपन का पता चलता हो तो दूसरा अभी मौजूद है। अकेलेपन का पता तभी चलता है जब दूसरे की याद आती है, जब दूसरे की आकांक्षा जगती है। दूसरे की कमी मालूम होती है तो अकेलेपन का पता चला है। अगर दूसरा बिल्कुल ही खो गया है, तुम्हें दूसरे की याद भी नहीं आती तो अकेलेपन का पता कैसे चलेगा? अकेलापन तब परम हो जाता है, पूर्ण हो जाता है। उसको महावीर ने "कैवल्य" कहा है। वह अकेलेपन की परिपूर्णता है।
तुम इतने अकेले हो कि अकेलेपन का भी पता नहीं चलता। पता चलाने को तो दूसरे की थोड़ी-सी मौजूदगी चाहिए--छाया सही, स्मृति सही। अपने घर की तुम्हें दीवाल बनानी होती है, तो पड़ोसी चाहिए; पड़ोसी के बिना कहां तुम सीमा-रेखा खींचोगे? पड़ोसी न भी प्रवेश कर सके तुम्हारी भूमि में तो भी

पड़ोसी के बिना तुम अपनी भूमि किस भूमि को कहोगे? तो जहां तक अकेलेपन का पता चले वहां तक अकेलापन शुद्ध नहीं हुआ--दूसरा मौजूद है; किसी अंधेरे कोने में खड़ा है; दूर सही पर मौजूद है। उसकी भनक पड़ेगी, उसकी छाया होगी; प्रतिध्वनि होगी।
इसे समझना। आत्मवान तुम तभी हो सकोगे, जब दूसरे की छाया की भी जरूरत तुम्हारी परिभाषा के लिए न रह जाए। तभी तुम आत्मा हो जब तुम दूसरे से मुक्त हो।
अगर तुम्हें अपनी आत्मा की अनुभूति के लिए भी दूसरे का सहारा लेना पड़ता है तो वह अनुभूति भी निर्भर हो गई, वह अनुभूति भी सांसारिक हो गई। इसलिए आत्मा की गहनतम स्थिति में "मैं" का भी पता न चलेगा, क्योंकि "मैं" के लिए तो "तू" का होना जरूरी है। "तू" के बिना "मैं" का क्या अर्थ? कैसे कहोगे "मैं?" जब भी कहोगे "मैं", "तू" आ जाएगा; "तू" पीछे के दरवाजे से प्रवेश कर जाएगा।
इसलिए आत्मा का अर्थ अहंकार मत समझना, अस्मिता मत समझना। आत्मा तो तभी परिपूर्ण होती है जब "मैं" का भी भाव विलीन हो जाता है। न कोई "मैं" बचता, क्योंकि बच ही नहीं सकता--"तू" ही नहीं बचा। कोई पर नहीं बचता, तभी तुम शुद्ध होते हो; इतने अकेले होते हो कि तुम्हीं पूरा आकाश--असीम--होते हो।
महावीर परम स्वार्थी हैं।
सभी धर्म अपनी पराकाष्ठा में स्वार्थी होते हैं; क्योंकि धर्म का बुनियादी आधार व्यक्ति है, समाज नहीं। यहीं तो राजनीति और धर्म का फर्क है। यहीं तो मार्क्स और महावीर का फर्क है। दूसरा महत्वपूर्ण है, तो समाज। मैं अकेला भर महत्वपूर्ण हूं, तो व्यक्ति। इससे तुम यह मत समझ लेना कि महावीर समाज विरोधी हैं। महावीर समाज से मुक्त हैं, विरोधी नहीं। और तुम इससे यह भी मत समझ लेना कि मार्क्स समाज का पक्षपाती है। समाज में है, लेकिन समाज का पक्षपाती नहीं है। यह जरा जटिल है। विरोधाभास मालूम होगा। इसे फिर से मैं दोहरा दूं। महावीर अपने स्वार्थ को इतनी गहनता से साधते हैं कि उनके स्वार्थ में सबका स्वार्थ सध ही जाता है; उसको अलग से साधने कि जरूरत नहीं रह जाती। जहां महावीर विचरण करते हैं, वहां भी सुख की किरणें छिटकने लगती हैं। जहां वे मौजूद होते हैं, वहां भी आनंद की लहरें बिखरने लगती हैं।
जो आनंदित है, वह आनंद की लहरें अपने चारों तरफ पैदा करता है। जो दुखी है, वह दुख की लहरें पैदा करता है। तुम दुखी हो, तो तुम लाख चाहो कि दूसरे को सुख दे दूं, दोगे कहां से? लाओगे कहां से? अपने लिए न जुटा पाए, दूसरे को कहां दोगे? दूसरे को तो देने की संभावना तभी है, जब इतना हो तुम्हारे पास कि तुम्हारी समझ में न आता हो कि क्या करें; जब इतना हो तुम्हारे पास, बाढ़ की तरह कि कूल-किनारों को तोड़कर बहा जाता हो; तुम इतने भरे हो आनंद से कि न लुटाओगे तो करोगे क्या? बादल जब भर जाता है जल से, तो बरसता है। फूल जब भर जाता है गंध से, तो गंध को लुटाता है। दीया जब रोशनी से जगमगाता है, भरा होता है, तो रोशनी लुटाता है। करोगे क्या?
जो व्यक्ति आनंद को उपलब्ध हुआ, वह एक आनंदित समाज का आधार बनता है-- लेकिन चेष्टा से नहीं--अनायास। सहज ही।
सोचकर नहीं, विचारकर नहीं। वह कोई समाजवादी थोड़े ही होता है। ऐसा घटता है। जब भीतर के केंद्र पर अहर्निश वर्षा होती है, तो बाढ़ आती है। अमृत बरसता है तो बाढ़ आती है। फिर बाढ़ आती है तो लुटना भी शुरू हो जाता है।
जो दूसरे को सुखी करने की चेष्टा में लगा है, उस पर जरा गौर करना। तुमने भी दूसरे को सुखी करने की चेष्टा की है--कर पाए? कर इतना ही पाए कि उसे और दुखी कर दिया। पति पत्नी को सुखी करने की चेष्टा कर रहा है। पत्नी से पूछो। पत्नी पति को सुखी करने की चेष्टा कर रही है। पति से पूछो। मां- बाप बेटे-बच्चों को सुखी करने की चेष्टा कर रहे हैं। बच्चों से पूछो। तुम चकित होओगे!
राजनेता समाज को सुखी करने की कोशिश कर रहे हैं। समाज से पूछो। राजनेताओं से मत पूछो। लोगों से पूछो। कौन किसको सुखी कर पा रहा है? सभी

सभी को सुखी कर रहे हैं और संसार में सिवाय दुख के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता! सभी, सभी को आनंद देने की चेष्टा में संलग्न हैं; मिलता है जो, उस पर तो ख्याल करो! तुम्हारी अभिलाषा से थोड़े ही आनंद बंटेगा--होगा तो बंटेगा। और होने की यात्रा तो निजी है--आत्मा की है।
तुम वही दे सकोगे जो तुम हो जाओगे। इसके पहले कि तुम दो, हो जाओ। क्योंकि हम अपने को ही बांट सकते हैं, और तो कुछ बांटने को नहीं है। और अपने को भी हम तभी बांट सकते हैं, जब अनंत हो जाएं; नहीं तो कंजूसी होगी, डर लगेगा कि बांटा तो कुछ कमी हो जाएगी, छोटे हो जाएंगे।
तो जब तक तुम इतने आत्मवान न हो जाओ कि तुम्हारी आत्मा का कोई किनारा
न हो, तुम तटहीन सागर न हो जाओ, तब तक तुम बांट न सकोगे, तब तक कृपणता जारी रहेगी। तो यह विरोधाभास ख्याल रखना।
जो दूसरों की चिंता करते ही नहीं, क्योंकि चिंता करना ही भूल गए हैं
जो दूसरे को सुख देना ही नहीं चाहते, न देने का विचार करते हैं, क्योंकि एक सत्य उनकी समझ में आ गया है कि अपने पास जो नहीं है वह हम दे न सकेंगे; जो अपने ही सुख को जन्माने की सतत साधना में लगे हैं, क्योंकि उन्हें पता चल गया है, जो अपने भीतर होगा, बढ़ेगा, बहेगा भी, बिखरेगा भी, फैलेगा भी, बंटेगा भी, वह अपने से हो जाता है, उसका कोई हिसाब नहीं रखना होता--ऐसे सभी व्यक्तियों ने परम स्वार्थ की बात कही है।
मजहब यानी मतलब। धर्म यानी स्वार्थ। लेकिन स्वार्थ इतना महिमापूर्ण
है कि परार्थ उसमें अपने-आप सध जाता है।
इसलिए तुम एक अनूठी बात देखोगे, महावीर के धर्म में सेवा का कोई स्थान नहीं है। और अगर जैनियों के पास सेवा शब्द भी है, तो उसका अर्थ उनका बड़ा अनूठा है। जब वे जैन मुनि के दर्शन को जाते हैं तो वे कहते हैं, सेवा को जा रहे हैं। यह सेवा का बड़ा अनूठा अर्थ है। जिसको तुम्हारी सेवा की कोई भी जरूरत नहीं है, उसकी सेवा को जा रहे हैं। कोढ़ी को जरूरत है, बीमार को जरूरत है, दुखी को जरूरत है। इसलिए ईसाइयत का दावा ठीक मालूम पड़ता है कि पूरब में पैदा हुए सभी धर्म स्वार्थी हैं; इनमें सेवा की कोई जगह नहीं है। न अस्पताल खोलने की उत्सुकता है, न स्कूल चलाने की उत्सुकता है। लोग आंखें बंद करके ध्यान कर रहे हैं--यह कैसा धर्म है!
ईसाइयत की बात में सचाई है। पर बात बुनियादी रूप से भ्रांत है। ईसाइयत धर्म न बन पायी, राजनीति रही, समाजशास्त्र रहा। सेवा तो ईसाइयत ने की, लेकिन जो सेवा करने गए उनके पास कुछ देने को न था। बांटने को तो गए, बड़ी शुभ-शुभ आकांक्षा थी। लेकिन कहते हैं, नर्क का रास्ता शुभाकांक्षाओं से पटा पड़ा है। गए तो सेवा करने, गर्दनें काट दीं। ईसाइयत ने तलवारें उठा लीं। ईसाइयत ने जितने लोग मारे, किसी ने नहीं मारे। जीसस ने तो कहा था, कोई चांटा मारे तो दूसरा गाल कर देना; लेकिन सेवा की धुन ऐसी चढ़ी कि अगर दूसरा सेवा करवाने को राजी न हो तो खतम करो उसे, सेवा करके ही रहेंगे। सेवा सीढ़ी बन गई स्वर्ग चढ़ने की। दूसरे से प्रयोजन न रहा।
कभी-कभी मुझे डर लगता है। कभी ऐसी दुनिया होगी, न कोढ़ी होगा, न अंधा होगा, फिर ईसाइयत क्या करेगी? धर्म खतम! नहीं, खतम न होगा। वे अंधे को पैदा करेंगे, कोढ़ी को पैदा करेंगे--सेवा तो करनी ही पड़ेगी, नहीं तो मोक्ष कैसे जाएंगे! स्वर्ग कैसे जाएंगे!
महावीर, बुद्ध, कृष्ण, किसी के धर्म में सेवा की कोई जगह नहीं है। कारण? क्या इनके हृदय में प्रेम पैदा न हुआ? क्या इनके भाव करुणा के न थे? थे। लेकिन उन्होंने एक बड़ा गहरा सत्य जाना था कि तुम दूसरे को सुख देने की चेष्टा से सुख नहीं दे सकते--दुख ही दोगे।
ईसाइयत युद्ध लायी, दुख लायी। कौन सुखी हुआ! कपड़े दिए होंगे लोगों को, दवा भी दी होगी; लेकिन आत्माएं खंडित कर डालीं। रोटी के सहारे, दवा के सहारे, लोगों के प्राण तोड़ डाले, उनके जीवन की दिशा भटका दी।
महावीर का धर्म कहता हैः तुम हो जाओ परिपूर्ण! तुम खिलो दीये की भांति! तुम बिखरो! फिर तुम्हारे जीवन में होता रहेगा सब जिससे दूसरे को लाभ होगा। मगर वह लाभ प्रयोजन नहीं है। वह लाभ लक्ष्य नहीं है। वह लाभ परिणाम है। वह सहज परिणाम है। अपने से होता है। सूरज निकलता है तो सोचता

थोड़े ही है, रात हिसाब थोड़े ही लगाता है कि कितने फूल खिलाने हैं, कि कितने पौधों को प्राण देने हैं, कि कितने पक्षियों के कंठ में गीत बनाना है, कि कितने मोर नाचेंगे, कि कितनी आंखें प्रकाश से भरेंगी! यह कोई हिसाब लगाता है! सूरज से पूछो तो शायद उसे पता भी न हो कि फूल भी खिलते हैं मेरे कारण, कि सोए हुए लोग जगते हैं मेरे कारण, कि पक्षी गीत गाने लगते हैं, कि भोर होती है मेरे कारण! उसे पता भी न होगा। यह स्वाभाविक, सहज परिणाम है। सूरज करता है, ऐसा नहीं; ऐसा सूरज की मौजूदगी में होता है। सूरज तो केटालिटिक है। उसकी मौजूदगी काफी है।
जब भी कोई व्यक्ति महावीर जैसा स्वार्थ को उपलब्ध होता है--स्वार्थ यानी आत्मा को; जिस दिन कोई अपने में रम जाता है--उसके आसपास बहुत पक्षी गीत गाते हैं। उसके आपपास बे-मौसम फूल खिल जाते हैं। उसके आसपास सोए हुओं की आंखें खुल जाती हैं। उसके आसपास जन्मों-जन्मों से भटके हुए लोग मार्ग पर आ जाते हैं। कोई अनजाना तार खींचने लगता है।
लेकिन महावीर जैसा व्यक्ति कुछ करता नहीं; करने की भाषा ही भूल जाता है। होने की भाषा। होता है, करता नहीं। सेवा करता नहीं, सेवा होती है। यह कोई कृत्य नहीं है, यह उसकी भाव-दशा है।
इसलिए इस बात को याद रखना कि महावीर के लिए आत्मा से पार कुछ भी नहीं है। जो भी आत्मा के पार है, वह भटकानेवाला है। अपने से बाहर जिसने देखने की कोशिश की, वह संसार में गया; अपने से भीतर जिसने देखने की कोशिश की, वह मोक्ष में।
तो महावीर कहते हैंः आत्मा की तीन दशाएं हैं। एक बहिरात्मा, जिसको दूसरा दिखाई पड़ता है, जिसकी नजर दूसरे पर लगी है। फिर वह दूसरा कोई भी हो। धन हो कि पद हो, कि स्त्री हो कि पुरुष हो, कि परमात्मा हो, वह दूसरा कोई भी हो, बेशर्त, दूसरे पर आंख लगी है, वह आदमी बहिरात्मा। इसलिए तुम जब मंदिर जाते हो पूजा करने, तब महावीर तुमको बहिरात्मा कहेंगे। पूजा करने और मंदिर गए! नजर बाहर रखी! फूल-थाल सजाए! पूजा करने बाहर गए! मंत्रोच्चार किए। उच्चार बाहर हुआ! तुम बहिरात्मा! कहीं सिर झुकाया, किन्हीं चरणों में सिर रखा, लेकिन चरण बाहर थे, तो तुम बहिरात्मा। अभी तुम्हें भीतर आना होगा। अभी तुम आत्मा की सब से दीन दशा में हो। आत्मा की दरिद्रतम अवस्था जो है, "सर्वहारा", वह है बहिरात्मा--बाहर जाता हुआ व्यक्ति। जितना बाहर जाता है, उतना ही भीतर के स्वर दूर होते जाते हैं, भीतर का संगीत खोता चला जाता है। जितना बाहर जाता है, उतनी ही स्वभाव से जड़ें उखड़ जाती हैं, उतना ही दुख, उतनी ही क्लांति, उतनी ही थकावट, उतनी ही ऊब, उतना ही जीवन भार, बोझिल हो जाता है।
दूसरी दशा, महावीर कहते हैं, समझो लौटो घर--अंतरात्मा। जिसने दूसरे की तरफ पीठ कर ली, नजर अपनी तरफ कर ली। अभी जहां हम खड़े हैं वहां दूसरे की तरफ नजर है, पीठ अपनी तरफ। हम अपनी ही तरफ पीठ किए हुए हैं--यह सांसारिक की दशा है। धार्मिक की--उसने पीठ संसार की तरफ की, सन्मुख हुआ अपने, अपनी तरफ चला, अब ध्यान अपने पर है। इसी को महावीर "सामायिक" कहते हैं। इसी को योग "ध्यान" कहता है। अब अपनी तरफ लौटने लगे। फिर एक दिन जब पहुंच गए, अपने में पहुंच गए, जिसके आगे जाने की कोई जगह न रही, ठहर गए उस बिंदु पर जहां से चले थे, जो स्रोत था जीवन का, वर्तुल वहीं आकर पूरा हो गया--तो फिर अब अंतरात्मा भी कहना ठीक नहीं। क्योंकि अंतरात्मा तो वह है जो अपनी तरफ नजर किए है। लेकिन अपने से अभी फासला है। मुड़ा है घर की तरफ, लेकिन घर अभी दूर है, रास्ता बीच में है। फिर घर ही पहुंच गया, तो अब तो अपने में और अपनी नजर में कोई फासला न रहा। अब तो स्वयं का होना और स्वयं को देखना एक ही हो गए। अब दो न रहे। अब तो डुबकी लग गई। इस अवस्था को महावीर कहते हैंः परमात्मा। परमात्मा महावीर के लिए अवस्था है--तुम्हारे अंतर्तम की। दूसरों के लिए परमात्मा बाहर, कहीं स्वर्ग, कहीं आकाश में बैठा है; महावीर के लिए अंतर-आकाश में।
महावीर ने बड़ी से बड़ी क्रांतिकारी उदघोषणा की है कि तुम परमात्मा हो।
जब तुम नहीं जानते हो तब भी हो। इससे क्या फर्क पड़ता है! जब तुम्हें पता नहीं है, तब भी हो। भेद सिर्फ पता का है। महावीर ने मनुष्य को अंतिम इकाई

माना। मनुष्य की महिमा ऐसी किसी व्यक्ति ने कभी न गायी थी। मनुष्य के ऊपर कुछ न कुछ था।
चंडीदास का बड़ा प्रसिद्ध वचन हैः
साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाईं।
चंडीदास ने जरूर महावीर से लिया होगा। या चंडीदास के भीतर भी वैसी ही भाव-ऊर्मि उठी होगी, जैसी महावीर के भीतर। चंडीदास कहते हैंः साबार ऊपर मानुस सत्य, सब सत्यों के ऊपर मनुष्य का सत्य है; ताहार ऊपर नाईं, उसके ऊपर कुछ भी नहीं।
इससे बड़ी और महिमा, इससे बड़ा गुणगान न हो सकता था।
महावीर ने परमात्मा को इनकार किया, ताकि आत्मा को परम पद दिया जा सके। क्योंकि परमात्मा रहेगा तो आत्मा दोयम रहेगी, नंबर दो रहेगी। परमात्मा रहेगा तो नजर दूसरे पर ही रहेगी। लाख उपाय करो, नजर अपने पर न आ पाएगी। यहीं पूरब और पश्चिम की मनीषा का फर्क स्पष्ट होता है। नीत्से भी इसी तर्क के करीब पहुंच गया था जहां महावीर पहुंचे। सौ वर्ष पहले नीत्से भी करीब-करीब इसी घटना के आ गया, जहां उसे एक बात समझ में आने लगी कि ईश्वर के रहते मनुष्य परिपूर्ण स्वतंत्र न हो सकेगा। कोई ऊपर रहेगा। कोई नजर कौंधती ही रहेगी। कोई जांचता ही रहेगा। कोई मालकियत जतलाता ही रहेगा। ठीक वहीं उसी बिंदु पर जहां महावीर पहुंचे, नीत्से भी पहुंचा; लेकिन तब रास्ते अलग हो गए। महावीर तो विमुक्त हुए, नीत्से विक्षिप्त हुआ। क्या फर्क पड़ गया? नीत्से ने यह बात तो समझ ली कि परमात्मा नहीं होना चाहिए, लेकिन बात दूसरी न समझ पाया। यह तो निषेधात्मक अंग हुआ कि परमात्मा न होना चाहिए। दूसरी बात न समझा कि अगर परमात्मा नहीं है तो अब आदमी को परमात्मा होना पड़ेगा। यह कोई स्वतंत्रता ही नहीं है, जुम्मेवारी भी है। यह स्वच्छंदता बन गई नीत्से के लिए। तो नीत्से ने कहा, "गाड इ.ज डैड। एंड नाउ मैन इ.ज फ्री टू डू व्हाट सो एवर ही वांट्स टू डू।"...
"ईश्वर मर गया और अब आदमी स्वतंत्र है, जो भी करना चाहे करे।"
यह स्वच्छंदता बनी। ईश्वर की मृत्यु, आत्मा का पुनर्जन्म न बनी। इधर ईश्वर तो मरा, लेकिन उसकी मृत्यु के कारण आत्मा जगी नहीं, बल्कि आत्मा ने स्वच्छंदता का मार्ग लिया। आत्मा ने कहा, फिर ठीक है, अब कोई मालिक नहीं है; तो अब जो मौज हो करें; तो अब तक जो-जो बंधन थे, निषेध थे, तोड़े; तो अब तक जो-जो प्रतिबंध थे, उन्हें उखाड़ें; तो अब तक जो-जो करने से रोके गए थे, अब कर ही लें।
जैसे घर में बाप मर जाए तो बेटे में दो घटनाएं घट सकती हैं--या तो वह नीत्से के रास्ते पर जा सकता है, या महावीर के। बाप मर जाए, तो निषेधात्मक तो यह होगा कि बाप ने जो-जो करने से रोका था--कि मत जाना शराबघर, मत जाना वेश्या के पास--अब कर लो। अब कोई रोकनेवाला न रहा। दूसरी घटना भी घट सकती है कि अब तक तो बाप रोकनेवाला था, अब वह भी न रहा, अब मुझे जागना पड़ेगा! अब जो काम बाप कर देता था, वह मुझे खुद ही करना पड़ेगा। तो अब तक तो डर था कि किसी दिन बाप की आज्ञा तोड़कर पहुंच भी जाता शराबघर, अब तो पहुंचने का कोई उपाय न रहा; अब तो मेरी ही आज्ञा है; मैं ही जानेवाला हूं। तो अनुशासन पैदा होगा। जब भी बाप मरता है तो दोनों घटनाएं सामने आती हैं। क्या तुम चुनोगे, तुम्हारा निर्णय है।
महावीर ने भी कहा कि कोई ईश्वर नहीं है। महावीर ने तो और भी गहरी बात कही है।
नीत्से ने तो कहा, मर चुका है। महावीर ने कहा, कभी था ही नहीं, मरने का कोई सवाल नहीं। कल्पना थी।
लेकिन वहीं से उन्होंने सूत्र अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने कहा, कोई परमात्मा नहीं है, इसलिए अब प्रत्येक को परमात्मा होना पड़ेगा।
परमात्मा तो होना ही चाहिए, और कोई परमात्मा नहीं है। बिना परमात्मा के तो न चलेगा। तो अब जुम्मेवारी बड़ी है, गहन है, असीम है।
स्वतंत्रता उत्तरदायित्व बनी।
इसलिए महावीर जैसा साधक खोजना बहुत मुश्किल है। क्योंकि कोई सहारा भी नहीं है, जिसके चरणों में बैठकर रो लेते; जिससे शिकायत-शिकवा कर लेते;

जिससे कह देते कि तू क्यों नहीं उठा रहा है हमें, हम तो उठने को तैयार हैं, जिससे कह देते कि हम असहाय हैं, अब तू कुछ कर; हमारे किए कुछ भी नहीं होता, अब तू सम्हाल, अब कोई भी न रहा, अब बिल्कुल अकेले हैं, अब नितांत एकांत है! इस एकांत में अपने को ही उठाना है। इस एकांत में अपने को ही चलाना है। अपनी दिशा खोजनी है।
नीत्से अनाथ हुआ, विक्षिप्त हुआ। महावीर अनाथ होकर स्वयं नाथ हो गये, स्वयं भगवान हो गए।
जैनों का "भगवान" शब्द हिंदुओं के "भगवान" शब्द से अलग अर्थ रखता है। ध्यान रखना, शब्द तो हम एक ही उपयोग करते हैं, लेकिन जब हमारी भाव-दशाएं अलग होती हैं तो उनके अर्थ बदल जाते हैं। हिंदुओं के भगवान का अर्थ होता है, जिसने सृष्टि की, जिसने सब बनाया। जैनों के भगवान का अर्थ होता है, जिसने अपने को जाना। जो जानकर परम महिमा से भर गयाः भगवान। भाग्यवान हो गया जो! जिस पर भाग्य की अतुल वर्षा हुई! जिसने अपने भाग्य को खोज लिया। जिसने अपनी नियति को खोज लिया। नहीं कि सृष्टि उसने बनाई, बल्कि जो अपना स्रष्टा हो गया। बड़ा फर्क है। इसलिए हिंदू सदा पूछेगा कि भगवान क्यों कहते हो महावीर को, क्या इन्होंने दुनिया बनाई? वह बात ही नहीं समझ रहा है। वह अपनी धारणा बीच में ला रहा है।
महावीर कहते हैं, दुनिया तो कभी बनायी नहीं गयी, कोई बनानेवाला नहीं है। क्योंकि बनाने की बात ही बचकानी है। भगवान बनाएगा तो फिर सवाल उठेगा, किसने उसे बनाया? यह तो बकवास कहीं रोकनी ही पड़ेगी। इसमें जाने में कुछ सार नहीं है। है--अस्तित्व है--कोई स्रष्टा नहीं है। लेकिन अस्तित्व कोई अराजकता नहीं है; जैसा कि नीत्से ने कहा। कोई परमात्मा नहीं है, तो अस्तित्व अराजक है। कोई व्यवस्था नहीं है इसमें, तो फिर कर लो जो करना है। यह तो पागलपन है, कर लो जो करना है। यहां व्यर्थ समय मत गंवाओ, भोग लो जो भोगना है। दौड़ जाओ इच्छाओं में स्वछंद होकर!
देखो, एक ही घटना को दो अलग व्यक्ति कैसे अलग लेते हैं! महावीर ने कहा, वहां कोई व्यवस्थापक नहीं है, इसलिए सम्हलो, नहीं तो पागल हो जाओगे! जागो! यहां कोई सूत्रधार नहीं है, तुम्हीं अकेले हो! अगर न जागे तो खो जाओगे, भटक जाओगे, यह अटल अंधेरा है! ये गहन खाइयां हैं। यहां कोई मार्गदर्शक नहीं है, कोई मार्ग-द्रष्टा नहीं है। कोई आगे चल नहीं रहा है, तुम अकेले हो! किन्हीं झूठे सहारों पर भरोसा मत रखो! जिम्मेवारी अपने हाथ में लो! तुम ही अपने मालिक हो!
"अप्पा कत्ता विकत्ता य"--तुम ही हो कर्ता, तुम ही हो भोक्ता। न कोई करनेवाला है, न कोई तुम्हें भुगा रहा है। परमात्मा कोई लीला नहीं कर रहा है, तुम ही कर रहे हो। यह खेल सब तुम्हारा है। अगर तुम दुखी हो तो तुम ही जुम्मेवार हो। अगर सुखी होना है तो तुम्हें सुख की नींवें रखनी पड़ेंगी। और अगर सुख-दुख दोनों के पार जाना है, तो तुम्हें ही जाना पड़ेगा। यहां कोई नाव नहीं है, जिसमें बैठकर तुम उतर जाओ। तैरना होगा! प्रत्येक को अलग-अलग तैरना होगा। यहां कोई किसी को कंधे पर बिठाकर नहीं ले जा सकता है।
महावीर ने जो द्वार खोला, वह विमुक्ति का द्वार बना।
नीत्से ने जो द्वार खोला, उसमें वह खुद ही पागल हो गया। द्वार एक ही था।
ध्यान रखना, जो भी मैं तुमसे कह रहा हूं, अगर तुम ठीक से न समझे तो बड़ी चूक हो जाएगी।
सत्य के साथ संबंध बनाना आग के साथ खेलना है। अगर जरा भी चूके, कुछ और
का कुछ और समझ लिये, तो विक्षिप्तता हाथ आती है। विमुक्ति तो दूर, जो थोड़ी- बहुत समझ-बूझ थी, वह भी खो जाती है।
अभी इंसानों को मानूसे-जमीं होना है
महरो महताब के ऐवान नहीं दरकार अभी।
महावीर ने कहा, पृथ्वी से तो परिचित हो लो! जीवन के सत्य से तो परिचित
हो लो! चांद-तारों के सपने छोड़ो! यहां से परिचित हो लो। अपने तथ्य से परिचित हो लो। आकाशों की आकांक्षाएं छोड़ो! स्वर्ग-नर्कों के जाल छोड़ो! अभी इंसानों को मानूसे-जमीं होना है

--पृथ्वी से परिचित होना है।
महरो महताब के ऐवान नहीं दरकार अभी।
--अभी इस उलझन में मत उलझो कि चांद-तारों में कौन निवास कर रहा है।
महावीर बड़े यथार्थवादी हैं, प्रैगमेटिक, व्यवहारवादी हैं। ठोस जमीन
पर पैर रखने की उनकी आदत है। सपनों को हटा देते हैं, काट देते हैं। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारा सपना है। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारा परिपूरक सपना है। जिंदगी में जो तुम नहीं कर पाते, वह तुम परमात्मा के बहाने सपने में करते हो। यहां तुम्हें जो नहीं मिलता, वह स्वर्ग में मांग लेते हो। लेकिन तुम्हारा परमात्मा--तुम्हारा परमात्मा है। तुम गलत हो--तुम्हारा परमात्मा गलत होगा।
सोचो, विक्षिप्त आदमी का परमात्मा भी विक्षिप्त होगा! अंधे आदमी का परमात्मा भी अंधा होगा। क्योंकि जिसने खुद प्रकाश नहीं देखा, वह कल्पना भी नहीं कर सकता कि प्रकाश क्या है और प्रकाश को देखना क्या है और आंखें क्या हैं!
बहरे आदमी का परमात्मा भी बहरा होगा। जिसने खुद ध्वनि नहीं सुनी कभी,
वह कल्पना भी कैसे करेगा कि परमात्मा ध्वनि सुनता है, ध्वनि है क्या? तुम्हारा परमात्मा तुम्हारी प्रतिछवि है। मंदिरों में तुमने मूर्तियां नहीं बनाई हैं, दर्पण लगाए हैं। उन दर्पणों में तुम अपने को ही देखकर अपने ही चरणों में झुक जाते हो, घुटने टेककर अपने से ही बातचीत कर लेते हो। यह एकालाप है। यहां कोई उत्तर देनेवाला भी नहीं है। तुम जो चाहते हो, वही अपने को मना लेते हो, वही उत्तर अपने को समझा लेते हो। और इस तरह जीवन के क्षण व्यर्थ जाते हैं।
महावीर कहते हैं, हाथ में लो बागडोर अपनी। बहुत भटक चुके दूसरों के द्वारों पर। बहुत हाथ फैलाए भिक्षा के, अब मालिक बनो! उत्तरदायित्व लो! यह बचकानापन छोड़ो। इस बचपन के बाहर आओ, प्रौढ़ बनो!
"आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है।"
इससे मन में बड़ी पीड़ा होती है। इसलिए तो महावीर को बहुत अनुयायी न मिले। मन हमारा मानता है कि सुख के तो हो भी सकते हैं कि हमने निर्माण किया हो; लेकिन दुख, वह तो दूसरों ने किया है। जब भी तुम दुखी होते हो, तुम तत्क्षण आसपास कारण खोजने लगते होः कौन दुखी कर रहा है? पति दुखी होता है तो सोचता है, पत्नी दुखी कर रही है। बाप दुखी होता है तो सोचता है, बेटे दुखी कर रहे हैं, तुम जरूर कोई न कोई बहाना खोजने लगते होः कौन दुखी कर रहा है? क्योंकि दुख जब आ रहा है तो कोई न कोई दुखी कर रहा होगा। और यह तो तुम मान ही नहीं सकते कि मैं अपने को दुखी कर रहा हूं; क्योंकि यह बात तो बड़ी मूढ़ता की होगी। जब तुम दुखी नहीं होना चाहते तो क्यों कर रहे हो? जरूर कोई और कर रहा है, मैं तो कभी दुखी होना ही नहीं चाहता! इसलिए मैं क्यों करूंगा! यह तो सीधा तर्क मालूम होता है। कौन दुखी होना चाहता है! साफ है कि कोई और शरारत कर रहा है।
जब तुम्हें प्रत्यक्ष कोई कारण न मिल पाए तो तुम अप्रत्यक्ष कारण खोजते हो--समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति। अगर वहां भी कोई निमित्त न मिल पाए, तो भाग्य विडंबना, विधि, भगवान। मगर कोई, तुम नहीं। यह मन का जाल है। मन तुम्हें एक सत्य देखने से अपरिचित रख रहा है कि तुम ही हो अपने दुख के कारण।
कोई मर गया--ऐसा उदाहरण लें--जिसमें साफ ही दूसरा दुख का कारण मालूम होता हो। पत्नी मर गई। अब तो साफ है कि पत्नी न मरती तो पति दुखी न होता! इसलिए पत्नी मरकर दुखी कर गई। यह भी कैसा वक्त चुना! यह कोई समय था, अभी तो जवान थी! अभी तो विवाह करके, अभी तो फेरे रचाकर लाये थे! तो पति रो रहा है। इसको कैसे समझाओ कि दुख के कारण तुम ही हो? वह तो कहेगा, यह तो बात साफ
ही है कि पत्नी न मरती तो मैं सुखी था; पत्नी मर गई, इसलिए दुखी हूं। महावीर कहते हैं, पत्नी का मरना तो निमित्त है। तुम मृत्यु को स्वीकार नहीं कर पाते, वहां से दुख आ रहा है। जीवन में मृत्यु तो होगी ही।
जन्म है तो मौत है। जन्म के साथ ही मौत हो गई है। थोड़े समय की बात है। जन्म के साथ ही घटना घटनी शुरू हो गई। थोड़ा समय लगेगा और घटना पूरी हो जाएगी।

मरना जन्म के साथ ही शुरू हो गया। तुम जन्म के साथ मृत्यु को स्वीकार नहीं कर पाते हो; वहां तुम्हारे अस्वीकार में दुख है।
फिर, महावीर कहेंगे, यह स्त्री तुम्हारी पत्नी न होती, और मर जाती, तो तुम दुखी होते? तुम कहोगे, फिर मैं क्यों दुखी होता? इतनी स्त्रियां मरती रहती हैं। ऐसे अगर हर स्त्री के लिए दुखी होने बैठूं तो फिर सुखी होने का मौका ही न आएगा; फिर तो कोई न कोई मरेगा, और रो रहे हैं; कोई न कोई मरेगा, रो रहे हैं। अर्थी तो रोज ही उठती है। कितनी स्त्रियां दुनिया में मरती हैं रोज! अब इसका कहां हिसाब रखेंगे, नहीं तो मर गए।
नहीं, तो महावीर कहते हैं, यह तुम्हारी पत्नी, यह "मेरी" है, उस "मेरे" में से दुख आ रहा है। यही पत्नी किसी और की होती, मर जाती, तुम्हें कुछ भी न होता, कोई रेखा भी न खिंचती। तो पत्नी "मेरी" है, इस "मेरे" में से दुख आ रहा है।
फिर, तुम्हारा ख्याल है कि यह पत्नी तुम्हारे सुख का आधार थी। यह भी तुम्हारा ख्याल है। क्योंकि सुखी आदमी को कोई सुख का आधार नहीं चाहिए। सुख भीतर से उमगता है। और दुखी आदमी कितने ही आधार खोज ले, सुखी नहीं हो पाता। तो पत्नी तो तुम्हारे सुख का आधार न थी। तुम्हारी कल्पना का, तुम्हारी भावना का, तुम्हारी वासना का--भला पर्दे की तरह काम किया हो पत्नी ने तुम्हारी अपनी वासना को फैलने के लिए; पत्नी ने तुम्हें मौका दिया हो कि फैला लो अपनी वासना को मेरे ऊपर, लेकिन तुम्हारे सुख और दुख, तुम्हारे भीतर से उमगते हैं।
आदमी को कठिनाई है यह बात मानने में। आदमी चाहता है, कोई और जुम्मेवार हो। कोई भी हो जुम्मेवार, कोई और जुम्मेवार हो। इतिहास हो जुम्मेवार चलेगा।
पश्चिम में जितने विचार पैदा हुए, उन सब में कोई और जुम्मेवार है।
ईसाइयत कहती है, अदम और ईव को शैतान ने भड़काया और शैतान ने कहा कि खा
लो यह ज्ञान के वृक्ष का फल। उसने उकसाया। भोले-भाले अदम और ईव उसकी बातों में आ गए। शैतान जुम्मेवार है। लेकिन कोई शैतान से पूछो! शैतान तो अब तक कुछ भी बोला नहीं है। नहीं तो शैतान भी कुछ जुम्मेवारी बताएगा, किसी और पर टालेगा।
अदम कहता है, ईव ने फुसलाया मुझे। अब पत्नी है, इसकी बातों में कौन नहीं आ जाए, आ ही गए! ईव कहती है, मैं क्या करूं, शैतान सांप की शकल में आया और मुझे फुसलाया। सांप बेचारा मौन है; उसके पास जबान नहीं, नहीं तो वह भी कहता कि किसने मुझे फुसलाया, शैतान ने मुझे फुसलाया। लेकिन कहीं न कहीं बात सरकती जाती। और यह कहानी कहानी नहीं रही है, यह पूरे पश्चिम के इतिहास पर फैली है। हीगल कहता है, इतिहास जुम्मेवार है, जो भी दुख हो रहा है उसके लिए। मार्क्स कहता है, अर्थव्यवस्था जुम्मेवार है। फ्रायड कहता है, गलत संस्कार जुम्मेवार हैं। मां-बाप ने जो व्यवहार किया है बच्चों के साथ, वह जुम्मेवार है। लेकिन कोई न कोई जुम्मेवार है!
अभी पश्चिम का मनोविज्ञान इतना प्रौढ़ नहीं हुआ कि कह सके कि तुम जुम्मेवार हो। इसके लिए बड़ी हिम्मत चाहिए, बड़ी प्रौढ़ता चाहिए। ये बचकानी बातें कि कोई और जुम्मेवार है, अपने उत्तरदायित्व को टालने की बातें हैं। महावीर, पतंजलि, बुद्ध इस प्रौढ़ता को उपलब्ध हुए कि उन्होंने कहा कि छोड़ो बकवास, तुम जुम्मेवार हो! और ये बहाने तुम जो खोजते हो दूसरों पर टालने के, इनसे कुछ राहत नहीं मिलती, इनसे सिर्फ धोखा पैदा होता है। इनसे ऐसा लगता है, अब हम करें क्या; दूसरों ने किया है, हमारे किए क्या होगा! निराशा पैदा होती है। गुलामी पैदा होती है। और एक गहन हताशा पैदा होती है। अब करेंगे क्या? अब इतिहास को बदलने का तो कोई उपाय नहीं। अब अर्थव्यवस्था तो आज बदलेगी नहीं, बदलने में बदलनेवाले तो मर ही जाएंगे। जिन्होंने रूस में क्रांति लायी, वे तो मर चुके; और जो आज जिंदा हैं, वे तड़फ रहे हैं। वे परतंत्रता से दबे हैं। लेनिन सोचकर मरा होगा कि हम बड़ा भारी काम करके जा रहे हैं। लेकिन जो आज उनके बच्चे हैं, वे आज परतंत्रता से दबे हैं; वे स्वतंत्र होने के लिए छटपटाते हैं। सोल्जेनित्सिन से पूछो। कारागृहों में पड़े हैं।

लेनिन ने तो सोचा था कि बड़ा सुंदर समाज निर्मित होगा, लेकिन वह हुआ नहीं। वह कभी होनेवाला नहीं, क्योंकि बुनियादी बात गलत है। दूसरा जुम्मेवार है, जिस शास्त्र का यह आधार है, वह शास्त्र गलत है।
फ्रायड ज्यादा ईमानदार है इस हिसाब से। फ्रायड ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में लिखा कि आदमी कभी सुखी नहीं हो सकता। हो ही नहीं सकता। यह असंभव है। क्योंकि इतने कारण हैं आदमी के दुखी होने के, उन कारणों को कब बदला जा सकेगा, कौन बदलेगा, कैसे बदलेगा? असंभव है। जाल बहुत बड़ा है, आदमी बहुत छोटा है।
फ्रायड की हताशा देखते हो--जीवन भर की चेष्टा, खोज के बाद जब कोई आदमी कहता है कि आदमी कभी सुखी न हो सकेगा, सुख सिर्फ कल्पना है, भुलावा है, आदमी दुखी ही रहेगा... !
लेकिन महावीर, बुद्ध, पतंजलि कहते हैंः आदमी परम आनंद को उपलब्ध हो सकता है। पर उसके पहले एक बहुत जरूरी बात समझ लेनी जरूरी है--वह यह कि मैं जुम्मेवार हूं। टालो मत, हटाओ मत! तथ्य को स्वीकार करो। क्योंकि अगर मैं जुम्मेवार हूं अपने दुख का, तो मेरे हाथ में बागडोर आ गई; अब मैं वे काम बंद कर दूं जिनसे दुख पैदा होता है; वे बीज बोना बंद कर दूं जिनसे कड़वे फल आते हैं; उस फसल को जला डालूं, निर्जरा करूं उन कर्मों की जिनके कारण मैं दुखी हो रहा हूं।
"आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है और विकर्ता, भोक्ता। सत्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा अपना ही मित्र है।"
महावीर कहते हैं, न तो तुम्हारा मित्र तुम्हारे बाहर है, न तुम्हारा शत्रु। जब तुम सत्प्रवृत्ति में हो... क्या है सत्प्रवृत्ति? ... जब तुम जागे हुए, शांत, आनंद-मग्न, निर्दोष भाव से ध्यानस्थ हो, सम्यक हो, संतुलित हो, तब तुम सत्प्रवृत्ति में हो। तब तुम मित्र हो। दुष्प्रवृत्ति में तुम ही अपने शत्रु हो। कोई तुम्हारा शत्रु नहीं। इसलिए किसी और से मत लड़ना। लड़ना है तो अपने से। जीतना है तो अपने को। बदलना है तो अपने को। होना है तो स्वयं में। सारा खेल तुम्हारे भीतर है।
"अविजित एक अपना आत्मा ही शत्रु है।"
अविजित, जो जीता नहीं गया, ऐसा अपना आत्मा ही शत्रु है।
एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी।।
"अविजित कसाय और इंद्रियां ही शत्रु हैं। हे मुने! मैं उन्हें जीतकर यथान्याय, धर्मानुसार विचरण करता हूं।"
महावीर कहते हैं, जब तक तुम्हारी इंद्रियां तुम्हारे बस में नहीं, तुम्हें चलाती हैं और तुम उनके पीछे चलते हो, तब तक दुख होगा। होगा ही। अंधे का सहारा लेकर जो चलेगा, वह गड्ढे में गिरेगा। इंद्रियों के पास कोई आंख थोड़े ही है। इंद्रियों के पास कोई बोध थोड़े ही है। तुम्हारी जीभ कहती है, खाए जाओ। जीभ के पास बोध थोड़े ही है, सिर्फ स्वाद है। कब रुकना है, कितना खाना है, कब नहीं खाना है, कब बिना खाए गुजार देना है, कब पेट भर गया, कब पेट खाली है। कब जरूरत है, कब जरूरत नहीं है--जीभ कैसे कहेगी? जीभ के पास कोई बोध था.ेडे ही है। वह बोध तो तुम्हारे पास है। बोध को तो तुमने रख दिया है बांधकर एक तरफ। जीभ की मानकर चलते हो, उलझन होगी, अड़चन होगी। जननेंद्रिय के पास कोई बोध थोड़े ही है। जननेंद्रिय की उत्तेजना अगर तुम्हें वासना में ले जाती है, तो तुम अंधे का हाथ पकड़कर चल रहे हो। अंधों का हाथ पकड़कर चलनेवाले गड्ढों में गिरेंगे।
सोचो! बोध तुम्हारे पास है। तो तुम घोड़े की मानकर मत चलो। लगाम हाथ में रखो। घोड़ा बुरा नहीं है, शुभ है--लगाम तुम्हारे हाथ में होनी चाहिए। लेकिन अकसर, लोग इतनी झंझट नहीं लेते, क्योंकि घोड़े को सिखाना पड़ेगा। मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने गधे पर बैठकर कहीं जा रहा था। बड़े जोर से भागा जा रहा था। किसी ने पूछा, कहां जा रहे हो? उसने कहा, गधे से पूछो। क्योंकि मैंने तो यह आशा ही छोड़ दी कि इसको चलाना संभव है। झंझट खड़ी होती है। बीच बाजार में फजीहत होती है। कई दफे इसको चलाने की कोशिश कर चुका--गधा है। मैं कहता हूं, बाएं चल, वह दाएं जा रहा है। बीच बाजार में भीड़

लग जाती है; आखिर में मुझे हारना पड़ता है। इससे मैंने फिर एक तरकीब निकाल लीः यह जहां जाता है वहीं हम जाते हैं। अब कम से कम फजीहत तो नहीं होती।
कोई यह तो नहीं कह सकता कि गधा मेरी मानता नहीं। हालांकि मैं जानता हूं कि वह मानता नहीं है, वह अपनी तरफ से जाता है।
गधे की अपनी यात्रा है।
बहुत लोग ऐसी ही दशा में हैं--अधिक लोग। जहां इंद्रियां जाती हैं, तुम चले जाते हो; क्योंकि कौन फजीहत करे, कौन झगड़ा-झांसा करे! अगर इंद्रियों को वहां ले जाना है जहां तुम्हें जाना है, तो बड़ा संयम चाहिए पड़ेगा, बड़ा अनुशासन, बड़ा प्रशिक्षण। इंच-इंच इंद्रियां लड़ेंगी। क्योंकि कौन अपनी मालकियत इतनी आसानी से खोता है! इंद्रियां जन्मों-जन्मों तक मालिक रहीं। गधे ने जन्मों-जन्मों तक तुम्हारी यात्रा तय की है। आज अचानक तुम कहने लगे कि मेरी मानकर चलो! गधा कहेगा, सोचो भी, क्या कह रहे हो? किससे कह रहे हो? होश है कुछ? जो सदा से होता आया है, वही होगा। जद्दोजहद होगी। गधा संघर्ष देगा। इंद्रियां लड़ेंगी। लेकिन अगर तुम इंद्रियों की मानकर चलने लगे, इसलिए कि कौन संघर्ष करे, तो तुम्हारी आत्मा कभी पैदा न हो पाएगी।
इसलिए मैं कहता हूं, महावीर का मार्ग संघर्ष का, संकल्प का, योद्धा का। इसीलिए तो उनको हमने महावीर कहा। साधारण वीर भी नहीं कहा, महावीर कहा। यह उनका नाम नहीं है; यह तो लोगों ने उनके संघर्ष को देखा। उनके दुर्धर्ष संघर्ष को देखा। उनके योद्धा के भाव को देखा। देखा कि उन्होंने किसी चीज की कभी चिंता न की, संघर्ष कितना ही लंबा हो; लेकिन जब तक विजय निश्चित न होगी, तब तक वे रुके नहीं, तब तक वे लड़ते ही रहे।
और एक बार जब इंद्रियां तुम्हारे वश में आ जाती हैं, तो तुम्हारे जीवन में एक प्रसाद पैदा होता है, एक सौंदर्य पैदा होता है--मालिक का सौंदर्य, सम्राट का सौंदर्य। तभी तो हमने फकीरों को पूजा और सम्राटों की फिक्र छोड़ दी। कौन जानता है आज, महावीर के समय में कौन-कौन सम्राट थे? प्रसेनजित को कौन जानता है? बिंबिसार को कौन जानता है? अगर हम उनका नाम भी जानते हैं तो इसीलिए कि महावीर के जीवन में कहीं-कहीं उनका उल्लेख है। कौन फिक्र करता है उनकी? चूंकि बिंबिसार महावीर से मिलने आया था, इसलिए उसकी भी याद है; कि प्रसेनजित नमस्कार करने आया था, इसलिए उसकी भी याद है। जो नहीं आए, उनके तो नाम भी खो गए। क्या हुआ? फकीर इतने मूल्यवान कैसे हो गए? यह नंगा आदमी, जिसके पास कुछ भी न था--जरूर इसके पास कुछ रहा होगा कि सम्राट फीके हो गए। एक दुर्धर्ष बल था। इसने चुनौती स्वीकार की थी। यह हारा नहीं, इसने अपने पुरुषत्व को सिद्ध किया था। इसने अपनी मालकियत की घोषणा कर दी थी। कुछ भी हो जाए, इसने एक बात जारी रखी कि मालिक मैं हूं।
होश मालिक है। और होश के अनुसार सब चलना चाहिए। यह बिल्कुल ठीक गणित
है जीवन का।
अमीरे-दो जहां बन जा, असीरे-खारो-खस कब तक?
नई सूरत से तरतीबे-बिनाए-आशियां कर ले।
--दो दुनियाओं के तुम मालिक बन सकते हो।
अमीरे-दो जहां बन जा, असीरे-खारो-खस कब तक?
--यह कांटों में, झाड़ियों में कब तक उलझे रहना?
नई सूरत से तरतीबे-बिनाए-आशियां कर ले। लेकिन फिर तुम्हें एक नई दृष्टि और एक नई शैली खोजनी होगी--अपने घर को बनाने की। नई सूरत से तरतीबे- बिनाए-आशियां कर ले--फिर तुम्हें अपना नीड़ कुछ और ढंग से बनाना होगा। अभी तुमने जो बनाया है, वह गलत है। इसमें गुलाम मालिक हो गया है, मालिक गुलाम हो गया है। इसमें नौकर सिंहासन पर बैठ गए हैं, सम्राट सोया है। उसे पता ही नहीं कि क्या हो रहा है। सम्राट को जगाना होगा।
सम्राट यानी तुम्हारा विवेक। जैसे ही विवेक जगता है उसके साथ-साथ वैराग्य की व्यवस्था आती है। विवेक सो जाता है, उसके साथ ही साथ राग का अंधापन आता है। राग से मत लड़ो विवेक को जगाओ। जैसे-जैसे विवेक जगेगा--असली लड़ाई वही है, विवेक को जगाने की।
मुल्ला नसरुद्दीन चोरों से डरता है। नए मकान, नए पड़ोस में रहने गया,
तो एक कुत्ता खरीद लाया--उसने कहा बड़े से बड़ा कुत्ता जो मिल सकता था, मजबूत

से मजबूत। दुकानदार से पूछा कि "यह काम आएगा?" उसने कहा, "काम से ज्यादा... देखते हो इसको! सम्हालकर रहना। यह खतरनाक है।" लेकिन जिस दिन कुत्ता खरीदकर लाया, उसी रात चोरी हो गई। बड़ा परेशान हुआ। वापिस भागा हुआ दुकानदार के पास पहुंचा कि यह क्या मामला है! उसने कहा कि इसमें क्या मामला है। यह कुत्ता इतना बड़ा है, इसको जगाने के लिए एक छोटा कुत्ता भी चाहिए। यह सोया रहा, इसको चोर-वोर... यह कोई छोटा-मोटा कुत्ता है! एक छोटा कुत्ता और खरीदो! वह घबड़ाहट में चीखेगा, चिल्लाएगा तो यह उठेगा; नहीं तो यह उठनेवाला भी नहीं है।
वह तुम्हारे भीतर का जो मालिक है, कितने जन्मों से घर्राटे ले रहा है,
सो रहा है! साधना कुछ भी नहीं है, छोटे-छोटे उपाय हैं जिनसे वह सोया हुआ मालिक जगने लगे। इस भांति अगर तुम साधना को देखोगे तो बड़े नए अर्थ खुलेंगे।
महावीर ने महीनों तक उपवास किए हैं। वह कुछ भी नहीं, वह छोटा कुत्ता खरीदना है। उपवास में जब तुम्हें भूख लगेगी, और तुम शरीर की न सुनोगे और शरीर कहेगा, भूख लगी, भूख लगी, भूख लगी और तुम शरीर की न सुनोगे, तो भूख धीरे-धीरे शरीर से उतरकर मन पर आएगी। फिर भी तुम न सुनोगे। मन चीखेगा, चिल्लाएगा, रोएगा, गिड़गिड़ाएगा, हजार उपाय करेगा; समझाएगा कि मर जाओगे; ऐसे भूखे रहे तो क्या होगा तुम्हारा, यह शरीर जीर्ण-शीर्ण हुआ जाता है--तब भी तुम न सुनोगे तो भूख आत्मा तक पहुंच जाएगी। और जब भूख आत्मा तक पहुंचती है तो आत्मा जगती है। तुम शरीर को ही तृप्त कर देते हो, भूख मन तक ही नहीं पहुंच पाती; आत्मा तक पहुंचने का क्या सवाल है? यह तो चुभाना है तीर का--उस सीमा तक जहां तुम्हारा असली मालिक सोया है।
तो महावीर खड़े ही खड़े साधना करते थे, बैठते नहीं थे, लेटते नहीं थे। क्योंकि वैसे ही नींद गहरी है और अब बैठकर और लेटकर, क्या उसे और गहरी करनी है? तो महावीर खड़े ही खड़े साधना किये हैं, ताकि जागरण बना रहे। शरीर थक जाता है। एक घड़ी आती है, शरीर कहता है, अब बैठो, अब विश्राम करो! और महावीर कहते, "छोड़ बकवास! हो गया बहुत विश्राम। अब नहीं करना विश्राम।" खड़े ही रहते, खड़े ही रहते, तब थकान मन में उतरती। मन कहता, अब यह बहुत हो गया, अब तो गिर जाओगे। महावीर कहते कि सुनना नहीं है। जब तक कि भीतर की चेतना खड़ी न हो जाए, वे नहीं सुनते। धीरे-धीरे थकान वहां तक पहुंच जाती है--उस गहरे तल तक कि आत्मा भी झिझककर खड़ी हो जाती है। क्योंकि यह तो घड़ी मरने की आ गई। महावीर ने हजार तरह से मौत की घड़ी को अपने पास लाए, क्योंकि मौत की घड़ी
ही जगा सकती है। जीवन तो जगा न पाया, जीवन ने तो खूब सुला दिया।
मौत का भी इलाज हो शायद,
जिंदगी का कोई इलाज नहीं।
यह जिंदगी तो बहुत सुला गई। यह जिंदगी तो बहुत जिंदगी सिद्ध न हुई; साथी-संगी सिद्ध न हुई। यह तो मूर्च्छित कर गई, बेहोश कर गई। तो महावीर ने मौत का उपयोग किया--जगाने के लिए। भूखे, प्यासे--खड़े रहे।
एक गांव में... खड़े थे गांव के बाहर। मौन लिये हुए थे। एक गडरिया कह गया
कि ये जरा मेरी गायों को देखते रहना, मैं अभी आया। वे तो कुछ बोलते न थे, इसलिए कुछ बोले नहीं। और वह जल्दी में था, इसलिए उसने कुछ फिक्र भी न की। उसने समझाः मौनं सम्मति लक्षणम्। खड़ा है फकीर, देख लेगा। वह लौटकर आया, गायें तो सरक गईं, इधर-उधर हो गईं, जंगल में चली गईं। वह बड़ा नाराज हुआ। वह चिल्लाया कि क्या हुआ, मेरी गायें कहां गईं? तुम खड़े-खड़े यहां क्या कर रहे हो? जरा रोक लेते, तुम्हारा क्या बिगड़ जाता? लेकिन उसने देखा, यह आदमी तो खड़ा ही है; यह तो बोलता ही नहीं; आंख भी नहीं झपकता। जैसे इसने सुना ही नहीं। उसने कहा, क्या बहरे हो? मगर वह तब भी कुछ न बोला। तो यह सोचकर कि बहरा ही है, वह बेचारा भागा कि इससे फिजूल समय खराब करने में कोई सार नहीं है। पागल है, या बहरा है, या क्या मामला है! आंख भी नहीं झपकता! देखता ही चला जाता है। और देखता भी ऐसे है, जैसे देखता ही नहीं है। सुनता भी नहीं। हिलाया-डुलाया भी, लेकिन ओंठ न हिले। उसने यह भी न कहा कि मैं बहरा हूं। वह भागा। खोज-खोजकर जंगल में भटकता रहा, सांझ होते-होते लौटा तो देखा
कि गायें आकर महावीर के पास बैठी हैं। अरे! उसने कहा, यह तो बड़ा चालबाज है।

होशियार है। कहीं छिपा रखा था, अब भागने की तैयारी कर रहा था। देखता था कि सूरज ढले, अंधेरा हो जाए--ले भागे। उसने कहा कि इसने तो बड़ी चालबाजी की।
इसलिए बना हुआ खड़ा है। वह क्रोध में आ गया। उसने कहा, मैं देखता हूं, तेरा यह बहरापन नकली है। अब मैं तुझे असली बहरा बनाए देता हूं।
उसने दो लकड़ी की खूंटियां दोनों कानों में ठोंक दीं। महावीर खड़े रहे,
तब भी कुछ न बोले।
कहानी बड़ी प्रीतिकर है। अब इतनी प्रीतिकर कहानियां घटती नहीं, क्योंकि लोग काव्य की भाषा भूल गए हैं; गणित का गंदा हिसाब सीख गए हैं। कहानी बड़ी महत्वपूर्ण है। इंद्र घबड़ा गया। देवता घबड़ा गए। क्योंकि ऐसा देवपुरुष मुश्किल से होता है। वे भागे हुए आए और उन्होंने कहा, "आप हमें आज्ञा दें। आप बड़े असुरक्षित हैं। ऐसे तो कोई भी मार डालेगा। हम साथ रहेंगे। हम सुरक्षा रखेंगे। यह दुबारा नहीं होना चाहिए।"
महावीर बोलते तो नहीं थे, लेकिन यह तो अंतर की बात है; बाहर से तो कुछ कहा नहीं था, न बाहर से कुछ सुना गया था। महावीर ने भीतर से कहा कि जो हुआ है, ठीक हुआ है। यह तो देखो कि मुझे कितनी जाग मिली है। तुम यही देख रहे हो कि कान में खीले ठोंक दिए। कान तो जाते ही, आज नहीं कल अर्थी पर चढ़ते ही, जल ही जाते, टूट ही जाते, इनका क्या लेना-देना है! मिट्टी मिट्टी में मिलती। तुम यह तो देखो, कितनी जाग दे गया वह आदमी! जब वह खीले ठोंक रहा था, तब शरीर ने पूरी चेष्टा की थी कि बोल, रोक, लेकिन उस समय मैं संयम साधे रहा। मैंने कहा, "क्या बोलना है? क्या रोकना है? जो मिटेगा वह मिट रहा है। जो कल मिटेगा, वह आज मिट रहा है। जो जलेगा अग्नि में उसको बचाना क्या है? कौन बचा पाया है? इधर कान में खीले ठुकते गए, वहां भीतर कोई जागने लगा। मैं शरीर से अलग हो गया। उसकी कृपा बड़ी है। वह बड़ी दया कर गया है। सहायता करनी हो, उसकी करो, क्योंकि वह मुझे जगा गया है--जो मुझसे नहीं हो पाता था, वह कर गया है।" बड़ा दुर्धर्ष योद्धा का रूप है महावीर का। संघर्ष उनका सूत्र है। "अविजित एक अपना आत्मा ही शत्रु है। अविजित कसाय और इंद्रियां ही शत्रु हैं। हे मुने! मैं उन्हें जीतकर यथान्याय विचरण करता हूं।"
यह वचन बड़ा बहुमूल्य है।
एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी।।
उन्हें जीतकर मैं उस परम धर्म के अनुसार आचरण करता हूं।
इससे बड़ी गलती होती है। क्योंकि अनुवाद या मूल भी गलत समझा जा सकता है।... "यथान्याय" धर्मानुसार विचरण करता हूं... तो अनुयायियों ने समझा कि धर्म के अनुसार विचरण करने से, यथान्याय आदमी विजेता हो जाता है। लेकिन महावीर बिल्कुल उलटी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, "हे मुने! मैं उन्हें जीतकर... ।" जीतना पहले है। जागना पहले है। "... यथान्याय धर्मानुसार आचरण करता हूं।" जाग गया हूं, अब धर्मानुसार आचरण हो रहा है। धर्म यानी स्वभाव। धर्म यानी विवेक जाग्रत, सुप्रतिष्ठित; तुम्हारी भीतर की ज्योति जलती हुई; तुम्हारा दीया बुझा हुआ नहीं, जलता हुआ; तुम्हारे प्राण चमकते हुए।
फिर स्वभावतः आचरण धर्म का होता है। फिर तुम जो भी करते हो वही नीति है।
फिर तुम जो भी करते हो वही न्याय है। फिर तुम जो भी करते हो वही शुभ है।
ध्यान रखना, शुभ को साधने की चेष्टा नहीं की जा सकती। जागरण के साथ शुभ के फूल खिलते हैं।
एक ट्रेन में एक आदमी ने पूछा कि क्या मैं यहां सिगरेट पी सकता हूं।
जिस रेलवे कर्मचारी से पूछा था, उसने कहा, "जी नहीं। यहां सिगरेट पीना सख्त मना है।"
"तो फिर यह सिगरेट के टुकड़े किसके पड़े हैं?" उस आदमी ने कहा।
"यह उन लोगों के हैं जो इजाजत नहीं मांगते।"
यहां जो जिंदगी है, इसमें मैं अकसर देखता हूं, लोग मेरे पास आते हैं,
वे कहते हैं, "हम ईमानदार हैं, फिर भी जीवन में कोई सुख नहीं; और बेईमान फल-फूल रहे हैं। ये भी बेईमान हैं। मगर ये इजाजत मांगकर फंस गए हैं। पीना तो ये भी चाहते थे। लेकिन इजाजत मांगने में उलझ गए। फिर जब "नहीं" कह दिया गया तो ये हिम्मत न जुटा सके करने की। इन्होंने शास्त्रों के आदेश सुन लिये,

शास्ताओं की आवाज सुन ली। इन्होंने मुनियों के वचन सुन लिये, सदगुरुओं की बात सुन ली। पूछ बैठे। अब तोड़ें तो अपराध लगता है मन में; न तोड़ें तो पीड़ा होती है। और ये देखते हैं, दूसरे पीए जा रहे हैं। उन्होंने पूछने की ही फिक्र न की।
अगर तुम धार्मिक जीवन जी रहे हो, तो तुम्हारे मन में यह सवाल कभी भी न उठेगा कि अधार्मिक मजे में हैं और मैं दुख में हूं। अगर यह सवाल उठता है तो इसका अर्थ है कि तुम्हारा धार्मिक जीवन झूठा-झूठा, उच्छिष्ट, उधार, बासा। तुमने नियम पकड़े हैं, बोध नहीं पकड़ा; अन्यथा यह असंभव है कि धार्मिक आदमी और आनंद में न हो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि धार्मिक आदमी को महल मिल जाएंगे। मिल भी सकते हैं, न भी मिलें। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि धार्मिक आदमी राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री हो जाएगा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उसके आसपास सोने-चांदी की वर्षा हो जाएगी। पर मैं यह कह रहा हूं कि धार्मिक आदमी के पास कुछ भी न हो तो भी जिनके पास सोने-चांदी की वर्षा हो रही है, उनसे वह ज्यादा आनंदित होगा। जो पदों पर हैं, उनसे वह ज्यादा प्रतिष्ठित होगा। जिनके पास सब है, उनसे ज्यादा होगा उसके पास, चाहे कुछ भी न हो। यह होना कुछ भीतरी है।
अगर तुम ईमानदार हो तो ईमानदारी काफी है आनंद। ईमानदार होने का मजा इतना है कि फिर कौन फिक्र करता है, ईमानदारी से कुछ और मिला कि नहीं। कुछ और की फिक्र तो वही करता है जो ईमानदार नहीं है। यहां बेईमान भी अपने को ईमानदार समझते हैं। तुमने कभी कोई आदमी देखा जो तुमसे कहता हो कि मैं बेईमान हूं? कोई नहीं कहता।
एक अदालत में मजिस्ट्रेट ने एक चोर से पूछा कि तूने इस दुकान में रात में पांच बार प्रवेश किया, पूरी रात?
उसने कहा, "क्या करूं मालिक! ईमानदार संगी-साथी मिलते ही नहीं। अकेले... जमाना ऐसा खराब हो गया है!"
खटपट की आवाज से मुल्ला नसरुद्दीन की नींद उचट गई। सीढ़ियां उतरकर उसने देखा कि चोर रसोई घर का सामान बोरे में समेट रहा है। दरवाजा मेढ़कर उसने पीछे से ललकारा, "सारा सामान यहीं रख दो, नहीं तो तुम्हारी खैरियत नहीं!" बोरे में चाय की छननी डालकर चोर बोला, "अब इतने बेईमान मत बनो सरकार! इसमें आधा माल तो आपके पड़ोसी का है।"
चोर भी... "इतने बेईमान मत बनो सरकार!" यहां सभी बेईमानों को ईमानदार होने का ख्याल है। कसौटी यह है कि अगर तुम्हारी ईमानदारी सुख न लाए, जब मैं कहता हूं, तुम्हारी ईमानदारी सुख न लाए, तो मेरा मतलब हैः जब तुम्हारी ईमानदारी ही सुख न हो जाए। भाषा में तो हमें आगे-पीछे शब्द रखने पड़ते हैं, क्योंकि एक साथ सभी शब्द नहीं बोले जा सकते; लेकिन जीवन में ईमानदारी और सुख साथ-साथ घटता है। कहने में तो कहना पड़ेगा, ईमानदारी सुख लाती है। क्योंकि भाषा लाइन में जमानी पड़ती है, पंक्तिबद्ध, रेल के डब्बों की भांति, एक डब्बे के पीछे दूसरा डब्बा रखना पड़ता है। जीवन तो युगपत है, साइमल्टेनियस है।
इधर मैं बोल रहा हूं, उधर पक्षी गीत गा रहे हैं, इधर तुम सुन रहे हो, हवाएं वृक्षों से घूम रही हैं--यह सब एक साथ हो रहा है। लेकिन अगर इसको भाषा में रखना हो तो एक के पीछे दूसरे को रखना पड़ेगा, नहीं तो बड़ी गडमड हो जाएगी। फिर कुछ समझ में न आएगा। इसलिए कहते हैं कि ईमानदारी सुख लाती है। लेकिन वह कहने की बात है। ईमानदारी सुख है। ईमानदारी सुख है, इसमें भी तो सुख को पीछे रखना पड़ रहा है। ईमानदारी के इतना भी पीछे नहीं है। ईमानदारी में ही सुख है।
ईमानदारी का सुख उसके बाहर नहीं है। बेईमान का सुख उसके बाहर है। इसे समझ लो। कोई बेईमानी के लिए ही थोड़ी बेईमानी करता है; कुछ और पाने के लिए करता है। बेईमानी में खुद थोड़ी साध्य है, साधन है। आदमी चोरी भी करता है तो चोर होने के लिए थोड़े ही; हत्या भी करता है तो हत्यारा होने के लिए थोड़े ही--कुछ और आकांक्षा है। बेईमान की आकांक्षा बेईमानी के बाहर है।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुम्हारे जीवन की साधना में तुम्हारे जीवन का सुख समाविष्ट न हो तो तुम बेईमान हो, अधार्मिक हो। अगर तुम कहो कि

ध्यान करने से क्या मिलेगा तो तुम बेईमान हो, अधार्मिक हो। अगर तुम कहो, प्रेम करने से क्या मिलेगा, तो तुम दुकानदार हो, बेईमान हो।
प्रेम "मिलना" है--आगे-पीछे क्या? प्रेम पर्याप्त है, कुछ और चाहिए नहीं।
तो जब महावीर कहते हैं, "हे मुने! मैं उन्हें जीतकर... " इंद्रियों के ऊपर विवेक जाग गया है। इंद्रियों की अंधेरी रात पर विवेक का सूरज उग आया है, सूर्यास्त समाप्त हुआ है, सूर्योदय हुआ है।
"मैं उन्हें जीतकर, धर्मानुसार यथान्याय आचरण करता हूं।" इससे ऐसा मत समझना कि महावीर सोच-सोचकर आचरण करते हैं। हमें ऐसा ही लगता है। इससे सारा धर्म उलटा हो जाता है हमारी समझ में। एक अंधा आदमी टटोल-टटोलकर दरवाजा खोजता है, कहां से बाहर जाऊं। आंखवाला आदमी निकल जाता है, सोचता थोड़े ही है! इतना भी नहीं सोचता कि दरवाजा कहां है। आंख है तो बस दरवाजा दिखाई पड़ता है। सोचता कौन है! पूछता भी नहीं दरवाजा कहां है। निकल जाता है। टटोलता भी नहीं।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी।
--अब मैं बिहार कर रहा हूं, परम आनंद में! हे मुने! जीतकर इंद्रियों को,
अब सुख ही सुख है। बिहार! अब आनंद ही आनंद है।
मौजे-सहबा निगाह थी अपनी
रक्से-मस्ती कलाम था अपना।
अगर सूफियों की भाषा में इसको कहें, तो शराब की लहरें अब अपनी आंखों में हैं।
मौजे-सहबा निगाह थी अपनी!
--शराब की लहरें आंखें हो गयी हैं; या आंखें शराब की लहरें हो गई हैं।
रक्से-मस्ती कलाम था अपना।
--और अब नृत्य की मस्ती ही हमारे भीतर का गीत है, कलाम है, कविता है।
जिसका भी विवेक जागा, उसकी मस्ती जागी।
जिसका विवेक जागा, उसका आनंद जागा। आनंद और मस्ती विवेक के अनुषंग हैं। ध्यान के साथ मस्ती वैसे ही आती है, जैसे तुम्हारे साथ तुम्हारी छाया आती है। मस्ती गौण है, जैसे छाया गौण है। तुम आ गए तो छाया भी आ गई। अगर मैं तुम्हें निमंत्रण देने जाऊं और कहूं कि आना, तो तुम्हारी छाया के लिए अलग से निमत्रंण नहीं देता। तुम्हारी छाया अपने से आती है। जो अपने से आती है, तुम्हारे आने के कारण आती है, वही छाया है। मस्ती छाया है।
"एक ओर से निवृत्ति और दूसरी ओर से प्रवृत्ति करना चाहिए। असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति।" छाया को बहुत लोगों ने धर्म समझ लिया है। वे छाया को लाने की कोशिश में लगे हैं। मूल की फिक्र ही भूल गई है। कोई उपवास कर रहा है और ख्याल ही भूल गया है कि उपवास छाया है, विवेक मूल है। अगर विवेक को साधा तो उपवास घटेगा। घटता है। सधते-सधते विवेक के एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि शरीर की याद ही भूल जाती है। ऐसी महाघड़ी आती है, इतना आनंद भीतर होता है कि कौन शरीर की याद करता है!
तुमने कभी ख्याल किया, शरीर की याद दुख में ही आती है! दुख के कारण ही आती है। पैर में कांटा गड़े तो पैर का पता चलता है। सिर में दर्द हो तो सिर का पता चलता है। सिरदर्द गया तो सिर भी गया। जब शरीर पूरा स्वस्थ होता है तो पता ही नहीं चलता। और जब भीतर महाआनंद की घटना घटती है, जब आत्मा स्वस्थ होती है--जरा उसकी कल्पना तो करो! उसे कहना ही मुश्किल है। तो शरीर की याद भूल जाती है। न भूख का पता चलता है, न प्यास का पता चलता है--ऐसा रम जाता है चित्त, ऐसा ठहर जाता है। समय रुक जाता है। क्षेत्र भूल जाता है। मयाने-कल्ब-ओ-नजर एक मुकाम है उसका
मुकाम? मरहला? जो भी कुछ है नाम उसका
जमाले ताबिशेरू गर्मिए-खिराम नहीं
ह.जार ऐसी अदाएं हैं जिनका नाम नहीं।
--वह एक ऐसी अदा है जिसका कोई नाम नहीं।
ध्यान भी एक पड़ाव है, वह भी अंत नहीं।
मयाने-कल्ब-ओ-नजर एक मुकाम है उसका

--इन दोनों आंखों के बीच में एक पड़ाव है ध्यान का।
मुकाम? मरहला? जो भी कुछ है नाम उसका
--कोई भी नाम दो, पड़ाव कहो, मुकाम कहो।
जमाले ताबिशेरू गर्मिए-खिराम नहीं
--लेकिन उसे प्रगट करने का उपाय नहीं है।
ह.जार ऐसी अदाएं हैं, जिनका नाम नहीं।
जिंदगी में ऐसी हजार अदाएं हैं, जिनके लिए कोई शब्द नहीं, जिनके लिए कोई नाम नहीं, जिनकी कोई अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। बस इशारे, बस इशारे, इंगित।
तो महावीर कहते हैं, "एक ओर से निवृत्ति, दूसरी ओर से प्रवृत्ति करना चाहिए।" यह बड़ा अनूठा सूत्र है। लोग हैं, जो कहते हैं, प्रवृत्ति करनी चाहिए। चार्वाक हैं, कहते हैं, प्रवृत्ति करो, प्रवृत्ति ही सब कुछ है, निवृत्ति की बकवास में मत पड़ना। मौत आएगी, सब खो जाएगा, कुछ भी न बचेगा। भोग लो। आज जो है उसे भोग लो। कुछ भी छोड़ो मत; क्योंकि जिसने छोड़ा वह व्यर्थ गया, उसने व्यर्थ समय गंवाया, तो चार्वाक कहते हैं कि घी भी पीना पड़े उधार लेकर तो पी लो। ऋणं घृत्वा... ! कोई फिक्र नहीं, ले लो ऋण से, क्योंकि कौन चुकाता है! कौन चुकाने के लिए बच जाता है! मौत सबको मिटा देती है; न कोई लेनेवाला है, न कोई देनेवाला है--सब हिसाब-किताब खतम हो जाता है। सब हिसाब-किताब यहीं की बातचीत है। न कोई कभी लौटता; इसलिए न कोई पुण्य है, न कोई पाप। वे कहते हैं, प्रवृत्ति।
फिर दूसरी तरफ उनके विपरीत लोग हैं। वे कहते हैं, त्याग! त्याग करो। भोगो मत। फंस जाओगे। नर्क जाओगे। छोड़ो, क्योंकि छोड़ने का मूल्य है परमात्मा की नजरों में। वे प्रवृत्ति के दुश्मन हैं। तो भोगी हैं चार्वाक, फिर त्यागी हैं।
अब यह बड़े मजे की बात है कि अगर जैन मुनियों को आज समझा जाए तो वे महावीर के अनुयायी सिद्ध न होंगे। वे चार्वाक के दुश्मन सिद्ध होते हैं, लेकिन महावीर के अनुयायी सिद्ध नहीं होते। वे चार्वाक के विपरीत हैं, यह सच है; लेकिन महावीर के साथ नहीं है, यह भी सच है। वे कहते हैं, छोड़ो, छोड़ो, छोड़ना ही... । एक कहता है, भोगो, भोगो, भोगना ही... ।
महावीर बड़े संतुलित हैं। वे कहते हैं, "एक ओर से निवृत्ति, दूसरी ओर से प्रवृत्ति करना चाहिए।" असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति करनी चाहिए, वे कहते हैं, भोगो--संयम को भोगो! छोड़ो--असंयम को छोड़ो! भोगो प्रकाश को, छोड़ो अंधकार को। भोगो आत्मा को, छोड़ो शरीर को। भोगो विवेक को, वैराग्य को, बोध को, बुद्धत्व को! त्यागो मूर्च्छा को, मिथ्या दृष्टि को, असम्यकत्व को। छोड़ो!
लेकिन ध्यान रहे, महावीर कहते हैं, निवृत्ति-प्रवृत्ति दोनों दो पंख
की भांति हैं। पक्षी उड़ न पाएगा एक पंख से।
भोगी भी गिर जाता है, त्यागी भी गिर जाता है। ऐसे भोगो कि त्याग भी बना रहे। ऐसे त्यागो कि भोग भी बना रहे। यह जीवन की परम कला है।
एगओ विरइं कुंजा, एगओ य पवत्तणं।
असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं।।
जीवन में जो भी तुम्हारे पास है, कुछ भी छोड़ने योग्य नहीं। उसका उपयोग करना है। पत्थर है, सीढ़ी बना लो। अनगढ़ पत्थर है, छैनी उठा लो, प्रतिमा बना लो।
इसलिए तो मैं कहता हूं, कामवासना को ब्रह्मचर्य बना लो। क्रोध को करुणा बना लो। काटो मत। काटने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि जो तुमने काटा, तो तुम कभी पूरे न हो पाओगे। वह जो अंश तुमने काट दिया है, उतनी जगह सदा-सदा खाली रह जाएगी। वह छेद की तरह तुम्हारे व्यक्तित्व में रहेगी। तुम परिपूर्ण पुरुष न हो सकोगे।
कुछ भी मत छोड़ो। सबका उपयोग कर लो। बुद्धिमान वही है जो जीवन में जो मिला है, उन सभी उपकरणों का ठीक संयोजन कर लेता है। अभी सब असंबंधित पड़ा है। तार है, वीणा है, सब टूटा-फूटा पड़ा है। ठीक से जोड़ो। इसी टूटे-फूटे तार, इसी टूटी-फूटी वीणा से महासंगीत पैदा हो सकता है। कुछ भी छोड़ना नहीं है।

तुम जैसे हो, इसका आयोजन बदलना है। चीजें गलत स्थानों पर रखी हैं; जहां होनी चाहिए वहां नहीं हैं। जो जहां होना चाहिए वहां नहीं है। कुछ कहीं रखा है, कुछ कहीं रखा है। लेकिन इसमें से कुछ भी छोड़ने योग्य नहीं है। क्योंकि जो भी है, अकारण नहीं है। उसका कोई कारण है। तुम्हारी समझ में न आए तो जल्दी मत करना। तोड़ने, काटने, हटाने की भाषा गलत है। संयोजन की, साधन की भाषा सही है।
"पापकर्म के प्रवर्तक राग और द्वेष, ये दो भाव हैं। जो भिक्षु इनका सदा निषेध करता है, वह मंडल में नहीं रुकता, मुक्त हो जाता है।"
संसार तो नहीं रुकेगा। संसार तो चलता ही रहेगा। संसार तो चक्र है। महावीर उसे मंडल कहते हैं। वह तो घूमता रहेगा। गाड़ी का चाक घूमता रहेगा। जब तक गाड़ी में बैठी हुई वासनाओं भरे लोग हैं, गाड़ी चलती रहेगी। तुम इसे रोकने की कोशिश मत करो। तुम चाहो तो गाड़ी से नीचे उतर सकते हो। तुम्हें कोई रोकनेवाला नहीं है।
अधिक लोग इस कोशिश में रहते हैं कि संसार बदल जाए। मेरे पास आते हैं,
वे कहते हैं कि "इतना दुख है संसार में, आप क्यों नहीं कुछ करते?" दुख संसार में है। लोग दुख चाहते हैं। मैं क्या करूं? और अगर वे दुख चाहते हैं, तो यही उनका सुख होगा। उनके सुख में बाधा देनेवाला मैं कौन हूं? यह गाड़ी पर जो लोग बैठे हैं, यह चाक जो लोग चला रहे हैं, वे चलाना चाहते हैं इसलिए चला रहे हैं। उन्हें उनके दुख से जबर्दस्ती थोड़े ही छुड़ाया जा सकता है। हां, जिनकी समझ में आ जाए वे गाड़ी से नीचे उतर जाएं।
रुकता नहीं किसी के लिए कारवाने-वक्त
मंजिल है जुस्तजू की न कोई मुकाम है।
इस संसार की न तो कोई मंजिल है, न कोई मुकाम है। और यह जो कारवां है समय का, यह किसी के लिए रुकता नहीं। हां तुम चाहो तो उतर सकते हो। तुम चाहो तो रुक सकते हो। तुम्हें यह रोकता भी नहीं। इस बात को खूब गहरे हृदय में बैठ जाने देना कि तुम संसार में तभी तक रुके हो जब तक तुम रुकना चाहते हो। एक क्षण को भी, क्षण के अंशमात्र को भी, संसार तुम्हें रोक नहीं सकता। तुम उतरने को राजी हो, तुम्हें कोई रोक नहीं सकता। और अगर तुम सोचते हो कोई और तुम्हें रोक रहा है, तो तुम अपने को धोखा दे रहे हो।
महावीर के समय की कथा है। एक युवक महावीर को सुनकर घर लौटा। नया-नया उसका विवाह हुआ था। स्नान करने बैठा। पुरानी कथा है, अब तो ऐसी बात होती नहीं। पत्नी उसके शरीर पर उबटन लगा रही थी। अब तो कौन पत्नी लगाती है! किसी तरह शरीर ही बचाकर घर से निकल गए तो बहुत है। वह उबटन लगा रही थी, स्नान करवा रही थी! स्नान-गृह में वह बैठा था चौकी पर, पत्नी उबटन लगा रही थी, और पत्नी ने कहा, "सुनो! तुम भी महावीर को सुनने गए। मेरा भाई भी कई वर्षों से सुनता है। और वह सोच रहा है संन्यास ले लेने की।" वह युवक हंसने लगा। उसने कहा, "सोच रहा है? सोचने का संन्यास से क्या संबंध? लेना हो ले ले, न लेना हो न ले। सोचने से क्या मतलब? न लेना हो तो साफ समझे कि नहीं लेना है, लेना हो तो ले ले। कौन रोक रहा है?" उसकी पत्नी ने कहा कि "क्या तुम सोचते हो, संन्यास इतनी आसान चीज है? आदमी को सोचना पड़ता है, विचार करना पड़ता है। तुम भी तो सुनने गए थे, क्या तुम संन्यास तत्क्षण ले सकते हो?"
वह युवक उठकर खड़ा हो गया। पत्नी ने कहा, "कहां जाते हो? यह तो बातचीत
ही थी।" मगर वह तो दरवाजा खोलकर बाहर हो गया। पत्नी ने कहा, "नग्न हो, कहां जाते हो?" उसने कहा, "खतम हो गई बात। लेना है--ले लिया।" पत्नी ने कहा, "अंदर आओ! यह मजाक की बात थी।"
"संन्यास तो", उसने कहा, "मजाक में भी ले लिया जाए तो बात खतम।"
वह नग्न ही महावीर के पास पहुंचा। सारे गांव की भीड़ लग गई। महावीर से उसने कहा कि ऐसा-ऐसा हुआ। उस क्षण में मुझे लगा कि ठीक है, यह मैं क्या कह रहा हूं। दूसरे के लिए कह रहा हूं कि सोचे न, सोच तो मैं भी रहा था। मगर तत्क्षण मुझे बोध हुआ कि अगर लेना है तो ले लूं। कौन रोक रहा है? कौन रोक सकता है?
जब मरते वक्त तुम्हें कोई न रोक सकेगा, तो संन्यास के वक्त कोई तुम्हें कैसे रोक सकता है? जो उतरना चाहता है, उतर जाता है। लेकिन हम बड़े

बेईमान हैं। हम हजार बहाने करते हैं। हमारी बेईमानी यह है कि हम यह भी नहीं मान सकते कि हम संन्यास नहीं लेना चाहते, कि वैराग्य नहीं चाहते। हम यह भी दिखावा करना चाहते हैं कि चाहते हैं, लेकिन क्या करें! किंतु-परंतु बहुत हैं।
"पापकर्म के प्रवर्तक राग और द्वेष ये दो भाव हैं। जो भिक्षु इनका निषेध करता है, वह मंडल संसार में नहीं रुकता, मुक्त हो जाता है।"
रागे दोसे य दो पावे, पावकम्म पवत्तणे।
जे भिक्खू रूंभई निच्चं, से न अच्छइ मंडले।।
बस दो बातें हैं--राग और द्वेष, इन दो के सहारे चक्र चलता है। राग, कि कुछ मेरा है। राग, कि कोई अपना है। राग, कि किसी से सुख मिलता है। इसे सम्हालूं, बचाऊं, सुरक्षा करूं। द्वेष, कि कोई पराया है। द्वेष, कि कोई शत्रु है। द्वेष, कि किसी के कारण दुख मिलता है। द्वेष, कि इसे नष्ट करूं, मिटाऊं, समाप्त करूं। बाहर देखनेवाली नजर हर चीज को राग और द्वेष में बदलती है।
तुमने कभी ख्याल किया। राह से तुम गुजरते हो, किसी की तरफ राग से देखते हो, किसी कि तरफ द्वेष से देखते हो। कोई लगता है अपना है, प्यारा है; कोई लगता है पराया है, दुश्मन है। कोई लगता है आज अपना नहीं, तो कल अपना हो जाए, ऐसी आकांक्षा जगती है। कोई दूर है तो आकांक्षा होती है, पास आ जाए, गले लग जाए। और कोई पास भी खड़ा हो तो होता है, दूर हटे, विकर्षण पैदा होता है। तुम सारे संसार को राग-द्वेष में बांटते चलते हो। जाने-अनजाने। इसे जरा होश से देखना, तो तुम पाओगे प्रतिपलः अजनबी आदमी रास्ते पर आता है, तत्क्षण तुम निर्णय कर लेते हो भीतर, राग या द्वेष का; मित्र कि शत्रु; चाहत के योग्य कि नहीं; प्यारा लगता है कि दुश्मन; भला लगता है, पास आने योग्य कि दूर जाने योग्य। झलक भी मिली आदमी की राह पर और चाहे तुम्हें पता भी न चलता हो, तुमने भीतर निर्णय कर लिया--बड़ा सूक्ष्म राग का या द्वेष का। यह निर्णय ही तुम्हें संसार से बांधे रखता है।
एक कार गुजरी, गुजरते से ही एक झलक आंख पर पड़ी, तुमने तय कर लियाः ऐसी कार खरीदनी है कि नहीं खरीदनी है। लुभा गई मन को कि नहीं लुभा गई। कोई स्त्री पास से गुजरी। कोई बड़ा मकान दिखाई पड़ा। सुंदर वस्त्र टंगे दिखाई पड़े, वस्त्र के भंडार में। राग-द्वेष पूरे वक्त, तुम निर्णय करते चलते हो। यह राग-द्वेष की सतत चलती प्रक्रिया ही तुम्हारे चाक को चलाए रखती है।
तुम मंडल में फंसे रहते हो। फिर क्या उपाय है?
एक तीसरा सूत्र है। बुद्ध ने उसे उपेक्षा कहा है। वह बिल्कुल ठीक शब्द है। महावीर इसको विवेक कहते हैं, बिल्कुल ठीक शब्द है। वे कहते हैं, न राग न द्वेष, उपेक्षा का भाव। न कोई मेरा है, न कोई पराया है। न कोई अपना है, न कोई दूसरा है। न कोई सुख देता है, न कोई दुख देता है। चौबीस घंटे भी एक दफा तुम उपेक्षा का प्रयोग करके देखो, चौबीस घंटे में कुछ हर्जा न हो जाएगा। चौबीस घंटे एक धारा भीतर बनाकर देखो कि कुछ भी सामने आएगा, तुम उपेक्षा का भाव रखोगे, न इस तरफ न उस तरफ, न पक्ष न विपक्ष, न शत्रु न मित्र--तुम बांटोगे न, देखते रहोगे खाली नजरों से। चौबीस घंटे में ही तुम पाओगेः एक अपूर्व शांति! क्योंकि वह जो सतत क्रिया चाक को चला रही थी, वह चौबीस घंटे के लिए भी रुक गई तो चाक ठहर जाता है।
ऐसा ही समझो कि तुम साइकल चलाते हो, तो पैडल मारते ही रहते हो। दोनों तरफ पैडल लगे हैं। दोनों पैडल एक-दूसरे के विपरीत लगते हैं, मगर एक-दूसरे के विपरीत नहीं हैं; दोनों एक-दूसरे के सहयोगी हैं। एक पैडल ऊपर होता है तो दूसरा नीचे होता है। एक बाएं तरफ है तो दूसरा दाएं तरफ है। दोनों दुश्मन मालूम पड़ते हैं, लेकिन दोनों गहरे संयोग में हैं, और दोनों के कारण ही चाक चल रहा है, गाड़ी चल रही है, साइकिल चल रही हैं। तुम पैडल रोक दो, तो हो सकता है, थोड़ी-बहुत दो-चार-दस कदम पुरानी गति के कारण साइकिल चल जाए, लेकिन सदा न चल पाएगी। पैडल रोकते ही गति क्षीण होने लगेगी, साइकिल लड़खड़ाने लगेगी। दो- चार-दस कदम के बाद तुम्हें साइकिल से नीचे उतरना पड़ेगा, नहीं तो साइकल तुम्हें नीचे उतार देगी।

राग और द्वेष पैडल की भांति हैं। विपरीत दिखाई पड़ते हैं, लेकिन उन दोनों के ही पैडल मारकर तुम जीवन के चके को सम्हाले हुए हो। उपेक्षा को साधो! उपेक्षा का अर्थ हैः पैडल मत मारो, बैठे रहो साइकिल पर, कोई हर्जा नहीं। कितनी देर बैठोगे? इसलिए तो मैं कहता हूं अपने संन्यासियों को, भागने की कोई जरूरत नहीं, बैठे रहो जहां हो। साइकिल पर ही बैठना है, बैठे रहो। घर में रहना है, घर में रहो। दुकान पर रहना है, दुकान पर रहो। थोड़ा ध्यान सधने दो, साइकिल खुद ही गिराएगी तुम्हें, तुम्हें थोड़े ही छोड़ना पड़ेगा। साइकल खुद ही छोड़ देगी। साइकिल कहेगी, अब बहुत हो गया, उतरो!
जरा उपेक्षा सधे, जरा विवेक सधे, जरा ध्यान सधे, जरा अमूर्च्छा थोड़ी उठे, कि जीवन में अपने-आप क्रांति घटित होनी शुरू हो जाती है। चौबीस घंटे शायद तुम्हें लगे, बहुत मुश्किल है, शायद डर भी लगे कि कहीं ऐसा न हो कि साइकिल से गिर ही जाएं, हाथ-पैर न टूट जाएं; कहीं ऐसा न हो जाए कि फिर साइकिल पर दुबारा चढ़ ही न सकें--तो ऐसा करो कि दिन में एक घंटा ही उपेक्षा साधो। लेकिन फिर एक घंटा परिपूर्ण उपेक्षा साधो। वह एक घंटा भी तुम्हें जीवन का दर्शन करा जाएगा। क्षणभर को भी अगर राग-द्वेष की बदलियां आंखों में न घिरी हों, तो जीवन का सत्य दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। तब न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। तब तुम्हीं अपने मित्र हो, तुम्हीं अपने शत्रु हो। सत्प्रवृत्ति में मित्र हो, दुष्प्रवृत्ति में शत्रु।
खुदी क्या है राजे-दुरूने-हयात
समंदर है एक बूंद पानी में बंद।
तुम्हारे भीतर समंदर बंद है।
समंदर है एक बूंद पानी में बंद! लेकिन भीतर नजर ही नहीं जाती तो समंदर
का दर्शन नहीं होता। तुम नाहक छोटे बने हो। तुम व्यर्थ ही अपने को क्षुद्र समझे हो। तुम अकारण ही हीन माने बैठे हो। और हीन मान लिया, इसलिए श्रेष्ठ बनने की कोशिश में लगे हो। थोड़ी आंख भीतर आए, थोड़ी उपेक्षा में दृष्टि सम्हले, थोड़ी तुम्हारी ज्योति यहां-वहां न कंपे, राग-द्वेष के झोंके न आएं, तो तुम अचानक पाओगेः समंदर है एक बूंद पानी में बंद। तब तुम विराट हो जाओगे, विशाल हो जाओगे। यही तुम्हारा परमात्म-भाव है।
किरण चांद में है शरर संग में
यह बेरंग है डूब कर रंग में
खुद ही का नशेमन तिरे दिल में है
फलक जिस तरह आंख के तिल में है।
जैसे आंख के छोटे-से तिल में सारा आकाश समाया हुआ है... आंख खोलते हो आकाश को देखते हो, कितना विराट आकाश आंख के छोटे से तिल में समाया हुआ है। खुदी का नशेमन तेरे दिल में है
फलक जिस तरह आंख के तिल में है।
वह परमात्मा का घर भीतर है। वह तुम छोटे मालूम पड़ते हो... आंख का तिल कितना छोटा है, सारे आकाश को समा लेता है!
तुम छोटे मालूम पड़ते हो, हो नहीं। जिस दिन तुम्हारा भीतर का विस्फोट होगा, उस दिन तुम जानोगे कि तुम सदा-सदा से अनंत को, निराकार को, निर्गुण को अपने भीतर लिये चलते थे।
समंदर है एक बूंद पानी में बंद!
लेकिन इसकी खोज नियम, मर्यादा, अनुशासन, नीति, सदाचार, इतने से ही न होगी। इतने से तुम अच्छे आदमी बन जाओगे--सभ्य। सभ्य शब्द बड़ा अच्छा है। इसका मतलबः सभा में बैठने योग्य। और कुछ खास मतलब नहीं है। जहां चार जन बैठे हों, वहां तुम बैठने योग्य हो जाओगे, सभ्य हो जाओगे। कोई तुम्हें दुतकारेगा नहीं कि हटो यहां से! नीति-नियम सीख जाओगे, शिष्टाचार। लेकिन उस परमात्मा के जगत में इतने से काफी नहीं है। सभा में बैठने योग्य हो जाने से, तुम अपने में बैठने योग्य न बनोगे। जो तुम्हें सभा में बैठने योग्य बना दे, वह सभ्यता। जो तुम्हें अपने में बैठने योग्य बना दे, वही संस्कृति।
शेख! मकतब के तरीकों से कुशादे-दिल कहां
किस तरह किबरी.ज से रोशन हो बिजली का चिराग।

शेख! मकतब के तरीकों से कुशादे-दिल कहां--यह उठने-बैठने के निमय और व्यवस्थाएं और आचरण की पद्धतियां, मकतब के तरीके, इनसे दिल का विकास नहीं होता, इनसे आत्मा नहीं बढ़ती, इनसे आत्मा नहीं फलती-फूलती।
किस तरह किबरी.ज से रोशन हो बिजली का चिराग! यह तो ऐसे ही है, जैसे कोई तेल से या गंधक से बिजली के बल्ब को जलाने की कोशिश करे। कोई संबंध नहीं है। तेल भरना पड़ता है दीये में। गंधक के भी दीये बन सकते हैं। लेकिन बिजली की रोशनी को गंधक और तेल की कोई भी जरूरत नहीं है।
किस तरह किबरी.ज से रोशन हो बिजली का चिराग! मकतब के तरीकों से, जीवन
के साधारण शिष्टाचार के नियमों को जिसने धर्म समझ लिया, वह ऐसे ही है जैसे एक बिजली के बल्ब को तेल भरकर जलाने की कोशिश कर रहा हो। वह व्यर्थ है। जैसे ही थोड़ी-सी समझ को तुम उकसाओगे, वैसे ही तुम पाओगेः तुम्हारे भीतर की रोशनी न तो तेल चाहती है न गंधक; तुम्हारे भीतर की रोशनी ईंधन पर निर्भर नहीं है। तुम्हारे भीतर की रोशनी तुम्हारा स्वभाव है।
अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ।।
"आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता, विकर्ता, सत्प्रवृत्ति में स्थित मित्र, दुष्प्रवृत्ति में स्थित अपना ही शत्रु है।"
इस सत्य को तुम हृदयंगम करो। इस सत्य को भीतर ले जाओ। इस सत्य का साक्षात्कार करो। इस सत्य को खोजो अपने जीवन में, क्या ऐसा ही नहीं है? अगर तुम्हें भी ऐसा दिखाई पड़ने लगे--मेरे कहने से नहीं, महावीर के वक्तव्य से नहीं; ऐसा तुम्हें भी दिखाई पड़ने लगे, ऐसी तुम्हारी दृष्टि हो जाए--तो तुम "जिन" होने की यात्रा पर निकल जाओगे। और जैन कभी होना मत चाहना। होना ही है तो जिन होना। होना ही है तो महावीर होना। अनुयायी होने से क्या होगा? अनुकरण नहीं, आत्म-अनुसंधान। जैन बनकर धोखा मत देना। जैन बनने का मतलब हैः सीख गए ऊपर के मकतब के तरीके; आत्मा का नियम खिला नहीं; आत्मा के नियम में बिहार न हुआ। ऊपर-ऊपर की व्यवस्था सीख गए--कैसे उठना, कैसे बैठना, कैसे मंदिर जाना, कैसे पूजा करना, क्रियाकांड, वह सब सीख गए तो जैन हो गए, हिंदू हो गए, मुसलमान हो गए, ईसाई हो गए। लेकिन जो होना था उससे बच गए।
और झूठे सिक्के बड़े खतरनाक होते हैं। क्योंकि झूठे सिक्कों का बोझ और उनकी खनन-खनन तुम्हें धोखा दे सकती है और ऐसा लग सकता है, असली सिक्के अपने पास हैं। असली सिक्का तो जिनत्व का है। जिन होना। अगर होना ही हो तो जिन होना। कुछ और होने से राजी मत होना। सस्ते में अपने को मत बेच डालना। परमात्मा ही खरीदा जा सकता है इस जीवन से; इससे कम की आकांक्षा मत करना। यह हो सकता है, क्योंकि यह हुआ है। यह हो सकता है, क्योंकि यह तुम जैसे
ही मनुष्यों में हुआ है। तुम इसके मालिक हो। यह तुम्हारा स्वभाव-सिद्ध अधिकार है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
दसवां प्रवचन

जिंदगी नाम है रवानी का

पहला प्रश्नः मेरे घरवाले तथा दूसरे भी आपको धर्म को भ्रष्ट करने वाला कहते हैं। लेकिन मेरा मन कहता है:
परवरदिगार आलम तेरा ही है सहारा
तेरे बिना जहां में कोई नहीं हमारा।
किंतु यह तो मेरा मत हुआ। रहना तो उन लोगों के साथ है जो आपके विरोध में हैं। अतः कृपापूर्वक बताएं कि कैसे अपने सत्य की रक्षा करूं?

पहली बात, घरवाले ठीक ही कहते हैं। उनसे नाराज मत होना। जिसे वे धर्म कहते हैं, उसे निश्चित ही मैं भ्रष्ट करता हूं। उनकी बात में कुछ भूल नहीं है। उनकी बात सीधी-साफ है। मेरे और उनके धर्म की परिभाषा अलग है। अगर तुम्हारी भी परिभाषा उनके धर्म की परिभाषा से अलग हो जाये, तो तुम नाराज न होओगे, तुम परेशान भी न होओगे। तुम्हारी परेशानी यह है कि तुम्हारी भी धर्म की परिभाषा वही है जो उनकी परिभाषा है। इसलिए उनकी बात चोट करती है, उनकी बात से पीड़ा होती है। तुम सिद्ध करना चाहते हो कि मैं धर्म को नष्ट नहीं करता। तुम सिद्ध करना चाहते हो कि मैं तो धर्म को, धर्म-चक्र को प्रवर्तित करता हूं। लेकिन धर्म के संबंध में तुम्हारी भूल है। उन्होंने जो धर्म जाना है, वह है परंपरा का धर्म। मैं परंपरा के विपरीत हूं। क्योंकि मैंने जो धर्म जाना है, वह है नितनूतन, प्रतिक्षण नया, शाश्वत, लेकिन फिर भी नितनूतन। उन्होंने जो धर्म जाना है, वह शास्त्र से आता है। मैंने जो धर्म जाना है, वह स्वयं से आता है।
निश्चित ही, शास्त्र भी कभी स्वयं से आये थे। लेकिन वह घटना घटे बहुत देर हो गई। उस घटना पर बहुत राख जम गई समय की। उस घटना पर बहुत व्याख्याओं की पर्तें जम गईं। जब कृष्ण ने बोला था तो उन्होंने तो अंतस्थल से बोला था। लेकिन गीता पर तो बहुत धूल जम गई। गीता के तो बहुत अर्थ हो गए। इतने अर्थ हो गए कि अनर्थ हो गया।
इसलिए जिन्होंने शास्त्र में धर्म को जाना है, उन्हें तो लगेगा, मैं नष्ट करता हूं। क्योंकि मैं कहता हूं, शास्त्र से मुक्त हो जाओ। मेरी गीता में उत्सुकता नहीं, कृष्ण के चैतन्य में उत्सुकता है। गीता तो उस चैतन्य से निकला हुआ उच्छिष्ठ है। अगर होना ही है कुछ तो कृष्ण ही हो जाओ। लेकिन कृष्ण होने के लिए तो भीतर जाना पड़े। कृष्ण होने के लिए तो जीवन दांव पर लगाना पड़े। कृष्ण होने के लिए तो मरना पड़े, तो ही पुनर्जन्म हो, तो ही नया जीवन हो। वह तो सौदा महंगा है।
लोग सस्ता धर्म चाहते हैं। वे चाहते हैं, बिना कुछ किए मिल जाए; बिना कुछ किए धार्मिक होने का सुख मिलने लगे; बिना कुछ किए अहंकार पर धर्म भी आभूषण की तरह सजावट दे, शृंगार दे।
मैं जो धर्म की बात कर रहा हूं, वह तुम्हें जलाएगा, गलाएगा, मिटाएगा।
यह सिर्फ थोड़े से लोगों के लिए हो सकता है।
भीड़ सदा ही शास्त्र को मानेगी। क्योंकि भीड़ इतनी हिम्मतवर भी नहीं है
कि कह दे कि हम अधार्मिक हैं, कह दे कि हम नास्तिक हैं। और इतनी हिम्मतवर भी नहीं है कि सत्य को स्वयं खोजने की यात्रा पर निकले। भीड़ समझौतावादी है। भीड़ कहती है, हम धार्मिक हैं। लेकिन धर्म ऐसा मरा लाश की तरह कि उससे दुर्गंध उठती है, कोई सुगंध नहीं उठती।
निश्चित ही मैं कहता हूं, इस लाश को फेंको। क्योंकि इस लाश के कारण तुम मरे जा रहे हो। लाश के साथ रहोगे तो मरोगे। जो जिसके साथ रहेगा, वैसा हो जाता है। अगर तुम शास्त्र के साथ रहोगे तो धीरे-धीरे शब्द ही शब्द रह जायेंगे, सत्य खो जाएगा। अगर तुम अतीत की परंपरा के पीछे ही चलते रहोगे, तुम्हारी आंखें धीरे-धीरे अंधी हो जाएंगी; उनके उपयोग की जरूरत ही न होगी। तुम सदा किसी के पीछे चलोगे।

जो अपने पैरों से चलता है, जो खुद खोजता है, जो खुद खोजने का खतरा लेता है, उसकी आंखें सजग होती हैं। वह जागने लगता है। प्र्रतिपल चुनौती होती है। उसी चुनौती में आविष्कार होता है।
जो परिवार के लोग, पास-पड़ोस के लोग, तुम्हारे मित्र, प्रियजन, जिसे धर्म कहते हैं, वह संप्रदाय है--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन। मैं जिस धर्म की बात कर रहा हूं, वह न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन है। मैं उस धर्म की बात कर रहा हूं, उस अंगारे की, जो बुझकर कभी ईसाई हो गया, बुझकर कभी हिंदू हो गया, बुझकर कभी जैन हो गया। लेकिन ये बुझे हुए अंगारे हैं, राख के ढेर हैं।
मैं उस धर्म की बात कर रहा हूं, जो जीवंत है। लेकिन जीते हुए अंगारे को हाथ पर लेना, जीते हुए अंगारे को हृदय पर लेना तो थोड़े से दुस्साहसियों का काम है। भीड़ वैसा न कर सकेगी। तुम भीड़ से वैसी अपेक्षा भी न करना।
वे ठीक ही कहते हैं। जब वे ऐसा कहते हैं तो वे अपनी रक्षा कर रहे हैं। तुम्हारे कारण खतरा पैदा हो गया। तुम्हारे कारण उनके जीवन में पहली दफा खलल पड़ा। तुम्हारे कारण तरंगें पैदा हुई हैं, उन्हें सोचने को मजबूर होना पड़ा है।
वे सब तरह से झंझट करेंगे। वे सब तरह से तुम्हें गलत सिद्ध करने की कोशिश करेंगे। तुम्हें गलत सिद्ध करने में उनकी उत्सुकता नहीं है; उनकी उत्सुकता यह है कि "हमारी सुरक्षा तो मत छीनो। हम तो अब तक सोचते थे कि शास्त्र में धर्म है, तुम कहते हो नहीं है, तो तुम हमारे पैर के नीचे की भूमि खींचे ले रहे हो। हमारा क्या होगा?"
जब लोग विरोध करते हैं तो विरोध में उनका रस नहीं है, आत्मरक्षा कर रहे हैं वे। तुम उन पर दया करना। उनका आक्रमण, उनकी आत्मरक्षा का उपाय है। वे कहेंगे यह व्यक्ति धर्म भ्रष्ट करता है। ऐसा कहेंगे, ऐसा मानेंगे, तो मेरे पास आने से बच सकेंगे। ऐसा न कहेंगे, न मानेंगे तो फिर किसी दिन मेरे पास आना पड़े। वह सौदा करने की अभी उनकी तैयारी नहीं है।
तो पहली तो बात, वे ठीक ही कहते हैं। मैंने तुम्हें धर्म की नई परिभाषा देनी शुरू की है। तुम उसे समझो। मैं तुम्हें हिंदू नहीं बना रहा हूं, मुसलमान नहीं बना रहा हूं, ईसाई नहीं बना रहा हूं--मैं तुम्हें सिर्फ धार्मिक बना रहा हूं। मैं तुम्हें कोई मंदिर, मस्जिद नहीं दे रहा हूं। मैं तुम्हें आत्म-रूपांतरण की प्रक्रिया दे रहा हूं। मैं तुम्हें परमात्मा से सीधा जोड़ना चाहता हूं। बीच में कोई मध्यस्थ नहीं दे रहा हूं। क्योंकि मैं देखता हूं कि मध्यस्थ पहुंचानेवाले तो सिद्ध नहीं होते, रोकनेवाले सिद्ध हो जाते हैं। जिनको तुम बीच में ले लेते हो, वे ही दीवारें बन जाते हैं।
मैं तुम्हें ज्ञानी नहीं बना रहा हूं, क्योंकि सब ज्ञान अहंकार को भर देते हैं। मैं तुम्हें त्यागी नहीं बना रहा हूं, क्योंकि त्याग भी बड़े सूक्ष्म अहंकार को जन्माता है। मैं तुम्हें सरल, सीधा, साफ प्रामाणिक बना रहा हूं। मैं तुम से कह रहा हूं, आदमी हो जाना काफी है। अगर तुम आदमी ही हो जाओ तो परमात्मा आ जाए। इतना काफी है कि तुम सरल हो जाओ, सीधे-साफ हो जाओ। तुम जीवन जैसा तुम्हेंं मिला है, उसे अंगीकार कर लो। और जीवन तुम्हें जो अनुभव देने के लिए द्वार खोला है, उन अनुभवों से गुजर जाओ, क्योंकि उससे बड़ा कोई और विश्वविद्यालय नहीं है।
सबसे बड़ा विश्वविद्यालय अनुभव है
पर इसकी देनी पड़ती है फीस बड़ी।
लोग सस्ता अनुभव चाहते हैं, उधार चाहते हैं, कोई दे दे, खुद न लेना पड़े, खुद न गुजरना पड़े आग से। लेकिन न तो तुम्हारे लिए कोई जी सकता है, न तुम्हारे लिए कोई प्रेम कर सकता है, न तुम्हारी जगह कोई मर सकता है--तो तुम्हारी जगह कोई सत्य का अनुभव कैसे ले सकता है?
निजी है जीवन में जो भी श्रेष्ठ है। संप्रदाय का अर्थ होता हैः भीड़। संप्रदाय का अर्थ होता हैः संगठन। परमात्मा से भीड़ का और संगठन का कुछ लेना-देना नहीं। परमात्मा से संबंध हमारा निजी है, वैयक्तिक है। एक-एक जाता है उसकी तरफ, अकेला-अकेला जाता है। और जब भी कोई जाता है तो भीड़ को

छोड़कर जाना पड़ता है; क्योंकि भीड़ चलती है राजपथ पर, चौड़े सीमेंट-पटे पथ पर, सुरक्षित। और परमात्मा बड़ा जंगली है। परमात्मा अभी भी सभ्य नहीं हुआ, सौभाग्य है कि सभ्य नहीं हुआ। परमात्मा अभी भी सरल और प्राकृतिक है।
तो जिसे परमात्मा को खोजना है उसे सरल और प्राकृतिक होना पड़ता है। उसे उतरना पड़ता है राजपथ से, अपनी पगडंडी खोजनी पड़ती है झाड़-झंखाड़ में, कांटों-भरे रास्ते पर। न कोई मार्गदर्शक, न कोई हाथ में नक्शा, न कोई किताब--अकेले, सिर्फ जीवन पर भरोसा!
मैं तुम्हें जीवन पर भरोसा दे रहा हूं और सारे भरोसे छीन रहा हूं। तुम्हारे और सारे भरोसों ने तुम्हें नपुंसक बना दिया है। तुम्हारा आत्मविश्वास खो गया है। जीवन पर तुम्हारी श्रद्धा खो गई है।
मैं कहता हूं, एक ही श्रद्धा करने योग्य है और वह जीवन की श्रद्धा है। तुम यह मानकर चलो कि जिसने तुम्हें जन्माया है, जो तुम्हारे भीतर जन्मा है, वह तुम्हें मंजिल की तरफ भी ले जाएगा। तुम सुनो उसकी, गुनो उसकी। डरो मत। भीड़ को मत पकड़ो। जो तुम्हें यहां तक ले आया है, वह वहां भी पहुंचा देगा। लेकिन डर के कारण हम भीड़ से चिपटते हैं। अगर तुम हिंदू नहीं हो, जैन नहीं हो, मुसलमान नहीं हो तो तुम्हें डर लगेगा, तुम हो कौन! कोई सहारा चाहिए, कोई नाम-पट चाहिए, कोई व्याख्या-परिभाषा चाहिए। हिंदू होने से लगता है, मैं कुछ हूं। मुसलमान होने से लगता है, मैं कुछ हूं। शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय होने से लगता है, मैं कुछ हूं। त्याग किया, मंदिर गए, पूजा की-- लगता है, मैं कुछ हूं।
मैं तुम्हें यहां सिखा रहा हूं कि तुम कुछ भी नहीं हो, परमात्मा है। तुम हो ही नहीं, तुम जगह दो। तुम जगह खाली करो। तुम सिंहासन पर बहुत बैठ चुके हो, उतरो। तो मेरी पुकार तो केवल उनके लिए है, जो अतिदुस्साहसी होंगे। धर्म आत्यंतिक साहस है--कमजोरों का रास्ता नहीं। इसलिए कमजोर धर्म के नाम पर भी राजनीति चलाते हैं। हिंदू हैं, मुसलमान हैं, जैन हैं, ईसाई हैं, ये सब राजनीतियां हैं। नाम धर्म के हैं; पताकाएं धर्म की हैं--भीतर राजनीति है। चर्च हैं, मंदिर हैं, पुजारी हैं, पंडे-पुरोहित हैं--बातें धर्म की हैं; भीतर अगर थोड़ा गहरे उतरोगे, राजनीति पाओगे। संसार की दौड़ है, पद की, प्रतिष्ठा की, संपदा की, साम्राज्य की। ईसाइयत चाहती है, सारे संसार पर छा जाए। परमात्मा पाने में उतना रस नहीं है, जितना संसार पर छाने में रस है। इस्लाम चाहता है, सारी दुनिया को मुसलमान बना ले। तलवार के बल तो तलवार के बल सही। चाहे काटने पड़ें लोग, लेकिन उनके हित में उन्हें काटना ही पड़ेगा! जलाने पड़ें गांव, बस्तियां उजाड़नी पड़ें; लेकिन आदमी को मुसलमान बनाना ही पड़ेगा!
यह क्या पागलपन है? आदमी आदमी होने से पर्याप्त है। उसे हिंदू और मुसलमान और ईसाई बनाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन सब राजनीतियां हैं। इधर हिंदू परेशान रहते हैं। मेरे पास आ जाते हैं लोग। वे कहते हैं, "आप कुछ करिए! ईसाई मिशनरी हिंदुओं को ईसाई बना रहे हैं।" मैं उनसे कहता हूं, अगर वे जितने अच्छे आदमी पहले थे उससे अच्छे आदमी ईसाई होकर हो रहे हैं, तो क्या हर्जा है? हां, अगर जैसे पहले थे, उससे बुरे हो रहे हैं तो कुछ करें। अगर वे वैसे के वैसे ही रह रहे हैं, जैसे हिंदू थे वैसे ईसाई होकर रहेंगे, तो क्या चिंता है? होने दो! इससे क्या फर्क पड़ता है?
नहीं, लेकिन वे कहते हैं, फर्क पड़ता है, हमारी संख्या कम होती जाती है। संख्या कम होती है तो राजनीति में बल कम होता चला जाता है। संख्या कम होती है तो मत कम हो जाते हैं। अगर ऐसा ही होता रहा तो ईसाइयों का राज्य हो जाएगा। गौर से देखो तो धर्म के भीतर तुम राजनीति छुपी पाओगे। हिंदू कहता है, हिंदू धर्म को बचाना है। धर्म से कुछ लेना देना नहीं--हिंदू राजनीति को बचाना है! ईसाई कहता है, ईसाइयत को फैलाना है। ईसाइयत से क्या लेना देना है? ईसा से क्या ईसाइयत का संबंध रहा है! वह यह कह रहा है, अपनी राजनीति को फैलाना है, अपने साम्राज्य को, शक्ति को फैलाना है। कोई भी बहाना हो, आदमी राजनीति में डूबा है।
ध्यान रखना, जहां तुम्हारा भीड़ में रस हुआ, वहां राजनीति आई। तुम अपने में रस लो। धर्म नितांत वैयक्तिक घटना है। परमात्मा घटेगा तुम्हारे

अंतर्तम में, तुम्हारे एकांत में। किसी को कानों-कान खबर भी न होगी। तुम्हारी पत्नी भी पास होगी, उसे भी पता न चलेगा। तुम्हारे बेटे को पता न चलेगा, जो तुम्हारा ही खून, हड्डी, मांस का हिस्सा है।
धर्म जब घटता है तो नितांत वैयक्तिक है। राजनीति सामूहिक है। जहां धर्म समूह बनता है, वहां राजनीति हो जाती है। मेरी राजनीति में कोई उत्सुकता नहीं। मेरी उत्सुकता व्यक्तियों में है, समूहों में नहीं। यहां भी तुम बैठे हो, तो मैं एक-एक से बात कर रहा हूं, समूह से नहीं। मेरी नजर तुम पर है--एक-एक पर। तुम्हारी भीड़ से मेरा कुछ लेना-देना नहीं है।
एक मित्र ने पूछा है कि "सत्य साईंबाबा की सभा में हजारों लोग होते हैं। पांडूरंग महाराज की सभा में हजारों लोग होते हैं। डोंगरे जी महाराज की सभा में हजारों लोग होते हैं। आपकी सभा में थोड़े-से लोग क्यों होते हैं?"
मैं आश्चर्यचकित होता हूं कि इतने भी क्यों हैं! इतने भी होने नहीं चाहिए हिसाब से। जो मैं कह रहा हूं वह इतनों को भी पट जाता है, यह भी आश्चर्य की बात है। और ऐसा नहीं है कि भीड़ मेरे पास नहीं थी। भीड़ मेरे पास भी थी। मैंने सारे रास्ते उसके लिए बंद कर दिए। वे हजारों लोग मेरे पास भी थे। लेकिन मैंने पाया, वह हजारों लोगों का मनोरंजन होगा। उनके जीवन में कोई क्रांति की आकांक्षा न थी। जलसा था, तमाशा था। क्रांति की आकांक्षा भीड़ में नहीं है। भीड़ को मैंने छोड़ा। अब तो हर तरह के मैंने उपाय किए हैं कि भीड़ का आदमी पहुंच ही न पाए। सब तरह के द्वार-दरवाजे बिठा दिए कि भीड़ को आने ही न दिया जाए। वे ही थोड़े-से लोग जो सच में रूपांतरित होना चाहते हैं, मेरे पास तक पहुंच पाएं। अन्यों में मेरा रस नहीं है।
इसलिए इतने तुम हो यहां, यह चमत्कार है। तुम गणित के सब नियमों को तोड़कर यहां हो।
भीड़ को इकट्ठा कर लेने से सस्ता कोई काम दुनिया में और है? भीड़ की मूढ़ता को समझो। जहां भीड़ है वहां एक बात पक्की हो जाती है कि कुछ गलत चल रहा होगा। ठीक के साथ तो भीड़ हो ही नहीं पाती। इतने लोग कहां कि जहां ठीक चलता हो वहां भीड़ हो जाए? इतने आदमी कहां? नाममात्र के आदमी हैं। रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे हों तो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। एक-दूसरे को गाली-गुफ्ता कर रहे हों तो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। हजार जरूरी काम छोड़कर वहां खड़े हो जाते हैं। इस भीड़ को इकट्ठा करके भी क्या होगा?
लेकिन राजनीतिज्ञ इसी भीड़ में उत्सुक हैं। और जिन्हें तुम धर्मगुरु कहते हो, वे भी इसी भीड़ में उत्सुक हैं; क्योंकि भीड़ में बल है। जितनी बड़ी भीड़ तुम्हारे पास इकट्ठी होती है, उतने तुम बलशाली हो जाते हो। लेकिन बलशाली होने की आकांक्षा तो अहंकार की ही यात्रा है।

निर्बल के बल राम। मैं तो तुम्हें सिखाता हूंः निर्बल हो जाओ। कोई ताकत तुम्हारे पास न हो, न पद की, न धन की, न मत की। कोई सहारा तुम्हारे पास न हो, तुम बिल्कुल बे-सहारे हो जाओ। जब तुम बिल्कुल बे-सहारे हो तब तुम्हें परमात्मा का सहारा मिलता है। जब तक तुम्हारा अपना कोई सहारा है, परमात्मा को सहारा देने की जरूरत भी नहीं है।
सुना है मैंने, कृष्ण भोजन को बैठे हैं बैकुंठ में। अचानक बीच थाली से
उठ पड़े। भागे द्वार की तरफ। रुकमणि ने कहा, "कहां जाते हैं?" लेकिन इतनी जल्दी में थे, जैसे घर में आग लग गई हो, कि उत्तर भी न दिया; लेकिन फिर द्वार पर रुक गए, वापिस लौट आए। कुछ उदास मालूम पड़े। रुकमणि ने पूछा, "क्या हुआ? कुछ समझ में न पड़ा। अचानक भागे। कौर भी जो हाथ में लिया था, पूरा न लिया, उसे भी छोड़ दिया। मैंने पूछा तो जवाब न दिया। फिर लौट क्यों आए?"
कृष्ण ने कहा, "मेरा एक प्यारा एक राजधानी से गुजर रहा है। मेरा एक फकीर एकतारा बजाता, गीत गाता। लोग उस पर पत्थर फेंक रहे हैं। लहूलुहान, खून उसके माथे से बह रहा है। लेकिन उसका गीत बंद नहीं होता। वह कृष्ण और कृष्ण की धुन लगाए जाता है। जाना जरूरी हो गया। इतना असहाय, उत्तर भी नहीं देता! पत्थर भी नहीं उठाता। वीणा भी बजे जा रही है। वह गीत भी गुनगुनाए जा

रहा है, खून भी बहा जा रहा है। जिसने इतना मुझ पर छोड़ा, मैं बैठकर भोजन करूं? तो भागा।"
रुकमणि ने कहा, "ठीक! यह समझ में आता है। यह गणित साफ है। फिर लौट क्यों आए?" कृष्ण ने कहा, "जाने की जरूरत न रही। जब तक मैं द्वार तक पहुंचा, उसने एकतारा तो फेंक दिया है, पत्थर उठा लिया। अब वह खुद ही उत्तर दे रहा है; अब मुझे कुछ उत्तर देने की जरूरत न रही।"
धार्मिक व्यक्ति अपने को असहाय करता जाता है। असहाय हो जाने में ही उसकी पूजा, उसकी प्रार्थना है। वह धीरे-धीरे अपने सब सहारे तोड़ता जाता है। वह अपने को एक ऐसे सागर में छोड़ देता है एक दिन, न नाव, न कोई कूल, न कोई किनारा! उस घड़ी में ही परम आलंबन मिलता है। उस घड़ी में ही प्रभु का हाथ तुम्हारी तरफ आता है। उसका अर्थ यह हुआ... जब तुमने सब अपने सहारे छोड़ दिए, उसका अर्थ यह हुआ कि अब तुम्हें भरोसा आया, अब तुम्हें श्रद्धा हुई। इसके पहले तुम्हारी श्रद्धा अपनी चीजों पर थी। धन पर थी, पद पर थी, मत पर थी, भीड़ पर थी, राज पर थी। तुम्हारी कोई श्रद्धा और थी। लेकिन जिस दिन तुमने अपनी और सारी श्रद्धाएं छोड़ दीं, उसी दिन उस परमशून्य में, उस श्रद्धा का जन्म होता है जिसको धर्म कहें। उस दिन परमात्मा के सिवाय तुम्हारा कोई सहारा न रहा। उस दिन उसी घड़ी में, वह महाक्रांति घटती है। उसी घड़ी में तुम उठा लिए जाते हो। उसी घड़ी में तुम्हारे भीतर जो कूड़ा-कर्कट है, जल जाता है; जो सोना है निखर जाता है।
इसलिए भीड़ में मेरी उत्सुकता नहीं है। धर्म मेरे लिए अभिजात्य है, अरिस्टोक्रेटिक है। भीड़ का उससे कुछ लेना-देना नहीं है। कभी-कभी कोई आदमी इतने अभिजात्य को उपलब्ध होता है, ऐसी अंतर्तम की अरिस्टोक्रेसी को... ! तुम समझो इसे। कोई कवि है। जितना श्रेष्ठतर कवि होगा, उतने ही कम लोग उसे सुनने जाएंगे। क्योंकि ज्यादा लोग सुनने तभी आ सकते हैं जब वह निकृष्ट हो, जब वह नीचा हो; जब वह उन्हीं की भाषा में बोल रहा हो जिस भाषा में लोग समझ सकते हैं; जब वह उन्हीं मनोवेगों को छेड़ रहा हो जिनको लोग समझ सकते हैं; जब वह कामवासना के गीत गा रहा हो। जहां लोग हैं, जब उसकी कविता भी वहीं हो, तभी लोग उसे समझ पाएंगे; तभी लोग आंदोलित होंगे।
उपन्यास वही बिकेगा जो अत्यंत सस्ता से सस्ता हो; दाम में ही नहीं, जिसकी आत्मा ही सस्ती हो, जिसमें कुछ भी न हो विशेष। गीत वही गुनगुनाया जायेगा जो जितना क्षुद्र, निम्न हो, जितने नीचे तल पर पुकार हो। संगीत भी वही सुना जाएगा जिसमें आदमी की क्षुद्र वासनाओं की संतुष्टि हो। फिल्म भी वही चलेगी। फिल्म भी वही चलेगी जो लोगों की कामवासना को थिरकाती हो। हिंसा हो, कामवासना हो, हत्या हो, तो फिल्म चलेगी, तो लोग खिंचे हुए चले जाएंगे। अब किसी फिल्म में समाधि का दर्शन हो, कौन जाएगा? बुद्ध बैठे रहें, बैठे रहें वृक्ष के तले, समाधि के फूल खिलें--कौन जाएगा? लोग ऊब जाएंगे। लोग बीच फिल्म में झगड़ा-फसाद करने को खड़े हो जाएंगे, कि न मार-काट, न कोई हत्या, न कोई सनसनीखेज बात--यह मामला क्या है?
ऐसा हुआ है! सेमुअल बेकेट ने एक फिल्म बनाई। अनूठा आदमी था। छोटी-छोटी किताबें उसने लिखी हैं, बड़ी-बड़ी गहन-गंभीर! उसने एक फिल्म भी बनाई। उस फिल्म में कुछ भी नहीं है। एक आदमी घर लौटता है--कई वर्षों के बाद। घर भी खंडहर जैसा हो गया है। पत्नी कहां गई, पता नहीं। बच्चे कहां गए, पता नहीं। उसका आना, घर में उसका प्रवेश, अतीत को खोजती उसकी आंखें! द्वार पर, दीवार पर, चित्र पर, केलेंडर पर, फर्नीचर पर--सारा अतीत उसका छाया है। वह खोया है, स्तब्ध खड़ा है। वह एक-एक चीज को उठाकर देखने लगता है। एक शब्द नहीं बोला जाता, सिर्फ उसकी श्वास बढ़ने लगती है। वह घबड़ा गया है। यह सारा अतीत है उसका। और सब सूत्र खो गए हैं। कहां है बेटा, कहां पत्नी--कुछ भी पता नहीं है। यह भी कुछ कहा नहीं जाता; यह भी देखनेवाले को समझना है। अभी तक एक शब्द बोला ही नहीं गया है--सिर्फ उसकी बढ़ती हुई सांस की आवाज है। वह एक-एक चीज को उठाता है, आंख से आंसू बहने लगते हैं। सिसकियां आ जाती हैं। उसके रोने की आवाज और गहन अंधकार हो जाता है। फिल्म खतम हो जाती है।
जहां चली, वहीं झगड़े हो गए। वहीं लोगों ने कुर्सियां तोड़ डालीं, पर्दे तोड़ डाले। लोगों ने कहा, "यह धोखा है। यह कोई फिल्म है?"

बड़ा सूक्ष्म चित्रण है। कुछ ऐसे भावों को उसकी आंखों से प्रगट किया
है जो शब्दों में नहीं कहे जा सकते। उसके उठने में, बैठने में, उसकी श्वास की बढ़ती हुई आवाज में, उसकी आंखों से टपकते हुए टप-टप आंसुओं में, फिर अंधेरे में खो गई उसकी सिसकियों में--आदमी की पूरी जिंदगी है। यही तो जिंदगी है।
एक दिन तुम भी तो यही पाओगे कि जहां सब बसाया था वहां सिर्फ खंडहर है। बेटे भी खो गए, पत्नी भी खो गई, पति भी खो गये--सब खो गये। अकेला रह जाता है आदमी। सांस की आवाज बढ़ती जाती है और टूट जाती है। अंधेरा! मौत! सिसकियां! हाथ खाली के खाली! और है क्या जिंदगी में? सारी जिंदगी को उसमें रख दिया है; लेकिन कहीं भी फिल्म चल न सकी। और जहां भी चली वहीं उपद्रव हुआ। जनता ने कहा, पैसे वापस!
नहीं, भीड़ को एकत्रित करना हो तो निकृष्ट होना जरूरी है। सत्य साईंबाबा के पास भीड़ इकट्ठी होगी; क्योंकि तुम्हारी जो क्षुद्रतम आकांक्षाएं हैं उनकी तृप्ति का भरोसा है। भरोसा दिया जा रहा है, आश्वासन दिया जा रहा है। किसी को मुकदमा जीतना है। किसी को सुंदर पत्नी पानी है। किसी को धन कमाना है। किसी को बीमारी मिटानी है। आदमी की जो सामान्य जीवन की चिंताएं हैं... तो सत्य साईंबाबा के पास लगता है कि पूरी होंगी। चमत्कार घटते हैं। स्विस घड़ियां हाथ में आ जाती हैं। सूने आकाश से राख आ जाती है। वस्तुएं निकल आती हैं। तो जो आदमी ऐसा चमत्कारी है उससे आशा बंधती है कि जो शून्य से घड़ियां निकाल देता है, उसे क्या असंभव है! अगर उसकी कृपा हो जाए तो तुम्हारे ऊपर धन भी बरस सकता है। अगर उसकी कृपा हो जाए तो तुम मुकदमा भी जीत सकते हो। अगर उसकी कृपा हो जाए तो तुम्हारी बीमारी भी दूर हो सकती है। यह आश्वासन जगता है। यह मदारीगिरी है; तुम्हारे भीतर वह जो छुपी हुई वासनाएं हैं, उनको सुगबुगाती है।
स्वभावतः भीड़ इकट्ठी हो जाती है। क्योंकि भीड़ बीमारों की है। भीड़ अदालतबाजों की है। भीड़ धन के पागल प्रेमियों की है। भीड़ पद के आकांक्षियों की है। तो राजनेता भी पहुंच जाता है चरण छूने, क्योंकि मुकदमा उसको भी लड़ना है, चुनाव उसको भी जीतना है। कोई आशीर्वाद, ईश्वर का भी सहारा मिल जाए उसे। वह भी ताबीज ले आता है। वह भी भभूत ले आता है, संभालकर रख लेता है।
दिल्ली में ऐसा एक भी राजनीतिज्ञ नहीं है, जिसका गुरु न हो। और जब कोई राजनीतिज्ञ जीत जाता है, तब तो भूल भी जाए; लेकिन जब हार जाता है तो गुरुओं के चरणों में जाने लगता है। कहीं से कोई आशा की किरण... ।
स्वभावतः मेरे पास तुम किसलिए आओगे?
न मैं तुम्हारी बीमारी दूर करूंगा, न मैं तुम्हें मुकदमे जिताऊंगा, न तुम्हारे लिए सुंदर पत्नियों की तलाश करूंगा, न तुम्हारे लिए धन का आयोजन करनेवाला हूं--उलटे तुम्हारे पास जो होगा वह भी ले लूंगा।
यहां तो तुम्हें कुछ छो.ेडना होगा। यहां तो थोड़े-से हिम्मतवरों का काम है। जो मिटने को राजी हों, उनके लिए मेरा निमंत्रण है। जिनको अभी जीवेषणा है, वे कहीं और जाएं। और ठीक है कि वे यहां न आएं, क्योंकि यहां वे व्यर्थ का उपद्रव करते हैं।
मेरे पास भी कभी-कभी इतने बंधनों के बाद भी लोग आ जाते हैं, इतने इंतजाम के बाद भी आ जाते हैं। कहते हैं कि ध्यान के संबंध में समझना है। लेकिन जब पूछने मेरे पास पहुंच जाते हैं, तो मैं उनसे कहता हूं, "सच में ही ध्यान के संबंध में समझना है?" अब वे कहते हैं, "अब आप से क्या छिपाना... सब तरह की कोशिश कर रहा हूं, लेकिन दीनता नहीं मिटती, दारिद्य्र नहीं मिटता। कुछ आशीर्वाद दे दें!"
आते हैं ध्यान को पूछने। शायद उन्हें भी साफ नहीं है कि उनकी जो अशांति है, वह अशांति ध्यान के लिए नहीं है, वह अशांति धन के लिए है। धन नहीं है, इसलिए अशांत हैं।
पूछते हैं मुझसे लोग कि "ध्यान करेंगे तो सफलता मिलेगी जीवन में?" जीवन की सफलता के लिए ध्यान को साधन बनाना चाहते हैं। ध्यान तो उनके लिए है जिन्होंने यह जान लिया कि जीवन का स्वभाव असफलता है--हारे को हरिनाम!

जिन्होंने जान लिया है कि जीवन में तो हार ही हार है, यहां जीत होती ही नहीं!
मैं तुम्हें किसी तरह के धोखे देने में उत्सुक नहीं हूं। कोई कारण भी नहीं है कि तुम्हें धोखा दूं, क्योंकि भीड़ में मेरी कोई उत्सुकता नहीं है। मैं इधर अकेला हूं, तुम भी अगर अकेले होने के लिए राजी हो गए हो तो मेरे पास आओ।
तो ठीक ही है, लोग कहेंगे कि मैं धर्म को भ्रष्ट कर रहा हूं। और निश्चित ही मैं ऐसी बातें कह रहा हूं, कि जो धर्म समझा जाता रहा है वह भ्रष्ट होगा। वह होना चाहिए। वह धर्म नहीं है। जो बातें मैं कह रहा हूं, वे अजनबी हैं।
शरहे-फिराक मदहे-लबे-मुश्कबू करें
गुरबतकदे में किससे तेरी गुफ्तगू करें।
जैसे कोई परदेस में खो गया, जहां न कोई अपनी भाषा समझता है, न अपनी कोई शैली समझता है--वहां अगर तुम अपने प्रेमी की चर्चा करने लगो और अपने प्रेमी की जुदाई की बात करने लगो, कौन समझेगा? और वहां अगर तुम अपने प्रेयसी और प्रेमी के सुगंधित ओंठों का वर्णन करने लगो, महिमा का गान करने लगो, कौन समझेगा?
शरहे-फिराक मदहे-लबे-मुश्कबू करें
--किससे कहें अपने प्रेमी के सुगंधित ओंठों की बात! इस बिछुड़न में कैसे कहें!
गुरबतकदे में किससे तेरी गुफ्तगू करें!
--इस परदेस में किससे तेरी चर्चा करें!
तो मैं तो दीवानों की तलाश में हूं, जो इस चर्चा को समझ सकें। तुम्हारे कारण मैं नीचे उतरने को राजी नहीं हूं। हां, मेरे कारण तुम ऊपर चढ़ने को राजी हो तो मेरे द्वार खुले हैं। यह मेरा संगीत नीचे न उतरेगा, ताकि तुम जहां हो वहां तुम समझ सको। तुम्हें अगर मेरे संगीत को समझना है तो तुम्हें ही सीढ़ियां चढ़नी पड़ेंगी और वहां आना होगा जहां मैं हूं।
दो ही उपाय हैं मेरे और तुम्हारे मिलने के। एक तो यह है कि मैं नीचे उतरूं, जो कि असंभव है; क्योंकि कोई कभी ऊपर जाकर नीचे नहीं उतर सकता। जो नीचे उतरा हुआ मालूम पड़े, वह नीचे होगा ही, ऊपर गया नहीं है।
दूसरा उपाय है कि तुम मेरी तरफ चढ़ो, मेरी बात तुम्हें पकड़ ले, मेरे शब्द तुम्हारे प्राणों को जकड़ लें, मेरी पुकार तुम्हें सुनाई पड़ जाये, तुम्हारी निद्रा में, तुम्हारे स्वप्न में थोड़ी खलल पड़ जाए, एक धागा भी तुम मेरे शब्दों का पकड़कर उठने लगो--तो धीरे-धीरे जैसे-जैसे तुम ऊपर उठोगे वैसे-वैसे मेरी बात साफ होगी। जैसे-जैसे तुम ऊपर उठोगे वैसे-वैसे तुम्हें लगेगा कि धर्म क्या है। अनुभव तुम्हारा गहरा होगा तो तुम पाओगे कि मैं धर्म के खिलाफ बोल रहा था, क्योंकि मैं धर्म के पक्ष में हूं; चूंकि मैं शास्त्र के खिलाफ बोल रहा था, क्योंकि मैं शास्त्र के पक्ष में हूं। लेकिन मैं जीवंत अनुभव तुम्हें देना चाहता था। राख पर मेरा भरोसा नहीं है। अंगारे मैं अपनी झोली में लिये बैठा हूं, जो भी जलने को राजी हों।
तो घर के लोग ठीक ही कहते हैं। उनसे बेचैन मत होना। उनसे विवाद मत करना। उनसे नाहक माथा-पच्ची मत करना। क्योंकि माथा-पच्ची में तुम व्यर्थ ही अपना समय गंवाओगे। कह देना कि हां ठीक कहते हैं आप; अब मैं क्या करूं, मैं पागल हो गया हूं। तुम पागल होकर अपने को बचा लेना। व्यर्थ के विवाद, व्यर्थ की चर्चा, व्यर्थ के सिद्धांतों के विश्लेषण--और इस सब में समय मत खोना। क्योंकि उनका तो कुछ न खोएगा--उनके पास कुछ भी नहीं है--तुम्हारा कुछ खो जाएगा। तुम्हारे पास कुछ है; या उतर रहा है। तुम्हारी एक-एक घड़ी बहुमूल्य है। तुम बाजार में खड़े होकर दुकानों पर चर्चा करने में मत समय व्यतीत करना। तुम्हारे पास ध्यान की संभावना है। तुम तो उनसे कह देना, आप ठीक कहते हैं, लेकिन कुछ हो गया, मैं पागल हो गया! वे तुम्हें पागल भी समझ लें तो कुछ हर्ज नहीं।
तुम मेरी आंखों की तरफ देखो! मैं तुम्हें क्या समझता हूं, इसकी फिक्र करो! और लोग तुम्हें क्या समझते हैं, इसकी चिंता छोड़ो! अगर तुम्हें मुझ पर

थोड़ा भी भरोसा है तो मैं तुमसे कहता हूं कि तुम उस राह पर हो, जहां पागल हो जाना भी बुद्धिमानी है। और दूसरे लोग, जो तुमसे कह रहे हैं कि तुम गलत राह पर गए हो, समझदार रहकर भी सिर्फ बुद्धिहीनता कर रहे हैं। और उन्हें समझाने का एक ही उपाय है कि तुम बदलो। तुम्हारी क्रांति उन्हें छुएगी। तुम्हारे जीवन में उठी नई ऊर्जा उन्हें प्रभावित करेगी। तुम्हारा प्रेम, तुम्हारा आनंद। तुम्हारा तर्क नहीं। तुम्हारे शब्द नहीं। तुम्हारा अस्तित्व। तुम कुछ ऐसे हो जाओ, जो मैं कह रहा हूं वैसे हो जाओ। फिर तुम देखना, वे खुद ही तुमसे पूछने लगेंगे, "कहां से यह तृप्ति आई?" अंधे थोड़े ही हैं वे लोग! वे भी आंखवाले हैं। हीरे दिखाई पड़ने लगें तो वे भी समझेंगे, कितनी देर न समझेंगे! तुम हीरा बनो! तुम्हारे भीतर चमक आए। वही तुम्हारा तर्क होगा। मैं तुमसे शाब्दिक विवाद में पड़ने को नहीं कहता हूं। और तुम इसकी बिल्कुल फिक्र मत करना कि तुम्हें मेरी रक्षा करनी है। मेरी रक्षा की कोई भी जरूरत नहीं है। मेरा होना न होना, लोग क्या कहते हैं, इस पर निर्भर नहीं है। मैं हूं। वे पक्ष में हों कि विपक्ष में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरे होने पर कोई रेखा नहीं पड़ती इससे। इसलिए तुम इसकी फिक्र ही मत करना। मेरे शिष्यों को मुझे बचाने की चिंता ही नहीं करनी चाहिए। क्योंकि जिस गुरु को बचाने के लिए शिष्यों को चेष्टा करनी पड़ती हो, वह गुरु ही नहीं। जो शिष्यों के आधार पर बचता हो, वह बचाने योग्य भी नहीं। तुम इसकी फिक्र छोड़ दो।
तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है, वह मैं जानता हूं। जब तुम्हारे गुरु
को कोई गाली देता है, तो तुम्हीं को गाली देता है परोक्ष से। जब कोई कहता है कि तुम्हारा गुरु धर्म भ्रष्ट करने वाला है, तो वह तुमसे यह कह रहा है कि तुम धर्म भ्रष्ट हो रहे हो। जब कोई कहता है, तुम्हारा गुरु गलत है, तो वह कहता है तुम गलत हो। तुम्हारे मन को चोट लगती है। शिष्य का मन होता है कि सारी दुनिया कहे कि तुम्हारा गुरु सबसे बड़ा गुरु! क्योंकि तुम सबसे बड़े गुरु के शिष्य हो, तो सबसे बड़े शिष्य हो गये! तुम्हारा अहंकार तृप्त होगा। लोग मेरी पूजा में थाल सजाएं, लोग मेरा गुणगान करें, तो तुम्हारा भी गुणगान उसमें छिपा होगा। तुम भी मेरे हो। मेरी पूजा अनजाने तुम्हारी भी पूजा होगी। यह अहंकार छोड़ो! यह बकवास बंद करो। यही तो चलता रहा है।
जैनों से पूछो तो महावीर सबसे ऊपर; किसी को महावीर के ऊपर नहीं रख सकते। ऊपर रखने की तो बात छोड़ो, महावीर के साथ भी नहीं रख सकते। कृष्ण को तो नर्क में डाल दिया है। राम संसारी हैं। बुद्ध से जरा अड़चन है, क्योंकि न तो बुद्ध संसारी हैं, न कृष्ण जैसे किसी युद्ध में खड़े हैं, न युद्ध करवाने वाले हैं--लेकिन फिर भी महावीर की ऊंचाई पर तो नहीं रख सकते! तो महावीर को "भगवान" कहते हैं, बुद्ध को "महात्मा" कहते हैं।
एक जैन विचारक मेरे पास आते थे। कहते हैं अपने आपको, सहिष्णु हूं, सभी धर्मों में समभाव रखता हूं। जैन हैं। उन्होंने एक किताब लिखी है। भगवान बुद्ध तो नहीं लिखाः महात्मा बुद्ध; और महावीर को "भगवान" लिखा। "भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध।" किताब मेरे पास लाए, कहा कि "देखें, जैन हूं; लेकिन मेरा सदभाव सब की तरफ है।" तो मैंने कहा कि "सदभाव ही था, इतनी कंजूसी क्यों कर गए? इधर थोड़ी हिम्मत और बढ़ा लेते।"
महात्मा का अर्थ होता हैः जो भगवान होने की तरफ जा रहा है, अभी पहुंचा नहीं। महात्मा का अर्थ होता हैः जो अंतरमुखी है, अंतरात्मा की तरफ जा रहा है। भगवान का अर्थ होता हैः जो पहुंच गया। तो उन्होंने कहा कि "वह तो ठीक है, लेकिन बुद्ध अभी महात्मा ही हैं, तो मैं क्या करूं?"
बौद्धों से पूछो, तो बौद्धों ने जो मिथ्या दृष्टियां गिनाई हैं, उनमें एक महावीर की दृष्टि भी है। बौद्धों ने बड़ा मजाक उड़ाया महावीर का। क्योंकि महावीर के शिष्य कहते थे कि महावीर सर्वज्ञ हैं, तीनों काल के ज्ञाता हैं। तो बौद्ध शास्त्रों में बड़ा मजाक उड़ाया है कि महावीर एक घर के सामने भीख मांग रहे हैं, और उन्हें यह भी पता नहीं कि घर में कोई नहीं है, घर खाली है। और त्रिकालज्ञ हैं, तीनों काल के ज्ञाता हैं और इतना भी पता नहीं है कि जिस घर के सामने भिक्षापात्र लिये खड़े हैं, वहां भीतर कोई भी नहीं। बाद में पता चलता है, घर खाली है। राह से गुजरते हैं, सुबह का अंधेरा

है। राह पर सोए कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ जाता है। जब कुत्ता भौंकता है तब पता चलता है। त्रिकालज्ञ हैं!
बौद्ध मजाक उड़ा रहे हैं।
शिष्यों को हमेशा बड़ी तकलीफ होती है। शिष्यों की तकलीफ यह है कि हमारा गुरु श्रेष्ठतम होना ही चाहिए! नहीं तो हम चुनते? हम जैसे बुद्धिमान ने जिसे चुना, वह श्रेष्ठतम से कम हो सकता है, असंभव!
तुम जरा ध्यान रखना, जब कोई मुझे गाली दे, कोई मेरा खंडन करे, तब अपने अहंकार का ख्याल रखना, वह भी सहयोग कर रहा है। वह भी तुम्हारे अहंकार को काट रहा है। उससे कहना, "काट! ठीक से काट।" वह मेरे खिलाफ कुछ कह रहा है या नहीं कह रहा है, इससे क्या फर्क पड़ता है? मुझे क्या फर्क पड़ता है? तुम्हें फर्क पड़ता है। तुम्हें अड़चन होती है। तुम लड़ने-मारने को, झगड़ने को उतारू हो जाते हो। तुम्हारे गुरु को कुछ कह दिया तो यह जीवन-मरण का सवाल हो गया। देखना, यह सब अहंकार का सवाल है; जीवन-मरण का इससे कुछ लेना-देना नहीं।
और यहां मेरी पूरी शिक्षा है कि अहंकार तोड़ देना है, गिरा देना है। तो ये भी तुम्हारे मित्र हैं। ये भी तुम्हारे अहंकार को तोड़ने के लिए साथ दे रहे हैं। इनको भी धन्यवाद देना।
तो जैसे-जैसे तुम शांत भाव से लोगों की बात सुनने लगोगे, उनकी बातें इतनी महत्वपूर्ण न मालूम प.ड़ेंगी--सोये हुए लोगों की बकवास है। नींद में बड़बड़ा रहे हैं। अपना उन्हें पता नहीं है, तुम्हारा क्या पता होगा, मेरा क्या पता होगा? उनकी बात को ज्यादा मूल्य मत देना।
जिंदगी नाम है रवानी का
क्या थमेगा बहाव पानी का
जिंदगी है कि बेताल्लुक-सा
एक टुकड़ा किसी कहानी का।
--अप्रासांगिक, जैसे किसी कहानी का एक टुकड़ा उड़ता हुआ हवा में, कागज का
एक टुकड़ा तुम्हारे हाथ लग जाये, उसे तुम पढ़ो, न कुछ प्रारंभ का पता चले, न कुछ अंत का पता चले।
जिंदगी है कि बेताल्लुक-सा
एक टुकड़ा किसी कहानी का।
--अप्रासांगिक, लोग कहे जा रहे हैं। लोग बोले जा रहे हैं। लोग होश में नहीं हैं। तुम समय मत गंवाना। तुम हर घड़ी को अपना होश साधने में लगाना। एक और मित्र ने पूछा है कि जब भी आपके पास आते हैं तो कुछ लोग हैं, वे कहते हैं, "वहां जाने से क्या फायदा? क्या मिलेगा वहां? वहां कुछ भी नहीं है। सत्य साईंबाबा के पास जाओ, अगर महिमा देखनी है।"
वे भी ठीक कहते हैं। यहां कुछ भी नहीं है। यहां मेरा सारा शिक्षण ही ना-कुछ होने के लिए है। वे बिल्कुल ठीक कहते हैं। यहां तुम्हें देने का कोई सवाल ही नहीं है; तुम्हारे पास जो-जो होने की भ्रांति है, उसे भी खंडित करना है, तोड़ना है, मिटाना है; तुम्हें भी शून्य की तरफ ले आना है। इतना शून्य हो जाए तुम्हारे भीतर कि कहनेवाला भी कोई न बचे, देखनेवाला भी कोई न बचे तो ही समाधि फलित होगी।
वे बिल्कुल ठीक कहते हैं। महिमा देखनी हो तो कहीं और जाना चाहिए। मैं कोई मदारी नहीं हूं। और तुम्हारी किन्हीं वासनाओं को तृप्त करने में मेरी कोई उत्सुकता नहीं है। तुम मुझे महिमावान समझो, ऐसी भी मेरी कोई आकांक्षा नहीं है। तुम्हारी आंखों को मैं दर्पण नहीं बनाना चाहता, जिसमें मैं अपनी तस्वीर देखूं। मैंने अपने को देख लिया है, अब किसी दर्पण की मुझे कोई जरूरत नहीं है।
तो तुम जब मेरे पास आते हो तो यह जानकर ही आना कि खतरे में जा रहे हो। मरने जा रहे हो। क्योंकि जीवन का गहनतम राज मरने की कला में छिपा है। प्राचीन शास्त्र कहते हैंः गुरु मृत्यु है। वे बिल्कुल ठीक कहते हैं। कठोपनिषद में पिता ने अपने बेटे को यम के पास भेज दिया--वह गुरु के पास भेजा है। मृत्यु के पास भेजा। क्योंकि जब तक तुम मिटोगे न, तब तक तुम वह न हो सकोगे जो तुम्हें होना चाहिए। यह तुम जो अभी हो गए हो, यह जो गलत ढांचा तुम्हारे चारों तरफ इकट्ठा हो गया है, यह जो तुम समझते हो अभी मैं हूं--यह

तुम्हारा वास्तविक होना नहीं है, यह तुम्हारा स्वभाव नहीं, यह तुम्हारा स्वरूप नहीं।
तो लोग ठीक कहते हैं। अगर महिमा देखनी हो, कहीं और जाना चाहिए। अगर महिमा वगैरह देखने से ऊब चुके हो, वैराग्य जगा है, देख ली कि जिंदगी बेकार है, अब और खेल-तमाशा देखने की आकांक्षा नहीं रही है, अब सब खिलौनों से ऊब गए हो, तो मेरे पास आना। उस आखिरी घड़ी में ही मेरे पास आने का कुछ सार है।
तो पहले तो तुम भटक लो। तुम सब के पास हो आओ। तुम सब जगह देख लो। अगर कहीं सत्य मिल जाए तो बहुत अच्छा। अगर न मिले तो फिर मेरे पास आना।
लोग ठीक ही कहते हैं। लोगों से नाराज होने की कोई जरूरत नहीं है।
क्या मैकदों में है कि मदारिस में वो नहीं
अलबत्ता एक वां दिले-बेमुद्दआ न था।
बड़ा मधुर वचन है। तथाकथित ज्ञानियों के स्कूलों में कौन-सी चीज की कमी है? कुछ ऐसी चीज की कमी है जो कि मधुशाला में भी है, लेकिन ज्ञानियों के स्कूलों में नहीं है।
क्या मैकदों में है कि मदारिस में वो नहीं!
--मदरसे में जो नहीं है, वह मधुशाला में है। वह क्या है?
अलबत्ता एक वां दिले-बेमुद्दआ न था।
--निष्काम हृदय, आकांक्षा से रहित हृदय, वासना से शून्य हृदय, तत्वज्ञानियों के मदरसों में भी नहीं है। वहां भी लोग वासना से ही जाते हैं। ईश्वर को भी खोजने जाते हैं ऐश्वर्य की तलाश में। स्वर्ग को भी मांगते हैं सुख की आकांक्षा में। भगवान को भी भजते हैं भय के कारण। बेमुद्दआ न था! अभी उनके मन की फलाकांक्षा समाप्त नहीं हुई। फलाकांक्षा समाप्त हो, तो ही धर्म से तुम्हारा संबंध जुड़ता है। फलाकांक्षा समाप्त हो, कुछ पाने जैसा न लगे, तो ही परमात्मा पाया जाता है। परमात्मा भी पाने जैसा न लगे, तो ही परमात्मा पाया जाता है। जब तुम परमात्मा को भी चाहने की उत्सुकता में नहीं हो; तुम कहते हो, सब चाह व्यर्थ हो गई; देख लीं सब चाहतें और सभी चाहतें व्यर्थ पायीं; चाह मात्र व्यर्थ हो गयी, अचाह पैदा हुई--बस उसी अचाह में परमात्मा उपलब्ध होता है।
यहां जो महिमा है वह शून्य की है। यहां जो महिमा है वह मृत्यु की है, महामृत्यु की है। और जो मैं तुम्हें सिखा रहा हूं वह बहुत गहरे अर्थों में आत्मघात है--तुम कैसे अपने को मिटा लो, पोंछ डालो... !
समझा था न समझा है, न समझेगा "रजा" कुछ
दीवाना था, दीवाना है, दीवाना रहेगा।
यहां तो मैं पागलों को बुलाया हूं। क्योंकि जो बुद्धिमान नहीं पा सकते, वह पागल पा लेते हैं। जो ज्ञानी नहीं पा सकते, वह प्रेमी पा लेते हैं। जो ज्ञानियों के मदरसे में न मिलेगा, वह मस्तों के मैकदे में मिल जाता है।
यह तो एक मधुशाला है। यहां तो जो मेरे साथ उस आत्यंतिक गहराई पर नाचने
को उत्सुक हैं... । वे गहराइयां दिखाई भी नहीं पड़तीं, उन गहराइयों के लिए शब्द भी नहीं हैं। वे निराकार की हैं। तो तुम जैसे-जैसे मेरे सरगम में बैठोगे, जैसे-जैसे पास आओगे, जैसे-जैसे मेरे और तुम्हारे बीच उपनिषद का संबंध बनेगा--उपनिषद यानी पास बैठने का! उपनिषद के वचन उन गुरुओं के वचन हैं, जिनके पास कुछ शिष्य बैठ गए। ये गुरुओं ने कहे कम हैं, शिष्यों ने पकड़े ज्यादा हैं।
जब मेरे और तुम्हारे बीच उपनिषद का संबंध बनेगा, जब तुम पास आते-आते इतने पास आ जाओगे कि मेरे अंतरराग से तुम्हारा राग मिल जायेगा, मेरी वीणा और तुम्हारी वीणा साथ-साथ कंपित होने लगेगी, स्पंदन सहयोग में होने लगेगा; मेरी श्वासें और तुम्हारी श्वासें एक साथ चलने लगेंगी, मेरा हृदय और तुम्हारा हृदय एक साथ धड़कने लगेगा, मेरा होना और तुम्हारा होना दो अलग सीमाओं में बंटा हुआ न होगा, एक-दूसरे में डूबने लगेगा--ऐसे मिलन में उपनिषद का संबंध बनता है। उस क्षण तुम्हें महिमा पता चलेगी, जो यहां हो रहा है उसकी। यहां हाथ से भभूत नहीं गिरायी जा रही है, न स्विस मेड घड़ियां प्रगट की जा रही हैं। यहां कुछ और हो रहा है, जो उन्हीं को दिखाई पड़ेगा

जिन्हें आंख बंद करने की कला आ गई। यहां कुछ और घट रहा है जो उन्हीं को दिखाई पड़ेगा, जिन्होंने संसार को खूब देख लिया, खूब देख लिया और कुछ भी न पाया। अगर देखने की कुछ और महिमा की आकांक्षा रह गई हो तो भटक लेना, उसे पूरा कर लेना। हार जाओ सब भांति, तब मेरे पास आ जाना। हारे को हरिनाम!
मैं दीवाना भला, मुझको मेरे सहरा में पहुंचा दो
कि मैं पाबंदे-आदाबे-गुलिस्तां हो नहीं सकता
मेरे पास आने का उनके लिये निमंत्रण है जो बगीचे के नियमों में ठीक-ठीक न बैठ पाये, जो समाज की व्यवस्था में ठीक-ठीक न बैठ पाये। कि मैं पाबंदे-आदाबे-गुलिस्तां हो नहीं सकता--कि जो बगीचे की व्यवस्था और क्यारियों में, बंटाव में, आयोजन में, शिष्टाचार में ठीक न बैठ पाये--जो जंगली पौधे हैं, जो माली के काटने को बर्दाश्त नहीं करते, जिन्होंने अपने होने की परिपूर्ण स्वतंत्रता को स्वीकार किया है, जो वही होना चाहते हैं जो परमात्मा ने उन्हें होने के लिये भेजा है। अन्यथा नहीं। जो किसी और नीति-नियम, और किसी मर्यादा को नहीं मानते, जो जीवन पर परम श्रद्धालु हैं-- उन्हीं के लिए निमंत्रण है। और वे ही आयेंगे तो आ पायेंगे। दूसरे आ भी जायेंगे भूले-भटके तो मुझसे उनका कोई संबंध न बन सकेगा। वे आयेंगे, परदेशी रहेंगे। वे मेरे अंग न हो पायेंगे। न मैं उनका अंग हो पाऊंगा। वे आयेंगे और मुझसे बिना परिचित हुए लौट जाएंगे। बहुत आते हैं, लौट जाते हैं। सभी आते हैं, सभी का परिचय थोड़े ही हो पाता है! हजार आते हैं तो दस रुक पाते हैं। दस रुकते हैं तो एक का परिचय हो पाता है।
"किंतु यह तो मेरा मत हुआ। रहना तो उन लोगों के साथ है, जो आपके विरोध में हैं। अतः कृपापूर्वक बताएं कि कैसे अपने सत्य की रक्षा करूं!"
सत्य अपनी रक्षा स्वयं करता है। तुम डरे हो। तुमने अभी मेरे सत्य को जाना नहीं है। माना होगा, इसलिए डर है। इसलिए तुम्हें रक्षा करने का ख्याल पैदा होता है। इसलिए तुम सोचते हो, कहीं वे खंडन न कर दें। सत्य का कभी कोई खंडन कर पाया?
मजनू प्रेम में पड़ गया है लैला के। गांव के राजा ने उसे बुलाया और कहा, "तू बिल्कुल पागल है! यह लैला साधारण-सी बदशकल औरत है। तेरी दीवानगी और तेरा पागलपन देखकर मुझे भी दया आती है।" उसने अपने महल से बारह सुंदरियां बुलवाईं और कहा, तू कोई भी चुन ले। परम सुंदरियां थीं--राजा के महल की सुंदरियां थीं। मजनू ने गौर से देखा और उसने कहा, "लेकिन लैला इनमें कोई भी नहीं।" राजा ने कहा, "पागल हुआ है? लैला इनके पैर की धूल भी नहीं है।"
मजनू हंसने लगा और उसने कहा, "हो सकता है। लैला को आपने कभी देखा?"
राजा ने कहा, "बिना देखे नहीं कह रहा हूं। तेरी दीवानगी देखकर मैं भी उत्सुक हो गया था कि कुछ होगा। तो मैंने भी लैला को देखो, कुछ भी नहीं है। पागल! अपने को होश में ला... ।" मजनू ने कहा कि फिर आपने देखा ही नहीं। असल में लैला को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए--मुझसे आंखें उधार लेते तो ही देख सकते थे--तुम्हारी आंखों से यह न हो सकेगा।
तो अगर तुमने मेरे प्रेम को पहचाना है, मेरे सत्य को पहचाना है, तो फिर रक्षा की फिक्र नहीं है। सत्य अपनी रक्षा स्वयं कर लेता है। सत्य कितनी ही असुरक्षा में हो, सुरक्षित है। तुम बस उसे जीने में लग जाओ। मैं जो तुमसे कह रहा हूं, उसको तुम केवल शब्दों का विलास मत बनाओ--जीवन की तरंगें बनने दो। तुम जीने में लग जाओ। तुम उनकी मत सुनो, वे क्या कहते हैं। मैंने जो कहा है, उसे गुनो और उसे जीवन में उतारने लग जाओ। तुम जैसे-जैसे सत्यतर होने लगोगे, वैसे-वैसे ही तुम पाओगे, सत्य के लिए किसी सुरक्षा की कोई जरूरत नहीं। सत्य सूली पर भी लटका हो तो भी सिंहासन पर ही होता है।

दूसरा प्रश्नः आखिर मैं क्या चाहता हूं? जो कुछ भी मुझे मिला है और मिल रहा है, वह कम नहीं। लेकिन मन में एक बेचैनी बनी ही रहती है आखिर मैं क्या पाकर संतुष्ट होऊंगा?

पाकर कभी कोई संतुष्ट हुआ? बात ही गलत पूछ रहे हो। दिशा ही गलत पकड़ी है। जिसने ऐसा सोचा कि कुछ पाकर संतुष्ट होऊंगा वह तो कभी संतुष्ट नहीं

हुआ। संतुष्ट तो वही होता है, जो यह समझ लेता है कि पाने से संतोष का कोई संबंध नहीं है। पाने में ही तो असंतोष छिपा है। दस हजार हैं तो लाख होने चाहिएः लाख हैं तो दस लाख होने चाहिए। दस लाख हैं तो करोड़ होने चाहिए। वह दस गुने का फासला बना ही रहता है। जितना पाते चले जाते हो, उतनी ही पाने की आकांक्षा आगे हटती जाती है। कभी ऐसी घड़ी नहीं आती, जब तुम कह सको कि पा लिया।
हां, ऐसा नहीं है कि लोग संतुष्ट नहीं हुए हैं; लेकिन संतुष्ट वे हुए हैं जिन्होंने यह असंतोष का पागलपन ठीक से पहचाना, कि यह तो पूरा होनेवाला नहीं है। तुम कितना ही पा लो, तुम्हारी पाने की आकांक्षा और जो तुमने पाया है, उसमें कभी मेल नहीं होगा। तुम जो भी पाओगे, उससे श्रेष्ठतर की कल्पना कर सकते हो--बस खतम हो गई बात! और मनुष्य का यही तो सारा भव-जाल है कि वह श्रेष्ठतर की कल्पना कर सकता है।
सुंदरतम स्त्री पा ली, लेकिन क्या ऐसी स्त्री तुम पा सकते हो जिसमें तुम भूल-चूक न खोज पाओगे? क्या तुम ऐसी स्त्री पा सकते हो जिससे सुंदर की कल्पना न कर पाओगे? क्या तुम ऐसी स्त्री पा सकते हो जिससे सुंदर का सपना न देख पाओगे? फिर कैसे संतुष्ट होओगे?
तुमने एक बड़ा मकान बना लिया, क्या तुम सोचते हो मकान ऐसा हो सकेगा जिसमें कोई तरमीम और सुधार न हो सके, जिससे बेहतर न हो सके? अगर बेहतर हो सकता है, असंतोष शुरू हो गया।
कल्पना श्रेष्ठ की तो कभी भी मौजूद रहेगी। संतोष कैसे होगा? तुम कुछ
भी हो जाओ, तुम कुछ भी पा लो--इससे तुम्हारे संतोष होने का कोई संबंध नहीं है। फिर संतोष का किस बात से संबंध है? संबंध है इस बात से कि तुम यह असंतोष की प्रक्रिया समझ लो। इसे जान लो। इसे देख लो। इसके देखने और जानने में ही यह पूरा जाल गिर जाता हैः अचानक तुम पाते हो कि असंतुष्ट होने का कोई कारण ही नहीं है।
संतोष अभी और यहीं होने का ढंग है। असंतोष, कल बेहतर हो सकता है, उस आकांक्षा के पीछे दौड़ है। संतोष जो है, इससे बेहतर हो ही नहीं सकता, इस भावदशा का नाम है। इस क्षण जो है इससे बेहतर हो ही नहीं सकता। जो बेहतर से बेहतर हो सकता था वह हो गया है।
इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, इस संसार से बेहतर संसार हो ही नहीं सकता। उमरखैयाम का एक गीत है कि हे परमात्मा! अगर तू हमें एक मौका दे तो हम दुनिया को फिर से मिटाकर अपने हृदय के अनुकूल बना लें।
लेकिन क्या तुम अपने हृदय के अनुकूल दुनिया को कभी भी बना पाओगे? यह मौका भी दिया जा सकता है। यह मौका ही तो दिया गया है। संसार और क्या है? यह मौका ही है कि तुम अपने हृदय के अनुकूल बना लो। अपना घर, अपना बगीचा, धन-दौलत, प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, अपनी प्रतिमा, पत्नी-बच्चे--तुम बना लो अपने हिसाब से।
लेकिन कौन कब तृप्त हो पाया है! सिकंदर भी खाली हाथ विदा होते हैं।
खाली हाथ हम आते हैं, खाली हाथ हम विदा होते हैं।
लेकिन अगर तुम महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट के वचन समझो, तो वे कहते हैं, भरे प्राण हम आते हैं, भरे प्राण हम रहते हैं, भरे प्राण हम जाते हैं। खाली हाथ पर नजर ही गलत है। हृदय पर ले जाओ नजर; हृदय भरा ही हुआ है।
इसी क्षण जो होना था हुआ है।
इसी को मैं आस्तिकता कहता हूं कि इस क्षण जो हुआ है, परम है, आत्यंतिक है। इससे श्रेष्ठ का कोई उपाय नहीं। फिर अचानक तुम संतुष्ट हो। फिर सब दौड़ खो गई। अभी और यहां हो जाना ही संतोष है।
किन जहांगीर बहारों के तसव्वुर में "नदीम"
मौसमे-गुल में उजड़ा हुआ लगता है तू?
वसंत आया हुआ है। फूल खिले हुए हैं। पक्षी गीत गुनगुना रहे हैं। सूरज निकला है। सब तरफ किरणों का जाल फैला है। मौसमे-गुल में उजड़ा हुआ लगता है तू। लेकिन मामला क्या है? वसंत चारों तरफ बरस रहा है। और तुम क्यों उजड़े- उजड़े खड़े हो?
किन जहांगीर बहारों के तसव्वुर में "नदीम"

मौसमे-गुल में उजड़ा हुआ लगता है तू?
--तू किन सपनों में खोया हुआ है? किन सपनों की बहारों में खोया हुआ है? दुनिया को विजित कर लेने की, दुनिया को जीत लेने की, किन कल्पनाओं में तू तल्लीन है कि वसंत को देख नहीं पा रहा है जो चारों तरफ मौजूद है।
किन जहांगीर बहारों के तसव्वुर में "नदीम"
मौसमे-गुल में उजड़ा हुआ लगता है तू?
वसंत तो है। परमात्मा है। अब और क्या होना है? जीयो! जीने की योजना मत बनाओ! गाओ! वसंत तो आ गया, द्वार पर दस्तक दे रहा है। जागो! नाचो! उत्सव मनाओ! पाने को यहां कुछ भी नहीं है; जो पाने को है वह तुम्हें मिला ही हुआ है। उसे तुम लेकर ही जन्मे हो। वह तुम्हारा स्वभाव है। स्वभाव को देखते ही व्यक्ति संतुष्ट हो जाता है। संतोष स्वभाव के अनुभव की छाया है। स्वभाव के प्रतिकूल, स्वभाव से अन्य की योजना, कल्पना में, भटकता हुआ आदमी असंतुष्ट हो जाता है। असंतोष, स्वभाव से अन्य होने की चेष्टा की छाया है। मैंने मासूम बहारों में तुझे देखा है
मैंने मौहूम सितारों में तुझे देखा है
मेरे महबूब तेरी पर्दानशीनी की कसम
मैंने अश्कों की कतारों में तुझे देखा है।
फूलों की तो बात और, आंसुओं में भी उसी के दर्शन होंगे।
मैंने अश्कों की कतारों में तुझे देखा है।
एक बार देखने की कला आ जाये, आंख आ जाये, नजर आ जाये, तो कंकड़-पत्थर हीरे हो जाते हैं। साधारण-सा भोजन परम प्रसाद हो जाता है। साधारण-सा घर महलों को मात करने लगता है। हवा का जरा-सा झोंका, अपरिसीम कृपा की वर्षा हो जाता है। नजर की बात है। नजर न हो तो हीरे-जवाहरात भी कंकड़-पत्थर; महल भी झोपड़े; जीवन की परमधन्यता का कोई पता ही नहीं चलता। सब बासा-बासा लगता है। नजर की ही बात है। नजर को बदलो।
अगर लगता है असंतोष है, तो किसी गलत नजर को पकड़े बैठे हो।
पूछा है, "आखिर मैं क्या चाहता हूं?"
चाहने को कुछ है ही नहीं, मिला ही हुआ है। इसीलिए तो कितना ही चाहो, मुश्किल में पड़ोगे। जो मिला ही हुआ है, उसे तुम खोज-खोजकर थोड़े ही पा सकोगे! खोज छोड़ो, ताकि चैतन्य घर पर लौट आये! खोज छोड़ो! क्योंकि खोज के कारण ही तुम अपने बाहर गए हो और उसे नहीं देख पा रहे हो जो तुम हो। रुको! परमात्मा को खोजना थोड़े ही है! सब खोज छोड़ देनेवाला व्यक्ति अचानक पाता है, परमात्मा है। तुम्हारी हालत ऐसी है कि हीरा सामने पड़ा है, लेकिन तुम कहीं दूर आंखें लगाए बैठे हो, चांद-तारों पर, कहीं दूर तुम्हारा सपना तुम्हें भटका रहा है। यहां तुम देखते ही नहीं, यहां तुम अंधे हो जाते हो। मेरे देखे, लोगों की एक ही बीमारी है--वह सब दूरदृष्टि हैं। दूर का तो देख पाते हैं, पास का नहीं देख पाते। निकट-दृष्टि नष्ट हो गई है। ऐसा होता है न कभी-कभी आंखों में, किसी की आंख पर चश्मा होता है, जिसमें वह पास का देख पाता है। क्योंकि पास का बिना चश्मे के नहीं देख पाता, किताब नहीं पढ़ सकता है; हालांकि चांद-तारे देख सकता है। दूर का दिखाई पड़ता है, लेकिन पास का नहीं दिखाई पड़ता। कुछ होते हैं जिन्हें पास का दिखाई पड़ता है, दूर का नहीं दिखाई पड़ता। तो दो तरह के चश्मे होते हैं। लेकिन आध्यात्मिक जीवन में एक ही तरह की बीमारी है। भीतर की आंख की एक ही बीमारी है। वह बीमारी है कि पास जो है, वह दिखाई नहीं पड़ता है। जो दूर है, वह दिखाई पड़ता है। जो दूर है, वह दिखाई पड़ता है, इसलिए दूर की आकांक्षा होती है। दूर के ढोल सुहावने! तो मन भटकता है।
किन जहांगीर बहारों के तसव्वुर में "नदीम"
मौसमे-गुल में उजड़ा हुआ लगता है तू?
पास देखने की दृष्टि का नाम धर्म है। जो मिला हुआ है, उससे पहचान बनाने का नाम धर्म है। जिसे कभी खोया ही नहीं है उसकी प्रत्यभिज्ञा, उसका ही नाम धर्म है।
"आखिर मैं क्या चाहता हूं? जो कुछ भी मुझे मिला है और मिल रहा है, वह कम नहीं है।"

लेकिन कम तुम्हें लग रहा है। कम न होगा। कम नहीं है। लेकिन कम तुम्हें
लग रहा है। क्योंकि मन कहे जाता हैः और मिल सकता है, और मिल सकता है, और मिल सकता है।
परसों रात एक संन्यासिनी मुझसे चप्पल मांगने लगी कि आपकी चप्पल दें।
वह पहले भी आयी थी, तब भी उसने चप्पल मांगी थी। मैंने उसे कुछ दिया था; क्योंकि सवाल, क्या देता हूं, यह थोड़े ही है। मैंने दिया। उसे कुछ दिया था, मैंने कहा, यह ले जा। क्योंकि चप्पल मांगने का रोग बढ़ जाये तो मैं मुसीबत में पड़ जाता हूं! कितनी चप्पलें दूं? और एक के पास दिखती है तो दूसरा मांगने आ जाता है, तीसरा मांगने आ जाता है। फिर किसको मना करो। तो मैंने उसे काष्ठ की एक छोटी डब्बी दी थी। इस बार वह फिर आई, उसने फिर मांगा कि चप्पल। तो मैंने उससे कहा, पहले मैंने तुझे कुछ दिया था? उसने कहा, कुछ नहीं, एक छोटी-सी डिब्बी दी थी। अब अगर इसे मैं चप्पल भी दूं तो अगले साल यह आकर कहेगी, "क्या दिया था--चप्पल!" क्योंकि सवाल... ।
मैं तुम्हारे हाथ में खाली हाथ दूं, तो भी कुछ दे रहा हूं। देखने की आंख चाहिए। और ऐसे मैं उठकर तुम्हारे घर भी चला आऊं, तो भी तुम कहोगे, "यह और एक मुसीबत कहां से घर आ गई! अब इनकी कौन साज-सम्हाल करे!"
दृष्टि की बात है। बहुत मिल रहा है, मगर तुम्हारे पास जो मन है, वह उसे देख ही नहीं पाता, जो है। मन की आदत अभाव को देखने की है।
कभी पता है, दांत टूट जाता है तो जीभ वहीं-वहीं जाती है! जब तक था, कभी न गई। जब टूट जाता है तो वहीं-वहीं जाती हैं। खाली जगह। अभाव!
तुम लाख सरकाते हो वहां से कि क्या सार है; पता तो चल गया एक दफे कि दांत टूट गया है--लेकिन फिर, भूले-चूके फिर तुम पाओगे, जीभ वहीं टटोल रही है। जैसे जीभ अभाव को टटोलती है, ऐसे ही मन जो नहीं है उसको टटोलता है। जो है, उसे देखने की मन की आदत ही नहीं है।
लोग मुझसे पूछते हैं कि परमात्मा दिखाई क्यों नहीं पड़ता। वह दिखाई इसीलिए नहीं पड़ता कि वह इतना ज्यादा है, इतना घना है, सब ओर से है, बाहर-भीतर है; देखनेवाला भी वही है, दिखाई पड़नेवाला भी वही है--इसीलिए चूके जा रहे हैं। इसलिए थोड़े ही कि वह कहीं दूर है, बहुत दूर है।
अगर बहुत दूर होता, हम पा ही लेते उसे। चांद पर पहुंच गए, कितनी दूर होगा!
जब पहला रूसी अंतरिक्ष-यात्री वापिस लौटा, तो कहते हैं ख्रुश्चेव ने उससे पहली बात पूछी, "ईश्वर मिला?" तो उसने कहा कि नहीं, कोई ईश्वर नहीं मिला, चांद बिल्कुल खाली है। तो रूस में लेनिनग्राड में उन्होंने अंतरिक्ष-यात्रा के लिए एक अनुसंधानशाला बनाई है। उसके द्वार पर ये वचन लिख दिए गए हैं कि "हमारे अंतरिक्ष-यात्री चांद पर पहुंच गए और उन्होंने वहां पाया कि ईश्वर नहीं है।"
जिनको जमीन पर नहीं मिलता उनको चांद पर कैसे मिलेगा, यह भी तो थोड़ा सोचो! तुम तो तुम ही हो! देखने की नजर तुम्हारी ही है। मिलता होता तो यहां मिल जाता।
रवींद्रनाथ ने बुद्ध के संबंध में एक कविता लिखी है। कविता बड़ी मधुर है।
बुद्ध वापिस लौटे हैं, बारह वर्षों के बाद। यशोधरा ने उनसे पूछा है कि मैं तुमसे एक ही प्रश्न पूछती हूं, इस एक प्रश्न पूछने के लिए जीती रही हूं, कि तुम्हें जो वहां मिला, वह यहां नहीं मिल सकता था? जो तुम्हें जंगल में जाकर मिला, वह घर में नहीं मिल सकता था? बस एक ही प्रश्न मुझे पूछना है।
बुद्ध को कभी किसी प्रश्न के उत्तर में ऐसा स्तब्ध नहीं रहते देखा गया, जैसे बुद्ध स्तब्ध खड़े रह गए। यह तो वे भी न कह सकेंगे कि यहां नहीं मिल सकता था। नजर की बात थी। अब तो यहां भी है। एक दफा आंख खुल गई, तो घर में भी वही है, बाहर भी वही है। दुकान पर भी वही है, मंदिर में भी वही है। इसलिए असली सवाल आंख का है।
तुम यह मत पूछो कि क्या चाहता हूं। और यह भी मत पूछो कि मैं क्या पाकर संतुष्ट होऊंगा। कुछ भी पाकर संतुष्ट न होओगे। पानेवाला कभी संतुष्ट हुआ?

पानेवाले का असंतोष आगे सरकता जाता है, बड़ा होता चला जाता है, फैलता चला जाता है--गुब्बारे की तरह। इसलिए तो अमीर भी गरीब बना रहता है और सम्राट भी भिखारी बने रहते हैं।
फरीद अकबर के पास गया था। गांव के लोगों ने भेज दिया। कहा कि गांव में
एक मदरसा चाहिए। कह दो अकबर को। तुम्हें इतना मानता है। फरीद गया। अकबर प्रार्थना कर रहा था, सुबह की नमाज पढ़ रहा था। फरीद पीछे खड़ा रहा। अकबर ने अपने दोनों हाथ फैलाये, नमाज की पूर्णता पर और कहा, "हे परमात्मा! और धन दे, और दौलत दे! तेरी कृपा की दृष्टि हो!" फरीद लौट पड़ा। अकबर उठा, देखा, फरीद सीढ़ियों से नीचे जा रहा है! कहा, कैसे आए? क्योंकि फरीद कभी आया भी न था। जब भी जाता था, अकबर ही उसके पास जाता था।
कैसे आए और कैसे चले? फरीद ने कहा, "मैंने सोचा था कि तुम सम्राट हो। यहां भी भिखारी को देखा, इसलिए लौट चला। और फिर मैंने सोचा कि तुम जिससे मांग रहे हो उसी से मैं मांग लूंगा। बीच में और यह एक... एक दलाल बीच में और क्यों! गांव के लोगों ने भेजा था कि एक मदरसा खोल दो, यह मांगने आया था; लेकिन अब नहीं। इससे तुम्हारी दौलत में थोड़ी कमी हो जाएगी। मैं तुम्हें दरिद्र हुआ न देखना चाहूंगा। मेरी तो एक ही आकांक्षा है, सभी समृद्ध हों। लेकिन तुम भिखारी हो।"
तुम्हारा सम्राट भी तो मांग ही रहा है। और मांग रहा है। और मांग रहा है। जिनके पास है वे भी मांग रहे हैं।
तो एक बात तय है कि मिलने से मांगना नहीं मिटता--त्यागने से मांगना मिटता है।
इसलिए तो एक अनूठी घटना इस पूरब में घटी कि सम्राट तो हमने पाए कि भिखारी हैं और कभी-कभी हमने कुछ भिखारी पाए जो सम्राट... । महावीर, बुद्ध भिखारी होकर खड़े हो गए, कुछ भी उनके पास न था। क्योंकि उन्हें एक बात दिखाई पड़ गई कि दौड़े जाओ, दौड़े जाओ, दौड़े जाओ, पहुंचोगे न। ठहरो, खड़े हो जाओ!
खड़े होते ही तुम्हारे संबंध शाश्वत से जुड़ जाते हैं।
तो मैं तुम से यह नहीं कह सकता कि क्या पाकर तुम संतुष्ट होओगे; मैं तुमसे इतना ही कह सकता हूं कि पाने से संतोष का कोई संबंध नहीं है। तुम पाने की व्यर्थता देखो। उस व्यर्थता के दर्शन में ही पाने की दौड़ गिर जायेगी। तुम अचानक अपने को खड़ा हुआ पाओगे, दौड़ते हुए नहीं। अचानक तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर की प्रज्ञा थिर हो गई, कंपित नहीं हो रही। उस एक अकंपन के क्षण में ही तुम तृप्त हो जाओगे।
और एक बार तृप्ति की झलक मिल जाये तो राज हाथ आ गया, तो आंख हाथ आ गई, तो देखने का ढंग आ गया। परमात्मा तो है, देखने का ढंग चाहिए।
हुस्न की दुनिया को आंखों से न देख
अपनी एक त.र्जे-न.जर ईजाद कर।
यह जो परमात्मा के सौंदर्य का जगत है, यह जो परम सौंदर्य का जगत है, इसको साधारण आंखों से देखने की कोशिश मत करो, अन्यथा असंतुष्ट रहोगे, अभाव में जीयोगे। भिखारी रहोगे!
हुस्न की दुनिया को आंखों से न देख
अपनी एक त.र्जे-न.जर ईजाद कर।
एक नया ढंग, एक नई शैली देखने की खोजो। संतुष्ट हो कर देखो। अभी तुमने असंतुष्ट होकर देखा है। असंतुष्ट हो कर देखा है तो असंतोष बढ़ता चला गया है। तुम्हारी आंख में है तो फैलता चला गया है। संतुष्ट होकर देखो, संतोष आंख में होगा, तुम पाओगे संतोष फैलता जाता है।
तुम्हारे जीवन की दृष्टि ही तुम्हारे जीवन का सत्य हो जाती है। जो तुम विचारते हो वही वास्तविकता हो जाती है। अभी तक तुमने असंतोष, असंतोष, असंतोष, इसको ही साजा-संवारा, इसके ही बीज बोए, इससे ही देखा--निश्चित ही, असंतोष बढ़ता चला गया। जो बीज बोओगे, उसकी ही फसल तो काटोगे। यह छोटे-से गणित को पहचानो। थोड़ा संतोष से देखो। थोड़ा ऐसे देखो कि कोई असंतोष नहीं है, सब है। भरी आंख, प्रफुल्ल चित्त, कृतज्ञता से भरे, कृतज्ञता में डूबे, पगे--ऐसा देखो। अचानक तुम पाओगे, कहीं तो कुछ कमी नहीं है! सब तो पूरा-पूरा है! सब तो भरा-भरा है! कहीं तो कुछ खाली नहीं है! क्या है मांगने को और?

ऐसी झलकें धीरे-धीरे आएंगी, बढ़ती जाएंगी। पहले थोड़े बीज खिलेंगे, फिर
और बीज खिलेंगे, फिर और बीजों में से फूल लगेंगे; फूलों में और और नए बीज लगेंगे। एक दिन तुम पाओगे, वसंत तुम्हारे चारों तरफ लहराने लगा। उस परम सौंदर्य, उस वसंत का नाम ही परमात्मा है। वही संतुष्टि है। वही परम तृप्ति है।

तीसरा प्रश्नः तेरी दिव्य आग में जल-जलकर राख हुआ जा रहा हूं। अब तो सारे शब्द बंद हो चुके--एक आस लिए जी रहा हूं।
कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खाइयो मांस।
दो नैना नहीं खाइयो, पिया मिलन की आस।।

नहीं, इन दो आंखों से कोई उस प्यारे को मिलता नहीं। दो के कारण ही तो मिल नहीं पाता। उसको पाने के लिए तो एक आंख चाहिए। इसलिए तो हम तीसरी आंख की बात करते हैं।
कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खाइयो मांस।
दो नैना नहीं खाइयो, पिया मिलन की आस।।
वचन प्यारा है; लेकिन कवि का है, ऋषि का नहीं। आकांक्षी का है, जाननेवाले का नहीं। इन दो आंखों से तो जो प्यारा मिलता है, वह बाहर का है। प्रेयसी मिलती है, प्रियतम मिलता है, पति मिलता है, पत्नी मिलती है। इन दो आंखों से तो जो मिलता है, वह बाहर का है। ये दो आंखें तो बाहर से जोड़ने के द्वार हैं। नहीं, उससे मिलना हो तो एक तीसरी आंख चाहिए। परम प्यारे से मिलना हो जो तुम्हारे भीतर ही घर बसाए बैठा है, तुम्हारी प्रतीक्षा करता है कि कब आओ, कब वापिस लौटो, कितने जन्म हो गये तुम्हें गए, कब घर आओगे; परदेश में कैसे लुभा गए--उसे पाने के लिए तो एक आंख... ।
क्योंकि दो आंख से जो मिलता है, वह द्वैत; और एक से जो मिलेगा, वही अद्वैत।
दो आंखें ही तो दो में तोड़ देती हैं सारे संसार को। फिर ये दो आंखें तो बाहर देखती हैं, भीतर नहीं देख सकतीं। इसलिए तो समस्त ध्यान की प्रक्रियाओं में आंख बंद कर लेनी पड़ती है, ताकि यह दो आंखों का संसार तो खो जाये, मिट जाये। एक तीसरी आंख--इन दोनों आंखों से बहती हुई ऊर्जा, एक तीसरी आंख में संघट हो जाये। दोनों भू्र-मध्यों के बीच, इन दोनों आंखों की ऊर्जा संगृहीत होती है, इकट्ठी होती है--और एक नई ही आंख पैदा होती है, जो भीतर देखती है।
ठीक है, आकांक्षा बिल्कुल ठीक है; ठीक दिशा में है। और जलना होगा। राख होना होगा। यह भी सच है।
जिंदगी यूं भी गुजर ही जाती
क्यों तेरा राहगुजर याद आया?
जो उस प्रेमी के द्वारा पुकारे गए हैं, उनको ऐसा ही लगा हैः जिंदगी ऐसे ही गुजर जाती है; और एक मुसीबत आ गई कि तूने पुकारा है। ऐसे ही दुख कुछ कम थे? अब तेरे विरह की आग जलाती है।
जिंदगी यूं भी गुजर ही जाती
क्यों तेरा राहगुजर याद आया?
तेरी याद आ गई, फिर तेरी राह भी मिल गई; अब यह एक नयी पीड़ा का सूत्रपात हुआ।
संसार में जो पीड़ा तुमने जानी है, वह विध्वंसक पीड़ा है। उसमें सिर्फ तुम गलते हो, मिटते हो, पाते कुछ भी नहीं।
परमात्मा के मार्ग पर भी पीड़ा है, जलन है; पर बड़ी सृजनात्मक है। तुम गलते भी हो, मिटते भी हो, कुछ नया आविर्भूत होता है। मृत्यु अकेली नहीं है वहां। प्रत्येक मृत्यु के साथ नया जन्म है।
हजारों बार मर-मरकर भी न मर पाया प्रेमी कभी।
मरण हर बार आ-आकर नये ही प्राण देता है।।
उस रास्ते पर बहुत बार मरना होता है, प्रतिपल मरना होता है। क्योंकि जैसे ही तुम थोड़ी देर के लिए न मरे अहंकार इकट्ठा हो जाता है। इसे पल-पल

जलाना होता है। इसे मिटाते ही जाना होता है। नहीं तो जरा ही तुम चूके कि धूल फिर जमी, फिर "मैं" खड़ा हुआ। यह "मैं" इतना सूक्ष्म है, धन से खड़ा होता है, पद से खड़ा होता है, त्याग से खड़ा होता है--यहां तक कि विनम्रता के भाव से खड़ा हो जाता है कि मैं तो ना-कुछ हूं। उसमें भी खड़ा हो जाता है।
हजारों बार मर-मरकर भी न मर पाया प्रेमी कभी।
मरण हर बार आ-आकर नये ही प्राण देता है।।
यह सतत मरण की प्रक्रिया ही ध्यान है, प्रार्थना है, पूजा है, अर्चना है।
"तेरी दिव्य आग में जल-जलकर राख हुआ जा रहा हूं।"
घबड़ाना मत। धन्यवाद देना उसे। सौभाग्य कि तुम्हें उसने इस योग्य समझा
कि तुम्हें जलाये! धन्यभाग कि तुम पर उसकी नजर गई कि तुम्हें जलाए! क्योंकि इस जलन में ही, इस मिटने में ही नये का सूत्रपात है। सूर्योदय होगा। घबड़ाना मत। पीड़ा भी हो तो रो लेना, आंसू बहा लेना; पर यह आकांक्षा मत करना कि बंद कर, रोक!
जीसस तक को ऐसी घड़ी आ गई थी। सूली पर लटके हुए, आखिरी क्षण में, ऊपर की तरफ आंख उठाकर उन्होंने कहा कि "हे परमात्मा, यह क्या दिखला रहा है? बंद कर!" सूली पर किसको न लगेगा ऐसा! लेकिन फिर उनको होश आ गया, सम्हल गए, तत्क्षण बात बदल दी। वक्त पर बदल दी, ठीक क्षण में बदल दी, अन्यथा चूक जाते। तत्क्षण फिर आंखें ऊपर उठाईं और कहा, "हे परमात्मा, क्षमा कर! तेरी मर्जी पूरी हो! अगर तू जलाना चाहता है तो यही शुभ होगा! अगर तू मिटाना चाहता है, सूली देना चाहता है, तो जरूर यही मेरे हित में होगा! मेरे कल्याण को तू मुझसे बेहतर जानता है! तेरी मर्जी पूरी हो!"
थक गई है जुबां तो चुप होकर
काम में आंसुओं को लाए हैं।
रो लेना। कहते न बने, कहना मुश्किल हो जाये, आंसुओं से कह देना। मगर विपरीत की प्रार्थना मत करना। पीड़ा को भोग लेना। जलन को स्वीकार कर लेना। लोग समझाएंगे। लोग कहेंगे, लौट आओ, भले-चंगे थे। यह क्या झंझट मोल ले ली?
मीरा को समझाया लोगों ने। चैतन्य को समझाया लोगों ने। बुद्ध को समझाया लोगों ने, "लौट आओ! यह क्या पागलपन सवार हुआ है? अपनी बुद्धि को सम्हालो!" सारी दुनिया बुद्धिमान है।
तो तुम जब विरह में रोओगे और जब उसकी आग तुम्हें जलाएगी, और जब तुम्हारा हृदय कटेगा इंच-इंच, हर कोई तुमसे पूछेगा, "क्या हुआ है?" तुम न तो लोगों की सुनकर लौटना, न लोगों को समझाने लग जाना। क्योंकि कुछ बातें हैं, जो समझने-समझाने की नहीं हैं।
सबब हर एक मुझसे पूछता है मेरे रोने का
इलाही सारी दुनिया को मैं कैसे राजदां कर लूं!
कैसे सभी को इस राज में भागीदार बना लूं! सभी पूछते हैं, "क्यों रो रहे हो? क्यों गा रहे हो, क्यों नाच रहे हो?" "क्यों" तो खड़ा ही है। जरा भी तुमने अन्यथा किया, लोगों से भिन्न किया कि लोगों ने पूछा, "क्यों?" लोग चाहते हैं, तुम ठीक वैसे ही रहो जैसे वे हैं, रत्ती भर भेद न हो; तुम मूर्तिवत, यंत्रवत चलते रहो भीड़ के साथ। जब तुम रोओगे, गाओगे, कभी मस्ती में हंसोगे--यह सब होगा, क्योंकि भीतर की यात्रा तुम्हें सभी भावों में से गुजारेगी। हर भाव का तीर्थ मिलेगा। कभी-कभी ऐसा भी होगा कि तुम बिल्कुल पागल मालूम पड़ोगे--हंसोगे भी, रोओगे भी, साथ-साथ।
सबब हर एक मुझसे पूछता है मेरे रोने का
इलाही सारी दुनिया को मैं कैसे राजदां कर लूं!
मैंने पूछा कि है मंजिले-मकसूद कहां
खिज्र ने राह बतलाई मुझे मयखाने की।
--पूछा मैंने कि वह आखिरी मंजिल कहां है, तो सदगुरु ने मुझे राह बताई मधुशाला की।
मैंने पूछा कि है मंजिले-मकसूद कहां
खिज्र ने राह बतलाई मुझे मयखाने की।

--मस्ती की, बेहोशी की, प्रेम की, प्रार्थना की!
खोओ अपने को! जब मैं कहता हूं, जलोगे, उसका इतना ही अर्थ है कि मिटोगे, डूबोगे। धीरे-धीरे तुम पाओगे, पुराने से संबंध टूट गया और एक नई ही चेतना का जन्म हुआ है। इस चेतना में मस्ती भी होगी, होश भी होगा। इस चेतना में ऐसी मस्ती होगी कि जिसमें होश है। इस चेतना में बेहोशी भी होगी; जैसा महावीर कहते हैं, निवृत्ति संसार से, प्रवृत्ति स्वयं से। इस बेहोशी में संसार के प्रति बेहोशी होगी, परमात्मा के प्रति होश होगा। "पर" के प्रति बेहोशी होगी, "स्व" के प्रति होश होगा। बाहर से तो तुम देखोगे, लुट गए; और भीतर से अनंत धन तुम्हें उपलब्ध हो जाएगा, खजाने उपलब्ध हो जाएंगे।
फिर न.जर में फूल महके दिल में फिर शमएं जलीं
फिर तसव्वुर ने लिया उस बज्म में जाने का नाम।
परवाने को देखा है? जलता है! फिर शमा जलती है, फिर दीया जलता है, फिर परवाना आया! कितनी बार जल चुका है, लेकिन फिर-फिर आ जाता है, फिर शमा में खो जाता है। निश्चित ही परवानों में तर्क, चिंतन, विचारवाले लोग नहीं; अन्यथा कहते, पागल है, दीवाना है। आदमी तो कहते ही हैं।
यह धर्म का प्रेमी भी परवाने की तरह है। हमें लगता है कि जलने चला, लेकिन परवाने से तो कोई पूछे, उसके भीतर हृदय से तो कोई पूछे!
फिर नजर में फूल महके दिल में फिर शमएं जलीं
फिर तसव्वुर ने लिया उस बज्म में जाने का नाम।
उसे तो याद आते ही अपने प्रेमी की, उसकी बैठक की धुन पड़ते ही चारों तरफ फूल खिल जाते हैं, चारों तरफ दीये जल जाते हैं!
परमात्मा प्रेम की खोज है। इसमें तुम हिसाब मत लाना। इसमें तुम पूरे
के पूरे जाना। तुम यह भी मत कहना किः दो नैना नहिं खाइयो, पिया मिलन की आस! तुम इतना भी मत कहना। तुम तो कहना, सब तरह डुबा दो! यह पिया मिलन की आस इतनी गहन हो जाए कि आस जैसी भी मालूम न पड़े। आस करनेवाला कोई न बचे भीतर।
जैसे कोई मरुस्थल में भटक गया हो कई दिनों से और जल न मिला हो, तो पहले प्यास लगती है। प्यास के साथ भीतर यह भाव भी होता है कि मैं प्यासा हूं। फिर प्यास बढ़ती जाती है, जल नहीं मिलता। फिर धीरे-धीरे प्यास इतनी सघन होने लगती है कि भीतर कभी-कभी ऐसा ख्याल आता है कि मैं प्यासा हूं, अन्यथा प्यास ही प्यास मालूम पड़ती है। फिर और एक ऐसी घड़ी आती है, आखिरी घड़ी, जब सिर्फ प्यास ही रह जाती है, प्यासा भी नहीं रहता। इतनी भी अब शक्ति नहीं बचती कि अपने को अलग कर ले और कहे कि मैं प्यास का देखनेवाला हूं, कि मैं प्यास का जाननेवाला हूं। प्यास ही हो जाती है। सारा प्यासा प्यास में रूपांतरित हो जाता है। पूरे प्राण प्यास में जल उठते हैं। उसी घड़ी में मिलन होता है, जब तुम पूरे के पूरे डूब जाओगे! बचाने की आकांक्षा अपने को करना ही मत। दो आंख भी बचाने की आकांक्षा मत करना। क्योंकि सब बचाने की आकांक्षा में तुम अपने को ही बचा लोगे। अपने को गंवाना है, खोना है।

आखिरी प्रश्नः
आप न जानो गुरुदेव मेरे!
नित तुम्हें पुकारा करती हूं
एक बार हृदय में छेद करो
वह क्षण मैं निहारा करती हूं
कृपा करो, बचाओ! जल जाऊं, ऐसी भीख दो!

"आप न जानो"--ऐसा कैसे होगा? जिन्होंने मुझसे संबंध जोड़ा है, कुछ भी उन्हें घटेगा, उसे मैं जानूंगा। संबंध न जोड़ा हो तो बात अलग। जिन्होंने मुझसे संबंध जोड़ा है, जिन्होंने इतनी हिम्मत की है मेरे साथ चलने की-- क्योंकि मेरे साथ चलकर मिलेगा क्या? न धन, न प्रतिष्ठा, न पद। होगी पद-प्रतिष्ठा, खो जायेगी। लोक-लाज खोनी पड़ेगी। गंवाओगे ही मेरे साथ, कमाओगे क्या?
तो जिसने मेरे साथ चलने की हिम्मत की है और साहस किया है, उसके भीतर कुछ भी घटे, मुझे पता चलेगा। तंतु जुड़ गए! उसी को तो मैं संन्यास कहता हूं--

मुझ से जुड़ जाने का नाम। वहां तुम्हारे हृदय में कुछ खटका होगा तो मुझे पता चलेगा। तुम्हें भी पता चलेगा, शायद उसके भी पहले पता चल जाए।
"आप न जानो"--ऐसा होगा नहीं। बस एक शर्त तुम पूरी कर देना--जुड़ने की-- उसके बाद शेष मैं सम्हाल लूंगा। पहली ही शर्त पूरी न हुई तो फिर शेष नहीं सम्हाला जा सकता। और घबड़ाओ मत।
सबा ने फिर दरे-जिंदा पे आ के दी दस्तक
सहर करीब है दिल से कहो न घबराये।
सुबह की हवा आ गई, कारागृह पर उसने फिर से दस्तक दी!
सबा ने फिर दरे-जिंदा पे आ के दी दस्तक
सहर करीब है दिल से कहो न घबराए।
इधर मैं आया हूं, तुम्हारे हृदय पर दस्तक दी है। अगर तुम्हें सुनाई पड़
गई है--सहर करीब है, दिल से कहो न घबराए।
ये जो पीड़ा के क्षण होंगे, किसी दिन तुम इनके लिए अपने को धन्यभागी समझोगे। आज तो पीड़ा होगी ही। राह पर पीड़ा होती है। मंजिल पर पहुंचकर यात्री को पता चलता है कि जो पीड़ा थी वह तो कुछ भी न थी; जो पाया है वह अनंत गुना है।
खुशबुओं के सफर में गुजरी है
चांदनी के नगर में गुजरी है
भीख है, बाकी जिंदगी है वही
जो तेरी रहगुजर में गुजरी है।
एक दफा पहुंचकर पता चलता है कि और सब--
खुशबुओं के सफर में गुजरी है
चांदनी के नगर में गुजरी है।
भीख है--और सब भीख है--चाहे खुशबुओं का रास्ता हो, चाहे चांद की नगरी हो।
... बाकी जिंदगी है वही।
जो तेरी रहगुजर में गुजरी है।
जो परमात्मा को खोजने में गुजरी है, वही जिंदगी है। बाकी जिंदगी का नाममात्र है।
तो एक तरफ से तो तुमसे कहता हूं, सब गंवाना होगा। लेकिन धन्यभागी हैं
वे जो गंवाने को राजी हैं। क्योंकि वे ही सभी कुछ पाने के अधिकारी हो जाते हैं। एक तरफ से तो लगेगा, तुम खोने लगे; दूसरी तरफ से तुम पाओगे, पाने लगे। खोया हुआ-सा रहता हूं अक्सर मैं इश्क में
या यूं कहो कि होश में आने लगा हूं मैं।
संसार छूटने लगेगा--सत्य मिलने लगेगा। जुआरी चाहिए! अपने को दांव पर लगानेवाले चाहिए। अगर तुमने अपने को दांव पर लगा दिया तो तुम फिक्र मत करो। तुमने अगर संबंध बनाने की हिम्मत कर ली है तो कुछ उत्तरदायित्व मेरा भी है। जब तुम मुझसे जुड़ते हो, तुम अकेले ही थोड़े ही जुड़ रहे हो; मैं भी तुमसे जुड़ रहा हूं। इतना ही ख्याल रखना कि "तुम मुझसे जुड़े हो?" कहीं ऊपर-ऊपर तो नहीं है बात? कहीं कहने भर की तो नहीं है बात? क्योंकि बहुत लोग आ जाते हैं। कोई आता है, मुझसे कहता है, बस अब आपके चरणों में सब समर्पण है। तो मैं कहता हूं, ठीक, तो अब संन्यास ले लो! वह कहता है, यह जरा मुश्किल है। सब समर्पण है! यह जरा कठिन है।
क्या कह रहे थे अभी क्षणभर पहले? सब समर्पण है! सब समर्पण का तो अर्थ
यह था कि संन्यास की तो छोड़ो, अगर मैं कहता कि जाओ, डूब मरो नदी में, तो भी चले गए होते। अगर बचाना होता तो मैं भागा हुआ आता। तुम्हें चिंता की जरूरत न थी। लेकिन लोग शब्दों का उपयोग करते हैं, शायद अर्थ का भी उन्हें बोध नहीं। औपचारिक बातें लोग सीख गए हैं। उपचार निभाते हैं। सब समर्पण है! सब में संन्यास समाविष्ट न था? सब में तो मौत भी समाविष्ट थी।
बस इतना ही तुम ख्याल रखना, तुम्हारी तरफ से पूरा हो, प्रामाणिक हो, तुम्हारी तरफ से हार्दिक हो--फिर यह न होगा कि मैं न जानूं। जो भी हो रहा है, मैं जानता रहूंगा।

तुम्हारी प्रार्थना जरूरी नहीं कि पूरी करूं, क्योंकि तुम तो जल्दी
ही घबड़ा जाते हो। तुम कहते हो, अब मत रुलाओ, अब बहुत हो गया! तुम तो कहते हो, अब मत जलाओ, अब बहुत हो गया! तुम तो जल्दी ही उकता जाते हो, जल्दी ही घबड़ा जाते हो। मेरा उपयोग ही यही है तुम्हारे साथ कि तुम्हें हिम्मत बंधाऊं, कि बस थोड़ी दूर और, ज्यादा नहीं चलना है।
बुद्ध एक बार एक गांव के पास से गुजरे, दूसरे गांव जा रहे थे। गांव में लोगों से पूछा, कितनी दूर है? गांव के लोगों ने कहा, यही कोई दो कोस। फिर कोई दो कोस चल चुके जंगल में। लकड़हारा आता था, उससे पूछा कि भई दूसरा गांव कितनी दूर? उसने कहा, बस यही कोई दो कोस। बुद्ध मुस्कुराए। आनंद जरा क्रोध में आ गया। उसने कहा, गांव के बदतमीज बेईमान लोग! दो कोस हम चल भी चुके और अभी भी दो कोस है, यह कहता है!
फिर कोई दो कोस चल चुके, अब तो सांझ भी होने लगी, सूरज भी ढलने लगा और
एक आदमी से पूछा, तो उसने कहा, यही कोई दो कोस, बस अब पहुंचते ही हैं। आनंद ने कहा कि इस तरह के झूठ बोलनेवाले लोग मैंने कभी नहीं देखे। यात्रा करते जिंदगी हो गई!
बुद्ध ने कहा, ये झूठ बोलनेवाले लोग नहीं हैं; ये मेरे जैसे लोग हैं।
ये बड़े अच्छे लोग हैं। ये हिम्मत बंधाते हैं। ये कहते हैं, बस, जरा दो कोस! ये तुम्हें चलाए जा रहे हैं। देखो, छह कोस तो चला ही चुके!
अब मैं भी तुमसे कहता हूं, दो ही कोस है।
तुम कई बार थक जाते हो, बैठ जाना चाहते हो, तुमसे कहना पड़ता है, बस होने
को ही है।
सबा ने फिर दरे-जिंदा पे आ के दी दस्तक
सहर करीब है दिल से कहो न घबराए।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
ग्यारहवां प्रवचन

अध्यात्म प्रक्रिया है जागरण की

कुछ मिटे-से नक्से-पा भी हैं जुनूं की राह में
हमसे पहले कोई गुजरा है यहां होते हुए।
शास्त्र का सम्यक उपयोग भी है, असम्यक उपयोग भी। शास्त्र को जो अंधे
की तरह स्वीकार कर ले, शास्त्र उसके लिए बोझ हो जाता है। शास्त्र को जो समझे, शास्त्र को जो निष्पक्ष होकर विचार करे, शास्त्र को जो जागरूक होकर ध्यान करे, तो शास्त्र से बड़ी सुगंध उठती है, बड़ी मुक्तिदायी सुगंध उठती है।
शास्त्र को पकड़ना मत--सोचना। शास्त्र को अंधे की तरह स्वीकार मत करना। अंधे की तरह स्वीकार करने में शास्त्र का अपमान है। आंख खोलकर, शास्त्र में उतरना, शास्त्र को स्वयं में उतरने देना--तो शास्त्र का सम्मान है।
कोई भी सदगुरु तुम्हें अंधा नहीं बनाना चाहता है। क्योंकि वस्तुतः तो, तुम्हारी आंख में ही तुम्हारा गुरु छिपा है। तो सभी सदगुरु तुम्हारी आंख खोलना चाहते हैं। उतनी ही देर तुम्हारे साथ होना चाहते हैं कि तुम्हारी आंख खुल जाये, कि तुम्हें अपने भीतर का गुरु मिल जाये।
महावीर के ये वचन जैन पढ़ते हैं, अंधे की तरह। और अ-जैन तो पढ़ेंगे क्यों! गीता हिंदू पढ़ते हैं, अंधे की तरह। गैर-हिंदू तो फिक्र क्यों करेंगे! कुरान मुसलमान पढ़ते हैं, दोहराते हैं तोते की तरह। गैर-मुसलमान तो फिक्र ही क्यों करेगा!
मेरे जाने, तुम शास्त्र को तभी समझ सकोगे जब तुम न हिंदू हो, न मुसलमान हो, न जैन हो। क्योंकि अगर पक्षपात पहले से ही तय है, अगर तुमने जन्म से ही तय कर रखा है कि क्या ठीक है, तो अब ठीक की खोज कैसे करोगे? मान ही लिया हो कि सत्य कहां है, तो आविष्कार का उपाय कहां रहा? तुमने जल्दी स्वीकार कर लिया, खोजे बिना स्वीकार कर लिया, तो तुम खोज से वंचित रह जाओगे।
ये महापुरुषों के चरण-चिह्न तुम्हें बांध लेने को नहीं हैं, तुम्हें मुक्त करने को हैं। और ये चरण-चिह्न बड़े मिटे-मिटे से हैं। काफी समय बीत गया, इन राहों पर और लोग भी गुजर चुके हैं। इन चरण-चिह्नों को अंधे की तरह मत मानकर चलना, अन्यथा भटकोगे। जागना, खोजना। इन चरण-चिह्नों में अपने चरणों की गति को खोजना है, अपनी चरणों की शक्ति को खोजना है।
कुछ मिटे-से नक्से-पा भी हैं जुनूं की राह में
हमसे पहले कोई गुजरा है यहां होते हुए।
और सौभाग्यशाली हैं हम कि हमसे पहले लोग यहां गुजरे हैं। वे जो कह गये हैं, उनके जीवन का अनुभव जो बिखेर गये हैं, उससे तुम बहुत कुछ पा सकते हो। लेकिन पाने के लिए बड़ी समझदारी चाहिए।
समझो। जीवन से बहुत कुछ पाया जा सकता है। लेकिन तुम तो जीवन से भी नहीं पाते हो। शास्त्र तो जीवन की छाया मात्र हैं, प्रतिफलन हैं। शास्त्र जीवन से निकलते हैं, जीवन शास्त्र से नहीं निकलता। तुम्हें जीवन मिला है, उससे तुम कुछ नहीं पाते, तो बहुत कठिन है कि तुम शास्त्र से कुछ पा सकोगे। क्योंकि मूल से नहीं मिलता कुछ, छाया से क्या मिलेगा?
जो जानते हैं, जो जागकर जीते हैं, जो हिम्मत और साहस से जीते हैं, जिनके जीवन का आधार सुरक्षा, सुविधा नहीं है, साहस है--वे जीवन से भी निचोड़ लेते हैं सत्य को। वे शास्त्र से भी निचोड़ लेते हैं सत्य को। जो जागकर जीते हैं वे तो छाया से भी मूल को ख्ल्लाज लेते हैं क्योंकि छाया में भी--"कुछ मिटे-से नक्से-पा" कुछ धुंधले हो गये पैरों के चिह्न हैं।
अभागे हैं वे, जो जीवन से भी वंचित रह जाते हैं। सौभाग्यशाली हैं वे,
जो कि शास्त्रों से भी खोज लेते हैं।
इधर महावीर के वचनों पर हम चर्चा कर रहे हैं--इसलिए नहीं कि तुम उन्हें मान लो। मानने से कभी कुछ हुआ नहीं। मानना तो कमजोर की आदत है।

वह कहता है, "कौन चले, कौन झंझट करे! ठीक ही कहते होंगे। हम पूजा करने
को तैयार हैं। हम शास्त्र को फूल चढ़ा देंगे। कहो, शोभा-यात्रा निकाल देंगे। लेकिन हमसे जीवन बदलने को मत कहो। वह जरा ज्यादा हो गया।"
पूजा हमारी तरकीब है शास्त्र से बचने की। मंदिर तुम्हारे धर्म के प्रतीक नहीं; धर्म के साथ तुमने जो चालाकी की है, उसके प्रतीक हैं।
मन बड़ा चालाक है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने नौकर से कहा था कि मेरे जूतों पर पालिश कर दे।
"अरे फजलू, इतनी देर हो गई और अभी तक मेरे जूतों पर पालिश भी नहीं हो पायी?"
"सरकार! यह दूसरा बूट हाथों में है।"
"और पहला... ?"
नौकर ने कहा, "उसे इसके बाद हाथ में लूंगा सरकार।"
पहला! दूसरे के बाद!
मन बहुत चालाक है! बड़ी तरकीबें खोजता है। ऐसी तरकीबें खोजता है कि दूसरे तो धोखा खाते ही हैं, खुद भी धोखा खा जाता है। इस मन से थोड़े जागना। मन ही तुम्हें मनन नहीं करने देता है। मन ही तुम्हें उतरने नहीं देता। जहां भी जाते हो, तुम्हारी गंदी छाया पड़ जाती है। शास्त्र पढ़ते हो, तुम्हारी छाया में शास्त्र दब जाता है। शब्द सुनते हो, तुम्हारे पास तक पहुंचते-पहुंचते उनका अर्थ रूपांतरित हो जाता है।
ये महावीर के वचन बड़े बहुमूल्य हैं। आज के सूत्र तुम्हारे जीवन को बदल देनेवाले हो सकते हैं। ये तथ्यगत हैं। महावीर का कोई रस सिद्धांतों में नहीं है। महावीर कोई दार्शनिक नहीं हैं। महावीर तो सीधे पथ के वैज्ञानिक खोजी हैं।
इन शब्दों को समझना, मनन करना। बन सके, थोड़ा-थोड़ा उतारना। क्योंकि उतारोगे, तभी इनका अर्थ खुलेगा। इनका अर्थ इनके पढ़ने और इनके सुन लेने में नहीं है। इनका अर्थ इनके साथ थोड़ी देर जीने में है। क्षणभर को भी अगर तुम इनके साथ जीये, तो तुम पाओगे इनकी सचाई, इनकी गहनता, इनकी गंभीरता। और क्षणभर भी तुम जीये तो ये सत्य तुम्हारी धरोहर हो जायेंगे; ये तुम्हारा हिस्सा हो जायेंगे। ये तुम्हारे खून, हड्डी, मांस-मज्जा में समा जायेंगे। इन्हें समाने देना।
पहला सूत्रः "ऋण को थोड़ा, घाव को छोटा, आग को तनिक और कसाय को अल्प मानकर मत बैठ जाना। क्योंकि ये थोड़े बढ़कर बड़े हो जाते हैं।"
"ऋण को थोड़ा... ।" जो भी आदमी ऋण लेता है, पहले थोड़ा ही मानकर लेता है और सोचता हैः "चुका देंगे। इतना-सा तो ऋण है। ब्याज भी कुछ ज्यादा नहीं है, चुका देंगे।" जो भी ऋण लेते हैं, इसी आशा में लेते हैं कि चुका देंगे। ऋण चुकता नहीं मालूम होता फिर, बढ़ता जाता है। ब्याज घना होता जाता है। ब्याज ही नहीं चुकता, मूल का चुकाना तो बहुत दूर। और यह साधरण जीवन के ऋण की बात तो छोड़ दो, जो जीवन का बहुत गहरा ऋण है, वह तो कभी चुकता नहीं मालूम पड़ता। ले सभी लेते हैं, फंस जाते हैं।
महावीर कहते हैं, सभी ले लेते हैं तो जरूर मन में कोई कारण होगा ले लेने का। सभी सोचते हैं, थोड़ा है। थोड़ा श्रम कर लेंगे, चुक जायेगा।
"ऋण को थोड़ा, घाव को छोटा... ।" कितना ही छोटा घाव हो, यह सोच के कि छोटा
है, क्या फिक्र करनी है, बैठ मत जाना, आश्वस्त मत हो जाना, क्योंकि घाव प्रतिपल बड़ा हो रहा है; जैसे छोटा-सा बीज बड़ा वृक्ष हो जाता है। बीज को मिटा देना बड़ा आसान था, वृक्ष को काटना बहुत मुश्किल हो जायेगा। तो जो जानकार हैं, वे ऋण लेते ही नहीं। वे कहते हैं, गरीबी में जी लेंगे; लेकिन ऋण लेकर अमीर होने में कुछ सार नहीं, क्योंकि वह अमीरी ऊपर होगी, धोखे की होगी, भीतर जलन होगी और भीतर दरिद्रता होगी। रूखी रोटी खाकर सो लेंगे, एक बार खा लेंगे, पर ऋण न लेंगे; क्योंकि ऋण बढ़ेगा। शायद पेट में तो रोटी पड़ जायेगी, लेकिन प्राणों की शांति खो जायेगी। शायद ऊपर-ऊपर से तो सब रौनक हो जायेगी, भीतर-भीतर अंधेरा हो जायेगा।

महावीर साधारण ऋण की बात नहीं कर रहे हैं; वे तो उदाहरण हैं। लेकिन जीवन में हम ऐसे बहुत ऋण लिये हैं। हमारा सारा जीवन ऋण से भरा है। महावीर तो कहते हैं, परमात्मा से भी मत लेना। लेने की आदत ही मत डालना। क्योंकि आदत बढ़ती है। बीज वृक्ष होता है। आज थोड़ा लोगे, कल और थोड़ा ज्यादा लोगे, परसों और थोड़ा ज्यादा लोगे--भिखमंगे हो जाओगे। यहां तो सम्राट भी भिखमंगे हैं; लेते चले जाते हैं।
महावीर कहते हैं, ऋण लेना ही मत। और जब बीज की तरह छोटा अंकुर उठे, भीतर भाव उठे, पहली लहर उठे, तभी रोक देना। घाव को छोटा मत मानना, क्योंकि छोटे-छोटे घाव बड़े होकर नासूर हो जाते हैं। जो उन्हें प्रथम चरण में रोक देता है, वही रोक पाता है।
महावीर कहते हैं, घाव बड़ा हो जाये, फिर चिकित्सा करने की चिंता में पड़ोगे; बड़ी आसानी से घाव को रोका जा सकता है, जब वह बहुत छोटा है, या जब अभी पैदा ही नहीं हुआ। पैदा होने के पहले ही मार देना।
क्रोध की लहर उठती है--एक घाव उठा आत्मा में। तुम कहते हो, आज तो कर लें, कल से न करेंगे। अब आज तो जो हो गया, हो जाने दो! क्रोध करके तुम पछताते हो; निर्णय भी लेते हो, कल न करेंगे। लेकिन जब क्रोध उठता है, तब तो तुम कर ही लेते हो। और फिर तुम कहते हो, यह तो छोटा-सा क्रोध है, कोई युद्ध तो खड़ा नहीं किया, किसी की जान तो ली नहीं। दो कड़े शब्द कह दिये तो क्या बिगड़ गया? और फिर, बिना कड़े शब्द कहे कहीं काम चला है! कहीं संसार चला है! यहां अगर बुद्ध बनकर बैठ गये तो लोग बुद्धू समझेंगे। यहां जोर-जबर्दस्ती की दुनिया है। यहां अगर हमला न किया तो दूसरे लोग हमला कर देंगे। यहां अगर किसी ने आंख दमकाई और उसको जवाब न दिया, तो सभी लोग आंख दमकाने लगेंगे। फिर तो जीना मुश्किल हो जायेगा।
तुम बहाने खोज लेते हो। तुम तरकीबें खोज लेते हो। फिर तुम कहते हो, इतना-सा तो है, इसमें क्या बिगड़ जायेगा? कौन महानर्क हुआ जा रहा है, कौन-सा महापाप हुआ जा रहा है! छोटा है, क्षमा मांग लेंगे, प्रार्थना कर लेंगे, गंगा-स्नान कर आयेंगे, पूजा कर लेंगे, दान कर देंगे--कुछ कर लेंगे; लेकिन अभी तो कर लो।
"घाव को छोटा, आग को तनिक... ।"
छोटी-सी चिनगारी महलों को जला देती है।
"और कसाय को अल्प मान... ।" क्रोध है, लोभ है, माया-मोह है--कसाय है। "कसाय" शब्द महावीर का बड़ा बहुमूल्य है--जिससे तुम कसे हो, जिससे तुम बंधे हो, जो तुम्हारा बंधन है। जैसे हिंदू-शास्त्र में "पशु" शब्द है। जो पशु का अर्थ है वही जैन-शास्त्रों में कसाय का अर्थ है। पशु का अर्थ होता हैः जो पाश में बंधा है। पशु यानी पाश में बंधा, बंधन में पड़ा। पशु का अर्थ सिर्फ जानवर नहीं है। पशु का अर्थ हैः जो बंधा है, चारों तरफ जिसके जंजीरें हैं। जो बंधा है, वह पशु। जो मुक्त हुआ, वही मनुष्य है। तो सभी मनुष्य दिखाई पड़नेवाले लोग मनुष्य नहीं हैं। काश! मनुष्यता इतनी सस्ती होती कि दिखाई पड़ने से मिल जाती।
नहीं, जिनके बंधन गिर गये, जिन्होंने अपनी पशुता काट दी, पाश काट डाले,
जो मुक्त हुए--वही मनुष्य हैं। जो मनन को उपलब्ध हुए, वही मनुष्य हैं। जो मनु बने, वही मनुष्य हैं।
जैनों का शब्द "कसाय" वही अर्थ रखता है--जो बांध ले, कस दे, जो बांधती चली जाये और तुम सिकुड़ते जाओ और छोटे होते जाओ, और बंधन बोझिल होते चले जायें।
"कसाय" को अल्प मान, विश्वस्त होकर मत बैठ जाना। अल्पता तो धोखा है।
यह तो तरकीब है "कसाय" की तुम्हारे भीतर प्रवेश की। यह तो बीमारी का उपाय है तुम्हारे भीतर घर बनाने का। यह तो बीज का ढंग है पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करने का।
तुम थोड़ा सोचो कि बीज बहुत बड़ा होता, असंभव था वृक्षों का होना! उतना बड़ा बीज पृथ्वी में प्रवेश कैसे करता? बीज बड़ा छोटा है, यह वृक्षों की तरकीब है। बड़ा छोटा बीज बनाते हैं। बड़े से बड़ा वृक्ष भी बड़ा छोटा-सा बीज बनाता है। कोई भी रंध्र, कोई भी जरा-सा छेद पाकर घुस जायेगा पृथ्वी में।

पृथ्वी को पता भी न चलेगा। लेकिन अगर जितने बड़े वृक्ष हैं, इतने ही बड़े उनके बीज होते, तो वृक्ष खो जाते। कहां से पृथ्वी में प्रवेश होता? इतनी बड़ी रंध्रें, इतने बड़े छिद्र कहां खोजते?
बीज, वृक्ष कितना ही बड़ा हो, छोटे ही बनाता है। छोटे में तरकीब है। वृक्ष अपने को पुनः पुनः जन्माना चाहता है। कई तरकीबें करता है वृक्ष। फूल उगाता है सुंदर, तितलियों को लुभाने के लिए। क्योंकि तितलियों के पैरों में लगकर, बीज के छोटे-छोटे कण-पराग, नर पौधे तक पहुंच जायेंगे, नारी पौधे तक पहुंच जायेंगे। मिलन हो जायेगा नर और मादा का। तो फूल जो है विज्ञापन है वृक्ष का; बुलावा है तितली को, कि आओ। तितली से प्रयोजन नहीं है, तितली के पैरों में पराग लग जाये तो नर मादा को खोज ले, मादा नर को खोज ले, तो बीज-निर्माण हो, तो संतति आगे बढ़े।
सेमर के फूल देखे! बीज के पास रुई को पैदा करते हैं। क्योंकि सेमर बड़ा वृक्ष है। अगर बीज नीचे ही गिरें तो वृक्ष की छाया के कारण बड़े न हो पायेंगे। वृक्ष बड़ी होशियारी कर रहा है। वह साथ में रुई पैदा कर रहा है। तुम्हारे तकियों के लिए नहीं, अपने बीज को हवा की यात्रा पर भेजने को, ताकि बीज दूर चला जाये, नीचे न गिरे। ठीक वृक्ष के नीचे गिर जायेगा तो मर जायेगा। इतने बड़े वृक्ष की छाया में कैसे पनपेगा, कैसे बड़ा होगा? धूप न मिलेगी। पानी न मिलेगा। क्योंकि बड़ा वृक्ष सब पी जायेगा। पूरी भूमि को निचोड़ लेगा। ये छोटे-छोटे बीज तो मर जायेंगे। इन बेटे-बेटियों के लिए वह थोड़ी-सी रुई पैदा करता है। वे रुई के बहाने हवा पर तिर जाते हैं, हवा के झोंके में दूर निकल जाते हैं। कहीं दूर जाकर जमीन खोज लेंगे। फिर वहां वे भी बड़े होकर खड़े हो जायेंगे।
काम, क्रोध, लोभ, मोह भी बीज की तरह तुम्हारे मन की भूमि में आते हैं। इसलिए महावीर का सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। वे यह कहते हैं, छोटे मानकर मत सोच लेना कि क्या, क्या बिगड़ता है। जरा-सा बच्चे पर क्रोध कर लिया, क्या हर्ज। अपना ही बच्चा है। उसके ही सुधार के लिए क्रोध कर रहे हैं। और फिर क्रोध जरा-सा है। एक चांटा भी मार दिया तो क्या, अपना ही तो है! ऐसे छोटे- छोटे बहाने खोजकर क्रोध प्रवेश करता है, माया प्रवेश करती है, मोह प्रवेश करता है, लोभ प्रवेश करता है। आदमी कहता है, कोई ज्यादा तो मैं मांग नहीं रहा, थोड़ा-सा ही मांग रहा हूं। इस संसार में तो इतनी-इतनी वासनाओं भरे लोग हैं; मैं तो कुछ मांगता नहीं। परमात्मा, एक छोटा-सा मकान मांगता हूं, छोटी- सी घर-गृहस्थी हो, सुख-शांति हो! ...
छोटा मिल जायेगा तब तुम बड़ा मांगना शुरू करोगे। क्योंकि छोटा मिलते
ही इतना छोटा हो जायेगा कि तुम्हारी वासना उसमें समा न सकेगी। फिर तुम कहोगे, "और... ।" फिर तुम कहोगे, "और... ।" बीज की तरह जो प्रवेश हुआ था, वह जल्दी ही वृक्ष की तरह पनपने लगेगा। और बीज की तरह जिसे मिटाना अति सुगम था, फिर वृक्ष को काटना मुश्किल हो जायेगा; क्योंकि इस वृक्ष की शाखायें तुम्हारी आत्मा में फैल जायेंगी। फिर इस वृक्ष को उखाड़ने में तुम्हें लगेगा, तुम्हारे प्राण उखड़े। तुम जराजीर्ण होने लगोगे।
कभी ख्याल किया, जो आदमी जिंदगी भर क्रोध करता रहा है, वह कितना सोचता
है क्रोध छोड़ दे! कौन नहीं सोचता! क्योंकि क्रोध जलाता है, व्यर्थ की आग में गिराता है, जहर से भरता है, जीवन से सारा सुख-चैन खो जाता है। कौन नहीं चाहता! लेकिन क्रोधी क्रोध छोड़ नहीं पाता। लाख सोचता है, छोड़ दे; छोड़ नहीं पाता। क्योंकि अब उसे समझ में ही नहीं आता कि जड़ें उखाड़े कहां से! अब तो उसे ऐसा भी डर लगने लगता है कि मैंने सदा ही क्रोध ही तो किया है, क्रोध ही तो मेरा होना है। अगर क्रोध ही गया तो मैं कहां बचूंगा, मैं क्या बचूंगा। उसको अपनी प्रतिमा ही खोती मालूम पड़ती है। क्रोध के बिना वह अत्यंत दीन मालूम पड़ेगा। क्रोध ही उसका बल था। क्रोध में ही उसकी महिमा थी। क्रोध में ही वह दूसरों की छाती पर चढ़ गया था। क्रोध में ही उसने किसी को पराजित किया था। क्रोध में ही बाजार में प्रतियोगिता की थी, प्रतिस्पर्धा की थी। क्रोध में ही उसने बड़ा मकान बना लिया था। क्रोध की ही तरंगों पर चढ़कर उसने जीवन को जाना है। आज अचानक क्रोध छोड़ देने की बात उठती है; उठती है, उसी के मन में उठती है, कोई न कहे तो भी उठती है--क्योंकि क्रोध दुख देता है।

लेकिन, क्रोध उसकी प्रतिमा में इतना प्रविष्ट हो गया है रग-रेशे में, जड़ें फैल गई हैं छोटे-छोटे स्नायुओं में, तंतु-जाल हो गया है!
कभी किसी बड़े वृक्ष को पृथ्वी से उखाड़कर देखा! कितने दूर-दूर तक जड़ें फैल जाती हैं! दूसरे वृक्षों की जड़ों को भी अपने में अटका लेती हैं। तुम्हारे मकान की भूमि में चली जाती हैं। मकान की नींव में प्रवेश कर जाती हैं। मकान की ईंटों को जकड़ लेती हैं।
बैंकाक के पास बुद्ध की एक प्रतिमा है, बड़ी मूल्यवान प्रतिमा है! एक वृक्ष उस प्रतिमा में समाकर बैठ गया है। प्रतिमा खंड-खंड हो गई है। वृक्ष ने प्रतिमा के कोने-कोने में जड़ें पहुंचा दी हैं। तुम कहोगे, वृक्ष को अलग क्यों नहीं कर देते? लेकिन अब वृक्ष को अलग किया कि प्रतिमा गिरेगी। वृक्ष तोड़ रहा है प्रतिमा को, लेकिन वृक्ष ही जोड़े भी हुए है। उसकी ही जड़ों में प्रतिमा अटकी है, खंड-खंड हो गई है, टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। नाक अलग है, लेकिन जड़ों में अटकी है। हाथ टूट गया है, लेकिन जड़ों में फंसा है।
जब भी मैं इस प्रतिमा को चित्रों में देखा हूं, तभी मुझे आदमी की याद आई। अब भक्त चाहते हैं कि इससे छुटकारा हो जाये। यह तो मिटाये डाल रही है। इतनी बहुमूल्य प्रतिमा को नष्ट कर डाला इस वृक्ष ने। लेकिन इस वृक्ष को पानी देते हैं, दुश्मन को पानी देते हैं। क्योंकि जिस दिन इस वृक्ष को हटाया, उसी दिन प्रतिमा खंड-खंड होकर गिर जायेगी। तोड़ा भी इसी ने है, जोड़े भी यही है। यही अड़चन है।
क्रोध ही तुम्हें तोड़ रहा है, क्रोध ही तुम्हें जोड़े भी है। लोभ ही तुम्हें तोड़ रहा है, लेकिन लोभ ही तुम्हें सम्हाले भी है। लोभ ही तुम्हें नर्क की तरफ ले जा रहा है, लेकिन लोभ ही तुम्हारी नाव भी है। अब तुम मुश्किल में पड़ोगे। नाव छोड़ो तो डूबे। नाव में बैठे तो नाव सरक रही है नर्क की तरफ। छोड़ना भी तुम चाहते हो, एक पैर उठा भी लेते हो; लेकिन छोड़ा तो डूबे।
इसलिए महावीर कहते हैं, सचेत हो जाना! सावधान हो जाना!
"ऋण को थोड़ा, घाव को छोटा, आग को तनिक और कसाय को अल्प मानकर विश्वस्त
मत हो जाना।" ये छोटे जो आज हैं, कल बड़े हो जायेंगे; क्योंकि ये थोड़े ही बढ़कर बहुत हो जाते हैं।
मां के गर्भ में जब पिता का बीज पड़ता है, तो क्या होता है? इतना छोटा होता है कि खाली आंख से देखा भी नहीं जा सकता। इतना छोटा होता है कि दूरबीन चाहिए, खुर्दबीन चाहिए। एक संभोग में कोई एक करोड़ जीवाणु पिता के वीर्य से मां में प्रवेश करते हैं। एक करोड़! वीर्य की एक बूंद में लाखों होते हैं। इतने छोटे! फिर वही गर्भाधान में बड़ा होने लगता है। वही बीज एक से दो होता है, दो से चार होता है, चार से आठ होता है--इस तरह बढ़ता है। अपने को ही तोड़ता है। एक होता है, बड़ा होता है, पोषण मिलता है, दो हो जाता है। टूटकर दो टुकड़े हो जाते हैं, चार हो जाते हैं, आठ हो जाते हैं, फैलता जाता है। फिर तुम्हारा पूरा शरीर उसी से निर्मित हुआ है।
कोई सात अरब जीवाणु तुम्हारे शरीर में हैं। एक से शुरू हुए, सात अरब
तक पहुंच गए हैं। और बहुत जल्दी पहुंच जाते हैं। दिन दूने, रात चौगुने होते चले जाते हैं। जो आंख से नहीं दिखाई पड़ता था, वही आज तुम्हारा मित्र होगा, तुम्हारा भाई होगा, तुम्हारा बेटा होगा, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारी प्रेयसी। जो अदृश्य था, जिसको देखने के लिए खुर्दबीन चाहिए थी, इतना छोटा इतना बड़ा हो जाता है!
फैलाव प्रकृति का नियम है। यहां किसी भी चीज को जगह दी, वह फैलेगी। फैलना स्वभाव है। इसलिए तो हिंदू विश्व को ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म यानी जो फैलता चला जाता है; जो जानता ही नहीं कैसे रुके, जो फैलता ही चला जाता है; अनंत जिसका विस्तार है; जिसके फैलाव की कोई सीमा नहीं। यहां छोटी-सी चीज पकड़ो, जल्दी ही बड़ी होने लगती है। इन छोटी-छोटी बातों के कारण तुम भटकते चले जाते हो।
कभी-कभी तुम्हें ख्याल भी नहीं होता। तुम जरूरी काम से जा रहे थे, मां बीमार पड़ी थी और तुम उसके लिए दवा लेने जा रहे थे और किसी आदमी ने रास्ते में गाली दे दी--भूल गए मां, भूल गए दवा, भूल गए इलाज-चिकित्सा, उससे झगड़ने

खड़े हो गए, पहले इससे निपटारा कर लेना है! चाहे इसमें मां मर जाए, लौटकर घर आओ और पाओ कि मां जा चुकी, फिर चाहे पछताओ--लेकिन क्षुद्र भी, अति क्षुद्र भी, अति व्यर्थ भी, जब आता है तुम्हारी आंखों में, तो तुम्हें परिपूर्ण घेर लेता है। इसी तरह तो मंजिल खोती चली गई है। तुम बिल्कुल हवा की तरंगों में भटकते लकड़ी के टुकड़े हो; जहां हवा आ जाती है, जहां पानी की तरंग ले जाती है, वहीं चल पड़ते हो। तुम सांयोगिक हो गये हो--ऐक्सीडेंटल। तुम्हारे जीवन में कोई दिशा नहीं है, कोई बढ़ाव, कोई विकास, कोई गंतव्य, कोई मंजिल! कहां तुम जा रहे हो, क्यों तुम जा रहे हो--कुछ भी नहीं है। आकस्मिक घटनाएं, दुर्घटनाएं, तुम्हारे जीवन की निर्णायक हो गई हैं। कुछ भी उठ आता है, जिससे तुम्हारी कोई संगति नहीं है, तुम वह करने में लग जाते हो।
मैं विश्वविद्यालय में भर्ती होने गया, तो मैं अपना फार्म भर रहा था। मेरे पास ही एक लड़का खड़ा था, वह भी भर्ती होने आया था। उसने मेरे फार्म में देखा। उसने कहा, "तो आप दर्शनशास्त्र ले रहे हैं? तो मैं भी लूंगा।" मैंने कहा, "तू रुक। तुझे इससे क्या प्रयोजन? यह भी बिल्कुल सांयोगिक
है कि मैं यहां खड़ा अपनी दर्खास्त भर रहा हूं, तू भी भर रहा है; मेरी दर्खास्त को एक तो देखने की कोई जरूरत नहीं; देख भी ली तो तुझे कोई विषय इसलिए लेने की जरूरत नहीं... । न तू मुझे जानता।" उसने कहा, "यह भी आप ठीक कहते हैं। मैंने यह सोचा ही नहीं।"
तुमने कभी जिंदगी में देखा! इस तरह रोज हो रहा है। दुकान पर तुम गये थे; कुछ खरीदने गये थे, कुछ खरीद लाये। क्योंकि दुकानदार बड़ा कुशल था। उसने बेच दिया कुछ। दुकान पर गये थे, दुकानदार ने कुशलता भी न की हो, लेकिन दुकान की खिड़की में सजी हुई चीजों में कुछ चीज जंच गई, जिसकी तुम्हें क्षणभर पहले तक कोई भी जरूरत न थी, क्षणभर पहले तक तुम्हें सपना भी न आया था उसका; लेकिन बस आंख में पड़ गई, सरक गये तुम। शायद जरूरी काम छोड़कर, जो तुम लेने गये थे, कुछ और लेकर आ जाओ। तुम जो लेने जाते हो, वही लेकर लौटते हो?
पश्चिम में मनोविज्ञान इस पर बड़ी खोज करता है कि लोग क्या खरीदते हैं। और उन्होंने बड़ी तरकीबें खोजी हैं। और बड़े हैरानी के निष्कर्ष हाथ लगे हैं।
एक उपन्यास बिकता नहीं था; छप गया और बिका नहीं। विशेषज्ञों से सलाह
ली तो उन्होंने कहा, इस किताब का नाम बदल दो, नाम ठीक नहीं है, नाम खींचता नहीं है। नाम बदल दिया, किताब बिकी। ऐसी बिकी, लाखों की प्रतियों में बिकी। सालभर से छपी पड़ी थी, कोई खरीदनेवाला न था। किताब वही की वही, सिर्फ नाम बदलने से कुछ भी नहीं बदला, एक शब्द भीतर नहीं बदला है, सिर्फ कवर, खोल बदल गई--और किताब बिकने लगी!
मनोवैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि चीजें बेचते हैं तो डब्बे का रंग क्या होना चाहिए। क्योंकि उन्होंने सब रंगों के डब्बे रखकर देखे। स्त्रियां खरीदने आती हैं, तो वे हिसाब लगाते हैं कि कौन-से रंग से ज्यादा आकर्षित होती हैं। कुछ रंग हैं जिनकी तरफ कोई ध्यान ही नहीं देता। अगर उस रंग का डब्बा तुमने अपनी चीज को बेचने के लिए बना लिया है तो तुम्हारा दिवाला निकलेगा। अब रंग से भीतर की चीज का कोई भी संबंध नहीं है, लेकिन लोग सांयोगिक हैं। लोग एक्सीडेंटल हैं। रंग उन्हें पहले खींचता है। डब्बा खाली हो तो भी चलेगा, लेकिन रंग, रंग आंख को खींच लेता है। कितनी ऊंचाई पर दुकान पर डब्बा होना चाहिए, तब आंख जल्दी पकड़ में आती है। पांच फीट, तो ठीक आंख की सीध में होता है। लोग ऐसे अलाल हैं कि आंख भी ऊपर उठाकर कौन देखता है। अगर जरा डब्बा ऊपर रखा हो, या डब्बा बहुत नीचे रखा हो... तो अब तो विशेषज्ञ हैं इस संबंध में, जो बताते हैं कि तुम जब कोई चीज बनाकर बाजार में बेचो तो डब्बे का रंग क्या हो, कितने बड़े अक्षरों में नाम हो, कितनी ऊंचाई पर दुकान में रखा जाये, कितनी दूरी पर ग्राहक खड़ा हो, तो काउंटर कितने फासले पर बनाया जाये, बेचनेवाला क्या कहे, कैसे शब्दों का उपयोग करे, क्योंकि जरा-जरा-सी बातें हैं... ।

एक भिखमंगा एक घर में भीख मांगने गया। सुंदर है, स्वस्थ है, जवान है। महिला बाहर निकली और उसने कहा कि जवान हो, स्वस्थ सुंदर हो, कोई काम क्यों नहीं करते? जिंदगी में सफल हो सकते हो, भीख मांगने की जरूरत क्या है?
उस आदमी ने कहा, "अब तुमसे क्या कहें! दुनिया में बहुत स्त्रियां देखीं, तुम जैसी सुंदर स्त्री नहीं देखी। फिल्म अभिनेत्रियां हैं, लेकिन तुम्हारे मुकाबले कुछ भी नहीं। तुम इस घर में क्या कर रही हो? तुम तो फिल्म अभिनेत्री हो सकती थीं।" उस स्त्री ने कह, "रुक, रुक। मैं अभी तेरे लिए भोजन लाती हूं।"
भिखमंगे को भी समझना पड़ता है, क्या कहे, किन शब्दों का उपयोग करे! क्योंकि लोग अंधे हैं। लोगों को पता नहीं, वे क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं। तुम से लोग करवा रहे हैं। तुमने सैंकड़ों चीजें खरीद ली हैं जो बेचनेवालों को बेचनी थीं, तुम्हें खरीदनी नहीं थीं।
पुराने अर्थशास्त्र का नियम था किः जहां-जहां मांग होती है, वहां- वहां पूर्ति होती है। नये अर्थशास्त्र का नियम हैः जहां-जहां पूर्ति होती है वहां-वहां मांग पैदा हो जाती है। तुम चीज तो बनाओ! इसकी तुम फिक्र ही मत करो कि इसकी कोई मांग है या नहीं। मांग पैदा कर ली जायेगी। लोग पागल हैं। बर्नार्ड शा ने जब पहली दफा अपनी किताबें लिखीं तो बिकी नहीं। क्योंकि नाम बिकता है। कोई नाम तो था नहीं। कोई जानता तो था नहीं बर्नार्ड शा को। तो क्या किया उसने? वह खुद ही चक्कर लगाकर किताबों की दुकानों पर जाता था पूछने--"जार्ज बर्नार्ड शा की किताब है?" दुकानदार पूछता, "कौन जार्ज बर्नार्ड शा?"
"... अरे! तुम्हें जार्ज बर्नार्ड शा का पता नहीं? क्या खाक किताबों का धंधा करते हो? इस-इस नाम की किताब छपी है।" ऐसा वह खुद ही दुकानों पर चक्कर लगाता। पता बता आता उनको। तरकीब से समझा आता। और जब उसने अपने मित्रों को भी कह दिया कि तुम जब निकलो कहीं से, कोई विशेष रूप से जाने की जरूरत नहीं, लेकिन रास्ते में अगर किताब की दुकान पड़ जाये, इतनी कृपा मुझ पर करना, पूछ लेना--जार्ज बर्नार्ड शा की फलां-फलां किताब है? कई ग्राहक आने लगे, रोज आने लगे--कि "है कौन जार्ज बर्नार्ड शा?" दुकानदारों ने पता लगाया, किताबें खरीदकर लाये। जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा, ऐसे मेरी किताबों का बिकना शुरू हुआ।
चीज होनी चाहिए, फिर चीज के आसपास कांटा, कांटे के आसपास आटा होना चाहिए। फिर कोई न कोई फंस जायेगा। संसार बड़ा मूढ़ है। तुम जरा जागो! महावीर का इतना ही प्रयोजन है कि तुम जरा जागो, अन्यथा ऐसे तो यह रास्ता बड़ा ही होता चला जायेगा। इसका कोई अंत न होगा।
अजल से गर्मे-सफर हूं, मगर मुझे अब तक
बिछुड़ गया था मैं जिससे वोह कारवां न मिला।
तुम अपने स्वभाव से छूट गये हो। संयोग में उलझ गये हो।
बिछड़ गया था मैं जिससे वोह कारवां न मिला!
अजल से गर्मे-सफर हूं, मगर मुझे अब तक
--शुरू से, जगत के प्रारंभ से खोज रहा हूं अपने को--और मिल नहीं पाता हूं। क्योंकि और दूसरी चीजें बीच में मिल जाती हैं जो अटका लेती हैं। कभी धन, कभी पद, कभी प्रतिष्ठा, कभी यश, कभी रूप, कभी रंग, कभी शब्द, कभी गंध-- इंद्रियों के हजार जाल हैं! कोई न कोई मिल जाता है। अपने घर तक पहुंच ही नहीं पाते। कोई न कोई अटका लेता है।
ध्यान रखना, कोई तुम्हें अटकाता नहीं। तुम अटकने को तैयार ही बैठे हो। कोई न भी अटकाये, तो भी अटकने की कोई तरकीब खोज लोगे।
छोटे को छोटा मत मानना। सब चीजें बड़ी हैं। सत्य का खोजी जीवन की रत्ती-रत्ती का होश रखता है। सब चीजें बड़ी हैं। वही करता है जो करना जरूरी है। उसी तरफ जाता है जहां जाना जरूरी है। व्यर्थ को काटता है, ताकि सार्थक ही बचे। जो नहीं करना है, उसे नहीं ही करता है। खिलवाड़ नहीं करता जिंदगी के साथ।
जिंदगी उसकी एक साधना है, एक उपक्रम है, एक सोपान है। उसकी जिंदगी में
एक दिशा है। वह कहीं जा रहा है।

अगर ऐसे तुम सब दिशाओं में भागते रहे, तो तुम कहीं भी न पहुंचोगे। अगर तुम कहीं नहीं पहुंचे हो तो कारण तो खोजो! कारण यही है कि दो कदम चलते हो बायें तरफ, फिर दिल बदल गया; फिर दो कदम चलते हो दायें तरफ, तब तक फिर दिल बदल गया। तुम्हारा दिल है कि पारा है? छितर-छितर जाता है। जितना पकड़ो उतना ही छितरता जाता है। सब दिशाओं में बिखर जाता है। ऐसे तुम बिखर गये हो। इस बिखरेपन के कारण ही आत्मा का तुम्हें कोई अनुभव नहीं होता।
महावीर कहते हैं, छोटे को छोटा मत जानना। छोटा बड़ा हो जाता है। इसलिए जिससे बचना हो, उसके बीजारोपण के पहले ही जागना।
"क्रोध प्रीति को नष्ट करता है। मान विनय को नष्ट करता है। माया मैत्री को नष्ट करती है। लोभ सब कुछ नष्ट करता है।"
कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो।।
"क्रोध प्रीति को नष्ट करता है... ।"
अब लोग हैं, प्रेम चाहते हैं। कौन है जो नहीं चाहता! ऐसा आदमी खोजा, ऐसे प्राण तुमने कभी पाये जो प्रेम न मांगते हों? सभी तो प्रेम के भूखे हैं। निरपवाद रूप से सभी प्रेम के लिए प्यासे हैं। फिर प्रेम खो कहां गया है? जहां सभी लोग प्रेम चाहते हैं और जहां सभी लोग सोचते हैं कि प्रेम दें, वहां प्रेम के फूल खिलते दिखायी नहीं पड़ते। प्रेम खो कहां गया है? तो महावीर कहते हैं, प्रेम प्रेम की बात करने से क्या होगा? क्रोध, प्रीति को नष्ट करता है। तुम क्रोध के बीजों को तो जगह देते जाते हो और प्रेम की पुकार और गुहार मचाये रखते हो। चिल्लाते रहते हो, प्रेम, प्रेम, प्रेम--और क्रोध के बीज पनपाये जाते हो! बोते हो जहर, अमृत की मांग करते रहते हो! फिर अगर जहर का झाड़-झंखाड़ तुम्हारे जीवन को भर देता है और अमृत की कोई वर्षा नहीं होती--तो कसूर किसका है, उत्तरदायित्व किसका है?
"क्रोध, प्रीति को नष्ट करता है... ।"
अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम नहीं है तो जानना कि क्रोध होगा--चाहे बहुत-बहुत करने की वजह से तुम्हें याद भी न आती हो अब, ऐसे रग-पग गये होओ क्रोध में कि अब तुम्हें पहचान भी नहीं पड़ता कि क्रोध है। किसी क्रोधी को कहो। वह फौरन कहता है, "कौन कहता है, मैं क्रोध में हूं? मैं क्रोध में नहीं हूं।" क्रोधी भी यही कहे चला जाता है, मैं क्रोध में नहीं हूं। तुम भी जब क्रोध में पकड़े जाते हो तो तुम स्वीकार नहीं करते कि मैं क्रोध में हूं। क्रोध को कोई स्वीकार ही नहीं करता और प्रेम की लोग मांग किये जाते हैं। अगर क्रोध है तो स्वीकार करो, क्योंकि स्वीकार निदान बनेगा। क्रोध है
तो स्वीकार करो कि है, तो मिटाने का कोई उपाय हो सकता है। जिसे तुम स्वीकार ही न करोगे, उसे मिटाओगे कैसे? और अगर प्रेम न हो तो महावीर का सूत्र यह कह रहा हैः अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम न हो तो निश्चित जानना कि क्रोध है, चाहे तुम्हें पता चलता हो न पता चलता हो, पुरानी आदत हो, मजबूत आदत हो, खून में घुल-मिल गई हो, क्रोध तुम्हारा स्वभाव जैसा हो गया हो कि अब तुम्हें याद भी न आता हो कि अक्रोध क्या है, तो भेद करना मुश्किल हो गया हो--लेकिन अगर जीवन में प्रेम न हो तो क्रोध है।
"क्रोध, प्रीति को नष्ट करता है। मान, विनय को नष्ट करता है... ।"
अहंकार, तुम्हारी विनम्रता को नष्ट कर देता है। और विनम्रता नष्ट होती है, बड़ा बहुमूल्य कुछ तुम्हारे भीतर समाप्त हो जाता है। सीखने की क्षमता खो जाती है। विनम्र सीखने में सक्षम होता है। विनम्र खुला होता है। विनम्र तत्पर होता है। कुछ भी नया आये, उसके द्वार बंद नहीं होते। और विनम्र जीवन के सत्य को पहचानता है कि मैं एक खंड मात्र हूं इस विराट का। अहंकारी एक बड़ी भ्रांति में जीता है। अहंकारी की भ्रांति यह है कि जैसे मैं केंद्र हूं सारे विश्व का, जैसे सब मेरे लिए हैं और मैं किसी के लिए नहीं; जैसे सब मेरे साधन हैं और मैं साध्य हूं।
अहंकार को अगर हम ठीक से समझें तो उसका अर्थ होता हैः सारा जगत साधन
है और मैं साध्य हूं। मेरे जीवन के लिए अगर सबको मरना भी पड़े तो भी उचित है। मेरे सुख के लिए अगर सबको दुखी भी होना पड़े तो भी ठीक है। क्योंकि मैं साध्य हूं, और सब साधन हैं। सबके कंधों पर मेरे पैर रखने पड़ें मुझे और सबके

सिरों से मुझे सीढ़ियां बनाकर चढ़ना पड़े राजमहलों तक, चढूंगा। क्योंकि और सब सीढ़ियां होने को ही बने हैं।
अहंकारी अपने को अस्तित्व का केंद्र मान रहा है। विनम्र का क्या अर्थ है? विनम्र कहता हैः मैं कैसे केंद्र हो सकता हूं? मैं नहीं था, तब भी अस्तित्व था। मैं नहीं हो जाऊंगा, तब भी अस्तित्व होगा। मेरे होने न होने से क्या फर्क पड़ता है? एक तरंग हूं माना, मैं भी एक लहर हूं इस विराट की, पर बस एक लहर हूं। विराट सत्य है। मेरा होना तो एक सपना है; रात देखा, सुबह खो जायेगा। यह मेरा होना कोई ठोस पत्थर की तरह नहीं है, पानी की लकीर है।
तो विनम्र सीख पाता है जीवन के सत्यों को। और अंततः परमात्मा को भी सीख पाता है, क्योंकि उसने पहली शर्त पूरी कर दी। उसने झूठ को अंगीकार न किया। उसने सत्य से ही शुरुआत की। सत्य से शुरुआत हो तो सत्य पर अंत होता है। असत्य से ही शुरुआत हो जाये, तो फिर सत्य कहां मिलेगा? फिर तो असत्य बढ़ता चला जायेगा।
अहंकारी धीरे-धीरे मद में चूर होता जाता है। आंखें देखने की क्षमता
खो देती हैं। बोध विलुप्त हो जाता है। एक तंद्रा और निद्रा में जीता है। "मान, विनय को नष्ट करता है... ।" और अगर तुम्हारे जीवन में विनम्रता न
हो तो तुम जान लेना कि कहीं अहंकार का शत्रु घात लगाये छिपा बैठा है। "माया, मैत्री को नष्ट करती है... ।" कपट, छल-छिद्र मैत्री को नष्ट करता है। मैत्री का अर्थ ही होता है कि तुम किसी के साथ ऐसे हो जैसे अपने साथ। मैत्री का अर्थ होता हैः तुम्हारे और मित्र के बीच कोई रहस्य नहीं, कोई छुपाव नहीं, कोई दुराव नहीं। मैत्री का अर्थ होता हैः तुम अपने को अपने मित्र के सामने बिल्कुल नग्न करने में समर्थ हो। तुम जानते हो, तुम्हें भरोसा है प्रेम का। तुम जानते हो कि तुम जैसे हो, तुम्हारा मित्र तुम्हें स्वीकार करेगा। उसका प्रेम बेशर्त है। अगर मित्र से भी तुम्हें कुछ छिपाना पड़ता हो, तो तुम मित्र को भी शत्रु मान रहे हो।
मैक्यावली ने लिखा है... । ठीक महावीर से उलटा है मैक्यावली। इसलिए महावीर को समझना हो तो मैक्यावली को भी समझना उपयोगी होता है। मैक्यावली ने लिखा हैः मित्र से भी ऐसी बात मत कहना जो तुम शत्रु से न कहना चाहते होओ; क्योंकि कौन जाने, जो आज मित्र है कल शत्रु हो जाये। फिर तुम पछताओगे कि अच्छा होता, इससे यह बात न कही होती। मैक्यावली यह कह रहा है कि तुम मित्र के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करना, जैसा तुम शत्रु के साथ करते हो; क्योंकि मित्र यहां शत्रु भी हो जाते हैं। महावीर से पूछो तो महावीर कहेंगेः मित्र की तो बात ही छोड़ो, तुम शत्रु के साथ भी ऐसा व्यवहार करना जैसा मित्र के साथ करते हो; क्योंकि कौन जाने जो आज शत्रु है, कल मित्र हो जाये। तो ऐसी कुछ बातें मत कह देना जो कल फिर लौटाना बड़ी मुश्किल हो जाये। फिर थूके को चाटने जैसा होगा। जिससे दुश्मनी है, उसको हम ऐसी बातें कहने लगते हैं जो बिल्कुल अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। कहते हैं, राक्षस है। कल तक नर में छिपा नारायण था, आज राक्षस! लेकिन कल अगर यह मैत्री फिर बनी, तो फिर कहां मुंह छुपाओगे? फिर कैसे लौटाओगे? फिर कैसे कहोगे कि यह नर में नारायण, फिर राक्षस नहीं है।
महावीर कहते हैंः मैत्री को तुम आधार मानकर चलना। जो आज मित्र है, वह
तो मित्र है ही; जो आज नहीं है, वह भी हो सकता है कल मित्र हो जाये। जो आज शत्रु है वह भी मित्र हो सकता है। और महावीर की बात मानकर जो चलेगा, धीरे- धीरे पायेगाः उसके शत्रु मित्र हो गये। और मैक्यावली की जो मानकर चलेगा, वह पायेगाः उसके मित्र धीरे-धीरे शत्रु हो गये; क्योंकि तुमने कभी उनसे मित्र जैसा व्यवहार ही नहीं किया। अगर मित्र से भी छिपाना पड़े, इसी को महावीर माया कहते हैं।
"माया, मैत्री को नष्ट करती है... ।"
माया का अर्थ हैः सच न होना। माया का अर्थ हैः धोखे देना। माया का अर्थ हैः जो तुम नहीं हो, वैसे दिखाना। माया का अर्थ हैः प्रामाणिक न होना। माया का अर्थ हैः प्रवंचना। माया का अर्थ हैः दिखावा, धोखा; आंख में आंसू भरे थे, लेकिन मुस्कुराने लगे, तो यह मैत्री न हुई। मित्र के सामने तो हम रो भी सकते हैं। और किसके सामने रोओगे? अगर मित्र के सामने भी नहीं रो

सकते तो फिर और कहां रोओगे? मित्र के सामने तो हम अपना दुख, पीड़ा, दैन्य, सभी कुछ प्रगट कर सकते हैं। मित्र के सामने तो हम अपना कलुष, अपना पाप, अपना अपराध, सभी प्रगट कर सकते हैं। क्योंकि हम जानते हैं, प्रेम का भरोसा है। उस प्रेम की छाया में सब स्वीकार है। क्योंकि मित्र ने हमें चाहा है-- किन्हीं कारणों से नहीं; अकारण चाहा है। तो किन्हीं कारणों से टूटेगी नहीं मैत्री। ऐसा नहीं है कि मित्र देख लेगा कि अरे, तुमने और ऐसा पाप किया! दोस्ती खतम! नहीं, मित्र तुम्हारे पाप के प्रति भी करुणा का भाव रखेगा। वह कहेगा, सभी से होता है, मनुष्य मात्र से होता है। मित्र तुम्हें समझने की कोशिश करेगा। मित्र तुम्हारी निंदा नहीं करेगा। जरूरत होगी तो आलोचना करेगा, निंदा नहीं। लेकिन आलोचना भी इस ख्याल से करेगा कि श्रेष्ठतर का आगमन हो सके। आलोचना भी इस ख्याल से करेगा कि तुम और बड़े होने को हो, तुम अभी और खुलने को हो; यह कली इतने ही होने को नहीं, तुम्हारी नियति और बड़ी है।
मित्र अगर तुम्हारी आलोचना भी करेगा तो उसमें गहन प्रेम होगा। और शत्रु अगर तुम्हारी प्रशंसा भी करता है तो उसमें भी व्यंग्य होता है; उसमें भी कहीं गहरी निंदा का स्वर होता है, कहीं कटाक्ष होता है।
मैत्री तो संभव है तभी, जब माया बीच में न हो। इसलिए दुनिया में मैत्री धीरे-धीरे खोती गई है। लोग नाममात्र को मैत्री कहते हैं; उसे परिचय कहो, बस ठीक है; इससे ज्यादा नहीं। दुनिया से मैत्री का फूल तो करीब-करीब खो गया है। क्योंकि मैत्री के फूल के लिए सरलता चाहिए, निष्कपटता चाहिए। कपट, माया अगर बीच में आई तो मैत्री समाप्त हो जाती है। अगर गणित बीच में आया तो मैत्री समाप्त हो जाती है। मैत्री तो एक काव्य है--गणित नहीं, तर्क नहीं। मित्र के सामने हम अपने को वैसा ही प्रगट कर देते हैं जैसे हम हैं। इसलिए तो मित्र के पास राहत मिलती है। कम से कम कोई तो है जिसके पास जाकर हमें झूठ नहीं होना पड़ता; नहीं तो चौबीस घंटे झूठ। पत्नी है तो उसके सामने झूठ। दफ्तर है, मालिक है, तो उसके सामने झूठ। बाजार में संगी-साथी हैं, उनके साथ झूठ। सब तरफ झूठ है। तो तुम कहीं खुलोगे कहां? तुम बंद ही बंद मर जाओगे। हवा का झोंका, सूरज की किरणें तुममें कहां से प्रवेश करेंगी? तुम कब्र बन गये। कहीं कोई तो हो कहीं, जहां तुम शिथिल होकर लेट जाओ; जहां तुम जैसे हो वैसे ही होने को स्वतंत्र होओ; जहां कोई मांग नहीं है; जहां मित्र की आंख यह नहीं कह रही है कि ऐसे नहीं, ऐसे होओ।
मैत्री बड़ी अनूठी घटना है। शब्द ही बचा है संसार में। मैत्री के फूल बहुत कम खिलते हैं। क्योंकि मैत्री के फूल के खिलने के लिए दो ऐसे व्यक्ति चाहिए जो निष्कपट हों, जिनके बीच माया न हो।
"माया, मैत्री को नष्ट करती है। और लोभ, सब कुछ नष्ट कर देता है।" अगर तुम्हारी जिंदगी में खंडहर ही खंडहर मालूम पड़ता हो, मरूद्यान का कहीं कोई पता न चलता हो, मरुस्थल ही मरुस्थल, तो एक बात जान लेना कि तुमने लोभ के ढंग से ही जीना सीखा है, तुम और कुछ नहीं जान पाये। लोभ, सब कुछ नष्ट कर देता है।
यह महावीर निदान कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, अगर तुम्हारी जिंदगी में कोई रस-वर्षा न होती हो, तो दोष मत देना किसी को--इतना ही जानना कि तुम लोभ में बड़े गहरे उतर गये हो। तुमने लोभ की बड़ी गहरी सीढ़ियां पार कर ली हैं। तुम लोभ के कुएं में डूब गये हो। तो ही ऐसा होता है कि सब नष्ट हो जाये।
उसने मंशाए-इलाही को मुकम्मिल कर दिया
अपनी आंखों पर जिसने लिये मुहब्बत के कदम।
जिसने मैत्री सीखी, जिसने प्रेम सीखा, जिसने मैत्री के लिए माया छोड़ी, जिसने प्रेम के लिए क्रोध छोड़ा, जिसने विनय के लिए मान छोड़ा, और जिसने जीवन को सृजनात्मक गति देने के लिए लोभ से विदा ली--उसने मंशाए-इलाही को मुकम्मिल कर दिया; उसने परमात्मा की आकांक्षा पूरी कर दी।
अपनी आंखों पर जिसने लिए मुहब्बत के कदम।
--फिर उसकी आंखों पर मुहब्बत की छाया पड़ने लगी। फिर उसके हृदय में मुहब्बत के कमल खिलने लगे।

प्रेम परम घटना है। अब इसे हम समझें।
महावीर कहते हैं, लोभ से सब नष्ट हो जाता है और प्रेम से सब उपलब्ध हो जाता है। महावीर कहते हैं, "मित्ति मे सव्वभुएषु।" सबसे मैत्री, सबसे प्रेम, सर्वभूतों से। क्योंकि महावीर कहते हैं, एक से ही प्रेम करने में इतने कमल खिलते हैं, जरा सोचो, सबसे प्रेम! प्रेम तुम्हारा स्वभाव बन जाये। प्रेम संबंध न रहे। ऐसा नहीं कि किसी से प्रेम और किसी से नहीं; क्योंकि ऐसे प्रेम में तो कुछ न कुछ कमी रह जायेगी। ऐसे प्रेम में तो सीमा होगी। बस प्रेम। प्रेम, तुम्हारे होने का ढंग। प्रेम, तुम्हारे होने की सुगंध, सुरभि। प्रेम, तुम्हारे होने की व्यवस्था। कोई न भी हो, तुम अकेले कमरे में बैठे हो तो भी प्रेम से भरे बैठे हो। उस शून्य में ही प्रेम उंडेल रहे हो। वृक्षों के पास बैठे हो तो वृक्षों से प्रेम-वार्ता चल रही है। चांद-तारों को देखा है तो वहीं प्रेम का आलिंगन होने लगा। सरिता-सागर के पास गये हो तो वहीं मैत्री का सुर बजने लगा। अकेले कि भीड़ में, अकेले कि साथ में, सुख में कि दुख में--लेकिन प्रेम की वीणा बजती ही रहे; वह तुम्हारे भीतर श्वास हो जाये अहर्निश! पता हो न पता हो, श्वास जैसे चलती रहती है, ऐसा प्रेम भी डोलता रहे!
इस प्रेम की परम घटना के लिए महावीर ने अहिंसा नाम दिया है। इस प्रेम
को जीसस ने ईश्वर कहा है। प्रेम ईश्वर है।
लोभ, सब कुछ नष्ट कर देता है। "लोहो सव्वविणासणो!"
लोभ और प्रेम विपरीत हैं। इसे समझो। लोभी व्यक्ति प्रेम नहीं कर पाता--कर ही नहीं सकता। क्योंकि प्रेम में बांटना पड़ता है, देना पड़ता है। लोभी कृपण होगा, बांटेगा कैसे? लोभ तो इकट्ठा करता है। लोभ तो जो इकट्ठा कर लेता है, उसकी रक्षा में लग जाता है--उसमें से कोई एक पैसा खींच न ले! इसलिए तो इस देश में कहावत है कि जब कोई लोभी मरता है, मरकर सांप हो जाता है; मंडली मारकर, कुंडली मारकर, बैठ जाता है अपने खजाने पर। अब सांप कोई सोने को भोग नहीं सकता--भोगने का सवाल भी नहीं है।
लोभी बड़ा अदभुत आदमी है। जरा उसको समझो। क्योंकि वह सबके भीतर छिपा है, उसे समझना जरूरी है। लोभी बड़ा अनूठा आदमी है। साधारण घटना नहीं है लोभी। लोभी उतनी ही बड़ी असाधारण घटना है जितनी बड़ी असाधारण घटना प्रेमी है। दोनों छोर हैं, अतियां हैं। लोभी भोगता नहीं, सिर्फ भोग की आशा को भोगता है। धन इकट्ठा कर लेता है, उसे खर्च नहीं करता। खर्च में तो कम होगा। धन इकट्ठा कर लेने में ही उसका भोग है। धन तो सिर्फ संभावना है। तुम सोने की ईंट रखकर बैठे रहो कि मिट्टी की ईंट रखकर बैठ लो, कुछ फर्क न पड़ेगा। फर्क तो तब पड़ेगा जब तुम भोगने जाओगे; बिना भोगे तो मिट्टी की ईंट और सोने की ईंट बराबर है। तुम्हारे खीसे में रुपया है या नहीं, इसका पता तो तभी चलेगा जब तुम भोगने जाओगे। जब बाजार में कुछ खरीदने जाओगे, तब पता चलेगा कि रुपया है या नहीं। अगर खरीदने कभी गये ही नहीं तो खीसे में रुपया था या नहीं, बराबर है।
लोभी बड़ा अदभुत आदमी है। वह रुपया तो इकट्ठा करता है, लेकिन भोगता नहीं। तो लोभी के पास धन होकर भी लोभी निर्धन ही होता है; क्योंकि धन का तो पता ही तब चलता है... । रुपया धन थोड़े ही है। जिस क्षण तुम रुपये को खर्च करते हो, उस क्षण धन बनता है।
इसे थोड़ा समझना। तुम्हारे खीसे में एक रुपया पड़ा है। इसमें कई चीजें छिपी हैंः चाहो तो एक आदमी रातभर मालिश करे--इस एक रुपये में छिपा पड़ा है। अब एक आदमी को खीसे में रखकर चलो, बहुत वजन हो जायेगा, भारी पड़ेगा। चाहो तो गिलासभर दूध पी लो, इस रुपये में वह छिपा पड़ा है। चाहो तो जाकर तीन घंटे फिल्म में बैठ जाओ। चाहो तो होटल में भोजन कर लो। चाहो तो किसी को दान दे दो, किसी भूखे का पेट भर जाये। हजार संभावनाएं हैं एक रुपये में। यही तो रुपये की खूबी है।
रुपया बड़ा अदभुत साधन है! क्योंकि अगर तुम्हें एक ही चीज पकड़नी हो...
तो तुम्हें एक आदमी से अगर मालिश करवानी है तो आदमी रख लो, लेकिन फिर उस आदमी का तुम दूसरा उपयोग न कर सकोगे। नाश्ता करना चाहो तो क्या करोगे? सिनेमा देखने जाना चाहा तो क्या करोगे? रुपया बड़ी अनूठी चीज है! मनुष्य की

बड़ी गहरी ईजादों में एक ईजाद है रुपया। इसमें सब चीजें समाई हैं। लेकिन अभी कोई भी चीज प्रत्यक्ष नहीं है, सब अप्रत्यक्ष है। अभी कोई भी चीज वास्तविक नहीं है, सिर्फ संभावना है। इसलिए तो अनंत संभावनाएं रुपये में छिपी हैं। इसलिए तो लोग रुपये के लिए इतने पागल हैं; क्योंकि रुपया तिजोड़ी में है तो अनंत संभावनाएं हाथ में हैं।
लेकिन रुपया बिल्कुल खाली है, जब तक उसका उपयोग न करो--है ही नहीं रुपया। उसका कोई मतलब नहीं है। तिजोड़ी में बंद है तो व्यर्थ है। रुपये की सार्थकता तभी है, जब वह तुम्हारे हाथ से दूसरे हाथ में जाता है। बीच में रुपया धन होता है। देने में धन है। भोगने में धन है। रोकने में तो धन मिट्टी हो जाता है।
और यह सारे जीवन के धन के संबंध में सही है। वही चीज तुम्हारे पास है
जो तुम दे देते हो। यह बड़ा विरोधाभास लगेगा। जो तुम्हारे पास है और तुमने कभी भी न दी वह तुम्हारे पास थी ही नहीं; क्योंकि हो कैसे सकती थी? चीज तो प्रगट तब होती है जब तुम देते हो। आदान-प्रदान में धन प्रगट होता है। मुट्ठी में बंद, तो मर जाता है, होता ही नहीं। क्या फर्क पड़ता है कि तुम्हारे पास एक लाख रुपया तिजोड़ी में था या नहीं था? तिजोड़ी बंद रही, तुम जीये तिजोड़ी के बाहर, मरे तिजोड़ी के बाहर। लाख रुपया बंद था कि नहीं था बंद, क्या फर्क पड़ता है? कोई भी तो फर्क नहीं पड़ता। फर्क पड़ सकता था, अगर तुम बांटते। लोभी बांटता नहीं। बाहर के धन को ही नहीं, जब बाहर के धन को ही नहीं बांटता तो भीतर के धन को क्या खाक बांटेगा? जब क्षुद्र रुपये नहीं बांट सकता, तो जीवन की महिमा क्या बांटेगा? ठीकरे नहीं बांट सकता, तो हृदय कैसे लुटायेगा? और प्रेम के लिए तो चाहिए हृदय लुटानेवाला, बांटनेवाला, देनेवाला।
प्रेम है बांटने की कला। लोभ है इकट्ठा करने की कला। मगर तुम जो इकट्ठा करते हो, वह व्यर्थ है। इसलिए लोभी से ज्यादा दरिद्र कोई भी आदमी नहीं है। देखना, कभी देते वक्त उस पुलक को, उस उमंग को! उस घड़ी को गौर से देखना, जब तुम कुछ देते हो! एक पैसा हो कि लाख रुपया हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वह रुपया न भी हो, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। तुमने किसी का हाथ ही प्रेम से हाथ में ले लिया हो, तुम किसी के पास ही दो क्षण गहरी सहानुभूति से बैठ गये हो। तुम एक फूल, जंगली फूल रास्ते के किनारे से तोड़कर किसी को दे दिये हो--उस घड़ी जरा जागकर देखना, क्या घटता है! जब तुम कुछ देते हो, तब तुम्हारे भीतर कैसा आविर्भाव होता है! कैसा प्रसाद! कैसा बरसाव हो जाता है!
इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, जब तुमसे कोई कुछ लेने को राजी हो जाये तो उसका धन्यवाद भी करना। उसे देना तो, साथ में दक्षिणा भी देना। दक्षिणा यानी धन्यवाद में भी कुछ देना। क्योंकि अगर वह इनकार कर देता तो तुम्हारा धन, धन न हो पाता। तुमने एक पैसा जाकर किसी गरीब को दे दिया, उस गरीब ने लेकर तुम्हारे पैसे को पैसा बनाया; उसके पहले वह पैसा नहीं था। उस गरीब ने उसको धन बनाया। धन्यवाद कौन किसका करे?
पुराने शास्त्र कहते हैं कि तुम उसे धन्यवाद में भी अब कुछ देना, कि तेरी बड़ी कृपा, तू इनकार भी कर सकता था; तू कहता, नहीं लेते--फिर?
प्रेम की दुनिया में, जो लेनेवाला है वह भी कुछ दे रहा है। यही तो प्रेम का मजा है! जो लेनेवाला है वह भी कुछ दे रहा है। देनेवाला ही नहीं दे रहा है, लेनेवाला भी दे रहा है। दोनों दे रहे हैं। और कोई घाटे में नहीं है। किसी ने धन दिया, किसी ने लिया; लेकर उसने उस धन की हुंडी को स्वीकारा। अभी तक हुंडी थी, अब धन हुई। उसने तुम्हें धनी बना दिया। तुम्हारी दया को स्वीकार करके तुम्हें दयालु बना दिया। तुम्हारे प्रेम को स्वीकार करके तुम्हें प्रेमी बना दिया। तुम्हारे हाथ से जब देने की घटना घटी, उस क्षण तुम्हारे हृदय में कोई फूल खिल गया।
देकर आदमी धन्यभागी होता है।
लोभी प्रेम नहीं कर सकता। क्योंकि प्रेम की यात्रा तो बिल्कुल उलटी है; वह बांटने की है और देने की है। लोभी सिर्फ रोकता है। लोभ एक तरह की कब्जियत है, बीमारी है।

लो भी, दो भी--जीवन लेना-देना है।
अब एक और बात तुमसे कह देना चाहता हूंः कुछ लोगों को ऐसी भ्रांति पकड़ जाती है--या तो वे कहते हैं कि हम देंगे नहीं; या वे कहते हैं, हम लेंगे नहीं। लोभी हैंः पहले धन को पकड़ते थे; वे कहते थे कि हम देंगे नहीं। फिर समझ में आया कि यह धन तो सब मिट्टी हुआ जा रहा है, यह तो पकड़ से ही मिट्टी हुआ जा रहा है, तो वे कहते हैं, हम देंगे, अब लेंगे नहीं। तुम ऐसे आदमी को धार्मिक कहते हो। यह आदमी धार्मिक नहीं है। यह अधार्मिक आदमी है; क्योंकि यह किसी दूसरे को मौका नहीं देता कि उसकी मिट्टी धन हो जाये। यह कैसी बात हुई? परम धार्मिक तो वह है जो लेने-देने में कुशल है, दोनों में कुशल है। यह तो धार्मिक न हुआ, अहंकारी हुआ। यह कहता है, हम तो सिर्फ देंगे, हम ले नहीं सकते--मैं और लूं!
एक बहुत बड़े धनी व्यक्ति हैं, मेरे मित्र हैं। एक दफा मेरे साथ यात्रा
पर गये तो अपने दिल की बातें खोलने लगे। काफी समय तक साथ था, तो छिपा न सके; कुछ-कुछ बातें करने लगे। एक उन्होंने अपने बड़े दिल की, दुख की बात कही कि "मैंने अपनी जिंदगी में अपने सब रिश्तेदारों को खूब दिया, मित्रों को दिया।" और यह सच है, मैं जानता हूं, उन्होंने दिया। "लेकिन कैसा मेरा अभाग्य है कि जिनको भी मैं देता हूं, वे कोई भी मुझसे प्रसन्न नहीं!" और यह भी मैं जानता हूं कि जिनको भी उन्होंने दिया है, वे सब उनसे नाराज हैं। और वे झूठ नहीं कह रहे हैं; उन्होंने दिया है, खूब दिया है! उनके पास खूब था, खूब है। हर रिश्तेदार को उन्होंने लखपति बना दिया है। हर मित्र को लखपति बना दिया है। जिसके साथ भी उनका संबंध रहा है, वह जल्दी ही लखपति हो गया। लेकिन जिनने भी उनसे लिया, वे सब उनसे नाराज हैं। तो वे मुझसे कहने लगे, कि क्या हो गया! मेरा दुर्भाग्य कैसा है? मैंने क्या कमी की, मेरा कसूर क्या है?
मैंने कहा, कसूर तुम्हारा यह है, कि तुमने सिर्फ दिया और उनको तुमने देने का कभी मौका नहीं दिया। तुम थोड़ा उनको भी मौका देते। लेन-देन होता तो ठीक था। तुमने दिया ही दिया। और तुम अहंकारी हो। और तुम लेने पर राजी नहीं हो। तुम दाता बने रहना चाहते हो।
तो अगर तुम दाता ही रहोगे तो जिसको तुमने दीन बना दिया देकर, वह अगर नाराज हो तो आश्चर्य क्या? वह अगर तुम्हें क्षमा न कर सके तो आश्चर्य क्या? वह तुमसे बदला लेगा। तुमने उसके अहंकार को बड़ी चोट पहुंचा दी। मैंने कहा, कभी उनको भी मौका दो। धन की तुम्हें जरूरत नहीं; लेकिन हजार और चीजों की जरूरत है। जिस मित्र को तुमने लाखों दिये हैं, कभी उससे इतना ही कह दिये कि आज मुझे जरा कार की जरूरत है, भेज दो। वह कार तुम्हारी ही दी हुई है, लेकिन उसे भी तो थोड़ा मौका दो कि तुम्हारे लिए कुछ कर सके। पर वे कहने लगे, मुझे जरूरत ही नहीं है। मेरे पास ऐसे ही काफी है।
"कभी तुम बीमार पड़ते हो, किसी मित्र को फोन करके कहो कि आओ, मेरे पास बैठ जाओ; तुम्हारा होना मुझे सुख देगा। यह भी तुमने कभी नहीं किया। तुम कुछ तो करो। तुम्हारे बेटे की शादी हो तो अपने मित्रों को कहो कि आओ, तुम्हारे बिना शादी न हो सकेगी। कुछ तो करो। तुम बिल्कुल पत्थर की तरह हो। तुम देते तो हो, लेकिन देना भी तुम्हारा अहंकार से भरा है; क्योंकि लेने के लिए तुम्हारा हाथ कभी नहीं फैलता। इसलिए जिसको तुम देते हो, वही तुम पर नाराज है। जिसको तुम देते हो, वही अनुभव कर रहा है कि तुमने उसे नीचे गिराया। तुमने हाथ सदा ऊपर रखा; दूसरों के हाथ सदा नीचे रखे।"
मेरे लिए धार्मिक आदमी वह है जो तुम्हें देता भी है और तुमसे लेता भी है--और लेन-देन बराबर रखता है। कोई क्षुद्र-सी चीज तुमसे ले लेता है। मगर तुम्हें मौका देता है देने का भी। क्योंकि तुम भी तो खिलो! अगर देने से ही लोग खिलते हैं तो तुम भी तो खिलो! कोई छोटी-मोटी चीज। चीजों के मूल्यों का कोई सवाल नहीं है। कोई तुमसे इतना ही कह दे कि वह जो पत्थर पड़ा है, मेरे लिए उठाकर ला दो, और तुम्हें धन्यवाद दे दे, तो भी तुम भर जाओगे। क्योंकि जब भी तुम कुछ दे पाते हो, तभी तुम्हारी आत्मा भरती है और खिलती है।
तो मैं तुम्हारी एक भ्रांति को स्पष्ट कर देना चाहता हूं। प्रेम सिर्फ देना ही देना नहीं है; नहीं तो वह तो अहंकार हो जायेगा, वह प्रेम

नहीं होगा। प्रेम तो लेने-देने की छूट है। प्रेम तो देता भी खूब है, लेता भी खूब है। प्रेम न तो इस तरफ कंजूस है, न उस तरफ कंजूस है। प्रेम अकड़ा हुआ नहीं है। प्रेम विनम्र है। वह कभी हाथ नीचे भी कर लेता है। वह कभी हाथ ऊपर भी कर देता है। प्रेम लेने और देने को खेल मानता है। इस आवागमन में ऊर्जा के आने-जाने में, जीवन ताजा रहता है। और खेल बड़ा महिमावान है, क्योंकि दोनों इस लेने-देने में निखरते हैं; दोनों बड़े होते हैं; दोनों खिलते हैं, विकसित होते हैं।
सुनो! इसे गुनो! तुम त्यागियों जैसे अहंकारी मत बना जाना, जो कहते हैं, हमने सब त्याग किया। ये लोभी हैं--शीर्षासन करते हुए--जो कहते हैं, हम कुछ न लेंगे।
एक बड़ा अदभुत आदमी है बंबई मेंः रमणीक जौहरी। वह मेरे पास आया। वह एक मोतियों का हार बना लाया था। उसकी आंखों में आंसू थे। उसने मुझे हार पहनाया। उसने कहा कि आप मना मत करना। पर मैंने कहा, तुम रो क्यों रहे हो? वह कहने लगे, मैं खुशी से रो रहा हूं। मैंने कहा, "तुम मुझे पूरी बात कहो।" वे जैन हैं, तेरापंथी जैन हैं। तो उसने कहा, मैं आचार्य तुलसी का भक्त हूं। उसी घर में, उसी परंपरा में पैदा हुआ। उनको मैं कुछ देना चाहता हूं, लेकिन वे तो कुछ ले नहीं सकते। इसलिए मेरा कोई संबंध ही नहीं बन पाता। संबंध तो तब बनता है जब दोनों तरफ से कुछ आदान-प्रदान हो। वे मुझसे कुछ ले ही नहीं सकते; क्योंकि वे कहते हैं, वे त्यागी हैं। इसलिए आपसे मैंने प्रार्थना की। मैं किसी को, जो मुझसे बड़ा हो, कुछ देना चाहता हूं। क्योंकि उस देने में मैं भी बड़ा हो जाऊंगा, मैं भी कुछ खिलूंगा। आप मना मत करना!
उस दिन जो आंसू उसकी आंखों से बहे, वे बड़े बहुमूल्य थे। मोतियों का हार मुझे पहनाकर वे अति प्रसन्न हो लिया। वह बार-बार मुझे धन्यवाद देने लगा कि मैं डरा हुआ था कि कहीं आप भी मना न कर दें। मैंने कहा, मैं किसी भी तरफ से कंजूस नहीं हूं। जो मेरे पास है, तुम्हें देता हूं; जो तुम्हारे पास है, लेने को हमेशा तैयार हूं। यह बात तो जरा गलत है और अहंकार की है कि मैं सिर्फ दूंगा, लूंगा नहीं। मैं और लूं! मैं और इतना छोटा हो जाऊं कि तुमसे लूं! क्षुद्र सांसारिक पुरुषों से कुछ लूं!
मैंने कहा, तुम फिक्र छोड़ो; क्योंकि मेरे लिए कोई क्षुद्र नहीं है। परमात्मा ही दोनों तरफ बैठा है। अगर तुम्हें कुछ लगा है कि मुझसे तुम्हें मिला है और तुम बेचैनी अनुभव करते हो बिना कुछ दिए--और ठीक है बेचैनी, अनुभव होनी चाहिए; जिसके भीतर भी धड़कता हुआ दिल है, अनुभव होगी--तो तुम ले आना, तुम्हारे पास जो हो ले आना। मैं न तो भोगी हूं न त्यागी हूं। मैं कृपण हूं ही नहीं। भोगी भी कृपण है, त्यागी भी कृपण है। एक ने भोग को पकड़ा है, एक ने त्याग को पकड़ा है। मैं सिर्फ जीवंत हूं। आओ, जाओ। तुमने मेरे लिए हृदय खोला है, तो मेरा हृदय भी तुम्हारे लिए खुला है। और मैं तुम्हारे आंसू समझ सकता हूं। तुम कुछ और बड़ा लाना चाहते थे; तुम जानते हो, कंकड़-पत्थर लाये हो। लेकिन क्या करो, तुम्हारी मजबूरी है! जो तुम्हारे पास था वही तुम लाये हो। लाने के भाव का मूल्य है; क्या तुम ले आये हो, यह थोड़े ही सवाल है! ख्याल रखना, मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि प्रेम का अर्थ होता हैः
बस दो। मैं तुमसे यह कह रहा हूं, प्रेम का अर्थ होता हैः तुम भी बड़े होओ, दूसरे को भी बड़ा होने दो; तुम भी फैलो दूसरे को भी फैलने दो। दो भी, लो भी। और तुम्हारे बीच लेने-देने में एक संतुलन हो। ये दोनों पंख तुम्हें उड़ायें खुले आकाश में।
और जल्दी करो। लेन-देन कर लो। क्योंकि बाजार जल्दी ही उठ जायेगा। दुकानें बंद होने का वक्त भी आ गया। सांझ होने लगी। लोग अपने-अपने पसारे इकट्ठा करने में लगे हैं। ऐसा न हो कि पीछे तुम पछताओ--जब जा चुके बाजार, न कोई लेने को हो, न कोई देने को हो।
शराबे-जीस्त अभी सेर हो के पी भी नहीं
कि सुन रहा हूं सदाए शिकस्त सागर की
--अभी जीवन की मदिरा को तुम पी भी तो नहीं पाये; लेकिन देखो, मदिरा- पात्र के टूटने की आवाज आने लगी!
शराबे-जीस्त अभी सेर हो के पी भी नहीं

--अभी मन भरकर पी भी नहीं पाये जीवन के मधु को,
कि सुन रहा हूं सदाए शिकस्त सागर की।
--और यह तो मधु-पात्र के टूटने की आवाज आने लगी।
जन्म के साथ ही तो मधु-पात्र के टूटने की आवाज आने लगती है। इसके पहले
कि मधु-पात्र टूट जाये, पीयो, पिलाओ। लो, दो। मिलो-जुलो। फैलो, दूसरों को फैलने दो। गतिमान, गत्यात्मक हो तुम्हारा जीवन! कहीं भी जकड़ा न हो; न इस किनारे न उस किनारे। उठने दो लहरें इस किनारे से उस किनारे तक! आने दो लहरें उस किनारे से इस किनारे तक! तुम दोनों किनारों के बीच का फैलाव बनो! तब तुम्हारे जीवन में सम्यक धर्म का उदय होता है।
"क्षमा से क्रोध को हरें, क्षमा से क्रोध का हनन करें, नम्रता से मान
को जीतें, ऋजुता से माया को, और संतोष से लोभ को।"
"क्षमा से क्रोध को... ।" जब तुम क्रोध करते हो तो क्या कर रहे हो? क्रोध तुम्हारा एक दृष्टिकोण है। क्रोध तुम्हारा ऐसा दृष्टिकोण है जो तुमसे कहता हैः जो नहीं होना चाहिए था वह हुआ है। किसी ने कुछ कहा, क्रोध का अर्थ हैः तुम यह कहते हो कि नहीं यह कहना चाहिए था। तुम्हारी कुछ और अपेक्षा थी। क्रोध के पीछे अपेक्षा छिपी है। अगर एक कुत्ता आकर भौंक जाये तो तुम नाराज नहीं होते; क्योंकि तुम जानते हो कुत्ता है, भौंकेगा। लेकिन आदमी आकर भौंक जाये तो तुम नाराज हो जाते हो। आदमी है तो तुम्हारी बड़ी अपेक्षा थी।
क्षमा का अर्थ हैः तुम्हारी कोई अपेक्षा नहीं; जो दूसरा कर रहा है, वही कर सकता था, इसलिए कर रहा है। जो गाली दे सकता था, गाली दे रहा है। जो गीत गा सकता था, गीत गा रहा है। क्षमा एक दृष्टिकोण है। क्षमा का यह अर्थ है कि हमारी कोई अपेक्षा नहीं; हम हैं कौन, जो तुमसे अपेक्षा करें। मैं हूं कौन, जो तुमसे अपेक्षा करूं कि तुम ऐसा व्यवहार करो तो ठीक, ऐसा न करोगे तो मैं क्रोधित हो जाऊंगा!
एक झेन फकीर राह से गुजर रहा था, एक आदमी आकर उसको लट्ठ मार दिया। घबड़ाहट में वह आदमी भागने को था, उसकी लकड़ी भी हाथ से छूट गई, तो उस फकीर ने लकड़ी उठाकर उसको दे दी और कहा, भाई लकड़ी तो ले जा। फकीर के साथ एक युवक चल रहा था। उसने कहा, "यह माजरा क्या है? इस आदमी ने तुम्हें चोट पहुंचाई; तुम उलटे उसकी लकड़ी उसको उठाकर दे रहे हो? तुम कुछ कहे ही नहीं?"
उसने कहा, "अब कहना क्या है? रास्ते से गुजर रहा हूं, और एक वृक्ष से शाखा गिर पड़े और मेरा सिर तोड़ दे, तो क्या कहूंगा? कुछ भी नहीं कहूंगा। यह क्या कहने की बात है? संयोग की बात है कि वृक्ष की शाखा टूटने को थी और हम गुजरते थे। हो गया मिलन आकस्मिक, अब कहना क्या है? इस आदमी को मारना था किसी को, हम मिल गये। वृक्ष की शाखा टूटी, समय पर सिर पर पड़ गई। इससे कहना क्या है? और यह जो कर सकता था, वही इसने किया है; न कर सकता होता तो करता ही क्यों? जो इसके भीतर हो सकता था, हुआ है। मैं कौन हूं?"
यह संसार मेरी अपेक्षा से चले, इससे ही तो क्रोध पैदा होता है। जिस-जिस को तुमने अपनी अपेक्षा से चलाना चाहा, उसी पर क्रोध होता है। इसलिए जिनसे तुम्हारी जितनी ज्यादा अपेक्षा होती है, उनसे तुम्हारा उतना ही क्रोध होता है। पत्नी पति पर आग-बबूला हो जाती है; हर किसी पर नहीं होती। हर किसी पर होने का सवाल ही कहां है? अपेक्षा ही नहीं है। जिससे अपेक्षा है... । बाप बेटे पर क्रोधित हो उठता है--अपेक्षा है। बड़ी आशाएं बांधी हैं इस बेटे से और यह सब तोड़े दे रहा है। सोचा था, यह बनेगा, वह बनेगा, बड़े सपने देखे थे--और यह सब उलटा ही हुआ जा रहा है।
जिससे तुम्हारी अपेक्षा है, ध्यान रखना वहीं-वहीं क्रोध पैदा होता है। जिनसे तुम्हारे कोई संबंध नहीं हैं, कोई क्रोध पैदा नहीं होता। पड़ोसी का लड़का भी बर्बाद हो रहा है, वह भी शराब पीने लगा है--मगर इससे तुम्हें चिंता नहीं होती।
सुना है मैंने एक यहूदी अपने धर्मगुरु के पास गया और उसने कहा, "मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। मेरा लड़का अमरीका गया था, लौटकर आया तो वह ईसाई हो गया। मेरा लड़का और ईसाई! और हम परंपरा से बड़े रूढ़िवादी यहूदी हैं। यह बर्दाश्त नहीं हो रहा। आत्महत्या करने का मन होता है।"

धर्मगुरु ने कहा, "बहुत चिंता न करो। मेरी तो सुनो। तुम्हारा तो एक लड़का है। हो गया, कोई बात नहीं है। फिर तुम कोई धर्मगुरु नहीं हो, मैं धर्मगुरु हूं। मेरे लड़के के साथ भी यही हुआ। वह भी अमरीका गया, वहां से बिगड़कर आ गया। वह भी ईसाई हो गया। और मैं धर्मगुरु हूं। कम से कम मेरा लड़का तो होना ही नहीं चाहिए।"
तो उन दोनों ने कहा, अब क्या करें? उन्होंने कहा, हम परमात्मा से प्रार्थना करें, और क्या कर सकते हैं! उन दोनों ने प्रार्थना की जाकर सिनागाग में, कि हे प्रभु! यह क्या दिखला रहे हो? मेरा लड़का... मैं प्राचीन परंपरा से यहूदी हूं, मेरा लड़का ईसाई हो गया! दूसरे ने कहा, मैं धर्मगुरु हूं। तुम्हारा प्रतिनिधि हूं इस पृथ्वी पर। कम से कम मेरा तो कुछ ख्याल रखते! मेरा लड़का भी ईसाई हो गया।
और कहते हैं, ऊपर से आवाज आई कि "तुम बकवास क्या कर रहे हो? मेरी तो सोचो। मेरा लड़का ईसा मसीह मैंने भेजा था, वह भी... ।"
अपनी-अपनी अपेक्षाएं हैं। "और मैं ईश्वर हूं। तुम तो धर्मगुरु ही हो।"
जहां अपेक्षा है, वहां क्रोध है। क्षमा का अर्थ हैः तुमने अपेक्षा छोड़ दी। तुम हो कौन? माना, बेटा तुमसे पैदा हुआ है, लेकिन तुम हो कौन? तुम एक रास्ते थे जिससे बेटा आया। तुमने जगह दी आने की। तुमने बेटा बनाया थोड़े ही है, बनानेवाला कोई और है। तुम तो केवल माध्यम थे, निमित्त थे। तुम निर्णायक थोड़े ही हो।
जो हो जाये, अपेक्षा-शून्य व्यक्ति स्वीकार कर लेता है। उसी स्वीकार में क्षमा है।
अब इसे समझना।
साधारणतः धर्मगुरु तुम्हें समझाते हैं--कुछ ऐसी बात समझाते हैं जिससे लगता है क्षमा क्रोध के उलटी है। वे ऐसा समझाते हैं कि तुम क्रोध मत करो, क्षमा कर दो इस आदमी को; इसने पाप किया, क्रोध मत करो, क्षमा कर दो! लेकिन मानते वे भी हैं कि इसने पाप किया; नहीं तो क्षमा क्या खाक करोगे? जब इसने कुछ गलती ही नहीं की तो क्षमा क्या करना है? क्षमा तो गलत हो गया, तभी की जाती है। तो फिर क्रोध और क्षमा में एक बात तो समान रही कि इसने गलती की है। कोई क्रोध करता है गलती पर, कोई क्षमा करता है गलती पर; लेकिन गलती दोनों स्वीकार कर लेते हैं।
मेरी क्षमा का अर्थ और महावीर की क्षमा का अर्थ बिल्कुल अलग है।
महावीर जब कहते हैं, क्षमा करो, तो वे इतना ही कह रहे हैंः समझो कि तुम हो कौन गलती और सही का निर्णय करनेवाले? अपेक्षा मत करो और क्षमा आ जायेगी।
क्षमा क्रोध के विपरीत नहीं है--क्षमा क्रोध का अभाव है।
इसलिए क्षमा करनी नहीं पड़ती; अपेक्षा के गिरते ही हो जाती है।
"क्षमा से क्रोध का हनन करें, नम्रता से मान को जीतें... ।"
नम्रता का क्या अर्थ है? --अपनी स्थिति को जानना। यह कोई साधना नहीं है, सिर्फ अपने तथ्य को पहचाननाः क्या है मेरी स्थिति? सांसों में अटका हूं। सांस बंद हो गई, समाप्त हो जाऊंगा। स्थिति क्या है? आज हूं, कल नहीं हो जाऊंगा। अभी जमीन पर चल रहा हूं, कल जमीन मेरे ऊपर होगी। अभी सबके सिर पर बैठने की कोशिश की है, कल इन्हीं के चरण मेरे ऊपर पड़ेंगे।
नम्रता का अर्थ हैः अपनी वास्तविक स्थिति को जानना कि हमारा होना ही क्या है? अहंकार किस बलबूते पर? अपने को "मैं" कहना भी किस बलबूते पर? एक तरंग है, आई-गई!
"नम्रता से मान को जीतें, ऋजुता से माया को... ।"
ऋजुता का अर्थ हैः सरलता, प्रामाणिकता, सीधा-सादापन। तुम्हारे साधु
भी तिरछे हैं, वे भी ऋजु नहीं हैं। ऋजुता का तो अर्थ हैः बच्चे जैसा भोला- भालापन। साधु तो तुम्हारे बहुत अऋजु हैं, बहुत उलटे हैं। ऋजु नहीं हैं, इरछे-तिरछे हैं, बड़े जटिल हैं। एक-एक बात को गणित से कर रहे हैं। अगर उपवास रखा है तो हिसाब भी रखा है साथ में कि उपवास किया है। इस साल कितने उपवास किये, वह भी हिसाब है। यह परमात्मा के सामने पूरे खाते-बही लेकर मौजूद होंगे। इनकी जिंदगी में सरलता नहीं है। इनकी जिंदगी में बड़ा गणित है। अगर

क्रोध छोड़ा है, माया-मोह छोड़ा है, तो स्वर्ग पाने की आकांक्षा में छोड़ा है; लेकिन कुछ पाने की आकांक्षा है। यह छोड़ना सीधा, साफ, सरल नहीं है।
ऋजुता बड़ा बहुमूल्य शब्द है--सीधी लकीर की तरह। दो बिंदुओं के बीच जो निकटतम दूरी है, निकटतम दूरी है वह लकीर है। निकटतम! अगर जरा लंबा किया तो इरछा-तिरछा हो जायेगा। दो व्यक्तियों के बीच जो निकटतम दूरी है, वह ऋजुता है। दो बिंदुओं के बीच जो निकटतम दूरी है, वह लकीर है, पंक्ति है, रेखा है। जब कोई व्यक्ति तुमसे कुछ पूछता है, तब तुम दो तरह का व्यवहार कर सकते होः या तो इरछे-तिरछे जाओ, गली-कूचों से घूमो, सीधे न जाओ, सीधी बात न करो, चालबाजी चलो; कुछ कहना चाहते हो, कुछ कहो; कुछ बताना चाहते हो, कुछ बताओ। कहते हैं, मुल्ला नसरुद्दीन बचपन से ही उलटी खोपड़ी था। उलटी खोपड़ी यानी उससे जो भी कहो, वह उससे उलटा करेगा। तो मां-बाप समझ गये थे। क्या करोगे, अब उलटी खोपड़ी है... । तो उसको वे वही कहते जो वे चाहते थे कि वह न करे। और जो वे चाहते कि वह करे, उससे उलटा कहते। जैसे अगर उनको चाहिए कि वह चुप बैठे तो वे कहते, "बेटा! जरा शोरगुल कर।" तो वह चुप बैठ जाता। समझ गये एक दफे गणित, तो वे वैसे ही चलते।
एक दिन बाप बेटे के साथ लौट रहा था, नदी पार कर रहे थे। गधे पर शक्कर के बोरे लादे हुए थे। बीच नदी में बाप ने देखा कि बोरे बाईं तरफ झुके जा रहे हैं। नसरुद्दीन के गधे पर जो बोरे थे वे बाईं तरफ झुके जा रहे हैं। तब वह चाहता था कि बेटा उन्हें दाईं तरफ थोड़ा सरकाये। लेकिन वैसा कहो कि दाईं तरफ सरकाओ तो तो वह कभी सरकायेगा नहीं। तो उसने कहा, "बेटा, बोरों को जरा बाईं तरफ सरका।" बाईं तरफ वे खुद ही सरक रहे थे। मगर उस दिन चकित होकर बाप को देखना पड़ा कि बेटे ने उनको बाईं तरफ ही सरका दिया। सब बोरे नदी में गिर गये। बाप ने कहा, "यह तेरा व्यवहार आज कुछ संगत नहीं!" उसने कहा, "अट्ठारह साल का हो गया; अब मैं भी समझने लगा तरकीब। अब तो तुम जो कहोगे, उसके उलटा न करूंगा; अब तो तुम जो चाहते हो, उसके उलटा करूंगा।"
लेकिन बाप भी आखिर नसरुद्दीन का बाप! उसने भी तरकीब निकाल ली। अब बात
और भी तिरछी हो गई।
अगर बाप को चाहिए कि बोरे दाएं तरफ सरकाये जाएं, तो पहले तो वह कहता था
कि बाएं तरफ सरकाओ; अब अगर दाएं तरफ ही सरकवाना हो तो कहना पड़ता है कि दाएं तरफ सरकाओ। क्योंकि बेटा सोचेगा, यह बाएं तरफ सरकवाना चाहता है, इसलिए दाएं तरफ सरकवायेगा। अब और तिरछी हो गई बात। गणित और उलझ गया।
दो बिंदुओं के बीच जो सीधी रेखा है, वही ऋजुता है। जो कहना है, जो करना है, जो चाहना है--वही कहो। जो कहते हो वही हो जाओः ऋजुता का अर्थ है। नहीं तो उलटा होता है। तुम जाते हो किसी के पास, तुम कहते हो... । तुम हंस रहे हो इस बात पर, लेकिन अगर खोजोगे तो इस उलटी खोपड़ी को हर खोपड़ी में छिपा हुआ पाओगे। तुम किसी के पास जाते हो, तुम कहते हो कि आप के चरण की धूल हूं, मैं तो कुछ भी नहीं! तुम चाहते यह हो कि वह कहे, "अरे आप और चरण की धूल! आप बड़े महापुरुष हैं।" अब समझो कि वह दूसरा आदमी कहे कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं आप, चरण की धूल तो हैं ही, इसमें कहने का क्या है! तो आप नाराज हो जायेंगे कि हद्द हो गई; इस आदमी को शिष्टाचार भी नहीं आता!
तुम जरा ख्याल करना, तुम्हारी जिंदगी में यह उलटी खोपड़ी काफी समायी हुई है। तुम चाहते कुछ और हो, कहते कुछ और हो। यह धोखा फैला चला जाता है। महावीर कहते हैं, "ऋजुता से माया को... ।" वह जो कपट है, तिरछापन है, उसको ऋजुता से जीत लो। क्योंकि जितने तुम कपट से भरते जाओगे, उतनी जीवन में उलझन होगी; उतना तुम्हारा जीवन पांखों में कट जायेगा।
सरल व्यक्ति शांत होता है। देखा तुमने! जब भी तुम झूठ बोलते हो, तभी अशांति होती है। क्योंकि फिर याद रखना पड़ता है झूठ को कि किससे क्या बोले। जो आदमी झूठ ही बोलता रहता है सबसे, उसका जरा हिसाब तो समझो। एक बात तो माननी पड़ेगी, उसकी स्मृति की दाद देनी पड़ेगी। याददाश्त तो देखो! याद रखना पड़ता है। सत्य को याद रखने की कोई भी जरूरत नहीं है। जो व्यक्ति सचाई से जीता है, उसे याददाश्त की जरूरत ही नहीं है; क्योंकि सच हमेशा वही का वही है। लेकिन तुमने एक से कुछ कहा, दूसरे से कुछ कहा, तीसरे से कुछ कहा--फिर

हिसाब रखना पड़ता है, पहले से क्या कहा, दूसरे से क्या कहा, तीसरे से क्या कहा।
मुल्ला नसरुद्दीन दो स्त्रियों के प्रेम में था। बहुत कम लोग हैं जो
एक स्त्री के प्रेम में हों। द्वैत हमारा सभी जगह होता है। तो एक स्त्री से कहता है कि तुझसे सुंदर इस जगत में कोई भी नहीं; दूसरी से भी यही कहता है कि तुझसे सुंदर इस जगत में कोई नहीं। दोनों बातें झूठ थीं। कम से कम एक तो झूठ थी ही। एक दिन संयोग की बात, दोनों स्त्रियां साथ मिल गईं और दोनों को शक तो था ही। उन्होंने नसरुद्दीन से पूछा, "अब कहो कि कौन स्त्री दुनिया में सबसे ज्यादा सुंदर है?"
नसरुद्दीन थोड़ा झिझका। उसने कहा कि तुम एक-दूसरे से ज्यादा सुंदर हो! एक-दूसरे से ज्यादा सुंदर! आदमी तरकीब निकाल ही लेता है। लेकिन हम झूठ बोलते चले जाते हैं। जाल उलझता चला जाता है। धीरे-धीरे तो बहुत बार झूठ बोलकर ऐसी हालत आ जाती है कि हमें भी लगता है कि शायद यही सच होगा; क्योंकि इतने दिन से बोल रहे हैं, याद भी नहीं आती कि कब शुरू किया था। बहुत बार बोलने से, बहुत बार पुनरुक्त होने से झूठ स्वयं को भी सच जैसा मालूम पड़ने लगता है। तब तुम अऋजु हो गये। तब तुम अर्जुन हो गये--अऋजु!
कृष्ण की पूरी चेष्टा गीता में, इरछे-तिरछे अर्जुन को सीधा करने की है। नाम "अर्जुन" का बड़ा सार्थक है। कृष्ण की पूरी चेष्टा यही है कि तू सीधा-साफ हो; क्षत्रिय है, क्षत्रिय की बात बोल। अचानक, यह अर्जुन कभी भी अहिंसा की बात नहीं बोला था, आज अचानक अहिंसा बोलने लगा। और अहिंसा इसकी सच्ची नहीं है। क्योंकि अगर ये इसके प्रियजन न होते, संबंधी न होते, भाई-भतीजे, गुरु, पितामह, चचेरे, सब तरह के, मौसी, मामा के रिश्तेदार, सब इकट्ठे थे--अगर ये इसके अपने न होते, अपनों को देखकर यह जरा डरा। इसने कहा कि यह तो सब अपनों को ही मार डालूंगा।
अब यह थोड़ा सोचने जैसा है। अर्जुन को सवाल उठा कि आदमी धन भी कमाता है,
पद भी कमाता है, सिंहासन पर भी बैठता है, तो मजा तो तभी आता है जब अपने देखने को मौजूद हों। तुम अगर दूसरे किसी गांव में जहां तुम्हें कोई भी नहीं जानता, सम्मानित भी हो जाओ तो तुम्हें वह मजा न आएगा जो अपने गांव में सम्मानित होकर आयेगा। दूसरे गांव में जहां कोई जानता ही नहीं, वहां सम्मानित भी हो गये तो क्या खाक सम्मान! तुम्हारी इच्छा उस दूसरे गांव में यह होगी कि अपने गांववालों को पता चल जाये कि कैसा सम्मान मिल रहा है, कैसी प्रतिष्ठा मिल रही है! अगर तुम्हें ऐसा कुछ हो कि तुम दुनिया के सम्राट हो जाओगे, लेकिन तुम्हें जाननेवाले सब मर जायेंगे, तो तुम भी अर्जुन की हालत में खड़े हो जाओगे। तुम भी सोचोगे, सार क्या! अगर जंगल में जाकर राजा हो गये, जहां कोई आदमी नहीं, तो जंगली जानवरों के बीच राजा होने का सार क्या! इससे तो डिप्टी कलेक्टर होना अच्छा, पुलिस इंसपेक्टर होना अच्छा, पटवारी होना अच्छा--लेकिन कम से कम अपने गांव में! जहां कोई जानता है, पहचानता है, वहीं अकड़ का मजा होता है। उन्हीं के सामने तो हम सदा सिद्ध करना चाहते हैं कि देखो, तुम वहीं के वहीं रह गये, हम कहां पहुंच गये, जिनके साथ हमने यात्रा शुरू की थी! अब अर्जुन इन्हीं के साथ बड़ा हुआ, यही भाई-बंधु, इन्हीं के साथ जिंदगी का दांव था, इन्हीं के साथ सारी स्पर्धा थी बचपन से लेकर अब तक, यही सब खतम हो जायेंगे--फिर सिंहासन पर भी बैठ जाओगे, तो आसपास गिद्ध बैठे होंगे, सियार आवाज कर रहे होंगे और अजनबी साधरण-से लोग होंगे जिनसे तुम्हारी कोई झंझट ही न थी, कोई प्रतिस्पर्धा न थी, जिनका होना न होना बराबर होगा। तो अर्जुन के मन में उठी तो है असल में अहंकार की बड़ी गहरी पकड़, बड़ा मोह। इन्हीं के सामने तो सिद्ध करने का मजा है। दुर्योधन रहे, और हम जीतें। भीष्म पितामह रहें, और देखें कि अर्जुन सिंहासन पर है। और ये सारे कर्ण, और ये सारे संबंधी पराजित खड़े हों, तो ही मजा है। नहीं तो मजा क्या है? उठा तो यह था, लेकिन बात उसने दूसरी की। उसने कहा कि मैं मारना नहीं चाहता, हिंसा तो बड़ा पाप है! आज तक हिंसा ही करता रहा, मांसाहारी; आज अचानक अहिंसक हो गया! कृष्ण को धोखा देना संभव न था। वे अर्जुन को खींच-खींचकर सीधा करने लगे।

गीता पूरी की पूरी अर्जुन को ऋजु बनाने की चेष्टा है। वे उसको पकड़-पकड़कर सीधा कर रहे हैं कि जरा अकल ला, वापिस लौट, कहां की बातें कर रहा है? संन्यास तुझे सोहता नहीं। यह तेरे भीतर की बात नहीं। अन्यथा इतने दिन तक कौन तुझे रोकता था संन्यास लेने से? आज अचानक युद्ध के मैदान पर संन्यास की भाषा उठने लगी है! इस संन्यास में कहीं कुछ और छिपा है।
तुम अपने भीतर ऋजुता को खोजना। जब भी तुम कुछ कहो तो जरा गौर से देखना, तुम यही कहना चाहते हो? यही तुम्हारी गहनतम आकांक्षा है या इससे विपरीत? तो जो सीधा-साफ हो, उसी को धीरे-धीरे साधना।
ऋजुता से जटिलता कट जाती है, माया हार जाती है। संतोष से लोभ जीत लिया जाता है। जो तुम्हारे पास हो, उसमें आनंदित, उसमें मग्न होना। संतोष का अर्थ हैः इतना मिला है, थोड़ा धन्यवाद तो दो! इतना मिला है, अनुग्रह तो मानो! आंखें हैं कि तुम रोशनी देख सके, कि सूरज में खिले फूल देख सके, कि वृक्षों की यह हरियाली देख सके! जरा सोचो तो, अंधे भी हैं दुनिया में, जिन्हें रंग नहीं दिखाई पड़े! और जिन्होंने रंग न जाना, उन्होंने क्या खाक दुनिया जानी! जिन्हें रूप न दिखाई पड़ा, जिन्हें चेहरा और आंखों में जो परमात्मा प्रगट होता है उसकी कोई झलक न मिली... ! तुम्हारे पास कान हैं, तुम गहनतम संगीत को सुनने में समर्थ हो, पक्षियों का नाद, नदी की कलकल, सागर में उठे तूफानों की दहाड़, बादलों की गड़गड़ाहट! जरा सोचो तो कि जिनके पास कान नहीं हैं, उनका जीवन कैसा खाली-खाली, सूना-सूना होगा! जहां कोई ध्वनि नहीं गूंजी, कैसा मरुस्थल जैसा होगा! कितना तुम्हें मिला है! इन पांचों इंद्रियों से कितनी वर्षा तुम पर हुई है! इस भीतर के बोध से कितने आनंद के द्वार खुले हैं, खुलते रहे हैं! एक बंद हुआ है तो दूसरा खुला है!
लेकिन नहीं, लोभी कहता है, इसमें क्या धरा है? तिजोड़ी! धन! जो मिला है उसकी तो फिक्र नहीं करता; जो नहीं मिला है उसकी दौड़ में, आपाधापी में नष्ट होता है।
महावीर कहते हैं, संतोष से लोभ को जीत लो। जरा देखो जो मिला है। उस पर नजर लाओ जो मिला है।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक--जिनकी नजर उसको ही देखती है, जो नहीं मिला है। वे लोभी हैं। दूसरे--जिनकी नजर वही देखती है, जो मिला है। वे संतोषी हैं। और संतोषी को बहुत मिलता है। क्योंकि मिलने पर उसकी नजर होती है, तो और मिलता है। और लोभी को कुछ भी नहीं मिलता, क्योंकि न मिलने पर उसकी नजर होती है। न मिलना ही बढ़ता जाता है। लोभ से और लोभ बढ़ता है। संतोष से और संतोष बढ़ता है। जो थोड़ा संतोष में डूबेगा वह पायेगा--
काफिले या मिट गए या बढ़ गए
अब गुबारे-राह भी उठता नहीं।
वे जो वासनाओं के, असंतोष के, अतृप्तियों के, लोभ के, कामनाओं के काफिले थे--काफिले या मिट गए या बढ़ गए--या तो मिट गये, या कहीं और हट गये। अब गुबारे-राह भी उठता नहीं।
--अब तो रास्ते पर गुबार भी नहीं है। काफिलों के बीत जाने के बाद जो थोड़ी गुबार उठती रहती है, वह भी नहीं है।
ध्यान रखना, भोग जब बीत जाता है तो त्याग की गुबार रह जाती है। भोग का काफिला तो निकल जाता है, तब त्याग की धूल रह जाती है। लेकिन परम शांति तभी मिलती है, जब भोग भी गया, त्याग भी गया।
काफिले या मिट गए या बढ़ गए
अब गुबारे-राह भी उठता नहीं।
तब एक परम तृप्ति, एक अहर्निश शांति की वर्षा होने लगती है! तब तुम पहली दफा पाते होः जीवन क्या है! और कितने अहोभागी हैं कि हम हैं! तब होना मात्र ही इतनी बड़ी संपदा है कि और कुछ चाहने की बात ही नादानी है।
"जैसे कछुआ अपने अंगों को अपने शरीर में समेट लेता है, वैसे ही मेधावी पुरुष पापों को अध्यात्म के द्वारा समेट लेता है।"
अध्यात्म यानी जागरण की प्रक्रिया; आत्मवान होने का शास्त्र। जैसे कछुआ सिकोड़ लेता है अपनी इंद्रियों को; जहां-जहां पाता है भय है, जहां-जहां पाता है चिंता है, वहीं भीतर सिकुड़ जाता है, अपनी गहरी सुरक्षा में डूब

जाता है--ऐसे ही जहां-जहां तुम्हें लगे भय है, दुख है, पीड़ा है, असंतोष है, अभाव है, चिंता है, संताप है, वहां-वहां से अपने चैतन्य को हटा लेना। और अंतरात्मा की गहनता में सब है जो तुम पाना चाहते हो।
यकीन रख कि यहां हर यकीन में है फरेब
बका तो क्या है, फना का भी ऐतबार न कर।
होश को सम्हालो! यहां भरोसा मत करो। यहां बड़े धोखे भरे पड़े हैं। यहां
अब तक तुम जिन चीजों में डोले हो, सभी में धोखा है। यहां जिंदगी की तो बात छोड़ो, मौत भी धोखा दे जाती है। क्योंकि मौत भी कहां मौत सिद्ध होती है, फिर पैदा हो जाते हो!
यकीन रख कि यहां हर यकीन में है फरेब
बका तो क्या है, फना का भी ऐतबार न कर।
यह सब फरेब है नजरे-इम्तियाज का
दुनिया में वरना कोई भी अच्छा-बुरा नहीं।
न यहां कुछ अच्छा है, न बुरा है। अच्छा तुमने समझा कुछ--मोह पैदा हुआ, राग पैदा हुआ। बुरा समझा कुछ--द्वेष पैदा हुआ, विराग पैदा हुआ। यहां न कुछ अच्छा है, न बुरा है। सब दृष्टि की बात है। तुम दृष्टि को भीतर मोड़ लो, एक गहन संतुलन पैदा होता है, जहां बुरा और अच्छा सब मिट जाता है, न कोई मित्र न कोई शत्रु।
"जान या अजान में कोई अधर्मकार्य हो जाये तो अपनी आत्मा को तुरंत उससे हटा लेना चाहिए। फिर दूसरी बार वह कर्म न किया जाये।"
जान या अजान में अधर्मकार्य हो जाये तो तुरंत, उसे पूरा भी मत करना! अगर क्रोध करने के क्षण में आधा वचन बोले थे गाली का और याद आ जाये तो आधा ही बोलना और क्षमा मांग लेना; उसे पूरा भी मत करना।
अगर वासना में एक कदम उठ गया था और दूसरा उठने को था और याद आ जाये तो
जो नहीं उठा है, उसे मत उठाना; जो उठ गया है, उसे वापिस मोड़ लेना।
बहुत सम्हलकर चलोगे तो ही पहुंच पाओगे। रास्ता बड़ा कंटकाकीर्ण है, चढ़ाव भारी है--और तुम्हारी आदत उतरने की, फिसलने की है। तुम तो धर्म से भी फिसलने का उपाय खोज लेते हो।
एक व्यक्ति ने डाक्टर से पूछा, "आखिर मुझे हुआ क्या है?"
"आप बहुत अधिक खाते हैं", कहा डाक्टर ने, "बहुत शराब पीते हैं, और सुस्त हैं, महाकाहिल, महासुस्त हैं। यही आपकी बीमारी है।"
उस आदमी ने कहा, "डाक्टर साहिब! कृपा करके इसे अपनी डाक्टरी भाषा में लिख देंगे, जिससे मैं दफ्तर से एक महीने की छुट्टी प्राप्त कर सकूं!" सुस्त है, शराब पीता है, अतिशय खाता है--उसमें से भी एक महीने की छुट्टी निकालने की आशा रखता है, तो और सुस्ती बढ़ेगी, और खायेगा, और पीकर पड़ा रहेगा। लेकिन डाक्टरी भाषा में लिख दें, क्योंकि सुस्ती से तो बात चलेगी नहीं।
शास्त्र तुम्हारे लिए डाक्टरी भाषा सिद्ध होते हैं। तुम उनमें से अपना मतलब निकाल लेते हो। उनसे भी फिसल जाते हो।
जान या अजान में कोई अधर्मकार्य हो जाये तो अपनी आत्मा को तुरंत उससे हटा लेना चाहिए। फिर दूसरी बार वह कार्य न किया जाये। और एक बार जहां भूल दिखाई पड़ गई हो, आधे में दिखाई पड़ी हो, तो वहीं से लौट आना चाहिए। और फिर दुबारा स्मरण रखना चाहिए कि इस यात्रा पर दुबारा कदम न उठे। ऐसा याद रखोगे; रखोगे, रखोगे, धीरे-धीरे याद पकेगी, मजबूत होगी। फिर बीज से ही वह जो गलत है, तुम्हारे भीतर प्रवेश न कर पायेगा।
उसके चक्कर में दुबारा तो मैं आने का नहीं
ढूंढती फिरती है क्यों गर्दिशे-दौरां मुझको।
--अब संसार के चक्कर में दुबारा आने का नहीं है। एक बार होश सम्हला, फिर कितना ही ढूंढे संसार की विपत्तियां तुम्हें, फिर कितना ही लोभ के विषय तुम्हारे चारों तरफ खड़े रहें, और कामवासना के लिए कितनी ही अप्सराएं तुम्हें निमंत्रण देती रहें--नहीं, फिर तुम न जा सकोगे। जो जागने लगता है, होश करने लगता है, अपने जीवन की स्थिति को जांचने-परखने लगता है, स्वाभाविक है कि जहां आग है वहां से हाथ खींच ले।

इश्क बाबस्तए-जंजीरे-जुनूं कब है "रविश"
हुस्ने-खुदबीं की तमन्ना है तो खुद होश में आ।
तुम्हारी अंतरात्मा, तुम्हारा गहन हृदय किसी जंजीर में बंधा हुआ नहीं है। तुम्हारा प्रेम कारागृह में बंद नहीं है। सिर्फ तुम बेहोश हो। अगर वास्तविक सौंदर्य का अनुभव करना है तो बस एक काम कर लो--
हुस्ने-खुदबीं की तमन्ना है तो खुद होश में आ।
--बस होश में आ जाओ। बेहोशी ही तुम्हारा कारागृह है। वही तुम्हारी जंजीरें हैं।
महावीर का सर्वाधिक जोर होश पर है। बेहोशी पाप है, होश पुण्य है। "संपूर्ण परिग्रह से मुक्त, शांतिभूत, शीतिभूत, प्रसन्नचित्त श्रमण जैसा मुक्ति-सुख पाता है, वैसा सुख चक्रवर्ती को भी नहीं मिलता।"
अगर तुम सम्राट भी हो जाओ सारे संसार के, छहों द्वीप के चक्रवर्ती हो जाओ, तो भी तुम उस सुख को न पा सकोगे जो उस भिक्षु को मिलता है, उस श्रमण को, या उस ब्राह्मण को; जो परिग्रह से मुक्त, लोभ से मुक्त, शीतिभूत, भीतर शांत हुआ, शीतल हुआ, प्रसन्नचित्त!
ये सारे सूत्र बड़े बहुमूल्य हैं। जीवन में तुमने अभी गर्मी जानी है, शीत नहीं जानी। जीवन का तुमने एक ही काल जाना है--ऊष्ण; अभी शीतल क्षण नहीं जाने। अभी तुम उबले हो, जले हो, शांत नहीं हुए, ठंडे नहीं हुए। धीरे-धीरे अपने को शीतल करो, शांत करो। जो-जो चीज तुम्हें उबालती हो, ईंधन बनती हो तुम्हारी वासना में, तुम्हें जलाती हो, उससे धीरे-धीरे जागो और दूर हटो। तो तुम उस शांति को, उस मुक्ति-सुख को पाने में समर्थ हो जाओगे, जो सारे संसार का मालिक भी कोई हो जाये तो नहीं पाता। अपने मालिक होकर ही पाया जाता है वह।
कहीं से ढूंढ़ कर ला दे हमें भी ऐ गुलेतर!
वोह जिंदगी, जो गुजर जाए मुस्कुराने में।
लेकिन किसी से मांगने से वह जिंदगी न मिलेगी। वह जिंदगी तो तुम खोजोगे तो ही, बनाओगे तो ही। तुम वही पाओगे, जो बना लोगे। आत्मा तुम्हारा निर्माण है, तुम्हारा सृजन है।
कौन कहता है ख्वाबे-रायगां है जिंदगी
ऐ अमीने होश! कैफे-जाविदां है जिंदगी
जादा पैमां, कारवां-दर-कारवां है जिंदगी
जिंदगी मौजे-रवां, जूए-रवां, बहरे-रवां
--किसने कहा कि जीवन व्यर्थ है!
कौन कहता है ख्वाबे-रायगां है जिंदगी।
किसने कहा कि जिंदगी सपना है! होशवाले! थोड़ा होश को सम्हाल! ऐ अमीने होश! कैफे-जाविदां है जिंदगी। जिंदगी तो परम आनंद है, स्थायी आनंद है। जादा पैमां, कारवां-दर-कारवां है जिंदगी!
यह तो एक यात्री-दल है जीवन-यात्रा पर निकला, प्रतिक्षण गतिमान।
जिंदगी मौजे-रवां, जूए-रवां, बहरे-रवां।
जीवन आनंद की लहर है! आनंद की सरिता है! आनंद का सागर है! लेकिन उनके लिए ही, जिन्होंने अपने को कछुए की भांति सिकोड़ लिया; उनके लिए ही, जिन्होंने अपने को जगा लिया। और जिनको जीने का यह ढंग नहीं आता, वे जीवन के विपरीत बातें करने लगते हैं; उनसे सावधान रहना!
महावीर जीवन के विपरीत नहीं हैं। महावीर तुम्हारे तथाकथित जीवन के विपरीत हैं, ताकि तुम असली जीवन को पा सको।
न आया जिसे शेवए-जिंदगी
वही जिंदगी से खफा हो गया।
और जिसको भी जिंदगी जीने का ढंग न आया, वही नाराज हो गया। नाराजगी धर्म नहीं है--समझ, होश।
महावीर महासुख के पक्षपाती हैं। उस महासुख को ही वे मोक्ष कहते हैं।
तो उन्होंने जितनी जिंदगी के खिलाफ बातें कही हैं, हमेशा याद रखना, तुम्हारी जिंदगी के खिलाफ कही हैं। जिंदगी जो कहीं गलत हो गई, जहर हो गई; जिंदगी जो कहीं रोग हो गई; जिंदगी जो कहीं विक्षिप्त हो गई--उसके खिलाफ कही

हैं। और इसीलिए खिलाफ कही हैं, ताकि असली जिंदगी की तलाश में तुम निकल सको। इसीलिए कही हैं, ताकि तुम्हें अगर तुम्हारी जिंदगी दुख मालूम पड़े, तो तुम जागो।
दुख जगाता है। दुख की याद आने लगे, समझ आने लगे, तो फिर सुख की दिशा की खोज पैदा होती है। महावीर जीवन-विपरीत नहीं, विरोध में नहीं। महावीर महाजीवन के पक्षपाती हैं। खोटे सिक्कों के विरोध में हैं, क्योंकि असली सिक्के मौजूद हैं और तुम खोटे सिक्कों से अपने को भरमाये चले जाते हो। जागो!
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
बारहवां प्रवचन

संकल्प की अंतिम निष्पत्तिः समर्पण

पहला प्रश्नः मुझ से न समर्पण होता है और न मुझ में संकल्प की शक्ति
ही है; बीच में उलझा हूं। आपने तो मेरे लिए बड़ी झंझट खड़ी कर दी है। हाल यह है कि आपसे दूरी भी बरदाश्त नहीं होती, क्या करूं?
बेइख्तियार मांग ली तेरे सितम की खैर
उठते नहीं हैं हाथ अब दस्ते-दुआ के बाद।

संकल्प तो किया जाता है--समर्पण होता है। इसलिए ऐसा प्रश्न तुम उठा ही
न सकोगे कि समर्पण नहीं होता। समर्पण तुम्हारी शक्ति की बात नहीं है। इसलिए ऐसा प्रश्न तो बुनियाद से ही गलत है कि समर्पण की मुझमें शक्ति नहीं है।
इसे ठीक से समझना।
समर्पण कोई कृत्य नहीं है, जो तुम कर सको। समर्पण तो ऐसी चित्त की दशा है, जहां तुम पाते हो कि अब मुझसे तो कुछ भी नहीं होता। जरा भी आशा बनी रही कि मुझसे कुछ हो सकता है तो समर्पण न होगा; तो तुम्हारा अहंकार बचा है। तुम सोचते हो, अभी संभव है कि मैं कुछ कर लूं। लेकिन जब तुम्हारा अहंकार सभी तरफ से जराजीर्ण होकर बिखर जाता है; जैसे कोई पुराना भवन गिर गया हो; जैसे कोई पुराना वृक्ष, जड़ टूट गई, उखड़ गया हो--जिस दिन तुम्हारा अहंकार परिपूर्ण रूप से गिर जाता है और तुम्हें लगता हैः मेरे किये कुछ भी न होगा, क्योंकि मेरे किये अब तक कुछ न हुआ। जब तुम्हारे करने ने बार-बार हार खायी; जब तुमने किया और हर बार असफलता हाथ लगी; जब कर-करके तुमने सिर्फ दुख ही पाया, और कुछ न पाया; कर-करके नर्क ही बनाया, और कुछ न बनाया--जब यह पीड़ा सघन होगी, जब तुम पूरे असहाय मालूम पड़ोगे, उस असहाय क्षण में ही समर्पण घटित होता है। वह तुम्हारा कृत्य नहीं है। वह तुम्हारे कृत्य की पराजय है। हारे को हरिनाम! जब तुम्हारी हार इतनी प्रगाढ़ हो गई कि अब जीत की कोई आशा भी न बची; जब तुम्हारी हार अमावस की अंधेरी रात हो गई कि अब एक किरण भी अहंकार की शेष नहीं रही, अब तुम्हें लगता नहीं है कि तुम कुछ कर पाओगे-- पराजय की परिपूर्णता में समर्पण घटित होता है।
पूछा है कि "मुझसे न समर्पण होता है, न संकल्प की शक्ति ही मुझमें है।" दूसरी बात तो ठीक हो सकती है कि संकल्प की शक्ति न हो; पहली बात ठीक नहीं हो सकती। और अगर पहली बात ठीक नहीं है तो दूसरी भी पूरी ठीक नहीं हो सकती। तुम कहते हो, संकल्प की मुझमें शक्ति नहीं--यह भी तुम कहते हो, मानते नहीं। ऐसा तुम जानते नहीं। कहीं भीतर अभी भी आशा बची है। कोई किरण तुम सम्हाले हुए हो। तुम सोचते हो, इस बार नहीं हुआ, अगली बार होगा; आज नहीं हुआ, कल हो जायेगा। आज हार गया, वह अपनी शक्ति की कमी के कारण नहीं; परिस्थिति अनुकूल न थी। आज हार गया, क्योंकि भाग्य ने साथ न दिया। आज हार गया, क्योंकि मैंने चेष्टा ही पूरी न की। यदि मैं चेष्टा पूरी करता, ठीक सम्यक मुहूर्त चुनता, तो बराबर जीतता।
सभी हारे हुए हार को समझा लेते हैं। हार को स्वीकार कौन करता हूं! हारा हुआ समझा लेता है कि लोग विरोध में थे। हारा हुआ समझा लेता है कि चेष्टा पूरी न हो सकी।
एक हाथी खड़ा था। और हाथी के पास, पैरों के पास, सुबह की धूप थी। सूरज निकला था। सर्दी के दिन थे। एक चूहा बैठा था, वह भी धूप ले रहा था। ऐसे साधारणतः हाथियों को चूहे दिखायी नहीं पड़ते, लेकिन खाली खड़ा था हाथी, कुछ काम भी न था, इधर-उधर देख रहा था, सुबह की धूप ले रहा था--चूहा दिखाई पड़ा। उसने कहा, "अरे! आश्चर्य! इतना छोटा प्राणी, कभी देखा नहीं!" चूहे ने कहा, "आप गलत न समझें! मैं जरा कुछ दिनों से बीमार हूं।"
छोटा कौन है! थोड़े दिनों से बीमार हूं! जरा तबियत नासाज है, इसलिए छोटा दिखाई पड़ रहा हूं।

तुमने भी नहीं समझा लिया है हजारों बार अपने को? समझाना छोड़ो! उस समझाने में ही, उस तर्क में ही, तुम्हारा अहंकार शेष रह जाता है। जिस दिन तुम अपनी हार को स्वभाव समझ लोगे कि मेरे किये होगा क्या... नहीं कि मैं आज कमजोर हूं, कल बलशाली हो जाऊंगा। नहीं कि मुझे ठीक विधि का पता नहीं है, कल पता चल जायेगा। नहीं कि आज भाग्य ने साथ न दिया, कल देगा। कोई हर्ज नहीं, एक बार हारे तो सदा थोड़े ही हारेंगे। कभी तो भाग्य बरसेगा! कभी तो किस्मत साथ होगी! कभी तो परमात्मा भी दया करेगा! किये जाओ!
नहीं, अहंकार नपुंसक है स्वभाव से। उसके किये कुछ होता ही नहीं।
तो मैं तुमसे कहूंगा कि तुम संकल्प कर ही लो; जितना तुमसे बन सके कर लो। हारो पूरी तरह। हार में विजय छुपी है। संकल्प की हार में समर्पण उठता है। जीत गये तो ठीक। अगर संकल्प से जीत गये तो ठीक; कोई जरूरत न रही। कुछ लोग जीत गये हैं। इक्के-दुक्के जीते हैं। रास्ता बड़ा कठोर है, बड़ा दुर्गम है! लेकिन कुछ लोग जीते हैं। तो अपनी पूरी कोशिश कर लो। अगर जीत गये, अगर संकल्प से पा लिया तो पा ही लिया। अगर न जीते, तो भी पूरी कोशिश कर लेने के बाद हार समग्र होगी। तो पूरी तरह हार जाना। तो अनेकों ने हारकर पाया है। और जीतकर पाने से हारकर पाने का मजा ज्यादा है।
यह प्रेम कुछ बात ऐसी है कि यहां हार, जीत है। तो हारने से घबड़ाना मत। मगर एक बार तुम्हें अपनी पूरी ताकत दांव पर लगा लेनी चाहिए। कहीं मन में यह लुका-छिपा भाव न रह जाये कि कर सकते थे। अगर वह भाव रहा तो समर्पण न हो पायेगा। ऐसा ही दिखता है--
क्या शै है मुहब्बत भी कुहसार को ढाए है
तिरतों को डुबोये है, डूबों को तिराए है।
तुमने देखा, कभी कोई मर जाता है तो नदी पर तैर जाता है! जिंदा डूब गया था, मरकर तैर जाता है! मुर्दे को कोई तरकीब पता है जो जिंदे को पता नहीं थी। अगर जिंदा भी मुर्दे की भांति हो जाता तो नदी ने तैरा दिया होता, तो नदी डुबाती न। अगर जिंदा ने भी स्वीकार कर लिया होता कि चलो राजी हैं, डुबाओ; तो नदी डुबाती न। जो राजी है उसे कौन डुबाता है! वह जो डूबना नहीं चाहता, जो प्रतिरोध करता है, संघर्ष करता है, नदी उसी को डुबा देती है। तुम लड़ो मत! मगर यह न लड़ने की घटना तभी घटेगी जब तुम्हारे लड़ने की वृत्ति पूरी तरह पराजित हो जाये; रत्ती मात्र भी आशा शेष न रहे। तुम गहन निराशा में गिरो। वहीं से सुबह है समर्पण की। संकल्प जहां हारता है, वहां समर्पण है। जीत गये तो जीत गये; न जीते तो भी हारे नहीं, क्योंकि फिर हार में से जीत निकल आती है। इसलिए धर्म के मार्ग पर जानेवाला कभी, कभी भी हारता तो है ही नहीं; जीतता है तो जीतता है, हारता है तो जीतता है। परमात्मा की तरफ जानेवाला हर हालत में पहुंचता है। क्योंकि सभी रास्ते उसकी तरफ जाते हैं।
जिन मित्र ने पूछा है, उनकी अड़चन यह है कि संकल्प का पूरा प्रयोग नहीं किया, और उस कमी को समर्पण से पूरा करना चाहते हैं। संकल्प पूरा नहीं हुआ, तो समर्पण कैसे पूरा होगा? तुम्हारा अहंकार पूरी तरह धूल में गिर जाना चाहिए।
यही तो अंजामे-जुस्तजू है
कि ठोकरें खाकर बुतकदों की
जबीने-रुसवा को रखकर अपनी
हरम की चौखट पे सो गया हूं
जो काफिला इस तरफ से गुजरे,
वो एक ठोकर मुझे लगा दे,
"जमील" मैं बीच रास्ते में
इसी भरोसे पे सो गया हूं।
यही तो अंजामे-जुस्तजू है--यही तो खोज का नतीजा है कि ठोकरें खाकर बुतकदों की--कि बहुत पूजागृहों की, मंदिरों की, मूर्तिगृहों की, ठोकरें खा- खाकर...
जबीने-रुसवा को रखकर अपनी
हरम की चौखट पे सो गया हूं

--अपने बदनाम मस्तक को अब तो तेरे भवन के सामने सीढ़ियों पर रखकर सो गया हूं। अब खोजता भी नहीं।
जबीने-रुसवा को रखकर अपनी
हरम की चौखट पे सो गया हूं
जो काफिला इस तरफ से गुजरे
वो एक ठोकर मुझे लगा दे
"जमील" मैं बीच रास्ते में
इसी भरोसे पे सो गया हूं।
समर्पण ऐसी घड़ी में घटता है, जब तुम बिल्कुल हारकर बीच रास्ते पर गिरकर सो गये कि अब ठीक है, तुझे उठाना हो उठा लेना! तुझे जिलाना हो जिला देना! तुझे मारना हो मार देना! न अपनी अब कोई खोज है, न अपनी अब कोई आकांक्षा है! जो तेरी मर्जी--वही पूरी होने दे! तब समर्पण उठता है। समर्पण करने की बात नहीं है, होने की दशा है। इसलिए तुम यह तो पूछ ही नहीं सकते कि मुझमें समर्पण की शक्ति भी नहीं। समर्पण का शक्ति से क्या लेना? शक्ति की भाषा ही समर्पण के विपरीत है। समर्पण तो असहाय, बेसहारा, पराजित... उससे उठता है। अभी तुम शक्ति की भाषा में सोच रहे हो, इसलिए मैं कहता हूं, थोड़ा संकल्प कर लो। महावीर के रास्ते पर थोड़ा चलो। पहुंच गये तो महावीर हो जाओगे, न पहुंचे तो मीरा हो जाओगे। घबड़ाना क्या है? जो चलता है, मैं कहता हूं, पहुंच ही जाता है।
महावीर और बुद्ध दोनों एक ही रास्ते से चले। दोनों का रास्ता संकल्प
का रास्ता था। दोनों समसामयिक भी थे। थोड़े-से ही वर्ष का फासला था। महावीर बारह वर्षों तक जूझते रहे। जूझकर उन्होंने पा लिया। बुद्ध छह वर्ष के बाद थक गये, हार गये। रास्ता वही था। इतने थक गये, इतने हार गये कि सब छोड़कर एक दिन वृक्ष के नीचे बैठ गये कि बस अब हो गया; न संसार में कुछ पाने योग्य है, न आत्मा में कुछ पाने योग्य है--पाने योग्य ही कुछ नहीं तो पाऊंगा क्या! उस सांझ उन्होंने सब छोड़ दिया। खोज भी छोड़ दी। उनके पांच शिष्य, जो उनके साथ थे सदा, यह देखकर कि बुद्ध भ्रष्ट हो गये, छोड़कर चले गये। उन्होंने कहा, यह गौतम तो अब भ्रष्ट हो गया। इसने तो साधना का पथ ही छोड़ दिया। लेकिन उसी रात घटना घटी। उसी रात बुद्धत्व को बुद्ध उपलब्ध हुए। उसी रात दीया जल गया।
महावीर ने संकल्प से पाया; बुद्ध ने समर्पण से। गये दोनों संकल्प के रास्ते पर थे। इसलिए जैनों और बुद्धों में बड़ा बुनियादी विरोध बना रहा है; क्योंकि जैनों को लगता है, अगर बुद्ध भी ठीक हैं तो फिर महावीर के ठीक होने में कठिनाई पड़ती है। क्योंकि बुद्ध ने तो छोड़कर पाया, प्रयास छोड़कर पाया; अप्रयास से पाया। खोज ही छोड़ दी, तब पाया। और फिर तो बुद्ध ने इसे नियम बना दिया कि तुम तब तक न पा सकोगे, जब तक तुम्हारा प्रयास समाप्त न हो जाये। क्योंकि जिसे पाना है, वह पाया ही हुआ है; प्रयास छोड़ो तो दिखाई पड़ जाये। प्रयास की आपाधापी में दिखाई नहीं पड़ता। तुम दौड़ते हो, चिल्लाते हो, भागते हो तो जो मौजूद है उससे चूक जाते हो।
महावीर ने संकल्प से पाया। इसलिए बौद्धों को महावीर प्रीतिकर नहीं लगते। क्योंकि अगर महावीर ठीक हैं तो फिर बुद्ध का पाना कैसे हुआ?
मैं तुमसे कहता हूंः दोनों ठीक हैं। सत्य कंजूस नहीं। और परमात्मा का
एक ही रास्ता नहीं। जितने लोग हैं, उतने रास्ते हैं। हर आदमी वहीं से तो चलेगा, जहां है! तुम वहां से चलोगे जहां तुम हो। दूसरा वहां से चलेगा जहां वह है। लेकिन सभी रास्ते उस तक पहुंच जाते हैं। सत्य का अर्थ ही यह है कि सब द्वार उसी तक पहुंचाते हैं। असत्य का बंधा हुआ मार्ग होता है। सत्य का कोई बंधा हुआ मार्ग नहीं होता। क्योंकि असत्य की सीमा होती है; सत्य की कोई सीमा नहीं होती। अगर क्षुद्र के पास जाना हो तो सभी रास्तों से न पहुंच सकोगे। अगर तुम्हें गंगा जाना है तो सभी रास्तों से न पहुंच सकोगे। लेकिन अगर महासमुद्र की तरफ जाना है तो कहीं से भी चलो, पहुंच जाओगे। पूरब जाओ, पश्चिम जाओ, उत्तर जाओ, दक्षिण जाओ, देर-अबेर सागर तुम्हें मिल ही जायेगा। क्योंकि सागर ने पृथ्वी को सब तरफ से घेरा है। कोई रास्ते से करीब मिलेगा, किसी से थोड़ी दूर मिलेगा। नाम शायद अलग होंगे, कहीं हिंद महासागर

मिलेगा, कहीं प्रशांत महासागर मिलेगा, कहीं अरब सागर मिलेगा--नाम ही अलग होंगे, सागर का स्वाद एक है।
सत्य महासागर जैसा है; असत्य छोटे-छोटे डबरे हैं। अगर जरा भी इधर-उधर गये तो चूक जाओगे।
समर्पण घट सके, इसके लिए संकल्प पूरी तरह कर लो।
दोनों हालत में संकल्प जरूरी है। संकल्प से पहुंचना हो तो भी जरूरी है; समर्पण से पहुंचना हो तो भी जरूरी है। संकल्प हर हाल आवश्यक है--और पूरा। क्योंकि जो थोड़ा तुमने अधूरा किया, जो बच गया, वही तुम्हें सतायेगा; वही समर्पण को घटित न होने देगा।
और मैं तुमसे यह नहीं कहता कि इसी मार्ग से चलोगे तो पहुंचोगे। अगर तुम्हें पहुंचना है तो ऐसा कोई भी मार्ग नहीं है जो तुम्हें रोक पाये। लेकिन पहुंचने की एक शर्त हैः जो भी करो, समग्र भाव से करना। अब समर्पण तो किया नहीं जा सकता, इसलिए संकल्प ही करो। तो यहां भी मैं इतने संकल्प के प्रयोग तुम्हें देता हूं और समर्पण की बात किये चला जाता हूं।
मेरे पास लोग आ जाते हैं, कभी-कभी वे कहते हैं, आप कहते हैं समर्पण, कुछ
भी नहीं करना, सिर्फ बहना है। फिर क्यों ध्यान? फिर क्यों पांच-पांच ध्यान दिन में? मैं जानता हूं कुछ भी नहीं करना, बहना है; लेकिन तुम जैसे हो, अभी बह न सकोगे। तुम तैरने लगोगे। तुम तड़फड़ाने लगोगे।
मुर्दे की भांति नदी में छूट जाने के लिए तैरने की बड़ी गहरी कुशलता चाहिए। बड़ा तैराक ही अपने को छोड़ सकता है नदी में। क्योंकि बड़ा तैराक ही भय से मुक्त हो जाता है। वह जानता है कि तैर लेंगे जब जरूरत होगी। अगर कोई कठिनाई आ गई तो तैरना तो अपने पास है। जितना बड़ा तैराक हो, उतना ही अपने को निस्पंद छोड़ देता है। हाथ-पैर भी नहीं हिलाता। क्योंकि वह जानता है, डर क्या है! हाथ अपने पास हैं, मैं सदा मौजूद हूं--अगर कोई घड़ी ऐसी आई तो तैर लूंगा। लेकिन ऐसी घड़ी का भय उसे नहीं सताता।
जिसने तैरना नहीं जाना, उससे मैं कहूं कि तू कूद जा नदी में, छोड़ दे अपने को, वह कूद भी जाये किसी प्रेरणा में, किसी उल्लास के क्षण में, उत्साह में, उत्तेजना में, किसी मदहोशी में, मेरी बात में पड़ जाये, मेरा गीत उसे पकड़ ले, नशे में आ जाये, कूद जाये--तो कूदते ही भूल जायेगा कि मैंने क्या कहा था। वह तत्क्षण हाथ-पैर फेंकने लगेगा। वह हाथ-पैर फेंकना अवश होगा। उसे रोक न सकेगा। क्योंकि रोकने का मतलब होगाः मौत। उसके सामने तो एक ही सवाल होगाः अगर जीना है तो हाथ-पैर फेंको, नहीं मरे! नदी तो भूल ही जायेगी, मौत और जीवन के बीच चुनाव होगा। कौन चिंता करता है उस समय कि बहो! तैरना जो नहीं जानता है, वह हाथ-पैर तड़फड़ाने लगेगा। जो तैरने में बहुत कुशल है, वही राजी होगा; वह कहेगा कि ठीक है, बहकर देख लें।
निर्भय चित्त से बहना संभव है। संकल्प तुम पूरा कर लो। उससे तुम तैरना सीख जाओगे। अगर पहुंच गये तैरने से, तो ठीक है, पहुंच ही गये। अगर न पहुंचे, तो घबड़ाने की कोई बात नहीं। एक उपाय शेष रह जाता है--निरुपाय होने का उपाय; असहाय होने का उपाय।
भक्ति की वही भाषा है। प्रेमी की वही भाषा है। सूफियों की, नानक की, कबीर की, मीरा की, चैतन्य की, वही भाषा हैः छोड़ दो! लेकिन इसके पहले वे बड़े निष्णात हो चुके हैं तैरने में। ऐसे ही, बिना तैरना जाने कौन कब छोड़ पाया है? तुम्हारे अचेतन से इतने जोर का भय उठेगा कि उस भय से तुम प्रभावित हो जाओगे, तड़फड़ाने लगोगे; चिल्लाने लगोगेः बचाओ!
कहते हैं, जब कोई संगीतज्ञ परिपूर्ण रूप से पारंगत हो जाता है, तो वीणा तोड़ देता है; क्योंकि फिर वीणा से भी सूक्ष्म संगीत में बाधा पड़ती है। वीणा भी तो कोलाहल ही पैदा करती है। मधुर कोलाहल, पर है तो कोलाहल ही। जब कोई और गहरे संगीत में उतरने लगता है, जहां शून्य की ध्वनि बजती है, जहां शून्य का अनाहत नाद है; तो वीणा भी हटा देता है, वीणा भी छोड़ देता है। अब तो भीतर का अंतरंग बजने लगा, अब बाहर के सहारे कौन लेता है!
ऐसा ही मैं तुमसे कहता हूं। समर्पण में जो उतरना चाहता हो, संकल्प में कुशल हो जाना जरूरी है। इसलिए तो इन विपरीत मार्गों की तुमसे चर्चा करता रहता हूं, ताकि कोई मार्ग तुम्हें पकड़ न ले। और इन विपरीत का उपयोग तुम रोज

करते हो सामान्य जीवन में; लेकिन परमात्मा की तरफ जाते वक्त भूल जाते हो। जरा व्यवहारिक बनो! चलते हो तुम, तो तुम्हारे दोनों पैर एक साथ नहीं चलते; एक पैर खड़ा रहता है तो दूसरा उठता है। दोनों विपरीत काम करते हैंः एक खड़ा रहता है--अडिग, जमीन को पकड़कर; दूसरा उठता है, आगे जाता है। फिर दूसरा खड़ा हो जाता है तो पहला उठता है, आगे जाता है।
तुमने ख्याल किया, इस वैपरीत्य में ही तुम्हारी गति है। अगर दोनों पैर एक साथ उठा लो; गिरोगे, बुरी तरह गिरोगे, हाथ-पैर तोड़ लोगे। फिर कभी चल न पाओगे। अगर दोनों पैर जमाकर खड़े हो जाओ तो भी न चल पाओगे। चलना हो तो एक पैर समर्पण का, एक पैर संकल्प का। पक्षी उड़ता है, दो पंख चाहिए--दोनों अलग-अलग दिशाओं में फैले हुए। एक ही पंख से तो पक्षी डूब जायेगा।
एक फकीर, सूफी फकीर को उसके शिष्य ने पूछा कि "क्या अकेले संकल्प से पहुंचना न हो सकेगा या अकेले समर्पण से?" वह फकीर नदी के किनारे खड़ा था। वे नदी के पार जाने की तैयारी कर रहे थे। उस फकीर ने कहा, आओ रास्ते में उत्तर दे दूंगा। नाव में दोनों बैठ गये। साधारणतः तो शिष्य ही नाव को चलाता था, लेकिन उस दिन गुरु ने कहा, मैं ही नाव चलाता हूं। उसने एक पतवार से नाव खेनी शुरू कर दी। अब नाव दो पतवार से चलती है। एक पतवार से तो नाव गोल-गोल घूमने लगी, वर्तुलाकार चक्कर मारने लगी। उसका शिष्य हंसने लगा। उसने कहा, "आप क्या मजाक कर रहे हैं? आपको मालूम नहीं चलाना, मुझे दें। कहीं एक पतवार से नाव चली है? ऐसे तो हम यहीं चक्कर खाते रहेंगे।"
तो गुरु ने कहा, एक पतवार का नाम समर्पण है और दूसरी पतवार का नाम संकल्प। और जिसने एक से चलाने की कोशिश की, वह मुश्किल में पड़ेगा।
अब तुम इसे ऐसा समझो--बड़ा विरोधाभास लगेगा--समर्पण करना हो तो भी तो मूलतः संकल्प चाहिए। संकल्पहीन कैसे समर्पण करेगा? समर्पण कोई छोटी घटना है? किसी के चरणों में अपने को छोड़ देना, कोई छोटा निर्णय है? इससे बड़ा और कोई निर्णय हो सकता है? हवाओं के सहारे सूखे पत्ते की भांति अपने को छोड़ देना, इससे बड़ा कोई और निर्णय हो सकता है? इतना अभय, इतना गैर-डांवांडोल चित्त... तो समर्पण का भी पहला कदम तो संकल्प है। और संकल्प की भी आत्यंतिक परिपूर्णता समर्पण में है। क्योंकि करते-करते तो तुम थकोगे ही। कभी तो ऐसी घड़ी आनी चाहिए जब करने से छुटकारा हो--उसी को तो हम मोक्ष कहते हैं। करा, किया, बहुत किया, जन्मों-जन्मों तक किया, कर-करके ही तो हमने अपने जीवन को उलझा लिया है। इसलिए इस उलझाव के मूल आधार को हम कर्म कहते हैं। कर्म का अर्थ हैः जो किया। और हम कहते हैं, कर्म से कैसे छुटकारा हो?
लोग मुझसे पूछते भी हैं कभी-कभी आकर, कर्म से कैसे छुटकारा हो? लेकिन मुझे लगता है, उन्हें ठीक याद नहीं रहा कि कर्म का अर्थ क्या होता है--करने से कैसे छुटकारा हो? अकर्ता-भाव का कैसे जन्म हो? कब ऐसी घड़ी आयेगी जब मैं सिर्फ हो सकूं और करने की कोई रेखा न बचे?
करने को कुछ भी न रहे, होना परिपूर्ण हो जाये--उसको हम मोक्ष कहते हैं। मोक्ष का अर्थ हैः जहां तुम हो, विश्व के साथ ऐसी संगति में, विश्व के साथ ऐसे तारतम्य में, विश्व के साथ ऐसे संगीत में लयबद्ध; कि तुम कुछ भी नहीं करते, विश्व ही करता है; तुम उसके साथ बहते हो।
संकल्प का भी अंतिम परिणाम समर्पण है; और समर्पण की भी शुरुआत, प्रथम चरण संकल्प है। इसलिए मैं तुमसे कहूंगा, तुम अभी संकल्प की ही चिंता कर लो।

दूसरा प्रश्नः आपका कहना है कि प्यास है तो जल भी होगा ही। यही नहीं, प्यास इसलिए है कि कहीं जल है। और आपने तो यहां तक कहा कि प्यासा ही जल को नहीं खोजता, जल भी प्यासे को खोजता है। तब जानना चाहता हूं कि प्यासे और पानी के बीच कभी-कभी इतनी दूरी मालूम देती है कि प्यासा पानी तक नहीं जा पाता; या कि प्यासा अंधा और बहरा है कि न उसे जल दीखता है, न उसका कलकल नाद सुनाई देता है। और कभी-कभी तो जल के बीच रहकर भी आदमी प्यासा रह जाता है। मुझे अपने बारे में कुछ ऐसा ही लगता है। कृपापूर्वक मुझे मार्ग-निर्देश दें।

निश्चित ही यह खोज एकतरफा नहीं है। एकतरफा हो तो कभी पूरी न होगी। अगर तुम्हीं सत्य को खोज रहे हो और सत्य तुम्हें न खोज रहा हो, तो मिलने की कोई संभावना नहीं है। अगर सत्य भी आतुर न हो तुमसे मिल जाने को, तो सत्य फिर अपने को छिपाये चला जायेगा। तुम उघाड़े जाओगे, वह छिपाये जायेगा। फिर तो ऐसा हो जायेगा जैसे द्रौपदी का चीर बढ़ता गया। वह उघड़ने को राजी न थी। वह उस दरबार में नग्न होने को राजी न थी। नग्न करने की चेष्टा दरबारियों की थी, दुर्योधन की थी, उसके मित्रों की थी--पर द्रौपदी सहयोगी न थी। चीर बढ़ता चला गया। वे उघाड़ते गये, चीर बढ़ता चला गया, द्रौपदी ढकती चली गई।
यह कहानी बड़ी बहुमूल्य है, बड़ी प्रतीकात्मक है। लेकिन द्रौपदी जब किसी को प्रेम करती होगी, तब तो नग्न हो जाती होगी। तब तो भीतर गहन में यह आकांक्षा होती होगी, कोई उघाड़ ले, किसी के सामने सब खोल दूं, कुछ भी छिपाया हुआ न रह जाये!
अगर परमात्मा तुम से बच रहा है तो एक बात पक्की है--इस दौड़ में तुम जीत
न पाओगे--वह बचना चाह रहा है और तुम खोज रहे हो। वही जीतेगा। उसके पास विराट ऊर्जा है, बड़ी शक्ति है; तुम्हारे पास है क्या? अगर वह परम सत्य ही तुमसे बचना चाह रहा है तो फिर तुम जीत नहीं सकते, तुम्हारी हार निश्चित है। लेकिन आदमी जीते हैं। महावीर जीते, बुद्ध जीते, कृष्ण, क्राइस्ट जीते। आदमी जीते हैं। एक बात साफ है कि वह भी उघड़ने के लिए राजी है। वह घूंघट मारकर बैठा हो, मगर चाहता है कि तुम घूंघट उठाओ। बड़ी भीतर आकांक्षा है कि तुम पास आओ, खोजो।
इसलिए मैं कहता हूं कि पानी भी तुम्हारे द्वारा पीये जाने को प्यासा है। तुम्हीं जल को नहीं खोज रहे हो, जल भी तुम्हें खोज रहा है।
गर न होतीं कैदे-रस्मो-राह की मजबूरियां
शमा खुद उड़कर पहुंचती अपने परवानों के पास।
--अगर जीवन के नियम न होते, व्यवस्था के सूत्र न होते... । गर न होतीं कैदे-रस्मो-राह की मजबूरियां! हजार नियम हैं, व्यवस्था है। और कम से कम व्यवस्था जिसने बनाई है, वह तो पालेगा ही।
गर न होतीं कैदे-रस्मो-राह की मजबूरियां
शमा खुद उड़कर पहुंचती अपने परवानों के पास।
--परमात्मा खुद तुम्हारे पास आ जाता। शायद आता भी है, तुम पहचान नहीं पाते। क्योंकि जब तक तुम उस खोज पर न निकलो, तुम न पहचान पाओगे। यह खोज दोनों तरफ से हो, यह आग दोनों तरफ से लगी हो, तो ही परिणाम हो सकता है। अगर भक्त अकेला भगवान, भगवान, भगवान चिल्लाता रहे; भगवान बहरा हो, या सुनने को राजी न हो, या बचना चाहता हो, तो तुम्हारी चीख-पुकार सूने आकाश में खो जायेगी। लेकिन नहीं, पुकार सुनी गई है। प्रार्थना कभी न कभी उस हृदय तक पहुंच जाती है। अगर न पहुंचती हो तो कारण यह नहीं है कि वह सुनने को उत्सुक नहीं है, कारण कुछ और होंगे। या तो तुम गलत दिशा में चिल्ला रहे हो; या तुम पूरे मन से बुला ही नहीं रहे हो; या बुलाने के साथ-साथ तुम भीतर डरे भी हो कि कहीं सुन ही न लेना!
मैंने सुना है, एक आदमी लौटता था लकड़ियां अपने सिर पर लेकर। थक गया है, बूढ़ा हो गया है सत्तर साल का। लकड़ी काटते-काटते जिंदगी बड़ी ऊब हो गई है। जैसा कि अनेक बार लोग कहते हैं, ऐसा ही उसने कहा। मुहावरा था, कुछ मतलब न था। ऐसे ही कहा कि हे भगवान! अब कब तक और जिंदगी घसिटवानी है? मौत को मुझे ही क्यों नहीं भेजता? जवानों को आ जाती है, मुझे क्यों लटकाये हुए है? अब तो भेज! अब तो मैं मरने को राजी हूं कि यह जीवन बहुत हो गया! यह सुबह से रोज लकड़ी काटना, यह दिनभर लकड़ी इकट्ठी करना, सांझ बेचकर किसी तरह रोटी पेट के लिए जुटानी, रात सो जाना, फिर सुबह यही! आखिर सार क्या है? अब तो भेज दे मौत को!
ऐसा होता नहीं अकसर कि इतनी जल्दी मौत आ जाये, पर उस दिन आ गई। मौत को सामने देखकर लकड़हारा घबड़ा गया। अपने गट्ठर को नीचे रखकर सुस्ता रहा था झाड़ के नीचे, मौत ने कहा, "मैं आ गई। बोलो, क्या काम है?"

उसने कहा, "कुछ और नहीं है, यहां कोई दिखाई न पड़ता था, गट्ठर उठवाकर मेरे सिर पर रखना है। इतनी कृपा करो, इस गठरी को मेरे सिर पर वापस रख दो। बहुत धन्यवाद! और आगे बुलाऊं भी तो ऐसा कष्ट मत करना!"
तुम बुलाते भी हो तो तुम्हारा बुलावा पूरा है? हार्दिक है? तुम्हारा रोआं-रोआं उसमें सम्मिलित है कि एक पर्त इनकार किये चली जा रही है? एक पर्त कहती है, अभी कोई प्रार्थना के दिन हैं, अभी तो तुम जवान हो! ये तो बुढ़ापे की बातें हैं। बुढ़ापे की भी कहां, लोग जब मरने लगते हैं तभी! जब जीभ लड़खड़ा जाती है, जब खुद बोलते भी नहीं बनता, तब किराए के पंडित-पुरोहित कान में राम-राम जप देते हैं! जिंदा रहते-रहते तो आदमी और हजार वासनाओं में उलझा रहता है, परमात्मा की वासना निर्मित कहां होती है?
जब सारी वासनाएं उस एक वासना में तिरोहित हो जाती हैं, जैसे सभी नदियां समुद्र में गिर जाती हैं; ऐसे जब तुम्हारी सारी आकांक्षाएं एकजुट परमात्मा की तरफ प्रवाहित होती हैं, अभीप्सा होती है, तब प्रार्थना पैदा होती है। फिर क्षणभर भी देर नहीं लगती। और मैं तुमसे कहता हूं कि फिर अगर परवाना न भी जाये तो शमा उड़कर उसके पास आ जाती है।
तुम्हीं नहीं खोज रहे, वह भी खोज रहा है।
इजिप्त में पुराना वचन है कि अगर उसने न खोजा होता तो तुम्हारे मन में उसे खोजने की बात भी पैदा न होती। कहते हैं कि जो उसकी खोज पर निकलता है, वह वही है, जिसे परमात्मा ने खोज ही लिया। तुम प्यासे ही तब होते हो उसके लिए, जब किन्हीं गहरे अर्थों में, कहीं किसी गहरी गहराई पर उसने तुम्हारे हृदय पर हाथ रख दिया। सभी तो उसे खोजने नहीं निकलते। कभी-कभी कोई दीवाना हो उठता है। जरूर उसने अपने मधु-पात्र से कोई मदिरा तुम में उंड़ेल दी। शायद तुम्हें भी पता नहीं है, इतनी गहराई पर उंड़ेली। शायद तुम्हारे प्राणों के प्राण, तुम्हारे केंद्र पर उंड़ेली। वहां तो तुम कभी जाते नहीं, तुम तो बाहर-बाहर घूमते रहते हो। तुम तो घर कभी आते नहीं।
मेरे देखे भी ऐसा ही है। जो परमात्मा को चुनता है, वह इसकी खबर दे रहा
है कि परमात्मा ने उसे चुन लिया।
तिब्बत में भी ऐसी एक लोकोक्ति है कि शिष्य थोड़े ही गुरु को चुनता है, गुरु शिष्य को चुनता है। लगता यही है कि शिष्य ने चुना; क्योंकि शिष्य का अहंकार अभी "मैं" के आसपास जीता है। वह कहता है, मैं दीक्षित हो रहा हूं! वह कहता है, मैंने इस गुरु को चुना! लेकिन जिन्होंने तिब्बत में यह लोकोक्ति बनाई होगी, वे जानते थे। तिब्बत में गुरु-शिष्य की परंपरा अति प्राचीन है, अति शुद्ध है। वे ठीक जानते हैं। वे ठीक कह रहे हैं कि गुरु शिष्य को चुनता है। कहता नहीं, क्योंकि कहने से भी हो सकता है, शिष्य छिटक जाये। कहने से भी हो सकता है, शिष्य में प्रतिरोध पैदा हो जाये। कहने से भी हो सकता है, उसके अहंकार को चोट लग जाये, घाव बन जाये और जो पास आता था, दूर निकल जाये। गुरु कुछ कहता भी नहीं। वह यह भी स्वीकार कर लेता है कि तुमने मुझे चुना। लेकिन मैं भी यही तुमसे कहता हूं कि जब तक गुरु ने तुम्हें नहीं चुना है, तुममें चुनने का सवाल ही न उठेगा, तुम्हें यह भाव ही पैदा न होगा, यह हिम्मत ही न आयेगी, यह साहस ही न जन्मेगा।
तो अड़चन कहां होगी? तुम भी खोजते हो, परमात्मा भी खोजता है--अड़चन कहां है? मिलन होता क्यों नहीं?
पहली बात--तुम लगते हो कि खोजते हो, खोजते नहीं। दांव पर तुम कुछ भी नहीं लगाते। तुम परमात्मा को मुफ्त पाना चाहते हो। तुम क्षुद्र चीजों की तलाश में भी जीवन दांव पर लगा देते हो। मजनू लैला को खोजता है, तो जैसा दांव पर लगा देता है; ऐसा तुमने परमात्मा की खोज में अपने को दांव पर लगाया? नहीं, तुम परमात्मा को भी अपने जीवन में थोड़ी जगह देते हो, चौबीस घंटे में पांच मिनट पूजा-प्रार्थना कर लेते हो। वह भी जल्दी-जल्दी निपटा देते हो। वह भी एक औपचारिकता है, जिसको कर लेना है; वह भी तुम्हारी चालाकी, होशियारी का हिसाब है कि पता नहीं, परमात्मा हो ही, तो यह कहने को तो रहेगा कि ध्यान रख, रोज पांच मिनट तेरी प्रार्थना करते थे, कितनी मालाएं सरकाईं, रोज गीता पढ़ते थे! कहीं मौत के बाद ऐसा हो ही कि परमात्मा हो, तो हमारे पास कुछ कहने को होगा, कुछ बैंक-बैलेंस होगा, हम खाली हाथ न होंगे! न हुआ तो कुछ

बिगड़ता नहीं है। पांच-दस मिनट खर्च भी हो गये तो क्या हर्ज है! हुआ तो काम आ जायेगी बात।
तुम होशियार हो! तुम दो नावों पर सवार रहते हो। तुम्हारी प्रार्थना
भी तुम्हारा गणित है। वहीं तो प्रार्थना मर जाती है। क्योंकि प्रार्थना गणित हो ही नहीं सकती। उन्माद है प्रार्थना। पागलपन है प्रार्थना। दीवानगी है प्रार्थना। एक नशा है। गणित नहीं, हिसाब-किताब नहीं। तुम्हारी प्रार्थना जब पागल हो जायेगी, तो पूरी हो जायेगी। जब परमात्मा तुम्हें सब तरफ से घेर लेगा, सुबह भी उसकी, सांझ भी उसकी, भर दोपहरी भी उसकी, तुम उठोगे-बैठोगे तो भी उसमें ही लीन रहोगे; बाजार भी जाओगे तो ऊपर-ऊपर बाजार होगा, भीतर-भीतर उसकी याद होगी; दुकान पर भी बैठोगे तो ऊपर-ऊपर से ग्राहक को देखोगे, भीतर-भीतर उसी का दर्शन होगा--जब तुम्हारा चौबीस घंटे का जीवन अहर्निश; भीतर-बाहर आती श्वास-प्रश्वास की भांति उस पर समर्पित होगा--तो मिलन हो जायेगा।
तो पहली तो बात, तुम बातें करते हो मिलने की, दांव पर कुछ नहीं लगाते।
और यह दांव कुछ ऐसा है कि पूरा ही पूरा लगाओगे तो ही लगेगा; रत्तीभर भी बचाया तो चूक जाओगे। क्योंकि उस बचाने में ही अश्रद्धा आ गई। उस बचाने में ही चालाकी आ गई, भोलापन खो गया। प्रार्थना तो निर्दोष भाव है। पूरा का पूरा कोई अपने को रख देता है, जरा भी बचाता नहीं। यह नहीं सोचता कि ऐसे कहीं ऐसा न हो कि दांव खतम हो जाये, नाहक, थोड़ा तो बचा लूं!
इसलिए मैं कहता हूंः प्रार्थना जुआरी कर सकता है, दुकानदार नहीं। दुकानदार तो सोच-समझकर चलता है, "इतना लगाऊंगा, कितना मिलेगा? अगर खोया भी तो बहुत ज्यादा तो न खो जायेगा? इतना खोये कि जिसकी पूर्ति हो सके।" जुआरी सब दांव पर लगा देता है, कुछ बचाता नहीं। उतना साहस चाहिए और जुआरी तो वस्तुएं दांव पर लगाता है, धन-पैसा दांव पर लगाता है; भक्त, प्रार्थी, अपने को दांव पर लगाता है। क्योंकि परमात्मा को पाना हो तो स्वयं को ही दांव पर लगाना पड़ेगा। स्वयं की कीमत पर ही मिलता है।
तो पहली बात, तुम्हारी प्रार्थना झूठी है, मिथ्या है। तुम्हारी पूजा औपचारिक है; लोक-व्यवहार है, पूजा नहीं है। दूसरी बात, तुम परमात्मा को चाहते हो या परमात्मा के नाम पर कुछ और चाहते हो? प्रार्थना तुम्हारी झूठी है, परमात्मा भी तुम्हारा अंतिम गंतव्य नहीं है। लोग परमात्मा को चाहते हैं कि चलो, उसकी प्रार्थना से धन मिलेगा, पद मिलेगा, प्रतिष्ठा मिलेगी, तो वस्तुतः तो पद, प्रतिष्ठा और धन चाहते हैं; परमात्मा का तो साधन की तरह उपयोग कर लेना चाहते हैं। वे तो परमात्मा को भी चाकर की तरह अपने काम में लगा लेना चाहते हैं। लेकिन उनका असली लक्ष्य और है। अगर शैतान उन्हें धन दे, तो वे शैतान की पूजा करेंगे। जो उन्हें धन दे, उसकी पूजा करेंगे। जो उन्हें पद दे, उसकी पूजा करेंगे। जो उन्हें पद दे, वही उनका परमात्मा हो जायेगा। परमात्मा गौण है, कुछ और मूल्यवान है, कुछ और पाने की तलाश है।
तो तुम परमात्मा को साधन नहीं बना सकते हो; बनाओगे तो चूक जाओगे। परमात्मा परम साध्य है। अपने को तुम उसका साधन बना लो, फिर मिलने में देर न होगी।
तीसरी बात, परमात्मा बहुत निकट है, निकट से भी निकट है। निकट कहना भी गलत है, क्योंकि निकट में भी थोड़ी दूरी आ जाती है। परमात्मा तुम्हारे रोएं-रोएं में समाया है। वह इतने पास है कि तुम्हारे और उसके बीच स्थान नहीं है, जगह नहीं है। इसलिए भी चूकना होता रहता है। जब तुम इतने शांत हो जाओगे, जब तुम इतने थिर हो जाओगे, जब तुम्हारे जीवन की लौ अकंप हो जायेगी, तभी तुम देख पाओगे, जो निकट से भी निकट है।
मुहम्मद ने कहा है कि गर्दन में जो प्राण को प्रवाहित करनेवाली ना.ड़ी है, जिसके काट देने से आदमी मर जाता है। वह भी दूर है; परमात्मा उससे भी ज्यादा पास है। लेकिन इतने पास को जानने के लिए तुम्हें भी पास आना पड़ेगा। तुम अपने से बहुत दूर निकल गये हो। तुम्हारी वासनाएं जहां हैं, वहीं तुम हो। वासनाएं तुम्हारी बड़ी दूर भविष्य में फैली हैं। तुम पास आते ही नहीं। निर्वासना जब पैदा होती है, तो प्रार्थना पैदा होती है। तुम अपने पास आ जाते हो। पास जैसे-जैसे आने लगते हो, उसकी धुन बजने लगती है। जैसे-जैसे पास

आते हो, उसकी सुगंध आने लगती है। जैसे-जैसे पास आते हो, उसका कलकल-नाद सुनाई पड़ने लगता है, अनाहत सुनाई पड़ने लगता है। फिर तो तुम नाचने लगते हो। फिर तुम चलते नहीं। फिर नाचकर दौड़ते हो घर की तरफ। फिर तो तुम्हारे जीवन में घूंघर बंध जाते हैं गीत बंध जाते हैं। फिर तो तुम मस्ती में तरोबोर हो जाते हो।
लेकिन अपने पास आओ। परमात्मा के पास आने का एक ही उपाय हैः अपने पास आओ! परमात्मा कोई दूसरा नहीं है, तुम्हारा ही परम अस्तित्व है, तुम्हारी नियति है। तुम अगर बीज हो तो परमात्मा वृक्ष है। तुम अगर कली हो तो वह फूल है। वह तुम्हारा ही पूरा-पूरा खिलाव है। पास आओ। करीब आओ। अपने में थिर बनो।
मैं सुन रहा हूं तेरे दिल की धड़कनें पैहम
है तेरा दिल मुतजस्सिस कहीं जरूर मेरा।
मैं अपने हृदय में भी तेरे ही दिल की धड़कनें सुन रहा हूं। मैं सुन रहा हूं तेरे दिल की धड़कनें पैहम--लगातार, सतत, अनवरत! इस दिल की धड़कन में भी उसकी ही धड़कन है। सुननेवाला चाहिए। तुम्हारे कान इतनी व्यर्थ की आवाजों से भरे हैं कि तुम्हें अपने दिल की धड़कन सुनाई ही नहीं पड़ती।
पश्चिम के एक विचारक ने अपनी डायरी में लिखा है--बड़ा संगीतज्ञ है--कि अमरीका में एक प्रयोगशाला में वह गया। गया था कुछ कारण से। उसे खबर मिली थी कि वहां एक प्रयोगशाला बनाई गई है, जो परिपूर्ण रूप से साउंड-प्रूफ है, सौ प्रतिशत। कोई आवाज, किसी तरह की आवाज भीतर नहीं आती। तो वह गया। वह जानना चाहता था कि परम सन्नाटा कैसा होता है। क्योंकि संगीतज्ञ था और परम सन्नाटे से पहचान चाहता था। क्योंकि संगीत भी उसी तरफ ले जाता है। वह भीतर गया तो वह बड़ा हैरान हुआः बिल्कुल सन्नाटा था, लेकिन दो आवाजें आ रही थीं। वह साफ-साफ सुन सका। उसने, जो आदमी उसे दिखा रहा था प्रयोगशाला, उससे पूछा कि तुम तो कहते हो कि यह सौ प्रतिशत साउंड-प्रूफ है, ध्वनि किसी तरह की यहां नहीं आ सकती; लेकिन मैं दो आवाजें सुन रहा हूं। वह जो साथ था, हंसने लगा। उसने कहा, वे दो आवाजें आपके भीतर हैं; वे बाहर से नहीं आ रहीं। एक आवाज है तुम्हारे हृदय की। इतने जोर से धक-धक हो रही थी कि उसे याद भी न रहा कि यह हृदय की आवाज हो सकती है। और दूसरी आवाज है तुम्हारे खून की गति की; रगों में जो खून दौड़ रहा है, उसका कलकल-नाद। ये आवाजें बाहर से नहीं आ रही हैं।
लेकिन बाहर की आवाजें जब बिल्कुल बंद थीं, तब ये सुनाई पड़ीं। हो तो यह तुम्हें भी रही हैं; उसको भी हो रही थीं, रोज चौबीस घंटे चल रही हैं। लेकिन इतना शोरगुल है कि उसमें ये धीमी-धीमी आवाजें खो जाती हैं। हृदय की धड़कन, खून की गति, ये भी तुमसे बाहर हैं। एक और आवाज है जहां हृदय की धड़कन भी बंद हो जाती है और खून की गति भी बंद हो जाती है, तब सुनी जाती है। उसको हमने ओंकार कहा है, अनाहत-नाद कहा है, प्रणव कहा है।
मैं सुन रहा हूं तेरे दिल की धड़कनें पैहम
है तेरा दिल मुतजस्सिस कहीं जरूर मेरा।
--और इससे मुझे ऐसा लगता है कि मैं ही तुझे नहीं खोज रहा, तेरा दिल भी मेरी तलाश कर रहा है--चूंकि तेरी आवाज मैं अपने हृदय में सुनता हूं। तुम्हारे भीतर उसी ने रूप धरा है। उसी ने तुम्हारे जीवन में रंग भरा है। जिसकी तुम तलाश कर रहे हो, वह तुम्हारे घर में आकर बैठा है। तुम दरवाजे पर आंख लगाये अतिथि की राह देख रहे हो--और अतिथि कभी घर के बाहर गया नहीं। तुम बाहर बैठे हो, आंगन में खड़े हो, राहगीरों को देख रहे हो कि कब आयेगा मेहमान, वह प्यारा कब आयेगा! हर राहगीर की आवाज में तुम्हें भनक आती है, शायद आ गया! उड़ते पत्ते तुम्हें भ्रम दे जाते हैं कि शायद आ गया! हवा के झोंके वृक्षों में सरसराहट करते हैं और तुम्हें लगता है, शायद आ गया! तुम चौंक-चौंक उठते हो। तुम चौबीस घंटे तने रहते हो कि शायद अब आये, अब आये, पता नहीं कब आये! और कहीं ऐसा न हो कि वह आये और तैयारी अधूरी हो! तो तुम राह पर खड़े राह देखते रहते हो! वह तुम्हारे घर में बैठा है। वह तुम्हारे होने से पहले तुम्हारे घर में बैठा है। मेजबान के पहले मेहमान आ गया है। घर आओ! तुम उसे भीतर बैठा पाओगे।

बोधिधर्म जब ज्ञान को उपलब्ध हुआ तो कहते हैं, वह बड़े जोर से खिलखिलाकर हंसा। उसके आसपास और भी साधक थे। उन्होंने पूछा, "क्या हुआ?" उसने कहा, "हद्द हो गई! मजाक की भी एक सीमा होती है। जिसकी हम तलाश करते थे, उसे घर में बैठा पाया। जिसे हम खोजने निकले थे, वह खोजनेवाले में ही छिपा था। खूब मजाक हो गई।" फिर बोधिधर्म कहते हैं, जिंदगी भर हंसता ही रहा। जब भी कोई परमात्मा की बात करता, वह हंसने लगता। वह कहता, यह बात ही मत छेड़ो। यह बड़े मजाक की बात है। यह बड़ा गहरा व्यंग्य है।
चूकोगे इसलिए नहीं कि वह दूर है--चूक रहे हो इसलिए कि वह बहुत-बहुत पास है, पास से भी पास है। लौटो! पहले घर में तलाश कर लें, फिर बाहर निकलें। क्योंकि बाहर तो बड़ा विस्तार है। चांद-तारों तक कहां खोजते रहोगे? घर को तो पहले खोज लो। वहां न मिले तो फिर बाहर जाना। लेकिन जिसने भी घर में खोजा है, उसे पा ही लिया है। इसका अपवाद कभी भी नहीं हुआ है।

तीसरा प्रश्नः आप मुझे बहुत-बहुत अच्छे लगते हैं। मुझे आपके प्रेम में रोने के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता। कैसे कहूं उस प्रेम को! और आश्चर्य है कि मैं अकसर आपके प्रति अनाप-शनाप भी बकता हूं; कभी-कभी गाली भी देता हूं। यह क्या है?

मैं एक बार मुल्ला नसरुद्दीन के घर मेहमान था। वह अपने बेटे को समझा रहा था, डरा रहा था; क्योंकि बेटा भद्दी गालियां पास-पड़ोस से सीखकर आ जाता था। तो उसने एक तख्ती पर लिखकर कमरे में बेटे के टांग दिया था, कि अगर तूने "बदमाश" शब्द का उपयोग किया तो पांच पैसा जुर्माना; अगर "गधे" शब्द का उपयोग किया तो दस पैसे जुर्माना, अगर "साला" शब्द का उपयोग किया तो बीस पैसे जुर्माना, अगर "हरामजादा" शब्द का उपयोग किया तो चालीस पैसे जुर्माना। पचास पैसे वह अपने बेटे को जेब-खर्च के लिए रोज देता है।
बेटा हंसने लगा। वह सुनता रहा और देखता रहा और हंसने लगा। तो उसने पूछा, "तू हंसता क्यों है? बात क्या है?"
उसने कहा कि मुझे ऐसी भी गालियां आती हैं कि रुपया भी कम पड़ेगा।
गालियां तुम्हें आती हैं, तो तुम जिससे भी संबंध बनाओगे उसी की तरफ बहने लगेंगी। जो तुम्हें आता है वही तो बहेगा। गालियां ही तुमने जीवन में सीखी हैं, तो तब जब तुम प्रेम में भी पड़ते हो तो प्रेम में भी तुम्हारी गालियां प्रवाहित होने लगती हैं। आखिर तुम्हीं तो बहोगे न अपने प्रेम में? तो तुमने जीवनभर में जो दुर्गंध इकट्ठी की है, वह तुम्हारे प्रेमी पर भी तो पड़ेगी। आखिर प्रेम "तुम" करोगे तो तुम्हारी गालियां कहां जायेंगी? इसे समझने की कोशिश करना। तुम शायद सोचते हो, तुम शत्रुओं को ही गाली देते हो--गलत। अगर गाली देना तुम्हारी आदत में शुमार है, अगर गाली देने की तुम्हारी भीतर संभावना है, तो शत्रु को तुम प्रगट में देते होओगे, मित्र को तुम अप्रगट में देते होओगे--मगर दोगे जरूर। जो तुम्हारे पास है वह तो तुम बांटोगे। मित्र को शायद मजाक में दोगे--मगर दोगे जरूर।
ऐसे लोग हैं कि जब तक उनमें गाली-गुफ्ता का संबंध न हो तब तक वे मित्रता ही नहीं मानते। जब तक "आइये", "बैठिये", "आप कैसे हैं" इत्यादि शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है, तब तक मित्रता नहीं, परिचय है। जब गाली- गुफ्ता शुरू हो जाती है, तब मित्रता है।
इसे थोड़ा देखना। यह कैसी मित्रता हुई?
लेकिन तुम्हारी मजबूरी है। जो तुम्हारे पास है, वह तुम्हारी मित्रता
पर भी छाया डालेगा।
दो तरह के लोग हैं। कुछ लोग हैं जो एक आदमी को मित्र बना लेते हैं और दूसरे को शत्रु बना लेते हैं। वे अपने को बांट लेते हैं। जो-जो बुरा है वह शत्रु की तरफ प्रवाहित करते हैं, नहर खोद लेते हैं; जो-जो अच्छा है, वह मित्र की तरफ प्रवाहित करते हैं, नहर खोद लेते हैं। लेकिन जब तुम मेरे प्रेम में पड़ोगे तो पूरे के पूरे ही पड़ोगे। तब नहर खोदने से काम न चलेगा। तब तुम्हारी गाली भी मेरे पास आयेगी, तुम्हारी प्रार्थना भी मेरे पास आयेगी।

तुम्हें जागना होगा! और गालियों से निस्तार पाना होगा। अन्यथा तुम्हारा प्रेम भी कलुषित हो जायेगा, तुम्हारी प्रार्थना भी कलुषित हो जायेगी।
अच्छा है कि इस बहाने तुम्हें तुम्हारी गालियां दिखाई पड़ने लगीं; अब धीरे-धीरे उन गालियों से अपने बंधन को खोलो। अब धीरे-धीरे जागो। क्योंकि वे गालियां तुम्हें उड़ने न देंगी, वजनी हैं; पत्थर की तरह तुम्हारी गर्दन में अटकी रह जायेंगी। मेरे और तुम्हारे बीच पत्थरों की तरह अटकी रह जायेंगी। प्रवाह ठीक से न हो पायेगा। तुम जब भी गाली दोगे, सिकुड़ जाओगे। जब भी गाली दोगे, तुम्हारे भीतर अपराध-भाव उठेगा। जब भी गाली दोगे, ग्लानि मालूम होगी।
अच्छा है कि प्रश्न पूछा; कम से कम ईमानदारी तो की। अब इतना और होश सम्हालो। गाली देना बंद करने को नहीं कह रहा हूं मैं; क्योंकि अगर तुमने जबर्दस्ती बंद की तो तुम किसी और को देने लगोगे। तब तुम्हें एक और गुरु चाहिए पड़ेगा, जिसको तुम गाली दो और एक गुरु जिसकी तुम प्रशंसा करो। यही तो लोग कर रहे हैं। अगर महावीर की प्रशंसा करते हैं, तो बुद्ध को गाली देते हैं। गालियां कहां जायें? नहर खोदनी पड़ती है। अगर राम की प्रशंसा करते हैं तो कृष्ण को गाली देते हैं। अगर कृष्ण की प्रशंसा करते हैं तो राम को गाली देते हैं।
लेकिन थोड़ा जागो!
मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ा आर्किटेक्ट, एक बड़ा शिल्पी समुद्र में जहाज डूबने से, समुद्र में तैरते-तैरते एक अनजान द्वीप पर लग गया। अकेला था। वहां द्वीप पर कोई भी न था। बड़ा कुशल शिल्पी था। और कोई काम भी न था उसे। बड़े फल थे, वृक्ष लदे फलों से, तो भोजन की कोई कमी न थी। जंगल में लकड़ियां थीं। सुंदर पत्थर थे। उसने धीरे-धीरे बैठे-बैठे क्या करेगा, बनाना शुरू कर दिया। मकान बनाये। दुकानें बनाईं। चर्च बनाये। वर्षों बाद, कोई बीस वर्ष बाद, जब उसका पूरा नगर आबाद हो गया, तब एक जहाज किनारे लगा आकर। तो उस शिल्पी ने कहा जहाज के यात्रियों को, कैप्टन को, कि इसके पहले कि हम छोड़ें, इसके पहले कि मैं जहाज पर सवार हो जाऊं, आओ, मैंने जो बनाया है उसे तो देख लो! तो उसने जाकर दिखाया। और सब तो ठीक था, लेकिन लोग बड़े हैरान हुएः उसने दो चर्च बनाये। उन्होंने कहा, दो चर्च का क्या करोगे? एक चर्च समझ में आता है। तो उसने कहा, एक चर्च वह जिसमें मैं जाता हूं और एक चर्च वह जिसमें मैं नहीं जाता हूं।
थोड़ा सोचो। अकेले एक चर्च से काम न चलेगा, जिसमें तुम जाते हो। वह चर्च भी चाहिए, जिसमें तुम नहीं जाते। मंदिर से काम न चलेगा, मस्जिद भी चाहिए जिसमें तुम नहीं जाते। गिरजे से ही काम नहीं चलेगा, गुरुद्वारा भी चाहिए जिसमें तुम नहीं जाते। मजा ही क्या है अगर अकेला वही चर्च हो जिसमें तुम जाते हो! तो फिर तुम्हारा गलत जो है वह तुम कहां रखोगे?
तो अकसर लोग दो गुरु चुनते हैंः एक, जिसके पक्ष में; और एक जिसके विपक्ष में। दो प्रेमी चुनते हैंः एक को मित्र कहते हैं, एक को शत्रु। ध्यान से देखना, अगर तुम्हारा शत्रु मर जाये तो तुम्हें बड़ी कमी मालूम होगी। तुम बड़े खाली-खाली मालूम पड़ोगे। अब तुम क्या करोगे? शत्रु के मरने से भी--जिसको तुम सदा चाहते थे कि मर जाये, जिसके लिए तुम प्रार्थना करते थे कि मर जाये--वह भी जब मरेगा तो तुम रोओगे भीतर। क्योंकि तुमको लगेगा, अब तुम क्या करोगे? जो तुम शत्रु की तरफ बहा रहे थे, अब वह कहां जायेगा? फिर तुम्हें कोई शत्रु खोजना पड़ेगा।
लोग बिना शत्रु के नहीं रह सकते, क्योंकि उनके भीतर बड़ी शत्रुता छिपी है।
तो दो उपाय हैंः या तो तुम एक गुरु और खोज लो, एक चर्च और बनाओ जिसमें तुम नहीं जाते, जिसकी तुम नहीं सुनते, जिसके तुम दुश्मन हो, जो गलत है, पाखंडी है। और दूसरा उपाय यह है कि तुम्हारे भीतर ये जो गालियां उठ रही हैं, इन्हें समझो, देखो, अपने भीतर के कलुष को पहचानो, अपने भीतर के कूड़ा- कर्कट को समझो-बूझो।

पहला उपाय सार्थक नहीं है, क्योंकि उससे तुम बदलोगे न; तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे। उससे तो यही बेहतर है कि तुम मुझे प्रेम भी किये जाओ और गालियां भी दिये जाओ। क्योंकि यह स्थिति ज्यादा दिन न चल सकेगी; तुम्हारा प्रेम ही भीतर सकुचाने लगा है; तुम्हारा प्रेम ही भीतर कष्ट पाने लगा है। अच्छा है, कोई फिक्र नहीं। ऐसे ही जीये जाओ। धीरे-धीरे तुम खुद ही सोचोगे, यह मैं क्या कर रहा हूं! एक हाथ से बनाता हूं, दूसरे हाथ से मिटाता हूं। यह भवन फिर कैसे बनेगा? एक हाथ से श्रद्धा की ईंट रखता हूं, दूसरे हाथ से अश्रद्धा का जहर डालता हूं। एक हाथ से बीज बोता हूं, दूसरे हाथ से अग्नि बरसाता हूं। यह भवन, यह बगीचा निर्मित कैसे होगा?
तुम कुछ मेरा नुकसान कर रहे हो, ऐसा मत सोचना। तुम अपना ही नुकसान कर रहे हो। तुम अपने भोजन में ही गंदगी डाल रहे हो। वह तुम्हें ही भोजन करना है। वह तुम्हारे ही खून में बहेगा। उससे तुम्हारी ही हड्डी बनेगी। गाली देने से उसका थोड़े ही नुकसान होता है जिसे गाली दी--गाली देनेवाले का नुकसान होता है। उसकी जीभ खराब हुई। उसका हृदय धूमिल हुआ। उसके प्राण क्षुद्र हुए।
पूछा है, "यह क्या है?"
यह तुम्हारे भीतर का सीजोफ्रेनिया, तुम्हारे भीतर का विभक्त व्यक्तित्व। तुम दो हो, एक नहीं। इस "दो" को हटाओ और एक को जन्माओ। अन्यथा तुम विक्षिप्त हो जाओगे--ऐसे जैसे तुम्हारे भीतर दो व्यक्ति हैं और तुम्हारे भीतर एकता नहीं है। जिसने पूछा है, उसे मैं जानता हूं। अगर वह ऐसे ही चलता रहा तो आज नहीं कल पागल-घर में होगा, पागलखाने में होगा। जैसे तुम्हारा एक पैर एक तरफ जाये, दूसरा पैर दूसरी तरफ जाये; एक आंख कुछ देखे, दूसरी आंख कुछ देखे--तो तुम धीरे-धीरे खंडित हो जाओगे; तुम्हारे भीतर का सुर-संगीत खो जायेगा; सामंजस्य, समन्वय टूट जायेगा।
यह एक तरह का पागलपन है। इससे जागो! और इसमें रस मत लो। क्योंकि प्रश्नकर्ता के प्रश्न से ऐसा लगता है, जैसे वह कोई बड़ी बहुमूल्य बात कर रहा है। क्योंकि उसने यह भी लिखा है पीछे कि जब मैं इस तरह गालियां इत्यादि देता हूं तो लोग मुझे "नासमझ" कहते हैं और मुझे उन पर हंसी आती है। ऐसा लगता है, तुम रस ले रहे हो। कोई हर्जा नहीं। अगर इससे ऊपर न उठ सको तो यह भी ठीक है। कम से कम गाली देते हो, तब भी मेरी याद तो कर ही लेते होओगे, मगर याद करने के बेहतर ढंग हो सकते हैं। यह याद करने का तुमने बड़ा बेहूदा ढंग चुना।
मैं तुमसे कहता हूं, अगर अनाप-शनाप बकना हो, गाली देना हो, तो प्रेम को हटा दो, कम से कम इकहरे इकट्ठे तो रहोगे। अगर प्रेम करना हो तो गाली-गलौज से छुटकारा पा लो। क्योंकि मेरा सवाल नहीं है। मुझे गाली देने से मेरा क्या हर्ज है! लेकिन तुम्हारी गाली तुम्हीं को तोड़ती जायेगी। तुम धीरे- धीरे अपने से ही अलग होने लगोगे। और इन दोनों छोरों को मिलाना मुश्किल हो जायेगा।
एक रात मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को सुलाकर अपने कमरे में आ गया।
एक घंटे से ऊपर हो गया, मगर वह बेटा बार-बार चिल्लाये जा रहा थाः "पापा! मुझे प्यास लगी है।"
"चुपचाप सो जाओ", मुल्ला ने जोर से चिल्लाकर कहा। "अगर अब और तंग किया
तो उठूंगा और थप्पड़ लगाऊंगा।"
"पापा, जब थप्पड़ लगाने उठो तो एक गिलास पानी भी लेते आना", बेटे ने कहा।
ठीक कहा। कम से कम इतना तो कर ही लेना। उठोगे तो ही।
तो अगर कोई और उपाय न हो, और याद करने का यही ढंग तुम्हें आता हो, कोई हर्जा नहीं। चलो, यह भी ठीक, गाली ही दे लेना। याद तो जारी रहेगी। लेकिन दोनों में अगर चलते रहे तो तुम दो घोड़ों पर सवार हो, तुम बड़ी अड़चन में पड़ोगे। या तो प्रेम को जाने दो। यह भी प्रेम क्या? या गाली को जाने दो।
एक स्वर बनो, तो ही शांत हो सकोगे। अन्यथा शांति का कोई उपाय नहीं है। शांति कुछ भी नहीं है--एकस्वर हो गये आदमी की अवस्था है। अशांति कुछ भी

नहीं है--दो स्वरों में, अनेक स्वरों में बंटे और टूटे हुए आदमी की विक्षिप्तता है।

उन्हीं मित्र ने दूसरा सवाल भी पूछा हैः भगवान के संबंध में मेरे मन में जो पुरानी और विचित्र धारणाएं जमी हैं, उनके कारण आप मुझे भगवान जैसे नहीं लगते; किंतु आप जो मेरे लिए हैं, उसे मैं कोई नाम देने में असमर्थ पाता हूं अपने को। आप इतने विराट और हम जैसे ही लगते हैं। कृपा कर इस पर कुछ प्रकाश डालें।

भगवान जैसा मैं हूं भी नहीं, तो लगूंगा कैसे? "भगवान जैसे" का अर्थ समझे कि जो भगवान नहीं है, भगवान जैसा है! मैं तुमसे कहता हूं, मैं भगवान हूं, भगवान जैसा नहीं। और तुमसे भी मैं कहता हूं, तुम भगवान हो, "भगवान जैसे" नहीं। "जैसे" शब्द में तो बड़ा झूठ छिपा है, बड़ा असत्य छिपा है। "जैसे" का तो अर्थ हुआः खोटा सिक्का; असली सिक्के जैसा लगता है, है नहीं।
रही भगवान की धारणा, तो क्या भगवान की तुम्हारी धारणा है, इस पर सब निर्भर करेगा, क्या तुम्हारी परिभाषा है। भगवान शब्द तो बड़ा साफ-सुथरा है। इसका मतलब केवल होता हैः भाग्यवान। उसका अर्थ होता हैः द ब्लेसिड वन। उसका इतना ही अर्थ होता है कि जिसने अपनी नियति को पा लिया, अपने भाग्य को उपलब्ध हो गया; जो होने को था, हो गया। बस इतना ही। जब कली फूल बन जाती है, तब भगवान है। जो हो सकती थी, हो गई। बीज में पड़ी थी, तब भगवान न थी। वृक्ष में छिपी थी, तब भगवान न थी। कली थी, तब भी भगवान न थी। भगवान होने के रास्ते पर थी। फिर फूल हो गई। भगवान हो गई। भाग्य खिल गया।
मेरे लिए तो "भगवान" शब्द का इतना ही अर्थ है कि तुम जो होने को हो वही
हो जाओ। निश्चित ही, प्रत्येक की भगवत्ता भिन्न होगी। कोई पिकासो होगा और उसके जीवन में बड़े चित्रकारी के फूल खिलेंगे। कोई कालिदास होगा; उसके जीवन में काव्य के बड़े फूल खिलेंगे। हर व्यक्ति की भगवत्ता उसकी अपनी निज होगी। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का बीज अनूठे-अनूठे ढंग से खिलेगा। इसलिए तो महावीर महावीर जैसे हैं, बुद्ध बुद्ध जैसे हैं, कृष्ण कृष्ण जैसे हैं। इनके लिए तुलना भी तो नहीं खोजी जा सकती कि किसके जैसे हैं। अब कृष्ण को महावीर से कैसे तौलोगे? और तुमने अगर भगवान का अर्थ बड़ा सीमित कर लिया कि कृष्ण भगवान हैं, तो फिर अड़चन आ जायेगी; फिर राम भगवान न हो सकेंगे। फिर तुम्हारा भगवान का दायरा बड़ा छोटा है। वह एक आदमी पर समाप्त हो गया। फिर बुद्ध भगवान न हो पायेंगे। फिर महावीर को कहां रखोगे? फिर मुहम्मद को कहां रखोगे, क्राइस्ट को कहां रखोगे, मूसा को कहां रखोगे? फिर नानक और कबीर और दादू और रैदास... ? नहीं, फिर तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। फिर करोड़ों भगवान हुए हैं। जो भी खिल गया, वह भगवान हो गया, भाग्यवान हो गया। तो फिर तुम उनको कहां रखोगे? अगर तुमने फूल के खिलने की कोई ऐसी परिभाषा बना ली कि जैसा चंपा का फूल खिलता है, वही खिलना है, तो फिर गुलाब के फूल को तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे, "यह कोई खिलना है? खिलता तो चंपा का फूल है।" तो फिर तुम्हारा फूल शब्द बड़ा सीमित है। फिर तो चंपा का ही फूल फूल है; और गुलाब और कमल, फिर कोई फूल न रहे। लेकिन गुलाब भी फूल है, कमल भी फूल है, चंपा भी फूल है, चमेली भी। एक ही फूल शब्द सबके लिए उपयोग करते हो। क्योंकि न तो रंग से फूल का कोई संबंध है, न आकृति से कोई संबंध है--फूल का संबंध तो खिलने से है, फूलने से है, प्रफुल्ल होने से है, खुल जाने से। तो जो भी खुल जाता है, वही फूल है। गुलाब भी खुलता है, कमल भी खुलता है। गंध अलग, रंग अगल, रूप, ढंग अलग--इससे कोई लेना-देना नहीं है। फूल का संबंध है, खुल गया; पूरा हो गया; जो छिपा था वह प्रगट हुआ; जो गीत अनगाया पड़ा था, वह गाया गया; जो नाच अभिव्यक्त नहीं हुआ था, अभिव्यक्त हो गया! बीजरूप से सभी भगवान हैं। फूलरूप से सभी भगवान हो सकते हैं। तुम्हारी परिभाषा पर निर्भर है। तुम्हारी परिभाषा अगर बहुत क्षुद्र और संकीर्ण है तो अच्छा ही है कि तुम मुझे उसके बाहर रखो, क्योंकि उतनी संकीर्ण परिभाषा में जीना मुझे रुचेगा नहींः तुम यही समझो कि यह आदमी भगवान नहीं है। लेकिन

तुम ध्यान रखना, अगर परिभाषा तुम्हारी बहुत छोटी है, तो तुम भी भगवान न हो सकोगे। तुम्हारी परिभाषा में अगर मैं नहीं समा सकता तो तुम कैसे समाओगे? मित्र ने पूछा है कि "आप तो हमें हम जैसे ही लगते हैं!"
तो यही दोष है कि मैं तुम्हें तुम जैसा लगता हूं। तो फिर तुम्हारा क्या होगा? तुम जैसे लगने के कारण भी परिभाषा में नहीं समाता, तो तुम्हारी क्या गति होगी? तुम तो बिल्कुल परिभाषा के बाहर पड़ जाओगे। मैंने तो चाहा है कि तुम्हें याद आ जाये कि तुम भगवान हो, लेकिन तुम्हारी कोई धारणा होगी। उस धारणा से मैं मेल न खाता होऊंगा। तुम अगर हिंदू हो तो कृष्ण... अगर जैन हो तो महावीर... । निश्चित ही मैं नग्न नहीं खड़ा हूं, कपड़े पहने हुए हूं, तो महावीर तो हूं ही नहीं। तो उस अर्थ में भगवान नहीं हूं। निश्चित ही मैं बुद्ध जैसा नहीं हूं। और न ही किसी बोधि-वृक्ष के नीचे बैठा हूं। निश्चित ही बुद्ध नहीं हूं। न कृष्ण जैसा हूं; मोरमुकुट नहीं बांधा, बांसुरी हाथ में नहीं है, पीतांबर नहीं पहना, तो कैसे कृष्ण जैसा हूं? तो तुम्हारी परिभाषा में तो मैं न आऊंगा।
लेकिन तुम याद रखना, कृष्ण के समय में बहुत लोग थे जो कृष्ण को भगवान नहीं मान सकते थे। नहीं माना था उन्होंने, क्योंकि उनकी और पुरानी परिभाषाएं थीं जिसमें वे नहीं बैठते थे। नया भगवान कभी भी पुराने भगवान वाली परिभाषा में नहीं बैठ सकता, क्योंकि वह परिभाषा उसके लिए बनी न थी। वह परिभाषा किसी और के लिए बनी थी। अब जिन्होंने राम को भगवान माना है, वे कृष्ण को कैसे भगवान मानें? इधर राम हैं--एक पत्नीव्रता! इधर कृष्ण हैं-- कहते हैं, सोलह हजार उनकी रानियां हैं! अनब्याही, दूसरों की ब्याही हुई स्त्रियों को भी उठा लाये हैं! यह कोई भगवान जैसी बात है? तो बहुतों को तो कृष्ण लंपट ही मालूम होते हैं। बहुतों को राम भी कुछ बहुत ऊंचाई पर नहीं मालूम होते।
तुम्हें मैं समझाने की कोशिश में कुछ उदाहरण दूं। भगवान सभी को एक जैसा उपलब्ध है; जैसे सूरज का प्रकाश सब पर पड़ रहा है। लेकिन कोई वृक्ष हरा मालूम हो रहा है, कोई फूल लाल मालूम हो रहा है, कोई फूल सफेद है--और प्रकाश सब पर एक जैसा पड़ रहा है। भौतिकी, फिजिक्स के जानकारों का कहना है कि प्रकाश की किरण तो सब पर पड़ रही है। लेकिन जो पत्ते प्रकाश की हरी किरण को वापस लौटा देते हैं, वे हरे मालूम हो रहे हैं। जो चीजें प्रकाश की किरणों को पूरा पी जाती हैं, वे काली मालूम होती है। जो चीजें प्रकाश को पूरा का पूरा लौटा देती हैं, वे सफेद मालूम होती हैं। जो चीजें जिस किरण को लौटाती हैं, वे उसी किरण के रंग की हो जाती हैं। अंधेरे में सभी वस्तुओं का रंग खो जाता है--यह तुम जानकर हैरान होओगे। अंधेरे में तुम यह मत सोचना कि जो हरे वृक्ष थे, वे अभी भी हरे होंगे--भूल में मत पड़ना। फिजिक्स कहती है, वृक्ष हरे नहीं होते अंधेरे में। और यह मत सोचना कि जब अंधेरा होता है तो गुलाब का फूल और चमेली का फूल अभी भी सफेद और लाल होगा। गलती में हो तुम। रंग के लिए प्रकाश चाहिए। जब अंधेरा होता है तो सब रंग खो जाते हैं; कोई वस्तु का कोई रंग नहीं होता। न काली वस्तुएं काली होती हैं, न सफेद वस्तुएं सफेद होती हैं; क्योंकि रंग वस्तुओं में नहीं है, रंग तो वस्तुओं और प्रकाश के बीच के अंतर्संबंध में है; जिस चीज में भोग की गहन वृत्ति है... ।
इसलिए हम राक्षसों को काला प्रतीक मानते रहे हैं। वह प्रतीक बिल्कुल ठीक है। जरूरी नहीं है कि रावण काला रहा हो, लेकिन प्रतीक की तरह बिल्कुल ठीक है। काले का अर्थ हैः जो सब पी जाये, कुछ छोड़े न; सब पर कुंडली मारकर बैठ जाये, कुछ दान न करे; जिसके जीवन से प्रेम न उठता हो; जो सब चीजों के लिए कृपणता से इकट्ठा करता चला जाये। ठीक है कि रावण की लंका सोने की थी, रही होगी। सारा सोना उसने इकट्ठा कर लिया होगा सारे संसार से। काला रंग राक्षस, शैतान, असुर उसका रंग है।
साधारणतः हममें से अधिक लोग भगवान के साथ यही करते हैं। भगवान हम पर बरस रहा है। वह प्रकाश की भांति है। लेकिन हम उसे पीकर बैठ जाते हैं। हम उसे सिकोड़ लेते हैं। हम सब तरफ से उस पर कुंडली मार लेते हैं। हम उसे बांटते नहीं। हम उसे लौटने नहीं देते। उसके कारण हम बेरंग हो जाते हैं, काले हो जाते हैं।

बांटो! जितना तुम बांटोगे उतना तुम्हारे जीवन में रंग आने लगेगा। अगर तुमने एक किरण लौटा दी तो हरा रंग आ जायेगा; अगर दूसरी किरण लौटा दी तो लाल रंग आ जायेगा। अगर तुमने सब लौटा दिया तो तुम शुभ्र हो जाओगे। दुनिया के सारे धर्मशास्त्र शैतान को काला रंगते हैं, राक्षस को काला रंगते हैं। जरथुस्त्र अहरिमन को काला रंगता है। ईसाई डेविल को, मुसलमान शैतान को, सब काले रंगते हैं। वह काला बिल्कुल प्रतीक है। वह जैसा भौतिक-शास्त्र का अंग है, वैसे ही अध्यात्म-शास्त्र का भी अंग है।
जब भी तुम किसी चीज को पीकर बैठ जाते हो, तुम काले हो जाते हो। तब तुम बीज की भांति हो; सब भीतर बंद है और एक खोल ऊपर से चढ़ी है। जब तुम सब छोड़ देते हो, इसलिए सफेद त्याग का प्रतीक है।
जैनों ने सफेद वस्त्र चुने मुनियों के लिए--त्याग की वजह से। सब छोड़ देता है। सब त्याग कर देता है।
तो एक तरफ शैतान है। फिर जो सब छोड़ देता है; जैसे राम, जैसे महावीर, सब छोड़ देते हैं--शुभ्र हैं। तो राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। उनका जीवन बड़े संयम, विवेक, संतुलन, अनुशासन का जीवन है। महावीर का जीवन परम त्याग का जीवन है; सब छोड़ दिया है; सब छोड़ दिया; कुछ भी नहीं रखा है--शुभ्र हो गये हैं!
जैनों के दो पंथ हैंः दिगंबर और श्वेतांबर। महावीर ने वस्त्र तो पहने नहीं, रहे तो वे नग्न ही; लेकिन फिर भी श्वेतांबर दृष्टि में भी सार है। यह कहना कि वे सफेद वस्त्रों में ढके थे, बिल्कुल सार्थक है। जैसे शैतान को काला रंगने में सार्थकता है, वैसे ही महावीर को शुभ्र वस्त्रों में, श्वेतांबर बनाने में भी सार्थकता है। यद्यपि वे नग्न थे, लेकिन उनके जीवन का लक्षण सफेद, शुभ्र, श्वेत वस्त्र हैं--श्वेतांबर हैं। सब उन्होंने छोड़ दिया। यह दूसरा उपाय है।
अगर परमात्मा को तुम सिकोड़कर बैठ गये, तो तुम कुछ भी हो सकते होः पशु, पत्थर, आदमी। परमात्मा तुम्हारे भीतर सिकुड़ा पड़ा रहेगा।
बांटो! खोलो इन जालों को जो भीतर बंधे हैं! तोड़ो खोल को, अंकुर उठने दो! तुम पाओगेः शुभ्र परमात्मा का उदय हुआ।
ये साधारण विभाजन हैं। फिर एक तीसरी भी स्थिति है। जैसे कि कोई पारदर्शी कांच का टुकड़ा, वह किरणों को लौटाता नहीं है, पीता भी नहीं, पार हो जाने देता है; शुभ्र भी नहीं है, काला भी नहीं है। क्योंकि काला होने के लिए पी जाना जरूरी है। शुभ्र होने के लिए लौटा देना जरूरी है। कांच का टुकड़ा पार हो जाने देता है; पारदर्शी है। सफेद दीवाल है; वह लौटा देती है। काला पत्थर है, वह पी जाता है। कांच है, वह पार हो जाने देता है।
तो महावीर, बुद्ध, राम, मो.ज.ज शुभ्र वस्त्रों की भांति हैं, शुभ्र दीवाल की भांति हैं। लाओत्सु पारदर्शी कांच की भांति है। तो अगर कांच पूरा पारदर्शी हो तो तुम्हें दिखाई ही नहीं पड़ेगा। उसके पार क्या है, वह दिखाई पड़ेगा; कांच दिखाई नहीं पड़ेगा। अगर कांच दिखाई पड़ता है तो उसका मतलब है, थोड़ी अशुद्धि रह गई। तो लाओत्सु अगर तुम्हारे पास भी बैठा रहे तो तुम्हें पता न चलेगा। अगर महावीर तुम्हारे पास बैठें, तो तुम्हारी आंखें चमचमा जायेंगी; शुभ्रता तुम्हें घेर लेगी। अगर रावण तुम्हारे पास बैठे तो तुम घबड़ाने लगोगे; वह तुम्हें चूसने लगेगा, खींचने लगेगा। वह तुम्हारी सीता को चुराने में लग जायेगा। वह तुम्हें भी पी जाना चाहेगा। जरूरी नहीं है कि वह तुम्हें भोगे, क्योंकि भोगने के लिए भी थोड़ा त्यागना पड़ता है। वह तो सिर्फ कुंडली मारकर बैठ जायेगा।
इसलिए मैं... रामायण में जो कथा है कि वह सीता को चुराकर ले गया, फिर उसने अशोक-वाटिका में उन्हें रख दिया, उन्हें छुआ भी नहीं। असली कंजूस छूता भी नहीं। धन को छूता भी नहीं; बस उसको रखकर तिजोड़ी में बैठ जाता है। उसने सीता को भोगा नहीं। उसमें प्रयोजन भी न था। बस सुंदर स्त्री मेरे कब्जे में आ गई, इतना काफी है। उसका रस कब्जे का रस है।
तो अगर रावण जैसा आदमी तुम्हारे पास बैठे तो तुम पाओगे, जैसे कोई अंधकार तुम्हें खींचे लेता हो, पी जाना चाहता है। अगर राम और महावीर जैसे

व्यक्ति तुम्हारे पास खड़े हों, तो तुम पाओगे कि तुम्हारी आंखें किसी शुभ्रता में झपकपाने लगीं। उन्हें झेलना मुश्किल मालूम पड़ेगा।
लाओत्सु जैसा व्यक्ति अगर तुम्हारे पास भी बैठा हो तो तुम्हें पता न चलेगा कि कोई बैठा है या नहीं बैठा है। इसलिए तो लाओत्सु के पीछे कोई धर्म न बन सका। धर्म बने कैसे? धर्म बनने के लिए दिखाई पड़ना चाहिए। लाओत्सु तो ना-कुछ है, शून्यवत है। यह भी परमात्मा का एक रूप है।
परमात्मा का पहला रूप हैः शैतान--सबसे नीचा रूप। दूसरा रूप हैः शुभ्र। कुछ उस ढंग से प्रगट होते हैं परमात्मा। फिर लाओत्सु है; वह भी एक रूप है परमात्मा का--पारदर्शी। फिर एक चौथा रूप भी है--दर्पण की भांति; किरणें लौटती ही नहीं सिर्फ, तुम्हारा प्रतिबिंब भी बनाती हैं। तुम अगर दर्पण के पास जाओगे तो तुम्हारी तस्वीर तुम्हें दिखाई पड़ जायेगी। कुछ में परमात्मा इस रूप में भी प्रगट हुआ है--पतंजलि। अगर पतंजलि के पास जाओगे तो तुम्हें अपनी तस्वीर दिखाई पड़ने लगेगी। महावीर के पास न दिखाई पड़ेगी तुम्हें अपनी तस्वीर। सिर्फ तुम्हें उनकी शुभ्रता घेर लेगी; जैसे चांदनी के फूल तुम पर बरस पड़ें! लेकिन पतंजलि के पास तुम्हें अपना ही रूप दिखाई पड़ जायेगा; तुम्हारी झलक बनेगी। और पतंजलि तुम्हें आत्म-आविष्कार के लिए बड़ा सहयोगी हो सकेगा। लाओत्सु के साथ तो वे लोग चल सकेंगे, बहुत मुश्किल, विरले, जिनके पास इतनी सूक्ष्म दृष्टि है कि पारदर्शी को भी देख सकें। पतंजलि के साथ बहुत लोग चल सकेंगे। महावीर के साथ भी लोग चल सकेंगे, राम के साथ भी चल सकेंगे; लेकिन राम और महावीर से अभिभूत होंगे, रूपांतरित बहुत नहीं होंगे। क्योंकि खुद का दर्शन नहीं होगा। महावीर का दर्शन होगा अगर उनके पास जाओगे। पतंजलि की खूबी और! उसके पास तुम्हें तुम्हारा दर्शन होगा! तुम्हारा चेहरा विकराल है तो विकराल दिखाई पड़ेगा, सुंदर है तो सुंदर दिखाई पड़ेगा। तुम जैसे हो, पतंजलि के पास तुम वैसे ही प्रगट हो जाओगे। कुछ लोग पतंजलि के पास से नाराज होकर लौटेंगे, क्योंकि उनका कुरूप चेहरा दिखाई पड़ेगा, उनकी वीभत्सता दिखाई पड़ेगी। ऐसे लोग महावीर से नाराज न होंगे, क्योंकि महावीर के पास सिर्फ महावीर के फूल दिखाई पड़ेंगे। तुम महावीर की पूजा कर लोगे। महावीर के साथ पूजा पर्याप्त हो जायेगी। पतंजलि के साथ साधना जरूरी होगी। लेकिन जो भी पतंजलि के साथ जायेगा उसके जीवन में क्रांति निश्चित है।
फिर एक और पांचवां रूप है--प्रिज्म की भांति। किरण गुजरती है तिकोन कांच के टुकड़े से, तो इंद्रधनुष पैदा हो जाता है। कृष्ण ऐसे हैं जैसे इंद्रधनुष। किरण पार भी होती है, लेकिन लाओत्सु जैसी नहीं। प्रिज्म में से पार होती है। सीधा-सरल कांच का टुकड़ा नहीं है। बड़े कोणों वाला कांच का टुकड़ा! बड़े पहलुओं वाला कांच का टुकड़ा! कृष्ण बहुआयामी हैं, बड़े पहलू हैं! और जब कृष्ण से किरण गुजरती है तो सात रंगों में टूट जाती है। बड़ा नृत्य, बड़ा गीत, बड़ा रास पैदा होता है। इसलिए मोर-मुकुट है। इसलिए मोर-पंख बंधे हैं। इसलिए हाथ में बांसुरी है। इसलिए पैर में घूंघर बंधे हैं। इसलिए पीतांबर वेश है। इसलिए सिल्क, शुद्धतम सिल्क के वस्त्र हैं। गले में हार है। बाहुएं आभूषणों से सजी हैं। करधनी बांधी हुई है। कृष्ण बड़े रंगीले हैं, बड़े सजे हैं। परमात्मा बड़े शृंगार में प्रगट हुआ है। अगर नाचना हो तो कृष्ण के साथ। अगर गीत की धुन सुननी हो तो कृष्ण के पास।
कृष्ण पतंजलि जैसे शिक्षक नहीं हैं, न महावीर जैसे हैं, अभिभूत कर लें, ऐसे हैं। न लाओत्सु जैसे कि शून्य में खो गये हों, ऐसे हैं। कृष्ण के साथ महोत्सव है, उत्सव है। कृष्ण के साथ राग-रंग है।
और सभी रूप परमात्मा के हैं। अब इसमें से जो किसी एक रूप से जकड़ गया उसको दूसरा रूप पहचान में न आयेगा। अगर तुमने कृष्ण की रंग-रेली देखी और उसको तुमने परमात्मा का रूप जाना, तो फिर महावीर तुम्हें सूखे-सूखे, रूखे- रूखे मालूम पड़ेंगे। तुम कहोगे, "ये कैसे भगवान हैं? बांसुरी तो बजती ही नहीं, भगवत्ता कहां है? संगीत तो पैदा ही नहीं होता, गीत तो बरसते ही नहीं, ये कैसे भगवान?" बड़े मरुस्थल जैसे मालूम होंगे।
और अगर तुम महावीर से अभिभूत हो गये और तुमने कहा, यही भगवान का रूप है
तो कृष्ण में तुमको लगेगा, कुछ गड़बड़ हो रही है। यह नाच कैसा? परम वीतराग

पुरुष कहीं नाचता है? यह बांसुरी कैसी? क्योंकि सब बांसुरी तो राग है। सब रास राग है। यह आसपास खड़ी हुई सुंदर स्त्रियां, नाचतीं, डोलतीं, यह सब क्या हो रहा है? यह तो संसार है।
तुम्हारी परिभाषा पर निर्भर है। और मैं धार्मिक व्यक्ति उसको कहता हूं, जिसकी परमात्मा की कोई परिभाषा नहीं; जो परमात्मा को अपरिभाष्य मानता है, अनिर्वचनीय मानता है। और जिस रूप में भी परमात्मा प्रगट होता है, पहचान लेता है, खोज लेता है; क्योंकि रूप तो सब उसी के हैं। इसलिए धोखे का कोई उपाय नहीं है।
तामीरे-कायनात को गहरी न.जर से देख
वह जर्रा कौन-सा है यहां जो अहम नहीं।
जरा गहरी नजर से देखो सृष्टि को! यहां कण-कण महत्वपूर्ण है! उसकी महिमा से आपूरित है! उसकी ही विभूति है, उसका ही प्रसाद है। लेकिन तुम्हारा जितना बड़ा प्याला होगा, उतनी ही तुम क्षमता जुटा पाओगे परमात्मा के प्रसाद की। इसलिए छोटी-छोटी परिभाषाओं के प्याले लेकर मत चलो। जब प्याला ही लेना है तो बड़ा लो कि सागर समा जायें। नहीं तो आज नहीं कल, तुम पाओगे कि तुम्हारे प्याले में बड़ा थोड़ा है। और थोड़ा तुम्हें कष्ट देगा। और कष्ट तुम्हारे प्याले के कारण हो रहा है। तुमने प्याला बड़ा चुना होता तो परमात्मा बड़े प्याले में भी उतरने को राजी था।
अनिर्वचनीय को पकड़ो! अव्याख्य की व्याख्या मत करो। अव्याख्य को अव्याख्य रहने दो। नाम-रूप मत धरो उसके। तो फिर जिस रूप में भी आयेगा, तुम पहचान लोगे। तुम हर रूप में पहचान लोगे। तुम रावण में भी देख लोगे, राम में तो देख ही लोगे। वह भी उसी का रूप है; विपरीत चला गया, गलत हो गया, बेस्वाद हो गया--लेकिन उसी का स्वाद है।
साकिए-दौरां से शिकवा बेश-कम का है फिजूल
जर्फ जितना उसने देखा उतनी पैमाने में है।
साकिए-दौरां से शिकवा बेश-कम का है फिजूल--साकी से कम-ज्यादा की शिकायत करनी व्यर्थ है। जर्फ जितना उसने देखा, उतनी पैमाने में है। उसने देखा, कितनी तुम पचा सकोगे, उतनी तुम्हारे पैमाने में है।
बड़ी करो परिभाषा! मेरी मानो तो परिभाषा को छोड़ो; इतनी बड़ी करो कि परिभाषा बचे न। तो तुम्हारा जर्फ बड़ा होगा, तुम्हारी क्षमता और पात्रता बड़ी होगी।
तब मैं ही तुम्हें भगवान नहीं, तुम भी, तुम्हारा बेटा भी, तुम्हारी पत्नी भी--सभी तुम्हें भगवान दिखाई पड़ने लगेंगे। कोई बीजरूप है, कोई वृक्षरूप हुआ, कोई कली बना, कोई फूल बना। और फूलों की हजारों-हजारों किस्में हैं; ऐसे ही परमात्मा के हजार-हजार रूप हैं।
फिर जो मुझे भगवान कहते हैं, वे केवल अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं। जिससे प्रेम हो जाये, वहीं भगवान दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। वह प्रेम ही क्या जिसमें भगवान दिखाई न पड़े? तुम मेरी तो छोड़ो, तुम अगर किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गये तो वहां भी दिव्यता की झलक दिखाई पड़ेगी। तुम अगर किसी पुरुष के प्रेम में पड़ गये तो वहां भी अचानक पुरुष-भाव खो जायेगा, परमात्म-भाव प्रगट होगा।
शबाब आया, किसी बुत पर फिदा होने का वक्त आया
मेरी दुनिया में बंदे के खुदा होने का वक्त आया।
जब कोई जवान होता है, शबाब आया, जवानी आई, किसी बुत पर फिदा होने का वक्त आया! अब किसी प्रतिमा पर पागल हो जाने का समय आ गया।
मेरी दुनिया में बंदे के खुदा होने का वक्त आया।
अब कोई बंदा खुदा जैसा दिखाई पड़ेगा।
यह तो साधारण प्रेम में हो जाता है। यह तो मजनू को लैला में दिखाई पड़ने लगता है। यह तो शीरी को फरिहाद में दिखाई पड़ जाता है। तो आत्मिक प्रेम में तो घटना और भी गहरी घटती है।
अब जिनका मुझसे प्रेम है, उन्हें भगवान दिखाई पड़ जायेगा। तुम्हारा हो
या न हो, मेरा तुमसे है; मुझे तुम में दिखाई पड़ता है। अगर तुम्हें न दिखाई पड़े तो तुम व्यर्थ ही वंचित रह जाओगे।

और ध्यान रखना, अगर मैं तुमसे कहूं कि परमात्मा मुझ में है और किसी में नहीं, तो खतरनाक बात कह रहा हूं। तुम भी यही सुनना चाहते हो, क्योंकि फिर तुम्हारा अहंकार मजे से रस ले सकेगा। लेकिन मैं कहता हूं, परमात्मा सबकी सामान्यता है। परमात्मा कोई विशेष बात नहीं है, कोई विशिष्टता नहीं है। परमात्मा सभी के होने का ढंग है, सभी का स्वभाव है। जानो न जानो, तुम परमात्मा हो, जब तक न जानोगे, बंद रहोगे; जिस दिन जान लोगे, खुल जाओगे। इसलिए कहीं अगर तुम्हें कोई फूल मिल जाये तो उसके पास थोड़े रह लेना, क्योंकि सत्संग संक्रामक होता है। फूल के पास शायद तुम्हारी कली भी खुलने का ढंग सीख जाये। बस इतना ही सत्संग का अर्थ होता है।

आखिरी प्रश्नः कुछ कहना था, नहीं कह पा रहा हूं। हृदय की पीड़ा प्रेम बनकर बिखर जाती है। मेरी दिनचर्या आनंदचर्या बन चुकी है। मेरी आंखें अब झपकने-सी लगी हैं, क्योंकि आपकी आंखों में जादू है। अब पिघलूं और बहूं--बस यही कह दें!

तथास्तु!
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
तेरहवां प्रवचन

वासना ढपोरशंख है

परमात्मा को अस्वीकार करनेवाले और लोग भी हुए हैं; लेकिन जैसी कुशलता
से महावीर ने अस्वीकार किया, वैसा किसी ने भी नहीं किया। कुशलता से मेरा अर्थ है, परमात्मा को अस्वीकार भी किया और फिर भी परमात्मा को बचा लिया। इनकार भी किया, परमात्मा को खोने भी न दिया। मूर्ति-भंजक बहुत हुए हैं; लेकिन मूर्ति तोड़ने में ही परमात्मा भी टूट गया। महावीर ने मूर्ति तोड़ी, लेकिन उस अमूर्त को पूरा-पूरा बचा लिया। यही उनकी कुशलता है।
परमात्मा जब मूर्ति बन जाता है तो थोथा हो जाता है। परमात्मा जब तक अमूर्त अनुभव हो, तभी तक बहुमूल्य है। जैसे ही आकार दिया, वैसे ही परमात्मा से दूर होने लगे; क्योंकि परमात्मा निराकार है। जैसे ही पत्थर में परमात्मा को देखना शुरू किया, वैसे ही आंखें अंधी होनी शुरू हो जाती हैं।
इस्लाम ने भी मूर्तियां तोड़ीं। महावीर ने भी मूर्तियां तोड़ीं। लेकिन महावीर ने बड़ी कुशलता से तोड़ीं। महावीर ने बड़ी अहिंसा से तोड़ीं, बड़े प्रेम से तोड़ीं। जरा-सा फासला है, लेकिन बड़ा भेद है। इस्लाम ने बड़े क्रोध से तोड़ दीं, बड़ी हिंसा से तोड़ दीं। हिंसा और क्रोध में, तोड़ने के आग्रह में, एक बात साफ हो गई। जब हम आग्रह से कोई चीज तोड़ते हैं तो उसका अर्थ है, कहीं अचेतन में हमारा लगाव है। तोड़ने योग्य मानते हैं, इतना श्रम उठाते हैं तोड़ने के लिए, तो जरूर हमें लगता है कि मूर्ति में कोई मूल्य है। महावीर ने इस तरह न तोड़ा। तोड़ा भी, मूर्ति बिखेर भी दी, चोट भी न हुई, आवाज भी न हुई, और भीतर जो छिपा था, अमूर्त, उसे बचा भी लिया।
कारवां लग चुका है रस्ते पर
फिर कोई रहनुमा न आ जाए
बुत-ओ-बुतखाना तोड़ने वाले
इसी जद में खुदा न आ जाए
देखो-देखो इन आंसुओं पे "जमील"
तुहमते-इल्तिजा न आ जाए।
बुत-ओ-बुतखाना तोड़ने वाले
इसी जद में खुदा न आ जाए।
मूर्तियों और मंदिर से छुटकारा उपयोगी है। लेकिन ध्यान रखना, इसी जद में कहीं खुदा न आ जाए! कहीं ऐसा न हो कि मंदिर और मूर्ति तोड़ने में खुदा भी टूट जाए!
उसे तो बचाना है, जो मंदिर में छिपा है। उसे तो बचाना है जो मूर्ति में छिपा है। महावीर ने बड़ी कुशलता से बचाया है। इसे समझने की कोशिश करें। "जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी ही दया है। अतः आत्म-हितैषी पुरुषों ने सभी तरह की जीव-हिंसा का परित्याग किया है। जिसे तू हनन योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह तू ही है।"
यही तो उपनिषद कहते हैं। यही तो वेद कहते हैं। लेकिन उपनिषद और वेद परमात्मा के नाम से कहते हैं; महावीर ने आत्मा के नाम से कहा। बड़ा फर्क है। जैसे ही परमात्मा का विचार होता है, ऐसा लगता है ईश्वर कोई और, कहीं और। दूरी पैदा हो जाती है। महावीर ने आत्मा के नाम से वही कहा। आत्मा से दूरी पैदा नहीं होती। वह तुम्हारा स्वरूप है। वह तुम्हारा होने का केंद्र है। तो दूसरे में भी तुम्हें जब अपना केंद्र दिखाई पड़ने लगे, तब महावीर कहते हैं, तुम जागे।
अहिंसा का पूरा शास्त्र दूसरे में भी स्वयं को देखने का ही शास्त्र है। लेकिन इस दूसरे को देखने को एक परमात्मा को महावीर नहीं मानते कि परमात्मा सब में छाया हुआ है। महावीर मानते हैं, तुम्हीं दूसरे से जुड़े हो और दूसरा तुमसे जुड़ा है। जीवन एक अंतरात्माओं का अंतर्जाल है; अंतरात्माओं का अंतर्संबंध है। जैसे मकड़ी का जाला होता है; एक धागे को

हिला दो, पूरा जाला हिल जाता है--ऐसे ही एक व्यक्ति की चेतना को हिला दो, सारा अस्तित्व हिल जाता है। एक वृक्ष को चोट पहुंचा दो, चोट सभी पर फैल जाती है। क्योंकि हम अलग-थलग नहीं हैं। हम टूटे-टूटे नहीं हैं। मेरे और तुम्हारे बीच कोई दीवाल नहीं है। जो मुझे घटेगा, वह तुम्हें भी घटेगा। जो तुम्हें घटेगा, वह मुझ तक भी आ जाएगा। जैसे हम सागर में एक कंकड़ को फेंक दें, लहरें उठती हैं, दूर-दिगंत तक फैलती चली जाती हैं। अगर मैंने तुम्हें चोट पहुंचाई तो एक कंकड़ फेंका सागर में। माना, तुम्हारी तरफ फेंका था, लेकिन उसकी लहरें सभी को आंदोलित करेंगी। उन सभी में मैं भी सम्मिलित हूं।
तो जो दुख देता है, वह अपने हाथ से अपने लिए दुख निर्मित करता है। जो सुख बांटता है, वह अपने हाथ से अपने लिए सुख निमंत्रित करता है। तुम जो दोगे वही तुम्हें मिलेगा। जो तुमने दिया था पहले वही तुम पा रहे हो। किया तुमने दूसरे के साथ था, हो गया तुम्हारे साथ।
महावीर कहते हैं, तुम्हारे अतिरिक्त यहां कोई नहीं है। तो तुम जो भी करोगे, अपने ही साथ कर रहे हो।
हमारी हालत ऐसी है, जैसे तुमने उस शेखचिल्ली की कहानी सुनी होगी। वह बैठा था, शांति से राह चलते लोगों को देख रहा था। एक मक्खी उसे परेशान करने लगी, आकर नाक पर बैठने लगी। एक-दो दफे उसने झपट्टा मारा, लेकिन मक्खियां जिद्दी होती हैं। जैसे ही उसने झपट्टा मारा, मक्खी फिर आकर नाक पर बैठ गई। फिर उसे क्रोध आने लगा। यह छोटी-सी मक्खी और उसे सता रही है! उसका क्रोध बढ़ता चला गया। उसने और झपट्टे जोर से मारे। फिर उसके बर्दाश्त के बाहर हो गया। पास में ही पड़ी हुई छुरी थी, उठाकर छुरी उसने मक्खी को मारी। मक्खी तो उड़ गई, नाक कट गई।
तुमने जो चोट दूसरे को मारी है, वह क्रोध में तुम्हीं को लग गई है। महावीर का यह मूलभूत आधार है। अगर तुम दुखी हो तो तुमने किसी को दुख देना चाहा था; अन्यथा तुम दुखी न हो सकते थे। तुम पीड़ित हो, परेशान हो, चिंताग्रस्त हो, संताप से भरे हो, चैन खो गया, शांति खो गई, जीवन की प्रफुल्लता खो गई है, तो जरूर यही तुमने जीवन के साथ किया है। जीवन के साथ तुम जो करते हो, उसी के प्रतिफल तुम्हें मिलते हैं।
हमारी हालत उलटी है। साधारणतः हम ऐसा सोचते हैं कि दूसरे हमें दुखी
कर रहे हैं। दूसरे तो केवल तुमने जो दिया था वापिस लौटा रहे हैं। तुम्हारी धरोहर तुम्हें सौंप रहे हैं। और अगर तुमने ऐसा देखा कि दूसरे तुम्हें दुखी कर रहे हैं तो तुम्हारी पूरी जीवन-दिशा भ्रांत हो जाएगी। तब तुम कभी सुखी न हो सकोगे। क्योंकि दूसरों को तुम कैसे बदलोगे? अपने को ही बदलना इतना मुश्किल है, दूसरों को तुम कैसे बदलोगे? फिर दूसरा कोई एक थोड़ी है, अनंत हैं! इस अनंत को तुम कैसे बदलोगे? और इसको बदलने के लिए तो अनंत काल लग जाएगा। अगर बदल भी पाए तो इतना समय लग जाएगा... ! एक तो बदलना असंभव, बदल भी लिया तो अनंत काल तुम दुख भोगते रहोगे।
यहीं मार्क्स और महावीर की दृष्टि में भेद है। मार्क्स कहता है, समाज जुम्मेवार है, अर्थव्यवस्था जुम्मेवार है। इसे बदल दो, सब सुख हो जायेगा। परमात्मा को मनुष्य से अलग दूर ऊपर आकाश में माननेवाले कहते हैं, प्रार्थना करो, पूजा करो, सब ठीक हो जायेगा। गंगा-स्नान करो, सब ठीक हो जायेगा। वे भी बड़ी झूठी बातें हाथ में दे रहे हैं।
महावीर सीधी बीमारी का निदान करते हैं। वे कहते हैं, न तो कोई परमात्मा ऊपर बैठकर तुम्हें दुख दे रहा है। इसलिए तुम्हें दुख नहीं दिया जा रहा है कि तुमने प्रार्थना नहीं की है, कि तुमने पूजा नहीं की है। ऐसा परमात्मा भी क्या परमात्मा होगा जो तुम्हारी पूजा की अपेक्षा और आकांक्षा रखता हो, और जो इसलिए नाराज हो जाता हो कि तुम ठीक से पूजा नहीं कर रहे, प्रार्थना नहीं कर रहे, तुम नियम और व्यवस्था से नहीं चल रहे! ऐसा परमात्मा तो बड़ा अहंकारी होगा। ऐसा परमात्मा तो स्वयं दुखी होगा, तुम्हें कैसे सुखी कर पाएगा? थोड़ा सोचो, अगर परमात्मा तुम्हारी प्रार्थनाओं से सुखी होता हो, तो मरा जाता होगा, पागल हुआ जाता होगा! इतने लोग हैं, कौन प्रार्थना करता है? जो प्रार्थना करते हैं, वे भी परमात्मा के लिए

प्रार्थना नहीं करते; वे भी कुछ और मांगने के लिए करते हैं। जब काम निपट जाता है तो भूल जाते हैं। दुख में याद आ जाती है, सुख में विस्मरण हो जाता है। दुख में विस्मरण नहीं होता, सुख में विस्मरण हो जाता है। परमात्मा को तो वे भी याद नहीं करते हैं। तो परमात्मा तो पागल हुआ जा रहा होगा, अगर तुम्हारी प्रार्थनाओं से उसे प्रसन्न होने की अपेक्षा है तो!
महावीर कहते हैं, ऐसा कोई परमात्मा नहीं है। यह भी तुम्हारे भुलावे हैं। तुम सत्य को नहीं देखना चाहते कि तुमने दुख फैलाया, इसलिए दुख पा रहे हो, तो तुम कोई न कोई बहाना खोजते हो बाहर। कभी समाज-व्यवस्था में, कभी भाग्य में, कभी प्रकृति के दोषों में, कभी त्रिगुणों में, कभी परमात्मा की प्रार्थना-पूजा में--लेकिन तुम बाहर कोई सहारा खोजते हो। तुम एक बात नहीं देखना चाहते कि तुम जुम्मेवार हो।
जीवन का सबसे बड़ा कठोर सत्य यही है--इसे स्वीकार कर लेना कि जो मुझे हो रहा है, उसके लिए मैं जुम्मेवार हूं। बड़ी उदासी आएगी। मैं जुम्मेवार हूं-- अपने दुखों के लिए, अपनी चिंताओं के लिए! दूसरे पर जुम्मा टाल के थोड़ी राहत मिलती है। कम से कम इतनी तो राहत मिलती है कि दूसरे कर रहे हैं, मैं क्या करूं! असहाय होने का मजा तो आ जाता है।
महावीर ने कहा, यह धोखाधड़ी अब और मत करो। यह तुमने किया था, वही लौट रहा है। यह तुमने दिया था, उसकी ही प्रतिध्वनि है। और अगर तुमने यह न देखा तो तुम फिर वही किए चले जा रहे हो जिसके कारण तुम दुखी हो। तो जाल फैलता ही चला जायेगा।
यह दुष्चक्र का अंत ही न होगा। चाक घूमता ही रहेगा।
"जीववहो अप्पवहो!" जीव का वध अपना ही वध है। जब भी तुमने किसी को मारा, अपने को ही काटा और मारा।
"जीवदया अप्पणो दया होइ।" और जीव पर जब भी तुमने दया की, किसी पर भी, तुमने अपने पर ही दया की।
"अतः आत्महितैषी पुरुषों ने सभी तरह की जीव-हिंसा का परित्याग किया है।" यह वचन समझना। "आत्महितैषी" आत्मकाम--अत्त कामेहिं। स्वार्थ का जो अर्थ होता है, वही। आत्महितैषी, अपना हित चाहनेवालों ने... ।
यहां जैनों को भी कुछ बात समझ लेनी जैसी है। भ्रांतियां हमारी ऐसी हैं कि सत्य भी हमारे हाथ लग जाएं तो हम उन्हें विकृत कर लेते हैं। जैन सोचते हैं कि वे जीव-दया कर रहे हैं, दूसरे पर दया कर रहे हैं। महावीर कहते हैं, जिसने जीव पर दया की उसने अपने पर दया की। बस इतना ही। नहीं तो एक नया अहंकार, एक नया भूत पैदा होता है कि मैं जीव-दया कर रहा हूं, कि मैं अहिंसक हूं, कि मैंने देखो कितने जीवों को बचाया! एक नई अकड़ पैदा होती है। इतना ही कहो कि तुमने अपने को दुख देने से स्वयं को बचाया। तुमने स्वार्थ साधा। तुमने आत्महित साधा। इसमें घोषणा और विज्ञापन करने की कोई भी जरूरत नहीं है। तुम ऐसी तो घोषणा नहीं करते कि आज मैंने अपना सिर दीवाल से नहीं तोड़ा। तुम ऐसा तो नहीं कहते कि आज मैंने पैर में छुरा नहीं मारा। तुम ऐसा कहोगे तो लोग हंसेंगे। लोग कहेंगे, इसमें क्या बड़ा किया? यह तो सभी करते हैं। अगर तुमने जीव-हिंसा नहीं की, तो कुछ पुण्य किया, ऐसा मत सोचो। इतना ही
कि अपने पर दया की। यह सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। नहीं तो एक नया पागलपन शुरू होगा। पहले तुम सोचते थे, दूसरे तुम्हें दुख दे रहे हैं; अब तुम सोचने लगोगे कि तुम दूसरों को सुख दे रहे हो। लेकिन अगर तुम दूसरों को सुख दे सकते हो तो दुख भी दे सकते हो। मूल भ्रांति तो मौजूद रही। और अगर तुम दूसरों को सुख-दुख दे सकते हो तो दूसरे तुम्हें क्यों नहीं दे सकते? तर्क तो वहीं का वहीं रहा, कहीं हटा न।
महावीर चाहते हैं कि तुम इस गहन सत्य को एक बार प्रगाढ़ता से अंगीकार
कर लो कि तुम जो करोगे, वह अपने ही साथ कर रहे हो। दूसरे निमित्त हो सकते हैं, बहाने हो सकते हैं। लेकिन अंततः, अंततोगत्वा, सभी किया हुआ अपने साथ किया हुआ सिद्ध होता है।
"जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी ही दया है... ।"
महावीर कहते हैं, धार्मिक व्यक्ति स्वार्थी व्यक्ति है। उसे समझ में
आ गया कि अपने साथ क्या करना है। उसने अपने साथ शिष्टाचार सीख लिया।

अधार्मिक व्यक्ति अशिष्ट है; अपने साथ ही अशिष्टता कर रहा है। अधार्मिक व्यक्ति अज्ञानी है; अपने को ही काट रहा है, चोट पहुंचा रहा है। सोचता है, दूसरे को चोट पहुंचा रहे हैं। उस सोचने में, उस सपने में, अपने को ही तोड़ता चला जाता है।
"आत्महितैषी पुरुषों ने सभी तरह की जीवहिंसा का परित्याग किया है।" उन्होंने किसी भी तरह की हिंसा को अपने जीवन में बचाया नहीं।
हिंसा का अर्थ होता हैः दूसरे को दुख देने की आकांक्षा। हिंसा का अर्थ होता हैः दूसरे के दुख में सुख लेने का भाव। हिंसा का अर्थ हैः परपीड़न में रस। जिसको आज आधुनिक मनोविज्ञान सैडि.जम कहता है--दूसरे को पीड़ा देने में रस--उसको ही महावीर हिंसा कहते हैं।
महावीर की हिंसा का सिद्धांत अति मनोवैज्ञानिक है। दुनिया में दो तरह
के लोग हैं। मनोवैज्ञानिक उनका विभाजन करते हैं। एक--जिनको वे सैडिस्ट कहते हैं, जो दूसरे को सताने में रस लेते हैं।
एक बड़ा लेखक हुआः सादे। उसके नाम पर सैडि.जम निर्मित हुआ। उसका एक ही
रस था, दूसरों को सताने में। वह प्रेम भी करता किसी स्त्री को तो द्वार-दरवाजे बंद करके पहले तो उसकी पिटाई करता, कोड़े मारता, लहूलुहान कर देता। वह चिल्लाती और चीखती, भागती और वह कोड़े मारता। और भागने का कोई उपाय न था, द्वार-दरवाजे बंद थे। जब तक वह चीखती-चिल्लाती न, रोती-भागती न, तब तक उसकी कामोत्तेजना न जागती। ये कमोत्तेजना का उपाय था। जब वह स्त्री भागने, चीखने-चिल्लाने लगती और लहू बहने लगता, तब उसकी कामोत्तेजना जगती। तब वह उसे प्रेम करता। उसके नाम पर सैडि.जम शब्द निर्मित हुआ। वह जेल में मरा, क्योंकि अनेक स्त्रियों के साथ उसने यही किया।
लेकिन एक बड़े आश्चर्य की बात पता चली कि जिन स्त्रियों ने भी दि सादे
से प्रेम किया, उनको फिर किसी दूसरे का प्रेम कभी न जंचा। माना कि वह दुबारा हिम्मत न की उसके पास जाने की, लेकिन फिर सब प्रेम फीके पड़ गए। यह भी थोड़ी हैरानी की बात हुई। जैसी उत्तेजना उसने जगाई, जैसा तूफान उसने खड़ा कर दिया, वैसा फिर कोई भी न कर पाया। दि सादे तो अपना बैग साथ में लेकर चलता था--कहां कौन मिल जाये, क्या पता! उस बैग में, जैसे डाक्टर लेकर चलता है, उसका सब साज-सामान होता था। कोड़े, कांटे, चुभाने के सामान, सब सामान लेकर चलता था। कब कहां कोई स्त्री मिल जाए, किसी से प्रेम हो जाए, और सामान न हो तो कैसे प्रेम करे!
लेकिन स्त्रियों के अनुभव से भी यह पता चला कि उनको भी इसमें रस आया है। चाहे हिम्मत न रही दुबारा इस आदमी के पास जाने की, लेकिन इस आदमी को वे स्त्रियां कभी भूल न सकीं। तो मनोवैज्ञानिकों को पहली दफा एक सूत्र समझ में आना शुरू हुआ कि स्त्रियों को स्वयं को पीड़ा देने में कुछ रस मालूम होता है; जैसे पुरुषों को दूसरों को पीड़ा देने में कुछ रस मालूम होता है। फिर एक दूसरा आदमी हुआः मैसोच। उसके नाम पर दूसरा शब्द बनाः मैसोचि.जम। मैसोचि.जम का अर्थ हैः स्वयं को दुख देने में रस लेना। वह खुद को सताता था। वह भी कोड़े मारता था, लेकिन खुद को मारता था। और जब तक वह अपने को ठीक से पीटता, मारता और खुद चीखने-चिल्लाने न लगता, तब तक उसकी कामोत्तेजना न जगती थी। तो जो स्त्री उसके प्रेम में पड़ जाती, वह स्त्री को कहता कि पहले मुझे मारो, पीटो, मेरी छाती पर नाचो। जैसे काली नाचती है शिव की छाती पर, ऐसा मैसोच कहता कि पहले मेरी छाती पर नाचो, मुझे रौंदो। जब वह काफी पीटा जाता, और खून बहने लगता और सब तरफ कोड़ों के निशान बन जाते, तब कामोत्तेजना का ज्वार उठता। तब वह प्रेम कर पाता। ये भी उसके लिए कामोत्तेजना को जगाने का उपाय था। उसके नाम पर मनोवैज्ञानिकों ने दूसरा शब्द बनायाः मेसोचि.जम।
तो दो तरह के लोग हैं दुनिया मेंः दूसरे के दुख में रस लेनेवाले और स्वयं के दुख में रस लेनेवाले।
तुम जिनको त्यागी, महात्मा कहते हो, उनमें से अधिक तो मेसोचिस्ट हैं, बीमार हैं। वास्तविक स्वस्थ आदमी न तो दूसरे को दुख देने में रस लेता है, न खुद को दुख देने में रस लेता है। दुख में रस नहीं लेता--स्वस्थ आदमी का

लक्षण है। दुख में रस लेने का अर्थ हुआः परवर्शन; कुछ विकृति हो गई; कहीं कुछ गड़बड़ हो गई बात।
फूल में कोई रस ले, यह समझ में आता हैः लेकिन काटों में कोई रस लेने लगे... । फूल को कोई अपने हाथों पर रखे, आंखों की पलकों से छुआए, समझ में आता है। फूल की माला बनाकर अपने गले में डाल ले, समझ में आता है।
लेकिन कांटों को कोई अपने में चुभाने लगे और कांटों का हार बनाकर पहनने लगे, तो कुछ विकृति हो गई। कहीं स्वभाव से च्युत हो गया यह आदमी। दुख में रस, चाहे वह अपने दुख में हो और चाहे दूसरे के दुख में हो, हिंसा है। इसलिए अगर तुम मुझ से पूछो तो महावीर के पीछे चलने वाले जैन मुनियों में निन्यान्नबे प्रतिशत तो महावीर के दुश्मन हैं। वे हिंसा में रस ले रहे हैं; यद्यपि उन्होंने हिंसा का रुख अपनी तरफ बदल लिया है।
यह भी थोड़ा सोचने जैसा है।
महावीर कहते हैं, दूसरे को भी दुख दो तो भी अपने पर लौटता है--जरा वर्तुल बड़ा होता है।
अगर तुमको मैं कोड़ा मारूं तो भी कोड़ा मेरी तरफ लौटेगा, थोड़ा समय लगेगा; क्योंकि तुम तक की दूरी जाना, फिर लौटना। फिर हो सकता है, तुम भी सीधा-सीधा न भेजो, केयर आफ भेजो; तो लंबी यात्रा होगी। कभी जन्म भी लग जाते हैं। कभी जन्मों के बाद लौटेगा कोड़ा। मैं भी भूल चुका होऊंगा कि कब तुम्हें दिया था--लेकिन आएगा।
फिर जिसको मेसोचिस्ट हम कहते हैं, वह ज्यादा कुशल है। वह कहता है, इतनी लंबी यात्रा क्या करनी है; कोड़ा अपने हाथ में लेकर खुद ही को मार लेना उचित है। वह ज्यादा नगद है। मगर हर हालत में कोड़ा अपने पर ही पड़ता है। तो दुख चाहे तुम दूसरे को दो, चाहे अपने को दो--तुम हिंसक हो।
तुमने देखा होगा काशी के रास्तों पर कांटों पर लेटे हुए त्यागियों को--वे मैसोचिस्ट हैं, वे हिंसक हैं। वे रस ले रहे हैं खुद को सताने में। तुमने ऐसे साधुओं को देखा होगा, जो महीनों का उपवास कर रहे हैं। वे दुखवादी हैं। वे अपने को सता रहे हैं। वे हिंसा में मजा ले रहे हैं। तुमने ऐसे साधुओं के बाबत सुना होगा, जिन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं। वे दुखवादी हैं। तुमने ऐसे साधुओं के संबंध में सुना होगा जिन्होंने अपनी जननेंद्रियां काट ली हैं। वे दुखवादी हैं।
आदमी दो हिस्सों में बंटा हैः दूसरे को दुख दो या अपने को दुख दो, मगर दुख दो।
स्वस्थ आदमी सब भांति की हिंसा का त्याग करता है। यह महावीर के स्वास्थ्य की परिभाषा है। स्वस्थ व्यक्ति अहिंसक होता है। न वह दूसरे को दुख देता न स्वयं को दुख देता, क्योंकि दुख देने में कुछ अर्थ ही नहीं है। दुख देना तो जीवन के अवसर को व्यर्थ करना है, खराब करना है। जहां संगीत उठ सकता था आनंद का, उस ऊर्जा को तुमने दुख में बदल लिया। जहां फूल खिल सकते थे, वहां कांटे बिछा लिये।
"जीव का वध अपना वध है।" ऐसे महावीर परमात्मा की भावना को भीतर से ले आते हैं। मंदिर गिरा देते हैं, परमात्मा को बचा लेते हैं। क्योंकि जब मेरे देने से तुम तक दुख पहुंचता है और फिर मुझ पर लौट आता है, तो इसका अर्थ एक ही हुआ कि मैं और तुम जुड़े हैं; कोई सेतु है। कुछ आवागमन हो रहा है। कुछ लेन-देन चल रहा है। हमारे फासले और फर्क ऊपर-ऊपर होंगे, भीतर कहीं गहराई में हम जुड़े हैं। तभी तो मैं तुम्हें दुख दे पाता हूं और फिर दुख मेरे पास लौट आता है। बीच में कोई दीवाल होती, कोई खाई होती, खड्ड होता, सेतु न होता, हमें जोड़नेवाला कोई तत्व न होता, तो ठीक था; दुख कैसे लौटता? जाता है, आता है। तरंगें जाती हैं, लौट आती हैं। अर्थ हुआ कि कोई गहराई में हम एक ही सागर के हिस्से हैं। उस सागर का नाम ही परमात्मा है।
लेकिन महावीर उसे बाहर स्थापित नहीं करते; तुम्हारे भीतर स्थापित करते हैं। क्योंकि बाहर जैसे ही परमात्मा स्थापित किया जाता है, लोग पूजा और प्रार्थना में लग जाते हैं। लोग जीवन का रूपांतरण नहीं करते, पूजा- प्रार्थना करते हैं। वे परमात्मा से कहते हैं, हे प्रभु! जीवन को बदलो! बिगाड़ते जीवन को खुद हैं और आशा रखते हैं, कोई और बदलेगा। तो फिर ऐसा

परमात्मा भी पुराने ढांचे को चलाने का ही आधार बन जाता है। क्योंकि जब तक तुम न बदलोगे, कोई न बदलेगा। अगर कोई परमात्मा होता तो उसने कभी का बदल दिया होता। तुम कितने दिन से प्रार्थना कर रहे हो! तुम्हारे हाथ कब से जुड़े हैं नमाज में! तुम कितने दिन से झुके बैठे हो मूर्तियों के समाने! कुछ भी तो नहीं होता। सदियां बीत गईं, जनम-जनम तुमने प्रार्थना की है, पूजा की है--कुछ भी तो नहीं होता। तुम वहीं के वहीं हो।
देखो पूजा करनेवाले को! रोज चला जाता है मंदिर, रोज लौट आता है--वही का वही है! कोई भी तो रूप बदलता नहीं। हां, एक और खतरा पैदा हो जाता है। अब वह आश्वस्त हो जाता है कि ठीक है, प्रभु ख्याल रखेगा। और जो उसे करना है, किये चला जाता है। जो करता है, उससे जीवन निर्मित होगा; पूजा से नहीं। देखो-देखो इन आंसुओं पे "जमील"
तुहमते-इल्तिजा न आ जाए!
जमील ने कहा है कि ये जो आंसू बह रहे हैं आनंद के, कोई भूल से इन्हें प्रार्थना न समझ ले! कहीं इन पर प्रार्थना का आरोप न आ जाए!
महावीर ने कभी हाथ भी नहीं जोड़े, झुके भी नहीं--कहीं प्रार्थना का आरोप न आ जाए! कहीं कोई यह न कह दे कि यह आदमी प्रार्थना कर रहा है! क्योंकि प्रार्थना का अर्थ हुआः मैंने किया है गलत, कोई और उसे ठीक कर दे। लेकिन यह तो गणित के बाहर होगा, जीवन के गणित के विपरीत होगा। मैंने किया गलत, मुझे ही ठीक करना होगा। जो घट रहा है मेरे पास, वह मेरे ही कर्मों का फल है। मुझे कर्म रूपांतरित करने होंगे। कठिन होगा मार्ग, लेकिन कोई उपाय नहीं। कठिन होगा मार्ग, पर बस एक ही मार्ग है। कठिन ही मार्ग है। "जिसे तू हनन योग्य मानता है वह तू ही है।" जिसे तू मारने चला है, जिसे तूने मारने की योजना बनाई है, वह तू ही है। "जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह भी तू ही है।" जिसे तूने गुलाम बना लिया है वह भी तू है। जिसे तू मारने चला है वह भी तू है। यह एक ही आत्मा का विस्तार है। ठीक तेरे जैसा ही चैतन्य दूसरे में भी है।
हजार मिट्टी के दीये हों, ज्योति एक है। ज्योति का स्वभाव एक है। मिट्टी के दीयों में बड़ा फर्क हो सकता है--एक आकार, दूसरा आकार, हजार आकार हो सकते हैं; एक रंग, दूसरा रंग, हजार रंग हो सकते हैं। छोटे दीये, बड़े दीये, लेकिन सबके भीतर जो ज्योति जलती है वह एक है।
जो मेरे भीतर है, उससे अन्यथा तुम्हारे भीतर नहीं है। मुझ में और तुम में जो फर्क और फासले हैं, वे मिट्टी के दीये के हैं। मेरी देह अलग, तुम्हारी देह अलग; रंग-ढंग अलग, शैली-व्यवस्था अलग--पर सब ऊपर-ऊपर की बात है! जैसे-जैसे भीतर उतरोगे, वैसे-वैसे ही भेद समाप्त होते जाते हैं। जब ठीक अंतर्तम में पहुंचोगे तो पाओगेः जो दीया यहां जल रहा है, जो ज्योति यहां जल रही है, वही ज्योति वहां भी जल रही है। ज्योति का स्वभाव एक है। इसलिए इस ज्योति को नुकसान पहुंचाना अपने ही स्वभाव को नुकसान पहुंचाना है। "जिसे तू हनन योग्य मानता है वह तू ही है। और जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह भी तू ही है। इसलिए न तो किसी को आज्ञा में रख, न किसी को हनन योग्य मान।"
यहां सभी मालिक हैं; गुलाम होने को कोई भी नहीं है।
थोड़ा सोचना। तुम तो जिनसे प्रेम करते हो, उन्हें भी गुलाम बना लेते हो। पति पत्नी का मालिक हो जाता है। वह पत्नी से कहता है, मान कि मैं परमात्मा हूं। पति परमेश्वर हो जाता है। पत्नी यद्यपि लिखती है, "तुम्हारी दासी" चिट्ठी-पत्री में, बाकी वह असलियत नहीं है। दिल में वह भी सोचती है कि तुम्हारी मालकिन। इसीलिए तो घर स्त्री का समझा जाता है, वह घरवाली समझी जाती है। कोई पति को थोड़े ही घरवाला कहता है, पत्नी को! मालकियत उसकी है। और मुश्किल है ऐसा पति खोजना जो उसकी मालकियत मानकर न चलता हो। तो ऊपर-ऊपर पति बाजार में दिखलाता रहता है कि मैं मालिक हूं, भीतर-भीतर पत्नी रोज उसे जतलाती रहती है सुबह से सांझ तक, अनेक मौकों पर कि मालिक कौन है, ठीक समझ लेना!
मुल्ला नसरुद्दीन के घर उसके मित्र इकट्ठे थे एक दिन। कुछ झंझट हो गई। पत्नी झपटी, जैसी उसकी आदत। तो वह भागकर बिस्तर के नीचे छिप गया।

पत्नी झुक आयी और उसने कहा, "निकल बाहर... ! निकलो बाहर।" तो मुल्ला और भीतर सरकता गया बिस्तर के। उसने कहा, "निकलते हो कि नहीं... !" उसने कहा कि "आज तय ही हो जाये कि मालिक कौन है! नहीं निकलते!"
यह कोई तय करने का ढंग हुआ! लेकिन जिन्हें हम प्रेम करते हैं उनको भी
हम गुलामी में बांधते हैं। इसलिए तो प्रेम से भी लोग ऊब जाते हैं; प्रेम से भी छुटकारा चाहते हैं। बड़ी अजीब बात है! यहां इस जगत में प्रेम भी दुख देता मालूम पड़ता है। क्योंकि प्रेम हम कहते हैं, है कुछ और। नाम हम अच्छे चुनते हैं, सुंदर चुनते हैं--लेकिन नाम ही सुंदर और अच्छे हैं, भीतर कुछ और है। तुम जरा गौर करना कि जब तुम किसी को कहते हो कि मुझे तुझसे प्रेम है,
तो तुम जरा गौर करना, तुम्हारी असली आकांक्षा क्या है? असली आकांक्षा कुछ और होगी। प्रेम के नाम के नीचे कुछ और छिपा होगा--हिंसा छिपी होगी, स्वामित्व का भाव छिपा होगा, महत्वाकांक्षा छिपी होगी। एक आदमी को कब्जे में ले लेने की आकांक्षा छिपी होगी। इसीलिए तो जिसको तुम कब्जे में ले लेते हो, उसमें रस खो जाता है।
किस पति को पत्नी में रस है? बड़ा रस था जब तक पाया न था। तब तक जान दांव
पर लगा देने को तैयार थे। मिलते ही सब हाथ-पैर ढीले हो जाते हैं, बात खतम हो गई! क्योंकि जो रस था, वह जीतने में था। जो रस था, वह चुनौती में था। अब चुनौती दूसरी स्त्रियों से आती है, पत्नी से नहीं आती। पत्नी तो जीत ली। अब जीते हुए को क्या जीतना! कोई भी रास्ते से गुजरती स्त्री आकर्षण का कारण बन जाती है, क्योंकि फिर, फिर कोई विजय की यात्रा के लिए एक निमंत्रण मिला। प्रेम के नाम पर जीत की आकांक्षा होगी। जीत यानी अहंकार। और फिर प्रेम के नाम पर कब्जियत की दौड़ चलती है, कौन कब्जा करे! कौन असली मालिक है, यह तय करने में जिंदगी खराब हो जाती है। हर छोटी-बड़ी बात पर झगड़ा चलता है। कलह, एक-दूसरे को आज्ञा में रखने की चेष्टा! ... बाप बेटे से कहता है कि मेरी मानकर चल, क्योंकि मुझे तुझसे प्रेम है। मैं जो कहता हूं वैसा कर, क्योंकि मुझे तुझसे प्रेम है। मैं जो कहता हूं, उससे विपरीत मत करना, क्योंकि मुझे तुझसे प्रेम है। मैं तेरे हित में कह रहा हूं!
अपना हित साध नहीं पाये, दूसरे का हित तुम क्या साधोगे? खुद कोरे के कोरे रह गये, बेटे को उपदेश दिये जा रहे हो! बेटा भी सुन लेता है जब तक कमजोर है। वह भी देखता है कि ठहरो थोड़े, जल्दी ही मैं भी शक्तिशाली हो जाऊंगा। तो अगर बेटे जवान होकर बाप को सताने लगते हैं, यह कुछ आकस्मिक नहीं है। हर बाप ने बेटे को, जब वह छोटा था, सताया है--उसके ही हित में सताया है; मगर सताया है। हित की बातें तो सब व्यर्थ की बकवास है--सताने का मजा... ! बूढ़े हो जाने पर बेटा उत्तर देने लगता है। जो दिया था, वह वापिस लौटने लगता है।
मैंने सुना है, एक घर में शादी होकर, पत्नी आयी। तो बूढ़ा बाप, पति का बाप, उसे पसंद नहीं पड़ता था। किसी को पसंद नहीं पड़ता। वह चाहती थी कि किसी तरह इस बूढ़े से छुटकारा हो। एक बोझ... । लेकिन कोई उपाय न था। कहीं जाने की कोई जगह न थी। बूढ़े को वहां रहना ही पड़ा। वह बहुत बूढ़ा हो गया था। उसके हाथ भी कंपते थे। भोजन करता तो कभी-कभी चम्मच से बाहर सामान भी गिर जाता, कभी चम्मच भी गिर जाती, कभी उसके कपड़ों पर भी खाना गिर जाता। तो पत्नी बहुत नाराज होती थी। आखिर पत्नी ने एक दिन उसे उठा दिया कुर्सी से, खाने की टेबल पर से, कोने में ले जाकर बिठा दिया और कहा कि चम्मच से अब खाना तुम बंद करो! एक बर्तन में इकट्ठा सब भोजन रख दिया और कहा कि इसी से तुम भोजन करो। उस दिन से बूढ़े को टेबल पर आने की मनाही हो गई। लेकिन बूढ़ा बूढ़ा होता जा रहा था और हाथ-पैर उसके कंपते थे और अब और कंपने लगे। क्योंकि अब घर में यह स्थिति हो गई कि आदमी की आदमी की तरह गिनती न रही। एक दिन उसके हाथ से बर्तन भी छूट गया, तो उसकी बहू ने कहा कि "अब बहुत हो गया! अब तुम्हें तो जानवरों जैसी व्यवस्था करनी पड़गी।" तो उसने एक बड़ी बालटी में उसके सामने भोजन रखना शुरू कर दिया; जैसे गाय-भैंस का रखते हों।
ऐसा कुछ दिन चला। इस युवती का छोटा बेटा था। वह यह सब देखता रहता था।
एक दिन वह बाहर से, बढ़ई कुछ काम कर रहा था घर में, लकड़ी के टुकड़े उठा लाया और उन्हें जोड़-जोड़कर कुछ बनाने लगा। तो उसकी मां ने और उसके पिता ने, दोनों

टेबल पर बैठे थे, पूछा, "क्या कर रहे हो?" तो उसने कहा कि मैं भी आप दोनों के लिए, जब आप बूढ़े हो जाएंगे, तो यह लकड़ी की बालटी बना रहा हूं।
स्वभावतः सब चीजें वर्तुल में घूमती हैं। जो तुम अपने बाप के साथ कर रहे हो, याद रखना, बेटा तुम्हारे साथ करेगा! ध्यान रखना, जो बेटा तुम्हारे साथ कर रहा है, वह तुमने अपने बाप के साथ किया था। और ध्यान रखना, तुम जो बेटे के साथ अभी कर रहे हो, वह कल लौटायेगा। क्योंकि जिंदगी में कोई भी चीज रुकती नहीं, लौटानी पड़ती है।
सोच-समझकर! प्रेम के नाम पर अधिकार, गुलामी मत थोपना। क्योंकि प्रेम
तो परम स्वतंत्रता है। जिसको प्रेम है, वह अकारण है। वह कुछ भी थोपता नहीं। प्रेम का अर्थ ही होता हैः दूसरे को दूसरा होने देने की स्वतंत्रता। दूसरा जैसा है उसको वैसा ही अंगीकार कर लेने की क्षमता प्रेम है। न उसे बदलना है--बड़े-ब.ड़े आदर्शों के नाम पर भी नहीं, क्योंकि सब आदर्श मालकियत करने के ढंग हैं। तुम बेटे से कहते हो, यह आदत गलत है, इसे छोड़ो! अब तुम आदत के बहाने बेटे की गर्दन पर कब्जा कर रहे हो। आदत अगर गलत है तो निवेदन कर दो। आदत अगर गलत है तो जतला दो। लेकिन इसके बहाने मालकियत मत करो। इतना ही कहो कि मुझे गलत दिखाई पड़ती है आदत, फिर तुम्हारी मर्जी! फिर तुम अपने मालिक हो! फिर अगर तुमने गलत को भी चुना, तो चुनो!
कल रात मैं एक आधुनिक विचारक, "सा.ज" की एक किताब पढ़ रहा था। उसमें कुछ परिभाषाएं दी हैं। उसमें जवान, प्रौढ़ आदमी की परिभाषा भी है। उसने लिखा हैः प्रौढ़ वह आदमी है, जिसे ठीक करने की तो आजादी है ही, गलत करने की भी आजादी है। अगर गलत करने की आजादी न हो तो आजादी क्या हुई? अगर ठीक ही करने की स्वतंत्रता हो तो यह तो स्वतंत्रता शब्द का बड़ा दुरुपयोग हुआ।
प्रेम स्वतंत्र करता है। निश्चित, सावधान करता है, कि यहां-यहां मैं गया हूं और मैंने गड्ढे पाए, तुम सोच-समझ कर जाना, सम्हलकर जाना। अगर जाने का मन हो तो मेरा अनुभव ले लो, मेरे अनुभव के बाद जाना। जाने से नहीं रोकता हूं; लेकिन मैं गिर गया था, उसकी खबर तुम्हें दे देता हूं। हो सकता है, तुम न भी गिरो। हो सकता है, तुम सम्हलकर जाओ और बचकर निकल आओ। लेकिन मैं जल गया था। तो इतना तुम्हें कह देता हूं कि वहां जलन है, फिर तुम सोचकर जाना। न जाओ, तुम्हारी मर्जी! जाओ तुम्हारी मर्जी!
अपना सत्य निवेदन कर देना पर्याप्त है। लेकिन गर्दन पर हम हावी हो जाते हैं। हम आदर्शों का उपयोग भी कारागृहों की तरह करते हैं, जंजीरों की तरह करते हैं।
महावीर कहते हैंः
"जिसे तू हनन योग्य मानता है, वह तू ही है। और जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है वह भी तू ही है।"
एक बड़ी महत्वपूर्ण बात इस सूत्र से निकलती है। अगर तुमने किसी को गुलाम बनाने की चेष्टा की तो वही व्यक्ति तुम्हें भी गुलाम बनाने की चेष्टा करेगा। क्योंकि जिसे तुम आज्ञा में रखना चाहते हो, वह तुम ही हो। भूल के किसी को गुलाम मत बनाना, अन्यथा तुम गुलाम बन जाओगे। और अगर तुम गुलाम बन गए हो तो खोजबीन करना; तुम पाओगे कि गुलाम बनाने की आकांक्षा का ही यह परिणाम है। परिपूर्ण स्वस्थ आदमी वही है, जो न तो किसी का गुलाम है और न किसी को गुलाम बनाना चाहता है। क्योंकि जब तक गुलाम बनाने की चाह है तब तक गुलामी आती रहेगी।
ठीक तुम जैसे ही लोग हैं सब तरफ। जो तुम चाहते हो, वही वे भी चाहते हैं। जो तुम नहीं चाहते, वही वे भी नहीं चाहते। इस सत्य को ठीक से समझना। जीसस से कोई पूछता है, एक युवक निकोदेमस, कि मैं जल्दी में हूं, मुझे कुछ छोटा-सा सूत्र दे दें जो मेरा जीवन बदल दे। तो जीसस ने कहा, दूसरे के साथ वह मत करना, जो तुम चाहते हो, दूसरा तुम्हारे साथ न करे। उन्होंने कहा, इतना काफी है। इतने से सारा धर्म निकल आता है। दूसरे के साथ वह मत करना, जो तुम नहीं चाहते कि दूसरा तुम्हारे साथ करे। बस काफी है।
यह एक वचन ही बाइबिल की पूरी कथा है, पूरा सार है। महावीर का भी पूरा सार यही है। वे समझा रहे हैं कि तुम्हें यह बात ख्याल में आ जाये कि दूसरा "दूसरा" नहीं है--तुम्हारे जैसा ही चैतन्य, तुम्हारी जैसी ही आत्मा, ठीक

तुम्हारे ही जैसे सुख और दुख का आकांक्षी, ठीक तुम जैसा ही मोक्ष का खोजी, स्वतंत्रता का दीवाना है।
इतना ख्याल रखना। इतना ख्याल रखकर अगर चले तो न तो तुम किसी को बांधोगे और न तुम बंधोगे।
बांधनेवाला भी बंध जाता है। कारागृह का मालिक भी कारागृह को छोड़कर थोड़े ही जा सकता है। कैदी भीतर होंगे, मालिक बाहर होगा--लेकिन बाहर जो है वह भी खड़ा रहता है कि कैदी भाग न जायें। उसे भी कैदियों कि साथ कैदी ही हो जाना पड़ता है।
"जिनों ने, जाग्रत पुरुषों ने कहा है, राग आदि की अनुत्पत्ति अहिंसा,
और उसकी उत्पत्ति हिंसा है।"
"जागे हुए पुरुषों ने कहा है, राग आदि की उत्पत्ति हिंसा और अनुत्पत्ति अहिंसा है।"
यह अहिंसा का बड़ा सूक्ष्मतम विश्लेषण है। दूसरे को चोट करने जाओ, यह
तो दूर की बात है। यह तो फिर विचार का स्थूल होने की बात है। तुम्हारे मन में राग उठा तभी हिंसा उठ जाती है। फिर तुम करो या न करो, यह सवाल नहीं है। तुम्हारे मन में जरा-सा राग उठा... तुम राह से जाते थे, एक बड़ा मकान देखा, तुम्हारे मन में हुआः "ऐसा मकान मैं भी बनाऊं!" हिंसा हो गई। हिंसा का बीज पड़ गया; क्योंकि अब इस बड़े मकान को बनाने के लिए धन चाहिए, इस बड़े मकान को बनाने के लिए दूसरों से धन छीनना पड़ेगा। इस बड़े मकान को बनाने के लिए अब प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी। इस बड़े मकान को बनाने के लिए ईमानदारी, बेईमानी, सब मार्गों से खोजबीन करनी पड़ेगी--जैसे भी। इस बड़े मकान की आकांक्षा के उठते ही तुम्हारे भीतर हिंसा का बीज पड़ गया। देर लगेगी वृक्ष बनने में; लेकिन अगर बचना हो वृक्ष से तो बीज से ही बच जाना।
इसलिए महावीर कहते हैं, राग की उत्पत्ति--हिंसा। ऐसा मत सोचना कि किसी
की गर्दन काटोगे तब हिंसा।
यही अपराध और पाप का भेद है। अपराध--जब पाप वास्तविक होकर प्रगट हो जाता है। जब पाप कानून की पकड़ में आ जाता है तो अपराध। और जब तक पाप कानून की पकड़ में नहीं आता तभी तक पाप। तुम अपने मन में बैठे अगर दुनियाभर को भी मारने का विचार करते रहो, तो कोई अदालत तुम्हें दंड नहीं दे सकती। पुलिस नहीं आ सकती पकड़ने कि तुम बहुत हिंसा के विचार कर रहे हो। विचार की स्वतंत्रता है तुम्हें। विचार को व्यक्त मत करना।
कानून इतनी ही फिक्र करता है कि तुम जो सोचते हो, करना मत; किया तो पकड़े गये। अगर तुम सिर्फ सोचते रहो, तुम्हारी मौज। लेकिन धर्म इससे गहरे जाता है। धर्म कहता है, तुम सोचना मत। क्योंकि जो तुमने सोचा, कितनी देर बचोगे करने से? विचार वस्तु बन जाता है। जो भाव है, वह कल घना होकर बरसेगा। आज जो बिल्कुल छोटा-सा मालूम पड़ता था, वह कल बड़ा हो जायेगा; वह फैलता रहेगा। आज कहीं भी पता न चलता था, तुम बिल्कुल शांत बैठे थे।
महावीर के जीवन में उल्लेख है कि उनका एक शिष्य थाः प्रसेनचंद्र। वह सम्राट था पहले, फिर संन्यस्त हो गया, नग्न मुनि हो गया।
एक दिन प्रसेनचंद्र का एक दूसरा मित्र बिंबिसार महावीर के दर्शन को आया। वह भी सम्राट था। उसने आकर महावीर को पूछा कि राह में प्रसेनचंद्र को खड़े देखा एक गुफा में। धन्यभागी है प्रसेनचंद्र! मेरा बचपन का साथी है। वह मुनित्व को उपलब्ध हो गया। वह दिगंबर मुनि हो गया। एक मैं हूं अभागा, अभी भी सड़-गल रहा हूं संसार में। एक प्रश्न मेरे मन में उठा है, वह आप से पूछना है। जब मैं प्रसेनचंद्र के पास से गुजर रहा था और मेरे मन में यह भाव उठा कि धन्यभागी है प्रसेनचंद्र--मेरे साथ ही बड़ा हुआ, साथ हम पढ़े और लिखे और खेले और ये इतने बड़े आंतरिक साम्राज्य का मालिक हो गया और मैं कुछ भी न कर पाया; मैं बाहर की व्यर्थ की चीजें जुटाने में लगा रहा; मेरी जिंदगी यूं ही गई--तो तब मेरे मन में सवाल उठा था कि अगर प्रसेनचंद्र की इसी समय मृत्यु हो जाये तो यह किस स्वर्ग में या मोक्ष में जन्मेगा, वह मैं आप से पूछता हूं।
महावीर ने कहा, उस समय अगर प्रसेनचंद्र की मृत्यु हो जाती तो वह सातवें नर्क में पड़ता।

बिंबिसार ने कहा, आप क्या कहते हैं? सातवें नर्क में? तो हमारी क्या गति होगी? वह सब छोड़कर खड़ा है!
महावीर ने कहा कि तुम आए, उसके पहले तुम्हारा फौज-फांटा आया; तुम्हारे वजीर निकले, सेनापति निकले, सिपाही निकले, उन सब ने भी प्रसेनचंद्र को देखा। तुम्हारे दो वजीर उसके पास खड़े होकर बात करने लगे कि ये देखो, बुद्धू की तरह यहां खड़ा है! यह प्रसेनचंद्र है! यह बड़ा सम्राट था। अगर आज लगा रहता अपने काम में तो सारी जमीन का मालिक हो जाता। यहां बुद्धू की तरह खड़ा है नग्न! और ये अपने वजीरों के ऊपर सब छोड़ आया है। इसके बेटे छोटे हैं और वजीर सब लूटे ले रहे हैं। जब तक इसके बेटे बड़े होंगे तब तक खजाने में कुछ बचेगा ही नहीं।
उन दोनों वजीरों ने ऐसी बात की, प्रसेनचंद्र ने सुनी। वह आंख बंद किये खड़ा था। लेकिन उसने सुनी। सुनते ही क्रोध आ गया। उसने कहा, "अच्छा! तो मेरे वजीर समझते क्या हैं, क्या मैं मर गया हूं! मैं अभी जिंदा हूं!" क्रोध में, जैसी उसकी पुरानी आदत थी, हाथ उसका तलवार पर चला गया। तलवार अब नहीं थी, अब तो नंगा खड़ा था। लेकिन पुरानी आदत... ! तलवार पर हाथ चला गया। जब तलवार पर उसका हाथ गया तो उसकी पुरानी एक और आदत भी थी कि जब भी वह बहुत क्रोध में आ जाता और तलवार पर उसका हाथ जाता तो दूसरे हाथ से वह अपना मुकुट सम्हालता कि कहीं वह गिर न जाये क्रोध में। अब मुकुट भी न था। दूसरा हाथ उसने मुकुट सम्हालने के लिए रखा; वहां कुछ भी न था। अपने ही माथे को छूकर उसे याद आयी कि अरे, यह मैं क्या कर रहा हूं! तत्क्षण उसने अपना तनाव छोड़ दिया, हिंसा का भाव छोड़ दिया।
तो महावीर ने कहा, जब तुम गुजर रहे थे उसके पास से, तब उसका हाथ तलवार
पर था। मरता तो सातवें नर्क जाता। लेकिन अब अगर मरे तो मोक्ष उसका है। घड़ी भर का ही फासला हुआ है। बाहर से देखने पर प्रसेनचंद्र अब भी वैसा है। बाहर तो कोई भी फर्क न पड़ा, लेकिन भीतर की भाव-दशा बदल गई।
तुम्हारा होना, तुम्हारा भीतर, तुम्हारा आंतरिक तत्व है। भाव तुम्हें भीतर बदलते हैं। विचार तुम्हें भीतर बदलते हैं। बाहर तो जब तुम विचारों को लाते हो तो समाज शुरू होता है। समाज जहां शुरू होता है वहां कानून शुरू होता है। लेकिन तुम जहां हो, वहां पाप और पुण्य का हिसाब है, वहां धर्म का हिसाब है।
"राग आदि की उत्पत्ति हिंसा, अनुत्पत्ति अहिंसा है।"
जान भी जिंदगी पे देते हैं
जिंदगी काबिले-यकीं भी नहीं।
मैं हूं वोह जिससे चर्ख दबता था
अब तो गरदानती जमीं भी नहीं।
आज नहीं कल, यह शरीर तो गिरेगा, मिट्टी में मिल जायेगा। मैं हूं वोह जिससे चर्ख दबता था--कभी आकाश दबता था। अब तो गरदानती जमीं भी नहीं--फिर जमीन भी कोई फिक्र न करेगी।
जान भी जिंदगी पे देते हैं।
जिंदगी काबिले-यकीं भी नहीं।
और जिस जिंदगी पर हम मरने-मारने को उतारू हो जाते हैं, वह जिंदगी पानी
का एक बबूला है--अब मिटा तब मिटा; एक सपने में खींची गई लकीर है--खिंची भी नहीं, सिर्फ खिंचे होने का ख्याल है!
जिस जिंदगी के लिए हम मरने-मारने को उतारू हो जाते हैं उस जिंदगी का मूल्य कितना है? जिस दिन व्यक्ति को अपने जीवन का मूल्य दिखाई पड़ना शुरू होता है कि इस जीवन का कोई भी मूल्य नहीं है, मिट्टी में मिट्टी गिर जायेगी, तो मैं व्यर्थ इस मिट्टी को बचाने के लिए जो उपाय करता हूं, राग-द्वेष करता हूं, उनका कोई सार नहीं है। जीवन की असारता दिखाई पड़ जाये तो सब राग-द्वेष की असारता दिखाई पड़ जाती है। उस असारता के अनुभव का नाम ही अहिंसा है!
लेकिन हम झूठ में ऐसे रगे-पगे हैं, कि जहां बार-बार आशा टूटती है वहां
भी आशा किये चले जाते हैं; जहां कभी कुछ नहीं मिलता वहां भी खोजे चले जाते हैं!

एक सूफी फकीर के घर एक रात चोर घुस गए। सूफी सोया था, उठा और दीया जला लिया उसने। चोर बड़े घबड़ा गए। उसने कहा, "घबड़ाओ मत! मैं तुम्हारा साथ दूंगा।"
उन्होंने कहा, "मतलब? तुम पागल तो नहीं हो? होश में हो? हम चोर हैं!"
उसने कहा, "तुम फिक्र छोड़ो। इस घर में मैं तीस साल से रह रहा हूं और खोज रहा हूं कि कुछ मिल जाये, मिलता नहीं। मैं तुम्हें साथ दूंगा। अगर तुम खोज लो, आधा-आधा बांट लेंगे। तो मैं दीया जलाकर आया, भाग मत जाना।"
जिस जिंदगी में तुम रह रहे हो जन्मों से, उसमें कुछ पाया है? लेकिन उम्मीद नहीं छूटती। शायद मिले कल, ऐसे आशा के सहारे बंधे जीते हो। अनुभव पर सदा तुम्हारी आशा जीत जाती है। यही जीवन का सबसे बड़ा रोग हैः अनुभव पर आशा की जीत। अनुभव तो कहता है, कुछ भी नहीं है। अनुभव तो हजार बार कह चुका कि कुछ भी नहीं है। अनुभव से तो सदा हाथ में राख लगी है। लेकिन आशा कहती है, कौन जाने!
उम्मीद तो बंध जाती, तस्कीन तो हो जाती
वादा न वफा करते, वादा तो किया होता।
उम्मीद तो बंध जाती, तस्कीन तो हो जाती--एक भरोसा तो आ जाता, एक आशा तो बंध जाती! वादा न वफा करते--कोई जरूरत न थी कि जो वायदा किया था वह पूरा करते। वादा तो किया होता!
आदमी इतने से ही जीये चला जाता हैः "कहा तो होता! आशा तो बंधा दी होती! सांत्वना तो रखवा देते!"
तुमने कभी गौर किया? तुम उन चीजों पर भी भरोसा किये जाते हो जिनको तुम जानते हो कुछ परिणाम होने का नहीं। बहुत बार जान चुके हो कि कुछ मिलता नहीं! कितनी बार क्रोध किया! कितनी बार कामवासना में जले, डूबे, क्या मिला? हाथ खाली के खाली रहे। लेकिन फिर भी... ।
हजार बार भी वादा वफा न हो लेकिन
मैं उनकी राह में आंखें बिछा के देख तो लूं।
--न आये, कोई हर्जा नहीं! हजार बार न आये, कोई हर्जा नहीं। एक हजार एकवीं बार शायद आ जाये। मैं उनकी राह में आंखें बिछा के देख तो लूं!
ऐसे ही सब बैठे हैं अपने दरवाजों पर, राह में आंखें बिछाए, उसकी, जो न कभी आया है और न कभी आएगा। बंद करो दरवाजे। उठो, बहुत देख चुके यह राह! तुम जिसकी राह देख रहे हो, वह है ही नहीं। उसके आने का कोई सवाल नहीं है। वासनाओं से जिसने आनंद के आने की राह देखी है वह गलत की राह देख रहा है, जो आ ही नहीं सकता। वासना का स्वभाव आनंद नहीं। सिर्फ आशा बंधाती है। वासना ढपोरशंख है।
तुमने कहानी सुनी है? एक आदमी ने शिव की बड़ी भक्ति की। जब उसकी भक्ति पूरी हो गई, शिव ने कहा, तू वरदान मांग ले। उस आदमी ने कहा, "मैं क्या मांगूं! आप ही जो उचित हो, दे दें।" शिव ने उठाकर अपना शंख दे दिया और कहा, यह शंख है, इससे तू जो भी मांगेगा मिल जायेगा। तू कहेगा कि एक मकान मिल जाये, एक मकान मिल जायेगा। तू कहेगा, धन की वर्षा हो जये, धन की वर्षा हो जायेगी।
उस आदमी ने तत्क्षण--शिव को तो भूल ही गया--प्रयोग किया कि हीरे- जवाहरात बरस जाएं, बरस गए। घर, आंगन, द्वार सब भर गए। यह खबर धीरे-धीरे आसपास फैलने लगी। क्योंकि अचानक वह आदमी ऐसी शान से रहने लगा कि दूर-दूर तक उसकी सुगंध फैल गई। एक संन्यासी उसके दर्शन को आया। वह रात ठहरा। संन्यासी ने कहा कि मुझे पता है कि तुम्हें शंख मिल गया है, क्योंकि मुझे भी मिल गया है। मैंने भी शिव की भक्ति की थी। मगर तुम्हारा शंख मुझे पता नहीं, मेरा शंख तो महाशंख है। इससे जितना मांगो, दुगना देता है। कहो लाख मिल जायें दो लाख... ।
तो उसने कहा, देखें तुम्हारा शंख! लोभ बढ़ा। इतना सब मिल रहा था उसे, लेकिन फिर भी लोभ पकड़ा। उसने कहा, देखें तुम्हारा शंख। उस संन्यासी ने शंख दिखलाया और संन्यासी ने शंख से कहा कि एक करोड़ रुपये चाहिए। शंख बोला, एक क्या करोग, दो ले लो! वह भक्त तो... कहा कि बस ठीक है। आप तो संन्यासी हैं, आपको क्या करना! छोटे शंख से भी काम चल जायेगा, छोटा मेरे पास है। छोटा तो

उसने संन्यासी को दे दिया। संन्यासी तो भाग गया उसी रात। उसने सुबह उठते ही से पूजा-प्रार्थना की, अपने महाशंख को निकाला और कहा, "हो जाये करोड़ रुपयों की वर्षा!" शंख बोला, दो करोड़ की कर दूं? मगर हुआ कुछ भी नहीं। उस आदमी ने कहा, "अच्छा दो करोड़ की सही।" उसने कहा, अरे, चार की कर दूं? मगर हुआ कुछ नहीं। वह आदमी थोड़ा घबड़ाया। उसने कहा कि भई करते क्यों नहीं... चार ही सही। उसने कहा, "अरे, आठ की कर दें न... !" ऐसा ही ढपोरशंख था वह। उससे कुछ हुआ नहीं, वह दुगना करता जाता... !
वासना ढपोरशंख है। राग ढपोरशंख है। वह तुमसे कहता है कि होगा, होगा; जितना मांग रहे हो उससे ज्यादा होगा। तुम्हारे सपने से भी बड़ा सपना पूरा कर के दिखला दूंगा। क्या तुमने खाक आशा की है! जो तुम्हें दूंगा, तुम चकित हो जाओगे। तुमने इसकी कभी आशा भी नहीं की थी, सोचा भी न था।
मगर ये सब बातें हैं। अनुभव तो कुछ और कहता है। अनुभव तो कहता है, न दो
की वर्षा होती है, न चार की वर्षा होती है, न आठ की वर्षा होती है। लेकिन आशा बड़ी होती चली जाती है। आशा कहे चली जाती है, "अरे! और कर दूं! तुम घबड़ा क्यों रहे हो? अगर इतने दिन बेकार गये, कोई फिक्र नहीं, आगे देखो, भविष्य में देखो! अतीत का हिसाब मत रखो। सूरज ऊगेगा! चंदा चमकेगा! जरा आगे देखो!" आशा तुम्हें आगे खींचे लिये चली जाती है।
इसलिए महावीर कहते हैं, "राग की उत्पत्ति... ।" जहां से आशा का जन्म होता है, वहीं समझने की जरूरत है, वहीं जागने की जरूरत है। वहीं आशा को मत सहारा देना। कहना, "ठीक ढपोरशंख, तुझे जो कहना हो, कह। हम कुछ मांगते ही नहीं। न हम लाख मांगते न दो लाख मांगते। हमने मांग ही छोड़ दी।" थोड़े दिन में तुम पाओगे कि जब तुम न मांगोगे तो ढपोरशंख दुगना न कर पाएगा। क्योंकि वह दुगना तभी करता है, जब तुम मांगते हो। तुम न मांगो तो वह चुप हो जाएगा। तुम न मांगो तो वासना आशा न बंधाएगी। तुम मांगते हो, इसलिए बंधाती है। भूल तुम्हारे मांगने में हो जाती है। तुमने मांगा कि तुम आशा के चक्कर में पड़े। आशा कहती है, दुगना दिला देंगे!
जड़ से महावीर पकड़ते हैं।
"हिंसा करने के अध्यवसाय से ही कर्म का बंध होता है। फिर कोई जीव मरे
या न मरे, जीवों के कर्म-बंध का यही स्वरूप है।"
यह बड़ा बहुमूल्य सूत्र है। इस सूत्र को गीता के परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है, क्योंकि गीता का सारा संदेश यही है। कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, न कोई मरता है न कोई मारता है, तो तू बेफिक्री से मार। क्योंकि आत्मा तो अमर है। न हन्यते हन्यमाने शरीरे! शरीर के मारने से वह नहीं मरती। तू फिक्र छोड़! यह तो मिट्टी है, गिरेगी, गिर जायेगी। लेकिन जो इसके भीतर छिपा है, वह तो रहेगा और रहेगा!
कृष्ण बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, आत्मा मरती नहीं। महावीर कुछ और बात प्रवेश करते हैं। महावीर कहते हैं, हिंसा करने के अध्यवसाय से... हिंसा करने के विचार से, भाव से, कर्म का बंध होता है। फिर कोई जीव मरे या न मरे... । किसी के मरने से हिंसा नहीं होती; तुमने मारना चाहा, इससे हिंसा होती है। कृष्ण बिल्कुल ठीक कहते हैं कि काट डालो, कोई मरेगा नहीं; क्योंकि आत्मा मरणधर्मा नहीं है। लेकिन महावीर कहते हैं, तुमने काट डालना चाहा! कटा कोई या नहीं कटा, यह सवाल नहीं है; तुमने काटना चाहा, तुम्हारी उस चाह में हिंसा है। फिर कोई मरा न मरा, यह बात अप्रासंगिक है। तुमने मारना चाहा था, तुम फंस गए। तुम्हारी मारने की चाह ने बीज बो दिया। तुम दुख पाओगे। तुम्हें दुख मिलेगा। इसलिए नहीं कि तुमने लोग मारे, क्योंकि लोग तो मरे ही नहीं, लेकिन तुमने मारना चाहे। वस्तुतः हिंसा घटती है या नहीं घटती है, यह सवाल नहीं है। गहरा सवाल यही है कि तुम्हारी आकांक्षा मारने की थी। कभी- कभी तो ऐसा भी हो जाता है कि तुम्हारी आकांक्षा कुछ थी, हो कुछ जाता है। ऐसा हुआ, चीन में कोई पांच हजार साल पहले इस तरह अकुपंचर की विद्या का जन्म हुआ। एक आदमी को जिंदगी भर से सिरदर्द था। वह बड़ा तकलीफ में पड़ा था। वह बड़ा परेशान था। सब इलाज कर चुका था, कोई इलाज नहीं होता था। कोई दवा नहीं मिलती थी। कोई चिकित्सक ठीक नहीं कर पाता था। पत्थर के बोझ की तरह उसका सिर चौबीस घंटे भारी था। और जैसे बिजली कौंधती हो, ऐसे उसके सिर में

तड़फन थी। वह न बैठ सकता था, न काम कर सकता था। जीना उसका दूभर हो गया था। आत्महत्या करने का उपाय किया था तो लोगों ने करने न दिया। कोई दुश्मन था उसका, किसी से झगड़ा हो गया, उस दुश्मन ने एक तीर उसे मारा। वह तीर उसके पैर में लगा और पैर में तीर के लगते ही सिरदर्द चला गया। वह चिकित्सकों के पास गया। उसने कहा, "यह हुआ क्या? यह तीर पैर में लगा और उसी क्षण दर्द चला गया।" ऐसे अकुपंचर का जन्म हुआ। तब लोगों ने खोजबीन करनी शुरू की कि ऐसा मालूम पड़ता है कि पैर में लगने से सिर में कोई परिणाम हुआ है। तो फिर सिरदर्द वाले लोगों को उसी पैर के स्थान पर तीर चुभाने से फायदा देखा गया। और सिरदर्द के बीमार भी ठीक हो गए उसी जगह तीर चुभाने से। तो फिर बिंदु खोजे गए अकुपंचर के, सात सौ बिंदु शरीर में। तो कुछ बिंदु हैं जिनको दबाने से कुछ बीमारियां ठीक हो जाती हैं। कुछ बिंदु हैं जिनको दबाने से कुछ और बीमारियां ठीक हो जाती हैं। तो शरीर विद्युत का मंडल है। उसमें एक तरफ से विद्युत को दबाने से कहीं दूसरी तरफ विद्युत में परिणाम होते हैं। बड़ा रहस्यमय है। लेकिन अकुपंचर काम करता है।
अब सवाल यह है कि जिस आदमी ने तीर मारा था, उसने पाप किया या पुण्य? क्योंकि जीवनभर का सिरदर्द चला गया। अगर हम फल को देखें, तब तो पुण्य किया। लेकिन अगर उसके भाव को देखें, तो तो पाप ही है। क्योंकि वह तो मारना चाहता था। वह कोई इसका सिरदर्द ठीक करना नहीं चाहता था। उसने तो मारना चाहा था। इसलिए उसने तो हिंसा की। यह बात अप्रासंगिक है कि यह आदमी ठीक हो गया। इससे उसका कोई संबंध नहीं है। यह तो दुर्घटना है।
तो तुम्हारा कृत्य फल के द्वारा निर्धारित नहीं होता कि पाप है या पुण्य है, तुम्हारे अभिप्राय के द्वारा निर्धारित होता है, इन्टेशन। कभी ऐसा भी हो सकता है, बुरे अभिप्राय से ठीक घट जाये, और कभी ऐसा भी हो सकता है कि ठीक अभिप्राय से बुरा घट जाये। लेकिन फल से निर्णय नहीं होता; निर्णय तुम्हारे अभिप्राय से होता है--तुम्हारे अंतर्तम में तुमने क्या चाहा था! कभी ऐसा भी हो सकता है कि तुम कुछ भला करने गए थे और बुरा हो गया। तो भी वह पाप नहीं है। कभी तुम बुरा करने गए थे और भला हो गया, तो भी वह पाप है। महावीर का विश्लेषण फल पर नहीं ले जाता। कृष्ण और महावीर दोनों राजी हैं कि आत्मा मरती नहीं। फिर भी महावीर कहते हैं, मारने की आकांक्षा, मारने की आकांक्षा में हिंसा है। मारने की आकांक्षा ही बंधन का कारण है। धन नहीं बांधता। धन तुम्हारे चारों तरफ पड़ा रहे, लेकिन धन को पकड़ने की, परिग्रह की आकांक्षा बांधती है। पत्नी, स्त्री नहीं बांधती, भोगने की कामना बांधती है। ऐसा ठीक से देखोगे तो सारा जाल भीतर है, बाहर नहीं।
लोग मुझसे कहते हैं कि संसार छोड़ना है। जैसे संसार कहीं बाहर है! संसार से उनका मतलब है--दुकान, बाजार, पत्नी, बच्चे--इनको छोड़ना है। संसार भीतर है। संसार तुम्हारे अभिप्राय में है। संसार तुम्हारी कामना और वासना में है।
"हिंसा करने के अध्यवसाय से ही कर्म का बंध होता है। फिर कोई जीव मरे
या न मरे, जीवों के कर्म-बंध का यही स्वरूप है।"
आशा के स्वभाव को समझने की कोशिश करो। अनुभव को जिताओ, आशा को हराओ।
जो तुमने जीवन के अनुभव से जाना है उसका भरोसा करो। जो तुम्हारा मन फैलाव करता है, सपनों के, उनका भरोसा मत करो।
यूं तो नहीं कहता कि सचमुच करो इंसाफ
झूठी भी तसल्ली हो तो जीता ही रहूं मैं।
तुम भी झूठी तसल्लियों में जी रहे हो। तुम दूसरों से झूठी तसल्ली मांगते हो।
पश्चिम से जब लोग पूरब आते हैं तो बड़े हैरान होते हैं। क्योंकि पूरब
के आदमी झूठी तसल्लियां देने में बड़े कुशल हैं। यहां इस मुल्क में अगर तुम किसी के पास जाओ और कहो कि फलां काम करना है, आप करवा देंगे। वह कहता है, बिल्कुल करवा देंगे। पश्चिम में ऐसा नहीं है। अगर वह करवा सकेगा तो ही कहेगा। फिर भी वह शर्त के साथ कहेगा कि मैं कोशिश करूंगा। होगा कि नहीं होगा, यह मुश्किल है। मैं अपनी तरफ से कोशिश करूंगा। अगर नहीं करवा सकेगा तो स्पष्ट "नहीं" कहेगा कि नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा, क्षमा करें! पूरब में

ऐसा नहीं है। तुम किसी से भी कहो, वह कहता है, हां करवा देंगे! चाहे वह करवा सकता हो, चाहे उसकी क्षमता में हो चाहे न हो; लेकिन वह यह कहता है कि क्यों नाहक तुम्हें दुखी करना। जब होगा तब होगा, अभी तो तसल्ली!
जब पश्चिम से लोग पूरब आते हैं, धंधे और व्यवसाय के लिए, तो वे बड़े हैरान होते हैं। उनको समझ में ही नहीं आता कि किसकी मानें, किसकी न मानें; क्योंकि सभी "हां" कहते हैं। "नहीं" तो कोई मुश्किल से कहता है। "नहीं" तो जैसे अशिष्टाचार है।
तुमने भी कभी ख्याल किया? कोई तुम्हारे पास आता है कि नौकरी चाहिए, तुम कहते हो कि हां, कोशिश करेंगे, दिलवा देंगे! ऐसा कहते वक्त तुम क्षणभर को भी सोच नहीं रहे हो कि दिलवाने की कोई तुम्हारी आकांक्षा है। तुम टाल रहे हो कि झंझट मिटाओ, जाओ। और तुम कह रहे हो कि ठीक है मलहम-पट्टी कर दी, अब तुम आशा में जीयो।
पूरब में यही शिष्टाचार है, सांत्वना बंधा दो। कोई मर गया, तुम पहुंच जाते हो कहने कि कोई हर्जा नहीं, आत्मा तो अमर है। तुम्हें पता है! लेकिन तुम कहते हो, पता हो या न हो, अब यह तो कोई दुख में पड़ा है, इसको तो सांत्वना दो!
यूं तो नहीं कहता कि सचमुच करो इंसाफ
झूठी भी तसल्ली हो तो जीता ही रहूं मैं।
और ऐसी झूठी तसल्ली के धागे पर लोग जीते रहते हैं। यही तुम्हारे साधु- संन्यासी कर रहे हैं। वे तुम्हें झूठी तसल्ली बंधाए जाते हैं। तुम उनके पास जाओ और तुम कहो कि मन में बड़ी अशांति है, वह कहता है, "कोई फिक्र न करो। यह राम-राम जपना, सब ठीक हो जायेगा।" अब राम-राम जपने से कोई भी संबंध अशांति का नहीं है। अशांति तुम पैदा कर रहे हो, राम का इसमें कुछ हाथ नहीं है। अशांति तुम पैदा किये चले जाओगे, राम-राम भी जपोगे, क्या होगा? थोड़ी और अशांति बढ़ जाएगी, बस। उसने तुम्हारे मूल कारण को न पकड़ा। मूल कारण पकड़ना झंझट की बात है, मुश्किल बात है, कठिन बात है। शायद उसको भी पता न हो, लेकिन तुम्हारी तसल्ली उसने बंधा दी। तुम भी प्रसन्न लौटे। तुम भी आनंदित हुए कि चलो। तुम गए कि आशीर्वाद दे दो कि शांत हो जाये चित्त।
भारत में साधु हैं, जो तैयार बैठे हैं, हाथ तैयार ही रखते हैं वे आशीर्वाद देने को। वे कहते हैं, यह लो आशीर्वाद। न कुछ लेना है, न कुछ देना है। न उनका कुछ हर्जा हो रहा है और न तुम्हें कुछ मिल रहा है; लेकिन बात हो गई, तसल्ली बंध गई। तुम अपने घर लौट गए, जैसे के तैसे, जैसे आये थे। थोड़ी और आशा मजबूत लेकर लौट गए कि अब सब ठीक हो जायेगा।
अगर तुम ईमानदारी से जीवन का रूपांतरण चाहते हो तो उनके पास जाना जो तसल्ली बंधाते न हों; जो तुम्हारे जीवन का निदान सीधा कर के रख देते हों सामने--चाहे चोट भी लगती हो; चाहे तुम्हारा घाव भी छू जाता हो और तुम्हारी मलहम-पट्टी उखड़ जाती हो; चाहे तुम्हारे नासूर से मवाद निकल आती हो। लेकिन उनके पास जाना जो तसल्ली बंधाने के आदी नहीं हैं; जो तुम्हारे जीवन के सत्य को वैसा का वैसा रख देते हैं जैसा है। पीड़ा होती है। लेकिन जीवन-रूपांतरण में पीड़ा छुपी है। और अगर तुमने उनकी बात सुनी और समझने की कोशिश की और जीवन में वैसा आचरण और व्यवहार किया तो तुम बदल जाओगे। तसल्ली उन्होंने नहीं बंधाई, लेकिन तुम्हारे जीवन को क्रांति दे देंगे वे। लेकिन तुम मुफ्त तसल्ली में घूमते हो। फिर एक साधु चुक जाता है, क्योंकि कई दफे तसल्ली बंधा चुका, अब तुम्हें उसमें भरोसा नहीं रहा, फिर तुम दूसरा साधु खोज लेते हो। साधुओं की कोई कमी नहीं है। जिंदगी बड़ी छोटी है, साधु बहुत हैं। तसल्ली, तसल्ली, तसल्ली। तुम घूमते फिरते हो।
बंद करो! जीवन के सत्य को पकड़ो! जीवन का सत्य सुगम नहीं है, सांत्वना नहीं है। जीवन का सत्य कठोर है। कांटा चुभा है तुम्हारी छाती में, उसे निकालने में पीड़ा होगी। तुम चीखोगे, चिल्लाओगे। लेकिन वह चीख-चिल्लाहट जरूरी है। और तुम्हें जो उस पीड़ा से गुजारने में साथी हो सके, उसे मित्र मानना।
सदगुरु तसल्ली नहीं देता। सदगुरु सत्य देता है, फिर चाहे कितना ही कड़वा हो। आखिर वैद्य अगर यह सोचने लगे कि मीठी ही दवा देनी है, तो चिकित्सा

न होगी, मरीज चाहे प्रसन्न हो जाये क्षणभर को। शरबत पिला दे मरीज को, लेकिन इससे बीमारी ठीक न होगी; मरीज प्रसन्न होकर घर लौट जायेगा, लेकिन बीमारी और बढ़ जायेगी। नहीं, कड़वी दवा भी देनी पड़ती है, जहर जैसी दवा भी देनी पड़ती है। मरीज नाराज भी होता है, तो भी देनी पड़ती है।
आशा ने सारे संसार को भटकाया हुआ है। और आशाएं मत खोजो। जहां आशा टूटती हो, जहां तसल्ली उखड़ती हो, जहां तुम्हारे सांत्वना के सब जाल बिखरते हों, जहां तुम्हारा सारा व्यक्तित्व जो अब तक झूठ पर खड़ा था तहस-नहस होकर खंडहर हो जाता हो--वहां जाना। दुर्धर्ष है मार्ग।
लोग कहते हैं मौत से बदतर है इंतजार
मेरी तमाम उम्र कटी इंतजार में
सभी की कटती है। तुम कर क्या रहे हो सिवाय इंतजार के?
सैमुअल बैकेट का एक छोटा नाटक है--वेटिंग फार गोडोड, गोडोड की प्रतीक्षा। यह गोडोड कौन है? किसी ने सैमुअल बैकेट को पूछा कि आखिर यह गोडोड कौन है! क्योंकि पूरा नाटक पढ़ जाओ, पता ही नहीं चलता कि गोडोड कौन है। सैमुअल बैकेट ने कहा कि अगर मुझे ही पता होता तो मैंने नाटक में लिख दिया होता। मुझे भी पता नहीं, गोडोड कौन है।
लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं। ठीक से पूछो, किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो? उनको भी पता नहीं है। गोडोड यानी वह, जिसका पता नहीं, लेकिन प्रतीक्षा कर रहे हैं। सभी लोग उत्सुकता से बैठे हैं दरवाजे खोले हुए--कोई आनेवाला है। यह गोडोड की कहानी बड़ी प्यारी है। दो आदमी बैठे हैं। ऐसे नाटक शुरू होता है। और वे एक-दूसरे से पूछते हैं कि क्यों भई, क्या हाल है? वह कहता है, "सब ठीक है। आज आयेगा, ऐसा मालूम पड़ता है।" कौन आयेगा, इसकी तो कोई बात ही नहीं--"आज आयेगा, ऐसा मालूम पड़ता है।" दूसरा कहता है, "सोचता तो मैं भी हूं। आना चाहिए। कब से हम राह देख रहे हैं! और भरोसा बंधवाया था। और आदमी ऐसा गैर-भरोसे का नहीं है। देखें शायद आज आए।" ऐसी बात चलती है। वे दोनों देखते रहते हैं रास्ते की तरफ, रास्ते के किनारे बैठे। कोई आता नहीं। दोपहर हो जाती है। सांझ हो जाती है। वे कहते हैं, "फिर नहीं आया। हद्द हो गयी बेईमानी की! आदमी ऐसा तो न था, कुछ अड़चन आ गई होगी, कोई बीमार हो गया!" बाकी कौन है इसकी कोई बात नहीं चलती। कई दफे वे परेशान हो जाते हैं। वे कहते हैं, "अब बहुत हो गया, बंद करो जी इंतजार!" मगर दोनों बैठे हैं। कभी- कभी कहते हैं "अब मैं चला। तुम ही करो।" एक कहता है कि बहुत हो गया, एक सीमा होती है। मगर जाता-करता कोई नहीं, क्योंकि जाएं भी कहां! कहीं और जाओगे, वहां भी इंतजार करना पड़ेगा। रहते वहीं हैं। बैठे वहीं हैं। बात भी करते रहते हैं, कभी यह भी नहीं एक-दूसरे से पूछते कि किसका इंतजार कर रहे हो? मान लिया है कि किसी का इंतजार कर रहे हैं।
यह जो गोडोड है, यह सब को पकड़े हुए है।
तुमने कभी पूछा है, किसकी राह देख रहे हो? कौन आनेवाला है? किसके लिए द्वार खोले हैं? और किसके लिए घर सजाए बैठे हो? नहीं, तुम कहोगे यह तो हमें पक्का पता नहीं है, कौन आनेवाला है; लेकिन कोई आनेवाला है, ऐसा लगता है। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम क्या खोज रहे हैं, हमें पता ही नहीं; मगर खोज रहे हैं। अब खोजोगे कैसे अगर यह ही पता नहीं कि क्या खोज रहे हो?
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, कुछ पूछना है; लेकिन हमें मालूम नहीं कि क्या पूछना है। और वे गलत नहीं कहते, बड़े ईमानदार लोग हैं। यही स्थिति है। लोग पूछना चाहते हैं, कुछ पूछना जरूर है। ऐसा आभास मालूम होता है। कहीं प्राणों में ऐसी घुमड़ मालूम होती है, कुछ पूछना है--लेकिन क्या? कुछ पकड़ में नहीं आता। कुछ रूप नहीं बनता। कुछ आकार नहीं बैठता। खोजना है-- लेकिन क्या? यह गोडोड कौन है? किसी को मालूम नहीं।
इस इंतजार से जागो! यह प्रतीक्षा बहुत हो चुकी। न कभी कोई आया है, न कभी कोई आयेगा। बंद करो दरवाजे। अब तो उसको खोजो जो तुम हो। कभी धन में प्रतीक्षा की, कभी पद में प्रतीक्षा की; कभी लोगों की आंखों में सम्मान चाहा, कभी प्रार्थना की, आकाश की तरफ देखा, किसी परमात्मा को खोजा--लेकिन सब गोडोड! तुम्हें साफ नहीं, तुम क्या खोज रहे हो, तुम क्या मांग रहे हो! अब

तो उचित है कि अपने में डूबो। उसे देखें जो हम हैं। किसी और की प्रतीक्षा करनी उचित नहीं है।
"हिंसा में विरत न होना, हिंसा का परिणाम रखना हिंसा ही है... ।"
अगर तुमने हिंसा का बोधपूर्वक त्याग नहीं किया है तो हिंसा जारी रहेगी। महावीर और सूक्ष्म तल पर ले जाते हैं। वे कहते हैं, दूसरे को मारने का, दूसरे को दुख देने का भाव तो हिंसा है ही; लेकिन अगर तुमने बोधपूर्वक दूसरे को दुख देने की समस्त संभावना का त्याग नहीं किया है, अगर तुमने अहिंसा को बोधपूर्वक अपनी जीवनचर्या नहीं बनाया है, तो भी हिंसा है। हिंसा में विरत न होना, जागकर होशपूर्वक, निर्णयपूर्वक अपने सामने यह साफ न कर लेना कि मैं हिंसा से विरत हुआ, तो खतरा है। जिससे तुम विरत नहीं हुए हो, वह पैदा हो सकता है। किसी घड़ी, किसी असमय में, किसी परिस्थिति में, जिससे तुम विरत नहीं हुए हो, उसके पैदा होने की संभावना है। माना कि तुमने सोचा भी नहीं कि किसी को मारना है; लेकिन कोई छुरी लेकर सामने आ गया तो तुम भूल जाओगे। तुम्हारे पास अहिंसा की कोई शैली नहीं है। तुम हिंसा की शैली को पकड़ लोगे, क्योंकि वह पुरानी आदत है।
तो महावीर यह कह रहे हैं कि हिंसा की शैली तो जन्मों-जन्मों की आदत है। अहिंसा की शैली को बोधपूर्वक स्वीकार करना पड़ेगा। उसे जीवन की साधना बनाना होगा। नहीं तो जब कोई हिंसा करने को तैयार हो जाएगा, तुम अचानक भूल जाओगे। तुमने सोचा भी न था हिंसा करने के लिए, लेकिन हिंसा होगी। पुरानी आदत है, पुराने संस्कार हैं। पुराने संस्करों को गिराने के लिए बोधपूर्वक निर्णय चाहिए। हिंसा से विरत होने का निर्णय चाहिए।
"हिंसा में विरत न होना, हिंसा का परिणाम रखना हिंसा ही है... ।"
संभावना भी बचा लेना हिंसा है।
"इसलिए जहां प्रमाद है, वहां नित्य हिंसा है... ।"
यह गहरी से गहरी पकड़ है, जो हो सकती है।
"जहां प्रमाद है वहां नित्य हिंसा है... ।"
प्रमाद यानी मूर्च्छा। जहां सोया-सोयापन है; जहां चले जा रहे हैं नींद में, आंखें खुली हैं, लेकिन मन सोया, बेहोश है; जहां हम मूर्च्छा में चल रहे हैं--वहां हिंसा है। क्योंकि मूर्च्छित व्यक्ति क्या करेगा? हजार परिस्थितियां रोज आती हैं हिंसा की, मूर्च्छित व्यक्ति क्या करेगा? होश तो है नहीं कि कुछ नया जीवन-उदबोध, कुछ नयी जीवन-उमंग, कोई नई किरण फूट सके। बेहोश है तो पुरानी आदत से चलेगा, बेहोश आदमी आदत से चलता है। होशवाला आदमी प्रतिपल होश से चलता है, आदत से नहीं।
किसी ने गाली दी, तुम्हें याद भी न रहेगा कि तुम्हारा चेहरा तमतमा गया। यह तमतमा जाएगा, तब पता चलेगा कि अरे, फिर हो गया! यह एक क्षण में हो जाता है, क्षण के खंड में हो जाता है। एक सुंदर स्त्री पास से गुजरी, कोई चीज हिल गई भीतर। अभी खाली बैठे थे तो कुछ बात न थी। स्त्री का ख्याल ही न था। अभी बैठे वृक्षों की हरियाली देखते थे; खिले फूलों को, आकाश के तारों को देखते थे--कुछ पता भी न था, लेकिन परिणाम तो भीतर पड़ा है। आदत तो पुरानी भीतर पड़ी है। एक स्त्री पास से गुजर गई, क्षणभर में बिजली कौंध गई। भीतर कुछ हिल गया। भीतर कोई तूफान उठ आया। भीतर कोई वासना सजग हो गई। बीज तो पड़े ही हैं, जब भी वर्षा हो जायेगी, अंकुर हो जायेंगे।
तो महावीर कहते हैं, "वस्तुतः मूर्च्छा ही हिंसा है और अमूर्च्छा अहिंसा है। आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा है। जब आत्मा मूर्च्छित है तो हिंसा; जब आत्मा जाग्रत है तो अहिंसा। यह सिद्धांत का निश्चय है।" अत्ता चेव अहिंसा--आत्मा ही अहिंसा, आत्मा ही हिंसा। यह सिद्धांत का निश्चय है।
"जो अप्रमत्त है वह अहिंसक है।"
जो जागा हुआ है, जो होशपूर्वक जीता है, अवेयरनेस, सम्यक बोध, एक-एक कदम बोधपूर्वक रखता है, विवेकपूर्वक रखता है--वह अहिंसक है।
"जो प्रमत्त है, वह हिंसक है।" जो नशे में जी रहा है, जिसे ठीक पता भी नहीं है--कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं--चला जा रहा है! तुम अपने को पकड़ो। अपने को हिलाओ, डुलाओ, जगाओ! झटका दो!

सूफियों में एक प्रक्रिया है--झटका देने की। सूफियों का एक वर्ग साधकों को कहता है कि जब भी तुम्हें लगे कि तंद्रा आ रही है, जोर से एक झटका शरीर को दो। जैसे कोई वृक्ष तूफान में हिल जाता है, आंधी में कंप जाता है, धूल-धंवास गिर जाती है, ऐसा कभी अपने को झटका दो।
तुम कभी कोशिश करके देखना। क्षणभर को तुम पाओगे एक ताजगी, एक होश, अपनी याद, मैं कौन हूं! चैतन्य थोड़ी देर को प्रखर होगा, झलकेगा; फिर खो जायेगा। ऐसे झटके अपने को देते रहना।
कभी-कभी छोटी चीजें काम की हो जाती हैं। बहुत छोटी चीजें काम की हो जाती हैं। तो जब भी कोई गाली दे, एक झटका अपने को देना। इसको धीरे-धीरे अपने जीवन की व्यवस्था बना लेना। कोई गाली देगा, तुम अपने को झटका दोगे। झटका देकर तुम पाओगे कि आदत से संबंध छूट गया। यही तो "इलेक्ट्रो शाक... " मनोविज्ञान इसी को कहता है। आदमी पागल हो जाता है, कोई उपाय नहीं सूझता, कैसे ठीक करें, तो उसके मस्तिष्क में बिजली दौड़ा देते हैं। होता क्या है? जब बिजली तेजी से दौड़ती है तो उसके मस्तिष्क में एक झंझावात आता है। एक झटका लगता है। उस झटके के कारण, वह जो पागलपन उस पर सवार था, उससे उसका संबंध क्षणभर को टूट जाता है। क्षणभर को वह भूल जाता है कि मैं पागल हूं। सातत्य टूट जाता है, कंटीन्यूटी टूट जाती है। फिर उसे याद नहीं रहती। फिर जब वापिस लौटता है झटके के बाद, तो उसे याद नहीं रहती कि वह अभी थोड़ी देर पहले पागल था, अब उसको पागल रहना है। आदत से संबंध छूट गया। तो अकसर लाभ हो जाता है। अकसर पागल ठीक हो जाता है। लेकिन यह तुम खुद अपने लिए कर सकते हो। और हम सब पागल हैं। और हमारा सारा व्यवहार सोया हुआ है। जिस भांति बन सके, जगाने की चेष्टा अपने को करनी है। कई तरह से झटके दिये जा सकते हैं। कोई भी छोटा स्मरण भी सहयोगी हो सकता है। तुम्हें मैंने माला दी है। इसको ही एक नयी स्मरण की आदत बना लो कि जब कोई कामवासना उठने लगे, तत्क्षण माला को हाथ में पकड़ लेना। किसी को पता भी न चलेगा। लेकिन उस माला को पकड़ना तुम्हें याद दिला देगा कि अरे! फिर गिरे, फिर गिरने को तैयार हुए! तुम्हें मैंने गैरिक वस्त्र दिये हैं, वे याददाश्त के लिए हैं; अन्यथा गैरिक वस्त्रों से क्या होता जाता है!
एक आदमी शराबी है, वह संन्यास लेने आ गया था। वह कहने लगा कि मैं शराबी हूं, अब आपसे कैसे छिपाऊं! संन्यास भी लेना है। घबड़ाहट यही है कि गैरिक वस्त्रों में फिर शराब-घर कैसे जाऊंगा!
"वह तेरी फिक्र है। वह हमारी क्या फिक्र है? तू चिंता करना। हमने अपना काम कर दिया, तुझे संन्यास दे दिया। अब इसमें हम क्या फिक्र करें, कहां तू जायेगा कहां नहीं। तेरे पीछे हम कोई चौबीस घंटे घूमेंगे नहीं। अब तू ही निपट लेना।"
उसने कहा कि झंझट में डाल रहे हो आप।
झंझट तो है। क्योंकि सोए-सोए जीते थे, जागना एक झंझट है। पर वह हिम्मतवर आदमी है। साफ-सुथरा आदमी है। अन्यथा कहने की कोई जरूरत ही नहीं थी, छिपा जाता। शराब पीते हैं, कौन कहता है! लेकिन कुछ दिन बाद आया और उसने कहा कि मुश्किल हो गई। अब पैर रुकते हैं। ऐसा नहीं कि शराब पीने का मन अब नहीं होता; होता है, लेकिन अब ये गैरिक वस्त्र झंझट का कारण हैं। वहां पहुंच जाता हूं तो लोग चौंककर देखते हैं जैसे कि कोई अजूबा जानवर हूं। सिनेमा-घर में खड़ा था कतार में, तो चारों तरफ लोग देखने लगे। दो आदमियों ने आकर पैर छू लिये तो मैं भागा कि अब यहां... जहां लोग पैर छू रहे हैं, अब यहां सिनेमा में जाना योग्य नहीं है।
तुमने कहानी सुनी है पुरानी? एक चोर भागा। उसके पीछे लोग लगे थे। उसे कोई भागने का, बचने का उपाय नहीं दिखाई पड़ा। वह एक नदी के किनारे पहुंचा। वहां कुछ राख का ढेर पड़ा था। उसने जल्दी से कपड़े उतारकर तो फेंके नदी में, नग्न हो गया, डुबकी मारी, राख ऊपर से डाल ली और झाड़ के नीचे आंख बंदकर के बैठ गया। पद्मासन लगा लिया। पकड़नेवाले आ गये, कोई वहां दिखाई नहीं पड़ता-- एक साधु महाराज। उन्होंने सबने पैर छुए। चोर ने कहा, "अरे हद्द हो गई! मैं झूठा साधु हूं और मेरे लोग पैर छू रहे हैं!" लेकिन एक झटका लगा कि काश! मैं सच्चा होता तो क्या न हो जाता! लेकिन उस झटके में क्रांति हो गई। लोग तो

चले गए पैर छूकर, लेकिन वह सदा के लिए साधु हो गया। उसने कहा, जब झूठे तक को, जब झूठी साधुता तक को ऐसा सम्मान मिल गया, जब झूठे में ऐसा रस, तो सच्चे की तो कहना क्या!
स्मरण के साधन हैं। गैरिक वस्त्र है तुम्हारा, किसी को मारने के लिए हाथ उठने लगेगा तो अपना गैरिक वस्त्र भी दिखाई पड़ जायेगा। बस उतना ही काफी होगा। हाथ को नीचे छोड़ देना। शराब का प्याला हाथ में उठा लो, पास लाने लगो, तो गैरिक वस्त्र दिखाई पड़ जायेगा। फिर हाथ को वहीं वापिस लौटा देना। धीरे- धीरे तुम पाओगे, एक नए बोध की दशा तुम्हारे भीतर सघन होने लगी, जो पुरानी आदतों को काट देगी।
"जैसे जगत में मेरू पर्वत से ऊंचा और आकाश से विशाल कुछ भी नहीं है, वैसे ही अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है।"
इसलिए महावीर ने अहिंसा को परम धर्म कहा है। आकाश से विशाल, मेरुओं से
भी ऊंचा!
"अहिंसा" शब्द सोचने जैसा है। महावीर ने प्रेम शब्द का उपयोग नहीं किया, यद्यपि ज्यादा उचित होता कि वे प्रेम शब्द का उपयोग करते। लेकिन उन्होंने किया नहीं। उनके न करने के पीछे कारण हैं। क्योंकि प्रेम शब्द से तुम कुछ समझे बैठे हो जो कि बिल्कुल गलत है। उसी शब्द का उपयोग करने से कहीं ऐसा न हो, महावीर को डर रहा, कि तुम अपना ही प्रेम समझ लो कि तुम्हारे ही प्रेम की बात हो रही है। तो महावीर को एक नकारात्मक शब्द उपयोग करना पड़ाः अहिंसा; हिंसा नहीं। लेकिन महावीर का मतलब प्रेम से है। सूफी जिसको "इश्क" कहते हैं, जीसस ने जिसको प्रेम कहा है--वही महावीर की अहिंसा है। लेकिन महावीर एक-एक शब्द को बहुत सोचकर बोले हैं, तुम्हारी तरफ देखकर बोले हैं। क्योंकि प्रेम के साथ तुम्हारा पुराना एसोसिएशन है, पुराना संबंध है। तुमने प्रेम से अब तक जो मतलब समझे हैं वे राग के हैं, काम के हैं। तुम्हारे लिए प्रेम का एक ही मतलब होता हैः वासना। तुमने प्रेम का दूसरा गहनतम अर्थ नहीं जाना।
प्रेम का वास्तविक अर्थ होता हैः इतने स्वस्थ हो जाना कि तुम न किसी
को दुख पहुंचाना चाहते हो, न स्वयं को दुख पहुंचाना चाहते हो। तुम अपने को भी प्रेम करते हो, दूसरे को भी प्रेम करते हो। और यह प्रेम अब कोई संबंध नहीं है, तुम्हारी दशा है। कोई न भी हो तो भी तुम्हारे चारों तरफ प्रेम फैलता रहता है। जैसे अकेले में खिले विजन में फूल, तो भी तो सुगंध बिखरती रहती है। दीया जले अकेले अंधकार में, अमावस की रात में, तो भी तो प्रकाश फैलता रहता है। दीया यह थोड़े ही सोचता है कि कोई यहां है ही नहीं, तो फायदा क्या! फूल यह थोड़े ही सोचता है, इस रास्ते से कोई गुजरता ही नहीं, कोई नासापुट आएंगे ही नहीं यहां, तो किसके लिए गंध बिखेरूं! छोड़ो, क्या सार है! ऐसे ही प्रेम को जो उपलब्ध है, वह यह थोड़े ही सोचता है कि कोई लेगा तब दूं, या किसी खास को दूं। प्रेम उसका स्वभाव है।
लेकिन महावीर ने अहिंसा शब्द का उपयोग किया। उस शब्द के कारण उन्होंने पुरानी एक भ्रांति से बचाना चाहा आदमी को, ताकि लोग उनके ही प्रेम को न समझ लें कि महावीर उन्हीं के प्रेम का समर्थन कर रहे हैं। लेकिन एक दूसरी भ्रांति शुरू हो गयी। आदमी इतना उलझा हुआ है कि तुम उसे बचा नहीं सकते। तब अहिंसा शब्द के साथ एक नयी भ्रांति शुरू हो गयी।
अब जैन मुनि हैं, उनके जीवन में प्रेम दिखाई ही नहीं पड़ेगा। उनने अहिंसा का ठीक-ठीक मतलब ले लिया, हिंसा नहीं करनी; तो नकारात्मक, विधायक कुछ भी नहीं, पाजिटिव कुछ भी नहीं। चींटी नहीं मारनी, मगर चींटी के प्रति कोई प्रेम नहीं है। चींटी नहीं मारनी, क्योंकि मारने से नर्क जाना पड़ता है। यह तो लोभ ही हुआ। किसी को नहीं मारना, किसी को गाली नहीं देना, क्योंकि गाली देने से मोक्ष खोता है। यह तो लोभ ही हुआ, प्रेम नहीं। इस फर्क को समझना।
तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि अहिंसा का महावीर का अर्थ हैः प्रेम। तुम्हारा प्रेम नहीं; क्योंकि एक और प्रेम है। लेकिन जैन मुनियों की अहिंसा भी नहीं, क्योंकि वह बिल्कुल मुर्दा है। वह मर गयी। नकार में

कहीं कोई जी सकता है? सिर्फ नकार-नकार में कोई जी सकता है? नकार में कोई घर बना सकता है? कुछ विधायक चाहिए।
विधायक का अर्थ हैः कुछ ऊर्जा तुम्हारे भीतर जगनी चाहिए। सिकुड़ने से
ही थोड़े ही काम चलेगा! किसी को मारो मत, बिल्कुल ठीक; लेकिन क्यों न मारो किसी को? क्योंकि तुम्हें प्रेम है, इसलिए। इसलिए नहीं कि मारोगे तो नर्क जाना पड़ेगा। यह कोई प्रेम हुआ? यह तो अपना ही लोभ हुआ। लोगों को मत मारो, क्योंकि तुम्हारा प्रेम तुम्हें बताएगा कि दूसरे को मारना, दूसरे को दुख देना... तो तुम कैसे आशा बांधते हो कि तुम्हारे जीवन में प्रेम का फैलाव हो सकेगा?
प्रेम फैलता है, बढ़ता है। महावीर कहते हैं, "आकाश जैसा! सुमेरू पर्वत
से भी ऊंचा, आकाश से भी विशाल!"
तो यह कुछ विधायक घड़ी हो तो ही बढ़ सकती है। कुछ हो तो बढ़ सकता है।
अहिंसा का तो अर्थ हैः हिंसा का न होना। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे कि चिकित्सा-शास्त्र में अगर पूछा जाये कि स्वास्थ्य क्या है, तो वे कहते हैं बीमारी का न होना। लेकिन मुर्दा भी बीमार नहीं होता, लेकिन उसको तुम स्वस्थ न कह सकोगे। वह स्वास्थ्य की परिभाषा पूरी करता है, क्योंकि बीमार नहीं है। जिंदा ही बीमार होता है, मुर्दा कैसे बीमार होगा? बीमार होने के लिए जिंदा होना जरूरी है। तो यह स्वास्थ्य की परिभाषा पर्याप्त नहीं है कि बीमार न होना। यह तो नकारात्मक हुई। हां, स्वस्थ आदमी बीमार नहीं होता, यह बात जरूर सच है। लेकिन स्वास्थ्य कुछ और भी है। बीमारी न होने से ज्यादा कुछ है, कुछ विधायक है। जब तुम स्वस्थ रहे हो, क्या तुमने अनुभव नहीं किया, क्या तुम इतना ही जानते हो कि न टी. बी., न कैंसर, न और रोग? क्या जब तुम स्वस्थ होते हो, तब तुमको इनकी याद आती है कि देखो, कितना मजा आ रहा है, न टी. बी. है, न कैंसर है? ऐसा होता है? जब तुम स्वस्थ होते हो, न तो टी. बी. की याद आती है, न कैंसर की, न नकार की।
स्वास्थ्य का अपना ही रस है। स्वास्थ्य का अपना ही अहोभाव है। स्वास्थ्य की अपनी ही प्रफुल्लता है। स्वास्थ्य का झरना फूटता है। यह कोई बीमारी की बात नहीं है।
ऐसा समझो कि एक झरना है, उसके मार्ग पर पत्थर रखे हैं। तो हम कहते हैं, पत्थर हटा लो, तो झरना फूट जाये।
लेकिन पत्थर का हटा लेना ही झरना नहीं है। क्योंकि कई जगह और जगह भी पत्थर पड़े हैं, वहां हटा लेना, तो झरना नहीं फूटेगा; तुम बैठे रहना कि पत्थर तो हटा लिये, बस झरना हो गया। पत्थर का हटाना झरने के लिए जरूरी हो सकता है, लेकिन पत्थर के हटने में ही झरना नहीं है। झरना तो कुछ विधायक बात है। हो तो पत्थर के हटने पर प्रगट हो जायेगा; न हो तो तुम पत्थर हटाए बैठे रहना जैसे जैन मुनि बैठे हुए हैं। यह नहीं करते, वह नहीं करते--सब नहीं करने पर है। चोरी नहीं करते, लेकिन अचोर नहीं हैं। लोभ नहीं करते, लेकिन अलोभी नहीं हैं। हिंसा नहीं करते, लेकिन अहिंसक नहीं हैं। क्योंकि विधायक चूक रहा है।
जिंदगी जिंगारे-आईना है, आईना है इश्क।
संग है मामूरए-कौनेन और शोला है इश्क।
इल्म बरबत है, अमल मिजराब है, नग्मा है इश्क।
जर्रा-जर्रा कारवां है, इश्क खिज्रे-कारवां।
प्रेम स्वच्छ दर्पण है। और प्रेम के सिवाय जीवन में जो कुछ है, वह दर्पण पर मैल है, धूल है। सांसारिक वस्तुएं तो पत्थर हैं। प्रेम प्रकाश है। ज्ञान वाद्य है। आचरण मिजराब है। प्रेम संगीत है। जीवन का कण-कण यात्री है। प्रेम यात्री-दल का पथ-प्रदर्शक है।
महावीर ने जिसे अहिंसा कहा है, वह सूफियों का इश्क है। इस बात को अब दोहरा देने की जरूरत पड़ी है। क्योंकि जैसी मुश्किल महावीर को मालूम पड़ी थी प्रेम के साथ, वैसी ही मुश्किल मुझे मालूम पड़ती है अहिंसा के साथ। महावीर प्रेम शब्द का उपयोग न कर सके, क्योंकि गलत धारणा लोगों के मन में प्रेम की थी। आज मुझे अहिंसा शब्द का उपयोग करने में अड़चन होती है, क्योंकि बड़ी गलत धारणा लोगों के मन में है।

हमारे सभी शब्द हमारे कारण खराब हो जाते हैं, गंदे हो जाते हैं; क्योंकि हमारे शब्दों में भी हमारी प्रतिध्वनि होती है। जब कामी प्रेम की बात करता है तो उसका प्रेम भी काम से भर जाता है। जब निषेधात्मक वृत्तियों का व्यक्ति अहिंसा की बात करता है तो उसकी अहिंसा निषेधात्मक हो जाती है। अहिंसा यानी प्रेम, परम प्रेम।
है अब जिंदगी सायए इश्क में
.जरा मौत दामन बचा कर चले
वह शोलों से अकसर रहे हमकिनार
जो फूलों से दामन बचा कर चले।
--जिंदगी अब प्रेम के साथ है, प्रेम की छाया में है।
है अब जिंदगी सायए इश्क में
.जरा मौत दामन बचा कर चले।
--अब जरा मौत होशियारी से चले, क्योंकि जो प्रेम के साये में आ गया उसकी कोई मौत नहीं। वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।
और प्रेम फूल जैसा है। मौत अंगार जैसी है। लेकिन इस जीवन की, अस्तित्व
की यही महत्वपूर्ण राजभरी बात है कि अंततः फूल जीतते हैं, अंगार हार जाते हैं। अंततः कोमल जीतता है, कठोर हार जाता है। गिरता है पहाड़ से जल, कोमल जल, क्षीणदेह जलधार, बड़ी-बड़ी चट्टानें मार्ग में पड़ी होती हैं--कौन सोचेगा कि ये चट्टानें कभी कट जायेंगी! लेकिन एक दिन धीरे-धीरे धीरे-धीरे चट्टानें कटती जाती हैं और रेत होती जाती हैं। धार बड़ी कोमल है। चट्टानें बड़ी कठोर हैं। लेकिन कोमल सदा जीत जाता है। अंतिम विजय कोमल की है।
वह शोलों से अकसर रहे हमकिनार
जो फूलों से दामन बचा कर चले।
और जिन्होंने अपने को फूलों से बचाया, कोमलता से बचाया, उनकी जिंदगी में अंगारे ही अंगारे रहे, जलन ही जलन रही।
तुम फूल को कमजोर मत समझना। तुम फूल को महाशक्तिशाली समझना। पत्थर कमजोर हैं; यद्यपि दिखाई यही पड़ता है कि पत्थर बड़े मजबूत, बड़े शक्तिशाली हैं। लेकिन पत्थर मुर्दा हैं, शक्तिशाली हो कैसे सकते हैं? फूल जीवंत है। उसके खिलने में जीवन है। उसकी सुगंध में जीवन है। उसकी कोमलता में जीवन है।
अकसर हम हिंसा के लिए राजी हो जाते हैं, क्योंकि हिंसा लगती है ज्यादा मजबूत, शक्तिशाली! अहिंसा, प्रेम लगता है कमजोर। हम जल्दी भरोसा कर लेते हैं हिंसा पर; अहिंसा पर भरोसा नहीं कर पाते, क्योंकि फूलों पर हमारा भरोसा उठ गया है। कोमल की शक्ति को हम भूल ही गये हैं। विनम्र की शक्ति को हम भूल गए हैं। प्रेम बलवान है, यह हमें याद भी न रहा है। हम तो सोचते हैं, क्रोध बलवान है। बस यही धार्मिक और अधार्मिक आदमी का अंतर है।
अगर तुम मुझ से पूछो तो धार्मिक आदमी वह है जो यह जान गया कि कोमल अंततः जीतता है; जिसका भरोसा फूल पर आ गया और पत्थर से जिसकी श्रद्धा उठ गई। और अधार्मिक आदमी वह है, जो भला फूल की प्रशंसा करता हो, लेकिन जब समय आता है तो पत्थर पर भरोसा करता है।
महावीर की अहिंसा अनुयायियों के हाथ में पड़कर विकृत हो गयी, निषेध हो गयी है। वह बड़ा विधायक जीवन-स्रोत था। लेकिन हमारी अड़चन है। जो भी हम सुनते हैं, उसका हम अर्थ अपने हिसाब से लगाते हैं। अगर कोई मर गया--किसी का प्रेमी मर गया, किसी की प्रेयसी मर गई--तो हम अपने हिसाब से अर्थ लगाते हैं। जिसकी प्रेयसी मर गई है या प्रेमी मर गया है, उसे अगर हम रोता नहीं देखते, आंख में आंसू नहीं देखते, तो हम सोचते हैं, "अरे! तो कुछ दर्द नहीं हुआ, दुख नहीं हुआ? रोई भी नहीं? तो कोई लगाव न रहा होगा। तो कोई चाहत न रही होगी। तो कोई प्रेम न रहा होगा।"
लेकिन तुम्हें पता है, अगर सच में ही गहरी पीड़ा हो तो आंसू आते नहीं! आंसू भी रुक जाते हैं। और आंसू बहुत गहरी पीड़ा के सबूत नहीं हैं--पीड़ा के सबूत हैं--बहुत गहरी पीड़ा के सबूत नहीं हैं। अब बड़ी कठिनाई है। आंसू तब भी नहीं आते, जब पीड़ा नहीं होती; और आंसू तब भी नहीं आते जब महान पीड़ा होती है। तो भूल-चूक की संभावना है। कभी यह भी हो सकता है कि रूखी आंखों को देखकर

तुम सोचो कि कोई पीड़ा नहीं हुई; और कभी यह भी हो सकता है, क्योंकि मैं कहता हूं रूखी आंखों में बड़ी गहरी पीड़ा है कि आंसू भी नहीं बह रहे, तो फिर उसको भी तुम समझ लो कि बड़ी गहरी पीड़ा हो रही है जिसको कोई पीड़ा नहीं हुई। जिंदगी में शब्द सीमित हो जाते हैं। अस्तित्व में शब्दों की कोई सीमा नहीं है।
वहां तो हमें प्रत्येक घटना को उसके निजी व्यक्तित्व में देखना चाहिए।
कोई पुरानी परिभाषा से नहीं चलना चाहिए।
शक न कर मेरी खुश्क आंखों पर
यूं भी आंसू बहाए जाते हैं।
--यह भी एक ढंग है।
तो तुम जल्दी से निर्णय मत लेना। महावीर ने प्रेम की ही बात कही, लेकिन प्रेम शब्द का उपयोग नहीं किया। प्रेम शब्द का उपयोग न करने के कारण अतीत की भूल तो बचा ली, लेकिन भविष्य की भूल हो गयी। तो पीछे जो आये, उन्होंने अहिंसा को सिर्फ निषेध बना लिया। शब्द में निषेध है। सारे शब्द निषेधात्मक हैं। अचौर्य, अपरिग्रह, अहिंसा, अकाम, अप्रमाद--सारे शब्द निषेधात्मक हैं। तो ऐसा लगा उनको कि महावीर कहते हैंः नहीं, नहीं, नहीं। हां की कोई जगह नहीं है। इसी कारण हिंदुओं ने तो महावीर को नास्तिक ही कह दिया; क्योंकि परमात्मा नहीं और फिर सारा शास्त्र "नहीं" से भरा है। नहीं, लेकिन उस "नहीं" के भीतर बड़ी गहरी "हां" छिपी है। "नहीं" का उपयोग करना पड़ा, क्योंकि लोगों ने "हां" वाले शब्दों का दुरुपयोग कर लिया था।
लेकिन भूल फिर हो गयी। महावीर का कोई कसूर नहीं है। शब्द का उपयोग करना ही पड़ेगा। और आदमी कुछ ऐसा है, तुम जो भी शब्द उसे दो वह उसका ही दुरुपयोग कर लेगा। क्योंकि सुनते तुम वही हो जो तुम सुन सकते हो। तो महावीर के पीछे निषेधात्मक लोगों की कतार लग गई। इसलिए तो महावीर का धर्म फैल नहीं सका। कहीं निषेध के आधार पर कोई चीज फैलती है? महावीर का धर्म सिकुड़कर रह गया। "नहीं-नहीं" पर कोई जिंदगी बनती है? "नहीं-नहीं" से कोई जिंदगी के गीत बनते हैं? तो सिकुड़ गया। लेकिन कुछ रुग्ण लोग, जो नकारात्मक थे, उनके पीछे इकट्ठे हो गये। उनकी कतार लगी है। उनका सारा हिसाब इतना है कि बस "नहीं" कहते जाओ। जो भी चीज हो उसे इनकार करते जाओ। इनकार कर-कर के वे कटते जाते हैं, मरते जाते हैं। तो उनकी प्रक्रिया करीब-करीब आत्मघात जैसी हो गयी। इसलिए जैन मुनियों के पास जीवन का उत्सव न मिलेगा, जीवन का अहोभाव न मिलेगा। इसलिए जैन मुनियों के पास तुम्हें जीवन की सुरभि न मिलेगी। तुम्हें जैन मुनियों के पास कोई गीत और नृत्य न मिलेगा।
यह भी क्या धर्म हुआ, जिससे नृत्य पैदा न हो सके! यह भी क्या धर्म हुआ जिससे गीत का जन्म न हो सके, जिसमें फूल न खिलें! यह सिकुड़ा हुआ धर्म हुआ।
यह बीमारों को उत्सुक करेगा। निषेधात्मक और नकारात्मक लोगों को बुला लेगा। यह एक तरह का अस्पताल होगा, मंदिर नहीं।
इसलिए मैं तुमसे कह देना चाहता हूं कि महावीर की अहिंसा का ठीक-ठीक अर्थ प्रेम है। सूफी जिसे इश्क कहते हैं, उसी को महावीर अहिंसा कहते हैं।
जीसस ने कहा है, प्रेम परमात्मा है। उसी को महावीर ने कहा हैः
तुगं न मंदराओ, आगासाओ विसालयं नत्थि।
जह तह जयंमि जाणसु, धम्महिंसासमं नत्थि।।
"जैसे जगत में मेरू पर्वत से ऊंचा कोई और पर्वत नहीं, और आकाश से विशाल कोई और आकाश नहीं, वैसे ही अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है।"
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
चौदहवां प्रवचन

प्रेम से मुझे प्रेम है

पहला प्रश्नः परंपरा-भंजक महावीर ने स्वयं को प्राचीनतम जिन-परंपरा
का चौबीसवां तीर्थंकर क्योंकर स्वीकार किया होगा? कृपया समझाएं!

परंपरा की तो परंपरा है ही, परंपरा-भंजन की भी परंपरा है। परंपरा तो प्राचीन है ही, क्रांति भी कुछ नवीन नहीं। क्रांति उतनी ही प्राचीन है जितनी परंपरा।
इस पृथ्वी पर सब कुछ इतनी बार हो चुका है कि नया हो कैसे सकेगा? जिसको तुम नया कहते हो, वह भी बड़ा पुराना है; जिसे पुराना कहते हो, वह तो है ही। जब से परंपरावादी रहा है, तभी से क्रांतिवादी भी रहा है। जब से रूढ़िवादी रहा है, तभी से रूढ़ि को तोड़नेवाला भी रहा है। जब प्रतिमाएं बनानेवाले लोग पैदा हुए, तभी से प्रतिमाओं को तोड़नेवाले लोग भी पैदा हो गये। वे साथ-साथ हैं। वे अलग-अलग हो भी न सकेंगे। वे दिन और रात की तरह साथ-साथ हैं।
क्रांति और परंपरा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। न परंपरा जी सकती है बिना क्रांति के, न क्रांति जी सकती है बिना परंपरा के। जिस दिन परंपरा मर जायेगी, उसी दिन क्रांति भी मर जायेगी।
इसे थोड़ा समझना; क्योंकि साधारणतः हम जीवन में जहां भी विरोध देखते हैं--सोचते हैं, दोनों दुश्मन हैं। ऐसा देखना अधूरा है। जहां-जहां विरोध है, वहां गौर से खोजोगे तो गहराई में पाओगे, दोनों परिपूरक हैं। विरोध भी एक भांति कि मैत्री है और शत्रुता भी एक ढंग का प्रेम है। पुरुष हैं, स्त्रियां हैं उनमें प्रेम भी है, विरोध भी है। विरोध के कारण ही प्रेम है। क्योंकि विरोध से भिन्नता पैदा होती है। विरोध से दूसरे को खोजने की आकांक्षा पैदा होती है। स्त्री-पुरुष लड़ते रहते हैं और प्रेम करते रहते हैं। लड़ाई और प्रेम कुछ इतने विपरीत नहीं हैं।
जिस पति-पत्नी में लड़ाई बंद हो चुकी हो, समझना कि प्रेम भी मर चुका। जब
तक प्रेम की चिंगार रहेगी, तब तक थोड़ा-बहुत झगड़ा, थोड़ी-बहुत कलह भी रहेगी। लड़ने से प्रेम नहीं मरता है। लड़ना प्रेम का ही अनिवार्य हिस्सा है। जैनों की परंपरा उतनी ही प्राचीन है जितनी हिंदुओं की। जैनों के पहले तीर्थंकर ऋषभ का नाम वेदों में उपलब्ध है--बड़े सम्मान से उपलब्ध है। उस जमाने के लोग बड़े हिम्मतवर रहे होंगे। अपने विरोधी को भी सम्मान से याद किया है।
जिस दिन दुनिया समझदार होती है, उस दिन ऐसा ही होगा। तुम अपने विरोधी
को भी सम्मान से याद करोगे, क्योंकि विरोधी के बिना तुम भी नहीं हो सकते हो। विरोधी तुम्हें परिभाषित करता है। उसकी मौजूदगी तुम्हें त्वरा देती है, तीव्रता देती है, गति देती है। उसका विरोध तुम्हें चुनौती देता है। उसके विरोध के ही आधार पर तुम अपने को निखारते हो, सम्हालते हो, मजबूत करते हो।
अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा हैः जिस राष्ट्र को शक्तिशाली रहना हो, उसे शक्तिशाली दुश्मन खोज लेने चाहिए। अगर दुश्मन कमजोर होगा, तुम कमजोर हो जाओगे। जिससे लड़ोगे, वैसे ही हो जाओगे। अगर दुश्मन शक्तिशाली होगा तो उससे लड़ने में तुम शक्तिशाली होने लगोगे। मित्र तो कैसे भी चुन लेना, लेकिन शत्रु जरा सोच-समझकर चुनना। क्योंकि मित्र अंततः उतने निर्णायक नहीं हैं, जितना शत्रु निर्णायक है। वह तुम्हें परिभाषा देता है। वह तुम्हें जीवन की व्याख्या देता है। वह तुम्हें चुनौती देता है। वह तुम्हें बुलावा देता है, प्रतिस्पर्धा का अवसर देता है।
तो ऋग्वेद ने ऋषभ को बड़े सम्मान से याद किया है। ऋषभ जैनों के पहले तीर्थंकर हैं।
जैनों का विरोध, जैनों की क्रांति उतनी ही पुरानी है, जितनी हिंदुओं
की परंपरा। जैन वेद-विरोधी हैं। लेकिन वेद ने बड़ा सम्मान दिया है। जैन मूर्ति-विरोधी हैं, यज्ञ-विरोधी हैं, परमात्मा को भी स्वीकार नहीं करते,

भक्ति का कोई उपाय नहीं मानते--मूलतः व्यक्तिवादी हैं, अराजक हैं। समूह में उनका भरोसा नहीं है, व्यक्ति में भरोसा है। और एक-एक व्यक्ति अलग और अनूठा है। और एक-एक व्यक्ति को अपना ही मार्ग खोजना है। कृष्णमूर्ति जो कह रहे हैं, वह जैनों की प्राचीनतम परंपरा है, वह कुछ नई बात नहीं है। यद्यपि जैन भी उनसे राजी न होंगे, क्योंकि अब तो जैन भी भूल गए हैं कि उनके प्राणों में कभी क्रांति का तत्व था; वह आग बुझ गई है, राख रह गई है। अब तो वे भी परंपरावादी हैं।
लेकिन जैनों को समझना हो तो उनकी क्रांति के रुख को समझना जरूरी होगा। इससे बड़ी क्या क्रांति हो सकती है कि परमात्मा नहीं है, प्रार्थना नहीं है, पूजा-पूजागृह, सब व्यर्थ हैं! तुम किसी की अनुकंपा के आसरे मत बैठे रहना; तुम्हें स्वयं ही उठना है। तुम्हें कोई ले जा न सकेगा! महावीर यह भी नहीं कहते कि मैं तुम्हें कहीं ले जा सकता हूं; ज्यादा से ज्यादा इशारा करता हूं, जाना तुम्हीं को पड़ेगा--अपने ही पैरों से।
महावीर तो आदेश भी नहीं देते कि जाओ। वे कहते हैं, आदेश में भी हिंसा
हो जायेगी। मैं कौन हूं जो तुमसे कहूं कि उठो और जाओ? मैं उपदेश दे सकता हूं, आदेश नहीं।
इसलिए तीर्थंकर उपदेश देते हैं, आदेश नहीं। उपदेश का मतलब हैः मात्र सलाह। मानो न मानो, तुम्हारी मर्जी। न मानो तो तुम कोई पाप कर रहे हो, ऐसी घोषणा न की जायेगी। मान लो, तो तुमने कोई महापुण्य किया, ऐसा भी कुछ सवाल नहीं है। मान लिया तो समझदारी, न मानी तो तुम्हारी नासमझी। लेकिन इसमें कुछ पाप-पुण्य नहीं है।
तीर्थंकर आदेश भी नहीं देते। वे कहते हैं कि आदेश देने का अर्थ हुआ कि तुम दूसरे के मालिक हो गए। तुमने कहा, ऐसा करो; अब अगर न करेगा दूसरा व्यक्ति तो उसके मन में अपराध का भाव पैदा होगा, उसकी जिम्मेवारी तुम्हारी हो गई। अगर करेगा तो गुलामी अनुभव करेगा; तुम्हारी आज्ञा से चला। जैन कहते हैं, अगर आज्ञा मानकर किसी की तुम स्वर्ग भी पहुंच गए तो वह स्वर्ग भी नर्क ही सिद्ध होगा; क्योंकि दूसरे के द्वारा जबर्दस्ती पहुंचाए गए।
सुख में कभी कोई जबर्दस्ती पहुंचाया जा सकता है? सुख तो स्वेच्छा से निर्मित होता है। अगर नर्क भी तुम स्वयं चुनोगे तो सुख मिलेगा; और स्वर्ग भी अगर धक्का देकर पहुंचा दिया, पीछे कोई बंदूक लेकर पड़ गया और दौड़ाकर तुम्हें स्वर्ग में पहुंचा दिया, तो वहां भी तुम्हें सुख न मिलेगा।
निज की स्वतंत्रता में स्वर्ग है। परतंत्रता में नर्क है।
इसलिए महावीर तो आदेश भी नहीं देते। क्रांति उनकी बड़ी प्रगाढ़ है। और
वे कहते हैं, तुम स्वयं जिम्मेवार हो, कोई और नहीं। बड़ा बोझ रख देते हैं व्यक्ति के ऊपर। बड़ा भारी बोझ है! राहत का कोई उपाय नहीं। महावीर के पास कोई सांत्वना नहीं है। वे सीधा-सीधा तुम्हारा निदान कर देते हैं कि यह तुम्हारी बीमारी है; अब तुम्हें सांत्वना खोजनी हो तो कहीं और जाओ।
तो महावीर उस मूर्ति-भंजक परंपरा के अंग हैं, जो उतनी ही प्राचीन है जितनी परंपरा। इसलिए स्वभावतः उस परंपरा-विरोधी परंपरा ने उन्हें अपना चौबीसवां तीर्थंकर घोषित किया। वस्तुतः उनके पहले के तेईस तीर्थंकरों में कोई भी उनकी महिमा का व्यक्ति नहीं था। वे बड़े महिमाशाली व्यक्ति थे, लेकिन महावीर की प्रगाढ़ता बड़ी गहरी है। इसलिए धीरे-धीरे ऐसी हालत हो गई कि तेईस तीर्थंकरों को तो लोग भूल ही गए। पश्चिम से जब पहली दफे लोग जैन-धर्म का अध्ययन करने पूरब आये तो उन्होंने यही समझा कि ये महावीर ही इस धर्म के जन्मदाता हैं। तो पुरानी सभी अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच की किताबों में महावीर को जैन-धर्म का स्थापक कहा गया है। वे स्थापक नहीं हैं। वे तो अंतिम हैं, प्रथम तो हैं ही नहीं। लेकिन बाकी तेईस खो गए। महावीर की प्रतिभा ऐसी थी, ऐसी जाज्वल्यमान थी कि ऐसा लगने लगा, उन्हीं से जन्म हुआ है इस धर्म का। तेईस तो करीब-करीब पुराण-कथा हो गए; उनका कोई उल्लेख भी नहीं रहा। वे तो धूमिल कथा-कहानी के हिस्से हो गए, पुराण हो गए, इतिहास न रहे। ऐसा कभी-कभी होता है, जब बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा होता है तो

वह चाहे बीच में पैदा हो, चाहे पहले हो, चाहे अंत में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता--सभी चीजें उसके आसपास वर्तुलाकार चक्कर काटने लगती हैं।
आज तुम जिस जैन-धर्म को जानते हो, पक्का नहीं है कि ऋषभ का वही रहा हो, पार्श्वनाथ का वही रहा हो, नेमीनाथ का वही रहा हो, जरूरी नहीं है। आज तो तुम जिस जैन-धर्म को जानते हो, उसकी सारी रूप-रेखा महावीर ने दी है। वह रूप-रेखा इतनी गहन हो गई कि अब तुम उसी बात को ऋषभ में भी पढ़ लोगे, क्योंकि महावीर को तुमने समझ लिया है।
समझो कि जो मैं तुमसे कह रहा हूं महावीर के संबंध में, जरूरी नहीं कि महावीर उससे राजी हों। लेकिन अगर तुमने मुझे ठीक से समझा, तो फिर मैं तुम्हारा पीछा न छोड़ सकूंगा; फिर तुम जब भी महावीर को पढ़ोगे, तुम मुझे ही पढ़ोगे। जो मैं कह रहा हूं, वह तुम्हें सुनाई पड़ने लगेगा। अर्थ तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो जाये, तो बाहर के शब्दों में वही अर्थ दिखाई पड़ने लगता है।
महावीर इस क्रांतिकारी परंपरा में सबसे ज्यादा महिमावान, सबसे बड़े मेधावी व्यक्ति हुए। इसलिए उनके शब्द समझने जैसे हैं, विचार करने जैसे हैं, क्रांतिकारी तो अनूठे रहे होंगे; क्योंकि जैनों के दो संप्रदाय हैं-- दिगंबर और श्वेतांबर। दिगंबर तो मानते हैं, महावीर का कोई भी वचन बचा नहीं, कोई शास्त्र बचा नहीं। यह भी क्रांति का हिस्सा है। वे कहते हैं, कोई शास्त्र महावीर का वचन नहीं। ये जो वचन हैं, यह श्वेतांबरों के संग्रह से लिये गये हैं। दिगंबरों के पास कोई संग्रह नहीं है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि दिगंबरों ने बचाया क्यों नहीं! यह भी उसी गहरी क्रांति का हिस्सा है। क्योंकि अगर बचाओ शब्दों को, तो आज नहीं कल वे शास्त्र बन जाएंगे। बचाओ तो शास्त्र आज नहीं कल वेद बन जाएंगे। इसलिए दिगंबरों ने तो महावीर के वचन बचाए ही नहीं। यह शास्त्र के प्रति बगावत की बड़ी अनूठी कहानी है। मानते हैं महवीर को, लेकिन कुछ शास्त्र नहीं बचाया है। व्यक्तिगत, गुरु से शिष्य को कहकर जो बातें आयी हैं, बस वही; उनको लिखा नहीं है।
और इसलिए कोई भी शास्त्र महावीर के संबंध में दिगंबरों के हिसाब से प्रामाणिक नहीं है। न शास्त्र बचाया कि कहीं उसके साथ परिग्रह न हो जाए, न इस तरह के कोई आश्वासन दिये कि महावीर को पूजोगे तो मोक्ष मिल जायेगा। स्वयं को जानोगे तो मोक्ष मिलेगा, महावीर की पूजा से नहीं। स्वयं को जगाओगे तो मोक्ष मिलेगा, महावीर की अनुकंपा से नहीं। कोई गुरुप्रसाद की जगह जैनों के पास नहीं है। क्योंकि वे कहते हैं, सत्य अगर किसी के प्रसाद से मिल जाये तो सस्ता हो गया। फिर तो सत्य भी वस्तु की तरह हो गया; किसी ने दे दिया; उधार हो गया। अपने जीवन को गलाओ। अपने जीवन को गला-गलाकर ही सत्य ढाला जायेगा। यह सत्य कहीं बाहर नहीं है कि कोई दे दे।
इसलिए यह समझ लेना जरूरी है कि महावीर को जब स्वीकार किया गया चौबीसवें तीर्थंकर की तरह, तो इसीलिए स्वीकार किया गया कि उनसे ज्यादा बगावती आदमी उस समय में कोई भी न था। और भी लोग थे। और भी दावेदार थे। क्योंकि क्रांति किसी की बपौती थोड़े ही है। जब महावीर जिंदा थे तो बड़े तूफान के दिन थे भारत में; बड़ी बौद्धिक जागृति का काल था; बड़े शिखर पर लोग, आकाश में परिभ्रमण कर रहे थे। जैसे आज अगर विज्ञान समझना हो तो कहीं पश्चिम में शरण लेनी पड़ेगी; उस दिन अगर धर्म का कोई भी रूप समझना था, तो भारत में शरण लेनी पड़ती। भारत के पास सभी धर्म की परंपराओं के बड़े जाग्रत पुरुष थे। और उन सभी के शिष्यों की आकांक्षा थी कि वे चौबीसवें तीर्थंकर की तरह घोषित हो जायें। प्रबुद्ध कात्यायन था, मक्खली गोशाल था, संजय विलेट्ठीपुत्त था, और भी लोग थे। अजित केशकंबली था। ये सभी बड़े महिमाशाली पुरुष थे। लेकिन इन सबके बीच से वह जो सर्वाधिक क्रांतिकारी था, महावीर, वह श्रमणों की परंपरा में चौबीसवां तीर्थंकर बना। बुद्ध भी थे।
बुद्ध की तो अलग ही परंपरा बन गई; अलग ही धर्म का जन्म हुआ। लेकिन यह सोचने जैसा है कि बुद्ध की मौजूदगी में भी क्रांतिकारियों की धारा ने महावीर को चुना था। महावीर की क्रांति बुद्ध से ज्यादा गहरी है। बहुत जगह बुद्ध थोड़ा समझौता करते मालूम पड़ते हैं; ज्यादा व्यवहारिक हैं। महावीर

बिल्कुल अव्यवहारिक हैं। क्रांतिकारी सदा अव्यवहारिक रहा है। उसके पैर जमीन पर नहीं होते, आकाश में होते हैं। वह आकाश में उड़ता है।
कुछ उदाहरण के लिए समझना जरूरी है। बुद्ध के पास स्त्रियां आयीं, दीक्षा के लिए, तो बुद्ध ने इनकार कर दिया। यह समझौता था। यह थोड़ा भय था। यह इस बात का भय था कि ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि स्त्री और पुरुष साथ-साथ संन्यासी हों और साथ-साथ रहें। बुद्ध को भय लगा, इससे तो कहीं ऐसा न हो जाये कि धर्म नष्ट हो जाये! कहीं स्त्री-पुरुषों का साथ रहना कामवासना के ज्वार के पैदा होने का कारण न बन जाये! कहीं स्त्रियां पुरुषों को भ्रष्ट न कर दें। तो वह जो स्त्रियों के प्रति पुरुषों का पुराना भय है, कहीं न कहीं बुद्ध के मन में उसकी छाया थी। उन्होंने इनकार किया। वे वर्षों तक इनकार करते रहे कि स्त्री को मैं संन्यास न दूंगा; क्योंकि स्त्री को संन्यास देने से खतरा है।
महावीर के सामने भी सवाल उठा। वे तत्क्षण संन्यास दे दिये। उन्होंने
एक बार भी यह सवाल न उठाया कि स्त्री को संन्यास देने से कोई खतरा तो न होगा! क्रांतिकारी खतरे को मानता ही नहीं; बल्कि जहां खतरा हो वहां जानकर जाता है। उन्होंने यह खतरा स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा, जो होगा ठीक है। फिर बुद्ध ने मजबूरी में, बहुत दवाब डाले जाने पर, वर्षों के बाद जब स्त्रियों को दीक्षा भी दी तो उन्होंने तत्क्षण कहा कि अब मेरा धर्म पांच सौ वर्ष से ज्यादा न जीयेगा; यह मैंने अपने हाथ से ही बीज बो दिया अपने धर्म के नष्ट होने का। और बुद्ध का धर्म पांच सौ वर्ष के बीच नष्ट भी हो गया भारत से। और कारण वही सिद्ध हुआ जो बुद्ध ने माना था; जो भय था वह सही साबित हुआ। क्योंकि जब स्त्री-पुरुष पास-पास रहे तो विराग तो दूर हो गया, वैराग्य तो दूर हो गया, राग-रंग शुरू हुआ। राग-रंग ने नये रास्ते खोज लिये, नयी तर्क की व्यवस्थाएं खोज लीं। तंत्र का जन्म हुआ। बुद्ध-धर्म समाप्त हो गया।
लेकिन महावीर का धर्म अब भी जीता है, अब भी जीता-जागता है। स्त्रियों
को समाविष्ट कर लिया, धर्म नष्ट न हुआ। बड़ा क्रांतिकारी भाव रहा होगा। महावीर नग्न खड़े हो गए। कोई जैनों में भी परंपरा न थी नग्न होने की। आज तो तुम जाकर देखोगे दिगंबर जैन मंदिरों में तो चौबीस ही जैनों की प्रतिमाएं नग्न हैं। वह महावीर ने परिभाषा दे दी। वे तेईस नग्न थे नहीं, महावीर ही नग्न हुए थे। बाकी तेईस तो वस्त्रधारी ही थे। इसलिए अगर श्वेतांबरों और दिगंबरों के विवाद में निर्णय करना हो तो बहुमत श्वेतांबरों के पक्ष में होगा, क्योंकि चौबीस तीर्थंकरों में तेईस वस्त्रधारी थे, और एक ही निर्वस्त्र था। तो अगर निर्णय ही करना हो तो तेईस की तरफ ध्यान करके करना चाहिए, सीधा लोकतांत्रिक हिसाब है। लेकिन महावीर का प्रभाव इतना महिमाशाली हुआ कि जिनके वस्त्र थे उनकी प्रतिमाओं से भी वस्त्र उतर गए। क्योंकि फिर ऐसा लगने लगा, अगर महावीर नग्न हैं और पार्श्वनाथ वस्त्र पहने हुए हैं तो पार्श्वनाथ ओछे मालूम पड़ेंगे, छोटे मालूम पड़ेंगेः इतना भी त्याग न कर पाये! नग्नता कसौटी हो गई।
ऐसा सदा हुआ है। जो सर्वाधिक महिमाशाली है वह कसौटी बन जाता है। फिर उसके पीछे इतिहास भी बदल जाता है। अतीत भी बदल जाता है; क्योंकि अतीत के संबंध में हमारे दृष्टिकोण बदल जाते हैं। नग्न खड़े हो जाना बड़ा क्रांतिकारी मामला था, क्योंकि नग्नता सिर्फ नग्नता नहीं है। इसका तुम अर्थ समझो।
नग्न होने का अर्थ हैः समाज का परिपूर्ण अस्वीकार; समाज की धारणाओं
की परिपूर्ण उपेक्षा। तुम अगर चौरस्ते पर नग्न खड़े हो जाओ तो उसका अर्थ यह होता है कि तुम दो कौड़ी कीमत नहीं देते कि लोग क्या सोचते हैं, कि लोग अच्छा सोचते हैं कि बुरा सोचते हैं, कि लोग तुम्हारे संबंध में क्या कहेंगे! हमारे पास शब्द है भाषा में--किसी को गाली देनी हो तो हम कहते हैं "नंगा-लुच्चा"--वह महावीर से पैदा हुआ। नग्न वे थे और बाल लोंचते थे, इसलिए लुच्चा। पहली दफा महावीर को ही लोगों ने नंगा-लुच्चा कहा; क्योंकि वे नग्न खड़े होते थे और बाल भी काटते न थे। जब बाल बढ़ जाते थे तो हाथ से उनका लोंच करते थे।

तुमने कभी सोचा न होगा कि आखिर नंगे को लुच्चा क्यों कहते हैं! लुच्चे
का क्या संबंध है? फिर तो धीरे-धीरे लुच्चा शब्द अलग भी उपयोग होता है। अब तुम कहते हो, फलां आदमी बड़ा लुच्चा है। लेकिन तुम यह नहीं पूछते कि उसने लोंचा क्या है! महावीर के साथ पैदा हुआ शब्द है--गाली की तरह पैदा हुआ, निश्चित ही समाज बहुत नाराज हुआ होगा, बहुत क्रुद्ध हुआ होगा। इस आदमी ने सारे हिसाब तोड़ दिये।
वस्त्र सिर्फ वस्त्र थोड़े ही हैं, समाज की सारी धारणा है। वस्त्रों में छिपे हुए समाज का सारा संस्कार, उपचार, शिष्टाचार, सभ्यता, सब है। नग्न को हम असभ्य कहते हैं। आदिवासी हैं, नग्न रहते हैं, उनको हम असभ्य कहते हैं, आदिम कहते हैं। क्यों? क्यों असभ्य? क्योंकि अभी उन्हें इतनी भी समझ नहीं कि अपने शरीर को ढांकें, छिपाएं; जानवरों की तरह हैं; पशुओं की तरह हैं। आदमी और जानवर में जो बड़े-बड़े फर्क हैं, उनमें एक फर्क यह भी है कि आदमी कपड़े पहनता है। आदमी अकेला पशु है जो कपड़े पहनता है। बाकी सभी पशु नग्न हैं। तो महावीर जब नग्न हुए उन्होंने कहा कि संस्कृति नहीं, प्रकृति को चुनता हूं; सभ्यता को नहीं, आदिम-स्वभाव को चुनता हूं। और जो भी दांव पर लगती हो इज्जत, पद-प्रतिष्ठा, वह सब दांव पर लगा देता हूं। आज से पच्चीस सौ साल पहले वैसी हिम्मत बड़ी कठिन थी; आज भी कठिन है। आज भी नग्न खड़े होने पर अड़चनें खड़ी हो जायेंगी, तत्क्षण पुलिस ले जायेगी, अदालत में मुकदमा चलेगा।
दिगंबर जैन मुनि को किसी गांव से गुजरना हो तो पुलिस को खबर करनी पड़ती है। और जब दिगंबर जैन मुनि, नग्न मुनि गुजरता है, तो उसके शिष्यों को उसके चारों तरफ घेरा बनाकर चलना पड़ता है ताकि उसकी नग्नता कुछ तो ढंकी रहे। दिगंबर जैन मुनि खोते चले गए हैं, एक दर्जन से ज्यादा नहीं हैं अब। क्योंकि बड़ा कठिन मामला है। वह नग्नता ही उपद्रव है। फिर सारे समाज की व्यवस्था को जड़-मूल से इनकार करना, तो समाज भी प्रतिरोध करता है, बदला लेता है, नाराज हो जाता है।
प्रथम तीर्थंकर का उल्लेख तो ऋग्वेद में है; लेकिन महावीर का उल्लेख किसी हिंदू-ग्रंथ में नहीं है। निश्चित ही महावीर अति क्रांतिकारी रहे। इतने क्रांतिकारी रहे कि उनका उल्लेख करने तक की हिम्मत हिंदू-शास्त्रों ने नहीं की है। इस आदमी का नाम लेना भी खतरनाक मालूम हुआ है।
तो क्रांतिकारियों की जो परंपरा है, उस परंपरा ने अगर महावीर को चौबीसवां तीर्थंकर स्वीकार किया, स्वाभाविक था यह।
यह भी समझ लेना जरूरी है कि महावीर के पहले तक जैन-धर्म कोई अलग धर्म
न था। वह चिंतकों की एक धारा थी, लेकिन कोई अलग धर्म न था। महावीर के साथ ही चिंतकों की धारा सघन हुई; उसने रूप लिया, संगठन बनी, संघ बनी और हिंदू परंपरा से अलग होकर चलने लगी।
पार्श्वनाथ या ऋषभदेव एक अर्थ में हिंदू ही थे--वैसे ही जैसे जीसस यहूदी थे। महावीर भी जब जिंदा थे तो करीब-करीब हिंदू थे। लेकिन महावीर ने जो प्रगाढ़ता से क्रांति को रूप दिया, वह इतना प्रबल हो गया, इतना साफ हो गया कि उसे फिर हिंदू-धारा में सम्मिलित रखना मुश्किल हो गया। वह अलग ही टूट गई धारा।
यहां तुम सोचो, बुद्ध महावीर के समकालीन थे। बुद्ध को श्रमणों की परंपरा ने अपना चौबीसवां तीर्थंकर स्वीकार नहीं किया; महावीर को किया। हिंदुओं ने बुद्ध को अपना दसवां अवतार स्वीकार किया; महावीर के नाम का उल्लेख भी नहीं किया। क्या मामला है? बुद्ध अभी भी स्वीकार किये जा सकते थे। थोड़े बगावती थे, लेकिन डोर बिल्कुल न तोड़ दी थी; फिर भी बंधे थे। महावीर ने बिल्कुल ही डोर तोड़ दी, खूंटी उखाड़ ली; बाहर खड़े हो गए खुले आकाश में।
महावीर सभी तरह से मनुष्य को विशाल करना चाहते हैं।
नजर को वुसअत नसीब होगी
हदों से निकलेगा जब तखैय्युल
हरम भी ऐ शेख! सतहे-बीं, सुन
मकान है, ला-मकां नहीं है।

तभी विशालता आत्मा को उपलब्ध होती है। जब कल्पना के ऊपर से भी सारी जंजीरें हट जाती हैं। जब तुम्हारा सोच-विचार मुक्त होता है तभी तुम्हारी आत्मा भी विशाल होती है।
नजर को वुसअत नसीब होगी--तभी तुम्हारी दृष्टि विशाल बनेगी, जब उसके ऊपर किसी तरह के बंधन न रह जाएं--न शास्त्र के, न अतीत के, न सदगुरुओं के। हरम भी ए शेख! सतहे-बीं, सुन
मकान है, ला-मकां नहीं है।
ये मंदिर, ये मस्जिद, ये पूजागृह भी, सुन! ये भी संकीर्ण हैं! मकान हैं, ला-मकां नहीं हैं।
और हमें एक ऐसी जगह चाहिए जहां कोई सीमा न हो, ला-मकां; जहां कोई सीमा न रोकती हो। नजर को वुसअत नसीब होगी--और तब तेरी दृष्टि विशाल होगी।
तो महावीर ने अत्यंत विशाल दृष्टि दी है। लेकिन जब अत्यंत विशाल दृष्टि होगी, तो सभी की दृष्टियों के विपरीत पड़ जायेगी। संकीर्ण दृष्टि के साथी मिल जाएंगे; विशाल दृष्टि के साथी नहीं मिलते। अब अगर मैं कृष्ण की ही महिमा गाऊं तो हिंदू मेरे साथ हो जाएंगे; लेकिन उनकी शर्त है कि फिर महावीर की बात मत उठाना। अगर मैं महावीर के ही गीत गुनगुनाऊं, तो जैन मेरे साथ हो जाएंगे; लेकिन उनकी शर्त है, अब कृष्ण को बीच में मत लाना।
अगर तुम संकीर्ण हो तो तुम्हें किसी न किसी का साथ मिल जायेगा, क्योंकि संकीर्ण लोग चारों तरफ मौजूद हैं। मुझसे जैन भी नाराज हो जाता है, क्योंकि मैंने कृष्ण की बात की; मुझसे हिंदू भी नाराज हो जाता है, क्योंकि मैंने महावीर की बात की; मुझसे बौद्ध नाराज हो जाता है कि क्यों मैंने महावीर की चर्चा की; मुझसे जैन नाराज हो जाता है कि बुद्ध की बात क्यों उठाई!
मुझसे तो साथ-संग वही दे सकता है जिसकी नजर संकीर्ण न हो। और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि मैं परंपरा के भी पक्ष में हूं और क्रांति के भी पक्ष में हूं। तब और अड़चन हो जाती है। तब परंपरावादी मुझसे नाराज हो जाता है कि क्रांति की तुम बात करते हो; और क्रांतिवादी नाराज हो जायेगा कि तुम परंपरा की बात करते हो। लेकिन मैं असल में चाहता हूं कि तुम्हारी नजर पर कोई भी सीमा न रह जाये; तुम्हारी सब सीमाएं टूट जाएं; तुम विशाल हो जाओ; तुम खुले आकाश के नीचे खड़े हो जाओ; कोई घेरा न रहे! बड़े से बड़ा घेरा भी आखिर घेरा है। और आत्मा का तभी जन्म होता है जब तुम्हारी दृष्टि सभी दृष्टियों से मुक्त हो जाती है। उस अवस्था को महावीर ने सम्यक दृष्टि कहा है--जब कोई दृष्टि नहीं पकड़ती।
इसलिए महावीर ने अपने विचार-दर्शन को अनेकांत कहा है। अनेकांत का अर्थ होता हैः जिसने कोई एकांतिक दृष्टि नहीं पकड़ी। महावीर ने जिस दर्शन को जन्म दिया, उसका नाम स्यातवाद है। तुम महावीर से कुछ पूछो तो वे सात भंगियों में उत्तर देते हैं। तुम उनसे पूछो, ईश्वर है? तो वे कहते हैं, है; और तत्क्षण कहते हैं, नहीं है। और वे कहते हैं, दोनों है, और कहते हैं दोनों नहीं है। और ऐसा उत्तर देते चले जाते हैं। सात दृष्टियां हो सकती हैं ईश्वर के बाबत, वे सातों दृष्टियों का एक साथ उपयोग करते हैं। वे तुम्हें कोई जगह नहीं देना चाहते। तुमने पूछा, ईश्वर है? महावीर कहते हैं, है। इसके पहले कि तुम उठो और सोचो कि बस फैसला हो गया, वे कहते हैं रुको, नहीं है। तुम सोचोगे, चलो यह भी ठीक है--नहीं है तो भी बात साफ हो गई। उठने लगे, वे कहते हैं, बैठो, दोनों है, है भी और नहीं भी। अब तुम जरा अड़चन में पड़े। लेकिन वे अभी भी नहीं रुकते, वे बढ़ते ही चले जाते हैं। कहते हैं, दोनों है। चौथा उनका उत्तर है, दोनों नहीं है। और ऐसा सात भंगियों में--सप्त-भंग! कौन राजी होगा इस आदमी से? क्योंकि तुम चाहते हो, कुछ बंधी हुई लकीर मिल जाये। लेकिन महावीर कहते हैं, सभी बंधी लकीरें, सभी संकीर्णताएं उस परम सत्य को प्रगट नहीं कर पातीं। एक अर्थ में वह है और एक अर्थ में नहीं है।
जैसे कोई तुमसे पूछे, शून्य है? क्या कहोगे? एक अर्थ में है; अगर कहो
कि नहीं है तो पूरा गणित गिर जायेगा। एक अर्थ में है। और एक अर्थ में नहीं है, क्योंकि शून्य का मतलब ही होता है कि जो नहीं है। और अगर दोनों बातें

एक साथ सच हैं तो फिर तीसरी बात भी ठीक है कि दोनों है। लेकिन दोनों बातें एक साथ सच कैसे हो सकती हैं? कोई चीज या तो होती है या नहीं होती। तो महावीर कहते हैं, दोनों असत्य भी हैं। ऐसा वे बढ़ते चले जाते हैं। और प्रत्येक वक्तव्य के साथ वे स्यात लगाते हैं, परहैप्स। यह बड़ी अनूठी बात है। वे कहते हैं, स्यात।
तुम सुनने आते हो कोई मत। तुम अनिश्चित हो। तुम्हें पता नहीं, क्या है, क्या नहीं है। तुम चाहते हो, कोई आदमी जो टेबिल ठोककर कह दे कि हां, ईश्वर है। और इतने जोर से कहे कि तुम घबड़ा जाओ और मान लो। लेकिन महावीर कहते हैं, स्यात; वे तुम्हें सांत्वना नहीं देते। वे कहते हैं, हो भी सकता है, न भी हो। इसमें कोई झिझक नहीं है।
अनेकों को ऐसा लगेगा, शायद महावीर को पता नहीं है। कहते हैं "शायद"? लेकिन महावीर को पता है, इसलिए कहते हैं स्यात। क्योंकि जो पता है वह इतना बड़ा है कि उसके संबंध में कोई भी वक्तव्य एकांगी हो जाता है। उसके संबंध में सभी वक्तव्य एक साथ ही सार्थक हो सकते हैं। तब एक वक्तव्य दूसरे वक्तव्य को काटता जाता है। तुम्हारे पास कुछ सिद्धांत नहीं बचता, आखिर में तुम ही बचते हो। तुम्हारी बुद्धि के पास कोई दृष्टिकोण नहीं बचता, केवल देखने की क्षमता बचती है।
इससे बड़ी क्रांति कभी घटी नहीं। इसलिए क्रांतिकारियों ने अगर महावीर
को अपना चौबीसवां तीर्थंकर स्वीकार किया तो कुछ आश्चर्य नहीं है। तुम्हें अड़चन होती है सोचने में कि क्रांति, मूर्ति-भंजन और उसमें भी फिर चौबीसवें तीर्थंकर! क्योंकि तुमने सोचा है और समझा है अब तक कि क्रांति कोई नई चीज है। क्रांति और परंपरा ऐसे हैं, जैसे तुम्हारे दो पैर। सभी क्रांतियां अंततः परंपरा बन जाती हैं और सभी परंपराएं प्रारंभ में क्रांतियां थीं। क्रांति परंपरा का पहला कदम है और परंपरा क्रांति की अंतिम दशा है।
कृष्णमूर्ति कुछ कहते हैं, वचन क्रांतिकारी हैं--परंपरा बनने लगे। कृष्णमूर्तिवादी आदमी पैदा हो गया है। कृष्णमूर्ति कहते हैं, कोई गुरु नहीं। उनका माननेवाला भी कहता है, कोई गुरु नहीं। लेकिन मेरे पास उनके माननेवाले आ जाते हैं। वे कहते हैं, कोई गुरु नहीं। मैंने कहा, तुमने यह सीखा कहां? वे कहते हैं, उनके चरणों में बैठकर सीखा है। तो वे तुम्हारे गुरु हो गए। तुम यह स्वयं के बोध से दोहरा रहे हो कि कोई गुरु नहीं? यह भी तुमने सीख लिया है। और जहां सीखना हो गया, वहां गुरु आ गया। कृष्णमूर्तिवादी भी अपने पक्ष की तर्कणा करता है, विचारणा करता है, सिद्ध करने के लिए प्रमाण देता है, वाद-विवाद करता है। बचना मुश्किल है। क्रांति ऐसे ही है जैसे जन्म--और जब जन्म हो गया तो मौत भी होगी। अब तुम लाख उपाय करो बचने के; अगर बचना था तो जन्मना ही नहीं था। वहीं भूल हो गई। अब कुछ किया नहीं जा सकता। मरना तो पड़ेगा ही।
आगे ख्याल रखना, जन्मना मत। इसलिए जिसको मौत से बचना हो उसे जन्म से बचना चाहिए।
कहते हैं, डायो.जनी.ज को किसी ने पूछा कि दुनिया में सबसे बेहतर बात कौन-सी है। उसने कहा, बेहतर बात तो है पैदा न होना। उस आदमी ने कहा, खैर अब यह तो हो ही नहीं सकता, हम हो ही गए पैदा--नंबर दो क्या? उसने कहा, नंबर दो-- जितनी जल्दी मर सको मर जाना। पैदा न होते, कोई झंझट न होती; मर गए, फिर झंझट मिट गई।
क्रांति जन्म है। मगर जब क्रांति हो गई तो मौत भी होगी। क्रांति परंपरा बनेगी। यही तो तुम देख रहे हो। ये जो सारे धर्म तुम्हें पृथ्वी पर दिखाई पड़ते हैं, क्या तुम सोचते हो, ये पहले ही क्षण से परंपरा थे? पहले क्षण में तो ये क्रांति की तरह उठे थे। फिर सम्हल गए, संगठित हो गए, व्यवस्थित हो गए; अराजकता खो गई, ज्योति खो गई। फिर सब बात बंद हो जाती है। फिर धीरे-धीरे सब समाप्त हो जाता है।
जैन-धर्म अब एक परंपरा है। बुद्ध-धर्म एक परंपरा है। सिक्ख-धर्म अब एक परंपरा है। नानक के साथ क्रांति थी, बड़ी बगावत थी। फिर खो गई बात। फिर धीरे-धीरे राख जम गई। सभी चीजों पर राख जम जायेगी, क्योंकि यह जीवन का नियम

है। इसलिए क्रांति को फिर-फिर करते रहना पड़ता है और धर्म को पुनः पुनः जन्म देना पड़ता है। लेकिन कोई भी व्यक्ति धर्म को जन्म देते वक्त यह न सोचे कि उसका धर्म अपवाद होगा। असंभव है। अपवाद कोई भी नहीं हो सकता। जो पैदा हो रहा है, वह मरेगा। फिर नये धर्मों की जरूरत रहेगी।
अब यहां भी थोड़ा सोचने जैसा है। जब धर्म क्रांतिकारी होता है तब अलग तरह के लोगों को आकर्षित करता है--क्रांतिकारियों को, बगावतियों को, विद्रोहियों को। फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे धर्म स्थापित होने लगता है, ऐस्टेब्लिश होने लगता है, फिर वह क्रांतिकारियों को आकर्षित करना तो दूर, अगर वे पैदा हो जायें तो उन्हें निकाल बाहर करता है, क्योंकि वे खतरा करने लगते हैं।
अब यह एक बड़ा विरोधाभास है। अगर जैन-धर्म में फिर महावीर पैदा हो जायें तो जैनी उन्हें निकाल बाहर कर देंगे, बर्दाश्त न करेंगे। अगर जीसस फिर पैदा हो जायें ईसाई घर में तो अब की बार फिर सूली लगेगी--अब की बार ईसाई लगाएंगे। पिछली बार यहूदियों ने लगाई थी, क्योंकि उन्होंने यहूदी-घर में पैदा होने की गलती की थी। किसी और ने नहीं लगाई, यहूदियों ने लगाई थी।
और यहूदी बड़े क्रांतिकारी थे अपने प्रथम चरण में। मूसा बड़े क्रांतिकारी हैं। यहूदियों की मुक्ति, इजिप्त से उनका छुटकारा, नए जीवन और जगत की खोज, नए समाज की पूरी की पूरी अंतरचिंतना और उसकी नींव मूसा ने भरी।
लेकिन उसी घर में, उसी कुल में, उसी परंपरा में आता है जीसस, और जीसस वही करना चाहता है जो मूसा ने किया था; लेकिन मूसा के माननेवाले बरदाश्त न करेंगे, क्योंकि यह फिर उखाड़ डालेगा।
कहीं भी तुम पैदा हो जाओ, अगर तुमने नये धर्म की चिंतना की--और धर्म सदा ही नया है, क्रांति उसकी शुरुआत है--तो तुम निकाल बाहर किये जाओगे। हां, तुम्हारे आसपास एक नया धर्म निर्मित हो जायेगा। जल्दी ही तुम्हारे बच्चे वहां भी क्रांति न चलने देंगे। वहां भी जब कोई क्रांतिकारी पैदा होगा, उसे निकाल बाहर किया जायेगा। यह क्रांतिकारी का भाग्य है कि सूली पर लटके। और यह सभी धर्मों की नियति है कि क्रांति की तरह पैदा हों, परंपरा की तरह सड़ जाएं।

दूसरा प्रश्नः कल आपने समझाया कि महावीर ने बड़ी कुशलता से, बड़ी अहिंसा के साथ ईश्वर, पूजा, प्रार्थना, प्रेम आदि शब्दों का इनकार किया। उसके पहले भी आपने बताया था कि उन्होंने शरण और भक्ति का भी इनकार किया। कृपया समझाएं कि तब उनका स्वयं एक सदगुरु, तीर्थंकर बनना व शिष्यों को दीक्षा व आशीर्वाद देना क्या उनके ही सिद्धांत के विपरीत नहीं है?

पहली बात--महावीर तीर्थंकर हैं, सदगुरु नहीं। सदगुरु भक्तों का शब्द है। इसलिए महावीर के लिए सदगुरु शब्द का उपयोग मत करना। और तीर्थंकर का बड़ा अलग अर्थ होता है। सदगुरु का बड़ा अलग अर्थ होता है।
सदगुरु का अर्थ होता हैः जो तुम्हारा हाथ पकड़ ले; जैसे बाप बेटे का हाथ पकड़ लेता है और ले चलता है। और बेटा अपनी सारी श्रद्धा बाप को दे देता है; वह जानता है कि हम ठीक जा रहे हैं--चाहे बाप खतरे में भी जा रहा हो, भयंकर जंगल से गुजर रहा हो। बाप डरता हो तो डरता रहे, बेटा मस्ती से चलता है। बाप के हाथ में हाथ है, अब और क्या चाहिए! बेटा आनंदित होकर देखता है जंगल। वह हजार प्रश्न उठाता है। बाप कहता है, चुप रहो! बाप घबड़ा रहा है। बाप अकेला है। बेटे को क्या फिक्र है! जब बाप साथ है तो सब बात हो गई। सदगुरु का अर्थ होता हैः समर्पण किसी के प्रति; उसके हाथ में हाथ दे देना, बस। फिर भक्त कहता है, अब हम छोटे बच्चे की तरह हो गए; अब तुम्हें जहां ले चलना हो ले चलो; हम शिष्य हो गए।
तीर्थंकर का बड़ा अलग अर्थ है। तीर्थंकर तुम्हारे हाथ को अपने हाथ में नहीं लेता। तीर्थंकर तुम्हें सहारा नहीं देता। तीर्थंकर शब्द का अर्थ होता हैः तीर्थ बनानेवाला, घाट बनानेवाला। नदी के किनारे घाट बना देता है, फिर जिसकी मौज हो उस घाट से उतर जाये। लेकिन वह तुम्हें इस नाव में बिठाकर

ले नहीं जाता। वह माझी नहीं है। वह तुम्हें नाव में बिठाकर उस पार नहीं ले जाता, न वह तुम्हारा हाथ पकड़कर नदी में तैराता है। वह सिर्फ घाट बना देता है।
तीर्थ का अर्थ होता हैः घाट। तीर्थंकर का अर्थ होता हैः जिन्होंने घाट बनाये। तो सुगम कर देता है उतरना, लेकिन हाथ पकड़कर उतारता नहीं। ऊबड़-खाबड़ जंगल पहाड़ में उतरना मुश्किल होता है। वह घाट बना देता है। वह सब व्यवस्थित कर देता है। ठीक जगह--जहां से दूसरा किनारा करीब से करीब है, ऐसी जगह, जहां जलधार बहुत खतरनाक नहीं है; ऐसी जगह, जहां जलधार छिछली है, तुम चलकर भी पार हो सकोगे; ऐसी जगह, जहां कम से कम डूबने का भय है--वह घाट बना देता है। वह घाट के ऊपर सारे नक्शे रख देता है कि बाएं जाओ कि दाएं जाओ, कि कितने कदम चलने पर पानी गहरा होगा और कितने कदम चलने पर दूसरा किनारा करीब आ जायेगा। वह दूसरे किनारे का वर्णन कर देता है। वह सारी बात कर देता है, घाट निर्मित कर देता है, सारे उपकरण यात्रा के मौजूद कर देता है--बस, वहीं छोड़ देता है। फिर तुम जाओ, यात्रा तुम्हीं को करनी है।
तीर्थंकर सदगुरु नहीं है। तीर्थंकर से तुम्हारा कोई व्यक्तिगत संबंध नहीं है। तीर्थंकर से तुम्हारा बड़ा अव्यक्तिगत संबंध है। महावीर के पास तुम जाओ तो तुम्हारा जो प्रेम महावीर के प्रति है वह एकतरफा है। तुम्हारा होगा। महावीर तो कहते हैं, उसे भी छोड़ो, क्योंकि वह भी बंधन बनेगा। महावीर का तो बिल्कुल नहीं है। तुम भला अपनी कल्पना से सोचते होओ कि हम दीवाने हैं महावीर के, लेकिन महावीर तुम्हारे दीवाने नहीं हैं। तुम चले जाओगे तो वे बैठकर रोएंगे नहीं कि कहां खो गया।
भक्त और सदगुरु की बात अलग है। जीसस ने कहा हैः सदगुरु ऐसा है... वह धारणा है पैगंबर की, सदगुरु की, कि जैसे गडरिये की कोई भेड़ भटक जाये। सांझ हो गई, सारी भेड़ें आ गईं, लेकिन एक भेड़ जंगल में भटक गई, तो सारी भेड़ों को खतरे में छोड़कर वह उस एक भेड़ की तलाश में जाता है। वह जंगल में उतरता है फिर अंधेरी रात में, चिल्लाता है, पुकारता है। जब भेड़ को खोज लेता है तो उसे कंधे पर रखकर लौटता है। भटकी भेड़ को कंधे पर रखकर लौटता है। और भटकी भेड़ के लिए जो भेड़ें साथ थीं, उनको खतरे में छोड़ जाता है। इस बीच जंगली जानवर हमला भी कर सकते हैं!
यह ईसाइयों की मसीहा की धारणा है, सदगुरु की। उसका संबंध वैयक्तिक है। वह तुम्हारी तरफ व्यक्तिगत ढंग से सोचता-विचारता है। तीर्थंकर निर्वैयक्तिक है। वह सिर्फ सिद्धांत बता देता है। वह कहता है, दो और दो चार होते हैं, तुम जोड़ लो। गणित बता दिया, नियम बता दिया, अब तुम कर लो हल। इससे ज्यादा उसका कोई संबंध नहीं है।
अगर तुम चले जाओ, खो जाओ, तो तुम्हारे लिए बैठकर रोता नहीं और न बीहड़ में तुम्हें चिल्लाता हुआ आता है। क्योंकि तीर्थंकरों की धारणा ऐसी है। वे कहते हैं, जिसे भटकना है वह भटकेगा। जब अपने ही भटकने से ऊब न जायेगा, तब तक भटकेगा। और अगर कोई भटकना ही चाहता है तो उसे न भटकने देना उचित नहीं है, उसकी स्वतंत्रता में बाधा है। अब इस बात का भी मूल्य है।
जीसस की बात भी समझ में आती है कि जो जाग गया है, वह उसको सहारा दे जो सोया है। महावीर की बात भी समझ में आती है। वे कहते हैं, सहारा देना एक बात है; लेकिन वह सहारा न चाहता हो तो उस पर सहारा थोपना बिल्कुल दूसरी बात है। इसलिए वे उपदेश देते हैं, आदेश नहीं देते। वे मार्ग दिखा देते हैं, फिर यह भी नहीं कहते कि चलो, उठो। फिर तुम्हें झिझकारते नहीं हैं, तुम्हें सोए से उठाते नहीं, तुम्हारे सपने को तोड़ते नहीं। वे कहते हैं, अगर तुम्हारी यही मर्जी है तो तुम्हारी वैयक्तिक स्वतंत्रता है। वे तुम्हारी वैयक्तिक स्वतंत्रता को सम्मान देते हैं। अगर तुमने भटकना तय किया है तो यही तुम्हारी नियति है, अभी और भटको; जब तुम्हें समझ में आ जाये तब लौट आना। इसका मतलब यह हुआः वे तुम्हें भेड़-बकरी नहीं मानते, तुम्हें मनुष्य मानते हैं। तब तुम्हें समझ में आयेगी बात कि उनकी बात का भी बल है। वे कहते हैं, तुम कोई भेड़ थोड़े ही हो कि हम तुम्हें उठाकर कंधे पर ले आएं। तुम मनुष्य हो! तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है। और अगर तुम्हारे परमात्मा ने यही अभी तय किया है कि अभी और थोड़ा झेलना है दुख, और थोड़ा जीना है नर्क, तो कौन

तुम्हें रोक सकता है! तुम्हारे ऊपर कोई भी नहीं है, तुम अंतिम हो। मुझे कुछ मिला है, वह मैं कह देता हूं; उपयोग करना हो कर लेना, न करना हो न कर लेना।
ऐसा निर्वैयक्तिक संबंध है।
इसलिए पहली बात--तीर्थंकर सदगुरु नहीं है। दूसरी बात--तीर्थंकर दीक्षा तो देता है, आशीर्वाद नहीं देता। आशीर्वाद सदगुरु देता है। आशीर्वाद का अर्थ हैः मेरी शुभाकांक्षा तुम्हारे साथ है। न, महावीर बिल्कुल निर्वैयक्तिक हैं। वे कहते हैं, मेरी शुभाकांक्षा क्या करेगी? नर्क का रास्ता शुभाकांक्षाओं से पटा पड़ा है। तुम्हारा होश काम आएगा, मेरी शुभाकांक्षा थोड़े ही! और वे कहते हैं, कहीं तुम्हारे मन में ऐसा भरोसा आने लगे जैसा कि काहिलों और सुस्तों को आ जाता है--किसी के आशीर्वाद से सब हो जायेगा--तो वे वैसे ही मर रहे थे और मर जाते। वे वैसे ही डूब रहे थे, वे और हाथ-पैर तड़फड़ाना छोड़ देते हैं। वे कहते हैं, अब आशीर्वाद मिल गया, अब सब ठीक है।
महावीर कहते हैं, ऐसी झूठी बातों के लिए मेरे पास मत आना। दीक्षा देते हैं। दीक्षा का अर्थ हैः इनिसिएशन। दीक्षा का अर्थ हैः वे तुम्हें बता देते हैं, जो उन्हें हुआ है। वे कहते हैं, यह रहा रास्ता। ज्योति फेंक देते हैं रास्ते पर। दीक्षा का तो अर्थ है, उदघाटन कर देते हैं एक द्वार का। जिस द्वार से वे प्रवेश किए हैं, वह द्वार तुम्हें भी इंगित कर देते हैं, कि वो रहा। आशीर्वाद का अर्थ है कि वे तुम्हारे लिए प्रार्थना करते हैं। आशीर्वाद का अर्थ है कि वे मंगल कामना करते हैं। आशीर्वाद का अर्थ है कि तुम्हारी यात्रा में वह भी सम्मिलित हैं। नहीं, तीर्थंकर आशीर्वाद नहीं देते। ये अलग-अलग परंपराओं के शब्द हैं, इनका अलग-अलग अर्थ समझ लेना जरूरी है, अन्यथा बड़ी भ्रांति पैदा होती है।
पहली दफा मैं बंबई निमंत्रित हुआ, कई वर्ष पहले--एक महावीर जयंती पर। मेरे पहले, एक जैन मुनि बोले तो मैं तो बहुत चकित हुआ, क्योंकि उन्होंने जो बातें कहीं, वे बिल्कुल अ-जैन थीं। उन्होंने कहा महावीर का जन्म हुआ जगत के कल्याण के लिए। ऐसा जैनी मुनि कहते हैं। जैनी भी कहते हैं। उनको पता नहीं कि वे क्या कह रहे हैं। यह तो हिंदू-भाषा है। कृष्ण का जन्म हुआ जगत के कल्याण के लिए। यह समझ में आ जाता है। यदा-यदा हि धर्मस्य... जब-जब होगी धर्म को अड़चन, तब तब आऊंगा... युगे-युगे। यह ठीक है। अवतार की भाषा तो बिल्कुल ठीक है कि जब जरूरत होगी मेरी, मैं आऊंगा, तुम फिक्र मत करना। जब अंधेरा होगा तब आऊंगा दीया लेकर। जब जाल फैलेगा घृणा का और हिंसा का, तब आऊंगा तुम्हें उठाने। और हमेशा-हमेशा, तुम भरोसा कर सकते हो।
लेकिन तीर्थंकर ऐसी भाषा नहीं बोलते। तीर्थंकर की भाषा ही अलग है। तीर्थंकर कहता है, कौन किसका कल्याण कर सकता है? महावीर पैदा हुए अपने पिछले जन्मों के कर्म-फल के कारण। पैदा होना मजबूरी है। महावीर की कोई स्वेच्छा नहीं है। पैदा हुए, क्योंकि पिछले जन्म में जो कर्म-जाल पैदा किया है, वह खींच लाया। और जो चेष्टा उन्होंने की, कोई जगत-कल्याण के लिए नहीं है। क्योंकि महावीर का मानना ही है कि कोई दूसरा किसी दूसरे का कल्याण नहीं कर सकता। कल्याण तो सदा आत्म-कल्याण है।
तो जब मैं बोला और मैंने यह कहा तो मुनि तो बहुत नाराज हुए। बड़ी घबड़ाहट फैल गई। "गुणा" यहां मौजूद है, वह उस सभा में भी मौजूद थी। उसने बाद में मुझे बताया, कई साल बाद, कि उसने तो "ईश्वर भाई" को कहा कि अब हम यहां से निकल चलें, यहां कुछ झगड़ा-फसाद होगा। यहां मारपीट होकर रहेगी अब। क्योंकि सभी जैन नाराज हो गए, क्योंकि मैंने कहा, महावीर किसी के कल्याण के लिए पैदा नहीं हुए। लेकिन नाराजगी से क्या होता है? तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारी पूरी दृष्टि अलग है। और उस दृष्टि का अपना मूल्य है। इसलिए उसकी शुद्धता को बचाया जाना चाहिए। ऐसे तो सब वर्णसंकर हो जाती हैं बातें। महावीर कहते हैं, कल्याण आत्म-कल्याण है। इसलिए आशीर्वाद नहीं दे सकते। फिर उस दिन से जो जैन नाराज हुए तो नाराज ही हैं। क्योंकि उनको लगा कि मैंने उनके महावीर की कुछ प्रतिष्ठा छीन ली है। मैं उनके महावीर को ठीक-ठीक प्रतिष्ठा दिया। मैंने वही कहा जो महावीर कहते।

लेकिन साधारण आदमी साधारण आदमी है। वह खुद नहीं करना चाहता। वह चाहता
है कि कोई के आशीर्वाद से हो जाये, मुफ्त मिल जाये। धन तो तुम खुद कमाते हो, धर्म तुम आशीर्वाद से चाहते हो। तुमने बेईमानी परखी? मकान बनाना हो, तुम खुद बनाते हो; मोक्ष आशीर्वाद से हो जाये! तुम जो करना नहीं चाहते, जो तुम कहते हो मुफ्त मिले तो ले लेंगे, उसमें भी सोचने का समय मांगोगे। अगर सच में ही कोई देने आ जाये कि यह रहा मोक्ष, लेते हो? तुम कहोगे, अभी इत्ती जल्दी तो मत करो, थोड़ा सोचने दो, घर जाने दो, पत्नी भी है, बच्चे भी हैं, थोड़ा पूछ तो लूं! जो तुम टालना चाहते हो, तुम बड़ी कुशलता से टालते हो। तुम कहते हो, जब होगी प्रभु की कृपा! मगर और चीजों के लिए तुम नहीं कहते। और के लिए तुम खूब आपा-धापी करते हो। तो साफ-साफ कहो न कि अभी चाहिए नहीं। यह बेईमानी तो मत करो। इतना ही कह दो कि हमें अभी कोई आकांक्षा नहीं पैदा हुई है। नहीं, लेकिन वह कहना जरा अभद्र मालूम पड़ता है। तुम शिष्टाचार को मानते हो, सभ्यता को मानते हो। तुम कहते हो, यह कहना जरा, साफ-साफ कहना ठीक नहीं। तुम जरा चोरी-छिपे, लुके-लुके कहते हो। तुम ढंग से, सजाकर कहते हो, शृंगार से कहते हो। तुम कहते हो, जब प्रभु की कृपा होगी, जब आशीर्वाद होगा सदगुरु का... ।
मेरे पास लोग आते हैं। मैं उनसे पूछता हूं, कभी बहुत वर्ष से नहीं दिखाई पड़े। वे कहते हैं, आपने बुलाया ही नहीं। कितनी मजेदार बात कह रहे हैं वे! तो मैंने कहा, अब कैसे आ गये? मैंने तो अभी भी नहीं बुलाया था। वे कहते हैं, जरा पूने में कुछ धंधे का काम आ गया था। धंधा का जब काम होता है तब वे अपने से आते हैं। अब रहा यह कि मैं पूना में हूं तो मेरे पास भी चलो हो आओ। लेकिन मेरे पास आने के लिए जिम्मेवारी मुझ पर ही छोड़ते हैं कि आपने बुलाया ही नहीं। हालांकि वे सोचते होंगे, बड़ी प्रेमपूर्ण बात कह रहे हैं, लेकिन बड़ी बेईमानी की बात कह रहे हो। आना हो तो तुम आ जाते हो; न आना हो तो कहते हो, जब आप बुलायेंगे। कसूर जैसे मेरा है! तुम जब कहते हो, जब प्रभु की कृपा होगी... इसका अर्थ हुआ कि प्रभु की कृपा नहीं हो रही है। तुम सोचते हो, ऐसा भी हो सकता है कि प्रभु की कृपा न होती हो? क्या तुम सोचते हो, प्रभु कुछ अड़चन डाल रहा है कि दूसरों पर कृपा बरसा रहा है, तुम पर नहीं कर रहा है? अगर कोई कृपा जैसी चीज है तो वह सभी पर बरस रही है। लेकिन तुम जब लेना चाहोगे तभी ले सकोगे।
इसलिए महावीर कहते हैं, यह बात ही छोड़ दो आशीर्वाद की। इशारा मैं कर देता हूं, चलना तुम्हें है। और वे कोई व्यक्तिगत संबंध नहीं बांधते। उनका जो सबसे बड़ा शिष्य था, गौतम, वह महावीर के जीते-जी समाधि का अनुभव न कर सका, "केवल ज्ञान" उसे उपलब्ध न हो सका। जिस दिन महावीर की मृत्यु हुई, उस दिन वह गांव के बाहर उपदेश देने गया था, दूसरे गांव। जब वह लौटता था, रास्ते में उसे खबर मिली की महावीर ने शरीर छोड़ दिया, उनका महापरिनिर्वाण हो गया। तो वह रोने लगा। उसने राहगीरों से पूछा कि यह तो हद्द हो गई, जिनके साथ मैं जीवनभर रहा, आखिरी क्षण में किस दुर्भाग्य के कारण मैं दूसरे गांव चला गया! आखिरी क्षण तो उन्हें देख लेता! और अब मेरा क्या होगा? उनके रहते-रहते मैं मुक्त न हो सका, अब मेरा क्या होगा? अब तो गहन अंधकार है और दीया भी बुझ गया। क्या उन्होंने कुछ मेरे लिए संदेश छोड़ा है? तो राहगीरों ने कहा, हां। आखिरी समय में उन्होंने आंख खोली; उन्होंने कहा, गौतम यहां नहीं है; लौटे तो उसे इतनी बात कह देना कि तू पूरी नदी तो पार कर गया, अब किनारे को पकड़कर क्यों रुक गया है?
कहते हैं, उसी क्षण गौतम ज्ञान को उपलब्ध हुआ। क्या कहा महावीर ने उसके लिए? क्या संदेश छोड़ा कि तू पूरी नदी तो पार कर गया--संसार छोड़ दिया, धन छोड़ दिया, पत्नी छोड़ दी, घर-द्वार छोड़ दिया, सब छोड़ दिया, सब तरफ से राग हटा लिया--अब तूने राग मुझ पर जमा लिया! किनारे को पकड़ लिया। अब तू कहता है, गुरु... । यह भी छोड़ दे, नहीं तो नदी तो पार कर आया, अब किनारे को पकड़कर अटका है, तो बाहर कैसे निकलेगा? अब यह भी छोड़। जब सब छोड़ा है तो सभी छोड़। अब इतना भी अपवाद मत रख।
उसी क्षण गौतम को बोध आया कि अरे, मैं महावीर को पकड़ने के कारण ही रुक गया हूं! यह मोह छूटता नहीं, इसलिए रुक गया हूं।

तो जैन भाषा अमोह की भाषा है। वहां आशीर्वाद नहीं है।
डूब जाये कि सलामत रहे किश्ती मेरी
न हाथ बढ़ा कभी खिज्र के दामन की तरफ।
--चाहे डूब जाये, चाहे बचे नाव; लेकिन महावीर कहते हैं, किसी और की तरफ हाथ बढ़ाना मत। न हाथ बढ़ा कभी खिज्र के दामन की तरफ। किसी सदगुरु की तरफ हाथ मत बढ़ाना। आशीर्वाद मत मांगना। डूब जाए तो भी ठीक है, पार हो जाये तो भी ठीक है, लेकिन भीख मत मांगना।
महावीर का पथ सम्राटों का पथ है, भिखारियों का नहीं।
मेरी फितरत है तूफां और मैं आशोबे-फितरत हूं
तसव्वुर का भी दामन तर नहीं करता मैं साहिल से।
--स्वभाव मेरा तूफान का है।
मेरी फितरत है तूफां और मैं आशोबे-फितरत हूं।
--और मैं प्रकृति की मुक्त निगाह, मुक्त दृष्टि हूं। तसव्वुर का भी दामन तर नहीं करता मैं साहिल से--साहिल की तो बात ही नहीं करता, किनारे की तो बात ही नहीं करता। बात तो दूर, अपनी कल्पना को भी मैं किनारे की बात से भ्रष्ट नहीं करता।
सहारे की बात ही गलत है। बे-सहारा! जब तक तुम इतने बे-सहारा न हो जाओ कि तुम्हें लगे अब अपने ही पैरों पर खड़ा होना होगा, और कोई पैर नहीं हैं; अब अपनी ही बुद्धि को जगाना होगा, और कोई सहारा नहीं है; और अपने ही प्राणों का उत्कर्ष करना होगा, कोई और आशीर्वाद, कोई और सांत्वना नहीं है... । तुमने कभी सोचा?
आस्कर वाइल्ड ने लिखा है कि जब नाव डूब जाती है किसी की और आदमी सागर में तड़फड़ाता है तो जैसी उसकी दशा होती है, जब तक तुम्हारी न हो जाये तब तक तुम कुछ करोगे न। नाव डूब गई। सागर की उत्तंग तरंगें, किनारे का कोई पता नहीं--तब क्या दशा होती है? तब तुम सोचते हो कि आयेगा किसी का आशीर्वाद या उसको बचाना होगा बचायेगा? नहीं, तब तुम प्राणपण से, अपनी समग्र ऊर्जा से बचने की चेष्टा में लग जाते हो; तुम सागर से लड़ने लगते हो। उस समय न तो विचार रह जाते हैं। कहां विचार की जगह है? सुविधा कहां है? फुर्सत किसे है उस समय विचार करने की? जीवन संकट में है। न विचार रह जाते हैं। कितनी बार ध्यान किया था और न लगा था; उस दिन लग जाता है। अब कोई विचार नहीं रह जाते। न कोई कामना उठती, न कोई वासना उठती, न धन, न स्त्री, न संसार, कुछ भी नहीं, सब खो जाता है। सिर्फ एक स्वयं को बचाने की--वह भी भाव की दशा होती है, विचार नहीं होता। और तुम जूझने लगते हो सागर से।
महावीर कहते हैं, ऐसी ही तुम्हारी स्थिति होनी चाहिए। ऐसी ही स्थिति है, लेकिन तुमने कल्पना की नावें बना रखी हैं और तुमने कल्पना के सहारे ले रखे हैं। उन सहारों के कारण तुम चेष्टा नहीं कर पाते जितनी कि कर सकते थे। इसलिए वे कहते हैं, हटा लो सारी सांत्वनाएं।
महावीर ने अपने साथ चलनेवालों के सब आश्रय छीन लिये। उनको बे-आसरा कर दिया, ताकि उनके भीतर जो सोए हुए प्राणों की ऊर्जा है वह इस चुनौती में उठ जाये, ज्योतिर्मय हो उठे।
मुकाबिल में तेरे लाखों खुदा इसने बनाए हैं
उन्हें पूजा है, उनकी बंदगी के गीत गाए हैं।
आदमी ने असली परमात्मा की जगह न मालूम कितने परमात्मा बनाए हैं। उन्हें पूजा, उनकी बंदगी के गीत गाए हैं। महावीर कहते हैं, असली परमात्मा तुम्हारे भीतर छिपा है। न तो बंदगी से कुछ होगा, न गीतों से कुछ होगा, न पूजा-अर्चा के थालों से कुछ होगा। तुम जीवन के तथ्य को समझो। इस सत्य को समझो कि भवसागर में पड़े हो और डूब रहे हो। स्थिति को ठीक से समझलोगे तो तुम स्वयं को बचाने में लग जाओगे। और तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हें कोई और बचा नहीं सकता है। इसलिए महावीर कहते हैं, शरण-भावना से बचना, अशरण-भावना में ध्यान करना। किसी की शरण जाने की बात मत सोचना। समर्पण नहीं, संकल्प।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि लोक-व्यवहार में आकर प्रज्ञापुरुषों के शब्द अपना अर्थ खो बैठते हैं। और आपने बताया कि महावीर ने "अहिंसा", जीसस

ने "प्रेम" और सूफियों ने "इश्क" शब्द अपनाए। भगवान! वर्तमान शताब्दि में आप कौन-सा शब्द हमें देना पसंद करेंगे?

मैं तो प्रेम के प्रेम में हूं। उस शब्द से बहुमूल्य मुझे कोई और दूसरा शब्द मालूम नहीं होता। लाख विकृतियां हो गई हों, फिर भी उस शब्द में जादू है। अहिंसा मरा-मरा शब्द लगता है। उससे औषधि की बास आती है। अहिंसा-- अस्पताल में जैसी बास आती है, वैसी बास आती है। कुछ नहीं करना है, कुछ रोकना है, कुछ निषेध--प्रेम जैसे फूल नहीं खिलते। प्रेम शब्द हृदय में कुछ और ही गूंज लाता है, कोई कमल खिल जाते हैं, कोई द्वार खुलते हैं। अहिंसा से ऐसा पता चलता है, कुछ मजबूरी, कुछ कर्तव्य--विधायकता नहीं है, पाजिटीविटी नहीं है। "नहीं" में होती भी नहीं।
प्रेम में "हां" है, स्वीकार है। प्रेम में एक अहोभाव है, गीत है, नृत्य है। तो लाखों विकृतियां हो गई हों प्रेम में, तो भी मैं प्रेम को चुनता हूं। क्योंकि प्रेम जिंदा है और उन विकृतियों को अलग करने की क्षमता है उसमें। अहिंसा शब्द में कोई प्राण नहीं हैं। तो भला उसमें महावीर ने जब प्रयोग किया तो कोई विकृतियां न रही हों, अब तो हजारों विकृतियां हो गई हैं। और तकलीफ यह है कि अहिंसा मुर्दा शब्द है। इसलिए उन विकृतियों को छिटकाकर फेंक नहीं सकता। प्रेम फेंक सकता है। प्रेम जीवंत है।
ऐसा ही समझो कि एक आदमी मरा हुआ पड़ा है, साफ-सुथरे वस्त्रों में पड़ा है; बिल्कुल धुले-धुलाए वस्त्र हैं, शुभ्र वस्त्र हैं; धूल का कण भी नहीं है। और एक जिंदा आदमी बैठा है; पसीने से तरबतर है; धूल भी चिपक गई है; दिनभर मेहनत की है; स्नान की जरूरत है। और तुम अगर मुझसे पूछो कि किसको चुनोगे, तो मैं कहूंगा, मैं जिंदा को चुनता हूं। पसीना है, नहाने से छूट जायेगा। धूल जम गई है वस्त्रों पर, साबुन उपलब्ध है। मगर आदमी जिंदा है! यह मुर्दा आदमी, माना कि न इसमें पसीना निकलता है, न इस पर धूल जमी है, यह कांच के ताबूत में रखा रह सकता है, ऐसा ही साफ-सुथरा बना रहेगा--पर इसका करोगे क्या? इससे होगा क्या?
अहिंसा मुर्दा शब्द है। प्रेम जीवंत है। निश्चित ही प्रेम के साथ पसीना भी है। पसीने में कभी-कभी बदबू भी आती है। पसीने पर धूल भी जम जाती है। आदमी गंदा भी हो जाता है, लेकिन यह सब जिंदगी के लक्षण हैं। जहां गंदगी हो सकती है, वहां स्वच्छता लायी जा सकती है। ध्यान रखना, जहां गंदगी हो ही नहीं सकती, वहां स्वच्छता कैसे लाओगे? वहां तो मौत आ चुकी। तुम उस बच्चे को पसंद करोगे जो मुर्दे की तरह एक कोने में बैठा रहता है! मां-बाप पसंद करते हैं अकसर, क्योंकि उनके लिए कम उपद्रव का कारण होता है। गोबर-गणेश! बैठे हैं। कभी-कभी पूजा करनी हो तो गणपति जी की पूजा कर लो, बाकी वे बैठे रहते हैं। मां-बाप को ठीक लगते हैं, लेकिन बाद में पछताएंगे। वे ऐसे ही बैठे रहेंगे। फिर एक उपद्रवी, नटखटी बच्चा है, दौड़ता है, हाथ-पैर भी तोड़ लाता है, खून भी निकल आता है, कपड़े भी गंदे कर आता है, कीचड़ में सना हुआ घर आ जाता है। मैं तो इसी को चुनूंगा। यह जिंदा तो है! इससे कुछ होने की संभावना है।
अहिंसा में कुछ न हो, इसकी चेष्टा है। प्रेम में कुछ हो, इसकी चेष्टा है। मैं जीवन के पक्ष में हूं, मौत चाहे कितनी ही साफ-सुथरी हो। और मौत बड़ी साफ-सुथरी चीज है। झंझटें तो जीवन में हैं, मौत में क्या झंझट है? वह तो सब झंझटों का अंत है। तो भी मैं मौत को न चुनूंगा, मैं जीवन को ही चुनूंगा। दयारे-रंगो-निकहत में गुजर क्या होशमंदों का
यह पैगामे-बाहर आया तो दीवानों के नाम आया।
--वे जो बहुत होशियार हैं, गणित से जीते हैं, समझदारी-समझदारी ही जिनके जीवन में है और दीवानगी बिल्कुल नहीं, जिन्होंने पागल होने की सारी क्षमता को नष्ट कर दिया है--उनके जीवन में कभी वसंत का पैगाम नहीं आता। दयारे-रंगो-निकहत में गुजर क्या होशमंदों का!
--इस रंग-रूप, फूलों से भरी दुनिया में समझदारों की कहां जरूरत है?
यह पैगामे-बहार आया तो दीवानों के नाम आया।

और जब भी वसंत की लहर आती है, संदेश आता है जीवन का, तो दीवानों के नाम आता है।
अहिंसा तुम्हें होशियारी दे देगी, लेकिन दीवानगी कहां से लाओगे? अहिंसा तुम्हें गलत करने से बचा लेगी; लेकिन सही करने का रंग-रूप कहां से लाओगे? अहिंसा तुम्हें गाली देने से रोक लेगी; लेकिन गीत कहां से जन्माओगे?
गाली देने से रुक जाना काफी है? तो जो आदमी गाली नहीं देता, बस पर्याप्त है?
यही तो जैन मुनियों की दशा हो गई है। वे गाली नहीं देते; गीत उनसे पैदा नहीं होता। बैठे हैं, गोबर-गणेश, उनकी पूजा कर लो! जैनी जाते हैं सेवा को। उनसे बुराई तो उन्होंने काट डाली, लेकिन कहीं कुछ भूल हो गई, कहीं कुछ बड़ी बुनियादी चूक हो गई। और वह चूक यह है कि उन्होंने गलत को छोड़ने की आकांक्षा की, गलत से बचने की चेष्टा की; लेकिन सही को जन्माने के लिए उन्होंने कोई प्रयास न किया। उनका ख्याल है कि गलत हट जाए तो सही अपने से आ जायेगा। मेरा ख्याल है कि सही आ जाये तो गलत अपने से हट जायेगा। और मैं तुमसे कहता हूं कि उनका ख्याल गलत है। उनका ख्याल ऐसे ही है जैसे कोई आदमी, अंधेरा भरा हो कमरे में, अंधेरे को धक्का दे देकर निकालने लगे। नहीं, अंधेरे को कोई धक्के देकर नहीं निकाल सकता--थकेगा, मरेगा, जिंदगी खराब हो जायेगी। दीया जलाओ! कुछ विधायक को जलाओ! अंधेरा अपने से चला जाता है।
तो मैं तुमसे नहीं कहता, क्रोध छोड़ो। मैं कहता हूं, करुणा जन्माओ। मैं तुमसे नहीं कहता, संसार छोड़ो। मैं कहता हूं, आत्मा को जगाओ। मैं तुमसे नहीं कहता, धन-दौलत छोड़ो। मैं कहता हूं, भीतर एक धन-दौलत है, उस खोजो। मेरा रुख विधायक है। और यह मेरा जानना है कि जिस दिन तुम्हें भीतर की धन-दौलत मिल जायेगी, तुम बाहर की धन-दौलत को पकड़ोगे? न पकड़ोगे न छोड़ोगे, क्योंकि वह धन-दौलत ही न रही। छोड़ने लायक भी न रही, पकड़ने की तो बात दूर है। रखा ही क्या है वहां? जहां भीतर के हीरे दिखाई पड़ने लगें, वहां सब बाहर का कंकड़-पत्थर हो जाता है। जब भीतर के सौंदर्य में जीने लगे तो बाहर सौंदर्य दिखता ही नहीं। लेकिन अगर तुम बाहर के सौंदर्य को छोड़कर भागे और यही तुम्हारी जीवन की शैली हो गई, निषेध, इनकार, नेति-नेति, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। फांसी लगा लोगे अपने हाथ से गले में। और जिसको तुम छोड़कर भागे हो, उसकी बुरी तरह याद आएगी। आयेगी ही।
इसलिए जो छोड़कर भागते हैं--स्त्रियों के संबंध में चिंतन चलता रहता है, धन के संबंध में चिंतन चलता रहता है। छिड़कते हैं, झिटकते हैं उस चिंतन को, हटाते हैं। जब-जब स्त्री की याद आ जाती है, जोर-जोर से राम-राम-राम-राम जपने लगते हैं कि किसी तरह... । मगर तुम्हारे जपने से क्या होता है? राम-राम-राम ऊपर रह जाता है, काम-काम-काम-काम भीतर चलता जाता है। तुम्हारे हर दो राम के बीच में से काम की खबर आने लगती है।
भागो मत! घबड़ाओ मत। डरो मत! परमात्मा जीवन का निषेध नहीं है, जीवन का परिपूर्ण अनुभव है। और धर्म पलायन नहीं है, जीवन का परिपूर्ण भोग है। महावीर ने प्रेम के लिए अहिंसा शब्द चुना; वहां भूल हो गई। पर भूल हो जाने के लिए कारण थे। क्योंकि प्रेम शब्द... उपनिषद और वेद प्रेम की चर्चा कर रहे थे। और प्रेम का सब तरफ जाल था। और प्रेम के नाम पर सब तरफ भ्रष्टाचार था। तो महावीर को लगा, अब प्रेम का शब्द उपयोग करना खतरे से खाली नहीं है। उन्होंने इसी आशा में अहिंसा का उपयोग किया कि वे समझा लेंगे तुम्हें कि अहिंसा का अर्थ प्रेम ही है। लेकिन वे न समझा पाए। कसूर उनका नहीं है। कसूर उनका है जिन्होंने सुना। उन्होंने तत्क्षण अहिंसा में से प्रेम तो न निकाला, नकारात्मकता निकाल ली। तो महावीर का धर्म धीरे- धीरे ऐसा धर्म हो गया कि इसमें क्या-क्या नहीं करना है, वही महत्वपूर्ण हो गया।
.जाहिद हद्दे-होशो-खिरद में रहा "असीर"
नादां ने जिंदगी ही को जिंदां बना दिया।
वह जो बुद्धि-बुद्धि से जी रहा है...
.जाहिद हद्दे-होशो-खिरद में रहा "असीर"

--जो सदा ही बुद्धि की सीमा में ही घिरा रहा, छोड़ने-त्यागने की सीमा में ही घिरा रहा...
नादां ने जिंदगी ही को जिंदां बना दिया।
--उस ना-समझ ने अपने जीवन को ही एक कारागृह बना लिया। छोड़ो-छोड़ो, सिकुड़ते जाओ--धीरे-धीरे तुम पाओगे, फांसी लग गई अपने ही हाथों। लेकिन, तुम समझ न पाओगे, क्योंकि जितनी तुम्हारी फांसी लगेगी उतने ही लोग तुम्हारे पैरों में फूल चढ़ायेंगे। वे कहेंगे, कैसे महात्यागी! तो तुम्हें फांसी में भी रस आने लगेगा। क्योंकि फांसी जितनी तुम कसते जाओगे, उतना ही तुम्हें सम्मान मिलेगा। जितने ज्यादा उपवास करोगे, जितना अपने को तोड़ते जाओगे, उतना सम्मान मिलेगा। जितना अपने को मिटाओगे, अपना घात करोगे, उतना सम्मान मिलेगा। तो उस मुनि को ज्यादा सम्मान मिलता है जो ज्यादा त्याग करता है। उसको वे लोग कहते हैं, महामुनि। लोग सिर रखते हैं उसके चरणों में। तो अहंकार मजा लेता है!
तो जिन्होंने भी निषेध की यात्रा की, उन्होंने सिर्फ अहंकार को भर लिया। उनके जीवन में आत्मा खुली नहीं, खिली नहीं।
तो मैं तो प्रेम को ही चुनता हूं। मैं प्रेम के प्रेम में हूं। मैं तो तुमसे कहूंगा, लाख खराबियां हो इस शब्द में--महावीर से कुछ सीख लो। महावीर ने इस शब्द की खराबियों को देखकर अहिंसा चुना, लेकिन जो परिणाम हुए वे और भी बदतर हुए। बीमारी तो बीमारी, औषधि भी बीमारी बन गई।
मैं तो तुमसे कहूंगा, प्रेम चुनो। और प्रेम इतना सबल है कि वह अपनी भूलों को पार करने की क्षमता रखता है। वह जिंदा है, तो गंदा भी हो जाये तो स्नान कर सकता है। अहिंसा लाश है, गंदी न होगी, लेकिन उसकी स्वच्छता का भी क्या मूल्य है? उसकी स्वच्छता में जीवन की सुवास नहीं है। उसकी स्वच्छता क्लिनिकल है।
मुझे तो प्रेम शब्द में रस है। क्योंकि मेरे देखे, यह सारा जगत प्रेम
से आंदोलित है। यहां श्वास-श्वास प्रेम से चल रही है। यहां फूल-फूल प्रेम से खिल रहे हैं। और अभी तो वैज्ञानिक भी सोचने लगे हैं कि जब प्रेम से सारा जगत बंधा हुआ है--स्त्री पुरुषों से बंधी, पुरुष स्त्रियों से बंधे, मां- बाप बेटों-बच्चों से बंधे, बेटे-बच्चे मां-बाप से बंधे, मित्र मित्रों से बंधे--जहां सब कुछ बंधा है प्रेम से, वहां हमें यह मानकर चलना पड़ेगा कि हम एक प्रेम के सागर में जी रहे हैं।
जब अणु की पहली दफा खोज हुई और अणु का विस्फोट किया गया, तो रदरफोर्ड ने, जिसने पहली दफा अणु के संबंध में गहरी खोज की, उसको एक सवाल उठा कि अणु के जो परमाणु हैं--इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, पाजिट्रान--ये आपस में कैसे बंधे हैं? इनको कौन-सी शक्ति बांधे हुए है? ये बिखर क्यों नहीं जाते? तुमने कभी ख्याल किया--एक पत्थर पड़ा है, सदियों से पड़ा है, बिखरता क्यों नहीं? तुम इसे तोड़ दो हथौड़े से, बिखर गया, फिर तुम इसे जोड़ो, फिर रख दो टुकडों को पास-पास, मगर अब न जुड़ेगा। बात क्या हो गई? इतने दिन तक कौन-सी चीज इसे जोड़े थी? अगर वह चीज इतने दिन तक जोड़े थी, फिर तुमने टुकड़े पास रख दिये, अब क्यों नहीं जोड़ती? कोई चीज तोड़ दी तुमने। पत्थर नहीं तोड़ा तुमने; कोई और चीज जो सूक्ष्म थी, तोड़ दी। पत्थर तो अब भी वही का वही है, उसका वजन भी वही है, टुकड़े भी उतने के उतने हैं--लेकिन पहले जुड़े थे, अब टूट गए। अब तुम लाख उनको पास-पास बिठाओ, उनको लाख समझाओ कि अब फिर से जुड़ जाओ, पूजा- प्रार्थना करो, यज्ञ-हवन करो, वह सुनेगा नहीं। कोई चीज तुमने तोड़ दी, कोई बहुत सूक्ष्म चीज तोड़ दी।
रदरफोर्ड सोचने लगा, कौन-सी चीज जोड़े हुए है! बहुत-से सिद्धांत प्रतिपादित किये गये हैं। उनमें एक सिद्धांत प्रेम का भी है, यह आश्चर्य की बात है। वैज्ञानिक और प्रेम की बात करें! लेकिन आश्चर्यचकित होने की जरूरत नहीं है। अगर जीवन सब तरफ प्रेम से जुड़ा है, अगर वृक्ष फलों से प्रेम के कारण जुड़े हैं, अगर वृक्ष फूलों से प्रेम के कारण जुड़े हैं, अगर आदमी आदमी से प्रेम के कारण जुड़ा है तो फिर निश्चित ही जीवन की इकाइयां भी, ईंटें भी प्रेम से ही जुड़ी होंगी। चाहे तुम उसे मैग्नेटिज्म कहो, चाहे तुम उसे इलेक्ट्रिसिटी कहो--यह नाम का भेद है। लेकिन कोई चुंबकीय शक्ति सारे

जीवन को जोड़े हुए है। उस चुंबकीय शक्ति को भक्तों ने भगवान कहा है, प्रेम कहा है, परमात्मा कहा है। महावीर उसे सत्य कहते हैं।
लेकिन फिर महावीर का "सत्य" शब्द बड़ा तटस्थ है। उससे रसधार नहीं बहती। सत्य बड़ा रूखा-सूखा है, मरुस्थल जैसा है। प्रेम मरूद्यान है; बड़ी रसधार बहती है। उपनिषद कहते हैं, रसो वै सः। वह जो परमात्मा है, रस उसका स्वभाव है।
रस को मैं भी जीवन का सत्य मानता हूं। और तुम्हारे जीवन में रस तभी होता है जब प्रेम होता है। जहां-जहां प्रेम, वहां-वहां रस। जहां-जहां प्रेम खोया, वहां-वहां रस सूखा। रस में डूबो। तन डूबे, मन डूबे, सब डूबे। रस में डूबो! और तब तुम्हारी दृष्टि में एक अलग ही दृश्य दिखाई पड़ना शुरू हो जायेगा।
"जमील" अपनी असीरी पे क्यों न हो मगरूर
यह फख्र कम है कि सैय्याद ने पसंद किया!
"जमील" अपनी असीरी पे क्यों न हो मगरूर! जमील ने कहा है, क्यों न हम अभिमान करें इस बात का कि परमात्मा ने हमें कैद करने योग्य समझा, बांधने योग्य समझा! यह फख्र कम है कि सैय्याद ने पसंद किया! --कि उसने हमें पसंद किया, कि भेजा, कि बनाया!
भक्त तो अपने दुख में से भी सुख का गीत सुन लेता है। अपनी जंजीरों में
भी रस पा लेता है। कहता है, परमात्मा ने ही बांधा है। छूटने की जल्दी भक्त को नहीं है। भक्त कहता है, तेरे बंधन हैं--राजी हैं! और ऐसे भक्त छूट जाता है। क्योंकि जिस बंधन को तुमने सौभाग्य समझ लिया, वह बंधन बांधेगा कैसे? बंधन तभी तक बांधता है जब तक तुम छूटना चाहते हो। तुम्हारे छूटने की वृत्ति के विपरीत होने के कारण बंधन मालूम होता है। जब तुम स्वीकार कर लिये, राजी हो गए, तुमने कहा कि ठीक... ।
"जमील" अपनी असीरी पे क्यों न हो मगरूर
यह फख्र कम है कि सैय्याद ने पसंद किया!
यह कोई कम गौरव की बात है कि परमात्मा ने चुना! जो बनाया, जैसा बनाया...
। वह हर जगह उसके प्रेम को खोज लेता है।
और तुम्हारा जीवन अगर हर जगह प्रेम को खोजने लगे--ऐसी जगह भी जहां खोजना बड़ा मुश्किल है--जिस दिन तुम सब जगह प्रेम के दर्शन करने लगो, उस दिन परमात्मा के दर्शन हो गए।
जीसस ने कहा है, परमात्मा प्रेम है। और मैं कहता हूं, प्रेम परमात्मा है।
पर ये रास्ते अलग-अलग हैं। महावीर का रास्ता भक्त का रास्ता नहीं है-- होश का। भक्त का रास्ता है बेहोशी का। भक्त का रास्ता मधुशाला का है। वह कहता है, यह होश ही हमारी पीड़ा है।
तुझ पे कुर्बां मेरे दिल की हर एक बेखबरी
आ! इसी मंजिले-एहसासे-फरामोश में आ।
हे प्रभु! भक्त कहता है, तुझ पे कुर्बां मेरे दिल की हर एक बेखबरी--और
तो मेरे पास कुछ भी नहीं है, बेहोशी है। यह मेरे दिल का पागलपन है, दीवानगी है। यह तुझ पर कुर्बान करता हूं। यह तुझ पर न्योछावर करता हूं। और तो मेरे पास कुछ भी नहीं है।
तुझ पे कुर्बां मेरे दिल की हर एक बेखबरी
आ! इसी मंजिले-एहसासे-फरामोश में आ।
और मैं तुझे याद भी कर सकूं, यह भी मेरी सामर्थ्य नहीं। तू मेरे विस्मरण के द्वार से ही आ!
आ! इसी मंजिले-एहसासे-फरामोश में आ। मेरी इस बेहोशी के रास्ते से ही
तू आ!
भक्त का ढंग और। भक्त भी पहुंच जाते हैं। साधक भी पहुंच जाते हैं। महावीर का मार्ग साधक का है। नारद का मार्ग भक्त का है। लेकिन अगर तुम मुझसे पूछते हो, तो मेरे देखे भक्त के मार्ग से अधिक लोग पहुंच सकते हैं। हां, जिनको भक्ति असंभव ही मालूम पड़ती हो, उनको साधक का मार्ग है। वह मजबूरी है। तुम्हारा प्रेम अगर इतना मर गया है और जड़ हो गया है कि उसमें से

तुम परमात्मा को प्रगट नहीं कर सकते, तो फिर छोड़ो। फिर तुम साधक के मार्ग से चलो।
लेकिन साधक का मार्ग दोयम है, नंबर दो है। वह उनके लिए है जिनके भीतर
की आत्मा कुछ मुर्दा हो गई है और जिनके भीतर प्रेम के स्रोत सूख गए हैं, जिनके भीतर गीत-गान नहीं उठता, जिनके भीतर नृत्य-नाच नहीं उठता, जिनकी बांसुरी खो गई है--उनके लिए है। अगर तुम्हारी बांसुरी अभी भी तुम्हारे पास हो और तुम गुनगुना सको गीत, तो सौभाग्यशाली हो। अगर यह न हो; अगर कहीं सब खो चुके बांसुरी दूर जीवन की यात्रा में; कहीं प्रेम को कुठाराघात हो गया; कहीं सब जड़ हो गया तुम्हारा हृदय, अब उसमें कोई पुलक नहीं उठती--तो फिर साधक का मार्ग है। साधक का मार्ग उन थोड़े-से लोगों के लिए है, जिनके भीतर प्रेम की सब संभावनाएं समाप्त हो गई हैं। लेकिन अगर प्रेम की जरा-सी भी संभावना हो और अंकुरण हो सकता हो, तो फिक्र छोड़ो। जब गीत गाकर और नाचकर उसके घर की तरफ जा सकते हैं, तो फिर लंबे चेहरे, उदास चेहरे लेकर जाने की कोई जरूरत नहीं। जब स्वस्थ, प्रफुल्लित उसकी तरफ जा सकते हैं, तो नाहक की उदासी, नाहक का वैराग्य थोपने की कोई जरूरत नहीं।
महावीर के मार्ग से लोग पहुंचे हैं, तुम भी पहुंच सकते हो। लेकिन महावीर का मार्ग बहुत संकीर्ण है; बहुत थोड़े-से लोग पहुंचते हैं; बहुत थोड़े-से लोग जा सकते हैं।
भक्ति का मार्ग बड़ा विस्तीर्ण है। उस पर जितने लोग जाना चाहें, जा सकते हैं। लेकिन कुछ लोगों को कठिनाई में रस होता है। कुछ लोगों को जो चीज सुलभता से मिलती हो, वह जंचती नहीं। कुछ लोगों को जितने ज्यादा उपद्रव और मुसीबतों में से गुजरना पड़े उतना ही उन्हें लगता है, कुछ कर रहे हैं। उनके लिए महावीर का मार्ग बिल्कुल ठीक है।

आखिरी प्रश्नः आपके पास कुछ भी लिखती हूं तो आप नाराज हो जाते हैं। पीछे मुझे बहुत घबड़ाहट होती है कि आपके पास दिल खोलूं कि नहीं खोलूं। और क्या मैं कुछ भी नहीं कर पाती? कोशिश तो हर हाल करती हूं कि आपकी बात समझ में आए। भक्त को अहंकार का कुछ भी पता नहीं। कैसे क्या करूं? मेरी हिम्मत अब टूटी जा रही है। कृपया एक बार फिर समझाएं!

तरु का प्रश्न है।
"आपके पास कुछ भी लिखती हूं तो आप नाराज हो जाते हैं।" बहुत बार ऐसा लगेगा कि मैं नाराज हुआ हूं, पर मेरी नाराजगी में केवल इतनी ही अभिलाषा है कि शायद नाराज होकर कहूं तो तुम सुन लो; शायद नाराज होकर कहूं तो तुम्हारा सपना टूटे; शायद चोट देकर कहूं तो तुम थोड़े तिलमिलाओ और जागो।
झेन फकीर तो डंडा हाथ में रखते हैं तरु! और उन्होंने देखा कि जरा उनका कोई शिष्य झपकी खा रहा है कि उन्होंने सिर फोड़ा। लेकिन कई बार ऐसा हुआ है कि झेन सदगुरु का डंडा पड़ा है और उसी क्षण साधक समाधि को उपलब्ध हो गया है। तुम्हारी नींद गहरी है; चोट करनी जरूरी है। तुम्हें धक्के देने जरूरी हैं। तुम्हें लोरी ही गाकर सुनाता रहूं तो तुम और भी सो जाओगे। हालांकि लोरी तुम्हें अच्छी लगती है। मगर तुम्हारे अच्छे लगने को देखूं? तो तुम्हें तो नींद ही अच्छी लगती है। तुम्हें जगाना होगा! तुम्हें झकझोरना होगा!
और धीरे-धीरे तुमने अपने रोगों को भी अपने जीवन का हिस्सा मान लिया है। तुम धीरे-धीरे अपने रोगों के भी प्रेम में पड़ गए हो।
एक छोटा बच्चा अपने नाना-नानी के घर आया था। रात जब नानी उसकी सुला गई उसे कमरे में और बिजली की बत्ती बुझाई, तो वह बैठ गया और रोने लगा। उसने पूछा कि क्या हुआ तुझे। नानी ने पूछा, क्या हुआ तुझे? उसने कहा कि मुझे अंधेरे का बहुत डर लगता है। पर उसने कहा, "अरे पागल! और तू अपने घर भी तो अंधेरे में ही सोता है और अलग ही कमरे में सोता है, तो फिर क्या डर है?" तो उसने कहा, नानी, वह बात अलग है। वह मेरा अंधेरा है।
अपने-अपने अंधेरे से भी लगाव हो जाता है। मेरा अंधेरा, मेरी बीमारी, मेरा रोग, मेरी चिंता, मेरा संताप-- "मेरा" उससे भी जुड़ जाता है। तभी तो हम

अपने दुख को भी पकड़े बैठे रहते हैं। दुख छोड़ने में भी डर लगता है, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि दुख भी छूट जाये और हाथ खाली हो जायें, और कुछ मिले न; कम से कम कुछ तो है, दुख ही सही, दर्द ही सही! होने का पता तो चलता है कि है। तो कई बार तुमसे मुझे नाराज भी होना पड़ता है--सिर्फ इसीलिए कि तुम्हें प्रेम करता हूं, अन्यथा कोई कारण नहीं है।
"और पीछे मुझे बहुत घबड़ाहट होती है कि आपके पास दिल खोलूं कि नहीं खोलूं!"
क्या तुम्हारे खोलने न खोलने से कुछ फर्क पड़ेगा? खुला ही हुआ है। जिस दिन अपने को जाना, उसी दिन से सभी का दिल खुल गया है। अपना दिल खुले तो सब का दिल खुल जाता है। अब मुझसे छिपाने का उपाय नहीं है। न बताओ, कोई फर्क न पड़ेगा। क्योंकि मनुष्य मात्र की पीड़ा एक है। विस्तार के फर्क होंगे, थोड़े बहुत रंग-ढंग के फर्क होंगे; लेकिन मनुष्य मात्र की पीड़ा एक है--कि जिससे हम जन्मे हैं उससे हम बिछुड़ गए हैं; कि जो हमारा मूल स्रोत है उससे हम खो गये हैं। और इसलिए सब खोजते हैं, लेकिन तृप्ति नहीं होती। बहुत दौड़ते हैं, लेकिन पहुंचते नहीं; क्योंकि अपने घर का पता ही भूल गया है। विस्तार की बातें अलग हैं। वे हर एक व्यक्ति की अलग हैं। उसमें जाने से कोई सार भी नहीं है।
तुम अपना दिल खोलो या न खोलो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी आधारभूत पीड़ा का मुझे पता है।
वह पीड़ा यही है कि कैसे प्रभु से मिलन हो जाये! प्रभु नाम दो या न दो। कैसे उससे मिलन हो जाये, जिसे पाकर फिर कुछ और पाने को न बचे!
"और क्या मैं कुछ भी नहीं कर पाती हूं?"
करती बहुत हो, लेकिन करने से वह मिलता नहीं। कर-करके हारने से मिलता है। जब तक करना जारी रहता है, तब तक तो थोड़ी न थोड़ी अस्मिता बनी ही रहती है। "मैं कर रहा हूं", तो मैं बचा रहता हूं। कृत्य से तो अहंकार कभी मरता नहीं। हां, कृत्य से अहंकार सुंदर हो जाता है, सुरुचिकर हो जाता है। कृत्य से अहंकार में सजावट आ जाती है, शृंगार आ जाता है; मिटता नहीं। मिटता तो तभी है, जब तुम्हें पता चलता है, मेरे किए कुछ भी न होगा। आत्यंतिक रूप से ऐसा पता चलता है कि मेरे किए कुछ भी न होगा। अंतिम रूप से यह निर्णय आ जाता है कि मेरे किए कुछ भी न होगा। वहीं "मैं" गिरता है, जहां उसके किए कुछ भी नहीं होता।
तो तुम करते तो बहुत हो; लेकिन मैं तुमसे कहे चला जाता हूं, कुछ भी नहीं, यह भी कुछ नहीं, और करो, और करो। और जो जितना ज्यादा कर रहा है उससे मैं और ज्यादा कहता हूं, यह कुछ भी नहीं, और करो। क्योंकि जो जितना ज्यादा कर रहा है, उससे उतनी ही आशा बंधती है कि करीब पहुंच रहा है उस सीमा के, जहां सब करना व्यर्थ हो जाएगा। तो और दा.ैडाता हूं। जो पिछड़ गए हैं, उनको न भी कहूं, क्योंकि उनके दौड़ने से भी कुछ बहुत होनेवाला नहीं है। लेकिन जो दौड़ में बहुत आगे हैं और बड़ी शक्ति से दौड़ रहे हैं उनको तो जरा भी शिथिलता खतरनाक होगी और महंगी पड़ जायेगी।
ऐसा उल्लेख है, रवींद्रनाथ के चाचा थे अवनींद्रनाथ। बड़े चित्रकार थे। भारत में ऐसे चित्रकार इस सदी में एक-दो ही हुए। दूसरा जो बड़ा चित्रकार भारत में पैदा हुआ, नंदलाल, वह उनका शिष्य था। रवींद्रनाथ एक दिन बैठे थे अवनींद्रनाथ के साथ। और नंदलाल, जब वह युवक था और विद्यार्थी था, कृष्ण का एक चित्र बनाकर लाया। रवींद्रनाथ ने लिखा है कि ऐसा सुंदर चित्र मैंने पहले कभी देखा न था; कृष्ण की ऐसी छवि कोई बना न पाया था। और मैं तो भावविभोर हो गया, विमुग्ध हो गया, नाच उठने का मन हो गया; लेकिन मैं चुप रहा। क्योंकि अवनींद्रनाथ मौजूद थे, और वे चित्र को बड़े गौर से देख रहे थे। बड़ी देर सन्नाटा रहा।
रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मैं घबड़ा गया कि बात क्या है, वे कुछ कहें! तोड़ें इस खामोशी को, कुछ तो कहें। नंदलाल भी थरथर कांप रहा था। और आखिर उन्होंने आंखें ऊपर उठाईं और उस चित्र को उठाकर बाहर फेंक दिया अपनी बैठक से। और नंदलाल से कहा, "इसको तुम बड़ी कला मानते हो? यह तो बंगाल में जो

पटिये हैं, जो कृष्ण का चित्र बनाते हैं, दो-दो पैसे में बेचते हैं, उनके लायक भी नहीं है। तुम जाओ पटियों से सीखो कि कृष्ण कैसे बनाये जाते हैं!" नंदलाल सिर झुकाकर, चरण छूकर लौट गया। रवींद्रनाथ को तो बड़ा आश्चर्य हुआ और क्रोध भी आया। लेकिन गुरु-शिष्य के बीच क्या बोलना, तो वे चुप रहे। जब नंदलाल चला गया तब उन्होंने कहा कि यह मेरी समझ के बाहर है। आपके भी चित्र मैंने देखे, लेकिन मैं कह सकता हूं कि उन चित्रों में भी मुझे कोई इतना नहीं भाया जितना यह कृष्ण का चित्र भाया। और आपने इसको उठाकर फेंक दिया!
लेकिन अवनींद्रनाथ चुप! तो उन्होंने आंखें उठाकर देखा, आंख से आंसू
बह रहे हैं। अवनींद्रनाथ ने कहा कि तुम समझे नहीं; इससे मुझे बड़ा भरोसा है; इससे अभी और खींचा जा सकता है। अभी यह और ऊंचाइयां छू सकता है। मैं भी जानता हूं कि ऐसा चित्र मैंने भी नहीं बनाया। मगर इसकी अभी और संभावना है। अगर मैं कह दूं कि बस, बहुत हो गया। मेरी प्रशंसा का हाथ इसके सिर पर पड़ जाये, तो यही इसकी रुकावट हो जायेगी। मैं इसका दुश्मन नहीं हूं।
नंदलाल तीन साल तक पता न चला, कहां चला गया। वह गांव-गांव बंगाल में घूमता रहा और जहां-जहां पटियों की खबर मिली, गांव के ग्रामीण कलाकारों की, उनसे जाकर कृष्ण के चित्र बनाना सीखता रहा। तीन साल बाद लौटा। रवींद्रनाथ को नंदलाल ने आकर कहा कि उनकी बड़ी अनुकंपा है! ऐसा बहुत कुछ सीखकर लौटा हूं जो यहां बैठकर कभी सीख ही न पाता! उन ग्रामीण सरल हृदय लोगों में तकनीक तो नहीं है, तकनीक की उन्हें कोई शिक्षा नहीं मिली है; लेकिन भाव की बड़ी गहनता है। और असली चीज तो भाव है, तकनीक में क्या रखा है?
तो जो यहां मेरे पास तीव्रता से काम में लगे हैं, उनकी पीठ मैं नहीं थपथपाता। उनसे तो मैं कहता हूं, यह क्या है? बंगाल के पटिये भी इससे बेहतर कर लेते हैं। उनसे तो मैं यही कहे चला जाऊंगा, यह भी कुछ नहीं--और-और-और--उस घड़ी तक, जहां कि करने की पराकाष्ठा आ जाये। क्योंकि जहां करने की पराकाष्ठा आती है वहीं अहंकार की भी पराकाष्ठा आ जाती है। और जब करना- मात्र गिर जाता है, जब तुम्हें लगता है, अब आगे करने को कुछ भी नहीं बचा और तुम बैठ जाते हो, उस बैठने में ही पहली दफा परमात्म-तत्व से संबंध होता है। तुम नहीं होते, उस बैठने में तुम नहीं होते; उस बैठने में तुम्हारे भीतर परमात्मा ही होता है।
"क्या मैं कुछ भी नहीं कर पाती हूं? कोशिश तो हर हाल करती हूं कि आपकी बात समझ में आये। भक्त को अहंकार का कुछ भी पता नहीं। कैसे क्या करूं? मेरी हिम्मत अब टूटी जा रही है।"
बड़े शुभ लक्षण हैं। किए जाओ।
हिम्मत को टूट ही जाना है। तुम्हारी हिम्मत ही बाधा है--भक्त के लिए। समर्पण के मार्ग पर तुम्हारी हिम्मत और तुम्हारा बल ही बाधा है। निर्बल के बल राम! वहां तो जब तुम बिल्कुल निर्बल हो जाओगे, सब टूट जायेगा, उसी क्षण, उसी पल अनिर्वचनीय से मिलन हो जाता है।
मुहब्बत में तेरी गिरफ्त हो कर
हर एक रंजो-गम से रिहा हो गए हम।
उसके प्रेम को तुम्हारे चारों तरफ बंधने दो, उसके प्रेम को कसने दो।
उसके प्रेम की फांसी में तुम्हारा अहंकार मर जायेगा।
मुहब्बत में तेरी गिरफ्त हो कर
हर एक रंजो-गम से रिहा हो गए हम।
अब तुम छोड़ो अपना रंज भी, अपना गम भी; जो तुम्हारे पास है उसके चरणों में चढ़ा दो! कुछ और तो है नहीं, कहां से लाओगे फूल? जो है... आंसू सही। उसके चरणों में रख दो! और उससे कहा दो कि--
मुहब्बत में तेरी गिरफ्त हो कर
हर एक रंजो-गम से रिहा हो गये हम।
अब तू जान!
कितने दीवाने मुहब्बत में मिटे हैं "सीमाब"
जमा की जाए जो खाक उनकी तो वीराना बने।

कितने प्रेमी उसके प्रेम में मिट गए हैं! जमा की जाये जो खाक उनकी तो वीराना बने। एक मरुस्थल बन जाये, अगर उनकी राख इकट्ठी करें। उसी राख के मरुस्थल में अपनी राख को भी मिला दो।
गर बाजी इश्क की बाजी है
जो चाहो लगा दो, डर कैसा?
गर जीत गए तो क्या कहना
हारे भी तो बाजी मात नहीं।
गर जीत गए तो क्या कहना!
तो महावीर हो जाता है आदमी, अगर जीत गया।
हारे भी तो बाजी मात नहीं! हार गए तो मीरा पैदा हो जाती है। अड़चन नहीं है, बाधा नहीं है।
गर बाजी इश्क की बाजी है
जो चाहो लगा दो डर कैसा?
गर जीत गए तो क्या कहना
हारे भी तो बाजी मात नहीं।
यह कुछ रास्ता ऐसा है प्रभु का कि जो पहुंचते हैं, वे तो पहुंच ही जाते हैं; जो भटकते हैं वे भी पहुंच जाते हैं। संसार के मार्ग पर उलटी ही कथा हैः जो पहुंचते हैं, वे भी नहीं पहुंचते; जो भटकते हैं, उनका तो कहना ही क्या! परमात्मा के मार्ग पर जो पहुंचते हैं, वे तो पहुंच ही जाते हैं; जो भटकते हैं, वे भी पहुंच जाते हैं। इतना ही क्या कम है कि हम उसे खोजने में भटके? इतना कम है कि हमने उसे खोजना चाहा? इतना कम है कि अंधेरी रात में हमने उस दीये की आशाएं और सपने संजोए?
कैफियत उनके करम की कोई हमसे पूछे
जिससे खुश होते हैं दीवाना बना देते हैं।
परमात्मा का प्रेम जब तुम पर बरसेगा तो दीवानगी और बढ़ेगी, आंसू और बहेंगे, हृदय टूटेगा, बिखरेगा। राख हो जाओगे तुम उस बड़े मरुस्थल में--जहां मीरा भी खो गई है, चैतन्य भी खो गए हैं, जहां राबिया खो गई है, जहां कबीर, नानक, रैदास खो गए हैं। उस विराट मरुस्थल में तुम भी खो जाओगे। लेकिन खोने के पहले एक शर्त पूरी कर देनी जरूरी है कि तुम जो कर सकते हो वह कर लो; अन्यथा तुम्हें ऐसा लगा रहेगा कुछ न कुछ कर लेते। अटके रहोगे। अहंकार थोड़ी-सी जगह बनाए रखेगा।
प्रेम की आकांक्षा जिसने की है और भक्ति का मार्ग जिसने चुना है, उसने बड़े असंभव की आकांक्षा की है।
इसलिए महावीर गणित की तरह साफ हैं। वहां साफ-सुथरा विज्ञान है। इसलिए जैन-धर्म में विज्ञान की भाषा है। मीरा और चैतन्य, नारद और कबीर--उनकी भाषा अटपटी है, सधुक्कड़ी, उलटबांसी जैसी। वहां गंगा गंगोत्री की तरफ बहती है। बड़ी रहस्य से भरी, क्योंकि उन्होंने बड़े असंभव की आकांक्षा की है। महावीर की बात चाहे कितनी ही कठोर मालूम पड़ती हो, लेकिन गणित के समझ में आनेवाली है। और प्रेमियों की बात चाहे कितनी ही सरल मालूम पड़ती हो, बड़ी असाध्य मालूम होती है।
उस दर्द को मांगा, मेरी हिम्मत कोई देखे
जो दर्द भी नाकाबिले-दरमां न.जर आया।
--प्रेम का दर्द ऐसा है कि असाध्य है; इसका कोई इलाज नहीं है।
उस दर्द को मांगा, मेरी हिम्मत कोई देखे
जो दर्द भी नाकाबिले-दरमां न.जर आया।
--जिसका कोई इलाज नहीं, असाध्य है, जिसकी कोई औषधि नहीं।
प्रेम एक ऐसी पीड़ा है, जिसका कोई इलाज नहीं। लेकिन जिसने उस पीड़ा को स्वीकार कर लिया है, वह धीरे-धीरे पायेगाः पीड़ा मीठी होती जाती है; पीड़ा और मीठी होती जाती है। और एक दिन पता चलता है कि जिसे हमने पहले क्षण में दर्द जाना था, वह दर्द न था; वह उस प्रभु के आने की खबर थी, उसके पगों की ध्वनि थी, आहट थी। हम परिचित न थे, इसलिए दर्द जैसा मालूम हुआ था; या प्रभु इतनी तीव्रता से करीब आया था कि हम झेल न सके थे, हमारी पात्रता न थी; जैसे कि

आंख में सूरज एकदम से पड़ गया हो और आंखें चौंधिया जायें और दर्द मालूम पड़े।
जब परमात्मा की तरफ कोई चल रहा है तो उसने एक ऐसी दीवानगी मांगी है, जो असंभव जैसी लगती है।
यहां संसार में धन नहीं मिलता; यहां संसार में प्रेमपात्र नहीं मिलता; यहां संसार में कुछ भी नहीं मिलता--ऐसे संसार में हमने परमात्मा को मांगा है। जहां कुछ भी नहीं मिलता; जहां जो दिखाई पड़नेवाली चीजें हैं, वे भी हाथ में पकड़ में नहीं आतीं--वहां हमने अदृश्य को पकड़ना मांगा है! दृश्य पकड़ में नहीं आता, सीमित पर हाथ नहीं बंधते--वहां हमने असीम की अभीप्सा की है!
उस दर्द को मांगा, मेरी हिम्मत कोई देखे
जो दर्द भी नाकाबिले-दरमां न.जर आया।
राह बड़ी पीड़ा से भरी है, पर पीड़ा बड़ी मधुर है। उसके मार्ग पर लगे कांटे
भी अंततः फूल बन जाते हैं।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
पंद्रहवां प्रवचन

मनुष्यो, सतत जाग्रत रहो

जिन-सूत्रों का सार आज के सूत्रों में है--जिन साधना की मूल भित्ति; जिनत्व का अर्थ।
परमात्मा की खोज में दो उपाय हैं। एक उपाय हैः उसमें ऐसे तल्लीन हो जाना कि तुम न बचो; उसमें ऐसे लीन हो जाना कि लीन होनेवाला बचे ही नहीं-- जैसे सागर में नमक की डगली डाल दें, खो जाती है, स्वाद फैल जाता है, लेकिन कोई बचता नहीं। दूसरा मार्ग हैः खोना जरा भी नहीं; जागना! इतने जागना कि जागरण ही शेष रह जाये, जागनेवाला न बचे।
पहला मार्ग बेहोशी का है, दूसरा मार्ग होश का है, लेकिन दोनों के भीतर सार बात एक है कि तुम न बचो। इसलिए तुम्हें रामकृष्ण जैसे उल्लेख महावीर और बुद्ध के जीवन में न मिलेंगे, कि रामकृष्ण परमात्मा का नाम लेते-लेते बेहोश हो गये, कि घंटों बेहोश पड़े रहे। कभी-कभी दिनों होश में न लौटते। और जब होश में आते तो फिर रोने लगते और कहते कि मां! यह कहां मुझे बेहोशी की दुनिया में भेज रही हो? वापिस बुला लो! उसी गहन बेहोशी में मुझे वापिस बुला लो! मुझे संसार का होश नहीं चाहिए! मुझे तुम्हारी बेहोशी चाहिए!
ऐसा उल्लेख महावीर के जीवन में असंभव है; कल्पना में भी नहीं लाया जा सकता; महावीर की जीवन-सरणी में बैठता नहीं। गिर पड़ना बेहोश होकर, यह तो दूर; महावीर एक पैर भी नहीं उठाते बेहोशी में; हाथ भी नहीं हिलाते बेहोशी में; आंख की पलक भी नहीं झपते बेहोशी में।
लेकिन इन दोनों विपरीत दिखाई पड़नेवाले मार्गों के बीच में कुछ सेतु हैं। वह सेतु स्मरण रखना। भक्त अपने को डुबा देता है--इतना डुबा देता है कि कोई बचता ही नहीं, पीछे लकीर भी नहीं छूट जाती है। साधक अपने को जगाता है-- इतना जगाता है कि जागरण की ज्योति ही रह जाती है, कोई जागनेवाला नहीं बचता। हर हालत में अहंकार खो जाता है--चाहे परिपूर्ण रूप से तल्लीन होकर खो दो और चाहे परिपूर्ण रूप से जागकर खो दो। इन दो अतियों पर परिणाम एक ही होता है। इसलिए भक्त और ज्ञानी, प्रेमी और साधक सभी वहीं पहुंच जाते हैं। मार्ग का बड़ा फर्क है, मंजिल का जरा भी फर्क नहीं है।
राह जुदा, सफर जुदा, रहजनो-रहबर जुदा
मेरे जुनूने-शौक की मंजिले-बेनिशां है और।
महावीर से पूछो तो वे कहेंगेः राह जुदा, सफर जुदा, रहजनो-रहबर जुदा! यह मेरी राह अलग, इस राह की यात्रा अलग; इतना ही नहीं, मेरी राह पर लूटनेवाले और पथ-प्रदर्शक भी अलग! लुटेरे भी मेरी राह के अलग हैं। स्वभावतः होंगे। क्योंकि जहां होश साधना है, वहां लुटेरे अलग होंगे। वहां वही लुटेरे बन जायेंगे जो भक्ति के मार्ग पर पथ-प्रदर्शक होते हैं। जहां होश को गंवा देना है, मस्ती में डूब जाना है, जहां परमात्मा की शराब पी लेनी है--वहां जो सहयोगी है, वह महावीर के मार्ग पर लुटेरा हो जायेगा। महावीर के मार्ग पर जो सहयोगी है, वह महावीर के मार्ग पर लुटेरा हो जायेगा। महावीर के मार्ग पर जो सहयोगी है, पथ-प्रदर्शक है, राहबर है, वह भक्ति के मार्ग पर लुटेरा हो जायेगा।
ध्यान भक्ति के मार्ग पर लुटेरा हो जायेगा; वहां प्रार्थना पथ-प्रदर्शक है। महावीर के मार्ग पर प्रार्थना लुटेरा हो जायेगी; वहां ध्यान पथ-प्रदर्शक है। लेकिन मंजिल पर जाकर सब मिल जाते हैं। क्योंकि पहुंचना उस जगह है जहां तुम अशेष भाव से, कुछ भी बचे न, परिपूर्ण रूप से मुक्त हो जाओ।
इसे भी ख्याल में ले लेना। साधारणतः हम सोचते हैं, मैं मुक्त हो जाऊंगा, तो ऐसा लगता है कि मैं तो बचूंगा--मुक्त होकर बचूंगा। लेकिन जो गहरे उतरने की कोशिश करेंगे या जिन्होंने सच में ही समझना चाहा है--मैं मुक्त हो जाऊंगा, इसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि "मैं" से मुक्त हो जाऊंगा। "मैं" भाव चला जायेगा। "मैं" भाव जहां तक है वहां तक मुक्ति नहीं

है। जहां "मैं" भाव विसर्जित हो जाता है, वहीं मुक्ति है। "मैं" भाव को विसर्जित करने के दो उपाय हैंः या तो डुबा दो, या जगा लो।
ऐसा समझो, पतंजलि ने योग-सूत्रों में मनुष्य के चित्त की तीन दशायें कहीं हैं। एक है सुषुप्ति। एक है जाग्रत। एक है स्वप्न। जिस दशा में हम साधारणतः हैं, वह स्वप्न की दशा है; कामना की, विचारणा की, ऊहापोह की, हजार-हजार वासनाओं की। स्वप्न की दशा है। इस स्वप्न की दशा के दोनों तरफ एक-एक दशायें हैंः एक सुषुप्ति की और एक जागृति की। इस स्वप्न की दशा से मुक्त होना है। इस स्वप्न की दशा में ही तुमने स्वप्न देख लिया है कि तुम हो। यह तुम्हारा स्वप्न है। या तो सुषुप्ति में खो जाओ, जहां स्वप्न न बचे; या जाग्रत हो जाओ, जहां स्वप्न के बाहर आ जाओ।
तो स्वप्न के बीच में हम खड़े हैं। स्वप्न यानी संसार। इसलिए तो शंकर उसे माया कहते हैं। वह स्वप्न की दशा है। वहां जो नहीं है, वह हम देख रहे हैं। और वहां जो है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है। वहां हम जो देख रहे हैं, वह हमारा ही प्रक्षेपण है। वहां जिसमें हम जी रहे हैं, वह हमारी ही कामना, हमारी ही आशा, हमारी ही भावना है। सत्य से उसका कोई संबंध नहीं। वह हमारी निर्मिति है।
तुमने स्वप्न में देखा! स्वप्न देखते समय तो ऐसा ही लगता है कि सब सच है; ऐसा ही लगता है कि कुछ भी असत्य नहीं है। सुबह जागकर पता चलता है कि अरे, एक सपने में खो गये थे, इतना सत्य मालूम पड़ा था!
रोज-रोज तुम सपना देखे हो, रोज-रोज सुबह पाया है कि असत्य है; फिर भी जब रात घनी होती है, फिर नींद में डूब जाते हो, फिर सपना तरंगित होने लगता है, फिर भूल जाते हो, वह याद काम नहीं आती।
स्वप्न की दशा से बाहर होने के दो उपाय हैं। या तो सुषुप्ति में डूब जाओ। रामकृष्ण और भक्तों ने सुषुप्ति का उपयोग किया है स्वप्न से मुक्त होने के लिए। महावीर और बुद्ध और पतंजलि ने जागृति का उपयोग किया है स्वप्न से मुक्त होने के लिए। लेकिन असली बात स्वप्न से मुक्त होना है। या इस किनारे या उस किनारे, यह मंझधार में न रह जाओ!
महावीर के ये सूत्र जागरण के सूत्र हैं। इनका सार-भाव हैः जागो!
मैंने सुना है, एक आदमी भर-दुपहर भागा हुआ शराबघर में आया। उसने कलारिन से कहा कि एक बात पूछने आया हूं। बड़ा बेचैन और परेशान था। जैसे कुछ गंवा बैठा हो, कुछ बहुत खो गया हो।
"एक बात पूछनी हैः क्या रात मैं यहां आया था?"
"जरूर आये थे।"
"कई लोगों के साथ आया था?"
"कई लोगों के साथ आये थे।"
"सबको शराब पिलवाई थी, खुद भी पी थी?"
"जरूर पिलवाई थी और पी थी।"
वह आदमी बोला, "शुक्र खुदा का! सौ रुपये चुकाये थे?"
उसने कहा, "बिल्कुल चुकाये थे।"
उसने कहा, "तब कोई हर्जा नहीं।"
वह बड़ा प्रसन्न हो गया। उस कलारिन ने पूछा कि मैं कुछ समझी नहीं, बात क्या है? उसने कहा, "मैं तो यही सोच रहा था कि सौ रुपये कहीं गंवा बैठा। इसलिए ही परेशान था।"
बेहोश आदमी भी सोचता है कि कहीं गंवा तो नहीं बैठा! लेकिन बेहोशी में कमाओगे कैसे, गंवाओगे ही! चाहे शराब पीने में गंवाये हों, चाहे किसी बगीचे की बैंच पर भूल आये होओ। शायद बगीचे की बैंच पर भूल आना ज्यादा बेहतर था; सौ रुपये ही गंवाते, कम से कम होश तो न गंवाया होता! लुट जाना बेहतर था, यह तो लुट जाने से बदतर दशा है। पर वह आदमी बोला, "शुक्र खुदा का! मैं तो डर रहा था कि कहीं रुपये गंवा तो नहीं बैठा।"
जिंदगी के अंत में अधिक लोग ऐसी ही दशा में पाते हैं। सोचते हैं, कहीं जिंदगी गंवा तो नहीं बैठे! लेकिन कितने ही बड़े मकान बनाकर छोड़ जाओ और कितने ही धन की राशियां लगा जाओ, इससे क्या फर्क पड़ता है?

जिंदगी तो गई और गई। जिंदगी तो राख हो गई। मकान बना आये, खंडहर बनेंगे। बड़ी दौड़-धूप की थी, बड़ी तिजोड़ियां छोड़ आये--कोई और उनकी मालकियत करेगा। तुम्हारे हाथ तो खाली हैं। इससे तो बेहतर होता कि तुम बैठे ही रहते और तुमने कुछ न किया होता, तो कम से कम तुम उतने पवित्र तो रहते जितने जन्म के समय थे। यह तो सारी आपाधापी तुम्हें और भी अपवित्र कर गई। यह तो तुम और भी शराब से भरकर विदा हो रहे हो। यह तो तुम और जहर ले आये।
जिंदगी से कमाया तो कुछ भी नहीं, एक नयी मौत और कमाई, फिर जन्मने की वासना कमाई। यह कोई कमाना हुआ? जिसे तुम जिंदगी कहते हो, महावीर उसे स्वप्न कहते हैं। और जिसे तुम जागरण कहते हो, वह जागरण नहीं है; वह सिर्फ खुली आंख देखा गया सपना है।
हम दो तरह के सपने देखते हैंः एक, रात जब हम आंख बंदकर लेते हैं; और एक
तब जब सुबह हम आंख खोल लेते हैं। लेकिन हमारा सपना सतत चलता है। महावीर के हिसाब से सपने से तो तुम तभी मुक्त होते हो, जब तुम्हारा मन ऐसा निष्कलुष होता है कि उसमें एक भी विचार की तरंग नहीं उठती। जब तक तरंगें हैं, तब तक स्वप्न है। जब तक तुम्हारे भीतर कुछ चित्र घूम रहे हैं और तुम्हारे चित्त पर तरंगें उठ रही हैं--"यह हो जाऊं, यह पा लूं, यह कर लूं, यह बन जाऊं"--तब तक तुम स्वप्नों से दबे हो। फिर तुम्हारी आंख खुली है या बंद, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। तुम बेहोश हो। महावीर के लिए तो होश तभी है, जब तुम्हारा चित्त निर्विचार हो।
तो जागरण का अर्थ समझ लेना। जागरण का अर्थ तुम्हारा जागरण नहीं है। तुम्हारा जागरण तो नींद का ही एक ढंग है। महावीर कहते हैं जागरण चित्त की उस दशा को, जब चैतन्य तो हो लेकिन विचार की कोई तरंग में छिपा न हो; कोई आवरण न रह जाये विचार का; शुद्ध चैतन्य हो; बस जागरण हो। तुम देख रहे हो और तुम्हारी आंख में एक भी बादल नहीं तैरता--किसी कामना का, किसी आकांक्षा का। तुम कुछ चाहते नहीं। तुम्हारा कोई असंतोष नहीं है। तुम जैसे हो, उससे तुम परम राजी हो। एक क्षण को भी तुम्हारा यह राजीपन, तुम्हारा यह स्वीकार जग जाये और तुम जगत को खुली आंख से देख लो--आंख जिस पर सपनों की पर्त न हो; आंख जिस पर सपनों की धूल न हो; ऐसे चैतन्य से दर्पण स्वच्छ हो और जो सत्य है वह झलक जाये--तो तुम्हारी जिंदगी में पहली दफा, वह यात्रा शुरू होगी जो जिनत्व की यात्रा है। तब तुम जीतने की तरफ चलने लगे। सपने में तो हार ही हार है।
जिन यानी जीतने की कला। जिनत्व यानी स्वयं के मालिक हो जाने की कला। हमने और सबके तो मालिक होना चाहा है--धन के, पत्नी के, पति के, बेटे के, राज्य के, साम्राज्य के--हमने और का तो मालिक होना चाहा है, एक बात हम भूल गये हैं, बुनियादी, कि हम अभी अपने मालिक नहीं हुए। और जो अपना मालिक नहीं है, वह किसका मालिक हो सकेगा! वह गुलामों का गुलाम हो जायेगा।
पहला सूत्रः
सीतंति सुवंताणं, अत्था पुरिसाण लोगसारत्था।
"इस जगत में ज्ञान सारभूत अर्थ है।"
इस जगत में बोध सारभूत अर्थ है। अवेयरनेस!
सीतंति सुवंताणं, अत्था पुरिसाण लोगसारत्था।
तम्हा जागरमाणा, विधुणध पोराणयं कम्मं।।
"अतः सतत जागते रहकर पूर्वार्जित कर्मों को प्रकंपित करो। जो पुरुष सोते हैं, उनका अर्थ नष्ट हो जाता है।"
जीवन में हमारे भी अर्थ है, कोई मीनिंग है। हम भी कुछ पाना चाहते हैं। हां, हमारे भी कुछ बहाने हैं। अगर आज मौत आ जाये तो तुम कहोगे, "ठहरो! कई काम अधूरे पड़े हैं। न मालूम कितनी यात्राएं शुरू की थीं, पूरी नहीं हुईं। ऐसे बीच में उठा लोगी तो अर्थ अधूरा रह जायेगा। अभी तो अर्थ भरा नहीं। अभी तो अभिप्राय पूरा नहीं हुआ। रुको।"
सिकंदर, नेपोलियन साम्राज्य बनाने में जीवन का अर्थ देख रहे हैं। कोई कुछ और करके जीवन का अर्थ देख रहा है। लेकिन महावीर कहते हैंः इस जगत में बोध सारभूत अर्थ है। और कुछ भी नहीं--न धन, न पद, न प्रतिष्ठा।
"जो पुरुष सोते हैं उनका यह अर्थ नष्ट हो जाता है।"

अर्थ तुम्हारे भीतर है और तुम्हीं सो रहे हो तो अर्थ का जागरण कैसे होगा? तुम्हारे जागने में ही तुम्हारे जीवन का अर्थ जागेगा।
मेरे पास अनेक लोग आते हैं। वे कहते हैं, जीवन का अर्थ क्या है? जैसे
कि अर्थ कोई बाहर रखी चीज है, जो कोई बता दे कि यह रहा! जैसे तुम पूछो, सूरज कहां है, कोई बता दे कि वह रहा आकाश में!
लोग पूछते हैं, जीवन का अर्थ क्या है?
जैसे अर्थ कोई बनी-बनाई, रेडीमेड वस्तु है, जो कहीं रखी है और तुम्हें खोजनी है।
जीवन में अर्थ नहीं है। अर्थ तुममें है! और तुम जागोगे तो जीवन में अर्थ फैल जायेगा। और तुम सोये रहोगे तो जीवन निरर्थक हो जायेगा। फिर इस निरर्थकता के खालीपन से बड़ी घबड़ाहट होती है, तो आदमी झूठे-झूठे अर्थ कल्पित कर लेता है। वे सहारे हैं, सांत्वनाएं हैं। तो कोई कहता है, बच्चों को बड़े करना है। लगा रहता है, व्यस्त रहता है। क्योंकि जब भी कोई अर्थ नहीं मालूम पड़े बाहर, तो भीतर की निरर्थकता मालूम होती है। बच्चों को बड़े करना है। तुम्हारे पिता भी यही करते रहे, उनके पिता भी यही करते रहे। ये बच्चे बड़े किसलिए हो रहे हैं--ये भी यही करेंगे। ये भी बच्चे बड़े करेंगे।
इसका मतलब क्या है? प्रयोजन क्या है? अगर तुम्हारे पिता तुमको बड़ा करते रहे और तुम अपने बच्चों को बड़ा करते रहोगे, तुम्हारे बच्चे उनके बच्चों को बड़ा करते रहेंगे, तो इस बड़े करने का प्रयोजन क्या है? इस सतत सक्रियता का अर्थ क्या है? इसमें कुछ अर्थ तो नहीं है। यह तो तुम्हें भी कभी-कभी झलक जाता है।
धन ही इकट्ठा कर लोगे तो क्या होगा? अंततः आती है मौत! सब हाथ खाली हो जाते हैं! सब छिन जाता है। जो छिन ही जायेगा, उसे पकड़-पकड़कर क्या होगा? लेकिन कम से कम बीच में कुछ अर्थ है, प्रयोजन है--इस तरह की भ्रांति तो पैदा हो जाती है।
लोग अजीब-अजीब अर्थ पैदा कर लेते हैं।
एक युवक मेरे पास आया। अपनी प्रेयसी को लेकर आया और उसने कहा कि मुझे विवाह करना है। मैंने कहा कि अभी तेरी उम्र बीस साल से ज्यादा नहीं है, अभी इतनी जल्दी बोझ क्यों लेता है? अभी दो-चार-पांच साल और मुक्त रहकर गुजर सकते हैं। इतने उत्तरदायित्व लेने की अभी जरूरत कहां है? अभी तू स्कूल में पढ़ता है! थोड़ा रुक! पढ़ लिख ले।
उसने कहा, "उत्तरदायित्व लेने के लिये ही तो विवाह करना चाहता हूं; अन्यथा खाली-खाली मालूम पड़ रहा है। मेरे ऊपर कोई उत्तरदायित्व नहीं है।" धनी घर का लड़का है। सब सुविधा है। "खाली-खाली मालूम हो रहा हूं। शादी कर लूंगा तो कुछ भरापन हो जायेगा।"
अभी अमरीका में एक आदमी पर मुकदमा चलता था, क्योंकि उसने सात आदमियों
को गोली मार दी थी--अकारण, अपरिचित अजनबियों को! ऐसे लोगों को जिनका चेहरा भी उसने नहीं देखा था, पीछे से। सागर-तट पर कोई बैठा था, उसने पीछे से आकर गोली मार दी। एक ही दिन में सात आदमी मार डाले। बामुश्किल पकड़ा जा सका। पकड़े जाने पर अदालत में जब पूछा गया कि तूने किया क्यों? क्योंकि इनसे तेरी कोई दुश्मनी न थी; दुश्मनी तो दूर, पहचान भी न थी।
तो उसने कहा कि मेरा जीवन बड़ा खाली-खाली है; मैं कुछ काम चाहता था; किसी चीज से अपने को भर लेना चाहता था। मैं चाहता हूं कि लोगों का ध्यान मेरी तरफ आकर्षित हो। और वह काम हो गया। अब मुझे फिक्र नहीं, तुम फांसी दे दो! लेकिन सब अखबारों में मेरा फोटो भी छप गया, सभी अखबारों में नाम भी छप गया। आज हजारों लोगों की जबान पर मेरा नाम है, यह तो देखो!
लोग कहते हैं, बदनाम हुए तो क्या, कुछ नाम तो होगा ही।
राजनीतिज्ञों में और अपराधियों में बहुत फर्क नहीं है। राजनीतिज्ञ समाज-सम्मत व्यवस्था के भीतर नाम को कमाने की चेष्टा करता है। अपराधी समाज-सम्मत व्यवस्था नहीं खोज पाता, समाज के विरोध में भी कुछ करके नाम पाने की आकांक्षा करता है। इसलिए अगर कोई रातनीतिज्ञ बहुत दिनों तक राजनीति को न पा सके तो उपद्रवी हो जाता है, क्रिमिनल हो जाता है, अपराधी हो जाता है। क्योंकि मूल आकांक्षा हैः लोगों का ध्यान आकर्षित करना। मूल

आकांक्षा हैः लोगों को लगे कि मैं कुछ हूं; दुनिया कहे कि तुम कुछ हो, तुम्हारा कुछ अर्थ है। तुम ऐसे ही आये और चले नहीं गये; तुमने बड़ा शोर मचाया। तुम्हारा आना एक तूफान की तरह था। दुनिया को तुम्हारे ऊपर ध्यान देना पड़ा।
तुमने कभी ख्याल किया? तुम वस्त्र भी इसीलिए पहनते हो ढंग-ढंग के कि ध्यान पड़े, कोई देखे। स्त्रियां देखीं, नयी साड़ियां पहनकर आ जाती हैं तो बड़ी बेचैन रहती हैं, जब तक कोई पूछ न ले, कहां खरीदी; जब तक कोई साड़ी का पोत न देखे और प्रशंसा न कर दे।
तुमने वह कहानी तो सुनी होगी। बड़ी पुरानी कहानी है कि एक औरत ने अपने
घर में आग लगा ली थी और जब लोग आये तब वह हाथ ऊंचे-ऊंचे उठाकर चिल्लाने लगी कि हे परमात्मा! नष्ट हो गई, मर गई, लुट गई! तब किसी औरत ने पूछा, "अरे! ये कंगन तो हमने देखे ही नहीं, कब बनवाये?" उसने कहा कि नासमझ, पहले ही पूछ लेती तो घर में आग क्यों लगानी पड़ती! यह गांव भर की राह देखती रही, कंगन बनाये हैं, कोई पूछेगा! किसी ने न पूछा।
जब झोपड़े में आग लगी और आग की रोशनी उठी और कंगन चमकने लगे और वह हाथ उठाने का मौका आया कि अब चिल्ला-चिल्लाकर, हाथ हिला-हिलाकर वह कह सकती है... !
तुम जरा अपने पर गौर करना। हम सभी कंगन दिखाने निकले हैं, चाहे घर में
आग लगाकर भी दिखाना पड़े। लेकिन ऐसा न हो कि हम ऐसे ही विदा हो जायें, किसी को पता भी न चले कि कब आये, कब चले गये, कब उठे, कब बैठे, कब जन्मे। इस कंगन दिखाने को लोग कहते हैं, अरे! कुछ नाम कर जाओ। कहते हैं, कुछ नाम छोड़ जाओ इतिहास में। तो तैमूरलंग और चंगे.ज और नादिरशाह इतिहास में नाम छोड़ जाते हैं, हजारों लोगों को आग लगवाकर, हजारों लोगों को काटकर।
कहते हैं, एक वेश्या तैमूर के शिविर में नाचने आयी थी। जब वह रात जाने लगी तो वह डरती थी, क्योंकि रास्ता अंधेरा था। और कोई दस-बारह मील दूर उसका गांव था। तो तैमूर ने कहा, घबड़ा मत। उसने अपने सैनिकों से कहा कि इसके रास्ते में जितने गांव पड़ें, आग लगा दो! थोड़े सैनिक भी झिझके कि यह जरा अतिशय मालूम पड़ता है। एक मशाल से ही इसको पहुंचाया जा सकता है! लेकिन तैमूरलंग ने कहा, "इतिहास याद नहीं रखेगा मशाल से पहुंचाओगे तो। पता रहना चाहिए आने वाले हजारों सालों को कि तैमूरलंग की वेश्या थी, कोई साधारण वेश्या न थी। उसके द्वार में, दरबार में नाचने आयी थी।" कोई आठ-दस छोटे- छोटे गांवों में, जो रास्ते में पड़ते थे, आग लगा दी गई। गांव में लोग सो रहे थे, उनको पता भी नहीं था, आधी रात--ताकि रास्ता रोशन हो जाये। वेश्या उन जलती हुई लाशों के बीच से अपने गांव पहुंच गई।
तुमने कभी ख्याल किया है कि तुम कितने उपाय करते हो कि किसी तरह लोगों
का ध्यान आकर्षित हो जाये। अर्थ नहीं है जीवन में तो तुम झूठे अर्थ पैदा करने की कोशिश करते हो--कोई कह दे कि "तुम बड़े सार्थक हो! तुम जो कर रहे हो वह मूल्यवान है! तुम बड़ा ऊंचा काम कर रहे हो!" तुमसे कोई कुछ भी करवा ले सकता है, बस तुमसे यह कहलवा दिया जाये कि तुम कोई बड़ा काम कर रहे हो, बड़ा ऊंचा, बड़ा महत्वपूर्ण!
इस जगत में बोध के अतिरिक्त और कोई अर्थ नहीं है। और जितने अर्थ तुम खोजते हो, उन सब से तुम्हारी बेहोशी घनी होती है, बढ़ती है, जागरण नहीं आता। "जो पुरुष सोते हैं उनके अर्थ नष्ट हो जाते हैं। अतः सतत जागते रहकर पूर्वार्जित कर्मों को प्रकंपित करो।"
पुरानी आदतें पड़ी हैं बहुत, उनको हिलाओ, डुलाओ, ताकि उनसे छुटकारा हो सके, वे ढीली हो जायें! बड़ा बहुमूल्य वचन हैः "अतः सतत जागते रहकर पूर्वार्जित कर्मों को प्रकंपित करो।" हिलाओ--जैसे वृक्ष को कोई हिलाये और उसकी जड़ें उखड़ जायें। अब पानी मत सींचो और! ऐसे ही क्या कम दुख भोगा है। ऐसे ही क्या कम भटके हो। पानी मत सींचो! लेकिन जो हमें जगाता है, वह दुश्मन मालूम पड़ता है, क्योंकि वह हिलाता है।
आस्पेंस्की ने अपनी किताब "इन सर्च आफ द मिरेकुलस" अपने गुरु गुरजिएफ
को समर्पित की है, तो उसमें लिखा हैः "गुरजिएफ के लिए--जिसने मेरी नींद को तोड़ दिया।"

लेकिन जब कोई तुम्हारी नींद तोड़ता है तो सुखद नहीं मालूम होता। जब कोई तुम्हारी नींद तोड़ता है तो तुम्हें लगता है दुश्मन। इसलिए जगत में नींद तोड़नेवाले सदा दुश्मन मालूम पड़े। सुकरात को हमने ऐसे ही जहर नहीं पिला दिया था, और न जीसस को हमने ऐसे ही सूली पर लटका दिया, न हमने महावीर को ऐसे ही पत्थर मारे और कान में खीलें ठोंके। यह अकारण नहीं था। ये लोग नींद तोड़ रहे थे। ये अलार्म की तरह थे। तुम जब मजे से सो रहे थे और सुबह का आखिरी सपना देख रहे थे, तब ये बीच में आ गये और उन्होंने उपद्रव मचा दिया कि जागो! तुम्हारा भाव तो इन दो पंक्तियों में प्रगट हुआ है।
न अजां हो, न सहर हो, न गजर हो शबे-वस्ल
क्या मजा हो जो किसी को न जगाए कोई।
न अजां हो--न तो मस्जिद में कोई अजान पड़े; न सहर हो--न सुबह हो, न सूरज ऊगे; न गजर हो--न कोई मंदिर में घंटियों को बजाये; मिलन की रात! क्या मजा हो जो किसी को न जगाये कोई!
सोने में हमारी बड़ी आतुरता है। जिसको हम सुख कहते हैं, अगर तुम गौर से पाओगे तो वह एक मधुर सपना देखने से ज्यादा नहीं है। जिसको हम सुखी जिंदगी कहते हैं, वह ऐसी जिंदगी है, जिसमें मधुर स्वप्नों का काफी जाल है। जिसको हम दुखद जिंदगी कहते हैं, वह भी सपनों की ही जिंदगी है; उसमें सपने दुख से भरे हैं, नाइटमेयर जैसे हैं।
लेकिन सपना तो सपना है। तुम सुखद सपने देखकर भी एक दिन मर जाओगे तो क्या होगा?
इसलिए महावीर कहते हैं, अर्थ बाहर नहीं है; अर्थ तो तुम्हारे भीतर की ज्योति के प्रज्वलित हो जाने में है। तुम्हारी रोशनी तुम्हारे जीवन को भर दे और सपनों को तितर-बितर कर दे। और तुमने अब तक पूर्व जन्मों में जो अर्जित कर्म किये हैं, जिनके कारण जड़ें मजबूत हो गई हैं सपनों की, जिनके कारण सपने सत्य मालूम होते हैं, जिनके कारण जो नहीं है वह बहुत वास्तविक मालूम हो रहा है--उनको हिलाओ, प्रकंपित करो! उन जड़ों को तोड़ो और उखाड़ो! "धार्मिकों का जागना श्रेयस्कर है और अधार्मिकों का सोना श्रेयस्कर है।" बड़ा बहुमूल्य वचन है! महावीर कहते हैं, धार्मिकों का जागना श्रेयस्कर है और अधार्मिकों का सोना श्रेयस्कर है।
नादिरशाह के जीवन में भी ऐसा उल्लेख हैं। उसने एक सूफी फकीर को पूछा, क्योंकि वह खुद बहुत आलसी था और सुबह दस बजे के पहले नहीं उठता था। रात देर तक नाच-गान चलता, शराब चलती, तो सुबह दस-बारह बजे उठता। उसने एक सूफी फकीर को पूछा कि मेरे दरबारी मुझ से कहते हैं कि इतना आलस्य ठीक नहीं है, तुम क्या कहते हो? उस सूफी फकीर ने महावीर का यह वचन दोहराया मालूम होता है; क्योंकि बिल्कुल यही वचन उसने दोहराया। उसने कहा, आप तो अगर बिल्कुल सोयें चौबीस घंटे तो अच्छा है। नादिरशाह थोड़ा चौंका। उसने कहा, "तुम्हारा मतलब?" उसने कहा, "आप जैसे व्यक्ति जितनी देर सोयें, उतना ही उपद्रव कम! आप तो सोये ही रहें।"
महावीर कहते हैं, धार्मिकों का जागना श्रेयस्कर है; अधार्मिकों का सोना श्रेयस्कर है। क्योंकि अगर अधार्मिक सक्रिय हो उठे, तो अधर्म ही करेगा। महावीर यह कह रहे हैं कि अधार्मिक का तो शक्तिहीन होना अच्छा है; धार्मिक का शक्तिशाली होना अच्छा है। महावीर यह कह रहे हैं, धार्मिक के पास बल हो तो धर्म घटेगा; अधार्मिक को पास बल होगा तो अधर्म घटेगा, वह कुछ न कुछ उपद्रव करेगा। राजनीतिज्ञ बीमार रहें तो अच्छा है; अस्पतालों में रहें तो अच्छा है। ठीक हुए कि वे कुछ उपद्रव करेंगे। बिना उपद्रव किये वे रह नहीं सकते हैं। उपद्रव के लिए अच्छे-अच्छे नाम देंगे। उपद्रव को सजायेंगे, शृंगारेंगे। उपद्रव को क्रांति, स्वतंत्रता, समानता, साम्यवाद, न मालूम क्या-क्या नाम देंगे। लेकिन बहुत गहरे में उपद्रव की आकांक्षा है। खाली वे बैठ नहीं सकते।
महावीर व्यंग्य कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, अधार्मिक सोये रहें तो ठीक; धार्मिक जागे।
इसलिए महावीर की पूरी प्रक्रिया यह है कि तुम जागो भी, साथ ही साथ तुम धार्मिक भी होते चलो; धार्मिक होते चलो और साथ ही साथ जागते भी चलो।

अन्यथा शक्ति भी गलत हाथों में पड़कर खतरनाक सिद्ध होती है। ऐसा ही तो हुआ है, विज्ञान ने शक्ति सोये हुए आदमियों के हाथ में दे दी। ऐसा नहीं है कि पहली दफा वैज्ञानिकों को अणु की शक्ति का पता चला है। महावीर भी अणुवादी थे। जैन-दर्शन दुनिया का सबसे प्राचीन अणुवादी दर्शन है। आइंस्टीन और रदरफोर्ड ने जो इस सदी में पाया है, वह जैन कोई पांच हजार साल से कहते रहे हैं कि पदार्थ अणुओं का समूह है, पदार्थ अणुओं से बना है।
अणु का सिद्धांत जैनियों का प्राचीनतम सिद्धांत है। और जैसे-जैसे विज्ञान साफ होता जा रहा है, वैसे-वैसे पुराने शास्त्रों के अर्थ साफ होते जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि अणु-शक्ति को खोज लिया गया था! संभवतः महाभारत का अंत अणुशक्ति से ही हुआ। लेकिन फिर एक बात समझ में पूरब को आ गई कि जब तक लोग सोये हुए हैं, इतनी शक्ति उनके हाथ में होना खतरनाक है; उसका दुरुपयोग होगा। शक्ति उसके हाथ में होनी चाहिए, जिसके भीतर सदभाव पहले आ गया हो तो फिर ठीक हैं। नहीं तो शक्ति का तुम करोगे क्या? तुमने लार्ड बेकन का प्रसिद्ध वचन सुना होगा--पावर करप्ट्स एंड करप्ट्स एब्सोल्यूटली--कि शक्ति जिनके हाथ में है वह लोगों को व्यभिचारित कर देती है और परिपूर्ण रूप से व्यभिचारित कर देती है। लेकिन वह वचन सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नहीं है। शक्ति किसी को व्यभिचारित नहीं करती। शक्ति केवल तुम्हारे भीतर जो व्यभिचार पड़ा था, उसे प्रगट करती है।
तुम देखते हो, एक आदमी के पास कुछ भी नहीं है तो वह शराब नहीं पीता; वह शराब के खिलाफ है। फिर कल अचानक लाटरी हाथ लग जाती है, फिर वह शराब पीने लगता है। अब वह भूल जाता है सब शराब की खिलाफत। तो लोगों को ऐसा लगता है कि धन ने इसे भ्रष्ट किया। बात गलत है। धन न होने से यह अपने को समझाता था, अंगूर खट्टे हैं। पीना भी चाहता तो पीता कहां से? तो नीति के, धर्म के वचन दोहराता था। अब जब धन हाथ में आ गया, सब भूल गया।
इस देश में ऐसा हुआ। स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में जो लोग बड़े त्यागी-तपस्वी मालूम पड़ते थे, वे कोई त्यागी-तपस्वी थे नहीं। क्योंकि परीक्षा तो तब है जब शक्ति हाथ में आई। जब शक्ति हाथ में न थी तब तो कोई भी त्यागी-तपस्वी होता है। जब शक्ति हाथ में आई, राज्य रूपांतरित हुआ और तथाकथित त्यागी-तपस्वी सत्ताधारी बने, तत्क्षण त्याग-तपश्चर्या सब समाप्त हो गई। लगेगा शायद सत्ता ने उन्हें भ्रष्ट किया। नहीं, सत्ता ने केवल अवसर दिया, तो जो भ्रष्ट होने के बीज भीतर पड़े थे उन पर वर्षा हुई। बीज तो थे ही। क्योंकि तुम्हारा धन तुम्हें कैसे भ्रष्ट कर सकता है, अगर तुम्हीं भ्रष्ट होने को पूर्व से तैयार न थे? तुम सिर्फ धन की प्रतीक्षा कर रहे थे। धन आ गया, संयोग मिल गया; अब रुकने की कोई जरूरत न रही। अब रुके, वह बिल्कुल पागल है। अब तक रुके थे, वह तो कारण यह था कि अपनी पहुंच के बाहर थे अंगूर। इसलिए कहते थे, खट्टे हैं। अब नसेनी हाथ लग गई, अब कौन रुकेगा! अब रुकना असंभव है।
सत्ता हाथ में आते ही लोग भ्रष्ट हो जाते हैं--इसलिए नहीं कि सत्ता भ्रष्ट करती है, बल्कि इसलिए कि सत्ता अवसर देती है। तो जो तुम्हारे भीतर छिपा था वह प्रगट हो जाता है। अगर तुम्हारे भीतर काव्य छिपा था, हाथ में सत्ता आते ही काव्य प्रगट होगा। क्योंकि तुम कहोगे, अब सुविधा मिली, अब दौड़-धूप न रही, धन हाथ आ गया--अब घर बैठकर गीत गुनगुना लें! अब तक तो मजदूरी करनी पड़ती थी, गड्ढा खोदना पड़ता था, समय व्यर्थ होता था, शक्ति व्यय होती थी--गीत गाने का अवसर कहां था! अब गीत गाने का अवसर मिला है।
तो धन अगर सम्यक हाथों में पड़े तो शुभ है; असम्यक हाथों में पड़ जाए तो अशुभ है। इसलिए तुम मेरी बात ख्याल रखना। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि धन छोड़ो। धन में क्या रखा है? तुम्हारे हाथ बदलने चाहिए। तो जो धन को छोड़कर भाग जाते हैं--तथाकथित त्यागी--वे केवल अवसर को छोड़कर भाग रहे हैं; बीज का क्या होगा? बीज तो भीतर है। वह तो साथ ही चला जायेगा। फिर वे धन से डरने लगेंगे, क्योंकि उनको बात समझ में आ जायेगी, तर्क साफ हो जायेगा कि धन हाथ आया कि उपद्रव शुरू होता है। लेकिन धन कहीं उपद्रव ला सकता है? चांदी के ठीकरे उपद्रव ला सकते हैं? तब तो चांदी के ठीकरे आत्मा से भी ज्यादा बलवान

हो गये। चांदी के ठीकरे उपद्रव नहीं ला सकते--उपद्रव तुम्हारे भीतर पड़ा है।
इसलिए मैं कहता हूं, वास्तविक त्यागी की परीक्षा संसार के भीतर है, बाहर नहीं। भगोड़े की बात और है, लेकिन वास्तविक त्यागी की परीक्षा संसार के भीतर है। वहीं पता चलेगा। जो महल में रहकर फकीर की तरह रह जाये--वहीं पता चलेगा। जो स्त्री-पुरुषों के बीच रहकर अकेला रह जाये--वहीं पता चलेगा। जहां सब साधन थे, लेकिन फिर भी जो अकंपित रहे--वहीं पता चलेगा।
इसलिए अगर कोई मुझसे पूछे कि त्याग की अगर परम प्रतिमा बतानी हो, तो मैं महावीर को न बताऊंगा, मैं कृष्ण को बताऊंगा। महावीर परम त्यागी हैं, लेकिन परीक्षा की सीमा के बाहर हैं। परीक्षा कभी भी नहीं हुई। जहां उपद्रव खड़ा होता है, वहां से दूर हैं। लेकिन कृष्ण परीक्षा से भी गुजर गये हैं। मैं जनक को बताऊंगा। साम्राज्य है। सारा साम्राज्य का जाल है। और उसके बीच बाहर हैं।
तो मैं तुमसे भागने को नहीं कहता। और महावीर का भी वचन तुम ठीक से समझो, तो वे भी जागने को कह रहे हैं, भागने को नहीं कह रहे हैं। हां, यह हो सकता है कि जागकर तुम्हें यहां रहना अर्थहीन मालूम पड़े, जैसा कि महावीर को मालूम पड़ा। और तुम्हारी स्वाभाविक नियति तुम्हें दूर वनों और उपवनों में ले जाये कि पहाड़ों में ले जाये, तो ठीक है। लेकिन, तुम संसार को छोड़कर नहीं जा रहे हो। तुम्हारे छोड़ने में कोई प्रयास नहीं है। तुम सहज अपने स्वभाव के अनुकूल, जो तुम्हें ठीक पड़ रहा है, उस तरफ जा रहे हो। इसमें फर्क है।
एक आदमी जो बाजार को छोड़कर भागता है, जो बाजार से डरकर भागता है, उसका अभी बाजार में अर्थ खोया नहीं है। अगर अर्थ खो जाये तो डर कैसा? और एक आदमी, जो बाजार में अर्थ पाता ही नहीं, इसलिए चला जाता है। ये दोनों जाते हुए मालूम पड़ेंगे, लेकिन दोनों के भीतर क्रांतिकारी फर्क है।
ऐसा समझो कि एक रस्सी पड़ी है। तुम गुजरे पास से, तुमने सांप समझ लिया
और तुम भागे। तुम पूरब की तरफ जा रहे थे, तुम पूरब की तरफ ही भागे, लेकिन घबड़ाकर भागे। क्योंकि सांप में तुम्हें भय मालूम पड़ा। फिर एक और आदमी आ रहा है। उसने भी गौर से देखा और उसे सांप नहीं दिखाई पड़ा, रस्सी ही दिखाई पड़ी। उसको भी पूरब जाना है, वह भी पूरब जा रहा है। लेकिन जो घबड़ाकर भागा है उसमें और जो रस्सी को देखकर जा रहा है, बुनियादी फर्क है। दोनों एक ही दिशा में जा रहे हैं। लेकिन जो भाग गया है उसके भागने के पीछे अभी अंधकार है, अंधेरा है, अज्ञान है। और जो जागकर जा रहा है, उसके जाने में प्रकाश है, ज्योति है।
"इस जगत में ज्ञान आदि सारभूत अर्थ हैं। जो पुरुष सोते हैं उनका अर्थ
खो जाता है। सतत जागते रहकर पूर्वार्जित कर्मों को प्रकंपित करो। धार्मिकों का जागना श्रेयस्कर, अधार्मिकों का सोना श्रेयस्कर है। ऐसा भगवान महावीर ने वत्स देश के राजा--शतानीक की बहन जयंति से कहा था।" "प्रमाद को कर्म (आस्रव) और अप्रमाद को अकर्म (संवर) कहा है। प्रमाद, होने से मनुष्य अज्ञानी होता है; प्रमाद के न होने से ज्ञानी होता है।" "प्रमाद को कर्म... " प्रमाद यानी मूर्च्छा। प्रमाद यानी सोया-सोयापन। प्रमाद, जैसे कोई भीतरी नशे में तुम पड़े हो।
"प्रमाद को कर्म कहा है... ।"
तुम जो भी कर रहे हो, उसका सवाल नहीं है--तुम क्यों कर रहे हो, उसका सवाल है।
यही करना और ढंग से भी किया जा सकता है, जागकर भी किया जा सकता है--तब कर्म नहीं होगा।
समझो। तुम अपने बच्चों में लिप्त हो, राग में डूबे हो। तुमने बड़ी महत्वाकांक्षाएं बच्चों के कंधों पर रख दी हैं। तुम जो नहीं कर पाये जिंदगी में, चाहते हो तुम्हारे बच्चे कर लेंगे। अगर मां-बाप बेपढ़े-लिखे हों तो बच्चों को बुरी तरह पढ़ाते-लिखाते हैं। क्योंकि उनकी एक कमी रह गई, वह खलती है। कम से कम अपने में न हो सकी, अपने बच्चों में पूरी हो जाये। जो मां-बाप जिंदगी भर तड़फते रहे, किसी बड़े पद पर न हो सके, वे अपने बच्चों को

पहले से ही तैयार करते हैं कि हम तो चूक गये, तुम मत चूक जाना! अब तुम बच्चों को तैयार कर रहे हो जीवन के युद्ध के लिये। यह एक स्थिति है।
फिर एक दूसरा आदमी है। उसके भी बच्चे हैं। लेकिन जागा हुआ आदमी है। जागते ही "मेरे हैं", यह तो ख्याल समाप्त हो जाता है; "बच्चे हैं", यह ख्याल रह जाता है। "मेरे हैं", यह तो प्रमाद का हिस्सा है, मूर्च्छा का हिस्सा है।
मेरा क्या है? खाली हाथ हम आते हैं, खाली हाथ हम जाते हैं। और बच्चे मेरे क्या हो सकते हैं? भला मेरे द्वारा आये हों, मैं मार्ग बना होऊं; लेकिन आये तो कहीं अज्ञात से हैं! मेरे चौराहे से गुजरे होंगे, इससे मेरे नहीं हो जाते। मेरे पास हैं, इससे मेरे नहीं हो जाते। मेरे शरीर का सहारा लेकर बड़े हो रहे हैं, इसलिए मेरे नहीं हो जाते। मेरे जीवाणु के माध्यम से प्रगट हुए हैं, इसलिए भी मेरे नहीं हो जाते।
चैतन्य की अपनी यात्रा है। ये जो बच्चे तुम्हारे पास हैं, ये भी अपनी- अपनी यात्रा से आये हैं। इस जीवन में संयोग... तुमसे गुजरे हैं, तुम्हारे नहीं हैं।
तुमने कभी ख्याल किया! बाल तुम्हारे शरीर से जुड़े हैं, काट देते हो; फिर तो तुम्हारे नहीं रह जाते! नाखून काट देते हो, फिर तो तुम्हारे नहीं रह जाते! बच्चा जैसे ही पैदा हो गया, मां की देह के बाहर आ गया--तुम्हारा क्या रह गया? "मेरा"--भाव गिर जाये, ममत्व गिर जाये--फिर तुम बच्चों की फिक्र कर देते हो, उनकी साज-संवार कर देते हो; लेकिन इस साज-संवार में अब कोई राग नहीं है। और इस साज-संवार के द्वारा तुम अपनी महत्वाकांक्षाओं को, अपने अहंकार को, अपनी अतृप्त अभीप्साओं को पूरा नहीं करना चाहते। तुम बच्चों को साथ दे देते हो कि ठीक है, संयोग मिल गया, तुम असहाय हो; मुझसे बन सकता है, मैं कुछ कर देता हूं। लेकिन तुम कहते हो, तुम्हें जो होना हो तुम वही होना; मेरी मत सुनना। मैं तो असफल हुआ ही हुआ; अब मैं तुम्हें और खराब न कर जाऊंगा।
एक बात, अगर मां-बाप थोड़े भी जाग्रत हों, तो निश्चित करेंगे--वे बच्चों
को सजग कर देंगे कि हमने तो जिंदगी गंवाई ही गंवाई, तुम मत गंवा देना! कृपा करके हम जैसे तो बनना ही मत और कुछ भी बन जाना; क्योंकि यह तो हमने होकर देख लिया। इस होने से तो कुछ भी न पाया।
सोया हुआ बाप उलटी कोशिश करता है। वह कहता है, मेरे जैसे! बच्चे उससे थोड़े भिन्न होने लगते हैं तो वह नाराज होता है। वे प्रतिकृति होने चाहिए। वे ठीक मेरी प्रतिमा होने चाहिए। "मेरे" हैं, तो उनके माध्यम से किसी तरह का अमरत्व खोजा जाता है, कि मैं तो मिट जाऊंगा, लेकिन मेरी प्रतिमाएं छूट जायेंगी। कोई सिलसिला मेरा जारी रहेगा।
कर्म तो वही हैं। कबीर भी कपड़ा बुनते हैं, बाजार में बेचने जाते हैं। गोरा कुम्हार मटकियां बनाता है, बाजार में बेचता है। रैदास जिंदगी भर जूते बनाते रहे। लेकिन कुछ फर्क हो गया। कबीर अब भी कपड़ा बनाते हैं, लेकिन अब इसमें कोई व्यवसाय नहीं है। अब इससे कुछ धन कमा लेकर धन के ऊपर सांप बनकर बैठ जाने की आकांक्षा नहीं है। जरूरी है; रोटी के लिए, कपड़े के लिए कर लेते हैं। आवश्यक है, कर लेते हैं। इसमें अब कोई वासना नहीं है।
जरूरत और वासना के भेद को समझना। जरूरतें तो सभी की पूरी होनी चाहिए। जरूरतें तो जीवन का अंग हैं। वासनाएं विक्षिप्तताएं हैं। वे कभी पूरी नहीं होतीं। और उनका जीवन की किसी जरूरत से कोई संबंध नहीं है। कोई आदमी सम्राट होना चाहता है, इसका जीवन की जरूरत से क्या संबंध है? हां, भूखा रोटी मांगता है, यह समझ में आता है। नंगा कपड़ा चाहता है, यह समझ में आता है। लेकिन कोई आदमी सम्राट होना चाहता है। अब यह सम्राट होने से किसी भी जरूरत का कोई संबंध नहीं है।
तुम्हें प्यास लगी है, पानी चाहिए। तुम धूप में खड़े हो, छप्पर चाहिए-- समझ में आता है। लेकिन धन का एक ढेर लगा-लगाकर तुम उस धन के ढेर पर बैठे रहो, यह बात रुग्ण है, यह विक्षिप्त है। अरबों रुपये हो जाते हैं लोगों के पास, तब भी दौड़ नहीं रुकती! अब उन रुपयों का कुछ भी नहीं कर सकते। अब कुछ भी बचा नहीं है, जो उनसे खरीदा जा सके; जो भी खरीदा जा सकता था वह सब खरीद लिया,

लेकिन फिर भी दौड़ जारी रहती है। यह कोई विक्षिप्त दौड़ है। यह कोई पागलपन है। इस पागलपन से जो मुक्त हो जाता है, उसके कर्म बांधते नहीं। उसके कर्म प्राकृतिक कर्म हो जाते हैं, नैसर्गिक कर्म हो जाते हैं।
प्रमाद को इसलिए महावीर कर्म कहते हैं। करने को कर्म नहीं कहते, करने में जो बेहोशी है उसको कर्म कहते हैं। यह थोड़ा सोचने जैसा है। यह सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। तुम क्या करते हो, यह सवाल नहीं है--तुम होश में रहकर करते हो कि बेहोश रहकर करते हो। यह तो कर्म की बड़ी अनूठी व्याख्या हुई। प्रमाद को कर्म, अप्रमाद को अकर्म!
"पमायं कम्ममाहंसु, अप्पमायं तहाऽवंर।"
तो जाग जाओ, कर्म तो तब भी जारी रहेगा। आखिर महावीर भी जाग गये, फिर भी
तो कोई चालीस साल जीवित रहे, कर्म तो किया ही; उठे भी, सोये भी, भोजन भी किया, उपवास भी किया, ध्यान भी किया, मौन भी किया, बोले भी, चुप भी रहे--सब कर्म चलता रहा। लेकिन यह कर्म अब बांधता नहीं है। अब इस कर्म में कोई तंद्रा नहीं है, अब कोई मूर्च्छा नहीं है। अब यह सोये-सोये नहीं हो रहा है, यह जागकर हो रहा है।
जैसे ही तुम जागते हो, जीवन शुद्ध जरूरतों पर आ जाता है। जो गैर-जरूरी है, उसकी पकड़ नहीं रह जाती। ऐसा समझो कि आज अचानक तुम्हें खबर मिले कि पूना में भूकंप होने को है और तुम्हें थोड़ी-सी ही चीजें बचाकर निकलने का मौका है, और तुम सारा घर का सामान इकट्ठा कर लो, और सोचो कि क्या बचायें और क्या छोड़ें। तुम चकित होओगे यह जानकर और यह विचार तुम्हारे मन में जरूर आयेगा कि यह इतना व्यर्थ का सामान इकट्ठा क्यों किया! इसमें बहुत थोड़ा ही काम का होगा जो तुम ले जा सकोगे। और जब तुम चुनने लगोगे, तुम्हें खुद ही समझ में आयेगा, दस में से नौ चीजें तुम खुद ही छोड़े दे रहे हो। लेकिन इनको इकट्ठा करने में बड़ा समय व्यतीत किया। इनको इकट्ठा करने में पागल की तरह दौड़े। इनको इकट्ठा करने में जीवन की बड़ी संपदा खोयी और कूड़ा-कर्कट इकट्ठा किया। इसको ले जाने के क्षण में, तुम खुद ही सोचोगे कि इसमें बहुत-सा तो ऐसा है जो ले जाने योग्य नहीं है।
ऐस्कीमों की जीवन-व्यवस्था में एक प्रक्रिया है, बड़ी बहुमूल्य है! काश, सारी दुनिया में कभी हो जाये तो बड़े काम की हो! ऐस्कीमों, जैसे यहां वर्ष में दीवाली आती है, ऐसा उनका एक दिन आता है--उत्सव का दिन। उस दिन उनके पास जो भी हो, जो व्यर्थ होता है, वह बांट देते हैं। इसका बड़ा परिणाम होता है। घर खाली, शुद्ध, साफ हो जाते हैं। और इसका दूसरा परिणाम यह होता है कि जब सालभर बाद व्यर्थ को बांट ही देना है तो वे व्यर्थ को इकट्ठा भी नहीं करते; क्योंकि वह फिजूल है, वह सालभर बाद बंट जाना है। उसके लिए दौड़-धूप कौन करे!
तो एस्कीमों का घर अत्यंत जरूरत, अत्यंत आवश्यक पर निर्भर है। और तुम ऐस्कीमों को जितना संतोषी पाओगे, किसी को न पाओगे। पर मौत के दिन तो सभी कुछ छूट जाना है; थोड़ा भी न ले जा सकोगे। अगर थोड़ा मौत का स्मरण बना रहे तो तुम व्यर्थ की दौड़-धूप छोड़ दोगे।
तुम अपने सौ कर्मों को जरा गौर से देखना; उसमें से नब्बे तो चुपचाप गिराये जा सकते हैं, जिनके लिए कोई कारण नहीं है।
दो छोटे बच्चे बात कर रहे थे। एक बच्चा कह रहा था कि मेरी मां अदभुत है! वह किसी भी विषय पर घंटों बोल सकती है। दूसरा बोला, यह कुछ भी नहीं है। मेरी मां बिना विषय के घंटों क्या, दिनों बोल सकती है। विषय के घंटों क्या, विषय की कोई जरूरत ही नहीं है।
तुम जरा ख्याल रखना, तुम जितना बोल रहे हो, उसमें से कितना जरूरी था, कितना तुम छोड़ सकते थे! तुम जो कर रहे हो, उसमें से कितना जरूरी था, कितना छोड़ा जा सकता था!
धीरे-धीरे अपने जीवन को व्यवस्था दो! होश लाओ! जहां चलकर पहुंचा जा सकता है, वहां दौड़कर क्यों पहुंच रहे हो?
मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था, तो मैंने देखा कि परीक्षा में विद्यार्थी लिखते तो हाथ से हैं, लेकिन पूरा शरीर खिंचा है। तो मैं उनसे कहता कि जब तुम हाथ से लिख रहे हो तो दो अंगुलियों पर जोर पड़े, यह तो समझ

में आता है; लेकिन यह पूरा शरीर अंगूठे से लेकर सिर तक तुम तने हुए क्यों हो? किन्हीं-किन्हीं विद्यार्थियों को बात समझ में आई और वे शरीर को शिथिल छोड़कर लिखे। और बाद में उन्होंने मुझे कहा, यह आश्चर्य की बात है! हम नाहक शक्ति खो रहे थे और उसकी वजह से हड़बड़ाहट पैदा होती थी।
तुम साइकिल चलाते हो, लेकिन शायद ही तुम किसी साइकिल चलानेवाले को ठीक चलाते देखो, क्योंकि अगर ठीक कोई चला रहा हो तो पैर के पंजे पर जोर देना काफी है। पूरे शरीर को तनाव देने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन साइकिल क्या चला रहे हैं, पूरा शरीर तना हुआ है। फिर थक जाते हैं। फिर ऊब जाते हैं।
जिंदगी में जरा गौर करो! जो काम जितने से हो सकता हो उतना तो जरूरी है; उससे रत्तीभर भी ज्यादा डालना मूर्च्छा के कारण हो रहा होगा। वह साइकिल सवार जानता ही नहीं कि क्या कर रहा है। उसे याद ही नहीं है कि वह क्या कर रहा है। जो काम रत्तीभर से हो सकता था, जो सुई से हो सकता था, वहां तलवार लिए बैठे हो। खुद को लहूलुहान कर लिया है, दूसरों को लहूलुहान कर रहे हो। और सुई तो सी देती कपड़े को, तलवार और फाड़ देती है। जो काम सुई से होता है वह तलवार से हो नहीं सकता।
सम्यक जीवन चाहिए!
महावीर कहते हैं, "प्रमाद को कर्म, अप्रमाद को अकर्म कहा है। प्रमाद
के होने से मनुष्य अज्ञानी होता है। और प्रमाद के न होने से मनुष्य ज्ञानी हो जाता है।" सम्हालो थोड़ा! जीवन की गंध को व्यर्थ गंवाए दे रहे हो।
कहीं की रहेगी न आवारा हो कर
यह खुशबू जो फूलों ने कांटों पे तौली।
बड़ी मुश्किल से खुशबू आती है। बड़ी मुश्किल से! बड़ी जद्दोजहद से! जरा देखो तो बीज से लेकर फूल तक की यात्रा, कितनी कठिन है! करीब-करीब असंभव है। कितनी अड़चनें हैं! कितने अवरोध हैं! पहले तो बीज टूटे न टूटे; टूट जाये
तो ठीक भूमि मिले न मिले; ठीक भूमि भी मिल जाये तो कोई पानी दे न दे, कोई पानी भी दे, सूरज की रोशनी पड़े न पड़े; कोई बच्चा उखाड़ दे पौधे को; कोई जानवर खा जाये या कोई कुत्ता अपना पेशाब-घर बना ले! करोगे क्या? हजार बाधाएं हैं! तब कहीं वृक्ष खड़ा हो पाता। तब कहीं फूल आते। कांटों पर तौल-तौलकर गंध पैदा करनी पड़ती है।
कहीं की रहेगी न आवारा हो कर
यह खुशबू जो फूलों ने कांटों पे तौली।
--और फिर होता क्या है परिणाम? सिर्फ आवारा होकर भटक जाती है।
मनुष्य होना बड़ी लंबी यात्रा है। इस देश में हम कहते रहे हैं, चौरासी करोड़ योनियां! अनंत-अनंत काल, यात्रा करते-करते, निखारते-निखारते यह फूल खिला है, जो मनुष्य है, जिसको हम मनुष्य कहते हैं। यह मनुष्यता का फूल खिला है। और अब तुम कर क्या रहे हो? यह गंध आवारा हुई जा रही है। यह ऐसे ही व्यर्थ भटकी जा रही है और खोई जा रही है। इतने श्रम से जिसे पाया है, उसे तुम ऐसे चुपचाप बेहोशी में गंवाए दे रहे हो।
"अज्ञानी साधक कर्म-प्रवृत्ति के द्वारा कर्म का क्षय होना मानते हैं; किंतु वे कर्म के द्वारा कर्म का क्षय नहीं कर सकते। धीर पुरुष अकर्म... (संवर या निवृत्ति) के द्वारा कर्म का क्षय करते हैं। मेधावी पुरुष लोभ और मद से अतीत तथा संतोषी होकर पाप नहीं करते।"
"अज्ञानी साधक कर्मप्रवृत्ति के द्वारा ही कर्म का क्षय सोचते हैं...
।" वे सोचते हैं, कर्म को काटना है तो और कर्म करो। ज्ञानी साधक कर्म के द्वारा कर्म का क्षय नहीं मानते।
"अकर्म के द्वारा... " अकर्म का क्या अर्थ है? पहला--जो व्यर्थ कर्म हैं उन्हें जाने दो। त्याग करने को नहीं कह रहा हूं--बोध से समझो कि व्यर्थ हैं, वे अपने से गिर जायेंगे, चले जायेंगे, विदा हो जायेंगे। तुम्हारा लगाव टूट जायेगा। थोड़ा जागकर अपने जीवन-चर्या को गौर से देखते रहोः सुबह से रात तक क्या कर रहे हो? उसमें क्या-क्या व्यर्थ है? तो पहले व्यर्थ को जाने दो। यह पहला कदम होगा कि धीरे-धीरे तुम व्यर्थ को हटा दो। और तुम नब्बे प्रतिशत व्यर्थ पाओगे। यह मैं अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं।

निन्यानबे प्रतिशत पाओगे। नब्बे प्रतिशत कह रहा हूं, ताकि तुम एकदम से घबड़ा न जाओ।
एक मित्र को मैंने कहा कि तुम दिन में इस तरह बोलो, जैसे कि हर शब्द के लिए मूल्य चुकाना है; जैसे टेलीग्राम कर रहे हो; जैसे एक-एक शब्द के लिए मूल्य चुकाना पड़ेगा। उन्होंने कुछ दिन प्रयोग किया और मुझे आकर कहा, यह बड़ी हैरानी की बात है! तब तो दस-बीस शब्दों से ही दिन में काम हो जाता है। जहां "हां" और "ना" कहने से भी काम हो जाता है, वहां पहले मैं कितना बोले जा रहा था! और इसके बड़े लाभ हुए, उन्होंने कहा। क्योंकि कुछ गलत बोलकर, कुछ व्यर्थ बोलकर हजार झंझटें खड़ी हो जाती थीं।
तुम जरा सोचो! तुम्हारी जिंदगी की कितनी झंझटें तुम्हारे बोलने के कारण खड़ी हो गई हैं! घर आये, कुछ बोल दिए पत्नी से। तब ख्याल में नहीं था कि यह बोलने का क्या परिणाम होगा। जब बोला था तो कोई भाव भी न था बुरा; लेकिन बोले, फंसे। तुम भी बेहोश हो। तुम बेहोशी में बोल गये। पत्नी ने बेहोशी में सुना। उसने कुछ का कुछ सुना। लड़ने-झगड़ने पर खड़ी हो गई। अब तुम लाख समझाते हो कि यह मेरा मतलब न था, इससे क्या होता है? अब मतलब न था, यह समझाने के लिए तुम कुछ बोल रहे हो, उसमें से भी पत्नी कुछ पकड़ेगी। अब यह सिलसिला कहां अंत होगा?
थोड़ा सोचो, तुम्हारी जिंदगी की कितनी विपदाएं कम न हो जायें, अगर तुम थोड़े चुप रहो! सोच के बोलो! अत्यंत जरूरी हो तो बोलो। जैसे एक-एक शब्द के लिए मूल्य चुकाना पड़ेगा, इस तरह बोलो। तुम न केवल यह पाओगे कि तुम्हारे बोलने में बल आ गया, तुम यह भी पाओगे कि तुम्हारे बोलने के कारण अड़चनें कम हो गईं; न तुम अपने लिए पैदा करते हो, न औरों के लिए अड़चनें पैदा करते हो। और तुम्हारे जीवन में एक प्रसाद अभिव्यक्त होना शुरू हो जायेगा। क्योंकि जो चुप रहता है, उसके पास ऊर्जा इकट्ठी होती है। बोल-बोलकर तुम उसे चुकता कर लेते हो।
अकर्म की तरफ पहला कदम हैः व्यर्थ कर्म के प्रति जागो। फिर, जो सार्थक
बच रहे--बचेगा, कुछ तो बचेगा; क्योंकि जब तक जीवन है, कुछ कर्म रहेगा, जीवन कर्म है--फिर जो सार्थक बचे, उसके प्रति साक्षी-भाव रखकर करो, कर्ता रहकर मत करो। ऐसे करो जैसे तुम करनेवाले नहीं हो। भूख लगी है शरीर को, तुम आयोजन कर देते हो; लेकिन तुम भूख से भी दूर हो, आयोजन से भी दूर हो। न तो भूख तुम्हें लगी है और न आयोजन तुम करते हो। तुम अकर्ता-भाव में डूबे रहते हो। तुम कहते हो, साक्षी हूं, देखता हूं। शरीर को भूख लगती है, रोटी जुटा देता हूं। प्यास लगती है, सरोवर के पास चला जाता हूं। लेकिन तुम अब कर्ता नहीं हो।
यह जो कर्ता-भाव का चला जाना है और साक्षी-भाव से, जागकर, अप्रमाद से कर्म को करना है--उसको महावीर अकर्म कहते हैं। अकर्म का मतलब तुम यह मत समझना कि कुछ न करना; जैसा कि जैन मुनियों ने समझ लिया है। अकर्म का अर्थ यह नहीं है कि तुम बस बैठ गये। क्योंकि तुम्हारे बैठने से भी क्या होगा? एक संन्यासी मुझे मिलने आये। काश्मीर में एक शिविर मैंने लिया था। उसके पहले ही वे मुझसे मिलने आये थे, तो मैंने उनसे कहा कि अच्छा हो काश्मीर आ जायें। उन्होंने कहा, यह जरा मुश्किल है। चलो, मैंने कहा, जाने दो। बंबई में जहां मैं था, जहां वे मिलने आये थे, मैंने कहा, कल सुबह फलां- फलां जगह, कुछ मित्र ध्यान करने को इकट्ठे हो रहे हैं, वहां आ जाओ। उसने कहा, यह भी बड़ा मुश्किल है। मैंने कहा, मुश्किल क्या है? मैं समझूं। तो उन्होंने कहा, मुश्किल यह है--उनके साथ एक सज्जन और थे--कि मैं पैसा खुद नहीं रखता; पैसे को छूने का मैंने त्याग कर दिया है। तो टैक्सी में बैठना पड़े, तो पैसे की तो जरूरत पड़ेगी। ट्रेन में बैठना पड़े तो पैसे की जरूरत पड़ेगी। तो ये सज्जन को साथ रखना पड़ता है। जहां इनको सुविधा हो, वहीं मैं आ सकता हूं। और कल इनको सुविधा नहीं है। तो मैंने कहा, यह भी बड़ा मजा हुआ। पैसा तुम इनकी जेब में रखे हुए हो... । यह तो उलझाव और बढ़ गया। तुम समझ रहे हो, तुम पैसा नहीं छूते। तुम सोच रहे हो, तुम पैसे से मुक्त हो गये। तुम पैसे से मुक्त नहीं हुए, इस आदमी से और बंध गये। इससे तो पैसा ही ठीक था, अपने ही खीसे में रख लेते, अपने ही हाथ से निकाल लेते। इसके हाथ से

निकलवाया। काम तो तुम्हारा ही होना है। बिना पैसे के भी नहीं होता, यह भी तुम्हें पता है। तो यह किसको धोखा दे रहे हो तुम? यह तुम्हारे हाथ में ऐसी कौन-सी खराबी है या तुम्हारे हाथ में ऐसा कौन-सा गुण है, जिसके कारण अपने हाथ को बचा रहे हो, इसका हाथ डलवा रहे हो? तुम अगर पाप कर रहे हो तो कम से कम अकेले ही कर रहे थे; अब तुम इससे भी करवा रहे हो। तुम पर दोहरा जुर्म होगा। तुम फंसोगे बुरी तरह। तुम यह मत सोचो कि तुम त्यागी हो।
अब जैन मुनि है। बैठ गया है दूर सिकुड़कर। वह कहता है, हम कुछ नहीं करते। लेकिन कोई उसके लिए रोटी कमायेगा। कोई उसके लिए वस्त्र कमायेगा। जो बड़े जैन मुनि हैं, उनको लोग बुलाने में गांव में डरते हैं; क्योंकि उनका गांव में आने का मतलब हैः सारे श्रावकों की मुसीबत। भारी खर्च का मामला है। तो बड़े मुनियों को छोटे गांव तो बुला ही नहीं सकते। कोई उपाय नहीं है। क्योंकि उतना खर्च कौन उठायेगा?
अब यह थोड़ा सोचना! अगर तुम खाली बैठ गये तो तुम्हारी जरूरतें कोई और पूरी करेगा। लेकिन जब तक जरूरतें हैं--और तब तक जरूरतें है जब तक जीवन है-- तो कर्म तो जारी रहेगा। यह कर्म दूसरे के कंधे पर रख देने से, यह दूसरे के कंधे पर रखकर गोली चलाने से तुम बचोगे न। इसमें तुम पर दोहरा पाप लग रहा है। तुम जो कर रहे हो वह तो कर ही रहे हो और इस आदमी के कंधे पर रख रहे हो। इस आदमी को भी तुम साधन बना रहे हो। यह भी गलत है।
जो करना है जरूरी, वह करना। फिर साक्षी-भाव रखना। शरीर की जरूरत पूरी
कर देनी है। जरूरत से ज्यादा की आकांक्षा नहीं करनी है। मूल जरूरत पर रुक जाना है। और जो भी हो रहा है, उसके प्रति साक्षी-भाव रखना है।
"धीर पुरुष अकर्म के द्वारा कर्म का क्षय करते हैं। मेधावी पुरुष लोभ
और मद से अतीत तथा संतोषी होकर पाप नहीं करते।"
मेधावी! महावीर उन्हीं को मेधावी कहते हैं, इंटेलीजेंट, जो साक्षी होने में समर्थ हैं। और मेधा मेधा नहीं। जिसको तुम मेधावी कहते हो, वह तुम जैसा ही है--मूर्च्छित। हो सकता है, किसी दिशा में कुशल है। कोई तकनीक उसने सीख लिया है। तुम कहते हो, कोई चित्रकार है बड़ा मेधावी; क्योंकि तुम जैसा चित्र बनाते हो, उससे बहुत अच्छा चित्र बनाता है। लेकिन जीवन का चित्र तो तुम जैसा बना रहे हो, वैसा ही वह भी बना रहा है। तुम कहते हो, कोई कवि है, बड़ा मेधावी। क्योंकि जो तुम नहीं कह सकते, जो तुम नहीं गा सकते, वह गा देता है। ठीक है। लेकिन जीवन का अंतिम चित्र तो तुम्हारे जैसा ही वह बना रहा है। उसमें कोई फर्क नहीं है। क्रोध तुम्हें है, उसे है। लोभ तुम्हें है, उसे है। मत्सर तुम्हें घेरता है, उसे घेरता है।
महावीर कहते हैं, जिसने जीवन के चित्र को और जीवन के गीत को सम्हाल लिया, जिसने वहां बुद्धिमत्ता का उपयोग कर लिया, वही मेधावी है; बाकी सब मेधा तो कहने की मेधा है।
लज्जते-दर्द के ऐवज दौलते-दो जहां न लूं
दिल का सकून और है, दौलते-दो जहां है और।
सारे संसार की संपत्ति भी मिलती हो उस आदमी को जिसने थोड़े मन की शांति जानी, तो वह लेने को राजी न होगा। दो लोकों की भी संपत्ति मिलती हो--।
लज्जते-दर्द के ऐवज दौलते-दो जहां न लूं।
यह जो सत्य की खोज में पीड़ा उठानी पड़ती है, इस पीड़ा के बदले भी अगर दुनिया की सारी संपत्ति मिलती हो, दोनों दुनिया की मिलती हो, तो भी न लूं। दिल का सकून और है, दौलते-दो जहां है और। वह दिल की शांति कुछ बात और है। वह कुछ संपदा और है। एक बार जिसके मन में उसकी भनक पड़ गई, फिर सब फीका हो जाता है। मेधावी पुरुष लोभ के कारण धर्म नहीं करता। कोई स्वर्ग पाने के लिए धर्म नहीं करता, न भय के कारण, नर्क से बचने के लिए धर्म नहीं करता। मेधावी पुरुष तो पाता है कि जितना-जितना जागरण आता है, उतना-उतना आनंद आता है। जागरण में ही छिपा है आनंद। आनंद जागरण का फल नहीं है; आनंद जागरण का स्वभाव है। ऐसा नहीं है कि पहले जागरण मिलता है, फिर आनंद मिलता है--जागरण में ही मिल जाता है। इधर तुम जागते चले जाते हो, उधर आनंद की नई-नई पुलक, नई-नई किरण, नया-नया नृत्य भीतर होने लगता है।
इस अहद में कमयाबिए-इन्सां है कुछ ऐसी

लाखों में बामुश्किल कोई इन्सां न.जर आया।
लाखों लोग हैं, आदमी कहां! लाखों आदमियों में कभी एक-आध आदमी नजर आता है। क्योंकि आदमी का जो बुनियादी लक्षण है, जागरण, वह दिखाई नहीं पड़ता। पशु हैं, उन्हें भी भूख लगती है तो खोजते हैं; कामवासना जगती है तो कामवासना की तृप्ति करते हैं। पशुओं को भी लोभ दे दो तो राजी हो जाते हैं, भय दे दो तो राजी हो जाते हैं। कुत्ते को मारो-पीटो तो जैसा करतब करना हो, कर देगा। लोभ दो, रोटी के टुकड़े डालो, तो तुम्हारे पीछे जी-हजूरी करता फिरेगा। अगर मनुष्य भी ऐसे ही लोभ और भय के बीच ही आंदोलित हो रहा है, तो फिर मनुष्य और पशु में भेद क्या है?
मनुष्यता उसी दिन प्रारंभ होती है जिस दिन तुम्हारी वृत्तियों से पीछे एक जागरण का स्वर, एक जागरण का स्रोत पैदा होता है। जागते ही तुम मनुष्य बनते हो, उसके पहले नहीं। और ऐसा भी नहीं है कि कभी-कभी तुम न जागते होओ। ऐसा भी नहीं है कि जागने के क्षण कभी-कभी अचानक न आ जाते हों। क्योंकि जो तुम्हारा स्वरूप है, उसकी झलक कभी-कभी मिल ही जाती है। कितने ही आकाश में बादल घिरें, आकाश कभी न कभी दो बादलों के बीच से दिखाई पड़ ही जाता है। तो ख्याल रखना, तुम भी कभी-कभी जागते हो; हालांकि तुम उसका कोई हिसाब नहीं रखते, क्योंकि तुम प्रत्यभिज्ञा नहीं कर पाते कि यह क्या है। तुम उसे कुछ और-और नाम दे देते हो। कभी ऐसा होता है कि अचानक खड़े हो तुम, सुबह का सूरज ऊगा, पक्षियों ने गीत गाया--और एक बड़ी गहरी शांति और सुकून तुम्हें मिला! तुम सोचते हो शायद सुबह के सौंदर्य के कारण, सूरज के कारण, पक्षियों के गीत के कारण। नहीं। यद्यपि पक्षियों के गीत, सुबह के सूरज और खुले आकाश ने वातावरण दिया, उस वातावरण में क्षणभर को तुम अवाक रह गये, क्षणभर को विचारधारा बंद हो गई, क्षणभर को बादल यहां-वहां न हिले, बीच में से थोड़ा-सा आकाश, भीतर का आकाश दिखाई पड़ गया।
कभी किसी के प्रेम में मन शांत हो गया। कभी संगीत सुनते समय। कोई कुशल वीणा-वादक वीणा बजाता हो और उसके तार बाहर कंपते रहे और भीतर, तुम्हारे भीतर भी कुछ कंपा; वीणा बंद हुई, तुम्हारे भीतर भी कुछ क्षणभर को बंद हो गया। एक गहन शांति तुम्हें अनुभव हुई।
लेकिन तुम सोचोगे, शायद यह वीणा-वादक की कुशलता के कारण है। यद्यपि उसने निमित्त का काम किया, लेकिन वस्तुतः घटना तुम्हारे भीतर घटी।
ऐसे जीवन में तुम्हें कई बार क्षण मिलते हैं; लेकिन तुम उनके कारण गलत समझ लेते हो।
जब भी तुम्हें शांति मिलती है तो भीतर कुछ प्रकाश पैदा होता है, उसके कारण ही मिलती है। एक बार यह समझ में आ जाये तो फिर तुम बाहर के कारणों को नहीं जुटाते; फिर तुम भीतर की ही जागृति को सम्हालने में लग जाते हो।
ऐ काश हो यह जज्बए-तामीर मुस्तकिल
चौंके तो हैं खराबिए-ख्वाबे-गरां से हम।
काश! निर्माण का यह अवसर थोड़ा स्थायी हो जाये। गहरी नींद से चौंके तो हैं, लेकिन फिर कहीं हम नींद में न खो जायें।
ऐसा रोज होता है। तुम्हारी नींद भी टूटती है, लेकिन फिर तुम नींद में
खो जाते हो।
ऐ काश हो यह जज्बए-तामीर मुस्तकिल
चौंके तो हैं खराबिए-ख्वाबे-गरां से हम।
हो सकती है। यह निर्माण की क्षणभर को आई हुई दशा स्थायी हो सकती है। लेकिन तुम्हें स्थायी करनी पड़े। इसे दोहराना पड़े। इसे बार-बार आमंत्रित करना पड़े। जब भी समय मिले, अवसर मिले, फिर-फिर इस भाव-दशा को जगाना पड़े--ताकि इससे पहचान होने लगे; ताकि इससे संबंध जुड़ने लगे; ताकि धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर यह प्रकाश का स्तंभ खड़ा हो जाये।
"मनुष्यो सतत जागते रहो! जो जागता है, उसकी बुद्धि बढ़ती है। जो सोता है, वह धन्य नहीं है। धन्य वही है, जो सदा जागता है।"
जागरह नरा! णिच्चं जागरमाणस्स बड्ढते बुद्धी।
जो सुवति ण सो धन्नो, जो जग्गति सो सया धन्नो।।

जो जागता है वह धन्य है। मनुष्यो, सतत जागते रहो! जो जागेगा उसकी मेधा बढ़ती है। जो सोता है उसकी मेधा सो जाती है। जो जागता है उसका भाग्य भी जागता है। जो सोता है उसका भाग्य भी सो जाता है। जागरण की पराकाष्ठा ही भगवत्ता है। इसलिए मैंने कहा, भगवान का अर्थ हैः जिसका भाग्य पूरा जाग गया; जिसने अपने भीतर कोई कोना-किनारा सोया हुआ न छोड़ा, जिसने अंधेरे की कोई जगह न छोड़ी।
उठ कि खुर्शीद का सामाने-सफर ताजा करें
नफसे-सोख्त-ए-शाम औ सहर ताजा करें!
उठ कि खुर्शीद का सामाने-सफर ताजा करें
उठो कि सूरज की यात्रा पर चलें! यह सूरज कोई बाहर का सूरज नहीं--यह भीतर के जागरण का सूरज है।
"जैसे एक दीप से सैकड़ों दीप जल उठते हैं, और वह स्वयं भी दीप्त रहता है, वैसे ही आचार्य दीपक के समान होते हैं। वे स्वयं प्रकाशवान रहते हैं और दूसरों को भी प्रकाशित करते हैं।"
"जह दीवा दीवसयं"--जैसे दीये से दीया जल जाता है, दीप से दीप जले, ऐसे किसी जाग्रत पुरुष को खोजो, जिसके पास तुम्हारे भीतर भी जागरण की आकांक्षा जगे; जिसके पास तुम्हारे भीतर भी जागने की परम वासना जगे; जिसके पास तुम्हारे भीतर भी संक्रामक हो जाये और तुम भी सोचने लगो, विचारने लगो, प्रयास करने लगोः "कैसे नींद को तोड़ें!" किसी जागे हुए का साथ चाहिए। शास्त्र से यह न हो सकेगा। किसी जागे हुए का साथ चाहिए! तुम सोये हो तो कोई जागा हुआ ही तुम्हें जगा सकता है। शास्त्र को तुम रखे रहो, तुम उसका तकिया बना लोगे। शास्त्र क्या करेगा, अगर तुम तकिया बना लोगे? तुम उस पर ही सिर टेककर और आराम से सो जाओगे, शास्त्र क्या करेगा? कोई तीर्थंकर चाहिए! महावीर कहते हैंः वही है आचार्य जो जागा हुआ है, जिसका आचरण जागृति से निष्पन्न है। जैसे एक दीये से और दीप जल जाते हैं, सैकड़ों दीप जल जाते हैं; फिर भी जो दीप जल रहा था, वह तो दीप्त ही रहता है, उसका कुछ खोता थोड़े ही है। यही तो आध्यात्मिक संपदा की महिमा है। बांटो, बंटती नहीं। दिए चले जाओ, चुकती नहीं। जीवन की और सभी संपदाएं बांटने से कम होती चली जाती हैं। इसलिए जीवन की और सभी संपदाएं आदमी को कंजूस बनाती हैं, कृपण बनाती हैं। सिर्फ आध्यात्मिक संपदा ऐसी संपदा है कि बांटो, बंटती नहीं। एक दीये से जलाये जाओ हजार दीये, कुछ ऐसा नहीं कि पहले दीये की जिससे ज्योति जलाई थी, अब ज्योति कम हो गई। ज्योति का दान तुम्हें कम नहीं करता। ज्योति का दान एक ज्योतिर्मय संघ का निर्माण करता है।
ऐसे महावीर ने हजारों दीये जलाये; जिन-संघ का निर्माण हुआ। ऐसे बुद्ध
ने हजारों दीये जलाये; बुद्ध-संघ का निर्माण हुआ। लेकिन फिर धीरे-धीरे जब जीवित पुरुष खो जाता है, वचन शास्त्र में संगृहीत हो जाते हैं, लोग शास्त्रों का तकिया बना लेते हैं।
पड़ा था सूना सितार दिल का, हुई अचानक यह जाग तुमसे
जो जिंदगी रोग बन चुकी थी, बन गई है आज राग तुमसे।
हजारों लोगों ने महावीर के पास ऐसा अनुभव किया।
जो जिंदगी रोग बन चुकी थी, बन गई है आज राग तुमसे
पड़ा था सूना सितार दिल का, हुई अचानक यह जाग तुमसे।
ध्यान रखना, एक बड़ा गहरा सिद्धांत इस सदी में कार्ल गुस्ताव जुंग ने खोजा। उसे उसने सिनक्रानिसिटी कहा है। कठिन है उसका अनुवाद। अर्थ यह है कि अगर एक व्यक्ति के भीतर कोई घटना घटे, एक व्यक्ति की वीणा बजे, तो उसके पास जो भी आयेगा, उसकी वीणा पर भी वैसी ही झनक शुरू हो जायेगी। उसे भी याद आ जायेगी किसी सोये हुए राग की। उसे भी अपना स्मरण आना शुरू होगा। इसमें कार्य-कारण का सिद्धांत नहीं है। ऐसा नहीं है कि महावीर की मौजूदगी के कारण तुम जागते हो। जागरण तो तुम्हारा स्वभाव है; महावीर की मौजूदगी के कारण भूला हुआ, बिसरा हुआ याद आ जाता है। जो होता है, वह तो तुम्हारे भीतर ही होता है, वह महावीर के बिना भी हो सकता था; लेकिन महावीर की मौजूदगी में सरलता से हो जायेगा। जैसे एक दीया जला हो और दूसरा दीया जले हुए दीये को देखकर इस स्मरण से भर जाये कि मैं भी दीया हूं, मैं भी जल सकता हूं। जैसे एक

बीज फूटा हो और दूसरे बीज के भीतर भी अकुलाहट पैदा हो जाये कि मैं भी फूट सकता हूं।
इसलिए सत्संग का पूरब में बड़ा मूल्य रहा है। सत्संग कीमिया है, रसायन, अल्केमी। सत्संग का अर्थ हैः किसी ऐसे आदमी के पास होना, किसी ऐसे आदमी की उपस्थिति में होना, जो जागा है। तो धीरे-धीरे बिना कुछ किये तुम्हारे भीतर भी कोई नया राग उठने लगेगा। तुम अचानक पाओगे, कोई नींद टूटने लगी, कोई पर्तें हिलने लगीं।
मरहबा ऐ जज्बए-खुद ऐतबादी मरहबा
वो हिला तूफां का दिल, किश्ती रवां होने लगी।
किसी ऐसे व्यक्ति के पास तुम्हारे भीतर पड़ा हुआ आत्मविश्वास जिसे तुम भूल गये हो, जग आयेगा। शाबाश! आत्मविश्वास की दृढ़ता, शाबाश!
मरहबा ऐ जज्बए-खुद ऐतबादी मरहबा!
शाबाश! तुम अपने भीतर ही अनुभव करोगे, कुछ सोया जगने लगा। तुम अपनी ही पीठ थप थपाओगे।
वो हिला तूफां का दिल, किश्ती रवां होने लगी।
और जरा-सा तुम्हारे भीतर तूफान हिल जाये कि नाव जो पड़ी है जन्मों- जन्मों से किनारे वह रवाना हो जाये, किश्ती चल पड़े।
सत्संग में गुरु कुछ करता नहीं, सिर्फ उसकी मौजूदगी... । मौजूदगी भी कुछ करती नहीं--मौजूदगी से कुछ होता है। सूरज कुछ एक-एक फूल को पकड़कर खोलता थोड़े ही है; ऊगा इधर, फूल खिलने लगे।
वो हिला तूफां का दिल, किश्ती रवां होने लगी।
कुछ सूरज सुबह ऊगकर एक-एक पक्षी के द्वार पर दस्तक तो देता नहीं कि गाओ, प्रभात की बेला आ गई! गीत गुनगुनाओ! लेकिन सूरज ऊगा--वो हिला तूफां का दिल, किश्ती रवां होने लगी। कुछ पक्षियों के कंठों में कोई प्यास जग उठती है, कोई गीत अपने से फूटने लगता है!
सूरज की मौजूदगी... ऐसी तीर्थंकर की मौजूदगी; ऐसे अवतार की मौजूदगी, मसीहा की मौजूदगी, पैगंबर की मौजूदगी; ऐसे किसी व्यक्ति की मौजूदगी जिसका दीया जल रहा है अकंपित। ऐसा क्षण अगर कहीं मिलता हो तो उसे चूक मत जाना। तुम्हारा मन हजार तरकीबें खोजेगा चूकने की। इसी मन के कारण तो तुम महावीर को भी चूके, बुद्ध को भी चूके, कृष्ण को भी, क्राइस्ट को भी। तुम चूकते ही चले गये हो। चूकने की तुम्हारी आदत बन गई है। सब दांव पर लगा देना अगर कभी तुम्हें, कहीं भी किसी के सान्निध्य में ऐसा लगे की यहां दीया जला है, तब सब दांव पर लगा देना। यह जुआरियों का काम है। यह अंधेरे में उतरना है। साहस और श्रद्धा! लेकिन दांव पर लगा देना।
क्यों? क्योंकि अगर खोया तो क्या खोयेगा? तुम्हारे पास कुछ है ही नहीं खोने को। अगर मिल गया तो सब मिल जायेगा। अगर खोया तो कुछ भी खोया नहीं। लेकिन तुम्हारे पास जो है, तुम उसे अभी बहुत कुछ समझते हो।
मैंने सुना है, शिवपुरी के पास एक विराट कवि सम्मेलन का आयोजन हो रहा था। कुछ कवि एक कार में बैठकर वहां जा रहे थे। रास्ते में डाकुओं ने घेर लिया।
कवियों में से बोला एक, "भैया! तुम्हारे गांव जा रहे हैं, कवि सम्मेलन में भाग लेने। हमारे पास धरा क्या है? कुछ कविताएं ही सुना सकते हैं। तो सुन लो।" डाकुओं ने उन्हें ग्यारह रुपये दिये और कहा, "महाराज! कविता आप गांव में ही सुनाना और जरा देर तक सुनाना तो ठीक रहेगा। हमें अभी दुनिया में और भी काम करने हैं।
महावीर अगर तुम्हारे द्वार पर आकर तुम्हें गीत भी सुनाने को राजी हो जायें तो भी तुम कहोगे, "महाराज! किसी और को खोज लो, अभी हमें दुनिया में बहुत और काम करने हैं। ये ग्यारह रुपये दक्षिणा ले लो हमें छोड़ने की। यह कविता कहीं और सुना देना।"
महावीर के चरणों में तुमने फूल चढ़ाये--वे ग्यारह रुपये हैं कि महाराज!
आप शांत रहो। हमें बख्शो। अभी हमें दुनिया में और बहुत काम पड़े हैं। लेकिन इस दुनिया में जरा गौर से देखना, क्या काम तुम कर रहे हो? और जिस दुनिया में तुम इतने उलझे हो, वहां तुम क्या खोज रहे हो? मेरे देखे तो सभी

लोग परमात्मा को खोज रहे हैं। कुछ लोग गलत जगह खोज रहे हैं, कुछ लोग ठीक जगह खोज रहे हैं। कुछ लोग ऐसे दरवाजों पर खोज रहे हैं जहां दीवालें हैं, दरवाजे नहीं हैं, कुछ लोग ठीक दरवाजों पर दस्तक मार रहे हैं।
मैं तुमसे कहता हूं, वेश्या के घर पर भी जो आदमी दस्तक देता है वह भी परमात्मा की खोज में ही वहां गया है। क्योंकि वेश्या के द्वार पर भी वह आनंद की तलाश में गया है--और आनंद परमात्मा की तलाश है। जिसने शराबघर में शराब पीकर बेहोश... नालियों में गिर पड़ा है, वह भी परमात्मा की ही तलाश में गया था। क्योंकि आनंद की खोज परमात्मा की खोज है। लेकिन गलत जगह। कोई और मधुशाला खोजनी थी, जहां अदृश्य अंगूरों की सुरा ढाली जाती है! कहीं और पियक्कड़ होना था, पियक्कड़ ही होना था तो! कहीं किसी रामकृष्ण के पास डूबना था पीकर!
कहीं भी तुम खोज रहे हो, तुम्हारी खोज कुछ भी हो, तुम्हारा बहाना कुछ
भी हो, अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम पाओगे, आनंद की तलाश में निकले हो। अगर इतना तुम्हें समझ में आ जाये तो बहुत कठिनाई न बचेगी। फिर तुम्हारे पास एक कसौटी हो गई कि "जहां मैं खोज रहा हूं, वहां आनंद मिल सकता है?" कितनी बार तो वहां गया हूं, सदा खाली हाथ लौटा हूं। कुछ खोकर लौटा हूं, पाकर तो कुछ भी नहीं लौटा। कुछ और दीन होकर लौटा हूं। कुछ और दरिद्र होकर लौटा हूं। भिक्षा-पात्र बड़ा भला हो गया हो, हृदय का पात्र भरा तो नहीं।
आनंद खोज रहे हो, यह स्पष्ट हो, तो कसौटी हाथ में रहेगी। तो तुम जांच लेना। जैसे सोना जांचता है सुनार, पत्थर पर कस लेता है; आनंद पर कसते जाना, कसते जाना। तुम पाओगे, जिंदगी, जिसको तुम जिंदगी कहते हो, कोई भी उस आनंद के पत्थर पर सोना साबित नहीं होती। तभी तुम सुन सकोगे किसी जाग्रत पुरुष के वचन, किसी जिन-पुरुष के वचन।
लेकिन तुम अपने को धोखा दे रहे हो। तुम मांगते कुछ हो, मांगना कुछ और चाहा था, करते कुछ हो, बताते कुछ हो। दूसरों को ही धोखा देते हो, ऐसा नहीं है; खुद को भी धोखा दे लेते हो।
मैंने सुना है, एक यहूदी रबाई दूसरे दिन के सुबह के लिए अपना प्रवचन तैयार कर रहा था और बाहर कुछ आवारा बच्चे शोरगुल मचा रहे थे। तो वह उनसे परेशान था, बाधा पड़ रही थी। तो वह खिड़की पर गया। उसने कहा कि तुम यहां क्या कर रहे हो, पागलो! नदी की खबर है, एक बड़ा राक्षस आया है। बड़ा विकराल है। बड़ा भयंकर है! ऐसा कभी देखा नहीं गया। तुम यहां क्या कर रहे हो?
उसका इतना कहना था कि वे बच्चे तो भागे सरपट नदी की तरफ। रबाई ने सोचा
कि ठीक, झंझट मिटी। वह अपना आकर फिर पढ़ाई-लिखाई में लग गया। लेकिन थोड़ी ही देर में उसने देखा, सारा गांव नदी की तरफ जा रहा है। उसने खिड़की पर खड़े होकर देखा, पूछा, "भाइयो! कहां जा रहे हो?" लोगों ने कहा कि "अरे तुम्हें पता नहीं अभी तक? नदी के किनारे एक राक्षस आया हुआ है। बड़ा विकराल है! हरे रंग का है। बड़े-बड़े दांत हैं।" जो रबाई ने बताया भी नहीं था, वह भी सब उन्होंने बताया। रबाई ने कहा, ठहरो! मैं भी आया। रबाई ने अपने मन में कहा कि अरे बात तो मैंने ही गढ़ी है। पर उसने कहा, कौन जाने, सच ही हो!
दूसरे को धोखा देते-देते आदमी खुद को भी धोखा दे लेता है। कौन जाने, सच
ही हो! कुछ हर्जा भी क्या है जाने में! देख ही लेना चाहिए!
तुम कहते कुछ और हो, चाहते कुछ और हो, सोचते कुछ और हो। तुम्हारा जीवन तुम्हारे ही हाथ से पैदा की गई उलझनों में उलझ गया है।
एक भिखारी मुल्ला नसरुद्दीन को देखकर चिल्लाया, "बड़े मियां! भूखा हूं, कुछ पैसे दे दो तो खाना खा लूं।" मुल्ला ने दयावश बगल के हलवाई की दुकान पर ले जाकर उसे खाना खिलवा दिया। खाना खाकर भिखारी बड़ा नाराज होता बाहर निकला और बड़बड़ाया, "अजीब मजाक है! पिक्चर देखने के लिए तो दो रुपये चाहिए, वे तो जुटते नहीं, खाना सुबह से पांच लोग खिला चुके।"
मगर तुम मांगते खाना हो, देखना पिक्चर है!
तुम जिंदगी में जरा गौर से देखना, तुम क्या मांग रहे हो? क्योंकि तुम
जो मांग रहे हो, वह मिल जायेगा। तब तुम पछताओगे। न मिला तो पछताओगे। मिल गया तो पछताओगे। क्योंकि मांगा तुमने कुछ और था और चाहा कुछ और था। फिर उस भिखारी को तो पता भी था अपनी चाह का, तुम्हें अपनी चाह का भी कोई पता नहीं।

इस बेहोशी को तोड़ो। ठीक-ठीक साफ कर लो, क्या चाहना है, ठीक-ठीक दिशा खोज लो, कहां खोजना है? और दो ही दिशायें हैं, ज्यादा उलझन नहीं है। या तो आदमी बाहर की तरफ खोजता है या भीतर की तरफ खोजता है। बाहर की तरफ खोजकर तुमने देख भी लिया है। थोड़ा भीतर को भी मौका दो!
और ध्यान रखना, सांसारिक आदमी को तो एक ही अनुभव है--बाहर की तरफ का; धार्मिक आदमी को दोनों अनुभव हैं--बाहर का भी, भीतर का भी। इसलिए धार्मिक आदमी की बात जरा गौर से सुन लेना। इसलिए महावीर की, कृष्ण की, बुद्ध की बात को जरा गौर से सुन लेना। तुम जहां खोज रहे हो वहां तो उन्होंने भी खोजा था। नहीं पाया। फिर उन्होंने वहां खोजा जहां तुमने अभी नहीं खोजा है। और वहां पाया।
तो एक बार थोड़ा-थोड़ा समय, थोड़ी-थोड़ी शक्ति निकालो। तेईस घंटे संसार को
दे दो, एक घंटा स्वयं के लिए बचा लो। जिस आदमी के पास अपने लिए एक घंटा भी नहीं है, उससे बड़ा दरिद्र कोई भी नहीं है। उसे ध्यान कहो, प्रार्थना कहो, जो कहना हो कहो; लेकिन एक घंटा अपने लिए बचा लो। तुम आखिर में मरते वक्त पाओगे कि बाकी तेईस घंटे व्यर्थ गये, वही एक घंटा असली बचाया हुआ सिद्ध हुआ। और वह एक घंटा तुम्हारे तेईस घंटों को जीत लेगा, हरा देगा। क्योंकि जब तुम्हें रस आने लगेगा, रसधार बहेगी, तो फिर तुम कैसे धोखा दोगे अपने को? जब असली सिक्के दिखाई पड़ने लगेंगे तो नकली सिक्कों के धोखे में तुम आओगे कैसे?
तोड़ो इस बेहोशी को। और तुम्हारे बिना तोड़े कोई और तोड़ न सकेगा।
उठ कि खुर्शीद का सामाने-सफर ताजा करें।
--उठो! थोड़ा आत्मविश्वास जगाओ!
मरहबा ऐ जज्बए-खुद ऐतबादी मरहबा
वो हिला तूफां का दिल, किश्ती रवां होने लगी।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
सोलहवां प्रवचन

उठो, जागो--सुबह करीब है

पहला प्रश्नः कल आपने बताया कि महावीर ने प्रेम शब्द का उपयोग नहीं किया, क्योंकि लोग उसका गलत अर्थ लेते हैं--और यह कि आज लोग अहिंसा का गलत अर्थ लेते हैं, इसलिए आप प्रेम शब्द का उपयोग करते हैं। पर जैसा लोग महावीर के समय में प्रेम शब्द का गलत अर्थ करते थे, क्या आज भी वही स्थिति नहीं है? और आपके द्वारा सर्वाधिक उपयुक्त शब्द, प्रेम, क्या आज भी खतरे से भरा नहीं है?

शब्द-मात्र खतरे से भरा है। क्योंकि जैसे ही बोला गया शब्द, बोलनेवाले की मालकियत उस पर समाप्त हो जाती है; सुननेवाला मालिक हो जाता है। कुछ मैंने कहा, कहते ही मैं मालिक नहीं रहा; सुनते ही तुम मालिक हो गये। अब तुम क्या अर्थ करोगे--तुम पर निर्भर है।
तो जो शब्दों से डरते हों, उन्हें तो बोलने का ही उपाय नहीं है। क्योंकि अर्थ मैं नहीं डाल सकता; अर्थ तो तुम डालोगे। मेरा अर्थ तो मेरे हृदय में रह जायेगा; शब्द की खाली खोल तुम तक जायेगी; आत्मा फिर तुम उसमें डालोगे। तो अर्थ तो सदा तुम्हारा होगा। और चूंकि तुम उपद्रव से ग्रस्त हो, तुम जो भी अर्थ डालोगे वह भी उपद्रव-ग्रस्त होगा। क्योंकि तुम बड़े भ्रांत हो, तुम्हारे अर्थ भ्रांत ही होंगे। तुम गलत ही निकाल लोगे।
तो इसका तो यह अर्थ हुआ कि जिन्होंने जाना है, वे चुप रह जायें। लेकिन चुप रह जाने का भी तुम अर्थ करोगे कि क्यों चुप रह गये। बुद्ध ने बहुत-से प्रश्नों के उत्तर नहीं दिये--सिर्फ इस कारण कि उन प्रश्नों के उत्तर लोगों को गलत अर्थों में ले जाते हैं। तो बुद्ध के मरने के बाद जो सबसे बड़ा विवाद बुद्ध के अनुयायियों में उठा, वह यह था कि बुद्ध इन प्रश्नों के संबंध में चुप क्यों रह गये! और बुद्ध-धर्म के जो खंड-खंड टुकड़े हुए, वह उनके चुप रह जाने की वजह से हुए। क्योंकि किसी ने कहा कि वे चुप रह गये, क्योंकि जो उन्होंने जाना वह शब्द में प्रगट करने योग्य न था। किसी ने कहा, वे चुप रह गये, क्योंकि वहां जानने को ही कुछ नहीं है; प्रगट करने का सवाल ही नहीं है। किसी ने कहा, वे चुप रह गये, क्योंकि उन्हें पता ही नहीं चला, तो बोलते क्या?
चुप्पी का भी तो तुम अर्थ करोगे! तो अर्थ से तो बचा नहीं जा सकता। तो उपाय क्या है? उपाय यही है कि जिसे जो शब्द ठीक लगे, वह उसका उपयोग करे और सब तरह से, हर दिशा से, उस शब्द को परिभाषित करे। जितने दूर तक संभव हो तुम्हें मौका न दे कि तुम अपना अर्थ प्रवेश कर पाओ। इस तरह की परिभाषा करे, सब तरफ से इस तरह का पहरा बिठाये शब्द पर, फिर भी अगर तुम गलत अर्थ करना चाहो तो करोगे ही।
लेकिन सत्य का गलत उपयोग होगा, इस डर से सत्य बोलने से नहीं रुका जा सकता। सौ में निन्यानबे लोग गलत अर्थ कर लेंगे, कोई हर्ज नहीं; वह जो एक ठीक अर्थ कर लेगा, तो भी सार्थक है बोलना। क्योंकि वे जो निन्यानबे गलत अर्थ कर रहे हैं, न सुनते तो भी गलत होते, कुछ बिगड़ा नहीं है। वे गलत थे, इसलिए गलत अर्थ किया; गलत अर्थ के कारण गलत नहीं हो गये हैं। इसलिए अगर उन्होंने गलत अर्थ किया तो उनकी जिंदगी में कुछ और बिगाड़ नहीं आ जायेगा। वे बिगड़े थे, बिगड़े रहेंगे। लेकिन वह जो सौ में एक भी अगर सुन लेगा, राजी होगा, उठेगा, चलेगा, तो पर्याप्त है। सौ सुननेवालों में अगर एक भी जग जाये, तो सार्थक हो गया श्रम। निन्यानबे की फ्रिक करने की कोई जरूरत नहीं है। महावीर ने अहिंसा शब्द चुना, वह उनकी पसंद थी। उनकी पसंद के बहुत कारण हैं। एक कारण है कि प्रेम और भक्ति के नाम पर चलनेवाला संप्रदाय बिल्कुल विकृत हो गया था। अब अगर प्रेम की ही वे बात करते तो उस संप्रदाय से पृथक, अलग खड़े होने की कोई सुविधा न थी। वे जिस क्रांति की बात करना चाहते थे, वह क्रांति पैदा न होती। उन्हीं शब्दों के उन्हीं पारिभाषिक शब्दों का उपयोग करने का परिणाम यह होता, वे भी पंडितों और ब्राह्मणों के उसी समुदाय

में खो जाते जिसकी बड़ी भीड़ थी। उन्होंने अहिंसा शब्द का उपयोग किया। इस तरह उन्होंने एक परिभाषा दी। इस तरह उन्होंने अपने को पृथक किया। इस तरह भीड़ में खोने से अपने को बचाया। उपयोगी था उनका उपयोग कर लेना अहिंसा का। लेकिन इन पच्चीस सौ सालों में अहिंसा शब्द को बड़ा मूल्य मिल गया है।
उस मूल्य से फिर वैसी की वैसी स्थिति खड़ी हो गई है। अब अहिंसा शब्द का उपयोग करने का अर्थ हैः अहिंसा की कतार में खड़े हुए लोगों की भीड़ में खो जाना।
तो जिस कारण से महावीर ने अहिंसा शब्द का उपयोग किया, उसी कारण से मैं अहिंसा शब्द का उपयोग नहीं कर सकता हूं। कारण वही है। मैं प्रेम शब्द का उपयोग करना चाहूंगा। इन पच्चीस सौ सालों में प्रेम शब्द खो गया, उपयोग में नहीं आया। जैसे किसी ने अपने खेत को कुछ वर्षों के लिए बंजर छोड़ दिया हो, खेती न की हो, तो जिस खेत पर बार-बार खेती की गई है, उसका उपजाऊपन नष्ट हो जाता है। वह जो खाली पड़ा रहा खेत है वर्षों तक, उसने फिर उपजाऊ शक्ति को अर्जित कर लिया है। तो प्रेम शब्द फिर उपयोगी हो गया है। उस शब्द में फिर प्राण डाले जा सकते हैं।
पच्चीस सौ साल के अंतराल ने, इस पच्चीस सौ साल में बुद्ध, महावीर और गांधी तक अहिंसा शब्द की बड़ी महिमा गायी गई है। अहिंसा शब्द पर काफी खेती हो चुकी; अब वहां कुछ भी पैदा नहीं होता। अब तो डर यह है कि जितने बीज तुम डालोगे, वे भी लौटेंगे... ! इसलिए मैं उस खेत की ओर नजर करता हूं, उस खेत की तरफ, जिस पर इन पच्चीस सौ वर्षों में खेती नहीं हुई।
प्रेम शब्द का आध्यात्मिक अर्थ उपयोग नहीं किया गया है। उसका उपयोग
कर लेना जरूरी है। मैं यह नहीं कहता हूं कि सदा यह सार्थक रहेगा; जल्दी ही इस खेत में से भी उपजाऊपन नष्ट हो जायेगा। तब नये-नये शब्द खोजने होंगे। वह आनेवाले लोग चिंता करें।
नये शब्द सदा जरूरी रहते हैं, क्योंकि नये शब्दों के साथ मनुष्य में नयी चेतना का संचार होता है। और कभी-कभी पुराने बहुत दिन तक उपयोग न किये गये शब्दों का पुनः उपयोग उपयोगी होता है, क्योंकि वे फिर नये हो गये होते हैं; इतने दिन तक पड़े रहे खाली, बिना फसल बोये, फिर क्षमता को अर्जित कर लेते हैं। तो प्रेम शब्द ने क्षमता अर्जित कर ली है।
फिर कुछ और बातें हैं। अहिंसा शब्द नकारात्मक है। उसमें "नहीं" पर जोर है। महावीर का जोर "नहीं" पर था। मेरा जोर "नहीं" पर नहीं है। मेरे लिए आस्तिकता स्वीकार में है। "हां" के भाव में है। "नहीं" पर जीवन के स्तंभ नहीं रखे जा सकते। और जिसने "नहीं" के घर में रहना शुरू किया वह सिकुड़ जाता है। और जैन धर्म अगर सिकुड़ गया तो उसका कोई और कारण नहीं है; "नहीं" के घर ने मार डाला।
बुद्ध ने भी "नहीं" शब्दों का उपयोग शुरू किया था। पांच सौ साल में बुद्ध का धर्म नष्ट हो गया और तब बौद्ध भिक्षुओं को एक बात समझ में आ गई कि "नहीं" शब्दों ने जान ले ली। वे जो नकारात्मक शब्द हैं--निर्वाण--नहीं हो जाना--किसकी आकांक्षा है "नहीं" होने की? शब्द सुनकर ही लोग चौंक जाते हैं। तो जब बौद्ध भिक्षु भारत के बाहर गये, बर्मा, लंका, चीन तो उन्होंने "नहीं" शब्दों का त्याग कर दिया। एशिया में बुद्ध-धर्म फैला जब उसने "हां" शब्दों का उपयोग किया--अकारात्मक, विधायक, जीवंत। बौद्ध धर्म विराट धर्म हो गया। बुद्ध के शब्द अगर पकड़े रहते तो जो दशा जैनों की हुई, वही दशा बुद्ध-धर्म की होती। बुद्ध की मजबूरी थी "नहीं" शब्दों का उपयोग करने की; वही मजबूरी थी जो महावीर की थी। ब्राह्मण परंपरा "हां" शब्दों से भरी है। आस्तिक शब्दों से भरी है। इस बड़ी परंपरा से अगर अलग खड़े न करो तो यह परंपरा लील जायेगी। इस परंपरा से अलग खड़ा होना जरूरी है। अलग खड़े होने के लिए "नहीं" शब्दों का उपयोग करना पड़ा, ताकि सीमा-रेखा साफ हो जाये। और जब अल्पमत में कोई होता है तो उसे बड़ी स्पष्टता से अपनी सीमा-रेखा बनानी पड़ती है, क्योंकि बहुमत उसे लील जायेगा। हिंदुओं का विराट सागर था; जैनों, बौद्धों की नदी कहीं भी खो जाती इसमें, यह ताल-तलैया कहीं भी खो जाता, इसका कहीं पता भी न चलता। तो उस ताल-तलैया को बहुत सुरक्षित होकर अपनी व्यवस्था करनी पड़ी। उसने उन सारे शब्दों का उपयोग रोक दिया, जो हिंदू उपयोग करते

थे। वे शब्द अपने-आप में बहुमूल्य थे; लेकिन मजबूरी थी, उन शब्दों के साथ संबंध हिंदुओं का था। अगर ब्रह्म शब्द का उपयोग करो--डूबे! अगर परमात्मा शब्द का उपयोग करो--डूबे! हिंदुओं के पास लंबी परंपरा थी। उस परंपरा के कारण सारे विधायक शब्द उपयोग कर लिये गये थे। हिंदुओं का वही तो बल है। हिंदू इतने आघातों के बाद जीते रहे हैं, उसका कारण कहां है? उसका कारण है उनकी विधायकता में, स्वीकार में, अंगीकार में।
अगर तुम वैदिक, उपनिषद के ऋषियों का स्मरण करो तो तुम्हें समझ में आयेगा कि अब तुम जिसे साधु और संन्यासी कहते हो, उस हिसाब से वे साधु- संन्यासी न थे। मैं जिस हिसाब से संन्यासी कहता हूं, उस हिसाब से संन्यासी थे। घर में थे, गृहस्थी में थे, उनकी पत्नियां थीं, बच्चे थे, धन-दौलत थी। बड़ा विधायक रूप था।
संन्यास हिंदुओं के लिए गृहस्थी के विपरीत नहीं था, गृहस्थी का ही आत्यंतिक फल था। ऐसा नहीं था कि घर को छोड़कर जो चला गया, वह संन्यासी है; नहीं, जिसने घर पूरा कर लिया, वह संन्यासी है। जो घर में पूरा-पूरा जी लिया और पार हो गया; जीवन के अनुभव एक-एक सोपान की तरह चढ़ गया--वह संन्यासी है। संन्यास हिंदुओं के लिए जीवन का अंतिम शिखर था। पहले ब्रह्मचर्य, फिर गार्हस्थ्य, फिर वानप्रस्थ, फिर संन्यास--ऐसी जीवन में एक क्रमबद्धता थी, एक विकास था। बहुत वैज्ञानिक बात थी। पहले संसार को ठीक से अनुभव तो कर लो, भोग की पीड़ा तो जानो, ताकि तुम त्यागी हो सको। धन की व्यर्थता तो जानो ताकि विराग का जन्म हो सके! इस देह की नश्वरता को तो पहचानो! शास्त्रों से नहीं--जीवन, अनुभव... ! सभी को अनुभव हाथ आ जाता है।
तो हिंदुओं के हिसाब से संन्यास जीवन-विरोधी न था, जीवन का नवनीत था। जिन्होंने जीवन को जीया, वे उस नवनीत को उपलब्ध हुए। दूध है; उसे जमाओ, दही बनाओ, दही का मंथन करो, मक्खन निकालो, मक्खन को गरमाओ, घी बनाओ--ऐसा संन्यास था। घी की तरह! फिर घी का तुम कुछ भी नहीं कर सकते।
तुमने कभी ख्याल किया, घी के बाद कोई गति नहीं है! घी को तुम कुछ और नहीं बना सकते। दूध दही हो सकता है; दही मक्खन बन जाता है; मक्खन घी बन जाता है--लेकिन अब तुम घी को कुछ भी नहीं बना सकते। पराकाष्ठा!
अब अगर तुम चाहो, कि घी को पीछे भी लौटायें तो वह भी नहीं कर सकते। तुम चाहो कि अब घी का मक्खन बना लें, कि मक्खन का अब दही बना लें, कि दही से अब दूध में उतर जायें--वह भी नहीं हो सकता।
तो हिंदुओं के लिए तो संन्यास घी की तरह था; वह आखिरी बात थी--जिससे पीछे लौटना नहीं होता, जिसके आगे जाना नहीं है। और उस तक जिसे पहुंचना है, उसे ये सारी सीढ़ियां पार करनी होंगी।
इस सनातन धर्म के बीच महावीर का आविर्भाव हुआ। यह परंपरा सड़ गई थी, गल
गई थी। सभी परंपराएं एक दिन सड़ जाती हैं, गल जाती हैं। यह जीवन का स्वाभाविक धर्म है। जैसे हर जवान बूढ़ा हो जाता है, फिर हर बूढ़ा मर जाता है, फिर एक दिन अस्थि लेकर हम जाकर जला आते हैं--ठीक ऐसी ही संस्कृतियां पैदा होती हैं, धर्म पैदा होते हैं, जवान होते हैं, बूढ़े होते हैं, मरते हैं। लेकिन जिस बात को हम सामान्यतया जीवन में कर लेते हैं... मां मर गई तो बहुत प्रेम था, फिर भी क्या करोगे? रोते हो, धोते हो, रोते जाते हो, अर्थी बांधते जाते हो--करोगे क्या? रोते जाते हो, अर्थी लेकर चल पड़ते हो। रोते जाते हो, जला आते हो। इतनी हिम्मत हम धर्मों के साथ न कर पाये कि वे भी जवान होते हैं; जब जवान होते हैं तब उनका मजा और! जब हिंदू धर्म शिखर पर था तो उसने उपनिषद जैसे शास्त्रों को जन्म दिया, महाकाव्य पैदा हुआ! सब तरफ गीत गूंज उठा हिंदू धर्म का! प्राणों में पुलक थी, उत्साह था, जवानी थी! फिर हिंदू धर्म बूढ़ा हुआ। जब हिंदू धर्म बूढ़ा हुआ और मर गया या मरने के करीब था, मरणासन्न था, तब बुद्ध और महावीर का आविर्भाव हुआ। अब इस मरते आदमी के साथ उनको किसी भी तरह का संबंध जोड़ना खतरनाक था। यह तो मर ही रहा था। इसके साथ संबंध जोड़ने का अर्थ था, तुम पहले से ही मौत से जुड़ गये। स्वभावतः उन्होंने नये शब्द खोजे।
तुम देखो, जैनों ने संस्कृत भाषा तक का उपयोग न किया! शब्दों की तो बात अलग; उस भाषा में भी बोलने में खतरा था, क्योंकि भाषा के सब संबंध थे। अब

अगर संस्कृत का महावीर उपयोग करते तो उपनिषदों से ऊंचा गीत और क्या गा पाते? पराकाष्ठा हो गई थी। संस्कृत ने अपनी आखिरी ऊंचाई पा ली थी। संस्कृत ने शिखर छू लिया था; अब इसके पार जाने का कोई उपाय न था। इस मंदिर पर कलश चढ़ चुका था। तो महावीर ने संस्कृत का उपयोग न किया। महावीर ने प्राकृत का उपयोग किया। संस्कृत पंडित की भाषा थी, सुसंस्कृत की, अभिजात्य की। महावीर ने दीन की, गरीब की, लोकजन की भाषा का उपयोग किया।
ध्यान रखना, जब भी नया धर्म आता है तो उनके द्वारा आता है, जो पुराने धर्म के कारण दलित थे, पीड़ित थे। जो पुराने धर्म के कारण प्रतिष्ठित थे वे तो नये धर्म को क्यों चुनेंगे? उनका तो पुराने धर्म के साथ बड़ा संबंध है। उनके तो बड़े स्वार्थ हैं। तो स्वभावतः ब्राह्मण आंदोलित होगा महावीर के विचारों से, यह तो संभव न था। क्षत्रिय आंदोलित हो सकता था, वैश्य आंदोलित हो सकता था, शूद्र आंदोलित हो सकता था। क्षत्रिय भी बहुत आंदोलित नहीं हुआ, क्योंकि उसके भी संबंध बहुत गहरे ब्राह्मण से जुड़े थे। ब्राह्मण सबके ऊपर था। लेकिन वस्तुतः तो क्षत्रिय ही ऊपर था, जिसके हाथ में तलवार है। क्षत्रिय के कारण और आज्ञा से ब्राह्मण ऊपर रह सकता था। नाममात्र को ब्राह्मण ऊपर था, वस्तुतः तो क्षत्रिय ऊपर था। तुम कितनी ही बात करो कि संतों की महिमा थी; महिमा थी, लेकिन उस महिमा को भी जब तक राजा आकर चरण न छूता, कौन महिमा थी? राजा आकर चरण छूता था तो संत की महिमा थी। तो संत दीवाने रहते थे कि कितने राजा किसके पास आते हैं। तो क्षत्रिय भी प्रतिष्ठित था। इसलिए जैन धर्म अगर बनियों का धर्म हो गया, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। वैश्य सर्वाधिक प्रभावित हुए। शूद्र बहुत कम प्रभावित हुए, क्योंकि प्रभावित होने की भी थोड़ी समझ तो चाहिए! क्षत्रिय के स्वार्थ थे, ब्राह्मण का तो कोई उपाय न था कि वह जैन बने; इस बनने में कोई सार न था। अभी भी तुम देखते हो, हिंदुस्तान में जो लोग ईसाई बनते हैं, कोई बिरला, सिंघानिया, साहू कोई ईसाई बनते हैं? ईसाई बनता है शूद्र, गांव का गरीब, आदिवासी। जिनका निहित स्वार्थ है, वे किसलिए ईसाई बनेगें? ईसाई तो वह बनता है जो हिंदू धर्म से पीड़ित है, परेशान है। जो हिंदू धर्म उसे नहीं दे सका है, उसका आश्वासन ईसाइयत देती है।
तो महावीर और बुद्ध दोनों ने कहा, कोई वर्ण नहीं है। लेकिन शूद्र तो इतना दलित था कि उसे ये शब्द भी समझ में न आ सकते थे; उसको तो शास्त्र पढ़ने की मनाही थी। उसको तो कोई शिक्षा भी न थी। इसलिए स्वभावतः ब्राह्मण आ नहीं सकता था, क्षत्रिय को आने का कोई कारण न था--उसके हाथ में तलवार और बल था। शूद्र समझ नहीं सकता था। और शुद्र को भीतर लाने में खतरा भी था, क्योंकि वह वैश्य नहीं घुसने देता था शूद्र को। क्योंकि वह छिड़कता था। उसकी भी धारणा तो हिंदू की थी। अगर क्षत्रिय आता तो वैश्य स्वीकार कर लेता; वह ऊपर का था; ब्राह्मण आता तो भी स्वीकार कर लेता। शूद्र से उसे भी अड़चन थी; वह उससे भी नीचे था। इसलिए वैश्य शूद्र को घुसने न देगा। इसलिए जैन धर्म वैश्यों का धर्म हो गया, दुकानदारों का धर्म हो गया। स्वभावतः महावीर को इनकी भाषा का उपयोग करना पड़ा--लोक-भाषा का।
बुद्ध ने भी वही किया। उन्होंने भी लोक-भाषा का उपयोग किया। उन्होंने पाली चुनी। क्योंकि वे प्राकृत चुनते तो महावीर के साथ बंध जाते।
इसे थोड़ा सोचना चाहिए। महावीर बुद्ध से कोई तीस साल उम्र में बड़े थे। महावीर पहले आ गये थे। तीस साल वे काम कर चुके थे।
ब्राह्मण संस्कृत बोलते थे, महावीर ने प्राकृत चुनी थी; बुद्ध को दोनों उपाय न रहे थे। एक ही क्षेत्र में थे दोनों, लेकिन बुद्ध ने पाली चुनी, ताकि साफ-साफ व्याख्या हो सके, भेद हो सके। भाषा से बड़ा भेद और किसी चीज से पैदा नहीं होता।
तुम जानते हो, जब कोई आदमी तुम्हारी भाषा नहीं समझता, तो तुम अजनबी हो गये, एकदम अजनबी हो गये। पास-पास बैठे हो और हजारों मील का फासला हो गया। क्योंकि आदमी जीता है भाषा से, जुड़ता है भाषा से।
संस्कृत का त्याग करने का परिणाम यह हुआ कि जैन हिंदू धर्म से बिल्कुल साफ अलग टूट गये। पाली का प्रयोग करने के कारण बौद्ध जैनों से भी टूट गये, ब्राह्मणों से भी टूट गये।

दोनों ने वर्णों का विरोध किया, तो ही तो वे आकर्षित कर सके वैश्य को। यद्यपि वैश्य आकर्षित हो गया, लेकिन बड़े मजे की बातें हैं, दुनिया में संस्कार बड़ी मुश्किल से जाते हैं। अभी भी जैन मंदिर में शूद्र को प्रवेश नहीं है। और महावीर कहते हैं, न कोई शूद्र है, न कोई ब्राह्मण है, न कोई वैश्य है, न कोई क्षत्रिय है। उनकी सारी क्रांति वर्ण-विरोधी है। लेकिन फिर भी वर्ण जाता नहीं।
तुमने देखा, अगर कोई ब्राह्मण ईसाई हो जाये, तो वह ईसाई होकर भी ब्राह्मण रहता है। ईसाइयों को मैं जानता हूं। उनमें कोई अगर ब्राह्मण के वर्ग से ईसाई हुआ है और कोई अगर शूद्र के वर्ग से ईसाई हुआ है, तो वह जो ब्राह्मण ईसाई है, शूद्र ईसाई से ऊपर रहता है। ब्राह्मण ईसाई शूद्र ईसाई से विवाह नहीं करता। संस्कार बड़े गहरे बैठ जाते हैं!
तो जब महावीर ने वर्णों की व्यवस्था तोड़ दी, तो उन्होंने आश्रम की व्यवस्था भी तोड़ दी; क्योंकि वह वर्णाश्रम एक ही प्रत्यय था--चार वर्ण, चार आश्रम। जब महावीर ने वर्ण की व्यवस्था तोड़ी तो उन्होंने आश्रम की भी व्यवस्था तोड़ दी। यह तोड़ना जरूरी था, नहीं तो हिंदू ढांचा पकड़े रहता; उससे छूटना मुश्किल था। जब तुम किसी एक सागर में पैदा होते हो तो तुम्हें अपना द्वीप बनाना पड़ता है। तो उन्होंने कहा कि न कोई ब्रह्मचर्य का सवाल है, न कोई गृहस्थ का सवाल है, न कोई वानप्रस्थ का, न कोई संन्यस्त का; और जब तुम संन्यस्त होना चाहते हो तभी हो सकते हो। इस तरह उन्होंने दोनों ही व्यवस्थाएं तोड़ दीं। फिर उन्होंने नये शब्द खोजे, नयी भाषा खोजी।
प्रेम शब्द बहुत खतरनाक है। क्यों? क्योंकि प्रेम के साथ ही तत्क्षण परमात्मा प्रवेश करता है। तुमने कभी देखा, एक साधारण स्त्री को भी तुम प्रेम करने लगो तो उसमें देवी का आविर्भाव हो जाता है। एक स्त्री एक साधारण-से पुरुष के प्रेम में पड़ जाये तो उसे परमात्मा मानने लगती है। जहां प्रेम आता है, वहां पीछे से परमात्मा आ जाता है। साधारण जीवन में, जहां कि तुम भलीभांति जानते हो कि यह आदमी परमात्मा नहीं है, लेकिन फिर भी उसकी प्रेयसी उसे परमात्मा मानने लगती है। तो अगर प्रेम शब्द का बहुत उपयोग करो तो परमात्मा को इनकार न कर सकोगे। क्योंकि प्रेम शब्द का इशारा ही और की तरफ है। प्रेम तीर है, निशाना कहीं और हैः निकलेगा तुम्हारे हृदय से, लगेगा किसी और हृदय में।
तो प्रेम तो खतरनाक है--ध्यान। प्रेम तो खतरनाक है--अहिंसा। प्रेम तो खतरनाक है, क्योंकि प्रेम के साथ परमात्मा आता है और परमात्मा के साथ हिंदुओं की पूरी जीवन-चिंतना जुड़ी है। इसलिए महावीर को परमात्मा भी इनकार कर देना पड़ा, प्रेम भी इनकार कर देना पड़ा, प्रार्थना भी इनकार कर देनी पड़ी, पूजा, अर्चना, धूप-दीप सब इनकार कर देना पड़ा। सब भांति व्यक्ति अपने में भीतर चला जाये, बाहर जाये ही नहीं। परमात्मा भी बहिर्यात्रा है। इस कारण महावीर ने अहिंसा शब्द का उपयोग किया।
लेकिन अहिंसा बहुत कमजोर शब्द है; प्रेम के सामने टिकता नहीं, बहुत लंगड़ा है। उनकी जरूरत थी। उनकी मजबूरी थी। लेकिन प्रेम के पास पैर हैं। तुम जरा किसी स्त्री से कहो कि मेरा तुझसे अहिंसा का संबंध हो गया है,
तब तुम्हें पता चलेगा! वह दुबारा तुम्हारी शकल न देखेगी। किसी स्त्री से अहिंसा का संबंध! उसका मतलब इतना हुआ कि हम तुम्हें मारेंगे भी नहीं, कष्ट भी न देंगे। खतम, संबंध पूरा हो गया! दोगे क्या? यह तो न देने की बात हुई। दुख न दोगे, समझ में आया। मारोगे नहीं, यह भी समझ में आया। लेकिन इतने पर कोई संबंध निर्भर होते हैं?
अहिंसा संबंध तोड़ने की व्यवस्था है, जोड़ने की नहीं। इसलिए महावीर का अनुयायी टूट जाता है, सबसे टूट जाता है। अहिंसा जोड़ ही नहीं सकती। अहिंसा में कोई सीमेंट नहीं है। अहिंसा में योग नहीं है।
अब तुम चकित होओगे, महावीर ने योग शब्द का उपयोग नहीं किया। और भी तुम हैरान होओगे कि महावीर ने "अयोग" शब्द का उपयोग किया है। जुड़ना नहीं है, टूटना है, अयोग। तो जब महावीर का ज्ञानी परम अवस्था को उपलब्ध होता है तो उसको वे कहते हैं, "अयोगी, केवली"। जो सब तरह से सबसे टूटकर अकेला हो गयाः अयोगी, केवली। योग पाप है, क्योंकि योग में तो बात ही जुड़ने की है। जुड़ना

तो है ही नहीं, क्योंकि जुड़ना ही तो संसार है। संसार से टूट जाने में असली बात है।
तो अहिंसा से संबंध तोड़ा जा सकता है, जोड़ा तो नहीं जा सकता। अहिंसा सिकोड़ सकती है, फैला तो नहीं सकती। अहिंसा तुम्हें अपने में बंद कर देगी, खोलेगी तो नहीं। अहिंसा में कोई द्वार-दरवाजे नहीं हैं, दीवाल है। इसलिए जितने तुम अहिंसा जैसे शब्दों से भरोगे, उतने ही तुम पाते जाओगे कि तुम सूखने लगे, तुम्हारे पत्ते कुम्हलाने लगे, शाखाएं गिरने लगीं, तुम सिकुड़ने लगे, तुम लौटने लगे। तुम्हारा फैलाव खो गया। तुम्हारे जीवन का अभियान खो गया।
तो अगर जैन सिकुड़ गये तो कुछ आकस्मिक नहीं है। फैलने का उपाय न था।
नकार को कभी जीवन की व्यवस्था मत बनाना, क्योंकि जीवन का स्वभाव फैलाव है। यहां सब चीजें फैलती हैं। एक छोटे से बीज को डाल दो, एक बड़ा वृक्ष हो जाता है। उस वृक्ष में फिर करोड़ों बीज लग जाते हैं। एक बीज करोड़ बीज हो जाता है। करोड़ बीजों को फैला दो, पूरी पृथ्वी वृक्षों से भर जायेगी। एक बीज से यह पूरी पृथ्वी हरी हो सकती है।
तुम जरा देखो तो जीवन का ढंग। ईसाई कहते हैं, अदम और हव्वा, एक जोड़ा भगवान ने पैदा किया था, फिर उससे ये सारे चार अरब मनुष्य पैदा हुए। बस एक जोड़ा काफी था।
यहूदियों की कथा है कि परमात्मा बहुत नाराज हो गया था एक बार। लोग भ्रष्ट हो गये थे। तो उसने सारी पृथ्वी को महाप्रलय में डुबा दिया। लेकिन एक भक्त था उसकाः नोह। उसने नोह से कहा कि तुझे हम बचा लेंगे। लेकिन नोह ने प्रार्थना की कि माना कि लोग बुरे हैं, गलत हो गये हैं; लेकिन इतने नाराज न हों, कुछ तो बचा लें, बीज तो बचा लें। तो परमात्मा ने कहा, "अच्छा! तू एक-एक पशुओं का एक-एक जोड़ा अपनी नाव में रख लेना। वह नाव भर बचेगी।" बस एक जोड़ा काफी था। लेकिन बड़ी मधुर कहानी है। नोह और उसकी पत्नी दरवाजे पर खड़े हो गये और नाव में, उन्होंने कहा, आ जाओ एक-एक जोड़ा। तो हाथी आया, ऊंट आये, घोड़े आये, गधे आये--सब आये। फिर जब प्रलय समाप्त हो गया, सात दिन के बाद सारी पृथ्वी डूब गई, सिर्फ नोह की नाव बची। फिर पृथ्वी उभरी, फिर किनारे नाव लगी। फिर वे दोनों दरवाजे पर खड़े हो गये, फिर एक-एक को निकाला। लेकिन वे बड़े हैरान हुए, चूहे कोई दस-पच्चीस निकले! तो नोह ने अपनी पत्नी से पूछा, "यह मामला क्या है? मैंने पहले कहा था कि दो-दो लेना, एक-एक लेना।" उसने कहा, "लिये तो इतने ही थे, मगर इतने हो गए सात दिन में।"
एक जोड़ा काफी है। उतने बचाने से सारी प्रकृति, सारी पृथ्वी बच गई।
जीवन का स्वभाव फैलाव है। प्रेम में फैलाव है; अहिंसा में सिकुड़ाव है। इसलिए मैं तो प्रेम शब्द को ही पसंद करता हूं। अहिंसा प्रेम का एक छोटा-सा अंग है। जिससे हम प्रेम करते हैं, उसे हम दुख नहीं देना चाहते--यह बात ही साफ है। जिससे हमारा प्रेम का संबंध है, उससे हमारा अहिंसा का संबंध तो हो ही गया। लेकिन जिससे हमारा अहिंसा का संबंध है, उससे प्रेम का संबंध हो गया--यह जरूरी नहीं है। प्रेम अहिंसा से बड़ी बात है। जिससे हम प्रेम करते हैं, उसे हम कैसे दुख पहुंचायेंगे? उसे दुख पहुंचाकर तो अपने को ही दुख पहुंच जाता है। भूल-चूक से अगर पहुंच भी जाता हो, तो भी हम क्षमा- याची होते हैं, सुधार की कोशिश करते हैं। अहिंसा अपने से सध आती है; जहां प्रेम आया, अहिंसा पीछे से अपने आप आ जाती है।
तो मैं तो कहता हूं, प्रेम को बढ़ाओ। वह व्यक्तियों पर सीमित न रहे; फैलता जाये, वृक्षों, पशु-पक्षियों को भी घेर ले।
और जब मैं कहता हूं, परमात्मा को प्रेम करो, तो मेरा इतना ही अर्थ है
कि यह जो दिखाई पड़ रहा है--दृश्य--इसको इतना प्रेम करो कि इस सभी में तुम्हें अदृश्य की प्रतीति होने लगे। पत्ते-पत्ते में वह दिखाई पड़ने लगे। अहिंसा अपने से आ जायेगी। अहिंसा के लिए अलग से शास्त्र बनाने की कोई जरूरत नहीं है।
माना कि प्रेम शब्द के अब भी गलत अर्थ लिये जायेंगे, लेकिन फिर भी मैं मानता हूं कि प्रेम ज्यादा जीवंत शब्द है। गलत भी अर्थ लिये जायेंगे, तो भी चुनने योग्य है। गलत अर्थ तो अहिंसा के भी लिये गये। और शब्द नकारात्मक

था, मुर्दा था--तो गलत अर्थ मुर्दे पर इकट्ठे हुए। बड़ी सड़ांध पैदा हो गई।
जीवंत कोई शब्द हो तो थोड़ा-बहुत गलत अर्थ लेने में बाधा डालेगा, इनकार करेगा। एक पत्थर पड़ा हो, उसको तुम छैनी उठाकर काटने लगो, तो वह कुछ बाधा न डालेगा। एक जिंदा बच्चा हो तो उछलेगा-कूदेगा, चीखेगा-चिल्लायेगा। मोहल्ले-पड़ोस के लोगों को इकट्ठा कर लेगा अगर छैनी उठाओगे उसके ऊपर। प्रेम जीवंत है। अगर तुम उसे बदलोगे तो इतनी आसानी से न बदल पाओगे; शोरगुल मचायेगा। अहिंसा बिल्कुल मुर्दा है। तुम उसे बना लेना, अपने रंग-ढंग में रंग-लेप कर लेना। अहिंसा के शब्द से आवाज भी न निकलेगी। तुम जो भी बना लोगे, वही बन जायेगी।
नकार हमेशा ही सावधान होने योग्य है। अभाव है नकार। अभाव पर इतना जोर
मत देना; क्योंकि अभाव से तुम धीरे-धीरे रसहीन हो जाओगे। अभाव को देखते- देखते तुम भी धीरे-धीरे बुझ जाओगे।
महावीर की मजबूरी थी, उन्होंने चुना; लेकिन उनकी मजबूरी से मैं बंधा हुआ नहीं हूं। उन्होंने ठीक माना होगा। उनकी परिस्थिति में जो उन्हें ठीक लगा होगा, किया होगा। लेकिन उनकी परिस्थिति मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं है। यही तो मुझे सुविधा है। मेरे ऊपर किसी का बंधन नहीं है। अगर जैन महावीर पर बोलेगा तो उसको अड़चन होगी। वह हिम्मत नहीं जुटा पाता। उसको महावीर का बंधन मानकर चलना पड़ता है। जो महावीर ने कहा, वह हर हालत में ठीक होना ही चाहिए। उस दिन के लिए भी ठीक होना चाहिए, आज भी ठीक होना चाहिए। मैं कहता हूं, उस दिन जरूर ठीक रहा होगा; क्योंकि महावीर जैसा बुद्धिशाली व्यक्ति, जब इस शब्द को चुना था तो बहुत सोचकर चुना होगा। लेकिन महावीर कोई सदा के लिए आदमी को बांध नहीं गये। कौन बांध जाता है? कौन बांध सकता है? मेरे लिए कोई मजबूरी नहीं है। इसलिए मैं पतंजलि पर भी बोलता हूं, तो भी मेरी कोई मजबूरी नहीं है। कोई बंधन नहीं है। कोई ऐसा नहीं है कि पतंजलि ने जो कहा है, वह ठीक ही कहा है। आज के लिए तो मैं फिक्र नहीं करता। आज के लिए तो मैं जो कहूंगा, मैं मानता हूं, ज्यादा ठीक है। उन्होंने अपने समय के लिए कहा होगा। जैसे वे अपने समय के लिए कहने के हकदार थे, वैसे अपने समय के लिए कहने के लिए मैं हकदार हूं।
निश्चित ही, मैं यह नहीं कहता कि मैं जो कह रहा हूं, वह सदा-सदा सही रहेगा; कभी न कभी सड़ जायेगा, मरेगा। तब कोई न कोई उसे बदलेगा--बदलना ही चाहिए। इस जगत में कोई भी व्यक्ति सभी के लिए सदा के लिए निर्णायक नहीं हो सकता; नहीं तो मनुष्य की स्वतंत्रता, महिमा मर जायेगी।
गुनो, सुनो, समझो, लेकिन कभी भी अंधी लकीरें मत पीटो।
स्थिति तो करीब-करीब आज भी वही है। प्रेम शब्द गलत समझा जायेगा। लेकिन मेरे साथ भेद है। मैं कोई नया धर्म खड़ा करने में उत्सुक नहीं हूं। नयी भाषा खड़ी करने में उत्सुक नहीं हूं। नया शास्त्र निर्मित करने में उत्सुक नहीं हूं। शास्त्र तो बहुत हैं। धर्म भी बहुत हैं। भाषाएं भी बहुत हैं। अब तो हमें कुछ खोज करनी चाहिए कि सभी धर्मों के भीतर जो सार है, वह हमारी पकड़ में आ जाये। तो मैं यह नहीं... मेरी चेष्टा वही नहीं है जो महावीर की थी। तो महावीर हिंदू से डरे थे; मैं डरा हुआ नहीं हूं। बुद्ध, महावीर से भी डरे हुए थे; मैं डरा हुआ नहीं हूं। मैं न ईसाई से डरा हुआ हूं, न मुसलमान से डरा हुआ हूं, न हिंदू से, न जैन से, न बौद्ध से--किसी से डरे होने का कोई कारण नहीं है। हां, अगर मुझे कोई नया धर्म स्थापित करना हो तो भय आ जायेगा। क्योंकि फिर मुझे ख्याल रखना पड़ेगा। सारे बाजार का ख्याल रखना पड़ेगा। मेरी चीज कुछ नयी होनी चाहिए, पृथक होनी चाहिए; उसमें गंध, रंग अलग होना चाहिए, ट्रेडमार्का अलग होना चाहिए, तो ही टिक पायेगी बाजार में, अन्यथा खो जायेगी।
मेरी तो चेष्टा बड़ी भिन्न है। मेरी चेष्टा यह है कि जो अब तक जाना गया है--और काफी जान लिया गया है--अब उस जानने का सार-निचोड़ लोगों को मिलना शुरू हो जाये।
धर्मों का कोई भविष्य नहीं है। धर्म गये, अतीत की बात हो गये। जैसे विज्ञान एक है, ऐसा ही भविष्य में कभी धर्म भी एक होगा। हिंदू नहीं होगा, मुसलमान नहीं होगा, ईसाई नहीं होगा। इन सबने अपनी-अपनी धाराएं धर्म के

सागर में डाल दीं। अब सागर को हम गंगा थोड़े ही कहते हैं, यमुना थोड़े ही कहते हैं--कोई जरूरत नहीं कहने की। सागर यमुना से भी बड़ा है, गंगा से भी बड़ा है, ब्रह्मपुत्र से भी बड़ा है--हजारों नदियों को लील जाता है; इंचभर ऊपर नहीं उठता। हजारों नदियां बादलों में उड़ जाती हैं; इंचभर नीचे नहीं गिरता। अब धर्म का सागर बनना चाहिए; ताल, सरोवर बहुत हो चुके। अब उन्होंने काफी बोध की सामग्री इकट्ठी कर दी है। अब कोई जरूरत नहीं है कि हिंदू मुसलमान से लड़े, कि जैन हिंदू से लड़े। अब तो जरूरत है कि जैन, हिंदू और मुसलमान और ईसाई और सिक्ख के बीच जो सारभूत है, वह प्रगट हो जाये; ताकि धर्म का विज्ञान बने।
अब विज्ञान विज्ञान है; न ईसाई है, न हिंदू है, न मुसलमान है। कोई ईसाई
भी अगर वैज्ञानिक सत्य खोजता है तो उस सत्य को हम ईसाई तो नहीं कहते। आइंस्टीन ने रिलेटिविटी का सिद्धांत खोजा, सापेक्षता का सिद्धांत खोजा। इसको हम ईसाई तो नहीं कहते, यहूदी तो नहीं कहते, मुसलमान तो नहीं कहते। मुसलमान खोजे तो भी वह विज्ञान, हिंदू खोजे तो भी विज्ञान, यहूदी खोजे तो भी विज्ञान। तो धर्म के संबंध में भी, कोई भी खोजे, वह उस एक ही परम सत्य की तरफ इशारे हैं। अंगुलियों को छोड़ो अब, अब चांद को देखो!
मेरी चेष्टा है कि तुम्हें अंगुलियों से छुड़ाऊं और चांद को दिखाऊं, क्योंकि सभी अंगुलियां उसी चांद की तरफ बता रही हैं। हां, किसी अंगुली पर हीरे जड़ा हुआ शृंगार है; कोई अंगुली काली-कलूटी है; कोई दुर्बल है; कोई बड़ी सुंदर है, युवा है; कोई बूढ़ी है; कोई अति प्राचीन है; कोई अभी छोटे बच्चे की तरह है, नये-नये पल्लव की भांति--मगर ये सारी अंगुलियां जिस चांद की तरफ उठी हैं, वह एक है। हमने अंगुलियों पर अब तक बहुत ध्यान दिया, अब अंगुलियों को छोड़ें और चांद पर ध्यान दें। इशारा समझें।
तो मैं तो प्रेम शब्द का उपयोग जारी रखूंगा। खतरा तो है, लेकिन खतरे
से क्या घबड़ाना? खतरे से घबड़ा-घबड़ाकर ही तो आदमी नपुंसक हो गया है। हर जगह खतरे से बच रहे हैं। धीरे-धीरे तुम पाओगे, जिंदगी से भी बच गये; क्योंकि जिंदगी स्वयं खतरा है। जो प्रेम से बचेगा, आज नहीं कल जिंदगी से भी बचेगा। जिंदगी में भी खतरा है। मौत तो जिंदगी में ही घटेगी।
कभी तुमने सोचा... ?
मेरी बूढ़ी नानी थी। वह सदा डरती थी कि मैं हवाई जहाज में न जाऊं। जब भी मैं घर से निकलता, तब वह कहती, "एक बात ख्याल रखना--हवाई जहाज में कभी नहीं।"
मैंने उसको कहा कि तू डरती क्यों है हवाई जहाज से? उसने कहा कि अखबार में खबर आती है कि गिर गया, लोग मर गये। मैंने कहा, "तुझे पता है, निन्यानबे प्रतिशत लोग तो खाट पर मरते हैं? तो क्या खाट पर सोना बंद कर दूं, बोल?" उसने कहा, यह बात तो ठीक है। उसको भी जंची बात। उसने कहा, यह बात तो ठीक है। मरते तो खाट पर ही हैं निन्यानबे प्रतिशत लोग। तो अगर दुर्घटना कोई बचानी है तो खाट बचानी है। कभी-कभार कोई मरता है हवाई जहाज में। उसने कहा, फिर जाओ, फिर कोई बात नहीं। खाट से, अब खाट से बचोगे तब तो फिर जीना ही मुश्किल हो जायेगा।
ईरान में कहावत है, जमीन पर सोनेवाला खाट से कभी नहीं गिरता। बिल्कुल ठीक है। जब जमीन पर ही सो रहे हैं तो खाट से गिरोगे कैसे? लेकिन ऐसे कहां तक बचते रहोगे? फिर जीओगे कैसे? फिर यह जीना तो एक पलायन हो जायेगा। यहां तो हर चीज में खतरा है। यहां प्रेम करो, खतरा है। यहां घर से बाहर निकलो, खतरा है। यहां सांस लो, खतरा है। इन्फैक्शन। यहां पानी पीयो, खतरा है। यहां भोजन करो, खतरा है। यहां खतरा ही खतरा है। यहां तो मरे हुए ही खतरे के बाहर हैं।
देखा तुमने, मरा हुआ आदमी बिल्कुल खतरे के बाहर है। पहली तो बात, अब मर नहीं सकता। कोई बीमारी नहीं लग सकती, छूत की बीमारी नहीं लग सकती। दूसरे इससे बचते हैं, यह किसी से नहीं बचता। तो जिन लोगों ने भी खतरे, खतरे, खतरे को सोचा है, हिसाब रखा है, वे धीरे-धीरे मर गये। इस देश के मुर्दा हो जाने में बड़ा हाथ है--इस धारणा का, कि इसमें खतरा है, इसमें खतरा है। तो सिकुड़ते जाओ, सिकुड़ते जाओ--जाओगे कहां?

मैंने सुना है, पुराने गांव की एक कहानी है कि गांव का जो मालगुजार था, उससे मिलने एक ब्राह्मण आया। तो जब ब्राह्मण आये तो मालगुजार को नीचे बैठना चाहिए। मालगुजार अपने तखत पर बैठा था। ब्राह्मण आया तो मालगुजार, वह नीचे ब्राह्मण बैठने लगा। मालगुजार ने कहा, "यह ठीक नहीं है, नियम के विपरीत है। तुम ऊपर बैठो, मैं नीचे बैठता हूं।" उस ब्राह्मण ने कहा, "लेकिन इसमें बड़ी झंझट आयेगी।" जिद्दी था मालगुजार भी। उस ब्राह्मण ने कहा, "ऐसा कहां तक करोगे? क्योंकि अगर मैं नीचे बैठूंगा, तुम क्या करोगे फिर?" उसने कहा, "मैं गड्ढा खोदकर उसमें नीचे बैठ जाऊंगा।" उसने कहा, "अगर मैं गड्ढे में आ गया, फिर? उसने कहा, "मैं और गड्ढा नीचे खोद लूंगा।" उस ब्राह्मण ने कहा, "मैंने अगर और गड्ढा खोद लिया तो?" उस मालगुजार ने कहा, "फिर गड्ढे को पूर के मैं घर चला जाऊंगा। फिर क्या करूंगा? तुम मेरे पीछे ही लगे रहोगे, तो तुमको गड्ढे में पूर के, मैं घर चला जाऊंगा।"
ऐसे कहां तक भागते रहोगे? कहीं तो भय को गड्ढे में दबाना पड़ेगा। कहीं
तो उसको पूरना पड़ेगा।
यह मुझे पता है कि प्रेम खतरनाक शब्द है। सभी जीवंत शब्द खतरनाक होते हैं।
अहिंसा क्लीनिकल है। अहिंसा बिल्कुल अस्पताल में धोया, पोंछा, साफ-सुथरा शब्द है। उसमें रोगाणु हैं ही नहीं। जीवाणु ही नहीं हैं तो रोगाणु कहां से होंगे? वह बड़ा डाक्टरी शब्द है। उसमें काफी औषधियां छिड़की गई हैं। पर वह पीने योग्य भी नहीं रहा, जैसा बहुत पोटेशियम डाल दिया हो पानी में। प्रेम बड़ा जीवंत शब्द है--होना ही चाहिए; क्योंकि सारा जगत प्रेम से जीता है। तुम जन्मे हो प्रेम से। तुम जीओगे प्रेम में। और काश, तुम मर भी सको प्रेम में, तो धन्यभागी हो! जन्मते सभी हैं, जीते बहुत कम हैं; मरते तो कभी-कभी कोई हैं। जन्मते सभी प्रेम में हैं।
इसलिए प्रेम की प्रबल आकांक्षा जीवन में होती है--प्रेम मिले, प्रेम बंटे, प्रेम दिया जाये, प्रेम लिया जाये। जीवन का सारा आदान-प्रदान प्रेम के सिक्कों का है। प्रेम से मत भागना; क्योंकि जो प्रेम से भागा, वह जीवन से भागा, और जो जीवन से भागा वह परमात्मा के मंदिर को कभी भी खोज न पायेगा। मछली की तरह तड़पायेगा अहसास तुझे पायाबी का
जीना है तो अपने दरिया में इमकाने-तलातुम रहने दे।
--घबड़ा मत तूफानों से। अगर जीना है...
जीना है तो अपने दरिया में इमकाने-तलातुम रहने दे
--रहने दे आंधियों, तूफानों की संभावना। अगर आंधी और तूफान की सारी संभावना काट दी, तो दरिया दरिया न रह जायेगा, छिछला हो जायेगा।
मछली की तरह तड़पायेगा अहसास तुझे पायाबी का--फिर उथला पानी तुझे मछली
की तरह तड़पायेगा। तूफान रहने दो; क्योंकि तूफानों से टक्कर लेकर ही जीवन निखरता है। तूफानों में से गुजरकर ही जीवन का निखार आता है।
प्रेम को मैं धर्म कहता हूं। लेकिन कठिन है, क्योंकि तुमने प्रेम को केवल वासना की तरह जाना है। इसलिए तुम्हारे डर को मैं समझता हूं। तुम घबड़ाये हो! प्रेम? प्रेम से तो तुमने केवल वासना जानी है। प्रेम से तो तुमने अपने बहुत निम्नतम रूप का ही संबंध जोड़ा है। यह तुम्हारी भूल है, इसमें प्रेम का कोई कसूर नहीं। अब किसी आदमी के हाथ में हीरा हो और वह उसको किसी के सिर में मारकर सिर तोड़ डाले तो इसमें हीरे का कसूर है? कि तुम हीरे से बचोगे? हीरे का काम किसी का सिर तोड़ डालना नहीं है। यह तो छोटे-मोटे पत्थर से भी हो सकता था।
मनुष्य ने प्रेम का, प्रेम-ऊर्जा का बड़ा निम्नतम उपयोग किया है, क्षुद्रतम उपयोग किया है। वह उपयोग है--और संतति को पैदा करना। प्रेम का जो परम उपयोग है, वह स्वयं को जन्म देना है। प्रेम का जो साधारण उपयोग है, वह दूसरे को जन्म देना है। प्रेम की जो आखिरी पराकाष्ठा है, वह अपने को जन्म देना है--आत्म-जन्म। प्रेम की जो आखिरी पराकाष्ठा है, वह बाहर दिखाई पड़नेवाली देहें, शरीर, रूप, रंग, इन पर ही समाप्त नहीं हो जाती। रंग में जो छिपा है, रूप में जो छिपा है, दृश्य में जो छिपा है, जब वह दिखाई पड़ने लगे, तब तुम समझना कि तुमने प्रेम का पूरा उपयोग किया।

तुम्हारे पास रोशनी है, लेकिन रोशनी से अगर तुम जिंदगी की गंदगी ही देखते फिरो तो रोशनी का कोई कसूर नहीं है। यह रोशनी तुम्हें जिंदगी का परम रूप भी दिखा सकती थी।
है तेरा हुस्न जब से मेरा मरकजे-निगाह
हर शै है एतबारे-नजर से गिरी हुई।
और एक बार उसका रूप तुम्हें थोड़ा दिखाई पड़ने लगे, थोड़ी उसकी झलक आने लगे, उसके हुस्न की, उसके सौंदर्य की; फूलों में से कभी तुम्हें उसकी आंख भी झांकती दिखाई पड़ने लगे; सागर की लहरों में कभी तुम्हें उसकी भी लहर का अनुभव हो जाये...
है तेरा हुस्न जब से मेरा मरकजे-निगाह!
तुम्हारी आंख में जरा उसके सौंदर्य की छाया बनने लगे, प्रतिबिंब, परछाई पड़ने लगे...
हर शै है एतबारे-नजर से गिरी हुई!
उसी दिन से सब चीजें मूल्य खो देंगी। उसी दिन से तुम धन, पद, प्रतिष्ठा, देह, वस्तुएं, इन सब का मूल्य गिर जायेगा। महावीर कहते हैं, इन सब का मूल्य गिरा दो तो सत्य तुम्हें उपलब्ध हो जायेगा; मैं तुमसे कहता हूं कि तुम परमात्मा का थोड़ा इशारा खोजने लगो, थोड़ा उसका हुस्न तुम्हारी आंख में उतरने लगे, थोड़ा उसका नशा तुम्हें मदमस्त करने लगे तो चीजें अपने- आप छूट जायेंगी।
और ये दो ही रास्ते हैंः या तो चीजें छोड़ो, तो सत्य का दर्शन होता है;
या सत्य का दर्शन शुरू करो, तो चीजें छूट जाती हैं। अब मैं तुमसे कहता हूं कि पहला मार्ग बड़ा खतरनाक है। चीजें छोड़ो, पक्का नहीं है कि चीजें छूटने से उसका दर्शन हो जायेगा; कहीं ऐसा न हो कि चीजें छूटने से तुम केवल सिकुड़कर रह जाओ और दर्शन की क्षमता भी खो जाये। ऐसा ही हुआ है। कभी कोई एक-आध महावीर अपवाद हो जाते हैं, बात अलग। नियम नहीं हैं वे। अधिक लोगों को तो मैं यही देखता हूं कि चीजें छोड़-छोड़कर उनको कुछ मिला नहीं है; कुछ छूटा जरूर, मिला कुछ भी नहीं है। मिलने से तो वे भयभीत हो गये हैं, डरते हैं। मैं तो तुमसे कहूंगा छोड़ना मत, जब तक कि श्रेष्ठ का अनुभव न हो जाये। श्रेष्ठ को पहले उतरने दो; आने दो रोशनी को, फिर अंधेरा जायेगा।
तुम खेल रहे थे कंकड़-पत्थर से, फिर कोई हीरे दे गया था; कंकड़-पत्थर छूट जायेंगे। हीरे जब सामने हों तो मुट्ठियां कौन कंकड़-पत्थरों से भरेगा! लेकिन जरूरी नहीं है कि तुम कंकड़-पत्थर छोड़ दो तो कोई आकर हीरों से तुम्हारी मुट्ठियां भर दे।
अकसर तो मैं देखा हूं, जैन मुनि जब मेरे पास कभी आते हैं, तो उनकी बात सुनकर बड़ी व्यथा होती है।
तो वे यही कहते हैं कि हमने छोड़ तो सब दिया, लेकिन पाया तो कुछ भी नहीं। जिंदगी हो गई छोड़ने में, अब मौत करीब आने लगी। अब तो हाथ-पैर भी कंपने लगे। अब डर भी समाने लगा। अब लौटकर भी उस संसार में नहीं जा सकते जिसको छोड़ आये। अब थूककर चाटना ठीक भी नहीं मालूम होता। और समय भी न रहा, शक्ति भी न रही। लेकिन भीतर एक संदेह उठता है। न मालूम कितने जैन मुनियों ने मुझसे कहा है कि भीतर एक संदेह उठता है कि हमने छा.ेड़कर ठीक किया? कहीं हमसे कुछ भूल तो नहीं हो गई?
कहीं ऐसा तो नहीं था कि यही संसार सब कुछ है और हम इसको भी छोड़ बैठे? दूसरा तो मिला नहीं, यह छूट गया।
तुम्हें उनकी पीड़ा का अंदाज नहीं, क्योंकि तुम केवल उनका प्रवचन सुनते हो। प्रवचन में तो वे वही दोहराते हैं, जिसको सुनकर वे फंस गये हैं। प्रवचन में तो वे सत्य नहीं कहते।
अभी तक आदमी इस प्रामाणिकता को उपलब्ध नहीं हुआ कि प्रवचन में सत्य कहे। प्रवचन में तो वह वही कहता है जो तुम्हें रास आता है, भाता है। अब जैनों के बीच बोलते हैं तो जो जैनों को रास आता है, जो उनके शास्त्र के अनुकूल पड़ता है, वही बोलना पड़ता है। जब मेरे पास कभी आ जाते हैं, क्योंकि अब तो उनके अनुयायी भी आने नहीं देते; पहले आ जाते थे, तो वे मुझसे कहते थे, अकेले में बात करनी है। अपने अनुयायियों को बाहर कर देते। अकेले में

क्यों करनी है? वे कहते कि आप इनको तो बाहर जाने दें, इनके सामने सच न कहा जा सकेगा। अकेले में उनके प्रश्न बुनियादी रूप से तीन मैंने पाये। एक, कि उन्होंने छोड़ दिया सब, लेकिन भीतर से रस नहीं गया है। दूसरा, जो-जो वासनायें उन्होंने दबा ली हैं, जैसे-जैसे देह कमजोर होती जाती है, वे वासनाएं प्रबल होकर उभर रही हैं। पैंतालीस साल के बाद पता चलना शुरू होता है, जो-जो दबा लिया, वह मुश्किल में डालता है। क्योंकि दबाने की ताकत कमजोर हो जाती है। दबानेवाला दीन होने लगता है, क्षीण होने लगता है। और जो वासना दबाई है, अंगार की तरह वह ताजी रहती है। और तीसरी बात, एक संदेह कि हमने जो किया है, वह ठीक किया? यह उचित हुआ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि जो संसार में है वही ठीक हो?
अब यह बड़ी दयनीय दशा है। यह तुमसे ज्यादा दयनीय दशा है। यह तुमसे ज्यादा मुश्किल और उलझन की दशा है। तुम्हारे पास कुछ तो है--संसार ही सही; ये हाथ बिल्कुल खाली हो गये। इन खाली हाथों की दीनता देखो!
मैं तुम्हें दीन नहीं बनाना चाहता। मैं कहता हूं, तुम परमात्मा को खोजो। वह जैसे-जैसे मिलता जायेगा, वैसे-वैसे संसार तिरोहित होता जायेगा। जैसे-जैसे तुम्हारे हाथ भरने लगेंगे उससे, वैसे-वैसे तुम पाओगे संसार से हाथ हटने लगे। हटाना न पड़ेंगे। हटाना पड़ें तो दमन होता है। हट जायें, अपने से हट जायें तो उसका सौंदर्य ही अनूठा है। फिर उसकी लकीर भी नहीं रह जाती भीतर, पीड़ा भी नहीं रह जाती।
जिस दिन से इश्क अपना हुआ मीरे-कारवां
आगे बढ़े हुए हैं हर इक कारवां से हम।
--और जिस दिन तुम अपनी बागडोर प्रेम के हाथ में दे दोगे...
जिस दिन से इश्क अपना हुआ मीरे-कारवां
--और जिस दिन से तुम्हारा पथ-प्रदर्शक, अगुआ प्रेम हो जायेगा...
आगे बढ़े हुए हैं हर इक कारवां से हम।
--उसी दिन तुम पाओगे, तुम सबसे ज्यादा आगे बढ़ गये हो। प्रेम के अतिरिक्त कोई आगे बढ़ा नहीं है। प्रेम पथ-प्रदर्शक है। प्रेम प्रकाश का दीया है।
खतरे मुझे मालूम हैं कि प्रेम के हैं, क्योंकि तुमने प्रेम का गलत रूप जाना है। लेकिन तुम्हारे गलत रूप जानने के कारण सत्य तुमसे न कहूं, तो वह और भी खतरनाक होगा। मैं वही कहूंगा जो ठीक है। तुम्हें उसमें से गलत निकालना हो, निकाल लेना। वह तुम्हारी जिम्मेवारी है। लेकिन जिम्मेवार तुम्हीं रहोगे। लेकिन इस कारण कि कहीं तुम कुछ गलती न कर लो, मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता। तुम्हारी जिंदगी तो पूरी-पूरी ऊर्जा से भरी हुई होनी चाहिए। कोई हर्जा नहीं, आज गलत जाओगे; जिस ऊर्जा से गलत गये हो, उसी ऊर्जा से वापिस भी आ सकते हो।
लेकिन प्रेम को जरा कसना। रोज-रोज ऊपर उठाना। रोज-रोज देखना कि उसके
और नये-नये सोपान हैं। मधुर-मधुर सोपान हैं! बड़े प्रीति-भरे!
तुम तो जिसे प्रेम कहते हो, वह बड़ी मिश्रित अवस्था है; जैसे सोने में बहुत कूड़ा-कर्कट मिला हो।
इसलिए तुम्हारे प्रेम में घृणा भी मिली है। तुम जिसको प्रेम करते हो उसी को घृणा भी करते हो।
तुमने कभी जांचा अपने मन को कि जरा पत्नी नाराज हो जाती है कि तुम सोचते हो कि मर ही जाये तो बेहतर। सोचने लगते हो कि हे भगवान, इसको उठाओ! कहां फंस गये इस चक्कर में! बेटा तुम्हारे अनुकूल नहीं चलता तो मां कहने लगती है कि तुम पैदा ही न हुए होते जो अच्छा था। तुम्हारे प्रेम से घृणा बहुत दूर नहीं है। तुम्हारे आशीर्वाद से तुम्हारा अभिशाप बहुत दूर नहीं है; पास ही पास बैठे हैं। तुम्हारी मुस्कुराहट तुम्हारे आंसुओं से बहुत ज्यादा दूर नहीं है।
थोड़ा जागो! इसे देखो। तुम्हारा प्रेम क्षण में क्रोध बन जाता है, क्षणभर में क्रोध बन जाता है। अभी जिसके लिए तुम जान देने को तैयार थे, क्षणभर में उसी की जान लेने को तैयार हो जाते हो। जरा सोचो, जरा जागो और देखो।

यह प्रेम बहुत गंदगियों से मिला हुआ है। इसमें क्रोध भी है। इसमें द्वेष भी है। इसमें ईर्ष्या भी है, मत्सर है, मोह है, राग है, घृणा है, हिंसा है।
तुम जिसे प्रेम करते हो उसी की गर्दन दबाने लगते हो, इतनी हिंसा है। प्रेमी अकसर एक-दूसरे को मार डालते हैं। विवाह की तिथि अकसर मरण की तिथि सिद्ध होती है।
एक आदमी का विवाह हो रहा था। राह पर एक मित्र मिल गया। कल विवाह होनेवाला था। उस मित्र ने कहा, "बड़ी बधाइयां!" उस मित्र ने कहा, "शायद तुम्हें पता नहीं है, अभी मेरा विवाह हुआ नहीं, कल होनेवाला है।" उसने कहा, इसीलिए तो बधाइयां दे रहे हैं, फिर बधाइयां देने का उपाय न रहेगा। एक दिन और बचा है, जी लो! चल लो मस्ती से, स्वतंत्रता से।"
अगर राह पर तुम स्त्री-पुरुष को चलते देखो तो तुम तत्क्षण कह सकते हो
कि ये पति-पत्नी हैं या नहीं। पति डरा-डरा चल रहा है, नीचे नजर रखकर चल रहा है, इधर-उधर देखता नहीं; क्योंकि फिर झंझट खड़ी हो जाये!
यह प्रेम गर्दन को काट जाता है।
मैं एक ट्रेन में सफर कर रहा था। एक महिला मेरे साथ उस डब्बे में थी। उसका पति भी था, लेकिन वह किसी दूसरे डब्बे में था। पर वह हर स्टेशन पर आता। तो मैंने उससे पूछा कि मुझे शक होता है, ये पति हो नहीं सकते। उसने कहा, "क्यों?" वह थोड़ी चौंकी।
"कितने दिन हुए शादी हुए?"
उसने कहा, "कोई सात-आठ साल हो गये।"
"यह बात उपन्यास में हो सकती है। सात-आठ साल हो गये, और पति हर स्टेशन
पर उतरकर आते हैं इस भीड़-भड़क्का में... !"
वह कहने लगी, "आपने ठीक पहचाना। वे मेरे पति हैं नहीं, लगाव है।"
तब बात ठीक है। लगाव एक बात है। पत्नी तुम किसी और की होओगी। नहीं तो अपना पति हर स्टेशन पर उतरकर आये! एक दफे जो छूटा, तो वह आखिरी स्टेशन पर भी आ जाये तो काफी है।"
प्रेम में बड़ा और बहुत कुछ मिला हुआ है। एक-दूसरे की गर्दन दबा देते हैं। हां, बहाने हम अच्छे खोजते हैं। लेकिन जिसको प्रेम कहें, वह अभी बड़ी दूर है। लेकिन जिसे तुम प्रेम कह रहे हो, उसमें भी वह पड़ा है। इसलिए मैं यह न कहूंगा, इस सब को फेंक देना। इसको निखारना है। इस सोने में मिट्टी मिली है, माना; मिट्टी को काट डालना है, सोने को बचाना है। तो दुनिया में कुछ लोग हैं जो इसी को प्रेम समझ रहे हैं। वे गलत। और दुनिया में कुछ लोग हैं जो मिट्टी के कारण इस पूरे प्रेम को फेंक देने को कहते हैं। वे भी गलत; पहले से भी ज्यादा गलत। क्योंकि मिट्टी के बहाने कहीं सोने को मत फेंक देना! अहिंसा की धारणा में वही हो गया है। फेंक ही दो इस प्रेम को; इसमें खतरा है, इसमें उपद्रव है, इसमें तनाव है, परेशानी है, अशांति है। फेंक ही दो। लेकिन साथ ही सोना भी चला जाता है।
मैं तुमसे कहता हूं, ये दोनों अतियां हैं, इनसे बचना। इसमें से मिट्टी
तो काटनी है--घृणा काटनी है, क्रोध काटना है, मत्सर, ईर्ष्या अलग करनी है-- प्रेम को निखारना है।
जीवन एक प्रयोगशाला है प्रेम को निखार लेने की। और धन्यभागी हैं वे
जो अपने प्रेम को पूरा निखार लेते हैं। उस प्रेम के निखरे रूप में ही जगत जैसा दिखाई पड़ता है उसका नाम परमात्मा है। उस प्रेम के निखरे रूप में ही तुम जिस नियति को उपलब्ध होते हो, उसका नाम आत्मा है।

दूसरा प्रश्नः जो दीया तूफान से बुझ गया उसे फिर जलाकर क्या करूं? जो स्वभाव स्वप्न में खो गया, उसे वापस जगाकर क्या करूं? आप कहते हैं तो मान लेता हूं कि मैं ही परमात्मा हूं, लेकिन जो परमात्मा घर से ही भटक गया, उसे घर वापिस बुलाकर क्या करूं?

ऐसा प्रश्न बहुतों के मन में उठता है, स्वाभाविक है। लेकिन तुम जीवन
की जटिलता को नहीं समझ रहे हो। स्वभाव इसीलिए खो गया है, क्योंकि बिना

खोये तुम उसे जान ही न सकोगे। वह जानने की प्रक्रिया है। जो तुम्हारे पास है, सदा से है, सदा से है, सदा से है, तुम उसके प्रति अंधे हो जाते हो। उसे खोना जरूरी है, ताकि तुम पा सको। पाने के लिए खोना अनिवार्य है। खोकर भी तुम वस्तुतः थोड़े ही खोते हो, क्योंकि स्वभाव तो वही है जो खोया न जा सके। विस्मरण का नाम खोना है। तुम भूल गये हो। और यह भूलने की बात अत्यंत आवश्यक है समझ लेनी। भूलने का अर्थ यह नहीं है कि तुम कुछ और हो गये हो जो तुम नहीं हो। भूलने का इतना ही अर्थ है कि तुमने कुछ और समझ लिया है। हो तो तुम वही जो हो। जैसे आज रात तुम यहां सोओ और सपने में देखो, कलकत्ते में हो, तो कोई कलकत्ते पहुंच नहीं गये। कोई लौटने के लिए तुम्हें कोई हवाई जहाज नहीं पकड़ना पड़ेगा। कोई हिलाकर जगा देगा, तुम पूना में जगोगे, कलकत्ते में नहीं जगोगे। तुम यह न कहोगे कि यह क्या मुसीबत कर दी। तुम भागकर स्टेशन भी न जाओगे कि अब मैं पकड़ूं ट्रेन पूना जाने की, इस आदमी ने कलकत्ते में जगा दिया। सपने में कलकत्ते में थे। यह सिर्फ ख्याल था। असलियत में तो तुम पूना में ही हो।
परमात्मा को खोया जा नहीं सकता। हो तो तुम परमात्मा में ही। सपने तुम कोई भी देख लो। और सपना तुम्हारी स्वतंत्रता है। और सपने बड़े मधुर हैं। और सपने एकदम बुरे भी नहीं हैं, क्योंकि इन्हीं सपनों के माध्यम से तुम अपने से अपने को दूर कर लेते हो, फासला कर लेते हो। फिर मिलन का मजा आ जाता है। जैसे मछली सागर में ही रहती है तो सागर को भूल ही जाती है, सागर का पता ही नहीं चलता। जरा फेंक दो मछली को किनारे पर, तड़फती है; तब उसे पहली दफा याद आती है कि सागर क्या है।
तुम अपने सपनों के तट पर तड़फ रहे हो। यह तड़फ तुम्हें फिर सागर में ले जायेगी। अब तुम पूछते हो कि "क्या फायदा जो दीया तूफान से बुझ गया... ?" बुझा नहीं है। कोई तूफान तुम्हारे दीये को बुझा नहीं सकता; अन्यथा तूफान तो इतने हैं... । कोई तूफान तुम्हारे दीये को नहीं बुझा सकता। किसको पता चल रहा है यह? यह कौन कह रहा है कि क्या करूं उस दीये को फिर से जलाकर जिसको तूफान ने बुझा दिया? यह जो कह रहा है वही तो तुम्हारा दीया है--यह तुम्हारा जो चैतन्य-भाव है। यह कौन कह रहा है कि क्या फायदा उस परमात्मा को खोजने से जो घर से ही दूर चला गया? मगर यह कौन है जो कह रहा है?
यही तुम्हारा परमात्म-भाव है। यह साक्षी-भाव, यह चैतन्य, यह ज्ञान, यह बोध, यह ज्योति। दीया बुझता नहीं। यह दीया बुझनेवाला दीया नहीं है। और बुझ जाता तो इसके जलाने के फिर कोई उपाय न थे। बुझ जाता तो तुम होते ही न। बुझ जाता तो सोचनेवाला भी न होता कि कैसे इसे जलाऊं। तुम हो। तुम परिपूर्ण हो। सिर्फ एक सपने ने तुम्हें घेर लिया है। एक बादल आ गया है। और सूरज को ढांक लिया है।
यह धूप-छांव का खेल बड़ा मधुर है। इसलिए हिंदुओं की परिभाषा बड़ी अनूठी है। वे कहते हैं, लीला है। तुम इसको बड़ा काम समझ रहे हो कि खो दिया, अब क्या फायदा! तुमने कभी बचपन में छिया-छी नहीं खेली? दो बच्चे छिया-छी खेलते हैं, दोनों आंख बंद करके खड़े हो जाते हैं, छिप जाते हैं। पता है कि यहीं छिपे हैं, इसी कमरे में छिपे हैं। कई बार चक्कर लगाते हैं, खोजते हैं कहां छिपा है, बड़ा शोरगुल मचाते हैं--और उन्हें पक्का पता है कहां छिपा है, क्योंकि घर ही कौन बड़ा है; वही कमरे में कहीं छिपा है, बिस्तर के नीचे चला गया है कि दीवाल की ओट में खड़ा हो गया है। सब पता है। लेकिन फिर खेल का मजा चला जाता है, जब सब पता ही है तो। तो थोड़ा दौड़ते हैं, धामते हैं, खोजते हैं, इधर-उधर झांकते हैं, फिर पकड़ लेते हैं।
हिंदू कहते हैं, यह जगत छिया-छी है, लीला है। तुम्हीं अपने को खोज रहे हो, तुम्हीं अपने को छिपा रहे हो। तुम पूछोगे, "क्यों? क्यों खेलें छिया- छी?" मत खेलो। सारा धर्म वही तो कला सिखाता है तुम्हें कि जिनको छिया-छी नहीं खेलनी, वे ध्यान करें, वे छिया-छी के बाहर हो जाते हैं। ध्यान का मतलब कुल इतना ही है कि अगर थक गये, अब तुम्हें खेलना नहीं है, तो घोषणा कर दो कि अब हम खेल के बाहर होते हैं, अब हम जरा विश्राम करेंगे, या अब हमें भूख लगी है, अब हम घर जाते हैं। जिनको अभी खेलने में रस आ रहा है, वे खेलें। जिनको खेलने में अब थकान आने लगी है, वे घर लौट जायें।

परमात्मा की खोज का मतलब इतना ही है कि अब बहुत हो गई छिया-छी; अब थक गये। बस इतना ही स्मरण काफी है कि थक गये--विश्राम। जैसे दिनभर आदमी मेहनत करता है, रात सो जाता है। अब तुम यह तो नहीं कहते रात खड़े होकर कि अब क्यों सोयें, जब दिनभर मेहनत की! तुम्हारी मर्जी, न सोना हो तो न सोओ, खड़े रहो। रातभर सोये रहे, अब सुबह तुम्हें कोई उठाने लगे तो तुम यह तो नहीं कहते कि नहीं उठेंगे अब; रातभर सोये रहे, अब क्यों उठें? नहीं सोने, के बाद जागना है; जागने के बाद सोना है। दिन के बाद रात है, रात के बाद दिन है।
ध्यान, संसार, परमात्मा, अरूप और उसके रूप, इन दोनों के बीच यात्रा है।
यह खेल बड़ा मधुर है। बस खेलने की कला आनी चाहिए। और खेल में "क्यों" का तो सवाल मत उठाना। क्योंकि "क्यों" दुकानदार का शब्द है, खिलाड़ी का नहीं। अब दो आदमी फुटबाल खेल रहे हैं, तो तुम पूछते हो, "यह क्या फायदा? इधर से गेंद उधर मारी, उधर से इधर मारी; अरे एक जगह रखो, बैठ जाओ शांति से।" आदमी बालीबाल खेल रहे हैं, तुमने देखा कैसा पागलपन करते हैं! बीच में एक जाली बांध रखी है, इधर से फेंक रहे हैं उधर; उधर से फेंक रहे हैं इधर। और इनकी तो छा.ेडो ही, कई भीड़ लगाकर खड़े हैं देखने के लिए। इतना-सा काम हो रहा है, गेंद इधर से उधर फेंकी जा रही--यह तो दो मशीनें लगाकर भी कर सकते हो। इसमें सार क्या है? अगर दुकानदार है तो पूछेगा, "क्यों? इससे मिलेगा क्या?" लेकिन तब चूक गये बात। मिलने का सवाल नहीं है, खेल में ही रस है। यह जो खेल की उमंग है, इसमें ही रस है।
तिनके की तरह सैले-हवादिस लिये फिरा
तूफान लेकर आये थे हम जिंदगी के साथ।
तूफान हमारे साथ आया है। जिंदगी तूफान है। इसमें बड़ी लहरें उठती हैं, बड़ी आंधियां आती हैं। फिर सन्नाटा भी छा जाता है। सन्नाटे के लिए आंधी जरूरी है; आंधी के लिए सन्नाटा जरूरी है--दोनों परिपूरक हैं। यहां मिलना भी है, खोना भी है; पाना भी है, बिछुड़ना भी है; याद भी है, विस्मृति भी है। ये दोनों पहलू हैं, दो पंख हैं। इनसे ही जीवन के आकाश में उड़ने का उपाय है। ये हादसे कि जो इक-इक कदम पे हाइल हैं
खुद एक दिन तेरे कदमों का आसरा लेंगे।
जमाना चीं-ब-जबीं है तो क्या बात है "रविश"
हम इस अताब पे कुछ और मुस्कुरा लेंगे।
ये हादसे, ये घटनायें जो हर कदम पर घट रही हैं, ये पत्थर जो हर कदम पर अड़े हुए हैं, खुद एक दिन तेरे कदमों का आसरा लेंगे। घबड़ाओ मत; ये पत्थर नहीं हैं, ये सीढ़ियां बन जानेवाली हैं। यह भटकाव ही उसके पहुंचने का रास्ता बन जाने वाला है। यह दूर हो जाना ही पास आने का उपाय है।
ये हादसे कि जो इक-इक कदम पे हाइल हैं
ये जो अड़े हैं पत्थर, और घटनाएं, और जीवन के उलझाव, और बाजार और दुकान
और तृष्णा और मोह और हजार-हजार बातें हैं... खुद एक दिन तेरे कदमों का आसरा लेंगे। घबड़ाओ मत, खेले चले जाओ। अभी तुम ठीक से खेल समझे नहीं, अभी खेल का गणित नहीं आया। गणित आ जायेगा तो रस आने लगेगा। और तब इन पत्थरों पर चढ़ने में मजा आने लगेगा। तब तुम धन्यवाद दोगे इन पत्थरों को कि अच्छा किया कि तुम थे, अन्यथा कहां चढ़ते! अच्छा हुआ कि तुम थे, अन्यथा जीवन को जांचने की सुविधा कहां मिलती, अवसर कहां मिलता!
जमाना चीं-ब-जबीं है तो क्या बात है "रविश"
और अगर जमाना बहुत क्रोध से भरा है और चारों तरफ बड़ी अड़चन और मुसीबत
है तो बात क्या है "रविश"...
हम इस अताब पे कुछ और मुस्कुरा लेंगे।
इस क्रोध पर थोड़ा और मुस्कुरा लेना।
यह जो जमाना इतने उपद्रव खड़ा करता है, इस पर थो.ड़ा मुस्कुराना सीखो। परमात्मा का खोजी खेल मानकर चलता है। तुम बड़ी गंभीरता से चल रहे हो,
यह अड़चन है। तुम्हारे तथाकथित धार्मिकों ने तुम्हें बड़े गंभीर चेहरे सिखा दिये हैं; जैसे कि प्रार्थना कोई काम है! प्रार्थना खेल है। प्रार्थना रस है, काम नहीं है। इसमें कुछ लाभ और लोभ थोड़े ही है। इसमें तो होने का मजा है। इन पक्षियों से पूछो! ये जो झींगुर गुनगुनाये जा रहे हैं,

इनसे पूछो--किसलिए? वे तुम्हारी बात पर ही आश्चर्य करेंगे कि सवाल भी उठाने योग्य है? मजा आ रहा है।
तुम्हें जब तक संसार में मजा आ रहा है, दौड़े जाओ; जब तुम्हें परमात्मा में मजा आने लगे, रुक जाना। मजे-मजे की बात है।
मैं जो संसार में हैं, उनके विरोध में नहीं हूं। मैं कहता हूं, उन्हें मजा आ रहा है तो मजा लें। तकलीफ तो कब खड़ी होती है कि तुम्हें मजा संसार में आ रहा है और तुम किसी की बात में पड़ गये और उसने कहा कि संसार में क्या रखा है! तुम्हें मजा संसार में आ रहा है। अब तुम एक उलझन में पड़े, एक तनाव पैदा हुआ। किसी ने कह दिया, संसार में क्या रखा है, यह तो सब धूल है, यह तो सब पड़ा रह जाएगा--यह ठाठ पड़ा रह जायेगा, जब बांध चलेगा बनजारा! उनका बनजारा बांधकर चल रहा हो, लेकिन तुम्हारा तो अभी बिल्कुल खेल लग रहा था, तंबू लग रहा था, व्यवस्था तुम जुटा रहे थे। यह बात तुम्हारे कान में पड़ गई, अब तुम अड़चन में पड़े। अब तुम तंबू भी गाड़े जा रहे हो और सोच रहे हो, सब ठाठ पड़ा रह जायेगा। अब अड़चन आई। अब तुम इकहरे न रहे। तुम्हारा व्यक्तित्व खंडों में बंट गया। तुम्हारे तथाकथित धर्मों ने तुम्हें विक्षिप्त बना दिया है। मैं तुमसे जो कह रहा हूं वह यह नहीं कह रहा हूं कि तुम छोड़कर चल पड़ो। मैं तुमसे कह रहा हूं, ठीक से तंबू गड़ा लो। भगवान से भटकने का मौका मिला है, ठीक से भटक जाओ। दूर जाने का क्षण आया है, दूर चले जाओ। इसमें भी क्या कंजूसी करनी? क्योंकि मेरे देखे जो जितनी दूर जाता है, जब उसे याद पकड़ती है तो उतनी ही तीव्रता से पास आता है। पास आने और दूर आने में एक अनुपात है। खोने का तो कोई उपाय नहीं है, खेल है। रोकर खेलना हो रोकर खेल लो; हंस के खेलना हो हंसकर खेल लो। जो हंसकर खेलता है, उसको मैं धार्मिक कहता हूं। जो रो-रोकर खेलने लगे, वह कोई खिलाड़ी नहीं है।
है रात तो इसके बाद सहर, अनवार भी लेकर आएगी
है सुबह तो शब तारों के चमकते हार भी लेकर आएगी।
है रात तो इसके बाद सहर--रात है तो सुबह होने के करीब है, घबड़ाओ मत। रात
का मजा ले लो, सुबह तो हो ही जायेगी। सुबह के लिए रोओ, चिल्लाओ-चीखो मत। यह रात सुबह के रास्ते पर ही है। यह रात होनेवाली सुबह ही है। यह रात सुबह का ही छिपा हुआ रूप है।
है रात तो इसके बाद सहर अनवार भी लेकर आएगी।
सुबह प्रकाश भी लेकर आनेवाली है। अंधेरे को ठीक से तो भोग लो! क्योंकि अगर आंखें अंधेरे को ठीक से न भोग पायें तो तुम प्रकाश को भोगने के योग्य न बन पाओगे।
तुमने कभी ख्याल किया? जब अंधेरे के बाद तुम प्रकाश को देखते हो तो अंधेरा तुम्हारी आंखों को तैयार करता है; तुम प्रकाश को देखने में समर्थ हो जाते हो। आंख को विश्राम मिलता है अंधेरे में; आंख ताजी हो जाती है। फिर से तुम देखने में कुशल हो जाते हो। इसलिए तो आंख झपकती रहती है। तुमने कभी पूछा कि आंख झपकती क्यों रहती है? यह हर पल अंधेरे को पैदा करती रहती है, ताकि ताजी बनी रहे। इसलिए तुमने देखा फिल्म जाते हो देखने, तो तीन घंटे तुम आंख का झपकना भूल जाते हो। उसी लिए आंख थक जाती है। फिल्म के कारण नहीं, टेलीविजन देखने के कारण नहीं; तुम आंख का झपकना भूल जाते हो कि जो स्वाभाविक प्रक्रिया थी अंधेरे को बीच-बीच में लाने की, वह भूल जाते हो। तुम इतने ज्यादा तन जाते हो कि आंख फाड़े बैठे रहते हो। अब की बार जब सिनेमा जाओ या फिल्म देखने जाओ या टेलीविजन देखो, तो आंख को झपकाते रहना, तुम पाओगे कोई थकान न आई। आंख के झपकने में राज है। अंधेरा प्रकाश का खेल है।
धूप छाया का खेल है।
है रात तो इसके बाद सहर अनवार भी लेकर आएगी।
विश्राम तो कर लो थोड़ा रात में।
संसार विश्राम है परमात्मा का। जल्दी ही सुबह होगी, परमात्मा भी आयेगा, प्रकाश भी लायेगा। भाग-दौड़ मत करो। व्यर्थ शीर्षासन इत्यादि लगाकर खड़े न हो जाओ। इससे रात के जाने का कोई संबंध नहीं। रात अपने से आती है, अपने से जाती है। तुम तो सिर्फ साक्षी रहो।
है सुबह तो शब तारों के चमकते हार भी लेकर आएगी।

और अगर सुबह है तो ध्यान रखना, रात भी आनेवाली है।
यह जीवन का चक्र है जो घूमता चला जाता है। इस चक्र में जो खेलना सीख जाये--खेलना पहली शर्त--गंभीरता से नहीं, खिलाड़ी के अहोभाव से, रस से--जो खेलना सीख जाये, यह पहली शर्त। और दूसरी बात धीरे-धीरे तुम्हारे खिलाड़ीपन से उठेगी, वह है साक्षी-भाव। जब तुम देखोगे, रात भी अपने से आती है; सुबह भी अपने से हो जाती है; फिर सांझ आ जाती है, फिर तारे जगमगा उठते हैं--यह सब अपने से हो रहा है तो मैं नाहक दौड़-धूप क्यों करूं; मैं सिर्फ साक्षी रहूं, देखूं, जो होता है उसका मजा लूं, रस लूं! परमात्मा इतने रूप धरता है, इतने- इतने नाच करता है, मैं द्रष्टा बनूं। तो पहले खिलाड़ी बनो, फिर द्रष्टा बन जाओ, बस। यह दो बातें जिसके जीवन में आ गईं, उसने पा ही लिया।
शिकस्ते-दिल को शिकस्ते-हयात क्यों समझें?
है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने
बुलंद नग्मए-आदम है बज्मे-अंजुम में
कब इक सितारए-नौ हंस पड़े खुदा जाने
हयात अभी है फकत इक हयात का परतब
अभी हयात को समझा ही क्या है दुनिया ने।
शिकस्ते-दिल को शिकस्ते-हयात क्यों समझें?
अगर तुम हार गये हो तो इसको जीवन की हार मत समझो। जीवन कभी नहीं हारता। तुम हार जाओगे तो विदा कर लिये जाओगे, बुला लिये जाओगे। जीवन चलता जाता है। एक लहर हार जाती है तो विलीन हो जाती है सागर में।
शिकस्ते-दिल को शिकस्ते-हयात क्यों समझें?
है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने।
और अगर एक पैमाना टूट गया तो घबड़ाते क्यों हो, मधुशाला साबित है, तो हजार पैमाने भरे तैयार हैं।
यहां छोटी-छोटी चीजों से लोग घबड़ा जाते हैं। किसी की पत्नी मर गई, वैराग्य का उदय हो गया। है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने! इतनी जल्दी क्यों करते हैं? किसी की दुकान में घाटा लग गया, दिवाला निकल गया--अरे, दीवाली बहुत मनाई, अब दिवाला भी मना लो! इतना घबड़ाना क्या?

है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने।
हारकर धर्म की तरफ, पराजय के भाव से, विफलता से, विषाद से कहीं कोई गया है! उदासी से तो रुग्णता आती है, जीवन का स्वास्थ्य नहीं। धर्म की तरफ उदासी से नहीं, प्रसन्नता से, प्रफुल्लता से गये हुए ही पहुंचते हैं। बुलंद नग्मए-आदम है बज्मे-अंजुम में
--नक्षत्र मंडल में आदमी का गीत गूंज रहा है।
कब इक सितारए-नौ हंस पड़े खुदा जाने
--कब वर्षा हो जायेगी परम आनंद की, पता नहीं कभी भी हो सकती है!
हयात अभी है फकत इक हयात का परतब
--जिसे तुमने अभी जिंदगी समझा है, वह तो केवल जिंदगी की छाया है।
हयात अभी है फकत इक हयात का परतब
अभी हयात को समझा ही क्या है दुनिया ने।
अभी तुमने जीवन का पूरा राज कहां सीखा? जल्दी मत करो। निर्णय मत लो कि "क्या फायदा जो दीया बुझ गया, अब इसको जलाने से क्या फायदा! और जो घर छूट गया, उसको खोजने से क्या फायदा!" ऐसे तो तुम थककर गिर जाओगे। ऐसे तो तुम जीते-जी मुर्दा हो जाओगे।
उठो! जीवन की यात्रा प्रफुल्लता से करनी है।
और जब कुछ खोता हो, तब भी समझ रखनाः यह भी कुछ पाने का उपाय होगा।

आखिरी प्रश्नः
तेरे गुस्से से भी प्यार, तेरी मार भी स्वीकार
चाहे खुशी दो कि दो गम, दे दो खुशी-खुशी करतार
तेरी धूप हो कि छांव, मुझको दोनों हैं स्वीकार
तेरा सब कुछ मुझे पसंद, तेरा न भी नहीं इनकार।

शुभ है, ऐसी ही भाव की दशा भक्त की दशा है। और जिसको ऐसे स्वीकार का भाव आ गया; अस्वीकार को भी स्वीकार करने की क्षमता आ गई; "नहीं" में भी दंश न रहा; हार में भी कांटे न चुभे; सुख आये कि दुख, दोनों को जिसने परमात्मा का उपहार समझकर स्वीकार कर लिया, उसका प्रसाद मान कर स्वीकार कर लिया-- उसकी मंजिल ज्यादा दूर नहीं है। उसके पैर मंजिल के करीब आने लगे। उसका रास्ता पूरा होने के करीब आने लगा।
इस भाव-दशा को सम्हालना। इस भाव-दशा को धीरे-धीरे गहराना। यह तुम्हारे रोएं-रोएं में समा जाये। यह तुम्हारी धड़कन-धड़कन में बस जाये। जिनको हर हालत में खुश और शादमां पाता हूं मैं
उनके गुलशन में बहारे-बेखिजां पाता हूं मैं।
जो हर हाल में खुश हैं, उनके जीवन में वसंत आता है और पतझड़ कभी नहीं आती।
वाये वोह आंख जिसे दीदए-मुश्ताक कहें
हाय वोह दिल जो गिरफ्तार मुहब्बत में रहे।
अगर तुम्हारे पास ऐसी प्रेम की भाव-दशा उठ रही है, ऐसी पहली झलकें आनी शुरू हुई हैं कि सुख और दुख दोनों को तुम प्रभु की अनुकंपा मान लो, तो फिर जल्दी ही, तुम्हारे पास वैसे दिल का निर्माण हो जायेगा।
हाय वोह दिल जो गिरफ्तार मुहब्बत में रहे!
वाये वोह आंख जिसे दीदए-मुश्ताक कहें!
फिर तुम्हारी आंख परमात्मा को देख ही लेगी। यही तो अभिलाषी की आंख की परीक्षा है। सुख को तो सभी स्वीकार कर लेते हैं। उससे कुछ पता नहीं चलता। दुख को भी जो स्वीकार कर लेता है, उससे ही पता चलता है। फूल गिरें, सभी मान लेते हैं, और प्रसन्न हो लेते हैं। लेकिन जबे कांटे जीवन में आयें तब भी जो मुस्कुराता रहता है...
वाये वोह आंख जिसे दीदए-मुश्ताक कहें।
आ गई वह आंख, वह अभिलाषी नेत्र, प्रभु के दर्शन करने की क्षमता वाले नेत्र... ।
हाय वोह दिल जो गिरफ्तार मुहब्बत में रहे।
एक पागलपन आयेगा, घबड़ाना मत। यह पागलों की ही बात है। बुद्धिमान तो ठीक-ठीक को स्वीकार करते हैं। बुद्धिमान तो सुख को स्वीकार करते हैं, दुख को इनकार करते हैं; फूल चुनते हैं, कांटे अलग करते हैं। यह तो दीवानों की बात है कि दोनों को स्वीकार कर लेते हैं।
और मैं तुमसे कहता हूं, दीवानगी से बड़ी कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। क्योंकि जो सुख को स्वीकार करते हैं, दुख को अस्वीकार, उनके जीवन में दुख ही दुख भर जाता है। तुम्हारे अस्वीकार करने से दुख थोड़े ही जाता है, दुगना हो जाता है। कांटा तो चुभा ही है, पीड़ा तो हो ही रही है--तुम अस्वीकार करते हो, उससे पीड़ा और सघन हो जाती है। कांटा चुभा है और तुम स्वीकार कर लेते हो, तुम कहते हो, "प्रभु की कोई मर्जी होगी! जरूर किसी कारण से चुभाया होगा।" बायजीद निकलता था एक रास्ते से, पत्थर से चोट लग गई, वह गिर पड़ा, पैर से खून निकलने लगा! उसने हाथ उठाये आकाश की तरफ और प्रभु को धन्यवाद दिया कि "धन्यवाद, मेरे मालिक! तू भी खूब ख्याल रखता है!" उसके एक भक्त ने पूछा, "यह जरा जरूरत से ज्यादा हो गई बात। अतिशयोक्ति हुई जा रही है। खून निकल रहा है, पत्थर की चोट लगी है--धन्यवाद का कारण कहां है?"
बायजीद ने कहा, "पागलो, फांसी भी हो सकती थी! उसका ख्याल तो देखो! अपने फकीरों का ख्याल रखता है। जरा-सी चोट से बचा दिया। मैं जैसा आदमी हूं, उसकी तो फांसी भी हो जाये तो कम है। मेरे पाप, मेरे गुनाह तो देखो!"
तो पैर में लगी चोट और बहता लहू भी अहोभाग्य हो गया।
बायजीद तीन दिन से भूखा था। एक गांव में रुके। वह सांझ प्रार्थना जब करता था तो रोज कहता था, "प्रभु! जो भी मेरी जरूरत होती है, तू सदा पूरी कर देता है।" उस दिन भक्त जरा नाराज थे, तीन दिन से भूखे थे। किसी गांव में ठहरने को जगह न मिली। लोगों ने रुकने न दिया। लोग विरोध में थे। फिर भी उस

रात उन्होंने कहा, अब आज देखें, आज यह बायजीद क्या कहता है! उसने फिर वही कहा कि हे प्रभु! तू भी खूब है। जब जो मेरी जरूरत होती है, पूरी कर देता है। एक भक्त ने कहा, "अब सुनो! तीन दिन से भूखे हैं। क्या खाक जरूरत पूरी
कर देता है?"
बायजीद हंसने लगा। उसने कहा, "तुम समझे ही नहीं; तीन दिन से भूख मेरी जरूरत थी। तीन दिन उपवास मेरी जरूरत थी। उसने पूरी की।"
देखो, ऐसा आदमी दुख नहीं पा सकता। ऐसे आदमी को कैसे दुख दोगे? परमात्मा भी बड़ी उधेड़-बुन में पड़ जाता होगा ऐसे आदमी के साथ कि अब करो क्या! यह आदमी तो जीतने लगा! यह तो छिया-छी में हाथ आगे मारने लगा। इसको दुखी करने का उपाय न रहा।
और सुख तभी उत्पन्न होता है जब दुखी होने का उपाय नहीं रह जाता। अगर तुमने सुख पकड़ा और दुख छोड़ा, तो तुम धीरे-धीरे पाओगे, तुम्हारा सुख भी दुख हो जाता है। पकड़नेवाले का सुख भी दुख हो जाता है; क्योंकि वह डरता है, कहीं छिन न जाये। छिनेगा तो ही। कौन सुख स्थायी होता है? आया है, जायेगा! पानी की लहर है। न दुख ठहरता, न सुख ठहरता। जिसने पकड़ा सुख को, वह दुखी होने लगा। पहले सुख की आकांक्षा में दुखी था; अब इस भय से दुखी होगा कि छूटता, अब गया, अब गया, अब जायेगा! और जिसने दुख को स्वीकार कर लिया, वह तो दुख को भी रूपांतरित कर लेता है। सुख तो सुख है ही, वह दुख को भी सुख बना लेता है। इस कीमिया को ही धर्म समझना।
जुनूं हर रंग में मशरूरो-शादां
खिरद! हर हाल में चींबर जबीं है।
प्रेमोन्माद, जुनूं हर रंग में मशरूरो-शादां...
--वह जो पागलों की मस्ती है, दीवानों की मस्ती है, वह तो हर हाल में खुश है।
खिरद! लेकिन अक्ल, बुद्धि, हर हाल में चींबर जंबी है। वह हर हाल में त्यौरी चढ़ाये हुए है। कुछ भी हो जाये, तृप्ति नहीं होती। कुछ भी मिल जाये, असंतोष बना रहता है।
सौभाग्य है, अगर इस तरह की भाव-दशा में रमते जाओ। यह सिर्फ तुम्हारी कविता न हो, तुम्हारा जीवन बने! यह तुमने सिर्फ होशियारी न की हो प्रश्न पूछकर, यह तुम्हारा भाव बने! सघन भाव! तो तुम पाओगे, सब तरफ से परमात्मा ने नये-नये द्वार खोल लिये; हर तरफ से उसकी हवाएं तुम्हें छूने लगीं।
हर एक जल्वा है मेरे लिए कशिश तेरी
हर एक सदा मुझे तेरा पयाम होती है।
फिर हर आवाज में उसका संदेश और हर रूप में उसका रंग, हर फूल में उसकी खुशबू... । तुम तैयार हो जाओ। और यही तैयारी का ढंग है। इसे तुम चौबीस घंटे स्मरण रखो। जल्दी ही दुख भी आयेंगे, स्मरण रखना। सुख भी आयेंगे, स्मरण रखना। तुम हर हालत में सभी कुछ उसी को समर्पण किये चले जाना। तुम कहना, सब तेरे हैं, सब तेरे भेजे हैं! और जल्दी ही तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन में सुख-दुख की उधेड़-बुन खो गई और एक परम शांति विराजमान हो गई है--ऐसी शांति जो पृथ्वी की नहीं है; ऐसी शांति जो केवल स्वर्ग की है!
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
सत्रहवां प्रवचन

आत्मा परम आधार है

दम के तारीक रस्ते में
कोई मुसाफिर न राह भूले
मैं शमए-हस्ती बुझाके अपनी
चिरागे-तुरबत जला रहा हूं।
जीवन के रास्ते पर जिन्होंने अपने को परिपूर्ण मिटा दिया है, वे ही केवल ऐसा प्रकाश बन सके हैं जिनसे भूले-भटकों को राह मिल जाये। जिसने अपने को बचाने की कोशिश की है, वह दूसरों को भटकाने का कारण बना है। और जिसने अपने को मिटा लिया, वह स्वयं तो पहुंचा ही है; लेकिन सहज ही, साथ-साथ, उसके प्रकाश में बहुत और लोग भी पहुंच गये हैं।
महावीर किसी को पहुंचा नहीं सकते; लेकिन जो पहुंचने के लिए आतुर हो वह उनकी रोशनी में बड़ी दूर तक की यात्रा कर सकता है।
यात्री को स्वयं निर्णय लेना पड़े। जाना है, तो प्रकाश के साथ संबंध बनाने पड़े।
अभी हमने जीवन-जीवन, जन्मों-जन्मों अंधेरे के साथ संबंध बनाये हैं। धीरे-धीरे अंधेरे के साथ हमारे संबंध, संस्कार हो गये हैं, स्वभाव हो गए हैं। अंधेरा हमें सहज ही आकर्षित कर लेता है। एक तो रोशनी हमें दिखाई ही नहीं पड़ती, शायद अंधेरे में रहने के कारण हमारी आंखें रोशनी में तिलमिला जाती हैं; या अगर दिखाई भी पड़ जाये तो भीतर बड़ा भय पैदा होता है। अपरिचित का भय। नये का भय। अनजान का भय।
तो हम तो बंधी लकीर में जीते हैं--कोल्हू के बैल की तरह जीते हैं। कोल्हू का बैल चलता बहुत है, दिनभर चलता है; पहुंचता कहीं भी नहीं। वर्तुलाकार जो घूमेगा, वह पहुंचेगा कैसे?
इसलिए हमने जीवन को चक्र कहा है। गाड़ी के चाक की भांति, घूमता है, घूमता रहता है; कभी एक आरा ऊपर आता है, कभी दूसरा आरा नीचे चला जाता है-- लेकिन वस्तुतः कोई भेद नहीं पड़ता। कभी क्रोध ऊपर आया, कभी मोह ऊपर आया; कभी प्रेम झलका, कभी घृणा उठी; कभी ईर्ष्या से भरे, कभी बड़ी करुणा छा गई; कभी बादल घिरे, कभी सूरज निकला--ऐसी धूप-छांव चलती रहती है। एक आरा ऊपर, दूसरा आरा नीचे होता रहता है, और हम चाक की भांति घूमते रहते हैं। लेकिन हम हैं वहीं, जहां हम थे। हमारे जीवन में यात्रा नहीं है। तीर्थयात्रा तो दूर, यात्रा ही नहीं है। बंद डबरे की भांति हैं, जो सागर की तरफ जाता नहीं। डबरा डरता है। सागर में खो जाने का डर है। और डर सच है, क्योंकि डबरा खोयेगा सागर में। लेकिन उसे पता नहीं, उसके खोने में ही सागर का हो जाना भी उसे मिलनेवाला है।
अदम के तारीक रस्ते में कोई मुसाफिर न राह भूले
आदमी का रास्ता बड़ा अंधेरा है!
अदम के तारीक रस्ते में कोई मुसाफिर न राह भूले
मैं शमए-हस्ती बुझाके अपनी चिरागे-तुरबत जला रहा हूं।
--तो मैंने अपने जीवन को, अपने होने को तो बुझा दिया है और अपनी मजार का दीया जला लिया है। चिरागे-तुरबत जला रहा हूं!
जिसे कवि ने चिरागे-तुरबत कहा है, उसी को महावीर निर्वाण कहते हैं।
जीवन को तो बुझा दिया है, मौत का दीया जला लिया है।
यह जरा कठिन लगेगा, क्योंकि हम तो जीवन और जीवन की आकांक्षा से भरे हैं। जीवेषणा! किसी भी कीमत पर, मरते हों, सड़ते हों, गलते हों; लेकिन फिर भी जीना चाहते हैं। चाहे सब छीन लिया जाये, अंधे हो जायें, सड़क पर भिखमंगे की तरह घिसटते रहें, कुछ भी जीवन में अर्थ न दिखाई पड़े, फिर भी जीवन को पकड़े रहते हैं। ऐसा लगता है, जैसे जीवन का कोई अपने आप में ही अर्थ है।
दुख ही दुख मिलता हो, पीड़ा ही पीड़ा मिलती हो, तो भी आदमी जीवन को पकड़े रहता है। सारे स्वाभिमान को बेचना पड़े, आत्मा को बेचना पड़े, सब भांति अपने को काट-काटकर बाजार में रख देना पड़े, तो भी आदमी जीवन को पकड़े रहता है।

महावीर का सारा शिक्षण जीवेषणा को बुझाने का शिक्षण है। जब तक, जिसे तुमने जीवन कहा है, तुम उसे न बुझाओगे; जब तक तुमने जिसे अब तक मृत्यु कहा है, उसे तुम अंगीकार न कर लोगे--तब तक महाजीवन का द्वार न खुलेगा। क्योंकि तुम जिसे जीवन कहते हो, वह मृत्यु है। और जिसे महावीर मृत्यु कहते हैं, वह महाजीवन है।
श्री अरविंद ने कहा हैः "जब खोजता था तो जिसे मैंने दिन समझा था, प्रकाश समझा था--वह खोजने के बाद अंधेरा साबित हुआ, रात साबित हुई। और जिसे मैंने जीवन जाना था, वह मृत्यु सिद्ध हुई। और जिसे मैंने अमृत समझकर पीया था, वह जहर था।"
जागने के बाद जीवन में बड़ी गहरी उथल-पुथल हो जाती है; सारे मूल्य बदल जाते हैं--जैसे कोई आदमी सिर के बल खड़ा होकर देख रहा हो संसार को, और सारा संसार उसे उलटा मालूम पड़ता हो; और फिर वह पैर के बल खड़ा हो जाये, और तब सारा संसार उसे सीधा मालूम पड़े।
अभी जिसे हमने जीवन समझा है, वह हमारे चित्त की बड़ी विपरीत दशा है। टटोल-टटोलकर, अनुमान लगा-लगाकर, हमने कुछ सोच रखा है कि यह रहा जीवन। रोशनी आने पर, आंख खुलने पर, जीवन कुछ और ही सिद्ध होता है।
आज के सूत्रों में महावीर उस परम जीवन की तरफ इशारे कर रहे हैं।
व्याख्या नहीं है यह, न ही परिभाषा है; यह सिर्फ वर्णन है। इसे भी समझ लेना, फिर हम सूत्रों में प्रवेश करें।
व्याख्या तो परम सत्य की हो नहीं सकती; क्योंकि व्याख्या उसी की हो सकती है जिसका विश्लेषण हो सके, जिसे तोड़ा जा सके, जिसे खंड़ों में बांटा जा सके। जैसे कि मकान है, इसकी व्याख्या हो सकती है कि यह ईंटों का संग्रह है। ईंटों को एक के ऊपर एक जमाया गया है, एक खास तरतीब में बिठाया गया है, तो मकान बन गया है। एक-एक ईंट को अलग कर लो, मकान खो जायेगा। तो ईंटों की एक तरतीब से जमाई गई व्यवस्था का नाम मकान है। लेकिन आत्मा के टुकड़े नहीं होते, खंड नहीं होते। जैसे मकान ईंटों से जमा है, ऐसा आत्मा किन्हीं अंशों से मिलकर नहीं बनी है।
सत्य का खंड नहीं होता, टुकड़े नहीं होते। सत्य तो बस है। तो उसकी व्याख्या नहीं हो सकती।
अगर वैज्ञानिक से पूछो, पानी की क्या व्याख्या है, वह कहता है, हाइड्रोजन आक्सीजन के मिलने से जो बनता है वह पानी है। लेकिन दो चीजों से मिलकर बनता है, इसलिए व्याख्या हो गई। उससे पूछो कि हाइड्रोजन की क्या व्याख्या है, तो वह कहता है, इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, पाजिट्रान से मिलकर जो बनता है वह हाइड्रोजन है। लेकिन उससे पूछो, इलेक्ट्रान की क्या व्याख्या है, तब वह अटक जाता है; क्योंकि अब खंड समाप्त हो गये। वह कहता है, इलेक्ट्रान तो बस इलेक्ट्रान है। अब इसको समझाने का उपाय नहीं, क्योंकि दो से मिलकर बनता नहीं।
दो से जो मिलकर बनता है, उसकी व्याख्या हो सकती है। क्योंकि इन दो के सहारे पर हम इशारा कर सकते हैं।
लेकिन जहां एक ही स्वभाव हो, अखंड, वहां निर्वचन के बाहर हो जाता है। इसलिए इन सूत्रों में महावीर आत्मा के संबंध में जो कहेंगे--पहली बात--वह व्याख्या नहीं है। व्याख्या तो हो नहीं सकती। इशारा है, इंगित है। दूसरी बात--परिभाषा नहीं है। परिभाषा उस चीज की हो सकती है जिसकी सीमा हो। जिसकी सीमा न हो उसकी परिभाषा नहीं हो सकती। परिभाषा का अर्थ ही होता हैः सीमा को खींचना।
तुमसे कोई पूछे, तुम्हारा मकान कहां है, तो परिभाषा हो सकती है; क्योंकि इस तरफ कोई पड़ोसी है, उस तरफ कोई पड़ोसी है; इधर भी सीमा है, उधर भी सीमा है; इधर रास्ता है, उधर नदी है। कुछ सीमा हो सकती है। जहां-जहां सीमा हो सकती है, वहां परिभाषा हो सकती है। हम कह सकते हैं, इन सीमाओं के भीतर जो है, वह मेरा मकान है।
लेकिन आत्मा की या सत्य की तो कोई सीमा नहीं है। आत्मा कहां है--यह कहना तो कठिन है; क्योंकि "कहां" का तो मतलब होगाः स्थान-निर्देश। और आत्मा स्थान में नहीं है। आत्मा कब है--यह भी कहना संभव नहीं है; क्योंकि

"कब" का तो अर्थ होगाः समय में निर्देश। आत्मा समय में भी नहीं है। आत्मा कालातीत है, क्षेत्रातीत है। न वह समय के भीतर है न स्थान के भीतर है--और दो ही उपाय हैं जिसके द्वारा परिभाषा होती है।
जैसे अगर कोई पूछे कि तुम कब पैदा हुए, कहां पैदा हुए, तो परिभाषा हो जाती है। तुम कहते हो, फलां गांव में--स्थान बता दिया; फलां घर में, फलां परिवार में--स्थान बता दिया; फलां तारीख को, सुबह या सांझ या दुपहर, फलां घड़ी-मुहूर्त में--समय बता दिया। परिभाषा हो गई। समय और स्थान का ठीक-ठीक निर्देश कर दिया। तो जहां समय और स्थान एक-दूसरे को काटते हैं, दोनों की रेखायें जहां कटती हैं, वह बिंदु तुम्हारी परिभाषा हो गई।
लेकिन आत्मा का न तो कभी जन्म हुआ, न कभी अंत होता, न किसी स्थान में आत्मा को कभी पाया गया है, न वह स्थान में होती। टाइम-स्पेस, समय और स्थान दोनों के पार है, तो परिभाषा कैसे? आत्मा है--ऐसा कहा जा सकता है; लेकिन परिभाषा नहीं की जा सकती। वस्तुतः तो "आत्मा है", ऐसा कहने में भी भूल हो जाती है; क्योंकि "है" अलग से जोड़ना ठीक नहीं है। आत्मा के होने में ही सम्मिलित है "है"।
जैसे हम कहें कुर्सी है, तो ठीक है; क्योंकि एक दिन कुर्सी नहीं थी और
एक दिन फिर नहीं हो जायेगी। दो "नहीं" के बीच में "है" की सुविधा है। "है" के होने के लिए दो "नहीं" दोनों तरफ चाहिए। एक दिन कुर्सी नहीं थी, अब कुर्सी है; फिर एक दिन कुर्सी "नहीं" हो जायेगी--तो "है" कहने में कुछ अर्थ है।
आत्मा को "है" कहने में क्या अर्थ है? सदा थी, सदा है, सदा रहेगी। जो कभी "नहीं" हुई ही नहीं, उसे "है" भी क्या कहना? तो आत्मा है, इसमें भी पुनरुक्ति है।
आत्मा में ही "है" पन छिपा है। वह उसका स्वभाव ही है। उसे बाहर से रखने
की जरूरत नहीं। कुर्सी में "है" पन नहीं छिपा है। वह उसका स्वभाव नहीं है। एक बार शून्य से आई है, एक बार फिर शून्य में चली जायेगी। आत्मा न आई है न गई है, तो परिभाषा नहीं हो सकती।
फिर आत्मा के संबंध में क्या हो सकता है? महावीर कहते हैं, वर्णन हो सकता है। वर्णन बड़ी अलग बात है। डिसक्रिप्शन; डेफिनीशन नहीं।
वर्णन का अर्थ होता हैः हम सिर्फ इशारे कर सकते हैं कि ऐसा है, ऐसा है, ऐसा है। जिन्होंने जाना है, वे ही वर्णन कर सकते हैं। जिन्होंने नहीं जाना है, वे जानने की यात्रा पर जा सकते हैं; लेकिन वर्णन को सुनकर ही उनकी समझ में कुछ भी न आयेगा। वर्णन से प्यास पैदा हो सकती है।
तुम अंधेरे में हो, तो प्रकाश का मैं वर्णन कर सकता हूंः उससे तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा कि प्रकाश क्या है। इतना ही समझ में आयेगा-- वह भी अगर तुम साहसी हो, दांव पर लगाने की हिम्मत रखते हो, जोखिम का बल है और अभियान पर निकलने की अभीप्सा है--तो इतना ही समझ में आयेगा कि कुछ है जो मैंने अब तक नहीं जाना; और यह आदमी जो इसे जान चुका है, बड़ा आनंदित मालूम होता है, प्रसन्न मालूम होता है; मैं भी जानूं। और निश्चित ही यह आदमी इस अंधेरे को भी जानता है, क्योंकि मेरे पास बैठा है; और इस आदमी ने कुछ और भी जाना है जो अंधेरे से ज्यादा है; भरोसा करूं।
इसलिए श्रद्धा का बड़ा मूल्य है। विज्ञान में श्रद्धा का कोई मूल्य नहीं है; क्योंकि विज्ञान वर्णन नहीं करता, परिभाषा करता है, व्याख्या करता है। तो विज्ञान में कोई श्रद्धा की जरूरत नहीं है। संदेह करो खूब, तो भी विज्ञान तुम्हें समझा देगा कि यह रही व्याख्या, यह रही परिभाषा, यह प्रयोगशाला--कर डालो।
धर्म के साथ कठिनाई है; प्रयोगशाला तो है, लेकिन भीतर है, बाहर नहीं है। मेरी प्रयोगशाला में मैं तुम्हें ले जा नहीं सकता। लाख चाहूं, लाख पुकारूं, लेकिन मेरी प्रयोगशाला में तुम न आ सकोगे। तुम्हारी प्रयोगशाला में मैं नहीं आ सकता। यह प्रयोगशाला अत्यंत निजी है।

विज्ञान की प्रयोगशालाएं सामूहिक हैं। विज्ञान की टेबल पर रखकर कोई चीज जांची-परखी जाये तो सभी देख सकते हैं। धर्म के जगत में तो जो प्रयोग

करता है, केवल वही देख पाता है। कह सकता है, गीत गुनगुना सकता है, उस आनंद की खबर ला सकता है, नाच सकता है, या मौन खड़ा हो जाता है। या उसके जीवन की प्रभा को तुम पहचानो, उसके पास आओ, उसकी पुलक को छुओ, उसके पास शांति को अनुभव करो, उसके आनंद की थोड़ी किरणें तुम पर भी पड़ने दो--तो शायद तुम्हें एक बात भर ख्याल में आ जाये कि जो मेरे जीवन में अब तक हुआ है उससे शांति नहीं मिली, यह आदमी शांत है; जो मेरे जीवन में हुआ है उससे भय नहीं मिटा, इस आदमी का भय मिट गया है; जो मेरे जीवन में हुआ है उससे अभी तक मृत्यु पर मेरी कोई विजय नहीं हुई, इस आदमी की मृत्यु पर विजय हो गई है; जो मैंने जीवन में जाना है उससे चिंताएं बढ़ी हैं, इस आदमी की तिरोहित हो गई हैं; शायद इसे कुछ मिला है जो मैं चूक रहा हूं। थोड़ा चलूं, हिम्मत करूं। थोड़ा मैं भी खोजूं; अपनी सीमा, अपने घेरे के बाहर उठूं।
अपनी सीमा और घेरे के बाहर उठना ही संन्यास है।
संसार तुम्हारी सीमा है। वहां सब तुम्हारा जाना-माना, परिचित है।
संन्यास इस सीमा के जरा बाहर सिर उठाना है।
ये सूत्र वर्णन के सूत्र हैं। एक-एक शब्द बहुमूल्य है--और साथ ही साथ अर्थहीन भी।
जब मैं कहता हूं अर्थहीन, तो मेरा अर्थ है कि अर्थ तो तभी पैदा होगा जब तुम अनुभव करोगे। शब्द बड़े प्यारे हैं, बड़े अनूठे हैं! महावीर ने जब इनको कहा है तो सार्थक हैं, इसीलिए कहा है। मैं जब तुमसे कह रहा हूं तो सार्थक हैं, इसीलिए कह रहा हूं। लेकिन मेरे कहने से ही अर्थ तुम्हारी पकड़ में न आयेगा। अर्थ तो तुम्हें अपने अनुभव से डालना होगा। शब्द तुम्हें दे दूंगा, जैसे शब्द की प्यालियां तुम्हें दे दीं; लेकिन जो मदिरा तुम्हें ढालनी है वह तो तुम्हें भीतर ढालनी पड़े और इन प्यालियों में भरनी पड़े।
ये शब्द कोरे हैं; इनमें तुम प्राण डालोगे तो ये जीवंत हो उठेंगे। इन शब्दों को ही तुम अर्थ मत समझ लेना, जैसा कि पंडितों ने समझ रखा है। तो फिर शब्द को ही लोग दोहराये चले जाते हैं। फिर वे आत्मा का वर्णन सीख लेते हैं, कंठस्थ कर लेते हैं--तोतों की तरह। फिर उसी को दोहराते-दोहराते भूल ही जाते हैं कि हमने अभी जाना नहीं; यह तो हमने सुना था; यह तो श्रवण था; यह तो श्रुति थी। ज्यादा से ज्यादा स्मृति बन गई, लेकिन वेद का अभी जन्म नहीं हुआ। क्योंकि वेद का जन्म तो तुम्हारे ही ध्यान की प्रक्रिया में होगा। तो शब्द ये सब बहुमूल्य हैं, महा गहन अर्थ से भरे हैं; लेकिन तुम्हारे पास पहुंचते-पहुंचते ये खाली कारतूसें रह जायेंगे। तुम इन्हें अगर फिर से जीवंत करना चाहो तो बड़े साहस, अदम्य साहस से और जोखिम उठाने की हिम्मत से ही यह हो सकेगा।
समझने की हम कोशिश करें।
आरुहवि अंतरप्पा, बहिरप्पो छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा, उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं।।
"जिनेश्वर देव का यह कथन है कि तुम मन, वचन और काया से बहिरात्मा को छोड़कर, अंतरात्मा में आरोहण कर, परमात्मा का ध्यान करो।"
"मन, वचन, काया से... "
महावीर की साधना-प्रक्रिया में ये तीन बाधाएं हैं--मन, वचन, काया।
काया तो हमें दिखाई पड़ती है। काया के पीछे छिपी हुई विचारों की पर्तें हैं, सघन पर्तें हैं--उनका नाम वचन। तुम चाहे बोलो या न बोलो, तो भीतर तो बोलते ही रहते हो। चुप भी जो आदमी बैठा है, वह भी भीतर बोल रहा है। वचन जारी है।
तो शरीर की एक पर्त है--स्थूल; उसके भीतर छिपी हुई सूक्ष्म पर्त है विचार की, संस्कार की, धारणाओं की--वह घूम रही है। वह चौबीस घंटे तुम्हें घेरे हुए है। रात सपने में भी चल रही है। उठो, बैठो, चलो, कुछ भी करो, भीतर विचार की एक परिधि अपना घेरा बांधे रखती है।
उस विचार से भी गहरा मन है। अगर आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में कहें
तो जिसको आधुनिक मनोविज्ञान "कांशस मांइड" कहता है, उसी को महावीर वचन कहते हैं। और जिसको आधुनिक मनोविज्ञान "अनकांशस मांइड" कहता है, उसको महावीर मन कहते हैं।

मन का जो हिस्सा तुम्हारी चेतना में प्रविष्ट हो गया है--वह है वचन।
मन का जो हिस्सा विचार बन गया है और मन का जो हिस्सा अभी विचार नहीं बना है, विचार बनने की प्रक्रिया में है--वह है मन।
मन है बीज की भांति; विचार अंकुरित हो गये बीज हैं। और ये तीनों संयुक्त हैं। जो तुम्हारे मन में है, वह आज नहीं कल तुम्हारे विचार में होगा। और जो तुम्हारे विचार में है, वह आज नहीं कल तुम्हारे शरीर में होगा। जो तुम्हारे शरीर में है, वह आज नहीं कल तुम्हारे विचार में था। और जो तुम्हारे विचार में है, वह कल नहीं परसों तुम्हारे मन में था।
शरीर से ही जो छूटना चाहता है, वह छूट न पायेगा; क्योंकि शरीर के आधार
तो विचार में पड़े हैं। विचार से ही जो छूटना चाहता है, वह भी न छूट पायेगा; क्योंकि विचार से भी गहरी एक पर्त है मन की।
बहुत-सी साधना-प्रक्रियाएं हैं जो सोचती हैं शरीर से ही छूटने से सब
हो जायेगा। हठयोग है। हठयोग का सारा आग्रह शरीर पर है। शरीर को ही इस भांति जीत लेना है कि शरीर का हमारे ऊपर कोई बल न रह जाये। लेकिन महावीर कहते हैंः जो जीतने चला है, वह जो विचार का भीतर भाव उठा है, वह भी तो सूक्ष्म शरीर है। वह कोई शरीर से भिन्न नहीं है। उससे एक नये तरह का शरीर निर्मित हो जायेगा, लेकिन शरीर जारी रहेगा।
फिर मंत्रयोग है वह मानता है कि मन को ही बदल लेना, वाणी को, विचार को बदल लेना काफी है। मन के व्यक्त रूप को बदल लेना काफी है। तो मंत्रों का उच्चार करो। मंत्रों के गहन उच्चार से, मंत्र के छंद में बद्ध होकर विचार सो जाते हैं। जो अंकुरित हो गये थे वे भी गिरकर फिर बीज हो जाते हैं। लेकिन मन तो रहेगा। अभिव्यक्त मन समाप्त हो जायेगा; लेकिन छिपा हुआ गूढ़ मन, अनकांशस, अचेतन मन, वह तो बना रहेगा। वह फिर नये मन खड़े करेगा, फिर नये विचार उठायेगा। जब बीज बचा है तो कब तक उससे बचोगे? अंकुरित होगा। फिर वर्षा आयेगी, फिर जरा भूल-चूक हो जायेगी, फिर मंत्र याद न रहेगा--फिर अंकुरण हो जायेगा।
तो महावीर कहते हैं, जिसे आत्मा तक जाना हो, उसे तीनों--मन, वचन, काया-- तीनों के पार उठना होता है।
इसे तुम थोड़ा समझो, क्योंकि यही हम सब हैं--इन तीन में हम खड़े हैं। आत्मा का तो हमें कोई पता नहीं है। आत्मा तो इन तीन के पार है। ऐसा श्रद्धा से हम स्वीकार करते हैं कि होगी। महावीर कहते, बुद्ध कहते, कृष्ण कहते, पतंजलि कहते--ठीक है, कहते हैं तो होगी। लेकिन हमने अब तक जो जाना है, वह ज्यादा से ज्यादा हमारी जानकारी शरीर तक है। तुम शरीर को ही मानते हो कि तुम हो। इसलिए शरीर को भूख लगती है तो तुम कहते हो, मुझे भूख लगी। और जब भी तुम दोहराते हो कि मुझे भूख लगी, तब तुम फिर शरीर-भाव को मजबूत करते हो, क्योंकि यह विचार शरीर-भाव को मजबूत करनेवाला है। शरीर में एक कामवासना की तरंग उठती है, तुम कहते हो, मेरे मन में कामोत्तेजना उठी। तुम शरीर से अपना तादात्म्य कर रहे हो। और जब तुम तादात्म्य करते हो, इसी तादात्म्य के कारण तो यह शरीर निर्मित हुआ है और इसी तादात्म्य के कारण तुम इसे सम्हाले हुए हो और इसी तादात्म्य के कारण तुम भविष्य में भी शरीर निर्मित करते रहोगे। जैसे ही तुमने शरीर को कहा, "मैं", तुमने एक गहरा संबंध जोड़ लिया। साधारणतः हम शरीर के तल पर ही जीते हैं। हम में से जो थोड़े जागरूक होते हैं, वे सोचना शुरू करते हैं कि शरीर मैं नहीं हो सकता। क्योंकि उनको साफ दिखाई पड़ने लगता है कि मैं जीता तो अंतर्विचारों में हूं। कभी ऐसा भी हो जाता है कि तुम भूखे बैठे हो और विचारों में तल्लीन हो तो भूख का पता नहीं चलता। कभी ऐसा हो जाता है कि शरीर थका हुआ है और तुम्हारा बेटा अचानक छत पर से गिर पड़ा; तुम विश्राम करने जा रहे थे, लेकिन अब शरीर में अचानक ऊर्जा आ जाती है। तुम भागे अस्पताल की तरफ, भूल ही गये विश्राम; भूल ही गये कि तुम थके थे, कि चार दिन से सोए नहीं थे, कि लंबी यात्रा से लौटे थे। विचार जब पकड़ लेता है तो शरीर दूर रह जाता है।
खिलाड़ी है, मैदान पर खेलता है, फुटबाल या हाकी खेलता है, पैर में चोट
लग जाती है खेलते वक्त, खून बहने लगता है; दर्शकों को दिखाई पड़ता है, उसे पता नहीं चलता। वह विचारों में तल्लीन है। वह खेलने की धुन में है। अभी

फुरसत कहां! अभी ध्यान देने की सुविधा नहीं है उसे। अभी सारा ध्यान विचारों में जुड़ा है। अभी शरीर दूर पड़ गया, बड़ा दूर पड़ गया। खेल बंद हो जायेगा, अचानक वह शरीर में लौटेगा--खून बहता हुआ मालूम पड़ेगा। वह चकित होगाः इतनी देर तक मुझे पता कैसे न चला!
तुम्हें भी बहुत बार अनुभव हुआ होगाः जब तुम विचार में तल्लीन होते हो, शरीर से दूरी बढ़ जाती है। कभी-कभी विचार की तल्लीनता इतनी हो सकती है कि आपरेशन भी शरीर पर किया जाये और तुम्हें पता न चले।
काशी नरेश का ऐसा ही आपरेशन हुआ था। वे भक्त थे, गीता के प्रेमी थे और गीता को बड़ी तल्लीनता से गुनगुनाते थे। उन्होंने कहा कि मुझे कोई बेहोशी की दवा देने की जरूरत नहीं है। मुझे मेरी गीता गुनगुनाने दो, तुम आपरेशन कर लो। डाक्टर राजी न थे; क्योंकि क्या भरोसा? लेकिन यह आदमी कोई बेहोशी की दवा लेने को राजी न था और आपेरशन एकदम जरूरी था, अन्यथा यह मरेगा। ऐसी हालत देखकर कि यह लेने को राजी नहीं है, मौत तो होने ही वाली है, प्रयोग कर लेना उचित है। डाक्टरों ने आज्ञा दी कि तुम अपनी गीता गुनगुनाओ। घंटाभर आपरेशन में लगा। वे अपनी गीता गुनगुनाते रहे, आपरेशन हो गया और उन्हें पता भी न चला।
विचार में अगर तुम बहुत जोर से संयुक्त हो जाओ तो शरीर और तुम्हारे बीच संबंध दूर का हो जाता है।
तो जिन्होंने विचार के थोड़े-से प्रयोग किये हैं, वे इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि हम शरीर नहीं हैं, विचार हैं। लेकिन विचार भी एक पर्त है। शरीर से गहरी है, लेकिन शरीर की ही है। विचार भी पदार्थ हैं।
महावीर का सिद्धांत इस संबंध में बड़ा अजीब है। महावीर कहते हैं, विचार भी पदार्थ है, मैटिरियल है, पुदगल है। विचार के भी अणु होते हैं। शायद विज्ञान महावीर से जल्दी राजी हो जायेगा; क्योंकि महावीर का बोध बड़ा साफ है। वे कहते हैं, विचार के भी अणु हैं। वह भी कोई अपार्थिव चीज नहीं है, वह भी पार्थिव है। बड़ी सूक्ष्म है, लेकिन पार्थिव है।
विचार से भी कुछ लोग नीचे उतरते हैं। ध्यान में वैसी घड़ी आती है, जब तुम विचारों को शांत कर लेते हो; जब विचारों की तरंगें कम होते-होते होते- होते खो जाती हैं, झील बिल्कुल शांत हो जाती है, कोई विचार की तरंग नहीं होती, वचन नहीं होता, भीतर शब्द नहीं उठते, शब्दों में फल-फूल नहीं लगते, शब्द बिल्कुल शांत हो गये होते हैं।
उस निशब्द दशा में मन के साथ तादात्म्य हो जाता है। तब आदमी सोचता है, यही मैं हूं। यह बड़ा प्यारा क्षण है--बड़ा शांत, बड़ा मौन! और आदमी सोचता है, यही मैं हूं। लेकिन यह भी सूक्ष्मतम शरीर की दशा है।
आधुनिक मनोविज्ञान महावीर से राजी है। आधुनिक मनोविज्ञान कहता है, शरीर और मन दो चीजें नहीं हैं। शरीर और मन ऐसे दो शब्दों का प्रयोग भी आधुनिक मनोविज्ञान धीरे-धीरे बंद कर रहा है। उसने एक नया शब्द गढ़ा हैः साइकोसोमेटिक, मनोशरीर। शरीर और मन, दो शब्द ठीक नहीं हैं; क्योंकि उससे भ्रांति होती है कि जैसे दो चीजें हैं--मन और शरीर।
मन और शरीर एक ही चीज है। शरीर स्थूलतम मन है; मन सूक्ष्मतम शरीर है।
और दोनों के बीच में विचारों की तरंगों का जगत है। लेकिन यह इकट्ठा है।
समाधि की दशा में आदमी मन के बाहर होता है। ध्यान की दशा में मन शांत हो जाता है; समाधि की दशा में मन के बाहर होता है। तब पहली दफे आत्मा का पता चलता है।
आरुहवि अंतरप्पा... ।
"तुम मन, वचन और काया से बहिरात्मा को छोड़कर, अंतरात्मा में आरोहण कर, परमात्मा का ध्यान करो।"
बड़ा अनूठा सूत्र है। सारा योग इसमें आ गया।
गुरजिएफ के जीवन में एक उल्लेख है। वह अमरीका गया था। उसे अपनी ध्यान-विद्यापीठ को चलाने के लिए पैसों की जरूरत थी, तो उसने न्यूयार्क के सारे बड़े धनपतियों को निमंत्रित किया था। न्यूयार्क की जो सबसे ऊंची सोसाइटी, अभिजात वर्ग, उसके चुन्नदे प्रतिनिधि मौजूद थे। गुरजिएफ की खबर तो अमरीका में पहुंच गई थी। उस आदमी को देखने को लोग उत्सुक थे। कोई पचास-साठ

मित्रों का समूह था; स्त्रियां थीं, पुरुष थे। जिस व्यक्ति ने गुरजिएफ के संस्मरण लिखे हैं, उसने लिखा है कि गुरजिएफ ने मुझे बुलाया इन लोगों से मिलने के पहले और मुझसे कहा कि तुम्हें जितने भी गंदे और अश्लील शब्द आते हों अंग्रेजी के, मुझे बता दो। वह आदमी थोड़ा चौंका। उसने कहा कि अश्लील शब्दों से क्या करना? क्योंकि गुरजिएफ अंग्रेजी ठीक से जानता नहीं था। उसने कहा, तुम फिक्र छोड़ो। तो जितने भी गंदे अश्लील शब्द उसे आते थे, उसने बता दिये। गुरजिएफ ने वे लिख लिये और याद कर लिये। फिर गुरजिएफ जब बोलने गया उन मित्रों के बीच, तो थोड़ी देर उसने बातें कीं, फिर इसके बाद उसने कामवासना की बात शुरू की। फिर धीरे-धीरे तो कामवासना की बात को ऐसा गहरा ले गया कि सिर्फ अश्लील और अभद्र शब्दों का ही उपयोग करने लगा। और घड़ीभर में--जिसने संस्मरण लिखे हैं उसने लिखा है--ऐसी हालत आ गई कि सारे लोग कामोत्तेजित हो गये। भूल ही गये। स्त्रियां पुरुषों के साथ खेल में लग गईं, पुरुष स्त्रियों के साथ खेल में लग गये; यह भूल ही गये कि गुरजिएफ को मिलने आये हैं। गुरजिएफ चुप होकर बैठ गया और वह सारी रासलीला चलने लगी। तब ठीक जब वे रासलीला में बड़े डूबने के ही करीब थे, वह खड़ा हुआ। उसने कहा, "सावधान! मेरी तरफ देखो! सिर्फ शब्दों के आधार पर मैंने तुम्हारी बेहोशी को प्रगट कर दिया है। सिर्फ कुछ शब्द बोलकर मैंने तुम्हारे मनों को तरंगित कर दिया है। यह स्थिति देखो अपनी। तुम शब्दों के इतने गुलाम हो! और मैंने सिर्फ तुम्हारी बेहोशी दिखाने के लिए ही यह प्रयोग किया है। और मैं एक संस्था बना रहा हूं, जहां मैं होश सिखाना चाहता हूं; उसके लिए रुपये चाहिए।"
उसने हजारों डालर इकट्ठे कर लिये उसी क्षण। यह बात तो इतनी साफ थी। लोग चौंककर बैठ गये एकदम घबड़ाकर कि वे यह क्या कर रहे थे! भूल ही गये थे-- शिष्टाचार, समाज, नीति, धर्म। इस आदमी ने सिर्फ शब्दों के जाल पर... । तुमने कभी ख्याल किया? पर्दे पर फिल्म में कामोत्तेजना के चित्र आने शुरू होते हैं, तुम कामोत्तेजित हो जाते हो! तुमने कभी सोचा कि धूप-छाया का खेल है? लेकिन तुम इतने उद्विग्न हो जाते हो... !
शब्दों के आधार पर, वचनों के आधार पर हम जीते हैं। कोई तुमसे कह देता है, "बड़े प्यारे हैं आप", फूल खिल जाते हैं! कोई जरा घृणा से देख देता है, नर्क प्रगट हो जाता है। कोई जरा सम्मान से नहीं पूछता, मन उदास हो जाता है। कोई नमस्कार कर लेता है, उदास थे, उदासी खो जाती है।
तुमने कभी देखा कि तुम कितने शब्दों के हाथ में हो?
शब्द तुम्हारी बेहोशी हैं। इसको महावीर कहते हैं वचन। इससे जागना जरूरी है। ऐसी घड़ी लानी जरूरी है कि कोई प्रशंसा करे कि निंदा, बराबर हो जाये। ऐसी घड़ी लानी जरूरी है कि शब्द इतने बलशाली न रह जायें कि तुम्हारे प्राणों को आंदोलित कर दें, अन्यथा तुम्हारी आत्मा का क्या होगा? विज्ञापन की कला में कुशल जो विशेषज्ञ हैं वे इस बात को समझ गये हैं
कि आदमी शब्दों से जीता है, तो शब्दों को दोहराये चले जाते हैं। तुम्हारे मन पर पर्तें बना देते हैं। बिनाका टुथपेस्ट, बिनाका टुथपेस्ट दोहराये चले जाते हैं। तुम शायद सोचते भी नहीं कि तुम्हारा कुछ बिगड़ रहा है; लेकिन तुम्हें पता नहीं है, यह शब्द बैठता जाता है, यह बैठता जाता है। यह तुम्हारा वचन बन जाता है। फिर कल तुम जब बाजार में खरीदने जाते हो और दुकानदार पूछता है, कौन-सा टुथपेस्ट, तो तुम्हें याद भी नहीं रहता कि तुम होश में कह रहे हो कि बेहोशी में। तुम कहते हो, बिनाका टुथपेस्ट। और तुम यही सोचते हो कि तुमने स्वयं ही सोचकर तय किया है। तुमने सोचकर तय नहीं किया है; यह विज्ञापित है। अखबारों में पढ़ा, दीवालों पर लिखा देखा, रेडियो पर सुना, टेलीविजन पर देखा, सुंदर स्त्रियों की तस्वीरें देखीं, हंसते हुए मोतियों की तरह उनके चमकते हुए दांत देखे--और बिनाका टुथपेस्ट, और बिनाका टुथपेस्ट, और हर जगह सुंदर स्त्रियों की तस्वीरें देखें विज्ञापनों में। उन्होंने कहा कि मेरे पति को कौन-सी दो चीजें पसंद हैं? --"मैं और बिनाका टुथपेस्ट!"
सब तरफ से शब्द की एक पर्त तुम्हारे भीतर बनायी जाती है। राजनीतिज्ञ वही करते हैं, दुकानदार वही करते हैं। एक शब्द बिठाया जाता है। बहुत बार

दोहराने से तुम्हारे भीतर लकीरें खिंच जाती हैं। समाजवाद, समाजवाद, समाजवाद! धीरे-धीरे धीरे-धीरे यह लकीर बैठ जाती है। जब लकीर मजबूत होकर बैठ जाती है तो वही लकीर तुम्हें आंदोलित करने लगती है, तुम्हें गतिमान करने लगती है।
तुम समाज से बंधे हो शब्दों के कारण। जरा शब्दों को हिला-डुलाकर देखो
और तुम पाओगे, तुम समाज से मुक्त होने लगे। हिंदू हूं, मुसलमान हूं, ईसाई हूं--क्या हैं ये? ये सिर्फ शब्द हैं! जैन हूं, बौद्ध हूं--ये क्या हैं? सिर्फ शब्द हैं! लेकिन बचपन से दोहराया गया कि तुम जैन हो; इतनी बार दोहराया गया है कि अब तुम्हें याद भी नहीं आता कि कब शुरू किया गया था दोहराना। यह विज्ञापन, यह कंडीशनिंग, यह संस्कार ऐसा डाला गया है कि अब तुमसे कोई नींद में भी पूछे, तो भी तुम कहोगे, जैन हूं। शराब भी पीकर सड़क पर गिर पड़े होओ और कोई हिलाकर पूछे कि कौन हो, तुम कहोगे, जैन। इतना गहरा चला गया है!
मगर यही शब्द तुम्हें आंदोलित करता है। फिर अगर कोई कह देता है, "इस्लाम खतरे में है", तो तुम मरने-मारने को उतारू हो जाते हो। "इस्लाम" एक शब्द है। शब्द सत्य नहीं है। कोई शब्द सत्य नहीं है।
शब्द के साथ संबंध को शिथिल करो।
तो महावीर कहते हैं, शरीर के साथ संबंध को शिथिल करो, शब्द के साथ, वचन
के साथ संबंध को शिथिल करो। और फिर धीरे-धीरे मन के साथ।
शरीर से शुरू करो, क्योंकि वह स्थूलतम है; उस पर प्रयोग करना आसान होगा। इसलिए महावीर की पूरी प्रक्रिया शरीर से शुरू होती है, मन पर पूरी होती है।
जब तुम शरीर से मुक्त होने लगोगे तब तुम्हें दिखाई पड़ेगा भीतर का बंधन--वचन का। जब तुम वचन से मुक्त होने लगोगे तब तुम्हारी आंखें इतनी साफ होंगी, पारदर्शी होंगी कि तुम्हें मन का बंधन दिखाई पड़ेगा। और इन तीनों के पार आत्मा है। और उस आत्मा में परमात्मा छिपा है।

"जिनेश्वर देव का यह कथन है कि तुम मन, वचन और काया से बहिरात्मा को छोड़कर, अंतरात्मा में आरोहण कर, परमात्मा का ध्यान करो।"
बाहर से भीतर और भीतर से और भीतर... शरीर हमारा सेतु है बाहर से। वचन भी हमारा सेतु है बाहर से। मन भी हमारा सेतु है बाहर से। जुड़े हैं हम इस तरह। इसलिए तुमने देखा, गूंगा आदमी जो बोल नहीं सकता, वह समाज का हिस्सा नहीं हो पाता! जड़बुद्धि; जिसके पास मन की बहुत क्षमता नहीं है, वह अकेला रह जाता है। तुमने यह ख्याल किया, इस समाज में वे ही लोग सर्वाधिक मूल्यवान हो जाते हैं जो शब्दों का प्रयोग करने में सर्वाधिक कुशल होते हैं! नेता हों, धर्मगुरु हों, कवि हों, लेखक हों--जिन लोगों की भी क्षमता वचन पर गहरी है, वे इस जगत में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। जिनकी वचन पर पकड़ गहरी नहीं है, वे पिछड़ जाते हैं।
मनुष्य का असली समाज भाषा में है। इसलिए जो बच्चा देर तक नहीं बोलता, मां-बाप चिंतित हो जाते हैं, घबड़ा जाते हैं कि अब बड़ा मुश्किल हुआ। क्योंकि यह बच्चा कभी सभ्य न बन सकेगा। यह समाज का हिस्सा न बन सकेगा। यह अधूरा पड़ेगा, अकेला पड़ा रह जायेगा। इसकी कोई जीवन की यात्रा, गति न होगी। ये सेतु हैं जो हमें बाहर से जोड़े हुए हैं। इन सेतुओं से मुक्त हम होना सीखें तो हम भीतर से जुड़ेंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि महावीर कहते हैं, तुम बोलो मत। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि महावीर कहते हैं, शरीर की आत्महत्या कर डालो। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि महावीर कहते हैं, मन को मार डालो। न, महावीर कहते हैं, तुम अपने को शिथिल कर लो इनसे। जब इनकी जरूरत हो, उपयोग कर लो। लेकिन जब इनकी जरूरत न हो तो इनकी जकड़ न रहे। चलना है, कहीं जाना है, तो शरीर का उपयोग करना पड़ेगा। किसी से कुछ बोलना है, कहना है, तो वचन का उपयोग करना पड़ेगा। कुछ सोचना है, चिंतन करना है, तो मन का, मनन का उपयोग करना पड़ेगा। लेकिन यह उपयोग हो। ऐसा न हो कि तुम यह भूल ही जाओ कि तुम इनसे अलग हो। और जब इनका उपयोग नहीं करना है तो तुम इनको बांधकर एक कोने में रख सको। इतनी क्षमता बनी रहे।

तुमने देखा? लोग सिनेमा-घरों में बैठे हैं, होटलों में बैठे हैं और टांगें हिला रहे हैं! उनसे पूछो कि टांग किसलिए हिला रहे हो? चलते, तब सब ठीक था; चलने में टांग हिलनी चाहिए। मगर यहां कुर्सी पर बैठे-बैठे टांग क्यों हिला रहे हो? कहोगे तो वे चौंककर रोक लेंगे। वे कहेंगे, हमें कुछ याद न था। लेकिन इसका यह मतलब हुआ कि शरीर के साथ संबंध ऐसा हो गया है कि जब जरूरत नहीं होती तब भी टांगें हिलती जाती हैं।
नींद में लोग बड़बड़ाते हैं। पूछो, "किससे बात कर रहे हो? अब तो यहां कोई
भी नहीं, अब तो चुप हो जाओ!" तो वे नींद में बड़बड़ाते हैं। कोई न हो तो भी क्या हुआ; बोलने की आदत ऐसी पड़ गई है!
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अगर किसी आदमी को तीन महीने के लिए एकांत-गृह में छोड़ दिया जाये जहां सब सुविधा हो, उसे वक्त पर भोजन सरककर मिल जाये मशीन के द्वारा, कोई अड़चन न हो, लेकिन बोलने को कोई न हो--तो तीन सप्ताह के बाद उसके ओंठ हिलने लगेंगे। तीन सप्ताह तक वह भीतर-भीतर बात करेगा। तीन सप्ताह के बाद वह ओंठ हिलाकर बात करने लगेगा। छह सप्ताह के बाद वाणी बाहर आने लगेगी। नौ सप्ताह के बाद वह बड़े खुलकर बोलेगा। अकेले। और अब इस तरह बोलेगा कि जैसे किसी से बात कर रहा है और कोई मौजूद है। बारहवें सप्ताह होते-होते वह बिल्कुल पागल हो जायेगा।
तुमने पागलखाने में लोग बैठे देखे हैं जो अपने से बातें कर रहे हैं? उनको हो क्या गया है? वाणी के साथ, वचन के साथ इतना ज्यादा तादात्म्य हो गया है कि अब दूसरे की मौजूदगी भी जरूरी नहीं है। तुम्हें तो दूसरे को खोजना पड़ता है, क्योंकि तुम्हें अभी थोड़ा-सा होश बाकी है कि बिना दूसरे के कैसे बात करो! उठे, चलो मित्र के घर जायें, होटल जायें, क्लब-घर जायें। क्योंकि अभी तुम्हारी इतनी हिम्मत नहीं है कि अकेले ही बात करने लगो। हालांकि जब तुम दूसरे से भी बात करते हो, तो भी तुम अकेले ही बात कर रहे हो। वह दूसरा चाहे सुनने को राजी भी नहीं है। वह ऊबा हुआ है, जम्हाई लेता है, घड़ी देखता है। वह छिटकना चाहता है, लेकिन तुम उसको पकड़े हुए हो!
लोग हाथ तक पकड़कर बातें करते हैं कि कहीं निकल न जाओ! बिल्कुल पास आ जाते हैं, बिल्कुल चेहरे के पास चेहरा ले आते हैं कि कहीं छूटकर खिसक न जाओ! बामुश्किल तो मिले हो! वह तुम्हारी सुनना नहीं चाहता। वह हां-हूं करता है। वह कहता है, ठीक है, सब ठीक है; मगर तुम अपना कहे चले जा रहे हो!
और तुमने कभी यह ख्याल किया है कि दो लोग जब बातें करते हैं, तुम जरा चुप होकर शांति से बैठकर उन दोनों की बातें सुनो तो तुम हैरान होओगेः वे दोनों एक-दूसरे से बात नहीं करते! एक को अपनी कहनी है, दूसरे को अपनी कहनी है। दोनों अपनी-अपनी कहते हैं। पति-पत्नी की बात सुनो तो बहुत साफ हो जायेगा, दोनों अपनी-अपनी कहते हैं। हां, इतना अभी होश है कि थोड़ा-थोड़ा एक-दूसरे की बातचीत में तार जोड़ते जाते हैं, ताकि ऐसा न लगे कि ये बिल्कुल पागल हैं।
दो प्रोफेसर पागल हो गये थे। वे एक पागलखाने में थे। मनोवैज्ञानिक जो उनका अध्ययन कर रहा था, बड़ा हैरान हुआ; क्योंकि वे दोनों बात करते, तो जब एक बात करता तो दूसरा चुप हो जाता। दोनों प्रोफेसर थे, सुशिक्षित थे। फिर जब दूसरा करता तो पहला चुप हो जाता। लेकिन दोनों की बातों में कोई तार-तुक नहीं, कोई संगति नहीं। एक आकाश की हांक रहा है, दूसरा जमीन की हांक रहा है। उससे कोई लेना ही देना नहीं। कहीं तार जुड़ते ही नहीं; आसपास भी नहीं आते, जुड़ने की बात दूर। समानांतर चल रही हैं रेखाएं, कहीं मिलती नहीं। आखिर वह बड़ा हैरान हुआ कि इतने पागल हैं कि कुछ भी बकते हैं। लेकिन इतना ख्याल रखते हैं, जब दूसरा बोलता है तो एक चुप हो जाता है। तो वह अंदर गया। उसने पूछा कि यह बड़े रहस्य की बात है! जब एक बोलता है, दूसरा चुप क्यों हो जाता है? उसने कहा, "क्या तुमने समझा है हम पागल हैं? हमको कैसे वार्तालाप करना, आता है। क्या तुमने समझा हम पागल हैं? जब एक बोलता है, दूसरे को चुप हो ही जाना चाहिए।" लेकिन दूसरा जब चुप है, अपने भीतर गुनतारा बिठा रहा है; जब यह चुप हो जायेगा, तब वह अपना शुरू कर देगा। ये दोनों धाराएं अलग-अलग चल रही हैं, अपने-अपने भीतर चल रही हैं।

तुम थोड़ा वचन से जागो! वचन से जागे कि तुम समाज से छूटे--जंगल भागने से कोई समाज से मुक्त नहीं होता। भाषा से हट जाने से समाज से मुक्त होता है। इसलिए वास्तविक एकांत भाषा से मुक्ति है। हिमालय पर भी जाओगे तो भाषा से अगर मुक्त न हुए तो तुम पौधों से, वृक्षों से बात करने लगोगे, पक्षियों से बोलने लगोगे। बोलने के लिए कोई भी सहारा खोज लोगे। कुछ न होगा तो आकाश में बैठे भगवान से चर्चा शुरू कर दोगे। देवी-देवता और अप्सरायें प्रगट होने लगेंगी। वे सब तुम्हारे कल्पना के जाल हैं। लेकिन तुम कुछ पैदा कर लोगे जिसके सहारे तुम बात कर सको।
भाषा से जो मुक्त हुआ, वही संन्यासी है। इसीलिए महावीर ने अपने संन्यासी को "मुनि" कहा। मुनि का अर्थ हैः भाषा से जो मुक्त; मौन को जो उपलब्ध। सोचकर कहा।
मुनि का अर्थ नहीं है, संसार से भाग गया। मुनि का अर्थ नहीं है, घर से भाग गया। बड़ी गहरी बात कहीः भाषा से जाग गया; वचन का पुराना पागलपन न रहा। जरूरत होती है तो उपयोग कर लेता है, अन्यथा सरकाकर बगल में रख देता है। जैसे तुम कार का उपयोग कर लेते हो; जब जाना है बैठ गये, कार चलाई, वापस गैरेज में बंद कर दी। ऐसे ही वह वाणी के यंत्र का उपयोग कर लेता है, जब जरूरत हुई; फिर वापस गैरेज में बंद कर दी। ऐसे ज्यादातर वह मौन रहता है, मौन में डूबता है; जरूरत के वक्त भाषा में उतरता है। लेकिन भाषा उपकरण हो जाती है। अब यह भाषा का मालिक है।
जिस दिन भाषा उपकरण हो गई, उस दिन तुम मुनि हुए। तुमने घर छोड़ा या न छोड़ा, मुझे फिक्र नहीं है। लेकिन जिस दिन भाषा से तुम छूटे, भाषा का कारागृह तुम्हारे ऊपर वजनी न रहा, भारी न रहा, तुम समर्थ हुए जब चाहो तो बोलो, लेकिन बोलने की चाह तुम्हें पागल की तरह आंदोलित नहीं करती--तो तुम मुनि हो गये।
"मन, वचन और काया से बहिरात्मा को छोड़कर, अंतरात्मा में आरोहण कर, परमात्मा का ध्यान करो।"
ये बाहर जाने के मार्ग हैं। शरीर बाहर से जोड़ता है। स्वभावतः शरीर बाहर से आया है, मां से मिला, पिता से मिला। तुम इसे लेकर नहीं आये। यह बाहर के द्वारा दिया गया है, बाहर की भेट है। यह तुम्हारी मां का है, तुम्हारे पिता का है।
उनका भी है, कहना ठीक नहीं है; क्योंकि उनके पास भी जो शरीर था वह उनके माता-पिता का था। उनका भी था, यह भी कहना ठीक नहीं।
इसलिए अगर इसकी पूरी गहराई में जाओगे तो शरीर प्रकृति का है; बाहर से आया है; मिट्टी का है; जल का है; वायु का है; आकाश का है; पंच महाभूतों का है; तुम्हारा नहीं है। जो बाहर से आया है वह बाहर की गुलामी में है। स्वभावतः तुम्हारे भीतर भी जो जल है वह बाहर के जल के ही नियमों का पालन करता है, तुम्हारे नियमों का पालन नहीं करता। कैसे करेगा? तुमसे उसका कुछ लेना- देना नहीं है। तुम्हारे भीतर जो मिट्टी है, वह मिट्टी के नियमों का पालन करती है, तुम्हारे नियमों का पालन नहीं करती। उस पर गुरुत्वाकर्षण का काम होता है। तुम्हारे भीतर जहां से जो आया है, उसी नियम का पालन करता है। वायु वायु का पालन करती है। अग्नि अग्नि का पालन करती है। इसे तुम ख्याल रखना। इसलिए अगर तुमको चांद, पूर्णिमा के चांद को देखकर बड़ी उमंग उठती है,
तो तुमने कभी सोचा न होगा, क्यों उठती है! यह वैसे ही उठती है उमंग, जैसे सागर में उमंग उठती है। क्योंकि सागर चांद से प्रभावित होता है, आंदोलित होता है, ज्वार उठता है, नाचने लगता है। बड़ी लहरें, उत्तंग लहरें उठती हैं, सागर पगला जाता है इसलिए चांद की रात में ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो थोड़ा पगला न जाता हो। जो बहुत संवेदनशील हैं, बहुत ज्यादा पगला जाते हैं। इसलिए पागलों के लिए अंग्रेजी में शब्द हैः लूनाटिक। लूनाटिक का मतलब होता है चांदमारा; चांद ने मारा इसे। हिंदी में भी चांदमारा पागल के लिए उपयोग करते हैं।
आदमी के शरीर के भीतर कोई अस्सी प्रतिशत जल है, थोड़ा नहीं है। और यह जल ठीक वैसा ही जल है जैसा सागर का। उतने ही लवण इस शरीर के जल में भी हैं। हिंदू कहते हैं कि पहला अवतार मछली का। वैज्ञानिक भी कहते हैं कि मनुष्य

का पहला अवतरण मछली में। और मछली के भीतर जो जल का ढंग है, वही आदमी के शरीर के भीतर भी है। अभी भी है। इसलिए जब सागर उत्तंगित हो जाता है, तरंगित हो जाता है, तो तुम भी तरंगित हो जाते हो। चांद को देखकर कौन मोहित नहीं हो जाता! लेकिन यह तुम नहीं हो जो मोहित हो रहे हो; यह तुम्हारे भीतर का जल है, अस्सी प्रतिशत, जिसमें तरंग उठी है बड़ी सूक्ष्म। अगर इसे तुम समझोगे तो चांद हो कि अमावस हो, सब बराबर हो गये। फिर कोई फर्क न रहा।
तुम जब एक स्त्री को देखकर आंदोलित हो जाते हो, किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हो, कोई वासना का ज्वार तुम्हें घेर लेता है, तो तुम यह मत सोचना कि तुम प्रभावित हो गये हो; ये तुम्हारे शरीर के भीतर पड़े हुए स्त्री-हारमोन, ये तुम्हारे शरीर के भीतर पड़े हुए पुरुष-हारमोन, यह तुम्हारे शरीर की केमिस्ट्री है, रसायन है जो प्रभावित हो रही है। क्योंकि तुम्हारा आधा शरीर स्त्री का है, आधा पुरुष का है। सभी अर्धनारीश्वर हैं। आधा मां से मिला है, आधा पिता से मिला है।
तो जब भी तुम किसी स्त्री को देखकर प्रभावित होते हो, तो तुम यह मत सोचना कि मैं प्रभावित हुआ। वहां तुम भ्रांति कर रहे हो। वहां शरीर के साथ तुमने तादात्म्य कर लिया। ये तो तुम्हारे शरीर के भीतर के द्रव्य हैं जो आंदोलित हुए; क्योंकि ये उसी नियम को मानकर चलते हैं जो पदार्थों का नियम है।
यह कर्षण, यह आकर्षण, यह चुंबक पौदगलिक है, शारीरिक है। यह पदार्थगत है। यह होना भी चाहिए पदार्थगत।
इसलिए जैसे-जैसे व्यक्ति अनुभव करता है कि मैं शरीर नहीं हूं, वैसे- वैसे दूसरों के शरीर उसको कम प्रभावित करते हैं। जिस दिन व्यक्ति को यह पूरा अनुभव होने लगता है कि मैं शरीर हूं ही नहीं, उसी दिन स्त्री-पुरुष के शरीर के प्रभाव समाप्त हो जाते हैं। फिर कौन पास से निकल जाता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारे भीतर कोई तरंग नहीं उठती। फिर पूर्णिमा की रात हो कि अमावस की रात, सब बराबर हो जाता है। शरीर में तंरगें उठती रहेंगी, इससे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। तुम दूर खड़े द्रष्टा हो जाते हो। मन भी मन के ही नियमों को मानकर चलता है, तुम्हारे नियम मानकर नहीं चलता। इसलिए तुमने कई दफे देखा होगा कि अगर तुम दस आदमियों के पास गये मिलने और वे दसों प्रसन्न थे, आनंदित थे, तुम उदास थे; लेकिन क्षणभर में तुम भूल जाते हो कि तुम उदास हो। उन दस आदमियों की प्रसन्न-चित्तता में तुम भी प्रसन्न हो जाते हो। तुम भी हंसने लगते हो। घड़ीभर पहले आंखें आंसुओं से भरी थीं, क्या हो गया इतनी जल्दी? वह जो मन के सूक्ष्म परमाणु हैं... दस आदमियों के परमाणु निश्चित ही तुमसे ज्यादा मजबूत हैं। तुम्हारा मन अल्पमत में हो गया, बहुमत ने हावी कर दिया तुम्हें, इसलिए उदास आदमियों के पास जाओगे, उदास होने लगोगे।
तुम कभी गये हो अस्पताल किसी मरीज को देखने? जल्दी भागने का मन होता है। बीमार लोग हैं, अस्वस्थ लोग हैं, उदास लोग हैं, जराजीर्ण लोग हैं--उनके पास तुम भी जराजीर्ण होने लगते हो। घबड़ाहट होती है, अकुलाहट होती है, भाग जाने का मन होता है।
तुमने कभी ख्याल किया कि डाक्टर कठोर हो जाता है! होना ही पड़े, नहीं तो
वह मर जाये। अगर डाक्टर कठोर न हो तो जीए कैसे? चौबीस घंटे उदास, बीमार, रुग्ण... । उसे धीरे-धीरे इतनी कठोरता भीतर बना लेनी पड़ती है कि उसे पता ही नहीं चलता, कि कौन उदास है, कौन मर रहा है। ये सब घटनाएं साधारण हो जाती हैं। कोई मरीज मर गया तो वह यह नहीं कहता कि कोई आदमी मर गया--कौन-सा बिस्तर खाली हो गया! कौन-सा नंबर मर गया! आदमी की बात उठानी ठीक नहीं है, नंबर ही मरते हैं अस्पताल में। और डाक्टर को नंबर पर ही ध्यान रखना जरूरी होता है। उतनी कठोरता जरूरी है, नहीं तो वह मर जायेगा। वह जी न सकेगा। उसकी हंसी बिल्कुल सूख जायेगी। उसके लिए जीने का कोई उपाय न रह जायेगा।
इसलिए अकसर जब कभी कोई युवक मेरे पास आ जाते हैं, वे कहते हैं कि मैं अपनी एक डाक्टर साथिन के साथ विवाह कर रहा हूं और युवक भी डाक्टर तो मैं कहता हूं, थोड़े सावधान! एक ही डाक्टर ठीक है। दोनों डाक्टर इतने कठोर होंगे कि तुम पिघल न पाओगे; तुम एक-दूसरे से मिल न पाओगे। तो यह विवाह

व्यवसायिक तो उपयोगी होगा, आर्थिक रूप से उपयोगी होगा; लेकिन जीवन से इसका कोई संबंध न होगा।
ध्यान रखना, तुम्हारा मन प्रतिक्षण दूसरे के मनों से आंदोलित हो रहा है। हिंदुओं की भीड़ चली जा रही है मुसलमानों की मस्जिद जलाने, या मुसलमानों की भीड़ चली आ रही है हिंदुओं का मंदिर तोड़ने--तब एक भला-अच्छा आदमी भी जो नमाज पढ़ता है, सादा-सीधा है, कभी किसी की हिंसा करने की नहीं सोची, किसी का मकान जलाने की नहीं सोची--वह भी उस भीड़ में चल पड़ता है! तुमने कभी भीड़ में देखा कि अचानक तुममें गति आ जाती है! भीड़ अगर उत्साह से है, तो तुम उत्साह से भर जाते हो! भीड़ अगर तेजी से चल रही है तो तुम तेजी से दौड़ने लगते हो। भीड़ अगर मकान में आग लगा रही है तो तुम उसमें भी रस लेने लगते हो। बाद में अगर कोई तुमसे पूछेगा, तो तुम कहोगे, "पता नहीं कैसे यह हो गया! मैंने क्यों साथ दिया!" अगर तुमसे कोई यह पूछे कि क्या अकेले तुम यह कर सकते थे, तो तुम निश्चित कहोगे कि नहीं कर सकता था। अकेले तो मैंने कभी ऐसा नहीं किया। यह भीड़ में हो गया। भीड़ में तुम्हारा उत्तरदायित्व क्षीण हो जाता है। बहुमत हावी हो जाता है। मन की तरंगें चारों तरफ से तुम्हें घेर लेती हैं, आंदोलित कर देती हैं।
जो आदमी भीड़ से प्रभावित नहीं होता, वह मन के बाहर हो गया। जो आदमी भीड़
से प्रभावित होता है, वह मन के भीतर है। इसलिए तो राजनेता रैली निकालते हैं--अपना-अपना प्रभाव दिखाने के लिए, कि कितने लाख आदमी उनकी रैली में सम्मिलित थे। उससे लोग प्रभावित होते हैं, निश्चित ही प्रभावित होते हैं। जिसकी रैली में लाख थे और जिसकी रैली में पांच लाख थे, वह जो जनता खड़ी देख रही है चारों तरफ वह पांच लाखवाले से प्रभावित होती है। इसमें कोई गणित नहीं बिठाना पड़ता। यह अनजान है। वह पांच लाख की भीड़ प्रभावित कर देती है। अगर किसी राजनेता के चुनाव में हारने की अफवाह भी फैल जाये तो वह हार जाता है; जीतने की अफवाह फैल जाये तो वह जीत जाता है।
अंग्रेजी में कहावत हैः नथिंग सक्सीड्स लाइक सक्सेस। सफलता से ज्यादा कोई चीज सफल नहीं होती। बड़ी ठीक है। क्योंकि जब तुम सफल हो रहे होते हो तो तुम चारों तरफ परमाणु फेंकते हो अपनी सफलता के। जब तुम असफल हो रहे होते हो तो तुम चारों तरफ परमाणु फेंकते हो अपनी असफलता के। असफलता में कौन साथ देता है! जीते के साथ सभी हो लेते हैं, हारे के साथ कौन होता है! ऊगते सूरज के सभी साथी हैं, डूबते सूरज का कौन साथी है!
लेकिन भीड़ का राज क्या है? तुम भीड़ से इतने आंदोलित क्यों होते हो? सारे दुनिया के धर्म अपनी भीड़ को बढ़ाने के लिए इतने पागल क्यों रहते हैं? क्योंकि भीड़ है तो और भीड़ को आकर्षित करने का उपाय है। जितनी बड़ी भीड़ है उतनी भीड़ को आकर्षित करने का उपाय है। हिंदू अगर बीस करोड़ हैं, मुसलमान अगर साठ करोड़ हैं या ईसाई अगर एक अरब हैं, तो स्वभावतः यह भीड़ सारे जगत के मन को आंदोलित करती है। यह भीड़ परमाणु फेंकती है।
ध्यान रखना, भीड़ से सावधान रहना। क्योंकि जब तुम भीड़ से प्रभावित होते हो, तब तुम अपने ही मन से प्रभावित हो रहे हो--और तुम्हारा मन तुम्हें तरंगित कर रहा है।
शरीर, वचन, मन--तीनों से पार साक्षी-भाव में ठहरना है। और जो साक्षी- भाव में ठहरता है, वही परमात्मा का अनुभव कर पाता है।
इलाही! वह न.जर दे आशियां तक हो, कफस जिसको
न ऐसी कम निगाही, जो कफस को आशियां समझे।
हे प्रभु! ऐसी आंख दे कि घर भी जेलखाना मालूम पड़े। ऐसी ओछी आंख मत दे देना कि जेलखाना भी घर मालूम पड़ने लगे।
अभी तो जेलखाना घर मालूम पड़ता है। अभी तो तुम अपने शरीर को अपना जीवन समझे हो। यह तुम्हारा कारागृह है। अभी तो तुम अपनी भाषा की कुशलता को अपनी सामर्थ्य समझे हो। यह तुम्हारी गुलामी है। अभी तो तुमने मन को अपना बल समझा है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, मन की शक्ति कैसे बढ़े, यह बताएं! मन
की शक्ति बढ़ानी है कि मन से मुक्त होना है? वे कहते हैं, संकल्प थोड़ा कम है। विल पावर चाहिए!

विल पावर, संकल्प की शक्ति तो मन को ही बढ़ायेगी।
मन से दूर होकर जो मिलता है वह आत्मबल है। मन से जो मिलता है वह कोई बल नहीं है; वह तो तुम्हारी निर्बलता है। वह तो धोखा है।
अर्श से आगे निकल जाएं हवाए-शौक में
कम-से-कम यह रफअते-परवाज होनी चाहिए।
आकाश से भी आगे जाना है!
अर्श से आगे निकल जाएं हवाए-शौक में
कम-से-कम यह रफअते-परवाज होनी चाहिए।
--उड़ान की ऐसी चाह, उड़ान की कम से कम ऐसी अभीप्सा, कि आकाश से भी पार हो जायें!
यह शरीर तो मिट्टी से बना है। इससे तो पार होना ही है। ये वचन, ये शब्द
ये भी मिट्टी के ही सूक्ष्म अणु-परमाणु हैं, इनसे भी मुक्त होना है। यह मन, यह तो मन इस शरीर और वाणी का ही कोषागार है, संचित परमाणु हैं--इससे भी मुक्त होना है। वहीं अंतआर्काश शुरू होता है। और आकाश से भी आगे निकल जायें, वहीं परमात्मा है--जहां यह भी पता नहीं रहता कि मैं आत्मा हूं, जहां सिर्फ आत्मा ही रह जाती है, मैं बिल्कुल गिर जाता है... ।
अब इसे थोड़ा समझना। हम कहते हैं, मेरा शरीर, मेरा मन, मेरे विचार--"मेरा"। पहले "मेरा" को गिराना है। फिर हम कहेंगे, "मैं", आत्मा। फिर "मैं" को गिराना है। जब "मेरा" गिरता है तो आत्मा प्रगट होती है। जब "मैं" भी गिरता है तो परमात्मा प्रगट होता है।
"आत्मा; मन, वचन और कायारूप, त्रिदंड से रहित, निर्द्वंद्व--अकेला, निर्मम--ममत्वरहित, निष्कल--शरीर रहित, निरालंब--परद्रव्यआलंबन से रहित, वीतराग, निर्दोष, मोह-रहित तथा निर्भय है।"
वर्णन, यह कोई परिभाषा नहीं है। यह कोई व्याख्या नहीं है। ऐसा महावीर
का अनुभव है। वे इसे कह देते हैं बड़े सूक्ष्म में।
"मन, वचन और कायारूप, त्रिदंड से रहित... ।"
जहां न मन रह गया, न वचन रह गया, न काया रह गई। जहां शरीर बहुत दूर छूट गया, विचार की तरंगें बहुत दूर छूट गईं। जहां मन भी बहुत पीछे छूट गया। जहां इन सबसे तुम पार चले आये। जहां इन सबसे भीतर चले गये। जहां तुमने अंतरगृह में प्रवेश किया। मंदिर की दीवालें दूर छूट गईं। जिसमें तुम आवास बनाये हुए हो, वह सब दूर छूट गया। अब तुम वहां आ गये, जहां अंतर्तम है, जहां अंतर्तम का शून्य-गृह है, शून्याकाश है। तो निर्द्वंद्व। उस घड़ी में दो नहीं बचते, एक बचता है।
उपनिषदों में कथा हैः एक जिज्ञासु ने याज्ञवल्क्य से पूछा, "कितने देवता हैं?" याज्ञवल्क्य ने कहा, "शास्त्र कहते हैं तैंतीस हजार।" उस जिज्ञासु ने कहा, "यह थोड़ा बहुत ज्यादा हो गया। किस-किसकी पूजा करेंगे? थोड़ी हमारी सामर्थ्य पर ध्यान दो। तो मैं फिर से पूछता हूं, कितने देवता हैं?" तो याज्ञवल्क्य ने कहा कि ऐसा है कि मुख्य तो तीन सौ तीस ही। उस आदमी ने कहा, "मैं बहुत समर्थ नहीं हूं, तीन सौ तीस भी मुझे मुश्किल पड़ जायेंगे। तुम जरा और संक्षिप्त करो।" याज्ञवल्क्य ने कहा, "तो फिर तीन।" उस आदमी ने कहा, "तीन से भी बड़ी झंझट होगी। तीन तरफ खीचेंगे। किसकी सुनूंगा?" तो याज्ञवल्क्य ने कहा, "अब तू बहुत गड़बड़ कर रहा है। डेढ़!" उस आदमी ने कहा कि अब चलो, अब तो आ ही गये करीब-करीब। अब सच्ची बात ही कह दो। अब सत्य ही कह दो। तो याज्ञवल्क्य ने कहा, "सत्य तो एक है।"
सत्य तो एक, एक ही है सत्य। उसे एक कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि एक कहते से दो का ख्याल पैदा होता है। एक अकेला तो हो ही नहीं सकता दो के बिना। इसलिए भारत में सभी परम ज्ञानियों ने उसे एक भी नहीं कहा, क्योंकि एक कहने से दो का तत्क्षण ख्याल होता है। एक होगा कैसे अगर दो नहीं हैं? एक गणित की संख्या निर्मित ही तब होती है जब दो और तीन, और सारी संख्याएं हों। इसलिए वेदांत कहता हैः अद्वैत; दो नहीं। एक नहीं कहता। महावीर कहते हैंः निर्द्वंद्व; दो नहीं, द्वंद्व नहीं। और महावीर का निर्द्वंद्व अद्वैत से भी मधुर है।

क्योंकि अद्वैत का मतलब हैः दो नहीं हैं। महावीर का मतलब हैः द्वंद्व नहीं है। दो में तो ऐसा लगता है, चीजें ठहरी हैं; प्रक्रिया का बोध नहीं होता, थिरता का बोध होता है। निर्द्वंद्व में द्वंद्व नहीं है, संघर्षण नहीं है; गति का बोध है।
और महावीर का गति पर बड़ा जोर है। महावीर तो कहते हैंः जो गत्यात्मक है, वही सत्य है; जो निरंतर गतिमान है। महावीर कहते हैंः जहां गति नहीं है वहीं मृत्यु है। और जहां सतत गति है, ऊर्जा का सतत आरोहण है, वहीं जीवन है। इसलिए वे शब्द उपयोग करते हैंः निर्द्वंद्व, अकेला। अकेले से तुम ख्याल रखनाः तुमने जो अकेलापन जाना है, वह महावीर का अर्थ नहीं हो सकता। क्योंकि महावीर ने जो अकेलापन जाना है उसका तो तुम्हें कोई पता ही नहीं है। तुमने भी बहुत बार अकेलापन जाना है। पत्नी मायके चली गई और तुम अकेले हो गये, कि बच्चे सब हास्टल चले गये और तुम अकेले हो गये।
तुम्हारा अकेलापन दूसरे की गैर-मौजूदगी है। इसलिए तुम्हारा अकेलापन वस्तुतः अकेलापन नहीं है। वहां तुम नहीं हो अकेलेपन में; दूसरा गैर-मौजूद है, इसकी प्रतीति है। पत्नी मायके चली गई, इसलिए अकेलापन लगता है। यह अकेलापन नकारात्मक है। यह पत्नी से जुड़ा है। इसमें पत्नी के वापिस लौट आने की आकांक्षा छिपी है। यह पीड़ा है। इसलिए अकेलेपन शब्द में ही उदासी हो गई है। क्योंकि महावीर जैसा अकेलापन तो कभी-कभार किसी को मिलता है। तुम्हारा अकेलापन बहुत है, बहुमत को है।
कोई आदमी कहता है, बड़ा अकेलापन लगता है, तो तुम ऐसा नहीं मानते कि बड़ा प्रसन्न होकर कह रहा है; तो तुम समझते हो कि दुखी है, परेशान है, उदास है।
महावीर का अकेलापन दूसरे की अनुपस्थिति से नहीं बनता--अपनी उपस्थिति
से बनता है।
इस फर्क को ख्याल में रखना।
अंग्रेजी में दो शब्द हैं। अलोननेस, लोनलीनेस। वे शब्द बड़े अच्छे हैं। महावीर का जो अकेलापन है, वह अलोननेस। तुम्हारा जो अकेलापन है वह लोनलीनेस है। महावीर का जो अकेलापन है, वह एकांत; अकेलापन नहीं। तुम्हारा जो अकेलापन है, वह एकाकीपन है; अकेलापन; उदासी; कुछ खोया-खोया; कुछ कम-कम; कुछ अभाव; कुछ होना चाहिए था, नहीं है। कमरे में जाते हैं, पत्नी दिखाई नहीं पड़ती, बच्चे दिखाई नहीं पड़ते। तुम्हारी नजरें किसी दूसरे को खोज रही हैं और दूसरा मिलता नहीं। तुम्हारा अकेलापन यानी तन्हाई।
महावीर का अकेलापनः जहां तक नजर जाती है, खुद ही को पाते हैं। सारा कमरा अपने से भरा है; सारा आकाश अपने से भरा है! अपने को ही छूते हैं, अपने को ही गुनगुनाते हैं! अपना होना इतना गहन हुआ है कि अब दूसरे की कोई जरूरत नहीं है! दूसरे की याद भी नहीं आती! दूसरा है भी, इसका पता नहीं चलता! निर्द्वंद्व!
महावीर का अकेलापन बड़ा विधायक है, पाजिटिव है।
"निर्मम--ममत्व-रहित... ।"
तुम्हारा "निर्मम" अलग है। तुम्हारे निर्मम का अर्थ होता हैः कठोर। तुम उस आदमी को निर्मम कहते हो जो बड़ा कठोर है, दुष्ट है। महावीर--और दुष्ट! नहीं, हम अलग-अलग भाषाओं के लोक में जी रहे हैं। महावीर के लिए निर्मम वह है जिसे ममत्व नहीं; जिसके पास से "मेरा" समाप्त हो गया; जिसके लिए अब कोई चीज "मेरी" नहीं, बस। तुम्हें तो दोनों बातें एक लगती हैं; जैसे--
एक घर में आग लगी। मालिक छाती पीटकर रोने लगा। किसी ने कहा, "घबड़ाओ मत, चिल्लाओ मत, परेशान मत होओ। मैंने तुम्हारे बेटे को कल ही तो किसी से बात करते देखा था। मकान बेचने का सब तय हो गया है। पैसे भी दे दिये गये हैं। यह तो मकान बिक चुका, तुम्हारा नहीं है।"
उस आदमी के आंसू सूख गये। वह स्वस्थ हो गया। उसने कहा, "अरे! मुझे इसका पता ही नहीं था।"
मकान जल रहा है। मकान वही का वही है, लेकिन "मेरा" नहीं है तो अब क्या फिक्र! तभी बेटा आया घबड़ाया हुआ। उसने कहा कि ऐसे खड़े हो, क्या कर रहे हो?

यह मकान जला जा रहा है! बात हुई थी, लेकिन पैसे लिये-दिये नहीं गये थे। मकान अपना ही जल रहा है।
फिर बाप रोने लगा, फिर छाती पीटने लगा। मकान वही का वही है; "मेरे" से जुड़ जाता है तो दुख ले आता है; "मेरे" से छूट जाता है तो बात खत्म हो गई। जिस-जिसको तुमने "मेरा" माना है, वहीं-वहीं से दुख आता है। जिस-जिस से तुम्हारा कोई संबंध नहीं है, वहां से कोई दुख नहीं आता। इसलिए जितना तुम्हारा "मेरे" का जाल होगा, उतना ही तुम्हारा दुख होगा। जितना तुम्हारा मेरे का जाल टूट जायेगा, उतना ही तुम्हारा दुख समाप्त हो जायेगा।
जब महावीर कहते हैं "निर्मम" तो वे कहते हैं, जिसका "मेरा" भाव गिर गया। इसका यह अर्थ नहीं कि वह कठोर हो गया। सच तो यह है कि ऐसा आदमी ही करुणावान होता है। "मेरे" के कारण तुम कठोर हो। क्योंकि "मेरे" के कारण तुम्हारी करुणा मुक्त नहीं हो पाती। अगर तुम्हारा बेटा गिरता है तो उठा लेते हो; दूसरे का बेटा गिरता है तो आंख बचाकर निकल जाते हो।
"मेरे" के कारण तुम कठोर हो। तुम्हारा बेटा भूखा मरता है तो तुम परेशान होते हो; दूसरे का बेटा भूखा मरता है, तुम्हें क्या लेना-देना! तुम "मेरे" के कारण कठोर हो।
महावीर का "मेरा" विसर्जित हो जाता हैः करुणा मुक्त हो जाती है; अब मेरे की ही धाराओं में नहीं बहती; अब तो बाढ़ की तरह सब तरफ बहने लगती है; अब कोई कूल-किनारा नहीं रह जाता। तो महावीर की निर्ममता में करुणा है और हमारे ममत्व में भी कठोरता है।
"शरीर-रहित, निरालंब... ।"
कोई आलंबन नहीं है आत्मा का। कोई आधार नहीं है आत्मा का। आत्मा परम आधार है। उसके आगे फिर कोई आधार नहीं है। होना अपने कारण है, स्वयंभू है। तो जैसा उपनिषद ब्रह्म के लिए कहते हैं--परम आधार, निरालंब--वैसा ही महावीर आत्मा के लिए कहते हैं। जिसको उपनिषदों ने ब्रह्म कहा है, उसी को महावीर ने आत्मा कहा है। ब्रह्म या आत्मा कहने से फर्क नहीं होता।
एक हमें मानना पड़ेगा जो निरालंब है, जिसका कोई आधार नहीं; जो सबका आधार है, लेकिन जिसका कोई आधार नहीं। अन्यथा अस्तित्व बेबूझ हो जायेगा। वैज्ञानिक कहता हैः पानी बना है हाइड्रोजन-आक्सीजन से; आक्सीजन बनी
है इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, पोजिट्रान से; इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, पोजिट्रान बने हैं विद्युत से, विद्युत-ऊर्जा से। विद्युत-ऊर्जा किससे बनी है? वे कहते हैं, बस विद्युत-ऊर्जा किसी से नहीं बनी है--तो विद्युत-ऊर्जा उनके लिए निरालंब हो गई। कहीं तो जाकर आधार खोज लेना होगा, जिसके पार कुछ भी नहीं है।
महावीर उस आधार को आत्मा में खोजते हैं। निश्चित ही विद्युत की बजाय आत्मा में खोजना ज्यादा गहरा है। क्योंकि विद्युत की खोज भी आत्मा ने की है। जब वैज्ञानिक कहता है, इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और पोजिट्रान, और ये सब विद्युत से बने हैं, तो उसकी चेतना इस गहराई तक पहुंच जाती है। तो जिस गहराई तक हम पहुंचते हैं, उस गहराई से ज्यादा गहराई हमारी होनी ही चाहिए, अन्यथा हम उस गहराई तक नहीं पहुंच सकते।
वैज्ञानिक अपने को छोड़ देता है, बाहर रख लेता है। लेकिन कुछ भी हम खोज लेंगे, खोजनेवाले से बड़ा वह नहीं होगा जो हम खोजेंगे। इसे थोड़ा ख्याल में रखना। इसलिए महावीर परमात्मा से भी ज्यादा मूल्य आत्मा शब्द को देते हैं। वे कहते हैं, आत्मा ही तो खोजेगी न परमात्मा को! तो जो खोजनेवाला है वह जिसे खोज लेगा उससे बड़ा है। मैं जिसे पा लूं, उससे मैं बड़ा हो गया। तुम जिसे पा लो, तुम उससे बड़े हो गये। अगर तुम गौरीशंकर पर खड़े हो गये तो तुम गौरीशंकर से बड़े हो गये।
तो महावीर का विश्लेषण बड़ा महत्वपूर्ण है। महावीर कहते हैं, आत्मा से बड़ा कुछ भी नहीं है; क्योंकि सभी कुछ अंततः आत्मा ही पायेगी--मोक्ष, निर्वाण, ब्रह्म। तो जो पानेवाला है वही मालिक है, वही निरालंब, वही परम आधार है।
"परद्रव्य-आलंबन से रहित, वीतराग, निर्दोष, मोह-रहित तथा निर्भय है।"

और निर्भय समझनेवाला तत्व है। हम भयभीत हैं। हम कंप रहे हैं, चौबीस घंटे भयभीत हैं। यह भय क्या है? बहाने कुछ भी हों। और हम अपने को किसी भी तरह समझा लेते हों, कुछ तरकीबें खोज लेते हों--कभी भय है कि प्रियजन न खो जाये; कभी भय है बीमार न हो जायें; कभी भय है वृद्ध न हो जायें, बूढ़े न हो जायें; कभी भय है, धन न खो जाये; कभी भय है, पद न खो जाये, प्रतिष्ठा न खो जाये, नाम-यश न खो जाये, कुल-परंपरा न खो जाये--हजार भय हैं, लेकिन सबके गहरे में अगर खोजेंगे तो मृत्यु का भय हैः कहीं मैं न खो जाऊं!
धन को भी हम इसीलिए पकड़ते हैं कि धन के सहारे स्वयं के होने में सहायता मिलती है; अन्यथा धन के लिए कौन धन को पकड़ता है? कौन इतना पागल है? लेकिन धन हो तो थोड़ा बल होता है--बीमारी होगी, बुढ़ापा होगा तो धन रक्षा करेगा। कोई शत्रु होगा तो धन रक्षा करेगा। हम पद-प्रतिष्ठा को पकड़ते हैं, क्योंकि उससे भी आत्म-रक्षा होती है। यश को पकड़ते हैं, कुल को पकड़ते हैं, समाज के अंग बनते हैं, धर्म के अंग बनते हैं, राजनीति के अंग बनते हैं--उस सबमें बहुत गहरे में आत्मरक्षा की भावना है। सब तरफ से मौत हमें पीड़ित किये हैः मरना होगा!
रोज कोई मरता हैः हमारे पैर और हिल जाते हैं! रोज कोई मरता हैः जड़ें और उखड़ जाती हैं! रोज कोई धक्के दे जाता है। ये तूफान रोज आते ही हैं मौत के। आज कोई गया, कल कोई गया--परसों हमें भी जाना होगा, यह घबड़ाहट है!
तो आदमी इस अवस्था में कभी अभय को उपलब्ध हो ही नहीं सकता। जिनको तुम बहादुर कहते हो, वे भी अभय को उपलब्ध नहीं होते। कायर नहीं हैं वे। इससे तुम यह मत समझना कि भयभीत नहीं हैं। कायर और बहादुर दोनों के भीतर भय है। कायर भय की मानकर भाग खड़ा होता है; बहादुर नहीं मानता, खड़ा रहता है--लेकिन भय दोनों के भीतर है। बहादुर भय के बावजूद भी चला जाता है युद्ध में; कायर भय अनुभव होते ही भाग खड़ा होता है। एक आगे जाता है, एक पीछे जाता है; लेकिन भय दोनों में है। भय से कोई बाहर नहीं है। भय से तो--महावीर कहते हैं--वही बाहर होता है, जो आत्मा को उपलब्ध हुआ; क्योंकि आत्मा अमरत्व है। वहां फिर कोई मृत्यु नहीं। वहां पहुंचते ही पता चलता है कि न तो यह मर सकती है चेतना, न कभी मरी है, न जन्मी है--अजन्मी, अनादि, अमृत। तब सारा भय शून्य हो जाता है। तब सारे भय गिर जाते हैं।
आत्मा को जाने बिना भय के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है। और भय के बाहर गये बिना कैसे दुख के बाहर जाओगे? कैसे भय के बाहर गये बिना चिंता के बाहर जाओगे, संताप के बाहर जाओगे? कंपते ही रहोगे।
आदमी का होना एक गहन कंपन है। आत्मा को जानते ही कंपन ठहर जाता है। स्थिति-प्रज्ञता पैदा होती है। ज्योति अकंप हो जाती है, निर्धूम जलती है; जैसे ऐसे किसी घर में हो जहां हवा के झोंके न आते हों--अकंप जलती है। तब पहली दफा जीवन में वसंत आता है। उसके पहले जो वसंत जाने वे तो पतझड़ के ही आगमन के आने के उपाय थे। उसके पहले तो जवानी जो जानी वह बुढ़ापे का ही चरण था। उसके पहले तो जो जन्म मिला, वह मौत की ही शुरुआत थी। आत्मा में आकर, स्वयं में आकर, पहली दफे वसंत आता है--ऐसा वसंत, जिसके पीछे कोई पतझार नहीं।
नहीं यह नग्मए-शोरे-सलासिल
बहारे-नौ के कदमों की सदा है।
नहीं यह नग्मए-शोरे-सलासिल
बहारे-नौ के कदमों की सदा है।
अब बेड़ियों की झंकार नहीं मालूम होती है वसंत में। यह तो वसंत-आगमन की पगध्वनि है, बेड़ियों की झंकार नहीं। इसके पहले तो वसंत भी आया तो बांध गया था। इसके पहले तो प्रेम भी आया तो बंधन बन गया था। इसके पहले तो जो भी आया था, कारागृह ही सिद्ध हुआ था। अब पहली दफा वसंत आता है। ऐसे फूल खिलते हैं जो फिर कभी मुर्झाते नहीं। ऐसे फूल खिलते हैं जो मुर्झाने को नहीं खिलते। "वह आत्मा निर्ग्रंथ है, निराग है, निशल्य है, सर्वदोषों से विमुक्त है, निष्काम है और निक्रोध, निर्मान और निर्मद है।"
"निराग, निर्ग्रंथ, निशल्य... ।"

महावीर के अपने पारिभाषिक शब्द हैं। निर्ग्रंथ का अर्थ होता हैः जहां
अब कोई ग्रंथि न रही; कोई एढ़ा-टेढ़ापन न रहा; कोई गांठ न रही; जिसको मनोवैज्ञानिक काम्प्लेक्स कहते हैं--ग्रंथि। वैसी कोई ग्रंथि न रही; आदमी सरल हुआ; चेतना पर कोई बाधाएं, अवरोध न रहे; झरना बहने लगा, सब चट्टानें राह से हट गईं। अगर चट्टानें पूरी हट जायें तो झरने का शोर भी बंद हो जाता है। झरने के करण थोड़े ही शोर होता है; शोर तो चट्टानों के कारण होता है, बीच में पड़े पत्थरों के कारण होता है। सब चट्टानें हट जायें तो झरना एकदम शांत हो जाता है।
जीवन-ऊर्जा जब शांत बहने लगती है, कोई ग्रंथि नहीं होती... । अभी तो हमारे पास हजार-हजार ग्रंथियां हैं। अभी तो हम सीधे बह ही नहीं पाते। अभी तो हमारे सारे कदम ऐसे पड़ते हैं जैसे शराबी चलता है--लड़खड़ाते; हर घड़ी गिरने-गिरने को। एक पांव इधर पड़ता है, दूसरा कहीं और पड़ता है। कहीं रखना चाहते हैं, कहीं पड़ जाता है। अभी तो हम कहते कुछ हैं, मतलब कुछ होता है; करना कुछ चाहते थे, कर कुछ जाते हैं। अभी जीवन एक सरल घटना नहीं है। और अभी हम इस सरलता को पा भी न सकेंगे; क्योंकि हम तो अपनी जटिलता को ही सरलता समझे बैठे हैं। हम तो अपनी जटिलता के लिए बड़े तर्क खोजते हैं।
अगर तुम्हें क्रोध आ जाता है तो तुम सीधा-सीधा थोड़े ही कहते हो कि मैं क्रोधी आदमी हूं। तुम कहते हो, क्रोध की जरूरत थी; अगर क्रोध न करेंगे तो यह बेटा सुधरेगा कैसे? अब तुम ग्रंथि को तो स्वीकार कर ही नहीं रहे हो कि तुम क्रोधी हो। तुम यह कह रहे हो कि यह तो बेटे को सुधारने के लिए करना पड़ रहा है। तुम बहाने में टाले दे रहे हो, तो यह ग्रंथि तो मजबूत होती चली जायेगी। यह ग्रंथि तो घनी होती चली जायेगी।
दूसरा करता है, तो तुम कहते हो, अहंकारी; तुम करते हो तो कहते हो, स्वाभिमान है। अगर तुम्हें कोई नई सूझ आती है तो तुम कहते हो, मौलिक चिंतन; अगर दूसरे को आती है, तुम कहते हो, झक्की है, दिमाग थोड़ा ढीला है, इस तरह की बातें इसके दिमाग में उठती हैं।
तुम करते हो तो तुम कुछ और शब्द देते हो; दूसरा करता है... ।
अगर एक ईसाई हिंदू हो जाये तो ईसाई कहते हैं, गद्दार। अगर एक हिंदू ईसाई हो जाये, तो वे कहते हैं, सुमार्ग पर आ गया। वह हिंदू की बात है। हिंदू अगर ईसाई हो जाये तो वो कहते हैं, गद्दार। अगर ईसाई हिंदू हो जाये तो वे कहते हैं, सदबुद्धि का जन्म हुआ।
ग्रंथियों को हम छिपाते हैं। तो फिर जिसको हम छिपाते हैं, वह बढ़ेगा। ग्रंथियों को उघाड़ना पड़ेगा।
इसलिए तो महावीर नग्न हुए। वह "नग्न" बड़ा प्रतीकात्मक है। उन्होंने कहा, जैसा हूं, जो हूं, अब कोई वस्त्र न रखूंगा, आवरण न रखूंगा, अब सब उघाड़े देता हूं। अब कोई ग्रंथि जैसी भी है, बुरी है, भली है, लोग स्वीकार करें, न स्वीकार करें... ।
लोगों ने किस-किस तरह का व्यवहार महावीर से किया, हैरानी होती है!
कल रात मैं देख रहा था एक जैन-ग्रंथ। लोगों ने पत्थर मारे, लकड़ियों से पीटा, जंगली जानवर छोड़े, कुत्ते, खूंखार कुत्ते छोड़े, इतने से भी लोगों को न लगा तो लोग उठा उठाकर उनके शरीर के ऊपर फेंकते थे, वे नीचे गिरते थे-- चट्टानों पर। लोग बहुत नाराज थे। इस नाराजगी में कारण था। कारण यह था कि हम हैं जटिल लोग। जब भी कोई सरल आदमी पैदा होता है, उसे हम बर्दाश्त नहीं कर पाते। वह बड़े गहरे में हमें अपमानजनक मालूम पड़ता है। उसकी मौजूदगी हमें चुभती है, शूल की तरह चुभती है। बेईमान चाहते हैं, बाकी भी लोग बेईमान हों। अगर ईमानदार आदमी बेईमानों के बीच में हो तो बेईमान उसे बर्दाश्त न करेंगे। उनके लिए खतरा है वह ईमानदार आदमी; क्योंकि उसकी ईमानदारी के कारण उनकी बेईमानी साफ हुई जाती है, उघड़ी जाती है। चोर चोर को पसंद करते हैं। झूठ बोलनेवाले झूठ बोलनेवाले को पसंद करते हैं। जैसे लोग होते हैं, वैसों को पसंद करते हैं। महावीर जैसा निर्ग्रंथ आदमी, जिसकी कोई ग्रंथि नहीं, कोई उलझाव नहीं, जैसा है सीधा-सरल नग्न खड़ा हो गया--लोगों को बड़ी कठिनाई हो गई। लोग इसे बर्दाश्त न कर सके। लोग उनको एक गांव से दूसरे गांव में खदेड़ने लगे। लेकिन यह आदमी भी खूब था। इसने सब स्वीकार कर लिया। इसने

कहा कि यह भी हो रहा है तो होने दो। इसने कुछ बदलने की कोशिश न की। जिस गांव से इसे भगाया गया, अगर लोग खदेड़कर बाहर कर गये तो ये बाहर हो गये। लेकिन ऐसा भी नहीं कि दुबारा उस गांव में न आए हों। फिर राह में पड़ गया गांव तो फिर आ गये। जो सहज होने लगा वह होने दिया। सहज-स्फूर्त जीवन महावीर का मूलभूत स्वर है। उसमें जरा भी सजावट नहीं है, शृंगार नहीं है। उसमें जरा भी अन्यथा दिखाई पड़ने का कोई आग्रह नहीं है--जैसे हैं, जो हैं।
कहते हैं, महावीर ने वर्षों तक स्नान नहीं किया; क्योंकि उन्होंने कहा कि अब शरीर है और यह तो दुर्गंध-भरा है ही, अब इसको धो-धोकर, पोंछ-पोंछकर भी क्या सार? किसको धोखा देना है? वर्षों तक उन्होंने दतौन नहीं की। क्योंकि उन्होंने कहा कि मुंह से तो बास आती ही है। अब किसको समझाना है कि बास नहीं आती?
तुमने कभी ख्याल किया? तुम जो भी करते हो, दूसरों को दिखाने के लिए करते हो। अगर घर में बैठे हो तो कैसे ही उलटे-सीधे कपड़े पहने बैठे रहते हो। बाहर जाना है कि हुए तैयार! वैसे ही क्यों नहीं निकल आते? बाहर जा रहे हैं! बाहर जाने का मतलब हैः अब लोगों की तरफ ध्यान रखना है; उनकी आंख को क्या ठीक लगेगा, क्या ठीक नहीं लगेगा--अपनी प्रतिष्ठा का सवाल है। कुछ दिखलाना है। जैसे तुम नहीं हो, वैसे दिखलाना है। व्यवसाय शुरू हो गया।
स्त्रियों को देखा, घर में कैसी बैठी रहती हैं! भैरवी के रूप में! इसलिए अगर उनके पति उनसे घबड़ा जाते हैं तो कुछ आश्चर्य नहीं। बाहर निकलीं तो सब अप्सरायें हो जाती हैं। इसलिए अगर दूसरे उन पर आकर्षित हो जाते हैं तो भी कुछ आश्चर्य नहीं। पतियों को तो भरोसा ही नहीं आता कि उनकी पत्नी को भी कोई रास्ते में धक्का दे गया।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन पहुंचा पागलखाने। जाकर दस्तक दी। अधिकारी
ने पूछा, कैसे आये आधी रात? उसने कहा, मेरी पत्नी भाग गई है। उसने कहा, यहां आने का क्या कारण? उसने कहा, मैं यह पूछने आया हूं, कोई पागल तो नहीं निकल भागा यहां से? क्योंकि मेरी पत्नी को कोई और ले भागे इस गांव में, यह तो संभव नहीं है। कोई पागल तो नहीं छूटा है आज, यह मैं पूछने आया हूं।
एक हमारे होने के ढंग हैं, एक हमारे दिखाने के ढंग हैं। एक हैं दांत हमारे खाने के, एक हैं दिखाने के।
महावीर ने बड़ा अनूठा प्रयोग किया! न दतौन, न स्नान। वर्षों तक पानी का उपयोग ही नहीं किया। वह तो भक्तों को दया आने लगी होगी। उनके प्रेमियों को दया आने लगी। इसलिए जैनियों में अभिषेक शुरू हुआ। साल में एक दिन वे बिठाकर महावीर को, उनके ऊपर पानी डाल देते हैं। अभी भी डालते हैं, मूर्ति पर डालते हैं अब वे। अभिषेक। भक्तों को भी घबड़ाहट होने लगी होगी कि इतना आदमी, इतना सरल हो जाना भी ठीक नहीं। इतना प्राकृतिक, जैसे पशु जीते हैं-- निर्मल!
लेकिन तुमने ख्याल किया? पशु गंदे मालूम होते हैं? एक आदमी ही कुछ अजीब है, इतनी व्यवस्था के बाद भी गंदा मालूम होता है! पशु सदा ताजे और स्वच्छ मालूम होते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है, ताजे स्वच्छ होने की चेष्टा में ही हमने अपने को गंदा कर लिया है? कहीं यह अति आग्रह, आरोपण, यह झूठ, अप्राकृतिक होने की चेष्टा, यह कृत्रिम जीवन--कहीं यही तो हमारी गंदगी का कारण नहीं? क्योंकि इस पूरी प्रकृति में चारों तरफ जरा गौर से देखो, पक्षी हैं, पशु हैं--कौन गंदा मालूम पड़ता है? कौन स्नान कर रहा है? कौन दतौन कर रहा है? लेकिन सब साफ-सुथरे मालूम होते हैं; सारी प्रकृति नहाई हुई मालूम होती है--एक आदमी को छोड़कर।
महावीर ने बड़ा अनूठा प्रयोग किया--प्राकृतिक होने का। रूसो ने जो बहुत बाद में कहाः बैक टू नेचर, चलो प्रकृति की ओर वापिस। वह तो रूसो ने सिर्फ कहा है--महावीर ने किया। बड़ी दुर्धर्ष साधना थी। क्योंकि सब भांति यह आकांक्षा छोड़ देनी कि दूसरे मेरे संबंध में क्या सोचते हैं, बड़ी कठिन है।
अभी जैन मुनि हैं, वे भी वैसा ही कुछ करने की कोशिश करते हैं, लेकिन वह
सच नहीं है। क्योंकि इस कोशिश में बुनियादी बात खो गई है। वह भी इस फिक्र में लगे हैं कि दूसरे क्या सोचते हैं। जैन मुनि है, वह देख रहा है कि जैन

श्रमण की जो जीवन-धारा है, वह ऐसी होनी चाहिए, अनुशासन, यह व्यवस्था... । महावीर ने सारी व्यवस्था तोड़कर प्रकृति के हाथों में छोड़ दी; जैन मुनि ने महावीर ने जो किया उसको अपनी व्यवस्था बना लिया है। इन दोनों में बड़ा बुनियादी फर्क है। महावीर ने सारा अनुशासन छोड़ दिया; सारी संस्कृति, संस्कार, समाज, सभ्यता छोड़ दी; हो रहे प्रकृति के हाथ--जैसे पशु रहते हैं, ऐसे! जैन मुनि उसी में से अपनी व्यवस्था निकाल लिया।
महावीर दतौन नहीं करते तो जैन मुनि भी दतौन नहीं करता। कम से कम ऐसा पता तो नहीं चलने देता कि करता है। क्योंकि मैं जानता हूं, वे करते हैं। मैंने जैन साध्वियों के पास टुथपेस्ट भी छिपा हुआ देखा है।
एक जैन साध्वी मुझे मिलने आती थी। उसके मुंह से मुझे बड़ी बास आती थी।
वह दतौन नहीं करती रही होगी। तो मैंने पूछा कि और साध्वियां भी आती हैं, उनके मुंह से बास नहीं आती। तो वह हंसने लगी। उसने कहा, आपसे क्या छिपाना! वे सब टुथपेस्ट छिपाये रहती हैं। वे सब टुथपेस्ट करती हैं। दुबारा जब वह खुद भी आई तो उसके मुंह से भी मुझे बास नहीं आ रही थी तो मैंने पूछा, मामला क्या है? तो उसने कहा कि जब आपने कहा तो मुझे भी लगा कि यह तो बात ठीक नहीं है, तो मैंने भी करना शुरू कर दिया; मगर किसी से आप कहना मत!
बाहर से तो यही दिखाना पड़ता है कि नहीं। बाहर से न भी दिखाओ, अगर तुम भीतर से भी पालन करो तो फर्क समझ में आया तुम्हें। महावीर ने सब चीजों का पालन छोड़ दिया। यह उनकी क्रांति थी। अब तुम महावीर को देख-देखकर पालन करने के लिए नियम बना रहे हो। यह कोई क्रांति न हुई, यह परंपरा हुई। और महावीर के संबंध में कहा जाता है कि धीरे-धीरे उनकी देह से पसीने की बदबू आनी बंद हो गई। जैन तो इसको और ढंग से समझाते हैं। वह ढंग मुझे ठीक नहीं मालूम पड़ता। वे तो कहते हैं, तीर्थंकर के पसीने में बास नहीं आती। यह बात तो बेतुकी मालूम होती है। पसीना तो पसीना है। इसमें तीर्थंकर को बीच में लाने की कोई जरूरत नहीं है। वे कहते हैं, तीर्थंकर को पसीना ही नहीं आता। यह बात भी मेरी समझ में नहीं आती। लेकिन पशु हैं, पक्षी हैं, प्रकृति की सहज धारा में जीते हैं--कौन-सी बास आ रही है? जंगली पशु-पक्षियों में कौन-सी बास आ रही है? नहीं, मेरी तो दृष्टि यही है कि महावीर इतने सरल हो गये कि फिर पशुवत हो गये। "पशुवत" को मैं उपयोग कर रहा हूं--बड़े बहुमूल्य अर्थों में। इतने नैसर्गिक हो गये! जब दिखावे की आकांक्षा छूट गई तो शरीर में एक क्रांति घटित हुई। क्योंकि वह दिखावे की जो आकांक्षा है, वह शरीर को एक स्थिति में रखती है; जब दिखावे की आकांक्षा छूट जाती है तो शरीर में एक क्रांति घटित होती है। किसी को प्रभावित करने का ख्याल ही न रहा, पसीना आता रहा होगा, लेकिन पसीने का गुण-धर्म बदल गया।
इसे तुम ऐसा समझो--चित्त की दशायें बदलती हैं तो शरीर की दशायें भी बदलती हैं। जब कोई स्त्री कामातुर होती है तो उसके पसीने में एक अलग तरह की बास आने लगती है। इसलिए तो जानवर मादा को सूंघते हैं; इसके पहले कि वे संभोग करें, मादा को सूंघते हैं। क्योंकि पसीना मादा की खबर देता है, वह राजी है या नहीं।
आदमी के जीवन में भी ठीक वही नियम काम करते हैं; क्योंकि देह के नियम
तो वही के वही हैं। जब कोई स्त्री कामातुर होती है, उसके पसीने में खास बदबू आनी शुरू होती है। और जब कोई व्यक्ति काम से परिपूर्ण मुक्त हो जाता है तब उसके पसीने की वह सारी बदबू जो कामातुरता से आती थी, विलीन हो जाती है। तब उसके पसीने में एक और ही तरह की बास आती है, एक और ही तरह की गंध होती है।
मुंह से हम बोलते हैं। बोलने की जो प्रक्रिया है, उससे मुंह में एक खास तरह की बास आनी शुरू होती है, क्योंकि घर्षण पैदा होता है। थूक में और मुंह के यंत्र में सतत घर्षण से एक तरह की बास आनी शुरू होती है।
अगर कोई मौन रह जाये, चुप रह जाये, बोले ही न, तो तुम पाओगे उसके मुंह
से वह बास आनी बंद हो गई। क्योंकि वह तो केवल घर्षण की वजह से पैदा हो रही थी।
महावीर महीनों तक भोजन नहीं करते। जब तक उन्हें ऐसा नहीं हो जाता कि
अब शरीर की बिल्कुल अपरिहार्य जरूरत आ गई, तभी भोजन करते हैं। और बड़ा अल्प

भोजन करते हैं। उतने भोजन से शरीर चलता है। बस वह पूरा का पूरा भोजन पचा जाते हैं।
अभी पश्चिम में चूंकि कारों के चलने से, कारों में जलनेवाले पेट्रोल
के धुएं के कारण वैज्ञानिक बड़े चिंतित हो गये हैं।
तो इस तरह की कारें निर्मित की जा रही हैं कि पेट्रोल पूरा का पूरा जल जाये, जरा भी बचे न; क्योंकि जो बच जाता है, गैर-जला, उसकी वजह से ही गंध और वायु-दूषण पैदा होता है। अगर पूरा जल जाये तो फिर कोई गंध पैदा नहीं होती, वायु-दूषण पैदा नहीं होता।
तो महावीर कभी महीने में एक दफा भोजन करते, कभी दो दफा भोजन करते। शरीर की जरूरत इतनी होती और भोजन इतना कम होता कि वह पूरा का पूरा पचा जाते।
जैन कहते हैं, महावीर मल-मूत्र का त्याग नहीं करते; क्योंकि तीर्थंकरों को मल-मूत्र नहीं होता। मैं यह नहीं कहता। मैं यह कहता हूं कि अगर तुम भी महीने में एकाध बार भोजन करोगे तो मल-मूत्र की जरूरत न रह जायेगी। शरीर पूरा पचा जायेगा। शरीर के पचाने की जरूरत इतनी होगी कि तुमने जो लिया है उसमें से कुछ भी छोड़ने का उपाय न होगा। महावीर ने बारह वर्षों की साधना में कहते हैं, मुश्किल से तीन सौ साठ दिन भोजन किया। तो हर बारह दिन में एक दिन भोजन पड़ता है। वह भोजन इतना कम था, और वह भी एक बार और वह भी महावीर खड़े-खड़े करते, बैठते भी न थे। क्योंकि महावीर कहते, बैठो तो थोड़ा ज्यादा भोजन आदमी कर लेता है। छोटी-छोटी चीजों से फर्क पड़ते हैं। तुमने कभी ख्याल किया? खड़े-खड़े भोजन करके देखो एक दफा। "बफे" महावीर
ने शुरू किया। ज्यादा मेहमान हों, भोजन कम हो, तो बफे। बिठालना मत, बिठालो तो फिर ज्यादा खाते हैं। खड़े-खड़े शरीर का आसन ऐसा होता है कि पेट तना होता है; बैठने से पेट शिथिल हो जाता है, ज्यादा जगह हो जाती है। अब किसी को कहो दौड़ते-दौड़ते भोजन करो तो और कम हो जायेगा, स्वभावतः।
महावीर खड़े-खड़े भोजन करते। पात्र में भोजन नहीं करते थे--करपात्री थे--हाथ में ही भोजन करते थे। अब हाथ में जरा भोजन करके देखो! दो-चार ग्रास के बाद ही तुम सोचोगे, अब बहुत हो गया। वह प्रक्रिया कोई ऐसी नहीं कि बहुत देर जारी रखने का सुख मालूम पड़े। धूप में, सड़क पर खड़े हुए, हाथ में, नग्न, जो थोड़ा-बहुत मिल गया, वे ले लेते। बैठते भी न। एक बार! वह भी दस-बारह दिन में एक बार। यह पूरा का पूरा भोजन पच जाता। यह पूरा का पूरा भोजन शरीर में लीन हो जाता। तो संभव है, मलमूत्र पैदा होने की जरूरत न रह जाये।
ऐसे नैसर्गिक ढंग से जीना उन्होंने शुरू किया कि मन से कोई बाधा न हो।
हम तो ऐसा उपाय करते हैं... तुमने देखा, जब बहुत मित्रों को बुला लो घर पर, तो ज्यादा खाना हो जाता है। रेडियो चला दो, गीत-संगीत बजा दो, तो ज्यादा खाना हो जाता है। हम तो ऐसे उपाय करते हैं जिससे ज्यादा हो जाये। महावीर ने ऐसे उपाय किये कि उतना ही हो जितना प्रकृति की जरूरत है। मन से कुछ भी न जोड़ा जाये। तो स्वभावतः धीरे-धीरे उनकी सारी ग्रंथियां खुलती गईं। वह छोटे बच्चे की भांति या पशु की भांति हो गये। उनमें सरलता का आविर्भाव हुआ। निर्ग्रंथ होने का यही अर्थ है। वे ऐसे सरल हो गये कि उनमें एक भी तिरछी लकीर न बची।
दो बिंदुओं के बीच जो निकटतम दूरी है, उसको कहते हैं सरल रेखा। और दो बिंदुओं के बीच जो इरछी-तिरछी यात्रा करनी पड़े, गोल, घुमावदार, वह है ग्रंथि।
महावीर सीधी सरल रेखा की भांति हैं। हम बड़े इरछे-तिरछे हैं। हम कहते कुछ, करते कुछ। हम करते कुछ और अपने को समझाते कुछ। हम दूसरे को ही धोखा देते हों, ऐसा नहीं है; हम अपने को भी धोखा देते हैं।
मैं मुल्ला नसरुद्दीन के साथ लखनऊ में ठहरा हुआ था। गर्मी के दिन और भरी दुपहरी में बिजली चली गई, तो वह बहुत झल्लाया। उसे जो भी चुनी हुई गालियां आती थीं, उसने दीं। फिर वह भागा, नीचे गया, होटल के नीचे से एक पंखा खरीद लाया। पंखा उसने किया नहीं कि टूटा नहीं। दो टुकड़े हो गये। फिर तो जो वह बहुत ही नाराज हुआ। फिर तो वह गालियां विशेष रूप से सुरक्षित रखता है, वे भी उसने दीं। फिर वह भागा, नीचे गया। यह सोचकर कि कहीं कोई झगड़ा-फसाद न

हो, मैं भी उसके पीछे गया कि अब यह कुछ... । पर नीचे जो देखा, वह... । अच्छा हुआ कि गया। पंखेवाले ने उससे कहा कि इसमें क्या आश्चर्य की बात है, इसमें क्यों बौखलाये जा रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा, एक ही बार किया और पंखा टूट गया, और तुम कहते हो आश्चर्य की बात नहीं! उस पंखेवाले ने लखनवी अंदाज में कहा, हुजूर! यह लखनऊ का नफासत, नजाकत का पंखा है। आपको करना नहीं आता। आपने लट्ठ की तरह घुमा दिया होगा। हुजूर! लखनऊ में तो पंखे को सामने रख लेते हैं और सिर को हिलाते हैं। फिर सिर भला टूट जाये, पंखा कभी नहीं टूटता। आप जरा लज्जत सीखिये। लखनऊ में आये हैं तो थोड़े लखनऊ का रिवाज भी सीखिये।
हम तरकीबें खोज लेते हैं। हम तर्क खोज लेते हैं। जीवन उलटा भी जा रहा
हो तो भी हम उसे सीधा मानने के ढंग खोज लेते हैं।
तुम न जागो तो कोई तुम्हें जगा न सकेगा। तुम्हें ही देखना पड़ेगा कि तुमने कहां-कहां अपनी ग्रंथियों को मजबूत करने के लिए तर्क खोज रखे हैं। क्रोध करते हो तो तुम कहते हो, जरूरी है। मोह करते हो तो तुम कहते हो, जरूरी है। राग को तुम प्रेम कहते हो। अच्छा शब्द रख लेते हो, नीचे गंदगी छिप जाती है। भय के कारण किसी के साथ हो लेते हो; लेकिन कहते हो, मैत्री है। लोभ के कारण किसी के साथ हाथ में हाथ डाल लेते हो; लेकिन कहते हो, मैत्री है, मित्रता है। अहंकार के कारण त्याग करते हो; लेकिन कहते हो, दान है। ऐसे तो फिर तुम ग्रंथियों में उलझते चले जाओगे। फिर तो ग्रंथियों के जंगल में खो जाओगे।
महावीर कहते हैं, सरल हो रहो। जैसे हो वैसा ही अपने को जानो। धीरे- धीरे ग्रंथियां छूट जाती हैं और जीवन में एक अलग तरह की ऊर्जा का आविर्भाव होता है। एक सहजता! एक सरलता! एक भोलापन! एक बच्चे के जैसा भाव!
"निराग, निशल्य... ।"
और निश्चित ही जिस आदमी के जीवन में कोई ग्रंथि नहीं है, उसके जीवन में कोई राग नहीं होता। उसके पास न बचाने को कुछ है, न छोड़ने को कुछ है। और जिस आदमी के जीवन में निर्ग्रंथि है, उसके जीवन में शल्य खो जाते हैं। शल्य यानी कांटे। जो चुभते हैं, वह खो जाते हैं।
किसी ने तुम्हें गाली दी। तुम कहते हो, इसकी गाली चुभी। गाली के कारण गाली नहीं चुभती--तुम्हारे अहंकार के कारण चुभती है। अहंकार को जाने दो, फिर कोई गाली देता रहे, कोई फर्क न पड़ेगा। फिर गाली में कोई शल्य न रह जायेगा।
"निशल्यता" महावीर का बड़ा प्यारा शब्द है। वे कहते हैं, भीतर से तुम कांटों को पकड़ने को तैयार हो, वही असली शल्य है। तुमने मान चाहा, इसलिए अपमान का कांटा चुभा। तुम मान ही न चाहते तो अपमान का कांटा न चुभता। तुमने सफलता चाही, इसलिए विफलता का विषाद आया। तुम सफलता ही न मांगते, विफलता का विषाद कभी न आता। तुमने प्रथम खड़े होना चाहा था, इसलिए तुम रो रहे हो कि तुम प्रथम खड़े न हो पाये। तुमने अंतिम ही खड़े होने की आकांक्षा की होती, तो तुम्हें कौन हरा पाता? फिर तुम्हारा जीवन निशल्य हो जाता। "सर्वदोषों से विमुक्त, निष्काम, निक्रोध, निर्मान और निर्मद... ।"
ये आत्मा की तरफ इशारे हैं। ये इशारे जो आत्मा को उपलब्ध हो जाता है, उसे उपलब्ध होते हैं। और जो आत्मा को उपलब्ध नहीं हुआ है, उसके लिए ये इशारे मार्ग के सूचक हैं। ये दो बातें हैं इसमें। यह आत्मा की दशा का वर्णन है और आत्मा की तरफ पहुंचने की व्यवस्था, उपाय भी। तो अगर तुम्हें उसे पाना है--उस आत्मा को, जहां कोई मद नहीं है, जहां कोई बेहोशी नहीं है, न मान का मद है, न पद का, न धन का, कोई मद नहीं है--अगर तुम्हें उस दशा को पाना है, तो मदों को छोड़ना शुरू कर दो। अकड़ो मत! तो अपने को हटाने लगो मद से। उस आत्मा की दशा में कोई ग्रंथि नहीं है। तो अगर तुम्हें उसे पाना है तो ग्रंथियों को धीरे-धीरे छोड़ो; जितना बन सके उतना छोड़ो; जिस मात्रा में बन सके उतना छोड़ो। कभी-कभी सच होना शुरू करो, सरल होना शुरू करो। कभी-कभी तो सचाई को करके भी देखो, जोखिम भी हो तो भी करके देखो। कभी सच भी बोलकर देखो; चाहे कुछ खोता हो तो भी बोलकर देखो। दांव लगाओ।
अगर आत्मा निशल्य है तो तुम अपने कांटे जहां-जहां तुम्हें चुभते हैं उनको पहचानो। दूसरे को दोष मत दो। अपने भीतर घाव हैं, उनको भरो। जब तक तुम

दूसरे को दोष देते रहोगे, वे घाव न भरेंगे। और तब तक तुम बार-बार कांटों से चुभते रहोगे और घाव को संजोते रहोगे।
अब कौन चाहता है कि गाली कोई दे! लेकिन तुम कैसे रोकोगे इस सारे संसार
को कि कोई तुम्हें गाली न दे? उपाय एक है कि तुम भीतर से गाली जहां अटकती है, खटकती है, उस जगह को हटा दो। तुम उस घाव को भर लो, फिर सारा संसार गाली देता रहे तो भी तुम इसके बीच से गुजर जाओगे--निशल्य।
यह जो वर्णन है आत्मा का, यही पथ भी है पहुंचने का।
दिल में जौके-वस्लो-यादे-यार तक बाकी नहीं
आग इस घर को लगी ऐसी कि जो था जल गया।
ऐसी आग लगाओ इस घर को, इस बेहोशी को, कि जो भी है इसमें, जल जाये। ऐसी आग सुलगाओ कि ये सारी ग्रंथियां, ये सारे शल्य, ये सारे घाव, यह तादात्म्य-- शरीर का, मन का, विचार का, यह अहंकार, यह मिट्टी के प्रति इतनी ज्यादा आकांक्षा, जल जाये!
दिल में जौके-वस्लो-यादे-यार तक बाकी नहीं!
--कि इनकी याद भी न रह जाये।
आग इस घर को लगी ऐसी कि जो था जल गया।
ऐसी जलाओ! उस जलने के बाद ही तुम्हारा कुंदन-रूप, तुम्हारा स्वर्ण शुद्ध होकर बाहर आयेगा।
तलाशे-यार में क्या ढूंढ़िए किसी का साथ
हमारा साया हमें नागबार राह में है।
और यह जो महावीर की अंतर्यात्रा है, इसमें कोई संगी-साथी न मिलेगा। यहां तो अपनी छाया भी भारी पड़ती है। यह अकेले का रास्ता है। यह एकाकी का रास्ता है। यह एकांत!
तो धीरे-धीरे हटो भीड़ से! धीरे-धीरे हटो दूसरे से। धीरे-धीरे दूसरे का ख्याल, दूसरे की धारणा छोड़ो। धीरे-धीरे द्वंद्वों को हटाओ।
तलाशे-यार में क्या ढूंढ़िए किसी का साथ।
हमारा साया हमें नागबार राह में है।
एक ऐसी घड़ी आती है कि तुम्हारी छाया भी तुम्हारे साथ नहीं होती, क्योंकि छाया भी शरीर की बनती है, मन की बनती है, विचार की बनती है। छाया भी स्थूल की बनती है। आत्मा की कोई छाया नहीं बनती। अभी तो हालत ऐसी है कि आत्मा खो गई है, छाया ही रही है; फिर ऐसी हालत आती है, आत्मा बचती है, छाया तक खो जाती है।
महावीर को सुनकर, समझकर तुम कुछ कर पाओगे, ऐसा मैं नहीं सोचता। जब तक
कि तुम अपने जीवन में भी महावीर जो कह रहे हैं, उसके आधार न खोज लोगे; जब तुम्हारे जीवन में भी तुम्हें ऐसा न दिखाई पड़ने लगेगा कि महावीर ठीक कहते हैं--तब तक तुमने अगर ऊपर-ऊपर से उनकी बातों का आरोपण भी कर लिया, जैसा कि जैन कर रहे हैं, तो कुछ लाभ न होगा। उससे तुम और उलझन में पड़ जाओगे। उससे जटिलता बढ़ेगी, ग्रंथियां और बढ़ जायेंगी। मेरे देखे कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि सामान्य गृहस्थ कहीं ज्यादा निर्ग्रंथ मालूम होता है बजाय मुनि के। उसकी और ज्यादा ग्रंथियां हो गई होती हैं। वह और तिरछा हो गया। उसने और नियमों के जाल खड़े कर लिये। नैसर्गिक तो नहीं हुआ है। उसने और छोटी-छोटी बातों की इतनी व्यवस्था कर ली कि अब वो व्यवस्था ही जुटाने में उसका समय नष्ट होता है। चौबीस घंटे इसी में व्यतीत होते हैं।
होती नहीं कबूल दुआ तर्के-इश्क की
दिल चाहता न हो तो जबां में असर कहां।
और ध्यान रखना, अगर तुम्हारी अंतरात्मा में ही चाह न उठी हो तो ऐसा कोई व्रत-नियम ऊपर से मत ले लेना। नहीं तो व्रत-नियम तुम्हें और झूठा बनायेगा। लोग व्रत और नियम ले लेते हैं भीड़ के लिए। मंदिर में जाते हैं, इतने लोग देख रहे हैंः लोग व्रत ले लेते हैं, कि ब्रह्मचर्य का व्रत लेते हैं। यह ब्रह्मचर्य का व्रत उनके जीवन से नहीं आ रहा है। ये इतने लोग प्रशंसा करेंगे, ताली बजायेंगे और कहेंगे कि इस व्यक्ति ने ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर लिया है और हम अभागे, अभी तक ब्रह्मचर्य का व्रत धारण न कर पाये! इस कारण ब्रह्मचर्य का व्रत मत ले लेना, नहीं तो पछताओगे।

होती नहीं कबूल दुआ तर्के-इश्क की!
--अगर तुम प्रार्थना कर रहे हो कि हे प्रभु! मुझे राग से, मोह से ऊपर उठा... लेकिन यह कबूल न होगी, यह प्रार्थना स्वीकार न होगी।
दिल चाहता न हो तो जबां में असर कहां?
--और अगर तुम्हारा भीतर का दिल ही यह न चाहता हो तो कहने से क्या होगा?
और अगर भीतर का दिल चाहता हो तो प्रार्थना की जरूरत ही नहीं। तुमने चाहा कि हुआ।
लोग ऐसे हैं कि दोनों संसार सम्हाले चले जाते हैं। इसी वजह से आदमी जटिल हो जाता है।
शब को मय खूब सी पी, सुबह को तौबा कर ली
रिंद के रिंद रहे, हाथ से जन्नत न गई।
रात शराब पी लेते हैं, सुबह पश्चात्ताप कर लेते हैं!
शब को मय खूब सी पी, सुबह को तौबा कर ली
रिंद के रिंद रहे, हाथ से जन्नत न गयी।
स्वर्ग भी सम्हाल लिया, संसार भी सम्हाल लिया। ऐसी बेईमानी में मत पड़ना। जिसने दोनों सम्हाले, उसके दोनों गये। जिसने एक को सम्हाला, उसका सब सम्हल जाता है। और वह एक तुम्हारे भीतर छिपा है। वह एक तुम हो। उसे महावीर तुम्हारी अंतरात्मा कहते हैं, तुम्हारा परमात्मा कहते हैं।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
अठारहवां प्रवचन

धर्म आविष्कार है स्वयं का

पहला प्रश्नः कृष्ण कहते हैं कि मारो और महावीर कहते हैं कि हिंसा का विचार-मात्र हिंसा है। कृपया बतायें कि दोनों में श्रेष्ठ कौन है?

श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ के प्रश्न अत्यंत अज्ञान से भरे हुए हैं। उस ऊंचाई पर तुलना काम नहीं आती। और तुलना करने वाला मन न तो महावीर को समझ सकेगा और न कृष्ण को समझ सकेगा। क्योंकि तुलना करने वाला मन दुकानदार का मन है, समझदार का नहीं।
ऐसा ही समझो कि जैसे एक गिलास में आधा जल भरा हुआ रखा हो और कोई कहे कि आधा गिलास खाली है और कोई कहे कि आधा गिलास भरा है, और तुम मुझसे पूछो कि दोनों में श्रेष्ठ कौन है, तो तुम बात समझे ही नहीं। जो आधा खाली है वह आधा भरा भी है। जो आधा भरा है वह आधा खाली भी है। दोनों ने कहने के अलग-अलग ढंग चुने हैं। एक ने विधेय पर जोर दिया, एक ने निषेध पर जोर दिया। एक ने भरे हिस्से को देखा, एक ने खाली हिस्से को देखा। लेकिन दोनों ने ही सत्य की तरफ इशारा किया।
कृष्ण कहते हैं, कर्तृत्व तेरा नहीं है, परमात्मा का है। इसलिए मैं करनेवाला हूं, यह भाव ही छोड़ दे। यह भाव ही हिंसा है। मैं निमित्त-मात्र हूं; वह जो करवायेगा, मैं करूंगा; मैं बीच में न खड़ा होऊंगा। मैं कोई बाधा न डालूंगा।
मैं बांस की पोंगरी की तरह हो जाऊंगा; वह जो गायेगा, जो गुनगुनायेगा, उसकी मर्जी!
अगर ठीक से समझो तो कृष्ण ने यह नहीं कहा है कि तू मार; कृष्ण ने तो इतना ही कहा है, वह तुझे निमित्त बनाये मारने में तो मार। कृष्ण की गीता को इस दृष्टि से कभी देखा नहीं गया। सोचो कि अर्जुन की जगह कोई दूसरा व्यक्ति होता तो अंततः यह निष्कर्ष भी ले सकता था कि मैं संन्यास लेता हूं क्योंकि उसकी मर्जी संन्यास की है। अपने को सब भांति छोड़ देता और फिर कृष्ण से कहता कि क्षमा करें, अपने को सब भांति छोड़ रहा हूं, तो एक ही भाव उठता है कि संन्यास ले लूं। तो जब उसकी मर्जी संन्यास की है तो मैं कैसे लडूं? जब एक ही भाव सब श्वासों में मेरे गूंज रहा है कि छोड़ दूं सब, चला जाऊं वन-प्रांत में, तो जाता हूं। तो कृष्ण इनकार न करते कि तूने गलत किया। कृष्ण कहते, जो वह करवाये वही कर।
अर्जुन युद्ध किया, क्योंकि अर्जुन का सारा व्यक्तित्व क्षत्रिय का था। अर्जुन जो संन्यास की बात कर रहा था, वह ऊपर-ऊपर थी, बौद्धिक थी; वह वास्तविक न थी। अगर वास्तविक होती तो कृष्ण की गीता से वह संन्यास का ही सार लेता।
कृष्ण की गीता में ठीक-ठीक निर्देश नहीं है कि क्या करो; कृष्ण की गीता में तो इतना ही निर्देश है कि तुम मत करो, उसे करने दो। फिर अगर उसने यही चुना है कि तुमसे हजारों लोगों को कटवा दे, तो उसकी मर्जी! तुम यह मत सोचना कि तुम कर रहे हो। तुम अपने को सब भांति समर्पित करो।
कृष्ण की भाषा समर्पण की भाषा है। तुम इस भांति शून्यवत खड़े हो जाओ कि जहां उसकी हवाएं ले जायें वहीं चले जाओ। तुम तैरो मत--बहो।
जब अर्जुन ने अपने को छोड़ा तो तत्क्षण उसका संन्यास का भाव विदा हो गया। वह युद्ध के लिए तत्पर हो गया। उसने गांडीव फिर उठा लिया। क्योंकि वह बांसुरी बनी ही उसके लिए थी। वही गीत अर्जुन गा सकता था। अर्जुन योद्धा था, क्षत्रिय था। वह परमात्मा का सैनिक ही हो सकता था, परमात्मा का संन्यासी नहीं हो सकता था। वह उसकी नियति थी।
इसलिए तुम... यह प्रश्न किसी जैन ने पूछा है, इसलिए वह कहता है, "कृष्ण कहते हैं कि मारो।" कृष्ण कहते नहीं कि मारो। कृष्ण न कहते कि मत मारो। कृष्ण इतना ही कहते हैं, जो करवाये... ! तुम निर्णय न लो, उसी को निर्णय दो।
बागडोर उसके हाथ में दे दो। तुम शून्यवत खड़े हो जाओ। और जो अंतर्तम से उठे,

जो उसकी आवाज आये उसी दिशा में चल पड़ो। कृष्ण का मार्ग समर्पण का है। अर्जुन युद्ध में गया, क्योंकि सब भांति अपने को शून्य करके उसने यही पाया कि यही आवाज आती है कि "कर्तव्य को पूरा कर! अब फिर मैं क्या कर सकता हूं?" महावीर कहते हैं, हिंसा का भाव-मात्र हिंसा है। कृष्ण भी यही कहते हैं अगर तुम समझने की कोशिश करो। कृष्ण तो यह भी कहते हैं कि हिंसा का भाव तो हिंसा है ही, अहिंसा तक का भाव कि मैं अहिंसा करता हूं, हिंसा है। मैं करता हूं, इसमें हिंसा है। जोर कृत्य पर नहीं है, कर्ता पर है। मैं हूं, यही हिंसा है। "मैं" को हटा लो, अहिंसा हो जाएगी।
अर्जुन युद्ध में लड़कर भी अहिंसक रहा, हिंसक नहीं है। क्योंकि जिसने अपना कर्तव्य ही हटा लिया, जिसने अपना कर्ता-भाव ही हटा लिया, उसको अब तुम कर्म के लिए दोषी न ठहरा सकोगे। दोनों एक ही बात कह रहे हैं। कृष्ण का जोर है कि कर्ता-भाव गिरा दो, और महावीर का जोर है कि कर्म को रूपांतरित कर दो। अब थोड़ा समझना। अगर तुम हिंसक कर्मों को छोड़ते चले जाओ तो तुम्हारा "मैं" गिरने लगेगा, क्योंकि "मैं" बिना हिंसा के खड़ा नहीं रह सकता। "मैं" के लिए हिंसा चाहिए--बड़ी सूक्ष्म हो, स्थूल हो, लेकिन हिंसा चाहिए।
पड़ोसी ने मकान बनाया, तुम बड़ा मकान बना लो--हिंसा हो गई। क्योंकि तुमने बड़ा मकान सिर्फ बनाया इसलिए कि अब पड़ोसी को नीचा दिखाना है। यह इसने इतनी हिम्मत कैसे की कि मेरे रहते इतना बड़ा मकान पड़ोस में खड़ा कर दिया। अब चाहे सारा जीवन दांव पर लग जाये, बड़ा मकान बनाकर दिखाना है। तो तुमने बड़ा मकान बनाया, "मैं" को बड़ा किया--हिंसा हो गई।
तुम किसी आदमी के पास से अकड़कर निकल गये--हिंसा हो गई। हिंसा तुम्हारी जहां भी "मैं" की धारा गहरी होती है, वहीं हो जाती है।
तो महावीर ने कहा, कर्मों को छोड़ो, जिनसे हिंसा होती है। जिनसे दूसरे
को चोट लगती है, वह छोड़ो। जिनसे दूसरों को दुख होता है, वह छोड़ो। और तब तुम चकित होकर देखोगे कि जिससे दूसरे को चोट लगती है, उसी से तुम्हारा अहंकार मजबूत होता है, और कोई उपाय नहीं है। भोजन ही अहंकार का यही है कि दूसरे को चोट लगे। सांस्कृतिक, सभ्य ढंग से लगे कि असभ्य ढंग से लगे; तुम किसी को गाली दो कि किसी का व्यंग्य करो; तुम किसी को जिंदगी के युद्ध में पछाड़ दो, गिरा दो; या तुम त्याग के युद्ध में किसी को हरा दो कि तुम किसी को अपने से छोटा त्यागी करके सिद्ध कर दो--कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम कोई भी माध्यम चुनो, जिस माध्यम से भी दूसरे को दुख हो सकता है, वह माध्यम हिंसा है। और हिंसा से "मैं" मजबूत होता है।
तो महावीर कहते हैं, हिंसा के सारे कृत्य छोड़ दो। हिंसा का भाव तक छोड़ दो, कृत्य की तो बात अलग। क्योंकि भाव भी काफी है; वह भी भोजन बन जायेगा, वह भी अहंकार को मजबूत करेगा। जब तुमने हिंसा के सब भाव, कृत्य छोड़ दिये, तुम अचानक पाओगे तुम्हारा "मैं" धूल-धूसरित हो गया, गिर पड़ा, समाप्त हो गया। यह महावीर की प्रक्रिया हैः कर्म के विसर्जन से कर्ता का विसर्जन! निश्चित ही यह प्रक्रिया क्रमिक होगी। एक-एक कर्म को ध्यान रखकर, साधना साधनी होगी, एक-एक कर्म का हिसाब रखकर चलना होगा, क्योंकि बड़े सूक्ष्म हैं कर्म... जरा-सी आंख का इशारा और हिंसा हो जाती है। तो बड़ी लंबी प्रक्रिया है, संकल्प का मार्ग है। इंच-इंच लड़ना होगा, पहाड़ चढ़ना होगा।
कृष्ण कहते हैं, ऐसा एक-एक कर्म को छोड़ोगे फुटकर-फुटकर, लंबा समय लग जायेगा। और फिर कृष्ण और अर्जुन के बीच समय था भी नहीं। कृष्ण की जो गीता है, वह एक विशेष परिस्थिति में कही गई है। महावीर अपने शिष्यों से बोल रहे थे चालीस साल तक। कृष्ण की गीता तो क्षणों में हो गई। ये कोई साधारण क्षण न थे, बड़े असाधारण क्षण थे। बड़ी संकट की स्थिति थी। यहां अगर एक-एक कर्म को छोड़ने के लिए कृष्ण कहें, समय ही न था। युद्ध द्वार पर खड़ा था। युद्ध सामने खड़ा था। शंख बज गये थे। युद्ध की घोषणा हो गई थी। योद्धा एक-दूसरे के सामने अड़े थे। अर्जुन ने भी कहा था, मेरे रथ को ले चलो बीच युद्ध में। और कृष्ण युद्ध के बीच में रथ को ले आये थे। ठीक उस क्षण में जब युद्ध सामने था, क्षणभर की देर न थी, शंख फूंके जा रहे थे, युद्ध शुरू होने के करीब था, जल्दी ही मार-धाड़ होगी--तभी अर्जुन को दिखाई पड़ा, रोमांचित हो आया, एक पुलक हुई। उसे लगा, यह तो व्यर्थ है। इतना युद्ध, इतनी हिंसा--क्या सार है? उसके

हाथ ढीले पड़ गये, गात शिथिल हुए, गांडीव हाथ से छूट गया। वह थका-मांदा, डरा हुआ रथ में बैठ गया। उसने कृष्ण से कहा, मैं तो सोचता हूं कि सब छोड़कर चला जाऊं।
यह बड़े संकट का क्षण था। यहां कोई ऐसी प्रक्रिया जिसमें जन्मों- जन्मों लगते, साधना करनी पड़ती हो, काम की नहीं हो सकती थी। तो कृष्ण ने जो कहा, वह ऐसा था कि तत्क्षण हो सके, एक छलांग में हो सके।
संकल्प तो धीरे-धीरे होता है। संकल्प यात्रा है--सीढ़ी दर सीढ़ी, इंच-इंच, रत्ती-रत्ती। वह फुटकर काम है। समर्पण छलांग है--थोक, इकट्ठा। एक क्षण में भी हो सकता है।
महावीर जिन शिष्यों को बोल रहे थे, वे युद्ध के स्थल पर न थे। इस विशेष परिस्थिति को ख्याल में रखना। तो कृष्ण यह तो कह नहीं सकते कि तू अपने कर्म बदल! कृष्ण यही कह सकते हैं कि अब ऐसी घड़ी में तू अपने कर्ता को ही रख दे। और कर्ता को रखने से भी वही हो जाता है। क्योंकि अंततः कर्मों को बदलने से कर्ता ही गिरेगा; तो जब कर्ता को ही गिराना है तो सीधा ही गिरा दो। कर्ता को ही छोड़ दो।
समर्पण भक्त का मार्ग है। वह कहता है, परमात्मा के चरणों में रख दो; कह
दो कि मैं कुछ हूं नहीं, अब जो हो तेरी मर्जी! बुरा करवायेगा, बुरा करेंगे; अच्छा करवायेगा, अच्छा करेंगे। अब करना हमारा नहीं है।
लेकिन दोनों ही हालत में एक ही घटना घटती है। अंतिम परिणाम एक है। इसलिए जो ऐसा पूछता है कि दोनों में कौन श्रेष्ठ है, वह गलत पूछता है। वह दोनों में से किसी को भी नहीं समझा। तुम अगर महावीर को समझ लो, कृष्ण समझ में आने ही चाहिए। अगर तुम कृष्ण को समझ लो और महावीर समझ में न आयें, तो कृष्ण समझ में नहीं आये। मेरे देखे जिसने एक अनुभवी को समझ लिया, उसने सब अनुभवियों को समझ लिया। फिर उसे भाषा, ढंग, अभिव्यक्ति, अभिव्यंजना के प्रकार, उलझाव में न डाल सकेंगे। फिर कोई चीज उसकी आंखों को धुंधला न कर सकेगी। लेकिन मैं देखता हूं कि जो महावीर के पक्ष में हैं, वे कृष्ण के विपक्ष में हैं। जो कृष्ण के पक्ष में हैं, वे महावीर के विपक्ष में हैं। जो महावीर के पक्ष में है, वह मुहम्मद के पक्ष में तो हो ही कैसे सकता है? जो मुहम्मद के पक्ष में है, वह कैसे महावीर की बात को बरदाश्त कर सकता है? साफ है, इनमें से कोई भी समझा नहीं। इन्होंने शब्द पकड़ लिये हैं। ये
लड़ रहे हैं एक-दूसरे से; क्योंकि एक कहता है गिलास आधा खाली है, और दूसरा कहता है गिलास आधा भरा है। ये सिर काटने-कटवाने को तैयार हैं। स्वभावतः भाषा में दोनों अलग-अलग मालूम पड़ते हैं। एक कहता है, आधा खाली है, तो जोर मालूम होता है खाली पर; एक कहता है आधा भरा है, तो जोर मालूम होता है भरे पर। अब खाली और भरा! विरोधाभासी हो गये। लेकिन जरा आधे का ख्याल रखना। उस आधे में ही सारा सार है।
मेरे देखे दोनों की बातों में कोई गहरा अंतर नहीं है--हो नहीं सकता। तुम्हें न दिखाई पड़े तो अपनी आंखों पर थोड़े पानी के छींटे मारना। थोड़ा जागने की कोशिश करना।
जल्दी निर्णय मत लेना।
जब भी तुम्हें दो सत्पुरुषों में कोई विरोध दिखाई पड़े, तो पहली बात तो तुम यही सोचना कि मेरे देखने में कहीं भूल हुई जा रही है। इसे तुम गांठ में बांधकर रख लो। जब भी तुम्हें दो सत्पुरुषों में कोई विरोध दिखाई पड़े, तो पहली बात तो तुम यही सोचना कि मुझसे कहीं भूल हुई जा रही है; कहीं मेरे देखने, समझने में, कहीं मेरी चिंतना में, परिभाषा में, व्याख्या में, चूक हुई जा रही है। क्योंकि दो सत्पुरुष विपरीत बातें तो कह नहीं सकते--विपरीत कहें तो भी विपरीत कह नहीं सकते। उनकी विपरीतता में भी कहीं कोई तालमेल होगा। उनकी विपरीतता के बीच भी कोई सेतु होगा--होना ही चाहिए। इससे अन्यथा की कोई सुविधा नहीं है।
लेकिन तुम्हारा मन तो जैसे और संसार में चीजों के बाबत विचार करता है, तुलना करता है--कौन अच्छा, कौन बुरा, कौन सुंदर, कौन असुंदर, कौन ज्ञानी, कौन अज्ञानी--इन्हीं मूल्य-मापदंडों को लेकर तुम उस परम लोक में भी खड़े हो जाते हो। तो वहां भी कौन बड़ा, कौन छोटा, कौन आगे, कौन पीछे, किसने ज्यादा

जाना, किसने कम जाना, किसका जानना ठीक, किसका गैर-ठीक--इस चिंतना में पड़ जाते हो। और इस सब चिंतना के भीतर एक बात तुम कभी सोचते ही नहीं कि मैंने अभी कुछ भी देखा नहीं है। तो जिन दो देखनेवालों ने कुछ कहा है, मैं न देखनेवाला, अंधा, कैसे तय करूं कि कौन ठीक कहता होगा? अगर तय ही करना हो तो देखकर ही तय करना--आंख खोलकर रोशनी से भरकर। तब तुम हंसोगे। ऐसा ही समझो कि इस बगीचे में एक कवि आ जाये और लौटकर तुम उससे पूछो, क्या देखा, और वह एक गीत गुनगुनाये। अब सभी तो गीत न गुनगुना सकेंगे। दूसरा भी कोई इस बगीचे में आये; उसको भी यही फूल मिलेंगे, यही वृक्ष होंगे, यही हवाएं होंगी, यही पक्षियों के गीत होंगे--लेकिन वह गीत गुनगुनाना नहीं जानता। वह भी जाकर कहेगा बाहर, क्या देखा। लेकिन स्वभावतः कवि के वक्तव्य में और उसके वक्तव्य में भेद हो जायेगा। कोई तीसरा आदमी, लकड़हारा आ जाये, तो वह यहां इस बगीचे में सिर्फ लकड़ियां देखेगा--कौन-कौन-सी लकड़ियां काटी जा सकती हैं। कौन आयेगा, कैसी भाषा लेकर आयेगा--इस पर निर्भर करेगा। फिर जब वह जाकर अपना वक्तव्य देगा तो तुम यह मत सोच लेना कि ये अलग-अलग वक्तव्य, अलग-अलग बगीचों के संबंध में हैं। ये वक्तव्य बिल्कुल अलग-अलग होंगे, फिर भी ये एक ही बगीचे के संबंध में हैं।
सत्य एक है; जाननेवालों ने उसे बहुत ढंग से कहा है। क्योंकि जाननेवाला अपने ही ढंग से कहेगा। अब महावीर और मीरा के वक्तव्य में मेल नहीं हो सकता। मीरा है मदमस्त। मीरा है स्त्री, महावीर हैं पुरुष। मीरा कहेगी नाचकर, गुनगुनाकर। उसके पग के घूंघर बजेंगे। उस ढंग से कहेगी। महावीर न नाचेंगे, न पग में घूंघर होंगे, न गीत होगा। महावीर के वक्तव्य बिल्कुल वैज्ञानिक होंगे, सूत्रबद्ध होंगे। जितना संक्षिप्त हो सकता है, उतना संक्षिप्त होगा। और इन दोनों के वक्तव्य की व्यवस्था अलग-अलग होगी, इससे तुम चिंता में पड़ जाओगे।
लेकिन तुमसे मैं एक बात कह देता हूंः तुम तब तक निर्णय मत लेना जब तक तुम न जान लो।
फिर तुम पूछोगे, "हम करें क्या? जानें कहां से?"
मैं कहता हूं, किसी को भी चुन लो। श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ का सवाल नहीं है।
जो तुम्हें मौजू पड़ जाये, जो तुम्हें रास पड़ जाये, जिससे तुम्हारा मेल बैठ जाये--वही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है। नहीं तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। अगर तुम यह सोचने लगे कि तय ही नहीं करना है कि कौन श्रेष्ठ है, तो फिर हम चलें किसके साथ! जब तुम तय करना चाहते हो कौन श्रेष्ठ है, तो कौन श्रेष्ठ है, यह तय करने के लिए मत करना। तुम तो इतना ही तय करना, मेरे लिए कौन! "मेरे" का ख्याल रखना। वह वक्तव्य तुम्हारी सापेक्षता में है। नहीं अगर तुम तय न कर पाये तो तुम मुश्किल में पड़ोगे--
काबे से दैर, दैर से काबा
मार डालेगी राह की गर्दिश।
फिर मंदिर से मस्जिद, मस्जिद से मंदिर--राह की धूल ही मार डालेगी। कुछ
तो तय करना ही पड़ेगा--मंदिर या मस्जिद। कहीं तो बैठकर प्रार्थना करनी है! कहीं तो पूजा करनी है!
तो अगर तुम ऐसे डावांडोल होने लगे तो मुश्किल हो जायेगा। अगर तुमने
यह सवाल इसलिए पूछा है कि मेरे लिए कौन ठीक पड़ेगा, तब तो ठीक पूछा है। अगर महावीर और कृष्ण के बीच निर्णय करने को पूछा है, तो बिल्कुल गलत पूछा है। हां, तुम्हारे लिए कोई एक ठीक पड़ेगा।
जिनको जीवन में संकल्प में रस है और जिनको समर्पण करना असंभव है, उनके लिए महावीर ठीक हैं। जिनके लिए समर्पण सुगम है और संकल्प कठिन है, उनके लिए कृष्ण ठीक हैं।
कृष्ण कहते हैं, मामेकं शरणं व्रजः। सब छोड़! सर्व धर्मान परित्यज्य; छोड़-छाड़ सब धर्म! मेरी शरण आ जा! यही धर्म है, यही परम धर्म है।
महावीर कहते हैं, शरण भूलकर किसी की मत जाना। शरण गये कि उलझे। शरण गये कि दास बने। शरण से कहीं मोक्ष उपलब्ध होगा? यह शरण तो गुलामी है।
अशरण-भावना--महावीर का सूत्र है। अशरण-भावना। कोई शरण नहीं! कहीं कोई शरण नहीं है--अपने ही पैर पर खड़े होना है।

दोनों ठीक हैं। मगर दोनों एक साथ तुम्हारे लिए ठीक नहीं हो सकते।
दोनों एक साथ मेरे लिए ठीक हैं। तुम्हें दो में से कोई एक चुनना पड़ेगा।
अन्यथा--
काबे से दैर, दैर से काबा
मार डालेगी राह की गर्दिश।
धुआं, धूल, राह की आपाधापी में ही तुम नष्ट हो जाओगेः समय ही न बचेगा मंदिर में प्रवेश करने का कि मस्जिद में प्रवेश करने का। प्रार्थना करनी है तो कहीं तो चुनना ही होगा। लेकिन चुनाव का ध्यान रखना--"मेरे" कारण चुन रहा हूं; उनमें कौन श्रेष्ठ है, इस कारण नहीं। सापेक्षता अपनी तरफ रखना। यह मैं दोनों को साथ नहीं चुन सकता। इतना बड़ा मेरे पास हृदय नहीं। इतनी विराट मेरी दृष्टि नहीं कि दोनों को साथ-साथ सम्हालूं! इतना मेरे घर में स्थान नहीं कि दोनों को साथ-साथ मेहमान बना लूं! यह मजबूरी मानकर चुनना कि घर छोटा है और एक को ही बुला सकता हूं।
जिस दिन तुम जागोगे, उस दिन तो तुम पाओगेः दोनों एक ही सत्य के दो भिन्न चेहरे हैं। लेकिन तब तक तुम्हें निर्णय करना जरूरी है। और यह निर्णय बहुत जागरूक रहकर करना। यह निर्णय जन्म पर मत छोड़ देना कि तुम जैन घर में पैदा हुए तो महावीर तुम्हें श्रेष्ठ होने ही चाहिए। काश! चीजें इतनी आसान होतीं! कि तुम हिंदू घर में पैदा हुए, इसलिए कृष्ण तुम्हें श्रेष्ठ होने ही चाहिए। काश! जन्म ने इतना तय कर दिया होता तो मार्ग बड़ा सुगम हो जाता। लेकिन ऐसा कुछ भी तय नहीं होता। ऐसा कुछ भी तय होने का उपाय नहीं है।
जीसस यहूदी घर में पैदा हुए लेकिन यहूदियों का मार्ग न जमा। मुहम्मद मूर्ति-पूजक घर में पैदा हुए थे, लेकिन मूर्ति-पूजा का मार्ग न जमा। महावीर पैदा हुए थे तो राज-घर में, क्षत्रिय थे, युद्ध का ही शिक्षण मिला था; लेकिन युद्ध की भाषा, राजमहल, क्षत्रिय, राजनीति, न जमी। छोड़ सब, संन्यासी हो गये।
क्या तुम्हें जमेगा? जन्म से मत पूछना कि कहां हम पैदा हुए। वहां पूछा
तो भटकाव का डर है। क्या तुम्हें जमेगा? थोड़ा सम्हलकर अपनी वृत्तियों का परीक्षण-निरीक्षण करना, विश्लेषण करना। अपने रस की धार को पहचानना। ज्यादा देर न लगेगी, थोड़े प्रयोग करने से साफ हो जायेगा कि कौन-सी बात जमती है। कौन-सा भोजन तुम्हें रास आता है, यह तुम्हें जल्दी ही पता चल जायेगा। जो भोजन रास आयेगा, उसे पाकर प्रफुल्लता मालूम होगी। जो भोजन रास न आयेगा, उसे ले लेने के बाद बोझ मालूम होगा; जैसे पेट पर पत्थर डाल दिये; मतली होगी। शरीर उसे बाहर फेंक देना चाहेगा। व्यवस्था उसे स्वीकार न करेगी। ठीक ऐसा ही आत्मिक भोजन है। जब तुम्हें कोई मार्ग रास आ जाता है, तत्क्षण सब तरफ फूल खिलने लगते हैं। तुम प्रसन्न हो जाते हो। तुम प्रफुल्लित हो जाते हो। वह लक्षण है। अगर तुम सूख जाओ, उदास हो जाओ, दीन हो जाओ, तो बस बात खराब हो गई।
मैंने सुना है, एक पादरी, एक ईसाई धर्मगुरु, एक रास्ते से गुजर रहा था। अचानक बादल उठे, जोर की आंधी आई, बिजलियां चमकीं, वर्षा मूसलाधार होने लगी। तो वह भागकर पास के एक झाड़ के नीचे खड़ा हो गया। घनी छाया थी। झाड़ के नीचे एक बूढ़ा भी बैठा हुआ था। वह बूढ़ा प्रार्थना कर रहा था। उस धर्मगुरु ने खुद भी जिंदगीभर हजारों लोगों को प्रार्थना करवाई थी, खुद भी हजारों बार प्रार्थना की थी; लेकिन प्रार्थना में कभी रस न पाया था। करता था एक औपचारिक क्रिया-कांड। ईसाई घर में पैदा हुआ था, फिर ईसाई पादरी की तरह शिक्षित हो गया, तो दूसरों को भी करवाता था; लेकिन मन में कभी तरंग न उठी थी। इस बूढ़े को डोलते देखा। इस बूढ़े के टूटे-फूटे शब्द! लेकिन उसकी आंखों की मस्ती! उसके चेहरे पर एक आभामंडल! उसे पहली दफे लगाः अरे! तो प्रार्थना मैंने अब तक जानी नहीं! ऐसी शांत! ऐसी उपस्थिति! ऐसी पवित्र उपस्थिति उसने कभी अनुभव न की थी।
उस बूढ़े के चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई थीं। बड़ा बूढ़ा था, काफी उम्र हो
गई थी, नब्बे के करीब उम्र होगी। लकड़हारा था, लकड़ियों का ढेर बगल में रखा था। लौटता होगा शहर, वर्षा आ गई तो रुक गया। समय प्रार्थना का हो गया, तो

प्रार्थना कर रहा था। जब प्रार्थना पूरी हो गई, तो पादरी ने बड़े अहोभाव से पूछा कि तुम्हारा ईश्वर से बड़ा प्रेम है! उस बूढ़े ने कहा, "हां, उसका भी मेरे प्रति बड़ा प्रेम है! सच कहूं तो वह मुझे काफी चाहता है।"
उस पादरी का जीवन मैं पढ़ रहा था। उसने लिखा है, प्रार्थना के संबंध में इससे अदभुत वचन मैंने अपने जीवन में कभी नहीं सुने थे। उस बूढ़े ने कहा कि अगर सच कहूं, तो वह मुझे काफी चाहता है।
प्रार्थना रास आ जाये, तुम्हारे रुझान में बैठ जाये, तो ऐसा ही नहीं
कि तुम परमात्मा को चाहते हो, तत्क्षण तुम पाओगेः वह भी तुम्हें चाहता है। चाहत कोई एक तरफ थोड़े ही होती है! तुम उस तरफ से भी पाओगेः संवाद आने लगे, संदेश आने लगे। तुम उस तरफ से भी पाओगेः हजार-हजार रूपों में उसका प्रेम तुम पर बरसने लगा।
हां, अगर प्रार्थना जमे न, तो तुम्हीं करते रहोगे; दूसरी तरफ से कुछ भी
न आयेगा। बोझ लगेगा। करना है, इसलिए कर लोगे। कर्तव्य है, इसलिए पूरा निपटा दोगे। सदा घर में होती रही इसलिए करना है, तो कर देते हैं। लेकिन पुलक न होगी। अहोभाव न होगा। आनंद न होगा।
और जिस प्रार्थना में अहोभाव न हो, उस प्रार्थना से कैसे तुम्हारी भूख मिटेगी।
तो ध्यान रखना, अपनी भीतर की दशा को पहचानना ज्यादा जरूरी है। महावीर ठीक हैं, श्रेष्ठ हैं, कि कृष्ण--यह बात तो फिजूल। तुम्हें महावीर जमते हैं? सिर्फ इसलिए नहीं कि तुम जैन घर में पैदा हुए हो। अगर सिर्फ इसलिए जमते हैं तो तुम भटकोगे। अगर सच में जमते हैं, ऐसे जमते हैं कि अगर तुम मुसलमान घर में भी पैदा होते तो भी तुम जैन मंदिर में ही प्रार्थना करने गये होते; ऐसे जमते हैं कि तुम चाहे हिंदू घर में पैदा होते, चाहे बचपन से गीता सुनी होती, लेकिन जिस दिन महावीर का शब्द तुम्हारे कान में पड़ता, सब गीता-वीता भूल जाते और तुम महावीर के पीछे दौड़ पड़ते--ऐसे जमते हैं तो फिर महावीर तुम्हारे लिए मार्ग हैं। नहीं ऐसे जमते हैं, इतने जोर की पुकार नहीं तुम्हारे भीतर पैदा होती उनके नाम को सुनकर, उनके नाम को सुनकर तुम्हारे हृदय में कोई घंटियां नहीं बजतीं, सुन लेते हो कि ठीक है, अपना धर्म है--तो फिर कुछ सार नहीं। फिर तुम कहीं और खोजो। फिर किसी और मंदिर के द्वार पर दस्तक दो।
धर्म हमेशा ही अपना चुना हुआ होता है, तो ही होता है। दुनिया अधार्मिक
हो गई, क्योंकि धर्म को हम जन्म से तय करते हैं। धर्म कोई वसीयत थोड़े ही है। और धर्म का कोई खून, हड्डी, मांस-मज्जा से थोड़े ही संबंध है! धर्म कोई वांशिक "हेरिडिटरी" थोड़े ही है कि तुम जैन घर में पैदा हुए तो तुम्हारा खून जैन का है। तो डाक्टर से जाकर जांच करवाकर देख लो कि जैन और हिंदू और मुसलमान के खून में--ड़ाक्टर कुछ पता न बता सकेगा--कौन हिंदू का है, कौन जैन का है, कौन मुसलमान का है। हड्डी कोई हिंदू, जैन, मुसलमान नहीं होती। हिंदू, जैन, मुसलमान, तो तुम्हें निर्णय करना होगा।
लेकिन लोग कमजोर हैं, सुस्त हैं, काहिल हैं, कायर हैं। कौन झंझट में पड़े! इसलिए कोई भी बहाने से तय कर लेते हैं कि चलो ठीक है, जन्म से ही हो गया तय तो झंझट मिटी। खुद तो खोजने से बचे! खुद तो विवेक करने से बचे! कौन विश्लेषण करता, कौन खोजता, कहां जाते, किसको पूछते, मुफ्त तय हो गया--चलो ठीक है।
यह तो ऐसे ही है, जैसे रुपये को तुम फेंककर चित्त-पट्ट कर लो और सोचो
कि इससे धर्म तय हो जायेगा। चित्त पड़े तो महावीर, पट्ट पड़ जाये तो कृष्ण। जैसा वो बेहूदा और अप्रासांगिक है, ऐसे ही जन्म भी बेहूदा और अप्रासांगिक है। कहां तुम पैदा हुए हो, इससे तुम्हारी जीवन-चिंतना और धारा का कोई संबंध नहीं है। तुम्हें अपना धर्म खोजना पड़े।
खोज से ही मिलता है धर्म। धर्म आविष्कार है। और जब कोई खुद खोजता है अपने धर्म को, तो उस खोज के कारण ही धर्म में एक रौनक होती है। जो व्यक्ति पहली दफा महावीर को खोजते हुए आये थे, उन्होंने जिस प्रकाश और महिमा का आनंद उठाया, वो जैन घर में पैदा हुए पच्चीस सौ साल बाद बच्चे थोड़े ही उठा रहे हैं!

जो महावीर को खोजते आये थे, जो दूर-दूर से प्यासे होकर आये थे, जिन्होंने तीर्थयात्रा की थी; जिन्होंने महावीर को चुना था सारे संकटों के बावजूद; जिन्हें महावीर की पुकार हृदय को छू गई थी, आंदोलित कर गई थी; जिन्होंने क्राइस्ट को चुना या मुहम्मद को चुना स्वेच्छा से, अंतरंग से... तो उतना ख्याल रखना। और इतने ईमानदार रहना। क्योंकि अगर यहां बेईमानी हो गई, इस बुनियादी बात में बेईमानी हो गई, तो तुम सदा के लिए भटक जाओगे।

दूसरा प्रश्न भी इससे संबंधित है। "गुणा" ने पूछा हैः
बहुत समय से मैं आपके पास हूं और मैं बहुत अज्ञानी और निर्बुद्धि हूं,
यह आप भलीभांति जानते हैं। आपकी कही अनेक बातें मेरे सिर पर से गुजर जाती हैं। आप परमात्मा से बिछुड़न की जिस पीड़ा की बात करते हैं, वह पीड़ा मुझे कभी हुई नहीं। परमात्मा की प्यास का मुझे कुछ पता नहीं। फिर मैं क्यों यहां हूं और यह ध्यान-साधना वगैरह क्या कर रही हूं?

"गुणा" की भी तकलीफ वही है जो मैंने अभी तुमसे कही। वह जैन घर में पैदा हुई है; इसलिए परमात्मा शब्द सार्थक नहीं है; प्यास शब्द भी सार्थक नहीं है। जैन घर की भाषा में परमात्मा और प्रार्थना के लिए कोई स्थान नहीं है। संस्कार जैन के हैं, प्राण जैन के नहीं हैं। ऊपर से सारी धारा बौद्धिकता से तो जैन की है, और भीतर के प्राण तो एक अत्यंत भावुक स्त्री के हैं। कृष्ण से रंग बैठ सकता था। कृष्ण के साथ नाच हो सकता था। महावीर के साथ नाच बैठता नहीं। नाचो तो उपद्रव मालूम होगा महावीर के साथ। वहां नाच की कोई संगति नहीं है। वहां गीत, वाद्य की कोई संगति नहीं है। यही कठिनाई है।
इसलिए जब मैं कहता हूं, परमात्मा की प्यास, तो जैन सुन लेता है; लेकिन उसके भीतर कुछ होता नहीं। उसके सारे संस्कारों की पर्तें--कैसा परमात्मा! कैसी प्यास! मुझसे थोड़ा लगाव है तो सुन लेता है, बर्दाश्त कर लेता है। लेकिन ऐसे उसकी पर्तों के भीतर बात नहीं उतरती।
ठीक वैसा ही जब मैं कहता हूं--अशरण-भावना, संकल्प, स्वयं अपने पैरों पर खड़े हो जाना--जब मैं महावीर की बात करता हूं तो हिंदू सुन लेता है, मुझसे लगाव है। लेकिन वह सोचता है, कहीं न कहीं यह तो बड़ी अहंकार की ही बात हो रही है। अपने पैर पर खड़े होना--इसमें कुछ समर्पण तो है नहीं। सब परमात्मा पर छोड़ना है, और इसमें कोई समर्पण की बात नहीं है। मेल नहीं बैठता।
वही कठिनाई "गुणा" की है। गुणा के पास एक भावुक हृदय है, जो नाच सकता है, गा सकता है, गुनगुना सकता है। उसको जरूरत थी किसी और भाषा की। जैन भाषा उसके काम की नहीं है। जैन भाषा में फंसी है। उस भाषा के बाहर आने की हिम्मत भी नहीं है।
कारागृह पत्थर की ईंटों के ही नहीं होते, शब्दों की ईंटों के भी होते हैं--और ज्यादा मजबूत होते हैं। बचपन से जो सुना है, बचपन से जो समझा है, जिसके संस्कार पड़े हैं, वह तुम्हारे चारों तरफ दीवाल बन जाती है। फिर बाद में उस दीवाल के बाहर निकलने में बड़ी घबड़ाहट होने लगती है। ऐसा लगता है, यह तो अधर्म हो जायेगा। इससे बाहर गये तो अधर्म हो जायेगा। इसके भीतर रहने में ही धर्म है। और भीतर रहने में प्राण अकुलाते हैं।
महावीर का ढंग बड़ा भिन्न है।
मुझे तलाश रही है
नहीं, तलाश नहीं--
तलाश में तो तलब
जुस्तजू-सी होती है
दबा-दबी ही सही
आरजू-सी होती है
न आरजू न तलब है
न जुस्तजू न तलाश
जरा-सी एक जराहत
जरा-सी एक खराश।

मुझे तलाश रही है
नहीं, तलाश नहीं।
खोज की भाषा ही ठीक नहीं है; क्योंकि खोज का अर्थ ही होता है, बाहर खोजना। खोज का अर्थ ही होता है कि कहीं परमात्मा छिपा है और खोजना है। मुझे तलाश रही है
नहीं, तलाश नहीं--
तलाश में तो तलब...
और फिर तलाश में तो इच्छा पैदा हो जाती है, वासना आ जाती है। परमात्मा
को खोजने की भी तो वासना है, आकांक्षा है, अभीप्सा है।
तलाश में तो तलब
जुस्तजू-सी होती है।
और फिर इच्छा जल्दी ही आकुल इच्छा बन जाती है, तीव्र हो जाती है, फिर जलाने लगती है।
महावीर के मार्ग पर तो समस्त इच्छाओं के त्याग से रास्ता खुलता है।
समस्त इच्छाओं के त्याग में मोक्ष की इच्छा भी सम्मिलित है।
इसे थोड़ा समझना। वह जो मोक्षवादी है, वह कहता है, मोक्ष की भी इच्छा छोड़ देनी है, तब मोक्ष मिलेगा। परमात्मा की भी इच्छा छोड़ देनी है, तभी।
इच्छा मात्र बाधा है।
भक्तों से पूछो!
भक्त कहते हैं, अगर मोक्ष छोड़ना पड़े, हम तैयार हैं; लेकिन तुम्हारी अभीप्सा बनी रहे! प्रभु को पाने की अकुलाहट बनी रहे! बैकुंठ पर लात मारने को तैयार हैं। लेकिन कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे विरह में जो मजा आ रहा है, वह खो जाये!
भक्त, परमात्मा के विरह को बचा लेना चाहता है। उसके मिलन की तो बात दूर, उसका विरह भी बड़ा प्यारा है। ज्ञानी, परमात्मा की आकांक्षा भी छोड़ देना चाहता है। विरह की तो बात दूर, उसके मिलन की भी आकांक्षा नहीं करता। क्योंकि आकांक्षा मात्र उसे मोक्ष में बाधा मालूम होती है।
ये अलग-अलग भाषाएं हैं।
तलाश में तो तलब
जुस्तजू-सी होती है
दबा-दबी ही सही
आरजू-सी होती है।
कितना ही दबाओ, कितना ही सम्हालो, संस्कारित करो, लेकिन आकांक्षा तो रहती है, आरजू तो रहती है।
इसलिए तो महावीर के मार्ग पर प्रार्थना शब्द गलत है। ध्यान! प्रार्थना की कोई जगह नहीं है। प्रार्थना में तो आरजू-सी रहती है। दबा-दबी ही सही
आरजू-सी होती है
न आरजू न तलब है
--न पाने की इच्छा है, न पाने की कोई याचना है।
न जुस्तजू न तलाश
--न खोज है, न खोज में कोई पागलपन है। फिर है क्या?
भक्त बोलता है, परमात्मा की प्यास के कारण खोजने निकले हैं। ज्ञानी बोलता है, भीतर एक घाव है, पीड़ा है--उसको मिटाना है।
जरा-सी एक जराहत
--एक घाव है भीतर।
जरा-सी एक खराश
--और उस घाव में पीड़ा है।
इस बात को समझने की कोशिश करो।
भक्त की पीड़ा भी प्यास है। वह कहता है, प्रभु पीड़ा दो। प्यासा करो, जलाओ!

ज्ञानी के लिए परमात्मा नहीं है, न कोई प्यास है, न कोई और बात है। सिर्फ अज्ञान की एक पीड़ा है; यह पीड़ा प्यास नहीं है, यह दुख है। यह कांटे की तरह चुभ रही है। इसे निकालकर फेंकना है।
ये दोनों भाषाएं अलग हैं। और जब तक तुम्हें ठीक सम्यक भाषा न मिल जाये, जिससे तुम्हारे हृदय का तालमेल बैठे, तब तक ऐसी अड़चन होगी। मेरी बातें सिर पर से निकलती हुई मालूम होंगी। कोई-कोई बात जो तुम्हारे संस्कार से मेल खा जायेगी, वो समझ में आयेगी। लेकिन समझ में आने से क्या होगा? अगर तुम्हारे हृदय से मेल न खायेगी तो समझ में आ जायेगी, किसी काम में न आयेगी। और जो बात तुम्हारे हृदय से मेल खाती थी, वह तुम्हारे सिर पर से निकल जायेगी; क्योंकि संस्कार उसे भीतर प्रविष्ट न होने देगा। जो बात तुम समझ लोगे, वह तुम्हारे काम की न होगी। और जो तुम्हारे काम की थी, वह तुम्हारा मन तुम्हें समझने न देगा।
"गुणा" की तकलीफ, भावुक स्त्रैण हृदय की तकलीफ है।
जैन मार्ग पुरुष का मार्ग है। और जब मैं कहता हूं, पुरुष का, तो मेरा मतलब यह नहीं कि स्त्रियां उस मार्ग से नहीं जा सकतीं। स्त्रियां भी जा सकती हैं, लेकिन पुरुष-धर्मा; जिनकी वृत्ति पुरुष की वृत्ति हो।
कृष्ण का मार्ग स्त्रैण मार्ग है। इसका यह मतलब नहीं कि पुरुष नहीं
जा सकते; जा सकते हैं--लेकिन वे ही पुरुष, जिनकी भावदशा स्त्रैण हो। गोप भी जा सकते हैं; लेकिन गोप ऊपर-ऊपर से होंगे, भीतर से गोपी का ही भाव होगा। इसलिए कृष्ण का भक्त तो अपने को मानने लगता है, वह स्त्री है; उसकी, कृष्ण की गोपी है। वह अपने पुरुष-भाव को छोड़ देता है।
जैन साध्वी अपने सारे स्त्रैण भाव को धीरे-धीरे काटकर गिरा देती है, पुरुषवत हो जाती है। सारा राग, सारा रस, सब समाप्त कर देना है। मरुस्थल की तरह हो जाना है।
गलत और सही की बात नहीं है--तुम्हें जो रास पड़ जाये। ऐसी तकलीफ बनी ही रहेगी, जब तक तुम संस्कारों और अपने हृदय के बीच जो विरोध है उसको ठीक से पहचानकर साफ-साफ रास्ता न बना लोगे।
"गुणा" को अपने संस्कार छोड़ने पड़ेंगे। उसे अपने हृदय की भाषा को पहचानना पड़ेगा। नहीं तो वह तकलीफ में ही रहेगी।
जो न बन पायी तुम्हारे गीत की कोमल कड़ी
तो मधुर मधुमास का वरदान क्या है?
तो अमर अस्तित्व का अभिमान क्या है?

तुम नहीं आए? न आओ, याद दे दो
फैसला छोड़ा, फकत फरियाद दे दो
मति नहीं कहती, चरण का स्वाद दे दो
बस प्रहारों का अनंत प्रसाद दे दो

देख ले जग, सिसककर आराधना सूली चढ़ी
जो न बन पायी तुम्हारे गीत की कोमल कड़ी
तो मधुर मधुमास का वरदान क्या है?
तो अमर अस्तित्व का अभिमान क्या है?
अगर "गुणा" जागती नहीं, समझती नहीं, तो व्यर्थ ही समाप्त होगी। किसी दिन जीवन के अंतिम पहर में उसे ऐसा ही कहना पड़ेगा--
जो न बन पायी तुम्हारे गीत की कोमल कड़ी
तो मधुर मधुमास का वरदान क्या है?
--जीवन आया और गया! व्यर्थ ही गया!
गाओ, नाचो! ध्यान नहीं, प्रार्थना तुम्हारे लिए मार्ग होगा। मतवालापन! होश नहीं, बेहोशी तुम्हारी दवा है।
तुम नहीं आये? न आओ, याद दे दो
फैसला छोड़ा, फकत फरियाद दे दो
मति नहीं कहती...
--बुद्धि और ज्ञान की आकांक्षा नहीं है।

मति नहीं कहती, चरण का स्वाद दे दो!
बस प्रहारों का अनंत प्रसाद दे दो!
--तो तृप्ति होगी।
अपने को जिसने ठीक से पहचाना वह जल्दी ही अपनी तृप्ति का मार्ग खोज लेता है। मार्गों की फिक्र छोड़ो, अपनी फिक्र करो। मार्गों के लिए तुम नहीं बने हो, तुम्हारे लिए मार्ग हैं। शास्त्रों में मत उलझो। शास्त्रों के लिए तुम नहीं हो कि तुम्हारी कुर्बानी उनके लिए हो जाये, जैसा कि हो रहा है। शास्त्रों पर कुर्बान हैं करोड़ों लोग। शास्त्र तुम्हारे लिए हैं। अगर शीत-सर्दी लगती हो, जला लो, ताप लो। शास्त्र तुम्हारे लिए हैं; नींद आती हो, तकिया बना लो। शास्त्र तुम्हारे लिए हैं; ओढ़ लो, सर्दी लगती हो तो। शास्त्र साधन हैं, मनुष्य साध्य है। इसे ध्यान में रखो, तो जो अड़चन मालूम हो रही है, वह मिट जायेगी।
"बहुत समय से आपके पास हूं... " लेकिन वह संस्कार कहां पास होने देते हैं? बिल्कुल पास है... "गुणा" काफी दिन से मेरे पास है। लेकिन संस्कार बीच में एक बड़ी सख्त दीवाल है। टटोलता हूं मैं। मेरे हाथ तुम तक नहीं पहुंच पाते। तुम्हारी दीवाल है। लगता है पास-पास खड़े हैं, क्योंकि यह दीवाल पारदर्शी है, शब्दों की है। पत्थर की होती तो मैं तुम्हें दिखाई भी न पड़ता। यही तो खूबी है शब्दों की दीवाल कीः पारदर्शी है, कांच की है। आर-पार दिखाई पड़ता है, इसलिए लगता है बिल्कुल पास खड़े हैं।
कभी तुमने ख्याल किया? कांच की खिड़की के उस तरफ इस तरफ खड़े हो जाओ; जरा-सा कांच का फासला है, मगर उतना फासला काफी है। हम पास हैं, एक-दूसरे से बहुत दूर हैं। अनंत फासला है।
यह कांच की दीवाल तोड़ो। और अकसर ऐसा हो जाता है जो बहुत दिन से पास हैं, वह इस भ्रांति में पड़ जाते हैं कि पास हैं। कांच दिखाई ही नहीं पड़ता, धीरे-धीरे आर-पार दिखाई पड़ता है, बात भूल जाती है। पर कांच अभी है।
"और मैं बहुत अज्ञानी और निर्बुद्धि हूं, यह आप भलीभांति जानते हैं।" बिल्कुल भलीभांति जानता हूं। इसीलिए तो कह रहा हूंः अज्ञानी और निर्बुद्धि के लिए भक्ति मार्ग है, प्रेम मार्ग है।
मति नहीं, चरण का स्वाद दे दो
फैसला नहीं, फरियाद दे दो।
उतना काफी है।
"आपकी कही अनेक बातें मेरे सिर पर से गुजर जाती हैं।"
जो-जो तुम्हारे काम की हैं, वह सिर पर से गुजर रही हैं। मैं देखता हूं उन्हें गुजरते, क्योंकि तुम्हारा सिर उन्हें टिकने नहीं देता। जो बातें तुम्हारे काम की हैं और हृदय तक पहुंचनी चाहिए थीं, वह सिर उन्हें भीतर प्रवेश नहीं होने देता। वह द्वार से ही लौटा देता है, द्वारपाल ही उन्हें अलग कर देता है। और जिन्हें तुम्हारा सिर प्रवेश होने देता है वह तुम्हारे काम की नहीं। क्योंकि तुम्हारे सिर के पास अपने संस्कार हैं। अगर जैन मुझे सुनने आता है तो वह उतनी बातों को भीतर जाने देता है, जितनी उसके जैन धर्म से मेल खाती हैं; बाकी को बाहर रोक देता है कि ठहरो, कहां जा रहे हो? जैन नहीं हो। हिंदू सुनने आता है, उतनी को भीतर जाने देता है जितनी हिंदू धर्म से मेल खाती हैं; बाकी को कह देता है, भीतर मत आना।
तो तुम सुनते वही हो, जो तुम्हारा सिर तुम्हें आज्ञा देता है। तुम मुझे थोड़े ही सुनते हो। जो मुझे सुनता है, उसमें रूपांतरण निश्चित है।
यह पहरेदार को विदा करो, इसे छुट्टी दे दो। तो जो अभी सिर के ऊपर से जा रही हैं, वह सिर की गहराई में भी उतरेंगी। और सिर में ही न उतरें तो हृदय में कैसे उतरेंगी? सिर तो द्वार है। जब सिर में कोई बात उतर जाती है तो धीरे-धीरे हृदय में डूबती है, तलहटी में बैठती है और वहां से क्रांति घटित होती है।
"आप परमात्मा से बिछड़न की जिस पीड़ा की बात कहते हैं, वह पीड़ा मुझे कभी हुई नहीं।"
परमात्मा का ख्याल ही नहीं है! पीड़ा तो तब हो न जब हमें ख्याल हो कि परमात्मा है! परमात्मा की धारणा का ही खंडन है। जब धारणा का ही खंडन है तो

प्यास तो कैसे उठेगी? उठेगी भी, तो तुम कोई और चीज ही समझोगे--किसी और चीज की प्यास है। परमात्मा की तो हो ही नहीं सकती। कभी सोचोगे धन की प्यास है; कभी सोचोगे प्रेम की प्यास है; कभी सोचोगे पद की प्यास है--लेकिन "परमात्मा" शब्द है ही नहीं तुम्हारे पास, तो प्यास को परमात्मा की तरफ उन्मुख होने का उपाय नहीं है। और आत्मा की तरफ जाने के लिए जैसा पुरुषार्थ चाहिए, जैसा पौरुषिक उद्दाम संकल्प चाहिए, वह तुम्हारे पास नहीं है। कुछ हर्जा नहीं है। कुछ दुर्गुण नहीं है।
दुनिया में आधे लोग संकल्प से ही पहुंचेंगे, आधे लोग समर्पण से ही पहुंचेंगे। लेकिन हमारी तकलीफ हैः हम सभी को एक ही घेरे में बंद कर देते हैं।
स्त्रियों को थोड़े भक्ति के रास्ते पर खोजबीन करनी चाहिए। पुरुषों को थोड़े संकल्प के रास्ते पर खोजबीन करनी चाहिए। तो पति हिंदू हो, तो जरूरी नहीं है कि पत्नी भी हिंदू हो। जिस दिन भली दुनिया होगी, उस दिन पत्नी अपना धर्म चुनेगी, पति अपना धर्म चुनेगा। और बेटे-बेटियों के लिए खुला अवसर छोड़ा जायेगा कि जब वह बड़े हो जायें तो अपना धर्म चुनें। अच्छी दुनिया होगी तो एक-एक घर में करीब-करीब आठ-आठ दस-दस धर्म होंगे, एक-एक परिवार में। होने ही चाहिए; क्योंकि जिसको जो रास पड़ जायेगा। कपड़े मैं तुम जिद्द नहीं करते; किसी को सफेद पहनना है, सफेद पहनता है; किसी को हरा पहनना है, हरा पहनता है। भोजन में तुम जिद्द नहीं करते; किसी को चावल ठीक रास आते हैं, चावल खाता है; किसी को गेहूं रास आते हैं, गेहूं खाता है। धर्म के संबंध में क्यों जिद्द करते हो कि सभी पर एक ही धर्म थोपा जाये?
पत्नी को अगर भक्त होना हो, भक्त हो जाये; कृष्ण के मंदिर में पूजा चढ़ाये। पति को अगर जैन रहना है, जैन रहे; महावीर के प्रकाश को लेकर चले। बेटे को अगर ठीक लगे कि बुद्ध हो जाना है, तो किसी को रोकने का कोई कारण नहीं होना चाहिए। क्योंकि असली सवाल धार्मिक होने का है। अगर बुद्ध होने से, बुद्ध के मार्ग पर चलने से कोई धार्मिक होता है तो शुभ है।
इस दुनिया में निन्यानबे प्रतिशत लोग अधार्मिक हैं, क्योंकि उनको ठीक धर्म चुनने का मौका नहीं मिला है। नास्तिकों के कारण दुनिया अधार्मिक नहीं है, तथाकथित धार्मिकों के कारण अधार्मिक है। जो मुझे रुचिकर है वह खाने न दिया जाये, तो जो मुझे खाने दिया जाता है उसे मैं जबर्दस्ती ढोता हूं, क्योंकि उसमें मेरी कोई रुचि नहीं है।
धर्म स्वतंत्रता है; स्वेच्छा का चुनाव है।
"परमात्मा की प्यास का मुझे कुछ पता नहीं है, फिर मैं क्यों यहां हूं?
और यह ध्यान-साधना वगैरह क्या कर रही हूं?"
अड़चन अपने हृदय को ढांक लेने की है, दबा लेने की है। सिर को हटाओ, हृदय
को प्रगट करो। तब यह प्रश्न साफ हो जायेगा। स्थिति बिल्कुल साफ हो जायेगी। द्वार खुल जायेगा।
गणित नहीं है जीवन। और जीवन किसी लक्ष्य की तरफ प्रेरित नहीं है। कोई ऐसा नहीं है कि जीवन किसी लक्ष्य की तरफ चला जा रहा है। यहां प्रतिपल प्रफुल्लता से होना लक्ष्य है। यहां प्रतिपल आनंद-भाव से जीना लक्ष्य है। यहां पल-पल आनंद-निमग्न होना लक्ष्य है।
पूछो फूलों से, "क्यों खिले हो?" क्या कहेंगे बेचारे! पूछो आकाश के तारों से, "क्यों ज्योतिर्मय हो?" क्या कहेंगे! लेकिन सब तरफ एक अहोगीत चल रहा है! एक अहोभाव नाच रहा है! पल-पल, प्रतिपल!
धर्म इस ढंग से जीने का मार्ग है कि तुम प्रतिक्षण से आनंद को निचोड़ लो। प्रतिक्षण में छिपा है स्वर्ग। तुम उसे चूस लो, निचोड़ लो, पी लो। प्रतिक्षण में छिपी है रसधार।
अब यहां लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम ध्यान क्यों कर रहे हैं? वे यह पूछ रहे हैं कि इससे क्या मिलेगा? ध्यान से कभी कुछ मिला है! ध्यान ही मिलना है। ध्यान में आनंद है। ध्यान में प्रफुल्लता है, नृत्य है। ध्यान के क्षण में सब कुछ है, अंतर्निहित है। ध्यान के क्षण के बाहर कुछ भी नहीं है। लेकिन यह भक्त की भाषा है।

ज्ञानी की भाषा तो लक्ष्य की भाषा होती है। यह प्रेमी की भाषा है। प्रेमी कहता है, प्रेम में सब कुछ है, प्रेम के बाहर क्या है! प्रेम किसी और चीज के लिए साधन थोड़े ही है, साध्य है। ज्ञानी पूछता है साधन! यह साधन है, साध्य क्या है?
तो वह जो जैन बुद्धि मन में बैठी है, वह पूछती है, "क्या मिलेगा? उपवास करेंगे तो यह मिलेगा। इतने उपवास करेंगे तो यह मिलेगा। इतना त्याग करेंगे, इतना तप करेंगे, तो इतना पुण्य का अर्जन होगा। इससे स्वर्ग मिलेगा। यह ध्यान करके यहां क्या कर रहे हो? इससे क्या मिलेगा?" मैंने कभी तुम्हें कहा भी नहीं कि इससे कुछ मिलेगा। मैं तो तुमसे कहता हूं, इसी में मिलता है, इसी में मिल रहा है। तुम इसके बाहर नजर ही मत ले जाओ। इसमें ही डूबो, डुबकी लगाओ। इसमें ही ऐसे पूर्ण भाव से डूब जाओ कि न कुछ खोज रह जाये, न कोई खोजनेवाला रह जाये। ऐसी तन्मयता, ऐसी तल्लीनता प्रगट हो, तो यही क्षण परमात्म-क्षण हो गया।
प्रतिक्षण परमात्मा तुम्हारे चारों तरफ बरस रहा है। परमात्मा एक उपस्थिति है आनंद की। तुम जरा भीतर अपने साज को ठीक से बिठा लो। धुन बजने लगेगी। तुम्हारे भीतर से वैसे ही झरने फूटने लगेंगे, जैसे पहाड़ों से फूटते हैं। और तुम्हारे भीतर वैसे ही फूल खिलने लगेंगे, जैसे वृक्षों पर खिलते हैं।
धर्म मनुष्य के भीतर फूल उगाने की कला है। और फूल अंतिम है, चरम है; इसके पार कुछ भी नहीं। प्रत्येक क्षण चरम है। जगत कहीं जा नहीं रहा है--जगत है। तुम भी इस "है" में डूब जाओ। लेकिन तुम्हारे पास अगर गणित की भाषा है, जो पूछती है कि हम यह तो करेंगे, लेकिन किसलिए, तो चूक हो जायेगी।
मैं जो भाषा बोल रहा हूं, वह खेल की भाषा है, दुकान की नहीं। छोटे बच्चे खेल रहे हैं। तुम पहुंच जाते हो, डांटने-डपटने लगते होः "क्यों फिजूल समय खराब कर रहे हो, इससे क्या मिलेगा?" छोटे बच्चे हैरान होते हैं कि... मिलने की बात ही उनकी समझ में नहीं आती। मिलने का सवाल कहां है? कोई बैंक में बैलेंस बढ़ जायेगा? खाते-बही में ज्यादा पैसे इकट्ठे हो जायेंगे? यह उनकी समझ में ही नहीं आता। खेल रहे थे, मिल रहा था। नाच रहे थे, मिल रहा था। इसके पार थोड़े ही कुछ मिलना है!
इसलिए भक्त कहता है, जीवन एक लीला है।
ज्ञानी कहता है, जीवन हिसाब-किताब है। कर्म का जाल है। इसमें साधन जुटाने हैं, साध्य पाना है।
मुझे तो भक्त की भाषा प्रीतिकर है। ज्ञानी की भाषा उतनी महिमापूर्ण नहीं है। गणित हो भी नहीं सकता उतना महिमापूर्ण जैसा काव्य होता है। और जब काव्य बन सकता हो जीवन, तो गणित क्यों बनाना? हां, जब काव्य न बन सकता हो, मजबूरी है, तब गणित बना लेना। जब तर्क के बिना नृत्य हो सकता हो तो तर्क को बीच में क्यों लाना? हां, अगर नाच आता ही न हो, तर्क ही तर्क आता हो, तो फिर ठीक है, तर्क को ही जी लेना।

तीसरा प्रश्नः जाग्रत पुरुषों ने देश-काल-परिस्थिति और लोगों की युगानुकूल मनोदशा का ख्याल रखकर एक ही सत्य को बड़े भिन्न-भिन्न रूप से अभिव्यक्त किया है। यहां तक कि वे परस्पर बिल्कुल विवादास्पद तथा विरोधाभासी तक बन गये हैं। जीवन व अस्तित्व के परम सत्यों की क्या निरपेक्ष अभिव्यक्ति संभव नहीं है? क्या सदा ही युग व लोक-दशा की सीमा सत्य पर आरोपित होती रहेगी?

अभिव्यक्ति तो सदा सीमित होगी। अभिव्यक्ति तो सदा सापेक्ष होगी। बोलनेवाला, सुननेवाला, दोनों ही अभिव्यक्ति की सीमा बनायेंगे।
मैं वही बोलूंगा जो बोला जा सकता है। तुम वही समझोगे जो समझा जा सकता है। सत्य तो विराट है।
अगर मैं सागर के दर्शन करने जाऊं और तुम मुझसे कहो कि लौटते में थोड़ा सागर लेते आना, तो पूरा सागर तो न ला पाऊंगा। हो सकता है, थोड़ा-सा जल सागर का ले आऊं। लेकिन उस जल में बहुत कुछ बातें नहीं होंगी। सागर का तूफान न

होगा, सागर की लहरें न होंगी। वही तो असली सागर था। वह तुमुल नाद और घोर गर्जन! शिलाखंडों पर टकराती हुई लहरें! वह उठती दूर-दूर मीलों तक फैले हुए विस्तार से भरी लहरें! वह उफान! वह सब तो न होगा। भरकर ले आऊंगा एक बर्तन में थोड़ा-सा सागर का जल। फिर भी थोड़ा तो होगा कुछ! स्वाद लोगे तो खारा होगा। सागर जैसा उस बर्तन में क्या होगा? थोड़ा खारापन का स्वाद आ जायेगा, बस।
सत्य तो सागर से भी विराट है। जब हम उसे शब्दों की चुल्लुओं में भरकर लाते हैं किसी को देने, असली तो खो जाता है। थोड़ा-सा स्वाद भी पहुंच जाये, थोड़ा नमक भी तुम्हारी जीभ पर पड़ जाये, तो बहुत! इसलिए बोलनेवाला सीमा देगा, फिर सुननेवाला सीमा देगा। फिर युग-युग की भाषा होगी। युग-युग के भाषा की शैली होगी, प्रचलन होगा, मापदंड होंगे। वह सब सीमाएं देंगे। सत्य को जब भी जाना जाता है तब तो वह निरपेक्ष है, लेकिन जब कहा जाता है तब सापेक्ष हो जाता है। इसलिए सभी अभिव्यक्तियां सीमित होंगी।
इसलिए महावीर कहते हैं, सभी अभिव्यक्तियां--स्यात! कोई अभिव्यक्ति पूर्ण नहीं। और कोई अभिव्यक्ति पूर्ण निश्चय से नहीं कही जा सकती, क्योंकि पूर्ण निश्चय से कहने का तो अर्थ यह होगा कि इसके पार अब कहने को कुछ भी न बचा। प्रत्येक अभिव्यक्ति एक सीमा तक सच होगी और एक सीमा के आगे गलत हो जायेगी। इसलिए परम ज्ञानी बड़े झिझककर बोलते हैं। जानते हुए बोलते हैं कि जो कह रहे हैं, वह बहुत सीमित है; जो कहना था, वह बहुत असीम था। जो जाना, वह बड़ा था; जो जता रहे हैं, वह बड़ा छोटा है।
फिर स्वभावतः अलग-अलग ज्ञानी अलग-अलग ढंग से जतलायेंगे। और उनकी बातें विरोधाभासी भी मालूम पड़ेंगी, क्योंकि सत्य सभी विरोधों को अपने में समाये हुए है। वहां रात भी है और दिन भी है। वहां जन्म भी है, मृत्यु भी है। तो कोई आदमी शायद सत्य की खबर लाये और जन्म के द्वारा समझाने की कोशिश करे। कोई सत्य की खबर लाये और मृत्यु के द्वारा समझाने की कोशिश करे। कोई सत्य की खबर लाये, राग के द्वारा समझाये; जैसा कि नारद ने कियाः परमात्मा का राग, परमात्मा का प्रेम, परमात्मा की भक्ति! कोई परमात्मा की खबर लाये, विराग के द्वारा समझाने की कोशिश करे; जैसा महावीर ने किया। दोनों उसमें हैं। बड़ा विराट आकाश है। उसमें सब समाया है।
तो जब भी कोई व्यक्ति अभिव्यक्त करेगा तो कुछ तो चुनेगा, कहां से अभिव्यक्त करे! तो अपनी-अपनी रुझान, अपनी-अपनी पसंद, अपना-अपना ढंग। इसलिए सत्य की अभिव्यक्तियां विरोधाभासी भी होंगी। लेकिन विरोधाभासी उन्हीं को दिखाई पड़ती हैं, जिन्होंने समझा नहीं। विवादास्पद उन्हीं को मालूम पड़ती हैं, जिनकी अभी आंखें केवल शब्दों से भरी हैं, और अर्थों का आविर्भाव नहीं हुआ।
भक्त तो भगवान के समाने जाकर अवाक हो जाता है। वाणी ठहर जाती है। कुछ सूझता नहीं। जब लौट आता है भगवान के उस जगत से, तब सब सूझने लगता है; लेकिन तब तक भगवान जा चुका। वह परम महत्ता जिसने घेर लिया था, अब नहीं है। तो स्मृति से पकड़ने की कोशिश करता है। कई बार भक्त सोचकर जाता है, अब की बार पूछ लेंगे। उन्हीं से पूछ लेंगे, "कैसे तुम्हारी खबर दें?"
बात भी आपके आगे न जुबां से निकली
लीजिए आए थे हम सोच के क्या क्या दिल में।
और वहां जाकर ठिठककर खड़ा रह जाता है। साधारण प्रेम में तक भाषा लंगड़ाकर गिर जाती है, तो प्रार्थना की तो बात ही क्या! वहां कोरा अवाक, आश्चर्यचकित, सन्नाटा हो जाता है। हां, जब वह महिमा बीत जाती है, जब वह महाक्षण गुजर जाता है, धूल रह जाती है रथ की उड़ती हुई पीछे--तब होश आता है। तब बुद्धि लौटती है। तब थोड़ा सम्हालने की कोशिश करता है। लेकिन तब धूल पकड़ में आती है, रथ तो जा चुका। फिर उसी धूल की खबर देता है। तो फिर जानता भी है कि यह भी क्या खबर दे रहा हूं; यह तो धूल है जो रथ के पहियों से उड़ी थी। यह कोई रथ तो नहीं है। और रथ में विराजमान जो आया था, उसकी तो बात ही क्या करनी! उस क्षण तो मैं बिल्कुल मिट गया था। बुद्धि न थी, मैं न था। तो एक चित्र भी तो न पकड़ पाया, एक छवि भी तो न खींच पाया कि लोगों को दिखा देता! फिर भी... उसके चरण की धूल भी सही! उसके चरणों ने छुआ है, या उसके रथ के

पहियों ने छुआ है, तो इस धूल में भी कुछ स्वाद आ गया होगा। बस! उस धूल की बात है।
ज्ञानी है, वह जब ध्यान की परम दशा में पहुंचता है, सब विचार शांत हो जाते हैं। जब अनुभव होता है, तब विचार नहीं होते। जब विचार लौटते हैं, तब अनुभव जा चुका होता है। तो विचार हमेशा पीछे-पीछे आते हैं। और कुछ टूटा- फूटा, कुछ जूठा, कुछ रेखाएं पड़ी रह गईं समय पर, उनको इकट्ठा कर लेते हैं। उन्हीं को हम अभिव्यक्ति बनाते हैं।
जो जाना गया है, वह कभी कहा नहीं गया। जो कहा गया है, वह वस्तुतः वैसा कभी जाना नहीं गया था। इसलिए शब्दों को मत पकड़ना।
इसीलिए मैं निरंतर कहता हूं कि शास्त्र सहयोगी नहीं हो पाते। क्योंकि
जब तुम किसी सदगुरु के पास होते हो, तब उसके शब्दों में भी उसके निशब्द की ध्वनि आती है। तब उसकी अभिव्यक्ति में भी तुम्हारे भीतर उसके फूल खिलने लगते हैं, जो अनभिव्यक्त रह गया है। तब उसके बोलने में भी तुम उसके अबोल को सुन पाते हो। उसकी मौजूदगी, उसकी उपस्थिति; तुम्हें छूती है, तुम्हें स्पर्श करती है, तुम्हें नहला जाती है। वह जो शब्दों से कहता है, वह तो ठीक ही है, वह तो शास्त्र भी कह देंगे; लेकिन जो उसकी मौजूदगी के स्पर्श में तुम्हें अनुभव होता है, वह शास्त्र न कह पायेंगे। इसलिए सदगुरु के सान्निध्य में तो क्षणभर को तुम्हें ऐसा लगता है कि उसकी अभिव्यक्ति ने छू लिया। बात जतला दी, बता दी, इशारा हो गया। खिड़की खुली थी, देख लिया। ऐसा तुम्हें लगता है कि जो मैं खुद भी कहना चाहता था और न कह पाता था, वह तुमने कह दिया।
देखना तकरीर की लज्ज्त कि जो उसने कहा
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है।
बहुत बार तुम्हें लगेगा सदगुरु के पास कि ठीक, बिल्कुल ठीक, यही तो मैं कहना चाहता था, लेकिन शब्द न जुटा पाता था, असमर्थ था। जो मैं कहना चाहता था, तुमने कह दिया। कई बार सदगुरु के सान्निध्य में तुम्हारा हृदय ठीक उस जगह आ जायेगा, जहां कुछ अनुभव होता है। लेकिन वह अनुभव होता है उपस्थिति से। वह है सत्संग। शास्त्र में तो राख रह जाती है। राख की भी राख। छाया की भी छाया।
तो अगर कोई जीवित व्यक्ति मिल सके, ऐसा सौभाग्य हो, तो हजार काम छोड़कर उसके चरणों में बैठने का अवसर मत छोड़ना। क्योंकि जो शास्त्र नहीं कह पाते हैं, यद्यपि कहने की चेष्टा की गई है, वह उसकी मौजूदगी कहेगी। इसलिए जो लोग महावीर के पास थे, उन्होंने जो जाना; जिन्होंने कृष्ण के पास होने का सौभाग्य पाया, उन्होंने जो जाना--वह तुम गीता पढ़कर थोड़े ही जान सकोगे; वह तुम जिन-सूत्र पढ़कर थोड़े ही जान सकोगे! उसका कोई उपाय नहीं। सांप तो जा चुका, केंचुली पड़ी रह गई--वही शास्त्र है। केंचुली जब सांप पर चढ़ी थी, तब भी केंचुली ही थी, लेकिन तब जीवंत थी। तब सांप चलता था तो केंचुली भी चलती थी। तब सांप फुफकारता था तो केंचुली भी फुफकारती थी। फिर सांप तो जा चुका, केंचुली पड़ी रह गई। अब हवा के झोंके में हिलती-डुलती है, लेकिन अब चलती नहीं; अब उसके पास अपने कोई प्राण नहीं हैं, जीवंत आत्मा नहीं है।

सभी धर्म जब पैदा होते हैं तो किसी सदगुरु की मौजूदगी में पैदा होते हैं। सदगुरु के विदा हो जाने पर सांप की केंचुलियां पड़ी रह जाती हैं अनंत सदियों तक, और लोग उनकी पूजा करते रहते हैं। हां, सदगुरु न मिले तो मजबूरी है। तो फिर तुम शास्त्र को ही पूज लेना। लेकिन ऐसा कभी नहीं होता कि पृथ्वी पर सदगुरु न हों! सदा होते हैं। यद्यपि दुर्भाग्य यह है कि जब वह होते हैं, बहुत कम लोग पहचानते हैं। जब वह जा चुके होते हैं, तब मुर्दा केंचुली को बहुत लोग पूजते हैं। लोगों का मरे से कुछ लगाव है, जिंदा से कुछ घबड़ाहट है! जीवन से कुछ डर है, मृत्यु की बड़ी पूजा है!

आखिरी प्रश्नः जब कोई प्यासा या प्यारा मिल जाता है, तब मेरी दशा पूर
पर आई नदी जैसी हो जाती है। मैं आपको लेकर उस पर बरस पड़ती हूं। जाने किस नगरी की आवाज निकल पड़ती है। मैं दोनों सिरों पर जलती हुई मशाल जैसी हो

जाती हूं। लेकिन आपके पास ला देने पर वह आदमी मुझसे दूर हो जाता है; जैसे बच्चा बड़ा होने पर मां से दूर निकल जाता है। और तब अपने घर वापिस होते समय मुझे एक तड़प-सी होती है। लेकिन "तेरी जो मर्जी" कहके गा पड़ती हूंः राम श्री राम, जय जय राम।

"प्रतिभा" ने पूछा है।
ऐसा होगा, स्वाभाविक है। जिन्होंने मुझे थोड़ा पीया है, उनके मन में यह भाव जगना स्वाभाविक है कि कोई और भी मुझे पीए। जिसे कोई सरोवर मिल गया है, राह पर किसी प्यासे को देखकर उसका हाथ पकड़ेगा, सरोवर तक ले आना चाहेगा।
कभी-कभी तो जबर्दस्ती भी करता हुआ मालूम पड़ेगा। क्योंकि वह जानता है, अभी तुम भला नाराज हो जाओ, सरोवर पर पहुंचकर तुम भी कहोगे, अच्छा किया जबर्दस्ती की।
प्रेम बांटना चाहता है। जो भी मिलता है प्रेम को, बांटना चाहता है। कहीं अगर परमात्मा की खुशबू मिली है तो तुम बांटना चाहोगे। दोनों छोर से मशाल की तरह जलकर बांटना चाहोगे। इसलिए जहां भी कहीं कोई प्यासा मिल जायेगा, तुम्हारे जीवन में एक पूर आ जायेगा। तुम सब कुछ उसमें उंडेल देना चाहोगे। और स्वभावतः तुम जब उसे मेरे पास ले आओगे, तो एक थोड़ी-सी कमी भी मालूम होगी। वह थोड़ी-सी जो अस्मिता बची है, उसके कारण मालूम होती है। क्योंकि जब तुम उसे समझाकर मेरे पास ले आये, तब एक अर्थ में वह तुम्हारे पीछे चल रहा था, तुम्हारी मानकर चला था। जब तुम उसे मेरे पास ला रहे थे तब वह तुमसे आंदोलित और प्रभावित था। फिर जब तुम उसे मेरे पास ले आओगे, स्वभावतः इसलिए तुम उसे लाये भी हो मेरे पास कि वह मुझसे जुड़ जाये, अब वह तुम्हारे पीछे न चलेगा। उसका मुझसे सीधा संबंध हो जायेगा। यही तुमने चाहा भी था, यही तुम्हारी प्रार्थना भी थी। लेकिन फिर भी अस्मिता को थोड़ा-सा धक्का लगेगा कि अरे! इसको सरोवर मिल गया तो हमें भूल ही गया! इस अस्मिता को भी जाने देना और गीत बिल्कुल ठीक हैः "राम श्री राम, जय जय राम"। इसको गुनगुनाना! अस्मिता को इतना भी मत बचाना।
अच्छा अहंकार भी होता है। ध्यान रखना! बुरा अहंकार तो होता ही है, अच्छा अहंकार भी होता है। पवित्र अस्मिता भी होती है--"पायस इगो"। जब तुम कोई अच्छा काम करते हो तो एक बड़ा सदभाव उठता है कि कुछ किया, कुछ अच्छा किया! उसे भी छोड़ना है। अंततः उसे भी छोड़ना है। तो अभी जब किसी को ले आयी होगी "प्रतिभा" और उसे लगा होगा कि वह तो सरोवर से जुड़ गया, अब उसकी कोई फिक्र नहीं करता, तो अभी जो "राम श्री राम, जय जय राम" कहा है, वह थोड़ी मजबूरी में कहा है, कि ठीक है, अब जो तेरी मर्जी! नहीं, इसको आनंद-भाव से कहना। बड़ा फर्क पड़ जायेगा। अभी तो कहा है कि जो तेरी मर्जी! लेकिन जब हम कहते हैं "जो तेरी मर्जी", तभी हम बता रहे हैं कि यह हमारी मर्जी न थी। जो तेरी मर्जी का मतलब ही यही होता है कि ठीक है! हमारी मर्जी तो न थी यह, लेकिन अब तुम्हारी है तो ठीक है। राम श्री राम, जय जय राम! मगर इसमें मजबूरी है।
नहीं, अब दुबारा जब किसी को लाओ, तो पहले से ही इस भाव से ही लाना है, जानकर ही लाना है, कि वह सरोवर में डूब जाये और तुम्हें भूल जाये। क्योंकि तुम्हें याद रखे तो सरोवर में डूबने में बाधा पड़ेगी। और जब वह सरोवर में डूब जाये, तुम्हें भूल जाये, तो धन्यवाद देना। ऐसा मत कहना कि जो तेरी मर्जी! कहना, "धन्यवाद! मेरी प्रार्थना पूरी हुई। इसीलिए तो लाई थी।" और तब फिर गुनगुनानाः "राम श्री राम, जय जय राम!" और तब उसका भाव बिल्कुल अलग होगा। शब्द तो सभी वही होते हैं भाव बड़े बदल जाते हैं। तब यह अहोभाव होगा। तब यह परमात्मा को धन्यवाद है कि ठीक! तूने बड़ी कृपा की कि मुझे इतनी भी अस्मिता न दी कि मैं रुकावट बनूं।
मेरे पास तुम जब मित्रों को लाओगे तो सभी को ऐसा होगा। मगर पहले से ही
यह होशपूर्वक लाना है कि ला ही इसलिए रहे हो कि वे तुम्हें भूलें।
और यह शिक्षण जरूरी है, क्योंकि यही मुझे भी करना पड़ता है। एक दिन मुझे भी कहना पड़ता हैः राम श्री राम, जय जय राम! क्योंकि मैं जिसकी तरफ ले जा रहा हूं, एक दिन वह गये... तो यह प्रशिक्षण जरूरी है। यह जो "प्रतिभा" ने

कहा है, मेरा भी अनुभव है। मगर यही सारी चेष्टा है। यह सफल हो, यही सौभाग्य है।
इस कारण संकोच मत करना कि अब क्या लाना किसी को, जिसको ले जाओ वही दगा
दे जाता है। इस कारण रोकना मत, इस कारण अपने पर नियंत्रण मत रखना। नहीं, जब पूर आये तो आने देना।
जब्त की काशिशें बजा लेकिन
क्या छुपे शौके-बेपनाह का राज
हर किसी को सुनाई देती है
मेरी आवाज में तेरी आवाज।
जिन्होंने मुझे चाहा है, प्रेम किया है, जो सच में मेरे पास आये हैं, सारे आवरण छोड़कर, वे अगर "जब्त" भी करना चाहेंगे, रोकना भी चाहेंगे--
जब्त की कोशिशें बजा लेकिन
--वे अगर चाहेंगे भी कि किसी को कैसे बतायें, क्या बतायें, संकोच भी करेंगे तो भी कुछ फर्क न पड़ेगा।
क्या छुपे शौके-बेपनाह का राज!
--अथाह प्रेम प्रगट होने ही लगता है।
हर किसी को सुनाई देती है
मेरी आवाज में तेरी आवाज।
जिन्होंने मुझे चाहा है, उनकी आवाज में मेरी आवाज सुनाई पड़ने ही लगेगी।
और हर स्थिति में... क्योंकि यह तो एक स्थिति है जो "प्रतिभा" ने पूछी
है कि किसी को ले आती है, फिर वह डूब जाता है। मगर बहुत बार तो ऐसा होगा, तुम किसी को लाना चाहोगे और न ला पाओगे। तुम लाख कोशिश करोगे, तुम जितनी कोशिश करोगे उतना ही वह प्रतिरोध करेगा और न आयेगा। तब भी बेचैन मत होना। तब भी यह मत सोचना कि यह कुछ गलत हो रहा है। तब भी ठीक ही हो रहा है। अभी उसकी यही जरूरत होगी। उस पर नाराज मत होना और यह मत सोचना कि जिद्दी है, कि अहंकारी है, कि अज्ञानी है, कि पापी है। क्योंकि ऐसे जल्दी ही मन में भाव उठते हैं। तुम्हारी कोई न माने तो नाराज होने की इच्छा हो जाती है। नर्क भेजने के भाव उठने में देर नहीं लगती, कि तुम तो इतनी कोशिश कर रहे हो, इसके ही शुभ के लिए, और इस मूढ़ को देखो, मतांध! सुनता ही नहीं, बहरा है! नहीं, तब समझना कि परमात्मा अभी यही चाहता है कि वह न आये। उसके राज सभी जाहिर नहीं होते। होने भी नहीं चाहिए। कभी किसी को प्रतिरोध की ही जरूरत होती है। कभी कोई तुमसे लड़ता है, वही उसका ढंग है मेरे प्रेम में पड़ने का, उसे लड़ने देना। वह लड़-लड़कर ही पड़ेगा। अपने-अपने ढंग होते हैं, अपनी-अपनी शैली होती है।
चमक उसकी बिजली में, तारे में है
यह चांदी में, सोने में, पारे में है
उसी की बयाबां, उसी के बबूल
उसी के हैं कांटे, उसी के हैं फूल।
तो अगर कोई कांटा जैसा भी मालूम पड़े तो भी समझना, उसी का है; नाराज मत
हो जाना। फूल पर बहुत प्रसन्न मत हो जाना, कांटे पर बहुत नाराज मत हो जाना। एक बात स्मरण रखना कि तुमने निवेदन कर दिया था, बात समाप्त हो गई। तुमने छिपाया नहीं, तुम्हें कुछ पता था, कह दिया। जो तुम कहो, उसमें आग्रह भी मत रखना कि उसे मानना ही चाहिए। क्योंकि आग्रह सत्य को नष्ट कर देता है; प्रेम को दूषित कर देता है, धूमिल कर देता है। तुम तो बिना किसी आग्रह के अनाग्रह भाव से कह देना कि कुछ हमें भी सुनाई पड़ी है आवाज, शायद तुम्हारे काम आ जाये, कहीं हम गये हैं, हमारी कुछ प्यास बुझी है--हो सकता है, यह जल तुम्हारी भी प्यास को तृप्त करने में काम आ जाये। मगर कहना, "हो सकता है, जरूरी नहीं। तुम्हारी प्यास अलग हो, तुम्हें किसी और जल की जरूरत हो। और शायद अभी तुम्हें प्यास ही न हो और जल की जरूरत ही न हो।" तो निवेदन कर देना और भूल जाना।
अगर तुमने अनाग्रहपूर्वक निवेदन किया है, तो बहुत लोगों को तुम खबर पहुंचाने में सफल हो जाओगे। यह खबर कुछ ऐसी है कि अत्यंत विनम्रता में, अत्यंत प्रेम में, अत्यंत सरलता में ही पहुंचाई जा सकती है।

मेरे पास किसी को ले आना कोई मिशनरी काम नहीं है कि टूट पड़े उस पर और उसको तर्क देने लगे, और समझाने लगे, और सिद्ध करने लगे, और उसको गलत सिद्ध करने लगे। नहीं, यह कुछ काम इतना क्षुद्र नहीं है। धर्म मिशन तो बन ही नहीं सकता। मिशन तो सब राजनीति के होते हैं। तुम तो सिर्फ मेरी सुगंध थोड़ी-सी फैला सको, फैला देना। वही सुगंध अगर खींच सकेगी तो खींच लायेगी। और अगर उस आदमी के जीवन में जरूरत आ गई होगी तो खिंच आयेगा; या वह सुगंध उसकी स्मृति में पड़ी रह जायेगी, कभी जरूरत आयेगी तो उसे याद आ जायेगी। तुम्हारा काम पूरा हो गया।
तुम कंजूस मत रहना, बस इतना काफी है। मिशनरी भूलकर मत बनना और कंजूस
मत होना। इन दोनों के बीच संतुलन! किसी को जबर्दस्ती समझाने-बुझाने की कोई भी जरूरत नहीं है। कोई जबर्दस्ती समझाये-बुझाये, समझा है, बूझा है?
यह बड़ा नाजुक काम है। ये धागे बड़े रेशम के धागे हैं। ये जंजीरें नहीं हैं लोहे की कि बांध दीं और घसीट लाये। ये रेशम के धागे हैं, बड़े कच्चे धागे! और कच्चे धागे से कोई खिंचा आये तो ही ठीक है। लोहे की जंजीरों से कोई खिंचा भी आ गया तो उसका आना न आना बराबर है। बिना धागे के ही ला सको तो ही कुशलता है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
उन्नीसवां प्रवचन

धर्म की मूल भित्तिः अभय

जीवन थोड़ी देर को है। सुबह हो गई तो जल्दी सांझ भी होगी। जन्म हुआ तो मौत आने लगी ही तुम्हारे पास।
जन्म और मृत्यु के बीच में ज्यादा समय नहीं है--अत्यल्प काल है। उसे सोये-सोये मत बिता देना। क्योंकि जो उसे सोये-सोये बिता देता है, वह जान ही नहीं पाता कि कौन था, क्यों आया था; जीवन के सारे रहस्यों से अपरिचित रह जाता है। और प्राणों में सिवाय आंसुओं के, अतृप्त आकांक्षाओं के, असंतोष के, विषाद के, कुछ भी लेकर न जा सकोगे।
जागा हुआ ही भरता है; सोया हुआ खाली रह जाता है। और जीवन इतना छोटा है
कि अगर उद्दाम वेग से, अगर महत संकल्प से, अगर सारे जीवन को दांव पर लगा देने की आकांक्षा के बिना, जागना चाहा तो जाग न पाओगे।
बहुत तो ऐसे भी हैं जो सोये-सोये ही जागने का सपना देख लेते हैं और समझा लेते हैं कि जाग गये। सौ में से निन्यानबे साधु-संन्यासी जागने का सपना देख रहे हैं, जागे नहीं। क्योंकि जागने की जो प्रक्रिया है और उस प्रक्रिया के लिए जितने जोर से जीवन को दांव पर लगा देने की जरूरत है, वैसा साहस उनमें दिखाई नहीं पड़ता। अकसर तो ऐसा होता है कि साधु और संन्यासी भयभीत लोग होते हैं। साहस के कारण संन्यासी नहीं होते हैं; संसार के भय के कारण संन्यासी हो जाते हैं। और संन्यास का भय से क्या संबंध हो सकता है? इसके पहले कि हम सूत्रों में प्रवेश करें, इस बात को ख्याल में ले लेनाः दुस्साहस चाहिए। ऐसा साहस--जो सब दांव पर लगा देने को तैयार हो! जोखिम उठाने की हिम्मत चाहिए। जुआरी का दिल चाहिए। होशियारी से न चल सकोगे इस रास्ते पर। होशियार भटक जाते हैं। ज्यादा समझदारी अंततः नासमझी सिद्ध होती है; क्योंकि समझदार रत्ती-रत्ती का हिसाब रखता है। रत्ती- रत्ती तो बचा लेता है; लेकिन जीवन का सारा खजाना खो जाता है। बूंद-बूंद बचा लेता है, सागर गंवा देता है। कंकड़-पत्थर जुटाने में ही समय व्यतीत हो जाता है और सांझ आने में देर नहीं लगती। सुबह हो गई तो सांझ होने लगी। सूरज ऊगा नहीं कि डूबना शुरू हो जाता है; पूरब से उठा नहीं कि पश्चिम की तरफ यात्रा शुरू हो गई।
इसके पहले कि सूरज डूब जाये, इसके पहले कि अंधेरा तुम्हें पकड़ ले और खुद को खोजना मुश्किल हो जाये--और ऐसा बहुत बार हो चुका है--इसलिए तुम्हें चेता देना जरूरी है। अनेक-अनेक बार तुमने सूरज देखा है, सुबह देखी है।
और तुम्हारे जीवन की कथा पूरी भी नहीं हो पाती। कब किसकी होती है?
जमाना बड़े शौक से सुन रहा था
हमीं सो गये दासतां कहते-कहते
कभी पूरी भी नहीं होती दासतां। सभी बीच में ही मर जाते हैं। क्योंकि आकांक्षाएं अनंत हैं और समय सीमित है। जीवन की प्याली में इतनी आकांक्षाएं भरी नहीं जा सकतीं।
तो अगर खाली हाथ जाना हो तो सांसारिक का जीवन है। अगर भरे हाथ जाना हो
तो धार्मिक का जीवन है। लेकिन धर्म का प्रारंभ साहस से होता है।
दुनिया में दो तरह के धार्मिक व्यक्ति हैं। एक--जो भय के कारण धार्मिक हैं। चोरी नहीं कर सकते, भय के कारण; इसलिए अचोर हैं। बेईमानी नहीं कर सकते, पकड़े जाने के भय के कारण; इसलिए ईमानदार हैं। यह ईमानदारी कोई बहुत गहरी नहीं हो सकती। इस ईमानदारी में बेईमानी छिपी है। यह ईमानदारी ऊपर-ऊपर है; भीतर बेईमानी वास बनाए है। झूठ नहीं बोलते, क्योंकि पकड़े न जायें। अधर्म नहीं करते, क्योंकि पाप का भय है, नर्क का भय है। नर्क की लपटें दिखाई पड़ती हैं। और हाथ-पैर उनके शिथिल हो जाते हैं।
दुनिया में अधिक लोग धार्मिक हैं--भय के कारण; दंड के कारण। लेकिन जो
भय के कारण धार्मिक हैं, वे तो धार्मिक हो ही नहीं सकते। उससे तो अधार्मिक बेहतर; कम से कम भयभीत तो नहीं है।

महावीर ने अभय को धर्म की मूल भित्ति कहा है। और है भी अभय धर्म कि मूल भित्ति। क्योंकि संसार को तो गंवाना है और कुछ ऐसी खोज करनी है जिसका हमें अभी पता भी नहीं। यह साहस के बिना कैसे होगा? जो सामने दिखाई पड़ता है उसे तो छोड़ना है और जो कभी दिखाई नहीं पड़ता, सदा अदृश्य है, अदृश्यों की गहरी पर्तों में छिपा है, रहस्यों की पर्तों में छिपा है--उसे खोजना है। समझदार कहता है, हाथ की आधी भी भली। दूर की पूरी रोटी से हाथ की आधी रोटी भली! तो समझदार तो कहता है, जो है उसे भोग लो। चाहे उसमें कुछ भी न हो; लेकिन इसे दांव पर मत लगाओ, क्योंकि कौन जानता है, जिसके लिए तुम दांव पर लगा रहे हो वह है भी या नहीं! जिस सत्य की, जिस आत्मा की, जिस परमात्मा की खोज पर निकलते हो--किसने देखा? इसलिए चार्वाक कहते हैं, "ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत।" पी लो घी ऋण लेकर भी--सामने तो है! किस स्वर्ग के लिए छोड़ते हो? ऋण न भी चुके तो फिक्र मत करो। लेकिन जो सामने है, उसे भोग लो।
धर्म का पहला कदम तब उठता है, जब तुम देखते हो जो सामने है वह भोगने योग्य ही नहीं। भोगा तो, न भोगा तो--सब बराबर है। इसे भोग भी लिया तो क्या भोगा? इसे पाकर भी क्या मिलेगा? हां, इसे पाने में, इसे भोगने में जो समय गया वह जीवन की संपदा गई।
महावीर ने तो आत्मा को नाम "समय" दिया है। बड़ी महत्वपूर्ण बात है। महावीर आत्मा को कहते हैंः "समय"। समय को गंवाते हो तो आत्मा को गंवाते हो। समय को सम्हाल लिया तो आत्मा को सम्हाल लिया। जैसे वस्तुएं स्थान घेरती हैं, वैसे आत्मा समय घेरती है। जैसे वस्तुएं बाहर घटती हैं--क्षेत्र में, वैसे आत्मा भीतर घटती है--समय में।
आइंस्टीन शायद महावीर से राजी होता; क्योंकि उसने भी पाया कि जीवन को बनानेवाले दो ही तत्व हैंः टाइम और स्पेस, समय और क्षेत्र।
क्षेत्र से वस्तुएं बनती हैं, यह साफ है। मनुष्य की चेतना कहां है? क्षेत्र में तो कहीं नहीं बता सकते। उंगली से इशारा हो सके, नहीं बता सकते। जहां भी हाथ रखोगे वहीं गलती हो जायेगी। आदमी की आत्मा कहीं समय में है। शरीर क्षेत्र में है, आत्मा समय में है। वस्तुएं क्षेत्र में हैं, घटनाएं समय में हैं। अगर तुम्हारा किसी से प्रेम हो जाये और कोई पूछे कहां है प्रेम, तो तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे, प्रेम घटना है, वस्तु नहीं। जब तुम कहते हो, प्रेम घटना है, तो तुम यह कह रहे हो कि समय में है, स्थान में नहीं। इसलिए हम यह न बता सकेंगे, कहां है। हम इतना ही कह सकते हैं, कब घटा। "कहां" से कोई संबंध भी नहीं है--कब, किस घड़ी में, किस मुहूर्त में!
समय को गंवा सकते हैं हम क्षुद्र को इकट्ठा करने में। क्षुद्र सामने
है और जो विराट है वह छिपा है। इस क्षुद्र को इकट्ठा कर-करके भी तो कुछ पाया नहीं जाता। इसलिए महावीर कहते हैं, इसे दांव पर लगा दो। यह कचरा ही है; इसको दांव पर लगाने में कुछ खो नहीं रहे हो। और जो समय बच जायेगा, जो शुद्ध समय बच जायेगा, जिसको तुमने संसार में नहीं गंवाया, वही शुद्ध समय ध्यान बनता है।
संसार में न गंवाया गया समय ध्यान है। संसार की व्यस्तताओं में कलुषित न किया गया समय ध्यान है।
इसलिए महावीर के लिए ध्यान के लिए जो शब्द है वह हैः "सामायिक"। वह "समय" से बना है।
महावीर बड़े वैज्ञानिक हैं, उनकी शब्दावली में।
जो समय संसार में नहीं लगा है, वही "सामायिक"।
महावीर के पास परमात्मा तो है नहीं कि कह दें कि परमात्मा में जो समय लगा है, वह ध्यान। नहीं, जो संसार में नहीं लगा, जो संसार से अछूता बच गया है, जिसे संसार दूषित नहीं कर पाया, जिस समय को संसार की कोई छाया नहीं पड़ी, कुंआरा है--वही सामायिक।
जिसने समय को न बचाया और जिसने समय की शुद्धता न जानी, जो सामायिक में
न जीया--वह आया भी वसंत में और पतझड़ में रहा। जीवन का प्रसाद बरसता था, लेकिन उसका पात्र उलटा पड़ा रहा। जीवन की अमृत-सरिता बहती थी, वह किनारे पर ही पीठ किए खड़ा रहा--कहीं और देखता रहा और प्यासा रहा, और कंठ जलता रहा।

जिसमें तुम आज अपने को लगाये हो, आज नहीं कल तुम पाओगे व्यर्थ है। जो जितनी जल्दी पा ले, उतना बोध, उतनी बुद्धि, उतनी समझ उसमें है। कुछ हैं जो मरते दम तक नहीं पाते--मरकर भी नहीं पाते! कुछ हैं जो बुढ़ापा आते-आते थोड़े चेतते हैं। इधर शरीर डगमगाने लगता है तो उधर आत्मा थोड़ी सम्हलती है। इधर रोग पकड़ने लगते हैं, बीमारियां घर करने लगती हैं, चोट पड़ती है। कुछ ख्याल आता हैः कैसे जिंदगी गंवा दी! लेकिन जो और समझदार हैं, वे भरी जवानी में जाग जाते हैं। जब कि सब तरफ लुभावना जगत था और सब तरफ आकर्षण थे, उनको भी वह गहरी आंख से देख लेते हैं और उनके पीछे भी पाते हैंः कुछ नहीं, सिवाय मन के भ्रमों के; अपनी ही कल्पनाओं, अपने ही सपनों का जाल है; अपने ही प्रक्षेपण हैं। भरी जवानी में भी जाग जाते हैं! जो और भी प्रगाढ़ हैं, वह बचपन में ही जाग जाते हैं।
कहते हैं, लाओत्सु पैदा ही हुआ जागा हुआ। हुआ होगा; क्योंकि उससे उलटा
तो हम देखते ही हैं, लोग मर ही जाते हैं सोये-सोये। अगर जिंदगीभर लोग सोये- सोये मर सकते हैं, यह घटना घट सकती है, एक अति पर, तो दूसरी अति पर यह भी घट सकता है कि कोई पैदा होते से ही जाग जाये; किसी को सुबह के सूरज में ही सांझ दिख जाये; इधर दीया जला कि बुझने का ख्याल आ जाये। जितनी तीव्र मेधा होती है, उतनी धार्मिक होती है।
आज वे मेरे गान कहां हैं?
टूट गई मरकत की प्याली
लुप्त हुई मदिरा की लाली
मेरा व्याकुल मन बहलानेवाले
अब सामान कहां हैं?
अब वे मेरे गान कहां हैं?
जगती के नीरस मरुथल पर
हंसता था मैं जिनके बल पर
चिर वसंत-सेवित सपनों के
मेरे वे उद्यान कहां हैं?
अब वे मेरे गान कहां हैं?
ऐसा कहीं तब न पता चले जब करने को कोई शक्ति हाथ में न रह जाये! पता तो सभी को चलता है। एक न एक दिन वे सब गीत जो गुनगुना-गुनगुनाकर मन को समझाया था, वे सब व्यर्थ सिद्ध होते हैं। पानी पर खींची गई लकीरें, कि रेत पर किये गये हस्ताक्षर, कि तुम बना भी नहीं पाते कि पुंछ जाते हैं और मिट जाते हैं! कि कागज की नावें कि तुमने छोड़ी नहीं कि डूब जाती हैं! कि ताश के पत्तों के घर कि हवा का जरा-सा झोंका, और फिर उनकी कोई खोज-खबर नहीं मिलती!
आज वे मेरे गान कहां हैं?
टूट गई मरकत की प्याली
लुप्त हुई मदिरा की लाली
मेरा व्याकुल मन बहलानेवाले
अब सामान कहां हैं?
अब वे मेरे गान कहां हैं?
लेकिन यह उस दिन याद न आये, जब आंखों में देखने की शक्ति भी न बचे, प्राणों में जागने की ऊर्जा भी न बचे! यह उस दिन याद न आये जबकि पैर खड़े होने में असमर्थ हो जायें। यह अभी याद आ जाये तो कुछ हो सकता है।
महावीर कहते हैं, जगत का अनुभव तीन खंडों में तोड़ा जा सकता है। जो वस्तुएं दिखाई पड़ती हैं, वे हैं ज्ञेय, "द नोन"। जिन्हें हम जानते हैं, वे हमसे सबसे ज्यादा दूर हैं। जो आदमी धन के पीछे पड़ा है वह ज्ञेय के पीछे पड़ा है, स्थूल के पीछे पड़ा है। आब्जेक्टिव, संसार उसके लिए सब कुछ है। धन इकट्ठा करेगा, पद इकट्ठा करेगा, मकान बनायेगा--लेकिन वस्तुओं पर उसका आग्रह होगा। उससे थोड़ा जो भीतर की तरफ आता है, वह ज्ञेय को नहीं पकड़ता, ज्ञान को पकड़ता है। वहां वृक्ष है। तुम वृक्षों को देख रहे हो। वृक्ष ज्ञान की आखिरी परिधि हैं--ज्ञेय। फिर थोड़ा इधर को चलो तो वृक्षों और तुम्हारे बीच एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना घट रही है--ज्ञान। वृक्ष दिखाई पड़ रहे हैं, हरे हैं, सुंदर हैं, प्रीतिकर हैं। उनकी सुगंध तुम्हारी

नासापुटों को भर रही है। ताजी-ताजी भूमि से सुवास आ रही है। फूल खिले हैं। पक्षियों के गीत हैं। तुम्हारे और उनके बीच एक सेतु फैला है, एक तंतु-जाल फैला है। उस तंतु-जाल को हम कहते हैं ज्ञान। आंख न होंगी तो तुम हरियाली न देख सकोगे। तो हरियाली सिर्फ वृक्षों में नहीं है--आंख के बिना हो ही नहीं सकती। तो हरियाली तो वृक्ष और आंख के बीच घटती है। वैज्ञानिक भी अब इस बात से राजी हैं। जब कोई देखनेवाला नहीं होता तो तुम यह मत सोचना कि तुम्हारे बगीचे के वृक्ष हरे रहते हैं। जब कोई देखनेवाला नहीं रहता तो हरे हो ही नहीं सकते। क्योंकि हरापन वृक्ष का गुण-धर्म नहीं है--हरापन वृक्ष और आंख के बीच का नाता है। बिना आंख के वृक्ष हरे नहीं होते--हो नहीं सकते। कोई उपाय नहीं है। जब आंख ही नहीं है तो हरापन प्रगट ही नहीं होगा। वृक्ष होंगे--रंगहीन। गुलाब का फूल गुलाबी न होगा। गुलाब का फूल और तुम जब मिलते हो, तब गुलाबी होता है। "गुलाबी" तुम्हारे और गुलाब के फूल के बीच का संबंध है।
तो दूसरा जगत हैः ज्ञान। कुछ लोग हैं जो वस्तुओं के पीछे पड़े हैं, फूलों के पीछे पड़े हैं। उनसे कुछ जो ज्यादा समझदार हैं, वे फिर ज्ञान की खोज में लगते हैं। वैज्ञानिक हैं, दार्शनिक हैं, कवि हैं, मनीषी हैं, विचारक हैं, चिंतक हैं--वे ज्ञान की पकड़ में लगे हैं। वे ज्ञान को बढ़ाते हैं।
महावीर कहते हैं, यह भी था.ेडा बाहर है। इसके भीतर छिपा है तुम्हारा ज्ञायक स्वरूप, ज्ञाता। ये तीन त्रिभंगियां हैं--ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान। जो परम रहस्य के खोजी हैं, वे ज्ञान की भी फिक्र नहीं करते, वे तो उसकी फिक्र करते हैंः "यह जाननेवाला कौन है!" जो सबसे दूर हैं ज्ञान की यात्रा पर, वे फिक्र करते हैंः "यह जानी जानेवाली चीज क्या है!" जो परम रहस्य के खोजी हैं, वह फिक्र करते हैंः यह जाननेवाला कौन है! यह मैं कौन हूं, जो जान रहा है, जिसके लिए वृक्ष हरे हैं, जिसके लिए गुलाबी फूल गुलाबी हैं; जिसके लिए चांद-तारे सुंदर हैं! यह मैं कौन हूं!
इन दोनों के बीच में दार्शनिक है, वैज्ञानिक है, चिंतक है। महावीर की सारी खोज उस ज्ञाता-स्वरूप की खोज है; "यह जाननेवाला कौन है!" क्योंकि महावीर कहते हैं, अगर जाननेवाले को ही न जाना तो और जानकर करोगे क्या? अपने को ही न पहचाना तो और पहचान किस काम में आयेगी? अपने से ही बिना परिचित हुए चल पड़े, तो कितनों से परिचय बनाया, उसका क्या सार होगा? दूसरों से परिचित होने में ही मत गंवा देना जीवन को। परिचय की प्रक्रिया को समझने में ही मत गंवा देना जीवन को। यह कौन है तुम्हारे भीतर, जिसके माध्यम से ज्ञान घटता है, जिसके माध्यम से ज्ञेय से संबंध बनता है? यह ज्ञाता-भाव! यह चैतन्य! यह होश! यह बोध! इसकी खोज ही धर्म है।
पहला सूत्रः
णवि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं, णाओ जो सो उ सो चेव।।
"आत्मा ज्ञायक है। आत्मा जाननेवाला है। आत्मा ज्ञाता है, द्रष्टा है।
जो ज्ञायक है, वह न अप्रमत्त होता है, न प्रमत्त। जो अप्रमत्त और प्रमत्त नहीं होता, वही शुद्ध है। आत्मा ज्ञायक-रूप में ही ज्ञात है और वह शुद्ध अर्थ में ज्ञायक ही है। उसमें ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है।"
यह बड़ा बारीक सूक्ष्म सूत्र है! समझने की चेष्टा करना। क्योंकि महावीर के अंतस्तल के बहुत करीब है। यही उनकी भित्ति है, जिस पर सारी जैन-साधना का मंदिर खड़ा है।
आत्मा ज्ञायक है--यह तो पहली बात, यह पहली उदघोषणा, यह पहला वक्तव्य कि आत्मा ज्ञेय नहीं है, वस्तु नहीं हैः जान सको, ऐसी नहीं है। क्योंकि जिसे भी हम जान लेते हैं, उसका ही रहस्य खो जाता है। इसलिए आत्मा कभी विज्ञान का विषय बन सकेगी, इसकी संभावना नहीं है। विज्ञान लाख उपाय करे, वह जो भी जानेगा वह आत्मा नहीं होगी। क्योंकि आत्मा तो आत्यंतिक रूप से जाननेवाली है; जानी नहीं जा सकती। उसे हम अपने सामने रख नहीं सकते। जिसके सामने हम सब रखते हैं, वही आत्मा है। तो आत्मा को स्वयं तो हम कभी अपने सामने न रख सकेंगे।

अगर महावीर की बात ठीक समझो तो महावीर यह कह रहे हैंः "आत्मज्ञान" शब्द ठीक नहीं है। वस्तुओं का ज्ञान हो सकता है, पर का ज्ञान हो सकता है, आत्मज्ञान कैसे होगा? आत्मज्ञान का तो मतलब हुआ कि तुमने आत्मा को भी दो हिस्सों में तोड़ लिया--जाननेवाला और जाना जानेवाला। तो महावीर कहते हैं जो जाननेवाला है, वही आत्मा है; जो जाना जा रहा है वह तो आत्मा नहीं है।
हम अपने शरीर को जानते हैं। पैर में चोट लग गई, दर्द हुआ, तो महावीर कहते हैं, चूंकि तुम जानते हो कि पैर में दर्द हुआ, इसलिए एक बात तो निश्चित हो गई कि तुम यह दर्द नहीं, तुम यह पैर नहीं। क्योंकि जाननेवाला हमेशा पार है; अतिक्रमण कर जाता है; ट्रांसेंडेंटल है। भूख लगी तो महावीर कहते हैं, एक बात पक्की हो गईः तुम्हें पता चला भूख लगी; एक बात पक्की हो गई कि तुम भूख नहीं हो। तुम तो वह हो जिसे पता चला, जिसे प्रतीति हुई, जिसे अहसास हुआ कि भूख लगी, कि शरीर भूखा है कि रोटी की जरूरत है, कि प्यास लगी, पानी की जरूरत है; कि गर्मी हो रही है कि पसीने की धारें बही जा रही हैं, कोई शीतल स्थान खोजूं, कोई छाया खोजूं।
जो भी तुम जानते हो, जानने के कारण ही वह "पर" हो गया। ज्ञान प्रत्येक वस्तु को "पर" बना देता है। ज्ञान-मात्र "पर" का है। तो आत्मज्ञान तो हो नहीं सकता। इस अर्थ में नहीं हो सकता, जिस अर्थ में हम और चीजों का ज्ञान करते हैं।
आत्मा ज्ञायक है, ज्ञेय नहीं। सदा जाननेवाला है। इसलिए जिन्हें आत्मा
को खोजना है, उन्हें अपने भीतर निरंतर उस जगह पहुंचना चाहिए, जहां सिर्फ जाननेवाला ही शेष रह जाये और जानने को कुछ न बचे। उसे महावीर "समाधि" कहते हैं--जहां शुद्ध जानना रह जाये और जानने के लिए कोई जगह न हो; दीया जलता हो, लेकिन प्रकाश उसका किसी पर पड़ता न हो। दीया जलता है अभी, दीवाल पर प्रकाश पड़ता हैः तो दीया तो ज्ञाता हुआ, दीवाल ज्ञेय हो गई और दोनों के बीच जो संबंध जुड़ रहा है वह ज्ञान हो गया। ऐसी कल्पना करो कि दीया शून्य में जलता हो, कि दीये की ज्योति किसी पर न पड़ती हो--ऐसी चित्त की दशा का नाम, महावीर कहते हैं, समाधि है। जहां शुद्ध-बुद्ध, मात्र ज्ञायक-स्वरूप शेष रह गया; कोई जाननेवाली चीज व्याघात उत्पन्न नहीं करती; कोई जाननेवाली चीज अशुद्धि उत्पन्न नहीं करती--अबाध--अनवरुद्ध चैतन्य का प्रवाह है; शुद्ध चैतन्य-मात्र है!
"आत्मा ज्ञायक है।" और ज्ञायक! "जो ज्ञायक है वह न अप्रमत्त होता है न प्रमत्त।"
यह भी बड़ी विचार की बात है। क्योंकि महावीर कहते हैं, तुम अभी सोये हो। जागो! लेकिन फिर वह कहते हैं कि जागना भी उस आत्मा का स्वभाव नहीं है। क्योंकि जब सोना उस आत्मा का स्वभाव नहीं है तो जागना कैसे उस आत्मा का स्वभाव होगा? जागना-सोना दोनों ही आत्मा के बाहर हैं। तो एक दिन ऐसा अनुभव आना शुरू होता है कि तुम जागने और सोने के भी पार हो। तुम तो वह हो जो जानता है कि जागे अब, अब सोये। सुबह जागकर तुम्हें पता चलता है कि अरे, जाग गये! तो तुम जागने से एक नहीं हो सकते। तुम्हें जागने का भी पता चलता हैः जाग गये! रातभर सोये रहे तो सुबह तुम कहते हो बड़ी गहरी नींद आई! उसका भी तुम्हें पता है। नींद का भी पता है। कभी नींद ठीक नहीं आती तो सुबह कहते हो, बड़े व्याघात पड़े, उच्छृंखल थी रात, बड़े दुखस्वप्न चले, ऊबड़-खाबड़ रहा सब। शांति न मिली, चैन न मिला, थका-हारा उठा हूं, रात नींद ठीक से न आई! तो रात तुम नींद को भी जानते हो, सुबह उठकर तुम जागने को भी जानते हो। तो निश्चित ही न तुम जागरण हो, न तुम निद्रा हो। तुम तो जागने और निद्रा के पार ज्ञायक-स्वरूप, ज्ञाता-स्वरूप आत्मा हो।
"जो ज्ञायक है, वह न अप्रमत्त होता है, न प्रमत्त।"
लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से सोये हुए को हम कहते हैं, जागो अगर आत्मा
को जानना हो। जब वह जाग जायेगा तो उससे कहेंगे, अब जागने से भी जागो! संसारी को कहते हैं, संन्यास ले लो! फिर संन्यासी को कहते हैं कि अब संन्यास भी छोड़ो! यह तो ऐसा ही है जैसे एक कांटा पैर में लगा, दूसरे कांटे से खींचकर उसे बाहर निकाल लिया; फिर दोनों ही कांटे फेंक देते हैं। बीमारी थी, औषधि ले ली; फिर बीमारी चली गई तो औषधि की बोतल को कचरे-घर में फेंक

देते हैं। तो जागरण की जो इतनी चेष्टा है, वह भी औषधि से ज्यादा नहीं है। बीमारी है, नींद में पड़े हैं, सोये हैं--यह हमारी अवस्था है। इसे जगाने के लिए औषधि है ध्यान, जागरण, विवेक। लेकिन जब जाग गये तब तो यह भी पता चलता है कि हम तो जागने के भी पार हैं। यह सोना और जागना, यह भी शरीर और मन में ही हो रहा है।
इसलिए तो कृष्ण गीता में कहते हैंः या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी!
जब सारे लोग सोये हैं, तब भी संयमी जागता है। इसका क्या अर्थ हुआ? क्या संयमी सोता नहीं? संयमी सोता है, लेकिन जानता है कि यह जो सोया है, यह मैं नहीं हूं।
महावीर तो और भी गजब की बात कह रहे हैं। वह कह रहे हैं, संयमी जब जागता
है तब भी जागरण के साथ अपना तादात्म्य नहीं करता--सोने के साथ तो वह करता ही नहीं; जैसा कृष्ण कहते हैं कि सब सोये रहते हैं, उनका तादात्म्य हो जाता है। वह कहते हैं, हम सोये हैं। संयमी कहता है, हम तो जागते रहे। महावीर कहते हैं कि इससे भी ऊपर उठना है। जागने में भी तादात्म्य न हो जाये, सोने में तो तोड़ना ही है तादात्म्य। मूर्च्छा तो तोड़नी ही है, अमूर्च्छा पकड़ नहीं लेनी है। राग तो तोड़ना ही है, विराग पकड़ नहीं लेना है।
इसलिए महावीर ने एक नये शब्द का उपयोग कियाः वीतराग। महावीर ने अपने परम संन्यासियों को विरागी न कहा, क्योंकि "विरागी" में ऐसा लगता हैः राग के विपरीत। सोये थे, जाग गये। संसार में थे, संन्यासी हो गये। राग था, विराग साध लिया। महावीर कहते हैं, वीतराग।
"वीतराग" शब्द बड़ा अदभुत है! वीतराग का अर्थ होता हैः न राग रहा, न विराग रहा। वीतः पार हो गये, दोनों के पार हो गये! वह पूरी दुनिया ही गई! वह पूरा सिक्का ही छोड़ दिया। वह द्वंद्व का जगत अब साथ न रहा। सोना और जागना भी द्वंद्व है। राग और विराग भी द्वंद्व है! संसार और संन्यास भी द्वंद्व है। निर्द्वंद्व हुए! सबके पार हुए!
"जो अप्रमत्त और प्रमत्त नहीं होता, वही शुद्ध है।"
यह शुद्धि की बड़ी अनूठी परिभाषा हुई। जो जागता नहीं, सोता नहीं; जो मूर्च्छित नहीं होता, अमूर्च्छित नहीं होता; जो न संसार में खोता है, न संन्यास में खोता है--जिसका कहीं तादात्म्य नहीं होता, वही शुद्ध है। जिसको गुरजिएफ कहता हैः आईडेंटिफिकेशन, तादात्म्य। जो किसी चीज से अपने स्वभाव को नहीं जोड़ता। जो दूर-दूर, पार-पार बना रहता है! जो सदा जानता रहता हैः मैं भिन्न हूं, मैं भिन्न हूं। किसी भी चीज के साथ जो ऐसा भाव नहीं करता कि यह मैं हूं! क्योंकि जहां ही यह भाव आया कि यह मैं हूं, वहीं अशुद्धि शुरू हो गई। क्योंकि जिससे हम जुड़ते हैं, वह हमें प्रभावित करने लगता है।
तुमने कभी ख्याल किया? लोग जिन चीजों से अपना तादात्म्य बनाते हैं, धीरे-धीरे वैसा ही रंग-ढंग उनके जीवन में छा जाता है। अगर कोई कवि सौंदर्य की अनुभूतियों के साथ अपना तादात्म्य बनाता है, तो तुम धीरे-धीरे पाओगेः वह सुंदर होने लगा। उसके जीवन में तुम्हें एक नये गुण का प्रादुर्भाव दिखायी पड़ेगा। वह सुंदर होने लगेगा। जो आदमी अपने को योद्धा समझता है, लड़ाका समझता है, उसके चारों तरफ धीरे-धीरे तुम पाओगे योद्धा के लक्षण प्रगट होने लगे।
जिससे हम तादात्म्य करते हैं, वही हम हो जाते हैं। क्योंकि धीरे-धीरे जिसे हमने अपने साथ जोड़ा वह हमें प्रभावित करता है, रूपांतरित करता है। सम्मोहनविद जानते हैं कि अगर किसी पुरुष को सम्मोहित करके कहा जाये
कि तू पुरुष नहीं स्त्री है, तो गहरे सम्मोहन में उसका तादात्म्य हो जाता है कि वह स्त्री है। फिर उससे कहा जाये, उठकर चलो, तो वह पुरुष जैसा नहीं चलता, स्त्री जैसा चलने लगता है--जो कि बड़ी कठिन बात है! क्योंकि पुरुष के पास अलग तरह की हड्डियां हैं। और खासकर स्त्री की चाल पुरुष से भिन्न है, क्योंकि स्त्री के शरीर में गर्भ का स्थान है। उसी गर्भ के स्थान के कारण उसकी चाल में एक गोलाई है, जो पुरुष की चाल में नहीं हो सकती। लेकिन अगर सम्मोहित किया जाये किसी व्यक्ति को और कहा जाये कि तुम स्त्री हो तो वह

चलेगा स्त्री की तरह। उससे कहा जाये बोलो तो वह बोलेगा स्त्री की तरह। आवाज भी बदल जायेगी। यह सम्मोहन की प्रक्रिया इतनी गहरी हो सकती है। कि अगर सम्मोहित व्यक्ति को कहा जाये कि यह हाथ पर हम तुम्हारे अंगार रख रहे हैं और तुम सिर्फ एक साधारण कंकड़ रख रहे हो, तो उसका हाथ जल जायेगा, फफोला आ जायेगा। साधारण कंकड़ गर्म भी नहीं है, अंगार की तो बात ही नहीं है, ठंडा पत्थर हाथ पर रखते हो और कहते हो यह अंगार है, वह छिटककर फेंककर खड़ा हो जायेगा, चिल्लायेगा कि मार डाला, जला दिया। और उसके हाथ पर न केवल जलने का स्थान बनेगा, फफोला भी उठेगा।
अब क्या हुआ? अंगार तो रखा नहीं था, लेकिन अंगार रखा है, यह भाव से तादात्म्य हो गया। इसीलिए तो लोग अंगारों पर भी चल लेते हैं--वह भी भाव-तादात्म्य है। मुसलमान फकीर या हिंदू योगी अंगारों पर चल लेते हैं। वह तादात्म्य की बात है। इस बात का पक्का तादात्म्य होना चाहिए कि हम चल लेंगे, भगवान बचायेगा, कि कोई वली बचायेगा। बस इसका पक्का भरोसा होना चाहिए, फिर तुम न जलोगे। क्योंकि तुम्हारा भरोसा तुम्हारी सुरक्षा करेगा। वह तादात्म्य बन गया।
रामकृष्ण ने सभी धर्मों की साधना की। ऐसा प्रयोग उनके पहले कभी किसी
ने किया न था। उस साधना के दौर में उन्होंने छह महीने तक बंगाल में प्रचलित कृष्ण-मार्गियों के एक संप्रदाय की साधना की--राधा संप्रदाय। उस संप्रदाय का साधक मानकर चलता है कि मैं कृष्ण की गोपी हूं, राधा हूं। वह स्त्रियों के कपड़े पहनता है, कृष्ण की मूर्ति को लेकर रात सोता है। छह महीने तक रामकृष्ण ऐसा साधना करते थे। बड़ी हैरानी की घटना घटी--और वह घटना यह थी, उनके स्तन बड़े हो गये, स्त्रैण हो गये। रामकृष्ण जैसा व्यक्ति जब तादात्म्य करेगा तो वह कोई छोटा-मोटा तादात्म्य नहीं है। उन्होंने पूरे प्राण इसमें उंडेल दिये। उनकी आवाज स्त्रैण हो गई। वह चलने स्त्रियों की तरह लगे, लेकिन यहीं तक मामला रुकता तो ठीक था; उन्हें मासिक धर्म शुरू हो गया, जो कि एक आश्चर्यजनक घटना है। इतना तादात्म्य! फिर साधना के बाहर भी आ गये तो भी छह-आठ महीने लगे उनका स्त्री-रूप विदा होने में।
सम्मोहन का शास्त्र बड़ी बातें खोलने के किनारे पहुंच रहा है और किसी
न किसी दिन सम्मोहन-शास्त्र जब अपने पूरे अध्ययन प्रगट कर चुकेगा तो धर्म की बहुत-सी बातें बड़ी सुगमता से समझ में आ सकेंगी।
तुम जो भी हो, यह तुम्हारा ही भाव है। अगर तुम अपने को दुखी मान रहे हो
तो तुम दुखी होते चले जाओगे। अगर तुम अपने को सुखी मान सकते हो, तुम सुखी होते चले जाओगे।
मुसलमान फकीर बायजीद से किसी ने पूछा कि तुम इतने प्रसन्न, सदा प्रसन्न--मामला क्या है? उसने कहा कि मैंने एक नियम बना लिया है कि सुबह जब मैं उठता हूं तो मेरे सामने दो विकल्प होते हैं कि आज दिन प्रसन्न होना कि नहीं प्रसन्न होना; आज दिन सुख में बिताना कि दुख में बिताना। और मैं अकसर हमेशा ही सुख का ही विकल्प चुनता हूं। क्यों चुनूं दुख का विकल्प? सार क्या है? इसलिए मैं प्रसन्न हूं।
तुम जरा करके देखना। सुबह उठकर पहला निर्णय यही करना कि आज दिन प्रसन्न ही रहना है। और तुम अचानक पाओगे प्रसन्नता की बहुत-सी घटनाएं घटने लगीं। वह वैसे भी घटतीं, लेकिन तुमने अगर दुखी होने का निर्णय किया था... जैसा निन्यानबे लोग किये बैठे हैं। निन्यानबे प्रतिशत लोग सोचते हैं कि सुखी तो तब होंगे जब सुख की कोई घटना घटेगी। और दुखी तो रहेंगे ही, क्योंकि जब तक सुख की घटना नहीं घटती तो क्या कर सकते हैं! कोई लाटरी कभी- कभी खुलेगी, तब सुखी हो लेंगे। और मैं मानता हूं कि वह तब भी सुखी न हो पायेंगे, क्योंकि दुख की आदत इतनी मजबूत हो जाती है, दुख इतना सघनीभूत हो जाता है कि अगर सुख की कोई घटना भी घटे तो तुम जानते ही नहीं कि अब सुखी कैसे हों! जो कभी नाचा ही नहीं है, नाचने का क्षण भी आ जाये तो कैसे नाचेगा? हाथ-पैर साथ न देंगे।
महावीर कहते हैं, शुद्धि का अर्थ हैः जहां कोई तादात्म्य नहीं; न सुख का, न दुख का; न देह का, न मन का। जहां शुद्ध जाननेवाला बचा है और कोई चीज छाया नहीं डालती, उस छाया-शून्य जगत में आत्मा शुद्ध होती है।

"आत्मा ज्ञायक-रूप में ही ज्ञात है... "
आत्मा का ज्ञेय की तरह जानने का कोई उपाय नहीं है। जाननेवाले की तरह
ही आत्मा जानी जाती है, जानी गई वस्तु की तरह नहीं।
"... और वह शुद्ध अर्थ में ज्ञायक ही है। उसमें ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है।"
इसे थोड़ा हम समझें। तुमने कभी ख्याल किया? जब भी कोई आदमी तुम्हें गौर
से देखता है तो तुम्हें थोड़ी-सी बेचैनी और अड़चन होती है। तो समाज में एक स्वीकृत नियम हैः तीन क्षण से ज्यादा कोई आदमी किसी को गौर से नहीं देखता। देखे तो उसको हम लुच्चा कहते हैं। लुच्चे का अर्थ हैः गौर से देखनेवाला। लुच्चा बनता है लोचन से। आंखें अड़ा दीं किसी पर तो लुच्चा। तीन सैकिंड तक ठीक है। उतना स्वीकृत है। राह चलते आदमी भी एक, एक क्षणभर को दूसरे को देख लेते हैं। तो ठीक है। लेकिन लौट-लौटकर देखने लगे, खड़ा ही हो जाये और देखने लगे, आंखें गड़ा ले... । तो तुमने कभी ख्याल किया, कोई आदमी अगर तुम्हें आंखें गड़ाकर देखे तो तुम्हें बेचैनी होती है! यहां तक कि अगर कोई आदमी तुम्हारे पीछे खड़ा हो और पीछे से भी आंखें गड़ाकर तुम्हें देखे तो भी तुम्हें बेचैनी होगी; हालांकि तुम उसे देख नहीं रहे, लेकिन तुम्हें पता चल जायेगा कि वह आंखें गड़ाये है।
तुम इसका प्रयोग करके देखना! ट्रेन में, बस में किसी के पीछे खड़े हो, उसकी चेंथी पर आंखें गड़ाकर देखना जरा थोड़ी देर--एक दो तीन मिनट। वह फौरन लौटकर देखेगा और क्रोध से देखेगा। मनोवैज्ञानिक ने इस पर बहुत-से प्रयोग किये हैं।
क्या मामला है? आदमी किसी के गौर से देखने को, बेचैन क्यों हो जाता है, बर्दाश्त क्यों नहीं करता? क्योंकि जब भी कोई तुम्हें गौर से देखता है, बहुत गौर से देखता है, तो वह तुम्हें वस्तु में रूपांतरित कर देता है। वह तुम्हारे ज्ञायक-स्वभाव को नष्ट करता है। वह तुम्हें ज्ञेय बना देता है, आब्जेक्ट। जैसे कुर्सी को कोई देख रहा है, मकान को कोई देख रहा है, वृक्ष को कोई देख रहा है--ऐसे ही जब तुम्हें कोई देखता है, तब तुम्हारा ज्ञायक-स्वरूप नष्ट होता है। तुम्हें ऐसा लगता है कि मुझे वस्तु समझा जा रहा है; जैसे मैं कोई देखने की वस्तु हूं।
हां, कोई तुम्हें बहुत प्रेम से देखे तो बेचैनी नहीं होती। जिससे तुम्हारा लगाव हो, तो बेचैनी नहीं होती। क्योंकि तुम जानते हो, वह तुम्हारे शरीर को नहीं देख रहा। तुम जानते हो, वह तुम्हें वस्तु नहीं बना रहा। तुम जानते हो, उसकी आंखें तुम्हारे ज्ञायक-स्वभाव को खोज रही हैं; तुम्हारी अंतरात्मा को खोज रही हैं। उसकी आंखें तुम्हारे भीतर जाकर तुम्हारी खोज में हैं। तुम, जिसको कि विषय-वस्तु बनाया नहीं जा सकता, वह उसके साथ संग-साथ जोड़ने की आकांक्षा रखता है। इसलिए प्रेम के क्षण में ही आंख बेहूदी नहीं मालूम पड़ती। अन्यथा आंख, अगर गौर से कोई देखता चला जाये तो हिंसक हो जाती है; अभद्र मालूम होने लगती है; शिष्टाचार के बाहर हो जाती है।
जब भी किसी व्यक्ति को देखो तो उसे वस्तु बनाने की चेष्टा मत करना। अन्यथा तुम हिंसा से देख रहे हो। किसी व्यक्ति को साधन की तरह मत देखना, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति साध्य है, परम साध्य है। किसी व्यक्ति को ऐसा मत देखना कि इसका क्या उपयोग है, कि यह आदमी पद पर है, काम पड़ेगा, जय राम जी कर लो; कि यह आदमी पद पर है, थोड़ी खुशामद करो; कि इस आदमी के पास धन है, कभी जरूरत पड़ सकती है; कि यह आदमी शक्तिशाली है, दोस्ती बनाना काम की बात होगी। किसी व्यक्ति को जब तुम साधन की तरह देखते हो, तब भी तुम हिंसा कर रहे हो। क्योंकि वह ज्ञायक-स्वरूप जो भीतर छिपा है, साध्य है--आत्यंतिक साध्य है। उसे साधन नहीं बनाया जा सकता।
"आत्मा ज्ञायक-रूप में ही ज्ञात है और वह शुद्ध अर्थ में ज्ञायक ही है। उसमें ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है।"
यह बहुत मूलभूत बात है। इसको शाब्दिक जाल में खो मत देना। इसको ज्ञान
के दांव-पेचों में मत खो देना। क्योंकि इस पर बड़े दांव-पेंच चलते रहे हैं।
पंडितों ने बड़े अर्थ किये हैं, बड़ी व्याख्याएं की हैं--पक्ष-विपक्ष में।

क्योंकि पंडितों का अपना हिसाब है। वे कहते हैं, ज्ञायक, बिना ज्ञेय के ज्ञायक अकेला हो कैसे सकता है? तर्कगत संदेह उठाते हैं, जब ज्ञेय नहीं है तो ज्ञायक कैसा? जब ज्ञान नहीं है तो ज्ञायक कैसे?
तो दार्शनिकों का एक समूह रहा है जो कहता है, जब ज्ञेय और ज्ञान खो जायेंगे, तो ज्ञायक भी खो जायेगा, अंधकार छा जायेगा। शायद तर्क से उनकी बात ठीक भी लगती हो। लेकिन जो अनुभव है, वह तर्क के थोड़े बाहर है। और महावीर को तर्क में कोई रस नहीं है। वह सिर्फ वक्तव्य दे रहे हैं, जो उन्होंने जाना है। मैं भी तुमसे कहता हूं, ज्ञायक बच रहता है। ज्ञान भी खो जाता है। ज्ञेय भी खो जाता है।
और इसलिए अगर खोजना हो तो तर्कजाल में मत पड़ना। थोड़ी साधना की दिशा में कदम उठाना।
अल्फाज के पेचों में उलझता नहीं दाना
गव्वास को मतलब है सदफ से कि गुहर से
शब्दों की उलझनों में समझदार नहीं उलझता।
अल्फाज के पेचों में उलझता नहीं दाना।
--वह जो बुद्धिमान है, वह शब्दों के दांव-पेंच में नहीं उलझता।
गव्वास को मतलब है सदफ से कि गुहर से।
--वह जो गहरा गोता लगानेवाला है, उसे मतलब मोतियों से है या सीपियों से? वह मोती तलाशता है। जैसे मोती सीपी में छिपे होते हैं, लेकिन सभी सीपियों में नहीं छिपे होते; कुछ सीपियां खाली होती हैं, कोई मोती नहीं होता--कुछ शब्द खाली होते हैं, उनमें कोई मोती नहीं होता। पंडितों के शब्द सीपियों की तरह हैं; उनमें कोई मोती नहीं होता। क्योंकि मोती तो अनुभव से ढालना होता है। मोती तो प्राणों से ढालना होता है। ये महावीर के वचन सीपियां नहीं हैं। मोती हैं, और तुम इन मोतियों का अर्थ तभी समझ पाओगे, जब तुम भी इन्हें ढालने में लगोगे।
मेरे देखे, जब तक तुम किसी अर्थ में महावीर जैसे न होने लगो तब तक तुम महावीर को न समझ पाओगे। समझने का एक ही उपाय हैः जिसे तुम समझने चले हो, उस जैसे होने लगो।
"मैं आत्मा न शरीर हूं, न मन हूं, न वाणी हूं, और न उसका कारण हूं। मैं न कर्ता हूं, न करानेवाला हूं और न कर्ता का अनुमोदक ही हूं।"
णाहं देहो ण मणो, ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण ण कारयिदा, अणुमंता णेव कत्तीणं।।
--न शरीर, न मन, न वाणी, न उनका कारण, न उनका कर्ता, न करानेवाला और न कर्ता का अनुमोदक ही हूं।
कल हम गीता की बात करते थे। कृष्ण कहते हैं, तुम केवल उपकरण हो जाओ। महावीर कहते हैं, उपकरण भी नहीं। अगर तुम उपकरण भी हुए तो तुम कुछ तो हुए! सहारा तो दिया! साधन तो बने! तो महावीर कहते हैं, न तो तुम कर्ता, न करानेवाला हो, न कर्ता का अनुमोदक। उपकरण की तो बात दूसरी, तुम अनुमोदन भी मत करना। तुम यह भी मत कहना कि हां, यह ठीक है। अगर कोई आदमी किसी की हत्या कर रहा है तो तुम यह भी मत कहना कि हां, यह ठीक है। अनुमोदन भी मत करना। कहने की बात नहीं है, मन में भी मत सोचना कि हां, यह ठीक है। मन में सोचने की बात भी नहीं है। तुम्हारे भीतर जरा-सा भी भाव उठे, जरा-सी भी लहर उठे कि नहीं, यह गलत तो नहीं है, यह जरूरी था--तो भी पाप हो गया।
कृष्ण कहते हैं, "अधर्म के विनाश के लिए, पाप के विनाश के लिए अर्जुन!
तू उपकरण बन।" लेकिन महावीर कहते हैं, उपकरण हिंसा का बनना किसी भी कारण से घातक है। खतरनाक है। और आदमी के मन का भरोसा क्या? क्योंकि अकसर तो यह होता है, तुम जो करना चाहते हो, उसको तुम परमात्मा के नाम से करने लगते हो। आदमी बड़ा बेईमान है! इसलिए दुनिया में इतने युद्ध होते हैं! दोनों पक्ष कहते हैं कि परमात्मा का काम कर रहे हैं। दोनों पक्ष कहते हैं, हम धर्म-युद्ध कर रहे हैं। अब यह तो हम चूंकि महाभारत हुआ और पांडव जीते, इसलिए जो इतिहास हमारे पास है वह एकतरफा है।
सोचो थोड़ा, कौरव जीते होते तो क्या यह इतिहास यही होता? कौरव जीते होते तो उन्होंने सिद्ध किया होता कि पांडव हारे क्यों, क्योंकि वे

अधार्मिक थे। और कौरव अगर जीते होते तो कृष्ण की गीता न होती, शायद भीष्म पितामह की कोई गीता होती तो होती।
अगर रावण जीता होता तो रामायण नहीं होती--हो नहीं सकती थी। कौन लिखता? हारे हुए के लिए कौन लिखता! जीते के सब संगी-साथी हैं, हारे के कौन साथ है? तब रामायण के विपरीत, बिल्कुल विपरीत रावण की कोई कथा होती, जिसमें रावण तो धार्मिक होता और राम अधार्मिक होते।
तुम थोड़ा सोचो। विभीषण ने धोखा दिया है, गद्दारी की है; लेकिन राम-भक्त कहता है, "भक्त विभीषण! राम का प्यारा विभीषण!" लेकिन अगर रावण जीतता और कथा लिखी गई होती, तो विभीषण गद्दारों का गद्दार सिद्ध होता, धोखेबाज, बेईमान, मीरजाफर का आदिगुरु सिद्ध होता।
कौन लिखता है कहानी, इस पर निर्भर करता है। और जो भी कहानी लिखेगा, वह
यह मानकर चलेगा कि मैंने जो किया वह परमात्मा चाहता था।
महावीर आदमी की बेईमानी को जानते हैं। आदमी बड़ा धोखेबाज है! वह जो खुद करना चाहता है परमात्मा के नाम पर थोप देता है। अगर हिटलर जीतता तो कथा बिल्कुल और होती। चर्चिल जीता, कथा और हुई। कथा कौन लिखता है, इस पर निर्भर करती है।
महावीर कहते हैं, इन जालों में मत पड़ना। तुम्हें क्या पता परमात्मा
की क्या मर्जी है? तुम कैसे निर्णय करोगे कि यही परमात्मा की मर्जी है? अर्जुन जीते, अर्जुन का पक्ष जीते--यह परमात्मा की मर्जी है, तुम कैसे निर्णय करोगे?
हर आदमी जीतना चाहता है। और हर आदमी अपने जीतने के लिए सब कुछ करना चाहता है। और मान लेगा कि यही परमात्मा की मर्जी है, मुझे जिताना चाहता है।
पिछले महायुद्ध में एक जर्मन और एक अंग्रेज जनरल की बात हुई। जर्मन हारने शुरू हो गये थे और उस जनरल ने अंग्रेज जनरल को पूछा कि तुम जीतना शुरू हो गये हो, कैसे जीते चले जा रहे हो, राज क्या है? उस जनरल ने कहा, "राज साफ है। हम रोज युद्ध करने के पहले परमात्मा की प्रार्थना करते हैं। परमात्मा हमारे साथ है।"
उस जर्मन ने कहा, यह तो कोई बात जंचती नहीं, क्योंकि प्रार्थना तो हम
भी करते हैं युद्ध के पहले, और हम भी मानते हैं कि परमात्मा हमारे साथ है। वह अंग्रेज हंसने लगा। उसने कहा कि तुम्हें एक बात समझनी चाहिएः किसी
ने कभी सुना कि परमात्मा जर्मन भाषा जानता है? किस भाषा में करते हो प्रार्थना?
अंग्रेज सोचता है, परमात्मा अंग्रेजी जानता है। संस्कृत के पंडित कहते हैं, संस्कृत देववाणी है।... वह प्रभु की भाषा है! और बाकी सब भाषाएं, वे देववाणियां नहीं हैं!
अपनी भाषा को देववाणी मान लेना बड़ा सुगम है। और अपनी आकांक्षा को परमात्मा की आकांक्षा मान लेना बहुत सुगम है। और अपने अहंकार को परमात्मा की आड़ में छिपा लेना बहुत सुगम है।
महावीर आदमी को कोई धोखे का उपाय नहीं देना चाहते। वे कहते हैं, तुम धोखेबाज हो, यह तो जाहिर है, क्योंकि जन्मों-जन्मों से भटक रहे हो, अनेक तरह से अपने को धोखा दे लेते हो।
"मैं न शरीर हूं, न मन हूं, न वाणी हूं और न उनका कारण हूं। मैं न कर्ता हूं, न करानेवाला हूं, न कर्ता का अनुमोदक हूं।"
जब तक इतनी प्रगाढ़ता से तुम अपने आत्यंतिक स्वरूप को सभी तादात्म्यों
से बाहर न कर लोगे, तब तक तुम उस शुद्ध-बुद्ध अवस्था को न पहुंच सकोगे, जिसको महावीर "जिनत्व" कहते हैं।
हमारी तो त्याग में भी भोग की वासना बनी रहती है। और हम तो वासना भी छोड़ते हैं तो भी किसी वासना को पूरा करने के लिए ही छोड़ते हैं। हम तो दान भी करते हैं तो लोभ के कारण करते हैं। गंगा के किनारे बैठे हुए पंडित-पुरोहित लोगों को समझाते हैंः "यहां एक दो, एक करोड़ पाओगे वहां।" कोई हिसाब भी होता है! एक से एक करोड़ का कोई संबंध बनता है? लेकिन जब लोभ को ही जगाना है तो अतिशयोक्ति करने में हर्ज क्या है! एक पैसा यहां दान दो, एक

करोड़ पाओगे! कुछ तो थोड़ा ब्याज का ख्याल रखो! यह तो जरा अतिशयोक्ति हो गई। लेकिन मतलब एक करोड़ पाने से थोड़े ही है, तुमसे एक निकलवा लेने से है। और जानते हैं कि तुम लोभी हो, तुम तो दान भी लोभ के कारण करोगे। दान भी तुम करते हो तो पहले पूछ लेते हो, इससे मिलेगा क्या?
बोधिधर्म चीन पहुंचा, तो चीन के सम्राट ने पूछा कि मैंने हजारों बुद्ध-मंदिर बनवाये, इससे क्या लाभ होगा? और मैं लाखों बौद्ध भिक्षुओं को भिक्षा देता हूं, राज्य उनका पालन करना है--इससे मुझे कितना पुण्य हुआ है? दूसरों से भी उसने पूछा था, लेकिन दूसरे तो दुकानदार थे; उन्होंने कहां, महापुण्य हो रहा है, स्वर्ग में तुम्हारे लिए विशेष इंतजाम होगा। उन्होंने हजार तरह की बातें समझाई होंगी। सातवें स्वर्ग में जाओगे। पुण्य की राशि लगी जा रही है। इंद्र बनोगे! लेकिन यह बोधिधर्म थोड़ा उजड्ड, सीधा-साफ आदमी था।
उसने कहा, "लाभ! दिमाग दुरुस्त है? यह तुमने पूछा इसके कारण पाप लगा।
तुम नर्क में पड़ोगे।" सम्राट वू थोड़ा घबड़ाया। उसने कहा कि नर्क में! तो बोधिधर्म ने कहा, कि लाभ की आकांक्षा से किया गया दान, दान नहीं है। लाभ की जरा-सी भी रेखा बच गई तो दान विकृत हो गया।
फिर भी सम्राट वू ने कहा कि मैंने जो किया है, क्या वह पवित्र नहीं है, धार्मिक नहीं है। बोधिधर्म ने कहा, धर्म का पवित्रता से क्या लेना-देना? धर्म तो पवित्रता से भी मुक्त है। वह अपवित्र और पवित्र, वह सब संसार की बातें हैं।
नाराज हुआ सम्राट, प्रसन्न न हुआ। क्योंकि ऐसे आदमी से कौन प्रसन्न होता है! हम तो लोभ को ऐसा पकड़े हैं कि अगर हमसे दान भी करवाना हो तो हमारे लोभ को फुसलाना पड़ता है। हम तो ऐसे भयभीत हैं कि हमें अगर निर्भय बनाना हो, तो भी हमारे भय को ही सुशिक्षित करना होता है। हमारा जीवन बड़ी उलटी दशा में है। जिंदगी तो जिंदगी, हम मर भी जाते हैं, तो भी हमारी आशाओं का ढांचा नहीं बदलता।
मेरी खाक पर सा.जे-इकतार लेकर
उम्मीद अब भी एक गीत-सा गा रही है
मर जाते हैं, कब्रें बन जाती हैं, तो भी कब्र पर तुम बैठा हुआ पाओगेः वही पुरानी आशा इकतारा बजा रही है--वही कामना, वही वासना, वही लोभ, वही मोह! "आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जाननेवाला तथा परकीय (आत्म-व्यतिरिक्त) भावों को जाननेवाला ऐसा कौन ज्ञानी होगा जो यह कहेगा, यह मेरा है?" महावीर कहते हैं, अज्ञान का आधार है यह कहना कि "यह मेरा है।" ममत्व, "मैं" को जोड़ लेना किसी भी चीज से, आत्मा का तादात्म्य बना लेना किसी चीज से--यही समस्त अधर्म का आधार है। तो वह कहते हैं, शुद्ध स्वरूप को जाननेवाला ऐसा कौन ज्ञानी होगा, जो यह कहेगा "यह मेरा है?" "मेरा" अज्ञान है--घनीभूत अज्ञान! कहो, मेरा मकान। कहो, मेरी दुकान। या कहो, मेरा मंदिर। या कहो, मेरा धर्म। कहो, मेरा बेटा! या कहो, मेरा गुरु! लेकिन जहां भी "मेरा" है और जोर "मेरे" पर है, वहां-वहां अज्ञान है। "मेरे" का दावा ही अज्ञान का है।
कुछ भी तुम्हारा नहीं है--सिवाय तुम्हारे।
महावीर इस संबंध में बड़े आत्यंतिक हैं और साफ हैं। सिवाय तुम्हारे और कोई भी तुम्हारा नहीं है। तुम्हारा होना ही बस तुम्हारा है। उसी को लेकर तुम आये, उसी को लेकर तुम जाओगे। बाकी तो खेल है। कोई पत्नी है, कोई पति है; कोई मित्र है, कोई शत्रु है; कोई अपना है, कोई पराया है--लेकिन बाकी सब खेल है। जहां तुम ठहरे हो, यहां "मेरा" कुछ भी नहीं है।
धर्मशाला है; रात रुक गये, ठीक। सुबह चलना है, चल पड़ना है। तो महावीर कहते हैं, "मेरा" जिसने छोड़ दिया उसका अज्ञान गिर जायेगा।
"मेरा" का अर्थ हुआ कि आत्मा को हम किसी चीज से जोड़ते हैं। जब तुम कहते
हो, "मेरा मकान", तो कौन-सी घटना घटती है। मकान को तो कुछ परिवर्तन नहीं होता, यह तो जाहिर है। तुम मर जाओगे, मकान रोयेगा नहीं। मकान गिर जायेगा तो तुम रोओगे। एक बात पक्की है, जब तुम कहते हो, "मेरा मकान", तो कोई परिवर्तन तुममें होता है, मकान में नहीं होता। मकान तो वैसा का वैसा बना रहता है।

एक सूफी फकीर अपने विद्यार्थियों को लेकर जा रहा था और राह पर उसने देखा कि एक आदमी गाय को रस्सी से बांधे खींचे लिये जा रहा है। तो उसने अपने विद्यार्थियों को कहा, घेर लो इस आदमी को, एक शिक्षा देनी है। वह आदमी भी थोड़ा चौंका, लेकिन अवाक खड़ा रह गया कि क्या मामला है, क्या शिक्षा है। वह सूफी फकीर ने अपने शिष्यों से कहा, "मैं तुमसे पूछता हूं कि इनमें गुलाम कौन किसका है? यह आदमी इस गाय का गुलाम है कि गाय इस आदमी की गुलाम?" स्वभावतः शिष्यों ने कहा कि गाय इस आदमी की गुलाम है, क्योंकि इस आदमी के हाथ में गाय की रस्सी है और यह जहां चाहे वहां ले जा सकता है। सूफी फकीर ने कहा, तुमने बहुत ऊपर से देखा। अब ऐसा समझो कि हम यह रस्सी बीच से काट दें तो गाय इस आदमी के पीछे जायेगी कि यह आदमी इस गाय के पीछे जायेगा? उन्होंने कहा, अगर रस्सी काट दी तो गाय तो इस आदमी के पीछे जानेवाली नहीं; यह तो रस्सी में भी मुश्किल से जाती मालूम पड़ रही है। यह आदमी ही गाय के पीछे जायेगा।
तो उस फकीर ने कहा, रस्सी के धोखे में मत पड़ो! इस गाय को इस आदमी से कुछ लेना-देना नहीं है। इस गाय ने कोई तादात्म्य इस आदमी से नहीं बनाया है; इस आदमी ने तादात्म्य बनाया है गाय से। तो गुलाम यह आदमी है, गाय नहीं।
जब तुम कहते हो, "यह मेरा मकान", तो तुम यह मत सोचना कि मकान भी कहता है
कि "तुम मेरे मालिक।" मकान ऐसी भूल-चूक नहीं करेगा। मकान इतने अज्ञानी नहीं हैं। मकान को मतलब ही नहीं है। अगर मकान को थोड़ा होश होता तो वह हंसता। वह मुस्कुराता तुम्हारी नासमझी पर। वह शायद तुम्हें क्षमा कर देता कि ठीक है, अज्ञानी हो, चलेगा। लेकिन मकान को तुमसे कोई लेना-देना नहीं है। तुम नहीं थे, तब भी यह मकान बना रह सकता था। तुम नहीं रहोगे, तब भी बना रहेगा।
इब्राहीम सम्राट था बल्ख का। एक फकीर उसके द्वार पर आया और झंझट करने लगा कि मुझे इस महल में ठहरना है। लेकिन वह "महल" नहीं कह रहा था। वह कहता था, यह "सराय" में मुझे ठहरना है। बड़े जोर-जोर से लड़ रहा था वह पहरेदार से। पहरेदार ने कहा, हजार दफे कह दिया यह धर्मशाला नहीं, सराय नहीं। सराय गांव में दूसरी है। यह राजा का महल है। यह राजा का खुद का निवास है। तुम होश में हो? तुम क्या बातें कर रहे हो? यह कोई ठहरने की जगह नहीं।
तो उसने कहा, फिर मैं राजा को देखना चाहता हूं। इब्राहीम भी भीतर से सुन रहा था--बड़े जोर से। और उस फकीर की आवाज में कुछ जादू था, कुछ चोट थी। वह जिस ढंग से कह रहा था, ऐसा नहीं लगता था कि सिर्फ जिद्दी, कोई पागल है। उसके कहने में कुछ रहस्य मालूम होता था। उसने कहा, उसे बुलाओ भीतर। वह फकीर भीतर आया और उसने कहा, "कौन राजा है? तुम!" वह सिंहासन पर बैठा था, उसने कहा कि साफ है कि मैं राजा हूं। और यह मेरा निवास है और तुम व्यर्थ पहरेदार से झंझट कर रहे हो।
उसने कहा, बड़ी हैरानी की बात है! मैं पहले भी आया था, तब एक दूसरा आदमी
इस सिंहासन पर बैठा था और वह भी यही कहता था।
उस राजा ने कहा, वे मेरे पिता थे, वे अब स्वर्गवासी हो गये।
उसने कहा, उनके पहले भी मैं आया था, तब एक तीसरा ही आदमी बैठा था। और हर बार पहरेदार भी बदल जाते हैं। आदमी भी बदल जाते हैं। यह मकान वही है। और हर बार जब मैं आता हूं, तब यही झंझट!
उसने कहा, वे हमारे पिता के पिता थे, वे भी स्वर्गवासी हो गये।
तो उसने इब्राहीम से पूछा, "जब मैं चौथी बार आऊंगा, तुम मुझे यहां मिलोगे, इस सिंहासन पर, कि फिर कोई और मिलेगा? जब इतने लोग यहां बदलते जाते हैं, इसलिए तो मैं कहता हूं यह सराय है, धर्मशाला है। तुम भी टिके हो थोड़ी देर; मेरे टिक जाने में क्या बिगड़ रहा है? सुबह हुई, तुम भी चल पड़ोगे, हम भी चल पड़ेंगे।
कहते हैं इब्राहीम को बोध हुआ। वह सिंहासन से नीचे उतर आया और उसने कहा कि तूने मुझे जगा दिया। अब तू रुक, मैं चला। अब यहां रुककर भी क्या करना है! जहां से सुबह जाना पड़ेगा, इतनी देर भी क्यों गंवानी!
इब्राहीम ने छोड़ दिया राजमहल। इब्राहीम सूफियों का एक बड़ा फकीर हो गया।

मेरा मकान! मेरा बेटा! मेरा धन! मेरा धर्म! जहां-जहां तुम "मेरे" को फैलाते हो, वहां-वहां तुम्हारा "मैं", झूठा "मैं" खड़ा होता है। जो "मैं" "मेरे" के फैलाव से बनता है, उसीको महावीर अहंकार कहते हैं। और जो "मैं" सब "मेरे" के टूट जाने पर बचता है, उसको महावीर आत्मा कहते हैं। तो अभी तो तुमने जो अपना "मैं" जाना है, वह "मैं" नहीं है। वह तो तुम्हारी और गाय के बीच में बंधी हुई रस्सी है। वह तुम्हारी अंतरात्मा नहीं है। वह तो तुम्हारे मकान पर लगी हुई तुम्हारे अहंकार की छाप है।
इसलिए महावीर कहते हैंः
को णाम भणिज्ज बुहो, णाउं सव्वे पराइए भावे।
मज्झमिणं ति य वयणं, जाणंतो अप्पयं सुद्धं।।
"ऐसा कौन है जाननेवाला, जो कहेगा यह मेरा है?"
तो जिसने यह जान लिया कि मेरा कुछ नहीं है, वही जाननेवाला है। और जिसने यह जान लिया कि मेरा कुछ भी नहीं है, उसी को पता चलेगा मैं कौन हूं। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि कैसे पता चले कि मैं कौन हूं। सीधी प्रक्रिया हैः "मेरे" को शिथिल करते जाओ। जहां-जहां "मेरे" को पाओ, वहां-वहां रस्सी को काटते जाओ। कुछ छोड़कर भाग जाने की भी जरूरत नहीं है कि तुम घर छोड़कर भागो। क्योंकि छोड़कर भागने में तो ऐसा लगता है कि काट न पाये, डरकर भाग गये। डर लगा कि रहे तो कहीं "मेरा" हो ही न जाये यह मकान! कहीं लगने न लगे कि मेरा है! तो जंगल भाग गये, जंगल में क्या होगा? जिस झाड़ के नीचे बैठोगे, वही तुम्हारा हो जायेगा।
तुमने देखा, भिखारी भी जिस जगह पर बैठता है सड़क के, वह उसकी हो जाती है! अगर दूसरा भिखारी वहां आ जाये, झगड़ा हो जाता है, अब कुछ नहीं है। चलती सड़क है, किसी की नहीं है, सार्वजनिक है। मगर भिखारियों के भी अड्डे होते हैं। जो भिखारी जिस जगह बैठता है, वह उसकी दुकान है।
एक आदमी एक भिखारी के सामने से गुजर रहा था। वह भिखारी चिल्लाया, "बाबा! कुछ पैसे मिल जायें, सिनेमा देख आऊंगा।" और सामने तख्ती लगा रखी थी कि मैं अंधा हूं। उस आदमी ने पूछा, तुम अंधे हो? तो उसने कहा कि नहीं, असल में यह दुकान दूसरे भिखारी की है। वह आज छुट्टी पर है। मैं अंधा नहीं हूं, मैं लंगड़ा हूं। यह दुकान दूसरे की है, मैं तो सिर्फ आज बैठा हूं, क्योंकि वह छुट्टी पर है। और मौके की दुकान है। तो जब वह छुट्टी पर होता है तो मुझे बिठा जाता है।
तुम अगर जाओ जंगलों में, हिमालय की गुफाओं में, जहां संसार छोड़कर बैठे हैं संन्यासी, उनकी भी गुफाएं हैंः दूसरा न बैठे। अगर दूसरा बैठ जाये, झगड़ा मच जाता है। तो क्या फर्क पड़ेगा? मकान छूटेगा, गुफा अपनी हो जायेगी। गुफा छूटेगी, सड़क के किनारे बैठ जाओगे तो वह टुकड़ा अपना हो जायेगा। तुम कहां अपने को लगाते हो, यह थोड़े ही सवाल है। कहीं भी तो चिपकाओगे उस "मैं" को! बस जहां चिपका दोगे, वही झंझट हो जायेगी।
लोग धर्म से भी चिपका देते हैं। मेरा मंदिर! हिंदू कहते हैं, हमारा! मुसलमान की मस्जिद, वे कहते हैं, हमारी! हिंदू को रस आता है मुसलमान की मस्जिद गिर जाये तो।
एक हिंदू पंडित में और एक मुसलमान मौलवी में बड़ी दोस्ती थी। मौलवी नयी मस्जिद बनाने के लिये योजना कर रहा था और दान मांग रहा था। उसने मित्रों को भी पत्र लिखे। उसने उस पंडित को भी पत्र लिखा कि मस्जिद बनाने के लिए चेष्टा कर रहे हैं, कुछ दान! पंडित ने पत्र लिखा कि यह तो असंभव है; मैं हिंदू हूं और मस्जिद बनाने के लिए दान दूं, यह तो संभव नहीं है। हां, पुरानी को गिराने के निमित्त सौ रुपये भेज रहा हूं। पुरानी गिराओगे न, नयी बनाने के पहले! मेरा दान पुरानी को गिराने के लिये है। इसका उपयोग भर गिराने में कर लेना। बनाने के लिए तो मैं कैसे दे सकता हूं!
मस्जिद गिर जाये, हिंदू प्रसन्न है। मंदिर जल जाये, मुसलमान प्रसन्न है! किसी को परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है, अपना-अपना है। अगर तुम्हारे परमात्मा पिट रहे हों तो कोई बचाने भी न आयेगा। लोग खुश ही होंगे कि अच्छा है, तुम्हारे ही पिट रहे हैं।

जबलपुर में गणेश-उत्सव पर गणेशों का जुलूस निकलता है, शोभा-यात्रा निकलती है। और हर मुहल्ले के गणेशों की जगह बंटी हुई है। तो पहले ब्राह्मणों के टोले का गणेश होता है, फिर दूसरे टोले। फिर ऐसे पीछे आखिर में हरिजन टोले।
एक बार ब्राह्मणों का टोला आने में थोड़ी देर हो गई और तेलियों के गणेश पहले आ गये। तो जब ब्राह्मणों के गणेश पहुंचे, ब्राह्मणों ने कहा, "हटाओ तेलियों के गणेश को! तेलियों का गणेश और आगे!"
हां, गणेश भी तेलियों के, ब्राह्मणों के अलग-अलग हैं! तेलियों का गणेश, हटाओ पीछे! यह तो बेइज्जती की बात हो गई। और तेलियों के गणेश को पीछे हटना पड़ा। हिंदू-मुसलमान के देवी-देवता तो छोड़ो, हिंदू के भी देवी-देवता! तेली और ब्राह्मण के अलग हो जाते हैं।
सब जगह आदमी अपने अहंकार की पताका लिये खड़ा रहता है। इस पताका को जो गिरा देता है वही आत्मा को जानने में समर्थ होता है।
छोड़ो इस मेरे-तेरे को। सपनों में ज्यादा रस मत लो।
तर्क-ए-उमीद से ही मिलेगा सुकून-ए-दिल
दो दिन की जिंदगी पर भरोसा किया तो क्या!
इतना ही देखते रहो कि यहां जो है, दो दिन के लिये है, क्षणभर के लिये है। इसकी क्षणभंगुरता को गौर से देखते रहो, तो तुम इसे "मेरा" न कहोगे। तर्क-ए-उमीद से ही मिलेगा सुकून-ए-दिल!
और दिल की जो गहन शांति है, वह जो आत्म-शांति है, वासना के त्याग से ही मिलेगी; ममता के त्याग से ही मिलेगी।
दो दिन की जिंदगी पर भरोसा किया तो क्या!
"मैं एक हूं, शुद्ध हूं, ममता-रहित हूं तथा ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूं। अपने इस शुद्ध स्वभाव में स्थित और तन्मय होकर मैं इन सब परकीय भावों का क्षय करता हूं।"
अहमिक्को खलु सुद्धो, णिम्ममओ णाणदं सणसमग्गो।
तम्हि ठिओ तच्चित्तो, सव्वे एए खयं णेमि।।
"मैं एक हूं... ।"
एक-एक शब्द समझना इस सूत्र का। महावीर कहते हैं, मैं एक हूं। तुम न कह सकोगे कि तुम एक हो। तुम तो अगर गौर करोगे, तो पाओगे तुम एक भीड़ हो। तुम अनेक हो। तुम तो एक बाजार हो। एक उपद्रव हो, जिसके भीतर कई स्वर हैं। महावीर ने कहा, साधारणतः मनुष्य "बहुचित्तवान" है। इस शब्द का प्रयोग अकेले महावीर ने किया है पच्चीस सौ साल पहले। अब आधुनिक मनोविज्ञान इस शब्द का उपयोग करता है। वह कहता हैः मल्टीसाइकिक, बहुचित्तवान। एक-एक आदमी के पास एक-एक मन नहीं है; एक-एक आदमी के पास न मालूम कितने मन हैं! तुम अकसर कहते हो कि यह मेरे मन को नहीं भाता। लेकिन तुमने कभी ख्याल किया कि सुबह जो तुम्हारे मन को नहीं भाता। वही शाम को भाने लगता है! आज जो अच्छा लगता है, कल बुरा लगने लगता है। क्षणभर पहले जो प्रीतिकर था, अब शत्रु मालूम होने लगता है। तो तुम सोचते नहीं कि तुम्हारे भीतर बहुत मन हैं; एक मन नहीं है। अगर एक मन हो तो तुम्हारा प्रेम एकरस होगा। अगर एक मन हो तो तुम्हारा भाव थिर होगा। अगर एक मन हो तो बदलाहट न होगी। तुम्हारे भीतर शाश्वतता होगी, चिरंतनता होगी।
लेकिन तुम तो एक भीड़ हो। गुरजिएफ कहता था, तुम एक ऐसे घर हो जिसका मालिक तो सोया है और नौकर पाली बांध लिये हैं। क्योंकि सभी नौकर मालिक होना चाहते हैं। सभी एक साथ तो हो नहीं सकते। और मालिक सोया है, तो नौकरों ने पाली बांध ली है। आधा-आधा घड़ी को एक-एक नौकर मालिक हो जाता है। जब, जो नौकर मालिक होता है, उस वक्त उसकी चलाता है। फिर वह किसी की नहीं सुनता। ठीक कहता है गुरजिएफ। ऐसी ही आदमी की दशा है।
जब तुम क्रोध में हो, तब क्रोध की चलती है। यह तुम्हारा एक नौकर है। और क्रोध में तुम ऐसी बातें कर जाते हो कि घड़ीभर बाद जब क्रोध का राज्य जा चुका होगा, तब तुम पछताओगे। क्योंकि तब दूसरा मालिक आ गया। वह मालिक कहेगा, "यह क्या गलती कर ली? बड़ी भूल हो गई।" क्षमा मांगोगे। और इस दूसरे मालिक के प्रभाव में तुम किसी को कह आओगे कि अब कभी क्रोध न करूंगा।

फिर गलती कर रहे हो। क्योंकि वह जो क्रोध करनेवाला है, जब मालकियत में फिर आयेगा, तब यह पश्चात्ताप काम न आयेगा; यह आश्वासन काम न आयेगा। यह किसी और के द्वारा दिया गया आश्वासन क्रोध क्यों पूरा करेगा?
कामवासना उठती है तो तुम उसके प्रभाव में हो जाते हो। फिर सुबह उठकर मंदिर चले जाते हो, ब्रह्मचर्य की कसम खाने लगते हो। भूल गये सांझ। फिर आयेगी सांझ। फिर कामवासना सिंहासन पर बैठेगी। फिर तुम अड़चन में पड़ोगे। समझने की कोशिश करो। इन मनों में से कोई भी मन तुम्हारा नहीं है। तुम
तो अभी सोये हो। इन मनों में से किसी को चुनना नहीं है, क्योंकि इनमें से चुना हुआ तो ठीक वैसा ही रहेगा जैसा लोकतांत्रिक सरकार होती है--बहुमत की। लेकिन बहुमत का कोई भरोसा है? आज जो इस पार्टी में है, कल दूसरी पार्टी में हो जाता है। आज जो मित्र है, कल शत्रु हो जाता है। वहां तो रूप-रंग रोज बदलते रहते हैं। खेल चलता रहता है। जो सरकार बनी दिखाई पड़ती है, वह किसी भी क्षण गिर जाती है। जिनकी कभी आशा न थी, वे सरकार में पहुंच जाते हैं, मालिक बन जाते हैं। यह चलता रहता है। यह तो सागर में उठती लहरों जैसा खेल है।
तो अगर तुमने कोई कसम खाकर किसी तरह बहुमत बना लिया, तो तुम मुश्किल में रहोगे। वह अल्पमत सदा उपद्रव खड़ा करता रहेगा। वह आंदोलन चलायेगा। वह झंझट पैदा करेगा। वह बहुमत को खिसकायेगा। संयमी और ज्ञानी के जीवन में यही फर्क है। संयमी अपने भीतर एक लोकतांत्रिक सरकार निर्मित करने की कोशिश करता है।
की तर्के-मय तो मायले-पिंदार हो गया
मैं तौबा करके और गुनहगार हो गया।
और तुमने कभी किसी चीज को न करने की कसम खाई?
कसम खाते ही उसमें और रस आने लगता है। खाकर कसम देखो! चाहे इसके पहले कोई रस भी न रहा हो। कसम खाकर देखो...
की तर्के-मय तो मायले-पिंदार हो गया!
--जैसे ही कोई चीज त्यागी कि तुम्हारी कल्पना घोड़ों पर सवार हो जाती है। और वह सोचती है, "अरे भोग लो! पता नहीं कितना मजा है, नहीं तो दुनिया क्यों इसके खिलाफ है? कुछ न कुछ राज तो होगा ही। नहीं तो इतने लोग समझानेवाले हैं, कोई छोड़ता नहीं।" कल्पना घोड़े पर सवार हो जायेगी।
मैं तौबा करके और गुनहगार हो गया।
पश्चात्ताप करो। तुम कहो, अब कभी न करेंगे। और तत्क्षण तुम्हारे भीतर गुनाह उठने लगेंगे। करने की आकांक्षा प्रबल होगी, जब भी तुम कहोगे अब न करेंगे।
उपवास करके देखो! उस दिन जैसा भोजन में रस लोगे, वैसा कभी न लिया था।
उस दिन भोजन ही भोजन करोगे। रात-दिन सपने ही सपने आयेंगे। जिस चीज को छोड़ोगे उसी की तरफ कल्पना रसलीन होने लगती है।
संयमी बड़े अंतर्युद्ध में पड़ जाता है, गृहयुद्ध में पड़ जाता है।
ज्ञानी और संयमी में फर्क है। महावीर का जोर ज्ञानी पर है।
महावीर कहते हैं, "मैं एक हूं, शुद्ध हूं, ममता-रहित हूं तथा ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूं। अपने इस शुद्ध स्वभाव में स्थित और तन्मय होकर मैं इन सब परकीय भावों का क्षय करता हूं।"
महावीर यह नहीं कहते कि मैं परकीय भावों का क्षय करके अपने स्वभाव में थिर होता हूं। महावीर कहते हैं, अपने स्वभाव में थिर होता हूं, इसलिए परकीय भावों का क्षय होता।
"मैं अपने स्वभाव में स्थित और तन्मय होकर... ।"
असली सवाल उस एक में तन्मय हो जाने का है; संसार के त्याग का कम, सत्य
के अनुभव, सत्य के रस का ज्यादा है, सत्य के स्वाद का ज्यादा है।
"मैं एक हूं... ।"
कौन है तुम्हारे भीतर एक? वासनाएं तो अनेक हैं? विचार अनेक हैं। देह
भी एक नहीं है, क्योंकि देह भी रोज बदलती है। बचपन में एक थी, जवानी में और है, बुढ़ापे में और होगी। और ये तो मोटे विभाजन हैं, अगर गौर से देखो तो रोज बदलती है। सुबह कुछ है सांझ कुछ है। देह हजार बार बदलती है। मन तो करोड़ बार बदलता है। यह कोई भी एक नहीं है। इन सबके भीतर अगर तुम एक को खोज लो, वह एक

ही साक्षी-भाव है--ज्ञायक-भाव जिसको महावीर कहते हैं ज्ञाता--वह एक है।
बचपन में भी वही था, जवानी में भी वही, बुढ़ापे में भी वही। सुख में, दुख में, क्रोध में, प्रेम में, करुणा में--सब में वही। वह एक है।
उस एक को जिसने पकड़ लिया उसने जीवन का आधार खोज लिया। उस एक पर जो अपने भवन को खड़ा करेगा, उसके शिखर मोक्ष तक उठ जायेंगे।
"मैं एक, शुद्ध, ममता-रहित, ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण... ।"
उस अंतरात्मा का एक ही लक्षण हैः ज्ञान-दर्शन; जानने की, देखने की क्षमता। बस इतना उसका स्वभाव है। आत्मा का इतना ही स्वभाव हैः देखने- जानने की क्षमता। अगर जानो और देखो, इस क्षमता का उपयोग करो, तो संसार बन जाता है। अगर न जानो, न देखो, इस क्षमता को शुद्ध छोड़ दो, उपयोग मत करो, तो मुक्ति फलित हो जाती है।
"अपने इस शुद्ध स्वभाव में स्थित और तन्मय होकर, मैं इन सब परकीय भावों का क्षय करता हूं।"
प्यास भटकी ही सदा, नीर की आशा न मिली
नदी को लहर मिली, तट की दिलासा न मिली
नयन मिले तो अधर पंख थरथरा के रह गए
प्यार को जन्म मिला, प्यार को भाषा न मिली।
--जैसी जिंदगी है, वहां सिर्फ प्यास है, तृप्ति नहीं है।
प्यास भटकी ही सदा, नीर की आशा न मिली!
जिसे तुम संसार कहते हो, वह प्यास और प्यास और प्यास, मरुस्थल! हां, दूर मरूद्यान दिखाई पड़ते हैं, पास पहुंचने पर मरूद्यान सिद्ध नहीं होते।
प्यास भटकी ही सदा, नीर की आशा न मिली।
दिखाई भी पड़े जल-स्रोत, तो भी सत्य सिद्ध न हुए। मन के ही स्वप्न थे!
नदी को लहर मिली, तट की दिलासा न मिली।
तरंगें तो बहुत उठीं, लहरें तो बहुत आईं; लेकिन तट! वह जगह न मिली, जहां
सब लहरें शांत हो जाती हैं।
उफ! तूफान तो बहुत रहे, आंधियां तो बहुत रहीं; लेकिन ऐसी कोई शरण न मिली, जहां सुख-चैन हो जाता है।
नदी को लहर मिली, तट की दिलासा न मिली
नयन मिले तो अधर पंख थरथरा के रह गये
और सदा अधूरा-अधूरा रहा; कुछ मिला तो कुछ कम हो गया।
नयन मिले तो अधर पंख थरथरा के रह गये
प्यार को जन्म मिला, प्यार को भाषा न मिली।
इस संसार में प्यास तो है, प्यार तो है; लेकिन न भाषा मिलती, न माध्यम मिलता, न द्वार मिलता। भटकती है रूह रेगिस्तानों में--प्यास के, अतृप्ति के, असंतोष के।
जो बाहर जायेगा तो ऐसा ही होगा। भीतर आते ही किनारा मिलता है। बाहर प्यास ही प्यास है, भीतर तृप्ति ही तृप्ति। मुझे ऐसा कहने दो कि बाहर प्यास ही प्यास है और तृप्ति बिल्कुल नहीं; और भीतर तृप्ति ही तृप्ति है, प्यास बिल्कुल नहीं। तो असली सवाल भीतर आने का है।
आनंद तुम्हारा स्वभाव है।
"मैं एक हूं, शुद्ध हूं, ममता-रहित हूं, ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूं। अपने इस शुद्ध स्वभाव में स्थित और तन्मय होकर मैं इन सब परकीय भावों का क्षय करता हूं।"
वे सारी प्यासें, तड़फड़ाहटें, दौड़, आपाधापी, वह बाहर का सारा जाल, सूखे कंठ, रोती आंखें--उन सबका त्याग होता चला जाता है, क्षय होता चला जाता है।
उपनिषद ठीक महावीर की इस अंतर्दृष्टि को प्रगट करते हैं।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो।
मैं सदा रहनेवाला, सनातन, सदा सदैव स्थिर रहनेवाला आत्मा हूं।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो।
और जब तक कोई शाश्वत से न जुड़ जाये, क्षणभंगुर से कैसे सुख पाया जा सकता है? पानी के बबूलों को संपदा बनाने में लगे हो। हाथ में नहीं आते, तब तक तो इंद्रधनुष उन पर बनते हैं; हाथ में आते ही फूट जाते हैं।

उपनिषद कहते हैंः सतां हि सत्य। सत्पुरुषों का स्वभाव ही सत्यमय होता है।
सत्य कोई बाहर की बात नहीं--तुम्हारे स्वभाव की बात है।
सतां ही सत्य। तस्मात्सत्ये रमन्ते।
और वे सदा उस भीतर के सत्य में रमते हैं।
वही महावीर कह रहे हैं तन्मय होकर, स्वभाव में स्थित, परकीय भावों का क्षय करता हूं।
इसे थोड़ा प्रयोग में लाना शुरू करो। उठते-बैठते एक धागा भीतर सम्हालते रहो, जीवन के सारे मनके इसी धागे में पिरो लो। उठो तो याद रखो कि मैं जाननेवाला हूं, उठनेवाला नहीं। उठ तो शरीर रहा है। उठ तो मन रहा है। मैं सिर्फ जाननेवाला हूं। चलो रास्ते पर, तो जानते रहोः चल तो शरीर रहा है, चल तो मन रहा है; मैं तो सिर्फ जान रहा हूं। जान रहा हूं कि शरीर चल रहा, मन चल रहा। भोजन करो तो स्मरण रखो कि भोजन तो शरीर में पड़ रहा है, कि शरीर तृप्त हो रहा है, कि मन तृप्त हो रहा है; लेकिन मैं तो जाननेवाला हूं।
इस जाननेवाले के सूत्र को तुम जीवन के सारे मनकों में पिरो दो। धीरे- धीरे यह तुम्हें स्वाभाविक होता जायेगा। तुम कुछ भी करोगे, भीतर एक अहर्निश नाद बजता रहेगाः "मैं ज्ञाता हूं।" उस ज्ञाता में ही तुम एक हो जाओगे। उस ज्ञाता को जानते ही तुम संसार के पार हो जाओगे।
महावीर कहते हैं, जैसे कमल के पत्ते जल में रहते भी जल को छूते नहीं, ऐसे ही फिर जो साक्षी-भाव को उपलब्ध हुआ, जल में रहते हुए भी जल को छूता नहीं। तुम फिर कहीं भी हो, तुम संसार के बाहर हो। संसार के भीतर भी तुम बाहर हो। फिर तुम भीड़ में खड़े भी अकेले हो। अभी तो तुम अकेले भी खड़े भीड़ में ही होते हो।
और ये जो वचन हैं महावीर के, ये किसी दार्शनिक के वक्तव्य नहीं हैं।
ये किसी तत्वचिंतक की धारणाएं नहीं हैं। ये तो एक महासाधक के अनुभव हैं।
इन्हें तुम अनुभव बनाओ, तो ही इनका राज खुलेगा। इन्हें तुम प्रयोग बनाओ और इनके लिए तुम प्रयोगशाला बनो, तो ही ये सूत्र सत्य हो सकेंगे।
सतां हि सत्य। तस्मात्सत्ये रमन्ते।
रमो इन सत्यों में। इन सत्यों को तुम्हारा स्वभाव बनने दो। तब तुम्हारे जीवन में "उसकी" वर्षा हो जायेगीः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो।
उस शाश्वत की जो सदा से है और सदा रहेगा। और उस शाश्वत की वर्षा होते
ही क्षणभंगुर से छुटकारा हो जाता है। क्षणभंगुर को छोड़ना नहीं पड़ता। पानी के बबूलों को कोई छोड़ता है? बोध आया--छूट गये! अज्ञान में पकड़ता है, ज्ञान में छूट जाता है। अज्ञान में हम संसार को पकड़ते हैं, ज्ञान में हम स्वयं को पकड़ लेते हैं। और जिसने स्वयं को पा लिया, उसने सब पा लिया। और जिसने स्वयं को खोया, वह कुछ भी पा ले, तो भी उसका पा लिया हुआ कुछ सिद्ध न होगा। एक न एक दिन वह रोयेगा। उसकी आंखें आंसुओं से भरी होंगी।
आज वे मेरे गान कहां हैं?
टूट गई मरकत की प्याली
लुप्त हुई मदिरा की लाली
मेरा व्याकुल मन बहलानेवाले
अब सामान कहां हैं?
अब वे मेरे गान कहां हैं?
जगती के नीरव मरुथल पर
हंसता था मैं जिनके बल पर
चिर वसंत-सेवित सपनों के
मेरे वे उद्यान कहां हैं?
अब वे मेरे गान कहां हैं?
इसके पहले कि आंखें आंसुओं से भर जायें और हृदय केवल राख का एक ढेर रह जाये, जागो! इसके पहले कि जीवन हाथ से बह जाये, छिटक जाये, उठो! अवसर को मत खोओ!

जीवन अल्प है। उसे व्यर्थ में मत गंवा दो। मंदिर तुम्हारे भीतर है।
अगर समय का तुम ठीक उपयोग करना सीख जाओ, सामायिक सीख जाओ--मंदिर में प्रवेश हो जाये।
समय को संसार में लगाना और समय को संसार से मुक्त कर लेना--बस दो आयाम हैं।
समय को संसार से मुक्त करो। समय को संसार की व्यस्तता से मुक्त करो! सामायिक फलित होगी! अपने में प्रवेश होगा! आत्मधन मिलेगा! आत्मगीत बजेगा! आत्मा का नर्तन! तन्मय होकर तुम डूबोगे!
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
बीसवां प्रवचन

पलकन पग पोंछूं आज पिया के

पहला प्रश्नः आपको सुनने के बाद मुझे व्यवहारिक जीवन में शिथिलता और उदासी का अनुभव होता है। लेकिन जब प्रेम और भक्ति, आनंद और उत्सव पर आप बोलते हैं, तब मन खिल जाता है और आनंद से भर जाता है। कृपापूर्वक मुझे मेरा मार्ग दें।

आनंद कसौटी है। सत्य की चिंता छोड़ो। जहां आनंद है, उसी दिशा में चल पड़ो। सत्य मिलेगा ही। असत्य की दिशा में आनंद हो ही नहीं सकता। इसीलिए तो हमने आनंद को ब्रह्म की परिभाषा बनाया है। सच्चिदानंद!
आनंद कसौटी है। आनंद पर कभी संदेह मत करना। अगर आनंद न होगा तो जल्दी
ही पता चल जायेगा। झूठा आनंद ज्यादा देर टिकेगा नहीं।
डूबो! जहां से आनंद की किरण आती है वहीं सूरज है सत्य का। तुम किरण को पकड़ लो और चल पड़ो। सत्य की चिंता ही छोड़ो। किरण पकड़ ली तो सूरज की दिशा पर चल पड़े। और आदमी के पास दूसरा कोई उपाय नहीं है। सत्य से ही पता चलेगा, क्या ठीक है। क्योंकि जो ठीक है, वही जीवन को संगीत और आनंद से भरता है। और जब मैं कहता हूं, जो ठीक है, तो मेरा प्रयोजन व्यक्ति-व्यक्ति से है। जो तुम्हें ठीक है, जरूरी नहीं कि तुम्हारे पति को ठीक हो। जो तुम्हें ठीक है, जरूरी नहीं कि तुम्हारे बेटे को ठीक हो। जो तुम्हें ठीक है, जरूरी नहीं कि तुम्हारे भाई को ठीक हो, मित्र को ठीक हो, पड़ोसी को ठीक हो।
जो तुम्हारे लिए ठीक है, उसे भूलकर भी दूसरे पर आरोपित मत करना। वहीं हिंसा शुरू हो जाती है। जो तुम्हारे लिए ठीक है, उसे जीना। और किसी को भी इतना अधिकार मत देना कि वह तुम्हारे ऊपर अपने ठीक को थोप पाये। क्योंकि वहीं से गुलामी शुरू हो जाती है।
न किसी को गुलाम बनाना, न किसी के गुलाम बनना--तो ही तुम धार्मिक हो सकोगे।
और कसौटी एक ही है हाथ में कि जहां तुम्हें आनंद की पुलक मिले, वहां सरकते जाना। अगर झूठा होगा आनंद--उस झूठे आनंद को ही हम सुख कहते हैं।
सुख का अर्थ हैः जिसने धोखा दिया आनंद का, लेकिन था नहीं। सुख का अर्थ हैः जाकर पता चला आनंद नहीं है। दूर से ढोल सुहावना मालूम पड़ा था। मृगमरीचिका थी। दूर से कुछ और समझे थे, पास कुछ और सिद्ध हुआ। इसलिए मैं तुमसे सुख से भी भागने को नहीं कहता; क्योंकि अगर तुम भाग गये मृगमरीचिका को बिना देखे, तो सुख तुम्हारा सदा पीछा करेगा।
मैं तुमसे कहता हूं, सुख में भी जाओ, ताकि वह दुख हो जाये। अगर वह दुख
है तो दुख हो जायेगा; और अगर दुख नहीं है तो वहीं से तुम्हारी परमात्मा की सीढ़ियां शुरू होंगी।
लेकिन, मनुष्य के मन को आनंद के लिए तैयार नहीं किया गया है। इसलिए प्रश्न उठता है। इसलिए तुम अपनी इस स्वाभाविक रुझान को भी समस्या बना लेते हो।
अगर वैराग्य की बातें तुम्हें रस नहीं देतीं--छोड़ो! तुम्हारे लिए न होंगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे बातें गलत हैं। वे किसी और के लिए होंगी। कोई महावीर उस रास्ते से चलकर पहुंचेगा। कुछ प्रयोजन नहीं तुम्हें उनसे।
तुम्हारा हृदय तुम्हें प्रतिपल बताता है कि कौन-सी भूमि तुम्हारे फूल को खिलायेगी।
फिर हर वृक्ष के लिए अलग भूमि होती है। कोई वृक्ष रेत में ही खड़ा होता है। कोई वृक्ष कंकड़-पत्थर चाहता है। कोई वृक्ष काली भूमि चाहता है कि जरा- भी कंकड़-पत्थर न हों। जो एक के लिए अमृत है, वह दूसरे के लिए जहर हो जाता है।
इसलिए सदा ध्यान रखनाः कोई वक्तव्य सत्य के संबंध में सार्वभौम नहीं है--व्यक्ति-सापेक्ष है।

वैराग्य की बात किसी को खिलाती होगी। असली सवाल खिल जाना है। किसी को मरुस्थल की रेत में ही खिलने का सौभाग्य होता होगा। कैक्टस मरुस्थल में ही खिलते हैं। उनका भी अपना सौंदर्य है। गुलाब वहां न खिलेंगे। गुलाब का अपना सौंदर्य है।
तो अपने हृदय से कभी भी जबर्दस्ती मत करना। अगर व्यक्ति अपने हृदय की मानकर चलता रहे, और हृदय के अतिरिक्त, हृदय के विपरीत किसी की न माने, तो सत्य से तुम भटक न सकोगे, पहुंच ही जाओगे।
जहां आनंद न होगा और धोखा खाया, वहां धोखा कितनी देर चलेगा? प्यासे आदमी को कितनी देर झूठे पानी से समझाओगे, बुझाओगे? कितनी देर सांत्वना दोगे? जल्दी ही उसे समझ में आ जायेगाः यहां कोई जलधार नहीं है। हां, लेकिन यह हो सकता है, उसे तुम इस झूठी जलधार के पास ही न पहुंचने दो, तो कभी उसके अनुभव में ही न आ सके कि मृगमरीचिका थी, वहां कुछ था नहीं। तो शायद उसके मन में सपना अपने ताने-बाने बुनता रहे! शायद मन कहता रहे, वहां सुख था! वहां सुख था!
ऐसा ही मैं तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों में देखता हूं। संसार में सुख नहीं है, ऐसा उनका अनुभव नहीं है। ऐसा किसी अनुभवी की बात को उन्होंने मान लिया है। उनका स्वयं का हृदय तो कह रहा था, सुख है। उस हृदय को तो इनकारा, अस्वीकार किया; किसी और को आरोपित कर लिया। अपने प्राणों की आवाज तो न सुनी; किसी और की आवाज पर चल पड़े। फिर उनका जीवन बड़े दुख से भर जाता है। क्योंकि जहां उन्हें सुख दिखाई पड़ता था, वहां उन्हें अब भी दिखाई पड़ेगा।
आंखें उधार नहीं मिलतीं और न दर्शन उधार मिलता है, मेरी आंख से मैं देख सकता हूं। मेरी आंख से तुम न देख सकोगे। मेरे लिए मैं जी सकता हूं, मेरे लिए तुम न जी सकोगे। और मेरे लिए मैं ही मर सकता हूं, तुम न मर सकोगे। एक की जगह दूसरे के खड़े होने का कोई भी उपाय नहीं है। मगर वहीं हम धोखा देते हैं।
महावीर ने कहा है तो ठीक कहा होगा। ठीक ही कहा है। लेकिन तुम्हारे लिए कहा है, ऐसा महावीर को तुम्हारे हिसाब से बोलने का कोई कारण भी न था; तुम महावीर के सामने भी न थे। महावीर को तुम्हारा कोई पता भी नहीं है। महावीर ने तो अपना सत्य कहा है। इसे ख्याल रखना।
यहां जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह जरूरी नहीं है कि तुम्हारा सत्य हो।
वह मेरा सत्य है, इतना जरूरी है। ऐसा मैंने जाना। ऐसा तुम भी जानोगे, इसकी कोई अनिवार्यता नहीं है। जान भी सकते हो, न भी जानो!
मुझसे मेल खा जाओ, तुम्हारा व्यक्तित्व मुझसे मेल खाता हो, तो शायद जो मेरा सत्य है वह तुम्हारा भी अनुभव बन जाये। लेकिन अगर व्यक्तित्व मेल न खाता हो, तो मेरा सत्य तुम्हारे ऊपर-ऊपर रहेगा, भीतर-भीतर तो तुम्हारा ही सत्य रहेगा।
सभी दर्शन आत्म-कथाएं हैं, "आटो-बायोग्राफिकल" हैं। वे व्यक्ति के संबंध में हैं।
जब महावीर कुछ कहते हैं, तो वह महावीर के संबंध में सूचनाएं हैं; जब बुद्ध कुछ कहते हैं तो बुद्ध के संबंध में। जब मीरा नाचती है और नाच से कुछ कहती है, तो अपने संबंध में कह रही है।
सत्य के संबंध में जिनती उदघोषणाएं हैं, वह उन व्यक्तियों की उदघोषणाएं हैं जिन्होंने सत्य को जाना। उनके माध्यम से सत्य आया। सत्य ने एक रूप लिया। जरूरी नहीं है वही रूप तुम्हारे लिए ठीक हो। तुम कैसे समझोगे?
कुछ लोग हैं, जो इसलिए मान लेते हैं किसी की बात को, क्योंकि और लोग उसकी बात को मानते हैं। अगर जीसस को एक अरब आदमी मानते हैं तो कुछ तो इसीलिए मान लेंगे कि जिसको एक अरब मानते हैं, वह गलत कैसे हो सकता है? लेकिन ध्यान रखना, यह भी संभव है कि एक अरब जिसे मानते हों वह तुम्हारे लिए न हो। वह एक अरब के लिए भी सही हो और फिर भी तुम्हारे लिए सही न हो। क्योंकि परमात्मा एक-एक व्यक्ति को अनूठा रचता है, एक-एक व्यक्ति को अद्वितीय रचता है। यही तो मनुष्य की महिमा है।

मनुष्य की तो छोड़ दो फिक्र, एक पत्ते को इस बगीचे से तुम खोज लो, फिर वैसा पत्ता तुम सारी पृथ्वी पर खोजकर भी दूसरा न पा सकोगे।
एक कंकड़ उठा लो मार्ग से, फिर अनंत-अनंत चांद-तारों पर भी खोजते रहो तो ठीक वैसा कंकड़ तुम्हें दुबारा न मिलेगा।
परमात्मा कोई फोर्ड-कार बनानेवाली असेंबली-लाइन नहीं है कि एक-सी कारें! परमात्मा कोई मैकेनिक नहीं है, तकनीशियन नहीं है--कलाकार है। जितना बड़ा कवि होगा, उतना ही दुबारा किसी गीत को नहीं दोहराता। जितना बड़ा चित्रकार होगा, दुबारा फिर उसी चित्र को नहीं बनाता। दुबारा अगर बना भी ले वैसा चित्र तो आनंद अनुभव नहीं करता।
ऐसा हुआ कि एक आदमी ने पिकासो का एक चित्र खरीदा। कई लाख रुपये का चित्र था। तो स्वभावतः वह पता कर लेना चाहता था कि चित्र नकली तो नहीं है। तो वह पिकासो के पास ही उस चित्र को लेकर गया। और उसने पिकासो से कहा कि मैं यह खरीद रहा हूं, लाखों रुपये का मामला है, मैं इतना पूछने आया हूं कि यह असली है? तुम्हारा ही बनाया हुआ है, किसी की नकल तो नहीं?
पिकासो ने उस चित्र की तरफ बड़ी बेरुखी से देखा और कहा, नकली है, किसी
और का बनाया है। पिकासो की प्रेयसी मौजूद थी और वह बड़ी चकित हुई, क्योंकि यह चित्र उस प्रेयसी के सामने ही बनाया गया था। और पिकासो ने ही बनाया था। उसने कहा कि शायद तुम भूल रहे हो, शायद तुम्हारी स्मृति तुम्हें धोखा दे रही है। यह चित्र तुमने मेरे सामने बनाया है। यह तुम्हारा ही बनाया हुआ है।
पिकासो ने कहा, मैंने बनाया है, लेकिन फिर भी नकली है। क्योंकि इसे मैं पहले भी बना चुका हूं। इसको असली कहना ठीक नहीं है, आथैंटिक नहीं है। एक दफा जो बना चुके, बात पुरानी हो गई। अब उसे कोई दूसरा नकल करे या मैं खुद ही उसकी नकल करूं, इससे क्या फर्क पड़ता है? लेकिन यह चित्र मैं पहले भी बना चुका हूं। यह सिर्फ प्रतिध्वनि है, छाया है; असली नहीं है।
परमात्मा दोबारा कोई चीज बनाता नहीं। परम कलाकार है! ऐसा थोड़े ही है
कि जगत चुक गया है, कि अब उसे कुछ सूझता नहीं, कि फिर महावीर को बना दे, फिर राम को बना दे, फिर कृष्ण को बना दे।
देखा तुमने, न महावीर दुबारा, न कृष्ण दुबारा, न राम दुबारा! जो एक बार आता है, फिर दोबारा पर्दे पर आता ही नहीं। इसे स्मरण रखना।
तुम भी नये हो। सीख सबसे लेना, मानना अपनी। सुनना सबकी, अंतिम निर्णय हृदय से लेना।
तो अगर वैराग्य की बातें सुनकर शिथिलता और उदासी आती है; हृदय का फूल खिलता नहीं, कुम्हलाता है; कली फूल नहीं बनती, उलटा फूल अपनी पंखुड़ियां बंद कर लेता है--जैसे सांझ सूरज के डूब जाने पर बहुत-से फूल अपनी पंखुड़ियां बंद कर लेते हैं--तो समझ लेना, यह सत्य तुम्हारा सूरज नहीं। यह होगा सत्य किसी और का, क्योंकि कुछ फूल हैं जो सूरज के डूबने पर ही खिलते हैं। रातरानी हैः उसका होगा, तुम्हारे लिए नहीं है। तुम्हारा रास्ता फिर बिल्कुल साफ है।
जहां तुम्हें आनंद की झलक मिले, साहस करके वहां जाना। जरूरी नहीं है
कि हर बार तुम वहां आनंद पाओगे, यह मैं नहीं कह रहा हूं। बहुत बार तुम पाओगे वहां कुछ भी न था, राख का ढेर था। लेकिन तब भी अनुभव होगा। तब भी जीवन में प्रौढ़ता आयेगी। राख का ढेर देखकर समझ आयेगी। आगे राख के ढेर पहचानने की कला आयेगी। दुबारा धोखा मुश्किल होगा। तीसरी बार धोखा असंभव हो जायेगा। फिर एक ऐसी घड़ी आ जायेगी कि कितना ही लोभक दृश्य हो, तुम दूर से भी पहचान पाओगे कि कहां राख है, कहां अंगार है; कहां जीवन है, कहां सब बुझा- बुझा है।
भूल-भूल करके ही आदमी सीखता है। गलत को गलत जान लेना सही की तरफ जाने
का उपाय है। भ्रांत को भ्रांत पहचान लेना, निर्भ्रांत होने की व्यवस्था है।
तो मैं तुमसे कहता नहीं कि तुम जल्दी भाग जाना, मेरी मानकर भाग जाना।
तुम तो अपने ही अनुभव से जाना। होगा सुख, तो स्वर्ग का रास्ता बनेगा। नहीं होगा सुख, तो अनुभव जगेगा।

एडीसन एक प्रयोग कर रहा था। उसमें सात सौ बार हारा। उसके सारे साथी- सहयोगी रुष्ट हो गये, परेशान हो गये। उसके विद्यार्थी तो घबड़ा गये कि अब यह कब खतम होगा; क्या पूरा जीवन यह एक ही प्रयोग में करते रहना है; सात सौ बार! तीन साल खराब हो गये! एक दिन उसके सब सहयोगियों ने कहा, "आप सुनिये! आप तो रोज सुबह फिर प्रसन्नचित्त आ जाते हैं और फिर काम शुरू कर देते हैं; लेकिन हमारा भी सोचिये! यह जिंदगी इसी में गंवानी है? सात सौ दफे हार चुके; अब छोड़िये भी! कुछ और करिये!"
एडीसन ने कहा कि तुमसे किसने कहा कि मैं सात सौ बार हार चुका? मैं तो
हर बार जीत के करीब आ रहा हूं। समझो कि सात सौ एक दरवाजे हैं उसके, तो सात सौ दरवाजे तो हम खटखटा चुके; वहां नहीं था द्वार, दीवाल थी। वह दरवाजे झूठे थे! अब हम रोज-रोज करीब असली दरवाजे के आ रहे हैं। कितनी देर यह चलेगा! तो सात सौ बार हम असफल हुए, यह तुमसे किसने कहा? हर कदम हमें सफलता के करीब लाया है। हर विफलता सफलता के करीब लाती है। सात सौ बार के अनुभव ने हमें काफी प्रौढ़ बना दिया है। हमारी परख पैनी हो गई है। अब हमें वो सात सौ मार्ग भटका नहीं सकते। और निश्चित ही ठीक मार्ग के हम करीब आ रहे हैं। कितनी देर होगा, यह तो कहना मुश्किल है।
और कहते हैं, उसके कोई पंद्रह दिन बाद ही एडीसन सफल हो गया। उसने बिजली का पहला बल्ब बना लिया। आज सारी दुनिया उसकी वजह से रोशन है।
जो बाहर के प्रकाश की खोज के संबंध में सही है, वही भीतर के प्रकाश की खोज के संबंध में भी सही है।
जहां सुख मिले--जाना!
मैं यहां तुम्हें डराने को नहीं हूं। डरकर कभी कोई जागा? मैं तुम्हें घबड़ाता नहीं हूं। मैं तुमसे कहता हूं, जाओ! साहस से, हिम्मत से! होगा सुख तो एक कदम और तुमने प्रभु की तरफ लिया। नहीं होगा सुख, तो भी एक कदम प्रभु की ओर लिया। एक द्वार बंद हुआ! इस तरफ जाने में कोई सार नहीं। एक रास्ता गलत हुआ। सही रास्ते के करीब आने लगे।
हृदय की सुनो। तो अगर भक्ति, प्रेम और उत्सव की बात सुनकर तुम्हारे हृदय में कोई धुन बजती है, तुम्हारे हृदय की वीणा कंपित होने लगती है, तो वही तुम्हारा मार्ग है। फिर वैराग्य की बातों को बीच-बीच में मत डालना। क्योंकि फिर तुम सब विकृत कर दोगे। एक बार साफ हो गया कि प्रेम की चर्चा तुम्हें उमंग से भर देती है तो फिर तुम विरागियों की चर्चा की बात ही छोड़ देना। फिर वह रास्ता तुम्हारे लिए नहीं है। फिर उनकी बात तुम्हें झंझट में डाल देगी। प्रेमी की बात बड़ी अलग है।
इश्क हायल है तेरे मिलने में
हमसे ये पर्दा हटाया न गया।
विरागी कहता है कि प्रेम को हटा लो तो परमात्मा से मिल जाओ। प्रेमी कहता हैः इश्क हायल है तेरे मिलने में! लोग कहते हैं कि प्रेम के कारण हम तुझसे नहीं मिल रहे हैं; होगा यही सही। हमसे यह पर्दा हटाया न गया! लेकिन हम यह पर्दा न हटा सकेंगे। हम तो, अगर प्रेम के कारण ही तू चूक रहा है तो चूके चले जायेंगे; लेकिन यह प्रेम हमसे न हटाया जायेगा।
भक्त के लिए तो प्रेम ही परमात्मा है। ज्ञानी के लिए प्रेम बाधा है।
वह प्रेम को कहता है, राग! हटाओ! वैराग्य को जगाओ! तो ही सत्य मिलेगा।
प्रेमी और भक्त कहता है, पर्दे को नहीं हटाना, अपने को मिटा देना है।
प्रेम ही प्रेम रह जाये, तुम न बचो!
इश्क हायल है तेरे मिलने में
हमसे यह पर्दा हटाया न गया।
तुझको देखा तो सेर चश्म हुए
तुझको चाहा तो और चाह न की।
--आंखों की सारी भूख मिट गई तुझे देखते ही! तेरी झलक पाते ही! तुझको देखा तो सेर चश्म हुए
तुझको चाहा तो और चाह न की।

विरागी कहता है, सब चाह छोड़ो तो परमात्मा मिलेगा। प्रेमी कहता है, उसकी चाह आ गई तो सब चाह अपने से छूट जाती है; छोड़ने की झंझट प्रेमी को नहीं है। उसकी चाह काफी है।
तुझको देखा तो सेर चश्म हुए
तुझको चाहा तो और चाह न की।
फिर उसको चाहने के बाद कहीं कोई और चाह बचती है!
पर ये दोनों अलग-अलग मार्ग हैं। विरागी कहता है, सब चाह छोड़ो--इतना कि परमात्मा की चाह भी छूट जाये। वह भी एक रास्ता है। अचाह में झूब जाओ। परमात्मा तक की चाह न बचे--उतनी भी चाह की रेखा न रह जाये भीतर। परिपूर्ण अचाह में खड़े हो जाओ। जरा भी कंपन न रह जाये चाह का, वासना का। उसी घड़ी मिलन!
प्रेमी कहता है, उसकी चाह में ऐसे डूब जाओ कि तुम न बचो; तुम्हारी सारी जीवन-ऊर्जा बस उसकी चाहत, उसका प्रेम बन जाये। उसी घड़ी मिलन!
दोनों तरफ से मिलन हुआ है। दोनों में कौन ठीक और गलत, इस तरह कहने की बात ही नासमझी है। इतना ही देख लेना, तुम्हारा हृदय किसके साथ खिलता है! तन से तो सब भांति विलग तुम
लेकिन मन से दूर नहीं हो
जुड़े न पंडित, सजी न वेदी
वचन हुए न मंत्र उचारे
जनम-जनम को किंतु वधू यह
हाथ बिकी बेमोल तुम्हारे झूठे-सच्चे, कच्चे-पक्के
रिश्ते जितने दुनियाभर के
सबसे तुम मुक्त, प्रेम
के वृंदावन से दूर नहीं हो।
तन से तो सब भांति विलग तुम
लेकिन मन से दूर नहीं हो।
और सब नाते-रिश्ते होंगे संसार के, लेकिन भक्त कहता है, प्रेम का नाता संसार का नहीं है। प्रेम तो वृंदावन है। वह कोई नाता नहीं है। वह कोई बनने मिटनेवाली बात नहीं है। वह कोई संबंध नहीं है। वह तो एक आनंद की, अहोभाव की दशा है। वृंदावन है।
झूठे-सच्चे, कच्चे-पक्के
रिश्ते जितने दुनियाभर के
सबसे तुम मुक्त, प्रेम
के वृंदावन से दूर नहीं हो।
और सब होगा बाधा! प्रेम--और बाधा! भक्त को बाधा नहीं दिखाई पड़ती। भक्त
तो प्रेम से ही उसके पास पहुंचता है। प्रेम में डूबकर ही उसमें डूबता है। ये विरागी की और प्रेमी की अलग-अलग भाषाएं हैं। इनमें जो भाषा तुम्हारे हृदय में रम जाये; जिस भाषा की वर्षा में तुम्हारे भीतर के बीज फूटने लगें; जिस भाषा के संपर्क में तुम्हारा व्यक्तित्व निखार लेने लगे; रस जगे; गीत जगे; नृत्य उठे--तो फिर समझना कि हृदय साफ-साफ इशारा कर रहा है किस तरफ चलो। फिर और सारी चिंताएं छोड़ देना--किस घर में पैदा हुए, किस धर्म में पैदा हुए, कौन-सा सिखावन, कौन-सी शिक्षा दी गई, कौन-सा शास्त्र पकड़ाया गया, फिर सब गौण है। हृदय से परमात्मा ने बोल दिया कि तुम्हारे लिए जाने का रास्ता कौन है।
लेकिन ऐसा सभी को न होगा।
यहां कुछ हैं जिनको प्रेम की बात सुनकर बेचैनी शुरू हो जाती है, घबड़ाहट शुरू हो जाती है। विराग की बात सुनकर वह शांत बैठ जाते हैं, कि अब चलो ठीक बात हुई। वह भी गलत नहीं हैं। उनको जो रुचता है, उनको जो पचता है। वे शायद जीवन में काफी जले हैं। और जैसा दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीने लगता है; प्रेम ने शायद उन्हें काफी जलाया है। यद्यपि जो प्रेम उन्होंने अब तक जाना था, वह बिल्कुल ही क्षुद्र था, व्यर्थ था, नाममात्र को था। लेकिन उसने इतना जला दिया है कि अब तो वह परमात्मा की भक्ति की बात या

प्रेम की बात सुनकर भी चौंक जाते हैं। वे छाछ को भी फूंक-फूंककर पीते हैं। मगर ठीक, अगर विराग से उनके हृदय का भाव खुलता है, शांति मिलती है और एक सुख की दशा पैदा होती है, तो वही ठीक। उसी से वे चलें।
और जिस बात पर मैं जोर देना चाहता हूं, वह यह कि कभी भूलकर भी किसी को तुम अपनी भांति चलाने की चेष्टा मत करना। यह चेष्टा हम सबके मन में पैदा होती है। यह हमारे अहंकार का बड़ा गहरा हिस्सा है। हम दूसरे को अपनी प्रतिछवि में बनाना चाहते हैं। बाप अपने बेटे को ढालना चाहता है ठीक अपने जैसा। मां अपनी बेटी को ढालना चाहती है ठीक अपने जैसी। मित्र मित्र को ढालने में लग जाता है। हम सब इस चेष्टा में होते हैं कि अगर हमारा बस चले तो सारी दुनिया को हम अपनी प्रतिछवि में ढाल दें। इससे अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। इससे मैं तो हो जाता हूं आदर्श; और सभी हो जाते हैं मेरी छायाएं। इससे मैं तो हो जाता हूं सभी जीवन का मापदंड। इस भ्रांति से थोड़े सजग होना।
तुम्हें अपना सत्य खोजना है। और सभी सत्य निजी सत्य हैं। दूसरे पर थोपना नहीं है। तो न तो थोपना और न किसी को थोपने देना। अगर इन दो बातों से तुम बच गये--क्योंकि बड़ा खतरा यह है कि जो नहीं थोपते, वे दूसरों को थोप लेने देते हैं। जो दूसरे को नहीं थोपने देते, वे खुद दूसरों पर थोप देते हैं।
इस दुनिया में वस्तुतः समझपूर्वक जीना बड़ा कठिन है। समझ के दोनों तरफ नासमझी की अतियां हैं।
मैक्यावली ने कहा है, इसके पहले कि कोई तुम पर आक्रमण करे, तुम आक्रमण
कर देना। क्योंकि यही सुरक्षा का सर्वोत्तम उपाय है। तो यहां प्रत्येक व्यक्ति यही कोशिश कर रहा है कि इसके पहले कि कोई तुम्हारी गर्दन पकड़े, तुम पकड़ लो। इसके पहले कि तुम्हें कोई बदले, तुम बदल दो। इसके पहले कि तुम्हारी कोई परिभाषा करे, तुम परिभाषा कर दो।
तुमने देखा, पूरे जीवन हम एक-दूसरे को परिभाषित कर रहे हैं, हम हजार-हजार तरकीबों से एक-दूसरे की परिभाषा करते हैं। पति खड़ा है, कार में हार्न बजा रहा है, पत्नी देर लगाती है--वह यह घोषणा कर रही है देर लगाकर कि खड़े रहो; मालिक कौन है, जाहिर हो जाना चाहिए! वह पति को परिभाषा दे रही है। ध्यान रखना, जो जिसको प्रतीक्षा करवा सकता है, वह उसकी परिभाषा कर देता है। तुम दफ्तर में गये किसी से मिलने तो मैनेजर तुम्हें बिठा रखेगा थोड़ी देर, चाहे उसको कोई काम न हो। क्लर्क भी तुम्हें बड़ी देर बाद देखेगा, चाहे वह कुछ भी न कर रहा हो। वह वैसे ही अपने रजिस्टर उलटने लगेगा, क्योंकि वह तुम्हें परिभाषा देना चाहता है कि साफ हो जाना चाहिए कि यहां कौन मालिक है!
मैं तुमको प्रतीक्षा करवा सकता हूं, तो मैं मालिक हूं!
जो प्रतीक्षा करवा सकता है वह ऊपर है। तो पति भी सांझ को क्लब-घर में देर तक बैठा ताश खेलता रहता है, पत्नी को राह दिखवाता है कि घर बैठी रहो, करती रहो प्रतीक्षा खाने के लिए! जरा देर करके ही आयेगा। वह यह साफ बता देना चाहता है कि कौन मालिक है।
तुमने देखा, बड़े नेता सभा में आयें तो हमेशा देर से आयेंगे। बड़ा नेता,
और वक्त पर आ जाये! यह बात हो ही नहीं सकती। जितना बड़ा नेता, उतनी देर करके आयेगा। उतनी लोगों को प्रतीक्षा करवा देगा। उनको जाहिर करवा देगा कि तुम कौन हो, तुम्हें साफ हो जाना चाहिए।
जीवनभर हम एक-दूसरे को दबाने की चेष्टा करते हैं--जाने-अनजाने उपायों से। बाप बेटे को बदलना चाहता है। बदलने की चेष्टा में सिर्फ वह यह कहना चाहता है कि मालिक मैं हूं। बेटा भी बड़ा होकर इस बूढ़े बाप को बदलने की चेष्टा करेगा, क्योंकि तब बाप कमजोर होने लगेगा। तब बेटा इसको समझाने लगेगा कि क्या करना उचित है और क्या करना उचित नहीं है, कि तुम सठिया गये हो, कि तुम्हारी बुद्धि तुमने खो दी, कि तुम्हें इस दुनिया का पता नहीं है जो आज है; तुम जिस दुनिया की बातें कर रहे हो, वह गई-गुजरी हो चुकी; अब तुम मेरी सुनो!

इस जगत में इन दोनों अतियों से बचना बड़ा कठिन है। मगर जो बच जाये वही साधक है। न तो तुम दूसरे को दबाने की कोशिश करना और न किसी को अवसर देना कि तुम्हें दबा दे। एक बात तुम साफ कर देना कि चाहे कोई भी कीमत हो, कितनी ही जोखिम हो, मैं अपने हृदय की मानकर चलूंगा। चाहे सब खोना पड़े! इसी को मैं संन्यास की भाव-दशा कहता हूं।
संन्यास कोई बाह्य कृत्य नहीं है--एक भीतरी अंतर्घोषणा है कि अब से मैं अपने हृदय की मानकर चलूंगा, चाहे इसके लिए मुझे सब गंवाना पड़े; चाहे इसके लिए मुझे दीन-दरिद्र हो जाना पड़े; चाहे राह का भिखारी हो जाना पड़े। राह के भिखारी होने की जरूरत नहीं है; लेकिन अगर यह भी होना पड़े तो मेरी तैयारी है; लेकिन अब एक बात मैंने तय कर ली कि अपने हृदय के अतिरिक्त और किसी की मानकर न चलूंगा। अब मेरा हृदय ही मेरा वेद होगा। और मेरा हृदय ही मेरी भगवदगीता होगी। हृदय ही मेरा कुरान और मेरी बाइबिल होगी।
और तुम चकित होओगे कि जिस दिन तुम हृदय की सुनने लगोगे, उस दिन तुम्हारे जीवन में गति आ जायेगी। कुछ अड़चनें आयेंगी समाज की तरफ से, दूसरों की तरफ से; क्योंकि कल तक जिनकी तुमने मानी थी, अचानक वे इतने जल्दी राजी न हो जायेंगे। वे इतनी जल्दी स्वीकार न कर लेंगे। लेकिन भीतर तुम पाओगेः उमंग आ गई! तरंग आ गई! एक ज्वार आ गया शक्ति का! भीतर तुम पाओगे कि अब तुम दीन-दरिद्र नहीं हो; तुम सम्राट हो गये।
तो जो तुम्हें रुचे। विराग तो विराग! उससे भी लोग परमात्मा तक पहुंचे हैं। भक्ति तो भक्ति!

दूसरा प्रश्नः मेरे भीतर जैसे स्तब्धता, सन्नाटा-सा लग रहा है। खाली- खाली, शून्यता जैसे छा गई हो। और साथ ही अच्छे-बुरे विचारों का आक्रमण भी हावी होता रहता है। मैं क्या करूं? मैं बावरी-सी हो गई हूं। मैं अपने को बहुत असहाय, अकेली और असुरक्षित पा रही हूं। भय लगता है।

"सरोज" का प्रश्न है।
ऐसा होता है। ऐसा होना स्वाभाविक है। क्योंकि जैसे ही हम भीतर जाते हैं, हम अकेले हो जाते हैं। इसीलिए तो लोग भीतर जाने से डरते हैं।
बाहर हैं और लोग, भीतर तो कोई भी नहीं। भीतर तो तुम हो और बस तुम हो। बाहर अनंत लोग हैं, चहल-पहल है। भीतर तो सन्नाटा है। बाहर बहुत भरावट है, भीतर तो शून्य है। और जन्मों-जन्मों तक हम बाहर जीए, संबंधों में जीए, औरों के साथ जीए, भीड़-बाजार, घर-गृहस्थी--हजार व्यस्तताएं!
तो जब भीतर चलना शुरू करोगे तो अचानक अनुभव में आना शुरू हो गया, वह सब
तो दूर छूट गया और इस भीतर तो तुम्हारा निकटतम प्रियजन भी नहीं आ सकता। यह तो तुम्हारा नितांत एकांत है। यह तो इतना निजी है, इतना प्राइवेट है कि तुम अपने प्रेमी को भी इसमें निमंत्रित न कर सकोगे। यहां तो बस तुम हो और तुम हो।
तो शुरू-शुरू में बड़ी निस्तब्धता, सन्नाटा, सूनापन नकारात्मक मालूम होगा।
राह देखी नहीं और दूर है मंजिल मेरी
कोई साकी नहीं, मैं हूं, मेरी तन्हाई है।
घबड़ाहट भी होगी; क्योंकि राह देखी नहीं, मंजिल का कोई पक्का पता नहीं कहां है, कहां जा रहे हैं, क्या हो रहा है। मील के पत्थर भी नहीं हैं भीतर। कौन लगायेगा मील का पत्थर? कोई नक्शा भी नहीं है भीतर का। कौन देगा नक्शा? वहां कोई हाथ लेकर चलानेवाला भी नहीं है। तो अचानक आदमी असहाय मालूम होता है।
इस असहाय अवस्था से अगर गुजर गये, अगर इस असहाय अवस्था को शांति से पार कर लिया, तो तुम्हारे जीवन में पहली दफा आत्मबल का जन्म होगा। लेकिन उसके पहले असहाय अवस्था से गुजर जाना जरूरी है। जब झूठी चीजें हाथ से छूटती हैं, तो हाथ खाली हो जाते हैं। हाथों का खाली हो जाना सत्य के उतरने के लिए अत्यंत जरूरी है। लेकिन व्यर्थ के जाने और सत्य के आने के बीच में

थोड़ा अंतराल है। उस अंतराल में बड़ी पीड़ा होती है। उस अंतराल को जो पार नहीं कर पाता, वह घबड़ाकर फिर बाहर निकल आता है।
इसीलिए "सरोज" ने पूछा हैः "एक तरफ खाली-खालीपन और शून्यता छा गई है और दूसरी तरफ अच्छे-बुरे विचारों का आक्रमण भी होता रहता है।"
वह आक्रमण इसीलिए हो रहा है। वह आक्रमण हो रहा है, ऐसा नहीं; बल्कि तुम चेष्टा कर-करके अच्छे-बुरे विचारों को पकड़ रही हो, ताकि भीतर जो निस्तब्धता है वह एकदम भयावनी न हो जाये। कुछ तो सहारा रहे। विचार ही सही, कुछ तो तरंगें उठती रहें, तो कुछ व्यस्तता बनी रहे।
लोग खाली होने की बजाय दुखी होना भी पसंद करते हैं, क्योंकि कम से कम दुख तो है! कुछ तो है हाथ में! हाथ बिल्कुल खाली तो नहीं। कंकड़-पत्थर सही, न हुए हीरे-जवाहरात! लेकिन कोई यह तो नहीं कह सकता कि कुछ भी नहीं है।
अधिक लोग दुख को भी नहीं छोड़ते, क्योंकि उनको डर लगता है--छोड़ दिया इतने दिनों का संग-साथ, तो अकेले हो जायेंगे।
तुमने कभी ख्याल किया, बहुत दिन बीमार रहने के बाद अगर तुम बिस्तर से उठो तो बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती हैः अब कहां जायें! अब तो बिस्तर पर होना जीवन की शैली हो गयी थी। अगर दो-चार साल बिस्तर पर रह गये, तो जो आदमी दो- चार साल बिस्तर पर रह जाता है, फिर वह उठता ही नहीं; इसलिए नहीं कि बीमारी ठीक नहीं होती, बीमारी ठीक भी हो जाये तो अब वह बीमारी को पकड़ लेता है। चिकित्सक इस घटना से भलीभांति परिचित हैं कि अगर बीमारी ज्यादा दिन रह जाए तो बीमार को फिर ठीक करना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि उसकी बीमारी आदत का हिस्सा हो जाती है। अब बीमारी को वह अपने जीवन के ढंग में समा लेता है। अब इस ढंग को छोड़ने में अड़चन होगी।
अगर तुम एक दुख के आदी हो गये हो तो तुम उस दुख को सम्हाले रहोगे।
इसलिए अकसर मैं देखता हूं कि लोग दुख की सीमाएं और स्थितियों को भी छोड़ते नहीं। अगर किसी पत्नी से तुम्हारा जीवन सतत कलह में गुजर रहा है तो भी तुम अलग नहीं होते। या किसी पति के साथ जीवन एक नारकीय स्थिति बन गई है, तो भी अलग नहीं होते। क्यों? हजार बहाने तुम खोजते हो, लेकिन वह सब बहाने हैं। मौलिक बात यह है कि अब इस दुख की भी आदत हो गई है।
और एक बड़ा अनुभव पश्चिम में आना शुरू हुआ है, जहां कि लोग काफी पति- पत्नियां तीव्रता से बदलते हैं। एक अनुभव आना शुरू हुआ है कि जो आदमी एक पत्नी को छोड़कर दूसरी पत्नी को खोजता है, वह फिर करीब-करीब वैसी ही स्त्री को खोज लेता है जैसी उसने छोड़ी। उसी तरह की कर्कशा या उसी तरह की उपद्रवी! छोड़ा नहीं है अभी एक को, और वह दूसरी को फिर वैसा का वैसा खोज लेता है! क्या कारण होगा? अब तो उसको उसी तरह की स्त्री में रस आने लगा। तो अब वह फिर खोज लेता है। उसकी चाह का ढंग रुग्ण हो गया। अब वह गलत की तरफ उत्सुक हो जाता है। वह फिर वैसी ही व्यक्तित्ववाली स्त्री को खोज लायेगा, जो फिर कहानी को दोहरायेगी। फिर त्याग करेगा।
एक आदमी के बाबत मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन किया। उसने आठ तलाक किये
और हर बार वैसी ही पत्नी खोज लाया।
आदमी तो वही है--खोजनेवाला वही है--तो फिर वही खोज लायेगा।
तुम जरा ख्याल करना अपने जीवन में, तुमने बहुत-से दुख पकड़ तो नहीं रखे हैं जो कि जाना चाहते हैं, लेकिन तुम नहीं जाने दे रहे हो!
तो जब व्यक्ति को सन्नाटा होगा तो वह पुराने विचारों को आमंत्रित करेगा, बुलायेगा। वह आक्रमण नहीं है, तुम्हारा बुलावा है। क्योंकि उस भांति थोड़ी देर को भीतर की रिक्तता भर जाती है। उथल-पुथल मच जाती है। विचार है, क्रोध है, झगड़ा है, कोई सपना है, कोई योजना है--उतनी देर को तुम अपने भीतर के आकाश को भर लेते हो। उतनी देर को शून्य भूल जाता है। शून्य में रस लो, तो धीरे-धीरे ये विचार समाप्त हो जायेंगे। यह शून्य बड़ा महिमाशाली है। शून्य को ही तो ध्यान कहा है। सौभाग्य से मिलता है। अब मिल गया है तो इसे खराब मत करो। अब तो इस शून्य में डूबो। यद्यपि प्राथमिक चरण पर डूबना ऐसा ही लगेगा, जैसा मरे, मौत हुई।
और एक अर्थ में ठीक भी है, तुम तो मरोगे ही। तुम जैसे अब तक रहे हो, इस शून्य में डूबोगे, मिट जाओगे। नये का जन्म होगा, आविर्भाव होगा।

"क्या करूं? मैं बावरी-सी हो गई हूं।"
पागलपन जैसा ही लगेगा। भीतर जाओ तो शून्यता; बाहर आओ तो व्यर्थ के विचारों का ऊहापोह है। बाहर आओ तो कोई सार नहीं है और भीतर जाओ तो घबड़ाहट! एक अनंत शून्य मुंह-बाए खड़ा है। तो पागलपन मालूम पड़ेगा। यह पागलपन तभी तक मालूम होगा जब तक शून्य से रस नहीं बैठता।
शून्य में रस लो, पहचान बनाओ! शून्य को गुनगुनाओ। शून्य को नाचो! जब शून्य आ जाये तो अहोभाव अनुभव करो। परमात्मा को धन्यवाद दो। यह उसकी अनुकंपा है।
शून्य इस जगत में परमात्मा की सबसे बड़ी देन है, प्रसाद है। थोड़े-से सौभाग्यशाली लोगों को मिलता है। और जिनको मिलता है, वे भी सभी सम्हाल नहीं पाते। बहुत-से तो उसे नष्ट कर देते हैं। क्योंकि वह देन इतनी बड़ी है कि तुम्हारी पात्रता छोटी पड़ जाती है।
"मैं अपने को बहुत असहाय, अकेली, असुरक्षित पा रही हूं... ।"
कोई हर्जा नहीं। मन कहेगा, कोई सुरक्षा खोज लो। मन कहेगा, किसी तरह किसी को अपने इस एकांत में ले आओ। वह अगर भूल की तो शून्य की शुद्धता नष्ट हो जायेगी। फिर संसार निर्मित हो जायेगा। ऐसे ही तो हम बहुत बार वापिस कोल्हू के बैल बन जाते हैं।
अब यह एक खिड़की खुली है, इसे बंद मत कर देना। असहाय मालूम होते हो, असहाय सही। स्वीकार करो! असुरक्षित मालूम होते हो, असुरक्षित सही। स्वीकार करो! यह जो तथ्य सामने प्रगट हो रहा है, इसे इनकार मत करो और बदलने की चेष्टा मत करो। इसे भरपूर नजर देखो, अहोभाव से दखो, कृतज्ञता से देखो। कहो कि प्रभु ने यही चाहा कि शून्य होना है, जरूर शून्य से ही जन्म होता होगा! यह मेरी राह शून्य के मंदिर से ही गुजरती है, तो इससे गुजर जाना है। जल्दी ही इस शून्य का चेहरा बदलना शुरू हो जायेगा। अगर तुमने इसे स्वीकार किया तो इस शून्य में तुम्हें सौंदर्य दिखाई पड़ने लगेगा। जिसे हम स्वीकार करते हैं, उसमें सौंदर्य दिखाई पड़ने लगता है। इसलिए तो अपनी मां किसी को असुंदर नहीं मालूम होती। अपना बेटा किसी को असुंदर नहीं मालूम होता। जिसे हम स्वीकार करते हैं, वहां सौंदर्य का आविर्भाव हो जाता है। सौंदर्य हमारे स्वीकार से पैदा होता है।
सौंदर्य कहीं बाहर कोई गुण नहीं है--हमारे स्वीकार की छाया है। स्वीकार करो--और सौंदर्य पूर्ण बनने लगेगा। स्वीकार करो--और सौंदर्य में बड़ा आनंद आने लगेगा। स्वीकार करो--और शून्य शांति, और परम शांति का धाम बन जायेगा। अगर अस्वीकार किया तो दौड़कर बाहर जाने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। और बाहर से ही तो थककर भीतर आ रहे थे! फिर बड़ी विक्षिप्तता पैदा होगी। शून्य परमात्मा का पहला अनुभव है। पूर्ण परमात्मा का अंतिम अनुभव है। शून्य की तरह परमात्मा आता है; पूर्ण की तरह विराजमान होता है। शून्य की तरह आता है, क्योंकि हमारा मिटना जरूरी है। शून्य की तरह आता है, क्योंकि हम सिर्फ कूड़ा-कर्कट का ढेर हैं। हमें आग देना जरूरी है, ताकि हम जल जायें और वही बचे जो कुंदन है। सिर्फ शुद्ध स्वर्ण बचे और कचरा जल जाये।
तो जब सुनार सोने को आग में डालता है तो सोना भी घबड़ाता होगा, चिंतित होता होगा, बच जाना चाहता होगा, अंगीठी के बाहर आ जाना चाहता होगा। लेकिन उसे पता नहीं कि सुनार की आकांक्षा क्या है। सुनार सोने को नहीं जलाना चाहता। और सुनार भलीभांति जानता है कि सोना जलता नहीं। जो जल जाये वह सोना नहीं है। वह डाल ही रहा है आग में इसलिए कि जो सोना नहीं है, उससे सोना अलग हो जाये।
शून्य आग है। और परमात्मा उन्हीं को डालता है जिन पर उसकी अनुकंपा है।
पात्रता से ही शून्य उत्पन्न होता है। घबड़ाना मत! छलांग लगाकर अंगीठी
के बाहर मत गिर जाना। नहीं तो पहले से भी ज्यादा कूड़ा-कर्कट संगृहीत हो जायेगा। स्वीकार करना।
भीतर की यात्रा पर शून्य मिला--यह पहली खबर मिली कि तुम पात्र होने लगे। कम से कम तुम इतने पात्र हुए कि परमात्मा तुम्हें आग में डाले। बड़ी

जलन होगी, बड़ी पीड़ा होगी। उस पीड़ा के बिना कोई भी जन्मा नहीं है। उस पीड़ा के बिना किसी को नये जन्म का आविर्भाव नहीं हुआ है।
हुए होश गुम तेरे आने से पहले
हमीं खो गये तुझको पाने से पहले
हुए तुझ बिन बसर क्या बताऊं
किसे होश था तेरे आने से पहले।
हुए होश गुम तेरे आने से पहले।
उसके आने के पहले तुम्हारा होश भी खो जायेगा, तुम भी खो जाओगे।
क्योंकि तुमने जिसे अब तक समझा है "मैं", वह सिर्फ कूड़ा-कर्कट है। वही तो बाधा है।
हमीं खो गये तुमको पाने से पहले!
एक बड़ी महत्वपूर्ण बात याद रखनाः आदमी कभी परमात्मा से मिलता नहीं।
जब तक आदमी है तब तक परमात्मा नहीं। और जब परमात्मा प्रगट होता है, आदमी खो चुका होता है। आदमी तो बीमारी है। मिट जाने पर उस परम धन्यता का आविर्भाव होता है। तुम जब खाली कर देते हो सिंहासन, तभी परमात्मा उस पर विराज पाता है। तुम जब तक बैठे हो, तब तक विराज नहीं पाता।
ये पंक्तियां बड़ी मधुर हैंः
हुए होश गुम तेरे आने से पहले
हमीं खो गये तुझको पाने से पहले
हुए तुझ बिन बसर क्या बताऊं
--दिन तेरे आने के पहले कैसे बीते, यह भी कैसे बताऊं!
किसे होश था तेरे आने से पहले!
न तो तेरे आने के पहले होश था, क्योंकि हम बेहोश थे संसार में; न तेरे आने के बाद होश रहा, क्योंकि हम बेहोश हुए तुझमें।
तो यह जो इन दोनों बेहोशियों के बीच--संसार की बेहोशी और परमात्मा की बेहोशी; संसार की शराब और परमात्मा की शराब--इन दोनों मधुशालाओं के बीच जो थोड़ी-सी यात्रा है वहीं थोड़ा-सा होश रहता है। लोग या तो धन में खोये हैं, पद में खोये हैं, मद से भरे हैं; और या फिर लोग परमात्मा में खो जाते हैं। दोनों के बीच में, दो मधुशालाओं के बीच में जो थोड़ा-सा फासला है, वहीं थोड़ा- सा होश रहता है।
"सरोज" अभी उसी यात्रा पर है--दो मधुशालाओं के बीच में। अगर भीतर गई तो
भी होश खो जायेंगे। अगर घबड़ाकर बाहर आ गई तो फिर होश खो जायेंगे। और जब दो मधुशालाओं में ही चुनना हो, जब दो शराबों में ही चुनना हो तो फिर परमात्मा की ही शराब चुन लेना। संसार की तो बहुत चखी, बहुत स्वाद लिया--कुछ पाया नहीं। अब इस अपरिचित, अनजान का भी एक स्वाद ले लें। हिम्मत करना! बावलापन तो उठेगा।
बंगाल में संतों का एक संप्रदाय है, उसका नाम ही "बाउल" है--बावरे, पागल! बड़े अदभुत संत हुए बाउल। नाचते हैं--आनंद-मग्न! उस भीतर की शराब में मस्त, मदहोश! धीरे-धीरे उनका नाम ही "बावरा" हो गया। लेकिन जिसे तुम समझदारी कहते हो, उससे वह लाख गुना कीमती है।
तुम्हारी समझदारी भी हाथ में क्या लाती है? कुछ ठीकरे इकट्ठे हो जाते हैं, जो मौत छीन लेती है। कुछ नाम-धाम हो जाता है, जो तुम्हारे जाते ही पोंछ दिया जाता है, दूसरों के लिए जगह बनानी पड़ती है।
दुनिया का होश है न कुछ अपनी खबर मुझे
बेखुद बना दिया है यूं तेरे जमाल ने।
उसमें डूबो! बेखुदी खुदा को पाने का उपाय है। मिटना--होने की एकमात्र संभावना।
यह शून्य डरायेगा, घबड़ायेगा। जैसे कोई पक्षी अब तक घोंसले में रहा हो
और आज अचानक खुले आकाश मेंः घबड़ायेगा! चिंतित होगा, बेचैन होगा! लौट-लौट पड़ेगा मन कि चल पड़ो अपने घोंसले की तरफ, कहां इन तूफानों में उलझने लगे? कहां ये हवाएं और आकाश और बादल, और कहां ये सूरज और ये चांद-तारे! और यह कितना विराट है! भागो! अपने घोंसले में छिप जाओ। ठीक वैसी दशा है। मन बहुत करेगा घोंसले में उतर आने का।

लेकिन अब लौटना मत। अब उसको पुकारा है तो पुकारे ही चले जाना। और अब सुख आये कि दुख, पीड़ा हो कि जलन--अंगीकार कर लेना, क्योंकि हमें पता नहीं है शायद यही हमारे जीवन-निर्माण के लिए जरूरी है।
छैनी से जब कोई पत्थर को तोड़ने लगता है, तो पत्थर भी तो रोता होगा। लेकिन छैनी से टूट-टूटकर ही पत्थर प्रतिमा बनता है। जो राह के किनारे पड़ा था, वह मंदिर के अंतर्गर्भ में विराजमान हो जाता है। जिसको लोग सिर्फ पैर की ठोकरें मारकर निकल जाते थे, उसी के चरणों में लोग आकर सिर झुकाने लगते हैं, फूल चढ़ाने लगते हैं।
कसम तुम्हारी बहुत गम उठा चुका हूं मैं
गलत था दावा-ए-सब्रो-शकेब, आ जाओ
करारे-खातिरे बेताब-थक गया हूं मैं।
कसम तुम्हारी बहुत गम उठा चुका हूं मैं!
चाहे कितनी ही पीड़ा हो, जाना उसी की तरफ!
कसम तुम्हारी बहुत गम उठा चुका हूं मैं!
कहना भी हो, शिकायत भी करनी हो, तो उसी से करना। बाहर मत लौटना। यह तो कसम खा लेना कि अब बाहर नहीं लौटना है। क्योंकि बाहर को देख तो चुके बहुत, पाया क्या? अब लौटकर भी क्या पायेंगे?
कसम तुम्हारी बहुत गम उठा चुका हूं मैं
गलत था दावा-ए-सब्रो-शकेब...
और मैंने जो धैर्य और सहनशक्ति के बहुत दावे किये थे, वह सब गलत थे। तुम उन पर ज्यादा अब भरोसा मत करो, आ जाओ!
आदमी ने अपने अहंकार में बहुत दफा सोचा है कि मैं सहनशक्ति रखता हूं, शांति रखता हूं, धैर्य रखता हूं, मेरा धैर्य अडिग है!
गलत था दावा-ए-सब्रो-शकेब...
--वे सब दावे जो मैंने किये थे--आत्मबल के, धैर्य के, सहनशक्ति के--सब गलत थे। क्षमा करो मुझे!
गलत था दावा-ए-सब्रो-शकेब, आ जाओ
करारे-खातिरे-बेताब थक गया हूं मैं।
और अब तो मैं थक गया हूं।
"सरोज" पूछती है कि असहाय, बेसहारा... ।
तो अब बाहर मत लौटना। अब उसी से कहना कि थक गई हूं बहुत और अब मुझसे नहीं सहा जाता। लेकिन भीतर की तरफ से आंख मत हटाना। कठिन होंगे ये क्षण।
लेकिन जो गुजर जाता है इन क्षणों से, वह एक बिल्कुल नये अभिनव जीवन को उपलब्ध हो जाता है। ये क्षण क्रांति के क्षण हैं।
सौ में से निन्यानबे लोग तो कभी इस दशा को पहुंचते नहीं। फिर जो सौ लोग पहुंचते हैं उनमें से निन्यानबे बाहर वापस लौट आते हैं। इसलिए शास्त्र कहते हैं, बड़ा दुर्गम है मार्ग। पहुंच-पहुंचकर छूट जाता है। हाथ में आते-आते मंजिल हजारों कोस के फासले पर हो जाती है।

तीसरा प्रश्नः आप महावीर की अहिंसा पर बोलते हैं तो प्रेम जोड़ देते हैं; बुद्ध के शून्य पर बोलते हैं तो प्रेम जोड़ देते हैं। आप कुछ भी बोलते हैं तो प्रेम उसमें अनिवार्यतः जोड़ देते हैं। क्या हम संन्यासियों में प्रेम का अत्यंत अभाव देखकर ही आप प्रेम का पुनः पुनः स्मरण कराते हैं। कृपाकर कहें।

जोड़ता नहीं, उघाड़ता हूं। अहिंसा नाम की मंजूषा में प्रेम का ही धन छिपा है। खोलता हूं मंजूषा को। तुमसे कहता हूं, इसके भीतर तो देखो! यह मंजूषा बाहर से भी बड़ी सुंदर है! बड़ी नक्काशी है इस पर! बड़े कारीगरों ने मेहनत की है! लेकिन मंजूषा कितनी ही सुंदर हो, मंजूषा है; भीतर तो देखो! अहिंसा तो शब्द है; सार तो प्रेम है! और अगर सार मर जाये तो फिर अहिंसा
पर तुम कितनी ही नक्काशी करते रहो, फिर मंजूषा को तुम ढोते रहो सदियों- सदियों तक--उससे जीवन, उससे अमृत, उससे आनंद का आविर्भाव न होगा। फिर

अहिंसा तार्किकों के हाथ में पड़ जायेगी। फिर वे शब्द की ही बाल की खाल निकालते रहेंगे।
महावीर ने अहिंसा शब्द का उपयोग किया प्रेम के लिए। मैं कहता हूं कि अहिंसा को हटाओ और भीतर झांककर देखो। खोलो इस मंजूषा को!
जोड़ता नहीं हूं, उघाड़ता हूं।
अहिंसा हो ही कैसे सकती है बिना प्रेम के? दूसरे को दुख न दो--यह हो ही कैसे सकता है जब तक कि दूसरे के प्रति प्रेम का आविर्भाव न हुआ हो? और अगर तुमने इसे नियम और औपचारिक व्यवस्था की तरह मान लिया कि दूसरे को दुख नहीं देना है, क्योंकि दूसरे को दुख देने से नर्क मिलता है--प्रेम के कारण नहीं, भय के कारण दूसरे को दुख नहीं देना है--तो तुम्हारी अहिंसा में बहुत अहिंसा न होगी। तुम्हारी अहिंसा में भी हिंसा प्रगट होगी। तुम्हारी अहिंसा में फिर प्रेम के फूल न खिलेंगे। तुम्हारी अहिंसा निर्जीव होगी। ऐसा हुआ है, जैनों की अहिंसा निर्जीव हो गई है। उसमें से प्राण तो खो
ही गये हैं, लाश रह गई है। हां, लाश को भी ठीक से रासायनिक द्रव्य लगाकर रखो तो सुंदर मालूम हो सकती है। लेकिन लाश लाश है। सुंदरतम व्यक्ति की भी लाश लाश है। प्राण ही खो गये! प्राण तो विधायक तत्व है।
प्रेम विधायक तत्व है। प्रेम का अर्थ हैः कुछ तुम्हारे भीतर है।
अहिंसा का तो कुल इतना ही अर्थ है कि दूसरे के साथ बुरा मत करना।
और यह मैं तुमसे कहना चाहता हूंः जब तक तुम दूसरे के साथ भला करने में
न लग जाओ, तुम बुरा करने से न बच सकोगे। तुम कुछ तो करोगे। जीवन कृत्य है, कर्म है। अगर मैं तुम्हारे रास्ते पर फूल न बिछाऊंगा तो मैं कांटे बिछाऊंगा। और ऐसा आदमी तुम न पाओगे जो कहे कि मैं सिर्फ कांटे नहीं बिछाता तुम्हारे रास्ते पर, फूल से मुझे क्या लेना-देना। तुम पाओगे कि यह आदमी या तो इतना सिकुड़ जायेगा, जैसे जैन मुनि सिकुड़ गये हैं कि फिर यह डरने लगेगा जीवन में उतरने से; क्योंकि उतरा कि कुछ कृत्य हुआ, कृत्य हुआ तो या तो कांटे बिछाओ या फूल बिछाओ। और इसकी सारी शिक्षण की व्यवस्था यह हो गईः कांटे मत बिछाना। फूल बिछाने की तो इसने हिम्मत खो दी। फूल बिछाने का तो ख्याल ही छोड़ दिया। कांटे नहीं बिछाना है!
तुम अगर किसी व्यक्ति की बीमारियां भर अलग करना चाहते हो और उसके जीवन में स्वास्थ्य की आकांक्षा नहीं करते तो तुम उसे स्वास्थ्य न दे पाओगे और बीमारियां भी अलग न कर पाओगे। क्योंकि बीमारी का अलग होना और उसके भीतर स्वास्थ्य का जन्म होना, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
दूसरे को दुख न दूं, यह गौण बात है। दूसरे को मेरे जीवन से सुख मिले--यह मूल बात है।
प्रेम का इतना ही अर्थ है कि तुम दूसरे की प्रसन्नता में प्रसन्न होने लगे। क्या है प्रेम का अर्थ? तुम कहते हो, मुझे अपनी पत्नी से प्रेम है या बेटे से प्रेम है या मित्र से प्रेम है--क्या मतलब है? इतना ही मतलब है कि जब तुम्हारा बेटा प्रसन्न होता है, तब तुम प्रसन्न होते हो। जब दूसरे की प्रसन्नता तुम्हें प्रसन्न करने लगती है, तो प्रेम। और जब दूसरे की प्रसन्नता तुम्हें अप्रसन्न करने लगती है, तो घृणा। जब दूसरे की अप्रसन्नता तुम्हें प्रसन्न करने लगती है तो क्रोध, घृणा, वैमनस्य, शत्रुता, हिंसा। और जब दूसरे की प्रफुल्लता तुम्हें छूने लगती है और प्रसन्न करने लगती है, तो प्रेम।
अहिंसा का मेरे लिए अर्थ है कि तुम्हें सबकी प्रसन्नता प्रसन्न करने लगे। तो तुम्हारे ऊपर कितनी विराट वर्षा न हो जायेगी! धर्म-मेघ-समाधि! तुम्हारे ऊपर धर्म के मेघ बरस उठेंगे। सब तरफ से किसी की भी प्रसन्नता तुम्हें प्रसन्न करने लगे! एक वृक्ष में फूल खिले और तुम प्रसन्न हो जाओ! सुबह सूरज ऊगे और तुम प्रसन्न हो जाओ! एक बच्चा मुस्कुराये और तुम प्रसन्न हो जाओ! यहां कहीं भी मुस्कुराहट हो और तुम्हारे भीतर भी आनंद प्रविष्ट हो जाये! तो सारा जगत तुम्हें प्रसन्न करने लगेगा। ऐसी प्रसन्न दशा का नाम ही संन्यास है।
और, अगर हर एक की प्रसन्नता तुम्हें दुखी करती है, जैसा कि संसार में होता है--उसी दुख का नाम संसार है। तुम किसी को हंसते नहीं देख सकते। हंसते

देखते ही ईर्ष्या पैदा होती है। तुम किसी का बड़ा मकान बनते नहीं देख सकते। बड़ा मकान बनते ही तुम्हारे भीतर अप्रसन्नता पैदा होती है--स्पर्धा, प्रतियोगिता, हिंसा, ईर्ष्या! तुम अगर दूसरे की हंसी में हंसते भी हो तो थोथी हंसी हंसते हो, ऊपर-ऊपर हंसते हो, लोकचार, उपचार। सामाजिक शिष्टाचार है।
"अहिंसा" शब्द ने बड़ा खतरा किया है। वह नकारात्मक है। मैं उसके भीतर छिपे हुए अकारात्मक विधायक प्रेम को उघाड़ना चाहता हूं। जोड़ता नहीं हूं, उघाड़ रहा हूं।
बुद्ध ने जिसे शून्य कहा है, निर्वाण कहा है; कहा है कि तुम मिट जाओ; जब तुम मिट जाते हो तो तुम्हारे भीतर जो बचता है, वही प्रेम है। जितना अहंकार होगा उतना ही प्रेम कम होगा। जब कोई अहंकार नहीं रह जाता तो प्रेम ही प्रेम, प्रेम का सागर है!
और, इसे भी स्मरण रखना कि जब मैं बुद्ध पर बोलता हूं तो अपने पर ही बोलूंगा। बुद्ध तो खूंटी हो सकते हैं ज्यादा से ज्यादा। महावीर पर बोलता हूं तो महावीर खूंटी हो सकते हैं; टांगूंगा तो मैं अपने को ही, और कोई उपाय नहीं है। और कोई उपाय हो भी नहीं सकता। तो जब मैं महावीर पर बोल रहा हूं तो तुम यह मत समझ लेना कि मैं सिर्फ महावीर पर बोल रहा हूं। मैं कोई यंत्र नहीं हूं। मेरी अपनी दृष्टि है। तो महावीर के शब्द हाथ में लूंगा, लेकिन रंग तो मेरा ही उन पर पड़ेगा। उनके शास्त्र को उलटूंगा-पलटूंगा, लेकिन अर्थ तो मेरा होगा।
इसे तुम कभी भूलना मत। मैं कोई उनकी व्याख्या नहीं कर रहा हूं। उनके शब्द प्यारे हैं, पुनरुज्जीवित करने जैसे हैं। उन पर धूल जम गई बहुत, उनकी धूल झाड़ देने जैसी है। लेकिन जो मैं तुमसे कह रहा हूं, महावीर तो उसमें बहाना हैं; कह तो मैं तुमसे वही रहा हूं जो मैं कह सकता हूं।
ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है कि अहिंसा का मूल प्राण प्रेम है। ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है कि जब व्यक्ति निर्वाण को उपलब्ध होता है, सब भांति अहंकार-शून्य हो जाता है, तब जो शेष रह जाता है, वही प्रेम का विराट आकाश है। लेकिन यह मेरी दृष्टि है। और अगर मुझे चुनना हो महावीर में और अपने में, तो मैं अपने को चुनता हूं, महावीर को नहीं चुनता। और मैं तुमसे भी यही कहता हूं, तुम्हें अगर चुनना हो मुझमें और अपने में तो अपने को चुनना, मेरी चिंता मत करना। क्योंकि आत्यंतिक चुनाव तो स्वयं का है।
प्रेम, मेरे लिए धर्म का सार है। और मेरे देखे धर्म नष्ट हुआ, सड़ गया... जहां-जहां से प्रेम अलग हो गया धर्म से, वहीं-वहीं धर्म लाश हो गया।
तुम भी थोड़ा सोचो, तुम्हारे जीवन में जब प्रेम न रह जाये, तो तुम जिंदा लाश होओगे! जब तक प्रेम है तभी तक धड़कन है। चाहे उस प्रेम का कोई भी रूप हो, चाहे वह कामवासना हो और चाहे प्रभु-वासना हो; चाहे धन का हो, चाहे धर्म का हो; चाहे देह का हो, चाहे आत्मा का हो; क्षुद्र से क्षुद्र प्रेम हो या विराट से विराट प्रेम हो--लेकिन प्रेम के बिना तुम एकदम खाली हो जाओगे। अचानक तुम पाओगे तुम जी रहे हो, लेकिन जीवन बचा नहीं। निकल गया! पक्षी उड़ चुका है, पिंजड़ा पड़ा रह गया है।
निराले हैं अंदाज दुनिया से अपने
कि तकलीद को खुदकुशी जानते हैं
कोई कैद समझे मगर हम तो ए दिल
मुहब्बत को आजादगी जानते हैं।
निराले हैं अदांज दुनिया से अपने
कि तकलीद को खुदकुशी जानते हैं।
दूसरे के पीछे जो अंधा होकर चल रहा है वह आत्मघात कर रहा है।
कि तकलीद को खुदकुशी जानते हैं
कोई कैद समझे मगर हम तो ऐ दिल
मुहब्बत को आजादगी जानते हैं।
कोई कहता हो कि कैद है... । अगर प्रेम कैद है तो वह प्रेम प्रेम ही नहीं। कहीं कुछ भूल हो रही है। तुमने कुछ को कुछ समझ रखा है। क्योंकि प्रेम ने तो सदा मुक्त किया। प्रेम ने तो इतना मुक्त किया कि तुम्हारा

परमात्मा पूरा-पूरा निखार को उपलब्ध हो जाता है। जो प्रेम बांध ले वह प्रेम नहीं; जो मुक्त करे, वही प्रेम है। जो तुम्हारे स्वत्व को प्रगट करे, वही प्रेम है। जो तुम्हारे सत्व को निखारे, शुद्ध करे, वही प्रेम है। प्रेम ने कभी किसी को बांधा नहीं।
तो जिन लोगों ने कहा है कि प्रेम बंधन है, उन्होंने प्रेम के कुछ गलत रूप जाने होंगे। और जिन्होंने सोचा कि प्रेम को छोड़कर हम मुक्त हुए, उन्होंने जिंदगी को गंवाने को जीवन समझ लिया होगा। वे सिकुड़नेवाले लोग रहे होंगे।
मेरे देखे, फैलो तो ही तुम परमात्मा तक पहुंचोगे। जितने फैलो, जितने विस्तीर्ण होने लगो, उतना शुभ है।
अलम-नसीबों, जिगर-फिगारों
अलम-नसीबों, जिगर-फिगारों
की सुबह अफलाक पर नहीं है।
--जो दुखी हैं, जो कारागृह में पड़े हैं, जिनके हृदय घायल हैं, उनकी सुबह कहीं दूर किसी आकाश पर नहीं है।
जहां पे हम तुम खड़े हैं दोनों
सहर का रौशन उफक यहीं है।
--और जहां हम दोनों खड़े हैं, ठीक इसी जगह सुबह का सूरज ऊगेगा। जहां हम हैं वहीं सूरज ऊगेगा।
यहीं पे गम के शरार मिलकर
शफक का गुलजार बन गये हैं।
यहीं पे कातिल दुखों के तेशे
कतार अंदर कतार किरनों
के आतिशीं हार बन गए हैं!
जहां हम हैं, जैसे हम हैं, वहीं ठीक हमारी ही मौजूदगी और हमारी आज की
इस स्थिति में, द्वार खुल सकता है। वह द्वार प्रेम का है।
तुम परमात्मा को आकाश में मत खोजना, अन्यथा भटकोगे व्यर्थ। तुम तो परमात्मा को हृदय के प्रेम में खोजना, तो द्वार खुलेगा। और अगर प्रेम सध जाये तो सब सध जाता है। तो किरणों के भीतर किरणों के द्वार खुलते जाते हैं।
संत अगस्तीन से किसी ने पूछा कि मुझे एक शब्द में सारा शास्त्र समझा दें, ताकि मैं सदा याद रख सकूं। तो अगस्तीन ने बहुत सोचा और कहा कि फिर अगर ऐसा ही कोई शब्द चाहते हो, तो प्रेम। इस एक शब्द को याद रखना। इसके विपरीत मत जाना। और सदा इसके अनुकूल व्यवहार करना; शेष सब अपने से सुधर जायेगा। तुम जरा सोचो। तुम्हारे जीवन में प्रेम आ जाये, मंदिर न भी गये तो तुम मंदिर पहुंच जाओगे। तुम्हारे जीवन में प्रेम आ जाये और तुमने शास्त्र न भी पढ़े तो तुम शास्त्र पढ़ लोगे। ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय! प्रेम सम्हल जाये तो कुछ बड़ी दार्शनिक चर्चाओं में पड़ने की जरूरत नहीं है। प्रेम अस्तित्वगत धर्म है। "एक्.जीसटेंशियल"! बाकी सब बकवास है।

चौथा प्रश्नः मुझे समर्पण में बहुत आनंद आता है। मेरी प्रार्थना शब्दों-शब्द परमात्मा या आपके लिए होती है। ज्ञान का शब्द अच्छा लगता है, मगर थोड़ा अहंकार जगता है। मेरा प्रतिपल ध्यान में जा रहा है, ऐसा भाव सदा रहता है। तो मैं कौन-सा ध्यान करूं--यह बताने की कृपा करें!

समर्पण जिसे सध रहा हो--ध्यान हो गया। और अन्यथा ध्यान करने की कोई भी जरूरत नहीं है। जिसे शरणागति में मजा आ रहो हो, बस इसी मजे के सहारे को पकड़कर और-और गहरे मजे में उतरते जाओ। रोओ, आंसू बहाओ--आनंद से, प्रफुल्लता से।
एक मित्र परसों आकर कह रहे थे कि थोड़ी घबड़ाहट होती है, क्योंकि जब भी ध्यान करने बैठता हूं, मस्ती आती है तो आंसू आने लगते हैं और शरीर कंपने लगता है और रोमांच हो जाता है। तो मैंने पूछा, क्या करते हो? तो उन्होंने कहा, मैं रोक लेता हूं जबर्दस्ती। सुशिक्षित व्यक्ति हैं--अब रोएं! और

काफी उम्र हो गई है। वृद्ध हैं, कोई पैंसठ के करीब उम्र हो गई है। जिंदगीभर कभी रोए नहीं, आंख कभी गीली न की। रोमांच हो जाता है। शरीर कंपने लगता है। कोई समझेगा कि क्या पागलपन हो गया कि बीमारी हो गई कुछ, तो रोक लेते हैं। मैंने उनको कहा कि अब यह खतरनाक कर रहे हो। एक तरफ तो पैदा कर रहे हो-- प्रार्थना, पूजा, ध्यान से--और फिर रोक रहे हो। यह तो विरोधाभासी कृत्य हो जायेगा। यह तो तुम्हारी जीवन-ऊर्जा में विरोध, संकट पैदा हो जायेगा। यह तो खरतनाक है। प्रसन्न होओ, आंसुओं को आनंद से बहने दो!
आनंद के लक्षण हैं आंसू! लेकिन हमने एक ही ढंग के आंसू जाने हैं--वे दुख के आंसू हैं।
आदमी ने कई महत्वपूर्ण चीजों के अनुभव खो दिये; उनमें एक महत्वपूर्ण आंसू भी हैं। आंसू को सीमित कर लिया है; जब दुखी होते हैं, तभी रोते हैं। आंसू का दुख से कुछ लेना-देना नहीं है। आंसू का संबंध तो अतिरेक से है। दुख ज्यादा हो जाये तो आंसू की जरूरत आ जाती है। आनंद ज्यादा हो जाये तो आंसू की जरूरत आ जाती है। जो इतना ज्यादा हो जाये कि प्याली के ऊपर से बहने लगे, तो आंसू आते हैं। आंसू का कोई संबंध न दुख से है न सुख से है--अतिरेक से है। तो तुम कभी आनंद में रोये या नहीं? अगर आनंद में नहीं रोये तो तुमने आंसुओं की जो सबसे ऊंची चरम अनुभूति थी वह चूक गये। तब तुमने बहुत साधारण-सी अनुभूति दुख की जानी। और दुख के कारण, लोग कहते हैं कि हिम्मत रखो, रोओ मत! और लोग कहते हैं, मर्द बनो, रोओ मत! यह क्या बच्चों के जैसे या स्त्रियों जैसे रोने लगे?
आंसू का जो एक और अनूठा रूप है--आनंद का, अहोभाव का--उससे मनुष्यता वंचित ही हो गई है।
नारद ने अपने सूत्रों में कहा हैः भक्त रोमांचित होता! आंसुओं से भर जाता! गदगद हो जाता! कंपित होने लगती उसकी देह! रोआं-रोआं पुलकित हो जाता! तो जिसको समर्पण में, शरणागति में, आनंद आ रहा है, वह ध्यान की फिक्र न करे। प्रार्थना! जलाये धूप-दीप! नाचे। रोये! पुलकित हो! थोड़े क्षणों को पागल होने की कला सीखे! थोड़े क्षणों को भूले समझदारी और संसार! थोड़ी देर को मीरा बने! लोक-लाज खोई!
ध्यान की कोई जरूरत नहीं है--प्रार्थना की जरूरत है। ध्यान है संकल्प
के मार्ग पर। प्रार्थना है समर्पण के मार्ग पर। इसके पहले कि परमात्मा आये, प्रार्थना खूब कर लो, आंखों को खूब निखार लो, रो लो! कहीं ऐसा न हो कि वह आ जाये और तुम्हारी आंखें गीली न हों!
है खबर गर्म उनके आने की
आज ही घर में बोरिया न हुआ।
बिछाने को आसन घर में नहीं है और उनके आने की खबर आ गई है!
कोई फिक्र नहीं, बिना आसन के चल जायेगा। लेकिन और भी कुछ ज्यादा महत्वपूर्ण जरूरी चीजें हैं।
पलकन पग पोंछूं आज पिया के
अंसुअन पूछूं हाल हिया के।
बोरिया न हुआ, चलेगा। लेकिन कहीं ऐसा न हो कि पैर पोंछने के लिए पलकें
न हों! कहीं ऐसा न हो कि हाल हिया के पूछने के लिए आंसू न हों!
पलकन पग पोंछूं आज पिया के
अंसुअन पूछूं हाल हिया के।
उसकी तैयारी करो! निमंत्रण भेज दिया, तो आता ही होगा। बुलाया है तो आयेगा ही। अब तुम उसके आने की चिंता न करके, अपनी तैयारी करो।
और बड़ी से बड़ी तैयारी है कि तुम हृदय भरकर रो सको, कि तुम परिपूर्ण डूबकर नाच सको, कि अवाक, आश्चर्यचकित घड़ियां बीत जायें और तुम ठगे-से रह सको!
तुम मिले, प्राण में रागिनी छा गई!
भूलती सी जवानी नई हो उठी
जिस दिवस प्राण में नेह बंसी बजी
बालपन की रवानी नई हो उठी
कि रसहीन सारे बरस रस भरे

हो गए, जब तुम्हारी छटा भा गई
तुम मिले, प्राण में रागिनी छा गई!
भक्त तो यह मानकर ही चलता है कि तुम चल ही पड़े होओगे! खबर मिल ही गई होगी तुम्हें!
वह तैयारी में जुट जाता है।
साधक तो भगवान को खोजता है; भक्त तो भगवान को मानता है। साधक को तो अभी
तय करना है कि भगवान है या नहीं। भक्त को उतना तो तय है कि भगवान है; अब इतना ही देखना है कि मेरी पात्रता है या नहीं। इस भेद को स्मरण रखना। साधक सत्य को खोजने के लिए अपनी पात्रता इकट्ठी करता है। भक्त, सत्य
तो है ही, प्रभु तो है ही, अब मैं उसके योग्य बनूं, इसके लिए अपनी पात्रता इकट्ठी करता है। दोनों की दिशाओं में बड़ा फर्क है।
सत्य का खोजी विचार-निर्विचार के पंखों से चलता है। भक्त--न विचार, न निर्विचार; भाव, भक्ति, पूजा, प्रार्थना! एक तो तय ही है बात कि परमात्मा है, इसलिए खोजने का उसके पास सवाल नहीं है। वह खोजने की झंझट में नहीं पड़ता। उसे तो अपने होने की वजह से इतना पर्याप्त प्रमाण मिल गया है कि जीवन है, जीवन का स्रोत भी है। अपनी किरण को देखकर ही समझ गया कि सूरज भी है, अन्यथा किरण कैसे होती? मैं हूं, इतना काफी है। तू भी है! अब कैसे मैं अपने को तैयार कर लूं?
तो अत्यंत प्रेम से भरकर प्रतीक्षा करो! उसकी पग-ध्वनि सुनो! आता ही होगा! द्वार पर कान लगाकर बैठ जाओ। उसके विरह में, जब तक नहीं आया है, उसकी अनुपस्थिति में, उसके अभाव में भी, उसके भाव को अनुभव करो। उसका अभाव भी प्यारा है! इसे समझना।
संसार की चीजें मिल भी जायें तो कुछ नहीं मिलता; और परमात्मा न भी मिले, सिर्फ उसकी याद भी मिल जाये तो सब मिल जाता है!

आखिरी प्रश्नः आपको सुनने के पूर्व मैं कालेज की हंसती-खेलती छात्रा रही; सुनने के बाद न जाने क्या हुआ कि कहीं भी रुचि नहीं लगती--सुख-भोग में भी नहीं। सत्संग में आती भी हूं और आने से कतराती भी हूं। कृपापूर्वक मार्ग-दर्शन दें।

जो हंसना-खेलना इतनी सरलता से खो जाये, उसका कोई मूल्य नहीं। मैं तुम्हें ऐसा हंसना-खेलना सिखाऊंगा जो फिर खो न सके।
एक तो बचपन है, जिसमें बच्चे प्रसन्न होते हैं। उस प्रसन्नता का कोई बहुत मूल्य नहीं है--जिंदगी उसे नष्ट कर देगी। फिर एक और बचपन है, जो जीवन की चरम प्रौढ़ता से उपलब्ध होता है। संत फिर छोटे बच्चों जैसे हो जाते हैं। फिर एक हंसना और खेलना पैदा होता है; उसे फिर कोई भी न छीन सकेगा।
तो ऐसा हुआ होगा।
बहुत युवक मुझे सुनने आ जाते हैं, युवतियां सुनने आ जाती हैं। यह शुभ लक्षण है। क्योंकि बूढ़े धर्म की बात सुनने आयें, यह अशुभ लक्षण है। बूढ़े तो धर्म की बात सुनने तभी आते हैं जब जिंदगी में उनके सब उपाय व्यर्थ हो गये, मौत करीब आने लगी! मौत के भय से! और जब बूढ़े ही मंदिर, मस्जिदों में आने लगते हैं और जवान वहां से खो जाते हैं, तो वे मंदिर-मस्जिद भी कब्रों जैसे हो जाते हैं, मुर्दा हो जाते हैं। शुभ है कि युवा और युवतियां भी धर्म को समझने की कोशिश करें, क्योंकि उनके कारण धर्म भी युवा रहता है। जब भी धर्म जवान होता है, तब उसमें वृद्ध तो आते ही हैं, युवा भी आते हैं।
और यह फर्क समझ लेना। मुझे तो जो वृद्ध भी सुनने आते हैं, वे भी तभी आ सकते हैं जब वे किसी गहरे अर्थ में अभी भी युवा हों। और मंदिर-मस्जिदों में अगर कभी कोई जवान भी पहुंच जाता है तो तभी पहुंचता है जब वह किसी गहरे अर्थ में बूढ़ा हो चुका; वह जिंदा नहीं है अब, रुग्ण है। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं, वह जीवन-विरोधी नहीं है। मैं जो कह रहा हूं, वह महाजीवन की खोज है। तो अनेक बार ऐसा हो जायेगा कि युवा-युवती आ जायेंगे सुनने, सुनकर उनको
कई रूपांतरण होंगे। जिसे उन्होंने कल तक हंसी-खुशी समझा था, वह हंसी-खुशी मालूम न होगी। अच्छा है, कुछ बोध जगना शुरू हुआ। क्योंकि अब तक जिसे हंसी-

खुशी जाना था, वह केवल नासमझी थी, वह केवल बचपना था। अभी खिलौनों से खेलते रहे थे। मेरे पास आकर उनको दिखाई पड़ जायेगा, ये तो खिलौने हैं। रस खो जायेगा।
असली जीवन की शुरुआत के पहले खिलौनों में रस खो जाना जरूरी है।
फिर आने में डर भी लगेगा। आने का मन भी होगा। आने से बचना भी संभव नहीं
है और डर भी लगेगा। डर लगेगा कि कहीं ऐसा न हो कि सारा जीवन का रस खो जाये! और आने से रुकना भी असंभव होगा, क्योंकि कोई रस पैदा होगा जो पुकारेगा और बुलायेगा। एक दुविधा पैदा होगी। यह भी शुभ लक्षण है। यह सोच-विचारशील व्यक्ति का लक्षण है।
सोच-विचारशील व्यक्ति को जीवन में हजार ऐसे मौके आते हैं, जहां उसे तय करना पड़ता है; जहां आधा मन कहता है मत जाओ, आधा कहता है जाओ। कायर आदमी उस आधे मन की मान लेता है, जो कहता है मत जाओ। साहसी व्यक्ति उस आधे मन की मानता है जो कहता है, करो अभियान! खोजो नये को! अपरिचित राह को चुनो! पश्चिम के एक बहुत बड़े कवि से किसी ने पूछा कि तुम्हारे जीवन में सबसे महत्वपूर्ण बात जिसने तुम्हारे जीवन के अर्थ को निर्णीत किया, कौन-सी थी? तो उसने कहा कि जब मेरे पिता मर रहे थे तो उन्होंने मुझे पास बुलाया और कहा कि सुन, जीवन के हर कदम पर दो रास्ते खुलते हैं। एक रास्ता जाना-माना, जिस पर तुम चलते रहे हो; और एक रास्ता अपरिचित अनजाना, जिस पर तुम कभी नहीं चले हो। मन सदा कहेगा, जाने-माने को चुन लो, क्योंकि मन बहुत आर्थोडाक्स है। जाने-माने को कभी मत चुनना, क्योंकि जिस पर चलते ही रहे हो, अब और चलकर क्या होगा? अनजाने को चुन लेना।
और जिंदगी के हर रास्ते पर दो कदम खुलते हैं। दो रास्ते खुलते हैं।
सदा अनजाने को चुनते रहना।
उस कवि ने कहा, मैंने पिता की बात मान ली। बड़ी कठिन थी। और कई बार भूला। कई बार चूका। लेकिन फिर भी उस सूत्र को सम्हाले रहा। इसी तरह मेरे जीवन में रोज-रोज सत्य की नयी-नयी सुबह हुई; सत्य का नया-नया सूरज निकला।
अपरिचित, अनजान, अज्ञात--उसे जो चुनता है, उसने परमात्मा को चुना।
तो डर लगेगा यहां आने में। क्योंकि मैं तुम्हें रोज अनजान की तरफ, अपरिचित की तरफ धक्के दूंगा। मन कहेगा, रुक जाओ, मत जाओ।
इलाहाबाद में मैं बोल रहा था कई वर्षों पहले। जिन मित्र ने मुझे बुलाया था, वे हिंदी के एक कवि और लेखक हैं। वे सामने ही बैठे थे। कोई दस-पंद्रह मिनट मैंने देखा कि उनकी आंखों से आंसू गिरते रहे; फिर वे एकदम से उठे और भवन के बाहर निकल गये। उन्होंने ही मुझे बुलाया था। फिर तीन दिन उनका कोई पता ही न चला। जब विदा का दिन आया तो वह मुझे स्टेशन छोड़ने आये। मैंने पूछा कि कहां चल दिये! उन्होंने कहा कि पंद्रह मिनट तो मैं सुनता रहा, फिर मैं डरा। फिर मुझे लगा कि यह आदमी खतरे में ले जायेगा। तो मैंने कहा कि इसके पहले कि कोई झंझट शुरू हो, यहां से निकल जाना चाहिए। तो मैं निकल गया।
यह स्थिति सभी के सामने आयेगी। मेरे साथ चलना है तो बहुत कुछ जो तुम्हारी जिंदगी में तुम्हें कल तक मूल्यवान मालूम होता रहा, मूल्यहीन हो जायेगा। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, अज्ञात के लिए सदा अपने द्वार खुले रखना। क्योंकि वही द्वार है, जिससे परमात्मा प्रवेश करता है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
इक्कीसवां प्रवचन

जिन-शासन अर्थात आध्यात्मिक ज्यामिति

जिन-दर्शन गणित, विज्ञान जैसा दर्शन है। काव्य की उसमें कोई जगह नहीं है।
वही उसकी विशिष्टता है।
दो और दो जैसे चार होते हैं, ऐसे ही महावीर के वक्तव्य हैं। उन्हें समझने के लिए ठीक वैज्ञानिक की बुद्धि चाहिए। जैसे सौ डिग्री तक हम पानी को गर्म करें, तो वह भाप बन जाता है। सौ डिग्री तक पानी गर्म हुआ कि भाप बनेगा ही। इस भाप को बनाने के लिए न तो किसी की प्रार्थना करनी जरूरी है, न किसी का आशीर्वाद लेना जरूरी है। और अगर सौ डिग्री तक पानी गर्म न हुआ, तो लाख प्रार्थना करो, लाख आशीर्वाद लो, पानी पानी ही रहेगा, भाप न बनेगा। जैसे विज्ञान कहता है, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है, प्रकृति के नियम काफी हैं, पर्याप्त हैं; परमात्मा के होने से उन नियमों में कुछ जुड़ेगा नहीं। विज्ञान की एक मूलभूत धारणा है--और वह है न्यूनतम सिद्धांत। जितने कम सिद्धांतों से काम चल सके उतना उचित है। चेष्टा तो विज्ञान की यही है कि अंततः एक ही सिद्धांत मिल जाये जिससे जीवन की सारी पहेली सुलझ सके। इसलिए गैर-अनिवार्य को बिल्कुल जगह नहीं देना है।
अगर सौ डिग्री गर्म करने से पानी भाप बन जाता है तो फिर पानी को भाप बनाने के लिए और किसी परमात्मा की जरूरत नहीं है। और किसी की प्रार्थना भी व्यर्थ है। इस नियम को जिसने जान लिया, वह अगर पानी को भाप बनाना चाहेगा तो बना लेगा।
विज्ञान के हिसाब से परमात्मा हमारे अज्ञान का हिस्सा है। क्योंकि हम जानते नहीं जीवन के नियम को, इसलिए हम परमात्मा का नाम लेते हैं। तुमने देखा भी होगा, जब भी तुम कहते हो "परमात्मा जाने" तो तुम्हारा मतलब यह होता है कि कोई नहीं जानता। "परमात्मा जाने" का यह अर्थ नहीं होता कि परमात्मा जानता है--इतना ही अर्थ होता है कि तुम भी नहीं जानते, कोई भी नहीं जानता। जहां तुम्हें अपने अज्ञान को प्रगट करना होता है वहां तुम परमात्मा को ले आते हो। लेकिन इस ढंग से प्रगट करते हो कि लगता है जैसे कोई जानता है।
"परमात्मा जाने", इसमें तुमने यह भी छिपा लिया कि मैं नहीं जानता। और दूसरे के सामने यह बात ढांक दी, अज्ञान को छिपा लिया, प्रगट न होने दिया।
विज्ञान कहता हैः जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ता है, परमात्मा हटता जाता है।
जिस दिन ज्ञान पूरा हो जायेगा, परमात्मा शून्य हो जायेगा।
महावीर की भी ऐसी ही दृष्टि है। इसलिए महावीर ने परमात्मा को इनकार किया, प्रार्थना को इनकार किया--शुद्ध जीवन के गणित को समझने की कोशिश की।
आदमी बंधन में है, तो कारण होंगे। अगर आदमी को बंधन-मुक्त होना है तो
उन कारणों को अलग करना होगा। बस, इतना सीधा-साफ। और सब आकांक्षाएं, अपेक्षाएं अपने-आपको भुलाने के उपाय हैं।
कोई तुम्हें बंधन में डाला नहीं है, कोई तुम्हें मुक्त करने न आयेगा।
जीवन के सीधे नियम का तुम उपयोग नहीं किये, इसलिए बंधन में पड़ गये हो। उपयोग कर लोगे, बंधन के बाहर हो जाओगे।
जैसे कोई आदमी सम्हलकर चलता हो तो गिरता नहीं। जो आदमी गिर जाता है, उससे हम कहते हैं, सम्हलकर चलो!
सम्हलकर चलने का क्या अर्थ होता है? सम्हलकर चलने का अर्थ होता हैः जमीन की गुरुत्वाकर्षण की शक्ति है, उसका ध्यान रखकर चलो। अगर इरछे-तिरछे चले--गिरोगे। वही गुरुत्वाकर्षण का नियम जो तुम्हें चलाता है, सम्हालता है, जिसके बिना चल न सकोगे, अगर उसके विपरीत गये तो गिरोगे, हाथ-पैर तोड़ लोगे, फिर कभी चल न पाओगे। तो गुरुत्वाकर्षण के निमय को समझ लो और अपने और उस नियम के बीच एक संगीत का संबंध बना लो। इतना ही धर्म है।
महावीर धर्म की परिभाषा करते हैंः जीवन के स्वभाव सूत्र को समझ लेना धर्म है। जीवन के स्वभाव को पहचान लेना धर्म है। स्वभाव ही धर्म है।
ये सूत्र ऐसे ही सीधे-साफ हैं।

पहला सूत्रः
मग्गो मग्गफलं ति य, द्रविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो खलु सम्मतं मग्गफलं होइ निव्वाणं।।
"जिन-शासन में मार्ग तथा मार्ग-फल, इन दो प्रकारों से कथन किया गया है। मार्ग है मोक्ष का उपाय और फल है निर्वाण।"
मार्ग और मार्ग-फल! बस महावीर के सारे वचन इन दो हिस्सों में बांटे जा सकते हैंः कारण और कार्य। ऐसा करो तो ऐसा होगा। बस इतनी दो सरणियों में महावीर के पूरे कथन बांटे जा सकते हैं। कुछ कथन हैं जो बताते हैं क्या करो और कुछ कथन हैं जो बताते हैं कि फिर क्या होगा। अगर जहर पी लो तो मृत्यु होगी। अगर अमृत को खोज लो तो अमरत्व को उपलब्ध हो जाओगे।
परिणाम कारण के पीछे ऐसे ही चला आता है जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया चली आती है। तो करना क्या है? न प्रार्थना, न पूजा, न मंदिर, न पाठ; क्योंकि इनसे कुछ भी न होगा। इनसे कारण का कोई संबंध नहीं है।
यह तो ऐसे ही है जैसे वर्षा नहीं हो रही और कोई यज्ञ कर रहा है। इसका कुछ लेना-देना नहीं है। यज्ञ से कोई कार्य-कारण का संबंध नहीं है वर्षा से। कि कोई बीमार पड़ा है और तुम ताबीज बांध रहे हो; ताबीज से और बीमारी का कोई कार्य-कारण का संबंध नहीं है। इलाज करो। बीमारी के रोगाणु हैं, उनसे मुक्त होने की व्यवस्था करो। ताबीज से रोगाणु डरेंगे न और न मुक्त होंगे और न तुम उनसे मुक्त हो सकोगे।
महावीर कहते हैं, जीवन में दुख है तो तुम ठीक-ठीक कारण खोजो। दुख से तुम बचना चाहते हो, यह तो हमें मालूम है; लेकिन सिर्फ बचने की आकांक्षा से बच न सकोगे। और दुख से तुम बचना चाहते हो, इसलिए कोई भी कुछ बता देता है, वही करने लगते हो--इससे भी न बच सकोगे। हो सकता है बतानेवाले की भी आकांक्षा शुभ हो; खोजनेवाले की भी आकांक्षा शुभ हो; लेकिन आकांक्षाओं से थोड़े ही जीवन चलता है। जीवन चलता है सत्यों से, नियमों से। तो नियम को खोज लो। नियम के खोजते ही जीवन में क्रांति घटित होती है।
उस नियम की खोज को महावीर कहते हैंः मार्ग। वही मार्ग पकड़ में आ जाये
तो फिर परिणाम के लिए प्रार्थना भी करनी जरूरी नहीं है, उतना भी समय खराब मत करना। क्योंकि जब तुमने आग जला दी और पानी गर्म होने लगा तो अब बैठकर प्रार्थना मत करना कि हे परमात्मा, इसको भाप बना! अब किसी परमात्मा को बीच में लाने की जरूरत नहीं है। अब तो पानी भाप बनेगा। ईंधन पूरा है, आग जल उठी है--पानी भाप बनेगा। अब इसे कोई रोक भी न सकेगा। इस नियम के विपरीत कुछ घट न सकेगा।
महावीर चमत्कार में नहीं मानते। कोई वैज्ञानिक बुद्धि का व्यक्ति नहीं मानता। चमत्कार कहीं न कहीं धोखा होगा, क्योंकि नियमों का कोई अपवाद नहीं होता। अगर कोई आदमी हाथ से राख निकाल देता है तो कहीं न कहीं कोई मदारीगिरी होगी, क्योंकि जीवन के नियम किसी का अपवाद नहीं मानते। जीवन के नियम व्यक्तियों की चिंता नहीं करते--निर्वैयक्तिक हैं, सार्वभौम हैं। उनसे अन्यथा होने का उपाय नहीं।
अगर कोई आदमी साठ डिग्री पर पानी को भाप बना दे तो या तो थर्मामीटर से धोखा दे रहा है या किसी तरह का आयोजन कर रहा है, जिससे तुम्हें यह भ्रम पैदा होता है कि साठ डिग्री पर पानी भाप बन रहा है।
पानी तो सौ डिग्री पर ही भाप बनेगा। उसने किसी तरह का भ्रमजाल रचा है। लेकिन चमत्कार जगत में नहीं होते।
चमत्कार का तो अर्थ यह होता है कि जगत के नियम पक्षपात करते हैं। किसी
एक आदमी की मानकर कुछ उलटा भी कर देते हैं। किसी दूसरे की मानकर नियम में शिथिलता कर देते हैं। किसी तीसरे पर नाराज हो जाते हैं। जिस पर प्रसन्न हैं, साठ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है; जिस पर नाराज हैं, उसके लिए डेढ़ सौ डिग्री पर भी भाप नहीं बनता।
मगर महावीर कहते हैं, पानी सौ डिग्री पर भाप बनता है। नियम न नाराज होते न प्रसन्न होते। नियम निर्वैयक्तिक है। इसको ख्याल में लेना।
परमात्मा व्यक्ति है।

तो जब भी हम परमात्मा की बात करते हैं, हमारे मन में संभावनाएं उठने लगती हैं कि अगर खूब प्रार्थना करें, खूब स्तुति करें, खूब समझा-बुझा लें, तो जो दूसरे के लिए नहीं हुआ है वह हमारे लिए हो जायेगा। क्योंकि व्यक्ति के आते ही लगता है फुसला लेंगे, राजी कर लेंगे, समझा लेंगे, रोयेंगे, गिड़गिड़ायेंगे, सहानुभूति पैदा कर लेंगे, करुणा मांगेंगे! आखिर परमात्मा दयालु है, तो खूब रोयेंगे तो दया उठेगी।
लेकिन महावीर कहते हैं, ऐसे तुम किसी और को धोखा नहीं दे रहे, अपने को
ही धोखा दे रहे हो।
ऐसी चेष्टाएं व्यर्थ हैं और उनमें गंवाया गया समय तुमने व्यर्थ ही गंवाया। मार्ग को खोज लो!
महावीर का जोर मार्ग पर है; परमात्मा के सहारे पर नहीं; परमात्मा के आलंबन पर नहीं। यही तो सारे विज्ञान की दृष्टि है। विज्ञान कहता है, कहीं कुछ घट रहा है। हमें आज पता न हो क्यों घट रहा है; लेकिन जिस दिन पता चल जायेगा उस दिन फिर घटाने की शक्ति हमारे हाथ में आ जायेगी।
और जब तक हमें पता नहीं है तब तक बेहतर है कि हम कहें कि हमें मालूम नहीं।
तो महावीर के अधिक वचन तो मार्ग-सूचक हैं। और कुछ वचन फल-सूचक हैं।
ऐसा पूरा जिन-शासन दो हिस्सों में विभाजित है।
आइंस्टीन भी इससे राजी होगा। प्लांक भी इससे राजी होगा। रसेल भी इसमें भूल-चूक न निकाल पायेगा। इसलिए महावीर के वचनों में या जैन शास्त्रों में तुम्हें कहीं काव्य न मिलेगा, काव्य का चमत्कार न मिलेगा।
पढ़ोगे तो रूखे-सूखे लगेंगे। ठीक गणित की किताबें हैं--ज्यामिति, आध्यात्मिक ज्यामिति। अंतरात्मा के संबंध में ज्यामेट्री खड़ी की है।
तो उपनिषदों में जैसा सौंदर्य है, कृष्ण के वचनों में जैसा रस है वैसा महावीर के वचनों में नहीं है।
गणित को गाया नहीं जा सकता। गणित को गाओ तो गणित बिगड़ जाता है।
क्योंकि गाने के लिए कुछ गैर-गणित भीतर लाना पड़ता है।
इसलिए तो हम कवि से कभी तार्किक होने की अपेक्षा नहीं करते। और कवि अगर सपनों की बात करे तो हम उसे क्षमा करते हैं। और कवि अगर मनगढंत बातों में घूमे तो हम कहते हैं, कवि है, कविता है।
लेकिन गणितज्ञ से हम दूसरी अपेक्षा करते हैं। गणितज्ञ से हम चाहते हैं सीधी-साफ रेखा हो, शुद्ध रेखा हो, जिसमें कुछ भी गणितज्ञ ने अपने भाव के कारण न डाला हो। केवल सत्य का प्रतिफलन हो। शुद्ध सत्य का प्रतिफलन हो। सजावट न हो, शृंगार न हो।
इसलिए महावीर के वचन, जैसे महावीर नग्न हैं वैसे ही महावीर के वचन भी नग्न हैं। उनमें कोई सजावट नहीं है। जैसा है वैसा कहा है। और जिनके पास वैज्ञानिक बुद्धि है उनको महावीर पर बड़ी श्रद्धा पैदा होगी। उनको महावीर के साथ बड़ा संबंध जुड़ जायेगा।
"मार्ग तथा मार्ग-फल, इन दो प्रकार से कथन किया है। मार्ग मोक्ष का उपाय है और उसका फल मोक्ष या निर्वाण... "
मोक्ष या निर्वाण शब्द को समझ लेना चाहिए।
"मोक्ष" शब्द बड़ा अनूठा है। भारत के बाहर की किन्हीं भाषाओं में मोक्ष के पर्यायवाची कोई शब्द नहीं है। स्वर्ग है सभी भाषाओं में, लेकिन मोक्ष भारत के बाहर की किन्हीं भाषाओं में नहीं है। क्योंकि मोक्ष की धारणा ही किसी और देश में पैदा नहीं हुई। उतनी ऊंचाई तक, उतनी गहराई तक मनुष्य की चिंतना और ध्यान गया नहीं कहीं और।
मोक्ष का अर्थ होता हैः जहां सुख भी नहीं, दुख भी नहीं।
स्वर्ग का अर्थ होता हैः जहां सुख है, भरपूर सुख है। स्वर्ग का अर्थ होता हैः जो हम चाहते हैं वही है; जैसा हम चाहते हैं वैसा है। हमारी चाह का परिपूरक है। हमारी चाह को भरता है। हमारी चाहत के अनुकूल जहां सब हो रहा है वहां स्वर्ग है। तो जहां हमारी चाह पूरी होती है वहां क्षणभर को हम भी स्वर्ग में हो जाते हैं।

नर्क का अर्थ हैः जहां सब हमारी चाह के विपरीत हो रहा है; जो हम चाहते हैं ठीक उससे उलटा हो रहा है; जिस-जिससे हम बचना चाहते हैं वही-वही हो रहा है।
नर्क और स्वर्ग सारी दुनिया की भाषाओं में हैं।
"मोक्ष" बड़ा अनूठा शब्द है। मोक्ष का अर्थ हैः न तो हमारी अब कोई चाह
है, न हमारी कोई पसंद है। क्योंकि महावीर कहते हैं, जब तक चाह है तब तक बंधन रहेगा। हां, यह भी हो सकता है कि तुम सोने के बंधन बना लो; लोहे की जंजीरें तोड़ डालो और सोने की जंजीरें ढाल लो। और यह भी हो सकता है उन जंजीरों पर हीरे-मोती जड़ दो। वे प्यारे लगने लगें। वे इतने प्यारे हो जायें कि आभूषण मालूम पड़ें।
बहुत-से आभूषण, जिन्हें तुम आभूषण समझते हो, जंजीरें सिद्ध होते हैं;
और बहुत-सी जंजीरें जिनकी तुम्हें याद भी नहीं आती कि जंजीरें हैं, आभूषणों में छिप गई हैं।
तो महावीर कहते हैं, सुख की आकांक्षा या सुख का मिलना भी जंजीर है-- सोने की जंजीर है। दुख का मिलना लोहे की जंजीर है। लेकिन दोनों बांधते हैं। तुमने ख्याल किया? कभी तुम्हें एकाध क्षण को भी ऐसी चैतन्य की घड़ी आई, जब न सुख की आकांक्षा है न दुख की? तब तुमने देखा, कैसी मुक्ति अनुभव होती है! सब सीमाएं समाप्त हो जाती हैं। सब कारागृह विलुप्त हो जाते हैं! क्षणभर को तुम्हारे चेतना के आकाश में एक भी बादल नहीं रह जाता। निरभ्र आकाश! अनंत आकाश! जैसे ही उठी आकांक्षा, बादल घिरे, अंधेरा छाया! आकाश तो खो गया, बदलियां रह गईं! धुएं के बादल रह गये!
कभी क्षणभर को भी अगर तुम्हारे जीवन में ऐसा हो जाता हो, जब न सुख की इच्छा है, न दुख की, कोई इच्छा नहीं है, तुम अनिच्छा में बैठे हो--उसी घड़ी को महावीर "सामायिक" कहते हैं। तुम संसार के बाहर हो। क्योंकि महावीर के हिसाब में संसार का अर्थ हैः चाह के भीतर होना।

चाह से भरे होना संसार में होना है। फिर तुम चाह कोई भी करो। चाहे पृथ्वी के धन की हो, चाहे स्वर्ग के धन की हो; चाहे तुम पुण्य की आकांक्षा करो; लेकिन कोई भी आकांक्षा है, चाहत जारी है--और तुम संसार में हो।
ऐसी भी घड़ियां हैं चैतन्य की, जब कोई चाह नहीं, जब तुम हो--निपट अकेले! शुद्ध! कोई धुएं की रेखा भी भीतर नहीं। उस क्षण में तुम कहां होते हो? उस क्षण में तुम शरीर के भीतर होते हो? नहीं, उस क्षण में शरीर की स्मृति खो जाती है। तुम विदेह हो जाते हो। क्योंकि शरीर से हमारा संबंध चाह का संबंध है। उस क्षण में तुम शरीर में नहीं होते। उस क्षण में तुम पृथ्वी पर नहीं होते। उस क्षण में तुम स्थान में नहीं होते। उस क्षण में तुम समय में भी नहीं होते। उस क्षण में तुम अचानक किसी दूसरे ही लोक में प्रवेश कर गये-- पार का लोक! जल्दी ही तुम लौट आओगे। क्योंकि उस पार के लोक में जीने की, उस ऊंचाई पर जीने की तुम्हारी क्षमता नहीं है। उस ऊंचाई पर श्वास लेने की तुम्हारी कुशलता नहीं है। उन ऊंचाइयों पर उड़ने की अभी तुमने आदत नहीं डाली, अभ्यास नहीं किया है।
इसलिए कभी-कभी क्षणभर को जब चाह छूट जाती है, तब तुम एकदम मुक्ति अनुभव करते हो।
ऐसे ही तो पहली दफा आदमी को मोक्ष का ख्याल उठा होगा कि जो क्षणभर को
हो सकता है वह सदा को क्यों न हो! जो एक क्षण को चेतना में कभी-कभी झलक जाता है, वह सदा के लिए चेतना का स्वभाव क्यों न बन जाये!
मोक्ष का अर्थ हैः जहां चेतना की कोई चाह नहीं। जहां चाह नहीं वहां संसार में कोई राह नहीं।
चाह राह बनाती है; संसार में ले आती है। क्योंकि जहां चाह आई, वहां वस्तुओं का संसार आया। तुमने कुछ चाहा, तुम्हारी आंख दूर गई, "पर" पर पड़ी-- तुम बंधे! तुम उलझन में पड़े!
और जिसने सुख चाहा--उसे दुख मिला।

यह तो हमारा सबका अनुभव है। सभी ने सुख चाहा है--मिला कहां? चाहा तो सभी ने सुख है; पाया सभी ने दुख है। इसे तुम कब देखोगे? कब जागोगे कि चाह तो कुछ और होती है, मिलता कुछ और है।
तो महावीर कहते हैं, यह जीवन का आधारभूत नियम है कि जो सुख चाहेगा वह दुख पायेगा। सुख की चाह में ही दुख छिपा है। इसे समझो।
पहला, सुख वही चाहता है जो दुखी है--एक बात। क्योंकि तुम वही चाहते हो
जो तुम्हारे पास नहीं है। जो तुम्हारे पास है, तुम क्यों चाहोगे? जो तुम्हारे पास है ही, उसकी तो चाह खो जाती है; जो नहीं है उसकी ही चाह पैदा होती है। अभाव चाह को जन्माता है। अभाव जन्मदाता है।
तो जिस आदमी ने सुख चाहा, एक बात तो उसने यह बतायी कि वह दुखी है। फिर जिस आदमी ने सुख चाहा, उसने दूसरी बात भी बतायी कि अगर यह न मिला तो मैं और दुखी हो जाऊंगा, विषाद घेरेगा, असफलता हाथ लगेगी। और जैसे ही उसे यह ख्याल आया कि अगर यह न मिला तो मैं और दुखी हो जाऊंगा, विषाद होगा मेरे जीवन में, उद्विग्न हो जाऊंगा, हारा हुआ, थका हुआ, पराजित--भय समाया! भय आया! यह आदमी वैसे ही दुखी था, इसने सुख की चाह करके और दुख बुला लिया, और भयभीत हो गया। अब यह डगमगाते कदमों से सुख की तरफ चलता है।
और, सुख हम सदा बाहर मांगते हैंः किसी स्त्री से मिलेगा, किसी पुरुष
से मिलेगा, धन से मिलेगा, पद से मिलेगा! लेकिन पद से सुख का क्या संबंध है? तुम कितनी ऊंची कुर्सी पर बैठते हो, इससे सुख का क्या संबंध? तुम कितने बड़े मकान में हो, इससे क्या सुख का संबंध है?
सुख का मकान के बड़े और छोटे होने से कहीं भी तो कोई संबंध नहीं है। क्योंकि सड़क पर खड़े भिखारी भी कभी सुखी देखे गये हैं। महावीर खुद ही ऐसे भिखारी थे। और कभी महलों में सम्राट भी दुखी देखे गये हैं।
तो दुख और सुख का संबंध स्थितियों से तो मालूम नहीं पड़ता, परिस्थितियों से तो मालूम नहीं पड़ता--कुछ भीतरी दशाओं से जुड़ा है। तो जब भी तुमने बाहर मांगा, गलत जगह मांगा। और मांग मात्र बाहर की होती है। भीतर तो मांगोगे किससे, मांगोगे क्या? वहां तो कुछ भी नहीं है--शून्य आकाश है। वहां तो कोरापन है। वहां तो तुम मुट्ठी बांधना चाहोगे तो बंधेगी नहीं; बंध भी जायेगी तो हाथ में कुछ न आयेगा। आकाश को कौन मुट्ठी में बांध सका है! आत्मा को भी कोई नहीं बांध सका है।
तो भीतर तो कुछ पकड़ में आता नहीं, बाहर पकड़ में चीजें आ जाती हैं, तो हम सोचते हैं बाहर होगा। ऐसे बाहर दौड़ते हैं जहां नहीं है। फिर एक न एक दिन स्वप्न टूटता है और पता चलता है यहां नहीं है; हम महादुखी हो जाते हैं। उस महादुख से और बड़े सुख की आकांक्षा पैदा होती है। क्योंकि जितने हम दुखी होते हैं उतनी ही तीव्र आकांक्षा होती है कि जल्दी करो, मौत करीब आयी जाती है, सुखी होना है। ऐसा एक दुष्टचक्र है। दुख में से सुख की आकांक्षा निकलती है; सुख की आकांक्षा में से और बड़ा दुख निकलता है।
तो महावीर कहते हैं, जिसने छोड़ा है, उसने सिर्फ दुख को ही नहीं छोड़ा, उसने सुख को भी छोड़ा है। उसने नर्क का ही त्याग नहीं किया... । वह तो सभी करते हैं; उसमें कौन-सी कुशलता है? उसमें कौन-सी मेधा है? दुख से कौन नहीं बचना चाहता--सभी बचते हैं। उसमें कौन-सी बुद्धिमानी है? उसमें कौन-सी विशेषता है। लेकिन जिसने गौर से देखा, समझा, जीवन की पर्तों को उघाड़ा, रहस्य को पहचाना, गणित का सूत्र समझ में आ गया उसे कि दुख की सारी चाल यही है कि वह तुम्हें सुख का आश्वासन देता है और भरमा लेता है। तुम सुख के आश्वासन में दुख के पीछे चले जाते हो, भटक जाते हो। मिलता दुख है, चाहते सदा सुख हो।
जो जागा इस अनुभव में, उसने सुख नहीं चाहा। और जिसने सुख नहीं चाहा, उसके जीवन से दुख विदा होने लगे। क्योंकि बिना सुख की चाह के दुख निर्मित नहीं हो सकता।
थोड़ा सोचो!
जिस आदमी ने सफलता नहीं चाही, उसे तुम विफल कैसे करोगे? और जिसने कभी जीतना नहीं चाहा, उसे तुम हराओगे कैसे? और जिसने कभी धनी होने के पागलपन में अपने को नहीं लगाया, उसे तुम निर्धन कैसे कर पाओगे? और जिसने तुमसे

सम्मान नहीं मांगा, तुम उसका अपमान कैसे करोगे? करोगे कैसे? उपाय कहां है? उसने तुम्हें सुविधा कहां दी?
जिसने सम्मान चाहा, उसे तुम अपमानित कर सकते हो। जिसने धन चाहा, उसकी चाह में ही वह निर्धन हो गया। जिसने जीत चाही, उसने पराजय के ढेर लगा लिये। इसलिए महावीर कहते हैंः मोक्ष का अर्थ है इस अनुभव को तुम्हारे जीवन
की स्थिर दशा बना लेना कि न सुख की चाह न दुख की चाह, न नर्क न स्वर्ग, कोई चाह नहीं।
अचाह की दशा मोक्ष है।
तो यह तो परिणाम है मोक्ष। मोक्ष यहां घट सकता है। ऐसा मत सोचना जैसा
कि साधारणतः लोग समझते हैं कि मोक्ष मरने के बाद घटता है। जिसको जीते-जी नहीं घटा उसे मरने के बाद भी नहीं घटेगा। पहले तो मोक्ष जीवन में उतरता है। इसलिए व्यक्ति पहले जीवन-मुक्त होता है--जीते-जी मुक्त होता है। फिर जो जीते-जी मुक्त हो गया, वह तो मरने के बाद भी मुक्त रहेगा। मुक्ति एकमात्र संपदा है जिसे मृत्यु नहीं छीन पाती। और सारी संपदाएं मृत्यु छीन लेती है।
इसलिए महावीर कहते हैंः अगर तुम थोड़े भी बुद्धिमान हो, थोड़ा हिसाब तो करो, गणित तो बिठाओ! तुम जो इकट्ठा कर रहे हो वह सब मौत छीन लेगी। पहले तो कर न पाओगे। कौन कब कर पाया? और अगर किसी तरह कर भी लिया तो जब तक तुम कर पाओगे, मौत द्वार पर आ जायेगी। करोगे तुम, छीन लेगी मौत। यह कैसी नासमझी कर रहे हो? उसे कमा लो, जिसे मौत न छीन सकती होः मुक्त दशा! चैतन्य की अचाह की दशा! चैतन्य का निरभ्र आकाश, जिसमें कोई चाह के बादल नहीं! फिर मौत कुछ भी न कर पायेगी।
मौत एक जगह जाकर हारती है--वह मोक्ष है। और सभी चीजों पर जीत जाती है।
अब इसे समझना।
हमारी जीवन की भी आकांक्षा है, इसलिए मौत जीत जाती है। जीवेषणा! हम जीना चाहते हैं--हर हाल जीना चाहते हैं! हर शर्त पूरी करने को राजी हैं, लेकिन जीना चाहते हैं। सड़ते हों, गलते हों, मरते हों, खाट पर पड़े हों, अस्पतालों में लटके हों, उलटे-सीधे हाथ-पैर बंधे हों--लेकिन जीना चाहते हैं। मरना नहीं चाहते। कैसी भी हालत में आदमी पड़ा हो और उससे पूछो, "मरना चाहते हो?" वह इनकार करेगा। तुम चकित होओगे, बहुत-से लोग कहते हैं कि "अब तो भगवान उठा लो!" वह भी मरना नहीं चाहते। वह भी कहने की बातें कर रहे हैं। मेरा एक मित्र मरना चाहता था, आत्महत्या करना चाहता था। उसके पिता बहुत घबड़ा गये। इकलौता बेटा था और अकेले मुझसे ही उसकी दोस्ती थी, तो वे मुझे बुलाने आये। तो मैंने कहा, "घबड़ाओ मत! मैं उसे भलीभांति जानता हूं। चिंता न करो।" पर वे बोले कि चिंता होती है, उसने दरवाजा बंद कर लिया है। और अगर दरवाजे पर खटका भी करो तो वह चिल्लाता है, कि "मैं मर जाऊंगा, दरवाजा नहीं खोलूंगा।" वह कुछ कर न ले, सिर न तोड़ दे। कुछ छुरी वगैरह न छिपा रखी हो, कुछ जहर वगैरह न रखे हो, कोई गोलियां न ले आया हो! और पिता वैद्य हैं तो और भी डरे कि वह जहर तो हमारे घर में रहता ही है, गोलियां भी हैं, दवाइयां भी हैं, वह कुछ ले न गया हो उठाकर!
तो मैं गया। भीड़ लगी थी, मुहल्ला इकट्ठा था। मैंने दरवाजे पर जाकर कहा
कि सुनो, मरना है तो इतना शोरगुल क्यों कर रहे हो? शोरगुल जिसको जिंदा रहना है उसको शोभा देता है। अब जिसको मरना ही है तो यह इतना क्या विज्ञापन? दरवाजा खोलो और मेरे साथ चलो! तुम्हें मरने की कोई ढंग से व्यवस्था जुटा देंगे; यह कोई ढंग चुना? अब जब मरना ही है... ।
तब वह मुझे तो धमकी दे नहीं सका कि मर जाऊंगा। अब उसे कुछ समझ में न आया तो उसने दरवाजा खोल दिया। मैंने कहा, "तुम मेरे साथ आओ--नर्मदा पर चलेंगे। "धुआंधार" ले चलेंगे। वहां से तुम कूद जाना। चांद की रात है, जलप्रपात है, जब मर ही रहे हो--जिंदगी में तो कुछ नहीं मिला, कम से कम मौत को ही सुंदर बना लो!"
उसने मेरी तरफ बड़ी गौर से और हैरानी से देखा; क्योंकि जो भी आये थे, वह
सब समझा रहे थे दरवाजे के बाहर से कि बेटा मरना मत! ऐसा मत करना, वैसा मत करना!

एक लड़की से उसका प्रेम था। उस लड़की ने विवाह करने से इनकार कर दिया था। तो लोग समझा रहे थेः "उससे अच्छी लड़कियां मिल जायेंगी, उसमें रखा क्या है? तू घबड़ाता क्यों हैं?" मगर वह जिद्द पकड़े हुए था।
मैं उसे घर ले आया और मैंने कहा कि रात तुझे जो भी करना हो, क्योंकि यह आखिरी रात है--कोई फिल्म देखनी है? कोई मिठाई खानी है? कुछ आखिरी पत्र वगैरह लिखना? कुछ भी तुझे करना हो तो बोल, क्योंकि फिर मौका नहीं रहेगा।
और दो बजे रात हम उठेंगे और चल पड़ेंगे। तू कूद जाना, हम विदा कर आयेंगे।
मित्र का कर्तव्य है... कि जो असमय में काम आये वही मित्र है। अब इस वक्त तेरे कोई काम नहीं आ सकता।
वह सुनता था मेरी बात, बड़े क्रोध से देखता था। बोलता भी नहीं था कुछ।
दो बजे रात का अलार्म भर दिया। दोनों हम सो गये। बीच में अलार्म-घड़ी रख ली। जैसे ही दो बजे अलार्म बजा, उसने जल्दी से अलार्म बंद किया। मैंने उसका हाथ घड़ी पर पकड़ा। मैंने कहा, अलार्म बंद नहीं कर सकते! वह एकदम बैठ गया और चिल्लाया कि तुम मेरे दुश्मन हो कि मेरे दोस्त? तुम मुझे क्यों मारने में लगे हो? क्या मुझे मरना ही पड़ेगा?
"... मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। तुम मरना चाहो तो मैं साथ देता हूं। तुम जीना चाहो तो मैं साथ देने को तैयार हूं--मेरा काम साथ देने का है--तुम अगर मरने में सुख पाते हो तो मैं क्यों बाधा दूं! तुम फिर सोच लो, सुबह कहीं तुम बदल मत जाना--सूरज ऊगा देखकर, फिर लोग, भीड़ देखकर--फिर तुम मौत की बात मत कर लेना। अब तुम तय कर लो। अगर मरना हो तो मर जाओ। अगर जिंदा रहना है तो जिंदा रहो, फिर मरने की बात मत करो।"
वह आदमी अभी भी जिंदा है। वह मुझ पर बहुत नाराज है! उसने शादी भी कर ली किसी दूसरी स्त्री से। अब तो बच्चे भी हैं उसके। और कभी मैं गया उस गांव दुबारा तो उसको बुलाता हूं तो वह बड़ी नाराजगी में आता है। वह प्रसन्न नहीं है। जैसे मैंने उसका कोई अहित किया। और मैं वही कर रहा था जो वह करना चाहता था।
लोग कहते हैं कि मर जायें अब तो! वे यह नहीं कह रहे हैं कि मरना चाहते हैं। भूल मत समझ लेना। वे तो सिर्फ यही कह रहे हैं कि जिंदगी थोड़ी बेहतर होनी चाहिए। यह कोई जिंदगी है।
इस मरने की चाह में ही जीवन की आकांक्षा है। इस मरने की चाह में भी और जीवन को चूस लेने का भाव है। वे यह कह रहे हैं कि अब जिंदगी में कुछ सार तो नहीं मालूम पड़ता, क्या फायदा जीने से! लेकिन फिर भी भीतर जीने की आकांक्षा है! अन्यथा कौन किसको मरने से रोक सका है? कौन कब रोक सकता है?
दुनिया के सरकारी कानूनों में अगर सबसे मूढ़तापूर्ण कोई है तो वह आत्महत्या के विपरीत कानून है। वह कुछ समझ के बाहर है। सरकारों को ऐसे कानून नहीं बनाने चाहिए जिनको वह पूरा न करवा सकती हों। आत्महत्या का कानून कोई सरकार पूरा नहीं करवा सकती। जिसको मरना है, उसे कोई कैसे रोक सकता है, थोड़ा सोचो तो! सौ में निन्यानबे लोग जो मरने की चेष्टा करते हैं, वे सिर्फ दिखावा करते हैं, मरना नहीं चाहते सौ में से निन्यानबे मरने की चेष्टा करके बच जाते हैं। वे बचने का पहले ही इंतजाम कर लेते हैं। आकांक्षा जीने की इतनी प्रगाढ़ है! और वह जो एक आदमी मर जाता है, वह भी मरना चाहता था, इसमें संदेह है। मर गया, यह दूसरी बात है। कुछ जरा जरूरत से ज्यादा इंतजाम कर गया। कुछ समझ न पाया। दस गोलियां लेनी थीं, बीस ले लीं। कुछ भूल-चूक गणित में हो गई। सोचती थी पत्नी कि पति सांझ घर आ जायेंगे, वे दो दिन तक नहीं आये और वह रात पड़ी-पड़ी मर गई।
जो सौ में से एक मर जाता है, वह भी ऐसा लगता है कि भूल-चूक से सफल हो गया। निन्यानबे तो सफल नहीं होते, क्योंकि वह असफलता का इंतजाम पहले से कर लेते हैं। मरने की चेष्टा, उनकी कुछ घोषणा है जीवन के बाबत। वे किसी और तरह का जीवन चाहते हैं लेकिन जीवन नहीं चाहते, ऐसा नहीं है। जीवन तो चाहते ही हैं--और तरह का जीवन चाहते हैं। इस जीवन से तृप्ति नहीं हो रही है। तो वे इस जीवन के प्रति शिकायत कर रहे हैं मरने की कोशिश में।

लेकिन कौन किसको रोक सकता है? मरना कोई चाहता नहीं, इसलिए कानून चलता है। अन्यथा मैं नहीं देखता कोई उपाय है कि तुम कैसे किसी आदमी को रोक सकोगे मरने से। जिसको मरना है वह राह खोज लेगा।
मौत तो व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसको कोई राज्य छीन नहीं सकता।
लेकिन कोई मरना ही नहीं चाहता, छीनने का सवाल ही नहीं है। कभी-कभी कोई भूल-चूक से सफल हो जाता है। वह भी पछताता होगा मरकर कि "अरे, यह मैंने क्या कर लिया! यह जरा मैं अति कर गया। जरा दो कदम ज्यादा उठा लिये, जरा दो कदम कम उठाने थे।" प्रेत होकर वह भी पछताता होगा।
महावीर कहते हैंः चूंकि जीवेषणा है, इसलिए मौत तुमसे कुछ छीन पाती है। जिस व्यक्ति की जीवन की आकांक्षा भी न रही... । इसका यह अर्थ नहीं है कि उसको मरने की आकांक्षा पैदा हो जाती है। क्योंकि जिसको जीवन की आकांक्षा न रही, उसे मरने की आकांक्षा कैसे पैदा होगी? वह तो जो है उसे स्वीकार कर लेता है। जीवन तो जीवन, मौत तो मौत। उसने अपनी आकांक्षाओं को आरोपित करना बंद कर दिया। जो तथ्य है, स्वीकार कर लेता है। अभी जी रहा है, तो जी रहा है; क्षणभर बाद सांस बंद हो गई तो वह चुपचाप बंद कर लेगा। वह एक दफा ज्यादा सांस लेने की चेष्टा न करेगा। हां! मरने के महले मरेगा भी नहीं; क्योंकि उसमें भी जीवेषणा, आकांक्षा, चाह का हिस्सा होता है
मुक्तपुरुष वही है जिसके भीतर से अब जीवन की भी आकांक्षा नहीं रही। फिर मौत कोई परिणाम नहीं ला पाती।
और जहां मौत व्यर्थ हो जाती है, वही कसौटी है कि तुमने परम जीवन को जाना। उस परम जीवन का नाम महावीर मोक्ष रखते हैं या निर्वाण।
लेकिन बुद्ध और महावीर दोनों ने निर्वाण शब्द का उपयोग अलग-अलग अर्थों में किया है। बुद्ध के निर्वाण का ठीक वही अर्थ होता है जो दीये के बुझने का होता है। दीये को फूंककर बुझा देते हैं, उसको हम कहते हैं दीये का निर्वाण हो गया। महावीर के निर्वाण शब्द का अर्थ अलग है, क्योंकि उनकी जीवन-दृष्टि अलग है। महावीर कहते हैं, दीया नहीं बुझता। दीया तो बुझेगा ही नहीं कभी; यह ज्योति तो सदा रहनेवाली है। सिर्फ दीये की ज्योति से धुआं नहीं उठता।
"वाण" का अर्थ होता है वासना। "निब्बाण" का अर्थ होता हैः वासनारहित
हो जाना। तुमने देखा, ईंधन जलाते होः लपटें भी उठती हैं, धुआं भी उठता है। अगर ईंधन गीला हो तो धुआं बहुत उठता है; अगर ईंधन सूखा हो तो कम उठता है। अगर ईंधन बिल्कुल सूखा हो तो धुआं उठ ही नहीं सकता; क्योंकि धुआं आग के कारण नहीं उठता, लकड़ी के गीलेपन के कारण उठता है; लकड़ी के कारण नहीं उठता, वह जो लकड़ी में पानी छिपा है, उसके कारण उठता है।
तो महावीर कहते हैं कि जब ऐसी सूखे ईंधन जैसी व्यक्ति की चेतना हो जाती है, जिसमें वासना का कोई गीलापन नहीं रहा, सूख गई पोर-पोर, वासना- मात्र सूख गई, हरी वासना जरा भी न रही--तब लपट तो उठती है, लेकिन धुआं नहीं उठता।
उस निर्धूम लपट का नाम निर्वाण है। वासना के गिर जाने का नाम निर्वाण।
बुद्ध के हिसाब से तो आत्मा के मिट जाने का नाम निर्वाण, महावीर के हिसाब से वासना के मिट जाने का नाम निर्वाण।
"मार्ग है उपाय, मोक्ष है फल।" और इन दो बातों में, महावीर कहते हैं, सारी बात हो गई।
"दर्शन, ज्ञान, चारिष्य तथा तप को जिनेंद्रदेव ने मोक्ष का मार्ग कहा है। शुभ और अशुभ भाव मोक्ष के मार्ग नहीं हैं। इन भावों से तो नियमतः कर्म-बंध होता है।"
फिर मार्ग क्या है?
"दंसणाणचरित्ताणि... "
दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप--ये शब्द बड़े बहुमूल्य हैं। महावीर का सारा नवनीत इन तीन शब्दों में, त्रिरत्न--दर्शन, ज्ञान, चरित्र--में समाया हुआ है।

"दर्शन" का अर्थ हैः देखने की क्षमता; द्रष्टा, साक्षी। "ज्ञान" का अर्थ हैः साक्षी को जो दिखाई पड़ता है; द्रष्टा के जो अनुभव में आता है। और "चारिष्य" का अर्थ हैः जो जागा, जिसने देखा, जिसने जाना--उस जानने के कारण जो जीवन में उतर आता है।
तो पहली तो घटना घटती है साक्षी-भाव में दर्शन की। दूसरी घटना घटती है बोध की, ज्ञान की--समझ में आया। तीसरी घटना घटती है चारिष्य की। क्योंकि जो समझ में आ गया, उससे विपरीत करोगे कैसे?
अगर तुम जैन मुनियों से पूछो तो वे अकसर उलटी व्याख्या कर रहे हैं। वे चरित्र को पहले रखते हैं जबकि किसी सूत्र में महावीर ने चरित्र को पहले नहीं रखा; चरित्र को अंतिम रखा है। पहला दर्शन, फिर ज्ञान, फिर चरित्र। अगर जैन मुनि से पूछो तो वह कहता हैः "चरित्र! पहले चरित्र को सुधारो। जब चरित्र सुधरेगा तो ज्ञान होगा। चरित्रहीन को कहीं ज्ञान हुआ है? और जब ज्ञान होगा तब कहीं दर्शन उपलब्ध होगा।" उसने सारी बात उलटी कर ली।
लेकिन महावीर के शब्दों में कहीं भी चरित्र पहले नहीं आता--आ नहीं सकता। पहले तो मूर्च्छा तोड़नी जरूरी है। दर्शन यानी मूर्च्छा का टूट जाना; देखने की क्षमता आ जाना; आंख का खुल जाना। आंख खुली कि अनुभव में आना शुरू होता है कि क्या है सत्य। वह जो "क्या है सत्य", उसकी अनुभूति है, उसका नाम ज्ञान है।
तो ज्ञान शास्त्र से नहीं मिल सकता।
इसलिए महावीर ने ज्ञान को दर्शन के बाद रखा है। ज्ञान तो मिल सकता है केवल ध्यान से, शास्त्र से नहीं। और चारिष्य कभी भी अभ्यास करने से नहीं पैदा हो सकता। अभ्यास से तो जो पैदा होता है, वह आदत है।
चारिष्य तो तब पैदा होता है जब तुम्हारे भीतर दृष्टि इतनी सघन होती
है कि तुम उसके विपरीत नहीं चल पाते।
मैंने सुना है, एक बिच्छू ने एक केंकड़े से कहा कि मुझे नदी के उस पार जाना है, मित्र! पार करवा दो! उस केंकड़े ने कहा, "तुमने मुझे नासमझ समझा है? बीच रास्ते में मेरी पीठ पर बैठे डंक मार दोगे, डूब जाऊंगा, मर जाऊंगा।" बिच्छू ने कहा, "मालूम होता है तर्क में तुम बहुत कमजोर हो। तुमने ठीक तर्क-शास्त्र का शिक्षण नहीं लिया। अरे नासमझ! जब मैं पीठ पर तेरी बैठा हूं और डंक मारूंगा तो तू डूबेगा वह तो ठीक, मैं भी तो डूबूंगा! मैं भी तो मरूंगा! तो यह बात तर्क के विपरीत है। ऐसा मैं कैसे कर सकूंगा? तेरी ही मौत होती होती तो समझ में आ सकता था; तेरी मौत तो मेरी मौत भी बनेगी। इसलिए यह बात तर्क के अनुकूल नहीं है।" केंकड़े ने कहा, "बात तो ठीक है। तर्क के बिल्कुल अनुकूल नहीं है। आओ बैठ जाओ!" बैठ गया पीठ पर बिच्छू, चल पड़े दोनों और बीच मझधार में जो होना था हुआ। बिच्छू ने डंक मारा। जब डंक मारा और दोनों डूबने लगे तो मरते-मरते केंकड़े ने पूछा कि महानुभाव, तर्क का क्या हुआ? उस बिच्छू ने कहा, "तर्क का इससे क्या संबंध है? यह मेरा चरित्र है।" लोग जैसा जी रहे हैं वैसा जीने को मजबूर हैं। उनके पास दृष्टि ही वैसी जीने की है। तुम सोचते हो, कोई आदमी शराब पीता है, इसलिए मूर्च्छित है। असलियत और है। वह मूर्च्छित है, इसलिए शराब पीता है। तुम सोचते हो, एक आदमी मांसाहार करता है, इसलिए हिंसक है। तुम गलत सोचते हो। वह आदमी हिंसक है, इसलिए मांसाहार करता है। अगर तुमने ऐसा सोचा कि मांसाहार करने के कारण हिंसक है तो तुम्हारी चेष्टा यह होगी कि मांसाहार छुड़ा दो। मांसाहार तो छूट जायेगा, लेकिन अगर वह हिंसक होने के कारण मांसाहारी था, तो हिंसा नहीं छूटेगी। फिर हिंसा नये मार्ग खोज लेगी। किसी और तरफ से हिंसक हो जायेगा वह। किसी और बहाने से हिंसा करेगा।
ध्यान रखना, हम जैसे हैं वह हमारे भीतरी चित्त की अवस्था के कारण है। बाहर से भीतर को नहीं बदला जा सकता। आचरण से अंतस नहीं बदला जा सकता। लेकिन अंतस बदल जाये तो आचरण तत्क्षण बदलना शुरू हो जाता है।
महावीर का सूत्र बिल्कुल साफ हैः दर्शन, ज्ञान, चरित्र। इन तीन को जैनों ने त्रिरत्न कहा है। ये उनकी तीन मणियां हैं, जिन पर मोक्ष का भवन निर्मित होता है। ये आधार हैं। और ये तीन रत्न जिसके पास हैं उसके पास सब आ गया--सारी संपदा सारे जगत की। त्रिलोक की सारी संपदा उसके पास आ गई।

दर्शन उपलब्ध होता है--जागरण से, अप्रमत्तता से, होश से। दर्शन का अर्थ तुम जैन दर्शन, हिंदू दर्शन, बौद्ध दर्शन, ऐसा मत समझ लेना। दर्शन का अर्थ फिलासफी नहीं है। दर्शन का अर्थ हैः देखने की क्षमता; तुम्हारी आंखों का निष्कलुष हो जाना; तुम ऐसे देख सको कि देखने में तुम अपने भावों को मिश्रित न करो; तुम निर्भाव से देख सको; तटस्थ, निष्पक्ष, निर्विकार, तुम अपने को बीच में न डालो; तुम अपने को बिना डाले देख सको। तो फिर तुम्हारे जीवन में दर्शन उपलब्ध होगा।
क्रोध आये, क्रोध को गौर से देखना। क्रोध को रोककर चरित्र निर्मित करने की कोशिश मत करना। क्रोध को गौर से देखना। इतने गौर से देखना कि तुम्हें क्रोध का सारा अर्थ समझ में आ जाये। इतने गौर से देखना कि तुम क्रोध से पृथक और अलग साक्षी हो, यह तुम्हारी अनुभूति में आ जाये। इतने गौर से देखना कि क्रोध वहां पड़ा रह जाये वस्तु की तरह, तुम यहां द्रष्टा की तरह ख.ड़े रह जाओ; तुम्हारे दोनों के बीच का सेतु टूट जाये।
दर्शन का अर्थ होता है सारे सेतुओं का टूट जाना। व्यक्ति अलिप्त खड़ा होकर देखता है--क्रोध है तो क्रोध को; काम है तो काम को; हिंसा है तो हिंसा को; प्रेम है तो प्रेम को; राग है तो राग को अलिप्त भाव से देखता है, सिर्फ देखता है। जिसको कृष्णमूर्ति अवेयरनेस कहते हैं, होश; जिसको बुद्ध ने सम्यक स्मृति कहा है, ठीक-ठीक स्मृति, जिसको गुरजिएफ ने सेल्फ-रिमेंबरिंग कहा है, आत्म-बोध; उसी को महावीर दर्शन कहते हैं। इधर दर्शन की क्षमता घनी होगी कि दर्शन से जो-जो तुम्हें दिखाई पड़ेगा, वह जो दर्शन का सार इकट्ठा होने लगेगा वह है ज्ञान। तो एक तो ज्ञान है जो शास्त्र से मिलता है और एक ज्ञान है जो जीवन के साक्षी-भाव से मिलता है। उसको महावीर ज्ञान कहते हैं। पढ़ लोगे शास्त्र में, उससे क्या होगा? अकसर ऐसा हुआ हैः
अहले-दानिश आम हैं, कमयाब हैं अहले-नजर
क्या तअज्जुब कि खाली रह गया तेरा अयाग।
अहले-दानिश आम हैं--शास्त्रों के जानकार बहुत हैं। तथाकथित बुद्धिमान बहुत हैं। तथाकथित बुद्धिशाली बहुत हैं।
कमयाब हैं अहले-नजर--लेकिन जिनके पास द्रष्टा की दृष्टि है, अहले-नजर, जिनके पास शुद्ध आंख है, देखने की क्षमता है, ऐसे बहुत-बहुत विरले हैं।
अहले-दानिश आम हैं, कमयाब हैं अहले-नजर
क्या तअज्जुब कि खाली रह गया तेरा अयाग।
अगर तुम्हारे जीवन की प्याली अमृत से बिना भरी रह गई तो कुछ आश्चर्य नहीं; क्योंकि तुमने शास्त्रों से ही जीवन की प्याली को भरना चाहा। शास्त्रों से ही तुमने सोचा कि तुम बुद्धिमान हो जाओगे। तो अहले-दानिश हो गये, तथाकथित बुद्धिमान हो गये। कंठस्थ हो गये सत्य। लेकिन कंठस्थ सत्य, सत्य नहीं है--मात्र थोथे सिद्धांत हैं। प्राण कौन डालेगा उनमें? प्राण तो व्यक्ति को स्वयं डालने होते हैं। इसे याद रखना।
जिसे तुम पाओ वही सत्य है। जिसे तुमने नहीं पाया वह सत्य नहीं हो सकता; वह सत्य के संबंध में कोई सिद्धांत होगा। ऐसा ही समझो कि पाक-शास्त्र पढ़ते रहो, पढ़ते रहो, इससे न तो भूख मिटेगी, न जीवन पुष्ट होगा। रोटी पकानी पड़ेगी। आटा गूंथना पड़ेगा। चूल्हा जलाना पड़ेगा। इतना ही नहीं, फिर रोटी पचानी पड़ेगी। रोटी भी बन जाये तो भी कुछ काम नहीं आती, जब तक कि पचाने की क्षमता न हो, जब तक रोटी पचे न और लहू में रूपांतरित न हो जाये, हड्डी, मांस-मज्जा न बने, तब तक किस काम की?
दर्शन की भट्टी में ज्ञान की रोटी पकती है। और ज्ञान की रोटी को जब तुम पचाते हो और ज्ञान की रोटी जब तुम्हारा खून, मांस-मज्जा बन जाती है, तो चारिष्य। चरित्र आखिरी बात है। सबसे पहले तो शून्य आकाश में दर्शन घटता है। फिर दर्शन उतरता है तुम्हारी अंतरात्मा में, ज्ञान बनता है। फिर ज्ञान तुम्हारे जीवन में अनस्यूत हो जाता है। तब चारिष्य बनता है। ये त्रिरत्न और तप।
"तप" शब्द भी समझने जैसा है। तप का अर्थ अपने को दुख देना नहीं होता। तपस्वी का अर्थ अपने को सतानेवाला नहीं है, मेसोचिस्ट नहीं है। तप का अर्थ होता हैः दुख आये तो उसे सहिष्णुता से स्वीकार करना। तप का अर्थ हैः दुख

आये तो उसे दुश्मन की तरह दुत्कारना नहीं; उसे भी मित्र की तरह स्वीकार कर लेना। साधारणतः हम सुख को तो बुलाते हैं, दुख को दुत्कारते हैं। तप का अर्थ होता हैः सुख को तो बुलाना मत; आ गये दुख को स्वीकार कर लेना।
तप हमसे ठीक उलटी व्यवस्था है। अभी हम कहते हैं, सुख आये, चिट्ठियां लिखते हैं सुख को कि आओ, निमंत्रण भेजते हैं। और दुख को, बिना बुलाया भी आ जाये--बिना बुलाया ही आता है, क्योंकि कौन दुख को बुलाता है--उसे हम धक्का देते हैं, बाहर निकालते हैं।
तपश्चर्या का अर्थ हैः इस जीवन-दृष्टि का ठीक उलटा हो जाना। सुख को बुलाना नहीं, कोई निमंत्रण नहीं लिखना और दुख आ जाये तो जो आ गया बिना बुलाये, अतिथि देव है, उसको स्वीकार कर लेना।
तो तप का अर्थ दुख पैदा करना नहीं है; लेकिन दुख जो तुमने जन्मों- जन्मों में अर्जित किया है, वह आयेगा। उसके साथ क्या रुख अपनाओगे? तप एक रुख है, दृष्टि है। तप यह कहता है, मैंने दुख के बीज बोये थे, अब फसल काटने का वक्त आ गया तो मैं काटूंगा। यह फसल कौन काटेगा? दुख के बीज मैंने बोये थे तो फसल भी मुझे ही काटनी है। तो अब रो-रोकर क्या काटनी! अब स्वीकार-भाव से काट लेनी है।
इसे ख्याल रखना; नहीं तो भ्रांति क्या है कि जो लोग तपस्वी बनते हैं,
वे सोचते हैं, अभी सुख को लिखते थे चिट्ठियां, अब दुख को लिखो! मगर चिट्ठियां लिखना जारी रहता है। बुलावा भेजते ही रहते हैं। पहले सुख को पकड़ते थे; अब वे सोचते हैं, दुख को पकड़ो। पहले सुख को न जाने देते थे; अब दुख जाने लगे तो वे कहते हैं, "मत जाओ! तुम्हारे बिना हम कैसे रहेंगे!" लेकिन यह तो विकृति हो गई। यह तो रोग हो गया। यह तो पुराना रोग बदला तो नया रोग पकड़ गया।
तप का सिर्फ इतना ही अर्थ है कि जो आये दुख तो निश्चित हमने कमाया होगा; बिना कमाये कुछ भी आता नहीं। तो हमने किसी न किसी रूप में उसे बुलाया होगा। बिना बुलाये कुछ भी आता नहीं। हमने सुख मानकर ही बुलाया होगा; लेकिन वह हमारी मान्यता भ्रांत थी। जिसको हमने सुख कहकर पुकारा था, वह दुख का नाम था। आ गया दुख, अब इसे स्वीकार कर लेना। इसे धक्के नहीं देना, इनकार नहीं करना। इसका भी साक्षी-भाव रखना है।
"दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप जिनेंद्रदेव ने मोक्ष के मार्ग कहे। शुभ
और अशुभ भाव मोक्ष के मार्ग नहीं हैं... ।"
यह बड़ी क्रांतिकारी बात हैः "शुभ और अशुभ भाव मोक्ष के मार्ग नहीं हैं। इन भावों से तो नियमतः कर्म-बंध होता है।"
अच्छा करूं, बुरा न करूं, पुण्य करूं, पाप न करूं--ये शुभ भाव हैं। किसी
को दुख न दूं, सुख दूं--ये शुभ भाव हैं। मुझसे हिंसा न हो, अहिंसा हो; लोभ न हो, दान हो; क्रोध न हो, दया हो, करुणा हो--ये शुभ भाव हैं। लेकिन महावीर कहते हैं, मुझसे कुछ हो, इसमें ही बंधन है। बुरे का तो बंधन होता ही है, भले का भी बंधन हो जाता है। लोभी तो बंधता ही है, दानी भी बंध जाता है। और पापी तो बंधता ही है, पुण्यात्मा भी बंध जाता है, यद्यपि पुण्यात्मा की जंजीरें सोने की होती हैं।
इसलिए महावीर कहते हैं, शुभ और अशुभ भाव मोक्ष का मार्ग नहीं हैं। दोनों से मुक्त होना है। अशुभ को तो छोड़ना ही है, शुभ को भी छोड़ना है। असाधु को तो छोड़ना ही है, साधु के भी पार जाना है। एक ऐसी दशा चाहिए, जो सभी दशाओं का अतिक्रमण कर जाती हो। एक ऐसी दशा, जिसका लगाव, आग्रह किसी भी बात में न हो।
"इन भावों से तो नियमतः कर्म-बंध होता है।"
दोस्तों के इस कदर सदमे उठाए जान पर
दिल से दुश्मन की शिकायत का गिला जाता रहा।
अगर तुम गौर से देखो तो मित्रों ने इतने कष्ट दिये हैं कि अब दुश्मनों
की क्या शिकायत करनी! महावीर कहते हैं, अगर गौर से देखो तो शुभ आकांक्षाओं से ही पटा पड़ा है नर्क का मार्ग। अशुभ आकांक्षाओं की तो बात ही छोड़ो; उनकी तो शिकायत क्या करनी! अगर कोई क्रोधी बंधन में पड़ा है तो यह तो स्वाभाविक

है; लेकिन चेष्टा करके जो दया कर रहा है, वह भी बंधन में पड़ जाता है। वहां भी अहंकार निर्मित होता है
दोस्तों के इस कदर सदमे उठाए जान पर
दिल से दुश्मन की शिकायत का गिला जाता रहा।
शुभ ने ही इस बुरी तरह सताया है, अशुभ की तो शिकायत क्या करें! अपनों
ने इस तरह सताया है कि परायों की तो बात ही क्या करें! उनकी शिकायत करने जैसी भी नहीं रही।
तुमने देखा, तुम्हारे शुभ भावों ने ही तुम्हें कितना सताया है! प्रेम
ने कितना सताया है, यह तो देखो! फिर घृणा की सोचना। तुम किसी के लिए अच्छा करना चाहते थे, उसके कारण कितनी झंझट में पड़े हो। फिर तुम किसी के लिए बुरा करना चाहते थे, उसकी सोचो।
महावीर कहते हैं, तुम अच्छा-बुरा दोनों ही करनेवाले नहीं हो, ऐसे साक्षी बन जाओ। वहां से मोक्ष का द्वार खुलता है। अच्छा और बुरा तो कर्म का ही मार्ग है। और कर्म तो बांधता है। न शुभ न अशुभ--दोनों के मध्य में संतुलित!
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।
छुरे की तीक्ष्ण धारा की भांति, जैसे कोई पतले छुरे की धार पर चलता हो, ऐसा मार्ग है। शुभ को भी एक तरफ छोड़ देना, अशुभ को भी दूसरी तरफ छोड़ देना। संयमी का अर्थ हैः जो दोनों के मध्य चलने में कुशल हो गया; जो चुनाव नहीं करता, च्वायसलेस, विकल्परहित, निर्विकल्प चलता है; जो मध्य में सम्हलकर चलता है।
हिंदू शास्त्र कहते हैंः मध्यं अभयम्! जो मध्य में है उसे कोई भय नहीं। इधर-उधर हुए कि भय शुरू हुआ। जरा भी झुके बायें, जरा भी झुके दायें, तो भय शुरू हुआ। न तो वामपंथी और न दक्षिणपंथी, ठीक मध्य में, जो अपने को सम्हाल ले!
कठिन लगेगा, क्योंकि हमें आसान लगता हैः अशुभ छोड़ना है, कोई हर्जा नहीं है; शुभ को पकड़ लेंगे! क्रोध छोड़ना है, छोड़ देंगे; करुणा को पकड़ लेंगे। लेकिन कुछ पकड़ने को तो होगा! पकड़ने की हमारी पुरानी आदत है।
महावीर कहते हैं, पकड़ ही संसार है। और सारी पकड़ का छूट जाना, मुट्ठी का खुल जाना ही मोक्ष है।
"अज्ञानवश यदि ज्ञानी भी ऐसा मानने लगे कि शुद्ध सम्प्रयोग अर्थात, भक्ति आदि शुभ भाव से दुख-मुक्ति होती है तो वह भी राग का अंश होने से पर-समयरत होता है।"
महावीर भक्ति को भी बंधन का कारण कह रहे हैं। यह भी अज्ञानवश तथाकथित बुद्धिमान आदमी भी ऐसा मानने लगे कि शुद्ध सम्प्रयोग, शुद्ध भक्ति, तो क्यों बांधेगी, तो वह भी गलत है। शुभ भक्ति से भी राग का ही अंश निर्मित होता है।
महावीर का मार्ग संकल्प का मार्ग है। वहां भक्ति के लिए भी जगह नहीं है।
भगवान के लिए जगह नहीं है; भक्ति के लिए तो जगह कैसे हो सकती है!
ऋग्वेद में ऋषि ने पूछा हैः
कस्मै देवाय हविषा विधेम।
किस देवता को हम अपनी पूजा-अर्चना चढ़ायें, किस देवता की उपासना करें? लेकिन महावीर कहते हैं, जहां तक उपासना है वहां तक तो किसी दूसरे से बंधन हो जायेगा। पर-समयरत, दूसरे पर निर्भर हो जाओगे। परमात्मा होगा तो परतंत्रता होगी। और परतंत्रता होगी तो बंधन निर्मित रहेगा। तुम स्वतंत्र कैसे हो जाओगे? तुम परिपूर्ण मुक्त कैसे हो सकोगे?
महावीर के हिसाब में परमात्मा का होना मोक्ष के विपरीत है। या तो मोक्ष हो सकता है या परमात्मा हो सकता है। अगर परमात्मा है तो मोक्ष नहीं हो सकता; क्योंकि परमात्मा तो निरंकुश होगा। वह तो नियम के ऊपर होगा। महावीर कहते हैं, नियम के ऊपर किसी का भी होना खतरनाक है, क्योंकि फिर उसकी मर्जी! जैसा हिंदू कहते हैं, परमात्मा की लीला, इच्छा! उसने संसार बनाया! यह महावीर को बर्दाश्त के बाहर है।

महावीर कहते हैं, इसका तो अर्थ हुआ कि जो लोग मुक्त हो गये, अगर परमात्मा की लीला हो जाये, इच्छा हो जाये तो उनको वापस संसार में भेजा जा सकता है। तो ऐसे मोक्ष का तो कोई मूल्य न रहा। अगर परमात्मा की मर्जी से संसार निर्मित होता है तो मोक्ष लेकर भी हम क्या करेंगे? उसकी मर्जी जिस दिन बदल जाये, आज्ञा दे दे कि चलो मोक्ष खाली करो, संसार वापस लौटो! अगर खेल ही है और वह निरंकुश है और वह नियम के ऊपर है, तो फिर व्यर्थ बात हो गई। महावीर पूछते हैं कि परमात्मा नियम के ऊपर है, या नियम परमात्मा के ऊपर है? अगर नियम परमात्मा के ऊपर है तो परमात्मा परमात्मा नहीं। फिर नियम ही परमात्मा है। और अगर परमात्मा नियम के ऊपर है तो नियम सब बकवास है। फिर नियम का क्या अर्थ? उसकी निरंकुश इच्छा है; जब वह जैसा चाहे कर दे।
इसलिए महावीर कहते हैं, अगर जगत में व्यवस्था चाहिए... अब तुम चकित होओगे कि दृष्टियां कितनी मौलिक रूप से भिन्न हो सकती हैं! हिंदू कहते हैं, अगर जगत में व्यवस्था चाहिए तो परमात्मा चाहिए। क्योंकि बिना परमात्मा के कौन व्यवस्था करेगा? अराजकता हो जायेगी। और महावीर कहते हैं, अगर परमात्मा हुआ तो अराजकता हो जायेगी। क्योंकि फिर व्यवस्था कैसे सम्हलेगी? अगर नियम के ऊपर कोई बैठा है जो नियम को भी तोड़-मरोड़ कर सकता है तो अव्यवस्था हो जायेगी। महावीर परमात्मा को उसी कारण से इनकार करते हैं जिस कारण से हिंदू स्वीकार करते हैं।

और मोक्ष का अर्थ ही है कि एक ऐसी चित्त की दशा, एक ऐसे चैतन्य की दशा जिसको फिर वापस न लौटाया जा सके। अन्यथा इतने श्रम, इतनी तपश्चर्या, इतनी चेष्टा से जो उपलब्ध हुआ है, वह किसी परमात्मा के खेल की बात बन जाये तो थोड़ी ज्यादती हो गई। जन्मों-जन्मों की चेष्टाओं के बाद जिसे पाया जाता है, उसे पाकर अगर जरा-सी उसकी मर्जी के बदलने से खोना पड़े, तो वह उपलब्धि उपलब्धि के योग्य न रही। फिर जगत एक पागलपन है।
"शुद्ध सम्प्रयोग अर्थात भक्ति आदि शुभ भाव से दुख मुक्ति होती है, ऐसा अगर कोई मानता हो तो वह गलत मानता है, क्योंकि वह भी राग का अंश है।" अगर भक्तों की बात सुनें तो लगता भी है कि राग का अंश। शुद्ध राग है, बड़ा श्रेष्ठ राग है, जरा भी दूषित नहीं है संसार से--लेकिन फिर भी राग तो है ही!
उसके मजकूर के सिवा "बेदार"
और कुछ बात खुश नहीं आती।
भक्त कहता है, भगवान की याद के सिवाय और कुछ बात में मजा नहीं आता। लेकिन इसका अर्थ तो साफ हुआ कि मजा अभी अपना नहीं है--उसकी याद! तो कहीं निर्भर है, पर है, अपने से बाहर है।
शाम से आ रही है याद तेरी
जाम छलका रही है याद तेरी
झनझना-सा रहा है साजे-ख्याल
गीत-से गा रही है याद तेरी।
लेकिन भक्त वैसे ही शब्दों का उपयोग करता है परमात्मा के लिए जो वह प्रेयसी के लिए करता है या प्रेमी के लिए करता है। फर्क नहीं मालूम पड़ता। ऐसा लगता है कि जो हमारा राग मनुष्यों के प्रति था, उसी राग को हम परमात्मा की तरफ आरोपित कर देते हैं।
शाम से आ रही है याद तेरी
जाम छलका रही है याद तेरी
झनझना-सा रहा है साजे-ख्याल
गीत-से गा रही है याद तेरी।
यह हम प्रेयसी के लिए भी कह सकते हैं और परमात्मा के लिए भी कह सकते हैं।
इसलिए सूफियों के वचन दोहरे अर्थ किये जा सकते हैं। या तो तुम उनका अर्थ कर लो सांसारिक, तो प्रेयसी के लिए कहे गये हैं; या अर्थ कर लो आध्यात्मिक, तो परमात्मा के लिए कहे गये हैं। लेकिन शब्द वही के वही हैं। उमर खैयाम की रुबाइयां इसी तरह भ्रष्ट हुईं। जिस व्यक्ति ने पहली दफा

अनुवाद किया फिट.जराल्ड ने, अंग्रेजी में, उसने समझा कि ये मधु-गीत हैं, शराब की प्रशंसा में गाये गए गीत हैं। लेकिन उमर खैयाम शराब कहता है परमात्मा की याद को, उसकी स्मृति को, जिक्र को। और जिन साकियों की वह बात करता है, वह वही परमात्मा है। और जिस मधु के ढालने की बात कर रहा है, वह जीवन-रस है। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? फिट.जराल्ड ने अनुवाद दिया। उसने समझा कि यह सब प्रेयसी, साकी, मधुशाला--ये सब संसार की ही चीजें हैं। दोनों के लिए उपयोग हो सकते हैं।
चलो छिया-छी हो अंतर में
तुम चंदा
मैं रात सुहागन
चमक-चमक उट्ठे आंगन में
चलो छिया-छी हो अंतर में
भक्त जो भाषा बोलते हैं--मीरा की भाषा, चैतन्य की भाषा या कबीर की-- उसमें कठिनाई मालूम होगी।
कबीर कहते हैं, मैं राम की दुलहन हो गया! आखिर भाषा तो इसी जगत के रागात्मक शब्दों का उपयोग कर रही है। मीरा कहती है, "सेज को तैयार किया है, तुम कब आओगे?" "सेज को तैयार किया है"--यह तो सुहागरात की ही बात हो गई।
तो महावीर के कहने में सार्थकता भी है कि कितना ही शुद्ध राग हो जाये, कितना ही शुद्ध सम्प्रयोग, कितनी ही शुद्ध भक्ति हो, लेकिन उसमें स्वर तो संसार का ही होगा।
सहर के वक्त मय पीने से मुझको रोक मत नासेह
कि सिजदे के लिए दिल में जरा-सा सिद्क लाना है।
सूफी कहते हैं कि हमें प्रार्थना के वक्त पीने से मत रोको, क्योंकि प्रार्थना के लिए थोड़ी सचाई लानी है। और बिना पीए कहीं सचाई हुई? बिना पीए तो आदमी झूठ और धोखे दिये चला जाता है। इसलिए तो शराबी की बातें सुनो, वह ज्यादा ईमानदारी की होती है। वह सच बोलने लगता है। फिक्र ही न रही झूठ बोलने की। झूठ याद कौन रखे! फायदा, हानि, लाभ--कुछ भी न रहा।
सहर के वक्त मय पीने से मुझको रोक मत नासेह!
--हे धर्मगुरु! मुझे प्रार्थना के समय शराब पीने से मत रोक!
कि सिजदे के लिए दिल में जरा-सा सिद्क लाना है।
--थोड़ी-सी सचाई तो होनी चाहिए, नहीं तो प्रार्थना झूठी हो जायेगी।
अब या तो हम समझ लें कि यह बाहर की शराब है या हम समझ लें कि किसी भीतर
की शराब है। लेकिन महावीर कहते हैं, शराब शराब है। तुम इसे कितना ही ऊंचा उठाओ, और कितने ही शुद्ध अंगूरों से निचोड़ो, शराब शराब है। और नशा नशा है। यह किसी की सुंदर सूरत को देखकर छा जाये या यह परमात्मा के फूल और पक्षियों के गीत सुनकर आ जाये, इससे क्या फर्क पड़ता है? लेकिन तुम्हारा राग अभी भी बाहर है। सुंदर स्त्री बाहर है, सुंदर पुरुष बाहर है, सुंदर फूल भी बाहर हैं--और सुंदर परमात्मा का आकाश और चांद तारे भी बाहर हैं।
"राग का अंश होने से भक्ति भी पर-समयरत है।"
वह दूसरे में लगी। दूसरे में उत्सुक है। अपनी तरफ नहीं लौट रही है। दूसरे की तरफ बह रही है। और दूसरा बंधन है।
इसलिए महावीर भक्ति को भी जगह न देंगे। और अगर हम भक्तों की बातें सुनें तो महावीर की बात में सचाई भी मालूम पड़ती है, निश्चित सचाई मालूम पड़ती है। क्योंकि भक्त भगवान से ऐसी बातें करता है। जैसे प्रेमी एक-दूसरे से बातें करते हैं। मान-मनौवल भी चलती है। रूठना-मनाना भी चलता है। शिकवा- शिकायत भी चलती हैं।
मुझको इस तर्जे-तगाफुल पे खफा होना था
उल्टे तुम मुझ पे खफा हो यह तमाशा क्या है?
भक्त भगवान से कहता हैः
मुझको इस तर्जे-तगाफुल पे खफा होना था--तुम्हारे उपेक्षा-भाव पर मुझे नाराज होना चाहिए; चिल्लाता रहता हूं, तुम्हारा कोई उत्तर भी नहीं पाता... मुझको इस तर्जे-तगाफुल पे खफा होना था
उल्टे तुम मुझ पे खफा हो यह तमाशा क्या है?

भक्त तो बात करता है, प्रार्थना करता है, बोलता है, रोता है कभी, कभी भगवान पर नाराज भी हो जाता है। खफा भी हो जाता है, दो-चार दिन प्रार्थना भी नहीं करता, बंद कर देता है द्वार-दरवाजे कि पड़े रहो। फिर मना भी लेता है। लेकिन महावीर कहेंगे, यह सारा खेल तो कल्पना का है। यह तो राग का ही है। इसमें तो दूसरा अभी भी मौजूद है। माना कि शुद्ध हुआ, शुभ हुआ, किसी को हानि नहीं हो रही है इससे, लाभ ही हो रहा है--लेकिन फिर भी, जहां तक लाभ हो रहा है वहां तक हानि भी जुड़ी है। इसके भी पार जाना है।
महावीर के लिए भाव भी बंधन है। इसलिए महावीर का मार्ग शुद्ध निर्भाव
का मार्ग है। जैन भी जैन मंदिरों में जो कर रहे हैं, महावीर लौटें तो नाराज होंगे। कहेंगे, "तुम यह क्या कर रहे हो? यही सब तो मैंने मना किया था।" महावीर की ही मूर्ति के सामने बैठे हैं साज-शृंगार लगाकर, कि हे प्रभु! महावीर से ही बातें चल रही हैं। महावीर से बात चलाने का उपाय नहीं है। अगर महावीर की मानते हो, अगर महावीर के मार्ग को शुद्ध रखना है, तो महावीर से बातें चलाने का उपाय नहीं है। सच तो पूजा भी जैन धर्म में संभव नहीं हो सकती; प्रार्थना की कोई गुंजाइश नहीं है; भक्ति का कोई मार्ग नहीं है। लेकिन मंदिर बनते हैं, पूजा होती है, प्रतिमा खड़ी होती है।
बात असल ऐसी है कि जिन्हें भक्त होना चाहिए था, वह अगर जैन घरों में पैदा हो जाते हैं तो वह क्या करें! खुद तो भक्त होने का उपाय नहीं है, महावीर को ही भ्रष्ट कर लेते हैं।
दुनिया के सभी धर्म भ्रष्ट हो गये हैं, संकर हो गये हैं; क्योंकि लोग जन्मों के कारण धर्मों में हैं। और यह बड़ी खतरनाक बात है। मैं तो चाहूंगा, महावीर का धर्म शुद्ध हो। क्योंकि शुद्ध हो तो कुछ थोड़े-से लोग जो संकल्प से पहुंच सकते हैं, उनका रास्ता सीधा-साफ हो। लेकिन वह शुद्ध तभी हो सकता है, जब लोग उसे स्वयं चुनें, जन्म के कारण धर्म आरोपित न हो। तो कृष्ण के मार्ग पर ऐसे लोग मिल जायेंगे जिनको महावीर के मार्ग पर होना चाहिए था। वे वहां सब खराब कर रहे हैं। वे प्रार्थना भी करते हैं, लेकिन उनको आंसू नहीं बहते। वे कहते हैं, "कैसे प्रार्थना करें, हृदय में कोई रसधार आती ही नहीं!" इधर महावीर के मार्ग पर ऐसे लोग हैं जो कृष्ण के मार्ग पर होते तो सुगमता से पहुंच जाते। उनकी आंखें लबालब भरी हैं। उनकी प्याली छलकी जा रही है। लेकिन महावीर के वचन हैं कि राग का अंश है भक्ति, तो रोके हुए हैं। आंसुओं को सुखाने की कोशिश कर रहे हैं।
अड़चन पैदा होती है अगर तुम अपने से विपरीत चले गये।
किसी ने पीछे पूछा था कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम समर्पण और संकल्प में समन्वय स्थापित कर लें? वही तो तुमने किया है। हो सकता है, यह सवाल ही नहीं है--वही हुआ है। लेकिन समन्वय हो नहीं सकता। सिर्फ समझौता हो जाता है। तो तुम दोनों बातों का तालमेल बिठा लेते हो। लेकिन उस तालमेल बिठालने में दोनों मार्ग भ्रष्ट हो जाते हैं।
ऐसा ही समझो, बैलगाड़ी से कोई यात्रा करता है, कोई कार से यात्रा करता है, कोई रेलगाड़ी से, कोई हवाई जहाज से--सब पहुंच जाते हैं। सबके मार्ग अलग हैं। रेलगाड़ी रेल की पटरियों पर दौड़ती है। बैलगाड़ी को पटरियों पर दौड़ने की कोई जरूरत नहीं है, ऊबड़-खाबड़ जंगली पथ से भी गुजर जाती है। कार वहां से न गुजर सकेगी। अब ये सब रास्ते और ये सब वाहन ठीक हैं। लेकिन तुमने अगर कहा, समन्वय स्थापित कर लें कि चलो बैलों को लेकर कार में जोत दें, कि कार का इंजिन बैलगाड़ी में रख दें, कि रेल के चक्के बैलगाड़ी में ठोक दें और बैलगाड़ी के चक्के रेल में ठोक दें--तो समन्वय स्थापित नहीं होगा सिर्फ इतना ही होगा कि कोई भी वाहन चलाने में, पहुंचाने में समर्थ न रह जायेगा। यह समन्वय नहीं हुआ। यह तुमने रास्ते ही खराब कर लिए, वाहन ही नष्ट कर दिए। प्रत्येक मार्ग पर सुनिश्चित चिह्न हैं और प्रत्येक मार्ग की अपनी सुनिश्चित दिशा है। तो जब मैं महावीर के मार्ग पर बोल रहा हूं तो तुम ख्याल रखनाः मैं चाहता हूं कि शुद्ध महावीर की बात तुम्हारी समझ में आ जाये; फिर जिसको वह यात्रा सुगम मालूम पड़े वह चल सके। वहां भक्ति को भूल ही जाना। वहां सूफियों से कुछ लेना-देना नहीं। वहां तो तुम शुद्ध निर्भाव होने की चेष्टा करना, क्योंकि वही निर्भाव ही वहां गाड़ी का चाक है।

लेकिन अकसर लोग ऐसा करते हैंः महावीर के मार्ग पर भाव ले आयेंगे और जब नारद को पढ़ेंगे तब उनकी बुद्धि में निर्भाव उठने लगेगा। ये तरकीबें हैं न पहुंचने की। ये बहाने हैं ताकि तुम पहुंच न पाओ। ऐसे उलझाव खड़े करते हो। अंततः समन्वय है, लेकिन वह है गंतव्य पर पहुंचकर। जहां से मैं खड़े होकर देख रहा हूं, वे सभी रास्ते यहीं आ जाते हैं। लेकिन हर रास्ते की व्यवस्था अलग है। कोई पहाड़ से गुजरता है, कोई रेगिस्तानों से गुजरता है, कोई हरियाली से भरे उपवन से गुजरता है। किसी रास्ते पर कोयल की कुहू-कुहू है और किसी रास्ते पर बिल्कुल सन्नाटा है, पक्षी हैं ही नहीं।
रास्तों की अलग-अलग व्यवस्था है। और प्रत्येक ने चेष्टा की है कि उसका रास्ता शुद्ध रहे।
तो महावीर साफ किये दे रहे हैंः
अण्णाणादो णाणी जदि मण्णादि सुद्ध संपओगादो
हवदि त्ति दुक्खमोक्खं, परसमयरदो हवदि जीवो।।
भक्ति भी दुख-मुक्ति की तरफ नहीं ले जायेगी।
ध्यान रखना, जब महावीर कहते हैं, भक्ति दुख-मुक्ति की तरफ नहीं ले जायेगी, तो यह सार्थक है वचन महावीर के मार्ग पर। यह वचन आत्यंतिक नहीं है। इस वचन से नारद गलत नहीं होते। इस वचन से सिर्फ इतना ही साफ होता है कि महावीर के मार्ग पर भक्ति की कोयल की कुहू-कुहू नहीं है। और अगर महावीर के मार्ग पर भक्ति की कोयल की कुहू-कुहू सुनाई पड़े, तो तुम भटक गये हो, तुम मार्ग पर हो नहीं। वहां भाव बंधन है; क्योंकि वहां दूसरे की मौजूदगी परतंत्रता है।
धिगस्तु परवश्यताम्।
--धिक्कार है परवशता को, परतंत्रता को!
वहां परमात्मा प्रीतिकर नहीं है। उसकी मौजूदगी ही अपनी गुलामी का सबूत है।
महावीर अपने मार्ग की बात कर रहे हैं। अब यह तुम्हें बड़ा कठिन लगता है। तुम्हें लगता है, अगर महावीर सही हैं तो नारद गलत होने चाहिए। वहां तुम भूल कर रहे हो। तुम्हें लगता है, अगर नारद सही हैं तो महावीर गलत होने चाहिए। तुम बड़ी जल्दी कर रहे हो। तुम जीवन की विराटता को नहीं देख पाते। जीवन इतना विराट है कि सब विरोधी मार्गों को अपने में समाए हुए है। यहां महावीर भी सही हैं और नारद भी सही हैं। और नारद के मार्ग पर चलकर भी लोग पहुंच गये हैं और महावीर के मार्ग पर भी चलकर लोग पहुंच गये हैं।
लेकिन एक बात तय हैः जो भी चले हैं वे पहुंचे हैं। कुछ लोग हैं जो मार्गों के किनारे बैठकर विचार कर रहे हैं कौन सही है! जीवन ऐसे ही बीता चला जाता है सोचने में, कौन सही है! सही का भी कैसे पता चलेगा जब तक चलोगे नहीं? चलने से ही पता चलेगा कौन सही है। क्योंकि जब करीब आने लगोगे जलस्रोत के, तो ठंडी हवाएं छूने लगेंगी। जब करीब आने लगोगे मंजिल के तो जीवन में आलोक आने लगेगा। जब करीब आने लगोगे तो दर्शन ज्ञान बनेगा, ज्ञान चरित्र बनेगा। जैसे-जैसे करीब-करीब आओगे, वैसे पाओगे तुम रूपांतरित हुए, बदले, नये हुए, नया जन्म हुआ।
एक-एक कदम पर जन्म है। एक-एक पल नये का आविर्भाव है। उस आविर्भाव से ही प्रमाण मिलता है कि मैं जो चल रहा हूं तो ठीक चल रहा हूं। लेकिन जो बैठे हैं उनके पास कोई उपाय नहीं है कि जानें कौन ठीक है। तर्क जुटायेंगे, चिंतन करेंगे, शास्त्रों का मेल-ताल बिठायेंगे।
और तर्क वेश्या जैसा है। उसका कोई मूल्य नहीं है। तुम जैसा उसका उपयोग करना चाहो वैसा कर ले सकते हो। अब महावीर कहते हैं, व्यवस्था के कारण परमात्मा को स्वीकार नहीं किया जा सकता। हिंदू कहते हैं, व्यवस्था के लिए परमात्मा की जरूरत है, अन्यथा व्यवस्था कौन करेगा? विपरीत तर्क, लेकिन दोनों ठीक मालूम होते हैं अपनी-अपनी जगह। तुम सोच-सोचकर बैठ-बैठकर, विचार कर-करके कभी न पहुंच पाओगे। उठो और चलो!
महावीर का मार्ग शुद्धतम मार्गों में से एक है। लेकिन उसे शुद्ध रखना। महावीर के मार्ग पर पूजा को मत ले आना, प्रार्थना को मत ले आना।

अगर पूजा-प्रार्थना में ही रस है तो पूजा-प्रार्थना के मार्ग हैं। बजाय इसके कि तुम मार्ग को खराब करो, तुम्हीं उतरकर दूसरे मार्ग पर चले जाना।
दुनिया बड़ी धार्मिक हो जायेगी उस दिन, जिस दिन लोग सुलभता से एक मार्ग
से दूसरे मार्ग पर जा सकेंगे; न उन्हें कोई रोकेगा, न कोई बाधा डालेगा, न उन्हें कोई जबर्दस्ती अपने मार्ग पर खींचेगा, न कोई कन्वर्ट करने को उत्सुक होगा और न कोई रोक लेने को उत्सुक होगा। अगर किसी के मन में उमंग उठी है आनंद की, रस की, भाव की, तो वह मार्ग खोज लेगा भाव का। कोई बाधा नहीं डालेगा, न कोई उसे प्रभावित करेगा कि इस मार्ग पर आओ। क्योंकि कभी-कभी प्रभाव में तुम गलत मार्ग पर जा सकते हो। कभी-कभी रोकने की वजह से गलत मार्ग पर रुक सकते हो।
जीवन एक मुक्त हलन-चलन, रूपांतरण, बदलाहट की सुविधा होनी चाहिए।
महावीर का मार्ग अपने-आप में पूर्ण सही है। पर उससे कोई और गलत नहीं होता। उससे विपरीत दिखाई पड़नेवाले भी गलत नहीं होते। इतना तुम्हें स्मरण रहे तो तुम्हारे भीतर संप्रदाय का भाव पैदा नहीं होगा।
संप्रदाय का भाव इस तरह पैदा होता है। इन सूत्रों को जो पढ़ेगा... । जैन पढ़ते रहे हैं। तो जब वे देखते हैं किसी को मंदिर की तरफ जाते कृष्ण के, तब उनको लगता है, बेचारा भटका! उनको याद आता है महावीर का सूत्र कि राग का अंश है भक्ति! और यह आदमी राग में पड़ा है।
नहीं, यह तुम सोचना ही मत। तुमने अपने लिए सोच लिया, काफी है। तुम्हें दूसरे की अंतर्व्यवस्था का कुछ भी पता नहीं है। तुम बस अपने लिए निर्णय कर लो, उतना बहुत। और वह निर्णय भी चलने के लिए हो, बैठे-बैठे सोचने के लिए नहीं।
महावीर तुम्हें वहां ले जाना चाहते हैं जहां न कोई विचार रह जाता, न कोई भाव रह जाता, न कोई चाह रह जाती, न कोई परमात्मा रह जाता--जहां बस तुम एकांत अकेले अपनी परिपूर्णता शुद्धता में बच रहते हो!
निर्धूम जलती है तुम्हारी चेतना!
हर मंजर-ए-बुलंद भी अब पस्त हो चुका
ऐ अर्श किस फजा में उड़ा जा रहा हूं मैं।
ऊंचाइयां भी जहां नीचे छूट जाती हैं।
हर मंजर-ए-बुलंद भी अब पस्त हो चुका
ऊंचाइयां भी पीछे छूट गईं। ऊंचाइयां भी! नीचाइयां तो छूट ही गईं, ऊंचाइयां भी छूट गईं। अशुभ तो छूट ही गया, शुभ भी छूट गया। पाप तो छूटा, पुण्य भी छूटा।
हर मंजर-ए-बुलंद भी अब पस्त हो चुका
ऐ अर्श किस फजा में उड़ा जा रहा हूं मैं।
--और मैं किस आकाश में उड़ रहा हूं!
महावीर उस आकाश को आत्मा कहते हैं। अंतआर्काश! परम आनंद है वहां! परम शांति!
महावीर उस परम दशा को ही परमात्म-दशा कहते हैं।
परमात्मा एक नहीं है महावीर के लिए, वरन प्रत्येक व्यक्ति की नियति है। हर व्यक्ति परमात्मा होने के मार्ग पर है। हर व्यक्ति परमात्मा हो रहा है; देर-अबेर होता चला जा रहा है।
परमात्मा सृष्टि के प्रथम क्षण में नहीं है--परमात्मा प्र्रत्येक व्यक्ति की अंतिम उपलब्धि में है। उतने ही परमात्मा हैं जितनी आत्माएं हैं। फिर ये आत्माएं बहिर्मुखी हों तो परमात्मा बाहर की तरफ देख रहा है; अंतर्मुखी हों तो अंदर की तरफ देख रहा है। बहिर्मुख, अंतर्मुख, दोनों से मुक्त हों तो परमात्मा स्थित हुआ, स्वस्थ हुआ, अपने में लौट आया। इस अवस्था को महावीर मोक्ष कहते हैं।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
बाईसवां प्रवचन

परमात्मा के मंदिर का द्वारः प्रेम

पहला प्रश्नः इस जगत में न पकड़ने-योग्य कुछ है, न छोड़ने-योग्य--ऐसा आपने कहा। और मैंने तटस्थता में शांति का अनुभव भी पाया। लेकिन एक बात पकड़ने और छोड़ने के बीच बेचैन कर गई--वह है प्रेम-वासना। मेरे जीवन का वही एक प्रश्न है, समस्या है।

प्रेम समस्या नहीं है--बनाना चाहो तो समस्या बन सकती है।
प्रेम है जीवन का समाधान। लेकिन तुम्हारे देखने में कहीं कोई भूल-चूक
हो रही है। तुमने प्रेम को निष्पक्ष भाव से नहीं देखा। जिन्होंने प्रेम के विपरीत जीवन का ढांचा निर्मित किया है, या जो जीवन-विरोधी हैं, तुमने उनकी आंख से प्रेम को देखा है। तुम्हारी आंखें किन्हीं ख्यालों से भरी हैं, उन ख्यालों के कारण प्रेम समस्या बन जाता है। फिर तो कोई भी चीज समस्या बनाई जा सकती है। समस्या ही बनाना हो तो फिर इस जगत में ऐसी कोई बात नहीं, जो समस्या न बन जाये। कोई भोजन को समस्या बना लेता है। कोई शरीर को समस्या बना लेता है। कोई वस्त्रों को समस्या बना लेता है। प्रेम को भी समस्या बनाना चाहो तो बन सकता है। यह तुम पर निर्भर है। कहीं देखने में कुछ भूल हो रही है।
प्रेम को सदा ही तथाकथित धार्मिकों ने निंदित किया है। क्योंकि जीवन
के विधायक को स्वीकार करनेवाले धर्म अब तक पैदा नहीं हुए; या पैदा भी हुए तो उनकी झलकें आईं और खो गईं। कभी किसी कृष्ण ने बांसुरी बजाई; लेकिन वे स्वर ज्यादा दिन तक गूंजते न रह सके--क्योंकि आदमी रुग्ण है, क्योंकि आदमी बीमार है; और आदमी से कृष्ण की बांसुरी के स्वरों का संबंध नहीं बैठता। आदमी दुखी है और इसलिए दुख के कारण वह जीवन के सुख-रूप को नहीं देख पाता। वह अपने दुख को ही जीवन में देखता है। इसलिए जब भी कोई तुमसे कहेगा, जीवन व्यर्थ है, असार है, तुम्हें तत्क्षण बात समझ में आ जायेगी। क्योंकि तुम्हें भी ऐसा ही लग रहा है।
जिन्हें भी जीने का ढंग न आया, वे जीवन से नाराज हो जाते हैं। अपने से
तो कोई यह देखने को राजी नहीं है कि मेरी शैली गलत, मेरे जीवन को पहचानने का रास्ता गलत, जीवन की तरफ पहुंचने की मेरी व्यवस्था गलत। ऐसा तो कोई नहीं देखता; क्योंकि उसमें तो फिर "मैं" गलत हो जाऊंगा।
हम, अगर अहंकार और जीवन में चुनना हो, तो अहंकार को चुन लेते हैं, जीवन
को नहीं। मैं तो गलत कैसे हो सकता हूं, जीवन ही गलत होना चाहिए! मैं तो गलत कैसे हो सकता हूं, प्रेम ही गलत होना चाहिए!
तो जब भी हमें चुनना होता है, हम "मैं" को चुन लेते हैं कि मैं तो ठीक हूं ही! एक बात तो सुनिश्चित है कि मैं ठीक हूं। और फिर भी जीवन में दुख हैं तो कहीं न कहीं गलती का सूत्रपात होता होगा; कहीं न कहीं भूल के बीज होंगे। तो हम चारों तरफ देखते हैं भूल के बीज खोजने को। कोई धन में देखता है; धन छोड़कर भाग जाता है। लोभ में नहीं देखता; धन में देख लेता है, तो धन को छोड़कर भाग जाता है। अपने भीतर नहीं देखता, तृष्णा में नहीं देखता। लेकिन धन को छोड़कर कहां जाओगे? धन तो बाहर था, बाहर ही रहेगा। तुम कहीं भी भाग जाओ, तुम्हारे भीतर की लोभ-दशा कैसे बदलेगी? कोई देखता है, पद में उपद्रव है, अशांति है--पद छोड़कर हट जाता है।
न तो अशांति पद में है, न धन में है।
कोई देखता है, प्रेम में उलझाव है। प्रेम में उलझाव नहीं है। उलझाव तो तुम्हारी प्रेम न कर पाने की स्थिति में है। तुमने प्रेम के नाम पर कुछ और किया है, इसलिए उलझाव है।
थोड़ा समझो। इधर मैं देखता हूं, सैकड़ों लोग अपनी प्रेम की समस्या लेकर मेरे पास आते हैं। तो पहली बात तो यह है कि प्रेम तो उन्होंने किया ही नहीं है, समस्या है। प्रेम के नाम पर कुछ और किया है। प्रेम के नाम पर ईर्ष्या की है। प्रेम के नाम पर दूसरे पर मालकियत साधनी चाही है। प्रेम के नाम पर

राजनीति की है। प्रेम के नाम पर किसी को दबाना चाहा है, सताना चाहा है। प्रेम के नाम पर किसी के सिर पर बैठ जाना चाहा है। यह नाम प्रेम का है, भीतर छिपा कुछ और है।
तुम जिस स्त्री से कहते हो, मैंने प्रेम किया, तुमने प्रेम किया? तुम जिस पुरुष को कहते हो, मैंने प्रेम किया, तुमने प्रेम किया? जिस बेटे को तुम कहते हो, मैंने प्रेम किया, प्रेम किया? बेटे में तुमने महत्वाकांक्षा की है कि तुम जो नहीं कर पाये, बेटा पूरा करेगा। तुम जो अधूरा छोड़ जाओगे, बेटा पूरा करेगा। बेटे के माध्यम से तुमने एक तरह का अमरत्व साधना चाहा। तुम तो मरोगे, तुम्हारा अंश तुम्हारे बेटे में जीयेगा। चलो इतना ही सही, पूरे न बचोगे, एक अंश बचेगा। वृक्ष न बचेगा, लेकिन बीज तो बचेगा। चलो यही सही। इतना तो इंतजाम कर लें।
कौन अपने बेटे को प्रेम करता है! बेटे के माध्यम से कुछ और चीजें हैं, कुछ अहंकार की एषणाएं हैं जिन्हें तुम पूरा करना चाहते हो। तुम नहीं बन पाये प्रधानमंत्री, बेटा बन जायेगा। तुम नहीं हो पाये बड़े धन कुबेर, बेटा हो जायेगा। नाम तो रहेगा। नाम तो तुम्हारा है, बेटा तो तुम्हारा है! इसलिए दुनिया में इतने मां-बाप कहते हैं कि हम अपने बच्चों को प्रेम करते हैं, लेकिन दुनिया में कहीं प्रेम दिखाई नहीं पड़ता। सभी बच्चे तो मां-बाप से पैदा होते हैं। अगर सच में ही मां-बाप प्रेम करते हैं तो सभी बच्चे प्रेम से पैदा हों और उनके जीवन में प्रेम की सुगंध हो। लेकिन वह सुगंध तो कहीं दिखाई नहीं पड़ती। दिखाई तो पड़ती है घृणा की दुर्गंध। दिखाई तो पड़ता है युद्ध, वैमनस्य, हत्या, हिंसा, क्रोध, और सभी प्रेम के स्रोत से आते हैं। तो जरूर प्रेम के स्रोत में कहीं कोई जहर मिला है। क्योंकि अंतिम परिणाम बताते हैं। फल से पता चलता है वृक्ष का। तो तुम्हारे बेटे के जीवन में अगर प्रेम फले तो ही पता चलेगा कि तुमने प्रेम किया था, तुमने प्रेम की खाद डाली थी। लेकिन किसी बेटे के जीवन से पता नहीं चलता।
पत्नी है, पति है, एक-दूसरे को कहते हैं कि प्रेम करते हैं। लेकिन कभी तुमने देखा, गौर से समझा--यह प्रेम है या कुछ और? प्रेम के नाम से धोखा दे रहा है। फिर समस्याएं खड़ी होती हैं। तुम्हारी पत्नी किसी दूसरे की तरफ गौर से भी देख ले तो अड़चन शुरू हो जाती है। तुम्हारे अतिरिक्त भी सौंदर्य है जगत में। तुमने कुछ सौंदर्य की मोनोपाली, एकाधिकार नहीं कर लिया है। तुम्हारे अतिरिक्त भी सौंदर्य है जगत में। तुममें भी सौंदर्य है, क्योंकि जगत में सौंदर्य है, अन्यथा तुममें भी न होता। तो अगर पत्नी किसी की तरफ भरनजर देख लेती है, तुम घबड़ा क्यों गये हो? इतने परेशान क्यों हो गये हो? घबड़ाहट है।
प्रेम कहीं घबड़ाता है? अगर प्रेम हो तो तुम चुपचाप पूछोगे, "सुंदर लगा
यह व्यक्ति? मुझे भी सुंदर लगा। सुंदर है।" न तो पत्नी को यह छिपाना पड़ेगा कि यह व्यक्ति सुंदर लगा, न तुम्हें इसके लिए कोई संघर्ष करना पड़ेगा कि तुम पत्नी को दबाओ, कि पत्नी की आंख को हटाओ, कि पत्नी पर नियंत्रण करो। कहां क्या बुरा हुआ है?
पति अगर किसी और स्त्री से हंसकर बोल ले, मुस्कुराकर बोल ले तो पत्नी बेचैन है, परेशान है। यह कैसा प्रेम है? यह कैसा प्रेम है जो पति को मुस्कुराते नहीं देख सकता? पत्नी कहती है, मुस्कुराना तो बस मेरे पास। यह तो ऐसे हुआ, जैसे कि तुम कहो कि सांस लेना तो बस मेरे पास! बाकी चौबीस घंटे और कहीं श्वास मत लेना।
मुस्कुराहट भी श्वास है। प्रेम भी श्वास है। और जैसे बिना भोजन के आदमी मर जाता है--बिना प्रेम के आदमी मर जाता है। बिना भोजन के शरीर मरता है--बिना प्रेम के आत्मा मर जाती है। तो बिना भोजन के तो तुम जी भी लो--थोड़े दिन; बिना प्रेम के तो तुम क्षणभर नहीं जी सकते। क्योंकि प्रेम ही तुम्हारी आत्मा की श्वास है। जैसे शरीर को आक्सीजन चाहिए प्रतिपल, ऐसे ही प्राणों को प्रेम चाहिए प्रतिपल। लेकिन तुम घर के बाहर जाते हो तो भी डरे हो। किसी से प्रेम से बात भी करते हो तो भीतर एक भय खड़ा है कि कहीं पत्नी को पता न चल जाये। यह कैसा प्रेम हुआ, जो तुम्हारी प्रसन्नता के विपरीत आ रहा है? यह कैसा प्रेम हुआ, जो तुम्हें दुखी देखना चाहता है, प्रसन्न नहीं

देखना चाहता? यह कैसा प्रेम हुआ जो तुम्हें बांधता है, मुक्त नहीं करता? नहीं, यह प्रेम का नाम है। इसके पीछे कुछ और है--मालकियत है, पजेसिवनेस है, एकाधिकार है। इसमें प्रेम कम, अर्थशास्त्र ज्यादा है।
पत्नी डरी है कि अगर कहीं तुम किसी दूसरे में उत्सुक हो गये तो मेरी व्यवस्था का, धन का, मेरे बच्चों का, घर का क्या होगा! तुममें कोई उत्सुकता नहीं है--आर्थिक व्यवस्था का सवाल है। अर्थ के नियोजन में गड़बड़ पड़ जायेगी। न तुम पत्नी में उत्सुक हो। कुछ और बातें हैं, जिनके कारण तुम उत्सुक हो। प्रतिष्ठा है। समाज में आदर-सम्मान है। लोग कहते हैं कि ऐसा एक पत्नी- व्रती कोई दूसरा देखा नहीं। राम के बाद बस तुम्हीं हुए हो। तो एक रिस्पेक्टेबिलिटी है, एक सम्मान है। अगर यहां-वहां नजर गई, सम्मान बिखर जायेगा। प्रतिष्ठा दांव पर लगेगी। बाजार में नाम नीचा गिरेगा। दुकान कम चलेगी। सब गड़बड़ हो जायेगी। हजार और बातें हैं।
फिर इन्हीं बातों के कारण अड़चन होती है। तो तुम कहते हो, प्रेम के कारण समस्या खड़ी हो रही है।
अब तक मैंने ऐसी कोई घटना नहीं देखी और हजारों लोगों के चित्त के निरीक्षण से तुमसे कहता हूं कि जब प्रेम ने समस्या खड़ी की हो, समस्या किसी और चीज ने खड़ी की है। लेकिन बुनियादी भूल तो तुम यह मानकर चलते हो कि वही प्रेम था। फिर जब समस्या खड़ी होती है तो प्रेम पर ही दोष थोप देते हो। प्रेम ने तो लोगों को मुक्त किया है। प्रेम ने तो जीवन में स्वाद दिया है परमात्मा का। प्रेम के माध्यम से ही लोग धीरे-धीरे प्रार्थना की तरफ सरके हैं, आकर्षित हुए हैं। प्रार्थना में स्वाद मिला है अनंत का, अज्ञात का। प्रेम ने बल दिया है। प्रेम ने अभियान दिया है, साहस दिया है। लेकिन प्रेम ने समस्या कभी भी नहीं दी।
अगर प्रेम समस्या देता होता तो जीसस कैसे कहते कि परमात्मा प्रेम है?
तो तो फिर भक्ति-शास्त्र का सारा का सारा आधार गिर जाता। प्रेम से तो भक्तों ने भगवान को ही खोजा है। और तुम कहते हो, प्रेम में समस्या है! तो तुम जरा फिर से विचार करना। प्रेम में कुछ और मिश्रित होगा। उस मिश्रित के कारण समस्या खड़ी होगी। उस मिश्रित को गिरा दो।
ईर्ष्या मत करो प्रेम के माध्यम से और महत्वाकांक्षा मत करो। और प्रेम के माध्यम से किसी की मालकियत मत करो। और प्रेम के माध्यम से किसी तरह की गुलामी मत थोपो। प्रेम पर्याप्त है। प्रेम से कुछ और मत चाहो। प्रेम अपने में साध्य है; उसे साधन मत बनाओ। फिर तुम देखोगे कि जीवन बड़ी शांति से विकसित होने लगा। और शांति से ही नहीं, क्योंकि सिर्फ शांति भी थोड़ी मुर्दा मालूम होती है।
मैं तुम्हें तुम्हारे जीवन को शांति-मात्र का लक्ष्य नहीं देता हूं; क्योंकि जिस शांति में आनंद की पुलक न हो, वह शांति पर्याप्त नहीं। जिसमें आनंद की लहरें भी उठती हों, वही शांति ठीक है। नहीं तो शांति का अर्थ केवल इतना होगा कि अशांति नहीं है। कुछ होगा नहीं; कुछ नहीं है, इस पर जोर होगा। फिर तुम्हारी शांति अहिंसा जैसी होगी। फिर तुम्हारी शांति उपद्रव का अभाव होगी; जैसे कि रास्ता न चलता हो, रेलगाड़ी न गुजरती हो, हवाई जहाज न निकलता हो। या तुम दूर हिमालय पर चले गये तो वहां एक तरह की शांति है, सन्नाटा है। लेकिन उस सन्नाटे में बहुत मूल्य नहीं है; क्योंकि वह सिर्फ अभाव है।
फिर एक और शांति है, जो संगीत की तरह हैः तुम्हारे चारों तरफ वीणा बजने लगे; बाहर-भीतर एक नृत्य होने लगे; शांति गाये भी नाचे भी, उमंग से भरी हो, हर्षोन्माद हो तो ही, तो ही ठीक है।
तो इतना ही काफी नहीं कि तुम शांत हो जाओ। इसे समझना।
जो लोग प्रेम के जीवन को छोड़कर हट जायेंगे, इस ख्याल से कि वहां समस्या थी, वे शांत तो हो जायेंगे, लेकिन आनंदित न हो पायेंगे। उनकी आंखों में चिंता के बादल तो न होंगे, लेकिन आनंद-अश्रुओं की वर्षा भी न होगी। उनकी आंखों में तनाव, बेचैनी, परेशानी, चिंता--इसकी धूल-धवांस तो न होगी; लेकिन उनकी आंखों में तुम किसी अनंत का नृत्य न देख पाओगे। उनकी आंखें

झरोखे न बनेंगी परमात्मा की। उनकी आंखें रूखी-रूखी, सूखी-सूखी, मुर्दा- मुर्दा होंगी।
जीवन को शांति का लक्ष्य मत देना। शांति जरूरी है, काफी नहीं। जीवन और बड़े द्वार खोलता है आनंद के। आनंद के पीछे शांति तो अनिवार्य होती है, लेकिन शांति के साथ जरूरी रूप से आनंद नहीं होता। तुम ऐसा मत सोचना कि बीमार न हुए तो स्वस्थ हो गये। बीमार न होना स्वस्थ होने के लिए जरूरी है, लेकिन काफी नहीं। क्योंकि यह भी हो सकता है कि बीमार तुम नहीं हो, लेकिन स्वास्थ्य की कोई पुलक नहीं है। स्वास्थ्य बड़ी अलग बात है। जब कभी तुम स्वस्थ हुए हो, तो तुम्हें पता है कि वह बीमारी न होने का ही नाम नहीं है, कुछ विधायक ऊर्जा तुम्हारे भीतर तरंगें लेती है। यह जरूरी है कि बीमारी न हो तो स्वास्थ्य के उतरने में सहायता आती है। लेकिन जिसने यह समझ लिया कि बीमारियों का अभाव ही स्वास्थ्य है, उसने जीवन के संबंध में बड़ी भूल कर ली।
तो मैं तुमसे कहूंगा, प्रेम पर फिर से विचार करना, ध्यान करना। और प्रेम से भयभीत मत होना। भय है। उसी भय के कारण बहुत लोग भाग गये हैं। भय है।
और भय क्या है?
जब भी तुम किसी व्यक्ति के प्रेम में उतरते हो, दूसरा व्यक्ति तुम्हारे लिए दर्पण बन जाता है और तुम्हारा चेहरा उसमें दिखाई पड़ने लगता है। दर्पण से लोग डरते हैं; क्योंकि दर्पण में वे बातें दिखाई पड़ने लगती हैं जो तुम नहीं देखना चाहते। अकेले थे तो क्रोध का पता न चलता था; किसी के प्रेम में पड़े तो क्रोध का पता चलेगा। दूसरा दर्पण बन गया। और दूसरा चुनौती बन गया। और चारों तरफ स्थितियां खड़ी होंगी, जिनमें तुम्हारा क्रोध प्रगट होने लगेगा, तुम्हारे धोखे जाहिर होने लगेंगे। तुम्हारे झूठे चेहरे कभी-कभी खिसक जायेंगे और गिर जायेंगे। कुछ ऐसी स्थितियां बनने लगेंगी जिसमें तुम निर्वस्त्र हो जाओगे। तुम्हारे भीतर की नग्नता झांकने लगेगी। डर लगता है!
अकेले में आदमी अपने को ढांककर बैठा रहता है। संबंध बड़े सूचक होते हैं। संबंधों में ही पता चलता है तुम कौन हो। क्योंकि दूसरे की आंख में तुम्हारी जो छवि बनती है, उसी को तो तुम देख पाते हो; खुद की तो कोई छवि देखने का सीधा उपाय नहीं है। तुम सीधे तो अपने को देख ही न सकोगे। देखने के लिए दर्पण चाहिए। और दर्पण तो मुर्दा है--संबंधों का दर्पण जीवंत है। जब दूसरे की आंख में तुम्हारी छवि बनती है, तब तुम्हारा सत्य प्रगट होने लगता है। इसे थोड़ा समझो।
जब तुम अकेले हो तो तुम बेईमान नहीं हो सकते, न ईमानदार हो सकते हो; क्योंकि अकेले में क्या बेईमानी और क्या ईमानदारी! दूसरा चाहिए। तो अकेले आदमी को ऐसा भ्रम हो सकता है कि मैं ईमानदार हूं। इसलिए तो लोग जंगलों में भाग गये, गुफाओं में छिप गये।
अकेले में बड़ी सुविधा है; क्योंकि न बेईमानी है, तो साफ हो गया कि ईमानदार हैं। लोगों ने अभाव को परिभाषा बना लिया। लेकिन तुम ईमानदार भी नहीं हो जब तुम अकेले में हो। क्योंकि अकेले में किसके साथ ईमानदारी, कैसी ईमानदारी?
आओ वापस संबंधों में करीब लोगों के। वहां तत्क्षण पता चलेगा, तुम ईमानदार हो कि बेईमान; तुम झूठ बोलते हो कि सच। यह अकेले में कैसे पता चलेगा? किससे बोलोगे? तुम करुणावान हो या कठोर, यह कैसे पता चलेगा? करीब आओ! किसी जीवन को निकट आने दो।
और तत्क्षण तुम्हारे भीतर कुछ घटने लगेगा, जिससे साफ होगा कि तुम में कठोरता है या करुणा है।
अब तुम देखो, जैन मुनि हैं! अहिंसा और करुणा उनके जीवन का मूल आधार होना चाहिए, लेकिन है नहीं। क्योंकि जब तुम अपने को जीवन से तोड़ लोगे तो करुणा का पता कैसे चलेगा? किस हिसाब से तुम्हारे भीतर करुणा प्रगट होगी? कोई उपाय नहीं है। जैन मुनि रास्ते से गुजरता हो तो अगर एक भिखमंगा उसके सामने हाथ फैला दे, तो उसके पास देने को भी कुछ नहीं है। तो तुम यह तो न

कहोगे, यह कृपण है। तुम कहोगे, यह तो त्यागी है, इसके पास कुछ है ही नहीं; देने को ही कुछ नहीं है तो देने का सवाल नहीं उठता। लेकिन क्या जरूरी है कि इसके पास देने को कुछ नहीं है, लेकिन यह देना चाहता था? कैसे पता चलेगा कि देना चाहता था? कहीं ऐसा तो नहीं है इस त्याग में कृपणता ही छिपी हो? अकसर मैंने देखा है, कृपण त्यागी हो जाते हैं। त्याग से बढ़िया उपाय नहीं है कृपणता को छिपाने का। क्योंकि जब कुछ है ही नहीं तो देने का सवाल ही समाप्त हो गया। जैन मुनि से तुम अपेक्षा तो न रखोगे कि गरीब को कुछ दे, भिखमंगे को कुछ दे, बीमार को कुछ दे। देने की छोड़ो, तुम यह भी अपेक्षा नहीं रखते कि बीमार का पैर दबा दे या बीमार को पानी भरकर ला दे। क्योंकि जैन मुनि कहता है, उसमें तो राग है।
जैनों का एक पंथ है--तेरापंथ--आचार्य तुलसी का पंथ। वे तो यहां तक कहते हैं कि अगर राह के किनारे कोई मर रहा हो तो तुम चुपचाप अपने राह से चले जाना। क्योंकि क्या पता, तुम उस प्यासे मरते आदमी को पानी पिला दो, और वह कल हत्यारा हो जाये, तो तुमने हत्या में भाग लिया। ठीक है, वह मर जाता अगर तुम पानी न पिलाते, मर जाता तो हत्या न कर पाता। तुमने पानी पिलाया तो वह जी गया। जी गया, उसने कल जाकर हत्या की, तो तुम यह मत समझना कि तुम बच गये। तुमने ही तो हाथ दिया। इसलिए तुम अपने रास्ते पर चुपचाप चले जाना।
अब यह लगेगा विराग, त्याग! और ऐसी कठोर अवस्था में आदमी अपने भीतर बंद
हो जाता है खोल के भीतर। इसकी पहचान ही मुश्किल हो जाती है कि यह कौन है, क्योंकि दर्पण तोड़ देता है।
संबंधों से जो डरता है, वह दर्पण से डर रहा है। और प्रेम से बड़ा स्वच्छ कोई दर्पण नहीं है। जितने तुम्हारे जीवन में प्रेम के संबंध होंगे, उतनी ही तुम्हारी सचाई जगह-जगह प्रगट होगी--उठते, बैठते, चलते। मैं तुमसे कहता हूं, अपनी सचाई को जानना जरूरी है, तो ही अपनी आत्मा को रूपांतरित किया जा सकता है।
इसलिए घबड़ाओ मत। और प्रेम को समस्या मत बनाओ। इतना डर क्या है? इतनी घबड़ाहट क्या है? अनुभव से उतरो, गुजरो।
जीवन जैसा है, अगर हम उसे वैसा का वैसा जीने को राजी हो जायें और जीवन
जो शिक्षाएं देता है उन शिक्षाओं को सीखने को तत्पर रहें, तो इस जीवन में कुछ भी छोड़ने जैसा नहीं है। जो छोड़ने जैसा है, छूट जायेगा; जो बचने जैसा है, बच जायेगा। न तुम्हें छोड़ना पड़ेगा, न तुम्हें बचाना पड़ेगा।
इसलिए मैं कहता हूं, न यहां कुछ छोड़ने योग्य है, न पकड़ने योग्य। मेरा मतलब समझ लेना। मेरा मतलब यह है कि यहां तो तुम गुजर जाओ जीवन की गहनता सेः जो छूटने योग्य है छूट जायेगा; जो पकड़ने योग्य है बच जायेगा; तुम्हें न कुछ छोड़ना है, तुम्हें न कुछ पकड़ना है। तुम इस राह से गुजर जाओ। लेकिन राह से भागना मत, भगोड़े मत बनना।
दो तरह के लोग हैं। एक हैंः पकड़नेवाले, जिनको हम भोगी कहते हैं। दीवाने हैं। वे उसको भी पकड़ लेते हैं, जो पकड़ने योग्य न था। क्योंकि उनका कुल जोर पकड़ने पर है; जो भी मिले पकड़ लो, सम्हालकर रख लो! कूड़ा-कर्कट हो तो भी रख लो, कौन जाने कल कुछ काम आ जाये! छोड़ने की उनकी हिम्मत नहीं है। फिर इनके विपरीत दूसरे लोग हैं, जिनको हम त्यागी कहते हैं। वे भोगियों जैसे ही हैं, सिर्फ शीर्षासन कर रहे हैं, उलटे खड़े हो गये हैं। वे कहते हैं, सब छोड़ दो। सर्वस्व त्याग! पहला आदमी भूल कर रहा थाः सब पकड़ लो; यह दूसरा आदमी कहता हैः सब छोड़ दो। मैं तुमसे कहता हूंः जीवन में कुछ छोड़ने योग्य है, वह अपने से छूट जाता है; कुछ पकड़ने योग्य है, वह अपने से बच जाता है। और ये दोनों अतियां हैं। और दोनों अतियां खतरनाक हैं।
प्रेम के नाम से कुछ चल रहा है, जो छूटना चाहिए लेकिन वह प्रेम के अनुभव से ही छूटेगा। प्रेम की पीड़ा से गुजरोगे, समझोगे कहां-कहां कांटे हैं, तो उनको छोड़ दोगे। और प्रेम में कुछ है जो बचाने योग्य है; क्योंकि प्रेम में परमात्मा की झलक है। कहीं पूरा प्रेम मत छोड़ बैठना, नहीं तो तुमने टब के पानी के साथ बच्चे को भी फेंक दिया। तुमने कूड़ा-कर्कट के साथ सोना भी फेंक दिया। तुमने असार के साथ सार भी फेंक दिया। यह तो कुछ समझदारी न हुई। यह तो कुछ विवेक न हुआ।

दो तरह के अविवेकी हैं--भोगी और त्यागी। भोगी का अविवेक है कि वह कहता है, कि जो भी है पकड़ लो, असार को भी पकड़ लो। वह बच्चे को तो बचाता ही है, गंदे पानी को भी बचा लेता है, उसको भी सम्हालकर रख लेता है। फिर त्यागी का अविवेक है। वह गंदे पानी को तो फेंकता ही है, बच्चे को भी साथ फेंक देता है। यह दोनों असंयम हैं।
मेरे देखे, संयम तो ऐसी चित्त की दशा है, ऐसी जागरूक दशा, जिसमें जो बचने योग्य है बचना चाहिए, बचता है; जो न बचने योग्य है, छोड़ने योग्य है, छूटता है। इसको ही हमने परमहंस-दशा कहा है। हंस की भांति, कि दूध और पानी को अलग-अलग कर ले।
मैं तुमसे कहता हूं, यहां पानी बहुत है, यहां दूध भी बहुत है। इस संसार में पदार्थ भी है, परमात्मा भी है। यहां रोग भी हैं और स्वास्थ्य भी है। यहां समस्याएं भी हैं और समाधान भी हैं। तुम ये दो भूलों से बचना। सब पकड़ने में गलत भी बच रहता है, सब छोड़ने में सही भी छूट जाता है। हंसा तो मोती चुगे! कंकड़-कंकड़ छोड़ देना, मोती-मोती चुन लेना। प्रेम में बड़े मोती हैं!
इसलिए तुमसे फिर-फिर कहता हूं, उसे समस्या मत बनाना। हां, उसमें कुछ कंकड़ पड़े हैं, उन्हें निकालना जरूरी है।
जैसे-जैसे प्रेम का अनुभव गहन होता है--प्रेम का गुण बदलता है।
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न, मगर क्या कीजे
और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग।
जब कोई व्यक्ति पहली दफा प्रेम में उतरता है, तो प्रेम होता है एक स्वप्न जैसा; जैसे और सब व्यर्थ हो जाता है, प्रेम ही सार्थक हो जाता है। लेकिन जैसे-जैसे प्रेम का अनुभव गहन होता है, प्रेम की पीड़ा साफ होती है, और भी दुख दिखाई पड़ने शुरू होते हैं।
और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न, मगर क्या कीजे
मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग।
और प्रेम बहुत कुछ सिखाता है। प्रेम से बड़ी कोई पाठशाला नहीं है। क्योंकि प्रेम से ज्यादा तुम किसी मनुष्य के निकट और किसी ढंग से आते नहीं हो। जितने तुम निकट आते हो, उतने ही मनुष्य की अंतरात्मा प्रगट होने लगती है। तुम भी झलकते हो, दूसरा भी झलकता है। जितने तुम करीब आते हो, तुम भी उघड़ते हो, दूसरा भी उघड़ता है।
एक तो विज्ञान का ढंग है--दूर खड़े होकर देख लेने का ढंग; बाहर से देख लेने का ढंग। फिर एक कवि का ढंग हैः भीतर गहरे उतरकर, प्रेम करके देखने का ढंग। अब अगर तुम्हें वृक्ष को देखना है, चट्टान को देखना है, तो शायद बाहर से भी देख लो। मैं कहता हूं शायद; क्योंकि जिन्होंने बहुत गहरा देखा है, वे तो कहते हैं, चट्टान को भी बाहर से देखना अधूरा देखना है। क्योंकि चट्टान का भी अंतस्तल है। तो बाहर-बाहर से तुम चट्टान की परिक्रमा कर आओगे, देख लोगे--उस देखने को तुम देखना मत मान लेना। बर्ट्रेंड रसेल ने कहा है, वह परिचय है--एक्वेंटेंस। उसे ज्ञान मत कहना।
फिर एक ज्ञान है कि तुम किसी व्यक्ति के अंतस्तल में उतरते हो; हृदय
से हृदय की गांठ बांधते हो, एक-दूसरे के लिए अपना द्वार-दरवाजा खुला छोड़ते हो।
प्रेम का क्या अर्थ होता है? यही अर्थ होता है कि किसी व्यक्ति के लिए तुमने अब अपने जीवन के सब दरवाजे खुले छोड़ दिये; और किसी व्यक्ति ने तुम्हारे लिए अपने जीवन के सब दरवाजे खुले छोड़ दिये। प्रेम का यही अर्थ होता है कि दो व्यक्तियों के बीच अब छुपाने योग्य कोई राज न रहा। प्रेम का यही अर्थ होता है कि अब दो व्यक्तियों के बीच ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे छिपाया जाये; सब उघाड़ा; दो हृदय अपने आवरण के बाहर आये; दो हृदयों ने एक-

408

दूसरे को नग्नता में देखा; और दो हृदय एक-दूसरे में प्रविष्ट हुए। और यह प्रेम के द्वारा ही संभव है।

अगर तुम बाहर खड़े रहो, जैसा कि वैज्ञानिक खड़ा रहता है, तटस्थ भाव से दर्शक की तरह देखते रहो, प्रेम में डूबो न, तो तुम कभी जान ही न पाओगे। आत्मा को तो न जान पाओगे। इसलिए विज्ञान आत्मा को नहीं जान पाता। विज्ञान कभी भी नहीं जान पायेगा कि आदमी में आत्मा है। क्योंकि आत्मा का पता तो प्रेम के अतिरिक्त और किसी ढंग से चलता ही नहीं। यह कोई चीर-फाड़ करके पता नहीं चलेगा। यह कोई डिसेक्शन, सर्जरी करके पता नहीं चलेगा। यह कोई औजारों को आदमी के भीतर ले जाकर पहचान नहीं हो सकती कि आत्मा है। तब तो कुछ भी न मिलेगा। हड्डी, मांस-मज्जा मिलेगी। जो बाहर-बाहर है, वही पकड़ में आयेगा। जो भीतर-भीतर है, वह छूट जायेगा।
तुमने ख्याल किया कि जिसे तुम प्रेम करते हो, वह हड्डी, मांस-मज्जा नहीं रह जाता! जिसे तुम प्रेम नहीं करते, वह हड्डी, मांस-मज्जा रह जाता है। जिसे तुम प्रेम नहीं करते, वह मात्र शरीर है। जिसे तुम प्रेम करते हो, उसमें पहली दफा आत्मा का बोध होना शुरू होता है।
इसलिए जिन्होंने खूब प्रेम किया, अटूट प्रेम किया, उन्हें सब जगह आत्मा दिखाई पड़ गई। अगर महावीर को पत्थरों में भी दिखाई पड़ गई तो उसका कारण यह नहीं है कि वे दूर खड़े वैज्ञानिक की तरह देखते रहे, वे गहरे में अंतस्तल में संबंधित हुए, उतरे। तो वृक्ष में भी आत्मा दिख गई। तो महावीर वृक्ष का पत्ता तोड़ने में भी चिंता अनुभव करते हैं।
यह चिंता जैन मुनि की चिंता नहीं है। जैन मुनि चिंता करता है, वृक्ष
का पत्ता नहीं तोड़ना है, क्योंकि उसे स्वर्ग जाना है। पशु को नहीं मारना है, क्योंकि नर्क से बचना है। यह दुकानदार का हिसाब है। महावीर वृक्ष को चोट नहीं पहुंचाते, क्योंकि उन्हें दिखाई पड़ा कि वृक्ष सिर्फ वृक्ष नहीं है, जीवंत आत्मा है। न केवल इतना दिखाई पड़ा कि वृक्ष जीवंत आत्मा है, यह भी दिखाई पड़ा कि ठीक मेरे जैसी ही आत्मा है--उसी राह पर जिस पर मैं हूं, थोड़े पीछे सही; आज नहीं कल मनुष्य हो जायेगा।
इसलिए महावीर ने सारे जीवन को पांच हिस्सों में बांट दिया। एकेंद्रिय जीव। पृथ्वी को उन्होंने कहा, एक-इंद्रिय जीव। पृथ्वी भी! महावीर जमीन पर भी चलते हैं तो बहुत क्षमा मांगते हुए चलते हैं। वह भी जीवन है। एक ही उसकी इंद्रिय है--केवल काया, केवल देह।
जिसको वैज्ञानिक अब कहते हैं, अमीबा--महावीर को उसकी पकड़ आ गई थी। वैज्ञानिक कहते हैं, अमीबा पहला प्राण-स्पंदन है; उसके पास केवल देह होती है, न हड्डी, न मस्तिष्क, न आंख, न कान, कुछ भी नहीं; कोई इंद्रिय नहीं, सिर्फ शरीर होता है। वह अपने शरीर को ही अपने भोजन के पास ले आता है। अपने भोजन के ऊपर बैठ जाता है और शरीर और उसका भोजन मिलकर विलीन हो जाते हैं, एक-दूसरे में लीन हो जाते हैं। उसके पास कोई मुंह भी नहीं है। फिर उसका शरीर जब बड़ा होने लगता है--इतना बड़ा हो जाता है कि सम्हालना मुश्किल हो जाता है, तो शरीर दो हिस्सों में टूट जाता है और दो अमीबा हो जाते हैं। इसी तरह उसकी संतति होती है। लेकिन वह जीवन का पहला रूप है।
महावीर ने कहा, एक-इंद्रिय, सिर्फ शरीर जीवन का पहला रूप है। मनुष्य
है पंचेंद्रिय। उसके पास पांच इंद्रियां हैं। वह सबसे विकसित रूप है। लेकिन वृक्ष, पशु-पौधे, सब उसी कतार में हैं; चले आ रहे हैं बढ़ते। हम भी कभी वृक्ष थे और वृक्ष कभी हम जैसे हो जायेंगे।
तो महावीर ने जीवन का एक सागर खोज लिया, जिसमें सभी जीवन की घटनाएं हैं। यह महा प्रेम में घटा है। यह कोई तार्किक विश्लेषण नहीं है। यह महावीर को अनुभव हुआ है। यह तेजस्विता जीवन की उनको प्रतीत हुई। यह बहुत प्रेम में ही हो सकती है।
इसलिए मैं कहता हूं, अहिंसा का मौलिक अर्थ प्रेम है।
तुम घबड़ाना मत! प्रेम तुम्हें बहुत कुछ सिखायेगा। प्रेम तुम्हें तुम्हारे अहंकार का नर्क बतायेगा; तुम उसे छोड़ देना। और प्रेम तुम्हें तुम्हारे हृदय का स्वर्ग भी दिखायेगा; तो उसे पकड़ लेना।

आजिजी सीखी, गरीबों की हिमायत सीखी
यासी हिरमान के दुख-दर्द के मानी सीखे
जेरदस्तों के मुशाइब को समझना सीखा
सर्द आहों के रुखे-जर्द के मानी सीखे।
प्रेम तुम्हें बहुत कुछ सिखायेगा। प्रेम के अतिरिक्त कोई और सिखा ही नहीं सकता। इसलिए अगर प्रेम में कुछ अड़चन मालूम होती है तो उसे प्रेम की अड़चन मत कहना। तुमने अभी प्रेम के पाठ पूरे नहीं सीखे, इसलिए अड़चन आ रही है। जैसे कोई आदमी नया-नया पानी में तैरना शुरू करता है तो हाथ-पैर तड़फड़ाता है, घबड़ाता है, बेचैनी होती है। यह कोई तैरना तैरने का स्वरूप नहीं है; यह तो न तैरने की वजह से हो रहा है।
तुम अगर मुझसे पूछो तो मैं ऐसा कहूंगा, कि प्रेम में जो समस्या है, वह अप्रेम की वजह से पैदा हो रही है। जब यह आदमी तैरना सीख जायेगा तो तैरने में एक प्रसाद आ जाता, तब कोई चेष्टा नहीं करनी होती। तब ठीक-ठीक तैराक तो नदी पर छोड़ देता है अपने को। हाथ-पैर भी नहीं चलाता। नदी ही सम्हाल लेती है। ऐसी कुशलता आ जाती है कि कुछ भी करना नहीं पड़ता; होना काफी रहता है और नदी सम्हाल लेती है।
प्रेम भी चैतन्य के सागर में तैरना है; दूसरे के सागर में डुबकी लगानी है। पहले-पहले हाथ-पैर तड़फड़ायेंगे; घबड़ाहट होगी; सांस रुंधेगी; लगेगा मरे, डूबे; चिल्लाहट होगी कि बचाओ! लेकिन जल्दी ही, इस बचाव की आवाज के कारण निकलकर भाग मत खड़े होना। यह तो तुम्हारी अकुशलता के कारण है। यह तो धीरे- धीरे चली जायेगी। रफ्ता-रफ्ता, आहिस्ता-आहिस्ता अभ्यास गहरा होता जायेगा।
तो प्रेम मत छोड़ो; प्रेम में जागरण को सम्मिलित करो। प्रेम मत छोड़ो; प्रेम के साथ धर्म को, ध्यान को जोड़ो। प्रेम धन ध्यान, बस इतना करो और समस्या विदा हो जायेगी। और समस्या की जगह तुम पाओगेः प्रेम एक अदभुत रहस्य है--और पहला रहस्य जहां से परमात्मा की खबर मिलती है। शुरू-शुरू में घबड़ाहट स्वाभाविक है।
न घबरा जवानी की बेहररवी से
यह दरिया बना लेगा खुद ही किनारा
वहीं तक खुदी है, वहीं से खुदा है
जहां बेकसी ढूंढ़ती हो सहारा।
घबड़ाओ मत। यह आज जो जवानी का तूफान है, यह जो राग-मोह की उठी आंधी है,
यह अपने से ही विदा हो जायेगी। तुम जरा पैर को सम्हालकर चलते रहो।
न घबड़ा जवानी की बेहररवी से
यह दरिया बना लेगा खुद ही किनारा।
हां, जल्दी अगर भाग खड़े हुए तो मुश्किल में पड़ जाओगे। तब न यहां के रहोगे न वहां के।
जो प्रेम से भाग गया उसके पास अहंकार के सिवाय कुछ भी नहीं बचता। यद्यपि अगर तुम बहुत दूर भाग गये तो तुम्हें पता भी न चलेगा अहंकार का, क्योंकि उसका पता भी साथ-संग में चलता है, समूह में चलता है।
तुमने ख्याल किया, आदमी का बच्चा पैदा होता है, अगर उसे संग-साथ न मिले, मां-पिता परिवार न मिले, समूह-समाज न मिले, तो बच नहीं सकता, मर जायेगा। तुम कोई कल्पना कर सकते हो कि आदमी का बच्चा बच जाये बिना समूह, संग-साथ के? हां कभी-कभी ऐसा हुआ है कि भेड़िये आदमी के बच्चे को ले गये; लेकिन वह भी समूह था, संग-साथ था। भेड़ियों ने बचा लिया। लेकिन अकेला तो आज तक कोई मनुष्य का बच्चा बचा नहीं है। जो मनुष्य के शरीर के संबंध में सच है, वही मैं तुमसे कहता हूं, आदमी की आत्मा के संबंध में भी सच है। उसका जन्म भी समूह में होता है--संग-साथ में, परिवार में। आदमी की आत्मा भी अकेले में नहीं जन्मती। हां, अकेले का तुम उपयोग कर सकते हो। कभी-कभी अकेले हो जाने में भी रस है। कभी-कभी दूसरे से दूर हट जाने में भी रस है। लेकिन वह फायदा भी दूसरे से दूर हटने के कारण होता है। ख्याल करना, वह फायदा भी अकेले होने के कारण नहीं होता, दूसरे से दूर हटने के कारण होता है। उसका लाभ भी दूसरे में ही है।

ऐसा समझो कि एक हजार रुपये का ढेर लगा है और एक दस रुपये की ढेरी लगी है। जब हम हजार रुपये की ढेरी हटाते हैं, और दस रुपये की ढेरी हटाते हैं, तो दस रुपये का अभाव भी वैसा ही मालूम पड़ता है जैसे हजार रुपये का अभाव मालूम पड़ता है। अब तो न हजार रुपये हैं न दस रुपये हैं। हजार रुपये का जब ढेर था, तो हजार रुपये की कीमत थी उसकी। पांच रुपये का ढेर था, दस रुपये का ढेर था, तो दस रुपये की कीमत थी; लेकिन दोनों हटा लिये तो जो शून्य पीछे रह जाता है, वह तो लगता है एक ही मूल्य का है। दस रुपये का शून्य भी उतना ही बड़ा है, हजार रुपये का शून्य भी उतना ही बड़ा है। तो तुम गलती कर रहे हो। जीवन में ऐसा नहीं है। जो आदमी जितना गहरा जीया है, जब वह एकांत में जाता है तो उसके एकांत की गहराई भी उतनी ही गहरी होती है। जो आदमी समूह में जीया ही नहीं है, वह एकांत में चला जाता है, तो उसके एकांत की कोई गहराई ही नहीं होती। इसे तुम अनुभव कर सकते हो कि जो आदमी जंगल में ही जीया है, उसे जंगल में कोई सौंदर्य नहीं होता। जो भीड़ में, समूह में, बाजार में बैठा रहा है, जब कभी जंगल जाता है तो जो उसे जंगल में दिखाई पड़ता है, वह जंगल के आदमी को दिखाई नहीं पड़ता।
वानगाग के जीवन में ऐसा स्मरण है कि वानगाग एक समुद्र तट पर, फ्रांस के, अपने चित्र बना रहा था। वह सूरज के पीछे दीवाना था। सूर्योदय, सूर्यास्त--उन पर उसने बड़ी मेहनत की। समुद्र के किनारे वह एक दिन सूर्यास्त का चित्र बना रहा था। उसके चित्र को देख रही थी एक समुद्र के तट की मछुआ की औरत। वह गौर से देखती रही, गौर से देखती रही। वह फिर दूसरे दिन देखने आई, फिर तीसरे दिन देखने आई। और सातवें दिन धीरे-धीरे वानगाग से परिचय भी हो गया। तो जब सूरज डूबने के करीब आया तो उसने कहा कि आप रुकना, मैं जरा अपने पति को, अपने बच्चों को भी ले आऊं। तो वानगाग ने पूछा, किसलिए? तो उसने कहा कि वे भी सूर्यास्त देख लें। तो उसने कहा कि वे तो यहीं रहते ही हैं इस समुद्र तट पर, उन्होंने सूर्यास्त नहीं देखा? उस स्त्री ने कहा, नहीं मैंने भी नहीं देखा था, जब तक आप न आये थे। यह तो इतना स्वाभाविक था हमारे जीवन का हिस्सा कि इसका हमें कभी बोध न हुआ था। तुम्हारे आने से हमें पता चला सूर्यास्त का सौंदर्य।
अब यह वानगाग जहां से आ रहा है, वहां सूर्यास्त मुश्किल है देखना, सूर्योदय देखना मुश्किल; कुहासा घिरा रहता है। इसके लिए सूर्योदय और सूर्यास्त बड़े महिमापूर्ण हैं।
पश्चिम में संडे, सूर्य का दिन छुट्टी का दिन है। क्योंकि सूर्य ऐसा प्रगाढ़ होकर दिखाई नहीं देता जैसा पूरब में दिखाई पड़ता है; ऐसी महिमा नहीं है सूरज की; सूरज ढका-ढका है, छिपा-छिपा है।
तो सूरज का दिन छुट्टी का दिन होना ही चाहिए। लोग उत्सव मनायेंः सूरज निकला है, सूरज का दिन है।
एकांत में उतनी ही गुणवत्ता होगी जितना गहरा तुम्हारे संबंधों का जगत था। जिस आदमी ने खूब भरपूर प्रेम किया है, वह जब हिमालय पर जाकर बैठ जाता है तो उसके हृदय की गहरई पूछो मत। लेकिन जिसने कभी प्रेम ही नहीं किया, वह भी हिमालय की पहाड़ी पर जाकर बैठ जाता है; उसका छिछलापन छिछलापन ही रहनेवाला है।
मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम्हारे एकांत का भी तभी मूल्य है जब तुम्हारे संबंधों की गहराई हो। अगर हजार रुपये की गहराई थी तो तुम्हारा एकांत हजार रुपये के मूल्य का होगा। अगर दस रुपये की गहराई थी तो दस रुपये के मूल्य का होगा।
जीवन का गणित मुर्दा गणित नहीं है। यहां तुमने कितनी तीव्रता से, त्वरा से जीवन को जीया है, उतनी ही अनूठी अनुभूतियां एकांत में उठेंगी। इसलिए मैं कहता हूंः जाओ प्रेम में, क्योंकि तुम्हारे ध्यान की गहराई भी तुम्हारे प्रेम की गहराई पर निर्भर होगी। दूसरे के साथ तो जीकर देख लो, ताकि तुम अपने साथ जीने का राज सीख जाओ।
दूसरे के माध्यम से हम अपने पास आते हैं। दूसरा सेतु है, जिसके द्वारा
हम अपने पर वापस आते हैं।

दो व्यक्तियों के बीच निकटतम दूरी का नाम प्रेम है। जैसे दो बिंदुओं
के बीच निकटतम दूरी का नाम रेखा, ऐसे दो व्यक्तियों के बीच निकटतम दूरी का नाम प्रेम है। अगर थोड़े इरछे-तिरछे चलकर जाते हो तो यह प्रेम नहीं है। सीधे-सीधे!
प्रेम सिखायेगा सरलता। प्रेम सिखायेगा विनम्रता। प्रेम सिखायेगा निरहंकार। प्रेम सिखायेगा त्याग।
इसे तुम ख्याल रखना, जिसने कभी प्रेम नहीं किया उसका त्याग कृपण का त्याग होता है; वह त्याग नहीं है। वह कंजूस है। इसलिए मैं सुनता हूं साधुओं को समझाते कि छोड़ दो धन-दौलत, मौत सब छीन लेगी। अब यह जरा सोचने जैसी बात है कि मौत छीन लेगी, इसलिए छोड़ने को कह रहे हो। मतलब, यह डर छीने जाने का है। इसलिए बेहतर है, छोड़ ही दो। लेकिन प्रेमी कहता है, छोड़ो; क्योंकि जिसने छोड़ा है उसीने भोगा। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जिसने दिया उसीने पाया। प्रेमी कहता है, दे दो; क्योंकि बिना दिये पा न सकोगे।
प्रेम की बड़ी अनूठी कीमिया हैः तुम्हारे पास वही होता है जो तुम दे देते हो। जो तुम बचा लेते हो, वह तुम्हारे पास कभी नहीं होता। दिखता है तुम्हारे पास है, लेकिन तुम उसके मालिक नहीं होते। मालिक तुम उसी के हो जो तुम दे देते हो। जो बांट दिया, उसी के मालिक हो। मालकियत कब घटती है, तुमने सोचा? जब तुम्हारे हाथ से कोई चीज किसी दूसरे हाथ में जाती है, उस क्षण। जब तुम्हारे हाथ से हटती है चीज, तुम मालिक होते हो। अगर तुम्हारी मुट्ठी में बंद रहे, तुम मालिक नहीं होते, ज्यादा से ज्यादा पहरेदार। तिजोड़ी पर बैठे हैं लट्ठ लिये, बंदूक लिये--पर पहरेदार।
जिस क्षण तुम देते हो, देने से ही पता चलता है कि तुम्हारे पास था। देने से ही तुम्हें भी पता चलता है कि मैं दे सका--मेरा था! वही है तुम्हारा जो तुमने दिया। और उसी को तुमने भोगा, जो तुमने बांटा। साझेदारी बढ़ाओ! प्रेम का अर्थ इतना ही होता हैः साझेदारी करो! किसी को दो! किसी को बांटो! और धन्यवाद देना उसे, जो तुम्हारे जीवन में इस भांति आये कि तुम उससे कुछ बांट सको। धन्यवाद देना!
प्रेम की बड़ी कुशलता यह है कि यहां लेनेवाला भी कुछ देता है और देनेवाला भी कुछ देता है। जब तुम किसी को कुछ देते हो और वह स्वीकार कर लेता है तो उसने भी तुम्हें कुछ दिया--उसकी स्वीकृति से दिया। उसने तुम्हें मालिक बना दिया। उसने तुम्हें दाता बना दिया। अब और क्या चाहते हो? तुमने जो दिया वह कुछ नहीं था। उसने जो दिया वह बहुत ज्यादा है। इसलिए हिंदुस्तान में हमारी व्यवस्था है कि पहले दान दो, फिर दक्षिणा दो। दक्षिणा का अर्थ हैः उसने दान स्वीकार किया, इसका धन्यवाद भी दो। अकेले दान से काम न चलेगा। पहले तो दो, लेकिन यह जरूरी थोड़े ही है कि वह ले ले। कोई इनकार कर दे, फिर? कोई कह दे नहीं चाहिए, फिर?
प्रेम का अर्थ हैः ऐसा भरोसा कि तुम जिसे देने जा रहे हो, वह ले लेगा, इनकार न करेगा। बहुत-से लोग इनकार के कारण ही देने से डरते हैं कि हम देने गये और किसी ने कह दिया, नहीं; द्वार बंद कर लिया, फिर? रिजेक्शन, अस्वीकार पैदा हुआ? तो बड़ी घबड़ाहट लगती है!
अनेक लोग मुझसे आकर कहते हैं कि प्रेम में एक ही डर मालूम पड़ता हैः हम
तो निवेदन करें और इनकार हो जाये! हम तो अपने हृदय के द्वार खोलें, पलक-पांवड़े बिछायें और दूसरा पीठ किये चला जाये, न आये; हम तो स्वागतम द्वार पर बांधें, फूल-पत्तियां लटकायें और कोई बिना देखे गुजर जाये--तो फिर बड़ी पीड़ा होगी! इससे तो बेहतर, अपना द्वार-दरवाजा बंद ही रखना। क्योंकि जैसे ही तुम किसी को बुलाते हो, दूसरे को तुमने बल दिया, शक्ति दी, जीवन दिया। अब दूसरे के हाथ में उपाय है, वह स्वीकार कर ले, अस्वीकार कर दे।
प्रेम का पहला कदम ही जोखिम से भरा है। इसलिए स्त्रियां कभी प्रेम-निवेदन नहीं करतीं। इतनी जोखिम स्त्रियां नहीं उठातीं। वे राह देखती हैं--तुम्हीं प्रेम-निवेदन करो। वे प्रतीक्षा करती हैं। कि कितनी जोखिम पुरुष उठाता है। जोखिम बड़ी है, क्योंकि दूसरा कह सकता है, नहीं। दूसरा द्वार को बंद कर दे सकता है, तो फिर क्या होगा? फिर बड़ी पीड़ा और तड़फ होगी। तुम इस योग्य न समझे गये कि स्वीकार किये जाओ!

इसलिए बहुत-से लोग अपना प्रेम ऐसी चीजों से लगाते हैं जहां से अस्वीकार हो ही नहीं सकता। एक कार खरीद ली, उसी से प्रेम करने लगे। अमरीका में करीब-करीब स्त्री के बाद कार का नंबर दो है। कार में एक सुविधा है; इनकार नहीं कर सकती; खरीद लाये तो तुम्हारी। इसलिए हजारों साल तक आदमी स्त्री को भी खरीद के लाता रहा, प्रेम करके नहीं; क्योंकि प्रेम में खतरा था। इसलिए विवाह पैदा हुआ।
विवाह होशियारी है; जोखिम से बचने की व्यवस्था है। मां-बाप इंतजाम करते हैं, पंडित-पुरोहित कुंडली मिलाते हैं। तुम्हें सीधा निवेदन नहीं करना पड़ता। जैसे तुम किसी के भाई हो, किसी की बहन हो--ऐसे एक दिन किसी के पति या पत्नी हो जाते हो। अचानक तुम पाते हो--हो गये। उसके लिए तुम्हें खोज नहीं करनी पड़ती; तुम्हें पहली जोखिम नहीं उठानी पड़ती। लेकिन जब पहली जोखिम नहीं उठाई तो सारा जीवन गलत हो जाता है। वह दुस्साहस जरूरी है।
तो विवाह ईजाद हुआ, ताकि प्रेम से बचा जा सके। लोग सोचते हैं, प्रेम के लिए विवाह है; प्रेम वस्तुतः बचने का उपाय है। तो लोग पत्नियों को भी खरीदकर लाते रहे, दहेज दे-देकर लाते रहे। वह भी खरीद-फरोख्त थी।
अब यह मुश्किल होता जा रहा है, तो लोगों का ध्यान वस्तुओं की तरफ जा रहा है, या पशुओं की तरफ जा रहा है। एक कुत्ता रख लिया; जब भी घर आये, वह पूंछ हिलाता है। वह कभी भी ऐसा नहीं कह सकता कि नहीं हिलायेंगे पूंछ। तुम जब भी आये, तभी तुम्हें गौरव देता है।
कुत्ते बड़े राजनीतिज्ञ हैं। वे समझ गये एक राजनीति कि आदमी पूंछ हिलाने से बड़ा प्रसन्न होता है। उधर उसकी पूंछ मुस्कुराने लगी, इधर तुम मुस्कुराने लगे। उसने एक कला सीख ली। पर देखा तुमने, कुत्ते भी देखते हैं! अगर अजनबी आदमी आता है तो भौंकते भी हैं, पूंछ भी हिलाते हैं। यह, यह राजनीति न हुई, यह कूटनीति, डिप्लोमेसी है। वे यह देख रहे हैं कि जांच तो कर लो, आदमी अपनावाला है कि नहीं है, पराया है, मित्र है कि शत्रु है। तो भौंकते भी हैं कि अगर शत्रु हुआ तो पूंछ रोक लेंगे, भौंकते चले जायेंगे; अगर मित्र हुआ तो भौंकना बंद कर देंगे, पूंछ पर पूरी ताकत लगा देंगे-- असंदिग्ध जब हो जायेंगे। अभी संदेह है। नया-नया आदमी आ रहा है, पता नहीं मालिक का मित्र हो कि दुश्मन हो।
पश्चिम में लोग जानवरों के पीछे--कुत्ते-बिल्लियां पालने में लगे हैं; या वस्तुओं के पीछे हैं--कार है, मकान है; और हजार तरह के उपकरण विज्ञान ने खोज दिये हैं, उनमें अपना प्रेम लगा रहे हैं।
यह वस्तुतः प्रेम से बचने का उपाय है, क्योंकि प्रेम की सबसे पहली जोखिम यह है कि जब तुम दूसरे को देने जाते हो अपना हृदय, तो इनकार भी हो सकता है। और अगर दूसरे ने स्वीकार किया तो तुमने ही कुछ नहीं दिया, दूसरे ने स्वीकार करके तुम्हें कुछ दे दिया। प्रेम में लेनेवाला भी देनेवाला है--देनेवाला तो देनेवाला है ही।
प्रेम की बड़ी अपूर्व महिमा है। वहां दोनों दाता हो जाते हैं। इससे बड़ा जादू और कहीं भी घटित नहीं होता। सब गणित के नियम टूट जाते हैं। क्योंकि दोनों दाता हो नहीं सकते गणित के नियम से; एक दाता होगा तो एक लेनेवाला होगा। एक का हाथ ऊपर होगा, दूसरे का हाथ नीचे होगा। लेकिन प्रेम दोनों हाथों को समान स्तर पर ला देता है; दोनों दाता बन जाते हैं। देनेवाला तो है ही, लेनेवाला भी दाता बन जाता है। और लेनेवाला जो देता है, वह देनेवाले से भी बड़ा है।
इसलिए प्रेम गणित की सीमा के बाहर पड़ता है, हिसाब के बाहर पड़ता है, अर्थशास्त्र के बाहर पड़ता है, रहस्यमय है।
घबड़ाना न! कृपण मत बनना! कायर मत बनना! प्रेम के द्वार पर दस्तक देना! क्योंकि वही द्वार एक दिन परमात्मा का मंदिर भी सिद्ध होता है।

दूसरा प्रश्नः
आह को चाहिए एक उम्र असर होने तक
कौन जीता है तेरे जुल्फ के सर होने तक
हमने माना कि तगाफुल न करोगे, लेकिन

खाक हो जायेंगे हम तुमको खबर होने तक।

प्रेम का रास्ता ही मिटने का रास्ता है। वहां खाक हो जाना ही उपलब्धि है। वहां खो जाना ही पा लेना है। वहां बचाने की चेष्टा से ही बाधा होती है। वहां तो धीरे-धीरे अपने को गलाते जाना है और एक ऐसी घड़ी लानी है, जहां प्रेमी तो बचे ही न--बस प्रेम का ही सागर लहरें लेता रह जाये। उसी क्षण परमात्मा अवतरित होता है। जहां तुम मिटे वहीं परमात्मा का प्रवेश है। इब्तिदा में ही मर गये सब यार
कौन इश्क की इंतिहा लाया।
प्रेम के प्रारंभ में ही लोग मर जाते हैं। अंत तक जाने की तो सुविधा कहां है, बचता कौन है? प्रेम की कोई आज तक गहराई नहीं छू सका।
रामकृष्ण कहते थे, एक मेला भरा था और लोग सागर के तट पर विचार करते थे
कि सागर की गहराई कितनी है। एक नमक का पुतला भी आया था।
उसने कहा, "ठहरो! ऐसे विचार करने से क्या होगा? मैं डुबकी लगाता हूं। मैं अभी पता ला देता हूं।" उसने डुबकी लगा ली, लेकिन लौटा नहीं, लौटा नहीं, लौटा नहीं। सांझ हो गयी, दूसरा दिन हो गया, मेला उजड़ने का वक्त भी आ गया, लोग राह देखते रहे, लेकिन वह कभी लौटा नहीं। वह लौटता कैसे? वह नमक का पुतला था; सागर में उतरा तो गलने लगा। जैसे-जैसे गहरा गया, वैसे-वैसे पिघलता गया। गहरे नहीं गया, ऐसा नहीं; खूब गहरे गया। और ऐसा भी नहीं कि उसने गहराई न छू ली; उसने पूर सागर का अंतस्तल छू लिया। लेकिन तब तक खुद खो चुका था, लौटनेवाला न बचा था।
नमक का पुतला जैसा ही आदमी है--प्रेम का पुतला। वह प्रेम से पैदा हुआ है, प्रेम से बना है। तुम्हारा रोआं-रोआं, तुम्हारी रत्ती-रत्ती प्रेम से बनी है। तो जब तुम परमात्मा के सागर में डुबकी लगाओगे... नहीं कि तुम पता न लगा लोगे, पता लगा लोगे; लेकिन पता लगाने में खो जाओगे।
इब्तिदा में ही मर गये सब यार
कौन इश्क की इंतिहा लाया।
इसलिए खाक होने की तैयारी रखो। और माना कि बहुत बार ऐसा लगेगा कि बड़ी देर हुई जा रही है और बहुत बार तड़फ होगी कि अब जल्दी हो, और बहुत बार ऐसी शिकायत उठेगी कि अब और पीड़ा क्यों; फिर भी--
क्या उसके बगैर जिंदगानी?
माना वह हजार दिलशिकन है।
--बहुत दिल को दुखानेवाला है, लेकिन उसके बिना जिंदगी का कोई अर्थ भी नहीं।
धन्यभागी हैं वे जो परमात्मा के रास्ते पर दुखी और पीड़ित होते हैं।
अभागे हैं वे जो परमात्मा के विपरीत रास्ते पर सुखी और प्रसन्न हैं।
क्योंकि परमात्मा के विपरीत रास्ते पर सुख और प्रसन्न भी राख हो जायेगा।
और परमात्मा के रास्ते पर राख हो जाना भी स्वर्ण हो जाने का उपाय, व्यवस्था है।
एक तर्जे-तगाफुल है सो वह उनको मुबारक
एक अर्जे-तमन्ना है सो हम करते रहेंगे।
--एक उपेक्षा है सो परमात्मा को छोड़ दिया, वह करता रहे।
एक तर्जे-तगाफुल है सो वह उनको मुबारक
एक अर्जे-तमन्ना है सो हम करते रहेंगे।
--एक अभीप्सा है, प्रार्थना है, वह हम करते रहेंगे। एक उपेक्षा है, तू करते रहना!
भक्त कहता है, तू उपेक्षा करना, हम अभीप्सा करेंगे; देखें कौन जीतता है!
एक तर्जे-तगाफुल है सो वह उनको मुबारक
एक अर्जे-तमन्ना है सो हम करते रहेंगे।
परमात्मा दूर है, ऐसा तो सोचना ही नहीं। क्योंकि जो दूर हो सकता है, वह
तो परमात्मा न होगा। परमात्मा तो वही है जिसने तुम्हें सब तरफ से घेरा है, बाहर और भीतर सब तरफ से भरा है। उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। परमात्मा

सर्वस्व है। परमात्मा सब कुछ का नाम है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, परमात्मा समष्टि है। इसलिए उससे दूर तो हम नहीं हैं, लेकिन जरा हम बेहोश हैं।
अल्ला रे बेखुदी कि तेरे पास बैठकर
तेरा ही इंतजार किया है कभी-कभी।
हम बेहोश हैं, बस इतनी ही बात है। और हम बेहोश तब तक रहेंगे, जब तक हम हैं। हमारा होना हमारा बेहोश होना है। तो खाक तो होना पड़ेगा। जलना तो पड़ेगा। राख तो होना पड़ेगा। मगर यही वास्तविक होने का उपाय है।
अभी तो हम नाममात्र को हैं, कहने मात्र को हैं। अभी हमारे होने में क्या है? कोई सत्व नहीं, कोई सार नहीं।
तो घबड़ाओ मत। और यह भी माना कि--
"आह को चाहिए एक उम्र असर होने तक
कौन जीता है तेरे जुल्फ के सर होने तक
हमने माना कि तगाफुल न करोगे, लेकिन
खाक हो जायेंगे हम तुमको खबर होने तक।"
हो जाओ!
तमाम उम्र तेरा इंतजार कर लेंगे
मगर ये रंज रहेगा कि जिंदगी कम है।
करो! उम्र छोटी पड़ जाये, इंतजार बड़ा हो जाये। अनेक उम्रें समा जायें, इंतजार इतना बड़ा हो जाये। प्रतीक्षा ऐसी घनी हो जाये कि जन्म और जीवन पलक के झपने जैसे बीतने लगें। लेकिन इंतजार का सिलसिला जारी रहे। शरीर बदलें, जीवन बदलें, योनि बदले, रूप बदलें, रंग बदलें, नाम बदलें, सब बदलता जाये-- लेकिन भीतर की प्रतीक्षा का एक सूत्र अनस्यूत रहे, एक धागा पिरोया रहे सारे मनकों में।
घटना तो इस क्षण भी घट सकती है, लेकिन प्रतीक्षा अनंत चाहिए। और घटना बहुत देर होगी घटने के लिए, अगर प्रतीक्षा में थोड़ी कमी रही। जल्दबाजी न करना।
नये युग ने बड़ी जल्दबाजी की है। इसलिए प्रतीक्षा के गहरे रूप खो गये हैं। कोई प्रतीक्षा करने को राजी नहीं है। पश्चिम से एक बड़ा बुखार सारे जगत में फैला है--तेजी, जल्दी, स्पीड! तो जैसे इंस्टेंट काफी, ऐसा सारा जीवन, सभी कुछ अभी हो जाये, इसी क्षण हो जाये, आज ही हो जाये! तो मनुष्य के जीवन की कुछ गहराइयां खो ही गयीं, क्योंकि कुछ चीजें धीरे-धीरे होती हैं। कुछ चीजें मौसमी फूलों की तरह होती हैं--आज लगायीं, तीन सप्ताह में पौधे हो जायेंगे, छह सप्ताह में फूल आ जायेंगे--लेकिन आये नहीं कि गये भी नहीं। लेकिन देवदार और चीड़ के वृक्ष वर्षों लेंगे, वर्षों लगेंगे, बड़े धीरे-धीरे बढ़ेंगे। और यह तो परमात्मा की खोज तो शाश्वत वृक्ष है; इसको रोपना अपने हृदय में, तो बड़ी अनंत प्रक्रिया है। अब यह अभी इसी क्षण नहीं हो सकता।
कल मैं एक किताब पढ़ रहा था। उसमें एक अमरीकी प्रार्थना करता है कि हे प्रभु! सुनते हैं धीरज की बड़ी जरूरत है, तो धीरज दे--लेकिन अभी और यहीं! धीरज की बड़ी जरूरत है! तो दे, धीरज दे--लेकिन अभी और यहीं!
जीवन में कुछ चीजें समय मांगती हैं--और जितनी महत्वपूर्ण हों उतना ज्यादा समय मांगती हैं। अगर किसी व्यक्ति से केवल वासना का संबंध बनाना हो तो अभी और यहीं बन सकता है, प्रेम का बनाना हो तो समय लगेगा। और प्रार्थना का बनाना हो तो अनंत काल लग जायेंगे। और परमात्मा का बनाना हो तो शाश्वतता चाहिए। इसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी शाश्वतता तक। क्योंकि शाश्वतता ने अभी और यहां भी तुम तक अपना हाथ पहुंचाया है। तुम शाश्वत के लिए तैयार हुए कि अभी और यहीं भी घट सकता है। इसमें जरा विरोधाभास लगेगा। इसे स्पष्ट करके कहूं।
अगर तुम शाश्वत प्रतीक्षा करने को राजी हो तो अभी और यहीं घट सकता है; क्योंकि शाश्वत प्रतीक्षा का अर्थ हुआ अब कोई जल्दी नहीं; तुम शांत हुए; शिथिल तुमने छोड़ा; तनाव हटा। अब तुम्हारी कोई मांग नहीं है--हो, जब हो। अब कोई जल्दी न रही। बस इस शिथिल और शांत मन में अभी और यहीं घट सकता है।

तुमने मांगा अभी और यहीं घट जाये तो तुम इतने तन गये, इतने परेशान हो गये कि कहीं न घटा और समय बीत गया तो कहीं समय फिजूल न चला जाये। तुम्हारे तनाव के कारण ही न घट पायेगा। मांग में तनाव है। यही अभीप्सा शब्द की खूबी है।
वासना का अर्थ हैः मांग है, तनावपूर्ण। अभीप्सा का अर्थ हैः मांग है, तनावशून्य। मांगते भी हैं, जल्दी भी नहीं है; देना, जब तुझे देना हो! तेरी मर्जी! न देना हो, उसके लिए भी राजी हैं!

तीसरा प्रश्नः आपके प्रवचन के समय मैंने संन्यासियों के चेहरे का अवलोकन किया है। ऐसा लगता है कि वे गहरी नींद में पहुंच गये हैं। और मेरा अपना अनुभव भी यही है कि जैसी मीठी, गहरी और लुभावनी नींद प्रवचन के समय लगती है वैसी और कभी अनुभव में नहीं आती। क्या कारण है?

अलग-अलग लोगों के अलग-अलग कारण होंगे। एक कारण तो बताया नहीं जा सकता, क्योंकि यहां बहुत लोग हैं। लेकिन फिर भी प्रश्न विचारणीय है।
पहली बात, कुछ लोग तो निश्चित ही सभी धर्म-सभाओं में सो जाते हैं। यह बचने की एक तरकीब है। यह मन की एक बड़ी सूक्ष्म व्यवस्था है। जिससे तुम बचना चाहते हो तो बीच में एक नींद का पर्दा डाल लेते हो। सुना ही नहीं, तो अपने साथ ही कूटनीतिक खेल खेल गये। सुनने भी गये तो रस भी ले लिया कि धार्मिक व्यक्ति हैं और सो भी गये तो सुना भी नहीं। तो दुनिया को दिखाई भी पड़ा कि धार्मिक हैं और झंझट भी न हुई। धार्मिक होने की झंझट में भी न पड़े। तो एक तो वर्ग ऐसे लोगों का है, जो धर्म की बात पड़ी नहीं उनके कान में
कि उन्हें नींद आई नहीं। यह उनके भीतर करीब-करीब यांत्रिक हो गया है। मंदिरों में, चर्चों में तुम उन्हें सोता हुआ पाओगे।
एक पादरी पूछ रहा था अपने एक भक्त को; क्योंकि पादरी देखता था, जब भी
वह आता है, सोया ही रहता है चर्च में। उसने उससे एक दिन पूछा कि क्या रात नींद ठीक से नहीं होती? उस आदमी ने कहा, रात तो नींद लगती ही नहीं। हजार चिंताएं हैं संसार की, मगर उसकी कोई चिंता नहीं। जब आपका प्रवचन सुनता हूं तो खूब गहरी नींद लग जाती है।
संसार की तो चिंता है, परमात्मा की तो कोई चिंता है नहीं। संसार के तो विचार हैं, परमात्मा का तो कोई विचार है नहीं। संसार की तो भाग-दौड़ है, तो नींद को खलल डालती है। परमात्मा की कोई भाग-दौड़ तो है नहीं। तो परमात्मा की बात सुनकर कोई महत्वाकांक्षा तो जगती नहीं कि पाना है, उठना है, जागना है। तो जब जहां कोई महत्वाकांक्षा नहीं उठती तो आदमी सो जाता है, करेंगे भी क्या और?
तुमने देखा, जब तुम्हारे पास कुछ भी करने को नहीं होता, तब तुम सो जाते हो। करोगे क्या और? जब तक कुछ करने को होता है, तब तक तुम करते रहते हो। और तुमने यह भी देखा होगा जब तुम्हारे पास करने को इतना कुछ होता है कि तुम बिस्तर पर भी पड़ जाते हो, लेकिन मन में काम जारी रहता है, तो नींद नहीं आती। तो जहां काम है वहां नींद में बाधा है। परमात्मा तुम्हारा कोई काम तो है नहीं। वहां कुछ करने को तो है नहीं। तुम्हारे भीतर कोई अभीप्सा तो है नहीं; उसे पाने की कोई आकांक्षा तो है नहीं। सुन लिया, नींद आ गयी।
तो एक तो ऐसे लोग हैं। दूसरे ऐसे लोग हैं जो वस्तुतः नींद में चले जाते हैं आकांक्षा के रहते भी। परमात्मा को पाने की प्यास भी है, किसी को धोखा देने नहीं आये हैं; लेकिन फिर भी नींद में चले जाते हैं। अपने को भी धोखा नहीं दे रहे हैं, लेकिन नींद बरबस पकड़ लेती है। उसका कारण है--जन्मों- जन्मों की मन की आदत। जिस दिशा में मन कभी गया नहीं है, उस दिशा में जाने से मन इनकार करता है, जिस दिशा में मन को कभी ले नहीं गये हो पहले, अनभ्यस्त है, रास्ता अपरिचित है, वह वहां जाने से बिल्कुल इनकार कर देता है। वह जमीन पर ही बैठ जाता है। वह आंख ही बंद कर लेता है। वह कहता है, हम सो ही जायेंगे। यह मन का इनकार है।
तो दूसरा वर्ग है जो निष्ठापूर्वक समझना चाहता है; लेकिन उसका मन इनकार कर रहा है।

फिर एक तीसरा वर्ग है, जिसकी नींद बड़े और कारण से पैदा हो रही है। अगर तुम हृदयपूर्वक मेरी बातों को सुन रहे हो तो एक तरह की तंद्रा उतर ही आयेगी। पर वह नींद नहीं है। उसको योग अलग नाम देता है--तंद्रा। वह नींद जैसी है, निद्रा जैसी है, लेकिन निद्रा नहीं है। वह तंद्रा है। तंद्रा का अर्थ हैः जब तुम कोई मधुर संगीत सुनते हो तो एक ताल बंध जाती है भीतर, एक सुर बंध जाता है, एक सन्नाटा खिंच जाता है, विचार शांत हो जाते हैं। एक बड़ी झपकी, जिसको तुम जागना भी नहीं कह सकते, सोना भी नहीं कह सकते; जो दोनों के मध्य है--तंद्रा--ऐसी घड़ी आ जाती है। न बाहर न भीतर, देहली पर खड़े हो जाते हो, मध्य में खड़े हो जाते हो। तुम यह भी नहीं कह सकते कि सो गये थे, क्योंकि तुम मेरी बात पूरी तरह सुनते रहोगे। और तुम यह भी नहीं कह सकते कि तुम जागे हुए थे; क्योंकि एक बड़ी राहत, जैसी कि नींद में भी नहीं मिलती, एक बड़ी विश्रांति, तुम्हें उस तंद्रा से मिल जाएगी।
तो तीसरा वर्ग है, जिसकी निद्रा तंद्रा के जैसी है।
इसमें पहले वर्ग में अगर तुम हो तो अच्छा हो, आना बंद कर देना। अगर दूसरे वर्ग में तुम हो तो संघर्ष करना; क्योंकि वह निद्रा तुम्हारे मन की पुरानी आदत है, उसे तोड़ना पड़ेगा। अगर तीसरे वर्ग में तुम हो तो सौभाग्यशाली समझना और इस तंद्रा से लड़ना मत; इस तंद्रा में चुपचाप अपने को छोड़ देना। क्योंकि जो भी मैं कह रहा हूं, तंद्रा में कुछ भी चूकेगा नहीं; वह तुम्हारे पास पहुंच ही जायेगा। यह हो सकता है कि शायद तुम बाद में याद न रख सको, क्योंकि याद बहुत ऊपर-ऊपर है; वह और भी गहरे पहुंच जायेगा। तंद्रा में अगर तुमने सुना तो वह सुनना बड़ा गहरा है। वह तुम्हारे प्राण-प्राण में उतर जायेगा। अगर तुम्हारी तंद्रा की स्थिति हो तो उसे तोड़ने की कोशिश मत करना। तब तो आंख बंद करके शांति से उसमें डूब जाना। क्योंकि मैं तुमसे जो कह रहा हूं, वह सिर्फ वचन ही नहीं हैं; मैं तुमसे जो कह रहा हूं, उन वचनों में कुछ तुम्हें दे भी रहा हूं। कुछ ऊर्जा का संचरण हो रहा है। कोई ऊर्जा का संवाद हो रहा है। अगर तुम जागे रहे तो तुम्हारे मन के विचार चलते रहेंगे। अगर तुम सो गये तो तुम सुन न सकोगे। अगर तंद्रा में रहे तो जागने के विचार भी न चलेंगे और नींद भी न होगी। बीच में खड़े देहली पर तुम मेरे बहुत करीब आ जाओगे। तुम्हारा हृदय मेरे हृदय के बहुत करीब धड़कने लगेगा। तो सोच लेना, तुम्हारी जैसी दशा हो... । अगर तीसरी हो तो बड़ी सौभाग्य की। तंद्रा तो ध्यान की अवस्था है। इसी को तो सूफियों ने मस्ती कहा है। एक नशा चढ़ जाता है। एक नशे जैसा है। और लगता है, जिसने पूछा है, उसकी स्थिति तंद्रा की ही होगी; क्योंकि मेरा अपना अनुभव यही है, उसने कहा है, कि जैसी मीठी, गहरी और लुभावनी... ।
तंद्रा की स्थिति मीठी है, गहरी है, लुभावनी है। लेकिन तुम्हारे लिए नयी होगी, इसलिए तुम उसे निद्रा समझ रहे हो। थोड़ी उसके साथ और पहचान बढ़ेगी तो तुम साफ-साफ देख लोगे कि जागरण अलग, निद्रा अलग, तंद्रा बिल्कुल अलग है। तंद्रा तो एक मादक स्थिति है।
नमाजे-इश्क का आता भी है, जो होश कभी
तो बेखुदी मेरी बढ़कर इमाम होती है।
--कभी-कभी जब प्रार्थना में डूबने की इच्छा भी होती है तो तत्क्षण तल्लीनता मेरा नेतृत्व करने लगती है।
नमाजे-इश्क का आता भी है, जो होश कभी
तो बेखुदी मेरी बढ़कर इमाम होती है।
--तो तत्क्षण मेरी तल्लीनता आगे आ जाती है और मार्गदर्शक हो जाती है।
यह तंद्रा वही तल्लीनता है जो मार्गदर्शक बन जाती है। फिर फिक्र मत करना।
अगर तीसरी तरह की तंद्रा हो तो यह भी मत सोचना कि लोग क्या कहेंगे। यह भी मत सोचना कि यह कहीं कोई नियम का उल्लंघन तो नहीं हो रहा है। यह भी मत सोचना कि यह कहीं बुरा तो नहीं है कि मैं बोल रहा हूं, और तुम सो रहे हो। नहीं, यह नींद है ही नहीं। यह तो प्रेम की एक बड़ी गहरी दशा है। मेरे शब्द तुम्हारे लिए एक गहरा संगीत लेकर आ रहे हैं। तुमने शब्दों को ही नहीं सुना है, संगीत को भी पीना शुरू कर दिया है।
मोहब्बत में निया.ज और हुस्ने-महवे-नाज क्या मानी

मैं इस दस्तूर को तरमीम के काबिल समझता हूं।
और जहां प्रेम है, वहां नियम-उल्लंघन हो सकता है। क्योंकि प्रेम इतना परम नियम है कि फिर किसी और नियम की कोई जरूरत नहीं है। तो तुम केवल शिष्टाचार के कारण सम्हालकर और आंख खोलकर मत बैठे रहना। अगर तंद्रा तुम्हें अनुभव होती हो तो...
मोहब्बत में निया.ज और हुस्ने-महवे-नाज क्या मानी?
तो फिर प्रेम में नम्रता और अहंकार तक का कोई मूल्य नहीं।
मैं इस दस्तूर को तरमीम के काबिल समझता हूं।
फिर तो सभी दस्तूर तरमीम के काबिल हैं। फिर तो शिष्टाचार की फिक्र छोड़ो। प्रेमी के लिए कोई नियम नहीं है। मगर बहुत गौर से देखना। कहीं ऐसा न हो कि नींद पहले तरह की हो! अगर पहले तरह की हो तो अपने को सम्हालना। या तो आना बंद करो... ।
एक चर्च में ऐसा हुआ एक बूढ़ा आदमी, लेकिन करोड़पति, सामने ही बैठता था।
और जब पादरी बोलता तो न केवल वह सोता, बल्कि घुर्राता भी। तो उससे और चर्च के लोगों को भी अड़चन होती। उससे कुछ कहा भी नहीं जा सकता था, क्योंकि वह करोड़पति था और उसके दान पर चर्च चलता था। उसे यह भी नहीं बताया जा सकता कि तुम घुर्राते हो।
तो पादरी ने एक तरकीब खोज ली। उसके साथ एक छोटा बच्चा भी आता था, उसका
वह नाती-पोता। उसने छोटे बच्चे को एक दिन बुलाया और कहा कि देख तू अपने दादा को जब वे घुर्राने लगें, हिला दिया कर। मैं तुझे चार आने दिया करूंगा रोज। उसने कहा, ठीक! तो वह बच्चा, जब भी उसका दादा घुर्राने लगता, उसको तो बच्चे को कोई मतलब भी नहीं था प्रवचन से, वह अपने दादा ही पर नजर रखता, उनको हिला देता। ऐसा दो-तीन दिन तो चला, लेकिन चौथे दिन देखा कि बच्चे ने हिलाया नहीं। तो, पादरी ने उसे बुलाया कि क्यों, क्या हुआ? उसने कहा, मेरे दादा ने कहा कि देख, अगर तू मुझे नहीं हिलायेगा तो मैं एक रुपया... । अब आप सोच लो उसने कहा, रुपया मिल रहा है!
अगर पहली, ऐसी दशा हो तो कोई जरूरत नहीं है। कोई प्रयोजन नहीं है। जाना क्यों ऐसी जगह जहां नींद आती हो? घर ही सोया जा सकता है, सुगमता से, सुविधा से। यहां बैठकर सख्त पत्थर पर, नींद भी मुश्किल होती होगी। तुम तो कष्ट दोगे, पाप मुझको भी लगेगा।
अगर दूसरी तरह की नींद हो तो फिर कोई फिक्र नहीं। फिर अपने को जगाने
की कोशिश करना। अगर दूसरी तरह की नींद हो कि मन की पुरानी आदत के कारण आ जाती हो, तो मन की आदतें तो तोड़नी हैं, उनसे तो संघर्ष करना होगा। और जब पहली और दूसरी तरह की नींद विदा हो जायेगी तो तीसरी तरह की नींद की संभावना शुरू होती है। और जब तीसरी आ जाये तो डरना मत; फिर उसमें लीन होना, डूबना।

आखिरी प्रश्नः संन्यास के शुरू के कुछ साल इस भ्रम में जीती रही कि मैं संन्यासिनी हूं। वे बड़े सुख और आनंद के दिन थे। किंतु अब जो आप संन्यास के फूल की बात करते हैं तो मैं अपने को बहुत अयोग्य पाती हूं। जमीन से पैर उखड़ गये, लेकिन पंख अभी तक नहीं उगे। यह कैसी अवस्था है कि एक ओर कीर्तन, नाच और भक्ति में लीन होती हूं, तो दूसरी ओर ध्यान और होश भी पकड़ता है। और यह संसार... उफ... कब तक चलेगा?

"संन्यास के शुरू के कुछ साल इस भ्रम में जीती रही कि मैं संन्यासिनी हूं। वे बड़े सुख और आनंद के दिन थे।"
भ्रम के दिन सदा ही सुख और आनंद के दिन होते हैं। लेकिन भ्रम के साथ एक
ही खतरा है कि वह सदा नहीं चल सकता; वह एक दिन टूटता ही है। और जब टूटता है तो पीड़ा होती है। लेकिन उसका टूट जाना शुभ है। और अब जब मैं कह रहा हूं कि संन्यास केवल लेने की बात नहीं है... लेने से तो शुरुआत होती है, अंत नहीं। संन्यासी बनने का जब तुम निर्णय करते हो, संकल्प करते हो, समर्पण करते हो, तो वह तो यात्रा का पहला कदम है। वहीं बैठकर प्रसन्न मत होते रहना। नहीं तो मंजिल कभी घर न आयेगी; तुम कभी मंजिल तक न पहुंचोगे। उचित है कि पहला

कदम भी उठाया। यह भी सौभाग्य था। इसके लिए गुनगुनाना, गीत गाना, नाच लेना, प्रसन्न होना; लेकिन यात्रा जारी रखनी है। आगे जाना है! रोज आगे जाना है! और जितने तुम आगे जाने लगोगे, उतने मैं तुम्हें और आगे की यात्रा के इशारे देने लगूंगा।
तो पहले तुमसे कहता हूं, संन्यास सिर्फ एक भाव-भंगिमा है। वह तो तुम्हें फुसलाने के लिए। वह तो तुम्हें राजी कर लेने के लिए। तुमसे कहता हूं, यहीं पास रहा, दो कदम जाना है। जब तुम दो कदम उठा लेते हो, तब मैं कहता हूं कि अब दो कदम और। ऐसे दो-दो कदम तुम्हें बढ़ाकर हजारों कदम उठवाये जा सकते हैं। अगर मैं तुमसे कहूं हजार कदम पहले से, तो शायद तुम पहला कदम भी न उठाओ।
तुमने हिम्मत इतनी खो दी है, आत्मविश्वास इतना खो दिया है। तुम बड़ी क्षुद्र बातों से प्रभावित होते हो। हजार कदम, तो शायद हजार कदम की बात रुकावट ही बन जाये। इसलिए मैंने संन्यास को इतना सरल बना दिया है जितना सरल हो सकता है। सिर्फ संन्यास लेने की आकांक्षा को मैं कहता हूं काफी है, बस, और कोई पात्रता नहीं। लेकिन एक बार तुम संन्यासी होने का पहला कदम उठाये, तो यात्रा शुरू हुई। फिर मैं पात्रता की बात भी करूंगा। फिर कैसे जीवन के फूल खिलें, उनकी दिशा में तुम्हें संलग्न भी करूंगा। और एक बार तुम मेरे साथ आ गये, चल पड़े, तो मैं जानता हूं वापस लौटना आसान नहीं। एक बार इतनी भी हिम्मत कर ली कि मेरे रंग में रंगे, कि गैरिक वस्त्रों में डूबे, कि फिर तुम भाग न सकोगे। अंगुली पकड़ ली तो फिर पहुंचा भी पकड़ लूंगा। एक बार अंगुली हाथ में लेता हूं, तुम सोचते हो, क्या हर्जा है, अंगुली ही तो है कोई; जब चाहेंगे तब छुड़ा लेंगे। तुमसे मैं कहता हूं, अंगुली काफी है; इतने से काम हो जायेगा। इतने से काम न होगा। इतने से काम शुरू होता है।
तो स्वभावतः देर-अबेर प्रत्येक को ऐसा लगेगा कि यह तो बड़ी मुश्किल हुई। हम तो सोचे थे सरल है; यह तो कठिन होने लगी बात। यह तो मार्ग ऊंचाइयों पर चढ़ने लगा। हम तो सोचे थे, समतल है। हम तो सोचे थे, राजपथ है; ये तो पगडंडियां फूटने लगीं, और जंगल में अकेले की यात्रा होने लगी।
लेकिन उस तक पहुंचने के लिए बहुत कुछ चुकाना पड़ता है। अपने पूरे जीवन
की ही आहुति देनी पड़ती है। तो अड़चन से घबड़ाना मत।
और अयोग्यता का बोध पैदा हो रहा हो तो इसे शुभ मानना; क्योंकि अयोग्यता का बोध केवल उन्हीं को होता है, जिनके भीतर थोड़ी बुद्धिमत्ता है। मूढ़ तो अपने को योग्य ही समझते हैं। उन्हें अयोग्यता का तो पता ही नहीं चलता। अज्ञानी तो अपने को ज्ञानी ही मानते हैं। यह तो सिर्फ ज्ञानियों को पता चलता है कि हम अज्ञानी हैं। इसलिए अगर अयोग्यता का बोध हो रहा है तो दुखी मत होना। यह तो पहली सूरज की किरण फूटी। यह तो पहला दीया जला। अब इसी दीये से योग्यता पैदा होगी। अयोग्यता का पता चल गया तो अयोग्यता से मुक्त हो जाना बहुत आसान है। अयोग्यता का पता ही न चलता हो तो फिर कैसे मुक्त हो सकोगे?
"जमीन से पैर उखड़ गये हैं, लेकिन पंख अभी तक नहीं उगे हैं... ।"
ठीक है। जहां तुम जा रहे थे वहां से तुम्हें खींच लिया है। वह दिशा समाप्त हुई। उस तरफ रस बंद हुआ। लेकिन जहां तुम्हें ले जाना है, उस दिशा में लगाने के लिए तुम्हारे भीतर पात्रता लानी होगी। पुराने रास्ते पर चलने की तुम्हारे पास कुशलता है। पुराना रास्ता तो हटा दिया, नये रास्ते पर तुम्हें लगा दिया; लेकिन नये रास्ते की कुशलता सीखनी होगी। जड़ें तो टूट गयीं, ठीक हुआ; जमीन से पैर उखड़ गये, ठीक हुआ। यह पहला कदम तो हुआ आकाश में उड़ने का; लेकिन पंख पैदा करने होंगे। या होंगे मौजूद तो जन्मों-जन्मों से उनका उपयोग नहीं किया; उनका उपयोग सीखना पड़ेगा। लेकिन शुभ है कि कम से कम आधा तो हुआ। जमीन से पैर तो उखड़ गये। अब जमीन पर खड़े होने की तो जगह न रही। अब तो पंख खोजने ही पड़ेंगे।
और ध्यान रखना, जब तक कि जीवन संकट में न पड़ जाये, जीवन नये की खोज नहीं करता। नये की खोज संकट में होती है। जब इतना संकट आ जाता है कि कुछ करना ही होगा, तभी नये की खोज होती है; अन्यथा मन बड़ा आलसी है।

तो अगर तुम्हारी जमीन मैंने छीन ली तो अब तुम तड़फड़ाओगे, फेंकोगे हाथ-पैर। उन्हीं हाथ-पैर के फेंकने से पंखों का जन्म होगा। पंख तो हैं, तुम भूल ही गये हो; तुम्हें याद ही न रही।
शुरू-शुरू में तड़फड़ाहट करोगे तो एकदम से उड़ना न आ जायेगा। उड़ने के लिए बड़ी कुशलता चाहिए। वह कुशलता धीरे-धीरे पैदा होगी। लेकिन तुम उड़ सकोगे। क्योंकि आकाश ही, अनंत आकाश ही--कहो उसे परमात्मा, मोक्ष, निर्वाण-- तुम्हारी नियति है। और जो पक्षी उस आकाश में नहीं उड़ा, घोंसले में ही बैठा रह गया, उसके अभाग्य को क्या कहें! पैदा हुआ था कि उड़े आकाश में। लेकिन पैदा तो घोंसले में होना पड़ता है; आकाश में तो कोई भी पक्षी का अंडा रखा नहीं जा सकता। अंडा तो रखना पड़ता है घोंसले में। लेकिन अंडा फूट जाये और पक्षी वहीं बैठा रहे घोंसले में और डरे... और डर उसका स्वाभाविक है, कभी उड़ा नहीं पहले... ।
तो मैंने तुमसे तुम्हारा घोंसला तो छीन लिया; अब बैठने की तो कोई जगह नहीं है। उड़ना ही पड़ेगा! और तुम उड़ोगे।
तुमने देखा, जो लोग तैरना सिखाते हैं, वे करते क्या हैं? वे नये व्यक्ति को पानी में फेंक देते हैं। और कुछ भी नहीं करते। लेकिन पानी में गिरकर कोई भी हाथ-पैर फेंकेगा ही, अपने को बचाने के लिए फेंकेगा। वही तैरने का पहला चरण है। फिर धीरे-धीरे कुशलता आ जाती है। फिर वह देखता है, कैसे ढंग से फेंकना; कैसे कम शक्ति लगे और फेंकना। फिर धीरे-धीरे तो बिना फेंके भी तैरने लगता है।
ऐसा ही आत्मिक जगत भी है। और इसमें ध्यान रखना, ऐसा एक बार होगा, ऐसा नहीं; बहुत बार होगा। क्योंकि फिर तुम एक ऊंचाई पर अपना घर बना लोगे, फिर मैं उसे उखाड़ दूंगा, ताकि नयी ऊंचाई पर तुम उठो।
गुरु का काम ही इतना है कि वह उस समय तक तुम्हें धक्का दिये चला जाये,
जब तक तुम वहां न पहुंच जाओ, जिसके आगे फिर कोई ऊंचाई नहीं। परमात्मा तक जब तक तुम्हें न पहुंचा दे, तब तक तुम्हारे पीछे लगा ही रहे; तब तक तुम्हें परेशान करता ही रहे; तब तक जैसे भी हो--कभी तुम्हें सुख देकर, कभी तुम्हें दुख देकर; कभी तुम्हारी पीठ थपथपाकर और कभी तुम्हारी लानत-मनामत करके; कभी तुम पर क्रोध जाहिर करके और कभी तुम पर प्रेम जाहिर करके--लेकिन तुम्हें धकाता ही रहे। क्योंकि तुम्हारा मन तो कहेगा, बस यहीं रुक जायें। तुम तो हर जगह रुक जाने को तत्पर हो; क्योंकि रुक जाने में विश्राम है। चलने में श्रम है।
लेकिन मैं तुम्हें उस क्षण तक चलाता रहूंगा, जब तक कि परम विश्राम न आ जाये। परम विश्राम यानी परमात्मा। परम विश्राम यानी मोक्ष। जिससे फिर पीछे गिरना नहीं होता और जिसके पार फिर कुछ और शेष नहीं है--ऐसे परम सत्य को पाने के पहले बहुत बार तुम मुझसे नाराज भी होने लगोगे। क्योंकि तुम सस्ता चाहते हो। क्योंकि तुम सदा चाहते हो कि मुफ्त में मिल जाये। तुम सदा चाहते हो कि तुम्हारे बिना कुछ किये मिल जाये। तो तुम भाग ही न जाओ, इसलिए मैं कभी-कभी ऐसा भी कहता हूं; बिना किये कुछ मिल जायेगा। तो तुम रुके भी रहते हो कि शायद अब मिलता हो। लेकिन बिना किये कुछ भी नहीं मिलता। तो तुम्हें रोकने के लिए कह देता हूं, बिना किये भी मिल जायेगा, प्रभु के प्रसाद से भी मिल जायेगा। तो तुम रुके रहते हो आशा में। और यहां तुम्हारे साथ मैं चेष्टा में लगा रहता हूं कि तुम कुछ करने लगो। क्योंकि उसका प्रसाद भी उन्हीं को मिलता है जो कुछ करते हैं।
तो घबड़ाना मत, बेचैन मत होना। यह शुभ है कि अयोग्यता दिखाई पड़ी। यह शुभ है कि वह सस्ती प्रसन्नता जो संन्यास लेने से ही आ गयी थी, खो गयी। अब असली संन्यासी बनना!
थोड़ा सोचो! मात्र वस्त्र बदलने से प्रसन्न हो गये थे; जिस दिन आत्मा बदलेगी तो क्या होगा!
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
तेईसवां प्रवचन

जीवन की भव्यताः अभी और यहीं

पहला सूत्रः "अभव्य जीव यद्यपि धर्म में श्रद्धा रखता है, उसकी प्रतीति करता है, उसमें रुचि रखता है, उसका पालन भी करता है, किंतु यह सब वह धर्म को भोग का निमित्त समझकर करता है, कर्मक्षय का कारण समझकर नहीं।" संसार की आदत आसानी से नहीं जाती। जन्मों-जन्मों तक जिसे पाला है, संवारा है, वह आदत संसार को छोड़ने भी चलो तो भी साथ चलती है।
इसे समझें, क्योंकि इसे बिना समझे कोई कभी धार्मिक न हो पायेगा। बहुत हैं जिन्होंने संसार छोड़ दिया। बाहर दिखायी पड़नेवाला संसार छोड़ देना कठिन भी नहीं। आश्चर्य तो यही है कि बाहर दिखायी पड़नेवाले संसार को लोग कैसे पकड़े रहते हैं! इतना व्यर्थ है, इतना असार है कि किसी भी थोड़ी-सी प्रज्ञावान चेतना को छोड़ने का ख्याल आ जाये तो कुछ आश्चर्यचकित होने की बात नहीं। कुछ भी मिलता हुआ दिखायी नहीं पड़ता, तो छोड़ने का मन आ जाता है। लेकिन बाहर के संसार से भी ज्यादा भीतर एक संसार है। वह संसार है कि अगर हम छोड़ते भी हैं कुछ, तो कुछ पाने के लिए ही छोड़ते हैं। वह पाने की वृत्ति नहीं जाती। तो लोग संसार छोड़ देते हैं तो सोचते हैं, मोक्ष पाने के लिए; धन छोड़ देते हैं तो सोचते हैं, पुण्य पाने के लिए। लेकिन पाने की वासना भीतर खड़ी रहती है।
महावीर इन सूत्रों में यही बात साफ करना चाहते हैं कि असली संसार "पाने की वासना" में है। पाने की वासना के कारण बाहर का संसार है। बाहर के संसार के कारण पाने की वासना नहीं है।
तो तुम संसार को छोड़ भी दो और तुम्हारे भीतर की वासना की आग सुलगती रह जाये तो कुछ अंतर न हुआ।
महावीर कहते हैं ऐसे धार्मिक व्यक्ति को--"अभव्य जीव।" वह सिर्फ भव्य दिखायी पड़ता है, लेकिन उसकी भव्यता बाहर-बाहर है, भीतर उसके राग खड़ा है, भीतर लोभ खड़ा है।
तुमने ऐसा धार्मिक व्यक्ति देखा, जिसके भीतर लोभ न हो? तुमने ऐसा धार्मिक व्यक्ति देखा जो धार्मिक हो, धार्मिक होने के आनंद के कारण; जो यह नहीं कहता हो कि धार्मिक श्रम, पुरुषार्थ से मैं कुछ भविष्य में कमाने जा रहा हूं? तुमने ऐसा धार्मिक व्यक्ति देखा जिसके मन में भविष्य की कोई आकांक्षा न हो, फलाकांक्षा न हो?
तो तुम अगर अपने धार्मिक गुरुओं से, साधुओं से जाकर पूछो कि आप ये पुण्य, तपश्चर्या, साधना, ध्यान, सामायिक, उपवास, व्रत, नियम, इन सबका पालन कर रहे हैं--किसलिए? और अगर वे बता सकें कि किसलिए तो समझना कि वे अभव्य जीव हैं। अभी उनमें भव्यता का जन्म नहीं हुआ। और वे सभी बता सकेंगे कि पुण्य के लिए, स्वर्ग के लिए; भविष्य में उच्च योनियां मिलें, देवलोक मिले--इसलिए या उनमें जो बहुत ज्यादा तर्ककुशल हैं, वे कहेंगे, मोक्ष के लिए; सबसे छुटकारा हो जाये, इसलिए।
लेकिन जो आदमी छूटना चाहता है, उसका छुटकारा हो नहीं सकता; क्योंकि अभी कोई चाह बची--छूटने की चाह बची। तो सब चाहें निमज्जित हो जाएं छूटने की चाह में, तो छूटने की चाह एक मजबूत रस्से की तरह हो जायेगी। छोटी-छोटी चाहें तो थोड़े-थोड़े धागे हैं, उन सबको एक ही रस्से में इकट्ठा कर लिया-- छूटने की चाह, मोक्ष की आकांक्षा। तो जैसा छोटी-छोटी वासनाओं ने बांधा था, उससे भी ज्यादा यह मोक्ष की रस्सी बांध लेगी।
महावीर कहते हैं, अगर तुमने कुछ पाने के लिए छोड़ा तो छोड़ा ही नहीं। धोखा किसको दिया? अपने को दे लिया।
उपनिषदों में एक बड़ा अदभुत सूत्र हैः कृपणा फलहेतवः। जो व्यक्ति फल
की आकांक्षा से कुछ काम करता है वह कृपण है, वह कंजूस है। उसे जीवन की कला ही न आयी। उसने जीवन का सत्य ही न जाना।
महावीर का यह सूत्र भी यही कह रहा है कि अगर तुमने कुछ पाने की आकांक्षा से--भला वह आकांक्षा मोक्ष की ही हो--धर्म किया तो धर्म किया ही

नहीं, धर्म का धोखा किया। अभव्य जीव यद्यपि धर्म में श्रद्धा रखता है लेकिन उसकी श्रद्धा में "यद्यपि" जुड़ा हुआ है। उसकी प्रतीति भी करता है। उसमें रुचि भी रखता है, उसका यथाशक्य पालन भी करता है--फिर भी वह धर्म को निमित्त समझकर करता है, साध्य समझकर नहीं। धर्म का भी साधन बनाता है। धर्म से भी कुछ पाना है, इसलिए करता है। अगर धर्म के बिना जो वह पाना चाहता है मिल जाये तो वह धर्म को कूड़े-कर्कट में फेंक देगा। अगर तुम्हारे साधु- संन्यासियों और मुनि महाराजों को पता चल जाये कि स्वर्ग पहुंचने का कोई शार्टकट भी है तो वे सब अपने पीछी-कमंडल छोड़कर भाग खड़े होंगे, क्योंकि उसी के लिए तो वे इस लंबे रास्ते से जा रहे थे। अगर कोई पास का रास्ता मिल गया है, कोई सुगम रास्ता मिल गया है, तो कौन कष्ट उठायेगा!
पास का रास्ता मिल जाने पर भी जो धर्म के रास्ते पर खड़ा रहे, उसे ही जानना कि वह धार्मिक है। क्यों? क्योंकि उसके लिए धर्म साध्य है, साधन नहीं।
ये दो शब्द बड़े विचारणीय हैं। धर्म साधन नहीं, साध्य है। तो जल्दी क्या है? तो जाना कहां है?
वास्तविक धार्मिक व्यक्ति का प्रत्येक पल मोक्ष है। वह ध्यान करता है क्योंकि ध्यान में परम आनंद है। इसलिए नहीं कि आनंद मिलेगा। धार्मिक व्यक्ति के लिए "इसलिए" जैसी कोई बात ही नहीं। वह सामायिक में बैठता है। क्योंकि सामायिक आनंद है, सामायिक परम शांति है।
भेद समझ लेना, क्योंकि दोनों की बातें एक-सी लगती हैं। धार्मिक कहता है, शांति के लिए सामायिक में बैठता हूं। तो महावीर कहेंगे अभव्य है, अभी कृपण है, अभी वासना लगी है। अभी सामायिक को भी यह साधन बना रहा है। तो कभी इसने धन को साधन बनाया था--सोचा था, धन से सुख मिलेगा; कभी इसने पद को साधन बनाया था--सोचा था पद-प्रतिष्ठा से सुख मिलेगा; कभी यह सेनापति हो गया था, दुर्धर्ष युद्ध में उतरा था, हजारों की गर्दनें काट दी थीं--सोचा था इससे सुख मिलेगा। लेकिन एक बात अभी भी कायम है कि सुख को पाना होगा किसी साधन से। कभी धन साधन, कभी पद साधन, कभी तलवार साधन; अब व्रत, उपवास, नियम--साधन; योग, ध्यान, सामायिक--साधन। लेकिन मूल गणित वही है। जो भी कर रहा है, अधार्मिक व्यक्ति उसमें रस नहीं लेता। उसका रस हमेशा फल में है। गीता में कृष्ण जो कहते हैंः फलाकांक्षा! वह देख रहा है आगेः यह मिलेगा, यह मिलेगा, यह मिलेगा--इसलिए कर रहा है। अगर पता चल जाये नहीं मिलेगा तो उसका करना अभी रुक जाये। तो वह पूछेगा, फिर कैसे मिलेगा?
महावीर कहते हैं, जिस व्यक्ति को धर्म में साध्य दिखायी पड़ने लगा वही व्यक्ति भव्य है। तो तुम मंदिर जाओ, मस्जिद जाओ, कुरान पढ़ो, गीता पढ़ो, पूजा करो, प्रार्थना करो--एक बात भीतर खोजते रहनाः ये तुम साधन की तरह कर रहे हो, निमित्त की तरह? तो महावीर की दृष्टि में अभव्य हो। अभी तुम्हारे भीतर उस पवित्र उन्मेष का जन्म नहीं हुआ जो तुम्हें दिव्य बना दे, भव्य बना दे। "भव्य" शब्द महावीर का अपना है। दिव्य शब्द का वे उपयोग नहीं कर सकते, क्योंकि दिव्य से तो देवता और अंततः परमात्मा का ख्याल आ जाता है। इसलिए महावीर की भाषा में भव्य का वही अर्थ है जो समस्त अन्य धर्मों की भाषा में दिव्य का है। भव्य का अर्थ हैः जिसका जीवन प्रतिपल साध्य हुआ। भव्य का अर्थ हैः जो कृपण न रहा। कृपणा फलहेतवः! अब जिसके लिए फल का कोई सवाल ही नहीं है! अब जिसकी सारी कृपणता मिटी, कंजूसी मिटी! अब जो जिंदगी में चाह के ढंग से नहीं जीता--अचाह का मजा ले रहा है; अचाह में डूबता है, रस लेता है! एक क्षण को भी तुम्हें पता चल जाये कि ऐसा भी जीने का ढंग है जिसमें भविष्य की कोई जरूरत नहीं, वहीं भव्यता उतरती है।
"भविष्य" शब्द भी सोचने जैसा है, क्योंकि उसकी भी मूल धातु भव्य की ही है।
जिससे भव्य बना है, उसी से भविष्य बना है। दोनों शब्दों का मूलस्रोत
एक ही है। यह बड़े सोचने जैसी बात है! हम भविष्य को भव्य क्यों कहते हैं? अतीत तो किसी तरह काट लिया, वर्तमान भी किसी तरह गुजार रहे हैं; सारी आशा भविष्य में लगी है। तो हम भविष्य को तो भव्य बनाते हैं! उटोपिया! जो नहीं हुआ है वह भविष्य में होगा। इसलिए भव्य भविष्य को हम मानते हैं कि भविष्य

भव्य है। हमारी सारी आकांक्षाओं का सार-निचोड़ भविष्य में है। जो होना था और नहीं हो पाया, वह भविष्य में होगा, कल होगा। जो हमें बनना था और नहीं बन पाये वह हम कल बनेंगे। जो वर्षा हमारे जीवन में घटनी थी और नहीं घट पायी, सूखे रह गये, वह कल होगी।
इसलिए सभी लोगों के मन में भविष्य तो भव्य होता है। दीन से दीन, दुखी
से दुखी, पीड़ित से पीड़ित व्यक्ति के मन में भी भविष्य भव्य होता है--इसीलिए उसे भविष्य कहते हैं।
लेकिन महावीर कहते हैं, भव्य वह है जिसका कोई भविष्य नहीं; जो "अभी और यहीं" बिना किसी चाह के जीने लगे।
जब तक भविष्य है तब तक तुम अभव्य हो। भविष्य है ही तरकीब झुठलाने की, जीवन में प्रवंचना की। ऐसे कल्पनाओं का जाल बुन-बुनकर तुम अपने को समझा लेते हो, सांत्वना दे लेते हो। कभी धन के माध्यम से दी थी, अब धर्म के माध्यम से देते हो। महावीर कहते हैं, बहुत फर्क नहीं है। चाहे कितनी ही तुम श्रद्धा दिखाओ, कितनी ही प्रतीति जतलाओ, कितनी ही रुचि प्रगट करो, पालन भी कर लो--लेकिन तुम्हारे पालन करने में भी अभव्यता रहेगी, क्योंकि तुम्हारी नजर भविष्य पर लगी रहेगी। तुम करोगे, लेकिन व्यवसायी की तरह करोगे। धर्म तुम्हारा कृत्य ही रहेगा, तुम्हारे जीवन की लीला न हो पायेगी। और जब धर्म जीवन की लीला बन जाये... ।
अगर तुम्हें कभी कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाये जो कहे कि ध्यान में आनंद है, इसलिए ध्यान कर रहा हूं; ध्यान से आनंद मिलेगा, इसलिए नहीं--ध्यान ही आनंद है। दान कर रहा हूं, इसलिए नहीं कि दान से स्वर्ग मिलेगा--दान में स्वर्ग है। देता हूं, क्योंकि देने में ही फूल खिल रहे हैं। फूल कल नहीं हैं, भविष्य में नहीं हैं--अभी खिल रहे हैं, यहीं खिल रहे हैं। यहां देने का ख्याल नहीं उठा कि वहां फूल खिलने लगे! यहां शांत बैठने का ख्याल नहीं उठा कि शांति होने लगी! यहां आनंदित होने की उमंग उठी कि आनंद आ गया!
युगपत साधन और साध्य मिल जाते हैं--एक ही क्षण में, एक ही पल में।
गुरजिएफ के एक शिष्य बैनेट ने एक अनूठा संस्मरण लिखा है। बैनेट गुरजिएफ का सबसे लंबे समय तक शिष्य रहा। पश्चिम से जो व्यक्ति सबसे पहले गुरजिएफ के पास पहुंचा वह बैनेट था। और अंत तक जो गुरजिएफ के साथ लगा रहा वह भी बैनेट था। कोई पैंतालीस साल का संबंध था। बैनेट ने लिखा है कि गुरजिएफ के साथ काम करते हुए, एक दिन गुरजिएफ ने उसे कहा था वह गड्ढे खोदता रहे, तो दिनभर गड्ढे खोदता रहा। वह इतना थक गया था... ! वह गुरजिएफ की एक प्रक्रिया थी थका देना, इतना थका देना कि हाथ हिलाने की भी स्थिति न रह जाये। क्योंकि गुरजिएफ कहता था कि जब तुम इतने थक जाते हो कि हाथ हिलाने की भी स्थिति नहीं रह जाती तभी तुम्हारा परम शक्ति से संबंध जुड़ता है। जब तक तुममें शक्ति होती है तब तक परम शक्ति तुममें प्रवाहित नहीं होती। तो उसे थका दिया था। वह दिनभर से थक गया था। तीन रात से सोया भी न था। वह गिरा- गिरा हो रहा था। खोद रहा था, लेकिन अब उसे समझ में नहीं आ रहा था कि अगली बार कुदाली उठा सकेगा कि नहीं। कुदाली उठाये-उठाये झपकी खा रहा था। तब गुरजिएफ आया और उसने कहा कि यह क्या कर रहे हो? इतने जल्दी नहीं, अभी तो जंगल जाना है और कुछ लकड़ियां काटकर लानी हैं।
तो गुरजिएफ की शर्तों में एक शर्त थी कि वह जो कहे, करना ही होगा। क्योंकि उसी माध्यम से वह सोयी हुई चेतना को जगा सकता है। तो बैनेट की बिल्कुल इच्छा नहीं थी। जाने का जंगल तो सवाल ही नहीं था। अपने कमरे तक कैसे लौटेगा--यह चिंता थी। कहीं बीच में गिरकर सो तो नहीं जायेगा। लेकिन जब गुरजिएफ ने कहा तो गया। जंगल गया, लकड़ियां काटीं। जब वह लकड़ियां काट रहा था, तब अचानक घटना घटी। अचानक उसे लगा सारी सुस्ती खो गयी और एक बड़ी ऊर्जा का जैसे बांध टूट गया! यहां बिल्कुल खाली हो गया था शक्ति से; जगह, स्थान निर्मित हो गया था। भीतर जहां ऊर्जा भरी है, वहां से टूट पड़ी। बही गड्ढे की तरफ। गड्ढा बन गया था थकान के कारण। ऊर्जा बही और सारा शरीर, रोआं-रोआं ऐसी शक्ति से भर गया जैसा कभी भी न हुआ था। उसने कभी ऐसी शक्ति जानी ही न थी। उस क्षण उसे लगा, इस समय मैं जो चाहूं वह हो सकता है। इतनी शक्ति थी! तो उसने सोचा, क्या चाहूं? जिंदगीभर सोचा था आनंदित... तो उसने

कहा, मैं आनंदित होना चाहता हूं। ऐसा भाव करना था कि वह एकदम आनंदित हो गया। उसे भरोसा ही न आया कि आदमी के बस में है क्या आनंदित होना! चाहते तो सभी हैं--होता कौन है! उसने सोचा कि आनंदित हो जाऊं... यह तो सिर्फ खेल कर रहा था शक्ति को देखकर। इतनी शक्ति नाच रही थी चारों तरफ, रोआं-रोआं ऐसा भरा-पूरा था कि उसको लगा इस क्षण में तो अगर मैं जो भी चाहूंगा हो जायेगा तो क्या चाहूं! "आनंदित!" ऐसा सोचना था, यह शब्द का उठना था--आनंद--कि उसकी पुलक-पुलक नाच उठी। उसे बस भरोसा न आया। उसने कहा कोई धोखा तो नहीं खा रहा हूं, कोई सपना तो नहीं देख रहा हूं, कोई मजाक तो नहीं की जा रही है मेरे साथ। तो उसने सोचा कि उलटा करके देख लूंः दुखी हो जाऊं! ऐसा सोचना था कि "दुखी हो जाऊं" कि एकदम गिर पड़ा! चारों तरफ जैसे अंधेरा छा गया! जैसे अचानक सूरज डूब गया! जैसे सब तरफ दुख ही दुख और दुख की तरंगें उठने लगीं! वह घबराया कि यह तो मैं नर्क में गिरने लगा। यह हो क्या रहा है! उसने कहा, मैं शांत हो जाऊं, वह तत्क्षण शांत हो गया।
उसने सब मनोभाव उठाकर देखे। फिर तो एक-एक पर प्रयोग करके देखा--क्रोध, घृणा, प्रेम--और जो भाव उसने उठाया वही भाव परिपूर्ण रूप से प्रगट हुआ।
वह भागा हुआ आया। उसने गुरजिएफ को कहा कि चकित हो गया हूं। उसने कहा,
अब चकित होने की जरूरत नहीं, चुपचाप सो जा! अब जो हुआ है इसे चुपचाप संभालकर रख और याद रखना, कभी भूलना मत कि अगर आदमी ठीक स्थिति में हो तो जो चाहता है, वही हो जाता है। गैर-ठीक स्थिति में तुम चाहते रहो, चाहते रहो, कुछ भी नहीं होता। ठीक स्थिति में जब भीतर के तार मिलते हैं तो साधन और साध्य की दूरी खो जाती है। इसको ही हिंदुओं ने कल्पवृक्ष की अवस्था कहा है।
कल्पवृक्ष स्वर्ग में लगा हुआ कोई वृक्ष नहीं है। कल्पवृक्ष तुम्हारे भीतर की एक चैतन्य अवस्था है।
बैनेट के उल्लेख से तुम समझ सकते हो कल्पवृक्ष का क्या अर्थ होगा। कल्पवृक्ष का अर्थ होगा कि जहां साधन और साध्य का फासला न रहा, जहां दोनों के बीच कोई दूरी न रही। यहां साधन हुआ नहीं कि साध्य आ ही गया। एक साथ, युगपत! क्षणभर का भी, क्षण के खंड का भी हिस्सा नहीं है--यही कल्पवृक्ष की धारणा है।
कल्पवृक्ष की धारणा है कि जिस वृक्ष के नीचे तुम बैठे, इधर तुमने मांगा उधर मिला। ऐसे कोई वृक्ष कहीं नहीं हैं, लेकिन ऐसे वृक्ष तुम बन सकते हो। और उस बनने की दिशा में जो पहला कदम है वह यह कि साधन और साध्य की दूरी कम करो। क्योंकि जहां साधन और साध्य मिलते हैं, वहीं वह घटना घटती है कल्पवृक्ष की।
और तुमने खूब दूरी बना रखी है। तुम तो सदा दूरी निर्मित करते चले जाते हो। तुम कहते हो, कल मिले। तुम्हें यह भरोसा ही नहीं आता कि आज मिल सकता है, अभी मिल सकता है, इसी क्षण मिल सकता है।
तुमने आत्मबल खो दिया है। तुमने जन्मों-जन्मों तक वासना के चक्कर में पड़कर... वासना का चक्कर ही यही हैः साध्य और साधन की दूरी यानी वासना; साध्य और साधन का मिलन यानी आत्मा।... तो तुमने इतनी दूरी बना ली है कि इस जन्म में भी तुम्हें भरोसा नहीं आता कि मिलेगा, तो तुम कहते हो, अगले जन्म में! अगले जन्म पर भी भरोसा नहीं आता, क्योंकि तुम जानते हो अपने आपको भलीभांति कि कितने जन्मों से तो भटक रहे हो कुछ मिलता तो नहीं। तो तुम कहते हो, स्वर्ग में, परलोक में; इस लोक में नहीं तो परलोक में। तुम दूर हटाये जा रहे हो। तुम साध्य और साधन के बीच समय की बड़ी दूरी बनाये जा रहे हो। यह समय को हटा दो और गिरा दो।
कृष्ण कहते हैं, फलाकांक्षा छोड़ दो। उपनिषद कहते हैं, कंजूस मत बनो। महावीर कहते हैं, भव्य हो जाओ। भविष्य के पीछे क्यों पड़े हो? तुम भव्य हो सकते हो। तुमने भविष्य को भव्यता दे रखी है।
भव्य का अर्थ हुआः ऐसी घड़ी जहां तुम्हें पाने को कुछ भी नहीं; जहां सब मिला हुआ है। ऐसी परितृप्ति, ऐसा परितोष!
तो फिर भी तुम्हारे जीवन से धर्म होता है, लेकिन अब धर्म खेल की तरह है। जैसे कोई संगीतज्ञ अपनी वीणा पर धुन उठाता है--नहीं कि कुछ पाना है,

बल्कि इसलिए कि इतना मिला है, इसे गुनगुनाए, इसे गाए, इसका स्वाद लेता है, कि कोई नर्तक नाचता है--नहीं कि कोई देखे; कोई देख ले, यह उसका सौभाग्य है, न देखे उसका दुर्भाग्य है।
वानगाग के चित्रों को देखने एक आदमी आया। उसे कुछ समझ में न आया कि इन चित्रों में क्या है। उसने इधर-उधर देखा और फिर वह जाने लगा तो उसने वानगाग को कहा कि मेरी कुछ समझ में नहीं आता। मैं तो यह भी तय नहीं कर सकता कि चित्र सीधे लटके हैं कि उलटे लटके हैं। इनमें है क्या?
वानगाग की आंख में, कहते हैं आंसू आ गये। उस आदमी ने कहा कि क्या मैंने आपको दुख पहुंचाया? वानगाग ने कहा, नहीं! लेकिन मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूंः काश, तुम्हारे पास मेरे जैसी देखनेवाली आंखें होतीं! तुम बिल्कुल अंधे हो, इसलिए आंख में आंसू आ गये, और कोई कारण नहीं।
जो व्यक्ति धार्मिक है, उसके पास एक आंख है, जो अधार्मिक के पास नहीं है। उसके पास एक तीसरा नेत्र है। उसके पास दिव्य च्रु है। और वह दिव्य च्रु प्रत्येक चीज को भव्य कर देता है, सुंदर कर देता है। वह जहां भी आंख डालता है, वहीं मिट्टी सोना हो जाती है। वह जहां हाथ रखता है, वहीं मिट्टी सोने में बदल जाती है। वह जिस तरफ उठता है, बैठता है, उसी तरफ कल्पवृक्ष निर्मित होने लगता है।
यह तुम्हारे बस में है कि तुम भव्य हो जाओ। लेकिन भव्य होने का एक ही उपाय है कि भविष्य गिर जाए। भविष्य से ले लो वापस, तुमने जो भव्यता उसे दी है। और उस भविष्य से छीनी गयी भव्यता को अपने हृदय में आरोपित करो। "अभव्य जीव धर्म को भोग का निमित्त समझकर करता है; कर्मक्षय का कारण समझकर नहीं।"
वह तो धर्म से भी कर्म का जाल ही फैलाता है, कर्म का क्षय नहीं होता।
वह तो धर्म के नाम पर ही इस संसार की ही वृत्तियों को फिर-फिर आरोपित कर लेता है।
हविश को आ गया है गुल खिलाना
जरा ए जिंदगी! दामन बचाना।
वह जो वासना है, उसको भी बड़े फूल खिलाना आता है। तुम अगर भागे संसार से
तो वह धर्म के फूल खिलाने लगती है। तुम अगर भागे विचार से तो वह ध्यान के फूल खिलाने लगती है।
हविश को आ गया है गुल खिलाना
जरा ए जिंदगी! दामन बचाना।
जरा सावधान रहना! तुम्हारी तृष्णा बड़े-बड़े रूप रख लेती है। तृष्णा बड़ी बहुरूपिया है। तुम जैसा रूप चाहते हो वह वैसा ही रखकर नाचने लगती है। वह कहती है, चलो यही सही। लेकिन जब तक तुम उसको ठीक से पहचान न लोगे, उसके सब रूपों में, जब तुम एक बुनियादी बात न पहचान लोगे कि तृष्णा साधन और साध्य की दूरी है... फिर जहां भी साधन और साध्य की दूरी हो, समझना कि तृष्णा ने रूप धरा। सावधान हो जाना!
जरा ए जिंदगी! दामन बचाना!
... तब तुम सावधान हो जाना कि फिर आया भविष्य; कहीं से तृष्णा ने द्वार खटखटाया। फिर तुमने कहा, कल--तृष्णा आ गयी! फिर तुमने कहा, ऐसा हो जाये, ऐसा होता, और उसका तुम आयोजन करने लगे--बस तृष्णा आ गयी! जिस घड़ी तुम बैठे हो या चल रहे हो या उठे हो, खड़े हो, और उस घड़ी में कोई तृष्णा नहीं है--तुम बैठे हो तो बस बैठे हो आनंदित; खड़े हो तो खड़े हो आनंदित; चल रहे हो तो चल रहे आनंदित--जीवन के ये छोटे-छोटे कर्म भव्य हो जाते हैं।
झेन फकीर कहते हैं, जिसने साधारण में असाधारण को खोज लिया, उसी ने खोजा। जो असाधारण के चक्कर में लगा है, वह तो साधारण ही रह जायेगा। क्योंकि असाधारण का चक्कर तृष्णा का चक्कर है।
एक झेन फकीर से किसी ने पूछा कि जब तुम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुए थे,
तब तुम क्या करते थे? उसने कहा, लकड़ी काटता था, कुएं से पानी भरकर लाता था। और उसने पूछा, अब जब कि तुम ज्ञान को उपलब्ध हो गये हो, अब क्या करते हो? उसने कहा, अब भी लकड़ी काटता हूं, अब भी कुएं से पानी भरकर लाता हूं। तो उसने कहा, फिर फर्क क्या है? फर्क बहुत बड़ा है। पहले भी कुएं से पानी भरकर लाता

था, लेकिन कुछ पाने की आकांक्षा थी उसके द्वारा; पहले भी लकड़ी काटता था, लेकिन वासना कहीं भविष्य में थी।
... अब भी लकड़ी काटता है, अब भी पानी भरकर लाता है--करोगे भी क्या? जीवन
तो इन्हीं छोटी-छोटी चीजों से मिलकर बना है। लकड़ी भी काटोगे, पानी भी भरकर लाओगे, घर में बुहारी लगाओगे, खाना बनाओगे, कपड़े धोओगे, स्नान करोगे, भोजन करोगे, सोओगे, उठोगे, बैठोगे, चलोगे--जीवन इन्हीं छोटे-छोटे अणुओं से बना है।
लेकिन फर्क एक आ जायेगा।
कृत्य भव्य हो जाता है जब उसमें कोई तृष्णा नहीं होती। जैसे ही तृष्णा से छूटा कि कृत्य पवित्र हुआ।
लेकिन हम तो ऐसे उलझ गये हैं तृष्णा में कि कभी-कभी जहां उलझे हैं वहां से भाग भी खड़े होते हैं--तो और सब तो छोड़ जाते हैं लेकिन तृष्णा हमारे साथ चली जाती है।
ये न जाना था इस महफिल में दिल रह जायेगा
हम ये समझे थे चले आयेंगे दमभर देखकर।
लेकिन लगाव कुछ ऐसा बन जाता है कि दिल महफिल में रह जाता है और महफिल दिल में समा जाती है। फिर तुम भागते फिरते हो, लेकिन कुछ अंतर नहीं पड़ता। तुम जहां जाते हो फिर वहां एक संसार खड़ा हो जाता है, क्योंकि संसार का जो "ब्लू-प्रिंट" है, उसका जो बुनियादी नक्शा है, वह तुम्हारी तृष्णा में है। "वह अभव्य जीव नहीं जानता कि पर-द्रव्य में प्रवृत्त शुभ परिणाम पुण्य है और अशुभ परिणाम पाप है। धर्म अनन्यगत अर्थात स्व-द्रव्य में प्रवृत्त परिणाम है, जो यथासमय दुःखों के क्षय का कारण होता है।" "पर-द्रव्य में प्रवृत्त शुभ परिणाम पुण्य है।" पुण्य की परिभाषा महावीर कर रहे हैं। दूसरे के साथ शुभ परिणाम का संबंध पुण्य है। अन्य के साथ शुभ परिणाम का संबंध पुण्य है।
तुमने किसी को दान दिया--एक संबंध निर्मित हुआ। लेकिन पुण्य का संबंध है--तुमने दिया! तुमने किसी से छीन लिया, चोरी की, तो फिर एक संबंध बना-- तुमने किसी से छीना! दोनों अलग-अलग हैं। किसी को दिया--छीनने से बिल्कुल उलटा है। छीनना देने से बिल्कुल उलटा है। देना पुण्य है, तो छीनना पाप है। लेकिन दोनों हालत में एक बात है समान--दूसरा मौजूद है। दिया तो दूसरे को, छीना तो दूसरे से। दूसरा तो है ही!
तो महावीर कहते हैं, पर-द्रव्य में प्रवृत्त शुभ परिणाम पुण्य है और अशुभ परिणाम पाप है। फिर धर्म क्या है? धर्म पाप और पुण्य से मुक्ति है--न दिया और न छीना। धर्म अनन्यगत, दूसरे से मुक्त हो जाना है।
"अर्थात स्व-द्रव्य में प्रवृत्त परिणाम है, जो यथासमय दुखों के क्षय
का कारण होता है।"
ये महावीर के मूल आधार-सूत्र हैं, "स्व-द्रव्य में प्रवृत्त परिणाम!"
ये उनके पारिभाषिक शब्द हैं।
जो अपने में ही रमण कर रहा है...
तुम बैठे हो, कुछ भी नहीं कर रहे हो, सिर्फ बैठे होः अपने में ही रमण हो रहा है! तुम अपने में ही डूबे हो, लीन हो, तल्लीन हो। मन कहीं जा ही नहीं रहा है। न भविष्य में जा रहा है, न दूसरे में जा रहा है। क्योंकि दूसरे में भी जाना भविष्य में जाना है। तुम दूसरे का कोई चिंतन ही नहीं कर रहे--सारा चिंतन रुक गया है। तुम विचार ही नहीं कर रहे हो, क्योंकि सभी विचार दूसरे के हैं। तुम सिर्फ हो!
यह स्व-द्रव्य में होना--तुम मात्र हो, कुछ भी नहीं हो रहा है। तुम कोई संबंध निर्मित नहीं कर रहे। तुम कोई सेतु नहीं बना रहे। दूसरे के पास जाने की कोई आकांक्षा नहीं। दूसरे से दूर जाने की भी कोई आकांक्षा नहीं। दूसरा तुम्हारी कल्पना के लोक में है ही नहीं। बस अकेले तुम अपने से भरे हो! अपने से भरपूर, लबालब, कहीं जाते हुए नहीं! तरंग भी नहीं, लहर भी नहीं। क्योंकि लहर भी कहीं जाती है। तुम बस यहीं हो। ऐसी घड़ी को महावीर कहते हैं धर्म।

लहर उठी--और अगर लहर दूसरे के हित में हुई तो पुण्य, अहित में हुई तो पाप। लहर ही न उठी, तुम स्व-द्रव्य में लीन बैठे रहे--तो धर्म। तो धर्म पुण्य और पाप के पार है।
जो पुण्य और पाप के पार है उसका भविष्य नहीं हो सकता। तुम अपने में तो
बस अभी और यहीं हो सकते हो--यही वर्तमान के क्षण में। तुम अपनी आत्म-सत्ता का अनुभव कर सकते हो, क्योंकि सत्ता उपलब्ध ही है। उसके लिए कल तक रुकने की जरूरत नहीं; यह कहने की जरूरत नहीं कि कल अपने में प्रवेश करूंगा। हां, दूसरे में प्रवेश करना हो तो कल तक रुकना पड़ेगा; दूसरे को राजी करना होगा, समझाना-बुझाना पड़ेगा। लेकिन अपने में प्रवेश करना हो तो इसके लिए तो कल तक छोड़ने की जरूरत नहीं। इसके लिए तो कोई भी साधन जरूरी नहीं है। क्योंकि वहां तो तुम हो ही; सिर्फ थोड़ा विस्मरण हुआ है। स्मरण आते ही तुम अचानक पाते हो कि तुम सदा अपने घर में थे। यह अपने घर में होना धर्म है।
पाप तो बांधता ही है, पुण्य भी बांध लेता है। इसलिए महावीर कहते हैं, जिसने पुण्य को धर्म समझा, उसने अभी धर्म को नहीं समझा। उसने अपनी पाप की वृत्ति को ही सजा लिया, सुंदर बना लिया; लेकिन पाप को जाना नहीं कि पाप क्या था। पाप यही था कि अपने से बाहर चले गये थे। दूसरे की हत्या करने गये थे कि दूसरे को बचाने गये थे, दोनों बातें बराबर हैं। अपने से बाहर चले गये थे। वहीं मौलिक पाप हो गया।
सितम है ऐ रोशनी सितम है कि वह भी अब धूप की है जद में
जरा-सा साया जो रह गया था घने दरख्तों की तीरगी में।
तुम बैठे हो छिपे, दरख्तों के नीचे, थोड़ी-सी छाया है, भरी दोपहरी में-- लेकिन धीरे-धीरे धूप वहां भी पहुंच जाती है। धीरे-धीरे धूप उसे भी छीन लेती है।
सितम है ऐ रोशनी! सितम है कि वह भी है अब धूप की जद में--वह भी आ गया अब धूप के घेरे में--जरा-सा साया जो रह गया था घने दरख्तों की तीरगी में।
तो पहले आदमी पाप से बचता है और पुण्य की छाया में बैठना चाहता है। लेकिन ज्यादा देर नहीं लगती कि पता चलता है पुण्य भी पाप का ही विस्तार है। ज्यादा देर नहीं लगती कि पता चलता है कि पुण्य भी सजायी हुई बेड़ी है, जंजीर है। जल्दी ही पता चलता है कि यह भी डूब गया पाप में।
जिस दिन पुण्य भी पाप जैसा दिखायी पड़ने लगता है, उस दिन व्यक्ति धर्म
को उपलब्ध होता है।
महावीर की धर्म की परिभाषा बड़ी पराकाष्ठा की है, आत्यंतिक है; उससे ज्यादा शुद्ध परिभाषा खोजनी मुश्किल है।
"धर्म है अनन्यगत अर्थात स्व-द्रव्य में प्रवृत्त परिणाम और तब यथासमय दुखों के क्षय का कारण होता है।"
वह तुम्हें सोचना नहीं है कि दुख क्षय हों या दुख के कारणों का क्षय हो। वह तो यथासमय हो जाता है। यह यथासमय की बात भी समझ लेनी चाहिए। महावीर कहते हैं, हमने पाप किये जन्मों-जन्मों, बीज बोए, वृक्ष लगाए। यथासमय फल पकेंगे और गिर जायेंगे। उसमें जल्दी नहीं की जा सकती। इतना ही किया जा सकता है कि दुबारा बीज मत बोना। जो लग गए हैं फल वह तो पकेंगे और गिरेंगे--पककर ही गिरेंगे; परिपक्व होकर ही गिरेंगे।
उन्हें चुपचाप स्वीकार कर लेना। ब.ड़ा दुख होगा, उसे स्वीकार कर लेना। उसी को महावीर तप कहते हैं। जो दुख हमने बोये थे और अब पक गए हैं, अब उन दुखों को हमें भोगना होगा। उन्हें चुपचाप भोग लेना। उनके प्रति कोई भी प्रतिक्रिया न करना। यह भी मत कहना कि यह बुरा है। उन्हें हटाने की कोशिश मत करना। उनसे बचने और भागने की कोशिश मत करना। क्योंकि तुम्हारी सब कोशिश विलंब करेगी।
तुम तो अहोभाव से स्वीकार कर लेना कि अहो, जो दुख बोये थे उनके फल पक गये और दुख भोगने का क्षण आ गया! धन्यभागी हूं, छुटकारा हुआ!
सद चाक हुआ गो जाम-ए-तन मजबूरी थी सीना ही पड़ा
मरने का वक्त मुकर्रर था, मरने के लिए जीना ही पड़ा।
महावीर कहते हैं, जीना ऐसे जैसे कि मरने का वक्त तो तय है। तो क्या करें, जीना पड़ेगा! और जीवन के लिए व्यवस्था ऐसे ही जुटा लेना जैसे कि अब

जीना है, फटे वस्त्र हैं तो सी लेता है आदमी। सद चाक हुआ गो जाम-ए-तन मजबूरी थी सीना ही पड़ा--हजार-हजार बार कपड़े फट गये; लेकिन मजबूरी थी, विवशता थी-- सीना ही पड़ा। मरने का वक्त मुकर्रर था, मरने के लिए जीना ही पड़ा।
चुपचाप, हर हाल उस समय तक प्रतीक्षा करनी होगी जब पाप के फल पक जाएं और गिर जाएं--यथासमय। महावीर कहते हैं, वह अपने-आप! जैसे फलों के पकने का समय है, मौसम है, ऐसे सारे जीवन के कर्मों के पकने का समय है। वह अपने-आप पक जाते हैं, तुम्हें उनकी चिंता नहीं करनी। तुम भविष्य की चिंता छोड़ो! तुम वर्तमान में, स्वयं में, स्व-परिणाम में लीन होना सीखो। धीरे-धीरे बाकी सब अपने से आप यथासमय हो जायेगा। उसका तुम्हें हिसाब भी नहीं रखना। जब पाप का फल आये और दुख हो, पीड़ा हो, तो उसे स्वीकार कर लेना। वही तप है।
"जो पुण्य की इच्छा करता है, वह भी संसार की ही इच्छा करता है। पुण्य सुगति का हेतु अवश्य है। किंतु निर्वाण तो पुण्य के क्षय से ही होता है।" महावीर कहते हैं, शुभ है पुण्य की इच्छा करना; लेकिन है संसार की ही इच्छा। इसलिए पुण्य की इच्छा पर ही मत रुक जाना। पुण्य की इच्छा करना ताकि पाप से छुटकारा हो सके। एक कांटा लग जाए, दूसरे से निकाल लेते हैं--ऐसे ही पुण्य की इच्छा करना ताकि पाप निकल जाये। लेकिन जब एक कांटा निकल जाये तो दूसरे को घाव में मत रख लेना। दूसरा भी उतना ही कांटा है; माना कि पहले को निकालने में सहयोगी हुआ। धन्यवाद दे देना और दोनों को फेंक देना। पाप जब निकल जाये तो पुण्य को मत सम्हालने लगना; अन्यथा संसार ही सम्हाला जाता है।
"जो पुण्य की इच्छा करता है वह भी संसार की ही इच्छा करता है। पुण्य सुगति का हेतु है, किंतु निर्वाण तो पुण्य के क्षय से ही होता है।"
इधर अंधेरे की लानते हैं, उधर उजाले की जहमतें हैं
तेरे मुसाफिर लगाएं बिस्तर कहां पे सहराए-जिंदगी में?
बड़ी कठिनाई है! इधर अंधेरे की लानते हैं--यहां अंधेरे की तकलीफें हैं। उधर उजाले की जहमतें हैं--उधर प्रकाश की भी झंझटें हैं। इधर पाप सताता है, उधर पुण्य भी सताता है। तेरे मुसाफिर लगाएं बिस्तर कहां पे सहराए-जिंदगी में? यह जो जिंदगी का मरुस्थल है, इस पर कहां विश्राम करें? इस जिंदगी के मरुस्थल में विश्राम की कोई जगह नहीं। विश्राम की जगह तो मुसाफिर के भीतर है। यहां बाहर बिस्तर लगाया तो भटके। यहां तो भीतर बिस्तर लगाना होगा। उस भीतर बिस्तर लगाने को महावीर कहते हैं, "अनन्यगत; स्व-द्रव्य में प्रवृत्त परिणाम।" लगा लिया भीतर बिस्तर!
देखा विष्णु को, सो रहे हैं क्षीर-सागर में! लगाया बिस्तर क्षीर-सागर में! कथा प्रीतिकर है!
क्षीर-सागर का अर्थ हैः अमृत का सागर, जिसका कोई अंत नहीं आता। उस पर बिस्तर लगा है। और बिस्तर किसका है? शेषनाग का। उसने कुंडली मारी है। नाग प्रतीक है तुम्हारी ऊर्जा का, कुंडलिनी का, तुम्हारे भीतर छिपी हुई ऊर्जा का। उसी ऊर्जा की कुंडली मारकर अनंत के सागर पर जो बिस्तर लगाकर लेट गया है... ! लक्ष्मी उसके पैर दबाती है! सारे सुख उसके पैर दबाने लगते हैं। सब वैभव सहज ही उसे उपलब्ध हो जाते हैं। नहीं कि वह उनकी चेष्टा करता है। जब तक चेष्टा है तब तक दुख ही पैर दबाता है। जब तक चेष्टा है, वासना है, तब तक पीड़ा ही हाथ आती है। जब तक मांगना है, तब तक परम संपदा नहीं मिलती। यहां मांगने से भीख नहीं मिलती, परम संपदा कहां मिलेगी! परम संपदा मिलती है सम्राटों को, जिन्होंने भीतर के क्षीर-सागर पर अपनी ही ऊर्जा के शेषनाग की कुंडलिनियों पर विश्राम लगा दिया है, बिस्तर लगा दिया है। नहीं, बाहर कोई जगह नहीं है इस जीवन के मरुस्थल में जहां विश्राम मिल सके। यहां तो दौड़ना ही दौड़ना होगा। यहां तो हर बिंदु जो विश्राम का मालूम पड़ता है, केवल नयी दौड़ का प्रारंभ सिद्ध होता है। सोचकर आते हैं कि अब, अब विश्राम का क्षण आया; पहुंचते-पहुंचते विश्राम का क्षितिज और आगे सरक जाता है।
वासना में कभी किसी ने विश्राम नहीं जाना। विश्राम वहां नहीं है। विराम वहां नहीं है, राम वहां नहीं है। विश्राम तो भीतर है जहां तृष्णा शून्य हो जाती है।

"अशुभ कर्म को कुशील और शुभ कर्म को सुशील जानो।"
इस वचन को गौर से सुनना।
"अशुभ कर्म को कुशील और शुभ कर्म को सुशील जानो। किंतु उसे सुशील कैसे कहा जा सकता है, जो संसार में प्रविष्ट कराता है?"
पहले महावीर कहते हैं, अशुभ कर्म को कुशील, शुभ कर्म को सुशील जानो। तत्क्षण दूसरे वाक्य में खंडन करते हैं। कहते हैं, किंतु उसे सुशील कैसे कहा जा सकता है जो संसार में प्रविष्ट कराता है? तर्क से भरी हुई बुद्धि को लगेगा, यह क्या मामला है! यह तो वक्तव्य तत्क्षण विपरीत हो गया। एक वाक्य पहले ही कहा कि अशुभ को कुशील, शुभ को सुशील जानो--और फिर कहते हैं कि सुशील कैसे जाना जा सकता है शुभ को, क्योंकि वह संसार में प्रवेश कराता है! यह दो तलों के लोगों के लिए कहा गया वक्तव्य है। महावीर जैसे व्यक्तियों के वक्तव्यों में अगर असंगति मिले तो इतना ही समझना कि वह वक्तव्य कई तलों पर दिये गये हैं। पहले वे कह रहे हैं उससे, जो पाप में रत है। उससे वे कह रहे हैं कि अशुभ कर्म को कुशील जान, शुभ कर्म को सुशील। फिर जब वह पाप से मुक्त हो गया है, तो वे उससे कहते हैं, "लेकिन सुन! उसे सुशील कैसे कहा जा सकता है जो संसार में प्रविष्ट कराता है? यह भी सुशील नहीं है। यह तो कामचलाऊ बात थी, व्यवहारिक थी।
महावीर ने कहा है, वक्तव्य उनके दो आधारों पर हैं--व्यवहारिक-नय और निश्चय-नय। एक वक्तव्य ऐसा है जो व्यवहारिक है। एक कांटे को दूसरे कांटे से निकालना है; इसलिए वे कहते हैं, यह कांटा बड़ा शुभ है, इससे तुम लगे हुए कांटे को निकाल लो। जब कांटा निकल जाता है तब वे निश्चय वक्तव्य देते हैं। वे कहते हैं, अब दोनों कांटों को फेंक दो क्योंकि कोई कांटा सुशील कैसे हो सकता है! कांटा तो दुशील ही है, कुशील ही है।
तो महावीर की सारी वाणी दो तलों पर है। एक तल है जहां तुम खड़े हो, तुमसे बोल रहे हैं। और दूसरा तल है जब तुम उनकी सुन लोगे, समझ लोगे, मान लोगे, तब तत्क्षण वे तुमसे कहेंगे, अब इस कांटे को पकड़कर पूजा मत करने लगना।
पुण्य अच्छा है कामचलाऊ दृष्टि से; क्योंकि पाप से छुटकारा दिलाने में सहयोगी है। लेकिन इसको पकड़कर मत बैठ जाना। पुण्य ही तुम्हारे जीवन की अंतिम दिशा न बन जाये। अन्यथा बीमारी से छूटे, औषधि से पकड़ गये। औषधि शुभ है, बीमारी से छुटा देने को; लेकिन औषधि की पूजा मत करना। पुण्य के गुणगान मत गाना।
लेकिन यही होता है। एक आदमी जरा-सा दान कर देता है तो उसकी चर्चा करता है। न केवल चर्चा करता है, आयोजन करता है कि लोग जानें कि इसने दान किया; अखबार में खबर छपे, फोटो छपे कि इसने दान किया!
महावीर कहते हैं, दान किया, यह तो ऐसा ही था कि पाप किया था, उसका प्रक्षालन किया; पाप किया था, उसका पश्चात्ताप किया--इसमें शोरगुल क्या मचा रहे हो? किसी आदमी को टी. बी. हो गयी थी, उसने दवा ली, ठीक हो गया--तो वह कोई अखबारों में खबर देने जाता है कि देखो, मैं कैसा महापुरुष, कि दवा ली और ठीक हो गया! तो हम उसे पागल कहेंगे।
महावीर कहते हैं, खूब पाप किया है, थोड़ा-थोड़ा पुण्य करके उसे छांटते हो, तो इसमें शोरगुल मचाने की कोई जरूरत नहीं। तो वास्तविक पुण्यात्मा व्यक्ति तो ऐसे करेगा पुण्य कि एक हाथ से करे और दूसरे हाथ को पता न चले। चुपचाप करेगा। पता ही नहीं चले किसी को; क्योंकि पुण्य तो पश्चात्ताप है, इसमें पता चलाने जैसा क्या है? वह तो मजबूरी से कर रहा है कि खूब पाप किए हैं, अब उनको धोना है; खूब गंदगी इकट्ठी कर ली है, अब स्नान करना है। तो तुम स्नान-घर अपना मकान के सामने थोड़े ही बनाते हो--कि खड़े हैं बीच सड़क पर और स्नान कर रहे हैं; कि सारा गांव देख ले कि कैसे स्वच्छ हो रहे हैं! स्नान-घर में तो तुम छिपकर चुपचाप स्नान कर लेते हो। तुम्हारा पुण्य का गृह भी ऐसा ही छुपा होना चाहिए। क्योंकि अगर तुमने इससे प्रशंसा पायी तो यह एक नया उपद्रव बन जायेगा। तो फिर तुम प्रशंसा पाने का जो मजा है उसके लिए पुण्य करने लगोगे। फिर भव्य न रहे, अभव्य हो गए।

तो पुण्य को जो चुपचाप करे वही भव्य है। पुण्य की जो घोषणा करके करे
वह अभव्य है। लेकिन हम तो पुण्य करते ही इसलिए हैं ताकि घोषणा हो। हम तो पुण्य करने के लिए राजी ही इसीलिए होते हैं, पुण्य के लिए थोड़े ही, घोषणा के लिए।
जो लोग दान इकट्ठा करते हैं वे भलीभांति जानते हैं। वे गांव के दो-चार धनी-मानी व्यक्तियों से पहले लिस्ट पर नाम लिखवा लाते हैं। वे कहते हैं, न देना आप दस हजार, देना हजार; लेकिन लिख तो दो दस हजार, ताकि दूसरे लोगों को देखकर लगे कि फलां ने दस हजार दिये, ईर्ष्या जगे, स्पर्धा पैदा होः "अच्छा तो यह अपने को समझता क्या है! दस हजार दिये तो लिखो ग्यारह हजार!"
दान के लिए भी अहंकार को ही फुसलाना पड़ता है। पुण्य के लिए भी बीमारी
को ही खुजलाना पड़ता है। फिर जब दान हो जाए तो दानी प्रतीक्षा करता हैः अब प्रतिफल! शोभा-यात्रा निकले। बैंड-बाजे बजें! सारे गांव में चर्चा हो! दूर-दूरदिगंत तक उसकी खबर पहुंचे!
एक सज्जन मुझे मिलने आये थे। पत्नी भी साथ थी। तो पत्नी ने मुझसे कहा
कि शायद आपको मेरे पति का परिचय नहीं है। पत्नी मुझे एक-दो बार आकर मिल गयी थी। मैंने कहा कि ये पहली दफे आये हैं। उसने कहा, "ये बड़े दानी हैं। एक लाख रुपया अब तक दान कर चुके हैं।"
पति ने तत्क्षण पत्नी का पैर दबाया और कहा, "एक लाख नहीं एक लाख दस हजार!" वह दस हजार भी कम बोल रही है तो पति को कष्ट हो गया; सुधार किया। दानी दान से मान इकट्ठा नहीं कर सकता। दानी मानी नहीं हो सकता। क्योंकि जो मानी है वह दानी कैसे हो सकेगा?
तो महावीर कहते हैं, "अशुभ कर्म को कुशील और शुभ को सुशील जानो किंतु उसे सुशील कैसे कहा जा सकता है जो संसार में प्रविष्ट करा दे?" नहीं वह भी कुशील है अंततः। अगर पाप की दृष्टि से सोचो तो पुण्य सुशील है। अगर मोक्ष की दृष्टि से सोचो तो पुण्य कुशील है!
इसलिए महावीर के सभी वक्तव्य दृष्टि-वक्तव्य हैं। इसको महावीर की परिभाषा में "नय" कहते हैं--देखने का एक ढंग। महावीर कहते हैं, कोई भी वक्तव्य निरपेक्ष नहीं है, सापेक्ष है।
तुम कहते हो, फलां आदमी बहुत लंबा। इसका कोई मतलब नहीं होता, क्योंकि कोई ऊंट से लंबा नहीं होगा, पहाड़ से लंबा नहीं होगा, झाड़ से लंबा नहीं होगा। तुम जब कहते हो फलां आदमी लंबा, तो तुम मानकर चलते हो कि आदमी की एक सामान्य ऊंचाई है, छह फीट, वह सात फीट है। लेकिन पहाड़ के नीचे है।
कहते हैं, ऊंट पहाड़ के पास जाने से डरते हैं। डरते होंगे, क्योंकि जब रेगिस्तान में चलते रहते हैं तो वही पहाड़ है। जब पहाड़ करीब आने लगता है तो दीनता प्रगट होती है।
हमारे सभी वक्तव्य सापेक्ष हैं। एक दृष्टि से ठीक होंगे, तत्क्षण दूसरी दृष्टि से गलत हो जायेंगे।
आइंस्टीन ने तो बहुत बाद में, ढाई हजार साल बाद महावीर के, विज्ञान के जगत में सापेक्षता का नियम सिद्ध किया। पर महावीर ने ढाई हजार साल पहले धर्म के जगत में वही नियम सिद्ध किया था।
महावीर और आइंस्टीन बड़े एक साथ खड़े हैं। जो दान महावीर का धर्म के जगत में है, वही दान आइंस्टीन का विज्ञान के जगत में है। आइंस्टीन ने डांवांडोल कर दिया विज्ञान का सारा जगत। सारी चीजें सापेक्ष हो गयीं। निरपेक्ष कोई वक्तव्य न रहा। कोई ऐसा वक्तव्य नहीं है जो तुम बिना किसी शर्त के कह सको। सभी वक्तव्यों के पीछे शर्त है।
महावीर ने भी कहा, सभी वक्तव्यों के पीछे शर्त है। इसलिए इसमें तुम विरोध मत देखना और विसंगति मत देखना। यह दो दृष्टियों से कही गयी बात है। कितनी ही चेष्टा करो, पुण्य के द्वारा तुम्हारा परम रूप प्रगट न हो सकेगा। पुण्य बीच की मंजिल हो सकती है। पाप से हटकर थोड़ी देर पुण्य में विश्राम कर लेना--लेकिन जाना है मोक्ष।
ये मय छलक के भी उस हुस्न को पहुंच न सकी
ये फूल खिलके भी तेरा शबाब हो न सका।

पुण्य को कितना ही छलकाओ, पुण्य को कितना ही प्रदर्शित करो, इससे तुम्हारा भव्य रूप प्रगट न होगा। शुभ रूप प्रगट होगा, भव्य रूप नहीं क्योंकि भव्य तो शुभ से भी उतना ही दूर है जितना शुभ अशुभ से दूर है। भव्य तो बड़ा लोकतीत है।
ये मय छलक के भी उस हुस्न को पहुंच न सकी
ये फूल खिलके भी तेरा शबाब हो न सका।
वह जो तुम्हारा परम सौंदर्य है, जो अंतर्सौंदर्य है, उसको पुण्य भी नहीं छू सकता। क्योंकि पुण्य भी कृत्य है। कृत्य कितना ही बड़ा हो, आत्मा से छोटा होता है। कृत्य कितना ही बड़ा हो, कर्ता से छोटा होता है। तुमने जो किया है वह तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। करनेवाला सदा ही बड़ा है।
यह बड़ा मूलभूत दृष्टिकोण है कि कर्ता कृत्य से बड़ा है। जिस जीवन की ऊर्जा से छोटी-छोटी लहरें पुण्य की उठती हैं, वे लहरें उस जीवन-ऊर्जा से बड़ी नहीं हो सकतीं। सागर में कितनी ही बड़ी लहर उठती हो, सागर से बड़ी नहीं हो सकती।
तुम सोच सकते हो सागर में ऐसी कोई लहर कभी उठ सकती है जो सागर से बड़ी हो? असंभव! कितनी ही बड़ी लहर उठे, एक बात तय रहेगी कि सागर से छोटी रहेगी। अब तुम कोई चाय की प्याली में थोड़े ही सागर की लहर उठा सकते हो। चाय की प्याली में चाय की प्याली की ही लहर उठेगी। वह चाय की प्याली से छोटी रहेगी।
महावीर कहते हैं कि जो हमारी अंतरात्मा है वह विराट है। कृत्य तो छोटी-छोटी तरंगें हैं। उन छोटी-छोटी तरंगों को तुम सब कुछ मत मान लेना। वे पुण्य की भी हों तरंगें तो भी तुम्हारे परम सौंदर्य को न छू पायेंगी। और कितने ही पुण्य के फूल खिलते जाएं तो भी तुम्हारे परम सौंदर्य के सामने चरणों में चढ़ाने के योग्य भी न हो पायेंगे।
इस संसार में तो हम जो भी करते हैं वह कृत्य है। पुण्य करें, पाप करें; अच्छा करें, बुरा करें--जो भी हम बाहर करते हैं वह कृत्य है। जो भीतर बैठा है, करने के पार, साक्षी--वह इस संसार का हिस्सा नहीं है।
वही है हमारा परम सौंदर्य। वही है मुक्ति, मोक्ष।
मेरी रंगतें न निखर सकीं, मेरी निहकतें न बिखर सकीं
मैं वह फूल हूं कि जो इस चमन में गिला-गुजारे सबा रहा।
तुम कितनी ही लाख चेष्टाएं करो, तुम्हारे कृत्यों के कारण तुम्हारा रंग न निखरेगा। पाप से तो निखरेगा ही कैसे! और कालिख लग जायेगी। पुण्य से भी न निखरेगा। कितना ही सोना चढ़ा लो अपने ऊपर, तो भी न निखरेगा।
मेरी रंगतें न निखर सकीं, मेरी निहकतें न बिखर सकीं
और न तुम्हारी सुगंध बिखर सकेगी तुम्हारे कृत्यों से। क्योंकि तुम अपने कृत्यों से बहुत बड़े हो।
मैं वह फूल हूं कि जो इस चमन में गिला-गुजारे सबा रहा।
तुम्हारी शिकायत बनी ही रहेगी--तुम कितने ही बुरे कर्म करो; तुम नादिर
हो जाओ, चंगेज हो जाओ, तैमूर, हिटलर हो जाओ; या तुम कितने ही पुण्य-कर्म करो। तुम सम्राट अशोक हो जाओ कि सम्राट वू हो जाओ; तुम कितने ही पुण्य-कर्म करो तो भी तुम्हारा अंतिम निखार कृत्य से आनेवाला नहीं है।
तुम कृत्य से बड़े हो। ऐसे लहरों को निखार-निखारकर कहीं सागर निखरेगा? सागर तो निखरेगा साक्षी-भाव में। सागर तो निखरेगा अनन्य भाव से स्व-द्रव्य में लीन हो जाने से।
उपनिषदों में बड़े बहुमूल्य वक्तव्य हैंः "यो वै भूमा तत्सुख"--विशाल में है सुख। विराट में है सुख। "नाल्पे सुखमस्ति"--लघु में सुख कहां! छोटे में सुख कहां! "भूमैव सुख"--निश्चय ही विराट में ही सुख है। "भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः।" इसलिए उस एक विराट को ही जानने को आकांक्षा कर। विराट! जहां कोई सीमा नहीं, जिसकी कोई परिभाषा नहीं!
महावीर कहते हैं, वह विराट तुम्हारे भीतर छुपा है। तुम्हारे कृत्य तो छोटी-छोटी ऊर्मियां हैं--शुभ और अशुभ--लेकिन सभी ऊर्मियां हैं। दूसरे के किनारे की तरफ चल पड़ती हैं। जब सागर में कोई ऊर्मि नहीं होती तो सागर बे- किनारा होता है, क्योंकि किनारे की तरफ कुछ भी नहीं जा रहा है। जब सागर में

कोई ऊर्मियां नहीं होतीं तो सागर किनारे से टूटा होता है--तटहीन। तब सागर विराट होता है।
"यो वै भूमा तत्सुख"--विराट में सुख है। "नाल्पे सुखमस्ति"--छोटे में कहां सुख! "भूमैव सुख"--विराट को खोज, विराट में ही सुख है।
"बेड़ी सोने की हो चाहे लोहे की, पुरुष को दोनों ही बेड़ियां बांधती हैं। इस प्रकार जीव को उसके शुभ-अशुभ कर्म बांधते हैं... ।"
महावीर कहते हैं, बेड़ी सोने की या लोहे की, दोनों बांध लेती हैं। तुम इससे प्रसन्न मत हो जाना कि तुम कारागृह में बड़े खास कैदी हो। तुम्हारे हाथ में सोने की जंजीरें पड़ी हैं; दूसरे साधारण कैदी हैं, लोहे से बंधे हैं--इससे तुम बहुत ज्यादा प्रसन्न मत हो जाना। भिखारी बंधा होगा लोहे की जंजीरों में, सम्राट बंधा है सोने की जंजीरों में। लेकिन असली सवाल तो बंधे होने का है। तो जो बुरा कर्म करता है, वह भी बंधा हुआ है। पापी तो बंधा ही होता है, पुण्यात्मा भी बंधा होता है। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि पुण्यात्मा पापी से भी ज्यादा बंधा होता है। क्योंकि पापी तो लोहे की बेड़ियां छोड़ना चाहता है; पुण्यात्मा सोने की बेड़ियां बचाना चाहता है।
तो कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि अपराधी भी छूटने को उत्सुक होता है, लेकिन साधु छूटने को उत्सुक नहीं होता। क्योंकि उससे तुम कैसे छूटने को उत्सुक होओगे जिससे बड़ा सुख मिल रहा है और जिसके कारण बड़ा सम्मान मिल रहा है; जिसके कारण अहंकार भरता है, फलता-फूलता है!
तो कभी-कभी तो ऐसा हुआ है कि वे लोग अभागे हैं जिनके हाथ में सोने की जंजीरें पड़ी हैं; वे उनको बचाने लगते हैं; वे उनको आभूषण समझने लगते हैं। "अतः परमार्थतः दोनों ही प्रकार के कर्मों को कुशील जानकर उनके साथ न राग करना चाहिए और न उनका संसर्ग। क्योंकि कुशील कर्मों के प्रति राग और संसर्ग करने से स्वाधीनता नष्ट होती है।"
और स्वाधीनता महावीर के लिए परम मूल्य है--अल्टीमेट वैल्यू! उसके पार कुछ भी नहीं। जब तुम परिपूर्ण स्वाधीन हो, जब तुम्हारी स्वाधीनता पर कोई सीमा नहीं, जब तुम्हारी स्वाधीनता पर कोई बाधा नहीं, अनवरुद्ध तुम्हारी स्वतंत्रता है--तभी तुम विराट हो, तभी तुम भूमा हो। तब तुम छोटे न रहे। और स्वतंत्रता तो दोनों से ही नष्ट हो जाती है। इसलिए न पाप को पकड़ना न पुण्य को; न संसार को पकड़ना, न त्याग को। संसार को मत पकड़ना, संन्यास को मत पकड़ना। संसार छोड़ने के लिए संन्यास का उपयोग कर लेना, बस। फिर उससे भी पार हो जाना।
यहां कारागृह से थक जाना तो जरूरी है; जिसको हम घर कहते हैं, अपना घर कहते हैं, आशियां कहते हैं--उससे भी थक जाना जरूरी है।
वोह बिजलियों की चश्मके-पैहम कि कुछ न पूछ
तंग आ गए हैं जिंदगीए-आशियां से हम।
अगर कोई गौर से देखे उथल-पुथल आंधियों की, तो तुम कारागृह से थोड़े ही थकोगे, घर से भी थक जाओगे।
वोह बिजलियों की चश्मके-पैहम कि कुछ न पूछ
तंग आ गए हैं जिंदगीए-आशियां से हम।
तब तुम जिंदगी के घर से भी थक जाओगे। जहां सुरक्षा मिलती है, शरण मिलती है, उससे भी थक जाओगे। जहां सहारा मिलता है, आसरा मिलता है, उससे भी थक जाओगे। शत्रु से तो थकोगे ही, मित्र से भी थक जाओगे। पराये से तो थकोगे ही अपने से भी थक जाओगे; क्योंकि वस्तुतः तो अपना भी पराया है।
तथापि, फिर महावीर कहते हैं, "परमार्थतः दोनों प्रकार के कर्मों को कुशील जानकर उनसे राग न करना चाहिए। क्योंकि उनका संसर्ग... कुशील कर्मों के प्रति राग और संसर्ग करने से स्वाधीनता नष्ट होती है।"
"तथापि, व्रत व तपादि के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति उत्तम है। इनके न करने पर नर्कादि के दुख उठाना ठीक नहीं। क्योंकि कष्ट सहते हुए धूप में खड़े रहने की अपेक्षा छाया में खड़े रहना कहीं बेहतर, कहीं अच्छा है।" महावीर जब कह रहे हैं कि छोड़ दो सब--पुण्य भी, पाप भी--तब तत्क्षण उन्हें ख्याल आया होगा कि आदमी बड़ा बेईमान है। उससे कहो, छोड़ दो पुण्य भी, पाप भी, तो पाप तो शायद न छोड़ेगा, पुण्य छोड़ देगा। वह कहेगा, बिल्कुल ठीक!

अभी मैंने कहा कि छोड़ दो संसार, छोड़ दो संन्यास! तुम में से कई के मन में उठा होगाः अरे, यह तो बिल्कुल बेहतर, तो छोड़ दो संन्यास!
हम अपने मतलब की सुन लेते हैं।
एक मित्र ने संन्यास लिया और मुझसे पूछा कि "अंततः तो सब छोड़ ही देना है?" मैंने कहा, "अभी तुम लिये भी नहीं, अभी लेने को आये हो, अभी जल्दी मत करो।" पर उन्होंने कहा, अगर अंततः छोड़ ही देना है तो लेने से सार क्या? माना कि औषधि अंततः छोड़ देनी होगी--लेकिन तब जब बीमारी जा चुकी हो। तुम यह तो नहीं कहते चिकित्सक को कि औषधि लेने से फायदा क्या, अंततः तो छोड़ ही देनी है! अगर न लोगे तो बीमारी में अटके रह जाओगे। औषधि तो लेनी होगी और छोड़नी भी होगी। सीढ़ियां चढ़नी भी होंगी और छोड़नी भी होंगी। तुमने कहा, जब छोड़ ही देनी है तो चढ़ना क्या, तो फिर तुम नीचे ही रह जाओगे।
महावीर को तत्क्षण ख्याल उठा होगा, यह जो मैंने कहा कि पाप भी छोड़ दो, पुण्य भी छोड़ दो, क्योंकि दोनों बंधन हैं--तो शायद आदमी चोरी तो नहीं छोड़ेगा, दान करना छोड़ देगाः "क्या फायदा! इतना ही बंधन काफी है चोरी का ही, अब और दान का बंधन क्यों सिर पर लेना! संसार का बंधन ही काफी है, अब संन्यास का बंधन और क्यों सिर पर लेना! एक ही बंधन बहुत है--हाथ में लोहे की जंजीरें पड़ी हैं, अब सोने की और क्या डालना!"
तो महावीर को तत्क्षण कहना पड़ा, "व्रत व तपादि के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति उत्तम है। इनके न करने पर नर्कादि के दुख उठाना ठीक नहीं... ।" औषधि कड़वी भी हो तो भी उसका कड़वापन झेल लेना उचित है। क्योंकि उसके बिना फिर बीमारी का नर्क है।
"... क्योंकि कष्ट सहते हुए धूप में खड़े रहने की अपेक्षा छाया में खड़े रहने कहीं अच्छा है।"
संन्यास की एक छाया है। आत्यंतिक छाया नहीं, आखिरी छाया नहीं--आखिरी छाया तो आत्मा की है। संन्यास की एक सुरक्षा है; अंतिम सुरक्षा नहीं, बीच का पड़ाव है। लंबी यात्रा में बीच में पड़ी धर्मशाला है। वहां विश्राम करके सुबह चल पड़ना। लेकिन यह मत सोचना कि जब सुबह चल ही पड़ना है तो रात विश्राम क्या करना, चलते ही रहो! तो फिर तुम ज्यादा न चल पाओगे। तो फिर तुम बहुत दूर न पहुंच पाओगे।
महावीर जैसे व्यक्तियों को निरंतर एक अड़चन खड़ी रहती हैः जब भी वे बोलते हैं तो एक तो वे बोलते हैं जो उन्हें लगता है ठीक है, और तत्क्षण उन्हें तुम्हारा भी ध्यान रखना पड़ता है, तब वे वह भी बोलते हैं जो तुम कहीं गलत न समझ लो। तो वे कहते हैं, "कोई फिक्र मत करना। कहा मैंने, माना कि सोने की जंजीर है पुण्य, लेकिन अभी जल्दी मत करना; पहले लोहे की जंजीर को सोने से बदल लेना। इतना तो करो! सोने की जंजीर थोड़ी हलकी होगी; लोहे की जंजीर जैसी भारी न होगी। सोने की जंजीर थोड़ी प्रीतिकर होगी। तुम उतने कुरूप न मालूम पड़ोगे जितने लोहे की जंजीर में मालूम पड़ते थे।"
संसार को थोड़ा बदलो संन्यास में। और जो दूसरा आत्यंतिक वक्तव्य है-- पारमार्थिक चरम--वह तभी सार्थक है जब संन्यास फल जाए। जब पहला कांटा निकल जाए और दूसरा कांटा व्यर्थ हो जाए, तब उसे फेंक देना।
जीवन को ऐसे गुजारो जैसे पिछले किये हुए कर्मों का फल है। तटस्थता से, बड़ी दूरी के भाव से, उपेक्षा से, बिना प्रतिक्रिया किये, बिना छोटी-छोटी बातों में उलझे--ऐसे गुजर जाओ जैसे राह की धूल जब गुजरते हो तो पड़ती है। जब राह से चलते हो कुत्ते भी भौंकते हैं; जब राह से चलते हो, धूप भी पड़ती है-- सबको तुम गुजार देते हो। जन्मों-जन्मों तक जो निर्मित किया है उसे धीरे- धीरे इसी तरह छोड़ने का उपाय--उपेक्षा! दुख आये तो उसे भी ठहर जाने देना। उसके साथ भी शत्रुता मत बांधना। न हो, ऐसा मत कहना।
है और कितनी दूर तेरी मंजिले-कयाम
रह-रहके पूछते हैं यह उम्रे-रवां से हम।
साधक यही पूछता रहता है अपने भीतरः "और, और कितनी यात्रा है?" अपनी जाती हुई, उम्र से पूछता हैः "और कितना, और कितना?" लेकिन जो घटता है, उसे स्वीकार कर लेता है। जो घटता है, उसे स्वीकार करके बैठ नहीं जाता। जो घटता है, उसे स्वीकार कर लेता है और यात्रा जारी रखता है।

है और कितनी दूर तेरी मंजिले-कयाम--और भीतर ख्याल रखता है कि तेरा अंतिम लक्ष्य और कितनी दूर है? रह-रहके पूछते हैं यह उम्रे-रवां से हम-- जाती हुई उम्र से पूछता रहता है कि और कितनी दूर है? और अपने को सम्हाले रखता है। विषाद में नहीं गिरने देता।
ऐ शमा! सुबह होती है रोती है किसलिए
थोड़ी-सी रह गयी है इसे भी गुजार दे।
जैसे सुबह होने के करीब है, रात गहरी अंधेरी हो जाती है। सुबह होने के करीब रात सर्वाधिक अंधेरी हो जाती है। वह सुबह होने की खबर है।
इसलिए जिस व्यक्ति का मोक्ष और निर्वाण करीब आ रहा है, उसके दुख बड़े सघन हो जाते हैं। सभी फल अनंत-अनंत जन्मों के इकट्ठे पकने लगते हैं।
यथासमय! आ गई घड़ी।
महावीर बड़ी बुरी तरह बीमार हुए। बुद्ध का शरीर भी विषाक्त हो गया था।
रामकृष्ण कैंसर से विदा हुए; रमण भी।
बहुतों के मन में सवाल उठता है कि क्यों ऐसे सदपुरुष, और क्यों ऐसा दुखद अंत?
हमें समझ में नहीं आता है। हमें जीवन के गणित का पता नहीं है। जिनकी आखिरी घड़ी करीब आ गयी है, तो जन्मों-जन्मों के, अनंत-अनंत फल शीघ्रता से पकने शुरू हो जाते हैं, क्योंकि वे विदा होंगे जब, पूरी तरह से विदा होंगे, फिर दुबारा उनका आना नहीं है--तो सारा निपटारा, सारा कर्मक्षय त्वरा से होता है, तीव्रता से होता है। सब तरह की पीड़ाएं जिनको अब तक दबाकर बैठे रहे थे, उभरकर सामने आती हैं। और आ जाना जरूरी है। वह न केवल पुराने कर्मों का फल है बल्कि भविष्य की तैयारी भी। उनको वे कितनी शांति से देख लेते हैं, कितने सहज भाव से उनको गुजर जाने देते हैं--उससे उनकी अंतिम तैयारी होती है; अंतिम पाथेय निर्मित होता है।
ऐ शमा! सुबह होती है रोती है किसलिए
थोड़ी-सी रह गयी है इसे भी गुजार दे।
संसार को छोड़ना है, क्योंकि संसार में जो वसंत दिखायी पड़ता है वह झूठा है, इसलिए संसार को छोड़ते वक्त व्यक्ति के जीवन में सारे फूल गिर जायेंगे, पतझड़ हो जायेगी; पत्ते भी गिर जायेंगे; रूखे, नंगे वृक्ष खड़े रह जायेंगे। लेकिन यह कोई अंतिम अवस्था नहीं है। यह भी बीच का ही पड़ाव है। जिसने इस पतझड़ को भी पूरे भाव से स्वीकार कर लिया, उसके भीतर फिर एक और तरह का वसंत उठता है जिसकी कोई पतझड़ नहीं। जिसने इस पतझड़ को भी पूरे आत्मभाव से अंगीकार कर लिया, स्वागत से, और जरा भी ना-नुच न की, इनकार न किया--तप यही अर्थ रखता है--तो उसके जीवन में फिर फूल खिलते हैं। वे फूल विराट के हैं! वे फूल परम सागर के हैं, परम सत्य के हैं।
इन्हीं बजते हुए पत्तों से गुलशन फूट निकलेंगे
बहारों का यह मातम सिर्फ अंजामे-खिजां तक है।
तो तुम ऐसा मत देखना कि त्यागी दुखी है। ऊपर से शायद दिखायी भी पड़े। तुम ऐसा मत सोचना कि त्यागी दुखवादी है। ऊपर से शायद दिखायी भी पड़े। क्योंकि तुम जिसे सुख मानते हो उसे वह छोड़ रहा है, तो तुम्हें लगेगा दुखवादी है। लेकिन त्यागी दुखवादी नहीं है। त्यागी ही परम भोग की तरफ जा रहा है। क्योंकि जिसे तुम सुख कहते हो वह सुख नहीं है। जिसे तुम दुख कहते हो वह दुख नहीं है। जिसे तुम सुख कहते हो वह केवल तुम्हारी आकांक्षा है, आशा है, तृष्णा है।
हविश को आ गया है गुल खिलाना,
जरा ए जिंदगी! दामन बचाना।
जिसे तुम सुख कहते हो वह तो केवल हविश है; वह तो एक तृष्णा है, जो कभी भरती नहीं, दुष्पूर है। और जिसे तुम दुख कहते हो, वह तुम्हारे अतीत में चाहे गए सुखों के फल हैं।
तो त्यागी वह है जो तुम्हारे सुख को सुख नहीं देखता, सिर्फ तुम्हारा सपना मानता है; और तुम्हारे दुख को वास्तविक मानता है, क्योंकि वह अतीत जन्मों में किये गये कर्मों का फल है। तो तुम्हारे सुख को तो वह बिल्कुल छोड़ देता है, क्योंकि कल्पना को छोड़ने में देर क्या लगती है! कल्पना ही है,

छोड़ने को कुछ है भी नहीं। कल्पना ही छोड़नी है; थी ही नहीं, सिर्फ विचार था। तो तुम्हारे सुख को तो तत्क्षण छोड़ देता है।
जो तुम्हारे सुख को छोड़ देता है, वही संन्यासी है। लेकिन दुख को इतनी आसानी से नहीं छोड़ा जा सकता। क्योंकि दुख अब कल्पना नहीं है। तुम्हारी अनंत-अनंत कल्पनाओं ने जो घाव तुम पर छोड़ दिये हैं, दुख उनका नाम है। तो दुख को वह स्वीकार करता है।
कल्पना का त्याग संन्यास; दुख का स्वीकार संन्यास। सुख तो यूं छूट जाता है क्योंकि सुख है कहां? छोड़ने-योग्य कुछ है ही नहीं, मुट्ठी खाली है।
दो पागल बात कर रहे थे--पागलखाने में बैठे। एक पागल ने मुट्ठी बांध ली
तो उसने कहा कि अनुमान लगाओ, मेरी मुट्ठी में क्या है? तो पहले पागल ने कहा कि कुछ थोड़े संकेत तो दो। उसने कहा, कोई संकेत नहीं। तीन मौके तुम्हें। तो पहले पागल ने कहा कि हवाई जहाज। दूसरे पागल ने कहा कि नहीं। तो पहले पागल ने कहा, हाथी। तो दूसरे पागल ने कहा, नहीं। तो पहले पागल ने कहा, रेलगाड़ी। तो उसने कहा, ठहर भाई, जरा मुझे देख लेने दे। उसने धीरे-से अपनी मुट्ठी खोलकर देखा और कहा कि मालूम होता है तूने झांक लिया।
वहां कुछ है नहीं! न रेलगाड़ी है, न हवाई जहाज, न हाथी है। मुट्ठी खोलने
पर मुट्ठी खाली है। अगर मुट्ठी में कुछ है तो वह सिर्फ पागलपन के कारण है।
वह पागलपन की धारणा है।
तो तुम्हारे सुख को छोड़ने में तो क्षणभर की देर नहीं लगती। सुख है ही नहीं। मुट्ठी खाली है।
इसलिए तो लोग मुट्ठी खोलकर नहीं देखते कि कहीं पता न चल जाये कि कुछ
भी नहीं है। मुट्ठी बांधे रहो! कहते हैं, बंधी लाख की! मैं भी मानता हूंः बंधी लाख की, खुली खाक की! क्योंकि है ही नहीं कुछ वहां। बंधी है, इसलिए लाख मालूम होते हैं। बांधे रखो मुट्ठी, तिजोड़ी पर ताले डाले रखो। खोलकर मत देखना, अन्यथा खाली हाथ पाओगे।
तो सुख तो यूं ही छोड़ा जा सकता है। तत्क्षण छोड़ा जा सकता है। जरा-सा साक्षी-भाव--सुख गया! लेकिन दुख? दुख थोड़ा समय लेगा। अनंत-अनंत जन्मों में वह जो गलत-गलत धारणाओं के घाव छूट गये हैं, लकीरें छूट गयी हैं... ।
तो सुख का त्याग और दुख का स्वीकार--यही महावीर का संन्यास है। और इस संन्यास का जो परम फल है, वह अपने आप घटता है। वह परम फल निर्वाण है। वह परम फल सुख नहीं है, पुण्य नहीं है, स्वर्ग नहीं है। वह परम फल मोक्ष है, परम स्वतंत्रता है।
स्वतंत्रता का इतना बड़ा उपदेष्टा कभी नहीं हुआ। और भी स्वतंत्रता की बात करनेवाले लोग हुए हैं; लेकिन महावीर की स्वतंत्रता के साथ ऐसी पकड़ है, ऐसी गहरी पकड़ है कि स्वतंत्रता को बचाने के लिए वे परमात्मा तक को स्वतंत्रता की वेदी पर आहुति दे देते हैं। लेकिन स्वतंत्रता की आहुति परमात्मा की वेदी पर नहीं देते। वे कहते हैं, परमात्मा रहेगा तो स्वतंत्रता पूरी न रहेगी। इसलिए परमात्मा नहीं है। स्वतंत्रता परिपूर्ण है। और इस परम स्वतंत्रता को पा लेने की ही सारी दौड़, सारी यात्रा, सारा धर्म, जन्मों-जन्मों के भटकाव!
कैसे इसे हम पायें?
धीरे-धीरे तुम स्वतंत्रता के सूत्रों को अपने जीवन में जगह देने लगो। जो-जो बांधता हो, उस-उससे जागने लगो। पहले पाप से जागोगे, क्योंकि वह बांधता है, इस बीच के उपाय में पुण्य का सहारा ले लेना। कहीं तो हाथ रखने के लिए जगह चाहिए। पाप से हटोगे तो पुण्य की भूमि चाहिए। उस पर खड़े हो जाना। लेकिन उस पर इतनी ज्यादा देर खड़े मत रहना कि फिर वहां घर बना लो। जैसे ही पाप समाप्त हो जाएं, पुण्य से भी छलांग लगा जाना। तब सब किनारे खो जाते हैं।
"यो वै भूमा तत्सुख"--और तब है सुख विराट में। "नाल्पे सुखमस्ति"--लघु में सुख कहां! "भूमैव सुख"--उस भूमा में ही सुख है।
उस भूमा की ही हम जिज्ञासा करें, उस भूमा को ही हम खोजें! वह भूमा हममें छुपा है। वह स्वतंत्रता हमारा स्वभाव है।

जिन-सूत्र, भाग एक
चौबीसवां प्रवचन

मांग नहीं--अहोभाव, अहोगीत

पहला प्रश्नः
बैठे-बैठे दिले-नादां ये ख्याल आया है
हम नहीं आए यहां कोई हमें लाया है
किसने नन्हा-सा मुहब्बत का ये जला के दिया
दिले-वीरां के अंधेरे पे तरस खाया है।
पर दीया तो जलता नजर नहीं आता... ?

कविता उधार है। किसी और का दीया जला होगा, उसने गायी है। अपने काव्य
को जन्माना होगा।
दीया तो सभी का जल सकता है। दीया है तो जलने के लिए है। दीया है तो जलने की संभावना है। लेकिन कोई दूसरा तुम्हारा दीया जला नहीं सकता। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है। तुम न जलाना चाहो तो दीया जलाया नहीं जा सकता और तुम जलाना चाहो तो कोई तुम्हें रोक न सकेगा। तुमने चाहा नहीं है कि दीया जले। अभी अंधेरे में तुम्हारे बड़े लगाव हैं।
अकसर मैं लोगों को देखता हूं। वे चाहते हैं, अंधेरा भी बना रहे और दीया भी जल जाये। ऐसी उलझन है। क्योंकि अंधेरे में बड़े स्वार्थ हैं। जैसे एक आदमी चोरी करने गया हो, तो कई बार टकरा जाये, दीवाल-दरवाजे से ठोकर खा जाये, तो सोचने लगे मन में कि दीया होता तो ठीक था--लेकिन दीया हो और रोशनी हो जाये तो चोरी न कर सकेगा। तो अगर कोई कहे कि यह रहा दीया, ले लो तो वह कहेगा, पागल तो नहीं समझा है मुझे?
तो तुम्हारी दिक्कत यह है कि तुम्हारा जीवन दोहरा है। एक तरफ अंधेरा है, अंधेरे में लगा स्वार्थ है। दूसरी-तरफ अंधेरे की तकलीफें हैं। दीये का ख्याल पैदा होता है। जब तक तुम अंधेरे के स्वार्थ न तोड़ लोगे, तब तक तुम दीया जला न सकोगे। यह सीधा गणित है। तो दीये जलाने की तो फिक्र छोड़ो, पहले यह देख लो कि "अंधेरे में हमारा स्वार्थ है? हम अंधेरे को चाहते हैं कि बना रहे? अंधेरे से कुछ मिलने की आशा है? अंधेरे में मन को लगाया है? भविष्य को अंधेरे में छिपाया है, सपने देखे हैं?" अगर अंधेरे से कुछ भी मिलने का, कहीं भी थोड़ा-सा ख्याल है तो तुम दीया कैसे जलने दोगे? कोई जला भी दे तो उसे बुझा दोगे। जो दीया जलाये वह दुश्मन मालूम होगा।
अंधेरे में तुम्हारा बड़ा न्यस्त स्वार्थ है।
इसलिए दीया नहीं जल रहा है। तुम्हारे अंधेरे पर कोई कितना ही तरस खाये, तो भी अगर तुम अंधेरे में रहना चाहते हो तो इस तरस से कुछ भी न होगा। महावीर आते हैं, बुद्ध आते हैं, कृष्ण आते हैं, क्राइस्ट आते हैं। तरस
की कुछ कमी नहीं है। करुणा बड़ी है। महाकरुणा के स्रोत आते हैं। स्वयं सूर्य तुम्हारे द्वार पर आकर दस्तक देते हैं। लेकिन तुम अपने अंधेरे में छिपे बैठे हो। तुम सोचते हो कि प्रकाश भी जल जाये। लेकिन कभी तुमने भीतर का द्वंद्व देखा? कि प्रकाश के जलने के साथ ही अंधेरे के सभी स्वार्थ नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे। तो अंधेरे से पाने की तुमने जो-जो आशाएं बांधी हैं, वह सभी धूल-धूसरित हो जायेंगी। उस अंधेरे से भरी आशाओं को ही तो हम संसार कहते हैं।
तो जब तक संसार में थोड़ा भी ऐसा लग रहा है कि कुछ मिल सकता है, मिलेगा--
तब तक तुम स्थगित करोगे, दीये को जलने न दोगे। तब तक तुम रोशनी से डरोगे। अगर रोशनी आ जाये तो तुम पीठ कर लोगे। तुम हजार तर्क, विचार खोज लोगे रोशनी से बचने के। तुम कहोगे, यह तो रोशनी आंखों को तिलमिलाती है, कि यह रोशनी तो हमारी सारी व्यवस्था को डगमगाये देती है, कि यह रोशनी तो असुरक्षित कर देगी। हम भले, हमारा अंधेरा भला!
लेकिन बेईमानी ऐसी है कि तुम अगर इसे भी साफ देख लो तो भी रास्ता बन जाये। तुम साफ कह दो कि "हम अंधेरे में ही जीयेंगे! बंद करो प्रकाश की बातचीत! हमें कुछ लेना-देना नहीं है।" लेकिन तुम उतने ईमानदार भी नहीं हो।

जब कोई प्रकाश की बात करता है तो तुम इतने स्पष्ट भी नहीं हो कि कह सको
कि "बंद! यह बात से हमें कुछ लेना-देना नहीं है। हम अंधेरे में जीना चाहते हैं और अंधेरे में ही जीयेंगे। और अंधेरा हमारा सुख है।"
यह भी तुम नहीं कह पाते। तुम यह भी दिखलाना चाहते हो कि तुम प्रकाश के प्रेमी हो। तुम यह भी दिखलाना चाहते हो कि तुम शुभ के पक्षपाती हो।
एक बहरा आदमी रोज सुबह चर्च जाता था। रविवार को वह सबसे पहले पहुंच जाता था और पहली पंक्ति में बैठता था। वह बज्र बधिर था। उसे न तो प्रवचन में कुछ सुनायी पड़ता न समझ में आता। न संगीत चर्च में होता, वह उसको सुनायी पड़ता। एक दिन एक आदमी ने पूछा कि "तुम इतने जल्दी आते किसलिए हो? रोज तुम चर्च चले आते हो, मीलों चलकर। तुम्हें कुछ सुनायी तो पड़ता नहीं। न तुम संगीत सुन सकते हो, न तुम प्रवचन सुन सकते हो, तो तुम आते किसलिए हो?"
वह आदमी हंसने लगा। उसने कहा कि मैं जतलाने आता हूं कि सारी दुनिया देख ले कि मैं किस पक्ष में हूं। और परमात्मा भी नोट कर ले कि मैं कोई सांसारिक आदमी नहीं हूं। धार्मिक हूं!
तो तुम यह मोह भी नहीं छोड़ पाते कि तुम धार्मिक हो। धर्म के साथ बड़ी प्रतिष्ठा जुड़ी है। धर्म के साथ बड़ा बल जुड़ा है, प्रभुत्व जुड़ा है। वस्तुतः तुम जितने बेईमान होते हो उतने ही धार्मिक दिखलाने की चेष्टा करते हो। क्योंकि बेईमानी को छिपाने का इससे अच्छा कोई उपाय नहीं। प्रकाश की आकांक्षा करके अंधेरे को ढांकते हो, छिपाते हो।
तुम्हारे प्रकाश की आकांक्षा अंधेरे के विपरीत नहीं है--अंधेरे को छिपाने का उपाय और व्यवस्था है।
तुम प्रकाश का खूब शोरगुल मचाते हो, आंसू बहाते हो, चिल्लाते हो, "प्रकाश चाहिए", ताकि सारी दुनिया देख ले कि अगर अंधेरा है तो तुम जिम्मेवार नहीं हो। तुम तो प्रकाश का कितना गुणगान कर रहे हो।
बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है, जगत में बड़ी अजीब विडंबना हैः यहां जो आदमी जितना अनैतिक होगा, उतनी ही नीति की चर्चा करेगा। क्योंकि नीति की चर्चा से वह एक हवा पैदा करता है, जिससे पता चल जाये कि और कोई हो अनैतिक, मैं तो कम से कम नहीं हूं।
यहां अभी किसी की जेब कट जाये तो जो आदमी जेब काटे, अगर उसमें थोड़ी भी अकल हो तो उसको बड़ा शोरगुल मचाना चाहिए कि जेब कट गयी, पकड़ो चोर को। दौड़-धूप करनी चाहिए। एक बात निश्चित है, उसको कोई भी न पकड़ेगा। क्योंकि उसने अगर चोरी की होती और जेब काटी होता तो वह तो भाग गया होता। वह तो यहां बीच में खड़ा रहेगा। वह तो चोरी के खिलाफ बोलने लगेगा।
दो आदमी मछली मार रहे थे। और तभी उस सरोवर का निरीक्षक आ गया। एक आदमी भाग खड़ा हुआ। तो वह उसके पीछे भागा। कोई दो मील जाकर हांफते-हांफते उसको पकड़ पाया। और जब पकड़ पाया तो उसने जल्दी से खीसे से निकालकर लाइसेंस बता दिया। उसको मछली मारने का हक था। तो उस आदमी ने कहा कि "अरे नासमझ! तो फिर भागा क्यों?" तो उसने कहा कि इसीलिए कि दूसरे के पास लाइसेंस नहीं है। लोग बड़ी होशियारी से चल रहे हैं।
तुम प्रकाश की खूब बातचीत करते हो ताकि एक बात तो निश्चित हो जाये कि तुम प्रकाश के आकांक्षी, अभीप्सु! तो तुम्हें कोई सोच भी न सकेगा कि तुम और अंधेरे का व्यवसाय करते होओगे। आसानी से लोग फंस जायेंगे तुम्हारे व्यवसाय में। तुम जेबें ज्यादा सुगमता से काट सकोगे। बेईमान होने के लिए धार्मिक होना जरूरी है। दुकान ठीक चलानी हो तो मंदिर जाना जरूरी है। मंदिर जाना दुकान के ठीक चलने का हिस्सा है। दुकानदार भी खाते-बही लिखता है तो ऊपर लिखता है, "श्री गणेशाय नमः" "लाभ-शुभ।" ईश्वर का स्मरण करके किताब बाजार की शुरू करता है। ईश्वर का स्मरण--उस किताब में सहयोगी होने को! वह यह कह रहा है, "बाधा मत डालना। हम तो तुम्हारे भक्त हैं!"
जैसा मैं देखता हूं, सैकड़ों लोग चाहते हैं ध्यान! लेकिन ध्यान जिन शर्तों से घट सकता है, वह शर्तें पूरी करने को राजी नहीं। कोई शर्त पूरी करने को राजी नहीं। सिर्फ बेशर्त, मुफ्त! और मैं तुमसे कहता हूं कि अगर यह संभव होता कि ध्यान मुफ्त दिया जा सकता--चूंकि संभव नहीं है, इसलिए तुम मजे से मांगते रहते हो। कोई खतरा नहीं है--अगर यह संभव होता कि ध्यान मैं

तुम्हें उठाकर दे देता, तो मैं जानता हूं तुम मांगते भी नहीं। तुम भागते।
तुम कहते, "अभी नहीं! अभी बच्चे बड़े हो रहे हैं। अभी थोड़ा और जीवन को सम्हाल लेने दो। अभी ध्यान! अभी नहीं!" क्योंकि ध्यान कहीं सब अस्त-व्यस्त न कर दे! और ध्यान महाक्रांति है, अस्त-व्यस्त तो करेगा।
तुम जैसे हो, तुमने उसी ढंग की दुनिया अपने चारों तरफ बना ली है।
तुम्हारे चारों तरफ तुम्हारी दुनिया है। तुम बदलोगे, तुम्हारी दुनिया गिर जायेगी। क्योंकि वह आदमी ही बीच से हट गया जिसकी दुनिया थी। वह केंद्र गिर गया जिसके सहारे चाक घूमता था। एक नयी दुनिया निर्मित होगी।
तो अगर तुम धन की दौड़ में लगे हो तो तुम ध्यान न कर सकोगे।
एक बड़े राजनीतिज्ञ मेरे पास आते थे। वह मुझसे कहते, कुछ शांति का उपाय बताइए। मैंने कहा, अशांति तुम करते हो, शांति का उपाय मुझसे पूछते हो? छोड़ो महत्वाकांक्षा! महत्वाकांक्षा से तो अशांति पैदा होगी। जहां भी रहोगे, पीड़ित और परेशान रहोगे। जहां भी रहोगे, असंतुष्ट रहोगे। शांति कैसे होगी?
उन्होंने कहा कि आप वह मत कहिये, मैं तो आपके पास इसीलिए आया कि थोड़ी शांति हो तो थोड़ा ढंग से प्रतिस्पर्धा कर सकूं। अशांति के कारण प्रतिस्पर्धा नहीं कर पा रहा हूं। रात नींद नहीं आती। बेचैनी रहती है। तो मुझसे पीछे आनेवाले लोग मुख्यमंत्री हो गये और मैं मंत्री-पद पर ही अटका हूं। जितनी दौड़-ध्ूप वे लोग कर लेते हैं, मैं नहीं कर पाता। इसीलिए तो आपके चरणों में आया हूं कि थोड़ी शांति दो, ताकि दौड़-धूप ठीक से कर सकूं।
अब मतलब समझे? वे शांति चाहते हैं ताकि ठीक से अशांत हो सकें। और अशांति को छोड़ने की तैयारी नहीं है। शांति की मांग भी अशांति को ही चलाये रखने के लिए है।
तो मैंने उनसे कहा कि फिर कहीं और जाओ, क्योंकि असंभव मैं न कर सकूंगा। शांत तुम्हें कोई भी नहीं कर सकता, जब तक तुम न समझ लो कि अशांत करने के उपाय बंद करने होंगे। जहां-जहां से अशांति आती है, वहां-वहां से हाथ खींच लेना होगा। शांति के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता--सिर्फ अशांति से हाथ खींच लेते ही शांति निर्मित हो जाती है। शांति तो अशांति का अभाव है। शांति के लिए सीधा कुछ भी नहीं करना है।
तुमने अंधेरे में अपनी बड़ी आकांक्षाएं जोड़ रखी हैं, उनको हटा लो! दीया
तो जल जायेगा। दीया तो जलने को तत्पर है, प्रतिपल तत्पर है, क्योंकि दीया जलने के लिए है। दीया तो जलने की संभावना लेकर आया है और रो रहा है। तुम्हारे दीये से टपकते आंसू मैं देखता हूं कि कब जलाओगे, क्या मुझे ऐसे ही बुझा-बुझा ही विदा कर दोगे? क्योंकि ऐसे ही बहुत जन्मों में तुमने उसे विदा कर दिया। जन्म मिला, लेकिन जीवन न मिला।
जन्म के साथ ही जीवन थोड़े ही मिलता है! जन्म तो केवल संभावना है। जीवन अर्जित करना होता है। जरूरी नहीं है कि तुम जन्म गये तो तुमने जीवन पा लिया हो। जन्म के साथ तो बुझा दीया मिलता है। फिर उसे जलाना पड़ता है।
गहन संघर्ष से जीवन की ज्योति प्रगट होती है। जैसे दो लकड़ियों के घर्षण से आग पैदा हो जाती है, दो पत्थरों के घर्षण से आग पैदा हो जाती है-- ऐसे तुम जब जीवन की सारी चुनौतियों से संघर्ष लेते हो, तब तुम्हारे भीतर का दीया जलता है। और कोई उपाय नहीं है। उधार जल नहीं सकता।
यह कविता किसी और की है। और जरूरी नहीं कि जिसने गायी हो उसका भी दीया जला हो। क्योंकि अकसर तो ऐसा होता है, लोग कविताएं गाकर सोच लेते हैं कि जल गया दीया। जिनके जीवन में प्रेम नहीं है, वे प्रेम के गीत गाकर सांत्वना कर लेते हैं।
मैं बहुत कवियों को जानता हूं। तुम्हारी और उनकी परेशानी में मैंने जरा भी भेद नहीं पाया। शायद तुमसे बदतर उनकी परेशानी है। फर्क है तो इतना कि वे सपने सजाने में कुशल हैं। तुम इतने कुशल नहीं हो सपनों को रंग देने में। वे इतने कुशल हैं कि बुझे दीये को भी जले दीये की तरह मानकर जी सकते हैं, गीत गुनगुना सकते हैं।
अकसर ऐसा होता हैः जो तुम्हारे पास नहीं है उसकी सांत्वना तुम अनेक रूपों से अपने पास जुटा लेते हो। प्रेम जिसके पास नहीं है, वह प्रेम के

बहुत गीत गाकर धीरे-धीरे भरोसा कर लेता है कि प्रेम हो गया। यह बड़ी विडंबना है। प्रेम के गीत जितने लोगों ने गाये हैं उनमें से निन्यानबे ने प्रेम को जाना ही न था। जो नहीं जान पाए जीवन में, जो यथार्थतः न घट पाया, उसे उन्होंने सपनों में घटा लिया। सपने परिपूरक हैं।
आधुनिक मनोविज्ञान इस सत्य को स्वीकार करता है कि सपने परिपूरक हैं।
जो तुम जीवन में नहीं कर पाते हो वह तुम सपने में करके अपने को समझा लेते हो। दिन में उपवास करो, रात सपने में भोजन कर लोगे। दिन में ब्रह्मचर्य साधो, रात सपने में सुंदर स्त्रियां, सुंदर पुरुष तुम्हारे आसपास नाचने लगेंगे। तुम्हारे ऋषि-मुनियों के आसपास अप्सराएं यूं ही नहीं नाची थीं। कोई वस्तुतः अप्सराएं कहीं से आती नहीं। किस इंद्र को पड़ी है? कहां कौन इंद्र है? वह तो ऋषि-मुनि ने ही जो दबा लिया था, दमन कर लिया था; वह जिसको प्रगट नहीं किया था जीवन में--वह सन्नाटे में रात के, तंद्रा के क्षण में, निद्रा के क्षण में प्रगट होने लगा। और अगर बहुत दबाया तो आंख बंद करने की भी जरूरत नहीं, अप्सरा खुली आंख प्रगट हो जायेगी। यह निर्भर करता है कि तुमने दमन कितना गहरा किया। अगर दमन बहुत गहरा कर लिया। इतना गहरा कर लिया कि अब दमन को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। तो खुली आंख भी तुम सपने देखने लगोगे। खुली आंख और बंद आंख में दमन की गहराई का ही फर्क है। तुम बंद आंख से देखते हो। तुमने पागल आदमी देखे? वे खुली आंख से देख रहे हैं।
एक पागलखाने में एक आदमी दावा करता था कि वह ईश्वर का भेजा हुआ पैगंबर है। जिस मुसलमान खलीफा ने उसे कैदखाने में डलवा दिया था, वह उससे मिलने आया। कहा था कि तीन सप्ताह तू फिर से सोच ले। वह जब उससे मिलने आया तो वह एक खंभे से बंधा था। उसको कोड़े मारे गये थे, तीन सप्ताह भूखा रखा गया था। और जब उसने उस आदमी से पूछा कि क्या ख्याल है, क्या अब भी तेरा ख्याल है कि तुझे परमात्मा ने पैगंबर बनाकर भेजा है, इसके पहले कि वह बोले, एक दूसरा आदमी जो दूसरे खंभे से बंधा था, उसने कहा, "इसकी बातों में मत पड़ना, मैंने इसे कभी भेजा ही नहीं! यह सरासर झूठा है।" लेकिन जो पैगंबर की तरह बंधा था, उसने क्या कहा? वह मुस्कुराया। उसने कहा, "यह तो लिखा ही है शास्त्रों में कि उसके पैगंबरों को सदा तकलीफें झेलनी पड़ेंगी। तुम्हारे कोड़ों से कुछ भी सिद्ध नहीं होता है--इतना ही सिद्ध होता है कि शास्त्र सही हैं।"
पागल आदमी का अर्थ क्या होता है? इतना ही कि जिसने अब खुली आंख सपने देखने शुरू कर दिये; जो अपने सपनों में भरोसा करने लगा है--इतना कि यथार्थ झूठा पड़ जाता है, सपने ज्यादा सच मालूम होते हैं।
तो तुम्हारे कवि और पागलों में कोई बहुत अंतर नहीं होता है। कवि थोड़े कुशल पागल हैं, जिनके पास कुछ प्रतिभा है; सुंदर गीत रच सकते हैं, कि सुंदर चित्र बना सकते हैं। अकसर तो तुम कवियों के पास मत जाना--उनके गीत का सौंदर्य देखकर, अन्यथा वहां एक कुरूप आदमी पाओगे। गीत को सुन लेना। गीत में बड़ा सौंदर्य हो सकता है। कभी-कभी तो बड़ी आकाश की ऊंचाई कवि छू लेते हैं।
सपनों को बाधा क्या है? सपनों को कोई सीमा नहीं है। जहां तक सपना देखना हो, देख सकते हो। न पहाड़ रोकते हैं, न आकाश रोकते हैं। लेकिन सपने तुम जो देखते हो वह खबर देते हैं कि जिस चीज की कमी रह गयी, उसको सपने में पूरा कर रहे हो। भिखमंगा सपने देखता है सम्राट होने के। और अकसर सम्राटों ने भिखमंगे होने के सपने देखे। देखे ही नहीं, पूरे किये। महावीर, बुद्ध सम्राट थे। लेकिन भिखारी होने का सपना पैदा हो गया। न केवल सपना देखा, उसे पूरा किया।
भिखारी सम्राट होने के सपने देखते हैं। जो नहीं हो रहा है, जो नहीं है पास उसको सपने में देखना पड़ता है।
तो जरूरी नहीं है कि जिसने ये पंक्तियां लिखी हों... ये पंक्तियां प्यारी हैं, सार्थक हैं।
बैठे-बैठे दिले-नादां ये ख्याल आया है
हम नहीं आये यहां कोई हमें लाया है।
ख्याल तो दुरुस्त है। लेकिन यह ख्याल ही नहीं है, यह सत्य है। तुम यहां आये कहां? कोई लाया है। तुमने न तो आने का निर्णय किया था, न तुमने

आने की आकांक्षा की थी। न तुमसे किसी ने पूछा था कि तुम संसार जाना चाहते, जीवन में उतरना चाहते? कोई तुम्हें उतार गया है। एक दिन अचानक तुमने जागकर पाया कि तुम यहां हो। हमने सदा अपने को जिंदगी के बीच में पाया है। जिंदगी के प्रारंभ में तो किसी ने नहीं पाया। जरूर कोई लाया है। कोई आंख पर पट्टियां बांधकर इस बगीचे में छोड़ गया है।
बैठे-बैठे दिले-नादां ये ख्याल आया है।
हम नहीं आये यहां, कोई हमें लाया है।
और अगर यह ख्याल ही रहा तो ज्यादा देर न टिकेगा, चला जायेगा। ख्याल आते हैं, जाते हैं। ख्याल बसते थोड़े ही हैं! ख्याल का कोई बड़ा भरोसा थोड़े ही है! जब तक कि यह ख्याल ध्यान न बन जाये, तब तक इस पर भरोसा मत करना। यह तो आयी है तरंग, चली जायेगी। अभी आयी है, अभी भूल जाओगे। क्षणभर में उतर जायेगा ख्याल।
जिस दिन यह ख्याल ध्यान बन जाये, यह तुम्हारी स्थिर चित्त की भाव-दशा
बन जाये कि कोई लाया है--क्या परिणाम होंगे? परिणाम बड़े दूरगामी होंगे। अगर कोई लाया है तो तुम्हारे अहंकार के लिए कोई जगह न रह जायेगी। जन्म किसी ने दिया, जीवन किसी ने दिया। तुम क्यों अकड़े फिरते हो? तुम नाहक बोझढो रहे हो इस "मैं" का। न तुम आये, न तुम हो, न तुम जाओगे। कोई लाया, कोई रखे है, कोई ले जायेगा।
हिंदू पुराण बड़ी मधुर कथा कहते हैं। जो लाया वह ब्रह्मा। जो सम्हाले
वह विष्णु। जो ले जायेगा वह शिव। तुम पर कुछ छोड़ते नहीं। काम ही नहीं छोड़ते कुछ। ब्रह्मा ले आया है, विष्णु सम्हाले हैं, शिव ले जायेंगे। मतलब केवल इतना है कि विराट ने तुम में एक तरंग ली है।
वही विराट जब चाहेगा तो तरंग समा जायेगी।
तुम अपने को बीच में मत लाओ। जब इतनी विराट चीजें भी तुम्हारे बिना हो गयीं, तो तुम छोटी-छोटी बातों का हिसाब मत रखो कि मैंने मकान बनाया है। जब तुमने अपने को ही नहीं बनाया है तो तुम मकान भी क्या बनाओगे? यह तो जिसने तुम्हें बनाया है, उसी ने बनवा लिया होगा। उसी ने तुमसे यह मकान भी बनवा लिया होगा।
एक कहानी मैं पढ़ रहा था। एक नास्तिक बोल रहा था। ईश्वर के विपरीत प्रमाण दे रहा था। और अंततः उसने बड़े नाटकीय ढंग से घूंसा मारकर टेबल पर कहा कि अगर ईश्वर हो तो मैं चुनौती देता हूं, इसी वक्त अपने किसी देवदूत को भेजो ताकि मुझे एक चांटा मारे--चांटा सुना जा सके, देखा जा सके। ऐसे कोई देवदूत तो आते नहीं, ईश्वर ऐसी चुनौतियां लेता नहीं। ऐसा ले तो मुश्किल में पड़ जाये। इतने लोग हैं, इतनी चुनौतियां हैं! लेकिन एक आदमी बीच में से उठा, उसने आकर एक चांटा मारा। उसने कहा, यह क्या करते हो? उसने कहा कि ईश्वर ने मुझे भेजा है। ईश्वर ने कहा कि तुम इस योग्य नहीं कि देवदूत भेजे जायें, मैं ही काफी हूं।
मकान तुमसे बनवा लेता है। दुकान तुमसे चलवा लेता है। काम तुमसे हजार करवा लेता है। लेकिन तुमको ही जब उसने बनाया--और तुम्हारी नियति में, तुम्हारी प्रकृति में बीज डाले वासनाओं के, इच्छाओं के। उन्हीं इच्छाओं के बीजों का फिर रूपांतरण होता है, वृक्ष बनते हैं।
तुम जरा पक्षियों को देखो? उन्होंने तो कोई आर्किटेक्चर का कोई शिक्षण नहीं लिया। कैसे प्यारे घोंसले बना लेते हैं! ऐसे भी पक्षी हैं कि उनको जन्म देने के बाद माता और पिता तो उड़ जाते हैं। अंडा ही छोड़कर उड़ जाते हैं। अंडा बाद में फूटता है। तो पक्षियों को अपने मां-बाप से मिलने का मौका भी नहीं आता। इसलिए शिक्षण का कोई उपाय भी नहीं है, कोई स्कूल नहीं। लेकिन जब वे पक्षी बड़े होते हैं, फिर घोंसला बनाते हैं। और घोंसला ठीक वैसा ही होता है जैसा उनके मां-बाप ने बनाया था। वे भी उड़ जायेंगे अंडे को रखकर। अंडा फूटेगा तब मां-बाप पास न होंगे। पुनः सदियों-सदियों अनंत काल तक ऐसा सिलसिला चलता रहेगा।
वैज्ञानिक बड़े चकित थे कि यह घोंसला बन कैसे जाता है! और घोंसला कोई छोटी प्रक्रिया नहीं है। एक पक्षी का घोंसला उतारकर बनाने की कोशिश करो।

तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। तिनकों से, धागों से, पंखों से पक्षी ऐसे सुंदर घोंसले बनाते हैं। कभी-कभी तो बड़े जटिल घोंसले बनाते हैं।
कोई बनवा लेता है! जिसने पक्षियों को बनाया है, उसी ने शायद पक्षियों
के द्वारा घोंसले बनाने की योजना भी उनके भीतर कर रखी है। बिना शिक्षण के करवा लेता है।
तुम कहते हो मैंने प्रेम किया, कि मैं एक स्त्री के प्रेम में गिर गया। यह तुमने किया? या कि जिसने तुम्हें जन्म दिया, उसने ही यह प्रेम भी तुम्हें दिया?
जीवन को थोड़ा परखो! फिर से छानो! फिर से विश्लेषण करो! तुम पाओगेः कोई करवा रहा है।
यह ख्याल तो बड़ा अच्छा है अगर ध्यान बन जाये। और ध्यान से मेरा अर्थ है, अगर यह ख्याल स्थिर भाव बन जाये, तुम्हारा बोध बन जाये।
बैठे-बैठे दिले-नादां ये ख्याल आया है,
हम नहीं आये यहां, कोई हमें लाया है!
इतने पर ही सारा धर्म पूरा हो जाता है--अगर तुम्हें ये समझ में आ जाये
कि कोई हमें लाया है; कोई हमें ले जायेगा; कोई हमारे भीतर श्वास ले रहा है; कोई हमारे भीतर जी रहा है। तो तुम अकर्ता भाव को उपलब्ध हो गये। फिर तुम कर्ता नहीं हो।
और जब तुम कर्ता नहीं हो तो तुम्हारी सारी जीवन-ऊर्जा साक्षी बन जायेगी। कर्ता में नियोजित है जीवन-ऊर्जा, करने में लगी है। अगर करने से तुम्हारा हाथ अलग हो जाये ऐसा नहीं कि कर्म बंद हो जायेगा; कर्म तो चलेगा-- और सुडौल चलेगा; और शुभ चलेगा। भूल-चूक कम हो जायेगी, क्योंकि तुम्हारे कारण जो बाधा पड़ती थी वह भी मिट जायेगी। अबाध उसकी धारा तुमसे बहने लगेगी। कर्म तो चलता रहेगा। वह तो उस चलानेवाले पर है। वह तो पूर्ण पर है। लेकिन तुम, तुम्हारी ऊर्जा बचेगी। वही ऊर्जा संगृहीत होकर साक्षी-भाव बनती है। वही ऊर्जा समाधि बनती है।

किसने नन्हा-सा मुहब्बत का ये जलाकर दिया
दिले-वीरां के अंधेरे पे तरस खाया है।
और वही ऊर्जा, वही समाधि दीया बनेगी। वही जलेगी तो तुम प्रकाशित होओगे। जब तक ध्यान की ज्योति न जले भीतर, तुम प्रकाशित न हो सकोगे। और ध्यान की ज्योति बाहर से भीतर नहीं डाली जा सकती--अंतर्तम में ही खिलती है।
जैसे वृक्षों में फूल लगते हैं तो वृक्ष में रसधार बहती है--उसी रसधार
के आखिरी छोर पर रंगीन फूलों का जन्म होता है। ऐसे ही तुम्हारे जीवन के वृक्ष में रसधार बह रही है। वही रसधार जब ध्यान की तरह पकती है, समाधि के फूल खिलते हैं। तब तुम्हारे भीतर दीया जलेगा।
कविताओं को गुनगुनाकर भूल में मत पड़ जाना। कविताएं प्यारी हैं। लेकिन
जब तुम्हारा जीवन का काव्य निर्मित होगा तब तुम पाओगेः सब कविताएं फीकी हैं।
जिस दिन तुम्हारा जीवन गीत गुनगुनाएगा, उस दिन तुम पाओगेः सब कविताएं कूड़ा-कर्कट हैं।
और घबड़ाना मत!
दीया अगर बुझा है तो इसे इस तरह देखना कि यह जलने के लिए प्रतीक्षा है। बुझे को निराशा मत बना लेना। ऐसा मत सोचनाः "अब क्या करें? अंधेरा सघन है। दीया बुझा है।" हाथ-पैर रोककर गिर मत पड़ना। थक मत जाना!
हम जिसको मौत समझते हैं पैगामे-हयाते-जदीद है वोह
ये फूल चमन में जितने हैं, फिर खिलने को मुर्झाते हैं।
जिसको हम मौत कहते हैं, वह भी मौत नहीं। वह भी नये जीवन का संदेश है।
हम जिसको मौत समझते हैं, पैगामे-हयाते-जदीद है वोह
ये फूल चमन में जितने हैं, फिर खिलने को मुर्झाते हैं।

जो फूल मुर्झा गया, उसमें तुम नये खिलनेवाले फूल की छवि देखना। यहां
सब फिर से खिलने को मुर्झाता है। अगर दीया बुझा है तो जलने को ही प्रतीक्षा कर रहा है कि जले।
इसे निराश होने का कारण मत बना लेना। वस्तुतः यही तो आशा की किरण है,
कि तुम्हारा दीया अभी बुझा है। जल सकता है। कुछ होने को बाकी है। यही तो आशा की किरण है कि सब हो नहीं गया है। जो हुआ है वह क्षुद्र है। जो नहीं हुआ है वह विराट है। वह विराट अभी प्रतीक्षा कर रहा है। वह होने को है। यही तो जीवन की संभावना, उत्फुल्लता है, प्रसाद है, कि कुछ होने को है।
तो पैर में तुम घूंघर बांध सकते हो और नाच सकते हो। और जो होने को है
वह सबसे बड़ा है। जो हो चुका है, जो हुआ है जन्म, जो हुआ है देह का मिलना, जो हुआ है धन-संपत्ति, पद-प्रतिष्ठा--वह सब छोटा है। जो होने को है--ध्यान, समाधि, मोक्ष--वह विराट है। जो हुआ है वह ना-कुछ है। जो होने को है वह सब कुछ है। इसे आशा का संचार समझना। इसे समझना जीवन का संदेश।
और एक बार तुम्हारे भीतर आशा पैदा हो जाये और तुम निराश न रह जाओ, हताश
न बैठ जाओ, तुम्हारी जीवन ऊर्जा उठ बैठे, आशा से भरपूर--तो रसधार बहने लगी! फूल खिलेंगे! दीये भी जलेंगे।
यह तेरा तसव्वुर है या तेरी तमन्नाएं
दिल में कोई रह-रहके दीपक-से जलाए है।
यह तेरा तसव्वुर है या तेरी तमन्नाएं
दिल में कोई रह रहके दीपके-से जलाए है।
जरा तुम्हारे भीतर आशा उठे तो उसका तसव्वुर, उसकी तमन्ना, उसकी खोज के लिए पैर आगे बढ़ने लगे। उसकी खोज करनी है जिसने तुम्हें भेजा है। उसकी खोज करनी है जहां से तुम आये हो। अगर हिंदुओं की भाषा का उपयोग करना हो तो कहोः उसकी खोज करनी है, जिसने तुम्हें भेजा है। अगर जैनों की भाषा का उपयोग करना है तो कहोः उसकी खोज करनी है, जहां से तुम आये हो। मूल-स्रोत की! जीवन के मूल-बिंदु की, जहां से सारा विस्तार हुआ है।
जरा-सा भी तुम्हारे भीतर उसकी खोज का अंकुर पड़ जाये--दिल में कोई रह-रहकर दीपक-से जलाए है। तो पल-पल दीये पर दीये, दीयों की पंक्तियां, दीप-मालाएं जल उठेंगी। तुम्हारा रास्ता ज्योतिर्मय हो जायेगा।
लेकिन इस ज्योतिर्मय के पहले जोखिम उठानी पड़ेगी। अगर जोखिम न उठायी
तो कवि रह जाओगे; अगर जोखिम उठायी तो ऋषि हो जाओगे। जोखिम उठानी पड़ेगी। जोखिम है उस सब को खोने की, जो अंधेरे में ही मिलता है--और अंधेरे में ही मिल सकता है। अंधेरे के सारे के सारे व्यवसाय को खोने की जोखिम शर्त है-- दीये के जलने की।
दीया जल सकता है। कीमत चुकाने को राजी हो जाओ। मुफ्त वह दीया नहीं जलेगा। और अच्छा है कि मुफ्त नहीं जलता। क्योंकि मुफ्त जल जाता तो कोई रस न होता। मुफ्त जल जाता तो तुम धन्यवाद भी अनुभव न करते। मुफ्त जल जाता तो तुम प्रौढ़ ही न हो पाते। मुफ्त जल जाता तो तुम जाग ही न पाते। तो दीया भी जलता रहता और तुम कमरे में अंधेरे में ही रहते। तुम आंख बंद किये सोये रहते।
दीये के जलने से ही थोड़े ही रोशनी हो जाती है--आंख भी तो खुली होनी चाहिए। सूरज भी निकल आये और तुम आंख बंद किये पड़े रहो तो तुम अंधेरे में रहोगे। छोटी-सी दो पलकें इतने बड़े सूरज को नकार देती हैं।
तो चुनौती स्वीकार करो! दीया जल सकता है--इस आशा से उद्वेलित होओ। उठो!
कठिन होगा। संघर्षण होगा। लेकिन उसी संघर्षण में तुम जागोगे, आंख खुलेगी।
और अच्छा है कि आंख खुलते-खुलते ही दीया भी जले। कोई दूसरा जला दे दीया तो तुम आंख न खोलोगे।
ऐसा मैंने सुना है, एक पुरानी चीनी कथा है, एक किसान ने परमात्मा से बड़े दिनों तक प्रार्थना की कि "हे प्रभु! तुझे खेती-बाड़ी का कुछ पता नहीं।
जब पानी चाहिए तब पानी नहीं; जब पानी नहीं चाहिए, तब बेतहाशा पानी! बाढ़ भेज

देता है! तुझे कुछ समझ नहीं। तूने कभी खेती-बाड़ी नहीं की। ओलों की क्या जरूरत है? जब धूप चाहिए तब धूप नहीं।"
आखिर परेशान हो गया परमात्मा भी सुन-सुनकर। उसने कहा, "आखिर तू चाहता क्या है?" उस किसान ने कहा कि एक साल मुझे मौका दें। आखिर जिंदगी हो गयी खेती-बाड़ी करते हुए। मुझे पता है, तूने कभी खेती-बाड़ी की भी नहीं। एक साल जो मैं चाहूं, वैसा हो।"
परमात्मा ने कहा, "चल यही सही।"
एक साल ऐसा हुआ कि किसान जब धूप चाहता तब धूप; जब पानी चाहता तब पानी। बड़ी फसल उठी। ऐसी कभी न उठी थी। गेहूं की बालें इतनी बड़ी-बड़ी हुईं कि किसान ने कहा, "अब देखो! सालभर के बाद दिखलाऊंगा कि क्या तुम अब तक परेशान करते रहे संसार को!" आदमियों के सिरों के ऊपर चली गयीं। फिर वक्त आया फसल काटने का। फसल काटी गयी। बालें तो बहुत बड़ी-बड़ी थीं, लेकिन गेहूं उनमें न थे। वह किसान बड़ा हैरान हुआ कि यह मामला क्या हुआ! उसने प्रभु को कहा, "हे प्रभु! समझे नहीं--धूप जब चाहिए तब धूप दी। वर्षा जब चाहिए तब वर्षा दी। वर्षभर ठीक मेरे हिसाब से सब चला। और बालें इतनी ऊंची गयीं, कभी न गयी थीं। किसी ने देखी न थीं इतनी ऊंची बालें। लेकिन मामला क्या है? अंदर कोई गेहूं नहीं है!"
तो परमात्मा हंसा और उसने कहा, "तूने सिर्फ धूप मांगी, पानी मांगा, ओले नहीं मांगे, तूफान नहीं मांगा, आंधी नहीं मांगी। आंधी और तूफान के बिना भीतर का सत्व संगृहीत नहीं होता। तो बालें बड़ी हो गयीं लेकिन भीतर प्राण संगृहीत न हुए।"
संघर्ष के बिना कहीं प्राण संगृहीत हुए हैं?
तो अगर तुम्हें मुफ्त मिल जाता होता भीतर का दीया भी तो तुम्हारे भीतर आत्मा पैदा न होती। तुम बाल हो जाते बड़ी लंबी, मगर भीतर गेहूं का दाना न होता।
इस जीवन में जैसा है, सब वैसा ही जरूरी है। जो चेष्टा से मिलना चाहिए,
वह चेष्टा से ही मिलता है। क्योंकि बिना चेष्टा के वह मिल ही नहीं सकता; वह पैदा ही नहीं होता; तुम्हारी पात्रता ही निर्मित नहीं होती।

दूसरा प्रश्नः ओशो, तुम्हारे चरणों में शत-शत प्रणाम!

"दर्शन" ने पूछा है।
प्रश्न तो है ही नहीं। "दर्शन" की वृत्ति भी प्रश्न पूछने की नहीं है।
उसने सिर्फ अपना अहोभाव प्रगट किया है।
इसे समझना।
जो पूछते हैं, जरूरी नहीं कि समझ पायेंगे। पूछने के कारण ही बहुत बार तुम समझने से वंचित रह जाते हो। क्योंकि जब तुम पूछते हो तो प्रश्न को तुम इतना-इतना भारी समझ लेते हो, और तुम प्रश्न में इतने व्यस्त हो जाते हो कि उत्तर के लिए जगह ही नहीं मिलती तुम्हारे भीतर प्रवेश पाने की। तुम उत्तर के लिए दरवाजा नहीं छोड़ते।
समझ तो वे ही सकते हैं जो पूछते नहीं। न पूछना ठीक-ठीक उत्तर को समझ लेने का अनिवार्य चरण है।
तो "दर्शन" ने न तो कभी कुछ पूछा है--सिर्फ एक बार को छोड़कर। पहली बार
जब वह मुझे मिलने आयी थी, वर्षों पहले, तब विवाद करने आयी थी। कोई बात उसे जंची न थी तो तर्क करने आयी थी। मैंने उसी दिन देख लिया था कि वह उलझ गयी, अब लौट न सकेगी। आयी थी तर्क करने, रह गयी सदा को। उसके बाद उसने कभी कुछ पूछा नहीं। वर्षों बीत गये। और इन वर्षों में बहुत लोग आये-गये, वह फिर मेरे साथ रही। रास्ता ऊबड़-खाबड़ था तो भी; कंटकाकीर्ण था तो भी। अब तो मैं धीरे-धीरे आश्वस्त हो गया हूं कि लौटकर पीछे देखूंगा तो कोई भी न हो, तो भी "दर्शन" होगी।
वह छाया की तरह पीछे रही है। पहले ही दिन विवाद उसने छोड़ दिया। संवाद शुरू होता है तभी, जब हम विवाद छोड़ते हैं। उत्तर पहुंचने लगता है तभी जब हम

प्रश्न छोड़ देते हैं। उसने कुछ पूछा नहीं, इतना सिर्फ कहा है, तुम्हारे चरणों में शत-शत प्रणाम। यह भी पहली दफे कहा है।
नागुफ्तनी हदीसे-मुहब्बत नहीं मगर
जो दिल की बात वह कहें क्या जबां से हम?
--प्रेम कोई छिपाने की बात नहीं।
नागुफ्तनी हदीसे-मुहब्बत नहीं मगर
--प्रेम कोई न कहने की बात नहीं।
जो दिल की बात वह कहें क्या जबां से हम?
लेकिन जो दिल की बात है उसे कैसे जबान से कहा जाये! कहना भी चाहें तो
भी कही नहीं जा सकती। जो भी कहा जा सकता है, वह बुद्धि का होता है। जो नहीं कहा जा सकता, वही हृदय का है।
तो उसे मैंने रोते देखा है, हंसते देखा है; प्रसन्न देखा है, उदास देखा है। लेकिन कभी उसने कुछ कहा नहीं। इस न कहने के कारण उसे बहुत कुछ मिला है, जो उनको नहीं मिल पाया जो बहुत कहने में लगे हैं।
लेकिन, फिर भी खामोश भी रहो, चुप भी रहो तो भी हृदय कुछ कहना चाहता है।
नहीं कह सकता, असमर्थ पाता है--फिर भी कुछ कहना चाहता है। कहने में, अभिव्यक्त होने में संबंधित होना चाहता है।
मैं हजार जब्त करूं तो क्या, मैं हजार कुछ न कहूं तो क्या?
कि दयारे-नाजे-हबीब में, मेरी खामुशी भी सवाल है।
उस प्रेमी के दरबार में, उस प्रेमी की महफिल में, मैं हजार जब्त करूं
तो क्या, मैं हजार कुछ न कहूं तो क्या--न कहो, सम्हालो तो भीः दयारे-नाजे- हबीब में, मेरी खामुशी भी सवाल है।
लेकिन चुप रहना भी तो अभिव्यक्ति हो जाती है। न कुछ कहकर भी तो कुछ कह दिया जाता है। मौन भी तो अपनी एक मुखरता रखता है।
तो यद्यपि "दर्शन" ने कभी कुछ कहा नहीं, लेकिन बहुत कुछ वह कहती रही है--अपनी चुप्पी से, अपने शांत मौन से। अनेक बार मैंने उससे पूछा भी है, लेकिन फिर भी वह बचा गयी, उसने कुछ कहा नहीं है।
ऐसी भाव दशा जल्दी ही परम फूलों को उपलब्ध होती है। और आज उसने पहली दफा लिखा है। एक बार और उसने पत्र लिखा था--वह भी खाली कागज भेजा था; उसमें कुछ लिखा नहीं था। उत्तर मैं उसका भी दिया था। क्योंकि खाली कागज में भी तो कोई बड़ी अंतर्तम से उठी हुई प्रश्नावली है। कुछ जो नहीं कहा जा सकता, जिसे शायद वह खुद भी नहीं तय कर पाती कि कैसे कहें, उसको खाली कागज में लिखकर भेज दिया है। अपने शून्य को! आज उसने धन्यवाद दिया है! कुछ लिखा है। तुम्हारे चरणों में शत-शत प्रणाम। उसके भीतर कुछ हो रहा है, वह बड़ी पीड़ा से गुजर रही है। पुराना संसार टूट रहा है। नये का अभ्युदय हो रहा है! इन पीड़ा के क्षणों में अत्यंत जरूरी है कि वह जो होने जा रहा है, उसके प्रति अहोभाव से भरी रहे। अन्यथा, पुराना संसार काफी वजनी है! उसका जाल-जंजाल गहरा है। उसमें बार-बार उतर जाने की, उलझ जाने की संभावना है! लेकिन उसके सौभाग्य से वह जाल खुद ही टूटा जा रहा है। वह जाल खुद ही पीछे हटा जा रहा है।
सदा ही ऐसा होता है। जिस दिन तुम तैयार हो, उसी दिन संसार तुम्हें छोड़ने को तैयार हो जाता है। तुम लाख कहते हो कि क्या करें, कैसे छोड़ें, संसार नहीं छोड़ रहा है! गलत कहते हो। जिस दिन तुम छोड़ना चाहते हो, उस दिन संसार क्षणभर को नहीं पकड़ता है, क्योंकि संसार ने तुम्हें कभी पकड़ा ही न था। इधर तुम छोड़ने लगे, उधर संसार अपने आप छोड़ने लगता है।
ऐसी ही घड़ी से वह गुजर रही है। ऐसी घड़ी में प्रणाम करने का ख्याल, सौभाग्य है क्योंकि ऐसे समय में तो शिकायत करने का मन होता है। अगर वह शिकायत लिख भेजती आज तो मैं समझता कि ठीक था, तर्कयुक्त था; क्योंकि पीड़ा से गुजर रही है, घनी पीड़ा से गुजर रही है। आज वह मुझ पर नाराज होती तो समझ में आनेवाली बात थी। क्योंकि यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि जब पीड़ा से कोई गुजरे तो कहीं न कहीं, किसी न किसी को दोष दे। और मुझसे ज्यादा करीब उसके कोई भी नहीं। तो जो भी करीब हो, उसी को हम दोष देते हैं।
आज इस दुख की घड़ी में स्वाभाविक था कि वह कहती कि "तुम्हीं" ने सब खराब
कर दिया! सब उजड़ गया! सब धागे टूटे जा रहे हैं! लेकिन इस घड़ी में उसका चरणों

में प्रणाम भेजना बहुत बहुमूल्य है। इस किरण के सहारे ही वह पार हो जायेगी।
हजारों तूर उसी की हसरते-दीदार पर कुर्बां,
कि जिसकी जिंदगी ही हसरते-दीदार हो जाए।
हजारों सूरज भी उसकी आंखों पर कुर्बान हैं; उसकी देखने की अभिलाषा पर कुर्बान हैं--जिसके जीवन का लक्ष्य ही उस परम प्रिय को देखना रह गया हो।
हजारों तूर उसी की हसरते-दीदार पर कुर्बां,
कि जिसकी जिंदगी ही हसरते-दीदार हो जाए।
उसे मैंने "दर्शन" नाम दिया है। "दर्शन" का अर्थ होता हैः "हसरते- दीदार"; देखने की अभिलाषा। और उसकी देखने की अभिलाषा गहन होती चली गयी है। अब तो यहां बैठती भी है तो आंखें बंद करके ही बैठती है। जैसे-जैसे देखने की अभिलाषा गहन होती है, वैसे-वैसे आंख भी बंद होने लगती है। क्योंकि आंख से तो वही देखा जा सकता है जो रूप है, आकार है, नाम है। आंख बंद करके उसे देखा जा सकता है--जो अरूप है, निराकार है, अनाम है।
हजारों तूर उसी की हसरते-दीदार पर कुर्बां,
कि जिसकी जिंदगी ही हसरते-दीदार हो जाए।
और "दर्शन" की जिंदगी अब उस दिशा में प्रवाहित हो रही है, उसकी नाव, जहां उस परम प्यारे के सिवाय कोई और न बचेगा।
कठिन होगी यात्रा! सब छूटेगा। लेकिन सब छूटने के मूल्य पर ही सब मिलता है। एक ही बात ख्याल रखना--
हरम हो, बुतकदा हो, दैर हो, कुछ हो, कहीं ले चल
जहां वह हुस्न-लामहदूद हो, ऐ दिल! वहीं ले चल।
--जहां वह परम सौंदर्य हो, अब वहीं चलेंगे!
हरम हो, बुतकदा हो, दैर हो, कुछ हो, कहीं ले चल
--मंदिर हो, मस्जिद हो, काबा हो, काशी हो, कुछ भी हो।
हरम हो, बुतकदा हो, दैर हो, कुछ हो, कहीं ले चल
जहां वह हुस्न-लामहदूद हो, ऐ दिल! वहीं ले चल!
जहां वह असीम सौंदर्य हो! जहां उस परम प्रिय का दर्शन हो!
उसके लिए सब निछावर करने की तैयारी रखना। वह आखिरी दम तक परीक्षा लेता है। वह आखिरी-आखिरी घड़ी तक परीक्षा लेता है। आखिरी-आखिरी घड़ी तक पीड़ा देता है! लेकिन जो उस पीड़ा से गुजर जाता है, वह उस महापात्रता को उपलब्ध हो जाता है--जहां तुम्हें परमात्मा को खोजने नहीं जाना पड़ता, परमात्मा तुम्हें खोजता आता है!
और अगर, अहोभाव हो तो घड़ी दूर नहीं। शिकायत से लोग दूर होते हैं परमात्मा से; धन्यवाद से पास होते हैं। जितना धन्यवाद गहन होता जाता है उतनी दूरी कम होती जाती है। अगर अहोभाव परिपूर्ण हो जाये तो दूरी समाप्त हो जाती है। अहोभाव के क्षण में अचानक तुम पाते होः वही है मौजूद! उसने ही तुम्हें सब तरफ से घेरा है। उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है!
गुल में, शफक में, दामने-अब्रे-बहार में
देखा जो मैंने आए नजर तुम जगह-जगह।
संध्या की लाली में देखा, कि वसंतों की वर्षा में देखा!
गुल में, शफक में, दामने-अब्रे-बहार में
देखा जो मैंने आए नजर तुम जगह-जगह।
वही दिखायी पड़ने लगेगा। ऐसा अहोभाव हो कि कहीं मन के कोने-कातर में भी सरकती कोई शिकायत न रह जाये, उसके दुख भी स्वीकार हों, उसकी पीड़ा भी स्वीकार हो। उसने दी पीड़ा, इस योग्य समझा। यही क्या कम है! ऐसे भाव में मंदिर निर्मित होता है। ऐसे भाव की दशा में भक्त निर्मित होता है।
और "दर्शन" जल्दी ही उस दशा को उपलब्ध हो सकती है। लेकिन जितने हम करीब पहुंचते हैं, उतना ही खतरा भी बढ़ता है। जो जमीन पर चलते हैं, समतल जमीन पर, उनके गिरने का कोई भी डर नहीं। लेकिन जो पहाड़ की ऊंचाइयों पर चढ़ते हैं, गिरने का डर भी उसी के साथ-साथ बढ़ता जाता है। गिरे तो बुरी तरह

गिरेंगे। इसलिए जितनी ऊंचाई आती है, उतने ही सम्हलकर और सावधान होकर चलने के क्षण आते हैं। जमीन पर गिरे भी तो क्या गिरे, फिर उठकर खड़े हो जायेंगे। मैंने सुना है, बायजीद एक गांव के पास से गुजर रहा था। उसने एक शराबी
को देखा, जो डगमगाता चल रहा था! बायजीद ने उसे पकड़ा और कहा कि, "सुन पागल! कितनी पी रखी है? कुछ होश सम्हाल! गिर पड़ेगा तो कीचड़ मची है, सब कपड़े खराब हो जायेंगे।"
उस शराबी ने आंख खोली और हंसने लगा। उसने कहा, "बायजीद! हम अगर गिरे तो कपड़े ही खराब होंगे; तुम अगर गिरे तो... ?"
बायजीद बड़ा सूफी फकीर था, बड़ा संत था।
"तुम अगर गिरे तो?"
तो कहते हैं, बायजीद ने उसके चरण छुए और कहा कि ठीक समय पर तूने मुझे चेताया। अगर हम गिरे तो कपड़े तो दूर, आत्मा तक खराब हो जायेगी। तू गिरा तो सुबह नहा-धोकर ठीक हो जायेगा, यह भी सच है। अगर हम गिरे तो जन्म-जन्म लग जायेंगे।
"दर्शन" वहां है जहां सम्हालकर चलना होगा प्रतिपल। और रोज-रोज सम्हालने को ज्यादा सम्हालना होगा। ज्यादा सावधानी, सावचेती।
इन पीड़ा के क्षणों को अगर ठीक से पार कर लिया तो मंदिर ज्यादा दूर नहीं है, पास ही है--कुहासे में ढंका है।

तीसरा प्रश्नः कल जिस क्षण आपने कहा कि "महावीर ने स्वाधीनता को आत्यंतिक मूल्य दिया, वह मूल्य किसी और ने नहीं दिया" उस क्षण मैं आपको निहारता ही रहा। क्या कर दिया आपने? मैं अपनी अभव्यता देखता रहूं, अल्पता देखता रहूं, और आपको निहारता रहूं, शीश नवाता रहूं!

सुना यदि शांत मन से तो कभी-कभी ऐसे झरोखे खुलेंगे।
महावीर ने तो कहा है कि अगर कोई ठीक से सुन ले तो मात्र श्रवण से भी पार हो जाता है। इसलिए महावीर ने कहा कि मेरे चार तीर्थ हैं, चार घाट हैं जिनसे लोग उस पार जा सकते हैंः श्रावक, श्राविका, साध्वी, साधू। श्रावक-श्राविका का अर्थ होता हैः जिन्होंने ठीक से सुना, श्रवण किया। सिर्फ सुनकर कोई पार जा सकता है? निश्चित ही। लेकिन सिर्फ सुनने को कोई छोटी घटना मत समझना। सिर्फ सुनना बड़ी घटना है--करने से भी बड़ी घटना है। करना तो आसान है, सुनना कठिन है। क्योंकि ठीक सुनने का अर्थ हैः जब तुम्हारे भीतर कोई विचार की तरंग न हो; तभी तुम वह सुन पाओगे जो कहा जा रहा है। अगर विचारों की तरंगें हैं तो तुम वही सुन लोगे जो तुम्हारी विचार की तरंगें व्याख्या करेंगी।
मैं यहां बोल रहा हूं। तुम वहां सोच भी रहे हो। तो मिश्रित होगा सुनना। मेरे कहे पर तुम्हारे विचारों की खोल चढ़ जायेगी। मेरे कहे पर तुम्हारे विचारों का रंग बिखर जायेगा। तुम वही समझ लोगे जो तुम समझ सकते थे; वह नहीं जो मैंने कहा था।
तो कभी-कभी ऐसी घड़ी घटेगी सुनते-सुनते कि तुम उस जगह पहुंच जाओगे जिसको महावीर श्रावक का तीर्थ कहते हैं। श्रवण के घाट पर पहुंच जाओगे! अचानक! तब क्या मैं कह रहा हूं, यह सवाल नहीं है--कोई भी शब्द, भाव-भंगिमा मात्र, तुम्हारे भीतर कोई झरोखा खोल देगी! कोई द्वार जो बंद पड़ा था जन्मों से, हवा के एक झोंके में खुल जायेगा! कोई दृश्य जो तुमने कभी न देखा था, दिखायी पड़ जायेगा। ऐसा ही कुछ हुआ है!
"कल जिस क्षण आपने कहा, महावीर ने स्वाधीनता को आत्यंतिक मूल्य दिया,
वह किसी और ने नहीं दिया, उस क्षण मैं आपको निहारता ही रहा। क्या कर दिया आपने?"
मैंने कुछ भी नहीं किया। मेरे किये क्या हो सकता है? तुमने कुछ होने दिया। मैंने कुछ किया नहीं। तुमने कुछ होने दिया। इस फर्क को ठीक से समझ लेना।
अगर तुमने ऐसा सोचा कि मैंने कुछ कर दिया, तो यह तो परतंत्रता की नयी जंजीर शुरू हो जायेगी। तब तुम राह देखोगे कि मैं कुछ करूं तो हो।

इस भ्रांति में मत पड़ना। यह भ्रांति होती है।
तुम एक राह से गुजर रहे हो। एक सुंदर स्त्री दिखायी पड़ी। कुछ हो गया।
अब तुम कहते हो, "इस स्त्री ने कुछ कर दिया।" इस स्त्री ने कुछ भी नहीं किया। तुम्हारे भीतर ही कुछ हुआ। इसकी मौजूदगी ने सहारा दे दिया। इसने कोई जादू नहीं किया, कोई वशीकरण नहीं किया, जैसा लोग समझते हैं। शायद इसे तो ख्याल भी न हो। तुम्हें कुछ हुआ, यह पक्का है। इसकी मौजूदगी ने कैटेलेटिक एजेंट का काम किया। शायद इसकी मौजूदगी में न हो पाता, देर-अबेर होता, लेकिन इसकी मौजूदगी में कोई चीज तुम्हारे भीतर झलक गयी; लेकिन जो झलकी है वह तुम्हारी ही अंतर-दशा है। इसकी मौजूदगी में तुमको झलक मिली प्रेम की, लेकिन प्रेम तुम्हारी भाव-दशा है। तुम्हारे भीतर पड़ा हुआ प्रेम फूट पड़ा। इसकी मौजूदगी अवसर बनी। इसने कुछ किया नहीं। इसकी मौजूदगी निष्क्रिय अवसर है।
ठीक वैसे ही बुद्धपुरुषों की मौजूदगी निष्क्रिय अवसर है। बुद्ध या महावीर तुम्हारे भीतर कुछ करते नहीं। नहीं, इतनी हिंसा भी वे न कर सकेंगे। यह भी हिंसा हो जायेगी। असमय में कुछ कर देना ऐसा ही होगा जैसे गर्भपात हो जाये समय के पहले। नहीं वे प्रतीक्षा करेंगे।
सुकरात कहता थाः मेरा काम दाई का काम है, मिडवाइफ। दाई का काम यह है कि
जब बच्चा पैदा होने के करीब हो तब वह जरा सहारा दे दे। बिना सहारे के भी पैदा हो जायेगा बच्चा। थोड़ा सहारा दे दे। थोड़ी ढाढ़स बंधा दे। थोड़ी हिम्मत बंधा दो। लेकिन समय के पहले बच्चे को बहार न निकाल दे, अन्यथा बच्चा मृत होगा या अर्ध-जीवित होगा।
तो जो भी यहां घटेगा मेरे निकट तुम्हारे भीतर, तुम उसे घटने दे रहे हो--इतना याद रखना। भूलकर भी यह मत सोचना कि मैंने कुछ किया। तुमने कुछ होने दिया। अगर यह तुम्हें ख्याल रहे तो तुम मालिक रहोगे। तुम जब होने देना चाहोगे तभी हो जायेगा। अगर तुम सतत होने देना चाहोगे तो सतत होता रहेगा। लेकिन मालकियत मेरे हाथ में मत दे देना।
ऐसी भूल अकसर हो जाती है। अकसर, जीवन में हमारा सारा तर्क यही हैः कोई तुम्हारे पास से गुजरा और तुम्हें नमस्कार न किया--क्रोध आ गया। अब तुम कहते हो, इस आदमी ने क्रोधित कर दिया। इस आदमी ने कुछ भी नहीं किया। यह उसकी मर्जी नमस्कार करे न करे। हां, एक मौजूदगी बनी, एक अवसर बना। उसने नमस्कार नहीं किया। क्रोध तो तुमने होने दिया। इसे दोष दूसरे पर मत देना। तुम्हारे भीतर कोई दूसरा कुछ करता नहीं। ऐसा ही समझो कि एक सूखा कुआं
हो और हम उसमें एक बालटी डालें, खूब खड़खड़ाएं, खूब डुबकी लगवाएं बालटी की, लेकिन कुछ भी न हो, क्योंकि कुआं सूखा है। बालटी खाली की खाली वापस आ जाए। फिर भरे कुएं में हम बालटी डालें, तो भरकर आ जाये।
तुम अगर प्रेम से भरे हो तो परिस्थितियां अनुकूल बन जायेंगी जिनमें तुम्हारा प्रेम उभरकर आ जायेगा। तुम अगर क्रोध से भरे हो तो परिस्थितियां अनुकूल बन जायेंगी, जिनमें क्रोध उभरकर आ जायेगा।
यह संसार सभी परिस्थितियों का समागम है। यहां सभी परिस्थितियां मौजूद हैं। तुम जिससे भरे हो वही प्रगट होने लगेगा। अगर तुम थोड़े शांत, मौन से भर जाओ, तो तुम्हारे भीतर बहुत कुछ घटेगा, बहुत-से वातायन खुलेंगे। लेकिन भूलकर भी यह मत कहना कि मैंने कुछ किया। ज्यादा से ज्यादा इतना
ही कहना कि मेरी मौजूदगी में तुमने कुछ होने दिया। और फिर ये भी कोशिश करना कि मेरी मौजूदगी के बिना भी वह हो जाये, ताकि तुम उसके मालिक बन सको। मुझे सुन रहे थे, कुछ हुआ--अचानक तुम चौंक गये, अवाक रह गए, चकित!
अब ऐसा ही सुबह बैठ जाना, सूरज ऊगते ही, सूरज को देखना! फिर वैसे ही शांत, मौन उसे देखते रहना। तुम अचानक पाओगेः किसी दिन सूरज के ऊगने से भी वैसा हो जायेगा।
फिर पक्षियों के कोलाहल को सुनना। उनके कलरव को सुनना। किसी दिन तुम पाओगेः सुनते-सुनते-सुनते फिर तार मिल गए! फिर हो गया! तब तो एक बात पक्की हो जायेगी कि तुम जहां भी होने देते हो वहीं हो जाता है।

फिर किसी दिन बीच बाजार में, जहां होने की कोई आशा नहीं दिखायी पड़ती, वहां तुम बाजार के शोरगुल को मौन भाव से सुनना और तुम चकित होओगेः वहां भी हो जाता है!
तब तुम मालिक होने लगे। तब तुम अपने पैरों पर खड़े होने लगे। तब मैं तुम्हारे लिए बैसाखी न बना, वरन मेरी मौजूदगी ने तुम्हारे पैरों को बल दिया।
ध्यान रखना, तुम्हारी आकांक्षा मुझे बैसाखी बना लेने की है। लेकिन बैसाखी मिल जाए तो भी तुम लंगड़े ही रहोगे।
किसी गुरु को बैसाखी मत बनाना। और जो गुरु स्वयं को तुम्हारी बैसाखी बनने दे वह तुम्हारा मित्र नहीं, शत्रु है; क्योंकि वह तुम्हारे लंगड़ेपन के लिए शाश्वतता दे रहा है। अब तुम सदा के लिए लंगड़े रह जाओगे।
यही बात अकसर घटती है। तुम किन्हीं लोगों के पास जाकर कहोगे, कि आपकी मौजूदगी ने, आपने ऐसा कुछ कर दिया।
सदगुरु और असदगुरु की पहचान यही है। असदगुरु कहेगा, "हां, मेरी शक्ति
से ऐसा हुआ।" सदगुरु कहेगा, "किसी की शक्ति का कोई सवाल नहीं। तुमने होने दिया", और तुम अगर होने दो तो कोयल की कुहू-कुहू से भी हो जायेगा। पानी के झरने की आवाज से भी हो जायेगा। सागर के तुमुल नाद से भी हो जायेगा। फिर तो बीच बाजार में भी हो जायेगा। भीड़, कोलाहल, चलते हुए लोग, हजार तरह की बातें, शोरगुल--उससे भी हो जायेगा। क्योंकि असली बात बाहर से भीतर नहीं आ रही है-- असली बात भीतर से बाहर जा रही है। असली बात है कि तुम शांत होकर सुनने में समर्थ हो गए; तुमने कोई प्रतिक्रिया न की।
निश्चित ही, पहली दफा उसी व्यक्ति के पास हो सकेगा। जिससे तुम्हारा बड़ा श्रद्धा का लगाव है। पहली दफा! वहां आसान होगा, जहां बड़ा प्रेम का लेन-देन है; जहां दो हृदय साथ-साथ धड़कते हैं।
जब तुमने मेरी यह बात सुनी तब किसी कारण से, संयोगवशात तुम चुप थे। मन में सन्नाटा था। सुनने को आतुर थे, इसलिए बोल नहीं रहे थे। उस आतुरता में भी कोई ऐसी घड़ी आयी होगी जहां मेरे श्वास के और तुम्हारे श्वास के बीच एक लयबद्धता आ गयी, एक तालमेल हो गया। तो जिस तरह, जिस जगत में मैं स्पंदित हो रहा हूं, क्षणभर को तुम मेरे साथ नाच लिये, स्पंदित हो गए। कुछ हुआ! कुछ-- जिससे तुम चकित होओ! कुछ--जिस पर तुम भरोसा नहीं कर सकते! कुछ--जिसको तुम चाहोगे कि मैं कहूं कि मैंने किया! क्योंकि तुम्हें अपने पर आत्मविश्वास नहीं कि तुमसे ऐसा हो सकेगा।
फिर भी मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हीं से हुआ है। और बार-बार तुमसे यही कहूंगा कि जब भी हो, स्मरण रखना तुम्हीं से हो रहा है। मेरी परिस्थिति का उपयोग कर लो। मेरी मौजूदगी का उपयोग कर लो। मेरी मौजूदगी तुम्हें तुम्हारे भीतर की संपदा के प्रति थोड़ा जागरूक कर दे, फिर तुम मुझे भूलो! क्योंकि मैं बाहर हूं। फिर तुम अपनी तरफ चलो।
बुद्ध ने कहाः बुद्ध-पुरुष इशारा करते हैं, चलना तुम्हें पड़ता है। महावीर ने कहा हैः मैं सिर्फ उपदेश करता हूं, आदेश नहीं। मैं वही बोल देता हूं, जो है। तुम अगर सुनने को राजी हो सुन लो। जीसस ने कहा हैः अगर तुम्हारे पास आंखें हों तो देख लो, मैं मौजूद हूं! तुम्हारे पास कान हों तो सुन लो, मैं बोल रहा हूं! तुम्हारे पास हृदय हो तो धड़क लो मेरे साथ!
ऐसा ही समझो कि थोड़ी, क्षणभर को, तुम मेरे साथ धड़क लिये, श्वास से श्वास मेल खा गयी, धड़कन से धड़कन मेल खा गयी। एक क्षण को एक आरोह हुआ। तुम्हारे भीतर एक तरंग उठी, उसने आकाश छू लिया! लेकिन इसे मैं चाहता हूं कि तुम सदा स्मरण रखना कि वह तुम्हारे ही कारण हुआ। क्योंकि अगर मेरे कारण हुआ तो तुम मुझसे बंधे। फिर बाजार में न हो सकेगा। फिर पक्षियों के कलरव में न हो सकेगा। फिर सागर के तुमुल नाद में न हो सकेगा। फिर तुम बंधे मुझसे। फिर तो मैं तुम्हारा नशा हो गया। फिर तुम्हें मेरी तलफ लगेगी, कि जाएं वहां, सुनें वहीं, फिर सत्संग करें!
नहीं, सत्संग का अर्थ ही यह है कि तुम्हारी ऐसी घड़ी आ जाये कि सब जगह, जहां तुम हो वहीं सत्संग होने लगे। नहीं कहता कि यहां मत आना, लेकिन वह आना तुम्हारा रोग न बन जाए; वह शराबी की लत न बन जाए!

तुम आना और प्रसन्न होना। और तुम आना और खुलना। और तुम आना और प्रसाद
को उपलब्ध होना। लेकिन स्मरण रखना कि सब तुम्हारे भीतर हो रहा है। और जब तुम यहां से जाओ, तो जो हुआ है उसे संभालकर अपने साथ ले जाना, उसे यहां मत छोड़ जाना। और धीरे-धीरे विपरीत परिस्थितियों में भी उसकी झलक को पाने की कोशिश करना। जहां कोई संभावना न दिखायी पड़ती हो, जहां दुख ही दुख, पीड़ा ही पीड़ा हो--फिर तुम आंख बंद करके उसी भावदशा को, उसी तरंग को अपने भीतर लाना। तुम चकित होओगे कि धीरे-धीरे वह तरंग उठने लगी, मालकियत हाथ में आने लगी! तब कहीं भी, आंगन कितना ही तिरछा हो, तुम्हें नाच आ गया तो तुम नाच सकोगे। ज्यादा से ज्यादा यहां मैं इतना ही कर रहा हूं कि तुम्हें चौकोर आंगन दे रहा हूं। इससे ज्यादा नहीं। जो जगा है वह तुम्हारे भीतर ही सोया था।
फिर ये कैसी कसकसी है दिल में,
तुझको मुद्दत हुई कि भूल चुका।
वह जो कसकसी फिर से मालूम हुई, वह कुछ बाहर से नहीं आयी है। वह उसी की याददाश्त है जिसे तुम मुद्दत हुई भूल चुके। वह तुम्हारे मूलस्रोत का स्मरण है।
फिर ये कैसी कसकसी है दिल में
तुझको मुद्दत हुई कि भूल चुका।
इतने भूल चूके हो कि अब यह भी याद नहीं कि भूल चुके। भूल चुके हैं, यह
भी याद रहे तो बिल्कुल भूले नहीं, याद है। लेकिन हम इतने भूल गये हैं कि यह भी अब याद नहीं कि भूल चुके।
तुम मेरे करीब, वह मुद्दत हुई जिसे तुम भूल चुके, जनम-जनम का घेरा, बहुत दूर रह गयी वह बात जो तुम्हारा मूलस्रोत थी और जो तुम्हारी, अंतिम जीवन की नियति है; प्रथम जो थी और अंतिम जो है, वह बात भूल गयी है--यहां तुम्हें याद आ जाये, थोड़ी सुरति आ जाये! बस इतना काफी है!
और इस बात को तुम हर किसी से कहते मत फिरना। नहीं तो लोग हंसेंगे। यह बात तो दीवानों से ही करने की है।
अगर तुमने यह किसी और को कहा कि मैं यह बोल रहा था कि "महावीर ने स्वाधीनता को आत्यंतिक मूल्य दिया, वह मूल्य किसी और ने नहीं दिया", उस क्षण में तुम्हारे भीतर कुछ अनहोना घट गया, तो लोग कहेंगे, इस बोलने में क्या रखा है? ये शब्द तो साधारण हैं।
"महावीर ने स्वाधीनता को आत्यंतिक मूल्य दिया, वह मूल्य किसी और ने नहीं दिया"--इन शब्दों से क्या घट सकता है?
तुम दूसरे को मत समझाना! ये बातें तो दीवानों की हैं। हां किसी और को हुआ हो तो उससे बात कर लेना। नहीं तो खतरा क्या है? खतरा यह है कि अगर तुम औरों से यह कहोगे तो वे समझेंगे, कि कुछ गड़बड़; तुम्हारा दिमाग खराब हो रहा है, किसी सम्मोहन में पड़ गये हो। और डर यह है कि वे कहीं तुम्हारा आत्म-अविश्वास न जगा दें। अगर आत्म-अविश्वास जग गया तो दुबारा यह न होगा।
तो ऐसी घटना कभी भी घटती हो, मुझे कह देना या गैरिक रंग के बहुत पागल यहां हैं, उनसे कह देना; मगर समझदारों से मत कहना, नहीं तो वे तुम्हें नुकसान पहुंचा सकते हैं। अंततः जब तुम्हारे जीवन में सब साफ हो जायेगा, फिर तो कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकता। लेकिन अभी जब अंकुर बड़ा कोमल होता है, अभी जब बीज टूटा ही होता है, तब हर खतरा प्राणघाती हो सकता है।
जब दिल पे न हो काबू अपना, क्या जब्त करें क्या सब्र करें!
मुझ जैसे काश वह हो जाएं जो आ-आकर समझाते हैं।
कई लोग तुम्हें समझायेंगे कि "क्या पागलपन कर रहे हो? होश में आओ! बुद्धि सम्हालो। यह तुम किन बातों में पड़े जा रहे हो?"
जब दिल पे न हो काबू अपना, क्या जब्त करें क्या सब्र करें!
मुझ जैसे काश वह हो जाएं जो आ-आकर समझाते हैं।
लेकिन वह तुम्हारे जैसे न होंगे। और डर यह है कि वह तुम्हें अपने जैसा बना सकते हैं, क्योंकि वे ज्यादा हैं।
भीड़ है। और हम भीड़ पर बड़ा भरोसा करते हैं। हमारी धारणा ही यह है कि जिस बात को बहुत लोग मानते हैं, वह ठीक होनी चाहिए। अकसर तो उलटा होता है।

जिसको बहुत लोग मानते हैं वह बात अकसर तो गलत होती है। क्योंकि बहुत लोग गलत हैं। अकसर तो ऐसा होता है, ठीक बात को कभी कोई एक-आध मानता है। भीड़ तो सदा गलत को ही मानती है। इसलिए सत्य के जगत में कोई लोकतंत्र नहीं है, कोई मत नहीं है, कि नब्बे प्रतिशत लोगों ने साथ दे दिया तो सत्य होना चाहिए। अकसर तो ऐसा हुआ हैः जब महावीर ने कहा तो वे अकेले, जब बुद्ध ने कहा तो वे अकेले।
धर्म को छोड़ दें, विज्ञान को लें। गैलीलियो ने कहा, कोपरनिकस ने कहा
तो अकेले। आइंस्टीन न कहा तो अकेले।
सारी दुनिया मानती थी सदियों से कि जमीन चपटी है। और जब गैलीलियो ने कहा कि जमीन गोल है तो वह अकेला था। सारी दुनिया मानती थी सदियों से कि सूरज ऊगता है, डूबता है। अब भी सभी भाषाएं यही कहती हैंः सूर्यास्त, सूर्योदय; सनराइज, सनसेट। गैलीलियो हो चुका, इससे भाषा में अभी फर्क नहीं पड़ा है। तीन सौ साल हो गये, लेकिन भाषा अब भी गलत बोली जा रही है। गैलीलियो ने कहा, न सूरज ऊगता है न डूबता है--सूरज चलता ही नहीं। ख्याल
यह था कि सूरज पृथ्वी के चारों तरफ चक्कर लगाता है। दिखता है लगाता हुआ, इसमें कोई शक नहीं। अब भी खाली आंख से देखो तो लगता है कि चक्कर लगा रहा है।
असलियत बिल्कुल उलटी हैः पृथ्वी चक्कर लगा रही है। सूरज खड़ा है। लेकिन हम पृथ्वी पर बैठे हैं तो हमको पृथ्वी का चक्कर लगाना तो दिखायी पड़ नहीं सकता। इसलिए सूरज चक्कर लगाता हुआ दिखायी मालूम पड़ता है।
कभी तुमने ख्याल किया? ट्रेन में तुम बैठे हो और दूसरी ट्रेन बगल में खड़ी है। तुम्हारी ट्रेन चलती है तो लगता है दूसरी ट्रेन चल पड़ी। चौंककर तुम्हें लगता है दूसरी ट्रेन चल रही है। चलती तुम्हारी है, लेकिन तुम तो अपनी ट्रेन में बैठे हो। तुम भी उसके साथ चल पड़े, इसलिए पता नहीं चलता। दोनों की गति बराबर है। लेकिन पास की ट्रेन खड़ी है। वह चलती हुई मालूम पड़ती है।
गैलीलियो ने कहा है कि सूरज खड़ा है, पृथ्वी चलती है। हजारों-हजारों साल से आदमी मानता थाः पृथ्वी खड़ी है, सूरज चलता है। लेकिन इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।
गैलीलियो को अदालत में ले जाया गया था। क्योंकि पोप खिलाफ था, क्योंकि बाइबिल में तो लिखा है कि पृथ्वी खड़ी है। और धर्मगुरु सदा डरते रहे हैं कि अगर शास्त्र की एक भी बात गलत हो जाये तो लोगों में शक पैदा होगा। लोग सोचेंगे जब एक गलत हो सकती है तो बाकी भी गलत हो सकती हैं।
तो पोप को समझ में भी आ रहा था, लेकिन फिर भी उसने गैलीलियो को कहा कि तुम क्षमा मांगो। अदालत में घुटने टेककर गैलीलियो ने क्षमा मांगी लेकिन वह आदमी भी बड़ा गजब का था। उसने कहा कि मैं क्षमा चाहता हूं। आप कहते हैं, शास्त्र कहते हैं तो सूरज ही चक्कर लगाता होगा, पृथ्वी खड़ी होगी। लेकिन एक बात मैं कहे देता हूं, मेरे कहने से कुछ भी नहीं होता। लगा तो पृथ्वी ही चक्कर रही है। मेरे कहने से क्या होगा? मैं क्षमा मांगता हूं। मेरा इसमें कुछ हाथ ही नहीं है। मैं थोड़े ही पृथ्वी को चलवा रहा हूं? तो मैं झंझट में नहीं पड़ना चाहता। लेकिन एक बात मैं कहे देता हूं कि मैं क्षमा मांगूं या न मांगूं, मैं कहूं या न कहूं--इससे क्या फर्क पड़ता है? आदमियत माने या न माने, इससे क्या फर्क पड़ता है? सूरज खड़ा है पृथ्वी चक्कर लगा रही है। दुनिया में सत्य को जाननेवाले तो कभी-कभी होते हैं। भीड़ तो असत्य को मानती है। लेकिन हमारे मन में एक धारणा है कि जिसको बहुत लोग मानते हैं वह ठीक होना चाहिए। इतने लोग मानते हैं! और हमारा कोई आत्मविश्वास तो है नहीं।
तो दूसरों से मत कहना। अन्यथा वे हंसेंगे। उनकी हंसी तुम्हारे जीवन में जहर हो सकती है। वे तुम्हें पागल समझेंगे। उनका समझना तुम्हें डगमगा सकता है।
इसलिए ये बातें तो ऐसी हैं कि जो तुम्हारे ही रास्ते पर चल रहे हैं और जिन्हें कुछ ऐसा होना शुरू हुआ हो, उनसे कर लेना; तो तुम एक दूसरे के लिए

सहयोगी बनोगे, सहारा बनोगे, बल दोगे, आत्मबल विकसित होगा। और जितना आत्मबल बढ़ेगा उतनी और घटनाएं संभव हो जायेंगी।

आखिरी प्रश्नः मुझे इतना कुछ मिल रहा था कि उसका आनंद अंतर में समाता नहीं था। इतना आनंद, इतनी खुशी कहां रखूं, कैसे सम्हालूं--समझ में नहीं आता। और प्यास भी उतनी ही है। जिनकी कृपा से जीवन की संध्या में मुझे यह सब मिल रहा है, उनसे पास होते हुए भी दूर हूं। इन दो बातों के लिए पागल-सी जी रही थी। कुछ दिनों से सब चुप होने लगा है। घंटों बैठी रहती हूं या लेटी रहती हूं। कुछ करने का मन नहीं होता। न कुछ बुरा लगता है और न अच्छा। ओशो, यह सब क्या हो रहा है?

शुभ हो रहा है। प्यास थिर हो रही है। प्यास गहरी हो रही है।
नदी जब उथली होती है तो शोरगुल करती है। नदी जब गहरी होती है तो शांत
हो जाती है। इतनी शांत हो जाती है कि पता ही नहीं चलता कि चलती भी है या नहीं।
गहरी नदी को देखा? थिर मालूम होती है। बस ऐसा ही हो रहा है। जो प्यास
अब तक थोड़ी तरंगें भी पैदा करती थी, वह और गहराई पर जा रही है। अब सब चुप हो रहा है।
कुछ रोज ये भी रंग रहा इंतजार का,
आंख उठ गयी जिधर बस उधर देखते रहे।
आंख हटाना भी भूल जायेगा। विचार करना भी भूल जायेगा। ठगे-ठगे से! बैठे-बैठे!
कुछ रोज ये भी रंग रहा इंतजार का,
आंख उठ गयी जिधर बस उधर देखते रहे।
ऐसी दीवानगी आयेगी, आ रही है। स्वागत करना उसका! पलक पांवड़े बिछाना उसके लिए! घबड़ा मत जाना। क्योंकि पहले-पहले जब शांति उतरती है तो लगती है उदासी है। क्योंकि हम उदासी से परिचित हैं, शांति से परिचित नहीं हैं। दोनों के चेहरे में थोड़ा तालमेल है।
तो जब पहली दफे शांति आती है तो ऐसा लगता है कहीं ये तो नहीं कि हम उदास हुए जा रहे हैं! पहले-पहले आनंद भी बाजे बजाता है। फिर धीरे-धीरे बाजे शांत होने लगते हैं, क्योंकि बाजों का शोरगुल भी आनंद में बाधा है। फिर आनंद की एक ऐसी घड़ी आती है जब उत्सव भी शांत हो जाता है। भीतर-भीतर, भीतर-भीतर रग-रोएं में समा जाता है। नाच भी नहीं होगा--नाच इतना गहरा हो जाता है। कोई क्रिया ऊपर दिखायी न पड़ेगी।
पहले तो शौके-दीद में सब कुछ भुला दिया
अब मैं नजर को ढूंढ़ रहा हूं, नजर मुझे।
ऐसी घड़ी आती है कि अपना ही पता नहीं चलता।
पहले तो शौके-दीद में सब कुछ भुला दिया--पहले तो उस परमात्मा को देखने
की आकांक्षा में सब भुला बैठे। लेकिन उस सब भुलाने में नजर भी खो जाती है। अब मैं नजर को ढू.ंढ रहा हूं, नजर मुझे। अब कुछ समझ में नहीं आता कौन कहां है, कौन कौन है?
आखिरी घड़ी में कुछ भी पता नहीं चलता भेद काः कौन भक्त है, कौन भगवान है!
रामकृष्ण अपने ऊपर ही फूल डाल लेते थे। भगवान को चढ़ाने जाते, खुद ही
पर डाल लेते। भगवान को भोग लगाते, खुद ही के मुंह में डाल लेते। लोगों ने शिकायत की कि यह तो कोई पूजा न हुई। ये तो पूजा का उल्लंघन है।
रामकृष्ण ने कहा, "करूं क्या? भेद ही नहीं मालूम होता। यह मुंह भी अब उसी का! यह सिर भी उसी का। ये हाथ भी उसी के! ये फूल भी उसी के!"
कौन कौन है, पक्का पता नहीं चलता!
इक तेरी तमन्ना ने कुछ ऐसा नवाजा है,
मांगी ही नहीं जाती अब कोई दुआ हमसे।
अब यह जो घड़ी आ रही है, इस घड़ी में कुछ भी मांगना मत। अब तो सिर्फ धन्यवाद, सिर्फ अहोभाव। उसे धन्यवाद देना! जो भी वह दे, धन्यवाद देना।

उदासी मालूम पड़े तो भी धन्यवाद देना; जल्दी उदासी शांति में परिणित हो जायेगी। ऐसा लगे, उत्सव खो रहा है तो भी धन्यवाद देना। एक नया उत्सव शुरू हो रहा है जो अभिव्यक्ति का नहीं है, जो अनभिव्यक्त है, जो शांत है और मौन है।
मैं तुमसे कहता हूं, महावीर भी नाचे हैं, मीरा ही नहीं नाची। लेकिन मीरा का नाच बाहर भी आया, महावीर का नाच भीतर ही भीतर रह गया। इतना गहन है। जैसे देखा नील नदी है, इजिप्त में! कई मीलों तक जमीन के नीचे ही बहती है, दिखायी नहीं पड़ती। फिर प्रगट होती है। तो सदियां हो गयीं, लोगों को पता ही न था कि इसका जन्म-स्रोत कहां है, यह उदगम कहां है! क्योंकि कई मीलों तक तो वह जमीन के नीचे ही बहती है तो उदगम का पता कैसे चले?
मीरा ऐसी है जैसे नील नदी प्रगट हो गयी। और महावीर ऐसे हैं जैसे नील नदी अभी जमीन के नीचे बहती है। नाच तो है ही--लेकिन नाच बड़ा मौन है, चुप है, बड़ा गुरु-गंभीर है!
कठिनाई होगी। ये प्रतीक्षा के पल पीड़ा के पल भी होंगे। कभी-कभी तो ऐसा लगेगा, कुछ खो तो नहीं गया! पहले तो बड़े आनंदित मालूम हो रहे थे; वह आनंद भी चला गया। पहले तो बड़े नाचे-नाचे मालूम पड़ते थे; वह पुलक चली गयी। कहीं कुछ खो तो नहीं गया!
शबे-इंतजार की कशमकश न पूछ कैसे सहर हुई
कभी इक चिराग जला दिया, कभी इक चिराग बुझा दिया।
मिलन की रात की कशमकश न पूछ और यह मत पूछ कि कैसे सुबह हुई! बड़ी मुश्किल हुई। कभी एक चिराग जला लिया, फिर बुझा दिया, फिर जला लिया, फिर बुझा दिया! ऐसी उधेड़-बुन हुई।
शबे-इंतजार की कशमकश न पूछ कैसे सहर हुई
कभी इक चिराग जला दिया, कभी इक चिराग बुझा दिया।
ऐसी कशमकश आएगी। घबड़ाना मत। बस एक ही ख्याल रखना कि जो भी हो रहा है,
जो भी होता है--शुभ है। यही तुम्हारी प्रार्थना हो अब कि जो भी हो रहा है, शुभ है। और तब शुभ के नये-नये द्वार खुलते जायेंगे।
दिल से मिलती तो है एक राह कहीं से आकर,
सोचता हूं ये तेरी राहगुजर है कि नहीं।
इस चिंता में मत पड़ना क्योंकि अब जल्दी ही दिल के पास जो परमात्मा का रास्ता गुजरता है वह दिखायी पड़ेगा। सोच-विचार में मत पड़ना। जब सब सन्नाटा हो जाता है, उत्सव भी चला जाता है, आनंद भी चला जाता है और सब शांत हो जाता है और आदमी ठगा-ठगा रह जाता है--तभी हृदय के पास से जिसका रास्ता गुजरता है उसके दर्शन होते हैं! हम अपने करीब आये, असंग हुए, निसंग हुए! यही संन्यास की पराकाष्ठा है। संसार और बाहर का सब भूल गया! भीतर, भीतर, भीतर उतरते गये! अपने केंद्र पर आये! वहां से गुजरती है राह परमात्मा की! तब संदेह में मत पड़ जाना क्योंकि ये मन में विचार, आखिरी विचार यही आता है कि कहीं यह रास्ता सही है कि गलत।
दिल से मिलती तो है एक राह कहीं से आकर,
सोचता हूं ये तेरी राहगुजर है कि नहीं।
यह मत सोचना। यह विचार करना ही मत। अब तो विचार को पूरा का पूरा ही त्याग दो। अब तो निर्विचार हो रहो। और जो भी हो, उसको स्वीकार करते जाओ। धीरे-धीरे उसी रास्ते पर उसका रथ भी आयेगा। और जब वह रथ से उतरे और तुम्हारे सामने अपनी झोली फैला दे तो कंजूसी मत करना। सब डाल देना! स्वाहा! सब डाल देना!
रवींद्रनाथ का एक गीत है। एक भिखारी सुबह-सुबह उठा। अपनी झोली को कंधे पर टांगकर भीख मांगने निकला। जैसा कि भिखारी करते हैं, उसने भी किया। थोड़े-से चावल के दाने अपनी झोली में घर से डाल लिए। देनेवालों के लिए थोड़ी हिम्मत होती है कि चलो इसको औरों ने भी दिया है। तो भिखारी थोड़े-से पैसे अपनी थाली में डालकर बैठ जाता है। तो निकलनेवाले को थोड़ा साहस रहता है कि कोई हम ही नहीं फंस रहे हैं, और लोगों ने भी दिया है। तो थोड़ी लज्जत भी आती है, तो थोड़ी लज्जा भी लगती है, थोड़ा शर्म भी, संकोच भी लगता है कि अब और दे चुके हैं तो हम कोई इतने गये-बीते तो नहीं, चलो एक पैसा दे दो! तो थोड़े-से

चावल के दाने डालकर झोली में भिखारी चला। राह पर आया, कभी सोचा भी न था। सपना भी न देखा था--राह पर आ रहा है उस महाराजा का रथ--स्वर्ण रथ, सूर्य की किरणों में चमकता हुआ! उसने सोचा, आज मेरे धन्यभाग, आज मेरे भाग्य खुल गये! आज तो झोली पसार दूंगा और मांग लूंगा। अब राजा ही सामने आ रहा है, द्वार से कभी भीतर जाने का मौका मिलता न था। द्वारपाल द्वार से ही भगा देते थे। अब आप तो रास्ते पर मिल गये।
तो वह बीच में खड़ा हो गया। रथ रुका। राजा न केवल उसे अपने पास बुलाया, खुद उतरकर नीचे आया। लेकिन राजा को पास देखकर वह घबड़ा गया। कभी राजा की सन्निधि नहीं की। याद ही न रही, अवाक ठगा रह गया। देखता रहा राजा के मुंह की तरफ। और इसके पहले कि वह अपनी झोली फैलाये, राजा ने अपनी झोली फैला दी। और उसने कहा, मना मत करना, इनकार मत करना, क्योंकि मेरे ज्योतिषियों ने कहा है कि आज मैं भीख मागूं तो राज्य बचेगा, अन्यथा राज्य पर खतरा है।
अब कठिनाई हम सोच सकते हैंः भिखारी जिसने कभी दिया नहीं, सदा मांगा! देने की कोई आदत ही नहीं। देने का कोई संस्कार ही नहीं। वह बहुत घबड़ाया, लेकिन अब इनकार भी न कर सका, क्योंकि राजा ने कहा, "इनकार मत करना, पूरे राज्य पर खतरा है। कुछ भी दे दो, उसने हाथ भीतर डाला झोली के। मुट्ठी बांधता है, खोलता है। कभी दिया तो है नहीं, देने की आदत ही नहीं। बामुश्किल एक चावल का दाना निकालकर उसने राजा की झोली में डाल दिया। रथ आया-गया हो गया, धूल उड़ती रह गयी! वह तो खड़ा रह गया। उसने कहा, "यह तो हद्द हो गयी। और गरीब कर गया! एक दाना और पास था, वह भी ले गया!"
फिर सांझ घर लौटा भीख मांगकर। उस दिन खूब भीख मिली। ऐसी कभी न मिली थी। जो देता है उसे मिलती भी है। उस दिन घर लौटा। प्रसन्न होना चाहिए था, लेकिन थोड़ा उदास था। वह एक दाना कम था। घर आकर पत्नी ने पूछा, "इतने उदास?" तो उसने कहा, "क्या करूं? हद्द हो गयी। मिलने की आशा बांधी थी, वह तो दूर, और हमसे, हाथ से ले गया! भाग्य की विडंबना, मजाक तो देखो, व्यंग्य!"
उसने झोली बड़ी उदासी से उंड़ेली। देखकर चकित हुआ, एक दाना सोने का हो गया था। जो दिया था, वह सोने का हो गया था। छाती पीट-पीटकर रोने लगा। पत्नी तो कुछ समझी नहीं। उसने कहा, "हुआ क्या है? माजरा क्या है?"
"लुट गये", उसने कहा, "लुट गये! सारे दाने दे दिये होते, तो सारे दाने सोने के हो जाते। लेकिन अवसर आया, गया!"
तो इतना ही कहता हूं, यह जो घड़ी पक रही है, इसको पकने देना। जल्दी ही हृदय के पास से उसकी राह मिलेगी। राह ही नहीं, उसका रथ भी आता है, स्वर्ण-रथ, सूर्य-किरणों में चमकता! उस वक्त मांगने का मन होगा, क्योंकि हम सदा भिखमंगे रहे हैं। मांगना मत!
और अगर वह झोली तुम्हारे सामने फैलाये, जैसी कि उसने सदा ही फैलायी है, तो दे देना! तब ऐसा मत करना कृपणता, कंजूसी कि एक दाना डाल देना; अन्यथा फिर रोओगे जन्मों-जन्मों तक! क्योंकि फिर कब दुबारा उसका रथ मिलेगा कहना मुश्किल है। सब दे डालना। झोली और तुम स्वयं भी छलांग लगा जाना, ताकि सब स्वर्णमय हो जाये।
सब स्वर्णमय हो सकता है। होना चाहिए। हम बाधा न दें तो हो जाये, अभी हो जाये। चिंता-विचार न करना।
शुभ हो रहा है! सब शांत होता जा रहा है। जल्दी ही रथ आने के करीब है। उस घड़ी की अहोभाव से प्रतीक्षा!
कठिन होगी प्रतीक्षा। दीया जलेगा, बुझेगा। जलाओगे, बुझाओगे। गुजार देना रात! घबड़ाना मत। जितनी प्रतीक्षा पीड़ादायी होगी, उतना ही मिलन आनंददायी है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
पच्चीसवां प्रवचन

दर्शन, ज्ञान, चरित्र--और मोक्ष

नाणेण जाणई भावे--ज्ञान से मनुष्य जानता है।
दंसणेण य सद्दहे--दर्शन से श्रद्धा उत्पन्न होती है।
चरित्तेण निगिण्हाइ--चरित्र से निरोध होता है, निषेध होता है।
तवेण परिसुज्झई--और तप से मनुष्य विशुद्ध होता है।
ज्ञान से हम जानते हैं। लेकिन जानना काफी नहीं है। जानना बहुत ऊपर-ऊपर है। मात्र जान लेने से श्रद्धा पैदा नहीं होती। जब तक कि स्वयं दर्शन न हो जाये, जब तक कि खुद की आंखों से हम न देख लें--तब तक श्रद्धा नहीं होती। महावीर ने देखा; हमने सुना। जो सुनकर जान लिया, उससे श्रद्धा पैदा नहीं होगी। कृष्ण ने कहा; हमने सुना। मान लिया सुनकर। उससे श्रद्धा पैदा नहीं होगी। और अगर तुमने श्रद्धा किसी भांति आरोपित कर ली तो तुम भटक जाओगे। क्योंकि झूठी श्रद्धा जीवन को रूपांतरित नहीं करती। वही लक्षण है झूठी श्रद्धा का, कि जीवन तो कहीं और जाता है, श्रद्धा कुछ और कहती है। श्रद्धा कहती है, त्याग; और जीवन धन को इकट्ठा करता चला जाता है। तो श्रद्धा झूठी है, मिथ्या है।
जब जीवन और श्रद्धा साथ-साथ चलने लगे, जब जीवन श्रद्धा के पीछे छाया
की भांति चलने लगे, तभी जानना की श्रद्धा सच्ची है।
तो महावीर कहते हैं, श्रद्धा मौलिक है। श्रद्धा से जो ज्ञान आविर्भूत हो, वही ज्ञान है। और जब श्रद्धा से ज्ञान आविर्भूत होगा तो ज्ञान से चारिष्य अपने-आप निष्पन्न होता है।
जीवन का आधार ज्ञान पर मत रखना--दृष्टि पर, दर्शन पर रखना। अधिक लोगों
ने जीवन के आधार ज्ञान पर रख लिए हैं। तर्क से, विचार से, बुद्धि से जो बात ठीक लगी है--सोचा, उसे स्वीकार कर लें। लेकिन जो तर्क से ठीक लगा है वह हृदय तक न जा सकेगा, क्योंकि तर्क की पहुंच हृदय तक नहीं। तर्क तो सिर्फ खोपड़ी की खुजलाहट है; बहुत ऊपर-ऊपर है। प्राणों को आंदोलित नहीं करता तर्क। तर्क के लिए कभी किसी ने प्राण दिये? तर्क के लिए कभी कोई शहीद हुआ? तुम जिसके लिए मर सको, वही तुम्हारी श्रद्धा है। तुम जिसके बिना जी न सको, वही तुम्हारी श्रद्धा है। तुम कहो जीयेंगे तो इसके साथ, इसके बिना तो मृत्यु हो जायेगी--वही श्रद्धा है। जो जीवन से भी बड़ी है, वही श्रद्धा है। जिसके लिए जीवन भी निछावर किया जा सकता है, वही श्रद्धा है।
तर्क के लिए तुमने कभी किसी को जीवन निछावर करते देखा? दो और दो चार होते हैं--इस सत्य का अगर कोई प्रतिपादन करता हो और तुम तलवार लेकर खड़े हो जाओ, तो क्या वह सत्य की रक्षा के लिए अपने जीवन को देना चाहेगा? मूढ़तापूर्ण मालूम पड़ेगा।
दो और दो चार होते हैं, इसके लिए मरने में कोई सार न मालूम होगा। वह कहेगा कि तुम्हारी मर्जी, दो और दो पांच कर लो कि दो और दो तीन कर लो; लेकिन दो और दो चार कोई ऐसी बात नहीं जिसके लिए मैं जीवन को गंवा दूं।
प्रेम के लिए कोई जीवन को गंवा सकता है। इसलिए श्रद्धा प्रेम की भांति है। महावीर कहते हैं, श्रद्धा पर जीवन को खड़ा करना। महावीर की श्रद्धा को समझ लेना। उनका विशेष शब्द हैः श्रद्धान। यह तुम जिसे साधारणतः श्रद्धा कहते हो उससे महावीर का कोई प्रयोजन नहीं है। लोग कहते हैं, हमारी तो ईश्वर में बड़ी श्रद्धा है। जिसे तुमने देखा नहीं, श्रद्धा होगी कैसे? श्रद्धा कान से नहीं होती, श्रद्धा आंख से होती है।
इसलिए श्रद्धान का दूसरा नाम महावीर "दर्शन" कहते हैं। श्रद्धान और दर्शन महावीर की भाषा में पर्यायवाची हैं; एक ही अर्थ रखते हैं, उनमें जरा भी फर्क नहीं है।
इसलिए तुम कहते हो, ईश्वर में हमारी श्रद्धा है। देखा? अनुभव किया? स्पर्श हुआ? जीये उसमें? तुम्हारा हृदय उसके साथ धड़का? तुम नाचे उसके साथ? कोई पहचान है? नहीं, तुम कहते हो मान्यता है। और लोग कहते हैं, बड़े

बुजुर्ग कहते हैं, सनातन से चली आयी बात, परंपरा में है। लेकिन इससे श्रद्धा पैदा न होगी। यह तुम्हारा विश्वास है, श्रद्धा नहीं।
विश्वास और श्रद्धा का भेद यही है। विश्वास उधार; श्रद्धा अपनी। श्रद्धा होती है निज की, विश्वास ऐसा है जैसे बाजार से खरीद लाए कागज या प्लास्टिक के फूल और घर को सजा लिया। श्रद्धा ऐसे है जैसे बीज बोया, वृक्ष को सम्हाला, पानी दिया, खाद दी--फिर एक दिन फूल आये और हवाएं सुगंध से भर गयीं।
श्रद्धा के फूल तुम्हारे जीवन में लगते हैं--उधार और बासे नहीं; किसी
और से नहीं; मांगे हुए नहीं।
विश्वास बड़ा सस्ता है। इतने सस्ते तुम सत्य को न पा सकोगे। सत्य जो सर्वोपरि है, उसे तुम विश्वास से न पा सकोगे। उधार कब किसने सत्य को जाना है!
उपनिषद कहते हैंः सत्यम परं, परं सत्यम्; सत्य सर्वोत्कृष्ट है और जो सर्वोत्कृष्ट है वही सत्य है। सर्वोत्कृष्ट को इतने सस्ते कैसे पा सकोगे? अपने को दांव पर लगाना होगा। इसलिए मैं कहता हूं, दुकानदार सत्य तक नहीं पहुंचते; जुआरी पहुंचते हैं। क्योंकि सत्य की पहली शर्त यह हैः अपने को गंवाओ तो मिलेगा; दांव पर लगाओ तो मिलेगा। यह बिल्कुल जुए जैसा है। मिलेगा कि नहीं, यह पक्का नहीं है। तुम तो गंवा दोगे अपने को, तब मिलेगा। गंवाने के पहले कोई सुनिश्चित नहीं कर सकता कि मिलेगा ही।
इसलिए दुकानदार, गणित, तर्क बिठानेवाले लोग विश्वास से राजी हो जाते हैं। विश्वास मरा हुआ है, लाश है।
हां, महावीर को दिखायी पड़ा होगा। जो उन्होंने कहा वह उनकी श्रद्धा थी;
जो तुमने सुना वह तुम्हारा विश्वास है।
इसलिए ख्याल रखना, अगर मैं कुछ कह रहा हूं तो वह मेरी श्रद्धा है। और तुमने अगर सुनकर मान लिया तो तुम धोखे में पड़ गये। तुम्हारे लिए वह विश्वास होगा। चूंकि मेरे लिए श्रद्धा है, इसलिए तुम्हारे लिए श्रद्धा न हो जायेगी। जैसा मैंने देखा, तुम भी देखो।
तो मैं तुम्हें श्रद्धा नहीं दे सकता; मैं तुम्हें सिर्फ कुछ इशारे
दे सकता हूं, जिनसे तुम भी आंख खोलो और देखो। जब तुम देख लोगे तभी श्रद्धा होगी। फिर तुम्हारे देखे को कोई छीन न सकेगा। क्योंकि देखते ही हृदय में विराजमान हो जाता है।
इसलिए महावीर ने श्रुतियों को, स्मृतियों को, सभी को इनकार कर दिया; वेद को इनकार कर दिया। यह शब्द विचारणीय है।
हिंदू कहते हैं, वेद उपनिषद श्रुतियां हैं। सुना ऐसा हमने; ऐसा सदपुरुषों ने कहा; ऐसा जो जागे, उनका बोध है--श्रुति! फिर हमने उसे याद रखा; सदियों सदियों तक सम्हाला धरोहर की तरह--स्मृति! सभी शास्त्र पहले श्रुति बनते, फिर स्मृति बन जाते। महावीर ने कहा, न श्रुति न स्मृति--श्रद्धा। शास्त्र को तुम्हें स्वयं ही निर्मित करना होगा। तुम्हारा शास्त्र तुम्हें जन्म देना होगा। ऐसे गोद लिए शास्त्र काम न पड़ेंगे।
फर्क देखा! एक स्त्री मां बनती है--गोद लेकर मां बन जाती है। ऐसा मां बनने का धोखा देती है। न तो गर्भ रहा, न गर्भ की पीड़ा सही, न नौ महीने के लंबे कष्ट भोगे, न वमन हुआ, न दर्द उठा, न मितली आयी, न बोझ सहा, फिर प्रसव की पीड़ा भी न सही, कि जैसे प्राण संकट में पड़े, कि बचेंगे कि न बचेंगे।... उस अज्ञात जीवन के लिए जो पेट में है अपने ज्ञात जीवन को दांव पर लगाया--उस अनजान के लिए जो अभी आया नहीं; कौन है, कैसा है, कुछ पता नहीं है; जो ज्ञात है, परिचित है, पहचाना है, उसको खतरे में डाला; अपने प्राण जोखिम में डाले। तो एक तो मां बनती है गर्भ को धारण करके। फिर होशियार लोग हैं। वे कहते हैं, "इतनी परेशानी में क्या पड़ना! बच्चे तो गोद भी लिए जा सकते हैं।" गोद ले लो। लेकिन गोद लेने में और गर्भ लेने में बड़ा फर्क है। कामचलाऊ मां पैदा हो जायेगी, लेकिन असली मां पैदा न होगी। क्योंकि असली मां तो तभी पैदा होती है जब बच्चा पैदा होता है।
जब बच्चा पैदा होता है तो दो चीजों का जन्म होता है--बच्चे का और मां का। एक तरफ बच्चा पैदा होता है, दूसरी तरफ मां पैदा होती है। अभी कल तक जो

एक साधारण स्त्री थी, अचानक मां बन जाती है! बच्चे को तुमने गोद में ले लिया तो बच्चा तो कभी पैदा नहीं हुआ; तुमसे तो पैदा नहीं हुआ। तो मां बनने का धोखा पैदा होता है।
विश्वास ऐसा ही है--गोद लिया हुआ सत्य। श्रद्धान, श्रद्धा ऐसे है-- जन्म दिया हुआ सत्य। और कोई दूसरा तुम्हारे सत्य को कैसे जन्म दे सकेगा! बड़ी पुरानी कहानी है सोलोमन के जीवन में। दो स्त्रियां सोलोमन की अदालत में आयीं। वे दोनों दावा कर रही थीं एक ही बच्चे का कि वह उसकी मां है। बड़ी कठिनाई थी। कैसे तय किया जाये? सोलोमन ने कहा, ठीक है। एक-एक को पास बुलाया और कान में कहा कि सुन, तय करना तो मुश्किल हो रहा है। कोई गवाह नहीं, कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। तो उचित यही है कि आधा-आधा बच्चा बांट देते हैं। तो जिसका बच्चा था वह तो चीख मारकर रो उठी। उसने कहा कि नहीं, ऐसा मत करना; फिर पूरा ही उसे दे दो। लेकिन जिसका बच्चा नहीं था, उसने कहा कि ठीक है, न्याययुक्त है, तर्कयुक्त है--आधा-आधा बांट दो। जो चीख उठी थी। और जिसने तर्क का सहारा न लिया था, हृदय का सहारा लिया था, उसने कहा कि नहीं-नहीं, फिर उसे ही दे दो; मेरा नहीं है, उसी का है।
सोलोमन ने उसी को बेटा दे दिया। हृदय ने गवाही दे दी, किसका है!
यह तो कहानी पुरानी हो गयी।
एक मनोवैज्ञानिक का जीवन मैं पढ़ रहा था। उसने इस कहानी के बाबत चर्चा
की है। और उसने लिखा है अगर आज अमरीका की किसी अदालत में यह मामला आये और जज तय न कर पाये, तो वह मनोवैज्ञानिक को बुलायेगा। क्योंकि अब तो अमरीका में मनोवैज्ञानिक से पूछा जाता है कि क्या करना, ये दोनों स्त्रियां दावा करती हैं, इनमें कौन झूठी है? और मनोवैज्ञानिक सोलोमन की तरकीब का उपयोग करें, तो जो स्त्री कहे, कि "लूंगी तो पूरा, नहीं तो पूरा दे दूंगी", वह थोड़ा रुग्ण चित्त की मालूम पड़ेगी। जिद्दी! हठाग्रही! एकांतवादी! समझदार आदमी तो समझौतावादी होता है। बुद्धिमान तो सभी समझौतावादी होते हैं। वे कहते हैं, जहां पूरा न मिलता हो वहां आधा ले लो। तो मनोवैज्ञानिक उस स्त्री को-- जो कहेगी कि ठीक है, मैं आधा लेने को राजी हूं--कहेगा स्वस्थ है, नार्मल है। और यह स्त्री तो आब्सैस्ड है, जो कहती है पूरा लूंगी, नहीं तो पूरा दे दूंगी, यह तो पागलपन से भरी है।
तो उस मनोवैज्ञानिक ने कहा है, अगर आज यह घटना घटे तो अमरीका की अदालत बच्चा उसको दे देगी जो आधा लेने को राजी थी, क्योंकि वह पागल नहीं है। तर्कयुक्त है उसका उत्तर, विचारपूर्ण है। यह कौन-सी समझदारी है कि अगर पूरा न मिलता हो तो आधा भी छोड़ दो। जितना मिलता हो उतना तो ले लो! मध्यमार्ग चुनो। अति पर तो मत जाओ!
जो लोग बुद्धि से चलते हैं, वे होशियारी से चलते हैं। जो श्रद्धान से चलते हैं, वे दीवाने होते हैं। इसलिए तो बुद्धि के लिए प्रेम सदा अंधा मालूम होता है। बुद्धि कहती है, थोड़ा सोचो, समझो, विचारो, हिसाब बिठाओ। महावीर कह रहे हैं कि ज्ञान से तो मनुष्य केवल जानता है। जानना यानी परिचय बाहर-बाहर। हृदय तक बिधती नहीं बात। श्रद्धा से, दर्शन से बिधती है हृदय तक--रोएं-रोएं में समा जाती है; श्वास-श्वास में प्रविष्ट हो जाती है। इसलिए तुम ज्ञान को पकड़कर मत बैठे रह जाना।... नाणेण जाणई भावे--ज्ञान से तो बस जानना मात्र होता है। "एक्वेंटेन्स"। ऐसा परिचय बन जाता है।
जैसे तुमने हिमालय के संबंध में कुछ बातें भूगोल की किताब में पढ़ी हैं--क्या यह जानना वही है जो उसके लिए प्रगट होता है, जिसने हिमालय के दर्शन किए, जिसकी आंखों ने हिमालय की शीतलता को पीया, जिसकी आंखों ने हिमालय के सौंदर्य को अपने में प्रविष्ट होने दिया, जो हिमालय की घाटियों और शिखरों पर घूमा, जिसने हिमालय का स्पर्श किया? क्या यह जानना वही है जो भूगोल की किताब से मिल जाता है? भूगोल की किताब में तो कोरे कागजों पर स्याही के काले चिह्न हैं और कुछ भी नहीं। कहां वे स्वर्ण-शिखर! कहां वे बर्फ से ढंके हुए शीतल अछूते, कुंवारे लोक!
आंखें--आंखें ही केवल सत्य को देख सकेंगी। कही-सुनी पर बहुत ध्यान मत देना। देखा-देखी बात! देखो तो ही कुछ बात हुई। लिखा-लिखी की है नहीं, देखा- देखी बात।

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
"दर्शन से ही श्रद्धा उत्पन्न होती है।"
श्रद्धा का अर्थ है, जुड़ गये तार तुम्हारे हृदय से; बात बुद्धि की न रही; बात केवल मत न रही, "ओपिनियन" न रही। अब ऐसा नहीं कि ऐसा हम सोचते हैं-- ऐसा है। श्रद्धा का अर्थ हुआः ऐसा है। ऐसा नहीं कि हम सोचते हैं; ऐसा नहीं कि और लोग कहते हैं; ऐसा नहीं कि जाननेवालों ने कहा है; ऐसा नहीं कि हमने सुना है--ऐसा है।
विवेकानंद परमात्मा की खोज में भटकते थे। अनेक गुरुओं के पास गये। पूछा, ईश्वर है? विवेकानंद की निष्ठा और विवेकानंद की जलती हुई खोज! जिससे पूछते वह घबड़ा जाता। वे बलशाली व्यक्ति थे। वे ऐसे पूछते कि अगर उत्तर ठीक न मिला तो शायद चढ़ पड़ेंगे, शायद गर्दन दबा देंगे। रामकृष्ण के पास भी गये। औरों ने ईश्वर के बाबत चर्चा की थी। उसमें कई बड़े-बड़े लोग थे। उसमें रवींद्रनाथ के दादा थे; वे महर्षि समझे जाते थे। उनके पास भी विवेकानंद पहुंच गये थे। वे एक बजरे में रहते थे नाव में। आधी रात तैरकर नाव में चढ़ गए। पूरी नाव कंप गयी। वे ध्यान कर रहे थे अंदर। दरवाजा धक्का देकर तोड़ दिया। भीतर पहुंच गये पागल की तरह। आधी रात! पानी में सरोबोर! पूछा, "क्या बात है युवक! कैसे आये?" तो विवेकानंद ने कहा, "ईश्वर है?" तो उन्होंने कहा, "बैठो मैं तुम्हें समझाऊंगा।" विवेकानंद ने कहा, "मैं समझने नहीं आया। मैं यह जानना चाहता हूं, ईश्वर है? ऐसा तुम्हें अनुभव हुआ है?"
झिझके महर्षि! विवेकानंद छलांग लगाकर नदी में कूद गये। बुलाया कि "सुनो, आये... चले?" विवेकानंद ने कहा, झिझक ने सब कह दिया। समझने मैं आया नहीं, जानने मैं आया नहीं। मैं तो यह पूछने आया हूं कि तुमने देखा है? मैं किसी ऐसे आदमी की तलाश में हूं, जिसका हाथ ईश्वर के हाथ में हो। शास्त्र तो मैं भी पढ़ लूंगा। शास्त्र ही समझना हो तो तुमसे क्या समझेंगे, खुद ही पढ़ लेंगे।
फिर रामकृष्ण के पास भी वही सवाल किया था, कि ईश्वर है? तो रामकृष्ण ने क्या उत्तर दिया? रामकृष्ण ने कहा, तुम्हें जानना है? विवेकानंद झिझके! "अभी जानना है कि थोड़ी देर रुकोगे?" विवेकानंद ने कहा, मैंने सोचा नहीं। यह तो मैंने सोचा ही न था कि कोई इस तरह पूछेगा जैसे कि पास के कमरे में है ईश्वर, दरवाजा खोला कि दिखा देंगे!
रामकृष्ण ने कहा, उस कमरे से भी पास है। तुम्हारे भीतर है! मेरे भीतर है! तुम कहो तो मैं दिखा दूं। और तुमने अभी तैयारी न की हो तो सोचकर आ जाना। और इसके पहले कि विवेकानंद कुछ कहें--रामकृष्ण तो थोड़े पागल-से आदमी थे--उन्होंने विवेकानंद की छाती पर पैर लगा दिया। विवेकानंद धड़ाम से गिर पड़े। बेहोश हो गये। घंटेभर बाद जब होश में आये तो कंप रहे थे पत्ते की तरह तूफान में! रोने लगे। क्योंकि जो दिखाया, जो प्रतीति हुई उस घड़ी में, उसने सारा, सारा जीवन बदल दिया। फिर रामकृष्ण से बहुत भागने की कोशिश की, बहुत भागने की कोशिश की, सब उपाय किए--लेकिन भाग न सके। इस आदमी ने विवेकानंद की आंखें किसी तरफ खोल दीं।
अब यह सवाल ज्ञान का न रहा। इसको महावीर श्रद्धान कहते हैं। श्रद्धा हुई। यह गैर पढ़ा-लिखा आदमी रामकृष्ण, महर्षि देवेंद्रनाथ को हरा दिया। वे बड़े ज्ञानी थे, बड़े पंडित थे, ब्रह्म-समाज के जन्मदाताओं में एक थे। लेकिन श्रुति थी, स्मृति थी--श्रद्धान न था।
महावीर कहते हैं, ज्ञान से जाना जाता है; दर्शन से श्रद्धा होती है।
और जब श्रद्धा होती है तो चरित्र का जन्म होता है। क्योंकि जिस पर श्रद्धा ही नहीं है वह तुम्हारे चरित्र में कभी न उतर सकेगा। उतार लोगे तो पाखंड होगा। ऊपर-ऊपर होगा। किसी और को दिखाने को होगा। अंतर्तम में तुम विपरीत रहोगे, भिन्न रहोगे। बाहर के दरवाजे से एक, भीतर के दरवाजे से दूसरे रहोगे। कहोगे कुछ, करोगे कुछ। वह तुम्हारे चरित्र में न आ सकेगा। चरित्र में तो कोई बात तभी आती है जब श्रद्धा की भूमि में बीज पड़ता है।
जीसस ने कहा है, किसान बीज फेंकता है। कुछ रास्ते पर पड़ जाते हैं, जहां पथरीली जगह है; कभी उगते नहीं। कुछ रास्ते के किनारे पड़ जाते हैं, जहां जमीन तो ठीक है, लेकिन लोग गुजरते हैं, पैरों में दब जाते हैं; उग भी आते

हैं तो मर जाते हैं। कुछ उस भूमि में पड़ते हैं, गीली, कोमल--जहां पैदा भी होते हैं, सुरक्षित भी रह जाते हैं।
तो जब तक कोई ज्ञान तुम्हारी श्रद्धा न बन जाये, जब तक हृदय की भूमि में कोई बीज न पड़े, जब तक तुम्हारी दृष्टि में कोई बात सत्य की तरह अनुभव में न आ जाये--तब तक चारिष्य का, चरित्र का, आचरण का कोई रूपांतरण नहीं होता। हां, तुम चेष्टा करके रूपांतरण कर सकते हो। बहुतों ने यही किया है। ज्ञान से सीधा चरित्र निर्मित किया जा सकता है--लेकिन वही चरित्र पाखंडी, हिपोक्रेट का चरित्र है। जो ज्ञान से सीधा चरित्र पर चला गया, वह अपने ऊपर एक तरह का आरोपण कर लेगा। वह सत्य बोलेगा, लेकिन झूठ से उसकी मुक्ति न होगी। झूठ भीतर-भीतर उबलेगा, सत्य ऊपर-ऊपर थोपेगा। वह अहिंसक हो जायेगा, लेकिन हिंसा भीतर दावानल की तरह जलती रहेगी। वह ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेगा, लेकिन कामवासना रोएं-रोएं में मौजूद रहेगी। उसके व्रत ऊपर-ऊपर होंगे; जैसे वस्त्र हैं ऐसे होंगे; हड्डी, मांस, मज्जा न बनेंगे।
जब ज्ञान श्रद्धा के माध्यम से गुजरकर चरित्र तक पहुंचता है, तब सम्यक चारिष्य पैदा होता है।
चरित्र से, जो व्यर्थ है उसका निरोध हो जाता है। चरित्र का इतना ही अर्थ है। महावीर के हिसाब से चरित्र का अर्थ हैः व्यर्थ का निरोध। इसे ख्याल में लेना, क्योंकि महावीर की नकारात्मक दृष्टि का बुनियादी हिस्सा है। महावीर यह नहीं कहते कि तुम्हें ब्रह्मचर्य आरोपित करना है। ब्रह्मचर्य तो आत्मा का स्वभाव है; आरोपित करना नहीं। आरोपित तो इसलिए करना पड़ता है कि श्रद्धा से कभी वासना का सत्य, वासना की व्यर्थता तुम्हें दिखायी नहीं पड़ी। सुना किसी को, ब्रह्मचर्य की बातें मधुर लगीं, तुम्हारे अनुभव से भी थोड़ी मेल खाती लगीं। जीवन के दुख से भी तुम ऊब गये हो, परेशान हो गये हो। तो लगा कि ठीक ही है, उचित ही है। ऐसा उचित मानकर तुमने ब्रह्मचर्य आरोपण करना शुरू किया। तो ब्रह्मचर्य को विधायक रूप से आरोपित करना होगा, पाजिटिव रूप से आरोपित करना होगा। तुम्हें चेष्टा करके ब्रह्मचारी बनना होगा।
महावीर का कहना यह है, अगर तुम्हें दिखायी पड़ गया कि वासना व्यर्थ है
तो ब्रह्मचर्य आरोपित नहीं करना पड़ता; वासना गिर जाती है, जो शेष रह जाता है वही ब्रह्मचर्य। इस भेद को खूब गहराई से समझ लेना।
असत्य गिरता है; सत्य तो--जो शेष रह जाता है, असत्य के गिर जाने पर जो शेष रह जाता है, तुम्हारा स्वभाव, वही सत्य है।
इसलिए महावीर कहते हैं, चरित्र से सिर्फ निरोध होता है, नकार होता है, व्यर्थ छूट जाता है। सार्थक तो है ही भीतर, व्यर्थ से जुड़ गया है। सार्थक को लाना नहीं है। आयोजन करके, निमंत्रण देकर, अभ्यास करके लाना नहीं है-- सिर्फ व्यर्थ को देख लेना है। व्यर्थ को व्यर्थ की तरह देख लेना पर्याप्त है। व्यर्थ व्यर्थ की तरह दिखा कि हाथ से छूटा, गिरा। फिर तुम उसे दुबारा न उठा सकोगे। और तुम जो उसके बिना रह जाओगे, वही सत्य है, वही स्वभाव है। वह तुम सदा से थे।
इसका अर्थ यह हुआ कि तुम ठीक तो हो ही, कुछ गलत से तुम्हारा संबंध जुड़ गया है। ठीक होना तो सदा से ही है; गलत से संबंध जुड़ गया है। गलत से संबंध छूट जाये, तुम ठीक तो थे ही। ऐसा नहीं है कि तुम गलत हो गए हो और तुम्हें ठीक होना है; ऐसा ही है कि सोने के ऊपर मिट्टी की तह बैठ गयी, धूल जम गयी, दर्पण के ऊपर धूल बैठ गयी--बस धूल को हटा देना है, पोंछ देना है; दर्पण तो दर्पण है ही। धूल के भीतर शुद्ध दर्पण मौजूद है। धूल ने दर्पण को खराब थोड़े ही किया है! धूल से दर्पण नष्ट थोड़े ही हुआ है! ढंक गया है--उघाड़ना है। इसलिए महावीर के लिए आत्मा एक आविष्कार है। सिर्फ उघाड़ना है। जैसे राख में अंगारा छिपा हो--फूंक मारी, राख गिर गयी, अंगारा रह गया। ऐसे ही दृष्टि की फूंक जब लग जाती है, राख झड़ जाती है; जो शेष रह जाता है, वही चरित्र है।
"चरित्र से निरोध होता है और तप से विशुद्धि होती है।"

तप का मैंने तुम्हें कल अर्थ कहा, वह ख्याल रखना। तप का अर्थ हैः जो दुख आयें उन्हें चुपचाप, बिना ना-नुच किये, बिना अस्वीकार किए स्वीकार कर लेना।
तप का भी अर्थ इतना ही है कि पिछले-पिछले जन्मों में, दूर की लंबी यात्रा में, हमने जो दुख के बीज बोए थे उनके फल पक गये हैं। उन्हें कौन भोगेगा? उन्हें भोगना ही होगा। तो जिसे भोगना ही है, उसे दुख से भोगना गलत है। जिसे भोगना ही है उसे सहज स्वभाव से, सरलता से, शांति से भोग लेना उचित है। क्योंकि अगर तुमने उसे दुख से भोगा तो तुमने फिर दुख के बीज बोये। तुमने प्रतिक्रिया की। तुम कहते रहे कि चाहता नहीं था, यह क्या हो रहा है? इनकार करते रहे। तो तुमने चाह की फिर प्रदर्शना की। तुम्हारी चाह भीतर बनी ही रही। तुम सुख चाहते थे और दुख मिल रहा है--तो तुम नाराज रहे, तुम क्रोधित रहे। दुख तो भोगना ही पड़ा। लेकिन ये क्रोध और नाराजगी के नये बीज बो लिये। इनका दुख फिर भोगना पड़ेगा।
महावीर कहते हैं, तुम चुपचाप, बिना कोई प्रतिक्रिया किये, दुख आये तो उसे भोग लो। जैसे दर्पण के सामने सुंदर व्यक्ति आ जाये कि कुरूप व्यक्ति आ जाये, दर्पण कोई इनकार नहीं करता, दोनों को झलका देता है। फिर दोनों चले जाते हैं, दर्पण खाली रह जाता है। तो महावीर कहते हैं, सुख आये तो पकड़ना मत, दुख आये तो धकाना मत। सुख आये तो समझना, किये हुए पुण्य-कर्मों का फल है। दुख आये तो समझना कि किये हुए पाप-कर्मों का फल है। निष्पक्ष, तटस्थ दर्पण की भांति खड़े रहनाः दोनों आये हैं, दोनों चले जायेंगे। जो आता है वह जाने को ही आता है। जो आया है वह जाने के रास्ते पर ही है। सुबह हो गयी, सांझ हो जायेगी। सांझ हो गयी, सुबह हो जायेगी। सूरज ऊगा, सूर्यास्त होने लगा। इसलिए घबड़ाना मत। तुम सिर्फ चुपचाप खड़े रहना। तुम्हारी दृष्टि कोरी रहे, दर्पण की तरह रहे--बिना किसी पक्षपात के, बिना किसी विकल्प के। कोई धारणा मत बनाना। इस अवस्था का नाम तप है।
तप से आदमी शुद्ध होता है। क्यों? क्योंकि तप से जो अतीत है, उससे छुटकारा हो जाता है। अतीत है अशुद्धि... अतीत से छुटकारा है विशुद्धि। अतीत से दबे रहना है अशुद्धि।
कचरा, कूड़ा-कर्कट न-मालूम कितने जन्मों का छाती पर रखे हम बैठे हैं! यह
है अशुद्धि। इससे छुटकारा पा जाना है शुद्धि। और जैसे ही कोई शुद्ध हुआ, वैसे ही महावीर कहते हैंः जो है, हमारा स्वरूप, स्वभाव, उसकी छवि उभरने लगती है; उसका रूप स्पष्ट होने लगता है। और एक से दूसरी चीज जुड़ी है। लेकिन शुरुआत श्रद्धा से।
दर्शन, ज्ञान, चरित्र--इनको महावीर ने मोक्ष का मार्ग कहा है। जीवन बड़ा संयुक्त हैः बीज से पौधा, पौधे से वृक्ष, वृक्ष में फलों का लग जाना, फूलों का लग जाना।
कहीं बीच से शुरू मत करना! प्रारंभ से ही प्रारंभ करना। बहुत लोग जल्दबाजी में होते हैं। वे सोचते हैं, "फूल तो बाजार में मिल जाते हैं। क्यों इतनी परेशानी उठानी? क्यों इतनी झंझट लेनी? जो सस्ते में मिल जाता है, वह सस्ते में ले लिया जाये।"
अभी पश्चिम में वैज्ञानिक कहते हैं, जल्दी ही टेस्ट-ट्यूब में बच्चे होने लगेंगे, ताकि स्त्रियों को इतनी झंझट न उठानी पड़े। यह होगा। यह बीस वर्षों के भीतर होगा। यह तुम्हारे सामने होगा। क्योंकि स्त्रियों को एक बार पता हो गया कि बच्चे टेस्ट-ट्यूब में पैदा हो सकते हैं, तो जैसे ही मां के पेट में गर्भाधारण होगा, उसके अंडे को निकालकर टेस्ट-ट्यूब में रख दिया जायेगा। फिर वैज्ञानिक उसकी फिक्र कर लेंगे अस्पताल में। यह मां को नौ महीने की उपद्रव, परेशानी, कठिनाई, पीड़ा यह सब बच जायेगी। यह सब तो बच जायेगी, लेकिन मां भी पैदा न होगी।
जरा सोचो! तुम्हारा बच्चा टेस्ट-ट्यूब में पैदा हुआ, तो वह तुम्हारा
है या किसी दूसरे का है, क्या फर्क पड़ता है? टेस्ट-ट्यूब अगर बदल गयी हो भूल-चूक से क्लर्कों की, तो तुम्हें कभी पता भी न चलेगा कि तुम्हारा है या किसी और का है! भेद ही क्या है?

फिर गणित का ऐसे विस्तार होता है। फिर वैज्ञानिक कहते हैं कि जरूरी क्यों हो कि तुम्हारे ही वीर्याणु से तुम्हारा बच्चा पैदा हो। अच्छे वीर्याणु मिल सकते हैं। यह बात सच है। आदमी जब बीज बोता है, खेती करता है, फूल लगाता है, तो अच्छे से अच्छे बीज चुनता है। तुम अपना बच्चा पैदा करना चाहते हो, अच्छे से अच्छे बीज चुनो। तुमसे बेहतर बीज मिल सकते हैं। तो जल्दी ही, आज नहीं कल जैसे फूलों की दुकानों पर बीज पैकेट में मिलते हैं, वैसे आज नहीं कल वैज्ञानिक बच्चों के वीर्याणु पैकेटों में बेचने लगेंगे। उसकी पूरी योजनाएं तैयार हैं। इतना ही नहीं, जैसे फूल के पैकेट पर फूल की तस्वीर बनी होती है कि कैसा फूल होगा जब फूल होगा, बच्चे की तस्वीर भी बनी होगी कि कैसा बच्चा होगा। तो तुम चुनाव कर सकते होः कैसी आंख चाहिए, कैसे बाल चाहिए, कैसा चेहरा चाहिए, कितनी ऊंचाई चाहिए, लड़का चाहिए, लड़की चाहिए, वैज्ञानिक, कवि--तुम क्या चाहते हो? लेकिन तब एक बात पक्की हैः सब ठीक हो जायेगा; बच्चा तुम्हारा नहीं होगा। मां बनने से, पिता बनने से, तुम वंचित रह जाओगे।
यह होनेवाला है, क्योंकि आदमी तकलीफों से बहुत डरने लगा है। तो जहां- जहां सुविधा मिले, सब स्वीकार कर लेता है। अगर सुविधा के कारण जीवन भी गंवा दे तो भी हर्ज नहीं, लेकिन सुविधा चाहिए।
तप का अर्थ हैः जीवन संघर्षों से गुजरता है, तूफान भी आते हैं, कठिनाइयां भी हैं--उनको स्वीकार करना। उनको शांत भाव से स्वीकार कर लेना, तो तुम्हारे जीवन में धीरे-धीरे शुद्धि निखरेगी। आत्मा प्रगाढ़ होगी। तुम केंद्रित बनोगे, आत्मवान बनोगे। और एक से दूसरी चीज जुड़ी है। श्रद्धा से शुरू करना। हृदय से शुरू करना। क्योंकि वहीं तुम्हारे प्राणों का प्राण छिपा है। वही तुम्हारा मंदिर है। और फिर ज्ञान अपने-आप चला आता है।
आया ही था ख्याल कि आंखें छलक पड़ीं
आंसू किसी की याद से कितने करीब थे।
आया ही था ख्याल की आंखें छलक पड़ीं! ख्याल ही उठता है, याद ही आती है कि आंखों में आंसू भर जाते हैं।
आंसू किसी की याद से कितने करीब थे! जैसे याद के करीब आंसू हैं और हृदय में किसी की याद उठी तो आंखें डबडबा आती हैं--ऐसा ही, जहां दर्शन घटा, वहां ज्ञान घटता है। बहुत करीब है ज्ञान दर्शन के। और जहां ज्ञान घटा, वहां चारिष्य घटना शुरू हो जाता है। अगर एक ही बात सध जाये--दर्शन--तो सब सध जाता है।
महावीर ने तीन की बातें कहीं, ताकि तुम्हें पूरा विश्लेषण साफ हो जाये; अन्यथा दर्शन कहने से भी काम चल जाता। जब तुम्हें दिखायी पड़ जाता है कि दरवाजा कहां है, तो फिर तुम दीवाल से नहीं निकलते। और जब तुम्हें दिखायी पड़ जाता है कि आग हाथ को जला देती है, अनुभव में आ जाता है, तो फिर तुम हाथ आग में नहीं डालते। आग की तो बात दूर, आग की तस्वीर भी रखी हो तो तुम जरा बचकर चलते हो।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन पहली दफा समुद्र की यात्रा पर गया। इसके पहले कभी समुद्र की यात्रा न की थी, जहाज में बैठा न था। बस के अलावा और किसी वाहन में बैठा ही न था। जहाज में थोड़ी देर बैठा। उठा, कैप्टन के कमरे में जाकर बोला, "पेट्रोल-वेट्रोल तो भर लिया है?" तो उसने कहा, "सब भर लिया है, तुम फिक्र न करो। बैठो अपनी जगह पर!" थोड़ी देर बैठा रहा, फिर उठकर पहुंचा, और कहा, "सुनो जी! इंजिन-विंजिन तो ठीक है?" कैप्टन थोड़ा झल्लाया। उसने कहा कि सब ठीक है, आप अपनी जगह पर बैठिये! लेकिन वह फिर थोड़ी देर बाद आया। उसे देखकर ही वह कैप्टन थोड़ा परेशान होने लगा। उसने कहा कि "फिर आ गए! अब क्या मामला है?" तो मुल्ला ने कहा, "और सब तो ठीक-ठाक है? और कोई गड़बड़ तो नहीं है?" उस कैप्टन ने कहा कि इससे तुम्हें मतलब क्या है? मुल्ला ने कहा, "मतलब? फिर बीच में मत कहना, जब रुक जाये कि उतरकर धक्के लगाओ!"
बस में बैठने के आदी! आदमी दूध से जल जाये तो छाछ भी फूंक-फूंककर पीने लगता है। तुम्हें दिखायी पड़े, आग जलाती है, अनुभव में आ जाये... ।
तो तुमने ख्याल किया है! अगर कहीं थियेटर में बैठे हो और लोग इतना ही चिल्ला दें, "आग!" कि भगदड़ मच जाती है। किसी को आग दिखायी नहीं पड़ रही है,

किसी ने हो सकता है मजाक ही की हो; लेकिन लोग इतना ही चिल्ला दें, "आग!" कि भगदड़ मच जाती है। फिर तुम लाख समझाओ कि रुको, कोई सुननेवाला नहीं है। आग शब्द भी घबड़ा देता है। जीवंत अनुभव का इतना परिणाम है!
तो अगर वासना जला दे तो वासना की तो बात दूर, वासना शब्द भी तुम हाथ में न ले सकोगे। अगर कामवासना ने तुम्हारे जीवन को दग्ध किया और घाव बना दिये तो कामवासना की तो दूर, कामवासना की जहां चर्चा भी होती है वहां तुम न बैठ सकोगे। कोई अर्थ न रहा। व्यर्थ के लिए कौन बैठता है! और व्यर्थ की ही बात नहीं, जले जीवन के दुखद अनुभव हुए, घाव बने--कौन घावों को मांगने जाता है!
लेकिन तुम सुनते हो ब्रह्मचर्य की चर्चा, लोभ पैदा होता है। वासना की
आग अभी दिखाई नहीं पड़ी और ब्रह्मचर्य की चर्चा से लोभ जगने लगता है--इससे अड़चन खड़ी होती है। इससे जीवन में एक भ्रांति आती है।
महावीर कहते हैं, शुरू करना दर्शन से। दर्शन, ज्ञान, चरित्र--यह सम्यक सरणि है। और जीवन को अगर ठीक से पहचानना हो तो जीवन को प्रतिपल जागकर देखते रहना। उसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। जो भी है--अगर क्रोध हो रहा है तो क्रोध को जागकर देखना--वही दर्शन बनेगा। करुणा का शास्त्र मत पढ़ना, क्रोध को गौर से देखनाः उसी से करुणा किसी दिन पैदा होगी।
मैं हकीकत-आश्ना हूं हस्तिए-मोहूम का
देखता हूं गौर से फूलों को मुरझाने के बाद।
ऐसे गौर से देखने से कुछ लाभ न होगा। जब फूल मुर्झा गए, फिर देखने से कुछ सार नहीं।
बुढ़ापे में लोग कामवासना के संबंध में विचार शुरू करते हैं। जब फूल मुर्झा गए, जब जीवन में ऊर्जा खो गयी, जब थक गये, जब जीवन जवाब देने लगा, जब जिंदगी खुद ही उन्हें छोड़ने लगी और रद्दी के ढेर पर फेंकने लगी--तब वे त्यागने की बात सोचते हैं।
इसलिए महावीर ने एक बहुत अनूठा सूत्र भारत को दिया--और वह थाः जब तुम जवान हो, जब जीवन की ऊर्जा भरी-पूरी है, तभी अगर तुम जीवन के दुख को देख लो और उससे छूट जाओ, भरी जवानी में त्याग का फल लग जाये, तो बड़ा शुभ है। क्योंकि तब ऊर्जा है। तो जिस ऊर्जा से तुम संसार की तरफ जाते थे, वही ऊर्जा तुम्हें मोक्ष की तरफ ले जाने का साधन बन जायेगी। ऊर्जा तो वही है। लेकिन जब ऊर्जा जा चुकी, थक गये, हाथ-पैर कमजोर पड़ गये, उठते नहीं बनता, बैठते नहीं बनता--तब तुम त्याग का सोचने लगे! यह त्याग न हुआ, यह तो अपने को धोखा देना हुआ। जिंदगी खुद ही तुम्हें त्यागे दे रही है। अब तुम्हारे त्याग का कोई अर्थ नहीं है। यह तो ऐसे ही हुआ कि जब दांत टूट गये तब तुमने बहुत-सी चीजें खाने का त्याग कर दिया। अब तुम उन्हें खा ही नहीं सकते।
ध्यान रखना, जो बीत रहा है अभी, आज, यहां, उसके प्रति जागना! दर्शन की क्षमता को वहां सजग करना। जैसे-जैसे दर्शन जागता जायेगा--क्रोध में, काम में, लोभ में, मोह में--वैसे-वैसे तुम पाओगे मोह, काम, क्रोध, लोभ गिरने लगे, और एक नयी ऊर्जा का भीतर आविर्भाव हुआ। क्योंकि जो ऊर्जा क्रोध में लगी है वही मुक्त होकर करुणा बन जाती है। दर्शन के माध्यम से क्रोध करुणा बन जाता है। और काम की यात्रा राम की यात्रा बन जाती है।
"सम्यक दर्शन के बिना ज्ञान नहीं।"
नांदसणिस्स नाणं।
"ज्ञान के बिना चारिष्य नहीं।"
नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।
"चरित्रगुण के बिना मोक्ष नहीं।"
अगुणिस्स नत्यि मोक्खो
"और मोक्ष के बिना आनंद कहां, निर्वाण कहां।"
नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं।
बड़े सीधे-सरल, लेकिन बड़े वैज्ञानिक सूत्र हैं!
"दर्शन के बिना ज्ञान नहीं।"
इसलिए और कैसा भी ज्ञान तुमने इकट्ठा किया हो, उसे ज्ञान मत समझना। और कितना ही ज्ञान तुम्हारे पास हो, उसे तुम अज्ञान का आभूषण ही समझना; उससे

अज्ञान ही सज गया है, संवर गया है, ज्ञान पैदा नहीं हुआ। उससे अज्ञान ढंक गया है, ज्ञान पैदा नहीं हुआ।
"ज्ञान के बिना चरित्र नहीं।"
दर्शन, ज्ञान, चरित्र। और ज्ञान की परीक्षा यही है कि वह तुम्हारे आचरण में उतर आये।
मैंने सुना है, प्रसिद्ध शहीद चंद्रशेखर आजाद को तीन ही गालियां आती थीं। और जब वह बहुत क्रोध में भी आ जाते तो उन्हीं तीन गालियों को बार-बार दोहराने लगते। गधा, नालायक, उल्लू के पट्ठे--बस तीन ही गालियां आती थीं। किसी मित्र ने कहा कि अगर तुम्हें गालियां देने में ऐसा रस आता है और क्रोध के वक्त गालियां कम पड़ जाती हैं तो और क्यों नहीं सीख लेते? कोई गालियों की कमी है? ... कि गधा, नालायक, उल्लू के पट्ठे; फिर गधा, नालायक, उल्लू के पट्ठे--बार-बार वही दोहराने लगते हो, अच्छा भी नहीं मालूम होता! जैसे टूटा हुआ रिकार्ड दोहराने लगता है।
तो चंद्रशेखर आजाद ने कहा, "चौथी गाली की जरूरत नहीं है।" कोट के खीसे
से पिस्तौल निकाली और कहा, "गाली, फिर गोली। तीन गाली काफी हैं। फिर इसके बाद गोली।" कहा कि मैं इस सूत्र को मानकर चलता हूं कि विचार आचरण में लाने चाहिए। तो गाली तो केवल विचार है, गोली आचरण है।
मगर मजा यह है कि अगर गाली है तो गोली अपने-आप आ जायेगी। गाली कब तक देते रहोगे? अगर क्रोध है तो हिंसा पैदा होगी। उससे बच न सकोगे। क्योंकि जिसको हम विचार में सम्हालते हैं, वह आज नहीं कल आचरण में झलक जाता है। क्योंकि आचरण कुछ भी नहीं है--निरंतर विचार, पर्त-पर्त विचार का ही जम जाना है। विचार ही तो वस्तुएं बन जाते हैं। जो तुमने सोचा है, कल वही तुम्हारा आचरण बन जायेगा। जो तुम्हारा आज विचार है वह कल आचरण होगा। और जो आज तुम्हारा आचरण है वह कल तुम्हारा विचार था।
विचार और आचरण एक ही यात्रा के हिस्से हैं। विचार पहला कदम है; आचरण अंतिम। अगर कोई विचार आचरण न बनता हो तो इस बात का एक ही अर्थ होता है कि वह विचार तुम्हारा नहीं है। इसलिए कैसे आचरण बने?
चिकित्सकों से पूछो! अगर तुम्हारे शरीर में खून की कमी हो जाये तो हर किसी का खून तुम्हारे काम न पड़ेगा। तुम्हारा ही टाइप चाहिए। मतलब हुआ कि तुम्हारा खून ही तुम्हारा शरीर स्वीकार करता है; और किसी तरह का खून स्वीकार नहीं करता। अगर तुम्हारे चेहरे पर प्लास्टिक सर्जन कुछ आपरेशन करे और चमड़ी बदलनी हो तो तुम्हारे ही पैर या जांघ की चमड़ी निकालकर लगानी पड़ती है। क्योंकि दूसरी किसी की चमड़ी तुम्हारा शरीर स्वीकार नहीं करता। जो शरीर के संबंध में सही है वह आत्मा के संबंध में और भी ज्यादा सही है। तुम्हारा ही हो अनुभव तो ही तुम्हारी आत्मा स्वीकार करती है, अन्यथा नहीं स्वीकार करती। तुम्हारे ही प्राणों में पगा हो तो ही तुम्हारी आत्मा उसे अपने भीतर लेती है, अन्यथा बाहर फेंक देती है। जैसे हर किसी के खून को तुम्हारे भीतर नहीं डाला जा सकता और जैसे हर किसी की चमड़ी तुम्हारे पैर पर या तुम्हारे चेहरे पर नहीं चिपकायी जा सकती--शरीर तो बाहर है, आत्मा तो बहुत गहरे है, तुम्हारा आखिरी, आत्यंतिक अस्तित्व है। वहां तो केवल तुम ही तुम हो। तुम्हारा ही जो है, वही वहां पाएगा जगह; शेष सब अस्वीकृत हो जाता है।
इसलिए महावीर कहते हैं, सम्यक दर्शन के बिना ज्ञान नहीं। ज्ञान के बिना चारिष्य नहीं। चारिष्य के बिना मोक्ष नहीं।
और जो अभी चरित्र में शुद्ध नहीं हुआ, उसकी मुक्ति कहां! क्योंकि मोक्ष तो जो गलत है उससे छूट जाने का नाम है, बंधन के टूट जाने का नाम है। और मोक्ष के बिना निर्वाण कहां, आनंद कहां?
तो तुम अगर दुखी हो तो आकस्मिक नहीं। तुम दुखी रहोगे ही, क्योंकि आनंद
तक जाने की तुम यात्रा नहीं कर रहे हो। और अगर कभी तुम उत्सुक भी होते हो तो तुम जल्दबाजी में हो, अधैर्य है बहुत। तो तुम सोचते हो, दो-चार कदम एक साथ उठ जायें कि दो-चार सीढ़ियां एक साथ छलांग लग जायें, कि जल्दी कुछ हो जाये। कुछ हैं जो ज्ञान से शुरू करते हैं। कुछ, जो और भी ज्यादा जल्दबाजी में हैं, वे चरित्र से शुरू कर देते हैं। जब भी तुम्हें ख्याल उठता है, तुम

सोचने लगते हो चरित्र को कैसे बदलें! तुम आखिरी बात पहले लाना चाहते हो? तुम भ्रांति में पड़ रहे हो। तुम सिर के बल खड़े हो जाओगे।
इसलिए मैं कहता हूं, जैन मुनि सौ में निन्यानबे सिर के बल खड़े हैं। उन्होंने चरित्र से शुरुआत कर दी। और महावीर के बड़े सीधे-साफ सूत्र हैं। इनको समझने के लिए कोई बहुत बुद्धिमत्ता नहीं चाहिए। इनमें उलझाव कुछ भी नहीं है। महावीर की उलझाने की आदत नहीं है; चीजों को बिल्कुल साफ-साफ रख देने की आदत है। अब इससे ज्यादा साफ सूत्र क्या होगाः "दर्शन के बिना ज्ञान नहीं! ज्ञान के बिना चरित्र नहीं। चरित्र के बिना मोक्ष नहीं।" लेकिन जैन मुनि क्या कर रहा है? वह चरित्र को साध रहा है। वह कहता है,
जब चरित्र शुद्ध होगा तो ज्ञान शुद्ध होगा। जब ज्ञान शुद्ध होगा तो दर्शन शुद्ध होगा। उसने सारी प्रक्रिया उलटी कर ली है। वह सिर के बल खड़ा हो गया है। इसलिए न तो दर्शन उत्पन्न होता, न ज्ञान उत्पन्न होता, न चरित्र उत्पन्न होता। सब बासा है। सब उधार है। सब मुर्दा और लाश की भांति है। कोई उत्सव नहीं है सत्य का। कोई परमात्मा की जीवंत अनुभूति नहीं है। "क्रिया-विहीन ज्ञान व्यर्थ है।" हयं नाणं कियाहीणं। "और अज्ञानियों
की क्रिया भी व्यर्थ है।"
ये सूत्र बड़े बहुमूल्य हैं!
"हया अण्णाणओ किया।"
"क्रियाविहीन ज्ञान व्यर्थ है।" अगर ऐसा कोई ज्ञान तुम्हारे पास है
जो जीवन में आचरित नहीं हो रहा है, अपने-आप जीवन में उतर नहीं रहा है तो व्यर्थ है, गलत है। और अगर तुम अज्ञानी हो और क्रिया में लग गये हो, चरित्र बनाने में लग गये हो, तो वह भी व्यर्थ है।
क्रियाहीन ज्ञान तो व्यर्थ है; क्योंकि जानते तुम हो, लेकिन जीवन में काम में नहीं लाते हो। यह तो ऐसे ही है कि भोजन रखा है और तुम भूखे बैठे हो। यह भोजन व्यर्थ है। हो या न हो, बराबर है। यह सर्दी पड़ रही है, कंबल सामने रखे बैठे हो, ओढ़ते नहीं हो--कि धूप निकली है, तुम सर्दी में कंप रहे हो, जाकर धूप में नहीं बैठ जाते हो कि थोड़ा धूप का आनंद ले लो और शरीर को गरमा लो। यह ज्ञान तो व्यर्थ है जो आचरण में न उतर आये। इस भोजन का क्या करोगे?
जीसस के जीवन में उल्लेख है कि जीसस ने चमत्कार किया और पत्थरों को रोटी बना दिया। एक ईसाई मेरे पास आया था। वह कहने लगा, आप इसमें मानते हैं या नहीं? मैंने कहा, मैं मानता हूं क्योंकि इससे भी बड़ा चमत्कार दूसरे लोग कर रहे हैं। उन्होंने रोटियों को पत्थर बना दिया है! तो यह कोई बड़ी बात नहीं कि ईसा ने अगर पत्थर को रोटी बना दिया; यह तो मैं रोज देख रहा हूं कि करोड़ों-करोड़ों लोगों ने रोटी को पत्थर बना दिया है। चमत्कार तो वही है। ज्ञान रखा है, किसी काम नहीं आता! तुमने ज्ञान का कभी उपयोग किया है? तुम कर ही नहीं सकते उपयोग, क्योंकि वह दर्शन से पैदा नहीं हुआ है। वह तुम्हारा है ही नहीं। भीतर गहरे मन में तुम जानते ही हो कि वह ठीक नहीं है। ऊपर-ऊपर से कहे जाते हो, ठीक है। लोकोपचार, समाज, परंपरा!
तुम्हारा ज्ञान एक शिष्टाचार मात्र है। लेकिन भीतर तुम्हें उस पर भरोसा नहीं है। जिस पर भरोसा नहीं उसे तुम कैसे जीवन में उतारोगे? जिस भोजन पर तुम्हें भरोसा नहीं है, उसे तुम कैसे करोगे? उसे तुम कैसे पचाओगे? उसे तुम क्यों चबाओगे? ऊपर से तुम कहते हो, भोजन है; भीतर तो तुम्हें दिखायी पड़ता है पत्थर, मिट्टी है। इसलिए ज्ञान पड़ा रह जाता है। "क्रियाविहीन ज्ञान व्यर्थ है और अज्ञानियों की क्रिया भी व्यर्थ है।" और अगर अज्ञानी चरित्रवान होने की कोशिश में लग जाये तो वह भी व्यर्थ है; क्योंकि वह कितना ही आरोपित कर ले चरित्र, वह कभी उसके प्राणों का स्पंदन नहीं बनेगा। वह उसके जीवन का गीत न होगा। वह बस ऊपर-ऊपर होगा। जरा खरोंच दो--और असली मवाद बाहर निकल आएगा।
तो तुम तथाकथित चरित्रवानों को खरोंचना मत, अन्यथा चमड़ी से भी कम गहरा उनका चरित्र है। बिना खरोंचा रहे तो सब ठीक चल जाता है। जरा-सी खरोंच--और कठिनाई हो जाती है। इसलिए तो तुम्हारे चरित्रवान जीवन को छोड़कर भाग जाते हैं, क्योंकि जीवन में लगती हैं खरोंचें।

रवींद्रनाथ से किसी ने पूछा, "आपने शांतिनिकेतन बोलपुर में क्यों बनाया?" तो उन्होंने कहा, "क्या ढोलपुर में बनाऊं? यहां कम से कम बोल तो सकते हैं। बोलपुर!" और मैं तुमसे कहता हूं, जब तक तुम ढोलपुर में न बोल सको, तक तक तुम्हारे बोलपुर में बोलने का कोई मतलब नहीं है। शांति तो वहां घनीभूत होनी चाहिए जहां चारों तरफ अशांति है। ढोलपुर!
बीच बाजार में अगर तुम मुक्त न हो सको तो तुम्हारी मुक्ति दो कौड़ी की है। अगर हिमालय की चोटियों पर बैठकर तुम मुक्त हो जाओ तो उस मुक्ति का कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि उतरते ही पहाड़ से नीचे तुम पाओगे, वह मुक्ति पहाड़ पर ही छूट गयी। बाजार में खरोंचें लगेंगी।
तुम अपने मुनियों को थोड़ा बाजार में लाओ! वहां पता चल जायेगा, क्योंकि वहां चारों तरफ धक्कम-धुक्की है।
मैंने सुना है, एक संन्यासी तीस वर्ष तक हिमालय में रहा। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। लोग उसकी पहाड़ी गुफा तक आने लगे, उसके चरण छूने। आखिर कुंभ का मेला भरा था, तो लोगों ने कहा, "महाराज! अब तो नीचे उतरो।" तो उसको भी अब तो भरोसा आ गया था। तीस साल! एक दफा क्रोध नहीं हुआ। एक दफा नाराज नहीं हुआ। एक दफा कोई विकृति नहीं उठी। उसने कहा, आता हूं। वह आया। अब कुंभ का मेला! वहां कौन किसकी फिक्र करता है! धक्कम-धुक्की! वह नीचे उतरा तो धक्कम-धुक्की होने लगी। एक आदमी का पैर उसके पैर पर पड़ गया। वह भूल ही गया तीस साल का हिमालय का वास, शांति, ध्यान! झपटकर उसकी गर्दन पकड़ ली और कहा, "तूने समझा क्या है? किसके ऊपर पैर रख रहा है? होश से चल!" लेकिन तभी उसे ख्याल आया, अरे! तीस साल मिट्टी हो गये!
पर हिमालय में तुम बैठे थे, एकांत में, न किसी का पैर पैर पर पड़ता था, न मौके थे, न अवसर थे। खरोंच जरा-सी लग जाये, मुश्किल में पड़ जाओगे।
साधु अगर सम्यक चरित्र को उपलब्ध हो तो भगोड़ा नहीं होगा। भगोड़े होने
की कोई जरूरत नहीं है। उसके होने में साधुता होगी। उसने कुछ छोड़ा नहीं है; जो गलत था वह छूट गया है। और उसने कुछ थोपा नहीं है; जो ठीक था वह प्रगट हुआ है। उसका चरित्र उसकी आंतरिक आत्मा का ही प्रतिबिंब होगा। उसके जीवन में तुम विरोध न पाओगे। उसके भीतर कोई दोहरी पर्तें नहीं हैं। उसके व्यक्तित्व में तुम डबल-माइंड न पाओगे। ऐसा नहीं है कि वह कुछ भीतर है और कुछ होने की चेष्टा कर रहा है। वह जो भीतर है, वैसा ही बाहर प्रगट हो रहा है। इसलिए महावीर नग्न खड़े हुए।
नग्न खड़े होना बड़ा प्रतीकात्मक है, कि जैसा मैं भीतर हूं वैसा बाहर। कपड़े भी क्यों पहनूं? मैं वैसा क्यों दिखलाऊं जैसा कि मैं नहीं हूं? तुमने देखा! कपड़े के पीछे सिर्फ शरीर को ढांकने की ही आकांक्षा थोड़े
ही है। अगर सिर्फ शरीर को ढांकने की आकांक्षा हो तो ठीक। कपड़े के पीछे शरीर को वैसा दिखाने की आकांक्षा है जैसा वह नहीं है। तो महावीर का नग्न खड़े हो जाना कपड़ों का विरोध नहीं है; लेकिन तुम्हारी गहरी आकांक्षा का विरोध है।
देखा स्त्रियां या पुरुष! पुरुष कोट बनवाते हैं तो कंधों पर रुई भरवा लेते हैं, क्योंकि छाती उभरी हुई दिखायी पड़े। रुई सही; मगर कौन देख रहा है भीतर आकर! बाहर से चलते तो छाती उभरी दिखायी पड़ती है।
स्त्रियां स्तनों को हजार तरह से उभारकर दिखलाने की कोशिश में लगी रहती हैं। न मालूम कितने तरह के इंतजाम कर रखे हैं। जैसा नहीं है वैसा दिखाने की चेष्टा चल रही है।
महावीर नग्न खड़े हुए--सिर्फ इस अर्थ में। यह प्रतीकात्मक है कि जैसा हूं, ठीक हूं। अब इसको अन्यथा दिखाने की क्या जरूरत; अन्यथा दिखाने से अन्यथा हो तो न जाऊंगा। किसको धोखा देना है और क्या सार है?
दर्शन हो तो ज्ञान होता, ज्ञान हो तो एक चरित्र आना शुरू होता। लेकिन
वह चरित्र बड़ा नैसर्गिक होता। उसमें आरोपण, चेष्टा, श्रम जरा भी नहीं होता। एक नैसर्गिक दशा होती है।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर मैं मेहमान था। सुबह-सुबह उसकी पत्नी से किसी बात पर झंझट हो गयी। तो मुझे देखकर उसने थोड़ा ज्यादा रौब बांधना चाहा

पत्नी पर। और उसने कहा कि देखो, मौलवी के सामने, समाज के सामने तुमने कसम नहीं खायी थी कि सदा मेरी आज्ञा का पालन करोगी?
मैं मौजूद था तो उसने सोचा कि शायद पत्नी थोड़ी झुकेगी और झंझट ज्यादा
न करेगी।
लेकिन पत्नी ने कहा, "हां, खायी थी, मुझे याद है। लेकिन वह सिर्फ इसीलिए खायी थी कि मैं उस वक्त पहली-पहली मुलाकात में तमाशा खड़ा नहीं करना चाहती थी।"
अब ऐसी कसम का क्या अर्थ, जो इसीलिए खायी गई हो कि पहली मुलाकात में क्या तमाशा खड़ा करें? और भीड़ लगी है, मौलवी है, समाज है, विवाह हो रहा है, गठबंधन डाला जा रहा है--अब इसमें कहां तमाशा खड़ा करो बीच में--इसलिए! जिंदगी में तुम्हारी कसमें, तुम्हारे व्रत, तुम्हारे चरित्र, अगर किसी कारण से हैं तो ऊपर-ऊपर होंगे।
पत्नी बहुत नाराज हो गयी--यह मौलवी की और विवाह की बात उठते देखकर। और उसने कहा कि मेरे मन में कई दफे ऐसा लगता है कि तुम बार-बार सोचते होओगे कि मैं अगर किसी और को ब्याही गई होती तो अच्छा था।
मुल्ला ने कहा, "नहीं, कभी नहीं! मैं किसी का भला... किसी का बुरा क्यों चाहने लगा! हां, यह भावना जरूर मन में कभी-कभी उठती है कि तुम अगर जनम भर कुंवारी रहती तो बड़ा अच्छा होता।"
हम छिपाये जाते हैं। जहां प्रेम नहीं है, वहां प्रेम दिखलाए जाते हैं। जहां सदभाव नहीं है, वहां सदभाव दिखलाए चले जाते हैं। और जैसे हम नहीं हैं वैसा हम अपने चारों तरफ रूप खड़ा करते रहते हैं। धीरे-धीरे दूसरे तो धोखे में आते ही हैं, हम भी धोखे में आ जाते हैं। अपने ही प्रचारित असत्य अपने को ही सत्य मालूम होने लगते हैं। तब एक बड़ी दुविधा पैदा होती है। उसी दुविधा में लोग फंसे हैं।
महावीर कहते हैं, क्रियाविहीन ज्ञान व्यर्थ, अज्ञानियों की क्रिया व्यर्थ। तो न तो आचरण करना जबर्दस्ती। क्योंकि जो तुम्हारे ज्ञान में न उतरा हो वह तुम्हें पाखंडित करेगा, तुम्हें पाखंडी बनाएगा। और अगर कोई तुम्हारे ज्ञान में उतरा हो तो उसकी परीक्षा यही है कि वह आचरण में उतरे। इससे तुम गलत अर्थ मत लेना, जैसा कि आमतौर से जैन अनुयायी लेते हैं। वे सोचते हैं कि जो ज्ञान में आ गया, अब इसको आचरण में उतारना है। नहीं, यह तो सिर्फ परीक्षा, कसौटी है। महावीर यह कह रहे हैं कि जो ज्ञान में आ गया है, वह आचरण में आना ही चाहिए। अगर ज्ञान में आ गया है तो आचरण में आने से बच नहीं सकता। लेकिन एक शर्त है कि ज्ञान में दर्शन के माध्यम से आया हो। अगर दर्शन के माध्यम से न आया हो तो ज्ञान की तरह पड़ा रहेगा--तुमसे दूर, संबंध न जुड़ेगा; तुम्हारे हृदय और तुम्हारे ज्ञान में कोई सेतु न होगा।
"जैसे पंगु व्यक्ति वन में लगी आग को देखते हुए भी भागने में असमर्थ होने से जल मरता है... और अंधा व्यक्ति दौड़ते हुए भी देखने में असमर्थ होने से जल मरता है।"
जंगल में आग लगी हो और एक अंधा आदमी हो जंगल में, वह दा.ैड सकता है; लेकिन उसे दिखायी नहीं पड़ता कि आग कहां है, लपटें कहां हैं। वह दौड़कर भी जल मरता है। और एक लंगड़ा हो, उसे दिखायी पड़ता है कि आग कहां लगी है, कहां से भागूं, कहा से निकलूं; लेकिन पैर नहीं हैं, तो भी जल मरता है।
जिस व्यक्ति के पास ज्ञान तो है, लेकिन आचरण नहीं, वह जल मरेगा। वह लंगड़ा है। जिस व्यक्ति के पास आचरण तो है, लेकिन बोध नहीं, वह भी जल मरेगा। उसके पास पैर तो थे, लेकिन आंख नहीं है।
"कहा जाता है कि ज्ञान और क्रिया के संयोग से ही फल की प्राप्ति होती है; जैसे कि वन में पंगु और अंधे के मिलने पर पारस्परिक संप्रयोग से वन से निकलकर दोनों नगर में प्रविष्ट हो जाते हैं। एक पहिए से रथ नहीं चलता।" पासंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो य अंधओ।
अंधा भी मर जाता है। पैर थे, बच सकता था। पंगु भी मर जाता है। आंखें थीं, बच सकता था।
लेकिन दोनों का मिलन चाहिए।
संजो असिद्धीइ फलं वयंति, न हु एग चक्केण रहो पयाइ।

अंधो य पंगु य वणे समिच्चा, ते संपडत्ता नगरं पविट्ठा।।
अगर दोनों साथ हो जाएं, अगर अंधा और लंगड़ा एक समझौते पर आ जायें, एक मैत्री कर लें, एक संबंध बना लें--संबंध कि लंगड़ा कहे कि मुझे तुम अपने कंधों पर बिठा लो, ताकि मैं तुम्हारी आंख का काम करने लगूं; संबंध कि अंधा कहे, तुम मेरे कंधों पर बैठ जाओ, ताकि मैं तुम्हारे पैर बन जाऊं। अंधा और लंगड़ा उस वन में जहां आग लगी है, बचकर निकल सकते हैं अगर एक व्यक्ति हो जायें, अगर दो न रहें। अगर लंगड़ा अंधे के कंधे पर बैठ जाये, अंधे के लिए देखे और अंधा लंगड़े के लिए चले, दोनों जुड़ जायें, यह संयोग अगर बैठ जाये, तो बचकर निकल सकते हैं, तो सोने में सुगंध आ जाये।
महावीर कहते हैं, एक पहिये से रथ नहीं चलता। और ऐसी ही व्यक्ति के जीवन की दशा है। जीवन में तो आग लगी है। यह जीवन का वन तो जल रहा है। इससे निकलने का उपाय? अकेला जिनके पास चरित्र है और जिनके पास बोध नहीं, वे भी न निकल सकेंगे। और जिनके पास ज्ञान है लेकिन चरित्र नहीं, वे भी न निकल सकेंगे। तुम्हारे भीतर एक रसायन घटे, एक अल्केमिकल परिवर्तन हो, एक कीमिया से तुम गुजर जाओ कि तुम्हारा ज्ञान दर्शन बने, तुम्हारी आंख बन जाये और तुम्हारा ज्ञान तुम्हारा चरित्र बन जाये। दो तरफ ज्ञान में घटनाएं घटें, एक तरफ ज्ञान दर्शन बने और दूसरी तरफ ज्ञान चरित्र बने, तो पक्षी के दोनों पंख उपलब्ध हो गए। अब तुम उड़ सकते हो इस विराट के आकाश में। है अंधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?
कल्पना के हाथ से
कमनीय जो मंदिर बना था
भावना के हाथ से जिसमें
वितानों को तना था,
स्वप्न ने अपने करों से
था जिसे रुचि से संवारा
स्वर्ग के दुष्प्राप्य रंगों से, रसों से जो सना था
ढह गया वह तो जुटाकर
ईंट, पत्थर, कंकड़ों को
एक अपनी शांति की
कुटिया बनाना कब मना है?
है अंधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?
जिस दिन तुम दर्शन को उपलब्ध होओगे, उस दिन तुम्हारा पुराना भवन-- सपनों का, स्वर्ग के रंगों का, इंद्रधनुषों का गिरेगा--धूल में गिरेगा। खंडहर भी न बचेंगे! क्योंकि सपने के कहीं कोई खंडहर बचते हैं! बस तिरोहित हो जायेगा, जैसे कभी न था। हाथ में राख भी न रह जायेगी।
दर्शन को उपलब्ध होते ही, जीवन को गौर से देखते ही एक बात साफ हो जाती
है कि जीवन है, तुम हो--और बीच में तुमने जो सपने बनाए थे वे झूठे थे। वे तुम्हारी मूर्च्छा से उठे थे। वे तुम्हारी बंद आंखों से उठे थे। जैसे सुबह एक आदमी जागता है, आंख खोलता है--सारे सपने तिरोहित हो गए!
दर्शन का अर्थ है, ऐसे ही तुम जीवन के प्रति आंख खोलो, जागो और देखो! तो कितने-कितने तुमने सजाए हैं, संवारे हैं स्वप्न, कितने रंग भरे हैं! वे सब अचानक तिरोहित हो जायेंगे! कितने ही रंगीन हों, सपने सपने हैं। उनके तिरोहित हो जाने से घबड़ा मत जाना। ईंट-पत्थर से भी छोटी-सी कुटिया बनायी जा सकती है। सत्य से भी शांति की छोटी-सी कुटिया बनायी जा सकती है। झूठे सपनों के बड़े महलों से कुछ सार नहीं; उनमें कोई कभी रहा नहीं। लोगों ने सिर्फ सोचा है कि रहेंगे। वह सिर्फ बातचीत है। वह बातचीत कितनी ही सुंदर मालूम पड़े, वह सिर्फ लफ्फाजी है।
मैंने सुना है, मिर्जा गालिब के पास कोई आदमी रुपये उधार मांगने आया। उन्होंने बड़ी मीठी बातें कहीं। कवि थे। जो आदमी रुपये उधार मांगने आया था, उसने भी कविता में ही बात की। कहा--

काका! बड़े बे-वक्त आ गए
व्यर्थ ही रास्ता नापा
और आपको देखके मेरा मन कांपा और आपने समय ठीक नहीं भांपा मेरे शेर मारने गये हैं डाका अभी तो चल रहा है फाका
लौटकर आने दो मेरे काका
आपका बन जायेगा खाका
अभी हाका करो, वर्ना
बीबी बना देगी आपका साका
और मैं करूंगा ताका
मेरे आका! अभी न करना इधर नाका
नहीं तो बीबी न छोड़ेगी एक बाल बांका।
इतनी लंबी कविता कही! लेकिन लेना-देना कुछ भी नहीं है। वह आदमी कविता
से ही घबड़ाकर भाग गया होगा। फिर दुबारा न आया होगा।
तुम्हारे शब्द कितने ही रंगीन हों, और कितने ही काव्य के रंग तुमने भरे हों, और कितनी ही तुकबंदी बांधी हो, कितने ही शब्दों का सौंदर्य बिठाया हो--लेकिन भुलावे हैं! और जितने जल्दी जाग जाओ उतना अच्छा है। दर्शन का क्या अर्थ? दर्शन का इतना ही अर्थ हैः आंखें सपनों से खाली
हो जायें।
और दर्शन मूल भित्ति है। अगर दर्शन को न समझ पाए तो पूरे महावीर बेबूझ
रह जायेंगे। दर्शन का अर्थ हैः आंख स्वप्न से खाली हो; आंख में कोई सपना न हो, कोई चाह न हो, कोई तृष्णा न हो। आंख उसको देखने को राजी हो जो है; आंख उसकी मांग न करे जो होना चाहिए।
फिर से दोहरा दूं। जब भी तुम कहते हो ऐसा होना चाहिए, तभी तुम उसे देखने में असमर्थ हो जाते हो--जो है। तब तुम उसे देखने लगते हो किसी गहरे तल पर--जो नहीं है और होना चाहिए। तब तुमने सपना बनाना शुरू कर दिया। तुमने यथार्थ को न देखा। तुमने आदर्श को मांगा। तुमने वह न देखा जो मौजूद था। तुम उसकी चाह करने लगे जो होना चाहिए। तुम आशा को बीच में ले आए। तुम कल्पना बीच में ले आए। फिर कल्पना ने ताने-बाने बुने। फिर सब चीजें गलत हो गयीं। फिर कल्पना के माध्यम से तुम जो देखते हो वह सत्य नहीं है। ऐसा तुम चाहते थे।
तुमने देखा, जब दो व्यक्ति एक-दूसरे के प्रेम में पड़ जाते हैं तो एक-दूसरे में ऐसी चीजें देखने लगते हैं जो हैं ही नहीं। स्त्री पुरुष में ऐसा देखने लगती है कि ऐसा महावीर कभी हुआ ही नहीं। पुरुष स्त्री में देखने लगता है जगत का सारा सौंदर्य! ऐसी बातें करने लगते हैं कि जिसका हिसाब नहीं। चांद-तारों को देखने लगते हैं--एक-दूसरे के चेहरों में, आंखों में। अनंत फूलों की गंध एक-दूसरे के पसीने से आने लगती है। ये सपने हैं! ऐसा वे चाहते हैं। फिर अगर सुहागरात पूरी होते-होते ये सब सपने टूट जाते हैं तो आश्चर्य नहीं। आश्चर्य तो यह था कि तुम इतनी देर भी कैसे देख सके!
फिर प्रेमी सोचते हैं कि दूसरे ने मुझे धोखा दिया। कोई किसी को धोखा नहीं दे रहा--तुम ही धोखा खा रहे हो। फिर प्रेमी सोचता है, यह प्रेयसी तो गलत साबित हुई। यह तो मैंने जो फूल की गंध देखी थी वह निकली न। यह क्या मुझे धोखा दे गई! यह तो बड़ी कर्कशा निकली। और मैंने तो सारे संगीत, सारा साज इसके कंठ में सुना था! मैंने तो कोयल को कूकते सुना था। मैंने तो कोकिला जानी थी। और यह तो घर आते-आते स्वर कर्कश हो गया। तो क्या इसने मुझे धोखा दिया था? क्या उस क्षण इसने बनावट की थी? वह जो माधुर्य इससे मैंने पाया था, तो वह सब प्रवंचना थी? तो वह जाल था? वह मुझे फंसाने के लिए था? और प्रेयसी भी यही सोचने लगती है कि इस आदमी में जो भगवत्ता देखी थी वह कहां गई! इसके चरणों में सिर रखने का मन हुआ था--तो वे चरण सब बनावटी थे! वह सब पाखंड था?
जल्दी ही कांटे उभर आते हैं, फूल विदा हो जाते हैं। जल्दी ही यथार्थ प्रगट होता है और सपने हट जाते हैं।

और ऐसा प्रेमी और प्रेयसी के बीच होता है, ऐसा नहीं--ऐसा हमारे हर संबंध में होता है। ऐसे जीवन के हर मोड़ पर हम उन चीजों को देख लेते हैं जो हैं नहीं। हम उन इंद्रधनुषों को तान लेते हैं जो कहीं भी नहीं हैं। और फिर जब इंद्रधनुष नहीं पाते हैं तो रोते हैं, चीखते हैं, विषाद से भरते हैं, दुखी होते हैं, चिंतित होते हैं।
दर्शन का अर्थ हैः जो है उसे बिना किसी आशा से समिश्रित किए, बिना किसी कल्पना में डुबाये, बिना कैसा होना चाहिए उसको बीच में लाये, देख लेने की कला!
आंख साफ हो तो तुम कभी उलझोगे न। आंख साफ हो तो यथार्थ से संबंध रहेगा; अयथार्थ तुम्हें बांधेगा न। और आंख साफ हो, तो साफ आंख से जो बोध संगृहीत होता है उसका नाम ज्ञान। साफ आंख से संगृहीत बोध का अंतिम जो परिणाम होता है, उसका नाम चारिष्य। और चारिष्य का जो आत्यंतिक फल है वह मोक्ष।
है अंधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?
रात अंधेरी है। यथार्थ कठोर है। लेकिन दीये के जलाने की कोई मनाही नहीं है।
है अंधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?
--आंख के दीये को जलाओ! दर्शन को जगाओ!
कल्पना के हाथ से कमनीय
जो मंदिर बना था
भावना के हाथ ने जिसमें
वितानों को तना था
स्वप्न ने अपने करों से
था जिसे रुचि से संवारा
स्वर्ग के दुष्प्राप्य रंगों से,
रसों से जो सना था
ढह गया वह तो जुटाकर
ईंट, पत्थर, कंकड़ों को
एक अपनी शांति की
कुटिया बनाना कब मना है?
शुद्ध दर्शन से जो दिखायी पड़ता है, यथार्थ, उस यथार्थ से ही अपनी जीवन
की कुटिया को बना लेने का नाम चारिष्य है।
स्वप्न से जीवन को बनाना और सत्य से जीवन को बनाना--बस यही जीवन को बनाने के दो ढंग हैं।
ढह गया वह तो जुटाकर
ईंट, पत्थर, कंकड़ों को
एक अपनी शांति की
कुटिया बनाना कब मना है?
है अंधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?
लेकिन यह किसी बाहर के दीये के जलाने की बात नहीं है--भीतर के दीये को जलाने की बात है। और यह दीया जलने लगता है जैसे-जैसे तुम आंख को साफ करके देखने लगते हो। तो क्या करो?
महावीर का शब्द है--सामायिक। पतंजलि का शब्द है--ध्यान। बुद्ध का शब्द है--सम्यक स्मृति। जीवन को जागरण से भरो! जो भी करते हो, करते समय स्मरण रखो कि सपनों को हटाते चलो। पुरानी आदतें हैं, वे बार-बार बीच में आ जायेंगी। उनको हटाते चलो।
तेरी दुआ है कि हो तेरी आरजू पूरी
मेरी दुआ है कि तेरी आरजू बदल जाए।
तुम तो चाहते हो कि तुम्हारी आकांक्षाएं पूरी हो जायें, लेकिन महावीर, बुद्ध, कृष्ण चाहते हैं तुम्हारी आकांक्षाएं बदल जायें।
आकांक्षाएं पूरी करना चाहोगे तो सपनों में रहोगे। आकांक्षा बदल जाए,

आकांक्षा न हो जाए, शून्य हो जाए--तो आकांक्षा के नीचे से जो शक्ति बचेगी, जो आकांक्षा में नियोजित थी, मुक्त होगी, वह तुम्हारे जीवन में विस्फोट हो जायेगा; जैसे अणु को हम तोड़ते हैं, तो छोटे-से अणु में जो आंख से भी दिखायी नहीं पड़ता, इतनी ऊर्जा प्रगट होती है! अणु के जो परमाणु हैं वह एक-दूसरे को बांधे हुए हैं। जब उन्हें हम अलग करते हैं तो जो शक्ति उनको बांधे थी, वह मुक्त होती है। उस मुक्त शक्ति का परिणाम हिरोशिमा में देखा, नागासाकी में देखाः एक लाख आदमी क्षणभर में राख हो गए। एक छोटे-से परमाणु को जिसको अब तक किसी ने देखा नहीं है, इतने क्षुद्र के भीतर इतनी ऊर्जा छिपी है! तो आत्मा के भीतर कितनी ऊर्जा न छिपी होगी! जरा आत्मा के बंधन को हटाना जरूरी है। जैसे अणु के बंधन को हटाया तो इतनी विराट ऊर्जा प्रगट हुई--आत्मा के बंधन हट जायें तो जो परम ऊर्जा प्रगट होती है उसी का नाम महावीर ने परमात्मा कहा है। वह आत्म-विस्फोट है।
बंधन हटाने हैं। बंधन आकांक्षाओं के, आशाओं के हैं। बंधन मूर्च्छा के हैं। तो मूर्च्छा को तोड़ने में लग जाओ।
सारे विचार का महावीर का एक संक्षिप्त भाव हैः मूर्च्छा को तोड़ने में
लग जाओ। जो भी करो अपने को जगाकर करो। राह पर चलो तो जागकर चलो। भोजन करो तो जागकर करो। किसी का हाथ हाथ में लो तो जागकर लो। और सदा ध्यान रखो कि बीच में सपना न आए। थोड़े दिन सपनों को ऐसे छांटते रहे, हटाते रहे, हटाते रहे तो जल्दी ही तुम पाओगे कभी-कभी क्षणभर को सपने नहीं होते और झलक मिलती है। वही झलक ज्ञान बनेगी। फिर उन झलकों को इकट्ठी करते जाना। वह अपने आप इकट्ठी होती चली जाती हैं। ज्ञान एक दफा हो तो कोई भूल नहीं सकता। वह तो हमें, दूसरों की बातें हैं, इसलिए याद रखनी पड़ती हैं। जो अपने में घटता है उसे विस्मरण करने का उपाय नहीं है। वह तो संगृहीत होता चला जाता है, सघन होता चला जाता है। और जैसे बूंद-बूंद गिरकर सागर बन जाता है, ऐसे बूंद-बूंद ज्ञान की गिरकर आचरण निर्मित होता है।
नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई।।
"ज्ञान से जानना होता है; दर्शन से श्रद्धा, श्रद्धा से चरित्र, चरित्र से शुद्धि... "
नादंसणिस्स नाणं--दर्शन के बिना ज्ञान नहीं।
नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा--ज्ञान के बिना चरित्र नहीं।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो--चरित्र के बिना मोक्ष कहां?
नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं--और मोक्ष के बिना आनंद कहां?
उस परमानंद को चाहते हो तो दर्शन के बीज बोओ। दर्शन के बीज बोओ--ज्ञान
की फसल काटोगे। उस ज्ञान की फसल को पचाओगे, पुष्ट होओगे, तो चारिष्य उत्पन्न होगा।
और मोक्ष चारिष्य की प्रभा है। चरित्रवान मुक्त है। चरित्रहीन बंधा है। चरित्रवान की जंजीरें गिर गयीं।
लेकिन अभी तो तुमने जो चरित्रवान देखे हैं, तुम उनको पाओगे कि उन्होंने नयी जंजीरें बना ली हैं। तो तुम्हारे चरित्रहीन भी बंधे हैं, तुम्हारे चरित्रवान भी बंधे हैं। और अकसर तो बड़ा व्यंग्य और बड़ी उलटी बात दिखायी पड़ती हैः चरित्रहीनों से ज्यादा बंधे तुम्हारे चरित्रवान हैं। चरित्रहीनों से भी बंधे! चरित्रहीन में भी थोड़ी-बहुत स्वतंत्रता मालूम पड़ती है। चरित्रवान तो बैठा है मंदिर में, स्थानक में, पूजागृह में बंद! ऐसा घबड़ाया, डरा! लेकिन कहीं चूक हो गयी है। चरित्र की प्रभा मोक्ष है। जो मुक्त न कर जाये, वह चरित्र नहीं।
तुम दर्शन से शुरू करनाः किसी दिन मोक्ष की प्रभा उपलब्ध होती है। निश्चित होती है। यह जीवन का ठीक गणित है।
और महावीर जो भी कह रहे हैं, वह वैज्ञानिक संगति का सत्य है। उसमें एक-
एक कदम वैज्ञानिक है। जैसे सौ डिग्री पानी गरम करो, भाप बन जाता है--ऐसे महावीर के वचन हैंः दर्शन से ज्ञान, ज्ञान से चरित्र, चरित्र से मोक्ष!
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
छब्बीसवां प्रवचन

तुम्हारी संपदा--तुम हो

पहला प्रश्नः न मालूम खोपड़ी में कहां से कहां चला गया! चाहता था योग
से शक्ति, यहां समझने को मिली शांति। चाहता था धर्म से प्रभुता, यहां समझने को मिली शून्यता। कुछ निर्णय नहीं कर पाता हूं। मन विक्षिप्त हुआ जाता है। यह यात्रा न मालूम कहां जाकर रुकेगी। पुराना विश्वास बिखर चुका है, नये का जन्म नहीं हो रहा। अब न पीछे जा सकता हूं और न आगे ही बढ़ पाता हूं। कृपया मार्गदर्शन दें!

धर्म की खोज में निकलनेवाले लोग अकसर किसी और चीज की खोज में निकलते हैं--उस खोज को धर्म का नाम दे देते हैं।
शक्ति की खोज धर्म की खोज नहीं है। शक्ति की खोज तो अहंकार की ही खोज है। शक्तिशाली होने की आकांक्षा धर्म-विरोधी है।
लेकिन अधिक लोग धर्म की यात्रा पर किन्हीं गलत कारणों से निकलते हैं;
जो संसार में नहीं मिल सका, उसी को खोजने परमात्मा में जाते हैं।
जो संसार में नहीं मिल सका, उसे खोजने परमात्मा में मत जाना। क्योंकि
जो संसार में ही नहीं है, वह परमात्मा में तो हो ही नहीं सकता। जिसे तुम संसार में न पा सके, उसे तो समझ लेना कि पाने का कोई उपाय ही नहीं है। लेकिन स्वाभाविक है। संसार में हम जीये हैं अब तक जन्मों-जन्मों तक। वही एक भाषा परिचित है--पद की, धन की, प्रभुता की, शक्ति की। संसार असफल हुआ तो सोचते हैं चलो, उन्हीं आकांक्षाओं को प्रभु के मार्ग पर सफल कर लेंगे! तो फिर तुम्हें असफलता हाथ लगेगी। और भी गहन असफलता हाथ लगेगी! जैसे संसार के मार्ग पर लगी, उससे भी ज्यादा! तुम उजड़े-उजड़े हो जाओगे! लेकिन कारण धर्म का पथ नहीं है; कारण तुम्हारी गलत आकांक्षा है।
जब कोई चाहता है शक्ति मिल जाये, तो किसके खिलाफ चाहता है? क्योंकि शक्ति तो सदा किसी के खिलाफ होती है। शक्ति का अर्थ ही हिंसा है।
शक्ति हम चाहते ही इसीलिए हैं कि किसी दूसरे से बलशाली हो जायें, कि किसी दूसरे की छाती पर बैठ जायें, कि किसी दूसरे को दबा लें, कि किसी दूसरे को छोटा कर दें। शक्ति का अर्थ ही महत्वाकांक्षा है। वह अहंकार का ज्वर है।
धर्म तो शांति की खोज है। शांति का अर्थ हैः शक्ति की खोज व्यर्थ है,
इस बात का बोध; और शक्ति की खोज से मैं सदा बीमार रहूंगा, स्वस्थ न हो पाऊंगा।
शांति की खोज बिल्कुल विपरीत है। शांति की खोज का अर्थ हैः मैं इस "मैं" को भी गिराता हूं, जिसमें शक्ति की आकांक्षा पैदा होती है; मैं इस बीज को दग्ध करता हूं। इसने मुझे तड़फाया, जन्मों-जन्मों तक भटकाया। बुद्ध ने, जब उन्हें परम ज्ञान हुआ तो आकाश की तरफ आंखें उठाकर कहा, "हे गृहकारक! हे तृष्णा के गृहकारक! अब तुझे मेरे लिए और कोई घर न बनाना पड़ेगा। बहुत तूने घर बनाए मेरे लिए, लेकिन अब मैं आखिरी जाल से मुक्त हो गया हूं। अब और मेरे लिए जन्म न होंगे।"
जहां महत्वाकांक्षा न रही, तृष्णा न रही, वहां और जन्म न रहे। जहां महत्वाकांक्षा न रही, वहां भविष्य न रहा, समय न रहा; वहां हम शाश्वत में प्रवेश करते हैं।
शाश्वत में प्रवेश होने से जो अनुभव होता है उसी का नाम शांति है। समय में दौड़ने से जो अनुभव होता है उसी का नाम अशांति है। आज से कल, कल से परसों! जहां हम होते हैं वहां कभी नहीं होतेः अशांति का यही अर्थ है। जो हम होते हैं उससे हम कभी राजी नहीं होते--कुछ और होना चाहिए! हमारी मांग का पात्र कभी भरता नहीं। हमारा भिक्षापात्र खाली का खाली रहता हैः कुछ और! कुछ और! कुछ और!

तृप्ति तो असंभव है, क्योंकि जो भी मिलेगा उससे ज्यादा मिलने की कल्पना तो हम कर ही सकते हैं। जो भी मिल जायेगा उससे ज्यादा भी हो सकता है, इसकी वासना तो हम जगा ही सकते हैं।
क्या तुम सोचते हो ऐसी कोई घड़ी हो सकती है वासना के जगत में, जहां तुम ज्यादा की कल्पना न कर सको? ऐसी तो कोई घड़ी नहीं हो सकती। सारा संसार मिल जाए तो भी मन कहेगाः और चांद-तारे पड़े हैं!
कहते हैं, सिकंदर जब डायोजनीज को मिला तो डायोजनीज ने एक बड़ा मजाक किया। उसने कहा, "सिकंदर! यह भी तो सोच कि अगर तू सारी दुनिया जीत लेगा तो बड़ी मुश्किल में पड़ जायेगा।" सिकंदर ने कहा, "क्यों?" तो डायोजनीज ने कहा, "फिर इसके बाद दूसरी कोई दुनिया नहीं है।" और कहते हैं, यह सोचकर ही सिकंदर उदास हो गया। उसने कहा, "मैंने इस पर कभी विचार नहीं किया। लेकिन तुम ठीक कहते हो। सारी दुनिया जीतकर फिर मैं क्या करूंगा! फिर तो वासना अधर में लटकी रह जायेगी। फिर तो अतृप्ति अधर में लटकी रह जायेगी। फिर तो छाती पर अतृप्ति का पत्थर सदा के लिए रखा रह जायेगा। क्योंकि और तो कुछ पाने को नहीं है, लेकिन पाने की आकांक्षा थोड़े ही समाप्त होती है।"
तुम कुछ भी पा लो, कितनी ही शक्ति, कितनी ही प्रभुता, कितनी ही प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा--ज्यादा की कल्पना सदा संभव है। तुम तृप्त न हो पाओगे। तुम्हारी तिजोड़ी कितनी ही बड़ी हो, और भी बड़ी हो सकती है; उसमें कुछ जोड़ा जा सकता है। तुम्हारा सौंदर्य कितना ही हो, उसमें कुछ जोड़ा जा सकता है। और जब तक जोड़ा जा सकता है तब तक तुम अतृप्त रहोगे। यह दौड़ तो कभी पूरी न होगी!
इसलिए बुद्ध ने कहा है, तृष्णा दुष्पूर है। इसे कोई कभी भर नहीं पाया। नहीं कि संसार में भरने के साधन नहीं हैं; पर तृष्णा का स्वभाव दुष्पूर है। इस तृष्णा को जब हम थका-थका पाते हैं संसार में और भर नहीं पाते तो हम प्रभु की ओर मुड़ते हैं। प्रभु की ओर मुड़ना तो ठीक, लेकिन मुड़ने का कारण गलत होता है।
प्रभु की ओर मुड़कर धीरे-धीरे तुम्हें समझ में पड़ेगा कि तुम्हारी आंखों में तो पुरानी वासना ही भरी है। तुम परमात्मा से भी वही मांग रहे हो जो तुमने संसार से मांगा था। तो तुम मुड़े तो जरूर, शरीर तो मुड़ गया, एक सौ अस्सी डिग्री मुड़ गया--लेकिन आत्मा नहीं मुड़ी।
यही अड़चन प्रश्नकर्ता को मालूम हो रही हैः "न मालूम कहां से कहां चला गया! चाहता था शक्ति, यहां समझने को मिली शांति... ।" इससे उलझन पैदा हो रही है। इससे उलझन सुलझनी चाहिए।
समझ को थोड़ा जगाओ! साफ-सुथरा करो! अगर शक्ति मिल जायेगी तो क्या करोगे? और शक्ति पाने में नियोजित करोगे। लोग धन कमाते हैं, क्या करते हैं? और धन कमाने में लगाते हैं। और कमाकर क्या करेंगे? और कमाने में लगाते हैं। भोगोगे कब? जो मिलता है, उसे और आगे के लिये लगा देना पड़ता है। ऐसे जिंदगी हाथ से निकल जाती है। एक दिन मौत सामने खड़ी हो जाती है, जिसके आगे फिर कुछ भी नहीं है। तब तुम चौंकते हो, लेकिन तब बड़ी देर हो चुकी!
मेरे पास आने का एक ही उपयोग हो सकता है कि जो मौत करेगी वह मैं तुम्हारे लिए अभी करूं। इसलिए तुम घबड़ाओगे। इसलिए तुम भागोगे, बचोगे, तुम उपाय करोगे। जानता हूं, तुम कुछ और खोजने आए हो। लेकिन तुम जो खोजने आए हो वह मैं तुम्हें नहीं दे सकता। वह देना तो तुम्हारी दुश्मनी होगी। मैं तो तुम्हें वही दे सकता हूं जो देना चाहिए। मैं तुम्हें शांति की दिशा में ही अग्रसर करूंगा।
इसलिए एक महत्वपूर्ण बात समझ लेनी जरूरी हैः शिष्य और गुरु के बीच जो संबंध है वह बड़ा बेबूझ है! शिष्य कुछ और ही मांगता है; गुरु कुछ और ही देता है। शिष्य जो मांगता है, अगर गुरु दे दे तो वह गुरु गुरु नहीं; वह दुश्मन है। गुरु जो देना चाहता है, उसे लेने को शिष्य राजी हो जाए तो ही शिष्य है। तुम अपनी मांग लेकर मेरे पास मत रहना। अन्यथा तुम्हारी मांग मेरे और तुम्हारे बीच दीवाल की तरह खड़ी रहेगी। जब मेरे पास ही हो तो यही कह दो कि अब तुम ही यह भी तय करो कि क्या ठीक है। इसका नाम ही समर्पण है।

समर्पण का यह अर्थ नहीं है कि तुम कुछ मांगने आये हो; समर्पण करने से मिलेगा, इसलिए समर्पण करते हो। नहीं, समर्पण का अर्थ हैः तुम अपनी मांग, तुम अपना मन सब समर्पण करते हो।
तुम कहते हो, "अब मेरी कोई मांग नहीं; अब मेरा कोई मन नहीं; अब जो मर्जी हो! अब जो उस पूर्ण की मर्जी हो, वह होने दो! अब मैं यह न कहूंगा कि मेरी मर्जी पूरी हो।"
मेरी मर्जी पूरी हो, यही अधार्मिक आदमी का लक्षण है।
गुरजिएफ कहता था, तथाकथित धार्मिक लोग अकसर तो धर्म-विरोधी हैं। उसने
तो यहां तक कहा कि जिनको तुम धर्म कहते हो वह सभी ईश्वर-विरोधी हैं। क्योंकि उनके पीछे वही आकांक्षाएं हैं; अपनी मर्जी पूरी करने के इरादे हैं।
तुम ईश्वर को भी संचालित करना चाहते हो--अपनी मर्जी से! तुम उसे अपने पीछे चलाना चाहते हो। और ईश्वर केवल उन्हीं के साथ चल पाता है जो उसके पीछे चलने को राजी हैं।
सत्य को अपने पीछे खड़ा करने के लिए तो बहुत से लोग उत्सुक हैं। सत्य
के पीछे खड़ा होने को जो उत्सुक होता है वही शिष्य है। उसने ही सीखना शुरू किया।
तो अब आ ही गए हो तो तुम जो कुछ सीखकर आये हो जिंदगी से, वह तुम्हारे काम नहीं पड़ेगा। जिंदगी में ही काम न पड़ा। जो नाव नदी-नाले में काम न आयी उसको लेकर तुम सागर में उतर रहे हो? जो नाव नदी-नालों में डुबाने लगी थी, उसको लेकर तुम सागर में उतरने का आयोजन कर रहे हो? फिर डूबो, तो परेशान मत होना!
निश्चित ही डूबोगे, क्योंकि सागर के विराट का तुम्हें बोध नहीं। सागर में शक्ति की नाव मत चलाना; वह कागज की नाव है। वह अहंकार की नाव है; बुरी तरफ डूबोगे! कूल-किनारा न मिलेगा। बहुत तड़फोगे, परेशान होओगे! वहां तो शांति की नाव चलाना। क्योंकि शक्ति की सीमा होती है। शांति की कोई सीमा नहीं। शक्ति को छीना जा सकता है, शांति को छीना नहीं जा सकता है।
ख्याल किया तुमने! बड़े से बड़े शक्तिशाली की शक्ति छिन सकती है--छीनी
जा सकती है।
नेपोलियन हार गया अंत में तो उसे सेंट हेलेना के एक छोटे-से द्वीप में कारागृह में डाल दिया गया। सम्राट था। सारे जगत को जीतने चला था। आखिरी नतीजा यह हुआ कि कारागृह में पड़ा। द्वीप पर उसे चलने-फिरने की स्वतंत्रता थी। छोटा-सा द्वीप था। वह पूरा द्वीप ही कारागृह था। इसलिए कहीं भागने का तो कोई उपाय न था। पहले ही दिन वह सुबह-सुबह घूमने निकला। एक पगडंडी से गुजर रहा है। एक स्त्री घास का गट्ठर लिए सिर पर आती है। तो नेपोलियन का जो चिकित्सक है--उसे एक चिकित्सक दिया गया था क्योंकि वह बीमार था, परेशान था, उसकी रक्षा के लिए--वह चिकित्सक चिल्लाकर कहता है उस घसियारिन से कि "हट, तुझे पता है कौन आ रहा है! रास्ता छोड़!" लेकिन नेपोलियन स्वयं रास्ता छोड़कर किनारे खड़ा हो गया और उसने कहा कि तुम भूल करते हो। वे दिन गये जब नेपोलियन के लिए पहाड़ हट जाते थे। अब तो घसियारिन भी न हटेगी। अब तो मुझे ही हट जाना उचित है। घसियारिन कम से कम स्वतंत्र तो है, मैं कैदी हूं! मेरी कोई हैसियत नहीं उसके सामने।
नेपोलियन की शक्ति छिन जाती है! सम्राट दीन और दरिद्र हो जाते हैं। जो छिन जाती है, जिस पर दूसरों का कब्जा हो सकता है, जो परतंत्र है--उसका क्या मूल्य? वह नाव बड़ी छोटी है।
तुमने ख्याल कियाः शक्ति के लिए दूसरों की जरूरत है! अगर नेपोलियन को जंगल में अकेला छोड़ दो, उसके पास कोई शक्ति नहीं है। प्रधानमंत्रियों को, राष्ट्रपतियों को जंगल में अकेला छोड़ दो, उनके पास कोई शक्ति नहीं है। शक्ति के लिए भीड़ चाहिए। शक्ति के लिए वे लोग चाहिए जिन पर शक्ति आरोपित की जा सके। लेकिन शांति तो अकेले में भी तुम्हारी है; अकेले में और भी ज्यादा तुम्हारी है। उसे तुमसे कोई छीन नहीं सकता, क्योंकि वह किसी पर निर्भर नहीं है। ठेठ हिमालय के एकांत में भी शांति तुम्हारी होगी; तुम्हारे साथ जाएगी।

जो एकांत में भी तुम्हरे साथ हो, वही तुम्हारी संपदा है। और जो दूसरों
पर निर्भर होती हो, उसे तुम एकांत में न ले जा सको, तो मृत्यु के पार कैसे ले जा सकोगे? वहां तो तुम अकेले जाओगे। न मित्र होंगे, न संगी-साथी, न पति- पत्नी, न बेटे-बेटियां, कोई भी न होगा। मौत में तो तुम अकेले प्रवेश करोगे। सब छूट जायेगा जो दूसरों पर निर्भर था। जो दूसरों ने दिया था वह दूसरे वापिस ले लेंगे। तुम कोरे के कोरे रह जाओगे। बुरी तरह डूबेगी यह नाव! इसलिए मैं शक्ति की कोई शिक्षण, शक्ति का कोई स्वरूप, शक्ति की कोई रूप-रेखा तुम्हें नहीं देता हूं। शांति! वही पाने योग्य है। जो खोया न जा सके, बस वही पाने योग्य है।
पर तुम्हें अड़चन हुई है, यह भी मैं समझता हूं। तुम अगर शक्ति ही खोजने आये थे... जैसा लोग आते हैं। लोग तो सत्पुरुषों के पास भी चमत्कार के लिए ही जाते हैं। लोग तो वहां भी शक्ति का ही कोई तमाशा देखना चाहते हैं। लोगों की आंखें बाजार से इतनी भर गयी हैं कि जब वे मंदिर में भी आते हैं तो बाजार को अपने साथ ले आते हैं।
नहीं, यहां तो उन लोगों के लिए ही सुविधा है जो बाजार से सब भांति जागकर आये हैं। कम से कम इतनी जाग तो लेकर आये हैं कि यह शक्ति की दौड़ व्यर्थ है। अब चलो, दूसरी यात्रा पर निकलें! शांति की यात्रा!
संसार की पूरी यात्रा शक्ति की यात्रा है--बहाने कुछ भी हों। कोई धन इकट्ठा करता है। उससे भी पूछो, धन क्यों इकट्ठा करता है? धन से शक्ति आती है। एक-एक रुपये में भरी है शक्ति। कोई ज्ञान इकट्ठा करता है। उससे पूछो, क्यों? तो ज्ञान से शक्ति आती है। कोई राज-पदों पर पहुंचने के लिए आतुर है, उससे शक्ति आती है। संसार में हम वही करते हैं जिससे शक्ति आती है।
तो अगर संक्षिप्त में कहें, तो संसार है शक्ति की दौड़। बहाने अलग-अलग होंगे। फिर शक्ति की दौड़ से जो जागने लगा, जिसने उसकी व्यर्थता देखी, वही धर्म की यात्रा पर निकलता है। यह यात्रा अंतर्यात्रा है और यहां शांत होते जाना है।
शक्ति की दौड़ का एक ही परिणाम होता है--अशांति। अब तुमसे मैं एक बड़ी विरोधाभासी बात कहना चाहता हूंः शक्ति की दौड़ का एक ही परिणाम होता है-- अशांति; और शांति की दौड़ का एक ही परिणाम है--शक्ति। लेकिन वह तुम्हारी कामना के कारण नहीं। शांत व्यक्ति शक्तिशाली हो जाता है। पर यह शक्ति बड़ी और है! यह शक्ति उद्विग्नता नहीं है--स्वभाव है। यह नैसर्गिक जीवन का हिस्सा है। यह किसी से ली नहीं गयी, किसी से छीनी नहीं गई, किसी को दी नहीं जा सकती। जब तुम अपने घर लौट आते हो और परम शांति में लीन होते हो, तो अचानक तुम पाते हो शक्ति का आविर्भाव हुआ है! लेकिन यह शक्ति तुम्हारी नहीं है। क्योंकि तुम तो अशांति के साथ ही चले गये। यह शक्ति परमात्मा की है।
तुम मुझे ऐसा कहने दोः परमात्मा के अतिरिक्त और कोई शक्तिशाली नहीं है। और परमात्मा के अतिरिक्त और कोई शक्तिशाली हो भी नहीं सकता। वस्तुतः परमात्मा के अतिरिक्त किसी को स्वयं को "मैं" कहने का अधिकार नहीं है। यह तो कामचलाऊ है। हम उपयोग करते हैं "मैं"; लेकिन "मैं" तो वही कह सकता है जो शाश्वत है। हमारे "मैं" का भरोसा क्या? घड़ीभर तो टिकता नहीं! क्षणभर तो टिकता नहीं! अभी कुछ, अभी कुछ! पानी पर खींची लकीर है!
तुम जब मिटते हो... और तुम उसी समय मिट जाते हो जब तुम अशांति के रास्ते
पर चलना छोड़ देते हो; अर्थात जब तुम शक्ति की खोज छोड़ देते हो, तुम बिखरने लगते हो। इसीलिए बेचैनी है।
"खोपड़ी बड़ी उद्विग्न है", प्रश्नकर्ता ने पूछा है। "परेशान हूं। आया
था शक्ति खोजने, यहां मिली शांति। चाहता था प्रभुता, यहां मिली शून्यता।" शून्यता द्वार है प्रभु का। तुम अगर शून्य होने को राजी हो गये तो तुम्हें प्रभु होने से कोई भी रोक न सकेगा। और अगर तुम शून्य होने को राजी न हुए और तुमने प्रभुता की तलाश की, तो तुम भिखमंगे रहोगे, तुम सूने के सूने रहोगे, खाली के खाली रहोगे। इस विरोधाभास को अपने हृदय में बहुत गहरे बैठ जाने देना, क्योंकि यह जीवन का आत्यंतिक गणित है।
जीसस ने कहा हैः जो अपने को बचाएंगे वह मिट जायेंगे; और जो अपने को मिटाने को राजी हैं उन्हें कोई भी मिटा नहीं सकता। लाओत्सु ने कहा हैः जो

जीतने की यात्रा पर निकलेंगे, एक दिन हारे हुए पाये जाएंगे; और जो हारने को राजी है, उसे कोई हरानेवाला नहीं।
गुंचा फिर लगा खिलने
आज हमने अपना दिल
खूं किया हुआ देखा
गुम किया हुआ पाया।
जब उस शांति की वर्षा होती है तो कली फिर खिलने लगती है। गुंचा फिर लगा खिलने! जो कली आंखों से बिल्कुल ओझल हो गयी थी, जिसका पता भी न रहा था, जो बीज होकर कहीं भूमि में खो गयी थी--वह फिर अंकुरित हो आती है।
गुंचा फिर लगा खिलने
आज हमने अपना दिल
खूं किया हुआ देखा।
और जिसको हम समझते थे मर चुका, जिसका खून हो चुका, वह दिल फिर धड़कने लगा।
आज हमने अपना दिल
खूं किया हुआ देखा
गुम किया हुआ पाया!
और जो खो चुका था, गुम हो चुका था, वह फिर मिला।
तो अगर तुम राजी हो अपने को मिटाने को, तो एक दिन तुम पाओगेः आज हमने अपना दिल खूं किया हुआ देखा! जिसको हम सोचे थे कि मर ही चुका, जिसे हम छोड़ ही आए थे दूर कहीं राह पर, जिस की हमने अर्थी सजा दी थी, जिसे हम दफना आये थे, या जिसे हमने सूली पर चढ़ा दिया था, जिसे हम जला चुके थे--अचानक वह दिल फिर लहलहाया, फिर हरा हुआ, फिर कली खुली! गुम किया हुआ पाया! और जो खो गया था वह फिर मिला।
प्रभुता छोड़ोः प्रभुता मिलेगी! अहंकार छोड़ोः आत्मा मिलेगी! अपने को
खो दो, मिट जाने दो, शून्य हो जाओः पूर्ण के तुम पात्र हो जाओगे। पूर्ण तुममें उतरेगा। तुम्हारे शून्य में ही उतर सकता है। जगह चाहिए न! और पूर्ण जैसे मेहमान के लिए जगह बनानी हो, तो शून्य से कम जगह न पड़ेगी, जरूरी होगी। इतनी ही जगह चाहिए। पूरा शून्य चाहिए, तभी पूर्ण उतर सकता है! पूर्ण, शून्य में बिल्कुल बैठ जाता है।
पूर्ण की भी कोई सीमा नहीं है; शून्य की भी कोई सीमा नहीं है। असीम को बुलाओगे तो असीम होना ही पड़ेगा। जिस अतिथि को तुमने पुकारा है, उसके आतिथेय भी तो बनना होगा! मेजबान तो बनना होगा! जगह तो खाली करनी होगी! सिंहासन पर स्थान तो रिक्त करना होगा!
इसलिए कहता हूंः शांति! फिक्र छोड़ो शक्ति की। शक्ति खोजनेवाले शक्ति
को कभी नहीं पाते, केवल अशांति पाते हैं, और शांति खोजनेवाले शक्ति को उपलब्ध हो जाते हैं।
फिर डरो मत।
उसका, उसको ही लौटा देने में इतना संकोच क्या? उसका उसके ही चरणों में चढ़ा देने में इतनी कंजूसी क्या?
जान दी, दी हुई उसी की थी
हक तो यह है कि हक अदा न हुआ।
उसी की दी हुई थी, उसी को वापस लौटा दी, उसी को दे दी! एक लहर उछली सागर में, वापस सागर में गिर गई!
जान दी, दी हुई उसी की थी
हक तो यह है कि हक अदा न हुआ।
सच तो यह है कि कर्तव्य-पालन न हो पाया। यह क्या खाक बात हुई, क्या दिया! जो उसका था उसी को लौटा दिया, इसमें कौन-सा कर्तव्य पालन हुआ?
लेकिन हम बड़े कंजूस हैं! जिससे पाया है, उसी को लौटाने में बेईमानी कर जाते हैं। जिसने बनाया है, उससे भी छिपा लेते हैं। जिससे पाया है उससे भी चोरी कर जाते हैं।
क्या है तुम्हारे पास अपना? सांस उसकी! बहता हुआ तुम्हारे शरीर में
जल उसका। देह में मिट्टी के कण उसके! देह में समाया आकाश उसका! देह में

जीवन की धारा अग्नि उसकी! और चैतन्य, वह उसी का अंश! जैसे तुम्हारे आंगन में आकाश समाया है--बाहर फैले आकाश का ही एक हिस्सा--ऐसे ही तुममें चैतन्य समाया है। विराट चैतन्य का एक छोटा-सा कोना, एक छोटा आंगन! सब उसका है। शून्य होने से डरते क्यों हो, घबड़ाते क्यों हो? बूंद की तरह डरो मत सागर के किनारे खड़े होकर, क्योंकि बूंद अगर सागर में गिर जाये तो सागर हो जायेगी। अगर किनारे पर पड़ी रह गयी तो बूंद ही रह जायेगी। सीमा तड़फायेगी तुम्हें। सीमा दुख देगी। असीम के साथ ही सुख हो सकता है। भूमा के साथ ही सुख हो सकता है। अल्प में कहां सुख, कैसा सुख?
और घबड़ाओ मत! तुमने छोड़ दिया सब, तो तुम यह मत सोचना कि उसने तुम्हें छोड़ दिया। तुम शून्य हुए तो यह मत सोचना कि वह तुम्हें खाली समझकर तुम्हारे घर में प्रवेश न करेगा। खाली होओगे, तभी प्रवेश करेगा। तुमने सब छोड़ा, तभी तुमने पात्रता अर्जित कर ली। तुमने सब छोड़ा--अशेष भाव से! कुछ भी बचाना मत! रत्तीभर भी मत बचाना। अन्यथा बचाया हुआ ही बाधा हो जायेगी।
तुम स्वयं के और सत्य के बीच कुछ भी रहस्य मत रखना, छिपाना मत! तुम सब भांति नग्न हो जाना। तुम सब भांति छोड़ देना, फिर चिंता की बात नहीं।
मैं, और बज्मे-मै से यूं तिश्नाकाम जाऊं
गर मैंने की थी तौबा, साकी को क्या हुआ था?
साधारण मधुशालाओं में तो यह हो जाता है।
मैं, और बज्मे-मै से यूं तिश्नाकाम जाऊं, कि मैं ऐसा प्यासा का प्यासा लौट जाऊं मधुशाला से!
गर मैंने की थी तौबा, साकी को क्या हुआ था? मैंने अगर कसम खायी थी कि न पीऊंगा तो साकी तो भर ही दे सकता था पात्र को! साकी तो पिलाने का आग्रह कर सकता था! मेरे तौबा कर लेने से, मेरे कसम खा लेने से, उसने तो कसम न खायी थी, वह तो मुझे मना, समझा-बुझा सकता था और जबर्दस्ती करता तो हम पी ही लेते। साधारण मधुशाला में तो ऐसा हो जायेगा कि तुमने अगर तौबा की है तो तुम तिश्नाकाम ही वापस जाओगे, प्यासे ही वापस लौटोगे। लेकिन उस परम की मधुशाला में जिसने छोड़ दिया सब, वह कभी तिश्नाकाम नहीं जाता। जिसने पकड़ा सब, वही तिश्नाकाम जाता है। जिसने सब पकड़ा वह प्यासा रह जाता है। तुम पकड़नेवालों की तरफ तो देखो! कैसे प्यासे और कैसे उदास और कैसे थके और हारे रह गये हैं! तुम जरा छोड़े हुओं की तरफ तो देखो! महावीर, बुद्ध--तुम उनको तो देखो, कैसे भर गए हैं! प्यास सदा के लिए मिट गयी है, ऐसी गहन तृप्ति हुई है! उसकी मधुशाला से तुम वापिस न आओगे। अगर तुमने सब छोड़ा तो वह तुम्हें बहुत मनाएगा, बहुत तुम्हें पिलाने का आग्रह करेगा। तुम अगर सब उस पर छोड़ दो तो सब हो जाये।
इसलिए मैं कहता हूं, शून्य हो जाओ। शून्य होने से मेरा अर्थ यह नहीं
है कि तुम ना-कुछ हो जाओ। तुम ना-कुछ हो। शून्य में तुम्हारा यह ना-कुछपन मिट जायेगा। धूल जम गयी है, उसे तुमने संपदा समझा है। शून्य होने में यह धूल हट जाएगी और तुम्हारे भीतर की संपदा प्रगट हो जायेगी। शून्य होकर ही तुम पूर्ण को पाओगे। दूसरा कोई उपाय नहीं है।
कहा है, "पुराना विश्वास बिखर चुका, नये का जन्म नहीं हुआ। अब न पीछे
जा सकता हूं न आगे ही बढ़ पाता हूं।"
कहीं मत जाओ! पुराना विश्वास बिखर चुका, अब तुम जल्दी मत करना नये विश्वास को बनाने की। क्योंकि डर यह है कि सौ में से निन्यानबे व्यक्ति, जब उनका पुराना विश्वास बिखरता है तो नए को फिर पुराने के ही ढांचे में बना लेते हैं। पुराने से परिचय होता है। पुराने से पहचान होती है। पुराने के रंग-ढंग पता होते हैं। पुराने की रूप-रेखा उनके हाथ में होती है। फिर नये विश्वास को वह पुराने के ढांचे में ही बना लेते हैं।
पुराना विश्वास बिखर गया है, डरो मत! तुम मत ढालना नये विश्वास को, अन्यथा तुम फिर पुराने सांचे में ढाल लोगे। वही सांचा तुम जानते हो। तुम चुप रहो। तुम इस बीच की बड़ी बेचैन अवस्था में राजी रहो। और तब तुममें श्रद्धा का जन्म होगा। वह विश्वास नहीं होगी। वह तुम्हारी ढाली हुई न होगी। यही मैं फर्क करता हूं विश्वास और श्रद्धा में। विश्वास है तुम्हारा ढाला हुआ; क्योंकि तुम खाली रहने को राजी नहीं, कुछ न कुछ भरने को

चाहिए। सत्य न सही तो झूठ ही सही। अपना न सही तो और का ही सही। देखा हुआ न सही तो सुना हुआ ही सही।
तुम विश्वास को ढालोगे तो तुम्हारा ही ढाला हुआ विश्वास होगा। न, यह गृह उद्योग सत्य के जगत में काम न आयेगा।
पुराना गिर गया, सौभाग्य! धन्यभागी हो! अब जल्दी मत करो नये को बनाने की। अगर तुम इस खालीपन में थोड़ी देर रह गए तो नया उतरेगा; वह तुम्हारा बनाया हुआ न होगा। धीरे-धीरे तुम पाओगे, तुम्हारे शून्य को किसी प्रकाश ने उतरकर भर दिया। तुम तो गर्भ जैसे हो गए और कोई जीवन आया और तुम्हारे गर्भ में प्रविष्ट हो गया। यह तुम्हारा बनाया हुआ पुतला नहीं है--यह परमात्मा से आया हुआ जीवन है।
श्रद्धा आती है; विश्वास लाया जाता है। विश्वास जबर्दस्ती है; श्रद्धा नैसर्गिक है; श्रद्धा सहज है। जो आदमी विश्वास के बिना रहने के लिए राजी है, उसके जीवन में श्रद्धा उतरती है।
विश्वास का न होना अविश्वास नहीं है। क्योंकि अविश्वास तो फिर एक तरह
का विश्वास है। कोई मानता है, ईश्वर है--यह भी विश्वास; कोई मानता है ईश्वर नहीं है--यह भी विश्वास। "नहीं" लगा देने से कहीं फर्क पड़ता है? जो आदमी मानता है ईश्वर नहीं है--यह उसकी धारणा, उसका शास्त्र। कोई महावीर को मानता है, कोई मुहम्मद को--कोई मार्क्स को मानता है। कोई गीता को पूजता है, कोई कुरान को--कोई कैपिटल को पूजता है। फर्क कुछ भी नहीं है।
वहां सोवियत रूस में पुराने देवता तो विदा हो गये, पुराने धर्म खो गये, पुराने चर्च खो गये; लेकिन कम्युनिज्म का नया चर्च निर्मित हो गया है। कम्युनिस्ट नेताओं की नयी प्रतिमाएं निर्मित हो गयी हैं। ईश्वर नहीं है, यही सिद्धांत हो गया है विश्वास का। बच्चों को रटाया जाता है। जैसे ईसाई रटाते हैं बच्चों को, जैसे मुसलमान रटाते हैं, हिंदू, जैन रटाते हैं बच्चों को, अपनी-अपनी धारणा--वैसे ही कम्युनिज्म अपनी धारणा रटाता है। लेकिन दोनों ही विश्वास हैं।
विश्वास का अर्थ यही हैः जो तुमने चेष्टा से करके पैदा कर लिया है। मनुष्य निर्मित का नाम है विश्वास। और जब मनुष्य कुछ निर्माण नहीं करता, न विश्वास न अविश्वास, न पक्ष न विपक्ष, खाली खड़ा रह जाता है; वह कहता है, जब तेरी मर्जी हो तब भर देना, अगर न भरेगा तो भी हम राजी हैं--तब एक दिन तुम्हारे शून्य में उस पूर्ण का आगमन होता है। तब तुम्हारी अंधेरी रात में जलता है उसका दीया। और यह तुम्हारा जलाया नहीं होता; क्योंकि तुम्हारा जलाया तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। तुम्हारा जलाया तुम्हारा ही हिस्सा होगा। तुम्हारा जलाया तुम्हारा ही निर्माण होगा। तुम परमात्मा को मौका दो। तुम थोड़े बीच में दखलंदाजी न करो। तुम खड़े देखते रहो।
यह शुभ घड़ी है कि पुराना विश्वास बिखर चुका और नया पैदा नहीं हो रहा है। करना भी मत! तुम जल्दी करोगे, क्योंकि खाली जगह अखरती है। जैसे दांत टूट जाता है तो जीभ वहीं-वहीं जाती है--ऐसा जब पुराना विश्वास हट जाता है तो बार-बार मन वहीं-वहीं लौटता है कि जल्दी विश्वास बनाओ! घर खाली-खाली लगता है, बेचैनी मालूम होती है। इस बेचैनी को झेल लेना। लेकिन विश्वास अब मत बनाना। बहुत तुमने बनाए, कोई काम न आये। कितने-कितने धर्मों में तुम जी नहीं चुके हो! कितने-कितने शास्त्रों को तुम पूज नहीं चुके हो! कितने- कितने परमात्मा तुमने निर्मित नहीं किये हैं। कितनी प्रतिमाएं तुम्हारी अर्चना और पूजा को स्वीकार नहीं कर चुकी हैं। लेकिन क्या हुआ? अब तुम कह दो कि अब मैं न बनाऊंगा। अब जब प्रकृति ही उपजाएगी... । अब कागज और प्लास्टिक के फूल नहीं; अब तो जब असली फूल आएंगे तभी। मैं राजी हूं, प्रतीक्षा करूंगा।
प्रार्थना करो, प्रतीक्षा करो; लेकिन विश्वास को निर्मित मत करो। होगा! धीरज रखो। और अगर धीरज से हुआ, अपने-आप हुआ और तुम सिर्फ साक्षी रहे, गवाह; बनानेवाले नहीं, तुमने सिर्फ जगते देखा श्रद्धा को, तुमने श्रद्धा का वृक्ष बढ़ते देखा, तुमने श्रद्धा में फूल-फल लगते देखे, तुम सिर्फ साक्षी रहे--तो तुम पाओगे यह श्रद्धा मुक्तिदायी है।

इस श्रद्धा को ही महावीर ने दर्शन कहा है। दर्शन यानी जिसको तुमने देखा, बनाया नहीं। श्रद्धा तुम्हारा कर्म नहीं है, दर्शन है। श्रद्धा तुम्हारा कृत्य नहीं है, तुम्हारा दर्शन है। जिसको तुमने उठते देखा, फैलते देखा, पूरे आकाश को भरते देखा, तुम साक्षी रहे जिसके--तब विराट से आयी श्रद्धा। और जो विराट से आती है वह विराट कर जाती है। जो क्षुद्र की है वह क्षुद्र है।
"अब न पीछे जा सकता हूं, न आगे ही बढ़ सकता हूं!"
कोई जरूरत नहीं कहीं जाने की। तुम जहां हो, वहीं डूबने की जरूरत है। आगे-पीछे की भाषा मन की है। आगे-पीछे की भाषा महत्वाकांक्षा की है। आगे- पीछे की भाषाः प्रगति हो रही कि नहीं, गति हो रही कि नहीं, कहीं जा रहा हूं कि नहीं! जाना कहां है? जो हो, वहीं ठहर जाना है! जो हो, उसमें ही लवलीन हो जाना है। जो हो, उसमें ही तल्लीन हो जाना है। अपने में डूबना है, जाना कहां है? सब जाना बाहर है। घर आना है!
और तुम यह मत सोचना कि घर आने के लिए भी कहीं जाना होगा। घर तो तुम हो ही। जरा बेचैनी छोड़ो, विचार छोड़ो, तो अचानक तुम पाओगे कि इस घर को तुमने कभी छोड़ा ही नहीं; तुम सदा ही इसमें थे। ख्यालों में ही छोड़ा था वस्तुतः कभी नहीं छोड़ा था।
बोधिधर्म जब जाग्रत हुआ तो हंसने लगा, खूब हंसने लगा! उसके आसपास के
और भिक्षुओं ने पूछा कि तुम पागल तो नहीं हो गये हो, हुआ क्या है? उसने कहा, मैं इसलिए हंस रहा हूं कि जिसको मैं खोजता था जन्मों-जन्मों से, उसे कभी खोया नहीं था। खूब मजाक रही!
तुम्हीं सोचो कि वर्षों तक तुम खोजते रहे किसी चीज को और आखिर में खीसे में हाथ डाला और वहां पायी! और खीसे में तुमने खोजा ही नहीं अब तक; क्योंकि यह ख्याल ही नहीं उठा कि खीसे में भी हो सकती है।
तुम्हारी संपदा तुम हो। तुम्हारी संपदा तुम्हारे भीतर इसी क्षण मौजूद है। कहीं न जाओ--न आगे न पीछे, न उत्तर न दक्षिण, न पश्चिम न पूरब, न नीचे न ऊपर--दसों दिशाओं को छोड़ दो। दसों दिशाओं को छोड़कर जो खड़ा हो जाता है, उस अवस्था को महावीर कहते हैं समाधि। वह आ गया घर! वापसी हो गयी! उसने जान लिया उसे--जिसका विस्मरण हो गया था।
यह भी ख्याल रख लेनाः तुम चाहते हो मुझे कि मैं तुम्हें कुछ चलाऊं, दौड़ाऊं, कहीं पहुंचाऊं, तुम्हें कोई ज्वर दूं, तुम्हें कोई तड़फ दूं, उत्साह दूं।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, जरा हमें उत्साह दें--उत्साह ढीला पड़ा जा रहा है। उत्साह किसलिए? तुम कोई सैनिक नहीं हो कि कहीं युद्ध पर जा रहे हो। तुम संन्यासी हो, अपने घर आ रहे हो--उत्साह कैसा?
लेकिन लोगों को उत्साह चाहिए, दौड़ने के लिए उत्साह जरूरी है, रुकने के लिए उत्साह की जरूरत है? रुकने के लिए तो उत्साह बाधा भी बन सकता है। क्योंकि वह तुम्हें दौड़ाए रखेगा। शांत बैठ जाना है--कैसा उत्साह? कहीं जाना नहीं, ऊर्जा का कोई उपयोग नहीं करना है। जैसे शांत झील हो, ऐसे हो जाना है--जिसमें तरंग नहीं उठती, लहर नहीं उठती।
लेकिन तुम डरते हो। तुमने अब तक तो जिसको जीवन जाना है, वह दौड़-धूप है, आपा-धापी है। तुमने उसके अतिरिक्त कोई जीवन नहीं जाना। तुमसे अगर कोई बैठने को कहे तो लगता है, यह तो मरने जैसा हो गया; इसमें जीवन कहां है? लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, जीवन तुम्हारे भीतर है। उसे दौड़-धूप करके तुम न पा सकोगे। जब दौड़-धूप से थक जाओगे, बैठ जाओगे, और कहोगे, अब कहीं जाने की कोई इच्छा न रही--तत्क्षण तुम पाओगे कि वह मिल गया।

दूसरा प्रश्नः दर्शन के तत्क्षण बाद घटी घटना को ही क्या भजन कहते हैं? कृपा करके समझाएं।

"दर्शन" महावीर की साधना-पद्धति का शब्द है; "भजन" उनकी साधना-पद्धति
का शब्द नहीं। दर्शन के बाद तो महावीर कहते हैं, ज्ञान घटता है। ज्ञान के बाद चारिष्य घटता है। भजन की कोई जगह महावीर की विचार-शृंखला में नहीं है।

भजन भक्तों की परंपरा का शब्द है। दोनों को जोड़ने की कोशिश मत करो, अन्यथा तुम और उलझ जाओगे। दोनों को अलग-अलग ही रखो। दोनों सही हैं; पर अलग-अलग सही हैं; अलग-अलग यंत्रों के अंग हैं।
महावीर के मार्ग पर भजन जैसी कोई जगह नहीं है। क्योंकि भजन का अर्थ होता हैः उत्सव। भजन का अर्थ होता हैः प्रभु-नाम-स्मरण। भजन का अर्थ होता हैः तल्लीनता। भजन का अर्थ होता हैः बेहोशी, बेखुदी। भजन तो ऐसा है जैसे कोई भीतर की शराब, पीये और मस्त हो गये! भजन तो नृत्य है, गुनगुनाना है, गीत है।
महावीर के मार्ग पर भजन जैसी कोई चीज नहीं है। वह मार्ग बिल्कुल भजन-शून्य है।
इसलिए अगर महावीर के मार्ग के शब्द "दर्शन" का उपयोग कर रहे हो तो भजन
को भूल जाओ। महावीर कहते हैं, दर्शन से होगा ज्ञान, बोध। भजन तो है अबोध। महावीर कहते हैं, होगा ज्ञान। महावीर कहते हैं, आयेगी जागृति। भजन तो है गहरी आत्म-विस्मृति, तल्लीनता। और महावीर कहते हैं, ज्ञान से चारिष्य रूपांतरित होगा।
भजन है भक्तों का शब्द। उसे भी समझ लेना जरूरी है। भजन के लिए दर्शन जरूरी नहीं। भजन के लिए भाव जरूरी है। महावीर का "दर्शन" पाना हो तो निर्भाव होना जरूरी है। वे विपरीत रास्ते हैं। वहां सारे भाव का त्याग कर देना है। वहां तो भाव राग है। वहां तो प्रेम भी बंधन है। भक्त के मार्ग पर भाव प्रारंभ हैः भाव, भजन, भगवान! वहां न ज्ञान, न दर्शन, न चारिष्य। भक्त को चरित्र इत्यादि की चिंता ही नहीं। वह कहता है, "चरित्र उसका, हमारा क्या? उसकी जैसी मर्जी! वह जैसा नाच नचाये!" भक्त तो कहता है, "हम तो कठपुतली की भांति हैं; धागे उसके हाथ में हैं! वह जो बनाये हम बन जाते हैं। लीला उसकी है। सारा नाटक उसका रचा हुआ है। हम तो केवल पात्र हैं नाटक में-- राम बना देता है, राम बन जाते हैं; रावण बना देता है, रावण बन जाते हैं।" भक्त की भाव-दशा बड़ी अलग है। तो भक्त प्रेम से चलता है, भाव से चलता है। भाव ही सघन होकर भक्ति बनती है। और भक्ति जब प्रगट होती है फूलों की तरह, तो भजन।
भाव से शुरुआत है। जब भाव बहुत गहन होने लगता है, इतना गहन होने लगता
है कि भाव करनेवाला धीरे-धीरे भाव में डूब जाता है, अलग नहीं रह जाता--तो भक्ति। और भक्ति जब इतनी सघन होती है कि स्वयं का तो दिखायी पड़ना बिल्कुल बंद हो जाता है, स्वयं की जगह परमात्मा की प्रतीति होने लगती है, चारों तरफ उसका दर्शन होने लगता है--तो भगवान। और भगवान को पा लेने की जो खुशी है, वह भजन है। उसको पा लेने से जो नाच पैदा होता है कि मिल गया! ...
आर्किमिडीज के जीवन में एक कथा है कि वह एक वैज्ञानिक खोज कर रहा था। अपने टब में बैठा था स्नान करने, तब उसको सूझ आ गयी। तो नग्न बैठा था स्नानागार में, छलांग लगाकर उठा। भूल ही गया कि नग्न हूं। भूल ही गया कि स्नानागार है। खोज का मजा ऐसा था कि दौड़ा सड़कों पर और चिल्लायाः "इरेका! मिल गया!" राजमहल पहुंच गया नंगा, भीड़ लग गयी। सम्राट ने भी कहा कि "तुम पागल हो गये हो! मिल भी गया तो इतने पागल होने की क्या बात है? नग्न क्यों हो?" तब उसे याद आया। उसने कहा, "क्षमा करें! मिलने का क्षण इतना गहन था कि मैं भूल ही गया; अपना मुझे होश ही न रहा।"
तो भजन तो ऐसा क्षण हैः इरेका! मिल गया!
जब भगवान की पहली दफा झलक मिलती है, जब उसकी छवि पहली दफा दिखाई पड़ती है, जब उसका रूप पहली दफा प्रगट होता है, जब उसकी सुगंध नासापुटों में पहली बार भरती है--इरेका! --तो भक्त नाच उठता है, गुनगुना उठता है, आंसुओं की धार बह जाती है--आनंद के आंसुओं की! सम्हाले नहीं सम्हलता! मस्ती भर जाती है! प्याला छलकने लगता है! --तो भजन!
भजन बिल्कुल दूसरी धारा का हिस्सा है। दोनों धाराएं पहुंचा देती हैं, लेकिन दोनों के रास्ते बड़े अलग-अलग हैं।
शेख काबे से गया उस तक बिरहमन दैर से
एक थी दोनों की मंजिल फेर था कुछ राह का।

लेकिन वह कुछ फर्क बड़ा फर्क है! कोई मस्जिद से गया, कोई मंदिर से गया; कोई तप से गया, कोई भाव से गया--थोड़ा-सा फर्क है; लेकिन थोड़ा-सा फर्क भी बहुत बड़ा फर्क है। पहुंचकर तो सब रास्ते उसी पर मिल जाते हैं। लेकिन बीच में बड़े-बड़े अंतर हैं। और बीच में तुम दो रास्तों के बीच अपने को डांवांडोल मत करना। दो नावों पर कभी सवार मत होना। यद्यपि दोनों नावें उसी किनारे पहुंचा देंगी; लेकिन दो नावों पर सवार आदमी मुश्किल में पड़ जाता है। एक ही नाव पर सवार हुआ जा सकता है। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि तुम यह घोषणा करो और चिल्लाओ और मानो कि मेरी ही नाव पहुंचाती है। वह भी पागलपन है। वह भी कमजोरी है। जो आदमी कहता है मेरी ही नाव पहुंचाती है, उस आदमी को संदेह है अभी। उसे अपनी नाव पहुंचाएगी, इसमें संदेह है। चिल्ला- चिल्लाकर वह विश्वास जगा रहा है। वह कहता है, "कहां जा रहे हो दूसरी नाव में? यह कभी न पहुंचाएगी। आओ, मेरी ही नाव पहुंचाती है!" वह डरा है अपने से कि कहीं दूसरी भी नाव पहुंचाती हो तो उसका खुद का इस नाव में बैठना मुश्किल हो जाएगा।
तुम हैरान होओगे! जो लोग दूसरों को कनवर्ट करने चलते हैं--जैसे ईसाई हिंदुओं को ईसाई बनाने में लगे रहते हैं, आर्य समाजी ईसाइयों को हिंदू बनाने में लगे रहते हैं--ये सब संदिग्ध लोग हैं; इनको अपनी नाव पर भरोसा नहीं है। ये जब तक दूसरे की नाव खाली न करवा लें तब तक इन्हें भरोसा नहीं। ये कहते हैं, दूसरी भी नावें हैं, इनमें भी लोग जा रहे हैं--कहीं ये लोग पहुंच तो नहीं जाते! ये खुद तो पहुंचे नहीं हैं अभी। इनकी नाव कहीं जाती नहीं मालूम हो रही है इनको। दूसरे! तो दो ही उपाय हैं या तो ये सही हैं, या हम सही हैं। अगर ये सही हैं तो हमको अपनी नाव में से उतरना पड़ेगा। अगर हम सही हैं तो इनको इनकी नाव से उतार लें।
सारी दुनिया में धर्मों के बीच जो संघर्ष चलता है वह स्वयं की नाव पर विश्वास नहीं है, इसलिए चलता है। दूसरे को जब तुम समझाने जाते हो तब तुम गौर करनाः कहीं तुम दूसरे के बहाने अपने को ही तो नहीं समझा रहे हो? कहीं दूसरे के बहाने अपने ही संदेहों को तो शांत नहीं कर रहे हो? जब तुम दूसरे को समझाने में राजी हो जाते हो कि तुम सही हो, तो तुम्हें बड़ा हलकापन मालूम होता है, तुमने ख्याल किया। क्यों? एक बोझ था भीतरः कौन जाने हम गलत हों! दूसरे को समझा लिया, चलो एक आदमी और राजी हो गया! अपने पर तो भरोसा नहीं था; अब एक और राजी हो गया, शायद ठीक हों! दो राजी हो गये, तीन राजी हो गये, भीड़ इकट्ठी हो गयी, तो भरोसा पक्का हो गया कि नहीं, हम गलत कैसे हो सकते हैं! इतने लोग कैसे राजी हो जाते! हो सकता था हम भूल में होते, लेकिन इतने लोग! इतने लोग तो भूल में नहीं हो सकते!
दूसरे को कनवर्ट करने की चेष्टा में अपने ही अविश्वासों को, संदेहों
को शांत करने की चेष्टा छिपी है। इसलिए लोग चिल्लाते हैं कि बस यही मार्ग। महावीर के मार्ग पर बहुत लोग नहीं गये, क्योंकि महावीर ने कहा सभी मार्ग सही हैं।
जैन अब हिम्मत नहीं करते यह कहने की कि सभी मार्ग सही हैं। वह हिम्मत छोड़ दी उन्होंने। अब तो वे कहते हैं यही मार्ग सही है। और कभी-कभी कैसी विडंबना हो जाती है!
मैं एक जैन मुनि से बात कर रहा था। तो मैंने उनसे कहा कि जैन धर्म तो स्यादवाद को मानता है। जैन धर्म तो कहता है, और भी सही हैं। जैन धर्म का तो यह कहना है, "यही सही है", यह दृष्टि गलत है। "यह भी सही है", यह दृष्टि सही है। वह भी सही है, यह भी सही है। यह ही सही है, ऐसे आग्रह में तो दूसरे सब गलत हो जाते हैं। उन्होंने कहा कि निश्चित, स्यादवाद का यही अर्थ है। फिर थोड़ी बात चलती रही। इधर-उधर की मैंने उनसे बात की, फिर थोड़े भूल गये वे तो मैंने उनसे कहा कि स्यादवाद के विपरीत अगर कोई हो, उसके लिए क्या कहियेगा? वह भी सही है? "कभी नहीं," उन्होंने कहा, "ऐसा कैसे हो सकता है? स्यादवाद के जो विपरीत है वह कभी सही नहीं हो सकता।"
स्यादवाद का मूल आधार ही यही है कि जो मेरे विपरीत है वह भी सही हो सकता है। महावीर का आकाश बड़ा विराट है। वे कहते हैं, इतना बड़ा विराट आकाश है तो इतनी छोटी-छोटी पगडंडियों पर तुम चिल्लाते हो, यही सही है? तुम

पगडंडी के नाप को आकाश का नाप बना देते हो? तुम पहुंचने के संकीर्ण मार्ग को मंजिल बना देते हो? मंजिल बहुत बड़ी है। सब तरह के मार्ग वहां समाविष्ट हो जाते हैं।
ऐसा समझो कि गंगा बह रही है, नर्मदा भी बह रही है। गंगा बह रही है पूरब
की तरफ, नर्मदा बह रही है पश्चिम की तरफ। अगर दोनों का रास्ते में मिलना हो जाये तो बड़ी मुश्किल हो जाये। क्योंकि गंगा कहे, मैं सागर की तरफ जाती हूं, तू पागल कहां जा रही है उलटी; और नर्मदा भी कहे, मैं भी सागर की तरफ जाती हूं, तुम्हें कुछ अड़चन हो गयी है...
मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में सवार हुआ। वह अपना बिस्तर वगैरह लगाकर ऊपर की बर्थ पर लेटने ही जा रहा था कि कुछ याद आ गयी तो उसने नीचे की सीट पर लेटे आदमी से पूछा, भाई साहब! आप कहां जा रहे हैं? तो उस आदमी ने कहा, कलकत्ते जा रहा हूं। मुल्ला बोला, हद्द हो गयी! हम तो बंबई जा रहे हैं। विज्ञान का चमत्कार तो देखो कि एक सीट कलकत्ता जा रही है, एक सीट बंबई जा रही है!
अब गंगा और नर्मदा का अगर मिलन हो जाये तो बड़ी मुश्किल हो गयी। दोनों सागर की तरफ जा रही हैं और दोनों सागर में ही जा रही हैं। सब जाना सागर की तरफ है।
मैं तो तुमसे कहता हूं, जो संसार की तरफ जा रहा है वह भी जरा लंबे रास्ते से परमात्मा की ही तरफ जा रहा है। क्योंकि सब जाना उसकी तरफ है-- देर-अबेर! मैं तो तुमसे कहता हूं, जिसने वेश्या के द्वार पर दस्तक दी है, उसने भी अनजाने मंदिर के द्वार पर ही दस्तक दी है--थोड़ी दूर से दस्तक दी है। लेकिन वेश्या के पास भी वह मंदिर को ही खोजने गया है, क्योंकि प्रेम खोजने गया है। मिले न मिले, दूसरी बात। लेकिन आकांक्षा तो उसी की है। खुद भी परिचित न हो, यह भी हो सकता है। गलत दिशा में टटोलता हो, यह भी हो सकता है। लेकिन भीतर जो खोज चल रही है, वह तो उसी की चल रही है। सभी सागर की तरफ जा रहे हैं। और सभी पहुंच जाते हैं, क्योंकि सागर ने सब दिशाओं से घेरा है। सागर की कोई दिशा नहीं है। ऐसे परमात्मा की कोई दिशा नहीं है।
तो ध्यान रखना, भजन से भी लोग पहुंचते हैं, भाव से भी पहुंचते हैं। पर भाव की नाव अलग है। उसकी चाल अलग है। उसकी पतवार अलग है। उसका रंग-ढंग अलग है। वह बड़ी सजी-संवरी है।
महावीर की नाव बड़ी भिन्न है। जरा भी सजी-संवरी नहीं है। वहां भाव को कोई जगह नहीं है। वहां शुद्ध विचार और ध्यान है। वहां भूलना नहीं है, स्मरण रखना है। भाव में भूलना है, स्मरण नहीं रखना है। भाव में आत्मविस्मृति करनी है। और महावीर के मार्ग पर आत्मस्मृति जगानी है। बड़े विपरीत हैं। एक पूरब जा रहा है, एक पश्चिम जा रहा है--एक नर्मदा, एक गंगा-- लेकिन दोनों सागर में पहुंच जाते हैं! और सागर में पहुंचकर दोनों सागर हो जाते हैं।
भजन विधायक जीवन-दृष्टि है; दर्शन नकारात्मक जीवन-दृष्टि है।
तू और तेरी चंचल सखियां, जब पानी भरने जाती हैं
तब साये धानी होते हैं, तब धूप गुलाबी होती है।
वह जो भक्त है, वह प्रत्येक खेल में परमात्मा को देख रहा है।
तू और तेरी चंचल सखियां जब पानी भरने जाती हैं
तब साये धानी होते हैं, तब धूप गुलाबी होती है।
धूप भी गुलाबी हो जाती है, साये भी धानी हो जाते हैं। और जो भी जा रहा
है पनघट की तरफ, वह वही है--उसकी चंचल सखियां हैं।
सारा जगत अनेक-अनेक रूपों में उसी की लीला है। जिसने उसे पहचानना शुरू कर दिया, वह हर जगह उसे पहचान लेगा।
मोहतसिब की खैर ऊंचा है उसी के फैज से
रिंद का, साकी का, मय का, खुम का, पैमाने का नाम।
भक्त तो कहता है, भगवान है रसाध्यक्ष उस मधुशाला का! इस जीवन की मधुशाला का रसाध्यक्ष! और उसी की कृपा का फल है।
रिंद का, साकी का, मय का, खुम का, पैमाने का नाम
--इन सबके नामों की महिमा उसी के कारण है!

मोहतसिब की खैर ऊंचा है उसी के फैज से।
--उस रसाध्यक्ष की अनुकंपा कि उसी की अनुकंपा से रिंद का, पियक्कड़ का...
।
भक्त तो पियक्कड़ है। वह तो भगवान की शराब पी रहा है। जीवन को तो उसने मधुसिक्त भाव से देखा है। "प्यारे" को पहचानने की तरह उसने जीवन की खोज की है। वह सत्य की खोज में नहीं है--"प्यारे" की खोज में है! महावीर सत्य की खोज में हैं। "प्यारा" शब्द उनके ओंठ से निकलेगा भी नहीं।
मोहतसिब की खैर ऊंचा है उसी के फैज से
रिंद का, साकी का, मय का, खुम का, पैमाने का नाम।
जिस गागर में सागर भरी, जिस गागर में मधु का सागर भरा है, जिस पात्र में मधु पड़ा है, जो पिलानेवाला है, जो पीनेवाला है--इन सबकी महिमा उसी के कारण है--उसकी ही अनुकंपा से है!
भक्त की भाषा सुरा की, सुगंध की, संगीत की भाषा है। भक्त की भाषा प्रेम की, प्रियतम की, प्रियतमा की भाषा है। भक्त की भाषा रास की, रस की भाषा है। भजन का अर्थ हैः जो डूबा! भजन का अर्थ हैः जिसने अपने को खोया! भजन का अर्थ हैः जिसने अपने को छोड़ा उसके हाथ में! भजन का अर्थ हैः जो उसके आसपास नाचा और रास में सम्मिलित हुआ। भक्त को तो लगता हैः यह सारा खेल, यह सारी लीला, चाहे कैसा ही ढंग रखती हो--यह कोयल की कुहू-कुहू, ये वर्षा के बादल, यह वर्षा की रिमझिम टाप--यह सब अनेक-अनेक रूपों में उसी का आगमन है! यह उसी के पैरों में बंधे हुए घुंघरुओं की आवाज है!
भक्त संसार को सिर्फ संसार की तरह नहीं देखता--परमात्मा की अभिव्यक्ति की तरह देखता है। यह उसका प्रगट रूप है। यह उसी चित्रकार का चित्र है। ये रंग उसी के हाथ ने फैलाए हैं। ये गीत उसी ने रचे हैं। वेद कहते हैंः यह काव्य उसी का है! यह वही गुनगुनाया है! वही गुनगुना रहा है! साधक के मार्ग पर संसार और सत्य विपरीत हैं। संसार से हटना है अगर सत्य में जाना हो।
भक्त के मार्ग पर संसार सत्य का ही परिधान है, उसी की वेषभूषा है। ये
जो मोर नाच रहे हैं, ये मोर-पंख उसी के मुकुट पर लगे हैं। यह जो बांसुरी बज रही है, चाहे तुम्हें उसके ओंठ दिखायी पड़ते हों न दिखायी पड़ते हों, यह बांसुरी उसी के ओंठों पर रखी है; नहीं तो कभी की बजनी बंद हो जाती।
मय भी है, मीना भी है, सागर भी है, साकी नहीं
जी में आता है लगा दें आग मयखाने को हम।
और अगर तुम्हें दिखायी न पड़े वह, तो फिर ऐसा लगेगा कि संसार में आग ही लगा दो।
मय भी है, मीना भी है, सागर भी है, साकी नहीं--सब है लेकिन पिलानेवाला नहीं है, ढालनेवाला नहीं, साकी नहीं है।
जी में आता है लगा दें आग मयखाने को हम!
तो फिर यह सब व्यर्थ है। लेकिन अगर उसके हाथ तुम्हें दिखायी पड़ जायें
कि उसी ने ढाली है सुरा, तो फिर सुरा भी अमृत है। अगर उसके हाथ दिखायी पड़ जायें तो जहर भी अमृत है! क्योंकि उसके हाथों में जहर हो ही कैसे सकता है! भक्त की दृष्टि बड़ी अलग है। भक्त की दृष्टि को तुम साधक की दृष्टि के साथ गडमगड्ड न करना। उन्हें अलग-अलग रखना, साफ-सुथरा रखना। फिर तुम्हें जो प्रीतिकर लगे, उस पर चले जाना; मगर मन में कभी भी यह ख्याल मत रखना कि दूसरा गलत है। अगर तुमने यह सोचा कि दूसरा गलत है तो मैं तुमसे कहूंगाः तुम्हें अपने मार्ग पर संदेह है। दूसरे से तुम्हें क्या लेना-देना? होगा, वह भी ठीक होगा। और अगर उसे वहीं से आनंद के द्वार खुल रहे हैं, तो तुम कौन हो रोकनेवाले? और अगर उसे वहीं से परमात्मा की पहचान आ रही है, तो तुम कौन हो बाधा डालनेवाले?

सत्य के एकाधिकारी, मोनोपोलिस्ट मत बनना। इसी तरह दुनिया में धर्म नष्ट हुआ, क्योंकि सभी धर्म सत्य के एकाधिकारी बन गये। और जब भी धर्म सत्य का एकाधिकारी बनता है, भ्रष्ट हो जाता है; संप्रदाय रह जाता है; धर्म मर जाता है, लाश रह जाती है। सत्य पर किसी की बपौती नहीं है। यही महावीर का

स्यादवाद है। सत्य सबका है; सब ढंगों से पाया जा सकता है; सब मार्गों से पाया जा सकता है। ऐसा अगर तुम कह पाओ तो उसका अर्थ हुआः कि तुम्हें अपने मार्ग पर श्रद्धा है, श्रद्धान है। इसलिए तुम्हें दूसरे के मार्ग को गाली देने की जरूरत नहीं। तुम्हें अपने मार्ग पर इतना भरोसा है कि इस भरोसे को दूसरे को गाली दे दे कर बढ़ाने की जरूरत नहीं है। तुम अपने मार्ग के प्रति इतने आश्वस्त हो कि अगर सारी दुनिया भी तुम्हारे मार्ग को छोड़ दे तो तुम अकेले ही गीत गुनगुनाते चले जाओगे। इससे कुछ फर्क न पड़ेगा। तुम्हें भीड़ की अपेक्षा नहीं है, जरूरत नहीं है।
कमजोर आदमी को भीड़ की जरूरत है। भरोसे की कमी हम भीड़ से पूरा कर लेते हैं। कमजोर आदमी को परंपरा की जरूरत है। तो हम कहते हैं, पांच हजार साल पुरानी है हमारी परंपरा! इस तरह भीड़ को हम पांच हजार साल पुराना बना देते हैं।
भीड़ दो तरह से हो सकती है--या तो अभी हो; जैसी ईसाइयों के पास है। एक अरब आदमी! तो वे जरा अतीत की बात नहीं करते, क्योंकि अतीत की कोई जरूरत नहीं--भीड़ अभी है। फिर भीड़ को बढ़ाने का दूसरा ढंग यह है कि हिंदू कहते हैं हमारा धर्म सनातन है! माना कि हम बीस ही करोड़ हैं, इससे क्या होता है; लेकिन हम सनातन से हैं। तो उन सारे लोगों को जोड़ लो जो अब तक हिंदू रहे, तब तुम्हें पता चलेगा कि हिंदुओं की भीड़ कितनी है!
जिनके पास ये दोनों उपाय नहीं, वे कहते हैं, "भविष्य! अभी छोड़ो--अतीत!" नये-नये धर्म जब पैदा होते हैं, तो वे भविष्य की बात करते हैं। वे कहते हैं, भविष्य हमारा है। अतीत रहा होगा तुम्हारा! लेकिन अतीत की सीमा है। जो हो चुका उसकी सीमा है। जो अभी नहीं हुआ, वह असीम है। हमारी भीड़ कल देखना! तुम तो गये-गुजरे हो! सूर्यास्त हो रहा है! डूबते सूरज को कौन नमस्कार करता है! तुम इस नये सूरज को देखो!
तो नये धर्म जब पैदा होते हैं तो वे भविष्य की बात करते हैं। क्योंकि
वह ही एक रास्ता है भीड़ को बढ़ाने का। उनके पास न अतीत है, न भीड़ आज मौजूद है।
लेकिन मैं धार्मिक आदमी उसको कहता हूं, जिसे भीड़ की जरूरत नहीं--किसी
भी रूप में, अभी, कल या कभी! जो कहता है, अकेला काफी हूं। अकेला भी चला तो भी पहुंच जाऊंगा। उसके और परमात्मा के बीच सीधा संबंध है; भीड़ के माध्यम से नहीं है।
और अच्छा ही है कि इतने मार्ग हैं क्योंकि इतने प्रकार के मनुष्य हैं। एक-एक व्यक्ति इतना भिन्न है कि यह बड़ा कठिन हो जाता कि एक ही मार्ग होता। तो कुछ लोग तो जाते, कुछ और लोग इसलिए ही न जा पाते क्योंकि वह उस मार्ग पर ठीक न बैठते।
तुमने ख्याल किया! स्कूल में बच्चे पढ़ते हैं। चूंकि हमने मान रखा है
कि जो बच्चा गणित में होशियार है वही होशियार! तो जो बच्चा गणित में होशियार नहीं वह गधा हो जाता है। तुम जरा एक दूसरी दुनिया सोचो! जल्दी ही वह दुनिया आयेगी, जबकि गणित की बहुत जरूरत न रह जायेगी। कंप्यूटर पैदा हो गये हैं। आनेवाली सदी में छोटे-छोटे बच्चे भी कंप्यूटर अपनी जेब में रख सकेंगे। गणित का बड़े से बड़ा सवाल कंप्यूटर क्षण में पूरा कर देगा। उसके लिए करने की जरूरत न रह जायेगी। तो गणित की प्रतिभा समाप्त हो जायेगी। तब हम कहेंगे, जो बच्चा काव्य में गुणवान है वह प्रतिभा-संपन्न है। तब सारा नक्शा बदल जायेगा।
अभी जो बच्चा गधा है वह भविष्य में गुणवान हो सकता है; और अभी जो गुणवान है, भविष्य में व्यर्थ हो सकता है। जब मूल्य बदलते हैं तो लोगों की स्थिति बदल जाती है।
तुमने देखा! जैसे-जैसे मूल्य बदलते जाते हैं, वैसे-वैसे स्थिति बदलती जाती है। अगर धर्म भी ऐसा हो कि किन्हीं खास लोगों के पहुंचने के लिए हो जाये तो उतनी ही संकीर्ण हो जायेगी धारा; फिर बहुतों का क्या होगा, जो उस तरह से नहीं जा सकते? उनकी तो सोचो। अगर महावीर का ही अकेला मार्ग हो, तो जो बिना नाचे नहीं जा सकते, उनका क्या होगा? यह तो बड़ी कंजूसी हो जायेगी सत्य के ऊपर। यह तो सत्य का बड़ा संकीर्ण रूप हो जायेगा। जो नाचकर पहुंच

सकते हैं, उनकी भी तो जगह होनी चाहिए! अगर नाचकर ही पहुंचने की जगह हो और चुपचाप शांत बैठनेवालों के लिए जगह न रह जाये तो भी बात जरा अशोभन हो जायेगी।
निकलकर दैरो-काबा से अगर मिलता न मयखाना
तो ठुकराए हुए इन्सां खुदा जाने कहां जाते!
अगर मंदिर और मस्जिद से जिनका मन नहीं बैठता, अगर शास्त्र से, परंपरा
से जिनका मन नहीं बैठता, उनके लिए अगर कोई और मार्ग न होता... अगर मिलता न मयखाना, तो ठुकराए हुए इन्सां खुदा जाने कहां जाते!
नहीं, लेकिन सभी के लिए मार्ग है। उसने तुम्हें बनाया, उसी दिन तुम्हारा मार्ग भी तुम्हारे भीतर रख दिया है। जरा पहचानो! चल-चलकर थोड़ा देखो! अपनी चाल पहचानो! वही मौलिक है। फिर उस चाल से जिस धर्म का मेल बैठ जाता हो, वही तुम्हारा धर्म है। फिर जन्म की फिक्र छोड़ो, परंपरा की फिक्र छोड़ो, भीड़ की फिक्र छोड़ो, संस्कार की फिक्र छोड़ो। जिससे तुम्हारी लय बैठ जाती हो, जिसके साथ तुम्हारी सांस लयबद्ध हो जाती हो, बस वही तुम्हारा धर्म है; उसी से चल पड़ो। और भूलकर भी यह न कहना कि दूसरे नहीं पहुंचते, क्योंकि वह अधार्मिक की दृष्टि है।
महावीर का मार्ग हैः जीतनेवाले का मार्ग। संघर्ष! संकल्प! भक्त का मार्ग हैः हारनेवाले का मार्ग। क्योंकि प्रेम हार-हारकर जीतता है। हार ही प्रेम की कला है।
मुश्किल था कुछ तो इश्क की बाजी को जीतना
कुछ जीतने के खौफ से हारे चले गये।
मुश्किल था कुछ तो इश्क की बाजी को जीतना
प्रेम की बाजी कौन कब जीता है! कोई कभी नहीं जीता! यह बाजी जीतनेवाले
के लिए है ही नहीं। यहां जिसने जीतने की कोशिश की वह प्रेम को नष्ट ही कर देता है, मार ही डालता है। यहां जीतने की चेष्टा में तो प्रेम मर ही जाता है, कुचल जाता है।
मुश्किल था कुछ तो इश्क की बाजी को जीतना
कुछ जीतने के खौफ से हारे चले गये।
मगर यहां जो हारता है वही जीतता है। भक्त हारने के मार्ग पर चल रहा है। वह कहता हैः किसी भांति मुझे इस योग्य बना दो कि तुम्हारे चरणों में सब भांति बिसर जाऊं, भूल जाऊं! मुझे ऐसी पिला दो कि फिर मुझे दुबारा होश न आये! मुझे मिटा डालो! यह तुम्हारे तीर को मेरे हृदय के बिल्कुल आर-पार हो जाने दो! मुझ पर दया करो, मुझे समाप्त करो! करुणा करो और मुझे बिल्कुल जला दो! राख भी न बचे!
भक्त मिटने के मार्ग पर है। मिटकर वह सत्य को पाता है। क्योंकि जो मिटता है, वह वही है जो मिट सकता है। कुछ है कि जो मिट ही नहीं सकता।
तो जब भक्त अपने को जलने के लिए छोड़ देता है तो राख, कूड़ा-कर्कट जल जाता है, सोना बच जाता है।
महावीर का मार्ग जीतनेवाले का मार्ग है। कोई समर्पण नहीं, संघर्ष करना है। संघर्ष कर-करके छांटना है, गलत को छोड़ना है। तो उसमें भी वही घटता है। धीरे-धीरे कूड़ा-कर्कट छूट जाता है, सोना बच जाता है।
महावीर फुटकर-फुटकर चलते हैं, एक-एक इंच लड़ते हैं। भक्त बड़ा थोक है।
वह इकट्ठा अपने को समर्पण कर देता है।
भक्ति छलांग है; महावीर यात्रा हैं। पर अपनी-अपनी मौज है। किन्हीं को छलांग में रस न होगा। वे कहेंगे, "आहिस्ता चलेंगे, सारा दृश्य देखते चलेंगे! धीरे-धीरे बढ़ेंगे, जल्दी क्या है? अनंत काल तो पड़ा है!" किन्हीं को छलांग में रस है। वे कहते हैं, जब पहुंचना ही है तो यह क्या धीरे-धीरे, यह क्या सुस्त चाल, यह क्या सीढ़ी-सीढ़ी! कूद ही जाते हैं।
अपने-अपने रस, अपनी-अपनी रुचि, अपने-अपने रुझान की बात है।
लेकिन एक बात सदा स्मरण रखनाः भक्त और साधक के मार्ग अलग हैं और उनको अलग रखना। तुम्हें जो रुचे उस पर चल जाना। ऐसा मत करना, ऐसा लोभ मत करना कि दोनों में से कुछ-कुछ बचा लें और दोनों में से कुछ-कुछ इकट्ठा कर लें। ऐसे लोभी भी हैं। लेकिन लोभी की बड़ी दुर्गति होती है। संसार में ही हो जाती है

तो परमात्मा के मार्ग पर तो बहुत दुर्गति होती है। लोभ मत करना। ऐसा मत सोचना कि थोड़ा इसमें से भी ले लें जो सुखद लगे और थोड़ा दूसरे में से भी ले लें जो सुखद लगे। तो फिर तुम बैलगाड़ी और कार को मिलाकर जो इंतजाम कर लोगे, वह चलनेवाला नहीं है। वह तुम्हें किसी गड्ढे में गिरायेगा।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के बेटों ने ऐसा कबाड़खाने से सामान ला-लाकर एक कार बना ली। जब बन गयी कार तो उन्होंने मुल्ला को भी निमंत्रित किया। मुल्ला बैठ गया। वह कोई दस-पांच कदम ही गये होंगे कि कार गिरी एक खाई में, खेत में। मुल्ला चारों खाने चित्त पड़ा है। बेटों ने कहा, कि पापा डाक्टर को बुला लाएं? उसने आंख खाली। उसने कहा, "डाक्टर को बुलाने की कोई जरूरत नहीं; पशुओं के डाक्टर को बुला लाओ।" तो उन्होंने पूछा, "आपको होश है? आप क्या कह रहे हैं? पशुओं के डाक्टर की क्या जरूरत है?" तो उसने कहा, "अगर मैं आदमी होता तो तुम्हारी इस कार में बैठता? अगर मुझमें इतनी अकल होती... । तुम तो वैटनरी डाक्टर को बुला लाओ।"
लोभ तुमसे कह सकता है कि थोड़ा भक्ति से चुन लो, थोड़े नारद के सूत्र बड़े प्यारे हैं; थोड़ा महावीर से चुन लो, महावीर के सूत्र बड़े प्यारे हैं! लेकिन "तुम" चुननेवाले होओगे और "तुम" जिन सूत्रों को चुन लोगे वह तुम्हारे अनुकूल होंगे। और तुम उन्हें छोड़ दोगे जो तुम्हारे अनुकूल नहीं मालूम होते। संभावना इसकी है कि जिन्हें तुम छोड़ोगे उनसे ही तुम्हारा रूपांतरण होता। और जो तुम चुनकर एक कृत्रिम ढांचा बना लोगे... कृत्रिम, याद रखना। अंग्रेजी में एक शब्द हैः आर्गनिक। एक तो ढांचा होता हैः सावयव। जैसे एक वृक्ष है, वृक्ष एक सावयव ढांचा है, आर्गनिक है। जैसे तुम हो, तुम्हारा शरीर एक आर्गनिक ढांचा है। अगर तुम्हारे हाथ को तोड़ दें तो हाथ अलग से न जी पायेगा; तुम्हारे साथ ही जी सकता था। उसका प्राण तुम्हारी सावयव एकता में था; अलग होकर मुर्दा हो जायेगा। तुम्हारी आंख को बाहर निकाल लें, फिर न देख पायेगी।
मुल्ला नसरुद्दीन की एक आंख कांच की है। वह मजदूरों से काम लेता है तो वहां खड़ा रहता है। एक दिन जरूरी था उसको जाना। वह रहता है मौजूद, देखता रहता है तो मजदूर काम करते हैं; चला जाता है तो काम छोड़ देते हैं। तो उसने एक चमत्कार किया... । उसने कहा कि देखो। आंख खींचकर उसने बाहर निकाल ली और उसने कहा, "यह आंख रखे जा रहा हूं टेबल पर, यह तुम्हें देखती रहेगी। धोखा देने की कोशिश मत करना।" मजदूर सकते में भी आ गये, क्योंकि कभी किसी आदमी को उन्होंने इस तरह आंख निकालते देखा नहीं था। और जब जो इतना बड़ा चमत्कार कर सकता है आंख निकालने का, तो हो सकता है आंख देखे! तो वे बेचारे बड़ी देर तक काम में लगे रहे और देखते रहे, वह टेबल पर से आंख देख रही थी। फिर एक आदमी को होश आया। उसने जाकर एक टोकरी उसके ऊपर रख दी और फिर वह आराम करने लगे। उन्होंने कहा, अब तो कोई झंझट नहीं।
मगर आंख देख ही नहीं सकती; आंख सावयव इकाई है, अलग होते ही व्यर्थ हो जाती है। हाथ अलग होते ही व्यर्थ हो जाता है।
यांत्रिक एकता एक बात है। अगर तुम कार के एक यंत्र को बाहर निकाल लो,
तो भी वह सार्थक है, बाजार में बिक सकता है। क्योंकि वह यंत्र का हिस्सा काम आ सकता है। उसका कोई उपयोग हो सकता है। हाथ को काटकर बाजार में बेचने जाओ, कोई न खरीदेगा; उसका कोई उपयोग नहीं। उसकी इकाई टूट गयी। वह निष्प्राण है।
महावीर का मार्ग आर्गनिक है, सावयव है। उसमें से एक टुकड़ा मत निकालना;
वह काम में न आयेगा। वह मुर्दा है। नारद का मार्ग भी सावयव है। सभी मार्ग सावयव हैं। उनमें से कुछ निकालना मत।
इसलिए तो मैं गांधी के प्रयोग का बहुत पक्षपाती नहीं हूंः अल्लाह ईश्वर तेरे नाम! इसका मैं पक्षपाती नहीं हूं। क्योंकि अल्लाह किसी और सावयव इकाई का हिस्सा है, ईश्वर किसी और इकाई का हिस्सा है। अल्लाह और ईश्वर को जोड़ देने से न तो आदमी हिंदू रह जाता, न मुसलमान रह जाता--आदमी बड़ी अड़चन और दुविधा में पड़ जाता है। क्योंकि अल्लाह का अपना पूरा मार्ग है; उसे हिंदू मार्ग से कुछ लेने की जरूरत नहीं है। वह पूरा है अपने में-- संपूर्ण है। हिंदू मार्ग अपने में पूरा है; उसे अल्लाह और मुसलमान से कुछ

लेने की जरूरत नहीं है। सभी मार्ग अपने में पूर्ण हैं। सभी मार्ग पहुंचा देते हैं।
इसलिए मैं तुमसे समझौतावादी बनने को नहीं कहता। अनेक समझौतावादी अपने को समन्वयवादी कहकर घोषित करते हैं, कि उन्होंने सबका समन्वय कर लिया है। डाक्टर भगवानदास ने एक किताब लिखी है सब धर्मों के समन्वय परः द इसेंसियल युनिटी आफ आल रिलिजन्स! इस तरह की व्यर्थ किताबें बहुत लिखी गई हैं। वह सब तरफ से कूड़ा-कर्कट इकट्ठा कर लेते हैं। लेकिन वह सब मुर्दा हैं। किसी की आंख ले आये, किसी का कान काट लाये, किसी की नाक ले आये, किसी के पैर ले आये, किसी तरह जमा-जमूकर नक्शा खड़ा कर दिया--इसको कहते हैंः "इसेंसियल युनिटी आफ आल रिलिजन्स!" यह सब धर्मों की एकता हो गयी! यह मरा हुआ आदमी है। इसमें कुछ भी जिंदा नहीं है। नाक जिंदा होती है किसी जिंदा आदमी के साथ; काट ली कि मुर्दा। आंख जिंदा होती है किसी जिंदा आदमी के साथ; अलग कर ली कि मुर्दा। फिर तुम अस्थि पंजर पर जमाकर बिल्कुल खड़ा कर दो, तो शायद बच्चों के डराने के काम आ जाये, या रात में दरवाजे पर खड़ा कर दो तो चोर इत्यादि पास न आयें, या खेत में खड़ा कर दो तो पशु-पक्षियों को डराए--लेकिन और किसी ज्यादा काम का नहीं है।
बहुत लोगों को सवाल उठता है। इस सदी में अनेक लोगों ने सब धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने की कोशिश की है। इस तरह की कोशिश पहले क्यों नहीं की गयी? क्या महावीर, बुद्ध, कृष्ण, और क्राइस्ट नासमझ थे? क्या डाक्टर भगवानदास और महात्मा गांधी और विनोबा ज्यादा समझदार हैं? इस सदी में यह समन्वय की जो कोशिश की गयी है, इसके गहरे में आधार राजनैतिक हैं। महावीर और बुद्ध को एक बात साफ थी कि प्रत्येक मार्ग अपने में संपूर्ण है, जीवंत है! उसमें से कुछ भी अलग किया, मर जायेगा।
तो तुम भक्ति के मार्ग पर चलना चाहो तो भक्ति के मार्ग पर चलना, लेकिन समग्ररूपेण! और कुछ छोड़ना मत उसमें से, क्योंकि जो छोड़ा जा सकता था वह नारद ने ही छोड़ दिया है। जो नहीं छोड़ा जा सकता था, बस उतना ही बचाया है। अगर महावीर का मार्ग ठीक लगे तो महावीर के मार्ग पर चलना; छोड़ना मत उसमें से कुछ, क्योंकि जो छोड़ सकते तो महावीर खुद ही छोड़ देते। कुछ भी व्यर्थ नहीं है; बिल्कुल मूलभूत, सारभूत जो है, वही बचाया है। इसमें से कुछ भी काटा नहीं जा सकता। और न कुछ जोड़ना; क्योंकि जो जोड़ा जा सकता था वह उन्होंने जोड़ दिया है। कुछ और जोड़ने की जरूरत नहीं है।
प्रत्येक धर्म बड़ी सावयव इकाई है, जीवंत इकाई है, यंत्रवत नहीं। इतना स्मरण रहे तो फिर तुम्हारी जहां रुचि हो, जहां रुझान हो, तुम चल पड़ना! तुम पहुंच जाओगे। सभी नदियां सागर की तरफ जा रही हैं!

आखिरी प्रश्नः बार-बार मन को समझाती हूं, पर समझा नहीं पाती हूं। जो दिन आपके साथ प्रेमपूर्वक बिताए, उन्हें मैं कैसे भूलूं! बार-बार आपका प्रेम याद आता रहता है। आप कहते हैं कि अतीत को भूल जाऊं; मगर यह मेरे बस की बात नहीं। आप वीतराग हो गये। अब इन आंसुओं के सिवा मेरे पास कुछ भी नहीं है। जितना प्रेम आपने दिया उतना तो किसी ने भी नहीं दिया। और मन बार-बार कहता है, आप कब आएंगे?

"सोहन" का प्रश्न है।
समझाने से तो उलझन बढ़ेगी। समझाने की कोई जरूरत नहीं, समझाने से समझ आती भी नहीं। और "सोहन" के लिए समझदारी रास्ता भी नहीं हो सकती। नासमझी में जीना! और याद आती है तो उसे हटाने की कोशिश भी मत करना। याद में पूरी तरह डूबना। याद से पीड़ा हो तो पीड़ा को होने देना, रोना, जार-जार रोना, आंसुओं को बहने देना! वे आंसू पवित्र करेंगे।
प्रेम के रास्ते पर बहे आंसू पवित्र करते हैं। और वैसी याद चिंता नहीं है। वैसी याद तो हृदय की उदभावना है।
अड़चन इसलिए पैदा हो रही है कि मन समझा रहा है कि छोड़ो भी, याद से तो पीड़ा होती है। प्रेम के स्मरण से पीड़ा होती है। यह बुद्धि है जो बीच-बीच में बाधा डाल रही है।

इस बुद्धि की मानकर चलने से कुछ भी हल न होगा। क्योंकि बुद्धि कभी हृदय को नहीं जीत पाती, अगर हृदय बलशाली हो। और सोहन के पास बलशाली हृदय है। बुद्धि भौंकती रहेगी, हृदय अपने रास्ते पर चलता जायेगा। अगर बुद्धि की सुनी तो बड़ी अड़चन पैदा होगी। क्योंकि हृदय बलशाली है और बुद्धि उसे बदल नहीं सकती।
हृदय की ही सुनो! बुद्धि की छोड़ो। बुद्धि से कहो, "छोड़ भौंकना! तू भी याद में लग! तू भी रो! तू भी हृदय की अनुषंग बन जा, हृदय की छाया बन जा!" "सोहन" के लिए कोई महावीर का रास्ता पहुंचानेवाला नहीं है, उसे तो भक्ति का ही कोई रास्ता पहुंचाएगा। तो प्रेम को भक्ति बनाओ, भाव को भक्ति बनाओ। और बेहोशी को, बेखुदी को रास्ता समझोः डूब गये, रोये, नाचे, गाये! इसलिए धीरे-धीरे दूर हट गया हूं। क्योंकि अगर मैं पास होऊं तो तुम रोओगे कैसे? अगर मैं पास होऊं और तुम्हें जब चाहिए तब मिल जाऊं, तो फिर आंसू कब बहाओगे? याद कैसे करोगे? यह भी उपाय है।
बहुतों को मैंने अपने प्रेम में डाला और फिर धीरे-धीरे दूर हट गया। दूर हट जाना उपाय है। क्योंकि प्रेम अगर दूर हट जाने से मर जाये तो प्रेम न था। और दूर हट जाने से अगर प्रेम और गहन हो जाये तो भक्ति बनने में ज्यादा देर नहीं।
भगवान दिखाई नहीं पड़ता; न तुम उसे छू सकते हो, न उससे बोल सकते हो। प्रेमी दिखायी पड़ता है, छुआ जा सकता है, बोला जा सकता है। अगर मैं तुम्हारे पास ही रहूं तो तुम्हारा प्रेम, प्रेम ही रह जायेगा। मुझे तुमसे दूर हटना होगा। इतना दूर हटना होगा कि मैं भी करीब-करीब अदृश्य हो जाऊं। अगर प्रेम फिर भी बच सका तो तुम पाओगे कि प्रेम ने धीरे-धीरे एक रूपांतरण लिया। वह अदृश्य का, अज्ञात का प्रेम बनने लगा! वही भक्ति है। धीरे-धीरे मेरी याद, मेरी याद न रह जायेगी। धीरे-धीरे मैं भी एक बहाना हो जाऊंगा। उस बहाने से परमात्मा की ही याद तुममें प्रवाहित होने लगेगी।
प्रेम का दिन भी होता है, प्रेम की रात भी होती है। अगर प्रेम का दिन
ही दिन हो, सुख ही सुख हो और प्रेम की पीड़ा न हो, तो प्रेम छिछला रह जाता है, गहरा नहीं होता। पीड़ा के बिना कोई भी चीज जगत में गहरी नहीं होती।
सुख बड़ा ऊपर-ऊपर है, दुख बड़ा गहरा है। सुख की कहीं गहराई होती है? वह
तो पानी के ऊपर-ऊपर की लहरें हैं। दुख की गहराई होती है। इसलिए दुख तुम्हारे हृदय को जितना गहरा छूता है उतना सुख कभी नहीं छू पाता। सुखी आदमी को तुम हमेशा छिछला पाओगे। दुखी आदमी के जीवन में एक गहराई होती है। और धन्यभागी हैं वे, जो प्रेम के कारण दुखी हैं! क्योंकि कारण पर बहुत कुछ निर्भर करेगा। कोई इसलिए दुखी है कि धन नहीं मिला। धन मिलकर ही बहुत गहराई नहीं मिलती, तो धन के न मिलने से क्या खाक गहराई मिलेगी? उसका दुख व्यर्थ के लिए है। कोई इसलिए रो रहा है कि पद नहीं मिला। धन्यभागी हैं वे जो इसलिए रो रहे हैं कि प्रेम एक खाली जगह छोड़ गया है! उस खाली जगह को अपना पूजागृह बनाओ। प्रेम ने जहां हृदय को छुआ है और पीड़ा को जगाया है, उस पीड़ा को अपने से विपरीत मत समझो--उसके साथ बहो, उसको स्वीकार करो! वह पीड़ा तुम्हें मांजेगी। वह पीड़ा तुम्हें निखारेगी। वह पीड़ा अग्नि की तरह सिद्ध होगी और तुम्हारा स्वर्ण कुंदन बनेगा।
सुबह तेरी है तो ऐ खालिके-सुबह!
रात है किसकी करम फर्माई?
--हे परमात्मा, अगर सुबह तूने बनायी तो फिर रात किसकी अनुकंपा का फल है?
अगर प्रेम से सुख मिलता है तो प्रेम से दुख भी मिलेगा। प्रेम के दुख
को स्वीकार करना! जिसने सिर्फ प्रेम के सुख को स्वीकार किया उसने आधे को स्वीकार किया; उसके पूरे प्राणों पर प्रेम का विस्तार न हो सकेगा। प्रेम का दिन स्वीकारा, प्रेम की रात भी स्वीकारना। और अगर दोनों स्वीकार हो गये तो ज्यादा देर न लगेगी कि परमात्मा सब तरफ दिखायी पड़ने लगे। दुख भी उसी का है, इसलिए सौभाग्य है।
तू मेरे दिल में ही नहीं सारी कायनात में है
तू दिन की तरह निहां इस अंधेरी रात में है।

--फिर धीरे-धीरे दिन की भांति रात में भी वही छिपा मालूम पड़ेगा।
तू दिन की तरह निहां इस अंधेरी रात में है।
अंधेरा भी फिर उसका ही स्पर्श देगा।
अनुपस्थिति भी जब उसकी उपस्थिति बन जाये तो प्रेम भक्ति बनती है।
अनुपस्थिति भी जब उसकी उपस्थिति मालूम पड़ने लगे... क्योंकि अनुपस्थिति भी उसी की है न! उसी से जुड़ी है। तो अनुपस्थिति भी फिर परमात्मा की ही हो गयी, प्रभु की हो गयी, प्रेम की हो गयी! तो अनुपस्थिति को भरने की कोशिश मत करना। उसको जीना।
तू मेरे दिल में ही नहीं सारी कायनात में है।
और फिर धीरे-धीरे जब दिल में दुख और सुख दोनों क्षणों में वह दिखायी पड़ने लगे तो सारे संसार में भी दिखायी पड़ने लगेगा।
प्रेमी चाहता क्या है? प्रेमी चाहता है कि प्रेमी में लीन हो जाये। भक्त चाहता क्या है? --कि भगवान में डूब जाये!
तू है मुहीते-बेकरां मैं हूं जरा-सी आबे-जू
या मुझे हमकिनार कर, या मुझे बे-किनार कर!
तू है मुहीते-बेकरां--तू है बड़ा सागर! मैं हूं जरा-सी आबे-जू--मैं हूं
एक छोटा-सा झरना। या मुझे हमकिनार कर--या तो मुझे अपने साथ ले ले... या मुझे बेकिनार कर--या मुझे मेरे किनारों से मुक्त कर दे।
लेकिन दोनों ही बातों का एक ही अर्थ होता है। या तो तू मुझे अपने साथ
ले ले, सागर बना ले, और या फिर मुझे बेकिनारा कर दे। मेरे किनारे मुझ से छीन ले! या तो मुझे डुबा ले या मेरे किनारे मुझसे छीन ले! लेकिन दोनों हालत में वह जो छोटा-सा झरना है, सागर हो जायेगा।
तड़फ क्या है? पीड़ा क्या है? पीड़ा प्रेमी के मिलने से थोड़े ही पूरी होती है--पीड़ा प्रेमी में खो जाने से पूरी होती है। यही तो भक्त और प्रेमी का फर्क है।
अगर तुम्हारे जीवन में मेरे प्रति प्रेम है और प्रेम अगर भक्ति में न रूपांतरित हुआ, तो यह प्रेम भी बंधन बन जायेगा। फर्क समझ लो। प्रेमी चाहता है, जिससे प्रेम किया वह मिल जाये। भक्त चाहता है, जिससे प्रेम किया उसमें हम खो जायें। प्रेमी प्रेम-पात्र को पास लाना चाहता है। भक्त प्रेम-पात्र के पास जाना चाहता है। बड़ा फर्क है। प्रेमी चाहता है, जिससे प्रेम किया उस पर कब्जा हो जाये। भक्त चाहता है, जिसे प्रेम किया उसका मुझ पर कब्जा हो जाये।
ध्यान रखना, प्रेमी तो हारेगा; क्योंकि यह कब्जा संभव नहीं है। भक्त जीतेगा; क्योंकि भक्त कब्जा करना ही नहीं चाहता, सिर्फ कब्जा देना चाहता है।
तू है मुहीते-बेकरां, मैं हूं जरा-सी आबे-जू
या मुझे हमकिनार कर, या मुझे बेकिनार कर।
यह जो दुख "सोहन" को प्रतीत हो रहा है, गहरा उसे प्रतीत हो रहा है, इस दुख को सुख में बदला जा सकता है। इस पीड़ा से बड़े फूल खिल सकते हैं। लेकिन थोड़ी समझ में क्रांति लानी जरूरी है।
हासिले-जीस्त मसर्रत को समझनेवाले
एक नफस गम भी की दमभर तो खुदा याद रहे।
थोड़ा-सा दुख भी चाहिए, दमभर तो खुदा याद रहे! अगर सुख ही सुख हो तो याद भूल जाती है। इसीलिए तो लोग सुख में याद नहीं करते, दुख में याद करते हैं। और जिसने यह सार समझ लिया कि दुख में याद गहन होती है, वह फिर दुख से न छूटना चाहेगा; वह तो दुख को भी सौभाग्य समझेगा। और अगर दुख को सौभाग्य समझ लिया तो सब घट गया। क्योंकि वहीं तो मनुष्य की उलझन हैः दुख का अस्वीकार; सुख का स्वीकार। जब दुख का भी स्वीकार हो गया तो दुख दुख न रहा।
ऐसा समझो कि जिस दुख को हम स्वीकार कर लेते हैं वह सुख हो जाता है। स्वीकार करते ही सुख हो जाता है। दुख का होना हमारे अस्वीकार में है।
स्वीकार होते ही दुख का गुणधर्म बदल जाता है।
मुझे ख्याल में है। जिन-जिनसे भी प्रेम किया है, उनसे मैं धीरे-धीरे अपने को दूर हटाऊंगा ही। प्रेम तो शुरुआत है। वहीं रुक नहीं जाना है। दूर

हटूंगा तो प्रेम भक्ति में बदल सकता है। अगर होगा तो भक्ति में बदल जायेगा। अगर नहीं होगा तो नाराजगी में बदल जायेगा। तो कुछ हैं जो मेरे पास से नाराज होकर हट जाते हैं। "सोहन" उनमें से नहीं है; हटनेवाली नहीं है। लाख हटाने की चेष्टा करूं, वह हटनेवाली नहीं है। तो फिर उसकी हार भी जीत में बदल जायेगी।
गुलशन में सबा को जुस्तजू तेरी है
बुलबुल की जबां पे गुफ्तगू तेरी है
हर रंग में जलवा है तेरी कुदरत का
जिस फूल को सूंघता हूं, बू तेरी है।
तो जो प्रेम मेरे प्रति है, उसे और फैलाओ! उसे इतना फैलाओ कि उस प्रेम
के लिए कोई पता ठिकाना न रह जाये। मुझसे सीखो; लेकिन मुझ पर रुको मत। मुझसे चलो, लेकिन मुझ पर ठहरो मत।
जैनों का शब्द तीर्थंकर बड़ा बहुमूल्य है। तीर्थंकर का अर्थ होता हैः घाट बनानेवाला। घाट बना दिया, घाट बैठने के लिए नहीं है; दूर जाने के लिए है, दूसरे घाट जाने के लिए है।
तो मैं अगर तुम्हारा घाट बन जाऊं और फिर तुम वहीं रुक जाओ और वहीं खील ठोंक दो, और वहीं नाव को अटका लो, तो यह तो काम का न हुआ। मैं तुम्हें मेरे किनारे पर कील ठोंककर रुकने न दूंगा। तुम लाख ठोंको, मैं उखाड़ता रहूंगा। एक न एक दिन तुम्हें दूसरे किनारे की तरफ जाने की तैयारी करनी होगी। उस यात्रा के लिए तैयार रहो। निश्चित ही दूसरी तरफ जाने में यह किनारा दूर होता हुआ मालूम होगा। लेकिन घबड़ाओ मत, मैं दूसरे पर मिल जाऊंगा--बहुत बड़ा होकर!
पूछा है, "आप कब आएंगे?"
दूसरे किनारे पर! अब इस किनारे पर नहीं। और दूसरे किनारे पर जिस रूप में आऊंगा, वह रूप शायद एकदम से पहचान में भी न आयेगा। दूसरे किनारे पर जिस ढंग से आऊंगा शायद वह ढंग एकदम से समझ में भी न आयेगा।
गुलशन में सबा को जुस्तजू तेरी है
बुलबुल की जबां पे गुफ्तगू तेरी है
हर रंग में जलवा है तेरी कुदरत का
जिस फूल को सूंघता हूं, बू तेरी है।
वह पहचान तो विराट की पहचान होगी। उसे अभी से पहचानने लगो। थोड़े दिन
यह देह होगी, फिर यह देह भी जायेगी; तब मैं तुमसे और भी दूर हो जाऊंगा। ऐसे धीरे-धीरे एक-एक कदम तुमसे दूर होता जाऊंगा। थोड़ी देर बाद यह देह भी खो जायेगी। फिर तुम मुझे किसी तरफ न देख सकोगे। सब तरफ देख पाओगे तो ही देख सकोगे। उसकी तैयारी करवा रहा हूं। उसका धीरे-धीरे तुम्हें अभ्यास करवा रहा हूं।
ये क्षण बहुमूल्य हैं। इन क्षणों में मिले हुए सुख में तो सुखी होओ ही, इन क्षणों में मिले दुख में भी सुखी होओ। और बुद्धि की मत सुनो! हृदय की सुनो! आऊंगा जरूर, लेकिन दूसरे किनारे पर। आना सुनिश्चित है, लेकिन तुम इस किनारे पर मत रुके रह जाना; अन्यथा मैं उस किनारे प्रतीक्षा करूं और तुम इसी किनारे बने रहो! इस किनारे से तो मेरे भी जाने के दिन करीब आयेंगे। इसके पहले कि मैं इस किनारे से विदा होऊं, तुम अपनी खूंटी उखाड़ लेना, तुम अपनी नाव को चला देना।
दूसरा किनारा दूर है और दिखाई भी नहीं पड़ता। लेकिन जिस नदी का एक किनारा है उसका दूसरा भी है ही, दिखाई पड़े न दिखाई पड़े। कहीं एक किनारे की कोई नदी हुई है?
तो प्रेम का एक रूप जाना, एक किनारा जाना--दूसरा भी है। वही भक्ति है। मनुष्य को प्रेम किया, शुभ है। लेकिन वहां रुक मत जाना। वह प्रेम धीरे-धीरे उठे लपट की तरह और परमात्मा के प्रेम में रूपांतरित हो। मेरा प्रेम तुम्हें मुक्त करे, तुम्हें मोक्ष दे, तो ही मेरा प्रेम है; बांध ले, अटका दे, तो फिर मेरा प्रेम नहीं।
प्रेम सदा ही मोक्ष का द्वार है!
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
सत्ताईसवां प्रवचन

साधु का सेवनः आत्मसेवन

हिमाच्छादित गौरीशंकर के शिखर करीब आने लगे। महावीर क्रमशः ऊंचाइयों
और ऊंचाइयों पर उड़ रहे हैं! समझना क्रमशः कठिन होता जायेगा। क्योंकि जिन ऊंचाइयों की हमें आदत नहीं है, उन ऊंचाइयों को समझना तो दूर, उन ऊंचाइयों पर श्वास लेना भी कठिन हो जाता है। और जिन ऊंचाइयों का हमें कोई अनुभव नहीं, उनके संबंध में शब्द भला हमें सुनायी पड़ जायें, अर्थ का विस्फोट नहीं होता है। गुजर जाते हैं शब्द हमारे पास से। अगर बहुत बार सुने हुए हैं तो ऐसी भ्रांति भी होती है कि समझ में आ गये।
इसे स्मरण रखना कि महावीर जो कह रहे हैं, वह अगर समझ में न आये तो स्वाभाविक है; समझ में आ जाये तो संदेह करना, क्योंकि वही अस्वाभाविक है। अनुभव से ही समझ में आयेगा। उसके पहले ज्यादा से ज्यादा इतना ही हो सकता है कि अनुभव के लिए एक प्यास प्रज्वलित हो जाये, कि अनुभव की आकांक्षा पैदा हो, कि काश, ऐसी ऊंचाइयों पर हम भी उड़ सकते! जिन दूर की बातों को महावीर पास ला रहे हैं, काश हमारे भी जीवन की संपदा उन्हीं स्वर्ण-रत्नों से बन सकती!
प्यास उठ आये, बस इतना काफी है।... तो समझ में न आये, तो धैर्य रखना। घबड़ाना मत! और ऐसा मत सोच लेना कि हमारी समझ में आएगा ही नहीं। और ऐसा तो भूलकर भी मत सोच लेना कि यह बात समझने योग्य ही नहीं है। क्योंकि हमारा मन इस तरह के बहुत उपाय करता है। अहंकारी मन हो तो वह कह देता है, इन बातों में कुछ सार नहीं। इस तरह हम अपने अहंकार को सुरक्षित कर लेते है। इस तरह ऊंचाई पास आती थी तो हम उससे दूर हट जाते हैं। क्योंकि ऊंचाई के पास हमें अपनी नीचाई मालूम पड़ने लगती है!
ऊंचाइयों से दूर मत हटना। उन्हें बुलाना! उनकी खोज करना! तुम्हें जितने बड़े शिखर मिल जायें, उतना ही शुभ है। क्योंकि जितने तुम्हें शिखर मिलें, उतने ही अहंकार के विसर्जन की संभावना बढ़ेगी, उतना ही तुम छोड़ पाओगे यह "मैं" का ख्याल। इसीलिए तो तीर्थंकरों, प्रबुद्ध पुरुषों को हमने बहुत स्वागत से कभी स्वीकार नहीं किया। उनकी मौजूदगी हमें हीन करती मालूम पड़ने लगी। उनके सामने हम खड़े हुए तो छोटे मालूम होने लगे। उनके पास हम आये, तो हम जैसे जमीन पर चींटियां रेंगती हों, ऐसे रेंगते हुए मालूम होने लगे। तो दो ही उपाय थे--या तो हम भी उनके साथ उड़ना सीखें और या हम उन्हें इनकार ही कर दें कि यह सब कल्पना-जाल है; कि ये दूर की बातें सब काव्य-शास्त्र हैं; कि ये बातें कहीं हैं नहीं; ये सब बातें हैं। या हम यह कहकर हट जायें कि ये बातें हमारी समझ में नहीं पड़तीं, तो जो समझ में ही नहीं पड़ती हैं उन बातों को मानकर हम चलें कैसे? वहां भी भूल हो जायेगी। ध्यान रखनाः जो तुम्हारे समझ में नहीं पड़ता वह इसलिए समझ में नहीं पड़ता कि उसका कोई अनुभव नहीं हुआ है। अनुभव के बिना समझ कैसे होगी? अनुभव के बिना कोई अंडरस्टैंडिंग, कोई प्रज्ञा का प्रादुर्भाव नहीं होता। तो तुम यह मत कहना कि जब समझ में ही नहीं आता तो हम चलें कैसे? क्योंकि चलोगे, तो ही समझ में आयेगा। यह तो तुमने अगर ऐसा मान लिया तो अपने जीवन में एक ऐसे पत्थर को रख लिया कि उसको पार करना फिर असंभव हो जायेगा।
कोई प्रेम को जानता नहीं; प्रेम करता है तब जानता है। और न ही कोई परमात्मा को जानता है, जब तक उतरता नहीं उस गहराई में। और न ही कोई आत्मा को जानता है, जब तक डूबता नहीं अपने आत्यंतिक केंद्र पर।
तो समझ नहीं है, इसको पत्थर की तरह उपयोग मत कर लेना। समझ आयेगी ही अनुभव से। इसलिए समझ से भी ज्यादा जरूरी है साहस। इसे मैं फिर से दोहराऊंः अध्यात्म के मार्ग पर समझ से भी ज्यादा जरूरी है साहस। क्योंकि साहस हो तो आदमी अनुभव में उतरता है; अनुभव में उतरे तो समझ आती है। इसलिए जिनको तुम समझदार कहते हो वह वंचित ही रह जाते हैं। क्योंकि समझदार यह कहेगा, यह अपनी समझ में नहीं आती। जो समझ में नहीं आती, चलूं कैसे? पता नहीं कोई भटकाव न हो जाये! पता नहीं जो हाथ में है, कहीं वह भी न खो जाये! ये बड़ी दूर

की बातें, आकाश की बातें, कहीं मेरी पृथ्वी को उजाड़ न दें! एक छोटा घर बनाया है--वासना का, तृष्णा का--एक छोटा संसार रचाया है। ये कहीं परमात्मा और आत्मा के ख्याल, यह दिव्य प्यास, कहीं मेरी सारी घर-गृहस्थी को डांवांडोल न कर दे।
तो समझदार आदमी कहता है, जब समझ में आयेगी तब करेंगे। साहसी कहता है, समझ में नहीं आती तो करेंगे और देखेंगे और समझेंगे।
साहस! वस्तुतः दुस्साहस चाहिए! इसलिए तो महावीर को हमने महावीर नाम दिया। उन्होंने बड़ा दुस्साहस किया। वह समझ के लिए न रुके। वह अनुभव में उतर गये।... जुआरी की हिम्मत! सब दांव पर लगा दिया। फिर समझ भी आयी। क्योंकि समझ अनुभव की छाया की तरह आती है।
तो दुनिया में दो तरह की समझ है। एक तो समझदारों की, जिनको तुम समझदार कहते हो--उनकी समझ अनुभव से नहीं आती; उनकी समझ सिर्फ बौद्धिक है, सिर्फ बुद्धि की है। वह शब्दों को समझ लेते हैं; शब्दों का संयोजन समझ लेते हैं; शब्दों का व्याकरण समझ लेते हैं; शब्दों का अर्थ भी बिठा लेते हैं--लेकिन बस सब खेल शब्दों का होता है!
शब्दों को हटा लो तो उनके पीछे कोई समझ बचेगी नहीं; शब्द के हटते ही सारी समझ हट जायेगी। तो समझ उनकी शब्दों का ही जोड़ है।
और एक ज्ञानी की समझ है; तुम उससे सब शब्द छीन लो तो भी उसकी समझ न छीन सकोगे। क्योंकि उसकी समझ अनुभव की है, शब्दों की नहीं। अगर शब्दों का उसने उपयोग भी किया है तो अपनी समझ को तुम तक पहुंचाने के लिए किया है। शब्दों के उपयोग से उसने समझ को पाया नहीं है। वह बौद्धिक नहीं है--अस्तित्वगत है, एक्जीसटेंशियल है। उसने जाना है, जीया है। तो तुम उसके सारे शब्द छीन लो, तब भी तुम उसकी समझ न छीन पाओगे। उसकी समझ शब्दों से बहुत गहरी है। उसने मौन में समझ पायी है। उसने तो खुद ही शब्द छोड़ दिये थे, तब समझ आयी है।
तो इसे ख्याल रखना। और एक खतरा है कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इन वचनों
को समझ लेंगे, समझते मालूम पड़ेंगे; क्योंकि ये वचन कोई बहुत दुरूह नहीं हैं। इनकी दुरूहता अगर कहीं है तो अनुभव में है, वचनों में नहीं है। वचन तो बड़े सीधे-साफ हैं। महावीर ने एक भी जटिल विचार का उपयोग नहीं किया--कोई ज्ञानी पुरुष कभी नहीं किया है। जटिल विचारों का उपयोग तो वे लोग करते हैं जिनके पास कुछ भी नहीं है; और केवल बड़े-बड़े शब्दों की छाया में अपने अंधकार को छिपा लेना चाहते हैं।
दार्शनिक बड़े-बड़े शब्दों का उपयोग करते हैं; बड़े-बड़े लंबे वचनों का उपयोग करते हैं। तुम उनके वचनों के बीहड़ में ही खो जाओगे। तुम्हें यह पक्का हो ही न पायेगा कि वे क्या कहना चाहते थे। उनके पास कहने को कुछ था भी नहीं। लेकिन जो नहीं था उनके पास कहने को, उसको उन्होंने इस ढंग से फैलाया कि शब्द-जाल ऐसा बड़ा हो गया कि तुम समझ ही न पाये। न समझने के कारण कई बार तुम्हें लगता है, बड़ी गहरी बात है।
महावीर जैसे पुरुष सुलझाने को हैं, उलझाने को नहीं। उनके वचन सीधे- साफ हैं; दो टूक हैं; गणित की तरह स्पष्ट हैं। दो और दो चार--बस ऐसे ही उनके वचन हैं।
तो खतरा यह भी है कि तुम्हें वचन सुनकर ऐसा लगे कि अरे, समझ गये! वहां
मत रुक जाना। वह समझ कुछ काम न आयेगी। अगर तुम महावीर के वचनों को सुनकर समझ गये तो फिर महावीर ने बारह वर्ष मौन और ध्यान साधा, तो बहुत कम बुद्धि के आदमी रहे होंगे। तुम सुनकर समझ गये। महावीर को बारह वर्ष लगे, कठोर तपश्चर्या के, गहन संघर्ष के, रत्ती-रत्ती अपने को छांटा और काटा और जलाया, निखारा, जब अंतरज्योति पूरी शुद्ध हो गयी तब उन्हें यह समझ पैदा हुई। तुम्हारा धुएं से भरा हुआ मन, ईंधन गीला, लपट कहीं दिखायी नहीं पड़ती, बस धुआं ही धुआं फैलता मालूम होता है--इसमें ये शब्द तुम्हें याद हो सकते हैं। बहुत से पंडितों को याद हैं। इन शब्दों को तुम तोते की तरह कंठस्थ कर ले सकते हो। उस याददाश्त को तुम प्रज्ञा मत समझ लेना।
तो दो बातें स्मरण रखनाः समझ में न आयें तो इनकार मत करना; और समझ में
आ जायें तो भी वहीं मत रुक जाना। इन दोनों के बीच में मार्ग है। इतना समझ में आ जाये कि कुछ पाने योग्य है। इतना ज्यादा भी समझ में न आ जाये कि पा

लिया। इतना समझ में आ जाये कि कुछ पाने योग्य है। प्यास जग जाये और यात्रा शुरू हो जाये। तो किसी दिन अनुभव भी घटेगा। तुम भी उड़ोगे उन आकाश की ऊंचाइयों में। तुम्हें भी पंख लगेंगे!
"जो सब नय-पक्षों से रहित है, वही समयसार है। उसी को सम्यक दर्शन और सम्यकज्ञान की संज्ञा दी है।"
सम्मदंसणणाणं, ऐसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं।
सव्वणयपक्खरहिदो, भणिदो जो सो समयसारो।।
"सव्वणयपक्खरहिदो"--जिसका मन सभी पक्षों से रहित है, जो सब नय-पक्षों
से शून्य है, वही समयसार है। समयसार का अर्थ होता हैः वही आत्मा की सार स्थिति है। वही अस्तित्व का निचोड़ है। वहीं तुम हो, वहीं तुम्हारी आत्मा है--जहां न कोई नय है, न कोई पक्ष है। इसे समझें।
साधारणतः तो हम नय-पक्षों से भरे हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है। जब तक तुम हिंदू हो, जैन हो, ईसाई हो, तब तक तुम्हें समयसार का पता न चलेगा। आत्मा का रस तुम्हें उपलब्ध न होगा। क्योंकि आत्मा न हिंदू, न मुसलमान, न जैन है।
जब तक तुम कहते हो, "मेरी ऐसी मान्यता है", तब तक तुम सत्य को न जान सकोगे, क्योंकि सभी मान्यताएं सत्य को जानने में बाधा बन जाती हैं। मान्यता का अर्थ है कि बिना जाने तुम जानते हो। तो जिसने बिना जाने जान लिया है, वह जान कैसे सकेगा फिर? मान्यता-शून्य होने का अर्थ हैः मुझे पता नहीं; इसलिए मैं किसी मान्यता को कैसे पकडूं? मैं कैसे कहूं कि क्या ठीक है? मुझे कुछ भी पता नहीं है।
तो ऐसा जो अज्ञान में खड़ा हो जाता है शांत चित्त से, जबर्दस्ती ज्ञान
को नहीं पकड़ लेता, छिपाता नहीं ज्ञान के आवरण में अपने को, ज्ञान के वस्त्रों में अपने को ढांकता नहीं, जो अपने अज्ञान को स्वीकार कर लेता है-- वही व्यक्ति ज्ञान की तरफ पहला कदम उठाता है। यह बड़ा विरोधाभासी लगेगा। ज्ञान की तरफ पहला कदम अपने अज्ञान के साथ ईमानदारी से खड़े हो जाना है। हम में से बहुत कम लोग ही ईमानदारी से खड़े होते हैं अज्ञान के साथ। अज्ञान को स्वीकार करने में अहंकार को चोट लगती है। अहंकार चाहता है दावा करना कि मैं जानता हूं। तो हम शास्त्र से, परंपरा से, अन्यों से, शिक्षकों से, गुरुओं से, कहीं न कहीं से इकट्ठा कर लेते हैं ज्ञान।
तुम्हारा ज्ञान सभी कुछ नय-पक्ष है। वह तुमने इकट्ठा किया है, जाना नहीं है। पक्षपात से भरे हो तुम। हर चीज के संबंध में तुमने कुछ तय कर लिया है। तुम तय करके बैठे हो। तुम तय करके बैठे हो, इसलिए तुम्हारी आंख खाली नहीं है; पक्ष से आंख दबी है। पक्ष की कंकड़ी तुम्हारी आंख में पड़ी है। तो कंकड़ी जब आंख में पड़ी हो तो फिर कुछ नहीं दिखाई पड़ता।
महावीर कहते हैं, आंख खाली चाहिए, निर्मल चाहिए! आंख ऐसी चाहिए कि सिर्फ देखती हो और आंख में कुछ न पड़ा हो। क्योंकि अगर आंख में कुछ भी पड़ा हो तो जो तुम देखोगे वह विकृत हो जायेगा।
सोचो... अगर तुम जैन हो, पढ़ो गीता--तुम्हें समझ में आ जायेगा! तुम गीता
पढ़ ही न पाओगे, तुम्हें रस ही न आयेगा। घड़ी-घड़ी तुम्हारा जैन धर्म बीच में खड़ा हो जायेगा। तुम्हें ऐसा लगेगा, ये कृष्ण तो अर्जुन को भ्रष्ट करने लगे। ऐसा तुम कहो या न कहो, तुम्हारे भीतर यह पक्ष खड़ा रहेगा। आज तक किसी जैन ने गीता पर कोई वक्तव्य नहीं दिया, कोई महत्वपूर्ण बात नहीं कही। गीता को किनारे हटा दिया है।
हिंदू से कहो कि महावीर के वचन सुने, पढ़े? पढ़ भी ले तो मुर्दा भाव से
पढ़ जायेगा। क्योंकि भीतर तो वह जानता ही है कि सब गलत है। हिंदू से कहो कुरान को पढ़े, तो भीतर तो वह मानता ही है कि "क्या रखा है! कहां वेद, कहां उपनिषद! क्या रखा है कुरान में? वही कुरान के माननेवाले की स्थिति है। वही बाइबिल को माननेवाले की स्थिति है। बाइबिल को माननेवाला जब वेद पढ़ता है तो उसे लगता है, बस गांव के ग्रामीण गडरियों के गीत हैं, इससे ज्यादा नहीं। जब वेद को माननेवाला आर्यसमाजी पंडित बाइबिल को पढ़ता है तो उसमें से कुछ भी सार नहीं पाता; उसमें से सब कचरा-कूड़ा इकट्ठा कर लेता है।

अगर तुम्हें इस दृष्टि की, पक्षपात से भरी दृष्टि की, ठीक-ठीक उपमा चाहिए हो तो दयानंद का ग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" पढ़ना चाहिए। वह पक्षपात से भरी आंख का, उससे ज्वलंत प्रमाण कहीं खोजना मुश्किल है। तो सभी में भूलें निकाल ली हैं उन्होंने--और बेहूदी भूलें, जो कि निकालनेवाले के मन में छिपी हैं, जो कहीं भी नहीं हैं। लेकिन निकालनेवाला पहले से मानकर बैठा है।
जो तुम मानकर बैठ जाते हो वह तुम खोज भी लोगे। अगर तुम्हीं मानकर बैठे
हो तो फिर मुश्किल है। तुमने जानने के पहले अगर धारणा तय कर रखी है, तो तुम सत्य को कभी भी न जान पाओगे; तुम सत्य को कभी मौका न दोगे कि तुम्हारे सामने प्रगट हो जाये।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने एक मित्र दर्जी से कपड़े बनवाये। जब वह कपड़े पहनने गया, उठाने गया, दर्जी ने उसे पहनाकर बताया। उसे कपड़े जंचे नहीं; कुछ बेहूदे थे; कुछ अटपटे थे। कुछ शरीर पर बैठते भी न थे। लेकिन दर्जी प्रशंसा मारे जा रहा था। वह गुणगान किए जा रहा था। वह कह रहा था, "देखो तो जरा दाहिने आईने में! तुम्हारे मित्र भी तुम्हें पहचान न पायेंगे। तुम्हारी पत्नी भी शायद ही तुमको पहचान पाए। इतने सुंदर मालूम हो रहे हो... ! जरा तुम बाहर तो जाओ, जरा सड़क पर चक्कर लगाकर आओ!"
मुल्ला बाहर गया--संकोच से भरा हुआ; क्योंकि बड़ा अटपटा-सा लग रहा था उसे उन कपड़ों में। जल्दी ही भीतर आ गया। जब वह भीतर आया तो दर्जी, जो उसका पुराना मित्र, बोला, "आइये राजकपूर साहब! बहुत दिनों बाद आये!"
अब दर्जी मानकर ही बैठा है कि गजब के कपड़े उसने सी दिये! जो तुम मानकर बैठे हो, तुम उसे सिद्ध करने की चेष्टा में लग जाते हो, जाने-अनजाने। तुम सब तरह से प्रमाण जुटाते हो। विपरीत प्रमाणों को तुम देखते ही नहीं। तुम्हारी आंखें चुनाव करने लगती हैं। जो पक्ष में पड़ता है तुम्हारे पक्ष के, वह तुम चुन लेते हो; जो विपक्ष में पड़ता है, वह तुम छोड़ देते हो।
सत्य को जानने का यह ढंग न हुआ। यह तो असत्य में जीने का ढंग हुआ। तो महावीर कहते हैंः
सम्मदंसणणाणं, एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं!
सव्वणयपक्खरहिदो, भणिदो जो सो समयसारो।।
जो सब नय-पक्षों से रहित है; जिसकी कोई धारणा नहीं, मान्यता नहीं; जिसका कोई विश्वास-अविश्वास नहीं; जो नग्न चित्त है; जो दिगंबर है; जिसके ऊपर कोई आवरण नहीं; आकाश ही जिसका आवरण है; विराट ही जिसका आवरण है; इससे कम को जिसने स्वीकार नहीं किया है--ऐसा नग्न चित्त, शांत मन, निष्पक्ष व्यक्ति--वही समयसार है। वह जान लेगा आत्मा का सारभूत, आत्मा का सत्य, उसे अस्तित्व की पहचान मिलेगी। वह अस्तित्व के मंदिर में प्रवेश पा सकेगा। पात्रता, पक्षपात रहित हो जाना है।
महावीर के पास लोग आते, प्रश्न पूछते, तो महावीर कहते, "तुम कुछ पहले
से ही मानते तो नहीं हो? अगर मानते हो तो बात व्यर्थ, फिर संवाद न हो सकेगा।"
जब कोई मानकर ही चलता है तो विवाद हो सकता है, संवाद नहीं हो सकता। जब कुछ मानकर कोई भी नहीं चलता; जब कोई तैयार है सत्य के साथ जहां ले जाये; जब कोई इतना हिम्मतवर है कि सत्य जो दिखाएगा उसे स्वीकार करूंगा--तभी, महावीर कहते हैं, संवाद हो सकता है। तब महावीर कहते हैं, ज्यादा कुछ कहने को भी नहीं है। क्योंकि सत्य को कहा तो नहीं जा सकता। मैं कुछ इशारे कर देता हूं, तुम इनका पालन कर लो। इन इशारों के पालन करने से धीरे-धीरे तुम्हें भी वही अनुभव होने लगेगा जो मुझे हो रहा है। जिस द्वार से खड़े होकर मैं देख रहा हूं जीवन को, तुम भी देख सकोगे मेरे करीब आ जाओ। लेकिन अगर तुम मानते हो कि तुम्हें द्वार मिल ही गया है, तो फिर तुम मेरे करीब न आओगे और व्यर्थ खींचा-तानी होगी।
दुनिया में जहां भी जितनी बातचीत हो रही है, तुम अगर गौर करोगे तो बातचीत तो कहीं मुश्किल से होती है। संवाद कहां है? विवाद है। चाहे प्रगट हो, चाहे अप्रगट हो। जब भी दो व्यक्ति बात करते हैं तो खुलते कहां हैं? अपनी-अपनी चेष्टा में रत रहते हैं।

महावीर ने कोई शास्त्रार्थ नहीं किया; किसी से कोई विवाद नहीं किया। महावीर शंकराचार्य की तरह मुल्क में नहीं घूमे विवाद करते। महावीर की पकड़ बड़ी गहरी है। महावीर कहते हैं, विवाद से क्या होगा? अगर कोई पहले से मानकर बैठा है तो उसे मनाया नहीं जा सकता। और अगर जबर्दस्ती उसे चुप करा दिया जाये, तर्क से हो सकता है, तो भी उसका हृदय थोड़े ही राजी होता है! कभी-कभी ऐसा हुआ है कि तर्क में तुम किसी से हार गये हो, तो भी दिल में तो तुम घाव लिए रहे हो हो कि ठीक है, देखेंगे; आज जरा मुश्किल हो गयी, हम तर्क ठीक न खोज पाये! चुप कर दिये गये हो तुम, लेकिन तुम्हारा हृदय रूपांतरित तो नहीं हुआ। जबर्दस्ती तुम्हारी जबान रोक दी गयी है। यह हो सकता है, कोई तुमसे ज्यादा कुशल हो तर्क में।
तो तर्क में जो जीत जाता है, जरूरी नहीं कि उसके पास सत्य हो। और तर्क में जो हार जाता है जरूरी नहीं कि उसके पास सत्य न हो। यह भी हो सकता है, जिसके पास सत्य है उसके पास सत्य को सिद्ध करने का तर्क न हो। यह भी हो सकता है, जिसके पास सत्य को सिद्ध करने के तर्क हैं उसके पास कोई सत्य न हो। और जो कोई तर्क के द्वारा तुम्हें पराजित कर देता है वह केवल इतना ही सिद्ध कर रहा है कि वह तुमसे ज्यादा कुशल है, तुमसे ज्यादा अनुभवी है; इतना। उससे कुछ सिद्ध नहीं होता। और यह भी हो सकता है कि वह तुम्हारे पीछे चलने लगे, हार जाये तो तुम्हारे पीछे चले, तुम्हें मान ले। कल कुछ और मानता था, आज तुम्हें मान ले--लेकिन मान्यता तो मान्यता है। कल मानता था, ईश्वर नहीं है; आज तुमने तर्क दे-देकर सिद्ध कर दिया और उसने मान लिया कि ईश्वर है। कल एक मान्यता से भरा था, आज दूसरी मान्यता से भर गया है--विपरीत मान्यता से; लेकिन मान्यता तो दोनों ही मान्यताएं हैं। ज्ञान का जन्म न हुआ।
महावीर कहते हैं, एक पक्ष को दूसरे में नहीं बदलना है--पक्ष को गिरा देना है; तुम्हें निष्पक्ष होना है। इसलिए जैन भी महावीर के अनुयायी नहीं हैं। क्योंकि जैन होने में ही खराबी हो गयी। महावीर जैन न थे। महावीर के पास जैन होने का उपाय नहीं है। क्योंकि महावीर की मौलिक दृष्टि यही है कि सभी पक्ष भ्रष्ट कर देते हैं। अब जैन तो पहले से मानकर बैठ गया है कि महावीर ठीक हैं; इसीलिए वंचित हो गया है। पहले से मानकर बैठ गया कि महावीर जो कहते हैं, वह सही ही कहते हैं; इसीलिए महावीर से दूर हो गया है।
महावीर के साथ तो केवल वही खड़ा हो सकता है जो निष्पक्ष है--इतना निष्पक्ष कि यह भी नहीं कहता कि महावीर ठीक हैं। इतना ही कहता है कि मुझे पता नहीं; मैं खोजने को तैयार हूं। सूरज की कहीं से भी किरण आये, मैं पीछे जाने को तैयार हूं। मैं अनंत की यात्रा के लिए तैयार हूं।
और बिना मान्यता के यात्रा पर निकलना बड़ा दूभर है। क्योंकि तुम कहते
हो कि जब कोई मान्यता ही नहीं है, तो हम यात्रा पर कैसे निकलें! वैज्ञानिक तक प्रयोग करने के पहले हाईपोथिसिस निर्मित करता है। हाईपोथिसिस का मतलब है, पक्ष तय करता है। तय करता है कि यह हो सकता है कम से कम। फिर यात्रा पर निकलता है।
महावीर का विज्ञान वैज्ञानिक के विज्ञान से भी ज्यादा गहरा है। महावीर कहते हैं, उतना पक्षपात भी खतरनाक है। क्योंकि उसी पक्षपात के कारण तुम वह देख लोगे जो नहीं था। और यह बात अब वैज्ञानिकों को भी समझ में आने लगी।
पोल्यानी ने एक बहुत अदभुत किताब लिखी हैः पर्सनल नालेज। तीन सौ वर्ष
की वैज्ञानिक खोज के बाद वैज्ञानिकों को भी यह सिद्ध हो गया है कि हमारा जो ज्ञान है वह इम्पर्सनल नहीं है, अवैयक्तिक नहीं है; वह भी वैयक्तिक है। क्योंकि जो वैज्ञानिक खोज करने जाता है, उसकी धारणा वह जो खोज करता है उस पर आरोपित हो जाती है, उसको रंग देती है। इसलिए हम जो भी जानते हैं, वह वस्तुतः ऐसा है, कहना मुश्किल है। खोजनेवाला उस पर हावी हो जाता है।
तो पहले तो हम सोचते थे... अभी एक बीस वर्ष पहले तक वैज्ञानिक यही सोचते थे कि विज्ञान निष्पक्ष है। अगर कोई आदमी किसी स्त्री के संबंध में कहता है, बड़ी सुंदर और तुम्हें सुंदर नहीं लगती, तो तुम कहते हो, पसंद-पसंद की बात है। इसमें कोई झगड़ा खड़ा नहीं होता।

तुम कहते हो, "चाहत की बात है। अपने रुझान की बात है। तुम्हें सुंदर मालूम पड़ती है, मुझे सुंदर नहीं मालूम पड़ती।" झगड़ा खड़ा नहीं होता। क्योंकि जो आदमी कहता है, यह स्त्री सुंदर है, वह इतना ही कह रहा है कि मुझे सुंदर मालूम पड़ती है। यह पर्सनल, वैयक्तिक बात है; इसमें झगड़ा नहीं है। एक आदमी को एक तरह की सिगरेट पसंद पड़ती है, दूसरे आदमी को दूसरी तरह की पड़ती है। एक आदमी को एक तरह का साबुन पसंद है, दूसरे को दूसरी तरह का पसंद है। एक आदमी को एक तरह का फूल लुभाता है, दूसरे को दूसरी तरह का लुभाता है। कोई कहता है सुबह बड़ी सुंदर है, कोई कहता है मुझे जंचती नहीं--तो कोई झगड़ा खड़ा नहीं होता; विवाद का कोई कारण नहीं, यह व्यक्तिगत रुझान है। लेकिन अगर कोई आदमी कहे, यह स्त्री सुंदर है, यह वैज्ञानिक सत्य है, तो फिर झगड़ा खड़ा होगा। वैज्ञानिक सत्य कहने का अर्थ यह हुआ कि यह सभी के लिए सुंदर है। तो फिर अड़चन आयेगी।
अब तक वैज्ञानिक मानते थे कि उनका सत्य वैज्ञानिक है और बाकी जो वक्तव्य हैं वे कवियों के हैं। लेकिन पोल्यानी की किताब ने और पोल्यानी की खोजों ने जीवनभर यह सिद्ध करने की कोशिश की कि विज्ञान भी वैयक्तिक है। आइंस्टीन जो कह रहा है, वह आइंस्टीन कह रहा है। न्यूनट जो कह रहा है, वह न्यूटन कह रहा है। यद्यपि आइंस्टीन जो कह रहा है वह इतने प्रबल तर्क से कह रहा है कि अभी हम उसका विरोध न कर पायेंगे जब तक कि प्रबलतर आइंस्टीन न आ जाये। और यह तीन सौ साल में निरंतर हुआ। न्यूटन ने जो कहा वह आइंस्टीन ने गलत कर दिया। ऐसी-ऐसी चीजें जिनके बाबत हम सोचते थे बिल्कुल सही हैं, वह भी सही न रहीं। ज्यामति जैसा शास्त्र भी सही न रहा। इकलेट ने जो सिद्ध किया था, वह गलत हो गया। दूसरे लोगों ने उससे विपरीत मान्यताएं सिद्ध कर दीं। गणित जैसा विषय भी अब वैज्ञानिक नहीं रहा। क्योंकि गणित की सामान्य मान्यताओं के विपरीत भी मान्यताएं लोगों ने सिद्ध कर दीं और नये गणित विकसित हो गये। तो अब तो दिखायी पड़ता है कि सारा ज्ञान व्यक्तिगत है, रुझान है। वह आदमी के ऊपर निर्भर है।
महावीर कहते हैं, जो परम सत्य को मानने चला है, मान्यता तो दूर, हाइपोथिसिस, परिकल्पना भी ठीक नहीं, नय भी ठीक नहीं। नय का अर्थ होता हैः बड़ी सूक्ष्म-सी रेखा दृष्टि की; कोई दृष्टिकोण; कोई हाइपोथिसिस। वह भी ठीक नहीं। उसे खाली जाना चाहिए--कोरा। तुम्हारे मन के कागज पर कुछ भी न लिखा हो, अन्यथा जो लिखा है उसका प्रक्षेपण हो जायेगा। तुम्हारा मन का कागज बिल्कुल कोरा हो। इसका अर्थ हुआ, तुम्हारा मन सक्रिय रूप से भाग न ले ज्ञान की खोज में, निष्क्रिय रहे; एक्टिव न हो, पैसिव रहे। स्त्रैण हो तुम्हारा चित्त! सिर्फ जो हो रहा है उसको स्वीकार करे; लेकिन कैसा होना चाहिए, कैसा होता, ऐसी कोई धारणा प्रक्षेपण न करे। इसे ख्याल में लेना। जगत में खोज के दो उपाय हैं--एक निष्क्रिय, एक सक्रिय। सक्रिय में तुम चेष्टा करते हो कुछ खोजने की; निष्क्रिय में तुम केवल निष्पक्ष भाव से खड़े होते हो। सक्रिय चेष्टा विचार बन जाती है; निष्क्रिय चेष्टा ध्यान बन जाती है। जब तुम सक्रिय होकर खोज में लग जाते हो तो तुम विचारों से भर जाते हो; क्योंकि विचार मन के सक्रिय होने का अंग हैं। मन जब सक्रिय होता है तो विचार से भर जाता है। मन जब निष्क्रिय होता है तो कोरा रह जाता है। आकाश में बादल हों तो सक्रिय; आकाश में कोई बादल न हो तो निष्क्रिय, कोई क्रिया नहीं हो रही।
महावीर कहते हैं, मन की सारी क्रिया शून्य हो जाये, नय-पक्षरहित हो जाये--सव्वणयपक्खरहिदो--तो जो शेष रह जाता है उस निष्क्रिय चित्त की दशा में जिसको लाओत्सु ने वू-वेइ कहा है--ऐसी निष्क्रियता, दर्पण जैसी निष्क्रियता; जैसे दर्पण "जो है" उसको झलका देता है। अगर दर्पण कुछ जोड़ता है, घटाता है, तो सक्रिय हो गया; जैसा है वैसा का वैसा, तैसे का तैसा झलका देता है। उस स्थिति को महावीर कहते हैं, उपलब्ध हो जाओ तो वही समयसार है। वही अध्यात्म का निचोड़ है। वहीं से तुम्हें अनुभव का जगत शुरू होगा। उसी को सम्यक दर्शन और उसी को सम्यक ज्ञान की संज्ञा दी है।
महावीर कहते हैं, और सब तो शब्द हैं, मगर असली बात वही है। सम्यक ज्ञान कहो, सम्यक दर्शन कहो या कुछ और कहना हो--ध्यान, समाधि, निर्विकल्प दशा जो

भी कहना हो कहो। लेकिन एक बात तय है कि वह निष्क्रिय दशा है। जिसमें तुम कुछ भी हिस्सा नहीं बंटाते; तुम सिर्फ खड़े रह जाते हो। इसे थोड़ा अभ्यास करना शुरू करो। यह मेरे कहने भर से साफ न हो जायेगा--इसका थोड़ा अभ्यास करना शुरू करो। कभी इसकी झलक मिलेगी। नाच उठोगे तुम, जब इसकी पहली झलक मिलेगी। तुम भरोसा न कर पाओगे कि अरे, मैं अब तक यह क्या करता रहा! तुम्हारा सारा जीवन तब एक नयी रूप-रेखा से भर जायेगा। थोड़ा अभ्यास करो।
शांत बैठकर वृक्ष को देखते हो तो देखते ही रहो। सक्रिय मत बनो। इतना
भी मत कहो कि यह पीपल का वृक्ष है। यह भी मत कहो कि यह गुलाब की झाड़ी है। यह भी मत कहो कि गुलाब कितने सुंदर हैं। यह भी मत कहो कि अहा, कितने प्यारे फूल खिले हैं! ऐसा मन में कुछ भी मत कहो। क्योंकि ये सब नय-पक्ष हैं; ये सब तुम्हारी मान्यताएं हैं।
गुलाब का फूल तो बस गुलाब का फूल है--न सुंदर, न असुंदर। सुबह तो बस सुबह है। सब वक्तव्य तुम्हारे हैं; सुबह तो अवक्तव्य है। उसके बाबत तो कोई वक्तव्य नहीं हो सकता। अनिर्वचनीय है। सब वचन तुम्हारे हैं। तुम अपने को हटा लो। तुम कुछ कहो ही मत। तुम सक्रिय बनो ही मत। तुम सिर्फ सुबह को देखते रह जाओ। ऊगता है सूरज, ऊगने दो। वृक्षों में हवा सरसराती है, सरसराने दो। तुम शब्द न दो। तुम शब्द को मत बनाओ। तुम शब्द से रिक्त और शून्य देखते रहो, देखते रहो। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे-धीरे अभ्यास घना होगा। कभी ऐसा क्षण आ जायेगा, एक क्षण को भी, कि तुम सिर्फ देखते रहे और तुम्हारे भीतर डालने को कुछ भी न था। तुमने कुछ भी न डाला अस्तित्व में, तुम सिर्फ खड़े देखते रहे, दर्शक, द्रष्टा-मात्र, जिसको महावीर कहते हैं ज्ञायक-मात्र--सिर्फ देखते रहे! उस घड़ी में एक झरोखा खुलता है। पहली दफा अस्तित्व तुम्हारे सामने अपने रूप को प्रगट करता है। पहली बार तुम उसे देखते हो, जो है। क्योंकि पहली बार तुम कुछ जोड़ते नहीं, मिलाते नहीं, तुम कुछ डालते नहीं। तुम भी शुद्ध होते हो उस घड़ी में और अस्तित्व भी शुद्ध होता है। दो शुद्धियां एक-दूसरे का साक्षात्कार करती हैं। इसे महावीर कहते हैं समयसार।
तुमने कभी ख्याल किया! दूधवाला दूध में पानी मिला लाता है; तुम कहते
हो अशुद्ध कर दिया। तुमने इस पर कभी विचार किया कि उसने शुद्ध पानी मिलाया हो तो? अशुद्ध क्यों कह रहे हो? वह कहेगा कि हमने तो दोहरा शुद्ध कर दिया-- शुद्ध पानी शुद्ध दूध, दोनों को मिलाया; अशुद्धि तो कुछ मिलायी नहीं है। पानी भी शुद्ध था, प्राशुक था। दूध भी शुद्ध था। अशुद्धि कैसे कह रहे हो, किस कारण कह रहे हो? फिर भी तुम कहोगे, दूध अशुद्ध है।
अशुद्धि का कारण यह नहीं कि तुमने अशुद्धि मिलायी। दो शुद्धियां भी मिला दो तो अशुद्धि का परिणाम आता है। अशुद्ध कहने का इतना ही अर्थ है कि दूध अब दूध न रहा और पानी पानी न रहा। तुम ख्याल रखना, दूध ही अशुद्ध नहीं होता, पानी भी अशुद्ध हो गया। तुम दूध को कहते हो अशुद्ध हो गया, पानी को नहीं कहते; क्योंकि पानी तो मुफ्त मिलता है, इसलिए कोई चिंता नहीं है, कोई आर्थिक सवाल नहीं उठता। तुम कहते हो, दूध अशुद्ध हो गया। लेकिन दूसरी बात भी ख्याल रखना, पानी भी अशुद्ध हो गया है। अगर किसी क्षण शुद्ध पानी की जरूरत हो, तब तुम समझोगे कि अरे, यह तो पानी भी अशुद्ध हो गया, दूध मिला दिया! मिलावट अशुद्धि है।
तो जब तुम अस्तित्व में मिलावट करते हो, जब तुम कुछ डालते हो, उंडेलते हो, जब तुम दूध में पानी डाल देते हो, तब सब अशुद्ध हो जाता है--तुम भी, अस्तित्व भी। जब तुम खड़े रह जाते हो--तटस्थ, साक्षी; यहां अस्तित्व, यहां तुम; दो दर्पण एक-दूसरे के सामने, बिना कुछ डाले हुए--तब दो शुद्धियों का साक्षात्कार होता है।
इस साक्षात्कार की अवस्था को महावीर कहते हैं समयसार। और जब तक यह न
हो जाये तब तक तुम्हारी जिंदगी नाममात्र को जिंदगी है, अशुद्ध है, कुनकुनी जिंदगी है। इसमें ज्वाला न होगी। इसमें प्रकाश... यह ज्योतिर्मय न होगी।
इसमें आनंद के फूल न लगेंगे, न प्रसाद होगा।
जीस्त है किसी मुफलिस का चिरागखाना
उसने सीखा ही नहीं खुलके फुरोजां होना।

नहीं, जिंदगी तो किसी गरीब का चिराग नहीं है। लेकिन हम सबने जिंदगी को गरीब का चिराग बना दिया है। यह खिलकर जल ही नहीं पाता, यह खुल के प्रज्वलित नहीं हो पाता। यह इसकी ज्योति ज्योति ही नहीं बन पाती--बुझी-बुझी, बुझी- बुझी, टिमटिमाती!
जीस्त है किसी मुफलिस का चिरागखाना
उसने सीखा ही नहीं खुलके फुरोजां होना
नहीं, जिंदगी तो किसी गरीब का चिराग नहीं है। लेकिन हम सबने जिंदगी को गरीब का चिराग बना दिया है। क्योंकि हमने जिंदगी को मौका ही नहीं दिया। हमने जिंदगी पर इतनी शर्तें लगा दी हैं। हमने जिंदगी पर इतने अवरोध खड़े कर दिये हैं, हमने जिंदगी की ज्योति के आसपास इतने पक्ष-विपक्ष, धारणाएं, मान्यताएं, विचार, ऐसा घेरा बांध दिया है, किला खड़ा कर दिया है, ईंट पर ईंट रख दी है विचारों और पक्षों की, कि जिंदगी की लपट उठे कैसे, प्रगट कैसे हो? जिसे तुम अभी टिमटिमाता हुआ दीया जानते हो, वही महावीर में प्रज्वलित सूर्य होकर जला है। वही जीवन! वही कबीर ने कहा है कि एक सूरज, एक सूरज कहने से न हो सकेगा; जिस दिन मैं जागा, हजार-हजार सूरज मेरे भीतर एक साथ जल उठे। उस प्रकाशमयी दशा के लिए कोई उपमा खोजना मुश्किल है। हजार-हजार सूरज भी कम पड़ते हैं, क्योंकि सूरज तो एक न एक दिन चुक जाएंगे। सभी सूरज चुक जाते हैं। यह हमारा सूरज भी, वैज्ञानिक कहते हैं, चार हजार सालों में ठंडा हो जायेगा। इसका ईंधन चुकता जा रहा है। आखिर कब तक जलता रहेगा? सब ईंधन की सीमा है। कितना ही बड़ा हो, करोड़ों साल जले तो भी एक सीमा आती है और चुक जायेगा। सांझ दीया जलाया, सुबह बुझ जायेगा; फिर रात कितनी ही लंबी होः लेकिन भीतर का दीया कुछ ऐसा है कि वह ज्योति शाश्वत है। हजारों सूरज जलते हैं और बुझ जाते हैं--और उस भीतर की ज्योति का कभी बुझना नहीं होता। इसलिए हजार सूरज का प्रतिमान भी छोटा है। लेकिन छोड़ो सूरज की तो बात दूर, हम तो अपने भीतर के दीये को टिमटिमाता दीया भी नहीं कह सकते। ज्योति मालूम ही नहीं पड़ती।
अनेक लोग सुनकर सुकरात की बात, कि महावीर की बात, कि बुद्ध की, कि कृष्ण की बात भीतर जाने की चेष्टा करते हैं। क्योंकि ये सभी लोग कहते हैं, जानो अपने को! आंख बंद करके भीतर जाने की कोशिश करते हैं, जल्दी से बाहर लौट आते हैं; क्योंकि अंधेरा ही अंधेरा मालूम पड़ता है। और ये सब तो कहते हैं, बड़ा ज्योतिर्मय लोक है!
नहीं, अभी तुम भीतर न जा सकोगे। अभी तो तुमने बाहर को भी शुद्ध आंख से नहीं देखा। अभी तो तुमने क ख ग भी नहीं पढ़ा जीवन के सत्य का।
इसलिए महावीर का पहला सूत्र कहता हैः जो सब नय-पक्षों से रहित वही समयसार है। और अगर ऐसा न किया तो एक पक्ष में से दूसरा पक्ष निकलता जाता है। जैसे एक वृक्ष में अनेक शाखाएं निकलती हैं। फिर एक शाखा में अनेक उपशाखाएं निकलती हैं ऐसा तुमने अगर एक पक्ष बनाया तो जल्दी ही तुम पाओगे, तुम बहुत पक्षों से घिर गये। एक मेहमान को घर लाओगे, जल्दी ही पाओगे मेहमानों की भीड़ लग गई; क्योंकि एक मेहमान के पीछे दूसरा चला आता है। रिश्तेदारों के रिश्तेदार!
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक दफा एक आदमी आया पास के गांव से और एक बतख दे गया। कहा कि गांव के तुम्हारे मित्र ने भेजी है। मुल्ला बड़ा खुश हुआ। उसने बतख... उसने कहा कि रुको, शोरबा तो पीते जाना। उसने शोरबा बनवाया, मित्र को पिलाया और कहा कि कभी भी आओ तो जरूर आना। कोई दो-तीन दिन बाद एक दूसरा आदमी आया। मुल्ला ने पूछा, आप कौन हो? उसने कहा, कि जो बतख लाया था उसका मैं मित्र हूं। कोई बात नहीं, मित्र के मित्र हो तो भी मित्र हो। उसको भी उसने भोजन करवाया, खिलवाया-पिलवाया। यह तो सिलसिला अंतहीन होने लगा। फिर दो-तीन दिन बाद एक आदमी आ गया। उसने कहा, मित्र के मित्र का मित्र। ऐसे यह संख्या बढ़ने लगी। तो मुल्ला बहुत घबड़ा गया। दो-तीन महीने में तो मुल्ला बहुत घबड़ा गया कि यह तो एक बतख क्या भेजी, यह तो सारा गांव आये जा रहा है! उसने कहा, कुछ करना पड़ेगा। फिर एक आदमी आ गया दो-चार दिन बाद। अब तो बहुत संख्या आगे हो गयी थी--मित्र के मित्र, मित्र के मित्र। काफी लंबी शृंखला हो गयी थी। उसने कहा, अब कुछ बताने की जरूरत नहीं,

ठीक है। उसने पत्नी से कहा, सिर्फ गर्म पानी बना दे, कुछ और बनाना मत। गर्म पानी लेकर उसको पीने को दिया। कहा, बतख का शोरबा है। उसने चखा, उसने कहा, यह तो सिर्फ गर्म पानी मालूम होता है; इसमें बतख तो कहीं दिखाई नहीं पड़ती। उसने कहा कि खाक दिखाई पड़ेगी, यह शोरबे के शोरबा का शोरबा का शोरबा... सिर्फ पानी बचा है अब!
विचार से और विचार निकल आते हैं। पहला विचार ही व्यर्थ था, दूसरा और
भी व्यर्थ होता है। तीसरा और भी व्यर्थ होता है। अंत में तुम्हारे पास विचारों की भीड़ लग जाती है, जिनमें सार्थकता कुछ भी नहीं होती।
मिलते गये हैं मोड़ नए हर मुकाम पर
बढ़ती गई है दूरी-ए-मिं.जल जगह-जगह।
और एक-एक मोड़ नए मोड़ ले आता है और तुम बढ़ते जाते हो, और मंजिल दूर होती जाती है। और जितने तुम चलते जाते हो विचारों में उतने ही तुम अपने से दूर होते जाते हो, क्योंकि वही मंजिल है।
अगर उस स्वयं को पाना हो तो लौटो उलटे, चलो गंगोत्री की तरफ! छोड़ो एक-
एक विचार को। और जब तुम आखिरी विचार पर आओगे, तब तुम्हें पता चलेगाः यह मेरा पक्षपात था, जिससे सारी यात्रा शुरू हुई। उस पक्षपात को भी गिरा दो। निर्विचार तुम्हारे भीतर उठेगा। उस निर्विचार में ही समयसार है।
और जब तक वैसी शुद्ध दर्पण की दशा न आ जाये, तब तक तुम जिंदगी को तो जानोगे ही नहीं, न अपने को जानोगे। क्योंकि तुम चूकते ही रहोगे। जिंदगी है प्रतिपल अभी और यहां--और विचार तुम्हें उससे मिलने नहीं देता, क्योंकि विचार सदा कहीं और है--या तो भविष्य में या अतीत में। या तो अतीत की स्मृतियों से जुड़ा है विचार, जो कल हो चुका, परसों बीत चुका--उसका सब संग्रह। उसकी तुम उधेड़-बुन में लगे रहते हो। और या भविष्य... ।
मुल्ला नसरुद्दीन को नींद न आती थी। एक डाक्टर ने कहा कि तू ऐसा कर भेड़ें गिन; भेड़ें गिनने से बड़ा लाभ होता है, गिनते-गिनते नींद आ जाती है। गिनते गए; एक, दो, तीन, हजार, दस हजार, लाख, जहां तक... बस चलते गए, चलते गए। एक ऐसी घड़ी आयेगी कि थककर तू नींद में गिर जाएगा। मुल्ला ने कहा, ठीक। उसने भेड़ें गिननी शुरू कीं। वह कई लाख पर पहुंच गया। उसने कहा, ऐसे तो बढ़ते गये तो ये तो करोड़ों अरबों हो जायेंगी। फिर करेंगे क्या इनका? तो उसने सोचा, अब बेहतर है कि अब इनका ऊन निकालना शुरू करें, बजाय इसके कि गिनते ही जाने से। उसने ऊन निकालना शुरू किया। अब वह लाखों भेड़ों का ऊन, गांठों पर गांठें लग गयीं! उसने सोचा, ऐसे अगर ऊन इकट्ठा करते गए तो कहां, रखेंगे कहां? गोदाम मिलते कहां आजकल? रखने की जगह कहां है? वर्षा सिर पर आ रही है। यह तो मुश्किल है। इसके कोट-कपड़े बनवाना शुरू कर दो। तो कंबल, कोट, कपड़े... लेकिन इतना ढेर हो गया कि वह एकदम घबड़ाया कि बाजार की हालत तो वैसे ही खराब है, खरीददार तो मिलता नहीं, मारे गये! तो वह आधी रात में चिल्लायाः बचाओ, बचाओ! तो उसकी पत्नी घबड़ाकर उठी। उसने कहा, हुआ क्या? उसने कहा, हुआ क्या... मर गये, लुट गये! पत्नी ने कहा, क्या, हुआ क्या? कोई सपना देखा, उसने कहा, सपना क्या, नींद तो आयी नहीं अभी। यह तो वह जो डाक्टर ने कहा था, भेड़ गिनो... कहां का नासमझ आदमी। भेड़ें गिनीं, ऊन काटा, कपड़े बनाये, बाजार में बेचने खड़े हो गये... खरीददार नहीं है। और इतना सब बना लिया है कि बरबाद हो जायेंगे।
विचार एक के बाद एक चलते चले जाते हैं--या तो अतीत के होते हैं या भविष्य के होते हैं। तो या तो स्मृति पैदा करते हैं वे और स्मृति के घावों को उघाड़ते हैं, या फिर कल्पना पैदा करते हैं और कल्पना से वासना को उकसाते हैं। तो या तो तुम अपने घावों को कुरेदते रहते हो, जो कि बड़ी व्यर्थ प्रक्रिया है और खतरनाक भी; क्योंकि उनसे घाव हरे बने रहते हैं। लौट-लौटकर, किसी ने गाली दी थी, तुम सोचने लगते हो; लौट-लौटकर क्रोधित होने लगते हो।
कभी तुमने ख्याल किया! अगर तुम विचार करने बैठ जाओ और ठीक से स्मृति
को जगाओ तो जब तुम्हें किसी ने गाली दी थी और अपमान किया था, तो उसकी स्मृति ही न आएगी; तुम अचानक पाओगे, फिर तुम्हारे रग-रेशे में क्रोध आ गया,

तुम्हारे रोएं-रोएं में फिर क्रोध दौड़ गया! तुम फिर कुछ करने को उतारू हो गये! फिर घाव हरा हो गया।
या तो तुम घाव कुरेदते हो और या तुम भविष्य में कामना को उकसाते हो। दोनों खतरनाक हैं। क्योंकि सभी कामनाएं आज नहीं कल विषाद में रूपांतरित हो जाएंगी। सभी कामनाएं आज नहीं कल घाव बन जायेंगी। जो अभी भविष्य है, कल अतीत हो जायेगा।
अगर कोई विचार न हो चित्त में तो तुम यहां होते हो--अभी। न कोई अतीत, न कोई भविष्य--यह वर्तमान का क्षण तुम्हें समग्रता से घेर लेता है।
गए हैं हम भी गुलिस्तां में बारहा लेकिन
कभी बहार से पहले, कभी बहार के बाद
--बगीचे में जाने से सार क्या?
गए हैं हम भी गुलिस्तां में बारहा लेकिन,
--बहुत बार गए हैं, अनेक बार गए हैं!
कभी बहार से पहले, कभी बहार के बाद
--या तो वसंत के पहले जाते हैं या वसंत जब बीत जाता है तब जाते हैं। हर हालत में पतझड़ हाथ लगता है।
तो अस्तित्व का जो बगीचा है वह तो अभी और यहां है। वर्तमान उसका ढंग है। तुम जाते हो--या तो जब बीत चुकी बहार या अभी जब आयी नहीं; या तो अतीत के ढंग से या भविष्य के ढंग से।
निर्विचार में जो खड़ा है वह वर्तमान से जुड़ता है। उसका सीधा-सीधा संबंध हो जाता है। वह आमने-सामने खड़ा होता है। यह प्रतीति, यह साक्षात्कार, महावीर कहते हैं, समयसार।
"साधु को नित्य दर्शन, ज्ञान और चरित्र का पालन करना चाहिए। निश्चय-नय
से इन तीनों को आत्मा ही समझना चाहिए। ये तीनों आत्मरूप ही हैं। अतः निश्चय से आत्मा का सेवन ही उचित है।"
दंसणाणचरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि, अप्पाणं जाण णिच्छयदो।।
इस वचन के जो भी अनुवाद किए गए हैं, उनमें थोड़ा-सा फर्क मालूम होता है।
और फर्क बहुमूल्य है। जिन्होंने अनुवाद किये हैं--जैन साधु, मुनि अनुवाद करते हैं। अनुवाद में उनका व्यक्तिगत पक्षपात उतर जाता है। जैसे दंसणाणचरित्ताणिः दर्शन, ज्ञान और चरित्र; सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चंः इनका नित्य सेवन, यही साधु का लक्षण है। लेकिन अनुवाद क्या किया जाता हैः साधु को नित्य दर्शन, ज्ञान और चरित्र का पालन करना चाहिए। चाहिए कहीं मूल सूत्र में नहीं है। मूल सूत्र में तो सिर्फ व्याख्या है कि साधु कौन। साधु का कर्तव्य नहीं गिनाया है, साधु की परिभाषा है। साधु कौन? जो नित्य दर्शन, ज्ञान और चरित्र का सेवन करता है--पालन भी नहीं। मूल शब्द हैः सेविदव्वाणि--जो सेवन करता है; पालन नहीं; जो भोजन करता है; जो उपभोग करता है; जो भोगता है। साधु है वह जो दर्शन, ज्ञान और चरित्र का नित्य भोग करता है।
अब बात साफ हो सकती है। पहले तो नित्य, प्रतिपल, वर्तमान में; न तो बीते कल में न आनेवाले कल में--अभी और यहां भोग करता है। असाधु या तो अतीत में भोगता है या भविष्य में।
गये हैं हम भी गुलिस्तां में बारहा लेकिन
कभी बहार से पहले कभी बहार के बाद।
--वह असाधु। साधु वह जो अभी और यहीं के द्वार से अस्तित्व में प्रवेश करता है; जो "अब" के द्वार से अस्तित्व में प्रवेश करता है; जो यहां और ठीक अभी साक्षात्कार करता है अस्तित्व का।
सेवन... "सेवन" बड़ा प्यारा शब्द है! इसका भोग करता है।
जैन मुनि "भोग" शब्द को लाने में अड़चन अनुभव किए होंगे। "सेवन करता है" उनको लगा होगा, इसे "करना चाहिए" में बदलो।
यह हमारे सारे शास्त्रों के साथ होता है। जहां "है" की सूचना है वहां "होना चाहिए", हम अनुवाद करते हैं। जहां केवल "है" की सूचना है--जैसे कि आग जलाती है, यह तो ठीक है; लेकिन आग को जलाना चाहिए, तब अड़चन हो गयी। कोई ऐसा

अनुवाद न करेगा कि आग को जलाना चाहिए, क्योंकि आग इस तरह की बकवास को मानती ही नहीं। वह तो जलाती है। "चाहिए"--वासना, कामना आ गयी; भविष्य आ गया। "चाहिए" का अर्थ ही हुआ कि कल हो सकेगा, आज नहीं हो सकता। "चाहिए" का मतलब ही यह हुआ कि जो है नहीं; कोशिश करके लाना होगा। तो कोशिश में तो समय लगेगा। दिन लग सकते हैं, वर्ष लग सकते हैं, जन्म लग सकते हैं। कौन जाने कितना समय लगेगा तब हो पायेगा!
लेकिन साधारणतः दूसरे सुननेवाले भी इस अनुवाद से राजी होते हैं, क्योंकि उनको भी सुविधा मिल जाती है। वे भी कहते हैं, "चाहिए" ठीक है। कल पर स्थगित करने का उपाय है। तो कल कर लेंगे। साधुता कल, असाधुता आज!
तुमने देखा, अगर दान देना हो तो तुम कहते हो देंगे; क्रोध करना हो तो तुम नहीं कहते, करेंगे। तुम कहते हो, करते हैं अभी! क्रोध होता है। और करुणा? करनी चाहिए! यह बड़े मजे की बात है। अगर दान देना है, तो तुम कहते हो, करेंगे!
एक मित्र संन्यास लेने आये थे, वे कहने लगे, सोचता हूं! बहुत दिन से सोच रहा हूं। अभी भी विचार कर रहा हूं, अभी भी पक्का नहीं कर पाता।
मैंने उनसे पूछा, क्रोध के संबंध में सोचते हो कि बिना ही सोचे पक्का
कर लेते हो? वे कहने लगे कि क्रोध के संबंध में तो हालत उलटी हैः सोचते हैं कि न करें और होता है। और संन्यास के संबंध में हालत यह है कि सोचते हैं कि लें, और नहीं होता।
हमने शुभ को, श्रेष्ठ को, सत्य को, शिवम को टालने के उपाय किए हैं। तो इसलिए इन अनुवादों पर कोई एतराज भी नहीं करता। यह सिर्फ सूचक हैं। महावीर कह रहे हैंः
दंसणाणचरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
वही है साधु, वही है साहु, जो नित्य सेवन कर रहा है दर्शन, ज्ञान, चरित्र का। जो कल पर नहीं छोड़ रहा है; जो अभी और यहीं जी रहा है; जिसने भविष्य के साथ नाते तोड़ लिए। भविष्य के साथ जिसका नाता है, वही गृहस्थ। क्योंकि गृहस्थ का अर्थ हैः वासना, कामना; कल भोगेंगे। और गृहस्थ की भूल यही है कि कल आएगी मौत, तुम भोग न पाओगे। तुम कल पर टालते जाओगे, एक दिन मौत आ जायेगी। तुम्हारा सब टाला हुआ, टाला हुआ रह जायेगा।
महावीर इतना ही कह रहे हैं कि शुभ को टालना मत, स्थगित मत करना; जब शुभ
का भाव उठे, तत्क्षण भोग लेना।
अशुभ को टालना; क्योंकि टल जाये तो अच्छा। अशुभ को कल पर छोड़ना!
मेरे देखे ऐसा है कि अगर तुम अशुभ को कल पर छोड़ो तो उसी तरह अशुभ न हो पायेगा जैसे अभी शुभ नहीं हो पा रहा है। कल पर छोड़ा, होता ही नहीं। तुम जरा करके देखो! कोई तुम्हें गाली दे, तुम कहो कि चौबीस घंटे बाद क्रोध करेंगे। अगर तुम कर लो चौबीस घंटे बाद क्रोध तो चमत्कार है। हो नहीं सकता। चौबीस घंटे! चौबीस क्षण तो रुको, क्रोध असंभव हो जायेगा।
अब्राहम लिंकन के जीवन में उल्लेख है, एक आदमी, मित्र उनका, बड़ा क्रोधित आया। किसी ने उसको पत्र लिखा था और बड़ी ऊलजलूल बातें लिखी थीं। लिंकन ने कहा, "बैठो इसी वक्त जवाब दो। और दिल खोलकर जवाब दो! डरने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हारा मित्र भी हूं, तुम्हारा वकील भी हूं। यह हद्द हो गयी! लिखो दिल खोलकर! जो भी गालियां तुम्हें लिखनी हैं, लिख डालो पूरा।" वह आदमी भी थोड़ा चौंका! ऐसा उसने सोचा ही न था कि लिंकन यह कहेंगे। पर वह बैठ गया लिखने। दिल तो भरा था। दिल खोलकर उसने गालियां दीं। लिंकन उसे उकसाता था, उकसावा देते रहे कि तू डर मत, लिख, सब लिख डाल! सब मवाद निकाल दे! कागज पर कागज, उसने गालियां और ऊलजलूल बातों के सब उत्तर दे डाले। और जब वह पूरा लिखकर उसने हलकी सांस ली, लिंकन ने कहा, ला अब यह पत्र मुझे दे दे। उसने कहा, पता तो लिख देने दो। तो उसने कहा, पता लिखने की कोई जरूरत नहीं। भेजने की कोई जरूरत नहीं। भेजेंगे सात दिन बाद। सात दिन बाद तू आना, फिर इसको पढ़ लेना। अगर तू सात दिन बाद कहे कि भेजना है तो भेज देंगे। उस आदमी ने कहा, ठीक है। कोई हर्जा नहीं। वह सात दिन बाद आया, उसने पत्र देखा। उसे भरोसा ही न आया कि मैं और ऐसा पत्र लिख सकता हूं।

सात दिन में आग सब ठंडी हो गयी, अंगारे बुझ गये। दी गयी गालियां उतनी महत्वपूर्ण न मालूम पड़ीं। उत्तर व्यर्थ मालूम पड़े। वह आदमी तो पागल मालूम ही पड़ा। अपना पत्र देखा तो उसने कहा, यह मेरा भी दिमाग खराब है। इसको जवाब नहीं देना, मेरे दिमाग के लिए कुछ उपाय बताओ, इस तरह की बातें मेरे मन में उठती हैं! अच्छा ही हुआ, उस आदमी ने कहा कि उसने यह पत्र लिखा। उसके पत्र के बहाने मुझे मेरी आत्मा के दर्शन तो हो गये थोड़े कि यह सब मेरे भीतर भरा पड़ा है।
मैं तुमसे कहता हूं अगर क्रोध को तुम कल पर टाल दो तो उसी तरह टल जायेगा, जैसे करुणा अभी तक टलती आयी है।
अशुभ को अगर तुम कहो, करेंगे भविष्य में, तो अशुभ भी उसी तरह विदा हो जायेगा तुम्हारे जीवन से जैसे शुभ विदा हो गया है।
महावीर कहते हैं, साधु वह है जो दर्शन, ज्ञान और चरित्र का अभी पालन कर रहा है, अभी सेवन कर रहा है। और "पालन" से "सेवन" शब्द ज्यादा बेहतर है, क्योंकि पालन में ऐसा लगता है कि कुछ चेष्टा करके आयोजन करके अपने को बांध रहा है; कोई अनुशासन। "सेवन" में ऐसा लगता हैः कुछ अनुभव में आ रहा है, उसको भोजन बना रहा है; उसको अपने रक्त, मांस-मज्जा में मिला रहा है।
"निश्चय-नय से इन तीनों को आत्मा ही समझना चाहिए। ये तीनों आत्मरूप ही हैं।"
ये अलग-अलग नहीं हैं। यह जैनों की त्रिवेणी है या त्रिमूर्ति। क्योंकि ईश्वर का तो कोई भाव जैनों के पास नहीं है। सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन, सम्यक चारिष्य--ये उनके शिव, ब्रह्मा, विष्णु हैं। यह उनकी त्रिमूर्ति है। यह उनकी ट्रिनिटी है। और ये तीनों आत्मा के ही तीन रूप हैं। ये तुम्हारे होने की शुद्धता में प्रगट होते हैं। ये आत्मा ही हैं। "अतः निश्चय से आत्मा का सेवन ही उचित है।"
यह बड़ा अदभुत वचन है! अपना ही भोजन उचित है। अपना ही भोग उचित है। अपने
को ही पीयो, अपने को ही भोगो।
हम साधारणतः जीवन में दूसरे को भोगने का आयोजन करते हैं। "पर" का हम सेवन करना चाहते हैं।
महावीर कहते हैं, "पर" का सेवन करते-करते तो तुम संसार में भटक गये हो।
अब तुम अपना ही सेवन करो। तुम अकेले अपने एकांत को ही भोगो। तुम अपने स्वभाव में डूबो। तुम्हारे भीतर जो छिपा है, इसके साथ नाचो, इसी को संगी- साथी बनाओ! भीतर होने दो रास!
तुमने अपने साथ संबंध ही नहीं जोड़े। तुम अपने से कभी आलिंगन नहीं किए। तुमने अपने को कभी चूमा नहीं, अपना कभी भोजन नहीं किया। अपना सेवन करो!
सीने का दाग है वह नाला कि लब तक न गया
खाक का रिज्क है वह कतरा कि दरिया न हुआ।
और जब तक बूंद सागर न हो जाये, तब तक मिट्टी है। और जब तक हृदय में छिपा हुआ गीत प्रगट न हो जाये, तब तक वह हृदय का घाव है।
सीने का दाग है वह नाला कि लब तक न गया
खाक का रिज्क है वह कतरा कि दरिया न हुआ।
हमारे जीवन में जो इतनी पीड़ा है, यह पीड़ा सिर्फ इसीलिए है कि हमारे भीतर जो पड़ा है, छिपा है, वह प्रगट नहीं हो पाया। जो गीत दबा पड़ा है हमारे प्राणों में, वह गाया नहीं गया। जो नाच हम छिपाये चल रहे हैं, वह नाचा नहीं गया। जो भोग हमारा स्वभाव है, वह भोगा नहीं गया। हमने अपने को अभिव्यंजना नहीं दी है। हमारा सितार ऐसा ही पड़ा है, उस पर हमने अंगुलियां नहीं नचायीं। वह सितार ऐसे ही धूल जमा पड़ा है। उससे विराट संगीत पैदा हो सकता था, उस तरफ हमने कोई ध्यान ही न दिया। हमारी नजरें दूसरे को तलाशती रहीं। हम दूसरे के संगीत में डूबने को आतुर रहे--और अपना घर भूल गये, अपना संगीत भूल गये। हमने और सब भोगा और हाथ सदा खाली पाए, और हमने उसे न भोगा जो हमारा था और जिसे भोगने से जीवन भर जाता।
कई बार इसका दामन भर दिया हुस्ने-दो-आलम से
मगर दिल है कि इसकी खाना-वीरानी नहीं जाती।

कितनी बार नहीं तुमने दोनों दुनियाओं को लूटकर अपने हृदय को भर देने
की चेष्टा की है!
कई बार इसका दामन भर दिया हुस्ने-दो-आलम से
मगर दिल है कि इसकी खाना-वीरानी नहीं जाती।
लेकिन दिल है कि वह गरीब का गरीब, दीन का दीन, भिखारी का भिखारी, खंडहर
का खंडहर, वहां कभी महल बन नहीं पाता--बनेगा भी नहीं। क्योंकि बाहर की तुम सारी दुनियाएं लूटकर ले आओ, तो भी कुछ न होगा, जब तक कि भीतर की दुनिया न लूटो। और भीतर की दुनिया कुछ ऐसी है--ऐसी अनंत कि भोगो और भोग के नये द्वार खुलते चले जाते हैं; रस लो, और नई रसधार बहती है। रसधार बड़ी होती जाती है, बड़ी होती जाती है। और कतरा एक दिन दरिया बन जाता है। बूंद एक दिन सागर हो जाती है।
तुम जब तक प्रगट न हो जाओगे अपनी परिपूर्ण महिमा में, तब तक दुखी रहोगे, घाव रहेगा। गीत गाना ही पड़ेगा। वह हमारी नियति है। अभिव्यंजित होना ही होगा, गूंजना ही होगा--एक परम संगीत से! एक दिव्य विभा से मंडित होना ही होगा!
अपनी महिमा को छिपाओ मत, भोगो!
हिंदू शास्त्रों में बड़े प्रसिद्ध वचन हैंः
आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः।
सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृति।
स्मृतिलाभे सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्षः।
आहार शुद्धि से सत्व शुद्धि; सत्व शुद्धि से स्मृति का लाभ; और स्मृति-लाभ से ग्रंथियों का खुलना; और समस्त उलझनों का अंत, समाप्ति, विप्रमोक्ष।
साधारणतः लोग यही अर्थ करते हैं, आहार शुद्धि से सत्व शुद्धि। यही अर्थ करते हैंः शुद्ध आहार। ब्राह्मण के हाथ का बनाया हुआ आहार। इसका गहरा अर्थ ख्याल में नहीं आताः शुद्ध का आहार! परम शुद्ध का आहार! सत्व का आहार! वह जो तुम्हारे भीतर छिपा है, उसका आहार!
महावीर वर्षों तक उपवास किए, महीनों उपवास किए, दिनों उपवास किए! लेकिन उन्होंने अपने इस उपवास को उपवास कहा, निराहार न कहा; अनशन न कहा, उपवास कहा। उपवास का अर्थ हैः अपने पास होते जाना; अपने निकट होते जाना। जो उपनिषद का अर्थ है, वही उपवास का अर्थ है। अपने पास, अपने पास, और पास होते चले जाना! निराहार न कहा अपने उपवास को, क्योंकि वह गलत जोर होता। भोजन नहीं किया, यह तो गौण बात है। अपना भोजन किया, यह महत्वपूर्ण बात है। आत्म-आहार किया। और आत्म-आहार से ऐसे भर गये कि भोजन कि जरूरत न रही। वह गौण बात है।
तुमने कभी ख्याल किया! प्रेम के बहुत गहरे क्षणों में भूख नहीं लगेगी। कभी-कभी तुम चकित होओगे... एक महिला ने मुझे कहा... मैं यह बात कर रहा था। उसने सुनी, वह मुझसे मिलने आयी। उसने कहा कि एक बात आपसे कहनी है, मेरे जीवन में अटकी रही है सदा से। उसकी सास की मृत्यु हुई सांझ के वक्त। जैनों की "अंथऊ" का समय। सूरज ढल गया, फिर भोजन तो हो नहीं सकता। सास मर गई बेवक्त। सासों के ढंग... ! अब वह कोई ढंग का वक्त भी चुन सकती थी। दोपहर में मरती, रात मरती ठीक; अंथऊ के वक्त मर गई! तो भोजन तो हो नहीं सका; पड़ा रह गया। और ऐसा भी नहीं कि इस बहू का अपनी सास से कुछ विरोध रहा हो--बड़ा लगाव था। तो उस समय तो कुछ ख्याल नहीं आया, लेकिन जैसे रात बढ़ने लगी, उसकी भूख बढ़ने लगी। इधर रो भी रही। सास ने उसे अपनी बेटी की तरह रखा था, बहुत गौरव से रखा था। वह मर गयी तो दुख स्वाभाविक था। रो रही है, दुखी हो रही है। लेकिन पेट में भूख लग रही है! और आधी रात भूख इतनी ज्यादा बढ़ गयी कि वह महिला चकित हुई। भूख इतनी बढ़ गयी कि उसे जाकर चोरी से अपने चौके में कुछ भोजन करना पड़ा। उसकी ग्लानि उसके मन में रह गयी।
और यह जो महिला, जिसने मुझे यह कहा, वह आठ-आठ दस-दस दिन के उपवास कर लेती है; इसलिए उसे भी बड़ा चक्कर मालूम हुआ कि "यह हुआ क्या! मैं आठ-आठ दस-दस दिन उपवास कर लेती हूं और कभी भूख ने मुझे ऐसा नहीं सताया कि उपवास तोड़ना पड़ा हो! और यह सास का मरना और इतना मेरा लगाव! तो एक अपराध-भाव उसके

मन में अटका रह गया। किसी को भी उसने कहा नहीं--अपने पति को भी नहीं कहा, क्योंकि वह भी दुखी होंगे यह बात सोचकर कि मेरी मां मर गयी और तूने रात चोरी से भोजन किया। उसने मुझे कहा और कहा कि आप किसी को कहना मत! मुझे यह उलझन रह गयी है।
मैंने उससे कहा कि इससे विपरीत भी तुझे कभी हुआ? कभी आनंद के क्षण में, भूख न लगी हो? उसने कहा, "हां, यह भी मुझे हुआ। आप भी जब मेरे घर में आते हो तो मैं भोजन नहीं कर पाती। मैं इतनी प्रसन्न हो जाती हूं कि वर्ष में आप दो दिन के लिए आते हो, कि दो दिन मैं भोजन नहीं कर पाती; बस ऐसे ही चाय इत्यादि से काम चल जाता है। भूख ही नहीं लगती, ऐसा कुछ भरापन मालूम होता है।"
जब भी तुम आनंदित होओगे, तुम हैरान हो जाओगे कि पेट भरा है! तुम इतने भरे हो, इतने भीतर भरे हो कि पेट का खालीपन पता न चलेगा। प्रेम के बहुत गहरे क्षणों में भूख न लगेगी। दुख के क्षणों में भूख लगेगी। दुख में तुम एकदम खाली हो जाओगे। दुख में न केवल पेट खाली हो जायेगा, आत्मा भी खाली हो जायेगी।
इसलिए अकसर जिसने तुम्हारे जीवन को बहुत गहराई से भरा था, अगर वह मर जायेगा तो तुम्हें तत्क्षण भूख लगेगी। बेचैनी होगी तुम्हें यह सोचकर कि यह कोई वक्त है भूख लगने का। क्योंकि भोजन को तो हम उत्सव मानते हैं। दुख में तो कोई भोजन करता नहीं। पास-पड़ोस के लोगों को भोजन बनाकर लाना पड़ता है खिलाने अगर कोई मर जाये किसी के घर में; क्योंकि वह अपना चूल्हा जलाये तो वह भी तो अशुभ मालूम पड़ता है। यह कोई वक्त है! किसी का पति जल गया हो और वह चूल्हा जलाकर भोजन बना रही! चूल्हा नहीं जलता दिनों तक। लेकिन जब कोई निकटतम तुम्हारा मर जायेगा, तो न केवल तुम्हारा शरीर खाली हो गया, उसने तुम्हारी आत्मा के भी एक हिस्से को घेरा था, वह भी खाली हो गया। और खालीपन ऐसा मालूम होगा कि लगेगा कुछ भोजन कर लो।
कल ही एक संन्यासी ने मुझे कहा, कि विपस्सना का दस दिन प्रयोग करने के बाद, दसवें दिन, आखिरी दिन, उसे ऐसा लगा कि शरीर से आत्मा अलग हो गयी है। कोई आधी रात के वक्त, वह घबड़ा गया! यह अनुभव इतना प्रगाढ़ था और इतना साफ था कि मैं आत्मा से अलग हूं, कि उसे लगा कि अब मौत होने के करीब है। और जो पहली बात उसे याद आयी वह यह कि कुछ खाओ, जल्दी कुछ खाओ। जो कुछ भी उसे मिल सका आधी रात... होटल में रहता है... आधी रात जो कुछ भी मिल सकता है जगाकर, कुछ भी, उसने जल्दी अपना पेट भर लिया। उसने कल मुझे कहा कि यह मैंने कुछ गलत तो नहीं किया है? क्योंकि करने के बाद मुझे ऐसा लगा कि कुछ भूल हो गयी। क्योंकि वह अनुभव तत्क्षण खो गया। लेकिन उस क्षण में मुझे इतने जोर की भूख लगी, जैसी मुझे कभी लगी न थी।
शरीर आत्मा से अलग होता हुआ मालमू पड़े, एक खालीपन मालूम होगा। और भरने
का हम एक ही उपाय जानते हैं--पेट को भर लो; और हमें कोई उपाय नहीं मालूम। अगर इस क्षण में यह युवक अपने को प्रेम से भर लेता या आनंद से भर लेता तो यह अनुभव और ऊंचे शिखर पर पहुंच जाता। इसने शरीर से भर लिया। इसने इस क्षण में शरीर का सेवन कर लिया। भोजन मतलब शरीर। भोजन--जो शरीर बन जायेगा; अभी भोजन है, कल शरीर बन जायेगा। भोजन यानी बीज रूप से शरीर। इसने शरीर से भर लिया। यह क्षण था जब इसे आत्मा से भरना था। नाच उठता! गीत गाता! आंदोलित हो उठता आनंद से! प्रेम को जगाता! आत्मा से भरता! आत्मा का सेवन करता! तो यह घड़ी बड़ी गहरी हो जाती। यह अनुभव चिरस्थायी हो जाता। चूक हो गयी।
महावीर कहते हैं, "आत्मा से ही आत्मा का सेवन उचित है।"
आत्मा से आत्मा का भोजन, आत्मा से आत्मा का भोग ही उचित है।
आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः।
--आहार के शुद्ध होने से सत्व शुद्ध हो जाता है।
यह आहार की शुद्धि को तुम ब्राह्मण के द्वारा बनाया गया आहार मत समझना। इसे तो तुम समझना ब्रह्म के द्वारा बनाया गया आहार--वह जो तुम्हारे भीतर की अंतआर्त्मा है, जिस पर ब्रह्म के हस्ताक्षर हैं।
सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

--और जिसने उस आत्मा का आहार कर लिया उसकी स्मृति ध्रुव हो जाती है।
उसका बोध थिर हो जाता है। यही तो मैंने उस संन्यासी को कहा कि उस क्षण में आत्मा का आहार कर लिया होता, तो स्मृति ध्रुव हो जाती।
स्मृति का अर्थ यहां याददाश्त नहीं है। यहां स्मृति का अर्थ है परमात्मा का स्मरण, या आत्मा का स्मरण।
जिसको महावीर सम्यक दर्शन कह रहे हैं; वह थिर हो जाता है, उसकी लकीर खिंच जाती अमिट। फिर भूले न भूलती। फिर मिटाये न मिटती।
सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
--और आत्मा के शुद्ध आहार से जब भीतर का सत्व शुद्ध होता है तो स्मृति धु्रव हो जाती है।
स्मृतिलाभे सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्षः।
--और स्मृति से, स्मृति के लाभ से सारी ग्रंथियां खुल जाती हैं--जिसको महावीर कहते हैं निर्गं्रथ दशा--सब गांठें खुल जाती हैं। और जो शेष रह जाता है--वही मोक्ष, वही समाधान, समाधि, विप्रमोक्ष! फिर कुछ और करने को शेष नहीं रह जाता।
"जो आत्मा इन तीनों से समाहित हो जाता है और अन्य कुछ नहीं करता है, और
न कुछ छोड़ता है उसी को निश्चय-नय से मोक्ष-मार्ग कहा है।"
णिच्छयणयेण भणिदो, तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचि वि अन्नं, ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति।।
बड़ी अदभुत बात महावीर कह रहे हैं! जो आत्मा इन तीनों से समाहित हो जाता है--सम्यक ज्ञान, दर्शन, चारिष्य से समाहित! समाहित का अर्थ है, जिसके लिए ये ऊपर से थोपे गये नियम नहीं--जो इन्हें पचा गया; जो इसको इस भांति पी गया, इस भांति कि मांस-मज्जा बन गयी, समाहित हो गया! अब ऐसा नहीं कि वह चेष्टा करता है चारिष्य की, कि मैं ठीक करूं और गैर-ठीक न करूं। ऐसा भी नहीं कि वह चेष्टा करता है ज्ञान को पकड़ने की, दर्शन को पकड़ने की। नहीं, ये सब समाहित हो गए।
तुमने भोजन किया... तो भोजन की दो घटनाएं घट सकती हैं। तुमने भोजन किया--या तो भोजन समाहित हो जायेगा और या अपच हो जायेगी। अपच होगी तो भोजन बिना पचा शरीर के बाहर फेंक देना होगा। वमन से निकले, मल-मूत्र से निकले-- लेकिन अगर अपच हुआ तो उसे शरीर से बाहर फेंक देना होगा वैसा का वैसा। उसमें जो छिपा हुआ सत्व है, तुम्हारा हिस्सा न बन पाएगा। समाहित का अर्थ हैः पच जाये। तो जो कूड़ा-कचरा है वह बाहर निकल जायेगा; जो सार-सार है वह तुम्हारे खून में, लहू में बहने लगेगा। वह तुम्हारे हृदय में धड़केगा, तुम्हारी आंखों से देखेगा, तुम्हारे मस्तिष्क से सोचेगा। वह तुम्हारे भीतर का हिस्सा हो जायेगा।
एक बार जो अन्न पच गया, फिर तुम्हें उसकी चिंता नहीं करनी होती कि अब
वह क्या कर रहा है; खून ठीक चल रहा है कि नहीं; मस्तिष्क सोच रहा है या नहीं; हड्डी, मांस-मज्जा बन रही है या नहीं। तुम तो गले के नीचे उतार लेते हो भोजन को, फिर बात खतम हो गयी। अगर न पचे तो अड़चन होती है।
पंडित है ऐसा व्यक्ति जिसका ज्ञान समाहित नहीं हुआ। ज्ञानी है ऐसा व्यक्ति जिसका ज्ञान समाहित हो गया।
पंडित है ऐसा व्यक्ति जिसको अपच हो जाता है। भर लेता है ज्ञान को, लेकिन वह ज्ञान कहीं उसके जीवन की धारा का अंग नहीं होता; वह धारा में कंकड़-पत्थर की तरह पड़ा रहता है, धारा के साथ बहता नहीं।
समाहित का अर्थ हैः जिसे तुम भूल जाओ, फिर भी तुम्हारे साथ हो; जिसकी तुम्हें चेष्टा न करनी पड़े, सहज तुम्हारे साथ हो। सहज-स्फूर्त यानी समाहित।
"जो आत्मा इन तीनों से समाहित हो जाता है और अन्य कुछ भी नहीं करता... " अन्य कुछ की कोई जरूरत नहीं, ये तीन काफी हैं। इन तीन में सब हो जाता है। और न कुछ छोड़ता है। यह जैन मुनियों को बड़ी तकलीफ होगी सोचकरः न कुछ करता न कुछ छोड़ता; क्योंकि छोड़ना भी कृत्य है। छोड़ने में भी कर्ता आ जाता है और अहंकार आ जाता है। न तो पकड़ता और न छोड़ता, चुपचाप साक्षी-भाव से जीता है।

"उसी को निश्चय-नय से मोक्ष-मार्ग कहा है।"
वही है मुक्ति का मार्ग।
जो छोड़ने-पकड़ने में पड़ा वह अड़चन में पड़ेगा। वह यहां से वहां डोलेगा।
कभूं तो दैर में हूं, कभूं हूं काबे में
कहां-कहां लिए फिरता है शौक उस दर का।
वह उसके दरवाजे को कभी मंदिर में खोजेगा, कभी मस्जिद में खोजेगा, कभी यहां कभी वहां; और एक दरवाजा जहां कि वह छिपा है--स्वयं का--अनखुला रह जायेगा।
चमक सूरज में क्या रहेगी
अगर बेजार हो अपनी किरण से?
और जो व्यक्ति छोड़ने-पकड़ने में लग जायेगा, वह बेजार हो जायेगा। छोड़ने
का मतलब है निंदा करनी होगी अपने कुछ अंगों की; शरीर की निंदा करनी होगी; धन की निंदा करनी होगी; कामवासना की निंदा करनी होगी, सबकी निंदा करनी होगी।
चमक सूरज में क्या रहेगी
अगर बेजार हो अपनी किरण से?
और ये अपनी ही किरणें हैं। अगर इनसे हम बेजार हो गये, और इनकी निंदा करने लगे और छोड़ने के चक्कर में पड़े गये, तो हम तोड़ते जायेंगे अपने को। लेकिन जीवन का अहोभाग्य इस दिशा से नहीं आता। जीवन का अहोभाग्य तो तब आता है जब जो भी हमें मिला है उसे हम रूपांतरित करने में कुशल हो जायें, समाहित करने में कुशल हो जायें।
कामवासना समाहित होकर ब्रह्मचर्य बन जाती है। क्रोध समाहित होकर करुणा बन जाता है। राग समाहित होकर प्रेम बन जाता है। हिंसा समाहित होकर अहिंसा बन जाती है। पचा लो! बेजार मत हो जाना! छोड़ने के उपद्रव में मत पड़ जाना! क्योंकि जो-जो तुम छोड़ दोगे, उस उसका रूपांतरण असंभव हो जायेगा। अगर क्रोध छोड़ दिया तो यह तो हो सकता है तुम अक्रोधी हो जाओ, लेकिन करुणावान न हो सकोगे। अगर कामवासना छोड़ दी, तो यह तो हो सकता है कि तुम काम-रहित हो जाओ, लेकिन ब्रह्मचर्य उपलब्ध न हो सकेगा। यह काम-रहितता वैसे ही होगी जैसे हम सांड को बैल बना देते हैं, ग्रंथि काट देते हैं, यंत्र को नष्ट कर देते हैं।
और तुम ऐसा मत सोचना कि यह जो मैं दृष्टांत दे रहा हूं, बड़े दूर का है।
यह दूर का नहीं है। साधुओं ने यह सब किया है। रूस में साधुओं की एक जमात थी जो जननेंद्रिय काट लेती थी। काट देने से, एक अर्थ में तो हल हो जाता था। जब जननेंद्रिय ही न रही तो कोई उपाय न रहा। लेकिन ब्रह्मचर्य इस तरह उपलब्ध नहीं होता। ब्रह्मचर्य उपलब्ध तो तब होता है जब यह जीवंत ऊर्जा काम की समाहित होती है; जब तुम इसे बाहर नहीं फेंकते, भीतर पचा जाते हो; जब तुम इसे उछालते नहीं फिरते; जब यह ऊर्जा तुम्हारे भीतर ऊर्ध्वगमन बन जाती है। क्रोध को काट देने से, कसम खा लेने से कि क्रोध न करूंगा, यह हो सकता है तुम दबा लो, दबाते जाओ, ऐसी घड़ी आ जाये कि किसी को भी पता न चले कि तुममें क्रोध है; लेकिन तुम्हें तो चलता ही रहेगा पता! तुम तो उसी के ऊपर बैठे हो। तुम तो ज्वालामुखी पर बैठे हो जो कभी भी फूट सकता है।
नहीं, करुणा पैदा न हो पायेगी। क्योंकि करुणा तो उसी ऊर्जा से निर्मित होती है जिससे क्रोध निर्मित होता है। ऊर्जा का दमन नहीं--ऊर्जा का रूपांतरण!
"इस दृष्टि से आत्मा में लीन आत्मा ही सम्यक दृष्टि होता है... ।"
तो महावीर कह रहे हैं, फिर व्याख्या क्या होगी सम्यक दृष्टि की? जिसको गीता में स्थितिप्रज्ञ कहते हैं, उसी को महावीर सम्यक दृष्टि कहते हैं। स्थितिप्रज्ञ--जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो गयी; सम्यक दृष्टि--जिसका दर्शन स्थिर हो गया है। एक ही बात है।
"आत्मा में लीन आत्मा ही सम्यक दृष्टि है। जो आत्मा को यथार्थ रूप से जानता है वही सम्यक ज्ञान है और उसमें स्थिर रहना ही सम्यक चारिष्य है।" बड़ी अदभुत बात... ! महावीर चरित्र यह नहीं कह रहे हैं जो तुम करते हो-- उसमें चरित्र नहीं है। तुम जो हो... ! साधारणतः हम सोचते हैं चरित्र का अर्थ

है, जो हम करते हैं। अगर हमने क्रोध नहीं किया तो हम चरित्रवान हैं। अगर क्रोध किया तो हम चरित्रहीन हैं। अगर हमने कामवासना का संबंध बनाया तो हम चरित्रहीन हैं। अगर कोई कामवासना का संबंध न बनाया तो हम चरित्रवान हैं। महावीर राजी न होंगे। महावीर कहेंगे, क्रोध किया या नहीं, यह सवाल नहीं--क्रोध है या नहीं? यह हो सकता है क्रोध किसी से भी न किया हो और क्रोध भीतर हो। तो भी वह कहते हैं, तुम सम्यक चारिष्य को उपलब्ध न हुए।
"उसमें स्थित रहना ही सम्यक चारिष्य है।" आत्मा में स्थित रहना ही... ! अपने में ऐसे खड़े हो जाना कि वहां से डांवांडोल न किए जा सको। वहां से तुम्हें कोई बाहर न ले जा सके--क्रोध या काम, कोई भी स्थिति "अप्पा अप्पम्मि रओ"--अपने में ही रमो! अपने में ही रम जाओ। अप्पा अप्पम्मि रओ। रमो अपने में! आपे में! कहीं और न जाओ! कहीं और न भटको!
सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
--और यही है सम्यक दृष्टि हो जाने का मार्ग!
जाणइ तं सण्णाणं, चरदिह चारित्तमग्गु त्ति।
यही है जानना, यही है देखना, यही है दर्शन, यही है चारिष्य!
अप्पा अप्पम्मि रओ! "अपने में रम जाओ।"
हमारे पास जो शब्द है "स्वास्थ्य", वह यही अर्थ रखता हैः अप्पा अप्पम्मि रओ! स्वास्थ्य का अर्थ हैः स्वयं में स्थित हो जाना। जब तुम बीमार होते हो तो तुम स्वयं में डांवांडोल हो जाते हो। सिर में दर्द है तो चेतना सिर के कारण डांवांडोल हो जाती है। पैर में कांटा लगा है तो कांटे के कारण चेतना डांवांडोल हो जाती है। जब तुम बिल्कुल डांवांडोल नहीं होते--न सिर बुलाता, न पैर बुलाता, न पेट बुलाता--जब शरीर को तुम बिल्कुल भूले रहते हो, ऐसा जैसा विदेह, है ही नहीं--तब तुम "स्वस्थ।" यही तो आत्म-स्थिति की दशा है; जब तुम इतने अपने में लीन हो कि कोई गाली दे तो तुम बाहर नहीं आते। तुम वहीं अपने भीतर से सुन लेते हो, कोई परिणाम नहीं होता। तुम्हारी दशा में कोई भेद नहीं पड़ता। तुम वही रहते हो जैसा गाली देने के पहले थे; वैसे ही गाली देने के बाद रहते हो। गाली दी या न दी, बराबर। तुम पर कोई रेखा नहीं खिंचती, कोई खरोंच नहीं लगती। किसी ने सम्मान किया, तुम फूल नहीं जाते। तुम्हारे अहंकार का गुब्बारा बड़ा नहीं होने लगता। तुम वैसे ही रहते हो जैसे थे, कोई अंतर नहीं पड़ता।
रवींद्रनाथ को जब नोबल प्राइज मिली और वे वापिस कलकत्ता लौटे, तो कलकत्ते में बड़ा संकट था। अनेक लोगों को बड़ी चोट लगी थी कि रवींद्रनाथ को नोबल प्राइज मिल गयी। तो बंगाली बड़े नाराज भी थे। एक संपादक अखबार का जूतों की माला लेकर पहुंच गया स्वागत करने के लिए। तो सोचा था उसने कि रवींद्रनाथ खिन्न होंगे, नाराज होंगे, लेकिन रवींद्रनाथ के "कवि" में कुछ "ऋषि" का अंग था। इसलिए उनकी गीताजंलि में उपनिषदों की झलक है। कुछ उड़ानें उन्होंने उस आकाश में भी भरी थीं जहां ऋषि ही प्रवेश करते हैं। वे सिर्फ सामान्य कवि नहीं थे। उस आदमी को जूतों की माला लिए देखकर वे उसके पास गये, क्योंकि वह भीड़ में पीछे खड़ा था। थोड़ा संकोच भी लग रहा था। दूसरे फूलमाला लाए थे, वह जूतों की माला लाया था। उसको संकोच में देखकर उनको थोड़ा अच्छा भी न लगा। वे फूलों की माला छोड़कर उसके पास गये, और कहा कि अब ले ही आये हो तो पहना दो। वह आदमी और लज्जा से भर गया। वह जूते की माला पटककर भाग खड़ा हुआ। तो रवींद्रनाथ ने उसमें से एक जोड़ी चुन ली अपने पहनने के लायक, पैर के लायक जो जोड़ी थी वह पहन ली और वे चल पड़े घर की तरफ। उन्होंने कहा कि ठीक किया, मेरे जूते रास्ते में खो भी गए थे! यह आदमी भी वक्त पर ले आया! और जूते की दुकान पर जाने की झंझट से बचा दिया! और माला लाया तो काफी जूते लाया था, तो दो उनके नाप के मिल भी गये।
जब तुम्हें बाहर का सम्मान और असम्मान कुछ अंतर न लाता हो, तुम्हारी मुस्कुराहट न तो जरा फीकी पड़ती हो, न जरा गहरी होती हो, तुम वैसे ही रह जाते हो जैसे तुम हो--स्वभाव में स्थिर! अप्पा अप्पम्मि रओ! तो तुम स्वस्थ! तो तुम आत्मज्ञान को उपलब्ध! तो यही है सम्यक दृष्टि हो जाना। और यही सम्यक चारिष्य है--इसमें स्थिर होना ही!

तो चारिष्य का अर्थ दूसरे से संबंध नहीं है। अगर चारिष्य का अर्थ दूसरे से ही संबंध है तो हिमालय की किसी एकांत गुफा में बैठे हुए तुम चारिष्यवान न हो सकोगे।
इसलिए ये दो शब्द एक जैसे हैं--चरित्र और चारिष्य। इनका फर्क समझ लेना। चरित्र का अर्थ हैः जिसका संबंध दूसरे से है। और चारिष्य का अर्थ हैः स्वयं में स्थित। तुमने गाली दी तो मैंने क्रोध किया--यह चरित्र। तुमने प्रशंसा की तो मैंने धन्यवाद दिया--यह चरित्र। तुमने गाली दी कि प्रशंसा की, मैंने कुछ भी न किया, मैं वैसा ही रहा जैसा था--यह चारिष्य।
तो अगर तुम हिमालय की गुफा में बैठ जाओ तो चरित्र तो समाप्त हो जायेगा, क्योंकि चरित्र तो दूसरे के बिना हो ही नहीं सकता; लेकिन चारिष्य... चारिष्य प्रगट होगा। एकांत में भी प्रगट होगा, जैसा एकांत में फूल खिलता है! कोई नहीं निकलता पास से तो भी उसकी गंध हवाओं में फैलती है। रात सब सो गये होते हैं, तब भी तारा आकाश में चमकता रहता है। वह चारिष्य है। उसका दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं।
तुम बैठे हो अपने कमरे में, अकेले, और कोई आया, दरवाजे पर दस्तक दी--तुम तत्क्षण बदल जाते हो, कोट-टाई ठीक करके बैठ जाते हो। यह चरित्र!
तुम स्नानगृह में स्नान कर रहे हो। आईने के सामने मुंह भी बना-बिचका रहे हो। तत्क्षण तुम्हें ख्याल होता है कि बच्चा तुम्हारा ताली के छेद में से देख रहा है। तुम समझ जाते हो कि यह बाप के लिए योग्य नहीं कि मुंह बिचकाए, बनाए, कि नाचे-कूदे, स्नानागृह में। यह चरित्र! यह दूसरे के देखते ही बदल जाता है।
जिसका दूसरे से कोई संबंध नहीं, जिसका तुमसे ही बस संबंध है--वह है चारिष्य।
अप्पा अप्पम्मि रओ।
"आत्मा ही मेरा ज्ञान है। आत्मा ही दर्शन है। आत्मा ही चारिष्य है। आत्मा ही प्रत्याख्यान है और आत्मा ही संयम और योग है। अर्थात ये सब आत्मरूप ही है।"
आया हु महं नाणे
"ज्ञान, आत्मा ही मेरा ज्ञान है।"
आया हु महं नाणे, आया में दंसणे चरित्ते य।
"और दर्शन और चरित्र भी मेरी आत्मा... ।"
आया पच्चक्खाणे, आया में संजमे जोगे।
"और आत्मा ही प्रत्याख्यान। और आत्मा ही व्रत-नियम, आत्मा ही संयम और योग अर्थात ये सब आत्मरूप ही हैं।"
महावीर के लिए आत्मा शब्द परम है। और जिसने उसमें थिरता पाली, सब पा लिया।
अगर तुमने त्याग किया दूसरों को दिखाने के लिए तो वह चरित्र हो गया, चारिष्य नहीं। अगर तुमने त्याग किया भीतर के परम आनंद से, तो चारिष्य। अगर तुम्हारा ज्ञान दूसरों से आया है तो वह ज्ञान नहीं। अगर तुम्हारा ज्ञान भीतर से आविर्भूत हुआ है तो ज्ञान। जो गीत तुमने दूसरों की नकल पर गुनगुनाया है, वह गीत नहीं। जो गीत सद्यःस्नात, अभी ताजा नहाया हुआ तुम्हारी अंतरात्मा से उठा है, अलौकिक, अद्वितीय, नितनूतन, यद्यपि सनातन-- वही गीत! वही गीत वेद बन जाता है! वही गीत ऋचाएं! वही गीत उपनिषद बन जाते हैं।
महावीर का सारा जोर एक बात पर है कि तुम किसी तरह अपने घर लौट आओ। आपे में आ जाओ! अपने में आ जाओ! दूसरे में बहुत भटक लिए--दूसरे में होना ही संसार है। तो जो तुमने दूसरे के लिए किया, दूसरे को सोचकर किया, दूसरे की आशा-अपेक्षा में किया--वह सब संसार है। दूसरे से आशा-अपेक्षा छोड़ो! दूसरे से दृष्टि हटाओ। तुम वहीं लीन हो जाओ जो तुम हो। यही संयम, यही योग!
इश्क भी हो हिजाब में हुस्न भी हो हिजाब में
या तो खुद आशकार हो, या मुझे आशकार कर।
दो ही उपाय हैं। या तो हम परमात्मा से कहेंः या तो खुद आशकार हो--या तो खुद को प्रगट कर; या मुझे आशकार कर--या मुझे प्रगट कर।

महावीर ने दूसरा ही रास्ता चुना है। वे कहते हैं, अपने को ही प्रगट करना है। प्रार्थना की उन्होंने गुंजाइश नहीं छोड़ी। उन्होंने इतना भी दूसरे पर भरोसा नहीं रखा है। परमात्मा भी दूसरा हो जायेगा, "पर" हो जायेगा। तो परमात्मा भी संसार ही हो जायेगा। उतना भी दूसरे पर निर्भर नहीं रखना है। क्योंकि दूसरे पर निर्भरता तुम्हें कभी भी मोक्ष, कभी भी परम स्वतंत्रता में न ले जा सकेगी।
तेरी दुआ से कजा तो बदल नहीं सकती
मगर है इसमें ये मुमकिन कि तू बदल जाये।
यह बात बड़ी ठीक है। जब तुम प्रार्थना करते हो तो प्रार्थना से कोई तुम्हारी मौत नहीं रुक जायेगी, न प्रार्थना से कुछ और बदलेगा। लेकिन यही होता है कि प्रार्थना करने में तुम बदल जाते हो। जब तुम प्रार्थना करते हो तो तुम्हारी प्रार्थना से और कुछ भी नहीं बदलता, लेकिन प्रार्थना करनेवाला बदल जाता है।
तो महावीर ने इस सार को बहुत गहराई से पकड़ा। उन्होंने कहा कि, तो फिर प्रार्थना की जरूरत क्या? जब बदलना ही स्वयं को है, तो फिर परोक्ष क्यों? फिर प्रत्यक्ष क्यों नहीं? जब असली सवाल मेरे भीतर ही घटना है, जब असली में भगवान भक्त के भीतर ही प्रगट होना है, तो फिर बाहर की तलाश बंद। फिर बाहर क्यों टटोलूं किसी पैरों को? फिर अपने घर लौट आऊं। फिर अपने में ही लीन हो जाऊं।
अप्पा अप्पम्मि रओ!
और यह जो तुम्हारे भीतर की आत्मा की बात महावीर कर रहे हैं, यह तुम भूल भला गए हो, लेकिन बिल्कुल भूल भी नहीं गए हो। थोड़ी पर्तें जम गई हैं धूल की, लेकिन पर्त के नीचे तुम्हारे प्राण अभी भी जीवंत हैं। जलधार अभी भी ताजी है। ऊपर-ऊपर काई छा गई है। तुम इसे भूल भी नहीं गए हो, क्योंकि कोई कैसे अपने को भूल जा सकता है? भूलने जैसी हालत है, लेकिन बिल्कुल नहीं भूल गये हो। उसी में संभावना है। उसी में किरण है संभावना की। जरा-सा सहारा पकड़ लो तो तुम अपने को याद कर पाओगे।
एक मुद्दत से तेरी याद भी आयी न हमें
और हम भूल गये हों तुझे ऐसा भी नहीं।
सदियां बीत गयी हों, मुद्दत बीत गयी है और तुमने अपनी याद भी न की हो! लेकिन भूल गये हो, ऐसा भी नहीं है। इस बात को ठीक से समझना। अगर बिल्कुल भूल गये हो, तब तो याद का कोई उपाय नहीं। और अगर बिल्कुल याद है तो याद की कोई जरूरत नहीं। दोनों के बीच में है स्थितिः भूली-भूली सी याद है। भूली- भूली सी याद, धुंधली-धुंधली सी याद! सूरज नहीं निकला है, भर-दुपहरी नहीं है, अंधेरी रात भी नहीं है--सुबह का हलका-हलका सा आलोक! सूरज ऊगने-उगने को है। कुहासा छाया है। हाथ को हाथ नहीं सूझता, फिर भी सूझ बिल्कुल नहीं खो गयी है। वह जो थोड़ी-सी सूझ बची है, जो थोड़ी-सी याद बची है, उसी को ही निखारो, प्रगाढ़ करो। उसी के सहारे भीतर की यात्रा होगी। उसी को निखारने और प्रगाढ़ने का नाम ध्यान है, विवेक है।
थोड़ा जागते चलो! जो थोड़ा-सा आसरा दिखायी पड़ रहा है, उसको पकड़ो, और उस दिशा में थोड़े बढ़ते चलो! थोड़ा साहस करो। वह भूली-भूली सी याद गहन होने लगेगी। भूल छंटती जायेगी, याद सघन होने लगेगी।
और जिस दिन भी कोई अपने घर लौट आता है, एक अनूठी घटना घटती है। इतने दुख, इतनी पीड़ाएं, इतनी शिकायत, इतने शिकवे, सब समाप्त हो जाते हैं। इतनी मांगें, इतनी वांछनाएं, इतनी आकांक्षाएं, इतनी तृष्णाएं, सब अचानक पूरी हो जाती हैं।
सब न मिलने की बातें थीं जब आकर मिल गए
सारे शिकवे मिट गए, सारा गिला जाता रहा।
तब पता चलता है कि वह सब जो मांगें थीं, अनंत-अनंत, वह एक ही मांग के खंड थीं। अपने से मिलने की असली मांग थी। उसको नहीं पहचान पा रहे थे, तो वही मांग अनंत खंडों में बंट गई थी। वह जो पद को चाहा था, वह अपने ही भीतर आत्मपद को चाहा था। वह जो धन को चाहा था, वह अपने ही भीतर उस शाश्वत धन को

चाहा था, जो मेरा स्वभाव है। वह जो यश और प्रतिष्ठा चाही थी, उस यश और प्रतिष्ठा में अपनी ही महिमा की तलाश थी--गलत रास्ते पर गलत दिशा में। महावीर का सारा योग आत्म-स्थिति है। कृष्ण ने कहा है गीता मेंः समत्वं योग उच्चते!
समत्व को उपलब्ध हो जाना योग है। महावीर भी कहते हैं, सम्यक दृष्टि, समत्व। सम्यकत्व--समता को उपलब्ध हो जाना! डांवांडोल न रहे चित्त, सम हो जाये। यहां-वहां न जाये, थिर हो जाये। थिरता सधे! ज्योति ऐसी हो जाये जैसे किसी घर में हवा के झोंके न आते हों, और ज्योति अकंप जलती हो, कंपती न हो। समत्वं योग उच्चते। यही दशा योग की दशा है। और महावीर कहते हैं, यही दशा-- आया हु महं नाणे--यही दशा ज्ञान। आया में दंसणे चरित्ते य। और यही दर्शन और यही चरित्र!
आया पच्चक्खाणे, आया में संजमे जोगे।
"और यही प्रत्याख्यान, व्रत, नियम, अनुशासन। और यही संयम और योग!"
महावीर ने जैसी महिमा का गुणगान आत्मा का किया है, किसी ने भी नहीं किया। महावीर ने सारे परमात्मा को आत्मा में उंडेल दिया है। महावीर ने मनुष्य को जैसी महिमा दी है और किसी ने भी नहीं दी।
महावीर ने मनुष्य को सर्वोत्तम, सबसे ऊपर रखा है।
और यह जो दुर्लभ क्षण तुम्हें मिला है मनुष्य होने का, इसे ऐसे ही मत गंवा देना। इसे ऐसे भूले-भूले ही मत गंवा देना। इसे दूसरों के द्वार खटखटाते-खटखटाते ही मत गंवा देना। बहुत मुश्किल से मिलता है यह क्षण और बहुत जल्दी खो जाता है। बड़ा दुर्लभ है यह फूल; सुबह खिलता है, सांझ मुर्झा जाता है। फिर हो सकता है सदियों-सदियों तक प्रतीक्षा करनी पड़े।
इसलिए मनुष्य होना महिमा ही नहीं है, बड़ा उत्तरदायित्व है। अस्तित्व
ने तुम्हारे भीतर से कोई बहुत बड़ा कृत्य पूरा करना चाहा है। साथ दो! सहयोग दो!
अस्तित्व ने तुम्हारे भीतर से कोई बहुत बड़ी घटना को घटाने का आयोजन किया है। साथ दो! सहयोग दो! और जब तक तुम खिल न पाओगे, नियति तुम्हारी पूरी न होगी।
तो समस्त ज्ञानी पुरुष कहते हैं तुम वापिस भेज दिये जाओगे। यह जीवन
और मरण का चक्र चलता रहेगा। इससे केवल वे ही बाहर निकल पाते हैं जो इस जीवन और मरण के चक्र में चलते हुए भी अपने भीतर के सारे विचारों के चक्र को रोक देते हैं; जो इस जीवन-मरण के चक्र में रहते हुए भी, साक्षी हो जाते हैं और एक गहन अर्थ में बाहर हो जाते हैं।
साक्षी होकर जो बाहर हो गया संसार के, उसको फिर दुबारा लौटने की कोई जरूरत न रहेगी। और जो दुबारा नहीं लौटता, उसने ही अपनी नियति को पूरा किया। उसके भीतर ही बीज फूल को उपलब्ध हुए।
इस अवस्था को महावीर कहते हैंः परमात्म-अवस्था।
तुम परमात्मा होने को हो। इससे कम पर राजी मत होना। इससे जो कम पर राजी हुआ वह नासमझ है। तुम कंकड़-पत्थरों से राजी मत हो जाना। हीरों की अनंत राशियां तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
अट्ठाईसवां प्रवचन

जीवन का ऋत्ः भाव, प्रेम, भक्ति

पहला प्रश्नः आप कहते हैं कि पुण्य भी बांधता है और पाप भी बांधता है।
तो तीर्थंकरों को उनका करुणाजन्य कर्म क्यों नहीं बांधता?

पहली बात तीर्थंकर जो करते हैं वह कर्म नहीं है, कृत्य नहीं है; क्योंकि कर्ता का कोई भाव नहीं है। तीर्थंकर जो करते हैं वह करते नहीं-- होता है। जैसे तुम श्वास ले रहे हो, श्वास लेना कृत्य नहीं है। जैसे श्वास सहज चल रही है, और जब न चलेगी तो तुम कुछ भी न कर पाओगे--जब तक चलेगी, चलेगी; जब रुकेगी तो रुक जायेगी। तुम्हारे हाथ के भीतर नहीं है। तुम्हारा कृत्य नहीं है। अहंकार-नियंत्रित नहीं है।
तीर्थंकर का कृत्य, कृत्य नहीं--श्वास जैसी सहज दशा है। होता है, किया नहीं जाता। करनेवाला कोई भी बचा नहीं है। करुणाजन्य है, ऐसा कहना भी गलत है। करुणापूर्ण है, लेकिन करुणाजन्य नहीं। करुणाजन्य तो तब होता है जब तुम्हें दया आए और तुम कुछ करो। करुणापूर्ण तब होता है जब तुम करुणा से पूर्ण हो गए हो--और उससे कुछ बहता है।
इन दोनों में फर्क है।
जब तुम्हें राह चलते किसी भिखमंगे पर दया आती है तो तुम्हारे भीतर कुछ हलन-चलन हो गया; तुम्हारी ज्योति कंप गयी; तुम्हारी प्रज्ञा थिर न रही। दूसरे के दुख से कंप गयी। पहले दूसरे के सुख से कंपती थी। किसी ने बहुत बड़ा मकान बना लिया तो ईर्ष्या जगी थी; अब किसी के मकान में आग लग गयी, तो दया उठी। लेकिन हर हाल तुम कंपे, तुम थिर न रहे; तुम वैसे ही न रहे जैसा इस भिखमंगे को देखने के पहले थे। राह पर तुम निकले, कोई न था, अकेले थे, फिर एक भिखमंगा दिखायी पड़ा, दया उठी, भाव का निर्माण हुआ--फिर भाव से कृत्य आया। तुम्हारी दशा बदली। तीर्थंकर की दशा नहीं बदलती; इसलिए करुणाजन्य नहीं है कृत्य, करुणापूर्ण जरूर है। जब भिखारी नहीं है मार्ग पर, तब भी तीर्थंकर करुणा से भरे हैं। तुम नहीं भरे हो। तुम्हें करुणा से भरने के लिए किसी का दुखी होना जरूरी है।
इसे ठीक से समझना। अगर दुनिया से दुखी लोग विदा हो जायेंगे तो तुम्हारी दया भी समाप्त हो जायेगी। किस पर दया करोगे? किसको दान दोगे? तुम्हारी दान और दया के लिए किन्हीं का दुखी रहना जरूरी है। तुम्हारी दान, दया के लिए दुख आवश्यक है। कोई न होगा कोढ़ी, कोई न होगा बीमार--किसके पैर दबाओगे? तुम्हारी दया एकदम मर जायेगी, कुम्हला जायेगी। उसके लिए बाहर से कोई प्रेरणा चाहिए। तो तुम्हारी दया भी बाहर से पैदा हुआ परिणाम है। तीर्थंकर करुणापूर्ण हैं--नहीं कि किसी पर करुणा करते हैं; करुणा से भरे हैं, जैसे दीये से प्रकाश झरता हैः कोई निकल जाये तो उस पर पड़ता है, कोई न निकले तो भी जलता रहता है; किसी के निकलने से नहीं जलता और किसी के चले जाने से बुझ नहीं जाता; किसी पर निर्भर नहीं है। आत्म भाव की दशा है।
तो तीर्थंकर की करुणा तुम्हारे दुख के कारण नहीं है। तुम सुखी हो तो
भी तीर्थंकर की करुणा तुम पर उतनी ही है जितने तुम दुखी हो। तुमसे कुछ प्रयोजन नहीं है। तुम नहीं हो तो भी तीर्थंकर की करुणा उतनी ही है, जब कि तुम हो। तुम्हारा होना न होना कुछ फर्क नहीं लाता। तीर्थंकर की करुणा तुम्हारे और तीर्थंकर के बीच संबंध नहीं है--तीर्थंकर की दशा है; उसकी अवस्था है; उसका आनंदभाव है। वह तुम पर इसलिए करुणा नहीं कर रहा है कि तुम दुखी हो। उससे तुम्हारी तरफ करुणा बहती है क्योंकि वह आनंदित है। इस भेद को बहुत ठीक से समझ लेना। तुम्हारी जरूरत है, इसलिए नहीं देता है वह; उसके पास जरूरत से ज्यादा है, इसलिए देता है।
जीसस के जीवन में कहानी है, जो उन्होंने बहुत बार कही। एक बगीचे के मालिक ने सुबह-सुबह मजदूर बुलाए। अंगूरों का बगीचा था और जल्दी ही फसल को काट लेना था। मौसम बदला जाता था। सुबह जो मजदूर आये उन्होंने दोपहर तक काम किया। मालिक आया, उसने देखा। उसने कहा, इतने मजदूरों से शाम तक काम

निपटेगा नहीं। तो भेजा अपने मुनीम को कि और मजदूर ले आओ। तो भर-दुपहरी कुछ और मजदूर लाए गये। फिर आया मालिक। सांझढलने को थी। उसने कहा, इनसे भी काम न हो पायेगा; कुछ और बुला लाओ। तो सूरज ढलते-ढलते काम बंद होते-होते कुछ मजदूर आए। और जब रात्रि में उसने पैसे बांटे तो सबको बराबर दे दिये--जो सुबह आये थे उनको भी, जो दोपहर आये थे उनको भी, जो सांझ आये थे उनको भी। जिन्होंने दिनभर काम किया उनको भी, और जिन्होंने कुछ भी काम न किया था उनको भी। तो जो सुबह आये थे वे निश्चित नाराज हो गये। और उन्होंने कहा, "यह अन्याय है। हम सुबह से आये हैं, दिनभर पसीना बहाया है। हमें भी उतना, और इन्हें भी उतना जो अभी-अभी आये और जिन्होंने कुछ भी नहीं किया, जिन्हें करने का मौका ही न मिला, क्योंकि सूरज ढल गया?"
तो उस मालिक ने कहा, तुम्हें कम तो नहीं दिया है? उन्होंने कहा, "नहीं,
कम नहीं दिया है। जितनी मजदूरी मिलती, उससे ज्यादा ही दिया है। लेकिन अन्याय हो रहा है। इन्होंने तो कुछ भी नहीं किया।" तो उस मालिक ने कहा कि तुम अपनी फिक्र करो। तुम्हें जितना मिलना था उससे ज्यादा मिल गया, तुम प्रसन्न नहीं हो। तुम इनसे तुलना मत करो। इन्हें मैं काम के कारण नहीं देता; मेरे पास बहुत है, इसलिए देता हूं। मैं सबको बराबर दे रहा हूं। मेरे पास जरूरत से ज्यादा है। तुम्हारे काम के कारण नहीं; मेरे पास है, इसलिए; मैं बोझ से दबा हूं, इसलिए।
जीसस की कहानी बड़ी महत्वपूर्ण है।
महावीर तुम्हें देते हैं तुम्हारे दुख के कारण नहीं। मिला है उन्हें, खूब मिला है! और उसको न बांटें तो वह बोझिल हो जाता है। उसे बांटना जरूरी है। अगर तुम न भी होओगे तो भी बांटेंगे। अगर तुम सुखी होओगे तो भी बांटेंगे।
तो तुम्हारे दुख से तुम तीर्थंकर की करुणा को मत जोड़ना। तुमसे उसका कोई संबंध नहीं है। तीर्थंकर की करुणा का संबंध उसके अंतर-आनंद से है, सच्चिदानंद से है। वह अपनी आत्मा में रमा है और उसने इतना पा लिया है। और जो पाया है वह कुछ ऐसा है कि बांटो तो बढ़ता है, न बांटो तो घट जाता है। इसलिए तुम पर करुणा करके तीर्थंकर कुछ कर रहे हैं, ऐसा नहीं। आनंद-भाव में बांटते हैं--बांटने से बढ़ता है। जितना बांटते हैं, उलीचते हैं, उतना बढ़ता चला जाता है; उतने नये स्रोत खुलते चले जाते हैं। तो जब रोज-रोज नया-नया आनंद बरस रहा हो, बासे को कौन रखेगा! तुम सांझ भोजन कर लेते हो, फिर बांट देते हो। लेकिन गरीब बासी रोटी को भी रख लेता हैः कल काम पड़ेगी।
तुम बांटने से डरते हो, क्योंकि कल का पक्का नहीं है। और आज का अगर बांट दिया तो कल मिलेगा या नहीं! लेकिन तीर्थंकर उस दशा में हैं जहां प्रतिपल अनंत बरस रहा है। तो जो इस क्षण बरसा है, उसे बांट ही देना है; क्योंकि दूसरे क्षण के लिए जगह खाली करनी है। अगर न बांटा तो बासा पड़ा रह जायेगा और बासे के कारण नये के आने में बाधा पड़ेगी। और अगर बासा बहुत इकट्ठा हो गया, उसकी राशियां लग गयीं तो नये के जन्म की कोई संभावना न रह जायेगी।
तो न तो तीर्थंकर का कृत्य कृत्य है, और न करुणाजन्य है--करुणापूर्ण है। इसलिए कोई बंध नहीं--न पाप का न पुण्य का। तीर्थंकर से बहुत कुछ होता है, लेकिन तीर्थंकर कुछ करता नहीं।... सहजस्फूर्त; जैसे पक्षी गीत गाते हैं!
मिर्जा गालिब से कोई पूछा कि लोग आपकी कविताओं की बड़ी प्रशंसा करते हैं, लेकिन मेरी तो कुछ समझ में नहीं आतीं। और जो प्रशंसा करते हैं, मुझे शक है कि उनकी भी समझ में आती हैं! क्योंकि जब भी मैंने उनसे पूछा तो वे समझा न पाये, आप कुछ कहें।
गालिब ने बड़ा अजीब-सा उत्तर दिया। आकाश की तरफ देखा और कहा, "खुदा बड़ा है। कविता से खुदा का क्या लेना-देना?" कहा, खुदा बड़ा है उस आदमी ने भी कहा, "यह तो निश्चित ही है कि खुदा बड़ा है। लेकिन इससे मेरे प्रश्न का क्या संबंध है?" उन्होंने कहा, "थोड़ा ठहरो। खुदा बड़ा है, यह तुम मानते हो?" उसने कहा, "निश्चित मानता हूं।"
"लेकिन खुदा को समझते हो?"

समझ में तो कुछ भी नहीं आता। तो गालिब ने कहा, "ऐसी ही मेरी कविताएं हैं। मैं ही कहां समझता हूं!"
समझ छोटे की होती है, विराट की नहीं। हमारी छोटी समझ है--कंजूस की, कृपण की समझ है। तो हम कृत्य की भाषा जानते हैं केवल; सहज की भाषा हमें पता नहीं। हम तो कर-करके मुश्किल से कर पाते हैं, तो हम यह कैसे मानें कि कुछ अपने-आप होता है। हम तो कर-करके भी नहीं कर पाते हैं और हार जाते हैं, विफल हो जाते हैं। जोड़-जोड़कर नहीं जुटा पाते तो हम यह कैसे मानें कि कोई लुटा- लुटाकर, और अपनी संपदा को बढ़ा लेता होगा? हम तो तिजोड़ियां बांध-बांधकर आखिर में पाते हैं राख हाथ में रह गयी। जोड़-जोड़ के भी कुछ नहीं जुड़ता हो, जिसने एक ही गणित जाना हो, वह यह कैसे मानेगा कि बांटने से बढ़ सकता है, पागल हुए हो? होश की बातें करो, वह कहेगा। यहां हार गए जीत-जीतकर, तुम कहते हो हार कर जीत हो जाती है!
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, ऐसा है। जोड़-जोड़कर नहीं जुड़ता, इससे सिद्ध होता है कि विपरीत शायद सही हो। क्योंकि जोड़-जोड़कर तो कोई कभी नहीं जोड़ पाया। तो एक बात तो तय हो गयी कि जोड़ने से नहीं जुड़ता है। अब तुम जरा दूसरा प्रयोग करके देख लो कि बांटने से बढ़ता है। लेकिन बांटोगे तो तभी जब होगा। तीर्थंकर का अर्थ हैः जो है; जिसके पास है।
बुद्ध के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि ऐसा मन होता है कि "मनुष्यता
कि सेवा में सब कुछ लगा दूं। आपका आशीर्वाद चाहिए!" कहते हैं, बुद्ध की आंखें गीली हो गयीं, उनमें आंसू झलक आए। और बुद्ध ने उस आदमी की तरफ ऐसी करुणा से देखा कि वह आदमी भी विचलित हुआ। बुद्ध के शिष्य भी थोड़े घबड़ाए कि उसने कुछ ऐसी बात तो कही नहीं, भली आकांक्षा जाहिर की थी।
वह आदमी बेचैन हुआ। उसने कहा कि आप इतने उदास क्यों हो गये? आपकी आंखें गीली क्यों हो आयीं? मैंने कुछ गलत पूछा? मैंने आपको कोई चोट पहुंचायी?
बुद्ध ने कहा कि नहीं, यह सोचकर ही मुझे दया आती है कि तुम देने का सोच रहे हो, लेकिन तुम्हारे पास है नहीं। तुम कहते हो, "सारी मनुष्यता की सेवा करनी है मुझे, कैसे यह जीवन अर्पित कर दूं!" लेकिन जीवन कहां है? तुम्हें मैं देखता हूं तो खाली हाथ हो तुम! राख ही राख है भीतर, जीवन कहां है? तुम दोगे क्या? देने के पहले होना चाहिए। चूंकि हमारे पास नहीं है, इसलिए हम जोड़ते हैं। जोड़कर सोचते हैं कि हो जायेगा। जिनके पास है वे बांटते हैं। क्योंकि बांटकर उनको लगता है कि बढ़ता है।
किसी बगीचे के माली से पूछो, वृक्षों की कांट-छांट करता रहता है तो वृक्ष घने होते जाते हैं। कलम करता है तो वृक्ष सघन होते हैं, बढ़ते हैं। एक पत्ता काटो तो चार पत्ते निकल आते हैं। एक शाखा काटो तो दो शाखाएं पैदा हो जाती हैं। माली से पूछो जीवन का राज!
ऐसे ही तुम्हारे अंतर्जीवन का वृक्ष भी है। उसे बांटो तो कलम होती है। उसे सम्हालकर रख लो, डर के कारण छिपाकर रख लो, सब तरफ से ढांककर रख लो-- मर जाता है पौधा जीवन का। ऐसे ही तो जीवन के पौधे कुम्हला गये हैं। छोड़ो खुली हवा में! ले जाने दो सुगंध को हवाओं को! छोड़ो खुले आकाश में! खेलने दो मेघों को, होने दो मेघ-मल्हार! नाचने दो तूफानों और आंधियों को वृक्ष के आसपास! बढ़ने दो वृक्ष को! खुलने दो, फैलने दो! यह बढ़ेगा, खूब बढ़ेगा! ऊपर भी, भीतर भी। ऊंचाइयों में भी बढ़ेगा और गहराइयों में भी बढ़ेगा। जितना वृक्ष ऊपर जाता है उतनी ही जड़ें नीचे गहरी चली जाती हैं। लेकिन हमने अभी कृपण का ही गणित जाना है। हमने धनी का गणित जाना ही नहीं! इसलिए जब हम तीर्थंकरों के संबंध में भी पूछते हैं तो हम अपने ही हिसाब से पूछते हैं। हम कहते हैं कि जब पुण्य भी बांध लेता, तो तीर्थंकर के करुणापूर्ण कृत्य उन्हें नहीं बांधते?
तीर्थंकर का अर्थ ही है कि जो पाप और पुण्य के पार हो गया। तीर्थंकर
का अर्थ ही है जो कृत्य के पार हो गया और सहज में प्रवेश कर गया।
इस शब्द "सहज" को खूब-खूब मंथन करना, चिंतन करना, ध्यान करना। यह शब्द बड़ा बहुमूल्य है। इस शब्द का अगर तुम्हें अर्थ-विस्फोट हो जाये तो तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जायेगी। "सहज" का अर्थ है जो तुम्हारे बिना

किये अपने से होता है। बहुत कुछ है जो सहज हो रहा है। उस पर भी तुम अपने को आरोपित किये हो। तुम कहते हो, "मैं"। किसी से प्रेम हो जाता है, तुम कहते हो, "मैं प्रेम करता हूं।" होता है। तत्क्षण तुम बदल देते हो भाषा। तुम कहते हो, करता हूं! किसी ने कभी प्रेम किया? सुना कभी तुमने कि किसी ने प्रेम किया? कोई प्रेम कर सकता है? अगर मैं तुम्हें आज्ञा दूं कि करो प्रेम, तुम कर पाओगे? तुम कहोगे, यह भी कोई आज्ञा की बात है? यह कोई मेरे किये से होगा? होगा तो होगा। नहीं होगा तो नहीं होगा। होता है, तो होता है। नहीं होता है, तो नहीं होता है। जब हो जाता है तब रुका नहीं जा सकता; और जब नहीं होता है तब किया नहीं जा सकता।
लेकिन फिर भी तुम प्रेम पर भी थोप देते हो अहंकार को। तुम कहते हो, मैंने किया प्रेम। तुम कहते हो, मैं तो प्रेम कर रहा हूं और तुम नहीं कर रहे हो। और हम यही सिखाते भी हैं।
छोटे-छोटे बच्चों को भी मां कहती है, मुझे प्रेम करो, मैं तुम्हारी मां हूं। क्या पागलपन की बात हो रही है? कौन कर पाया प्रेम? बच्चे की तो छोड़ दो, बड़े नहीं कर पाये। बड़े-बड़े कुशल नहीं कर पाये। प्रेम को करोगे कैसे? कोई तुम्हारे हाथ की बात है? प्रेम कोई कृत्य तो नहीं। लेकिन अगर बच्चे को तुमने जोर दिया कि करो मुझे प्रेम, मैं तुम्हारी मां हूं, तो बच्चे को तुम एक ऐसी असमंजस में, ऐसे संकट में, ऐसी विडंबना में डाल रहे हो जिसका तुम्हें कुछ पता नहीं कि तुम क्या कह रहे हो। छोटा-सा बच्चा तड़फेगा; सोचेगा; कैसे करो प्रेम! लेकिन करना ही पड़ेगा; क्योंकि मां पर सब निर्भर है। दूध निर्भर है, जीवन निर्भर है। मां के सहारे ही बच सकता है बच्चा। बाप कहेगा, "मुझे प्रेम करो, मैं तुम्हारा बाप हूं। मैंने तुम्हें जन्म दिया!" अब जन्म देने से कोई प्रेम का लेना-देना है? लेकिन बच्चा चेष्टा करेगा कि ठीक है; जब सब कहते हैं, बड़े-बूढ़े कहते हैं तो करना ही होगा। तो झूठा मुस्कुराएगा, झूठे पैर छुएगा, झूठी प्रसन्नता जाहिर करेगा। शुरू हुआ पाखंड! फिर जीवनभर ऐसे ही झूठ में जीयेगा। फिर मर जायेगा और प्रेम की सहज उदभावना से परिचित न हो पायेगा। क्योंकि पहले से ही प्रेम के मार्ग पर झूठ खड़ा हो गया।
न, मां इतना ही कर सकती है कि अगर उसे बच्चे के प्रति प्रेम है तो करे प्रेम। अगर उस प्रेम के संघात में, अगर उस प्रेम के संसर्ग में बच्चे की सहजता भी प्रफुल्लित हो उठेगी तो हो उठेगी--सौभाग्य! न हो तो मजबूरी है। हो जाये तो सौभाग्य; न हो तो कुछ किया नहीं जा सकता, असहाय अवस्था है। हो जाये तो धन्यभाग। परमात्मा को धन्यवाद दिया जा सकता है। न हो तो शिकायत करने का कोई उपाय नहीं है। स्वीकार कर लेना होगा, यही भाग्य है।
लेकिन इतना ही किया जा सकता है कि मां बच्चे को अगर प्रेम करती है तो करे। अगर उसके भीतर प्रेम का आविर्भाव हुआ है तो उलीचे, लुटाए, बरसाए। इस बरसा में ही बच्चे की वीणा भी बजेगी--बजनी ही चाहिए। इस प्रेम के परिवेश में बच्चे का सोया हुआ प्राण जाग्रत होगा। बच्चे के बीज--प्रेम के-- अंकुरित होंगे। यह प्रेम सब तरफ से बरसता हुआ उसके भीतर भी प्रेम की हुंकार को उठाएगा। यह प्रेम का आह्वान उसके भीतर भी चैतन्य को जगाएगा। वह भी प्रेम से भरेगा, लेकिन तब प्रेम का सहज अनुभव होगा। एक दिन अचानक पायेगा वह मां को प्रेम करता है। करता है--भाषा की बात; पायेगा कि मां से प्रेम है। और तब उसके जीवन में एक बात निश्चित हो जायेगी कि भूलकर भी प्रेम को कृत्य न बनाएगा।
शिक्षक कहते हैं, सम्मान करो, श्रद्धा करो। श्रद्धा कहीं कोई करता है? होती है।
मैं विश्वविद्यालय में बहुत दिन तक था। शिक्षकों की एक ही परेशानी कि श्रद्धा खो गयी, कि विद्यार्थी आदर नहीं करते। मैंने बार-बार शिक्षकों के सम्मेलन में कहा कि यह बात ही तुम गलत तरफ से उठाते हो। श्रद्धा कोई कर सकता है? और जो की गयी श्रद्धा थी वह झूठी थी, इसलिए उखड़ गई है।
यह सदी थोड़ी सचाई की तरफ ज्यादा झुकी सदी है। आज का युवक अतीत के युवक
से सचाई की तरफ ज्यादा झुका हुआ युवक है।

एक मां अपनी बेटी को कह रही थी कि जब तक मेरा विवाह नहीं हुआ तब तक मैंने किसी पुरुष का स्पर्श भी नहीं किया था। क्या तू भी बड़े होकर अपने बच्चों से यही कह सकेगी?
उस युवती ने कहा, कह तो सकूंगी, मगर इतनी अकड़ से नहीं जितनी अकड़ से तुम
कह रही हो। क्योंकि मैं जानती हूं, यह झूठ है। तो कह तो सकूंगी अगर कहना ही पड़ेगा तो कह सकूंगी, लेकिन इतनी अकड़ से नहीं जितनी अकड़ से तुम कह रही हो। थोड़ी सचाई की तरफ झुका हुआ युग है। तो जो झूठ जहां-जहां था वहां से टूट गया है।
तो शिक्षकों से मैंने बहुत बार कहा कि तुम जब भी यह सवाल उठाते हो कि विद्यार्थियों का आदर खो गया है, तब तुम्हें असल में दूसरा सवाल उठाना चाहिए--बुनियादी सवाल--कि तुम कहीं ऐसा तो नहीं कि गुरु नहीं रहे हो? क्योंकि गुरु हो तो आदर होता ही है--होना ही चाहिए; जैसे वर्षा हो तो वृक्ष हरे हो जायें। अब वृक्ष अगर सूखने लगें और बादल शिकायत करें कि यह वृक्षों को क्या हो रहा है, वर्षा आ गयी है और वृक्ष हरे नहीं हो रहे! तो हम यही कहेंगे कि तुम बरसे कहां? तुम बरसते तो वृक्षों का हरा हो जाना बिल्कुल सहज था। यह अपने से होता है।
गुरु, गुरु नहीं है। आकांक्षा कर रहा है गुरु को जैसा सम्मान मिलना चाहिए वैसा सम्मान मिलने की। वह नहीं मिलता। नहीं मिलता, पीड़ा खड़ी होती है। वह जबर्दस्ती थोपने की कोशिश करता है। जबर्दस्ती जो उस आदर को करने लगता है वह भी विकृत हो जाता है। तब उसके जीवन में सहज श्रद्धा का उपाय न रहा। इसे ख्याल में लेना।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है--सत्यम, शिवम, सुंदरम--जो भी सत्य है, सुंदर है, शिव है, वह सभी होता है, किया नहीं जाता। जो किया जाता है वह क्षुद्र है। दुकान चलायी जाती है। मकान बनाए जाते हैं। प्रेम नहीं किया जाता। श्रद्धा नहीं बनायी जाती। झूठ गढ़े जाते हैं, सत्य नहीं गढ़ा जाता।
सत्य का तो सिर्फ आविष्कार होता है। सत्य तो है; झूठ बनाने पड़ते हैं।
तो अगर कर्ता बनना हो तो झूठ बनाना, क्योंकि कर्ता होने का एक ही उपाय है।
और अगर अकर्ता बनना हो तो सत्य की खोज करना।
तीर्थंकर यानी अकर्ता; जो अब कुछ अपनी तरफ से नहीं करता है; जो होता है उसे होने देता है, उसे रोकता भी नहीं; जो आता है उसे आने देता है--अगर जीवन है तो जीवन, अगर मौत है तो मौत; सुख है तो सुख, दुख है तो दुख; जवानी है तो जवानी, बुढ़ापा है तो बुढ़ापा--जो अपनी तरफ से बिल्कुल निश्चेष्ट हो जाता है, सारी चेष्टा छोड़ देता है, जीवन के ऊपर आरोपण करने का कोई प्रयास नहीं करता। जीवन जहां ले जाये उसकी सहजता के साथ जो बहने को तत्पर है, वही तीर्थंकर है।
तो न तो तीर्थंकर को पाप लगता, न पुण्य लगता। तीर्थंकर को कर्म-बंध नहीं होता।
लेकिन इस संदर्भ में एक बात ख्याल ले लेनी चाहिए, जैन शास्त्र बड़ी बहुमूल्य बात कहते हैं। वे कहते हैं, तीर्थंकर को तो कर्म-बंध नहीं होता, लेकिन आदमी तीर्थंकर कर्म-बंध के कारण होता है। सभी लोग तीर्थंकर नहीं होते। सभी परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति भी तीर्थंकर नहीं होते। "केवल ज्ञान" को तो करोड़ों लोग उपलब्ध होते हैं, लेकिन तीर्थंकर तो कभी कोई एकाध होता है। तो फिर इतने लोग जो परम-ज्ञान को उपलब्ध होते हैं और परम सत्य में खो जाते हैं, सभी तीर्थंकर क्यों नहीं होते? तो कारण तो होना चाहिए। महावीर जब ज्ञान को उपलब्ध हुए तो और भी बहुत लोग ज्ञान को उपलब्ध थे, लेकिन सभी तीर्थंकर न थे। जैन चौबीस की संख्या मानते हैंः एक प्रलय और सृष्टि के बीच में चौबीस तीर्थंकर। करोड़ों लोग, करोड़ों आत्माएं "केवल ज्ञान" को उपलब्ध होंगी, लेकिन चौबीस ही तीर्थंकर? मामला क्या है? सभी ज्ञानी क्यों तीर्थंकर नहीं हैं?
तो इस फर्क को ख्याल में लेना। वे कहते हैं तीर्थंकर का कर्म-बंध होता है। तीर्थंकर बनने के पहले जिस व्यक्ति ने खूब करुणा का अभ्यास किया है; तीर्थंकर बनने के पहले जिस व्यक्ति ने सब भांति अहिंसा का अभ्यास किया है;

तीर्थंकर बनने के पहले जिसने सब भांति अपने चरित्र को इस तरह से नियोजित किया है कि उससे किसी को दुख न हो, किसी को पीड़ा न पहुंचे; जिसने एक गहन अनुशासन अपने जीवन में निर्मित किया है... जिसने ऐसा अनुशासन निर्मित नहीं किया वह भी ज्ञान को उपलब्ध हो जायेगा; लेकिन जब वह ज्ञान को उपलब्ध होगा तो तत्क्षण विराट में खो जायेगा। उसे इस जमीन पर पकड़ रखने के लिए कोई भी उपाय नहीं है। लेकिन जिसने खूब गहनता से सेवा, दया, करुणा, अहिंसा का अभ्यास किया है जन्मों-जन्मों तक... वह करुणा, सेवा, और दया सहज नहीं है, चेष्टित है... तो जिसने चेष्टित दया और करुणा का अभ्यास किया है, उसको तीर्थंकर का कर्म-बंध होता है।
जैन अदभुत हैं! वे कहते हैं, यह भी कर्म-बंध है। है तो यह भी। कितना ही पुण्य हो, लेकिन है तो यह भी बांधनेवाला है। करुणा से बंधे हो--तो बड़ी सोने की जंजीर है, हीरे-जवाहरातों से जड़ी जंजीर है, लेकिन बंधे हो! तो आखिरी जन्म में ऐसा व्यक्ति जब ज्ञान को उपलब्ध होता है तो अपने ज्ञान को लेकर चुपचाप उड़ नहीं जाता आकाश में; रुकता है जमीन पर। उसके पास जंजीरें हैं कुछ। जीवन की सांसारिक जंजीरें तो सब उसने तोड़ दी हैं, लेकिन करुणा की जंजीरें हैं उसके पास। उनके आधार पर वह थोड़ी देर पृथ्वी पर टिकता है। उन क्षणों में वह बांट पाता है, दे पाता है जो उसे मिला है।
तो तीर्थंकर तो कोई कर्म-बंध के कारण होता है। लेकिन तीर्थंकर का कोई कर्म-बंध नहीं होता।
तीर्थंकर का अर्थ है जिसने जाना ही नहीं, जो जनाने में कुशल है। तीर्थंकर का अर्थ है जो स्वयं नहीं हो गया केवल, बल्कि दूसरों को भी उस दिशा में इशारे करने में कुशल है; जिसने अपनी ही आंखें नहीं खोल लीं, बल्कि दूसरों की आंखों की भी चिकित्सा करने में जो कुशल है; जो अपनी आंखों के सहारे, अपनी दृष्टि के सहारे तुम्हें भी दर्शन करा देता है।
तो ज्ञानी तो केवल ज्ञानी है--उसने पा लिया और गया। तीर्थंकर ऐसा ज्ञानी है जो रुकता है थोड़ी देर। उसकी नाव इसके पहले कि छूटे अनंत के तट की ओर, इस किनारे पर वह थोड़ी देर रुकता है। और इस किनारे पर जो लोग अभी हैं और जिन्हें दूसरे किनारे का कोई पता भी नहीं, जिन्होंने स्वप्न में भी दूसरे किनारे को नहीं देखा, जिनकी कल्पना में भी दूसरे किनारे की छाया नहीं पड़ी है--ऐसे लोगों को भी दूसरे किनारे की अभीप्सा से भर देता है। इसके पहले कि खुद की नाव छोड़े और न मालूम कितने लोगों को तैयार कर देता है कि वे भी उत्सुक हो जायें, आतुर हो जायें, प्यासे हो जायें।
तीर्थंकर का अर्थ हैः जान लिया और जनाया भी। सिर्फ जानकर ही जो चला गया, वह अकेला चला जाता है। उसके पीछे कोई परंपरा नहीं बनती जानेवालों की। जो सिर्फ जानकर चला गया, उसके पीछे कोई धर्म निर्मित नहीं होता; वह चुपचाप तिरोहित हो जाता है। उसकी कोई रेखा नहीं छूट जाती। लेकिन जो दूसरों को जनाने की अथक चेष्टा करता है, वह अथक चेष्टा उसके पिछले जन्मों में साधे गये अभ्यास का परिणाम है। लेकिन वह भी कर्म-बंध है। पर इस जन्म में, तीर्थंकर की दशा में, कोई कर्म-बंध नहीं होता। अब तो सब सहज होता है। इसको ख्याल रखना।
तुम्हारी अगर अहिंसा भी होगी तो असहज होगी, चेष्टित होगी। तुम अगर दया भी करोगे तो प्रयास करोगे तो ही दया करोगे। तुम अगर करुणा करोगे तो अपने को बहुत ज्यादा खींचोगे तो ही कर पाओगे। अगर तुमने अपने को ज्यादा न खींचा तो तुम करुणा न कर पाओगे। हां, क्रोध कर पाओगे सहज। क्रोध तुममें सहज होता है, करुणा असहज। अगर तीर्थंकर को क्रोध करना हो तो असहज होगा, करुणा सहज। सिक्का उलटा हो गया। सारे गणित के नियम विपरीत हो गये। अगर तीर्थंकर को क्रोध करना पड़े... कभी-कभी तीर्थंकर क्रोध करते हैं। जैन तीर्थंकरों के जीवन में तो उल्लेख नहीं, क्योंकि जैन उल्लेख नहीं कर सकते। वे सोच ही नहीं सकते कि तीर्थंकर और क्रोध कर सकता है! बात भी ठीक है। तीर्थंकर से क्रोध सहज नहीं होता, इसलिए उसका उल्लेख करना उचित नहीं है। लेकिन और परंपराएं हैं। वहां भी तीर्थंकर होते हैं।
जैसे जीसस के जीवन में उल्लेख है कि वे चर्च में, मंदिर में गये-- यहूदियों का जो सबसे प्राचीन मंदिर था जेरुसलम का--और वहां उन्होंने देखा

कि ब्याजखोर मंदिर के भीतर दुकानें लगाकर बैठ गये हैं। तो उन्होंने कोड़ा उठा लिया और वे आग-बबूला हो गये और उनकी आंखों से आग बरसने लगी। और अकेले आदमी ने सैकड़ों ब्याजखोरों को मंदिर के बाहर उठाकर फेंक दिया। वह इतने घबड़ा गए। इतना जाज्वल्यमान रूप था उनका! ईसाइयों को बड़ी कठिनाई रही है यह समझाने में कि ईसा इतने क्रोधित कैसे हो गये! करुणा का मसीहा इतना क्रोधित कैसे हो गया!
लेकिन अगर तीर्थंकर चाहे तो चेष्टा से क्रोध कर सकता है। लेकिन वह क्रोध भी होगा किसी करुणा की ही सेवा में। इस कीमिया को समझना। यह करुणा ही थी जीसस की कि यह परमात्मा का मंदिर विकृत न हो जाये; यहां की प्रार्थना बाजारू न हो जाये; यह पूजागृह बाजार की गंदगी से न भर जाये। यह करुणा ही थी। इस करुणा के कारण ही वे क्रोधित हो गए। लेकिन यह क्रोध चेष्टित था, अभिनय था; जैसे कोई अभिनेता क्रोधित हो जाता है। जैसे राम रामलीला में अभिनय करते हुए रोते हैं कि मेरी सीता कहां है; वृक्षों से पूछते हैं कि मेरी सीता कहां गई--वह सिर्फ पूछना है, अभिनय है; भीतर कुछ भी नहीं है। भीतर तो उनकी सीता उनके घर है। अभिनेता हैं। राम तो वे हैं भी नहीं। अभिनय है। जीसस की क्रोध की अवस्था भी करुणा की सेवा में किया गया अभिनय है। गुरजिएफ तो बहुत कुशल था क्रोध करने में। ऐसी घटनाएं हैं जो बड़ी अनूठी हैं। कि गुरजिएफ धीरे-धीरे इतना कुशल हो गया अभिनय में कि वह आधे चेहरे से क्रोध कर सकता था और आधे से करुणा। और कई दफा उसने लोगों को चकित कर दिया और दुविधा में डाल दिया। दो आदमी मिलने आये--एक बाएं बैठा है, एक दाएं--तो वह आधे चेहरे से तो इस तरह देखता रहा जैसे कि हत्या कर देगा और आधे चेहरे से इस तरह देखता रहा कि फूल बरसते रहे। एक तरफ की आंख बड़ा प्रेम बरसाती रही और दूसरी तरफ की आंख आग बरसाती रही। जब वे दोनों आदमी मिलकर बाहर गए तो दोनों ने अलग-अलग वर्णन किया गुरजिएफ का, कि यह तो आदमी बहुत दुष्ट और हत्यारा मालूम होता है; यह तो ऐसा खतरनाक आदमी है कि अगर एकांत में मिल जाये तो गर्दन दबा दे। दूसरे ने कहा, तुम कहते क्या हो? तुम पागल हो गए हो? जरा उसकी आंख तो देखते! कैसा प्रेम! यह आदमी चींटी भी मार सकेगा? ऐसा बहुत बार बहुत लोगों को हुआ। कुशलता इतनी गहरी हो सकती है!
अगर तुमने शरीर से अपने को बिल्कुल अलग कर लिया है तो शरीर का तुम यंत्रवत उपयोग कर सकते हो। तुम एक हाथ हिलाते हो, दूसरा रोके रखते हो। इसी तरह एक आंख क्रोध कर सकती है, एक प्रेम कर सकती है। चेहरे का एक हिस्सा कुछ कह सकता है, दूसरा कुछ कह सकता है। और इसके पीछे वैज्ञानिक कारण है। क्योंकि तुम्हारे पास दो मस्तिष्क हैं, एक मस्तिष्क नहीं है। बायां मस्तिष्क अलग है, दायां मस्तिष्क अलग है। दोनों की प्रक्रिया अलग है। और यह भी हो जाता है कभी कि अगर दोनों के बीच का छोटा-सा सेतु है, वह टूट जाये, तो एक आदमी में दो आदमी पैदा हो जाते हैं, स्प्लिट पर्सनैलिटी हो जाती है। तुम्हारा शरीर दो हिस्सों में बंटा है, इसे ख्याल में रखना। इसलिए तो दायां हाथ अगर सक्रिय होता है तो बायां निष्क्रिय होता है। जिसका बायां सक्रिय होता है उसका दायां निष्क्रिय होता है। क्योंकि दोनों हिस्सों में एक हिस्सा पुरुष का और एक हिस्सा स्त्री का है। आधा हिस्सा निष्क्रिय है, आधा हिस्सा सक्रिय है। और तुम्हारा आधा चेहरा अलग होता है और आधा चेहर अलग होता है।
तुमने कभी ख्याल नहीं किया! तुम अपना चित्र उतरवाना और एक ही हिस्से
के आधे-आधे चित्रों को जोड़ देना और तुम पाओगे कि तुम्हारा चेहरा बड़ा नया ढंग ले लेता है। बाएं चेहरे के दो हिस्सों को जोड़ देना और दाएं चेहरे के दो हिस्सों को जोड़ देना और तुम पाओगेः तुम दो आदमी मालूम पड़ने लगे और ये दोनों आदमी तुमसे बिल्कुल अलग मालूम पड़ते हैं। तुम्हारी एक आंख अलग है, दूसरी आंख अलग है। क्योंकि आधा शरीर बाएं मस्तिष्क से संचालित होता है, आधा दाएं मस्तिष्क से संचालित होता है। लेकिन चूंकि तुम बहुत ज्यादा जुड़े हो शरीर से, उससे दूर नहीं हो कि उपयोग कर सको। लेकिन गुरजिएफ कर सकता है। महावीर कर सकते हैं। किया न हो, हो सकता है। लेकिन कर सकते हैं।
महावीर क्रोध कर सकते हैं, लेकिन वह चेष्टा होगी और अभिनय होगा। और तुम भी करुणा कर सकते हो, लेकिन वह चेष्टा होगी और अभिनय होगा। क्रोध

तुम्हारे लिए सहज है। कुछ करना नहीं पड़ता, अपने से होता है। किसी ने गाली दी, बस हो गया। तुम्हें कुछ करना थोड़े ही पड़ता है! किसी ने गाली दी, बटन दबा दी--हो गया। करुणा करनी हो तो बड़ा सोच-विचार करना पड़ता है, शास्त्र पढ़ने पड़ते हैं, सदगुरुओं के पास जाना पड़ता है, सत्संग करना पड़ता है, वचन, प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है; और फिर-फिर छूटकर क्रोध हो जाता है। जरा भूल हुई कि क्रोध हुआ। बहुत होश रखो तो थोड़ी-बहुत करुणा को तुम सम्हाल सकते हो। इससे ठीक विपरीत दशा तीर्थंकर की है। करुणा सहज है, करनी नहीं पड़ती। तीर्थंकर सोया भी रहे तो भी करुणा होती है।
तुमने कभी ख्याल किया कि तुम सोते-सोते भी क्रोधित रहते हो, बड़बड़ाते
हो क्रोध में, मरने-मारने की धमकी देते हो! कभी अपनी पत्नी को कहना कि जब तुम सोये हो, तुम्हारे चेहरे का जरा अध्ययन करे। या तुम अपनी पत्नी के चेहरे का अध्ययन करना सोते हुए। शायद इसीलिए लोग अकेले में सोना पसंद करते हैं, भीड़-भाड़ में सोना पसंद नहीं करते, हर कहीं सो जाना पसंद नहीं करते; क्योंकि सोने की अवस्था में चित्त से वही प्रगट होने लगता है जो तुम्हारे लिए सहज स्वाभाविक है। नियंत्रण करनेवाला तो रह नहीं जाता, वह तो सो गया; नियंता तो सो गया, कर्ता तो सो गया।
तो अगर तुम क्रोधी आदमी हो तो तुम्हारा रात में चेहरा बिल्कुल क्रोध
से भरा हुआ होगा। अगर तुम कामुक आदमी हो तो रात तुम्हारा चेहरा काम से भरा होगा; तुम्हारे चेहरे पर काम रिसता होगा। तुम जैसे हो, रात का चेहरा तुम्हारा, तुम्हारे बाबत ज्यादा असली खबर देगा। दिन में तो तुम थोड़ा झूठ कर लेते हो, रात में तुम न कर पाओगे।
इसलिए तथाकथित साधु-संन्यासी सोने तक से डरते हैं। घबड़ाहट रहती है! क्योंकि सोए कि उन्होंने जो-जो साधा है दिन में, उस सब पर कब्जा गया। दिनभर तो साधा ब्रह्मचर्य, लेकिन रात कामवासना का स्वप्न मन को पकड़ लेता है। अब क्या करें, स्वप्न में कैसे साधें! स्वप्न में तो होश ही नहीं है, साधना कैसे हो पायेगा? ऐसी चित्त की दशा है।
साधारणतः जब तक हम मूर्च्छित हैं, बेहोश हैं, तब तक हमसे गलत तो सहज होता है और सही चेष्टा से होता है।
जब चित्त की दशा जागरूक होती है, प्रबुद्ध होती है, संबोधि को उपलब्ध होती है, तो जो ठीक है वह सहज होता है; जो गलत है, अगर वह करना पड़े किसी कारण से तो वह अभिनय से ज्यादा नहीं होता।

दूसरा प्रश्नः पहली बार मैं किसी के प्रेम में पड़ा हूं, लेकिन मेरा अहंकार मुझे प्रेम में पूरी तरह डूबने नहीं देता। मेरा हृदय तो नारद के साथ है, लेकिन बुद्धि महावीर के साथ। भीतर से तो प्रेम करना चाहता हूं लेकिन बाहर कुछ और ही प्रकाशित होता है। फलस्वरूप बड़ी खींचातानी चलती है। क्या कोई आशा है इस उलझन से बाहर हो जाने की?

जहां-जहां उलझन है वहां-वहां सुलझन का उपाय है। उलझन होती ही नहीं, अगर सुलझने की आशा न हो। उलझन खड़ी ही वहां होती है जहां सुलझने का द्वार पास ही है।
हर समस्या में छिपा हुआ समाधान है और हर उलझन में छिपी हुई सुलझन है
और हर प्रश्न अपने उत्तर को लिए हुए है। जरा खोज की जरूरत है।
तुम ऐसा कोई प्रश्न नहीं खोज सकते जिसका उत्तर न हो... देर-अबेर लगे।
तुम ऐसी कोई उलझन नहीं बना सकते जिसका सुलझाव न हो। तुम न करना चाहो सुलझाव तो बात अलग। तब उलझन की समस्या नहीं है--तुम्हारी समस्या है; तुम करना ही नहीं चाहते। अगर तुम करना चाहो तो कोई बाधा नहीं है।
अब यह उलझन खड़ी की हुई है।
"पहली बार किसी के प्रेम में पड़ा हूं, लेकिन मेरा अहंकार मुझे प्रेम में पूरी तरह डूबने नहीं देता।"
अगर यह समझ में आ रहा है तो चुन लो। या तो अहंकार को चुन लो, तब प्रेम पागलपन है। तब छोड़ो बकवास! नारद का दिमाग फिर गया होगा! और अगर प्रेम को चुनना है, तो फिर अहंकार को गिराओ। दो नावों पर सवार मत हो जाओ, अन्यथा

उलझन होगी। और दोनों नावें बड़ी अलग-अलग हैं। महावीर और नारद दोनों के कंधों पर हाथ मत रख लेना, अन्यथा तुम त्रिशंकु हो जाओगे। तब तुम बड़ी उलझन में पड़ोगे। लेकिन उलझन के लिए न तो महावीर जिम्मेवार होंगे और न नारद जिम्मेवार होंगे--जिम्मेवार तुम होओगे जिसने दोनों के कंधों पर हाथ रख लिये। किसने तुमसे कहा था?
नारद से पूछते तो नारद तो कहते हैं, महावीर गलत हैं। महावीर से पूछो
तो महावीर कहते हैं, नारद गलत हैं। इसलिए जुम्मा उन पर न डाल सकोगे तुम। तुम उलझन अगर पैदा करना चाहो तो फिर बात अलग।
अब एक आदमी अगर दो नावों पर सवार हो और पूछे कि मैं क्या करूं, तो हम क्या कहेंगे? हम कहेंगे, साफ है बातः एक नाव पर सवार हो जाओ। निश्चित ही एक नाव पर सवार होने के लिए दूसरी नाव छोड़नी पड़ेगी। इसलिए दोनों के लाभ मन में मत रखना।
जिंदगी चुनाव है--प्रतिपल चुनाव और निर्णय है। और जब भी तुम एक बात चुनते हो तो कुछ छोड़ना पड़ता है। सच तो यह है एक बात चुनने के लिए हजार बातें छोड़नी पड़ती हैं।
तुम यहां आए मुझे सुनने, इस घंटे के हजार उपयोग हो सकते थे। तुम दुकान
पर बैठ सकते थे, कुछ रुपया कमा लेते। तुम सिनेमा जा सकते थे, कोई फिल्म देख लेते। तुम शराब-घर में जा सकते थे, शराब पी लेते। गपशप कर लेते, अखबार पढ़ लेते, रेडियो सुन लेते। हजार उपयोग हो सकते थे इसके, वह तुमने छोड़े और यह उपयोग चुना कि मुझे सुनते हो। यह बड़ा चुनाव है। अब तुम अगर चाहो कि वे लाभ भी जो तुमने छोड़ दिये, मुझे सुनने से मिल जायें, तो तुम गलत चाह कर रहे हो। गलत चाह से अड़चन आती है।
अब अगर तुम्हें अहंकार में रस आ रहा हो तो छोड़ो प्रेम की बात। फिर पूरे अहंकारी बन जाओ। फिर राजनीति तुम्हारा धर्म होगी। फिर दौड़ो अहंकार, पद... दिल्ली की यात्रा करो! फिर तुम यहां बैठे क्या कर रहे हो? फिर यह समय गंवाया हुआ सिद्ध होगा। फिर तुम एक न एक दिन मुझ पर बहुत नाराज हो जाओगे। यह समय तो दिल्ली की यात्रा में लगाना था। बस तुम्हारा एक ही मंत्र होना चाहिएः दिल्ली चलो!
अगर अहंकार को ही भरना है, तो साफ-साफ भरो; फिर इधर-उधर बेईमानी मत करो! निश्चित ही, ध्यान रखना, अहंकार को भरने के थोड़े से सुख हैं। दुख भी बहुत हैं। सुख तो भ्रामक हैं, भासमान हैं, दुख बड़े यथार्थ हैं। तो सोच लेना, ठीक से देख लेना, दुख-सुख दोनों का दर्शन कर लेना। प्रेम के सुख तो बड़े सच्चे हैं, दुख केवल भासमान हैं। इसलिए बुद्धिमानों ने प्रेम चुना; बुद्धिहीनों ने अहंकार चुना। बुद्धिमानों ने धर्म चुना; बुद्धिहीनों ने राजनीति चुनी। बुद्धिमानों ने अंतर्जगत चुना; बुद्धिहीनों ने बाहर का जगत चुना। बाहर के जगत का धन दिखाई पड़ता है--है नहीं; सिर्फ मान्यता है। भीतर का धन दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन है। अदृश्य है--और दृश्य केवल दिखाई पड़ता है।
तो तुम्हारे ऊपर निर्भर है। उलझन चुन लोगे तो तुम कहीं के भी न रहोगे--
घर के न घाट के! तुम धोबी के गधे हो जाओगे।... या तो घाट या घर। अगर अहंकार चुनना है तो घाट। अगर प्रेम चुनना है तो घर।
प्रेम चुनने का अर्थ है कि जीवन अपने-आप में मूल्यवान है और जीवन का चरम अर्थ जीवन की प्रफुल्लता में है--धन में नहीं, गीत में है; पद में नहीं, प्रसन्नता में है; वस्तुओं में नहीं, व्यक्तियों के अंतर्संबंधों में है। और बाहर नहीं भीतर है। यह बड़ा क्रांतिकारी निर्णय है। और निर्णय बहुत साफ-साफ लेना चिहए, क्योंकि निर्णय पर, इसी निर्णय पर सारे जीवन का ढांचा निर्भर करेगा। तुम कहां पहुंचोगे, यह इस पर निर्भर करेगा कि तुमने पहला कदम किस दिशा में उठाया था। अगर पहला कदम गलत उठा तो तुम लाख दौड़ो, लाख श्रम करो, तुम ठीक जगह न पहुंच पाओगे। तुम्हारी दौड़, तुम्हारी आपाधापी, अगर गलत कदम पर खड़ी है तो बुनियाद गलत है, यह भवन गिरेगा।
पूछा है, "पहली बार किसी के प्रेम में पड़ा हूं।" इसलिए स्वाभाविक भी है। पहली बार जब कोई किसी के प्रेम में पड़ता है तो अहंकार बाधा डालता है। क्योंकि अब तक तुम अहंकार के प्रेम में रहे। अब तक तुमने सिर्फ अहंकार को ही प्रेम किया है। आज पहली दफा अहंकार के विपरीत कोई नये प्रेम का उदभव

हुआ--जहां अहंकार को समर्पित करना होगा, जहां "मैं" को मिटाना होगा। तो स्वभावतः, जिस "मैं" को अब तक सींचा, जिस "मैं" को अब तक सम्हाला, वह अगर बाधा डाले तो कुछ आश्चर्य नहीं। लेकिन तुमने जिसे सींचा है, तुम ही अगर पानी बंद कर दोगे, वह अपने से कुम्हला भी जायेगा, सूख भी जायेगा। अब तुम्हारे सामने है निर्णय। अब तक तो तुमने अहंकार को ही सींचा था, अब प्रेम का भी अंकुर उठा है। अब तुम सोच लोः अहंकार क्या दे सकता है और प्रेम क्या दे सकता है? अहंकार देने के बहुत-से आश्वासन देगा, लेकिन देता कभी कुछ नहीं--बस कोरे आश्वासन! यही तो सब सिकंदरों, नेपोलियनों की कथा है। प्रेम आश्वासन नहीं देता--देने की तो बात ही नहीं उठाता। प्रेम तो कहता है, सब खोना पड़ेगा। लेकिन खोनेवालों की कथा ही तो सारे भक्तों की कथा है, सारे धार्मिकों की कथा है, सारे ध्यानियों की कथा है।
प्रेम कहता है, खोओगे तो मिलेगा। और अहंकार कहता है, पाओगे तो मिलेगा।
अहंकार का गणित बुद्धि की समझ में आ जाता है। स्वाभाविक है, पाओगे तो मिलेगा। और प्रेम कहता है, खोओगे तो मिलेगा। तो गणित कुछ अटपटा है, बेबूझ है, बुद्धि में आता नहीं।
अहंकार और बुद्धि के बीच तो एक तरह का समझौता है, एक शड्यंत्र है। बुद्धि अहंकार की पक्षपाती है, अहंकार बुद्धि का पक्षपाती है। तो अगर तुमने सिर से ही पूछा तो तुम अहंकार के ही रास्ते पर भटकते-भटकते खो जाओगे; जैसे कोई सरिता मरुस्थल में भटकते-भटकते खो जाये और उसे सागर न मिले। हृदय से पूछो! हृदय और प्रेम का समझौता है। और हृदय कह रहा है... ।
"लेकिन मेरा अहंकार मुझे प्रेम में पूरी तरह डूबने नहीं देता। मेरा हृदय नारद के साथ है और मेरी बुद्धि महावीर के साथ।"
तो तुम चुन लो! अगर तुम्हें लगता है कि हृदय गलत कह रहा है तो तुम बुद्धि के साथ कुछ दिन चल लो, दौड़ लो। सौ में से कभी कोई एकाध पहुंच पाता है। कोई महावीर! बहुत दुर्गम है। क्योंकि व्यर्थ की उलझन अस्मिता की खड़ी हो जाती है। कोई परमात्मा नहीं, जहां सिर झुकाया जा सके, तो बिना किसी परमात्मा के सामने सिर झुकाना आ जाना बहुत दुर्लभ है। महावीर को घटा; बिना किसी परमात्मा के सिर झुका दिया; बिना किसी वेदी के आहुति चढ़ा दी।
कोई नहीं है परमात्मा, इस कारण साधारणतः तो "मैं" मजबूत होगा। तो इसकी बहुत कम संभावना है कि तुम महावीर हो सको; इसकी संभावना ज्यादा है कि तुम नीत्से हो जाओ। नीत्से का भी तर्क वही है। वह कहता है, कोई परमात्मा नहीं। लेकिन जैसे ही उसने कहा कोई परमात्मा नहीं, उसने तत्क्षण कहा जब परमात्मा नहीं है तो अब मनुष्य स्वतंत्र है कुछ भी करने को। फल क्या हुआ? फल हुआ नीत्से का पागल हो जाना। वह अहंकार मजबूत होता चला गया। कहीं कोई वेदी न मिली जहां चढ़ा देता। वेदी को इनकार कर दिया। इनकार करने का कारण ही यही बताया कि "अगर परमात्मा है तो मैं नीचा हो गया--और मैं नीचे कैसे हो सकता हूं! मेरे से ऊपर कोई भी नहीं हो सकता।" इसलिए परमात्मा को इनकार किया। नीत्से पागल हुआ।
सौ में निन्यानबे मौके ये हैं कि तुम पागल हो जाओगे। महावीर तो बड़े कुशल व्यक्ति हैं। चुना तो ठीक वही मार्ग जो नीत्से का है; लेकिन परमात्मा नहीं है, इससे यह निष्कर्ष न लिया कि मनुष्य अब स्वच्छंद है। इससे उलटा ही निष्कर्ष लिया। महावीर ने कहा, "चूंकि परमात्मा नहीं है, इसलिए अब कोई स्वच्छंदता न चलेगी; सारा उत्तरदायित्व मेरा है।" समझे फर्क? नीत्से ने कहा, कोई परमात्मा नहीं, तो अब करो जो करना है। महावीर ने कहा, अब तो कुछ करने का उपाय ही न रहा; अब तो जो भी किया, जिम्मेवारी मेरी है। परमात्मा होता तो कुछ रास्ता भी निकाल लेते--कुछ भी करने का, तीर्थ स्नान कर आते, मंदिर में पूजा कर देते, प्रार्थना करके समझा-बुझा लेते; पाप हो जाता, पश्चात्ताप कर लेते--और फिर वह करुणावान है, रहीम है, रहमान है; वह क्षमा कर ही देता; उसने तो बड़े-बड़े पापियों को क्षमा कर दिया।
कहते हैं, एक पापी ने मरते वक्त भूल से अपने लड़के को बुलायाः नारायण, नारायण! लड़के का नाम नारायण था और ऊपर के नारायण ने समझा कि मुझे पुकार रहा है। क्षमा कर दिया। स्वर्ग में उठा लिया। बैकुंठ में वास कर रहा है वह पापी अब। तो जो इतनी सरलता से फुसला लिया जाता है; रिश्वत भी जिसकी इतनी

सस्ती है; बुलाया भी नहीं था जिसे, किसी और को ही बुलाया था, लेकिन नाममात्र का संयोग मिल गया, "नारायण", और जो भूल में पड़ गया; जो ऐसा खुशामद-लोलुप है--ऐसा परमात्मा हो तो फिर कुछ भी करने की छूट है।
अगर महावीर से पूछो तो महावीर यह कहेंगे, अगर परमात्मा है तो फिर मनुष्य स्वच्छंद है। फिर जो भी करना हो करो; क्योंकि आखिर में तो वह है, उसके चरण पर गिड़गिड़ा लेना, रो लेना, माफी मांग लेना।
और वह करुणावान है, वह क्षमा कर देगा।
तो जो निष्कर्ष नीत्से ने लिया, वही निष्कर्ष महावीर ने लिया--लेकिन बिल्कुल उलटी तरफ से। अगर परमात्मा है तो आदमी स्वच्छंद हो जायेगा। तो महावीर ने कहा, परमात्मा तो कोई भी नहीं है; इसलिए प्रार्थना का उपाय नहीं है। अपने को बनाना है, निर्मित करना है, छांटना है, काटना है, निखारना है, सब अपना ही है। खुद की जिम्मेवारी चरम है। यह उत्तरदायित्व आखिरी है। इसको तुम किसी और पर न टाल सकोगे। इसलिए तुम आखिर में यह न कह सकोगे कि मैं क्या करूं, हो गया। भोगना पड़ेगा। स्वच्छंदता का कोई उपाय नहीं।
तो महावीर ने तो परमात्मा के न होने से उत्तरदायित्व लिया। नीत्से ने परमात्मा के न होने से स्वच्छंदता ली। महावीर तो विमुक्त हो गये, नीत्से विक्षिप्त हो गया। दोनों के तर्क का प्रारंभ बिल्कुल एक जैसा था, लेकिन अंत बड़ा भिन्न हुआ। कहां महावीर परम सुगंध को उपलब्ध हुए और कहां नीत्से पागलखाने में सड़ा और मरा!
सोच लेना! महावीर का रास्ता बहुत थोड़े लोगों के लिए है। उनके लिए है, जिनके लिए स्वतंत्रता स्वच्छंदता न बनेगी। उनके लिए है, जिनके लिए परमात्मा का अभाव अहंकार न बनेगा; जो कहेंगे, "जब परमात्मा ही नहीं तो मेरे होने का क्या? परमात्मा तक नहीं है तो मैं क्या हो सकता हूं?"
परमात्मा का अर्थ है सारे अस्तित्व का "मैं"; सारे अस्तित्व का केंद्र! जब सारा अस्तित्व केंद्रहीन है और "मैं" रहित है, तो मैं एक छोटा- सा व्यक्ति, एक छोटी-सी लहर, एक जरा-सी तरंग! ... जब सागर का ही कोई "मैं" नहीं है तो मेरा मैं क्या हो सकता है? बात खतम हो गयी!
तो महावीर ने तो परमात्मा को इनकार करने में ही अपने भीतर "मैं" की संभावना को इनकार कर दिया। इसलिए तुम यह मत सोचना कि महावीर और नारद वस्तुतः विपरीत हैं। अंततः तो सार एक ही निकलता है। महावीर ने परमात्मा को अस्वीकार करके "मैं" को अस्वीकार कर दिया। नारद ने परमात्मा को स्वीकार करके "मैं" उसके चरणों में चढ़ा दिया। हर हाल नारद और महावीर दोनों "मैं" से मुक्त हो गये।
तो तुम चाहे कुछ भी निर्णय लो--तुम चाहे प्रेम के पक्ष में निर्णय लो, चाहे अहंकार के पक्ष में निर्णय लो--लेकिन एक बात ध्यान रखना, अहंकार तो मरेगा ही। उससे तुम बच न सकोगे। उसे अगर बचा लिया तो तुम विक्षिप्त हो जाओगे, पागल हो जाओगे। उसी कारण तो सारी पृथ्वी करीब-करीब पागल जैसी है। अगर मेरी सुनो तो मैं कहूंगाः हृदय की सुनो! प्रेम की सुनो! ज्यादा सुरक्षित मार्ग है। महावीर का मार्ग बहुत खाई-खड्ड से गुजरता है। डर है कि तुम कहीं गिर न जाओ! नारद का मार्ग बहुत सुरक्षित है। तुम्हारी कमजोरी को भी सम्हाल लेगा। तुम्हें सहारा देगा। महावीर का मार्ग बहुत अकेला है, अत्यंत एकांत का है। दूर, बहुत दूभर है! जाओ तो सोच समझकर जाना, कि नीत्से का खतरा तुम्हारे पीछे लगा रहेगा।
नारद के मार्ग पर नीत्से का खतरा नहीं है। ऐसा नहीं कि वहां कोई खतरा
ही नहीं है। खतरा तो हर चलने में होता है, हर यात्रा में होता है। जो घर बैठे रहते हैं उन्हीं को खतरा नहीं है। हवाई जहाज से चलो तो खतरा है। बैलगाड़ी से चलो तो वह भी कभी-कभी उलट जाती है। लेकिन ऐसा है कि बैलगाड़ी से उलटकर मरते हुए लोग नहीं देखे जाते, थोड़ी चोट-वगैरह लग जाती हो... साधारणतः बैलगाड़ी उलट जाये तो इतना खतरा नहीं है, क्योंकि गति ही कोई बड़ी न थी; पृथ्वी से फासला ज्यादा दूर का न था।
नारद का रास्ता बहुत पृथ्वी के करीब है। प्रेम का रास्ता पृथ्वी के बहुत करीब है। और तुम्हारा जो सामान्य जीवन है उससे बहुत फासला नहीं है।
तुम अपने सामान्य जीवन में जीते हुए भी नारद को सुगमता से साध सकते हो।

खतरा क्या है? खतरा एक ही है और वह यह है कि प्रेम कहीं वासना ही न बन जाए। प्रेम भक्ति बने, यह तो नारद का मार्ग है। और प्रेम कहीं वासना ही रह जाये, यह खतरा है।
जैसे महावीर के पीछे चलनेवाले जैन मुनि अहंकार की पाषाण प्रतिमाएं बन गए, वैसे ही नारद के पीछे चलने वाले भक्त केवल भोग-शृंगार में खो गये। खतरा तो है ही। खतरा तो सभी रास्तों पर है। चलनेवाले को खतरा तो है ही। इसलिए सम्हलकर तो चलना होगा। फिर भी खतरे की मात्राएं भिन्न-भिन्न हैं।
अगर नारद के मार्ग पर तुम भटके भी तो तुम वहां से नीचे न गिरोगे जहां तुम हो। क्योंकि वासना में तो तुम हो ही। अगर नारद के मार्ग से तुम गिरे भी तो बैलगाड़ी से गिरे; जमीन से ज्यादा दूर न थे। वासना में तुम हो ही। इतना ही धोखा दे सकते हो कि अब तुम अपनी वासना को प्रेम कहने लगो और प्रेम को भक्ति कहने लगो। बस नामों के धोखे दे सकते हो। कुछ ज्यादा खतरा न होगा। लेकिन महावीर के मार्ग से अगर तुम गिरे तो पागलपन है, विक्षिप्ता है और भयंकर अहंकार के खड़े हो जाने का डर है।
जैन मुनि को देखते हो! उससे ज्यादा गहन अहंकारी व्यक्ति खोजना मुश्किल है।
जैन मुनि श्रावक को हाथ जोड़कर नमस्कार भी नहीं कर सकता। कठिन है, असंभव है। मुनि और श्रावक को नमस्कार करे! आशीर्वाद दे सकता है, नमस्कार नहीं कर सकता।
लेकिन मैं पूछता हूं, जब नमस्कार ही नहीं कर सकते तो आशीर्वाद देने की झंझट भी क्या कर रहे हो? जब कुछ करना ही है तो नमस्कार बेहतर था, आशीर्वाद देने की बजाय। और जिसका नमस्कार सूख गया है उसके आशीर्वाद में कोई बहुत बल नहीं हो सकता। अहंकार से आया हुआ आशीर्वाद क्या फल लायेगा? वह तो झुके हुए हृदय से निकले तो ही लाभ होता है। वह तो लदे हुए वृक्ष की तरह है। जैसे वृक्ष झुक जाता है, जब फलों से लद जाता है। ऐसा जब कोई प्रेम से लदा हो और झुका हो, तभी उससे मीठे फलों के आशीर्वाद उपलब्ध होते हैं।... अकड़े खड़े हैं! एक डाल नहीं झुकी। फल तो हैं ही नहीं। आशीर्वाद कहां से होगा? लेकिन जैन मुनि अकड़कर खड़ा हो जाता हैः तपश्चर्या है! कोई समर्पण किसी के प्रति नहीं है। सिर्फ संकल्प है।
तो सिर्फ संकल्प की शक्ति का खतरा यह है कि तुम्हारा अहंकार विक्षिप्त न हो जाये। फिर चुनाव तुम्हारा है। इतना निश्चित है कि उस मार्ग से भी लोग पहुंचे हैं।
लेकिन अगर मेरी सुनो तो हृदय की सुनना! और जब तुम हृदय की सुनोगे तो बुद्धि को तकलीफ होगी। क्योंकि हृदय को चुनने का अर्थ हैः बुद्धि का प्रभुत्व गया; तर्क की तुम्हारे ऊपर जो मालकियत है, वह टूटी!
न जाने आज मैं क्या बात कहनेवाला हूं
जुबान खुश्क है, आवाज रुकती जाती है।
जैसे-जैसे प्रेम की बात कहने के करीब आओगे, वैसे ही पाओगेः जबान खुश्क
हो गयी, आवाज रुकती जाती है, क्योंकि बुद्धि काम नहीं करती।
न जाने आज मैं क्या बात कहनेवाला हूं
जुबान खुश्क है, आवाज रुकती जाती है।
हृदय की तरफ सरकोगे तो बुद्धि मरने लगेगी। इसलिए बुद्धि बहुत संघर्ष करेगी। लेकिन चुनाव तो करना ही होगा।
और प्रेम का मार्ग सुगम है, छोटा है--करीब से करीब है। क्योंकि प्रेम सुगम है, सहज है। प्रेम को लेकर ही तुम पैदा हुए हो, ध्यान को इतनी आसानी से नहीं कहा जा सकता कि तुम लेकर पैदा हुए हो। ध्यान तो तुम बड़ी चेष्टा करोगे तो शायद दीया जले। लेकिन प्रेम की तड़फ तो तुम्हारे भीतर है ही; तुम्हारी श्वास-श्वास में भरी है! तुम्हारे रोएं-रोएं में भरी है। कहां है ऐसा मनुष्य जो प्रेम के लिए प्यासा न हो! कहां है ऐसा मनुष्य जो प्रेम देने को आतुर न हो! न दे पाओ, कुछ अड़चन आती हो; न मिल पाये, कुछ बाधा पड़ जाती हो--और बात। लेकिन कहां है ऐसा मनुष्य जो प्रेम के लिए आतुर न हो! प्रेम स्वाभाविक है, नैसर्गिक है। वह जीवन के ऋत का हिस्सा है।

ध्यान बड़ी चेष्टा, बड़े परिमार्जन, बड़ी मर्यादा, बड़े अनुशासन से उपलब्ध होता है। तो जो नैसर्गिक है उसे तुम जल्दी काम में ला सकते हो।
तू न दे नामे को इतना तूल गालिब मुख्तसर लिख दे
कि हसरत सेज हूं, अर्जे-सितमहाए-जुदाई का।
--प्राणप्यारे को पत्र लिखते समय, पत्र को बहुत विस्तृत न बना, गालिब!
बस इतना लिख दे, इतना काफी है संक्षेप में कि श्री चरणों में विरह की पीड़ा निवेदन करने की लालसा से लसित! काफी है!
"न दे नामे को इतना तूल"--चिट्ठी को बहुत लंबी मत कर। "गालिब, मुख्तसर लिख दे!" बस संक्षेप में इतना लिख दे "कि हसरत सेज हूं अर्जे-सितमहाए-जुदाई का।" कि विरह की पीड़ा बहुत हो गयी, अब श्री चरणों में यह निवेदन रखता हूं कि अब मिलने की बड़ी गहरी अभीप्सा है। बस काफी है।
प्रेम की चिट्ठी छोटी होती है।
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय!
अगर प्रेम ने पुकारा हो तो इस आवाज को ऐसे ही मत लौट जाने देना। अगर प्रेम ने पुकारा हो तो सुनना, दो गाम उसके पीछे चलना! क्योंकि प्रेम के रास्ते से दो गाम चलकर भी आदमी परमात्मा तक पहुंच जाता है।
संकल्प का रास्ता बहुत लंबा, बहुत बीहड़, बहुत अकेले का है। हां, कुछ को वैसी चुनौती ही भाती है। जिनको वैसी चुनौती भाती है, उनको वही मार्ग चुनना चाहिए।
लेकिन प्रश्नकर्ता के प्रश्न से मुझे ऐसा लगता है कि उसे बुद्धि का मार्ग जमेगा नहीं, संकल्प का मार्ग जमेगा नहीं। क्योंकि जिन्हें संकल्प का मार्ग जमता है, उन्हें प्रेम की पुकार ही सुनायी नहीं पड़ती। वह दस्तक प्रेम देता रहे, उनके कान बहरे होते हैं। प्रेम में उन्हें सिर्फ पाप दिखायी पड़ता है।
तो संकल्प के मार्गवाला व्यक्ति तो यह पूछेगा ही नहीं। यह तो उसी ने पूछा है जिसका मार्ग प्रेम है; लेकिन बुद्धि की अड़चन में पड़ गया है। चाह तो गहरी यही है कि प्रेम में उतर जाये, लेकिन अहंकार उतरने नहीं देता, झुकने नहीं देता। तो इस अहंकार को तोड़ो! इस अहंकार से अपने को अलग करो। पूछनेवाला शिकार तो हो ही गया है। तीर तो लग ही गया है।
दिल को हम सर्दे-वफा समझे थे, क्या मालूम था
यानी, यह पहले ही न.जरे-इम्तिहां हो जायेगा।
--समझे थे कि दिल बहुत प्रेम-प्रवीण है, पता न था कि पहली नजर में ही मर मिटेगा!
प्रेम का तीर तो लगा है, अब तुम बुद्धि की सुन-सुनकर कहीं इस घाव को छिपा मत लेना! यह घाव सौभाग्य है। हां, जिनका मार्ग संकल्प का है, उन्हें यह घाव लगता ही नहीं। उनके आसपास से तीर निकल जाते हैं, उनको चुभते नहीं। इसलिए उनके सामने सवाल नहीं उठता। सवाल ही उसके सामने उठता है, जिसको प्रेम की आवाज सुनायी पड़ती है। अगर प्रेम की आवाज सुनायी पड़ी है तो चलो, हिम्मत करो! अहंकार में बचाने जैसा कुछ भी नहीं है।
और इतना मैं कहता हूं कि संकल्प के मार्ग पर भी आखिर में तो अहंकार छोड़ना ही पड़ेगा। प्रेम के मार्ग पर प्रथम ही छोड़ना पड़ता है, संकल्प के मार्ग पर अंत में छोड़ना पड़ता है। प्रेम के मार्ग और संकल्प के मार्ग में इतना ही भेद है। प्रेम के मार्ग पर जो पहला कदम है, वह संकल्प के मार्ग पर अंतिम कदम है। पहले तो संकल्प के मार्ग का साधक अपने को निखारता है, तेज से भरता है, उज्जवल करता है, चरित्र को निर्मित करता है, शील को बांधता है, मर्यादा बनाता है; सब तरह से अनुशासित होकर शील और चरित्र का स्तंभ बनता है। लेकिन इस सबके भीतर एक सूक्ष्म अहंकार बनता जाता हैः "मैं हूं तपस्वी! मैं हूं संयमी! मैं हूं योगी!" यह "मैं" भरता जाता है। फिर आखिरी घड़ी आती है, तब उसे पता चलता है कि अब सब तो छूट गया, यह "मैं" बचा। वह सब तो गिर गया जो गलत था, लेकिन उस सब गलत को गिराने में एक चीज भीतर निर्मित होती चली गयी--अब इसको गिराना है।
तो संकल्प के मार्ग पर अंततः, अंतिम, अहंकार को छोड़ना पड़ता है। भक्ति
के मार्ग पर अहंकार पहले ही कदम में छोड़ना पड़ता है। इसलिए मैं कहता हूं

जिसे छोड़ना ही है उसे इतनी देर भी क्याढोना। जिसे छोड़ना ही पड़ेगा, आखिरी शिखर पर पहुंचने के पहले... ।
कभी तुम हिमालय गये, कभी शिखर चढ़े? ... तो जैसे-जैसे शिखर की ऊंचाई बढ़ने लगती है वैसे-वैसे सामान छोड़ना पड़ता है। आखिरी शिखर पर तो कोई नग्न होकर ही पहुंचता है, सब छोड़कर ही पहुंचता है। वस्त्र भी भारी हो जाते हैं। अपनी श्वास भी भारी होने लगती है। तो कंधे पर अगर तुम बोझ डाले हुए हो, छोड़ना पड़ेगा, छोड़ते जाना पड़ेगा।
अंतिम शिखर सत्य काः बस तुम बचते हो तुम्हारी शुद्धता में। कोई "मैं"
का भाव नहीं होता। महावीर उसे आत्मा कहते हैं। नारद उसे परमात्मा कहते हैं।

तीसरा प्रश्नः कृपा कर कीर्तन-ध्यान के बारे में कुछ समझाएं।

कीर्तन समझने की बात नहीं--करने की बात है। कीर्तन शब्द में ही छिपा
है राज--करने की बात! करो तो जानोगे। समझ से कीर्तन का कोई लेना-देना नहीं। वस्तुतः तो समझ को रख दोगे एक किनारे तभी कीर्तन कर सकोगे। तो समझ-समझकर अगर कीर्तन किया तो होगा ही नहीं। समझकर किया तो चूक ही जाओगे। अगर बुद्धिमानी के द्वारा किया, वहीं गलती हो जायेगी। समझने की फिक्र छोड़ो। अगर सच में ही समझना चाहते हो तो करो, समझ पीछे से आयेगी। डूबो! कीर्तन-ध्यान तल्लीनता का नाम है। कीर्तन-ध्यान अहोभाव की अभिव्यक्ति है। धन्यभाव की! यह अहोभाव कि मैं हूं! यह अहोभाव कि परमात्मा ने मुझे सृजा! यह अहोभाव कि थोड़ी देर आंखें खुलीं, रोशनी देखी, फूल देखे, पक्षियों के गीत सुने, सूरज, चांद-तारों का नृत्य देखा!
ये थोड़े क्षण, ये थोड़े लम्हे, जो जीने के मिले, ये न मिलते तो किससे शिकायत करते? ये मिले--अकारण मिले! मांगे न थे, बिना मांगे मिले! किसी ने दिये! यह किसी का प्रसाद--इस प्रसाद के प्रति जो धन्यवाद है, वही कीर्तन है।
तुमने चाहा तो न था कि तुम हो जाओ। तुम चाहते भी कैसे, जब तुम थे ही न? चाहने के लिए हो जाना तो पहले जरूरी है। तुमने चाहा तो न था कि तुम देख सको। क्योंकि देखा ही न होता, तो देखने की चाह कैसे पैदा होती; तुमने चाहा तो न था कि सुन सको यह गीत, यह संगीत जो जीवन का है, यह कलरव-नाद जो अस्तित्व का है--यह सब मिला है, यह वरदान है! यह तुम्हारे बिना मांगे मिला है। यह भीख नहीं है, यह प्रसाद है!
भीख और प्रसाद के फर्क को समझ लेना। तुमने मांगा और मिले--तो भीख। तुमने न मांगा, न तुमने चाहा और मिला--तो प्रसाद! यह प्रभु-प्रसाद है। यह परम अस्तित्व का प्रसाद है तुम्हारे लिए। लहर-लहर को उसने ऐसा बनाया कि वह सारे अस्तित्व को भोग सके! एक-एक कण को जीवंत किया, ताकि एक-एक कण को पूरे होने का स्वाद आ सके! इसके लिए धन्यवाद दोगे या नहीं? इतने कृपण मत बनो! धन्यवाद दो! कैसे धन्यवाद दोगे इसे?
आदमी कितना असहाय है! नाच सकता है, गीत गुनगुना सकता है! और क्या कर सकेगा? हमारे बस में और क्या है?
कीर्तन का इतना ही अर्थ है, जो हम कर सकते हैं; चढ़ाने को कुछ ज्यादा नहीं है! बस जो कुछ है, यह अहोभाव है। इसको ही हम उस समग्र के प्रति समर्पित करते हैं।
तो कीर्तन तो एक तरह का उन्माद है। पागलपन नहीं--उन्माद। भाषाकोश में
तो दोनों का एक ही अर्थ है; जीवन के कोश में अर्थ अलग-अलग है। पागलपन हैः जब तुम्हारी जीवन की अवस्था खंड-खंड हो जाये, टुकड़े-टुकड़े में टूट जाये; तुम एक न रह जाओ, अनेक हो जाओ। और उन्माद हैः जब तुम्हारे सारे खंड इकट्ठे हो जायें, तुम एक हो जाओ; उस एक में होकर तुम नाच उठो, मस्त हो उठो!
उन्माद, सामान्य चित्त से ऊपर जाने की अवस्था है। पागलपन, सामान्य चित्त से नीचे गिर जाने की अवस्था है। दोनों में एक बात समान है कि दोनों सामान्य चित्त के बाहर हैं। इसलिए परमहंस पागल मालूम होते हैं। इसलिए परमात्मा के दीवाने भी विक्षिप्त जैसे मालूम होते हैं। एक बात समान है कि

दोनों जिसको तुम सामान्य बुद्धिमानी कहते हो उसके बाहर हो गए। पागल नीचे गिरकर बाहर हो गया, मस्त ऊपर उठकर बाहर हो गया। लेकिन दोनों को एक मत समझ लेना। दोनों में जमीन-आसमान जैसा अंतर है।
न जाने क्यों जमाना हंस रहा है मेरी हालत पर
जुनूं में जैसा होना चाहिए वैसा गिरेबां है।
भक्त कहता हैः क्यों हंस रहे हैं लोग? ये तो उन्माद में जैसा होना चाहिए, वैसे ही तो वस्त्र हैं, वैसा ही परिधान है। तो पागल को जैसा होना चाहिए, वैसा ही तो मैं हूं। लोग हंस क्यों रहे हैं!
न जाने क्यों जमाना हंस रहा है मेरी हालत पर
जुनूं में जैसा होना चाहिए वैसा गिरेबां है।
और क्या चाहिए?
कीर्तन तो उन्माद है! बुद्धिमान तो हंसेंगे। इसलिए दुनिया से कीर्तन खोता चला गया है। दुनिया बहुत बुद्धिमान होती चली गयी है। उसी बुद्धिमानी में बुद्धू हो गयी है। कीर्तन खोता चला गया है। नाच गुम हो गया है।
लोग अगर नाचते भी हैं अब तो बहुत निम्न तल पर नाचते हैं। वह कामोत्तेजना का नृत्य होता है। अब प्रभु-उन्माद का नृत्य कहीं भी नहीं होता। अब ऊर्जा ने उन ऊंचाइयों को छूना बंद कर दिया है। अब यहां तूफान भी उठते हैं, आंधियां भी आती हैं, तो भी जमीन का दामन नहीं छूटता। आकाश में नहीं उठ पाते! पक्षी उड़ते भी हैं, तो ऐसा घर के चारों तरफ चक्कर लगाकर फिर वहीं बैठे जाते हैं। दूर-दूर कि खो जाए पृथ्वी, दूर कि खो जाये नीड़--इतने दूर आकाश में नहीं जाते!
कीर्तन बड़ी दूर यात्रा है। यह परमात्मा के साथ नाचना है। जैसे तुम कभी किसी स्त्री के साथ नाचे, जिसे तुमने प्रेम किया, तो नृत्य में एक प्रसाद आ जाता है, एक गुणधर्म आ जाता है। किसी के साथ तुम नाचो, सिर्फ नाचने के लिए, औपचारिक, तो नाच तो हो जायेगा, क्रिया पूरी हो जायेगी; लेकिन भीतर प्राणों में कोई रस न बहेगा। फिर किसी के साथ नाचो, जिससे तुम्हें प्रेम है, तो कामोत्तेजना का, वासना का रस बहेगा!
कीर्तन है परमात्मा के साथ नाचना, उस परम प्यारे के साथ नाचना! तो जैसे साधारण कामोत्तेजना का नृत्य काम-केंद्र के आसपास भटकता है, वैसे कीर्तन सहस्रार के आसपास। तुम्हारे जीवन की आखिरी ऊंचाई पर, नृत्य के फूल खिलते हैं, हजार-हजार कमल खिलते हैं।
ऐ मुब्तिला-ए-जीस्त! ठहर खुदकुशी न कर
तेरा इलाज जहर नहीं है, शराब है।
कीर्तन! भक्त तो कहता है कि जीवन से घबड़ाकर आत्महत्या करने की तरफ मत जाओ, पागल हुए हो?
ऐ मुब्तिला-ए-जीस्त! ठहर खुदकुशी न कर!
--ऐ जीवन से उत्तप्त हुए, आत्मघात मत कर! भाग मत जीवन से! तेरा इलाज जहर नहीं, शराब है। मृत्यु तेरा इलाज नहीं है। जीवन की रसधार को पी लेना! परमात्मा की मधुशाला में प्रविष्ट हो जाना ही मंदिर में प्रवेश हो जाना है।
तर दामनी पर शैख हमारी न जाइए
दामन निचोड़ दें तो फरिश्ते वजू करें।
तो कीर्तन करनेवाला तो दीवाना है, पागल है, नर्तक है, गायक है, वादक है। और इतनी तीव्रता से नर्तन करता है, इतनी गहनता से कि अपने को भूल जाता है, खो देता है, खुद बचता ही नहीं।
पश्चिम का एक बहुत बड़ा नर्तक हुआः निजिन्सकी। उसके संबंध में वैज्ञानिक बड़े चकित थे। उसके नृत्य जैसा नृत्य फिर कभी देखा नहीं गया--न उसके पहले, न उसके बाद। वैज्ञानिक हैरान थे कि जब वह नृत्य करते-करते छलांग लगाता था तो ऐसा लगता था कि पृथ्वी पर वापस लौटते समय बड़ा धीमे-धीमे वापस आता है; जैसे गुरुत्वाकर्षण का नियम उस पर काम नहीं करता। और भी नर्तक छलांग लगाते हैं, लेकिन तत्क्षण पृथ्वी पर वापिस लौट आते हैं। वह भी छलांग लगाता था, लेकिन ऐसे लौटता था जैसे कोई पक्षी का पंख डगमगाता- डगमगाता, आहिस्ता-आहिस्ता, हवा पर तिरता-तिरता जमीन की तरफ आता है। उसके

बहुत अध्ययन किये गये। उससे पूछा भी गया कि चमत्कार कहां है? यह जादू कैसे पैदा होता है?
तो वह कहता है, मुझे पता नहीं। जब "मैं" अपने को बिल्कुल भूल जाता हूं, तभी यह छलांग घटती है। जब "मैं" नहीं होता--तभी। जब तक मैं होता हूं, अगर मैं चेष्टा से ही छलांग लगाऊं, तो परिणाम में कुछ हाथ नहीं आता। लेकिन नाचते-नाचते एक ऐसी घड़ी आती है कि नाच रह जाता है, नर्तक नहीं रह जाता। उस क्षण अगर यह छलांग लगती है तो मैं खुद ही चकित होता हूं। मैं बिल्कुल हलका, निर्भार हो जाता हूं; जैसे जमीन की कशिश का अहंकार का बड़ा बल हो। है भी। जमीन तुम्हारे अहंकार को ही खींच रही है। जिस दिन तुम्हारा अहंकार गया, आकाश खुला है। फिर तुम्हारे लिए जमीन की कोई पकड़ नहीं है।
नृत्य में, गीत में, कीर्तन में, भजन में, डूबा हुआ भक्त ज्ञानियों से कहता हैः तर दामनी पर शैख हमारी न जाइए--हमारे भीगे दामन पर मत जाइए। दामन निचोड़ दें तो फरिश्ते वजू करें।
यह शराब इस जगत की शराब नहीं--यह बेहोशी किसी और जगत की बेहोशी है। यह अपने भीतर किसी और जगत को निमंत्रण है। भक्त जब कीर्तन में परिपूर्ण लवलीन होता है तब भक्त नहीं रहता, भगवान ही होता है। तब वह केवल शून्य हो गया होता है। और उस शून्य में उतर आती है परम मूर्च्छा। तुम खाली तो जगह करो। तुम सिंहासन तो रिक्त करो। परमात्मा प्रतिपल उत्सुक है तुम्हारे भीतर आ जाने को। तुम तो जरा बाहर हो जाओ!
कीर्तन का इतना ही अर्थ हैः अपने से बाहर हो जाना; अपने घर को खाली छोड़ देना कि तू आ, अब भीतर कोई भी नहीं है; अब पूरी जगह तेरे लिए खाली है, तेरे लिए सुरक्षित है!
रंज-गम, दर्द-अलम, यास, तमन्ना, हसरत
इक तेरी याद के होने से है क्या-क्या दिल में।
रंज-गम, दर्द-अलम, यास, तमन्ना, हसरत
इक तेरी याद के होने से है क्या-क्या दिल में।
भक्त कहता है, भगवान की याद के साथ ही क्या-क्या नहीं होने लगता! आनंद, अहोभाव, आशा-निराशा, सुख-दुख, अभीप्सा, प्यास-तृप्ति!
रंज-गम, दर्द-अलम, यास, तमन्ना, हसरत
--बस जरा तेरी एक याद आ जाती है तो हजार-हजार चीजें तेरे आसपास चली आती हैं।
तो कीर्तन की बहुत भंगिमाएं हैं। कभी भक्त विरह में नाचता है; तब उसकी कीर्तन में बड़ी उदास भंगिमा होती है। आंसू बहते हैं। पीड़ा और विरह होती है। कभी भक्त आनंदोल्लास में नाचता है; तब उसकी बड़ी प्रसन्न भंगिमा होती है, वसंत होता है, सब तरफ फूल होते हैं! तब उसकी मस्ती देखें! तब उसके चारों तरफ आनंद की किरणें नाचती हैं। कभी प्यास में नाचता है; कभी तृप्ति में नाचता है।
भक्त की बड़ी ऋतुएं हैं और कीर्तन की बड़ी भाव-भंगिमाएं हैं। कीर्तन बड़ी समृद्ध घटना है। जीवन की सभी गहराइयां उसमें समाविष्ट हैं, और सभी ऊंचाईयां भी। पहले तो भक्त छिपाता है अपने प्रेम को भीतर। प्रेम का वह अनिवार्य अंग है कि हम उसे किसी को बताना नहीं चाहते। वह कोई तमाशा थोड़े ही है! वह कुछ ऐसी बात थोड़े ही है जो दिखलाते फिरें! उसकी कोई प्रदर्शनी तो नहीं, कोई नुमाइश तो नहीं! उसे छिपाता है, उसे हीरे की तरह गांठ में बांधकर रखता है। कबीर कहते हैंः हीरा पायो गांठ गठियायो! उसे बिल्कुल गांठ में बांध लेता है, किसी को पता भी नहीं चले, कानों-कान खबर न हो। जीसस ने कहा है, "बाएं हाथ में हो तो दाएं हाथ को पता न चले।" सूफी फकीर कहते हैं, "रात, आधी रात उठकर कर लेना प्रार्थना; तुम्हारी पत्नी को भी पता न चले।"
पहले तो बड़ा निजी है; लेकिन ज्यादा देर निजी नहीं रहता। जब भरने लगता
है पात्र तो पात्र ऊपर से बहने लगता है; फिर छिपाए नहीं छिपता, फिर प्रगट होने लगता है। जब प्रगट होने की घड़ी आती है, तब भजन कीर्तन बनता है। भक्ति जब तक भीतर-भीतर, भीतर-भीतर रसधार बहती है तो भजन, जप; फिर जब बहने लगती है बाहर, अवश होकर, तुम चाहो तो भी रोक नहीं पाते, इतनी ऊर्जा का जन्म होता है कि चारों तरफ फैलने लगती है ऊर्जा अपने-आप, तब कीर्तन!

कीर्तन भजन की अभिव्यक्ति है। कीर्तन भजन की अभिव्यंजना है।
तुम भी मजाज इन्सां हो आखिर लाख छुपाओ इश्क अपना
ये भेद मगर खुल जायेगा, ये राज मगर इफ्शां होगा।
--छिप न सकेगा यह भेद। यह राज मगर इफ्शां होगा। यह पता चल ही जायेगा। प्रेम को कौन कब छिपा पाया! तो प्रेम जब तुम्हारे बिना दिखाए दिखायी पड़ने लगता है, तुम्हारे रग-रोएं में झलकने लगता है, प्रेम की आभा तुम्हें घेर लेती है, तुम्हारी आंखों के पास, तुम्हारे चेहरे के पास एक प्रेम का आभामंडल निर्मित हो जाता है कि कोई चाहे तो छू ले, कि कोई चाहे तो थोड़ा-सा आभामंडल अपनी मुट्ठी में बांध ले, कि कोई चाहे तो तुम्हारे आभामंडल को पी ले--जब आभामंडल इतना वास्तविक हो जाता है तब कीर्तन प्रगट होता है!
तो जल्दी मत करना। कीर्तन तो भजन की आखिरी अवस्था है। पहले भजना। भीतर-भीतर-भीतर डुबाना, ताकि जड़ें फैल जायें। फिर एक दिन तुम भी चौंककर दखोगेः
तुम भी मजाज इन्सां हो आखिर लाख छिपाओ इश्क अपना
ये भेद मगर खुल जायेगा ये राज मगर इफ्शां होगा।
तब उन्माद की आखिरी घड़ी आती है। तब तुम्हारे अंतर की कोयल कूक उठती है! तब तुम्हारे अंतर का मोर नाच उठता है! तब फिर चिंता नहीं रह जाती। तब कीर्तन!
कीर्तन का अर्थ हैः जब भक्ति प्रगट होकर बहने लगी। चैतन्य नाचते हुए, गांव-गांव ढोलक बजाते हुए! मीरा नाचती हुई गांव-गांव। फिर लोक-लाज की चिंता नहीं! फिर सब उपचार छूट जाते हैं। फिर सब उपाधियां गिर जाती हैं। निरुपाधिक! उपचार-मुक्त! भक्त उसके हाथ में कठपुतली होकर नाचने लगता है और गीत गुनगुनाने लगता है। फिर भक्त तो सिर्फ बांस की पोंगरी है। फिर उसे जो गीत गाना हो गा ले, जो गुनगुनाना हो गुनगुना ले। भक्त सिर्फ राह देता है; उपकरण-मात्र हो जाता है।
चलो भाव से! भाव जब सघन होगा तो भजन। और जब भजन फूट पड़ेगा हजार-हजार फूलों में और सुगंध बिखर जायेगी लोक-लोकांतर में, तब कीर्तन!
कीर्तन, भक्ति की परम दशा है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
उन्तीसवां प्रवचन

मोक्ष का द्वारः सम्यक दृष्टि

जिन-दर्शन की चिंतन-धारा के ठीक मध्य के सूत्रों पर हम आ गये हैं। धार यहां बहुत गहरी है। ऊपर-ऊपर से समझेंगे तो चूकेंगे। डुबकी गहरी लगानी होगी--साहस के साथ और अत्यंत धीरज के साथ--तो ही ये सूत्र समझ में आ सकेंगे।
और ये उन सूत्रों में से हैं, जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं; और उनमें
से भी, जिनका जैनों ने सर्वाधिक गलत अर्थ किया है। उनको करना पड़ा गलत अर्थ; क्योंकि अगर इन सूत्रों का ठीक अर्थ करें तो जैन जो कर रहे हैं, न कर पाएंगे।
अगर ये सूत्र ठीक हैं तो जैन गलत हो जाते हैं और अगर जैनों को अपने को ठीक बनाए रखना है, बताए रखना है, तो इन सूत्रों की गलत व्याख्या करनी जरूरी है। वह जैसे हम सूत्रों में प्रवेश करेंगे, स्पष्ट होने लगेगा।
सभी अनुयायियों ने अपने गुरुओं के साथ अनाचार किया है; कभी-कभी तो सीधा बलात्कार! क्योंकि अगर गुरु पूरा ठीक है तो अनुयायी को गलत होने का उपाय नहीं छूटता। गुरु के विदा होते ही अनुयायी उसके वचनों में जोड़ता है, घटाता है, अर्थ को बदलता है, नये अर्थ बिठाता है, नये रंग डालता है। तब वे काम के योग्य हो जाते हैं। तब फिर उनका खतरा समाप्त हो जाता है। उनके प्राण ही निकल जाते हैं; निष्प्राण सूत्र रह जाते हैं।
पहला सूत्रः
दंसणभट्ठा भट्ठा--जो दर्शन से भ्रष्ट है वही भ्रष्ट है।
दंसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाणं--और दर्शन से जो भ्रष्ट है, उसकी कभी निर्वाण की उपलब्धि संभव नहीं है। वह कभी मोक्ष को उपलब्ध न हो सकेगा। सिज्झंति चरियभट्ठा--यह बड़ा अनूठा सूत्र है! महावीर कहते हैं, चरित्र-विहीन दृष्टिवाला व्यक्ति भी सिद्धि प्राप्त कर सकता है। सिज्झंति चरियभट्ठा। वह भी पहुंच जायेगा जिसके पास कोई चरित्र नहीं; सिर्फ दृष्टि हो।
दंसणभट्ठा ण सिज्झंति। लेकिन जिसके पास दर्शन नहीं है, वह लाख उपाय करे तो भी न पहुंच पायेगा। चरित्र से ऊपर दर्शन के लिए इससे ज्यादा बहुमूल्य सूत्र नहीं हो सकता। एक-एक शब्द को गौर से समझें।
"दर्शन से जो भ्रष्ट है, वही भ्रष्ट है।" जिसके पास आंख नहीं, वही भटका है। तुम चरित्र को कितना ही सुधार लो, तुम चरित्र को कितना ही अनुशासित, परिमार्जित कर लो; लेकिन अगर यह चरित्र तुम्हारी ही दृष्टि से निष्पन्न नहीं हुआ है, उधार है, तो इससे मोक्ष न हो सकेगा। तुम सत्य बोलो; क्योंकि शास्त्र कहते हैं, "सत्य बोलो; सत्यं वद!" इसलिए सत्य बोलते हो। लेकिन प्राणों में असत्य संगृहीत होता है। ऐसा हो सकता है कि तुम जीवन को इस तरह से बांध लो कि असत्य कभी जबान के बाहर न आये। कठिन है, असंभव तो नहीं। जबान आखिर जबान है; काबू में रखी जा सकती है। और इतना तो कर ही सकते हो, अगर काबू में न रहती हो तो चुप हो जाओ, जबान काट ही दे सकते हो। इसलिए बहुत लोग मौन हो जाते हैं। लेकिन मौन से असत्य थोड़े ही मिट जायेगा... ! अब असत्य बोलते तो नहीं, लेकिन असत्य अगर बोलने से ही जुड़ा होता तो एक बात थी; असत्य तो तुम्हारे प्राणों में बैठा है। न बोलोगे तो दूसरों तक न पहुंचेगा, लेकिन तुम तो उससे मुक्त न हो जाओगे। बोलने से तो अभिव्यक्त होता था, पैदा थोड़े ही होता था! बोलने से तो केवल प्रगट होता था, जन्मता थोड़े ही था! असत्य तो भीतर बैठा है। बोलने से दूसरे को भी खबर मिल जाती थी।
तो जो व्यक्ति चरित्र को साध लेगा शास्त्र के अनुसार, बिना स्वयं की दृष्टि के, दूसरों के और उसके बीच के संबंध तो ठीक हो जायेंगे, वह व्यक्ति नैतिक हो जायेगा--लेकिन महावीर कहते हैं--धार्मिक नहीं। मोक्ष उसके लिए नहीं है। परम आनंद का द्वार उसके लिए न खुलेगा। वह अच्छा नागरिक हो जायेगा। सज्जन हो जायेगा, लेकिन संत नहीं।

सज्जन का अर्थ है, जिससे किसी को कोई नुकसान नहीं पहुंचता। लेकिन स्वयं तो सज्जन अपना आत्मघात करता रहता है। जहर किसी पर नहीं फेंकता, लेकिन खुद ही पीता चला जाता है। तो खुद ही के रोएं-रोएं में, रग-रग में, श्वास-श्वास में जहर फैल जाता है। तो जिनको तुम सच्चरित्र कहते हो, कभी उनकी अंतरात्मा में भी झांककर देखना; तुम उन्हें दुश्चरित्रों से भी ज्यादा जहर से भरा हुआ पाओगे। पाओगे ही, क्योंकि दुश्चरित्र तो थोड़ा-बहुत बाहर भी फेंक लेता है; वह तो भीतर ही इकट्ठा किए चले जाते हैं। दुश्चरित्र का तो थोड़ा रेचन भी हो जाता है, उनका तो कोई रेचन भी नहीं होता। दुश्चरित्र तो ऐसा है कि श्वास लेता है; जीवनदायी आक्सीजन को पी लेता है, जीवन-विरोधी कार्बन डाय-आक्साइड को बाहर फेंक देता है।
लेकिन तुम जिसे सज्जन कहते हो, वह ऐसा है कि कार्बन डाय-आक्साइड को भीतर इकट्ठा किए जाता है फेफड़ों में, बाहर नहीं फेंकता। उसके खुद के फेफड़े सड़ने लगते हैं। सज्जन एक तरह के आत्मिक कैंसर की दशा में होता है।
इसलिए एक बहुत बड़ा चमत्कार मनोवैज्ञानिकों को अनुभव में आया है कि गहनतम अपराधियों की आंखों में भी कभी-कभी बच्चों जैसा निर्दोष भाव होता है; लेकिन तुम्हारे तथाकथित संतों की आंखों में नहीं होता। उनकी आंखों में बड़ी जटिलता, बड़ा गणित, बड़ा हिसाब... ! और वे चौबीस घंटे अपने को पकड़े हुए हैं। क्षणभर को ढीला छोड़ा, तो वह जो बांध रखा है जन्मभर का जहर वह बिखर सकता है।
संत क्षणभर को विश्राम नहीं करता। संत के लिए--कहते हैं--कोई छुट्टी नहीं।... तथाकथित संत के लिए! वास्तविक संत तो चौबीस घंटे विश्राम में है। विश्राम ही उसकी जीवन-शैली है। लेकिन जिसे तुम संत कहते हो और जिसे महावीर के हिसाब से ज्यादा से ज्यादा सज्जन कहना चाहिए, वह भी शिष्टाचारवश... । यह जो तथाकथित संत है यह एक क्षण को भी विश्राम में नहीं है; हो नहीं सकता, क्योंकि यह डरा हुआ है। जब भी अपने को ढीला छोड़ेगा, शिथिल करेगा, तो जो दबा रखा है वह गांठ खुलेगी।
तुमने कभी देखा, एक झूठ तुम बोल दो तो फिर तुम शिथिल नहीं हो पाते! क्योंकि तुम शिथिल हुए तो कहीं झूठ निकल न जाये! तुम कहीं गपशप में, बातचीत करने में भूल गए और कह दिया किसी से, तो झूठ बोलनेवाला आदमी ज्यादा नहीं बोलता, सोच-सोचकर बोलता है। और जो बहुत झूठ बोलता है, वह तो चौबीस घंटे सचेष्ट रहता है।
जिसको तुम सज्जन कहते हो उसने जीवन का सबसे बड़ा झूठ बोला है--जो उसके भीतर नहीं है वह उसने बाहर करके दिखला दिया है। वह सबसे बड़ी असत्य घटना है। आत्मा में नहीं है वह, आचरण में बतला दिया है। इस बड़े झूठ का परिणाम यह होता है कि तुम्हारा सज्जन तो विश्राम ले ही नहीं सकता। वह चौबीस घंटे संगीनधारी की तरह अपनी ही छाती पर पहरा देता है। यह कोई संत की अवस्था न हुई। यह कोई मुक्ति न हुई। यह तो बुरी तरह बंध जाना हुआ।
महावीर कहते हैंः दंसणभट्ठा भट्ठा! भटका वही, जिसके पास आंख नहीं।
सारा जोर दृष्टि पर है, आंख पर है।
तथाकथित चरित्रवान व्यक्ति ऐसा है जैसे कोई अंधा व्यक्ति एक ही रास्ते पर बार-बार आ-जाकर धीरे-धीरे इतना अभ्यस्त हो जाये कि आंख की तो जरूरत ही नहीं होती; लेकिन वह बिना लकड़ी टेके, बिना किसी का सहारा खोजे, बिना टटोले, बिना पूछे, निरंतर उसी रास्ते पर आने-जाने के कारण अभ्यस्त हो जाने की वजह से ऐसा चलने लगता है जैसा आंखवाले को चलना चाहिए। उसे चलते देखकर राह पर शायद तुम भी चमत्कृत हो जाओगे। शायद तुम्हें भी शक होगा कि कहीं आंख इस आदमी को मिल तो नहीं गयी। क्योंकि वह ठीक वैसा ही चल रहा है जैसे आंखवाले चल रहे हैं। लेकिन गहरा फर्क है। यह चलना केवल अभ्यासवश है। यह निरंतर इसी रास्ते पर आने-जाने से आदत हो गयी है। उसे रास्ते का एक-एक पत्थर परिचित है। उसे रास्ते का एक-एक मोड़ परिचित है। वह रास्ते पर चल लेता है, लेकिन चल लेने से कुछ आंख थोड़े ही खुल जाती है। आंख खुलने से चलना हो सकता था; इसने धोखा दे लिया।
जिसको तुम चरित्रवान कहते हो, वह ऐसा ही आदमी है जिसको अभी दिखायी तो नहीं पड़ा, लेकिन सुनकर औरों को, कान का भरोसा करके, अभ्यास कर लिया है। तो

लोग अहिंसा का अभ्यास कर रहे हैं। अहिंसा का कोई अभ्यास हो ही नहीं सकता। अहिंसा की तो आंख होती है। प्रेम की एक दृष्टि होती है। प्रेम का एक भाव होता है। प्र्रेम तो एक नया जन्म है। तुम्हारा हृदय और ही ढंग से देखना शुरू करता है, तब अहिंसा फलित होती है। तब अहिंसा बड़ी जीवंत होती है। तब उस अहिंसा में पुलक होती है, प्रसन्नता होती है।
लेकिन तुम दूसरों को सुनकर, लोभ के कारण कि परलोक को सम्हालना है, चरित्र को बना ले सकते हो, अहिंसक हो सकते हो, फूंक-फूंककर पैर रख सकते हो। ... चींटी भी न मरे, लेकिन तुम मर जाओगे! तुम सब बचा सकते हो, लेकिन अपने को न बचा सकोगे। और असली बात तो वही थी।
दंसणभट्ठा भट्ठा।
जिसके पास आंख नहीं है, वही भटका हुआ हैः सम्यक दर्शन से जो भ्रष्ट, वही भ्रष्ट। महावीर का वचन बहुत साफ है।
दंसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाणं।
और जो दर्शन से भ्रष्ट है, उसका कोई निर्वाण नहीं, उसका कोई मोक्ष नहीं। यहां तक भी जैन को कठिनाई न होगी। आगे जो सूत्र है--सिज्झंति चरियभट्ठा, चरित्र-भ्रष्ट भी अगर आंखवाला है तो पहुंच जाता है--यहां अड़चन होगी। तो जैन जब अनुवाद करते हैं, जैन-मुनि जब अनुवाद करते हैं, तो वे क्या करते हैं अनुवाद में? वे इस सीधे-साधे वचन का जहां दो शब्द हैं केवल-- सिज्झंति चरियभट्ठा--जो नहीं भी जानते प्राकृत वे भी कह सकते हैं-- सिज्झंति चरियभट्ठा--वे भी सिद्धि को पहुंच जाते हैं जो चरित्र-भ्रष्ट हैं। जैन अनुवाद में क्या करते हैं? वे कहते हैं, "चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि तो चारिष्य धारण करके सिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं।"
चारिष्य धारण करके? इस तरह महावीर को विकृत करने में सुविधा हो जाती है। जैनों को तकलीफ है कि अगर यह बात सही है कि चरित्र-भ्रष्ट व्यक्ति भी, सिर्फ आंख के होने के कारण सिद्धि को उपलब्ध हो जाता है तो हमारे सारे चरित्र का, जो हमने आयोजन किया है, उसका क्या होगा? तो उसमें दो छोटे-से शब्द जोड़ दिए, कोष्ठक में रख दिएः "चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि तो (चारिष्य धारण करके) सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।" यह महावीर ने कहीं कहा नहीं। महावीर का वचन सिर्फ सीधा-साफ है। उन्हें कहना होता तो वे खुद ही कह देते; ये कोष्ठक वे भी लगा सकते थे।
सिज्झंति चरियभट्ठा, दंसणभट्ठा ण सिज्झंति।
लेकिन दर्शन-भ्रष्ट नहीं सिद्ध होता; चरित्र-भ्रष्ट तो सिद्ध हो सकता है। अब यहां बहुत-से सवाल सोचने जैसे हैं। पहली बातः चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि! इसका अर्थ हुआ, महावीर यह स्वीकार करते हैं कि चरित्र-विहीन भी सम्यक दृष्टि हो सकता है। इसका यह अर्थ हुआ कि चारिष्य का होना या न होना मौलिक नहीं है। चारिष्य का होना न होना छाया की भांति है। छाया बन भी सकती है, न भी बने। क्योंकि छाया तुम पर निर्भर नहीं होती। तुम सोचते हो, तुम्हारी छाया तुम्हारा पीछा करती है--इस भूल में मत पड़ना। छाया तुम पर निर्भर नहीं होती, अन्य कारणों पर निर्भर होती है। छाया तुम्हारी नहीं है, जैसा तुम सोचते हो; सूरज पर निर्भर है। छाया में खड़े हो जाओगे तो छाया खो जायेगी। सूरज सिर पर आ जायेगा, छाया छोटी हो जायेगी। सूरज पीछे होगा, छाया आगे पड़ेगी। सूरज आगे होगा, छाया पीछे पड़ेगी। तुमने सदा यही सोचा है कि छाया मेरी... और गलत सोचा है। छाया से तुम्हारा क्या लेना-देना? अगर सूरज न होगा तो कोई छाया न होगी। छाया तुम पर निर्भर नहीं है, अन्य कारणों पर निर्भर है।
अगर तुम्हारे चारों तरफ कई प्रकाश लगा दिये जायें तो कई छायाएं एक साथ बनने लगेंगी। यहां तुम बैठे हो, अगर कोई प्रकाश नहीं तो छाया न बनेगी। चारिष्य मौलिक नहीं है, और-और कारणों पर निर्भर होता है; छाया की भांति है। लेकिन दर्शन मौलिक है। दृष्टि मौलिक है। वह तुम्हारी है। वह किसी सूरज पर निर्भर नहीं है। अंधेरे में भी जब सूरज नहीं होता तब भी तुम्हारी दृष्टि तुम्हारे पास है। उसी दृष्टि के कारण तो तुम कहते हो, बड़ा घना अंधेरा है! अंधेरा भी तो दिखायी पड़ता है!

अंधे को अंधेरा भी दिखायी नहीं पड़ता, याद रखना! आमतौर से लोग सोचते हैं कि अंधा तो बेचारा अंधेरे में ही जीता होगा। इस भूल में मत पड़ना। किसी अंधे ने कभी अंधेरा नहीं देखा। जिसने प्रकाश ही नहीं देखा वह अंधेरा देखेगा कैसे? अंधा अंधेरे में नहीं होता। अंधे को तो पता ही नहीं है कि अंधेरा जैसी कोई चीज होती है। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। प्रकाश के लिए भी आंख, अंधेरे के लिए भी आंख... ।
दृष्टि मौलिक है; किसी पर निर्भर नहीं--तुम्हारी है। और महावीर का यह बड़ा जोर है कि जो तुम्हारा है वही सत्य है; जो तुम्हारा नहीं उधार है, वह असत्य है।
चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। तो महावीर
यह कह रहे हैं कि चरित्र कोई मौलिक बात नहीं है, गौण है। हो तो ठीक, न हो तो भी यह संभव है कि व्यक्ति मुक्ति को उपलब्ध हो जाये। लेकिन दर्शन-विहीन कभी मुक्ति को उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि वह मौलिक है।
अब दृष्टि की इतनी महिमा और चरित्र को ऐसा कचरे में डाल देना, महावीर करेंगे--ऐसा जैन सोच ही नहीं सकते। क्योंकि ढाई हजार साल तक धीरे-धीरे महावीर के वचन तो कम मूल्य के हो गये हैं; वे जो कोष्ठक लगे हैं, ज्यादा मूल्य के हो गए हैं। वह जो उनकी व्याख्याएं की गयी हैं, वे ज्यादा मूल्य की हो गयी हैं। अब जैन मुनि डरे होंगे कि यह तो खतरनाक वचन है। यह तो अग्नि जैसा है, जला देगा! इसमें कहीं लोग भटक न जायें! कहीं लोग यह न सोचने लगें कि चरित्र का कोई मूल्य नहीं है! क्योंकि अगर चरित्र का कोई मूल्य नहीं तो जैन मुनि का कोई मूल्य नहीं है; क्योंकि वह चरित्र के ही मूल्य पर उसका सारा व्यवसाय है। तो यह कोष्ठक लगा देना जरूरी है।
यह महावीर के साथ बेईमानी है। यह महावीर के साथ बलात्कार है।
"चारिष्य धारण करके सिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं"--अगर ऐसा ही था तो कहने की जरूरत क्या है? जैसा जैन मुनि मानते हैं, अगर ऐसा ही है, अगर उनका वचन ही महावीर का ठीक-ठीक अनुवाद है--"चारिष्य-विहीन सम्यक दृष्टि तो (चारिष्य धारण करके) सिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं"--अगर यही महावीर को कहना हो तो कहने की जरूरत क्या है? और अगर यही कहना होता तो फिर दूसरे वचन में भी उन्हें एक कोष्ठक और लगाना चाहिए था--"किंतु सम्यक दर्शन से रहित सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते हैं"--उसमें भी एक कोष्ठक लगा दो। "किंतु सम्यक दर्शन से रहित भी तो (सम्यक दर्शन को प्राप्त करके) सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं।" तब तो महावीर के अर्थ के सारे प्राण खो गये! फिर कहने की जरूरत क्या है? चरित्र-विहीन चरित्र पाकर सिद्धि पा लेते हैं, तो दर्शन-विहीन दर्शन पाकर सिद्धि पा लेंगे। कहने की जरूरत क्या है?
कहने का प्रयोजन साफ है। महावीर भेद करना चाहते हैं कि दर्शन को उपलब्ध व्यक्ति तो चरित्र के बिना भी मुक्ति को पा लेते हैं; लेकिन जो दर्शन को उपलब्ध नहीं है वह चरित्र पाकर भी मोक्ष को उपलब्ध नहीं हो सकते। यह इतना सीधा गणित की तरह, दो और दो चार जैसा साफ है। लेकिन बड़े न्यस्त स्वार्थ हैं!
महावीर को तो दर्शन उपलब्ध हुआ। तो जिसको आत्मा मिल गयी वह छाया की फिक्र छोड़ देता है। जिसको आत्मा नहीं मिली वह छाया की ही चिंता करता है। उसे छाया ही आत्मा जैसी मालूम पड़ती है। जिसने अपने को देख लिया, फिर वह दर्पण में अपनी छवि देखने के लिए थोड़े ही बहुत आतुर होता है! जिसने अपनी आत्मा देख ली, वह दर्पण में अपनी छवि देखने के लिए कोई चिंता नहीं करता। और अगर दर्पण खो जाये तो वह पागल नहीं हो उठता कि अब मैं क्या करूं, अब अपने चेहरे को कैसे देखूंगा! जिसने आत्मा देख ली, वह चेहरे को देखने की फिक्र छोड़ देता है।
चारिष्य तो छाया है। चारिष्य तो दर्पण में देखा गया प्रतिबिंब है। चारिष्य तो अपने और दूसरों के बीच संबंधों से जो दर्पण निर्मित होते हैं, उनमें देखी गयी छवि है। वह आत्मा का सीधा अनुभव नहीं है।
तुम झूठ बोले--एक तरह का चरित्र निर्मित हुआ। तुम सच बोले--दूसरे तरह
का चरित्र निर्मित हुआ। लेकिन तुम किसी से बोले, झूठ या सच--दूसरे की जरूरत पड़ी! अकेले में तुम कैसे सच बोलोगे, कैसे झूठ बोलोगे? एकांत में बैठे पहाड़

पर तुम कैसे ईमानदार होओगे और कैसे बेईमान होओगे? कोई उपाय न रह जायेगा। दूसरा चाहिए!
और जिस चीज के होने में दूसरे की जरूरत पड़ती है उससे मोक्ष न हो सकेगा; क्योंकि मोक्ष का कुल अर्थ इतना ही हैः अपने में पूरा हो जाना। यह तो पर-निर्भर हुआ।
महावीर कहते हैं, धिक्कार है परवशता पर! यह तो परवशता ही हुई। यह तो... दर्पण के बिना कोई उपाय न चलेगा। यह तो... अगर मुझे संत होना है तो लोगों के बीच होना चाहिए।
और मजे की बात है, जरा ख्याल करना! अगर तुम्हें बड़ा संत होना हो तो लोगों को असंत होना चाहिए, तभी तुम बड़े संत हो सकोगे! अगर सभी लोग संत हों, तुम्हारा संतत्व खो जायेगा।
थोड़ी देर सोचो, कोई ऐसी दुनिया हो जहां सभी राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम हों, तो दशरथ के बेटे राम को कौन पूछेगा? यह तो पूछ इसलिए चलती है कि ये मर्यादा पुरुषोत्तम अकेले हैं। तो इनकी मर्यादा तुम्हारी अमर्यादा पर निर्भर है। साधु का साधु होना तुम्हारे असाधु होने पर निर्भर है।
अगर बहुत गहरे में देखो तो साधु मिट जायेगा, जिस दिन जगत साधु हो जायेगा। तो साधु का निहित स्वार्थ यही है कि जगत साधु न हो जाये, जगत असाधु रहे।
नेता तभी तक नेता है जब तक और लोगों को नेता होने का ख्याल पैदा नहीं हुआ है। जब तक अनुयायी अनुयायी होने को राजी है, तब तक नेता, नेता है। जिस दिन अनुयायियों ने भी घोषणा कर दी कि हम भी नेता हो गए, उस दिन नेता खो जायेगा। अमीर तभी तक अमीर है, जब तक गरीब है। और तुम्हारे पास बड़ा महल तभी तक हो सकता है जब तक और लोगों के पास छोटे झोपड़े हैं। तो जैसे ब.ड़ा महलवाला आदमी न चाहेगा कि सभी के पास बड़े महल हो जायें... ।
यह तो साफ समझ में आता है, अर्थशास्त्र का सीधा नियम है, कि अमीर का मजा उसकी अमीरी में तभी तक है जब तक और लोग गरीब हैं। तुम्हारे पास एक शानदार कार है, तो उसका मजा तभी तक है जब तक दूसरे लोगों पर, राह चलते लोगों पर बरसात में तुम कीचड़ उछालते हुए कार से निकल जाते हो। अगर सभी के पास वैसी गाड़ियां हैं, बात खतम हो गयी! तुम्हारा सारा मजा इस कार में चला जायेगा। इस कार का मजा कार में न था; दूसरों के पास कार नहीं है, उसमें था। जीवन का जाल बड़ा जटिल है!
मेरे एक मित्र हैं कलकत्ते में। मैं उनके घर में कभी-कभी रुकता था। वे बिल्कुल पागल थे अपने मकान के लिए। उन्होंने शानदार मकान बनाया था। कलकत्ते में उसकी कोई तुलना न थी। उन्होंने पूरे कलकत्ते को मात कर दिया था। चौबीस घंटे वे मकान के ही ख्याल से भरे रहते थे... तो जब भी मैं उनके घर जाता तो मकान, मकान... यह दिखाते, वह दिखाते! नया स्विमिंग पूल बना डाला। क्या-क्या उन्होंने कर डाला है, वह दिखाते। एक बार जब मैं गया तो उन्होंने मकान की कोई बात न की। और मैं तो पहले से ही तैयार होकर आया था कि वह मकान की बात सुननी पड़ेगी। वे कुछ बोले ही नहीं मकान पर और कुछ बड़े उदास दिखे, उत्साह भी कुछ ढीला मालूम पड़ा, कुछ सुस्त से मालूम पड़े। सांझ होते-होते मैंने पूछा, "मामला क्या है? मकान का क्या हुआ?" उन्होंने कहा, "वह बात ही मत उठाओ!" मैंने कहा, "कुछ तो बात होगी। तुम उदास भी हो। वह सदा की प्रफुल्लता, मकान की चर्चा, कुछ नया किया, कुछ नया बनाया--वह सब हुआ क्या?" वे मुझे हाथ पकड़कर बाहर लाए पड़ोस में, कहा कि वह देखो! एक आदमी ने उनसे बड़ा मकान बना लिया! वे बोले, जब तक इसको मात न कर दूं, तब तक अब क्या बात करना! मन बड़ा दुखी रहने लगा। अभी सुविधा भी नहीं है कि इतना ऊंचा उठा लूं। मात हो गया हूं!
मैंने कहा कि तुम्हारा मकान वैसा का वैसा है। इस पर किसी ने छुआ भी नहीं है। कुछ घटा नहीं, कुछ बिगड़ा नहीं; सब सुंदर है। लेकिन पास के आकाश में एक नया मकान खड़ा हो गया! किसी ने तुम्हारी लकीर के पास बड़ी लकीर खींच दी--तुम्हारी लकीर को छुआ भी नहीं है, तुम अचानक छोटे हो गये!

तो मैंने उनसे कहा, अब तुम यह तो सोचो, तो यह मजा तुम जो अपने मकान में
ले रहे थे, अपने मकान का मजा न था; वह जो झोप.ड़े पास में थे, उनका मजा था। तो तुम्हारी अमीरी किसी के गरीब होने में निर्भर है।
और वही बात तुम्हारे साधु के संबंध में भी सच है। अगर दुनिया से असाधु
खो जाये तो तुम्हारा साधु... फिर कौन उसे मंदिरों में विराजमान करेगा? कौन उसके सामने पूजा के थाल सजायेगा? कौन अर्चना के दीप उतारेगा? वह खो जायेगा। इसलिए साधु कहता तो यही है तुमसे कि सब साधु बनो; लेकिन उसकी अंतर्तम की प्रार्थना यही होती है कि हे प्रभु, इन सबको साधु मत बना देना! उसकी हालत, जिसको मनोवैज्ञानिक कहते हैं "पेराडाक्सिकल इंटेशन", विरोधाभासी आकांक्षा की है।
जैसे चिकित्सक के पास तुम जाते हो... तुमने कभी ख्याल किया? अगर तुम्हारी जेबें भरी हों तो बीमारी के ठीक होने में ज्यादा देर लगती है। इस अर्थ में गरीब आदमी सौभाग्यशाली है। अगर तुम बहुत अमीर हो और एक दफे बीमार पड़ गए, तो पड़ गए, अब तुम ठीक न हो सकोगे। क्योंकि चिकित्सक की विरोधाभासी आकांक्षा है। वह तुम्हारी बीमारी पर जीता है और तुम्हें स्वस्थ करने का आयोजन कर रहा है। उसका सारा जीवन तुम बीमार रहो, इस पर निर्भर है। और उसकी सारी चेष्टा इस पर निर्भर है कि तुम ठीक हो जाओ। यह विरोधाभासी बात है। मैंने सुना है, एक डाक्टर का बेटा कालेज से वापिस लौटा डाक्टर होकर।
तो बाप बहुत दिन का थका था और विश्राम न लिया था, तो उसने कहा, "मैं सात दिन के लिए छुट्टी पर चला जाऊं, पहाड़ चला जाऊं। अब तू घर आ गया है, तू सम्हाल ले।" सात दिन बाद जब बाप लौटा तो बेटे ने उसे बड़ी खुशी से दरवाजे पर कहा कि पिताजी, जिस सेठानी को आप बीस साल में ठीक न कर पाए उसे मैंने पांच दिन में ठीक कर दिया! बाप ने सिर ठोक लिया और उसने कहा, "नासमझ! उसी की वजह से तू कालेज में पढ़ सका और उसी पर आशा थी कि और बच्चे भी पढ़ लेंगे! उसे ठीक करना ही नहीं था। यह तूने क्या किया? तूने सारा खेल खराब कर दिया!"
चिकित्सक दिखाता है तुम्हें ठीक करने की चेष्टा। शायद खुद भी मानता
है कि तुम्हें ठीक करना चाहता है। शायद खुद के चेतन में कहीं कोई बात भी नहीं है; तुम्हें ठीक ही करने का आयोजन करता है। लेकिन अंतस-चेतन में, गहरे अनकांशस में... अगर उसके हम अंतस-चेतन को खोल सकें तो कहीं तो यह बात छिपी होगी कि लोग बीमार रहें, बीमार रहें तो ही तो वह जी सकता है।
एक रात एक मधुशाला में बड़ा उत्सव रहा। एक आदमी पहली दफे अपने मित्रों
को लेकर आया था और उसने खूब रुपये उछाले, खूब पीया-पिलवाया! मधुशाला का मालिक भी चकित हो गया! ऐसा दिलदार उसने कभी देखा न था! और जब आधी रात वे जाने लगे, हजारों रुपये लुटाकर, तो उसने अपनी पत्नी से कहा कि ऐसे ग्राहक रोज आते रहें तो कुछ ही दिनों में हम मालामाल हो जायेंगे। चलते-चलते उसने अपने इस ग्राहक को कहा कि कभी-कभी आया करें। उस ग्राहक ने कहा, "प्रार्थना करो हमारे लिए कि हमारा धंधा ठीक चलता रहे तो हम आते रहें।" उसने कहा, "जरूर प्रार्थना करेंगे, क्यों न प्रार्थना करेंगे! रोज यही प्रार्थना करेंगे कि तुम्हारा धंधा... लेकिन यह तो बताओ तुम्हारा धंधा क्या है?" उसने कहा, अब यह मत पूछो, अन्यथा तुम प्रार्थना न कर पाओगे। मैं मरघट पर लकड़ियां बेचता हूं। लोग मरते रहें, लकड़ियां बिकती रहें, तो मैं आता रहूं। मेरा धंधा चले... ।
अब कुछ हैं जो मरघट पर लकड़ियां बेचते हैं, उनका धंधा ही यही है कि लोग मरें।
एक गांव में एक नया-नया इंस्पेक्टर आया। वह दिनभर बैठा रहा। कपड़े- लत्ते सजाकर, बैल्ट इत्यादि, जूते इत्यादि बांधकर दिनभर बैठा रहा। बार-बार चौंककर देखे; लेकिन कोई घटना ही न घटी दिनभर। न कोई चोरी हुई न कोई डाका पड़ा, न कहीं कोई हत्या हुई, न किसी ने आत्महत्या की, न कोई दंगा-फसाद हुआ, न कोई हिंदू-मुसलमान मरे, कुछ भी न हुआ। वह जरा उदास होने लगा। सांझ होने लगी तो उसका चेहरा एकदम फीका पड़ने लगा।
उसके मुंशी ने कहा, "आप घबड़ाओ मत! मुझे मनुष्य के स्वभाव पर पूरा भरोसा है। ठहरो, कुछ न कुछ होकर रहेगा। अभी रात पड़ी है। तुम इतने उदास क्यों हुए जा रहे हो?"

अब वह जो चोर को पकड़ने पर जीता है, वह पकड़ता चोर को है, लेकिन प्रतीक्षा करता है कहीं चोरी हो! वह जो न्यायाधीश है, वह सजा देता है हत्यारों को, लेकिन उसका सारा होना उन्हीं के होने पर निर्भर है। उन्हीं की साझेदारी में वह न्यायाधीश है। जीवन के इस व्यंग्य को समझना।
साधु तुमसे कहे चला जाता है कि क्या तुम असाधु बने हो, बनो साधु! बनना
भर मत, अन्यथा वह नाराज हो जाएगा। एक साधु दूसरे साधु से प्रसन्न थोड़े ही है! एक साधु दूसरे साधु से बड़ा अप्रसन्न है। तुम असाधु हो, इससे वह खुश है। उसकी साधुता, उसका ऊंचा सिंहासन तुम्हारी छाती पर लगा है। अगर वास्तविक रूप से किसी दिन दुनिया धार्मिक हो जायेगी तो न असाधु रह जाएंगे, न साधु रह जाएंगे।
साधु का सारा बल इसमें है कि उनके पास चरित्र है और तुम्हारे पास नहीं है। उसने कुछ करके दिखा दिया है जो तुम नहीं कर पाए; भला वह करना बिल्कुल मूढ़तापूर्ण है। भला वह इस तरह का मूढ़तापूर्ण हो कि एक आदमी रास्ते पर शीर्षासन लगाकर खड़ा हो जाता है। अब इसमें कुछ गुण नहीं है, लेकिन भीड़ लग जायेगी। लोग पैसे भी चढ़ाने लगेंगे। क्योंकि तुम शीर्षासन लगाकर घंटों नहीं खड़े रह सकते। बस इतना काफी है। कोई आदमी छत्तीस घंटे साइकिल पर चढ़ा हुआ चक्कर लगाता रहता है। उसको भी पैसे मिल जाते हैं, उसके भी अखबार में फोटो छप जाते हैं। कुछ अर्थ नहीं है। छत्तीस घंटे या छत्तीस जन्म भी साइकिल पर चढ़े रहो--क्या सार है? लेकिन जो दूसरे नहीं कर सकते, वह किसी ने कर दिया--बस काफी है, उसका सम्मान होना शुरू हो जाता है।
तुम्हारे साधुओं के सम्मान में तुमने देखा!
किसी ने तीन महीने का उपवास किया--बस तुम सम्मान से भर गए! यह तीन महीने साइकिल पर सवार रहने से ज्यादा भिन्न बात नहीं है। या किसी ने अपने शरीर को सुखाकर हड्डियां कर लिया--तुम प्रभावित हो गये! या किसी ने अपने बाल-बच्चों को, घर-गृहस्थी को, सबको छोड़कर, उजाड़कर जंगल में खड़ा हो गया--बस तुम चले पूजा के फूल लेकर! यह तुम नहीं कर पाते हो, तो तुम सोचते हो, तुम कमजोर हो और इस आदमी ने कर लिया!
अभी अमरीका में अपराधियों और अपराधियों से जूझ जानेवाले लोगों के संबंध में मनोवैज्ञानिक अध्ययन चलता है। बड़े हैरानी के नतीजे हाथ में आये हैं। अकसर तुमने देखा होगा कि कोई आदमी डूब रहा है या किसी घर में आग लग गयी है कोई बच्चा अंदर छूट गया है, तो हजारों की भीड़ लगी रहती है, हजारों लोग खड़े रहते हैं; कोई एकाध ही होता है जो उछलकर और मकान में दौड़ जाता है, आग का खतरा है, खुद की जान खतरे में डालता है, बच्चे को निकाल लाता है। अखबारों में खबर छपेगी, सत्कार होगा, स्वागत होगा! लोग कहेंगे, बहुत बहादुर है! बहुत गजब का आदमी है! साधु-चरित्र है! दयावान है! करुणावान है! कोई नदी में डूब रहा है, कोई बचा लेता है। या रास्ते पर किसी आदमी ने किसी दूसरे पर हमला किया; अनेक लोग गुजर जाते हैं, लेकिन एक आदमी बीच में कूद पड़ता है और हमलावर को पकड़ लेता है या पुलिस को पकड़ा देता है या हमलावर को काबू में कर लेता है या हत्यारे को पकड़ लेता है--अपनी जान जोखिम में डालकर। तो अमरीका में एक अध्ययन किया जा रहा है कि ये किस तरह के लोग हैं जो इस तरह का काम करते हैं। और एक बड़ी हैरानी का नतीजा आया और वह यह कि ये उसी तरह के लोग हैं जिस तरह के लोगों को ये पकड़ते हैं। ये साधु-चरित्र लोग नहीं हैं।
जो आदमी, दो आदमी लड़ रहे हैं इनके बीच में कूद पड़ता है, यह क्रोधी आदमी है, यह खुद भी हत्या कर सकता है। वही हत्या की जो वृत्ति है, वही इसे बीच में कुदा देती है। यह कोई साधुता के कारण बीच में नहीं कूदता। यह कोई दया के कारण नहीं कूदता। और एक बड़े मजे की बात समझ में आयी है और वह यह, कि इसको इससे मतलब नहीं होता कि वह जो आदमी पिट रहा है उसको बचाये; इसको मतलब होता है, जो पीट रहा है उसको पीटे। इसकी जो एम्फेसिस है, इसका जो जोर है, वह इस पर नहीं रहता कि जो पिट रहा है उसको बचाए। उसके प्रति तो इसके मन में भी यह है कि यह तो गया-गुजरा आदमी है, यह कोई मतलब का आदमी है! यह तो जो पीट रहा है उसके पीट के दिखा दे, उस चेष्टा में रहता है।

एक आदमी ने कार का धक्का मारा एक स्त्री को शिकागो में। वह बूढ़ी औरत गिर पड़ी। और दूसरा आदमी जो मोटर साइकल पर चढ़ने के लिए तैयार ही था, उसने उस कार का पीछा किया। कोई दस मील की दौड़-धूप के बाद उसने उस आदमी को पकड़ लिया। और पकड़ने के लिए उसको गोली चलानी पड़ी और दूसरे आदमी के कार के टायर छेद डालने पड़े गोली से, तब वह पकड़ पाया। इस बीच वह महिला मर गयी। उससे जब पूछा गया कि जब यह महिला गिरी तो तेरे सामने दो विकल्प थे कि या तो तू इस महिला को उठाकर अस्पताल में पहुंचाता तो शायद यह बच जाती; लेकिन तूने उसकी तो फिकर ही न की, तू जान जोखिम में लगाकर इस आदमी के पीछे पड़ गया और इस आदमी को तूने पकड़ा दिया।
ऐसे बहुत-से अध्ययन किए गए और पाया गया कि जब दो आदमी लड़ रहे हों तो जो आदमी कूद पड़ता है उसको पिटनेवाले से कोई सहानुभूति नहीं होती; उसको पीटनेवाले से ईर्ष्या होती है। वह उसे कुछ करके दिखा देना चाहता है। वह यह कह रहा है कि मेरे रहते कौन किसको पीट रहा है! वह जो आदमी आग जलते मकान में कूद पड़ता है, उसको शायद आग में पड़े हुए बच्चे से कुछ लेना-देना नहीं होता; लेकिन यह उसके अहंकार के लिए बर्दाश्त के बाहर है कि कोई और कूद जाये। और कई बार ऐसा हुआ है कि दो आदमी एक साथ कूद गये और जो बच्चे को बचाकर ले आया और दूसरा खाली हाथ लौटा, तो उसकी निराशा देखो! बच्चे के बचने से कोई प्रयोजन नहीं है--कौन बचा लाया! किसने अपने अहंकार को तृप्त कर लिया! आदमी बड़ा उलझा हुआ है!
तो जैन साधु, जो व्याख्या कर रहे हैं, उस व्याख्या में महावीर से प्रयोजन नहीं है। उस व्याख्या में स्वयं को और स्वयं के पूरे व्यवसाय को बचा लेने की आकांक्षा है।
ये कोष्ठक बहुत खतरनाक हैं। महावीर का वचन सीधा हैः सिज्झंति चरियभट्ठा। चरित्र-विहीन सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। सिद्धि का कोई संबंध चरित्र-भ्रष्ट होने या चरित्रवान होने से नहीं है। सिद्धि का संबंध दर्शन की शुद्धि से है; दृष्टि की सुघड़ता से है; दृष्टि की निर्मलता से है। अब महावीर का यह वचन यह भी कहता है कि चरित्रहीन भी सम्यक दृष्टि हो सकता है, और चरित्रवान भी दृष्टि-विहीन हो सकता है।
शुभ होगा अगर तुम चरित्रवान और दृष्टिवान दोनों होओ। यह तो अच्छा ही होगा। यह तो सोने में सुगंध हो जायेगी कि तुम्हारे पास दृष्टि भी है और आचरण भी।
और अकसर तो दृष्टि होती है तो आचरण होता ही है; आ ही जाता है; लाना नहीं पड़ता।
लेकिन फिर महावीर ऐसा क्यों कहते हैं कि चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि
भी पहुंच सकता है? वे यह कह रहे हैं कि बहुत बार ऐसा होता है कि जो तुम्हारा चरित्र है, वह दूसरों को चरित्र न मालूम पड़े; क्योंकि दूसरों की धारणाएं अनिवार्य रूप से, दर्शन से जो चरित्र पैदा होता है, उससे मेल खाएं न खाएं। इसे समझना। जिसके पास दृष्टि है, वह दीवाल से क्यों निकलने की कोशिश करेगा? वह तो दरवाजे से निकलेगा ही। लेकिन यह हो सकता है कि उसे जो दरवाजा मालूम होता है वह तुम्हें दरवाजा न मालूम होता हो, देखनेवालों को न मालूम होता हो।
महावीर जब नग्न खड़े हो गये, तो अनेकों को लगा, यह तो बात अनैतिक है, यह
तो चरित्रहीनता है। तुम यह मत सोचना कि आज जब रास्ते पर कोई आदमी नग्न खड़ा हो जाता है तो तुम सोचते हो चरित्रहीनता है; उस दिन भी यही लोगों ने सोचा था। लोग वही के वही हैं। लोग वैसे के वैसे हैं। महावीर को मारा-पीटा, गांवों से निकाल दिया, गांवों में ठहरने न दिया, वर्षों उनको जंगलों में बिताने पड़े। नग्नता बड़ी बेचैन करनेवाली बात थी। जब कोई आदमी समाज में नग्न खड़ा हो जाता है तो सभी कपड़े पहननेवाले लोगों को कष्ट होता है। क्योंकि वह आदमी नग्न होकर किसी गहरे अर्थ में तुमको भी नग्न कर देता है। जब एक आदमी नग्न खड़ा हो जाता है तो तुमने जो-जो छिपा रखा है वस्त्रों में वह सब उसने उघाड़ दिया है। तुम भी उसी जैसे हो, थोड़े-बहुत विस्तार के फर्क होंगे। कोई ज्यादा फर्क तो है नहीं। वही सब तुम भी हो, जो वह आदमी है। उसे नंगा देखकर तुम भी नग्न हो जाते हो; तुम्हारे वस्त्रों का उसने सारा अर्थ

गंवा दिया। तुम अपने को छिपाकर चल रहे थे। अगर तुम अपने को खुद ही कहीं नग्न पा लो तो पहचान न सकोगे बिना कपड़ों के।
दो छोटे बच्चे एक नग्न क्लब के पास से गुजरते थे और दीवाल में से पानी निकलने के छेद में से उन्होंने अंदर देखा। छोटे बच्चे, स्कूल से लौटते हुए! जब एक देख चुका तो दूसरा जो खड़ा था और देखने की प्रतीक्षा कर रहा था कि तुम हटो तो मैं देखूं, उसने पूछा, "कौन है अंदर?" उसने कहा, "कहना मुश्किल है। सब बिना वस्त्र के हैं।" उसने पहले ने पूछा, "स्त्रियां हैं कि पुरुष?" उसने कहा, "अब कैसे बताऊं? कोई वस्त्र पहने ही हुए नहीं है।"
हमारा तो स्त्री-पुरुष का भेद भी करीब-करीब वस्त्र में है। छोटे बच्चों को तो स्त्री-पुरुष में यही भेद दिखाई पड़ता है कि अलग-अलग पकड़े पहने हुए हैं। गरीब-अमीर का भेद भी वस्त्रों में है। तुम जरा देखो! एक मजिस्ट्रेट को और चोर को दोनों को नग्न खड़ा कर दो--फिर कौन मजिस्ट्रेट है, कौन चोर है? मुश्किल हो जायेगी। वह तो सारा भेद वस्त्रों का है। इसलिए पुराने दिनों से मजिस्ट्रेट को खास ढंग से विग पहनाया जाता है। वह न केवल वस्त्रों से काम चलता है, वह सिर पर बालों का एक विग भी लगा ले, ताकि आदमीयत बिल्कुल खो जाये, कुछ पता न चले। वकील काले चोगे में खड़े हो जाते हैं। विश्वविद्यालयों में दीक्षांत समारोह होते हैं और बड़े-बूढ़े भी बचकानी हरकतें करते हैं; चोगे पहन लेते हैं, उनमें खड़े हो जाते हैं। लेकिन वही भेद है, नहीं तो उपकुलपति कुलपति कौन; चांसलर, वाइसचांसलर कौन? मुश्किल हो जायेगा पहचान करना। इसलिए हम कपड़ों पर बड़ी जिद्द करते हैं।
अगर कोई आदमी रास्ते पर पुलिसवाले के कपड़े पहनकर निकल पड़े तो फौरन पकड़ लेंगे उसको कि यह तुम क्या कर रहे हो, क्योंकि इससे फर्क कम हो जाता है। तुमने कभी पुलिसवाले को वर्दी के बिना देखा? लज्जत ही खो जाती है, शान ही चली जाती है! वही आदमी जब अपनी वर्दी में खड़ा होता है, तब देखो। तब एक शान आ जाती है!
"कर्नल राज" वहां बैठे हुए हैं, सिर छिपाए हुए हैं! उनको संन्यासी के वेश में देखो और जब वह मेजर, कर्नल के वेश में होते हैं, तब देखो! तब बात ही और बदल जाती है!
आदमी चलता और ढंग से है जब कपड़े कर्नल के होते हैं। उसके पैरों की आवाज, उसके जूतों की चरमराहट, उसके कपड़ों की शिकन, सब बदल जाती है। आदमी का थोड़ा हमें हिसाब है, हमें हिसाब तो कपड़ों के हैं।
कहते हैं गालिब को बहादुरशाह ने निमंत्रित किया था भोजन के लिए! वह गरीब आदमी था, अपने साधारण कपड़ों को पहने चला गया। मित्रों ने कहा भी कि इन कपड़ों में तुम्हें कोई दरबार में प्रवेश न करने देगा। पर उसने कहा कि निमंत्रण मुझे मिला है कि कपड़ों को?... जिद्दी! नहीं माना, गया। जब द्वारपाल को जाकर उसने कहा कि मुझे भीतर जाने दो, तो द्वारपाल ने धक्का देकर उसे हटा दिया। उसने कहा कि "भिखमंगों के लिए राजमहल में निमंत्रण! ... दिमाग खराब हो गया है?" उसको तो भरोसा ही नहीं आया कि यह दुर्व्यवहार... ! उसने खीसे से निमंत्रण-पत्र निकालकर दिखाया तो उसने झपट्टा मारकर वह भी छुड़ा लिया। उसने कहा, "किसी का चुराया होगा! किसका उठा लिया?"
वह बेचारा गालिब घबड़ाया, घर वापिस लौट आया। मित्रों ने कहा, "हमने पहले कहा था, हम जानते थे। हम कपड़े ले आये हैं।" तो उन्होंने अचकन वगैरह पहना दी। ठीक-ठाक कपड़े पहना दिए, जूते नये पहना दिए। और जब यह आदमी वापस गया तो वही द्वारपाल झुककर नमस्कार किया कि आइये! तुम हंसना मत द्वारपाल पर, तुम भी होते तो यही करते। फिर जब भोजन के लिए बैठे तो बहादुरशाह ने... तो गालिब का बड़ा सम्मान था उसके मन में। वह भी कवि था, बहादुरशाह भी कवि था। और गालिब की कविता का तो क्या कहना! वैसे उस्ताद तो बहुत कम हुए हैं! तो उसने तो अपने पास ही बिठाया। और जब गालिब भोजन करने लगा तो उसने पहले उठायी मिठाई, अपने कोट को कहा कि ले खा, टोपी को लगाया कि ले खा! तो बहादुरशाह को कुछ लगा कि कवि पागल होते हैं, यह तो ठीक है; लेकिन इतने होते हैं, यह नहीं सोचा था। उसने कहा, "क्षमा करें! आप यह क्या कर रहे हैं? यह कौन-सी शैली है भोजन करने की?" गालिब ने कहा, "मैं तो पहले भी आया था। मैं तो लौटा दिया गया, मैं फिर आया ही नहीं। ये तो अब वस्त्र आए हैं। यह भोजन

इन्हीं के लिए है। इन्हीं को प्रवेश मिला है, मुझे तो प्रवेश नहीं मिला। मैं तो बाहर से ही लौट गया हूं। वह तो पहरेदार ने धक्का दे दिया। तो जिनकी वजह से मैं भी पीछे-पीछे चला आया हूं, क्योंकि मजबूरी थी, मेरे बिना ये वस्त्र कैसे आते, ये मेरे बिना आते ही नहीं और इनके बिना मैं नहीं आ सकता था, तो जिनके कारण मैं आ गया हूं छाया की तरह, उनको तो पहले भोजन करा दूं।" महावीर जब नग्न खड़े हो गए तो उन्होंने तुम सबको नग्न कर दिया; उन्होंने सबके वस्त्र उघाड़ दिए। बड़ी अनैतिकता मालूम पड़ी लोगों कोः यह आदमी तो खतरनाक है! इसको कौन चरित्रवान कहेगा? यह कैसी मर्यादा? यह तो मर्यादा छोड़ना है, यह तो स्वच्छंदता है।
इसलिए महावीर कहते हैं कि सम्यक दृष्टि तो अनिवार्यरूपेण आचरणवाला होता है, लेकिन उसका आचरण समाज की तथाकथित धारणा से मेल खाए न खाए। इसलिए वे कहते हैं, कि अगर न भी मेल खाए तो कोई फर्क नहीं पड़ता।
सिज्झंति चरियभट्ठा। वह जिसको लोग सोचते हैं चरित्र-भ्रष्ट, वह भी केवल दर्शन के सहारे मुक्त हो जाता है, सिद्धि को उपलब्ध हो जाता है। किंतु सम्यक दर्शन से रहित सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते।
इसलिए जो पाना है, जो खोजना है, वह दृष्टि है, वह देखने का ढंग है; वह साफ-सुथरी आंख है; वह निर्मल भाव-दशा है। आंख पर कोई विचार न रह जाये। आंख पर कोई धारणा न रह जाये। आंख पर कोई पक्षपात न रह जाये। आंख ऐसी निर्मल हो, पारदर्शी हो कि जो है, जैसा है, वैसा दिखाई पड़ने लगे--बस पर्याप्त है। उसके पीछे ज्ञान अपने से आ जाता है, चारिष्य अपने से आ जाता है। लेकिन यह चारिष्य जरूरी नहीं है कि समाज की सम्मत मान्यताओं के अनुकूल हो। यह तुम्हारी दृष्टि के अनुकूल होगा। लेकिन जिसके पास दृष्टि है वह चिंता भी नहीं करता कि उसके चरित्र को आदर मिलता है या नहीं। जिसके पास दृष्टि है वह तुम्हारे मत का कोई विचार नहीं रखता कि तुम क्या सोचते हो। तुम्हारे सोचने पर, तुम्हारी धारणाओं पर, तुम्हारी प्रशंसा और निंदा पर उसके चरित्र के आधार नहीं होते। उसके चरित्र के आधार अपनी अंतर्दृष्टि पर होते हैं। अगर वह अकेला भी है और सारा संसार भी उससे भिन्न सोचता है तो भी वह मस्त है।
"अर्श" सुनता नहीं किसी की बात
हाल में अपने मस्त है शायद।
--वह अपनी मस्ती में होता है। वह उन्मत्त होता है अपने आनंद में।
"अर्श" सुनता नहीं किसी की बात
हाल में अपने मस्त है शायद।
तो महावीर कोई चिंता नहीं करते कि तुम किसे आचरण कहते हो। महावीर को
जो आचरण दिखाई पड़ता है, वह घटता है। और ऐसे बलशाली पुरुष ही, आचरण के नये मापदंड, नये प्रतिमान दे जाते हैं। ऐसे बलशाली पुरुष ही, ऐसे महावीर ही आचरण की नयी-नयी सूझें, नये-नये आकाश खोल जाते हैं। तो नग्नता को भी आचरण दे दिया। नग्नता महावीर के साथ जुड़कर निर्दोष हो गयी। लोग वस्त्रों में भी इतने सुंदर नहीं हैं, जितने महावीर अपनी नग्नता में सुंदर थे। लोग वस्त्रों में छिपकर भी, वस्त्रों में ढंके हुए भी इतने सुगंधपूर्ण नहीं हैं, जितने महावीर अपनी नग्नता में थे। महावीर की नग्नता शुद्ध निर्दोष बालपन हो गयी, छोटे बच्चे की नग्नता हो गयी।
महावीर इस जगत में नग्नता के निर्दोष होने के पहले प्रमाण हैं, तुम्हारे साथ तो वस्त्र भी गंदे हो जाते हैं; महावीर के साथ तो नग्नता भी पवित्र हो गयी। ऐसे वीर पुरुष ही जीवन को नये प्रतिमान, नयी गतियां, नये आयाम, नये क्षितिज, नये आकाश देते हैं। इसलिए धार्मिक व्यक्ति अनिवार्यरूपेण विद्रोही होता है--होगा ही। क्योंकि तुम्हारी पिटी- पिटायी, सड़ी-सड़ायी धारणाएं हैं। तुम रखो अपने पास! वह तुम्हारी धारणाओं के अनुकूल अपने को ढांचे में नहीं ढालता। वह तो अपनी दृष्टि के अनुकूल जीता है। अगर तुम्हारी मर्जी हो तो अपनी धारणाओं को बदल लेना, लेकिन तुम धार्मिक व्यक्ति को नहीं बदल सकते। धार्मिक व्यक्ति के साथ तुम संसर्ग में आए तो या तो तुम बदलोगे या तुम दुश्मन हो जाओगे, लेकिन धार्मिक व्यक्ति नहीं बदलता। कोई उपाय नहीं। इसलिए नहीं कि धार्मिक व्यक्ति

जिद्दी होता है; इसलिए नहीं कि हठाग्रही होता है--बल्कि इसलिए कि उसकी दृष्टि उसे जहां दरवाजा दिखाती है वहीं जाता है। तुम जहां दरवाजा बताते हो वहां उसे दीवाल दिखाई पड़ती है। वह अंधों की बात नहीं मानता तो कुछ आश्चर्य तो नहीं। इसमें जिद्द क्या है? अगर अंधों की एक भीड़ हो और आंखवाला आदमी हो और अंधों की भीड़ कहे, तुम गलत चल रहे हो... ।
मैंने सुना है, एच. जी. वेल्स की एक कहानी है कि मैक्सिको में एक छोटी-
सी घाटी है जहां सभी अंधे हैं। क्योंकि वहां के पानी में और भूमि में कुछ ऐसे तत्व हैं कि बच्चे पैदा होते हैं और पैदा होते से ही महीने दो महीने के भीतर उनकी आंखों की ज्योति चली जाती है। एक आदमी, आंखवाला, उस घाटी में पहुंच गया। वह तो चकित हुआ। वह तो विश्वास न कर सका कि कोई सैकड़ों आदमी अंधे हैं, एक भी आंखवाला नहीं। उसे बड़ा उनसे प्रेम हो गया। वह उनके बीच रहने भी लगा। वह एक युवती के प्रेम में पड़ गया। अब तक तो बात ठीक थी कि वह अजनबी था और उलटी-सीधी बातें करता था--ऐसा अंधे सोचते थे--आंख की, रंग की, रोशनी की, इंद्रधनुषों की, फूलों की, हरियालों की... ! और जब भी अंधे उससे पूछते तो कुछ समझा तो नहीं पाता। अंधे पूछते कि दिखाओ, "हरियाली कैसी है? समझाओ, हरियाली कैसी है?" तो क्या समझाता! "समझाओ इंद्रधनुष, किसकी बात कर रहे हो तुम, कहां है? हम छूकर देखना चाहते हैं!" वृक्षों को छू भी लेते तो हरियाली तो छूने से हाथ में समझ में नहीं आती। तो वे हंसते। वे कहते, कोई पागल आ गया है। स्वभावतः भीड़ उनकी थी। लोकतांत्रिक दृष्टि से वही सही थे। संख्या उनकी थी। यह अकेला था, वे सब थे। अब तक तो कोई बात न थी, लेकिन जब वह एक लड़की के प्रेम में पड़ गया तो जरा उस वादी के लोग हैरान हुए। उन्होंने कहा, अब जरा मुश्किल है। अगर यह आदमी विवाह करना चाहता है तो इसे हमारे जीवन के रीति-नियम स्वीकार करने होंगे। और पहला रीति-नियम यह है कि हम आंखों को नहीं मानते और हम मानते हैं कि आंखें सब झूठ हैं। तो इसको इस झूठ का ख्याल छोड़ना पड़ेगा। इसको यह ख्याल छोड़ना पड़ेगा कि यह आंखवाला है। और जो उसमें बहुत उत्साही थे, उन्होंने कहा कि इसकी आंख का आपरेशन कर दें। यह जहां बताता है, आंखें हैं, उनको निकालकर अलग कर दें; ठीक हम जैसा हो जायेगा।
बड़ी मुश्किल में पड़ गया वह आंखवाला आदमी। युवती से प्रेम भी था तो आधा
मन वहां खिंचा। फिर आंखें खो देना और आंखों के साथ सारा रंग, सूरज के सारे खेल, चांद-तारों की पूरी दुनिया--यह दांव बड़ा था। एक रात वह भाग खड़ा हुआ। दूसरे दिन सुबह वह उसकी आंख की शल्यक्रिया करनेवाले थे। वह वहां से भाग निकला क्योंकि यह बड़ी कीमत हो जायेगी। प्रेम तो फिर भी हो सकता है; आंख फिर कहां से लाऊंगा? और एक बार अंधा हो गया तो सदा के लिए अंधा हो गया। और इस सृष्टि को जिसने एक बार आंख से देख लिया, फिर बिना आंख के बहुत फीकी हो जायेगी; फिर जीने जैसी न रह जायेगी। वस्तुतः सचाई तो यह थी कि उस स्त्री के प्रेम में भी वह आंखों के कारण पड़ा था। वह उसका रूप, उसका रंग, उसके नक्श उसे भा गये थे। तो जिन आंखों के कारण वह स्त्री को खोज पाया था, उन्हीं आंखों को गंवा दे, यह उसकी समझ में न आया। वह भाग खड़ा हुआ।
महावीर जैसे व्यक्ति अंधों की बस्ती में पड़ जाते हैं। लेकिन आंखों की शल्यक्रिया करवाने को वे राजी न होंगे।
इसलिए महावीर कहते हैं, "चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि तो सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, किंतु सम्यक दर्शन से रहित सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाते।"
जरा अपनी तरफ गौर करो, कैसी तुम्हारी हालत है!
वाए, दीवानगिए-शौक कि हरदम मुझको
आप जाना उधर और आप ही हैरां होना।
--हाय रे आकांक्षाओं का चक्कर कि अपने-आप उधर जाता हूं और अपने-आप भ्रमों को खड़ा कर लेता हूं! अपने-आप जाता हूं उधर और अपने-आप भटकता हूं! और हर बार तय कर लेते हो तुम कि अब न करेंगे यह भूल, लेकिन वह तय किया काम नहीं आता। क्योंकि दृष्टि तो पास नहीं। भूल, भूल दिखायी कहां पड़ती है? कहते हो कि क्रोध अब न करेंगे। कहते हो कि क्रोध जलाता है। कहते हो कि क्रोध जहर है, लेकिन ये शब्द उधार हैं। ये सब शास्त्र से सुने हैं। ये

किन्हीं जाननेवालों ने कहे होंगे, लेकिन यह तुमने जाना नहीं है। क्योंकि तुम जान लो तो जैसे आग में कोई जल जाये, तो दुबारा हाथ नहीं डालता--ऐसे ही तुम दुबारा क्रोध न करते। लेकिन तुम दुबारा फिर क्रोध करते हो।
वाए, दीवानगिए-शौक कि हरदम मुझको
आप जाना उधर और आप ही हैरां होना।
अजीब चक्कर है! लेकिन अगर समझो तो एक सूत्र है जिससे सारी बात साफ हो जाती हैः तुम कान से जीये हो अब तक, आंख से नहीं जीये। "कानों सुनी सो झूठ सब।" कान से सत्य मिलता ही नहीं--आंख से मिलता है। इसलिए तो हमने सत्य की खोज को दर्शन कहा है। वह आंख की खोज है। इसलिए तो जिन्होंने खोज लिया है उनको हमने द्रष्टा कहा हैः आंख मिल गयी! अगर कान से मिलता होता सत्य तो हम दर्शन न कहते, श्रवण कहते। अगर कान से मिलता होता सत्य तो जो पा लेते उनको हम श्रोता कहते, द्रष्टा न कहते। सत्य का कुछ संबंध साक्षात्कार से है। कान को तो धोखे दिये जा सकते हैं, आंख को धोखे नहीं दिये जा सकते। और जिस आंख की हम बात कर रहे हैं वह इन बाहर की आंखों की ही बात नहीं, भीतर की आंख की बात है। वहां एक जागरूकता का पुंज चाहिए--ऐसा सघनीभूत कि उस सघनीभूत जागरूकता से तुम्हें दिखायी पड़ने लगे। वह तुम्हारे भीतर की रोशनी बन जाये!
नत्थि जागरतो भयम्! --बुद्ध ने धम्मपद में कहा है, जागे हुए को भय नहीं। सब भय सोये हुए को है।
ऋग्वेद में एक बड़ा बहुमूल्य सूत्र हैः भूत्यै जागरणम्। अभूत्यै स्वप्नम्। जागने से उन्नति; सोने से, स्वप्न से अवनति!
जिसको महावीर सम्यक दृष्टि कहते हैं उसका अर्थ हैः जागा हुआ, देखता हुआ, आंखवाला। तुम जीवन को देखने में लगो। शास्त्रों के पढ़ने से यह न होगा; तुम जीवन के शास्त्र को देखने में लगो। जीवन में जो भी है उसके संबंध में धारणाएं मत बनाओ; पहचान बनाओ। क्रोध है तो क्रोध को देखो। घृणा है तो घृणा को देखो। प्रेम है तो प्रेम को देखो। मोह है तो मोह को देखो। लोभ है तो लोभ को देखो। जल्दबाजी में मत पड़ो।
चरित्र की चेष्टा करनेवाला बड़ा जल्दबाज है। वह लोभ को देखता ही नहीं
और अलोभ को साधने लगता है। यही फर्क है। वह क्रोध को देखता ही नहीं, अक्रोध की आकांक्षा में संलग्न हो जाता है। कामवासना में आंख नहीं डालता, और ब्रह्मचर्य के नियम ले लेता है। यही महावीर कह रहे हैं।
ऐसा चरित्र पहुंचाएगा न। उधार से कभी कोई गया नहीं। धर्म चाहिए नगद!
एक मुअम्मा है समझने का न समझाने का
जिंदगी काहे को है एक ख्वाब है दीवाने का।
जिसे अभी हम जिंदगी कह रहे हैं, सोयी-सोयी, एक स्वप्न से ज्यादा नहीं है। जिस दिन तुम जागोगे उस दिन तुम पाओगे, अब तक तुमने जिसे जीवन जाना था वह केवल एक स्वप्न था; और स्वप्न भी कोई बहुत मधुर नहीं। दुख-स्वप्न, नाइट-मेयर। कोई धन के सपने देख रहा है, कोई पद के सपने देख रहा है।
चरित्र का अनुयायी कहता है, छोड़ो धन की दौड़, छोड़ो पद की दौड़! और दृष्टि
का अनुयायी कहता है, देखो पद की दौड़ को, देखो धन की दौड़ को! इस फर्क को ख्याल में ले लेना। दृष्टिवाला कहता है, भागो मत! भागकर कहां जाओगे? अगर भीतर नींद है तो साथ चली जायेगी। अगर भीतर स्वप्न है तो साथ चला जायेगा। भागो मत! जागो! देखो जहां हो, जो है। जीवन का जो भी तथ्य है, मधुर कि कड़वा, सुस्वादु कि विषाक्त--चखो, पहचान बनाओ! उसी पहचान से धीरे-धीरे ज्ञान निसृत होता है। उसी से धीरे-धीरे बूंद-बूंद ज्ञान की टपकती है। तुम्हारा मधु-पात्र एक दिन भर जाएगा। और तब तुम्हारे जीवन में आचरण होगा। लेकिन वह आचरण जरूरी नहीं कि जैनों की मान्यता के अनुसार हो कि हिंदुओं की मान्यता के अनुसार हो कि बौद्धों की मान्यता के अनुसार हो। वह आचरण तुम्हारे स्वभाव के अनुसार होगा। यह भी ख्याल में ले लेना।
प्रत्येक जाग्रत पुरुष का आचरण अद्वितीय होता है। तो तुम राम को कृष्ण से मत तौलना। अगर कृष्ण से राम को तौलोगे तो दो में एक ही ठीक रह जायेगा, दोनों ठीक नहीं हो सकते। और न तुम बुद्ध को महावीर से तौलना। और न तुम मुहम्मद को जीसस से तौलना। और न तुम जरथुस्त्र को लाओत्से से तौलना।

तुम तौलना ही मत। क्योंकि प्रत्येक जाग्रत व्यक्ति का आचरण उसके अपने जागरण का परिणाम होता है। वह निजी है, अद्वितीय है, अनूठा है।
वैसा न कभी हुआ है, वैसा न कभी होगा।
सोए हुए लोगों का आचरण पंक्तिबद्ध होता है, दूसरों जैसा होता है; अनुकरण पर निर्भर होता है। दो महावीर नहीं हुए, न दो बुद्ध हुए, न दो कृष्ण हुए, न हो सकते हैं। इस अद्वितीयता को खूब गहरे में बिठा लेना। तब तुम्हें भय न रहेगा। तब तुम्हारी दृष्टि जागेगी तो तुम्हारा आचरण तुम जैसा होगा। और परमात्मा अगर कहीं होगा और तुमसे पूछेगा तो वह यह न पूछेगा कि तुम महावीर जैसे क्यों न हुए; वह तुमसे पूछेगा, तुम तुम जैसे क्यों न हुए? तुमने अपने स्वभाव को खिलाया क्यों न? तुम जो होने को पैदा हुए थे, विकसित क्यों न हुए? तुमने अपने बीज को फूलों तक क्यों न पहुंचाया? इसकी फिक्र छोड़ देना कि तुम किसी से तालमेल खा रहे हो कि नहीं; क्योंकि सत्य अनूठा है। किसी गहरे अर्थ में तालमेल खाता भी है और किसी गहरे अर्थ में बिल्कुल भिन्न होता है। अगर बहुत गहराई में कृष्ण के उतरोगे, अंतस्तल में, तो ठीक महावीर को पा लोगे। लेकिन बाहर-बाहर से देखोगे तो महावीर कहां, कृष्ण कहां, बड़े अलग-अलग हैं! तुम भी अलग ही होनेवाले हो।
धर्म व्यक्ति को व्यक्ति बनाता है। और संप्रदाय व्यक्ति को भीड़ बना देते हैं। भीड़ से बचना!
धर्म निजी और वैयक्तिक खोज है।
दूसरा सूत्रः "एक ओर सम्यक्त्व का लाभ और दूसरी ओर त्रैलोक्य का लाभ
हो तो त्रैलोक्य के लाभ से सम्यक दर्शन का लाभ श्रेष्ठ है।"
एक तरफ मिलती हो दृष्टि और दूसरी तरफ मिलते हों तीनों लोक के खजाने और सारी संपदा और साम्राज्य, तो भी महावीर कहते हैं, तीनों लोक के साम्राज्य और संपदा से दृष्टि का लाभ श्रेष्ठ है। क्योंकि अंधे के हाथ में साम्राज्य हो तो भी वह भिखारी रहेगा। और आंखवाले के पास भिक्षा का पात्र भी हो तो साम्राज्य बन जाता है। आंख का सारा खेल है। इसीलिए तो यह अनूठी घटना घटी कि महावीर भिखारी की तरह राह पर खड़े हो गये। लेकिन इनसे बड़े सम्राट कभी किसी ने देखे? कि बुद्ध ने राजमहल छोड़ दिया, राह के भिखारी हो गये, कुछ भी उनके पास न रहा; लेकिन फिर भी जितना इस आदमी के पास था किसके पास कब रहा! जीवन को बड़ी से बड़ी संपदा मिलती है दृष्टि से; और कोई संपदा उसके मुकाबले बड़ी नहीं।
सम्मत्तस्य य लंभो, तेलोक्कस्स य हवेज्ज जो लंभो।
सम्मदंसणलंभो, वरं खु तेलोक्कलंभादो।।
मत चुनना तीन लोक की संपदा को, लोभ को, लाभ को! दृष्टि मिलती हो तो सब उसके लिए गंवा देने जैसा है। सब गंवाकर दृष्टि मिलती हो तो बचा लेना। और सब बचाकर दृष्टि खोती हो तो यह महंगा सौदा मत कर लेना। अंधे, आंखहीन तो सिर्फ भटकते हैं; पहुंचते नहीं। फिर गरीब हों कि अमीर, सफल हों कि असफल, सुखी हों कि दुखी, कुछ अंतर नहीं पड़ता; मौत सबको मटियामेट कर देती है, और सब को मिला जाती है।
पथ मिलकर सभी एक होंगे
तम घिरे यम के नगर में।
वह जो अंधा आदमी है, वह कुछ भी करे, मौत सबको एक ही जगह पहुंचा देगी।
पथ मिलकर सभी एक होंगे
तम घिरे यम के नगर में।
सिर्फ दृष्टिवाला बच जाता है। मौत सिर्फ अंधों को पकड़ पाती है। जिसके पास दृष्टि है, उसे मौत नहीं देख पाती। और जिनके पास दृष्टि नहीं है, उन्हें सिर्फ मौत ही दिखायी पड़ती है और मौत को वे दिखायी पड़ते हैं। हमारी दृष्टि पर सब निर्भर करता है।
तुमने कभी इस पर ख्याल किया, विचार किया, ध्यान किया कि बहुत-बहुत अर्थों में बहुत-सी चीजें अदृश्य होती हैं? जैसे समझो, एक चींटी यहां से गुजर रही हो, बहुत-सी चींटियां गुजर रही होंगी। मैं यहां बोल रहा हूं, लेकिन चींटी के लिए जो मैं बोल रहा हूं, वह बिल्कुल सुनायी न पड़ेगा। वह

चींटी की सीमा के बाहर है। यहां वृक्ष खड़े हैंः जो मैं कह रहा हूं, वह जैसे कहा ही नहीं गया।... वे मौजूद हैं, लेकिन उनकी मौजूदगी का आयाम अलग है। मैं एक कहानी पढ़ता था। एक हवाई जहाज जल गया बीच आकाश में और एक युवती
मर गई। वह युवती लंदन जा रही थी। तो मरते वक्त उसे बस एक ही ख्याल था कि अरे, लंदन न पहुंच पायी! वह पति की प्रतीक्षा कर रही थी। पति आतुर होकर प्रतीक्षा कर रहा होगा। बस एक ही धुन थी, उस धुन के कारण उसकी प्रेतात्मा सीधी लंदन पहुंच गयी। लेकिन वह चकित हुईः लंदन बिल्कुल खाली था! लोग कहां खो गये! क्योंकि जब अपना शरीर खो जाये तो दूसरों के शरीर दिखायी नहीं पड़ते। उसे अभी तो ख्याल में नहीं आया था कि अपना शरीर खो गया। क्योंकि यह शरीर खो भी जाता है तो सूक्ष्म शरीर तो खोता नहीं; वह बिल्कुल इस जैसा ही है--इससे ज्यादा सुंदर, इससे ज्यादा कमनीय, इससे ज्यादा सूक्ष्म; पर ठीक इसकी प्रतिलिपि! सचाई तो यह होगी कि यह शरीर उसकी प्रतिलिपि है। तो उसे अभी यह तो पता ही न चला था कि मेरा शरीर खो गया; लेकिन जब उसने लंदन में जाकर देखा; तो सारे घर खाली पड़े हैं। मकानों से रोशनी निकल रही है, खिड़कियों से रोशनी निकल रही है, लेकिन घर सन्नाटा है, कहीं कोई नहीं। वह थेम्स नदी के पुल पर खड़ी हो गयी जाकर। उसे भरोसा ही न हुआ कि जहां हजारों लोग निकलते रहते हैं, वहां कोई भी नहीं निकल रहा है। हजारों लोग अब भी निकल रहे हैं। लेकिन देह अपनी खो गयी तो दूसरी देह से संबंध नहीं जुड़ता। लेकिन तभी अचानक उसे दिखायी पड़ा, उसका पति भी पुल से निकल रहा है। जब पति निकला तो उसे दिखायी पड़ा। क्योंकि पति से एक लगाव था, एक घनीभूत वासना थी, प्रेम था। उस प्रेम के कारण एक सूत्र जुड़ा था। उस प्रेम के कारण वह पति के शरीर से ही नहीं जुड़ी थी, पति के सूक्ष्म शरीर से भी थोड़े संबंध हुए थे। उस सूक्ष्म शरीर से संबंध के कारण उसे पति थोड़ा-सा दिखायी पड़ा, पहले धुंधला- धुंधला, फिर रेखा उभरी, फिर साफ हुआ। लेकिन जब उसे पति दिखायी पड़ा तो चकित हुई कि जैसे ही उसे पति दिखायी पड़ा, और लोग भी दिखायी पड़ने लगे। क्योंकि जब एक शरीर दिख गया तो दूसरे शरीर भी दिखाई पड़ने लगे। तत्क्षण पूरा लंदन भरा था--एक क्षण में--लंदन खाली न था! हजारों लोग आ-जा रहे थे, मकान भरे थे!
यह कहानी मुझे बड़ी प्रीतिकर लगी, जिसने भी लिखी हो, बड़ी सूझ से लिखी है। कहानी तो कल्पित है, लेकिन सूझ गहरी है।
हमें वही दिखायी पड़ता है जहां हम हैं। अभी हमें शरीर दिखायी पड़ते हैं। इसलिए मौत से हमारा संबंध होने ही वाला है। मौत हमें दिखायी पड़ेगी क्योंकि शरीर की मौत होती है। इसलिए हम मौत से भयभीत हैं। जैसे ही दृष्टि जगती है और हमें दिखायी पड़ता है, हम शरीर नहीं हैं--मौत के हम बाहर हो गये! फिर मौत भी हमको नहीं देख सकती। वह भी हमको तभी तक देख सकती है जब तक हम शरीर हैं और शरीर में हैं, और माने हुए हैं कि हम शरीर ही हैं। जब तक हम शरीर के ठोसपन से जुड़े हैं, तभी तक हम मौत की सीमा में हैं। जैसे ही हम शरीर के ठोसपन से मुक्त हुए, हम मौत के बाहर हुए।
इस जिंदगी में इन तीनों लोकों में जो भी मिल जाता है, वह बाहर-बाहर है।
वह हमारा कभी नहीं हो पाता। जो बाहर है वह बाहर ही रह जाता है; उसे तुम भीतर ले जाओगे बैसे? तुम संपत्ति का ढेर लगा लोगे, ढेर बाहर लगेगा, भीतर कैसे लगाओगे? भीतर ज्यादा से ज्यादा हिसाब रख सकते हो, संपत्ति के आंकड़े रख सकते हो; वह भी बहुत भीतर नहीं, वह भी मन में होंगे; वह भी चैतन्य में न पहुंच पाएंगे। चैतन्य तक तो आंकड़े भी नहीं पहुंचेंगे, संपत्ति तो बाहर रहेगी, गणित मन तक पहुंच जायेगा। संपत्ति मन तक भी नहीं पहुंचेगी, गणित भी न पहुंच पायेगा चैतन्य तक। तुम्हारी चेतना तो पार ही रहेगी। तो जब तक भीतर की कोई संपदा न मिल जाये तब तक कोई संपदा काम की नहीं है।
"अधिक क्या कहें? अतीतकाल में जो श्रष्ेठजन सिद्ध हुए और जो आगे सिद्ध होंगे, वह इस एक सम्यक्त्व का ही परिणाम है। इसी एक सम्यकत्व का महात्म्य है।"
किं बहुणा भणिएणं--क्या कहें ज्यादा अब? जे सिद्धा णरवरा गए काले--वह
जो बीते समय में हुए हैं सिद्ध... । जैनों से कुछ लेना-देना नहीं है इसका। ये वचन शुद्ध उन सबके लिए हैं जो सिद्ध हुए हैं। इसमें वेदों के ऋषि और उपनिषदों के कवि सभी सम्मिलित हैं।

किं बहुणा भणिएणं, जे सिद्धा णरवरा गए काले। जो-जो बीते समय में, बीते काल में... बेशर्त महावीर कह रहे हैं, कोई शर्त नहीं लगायी है। नहीं तो कहते, कि जैन सिद्ध जो हुए हैं अतीत में। जो अभी जागे हैं... ! जैन से क्या लेना-देना जागने का? जो जाग गये, वे सभी जिन हैं।
सिज्झिहिंति जे वि भविया, तं जाणइ सम्ममाहप्पं।
--वे इसी सम्यकत्व के महात्म्य से उपलब्ध हए हैं। वे इसी दृष्टि के, इसी जागरण से, इसी ध्यान, इसी समाधि से उपलब्ध हुए हैं।
"जैसे कमलिनी का पत्र स्वभाव से ही जल से लिप्त नहीं होता वैसे ही सत्पुरुष सम्यकत्व के प्रभाव से कषाय और विषयों से लिप्त नहीं होते।"
तो महावीर क्यों कर कहेंगे, भाग जाओ संसार से! हां, किसी को स्वभाव के अनुकूल बैठता हो संसार से अलग हट जाना तो वह भागना नहीं है। जब किसी के घर में आग लगती है और कोई आदमी भागकर बाहर आता है तो तुम उसको भगोड़ा तो नहीं कहते! तुम यह तो नहीं कहते, एस्केपिस्ट हो, पलायनवादी हो! अगर वह घर में ही बैठा रहे और जल जाये तो तुम उसको मूढ़ जरूर कहोगे, लेकिन बाहर निकल आए तो भगोड़ा तो न कहोगे! किसी व्यक्ति को अगर संसार का जीवन तालमेल न खाता हो, उसके भीतर के संगीत में न बैठता हो, उसकी लयबद्धता खंडित होती हो, तो वह हट जाये। लेकिन वह भगोड़ा नहीं है। भगोड़ा तो वह है जो यह सोचता है कि संसार से हट जाने के कारण मुझे मोक्ष मिलेगा। जो संसार से हट जाने को मोक्ष पाने का साधन बनाता है, वह भगोड़ा है। मोक्ष का कोई संबंध संसार से भाग जाने से नहीं है।
महावीर कहते हैं, "जैसे कमलिनी का पत्र स्वभाव से जल से लिप्त नहीं होता वैसे ही सत्पुरुष, सम्यकत्व के प्रभाव से कषाय और विषयों से लिप्त नहीं होते।" वह अगर कषायों और विषयों के बीच भी खड़े रहें, जैसे कमलिनी का पत्र सरोवर में पड़ा रहता है, तो भी लिप्त नहीं होते। एक दफा दिखायी पड़ना शुरू हो जाये, बस वह दृष्टि ही अलिप्तता बन जाती है।
दुनिया की महफिलों से उकता गया हूं या रब
क्या लुत्फ अंजुमन का जब दिल ही बुझ गया हो।
एक दफा वासना बुझ जाये, एक बार वासना की जगह दृष्टि का दीया जल जाये... दुनिया से कुछ लगाव न उक्बा की आरजू है
तंग आ गये हैं इस दिले बे-मुद्दआ से हम।
और फिर न तो इस दुनिया का कोई लगाव रह जाता और न उस दुनिया की कोई आकांक्षा रह जाती है। जिनके मन में उस दुनिया की कोई आकांक्षा रह गयी है-- वह दुनिया इसी दुनिया का विस्तार है--वह दुनिया से अभी उकताए नहीं। जो सोच रहे हैं, स्वर्ग में मजे करेंगे; जो सोच रहे हैं स्वर्ग में नचाएंगे अप्सराओं को; जो सोच रहे हैं, स्वर्ग में शराब के झरने बह रहे हैं, डुबकी लेंगे--वे इस दुनिया से उकताए नहीं हैं। समझ उन्हें आयी नहीं; जागरण हुआ नहीं।
"सम्यक दृष्टि मनुष्य अपनी इंद्रियों के द्वारा चेतन तथा अचेतन तत्वों का जो भी उपयोग करता है, जो भी उपभोग करता है, वह सब कर्मों की निर्जरा में सहायक होता है।"
महावीर कहते हैं, सभी उपभोग बांधता नहीं; क्योंकि ध्यान भी करोगे तो भोजन करना होगा। तो ध्यान के लिए भी शरीर जरूरी होगा। वेश्या के घर जाना है तो भी शरीर से ही चलकर जाओगे और मंदिर जाना है तो भी शरीर से ही चलकर जाओगे। किसी की हत्या करनी हो तो भी ऊर्जा चाहिए, भोजन से मिलेगी; और किसी की सेवा करनी हो तो भी ऊर्जा चाहिए, भोजन से ही मिलेगी। भोजन छोड़ देने का सवाल नहीं है; भोजन का सम्यक उपयोग कर लेने का सवाल है।
तो महावीर कहते हैं, "सम्यक दृष्टि मनुष्य अपनी इंद्रियों के द्वारा चेतन तथा अचेतन द्रव्यों का जो भी उपभोग करता है, वह सब कर्मों की निर्जरा में सहायक होता है।" वह इसीलिए जीता है ताकि जीवन के पार जा सके। वह इसीलिए भोजन करता है ताकि भगवत्ता को पा सके। वह इसीलिए जल पीता है, ताकि शरीर तृप्त हो, शांत हो, तो अंतर्गमन हो सके। उसकी दृष्टि हर घड़ी उस भीतर के सत्य पर लगी रहती है। वह उसी के लिए सारे जीवन को उपकरण बना लेता है।

श्रीमद्भागवत में एक वचन हैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति संतः! संत पुरुष तीर्थों को पवित्र करते हैं। तीर्थों के कारण कोई पवित्र नहीं होता; संत पुरुषों के कारण तीर्थ बन जाते हैं। जहां संत पुरुष बैठता है वहीं तीर्थ बन जाता है। जहां तीर्थंकर चलते हैं वहीं तीर्थ बन जाते हैं। गंगा की खोज मत करो। तुम गंगा कभी न पहुंच पाओगे। तुम दृष्टि को, सम्यकत्व को उपलब्ध हो जाओ--गंगा तुम्हारी खोज करती चली जाएगी। नदी, नाला कोई भी तुम्हारे पास से गुजर जायेगा, गंगा जैसा पवित्र हो जायेगा।
वास्तविक मूल्य, आत्यंतिक मूल्य तुम्हारे चैतन्य का है।
"कोई तो विषयों का सेवन करते हुए भी सेवन नहीं करता।" यह वचन सुनना! यह गीता में कहा गया होता तो अड़चन न होती; यह महावीर ने कहा है।
इसको बहुत गौर से, होश से सुनना।
"कोई तो विषयों का सेवन करते हुए भी सेवन नहीं करता और कोई न सेवन करते हुए भी विषयों का सेवन करता है। जैसे कोई पुरुष विवाह आदि कार्यों में लगा रहने पर भी उस कार्य का स्वामी न होने से कर्ता नहीं होता।"
यह गीता में तो बिल्कुल ठीक था। तो कृष्ण की दृष्टि में साफ था। लेकिन जैनों ने महावीर की दृष्टि को ऐसा लीपा-पोता है कि महावीर के ही वचन पराये मालूम पड़ते हैं।
महावीर यह कह रहे हैं कि कोई तो ऐसे हैं, जागे होने के कारण, सेवन करते हुए भी सेवन नहीं करते; भोजन करते हुए भी उपवासे हैं; ठेठ संसार में खड़े हुए भी संसार के बाहर हैं। और कोई ऐसे भी हैं कि न सेवन करते हुए भी सेवन करते हैं। उपवास किए हैं, लेकिन भोजन की कल्पना, भोजन की वासना...! ब्रह्मचर्य का व्रत लिए हैं, लेकिन कामवासना की लहरें... ! हिमालय पर बैठ गये हैं जाकर, लेकिन संसार की पुकार उन्हें अभी भी सुनायी पड़ती है।
तो असली सवाल बाहर से भाग जाने का नहीं है--भीतर से जाग जाने का है।
फिर तुम भोग कर भी त्यागी हो सकते हो। और अगर वैसा न हुआ तो तुम त्याग
कर लोगे और भोगी ही रहोगे।
गो मैं रहा रहीने-सितमहा-ए-रोजगार
लेकिन तेरे ख्याल से गाफिल नहीं रहा।
रहा दुनिया की भीड़ में, रहा बाजार में, रहा उलझा संसार में... ।
गो मैं रहा रहीने-सितमहा-ए-रोजगार
--काम-धंधों में उलझा हुआ; "लेकिन तेरे ख्याल से गाफिल नहीं रहा!" बस इतना ही कह सको तो काफी है। स्मरण बना रहा, सुरति सधी रही, ध्यान का धागा हाथ में रहा--फिर रहो तुम बाजार में, तुम कमलिनी के पत्र की भांति सरोवर में पानी के बीच रहते हुए भी पानी से अस्पर्शित रहोगे।
महावीर कहते हैं, जैसे कोई आदमी विवाह इत्यादि का आयोजन करता है... मुनीम, मालिक नहीं, तो बड़ी दौड़-धूप करता है, इंतजाम करता हैः बैंडबाजे लाओ, भोजन-पत्तल सजाओ; लेकिन चूंकि वह मालिक नहीं है, इसलिए परेशान नहीं है। रात घर जाकर सो जाता है मजे से। कोई याद भी नहीं आती। काम था, कर दिया। कर्ता तो वह नहीं है। लेकिन मालिक चाहे दौड़-धूप भी न कर रहा हो, सिंहासन पर बैठा हो, लेकिन रात सो न पायेगा। उसकी लड़की का विवाह हो रहा है। बड़ी चिंताएं पकड़ेंगी। चिंताएं विवाह के कारण नहीं पकड़तीं, चिंताएं पकड़ती हैं--मेरी लड़की! जहां "मेरा" है, ममत्व है, वहीं संसार है। जहां "मेरा" नहीं, ममत्व नहीं, वहीं संसार खो गया। तो फिर तुम कर्ता-भाव से मुक्त होकर जो भी करो उसका कोई बंध नहीं है।
"इसी तरह काम-भोग न समभाव उपस्थित करते हैं और न विकृति... ।"
ये वचन तुम सोचना--जैसे किसी महातांत्रिक ने कहे हों!
"इसी तरह काम-भोग न समभाव उपस्थित करते हैं और न विकृति या विषमता। जो उनके प्रति द्वेष और ममत्व रखता है, वह उनमें विकृति को प्राप्त होता है।" न रखना द्वेष, न रखना ममत्व। जो हो, चुपचाप अपने बोध को सम्हाले, होने देना। जो हो स्थिति, स्मरण न खोये, आत्मस्मरण न खोये। बस, इतना काफी है। तो महावीर बड़ी हिम्मत का वचन कह रहे हैं। वे कह रहे हैं काम-भोग भी न
तो बांधते हैं, न उन्हें छोड़ने से कोई छूटता है। न तो काम-भोग से कोई बंधन निर्मित होता है और न काम-भोग से कोई मुक्ति निर्मित होती है। हां, काम-भोग

के प्रति द्वेष और ममत्व का भाव, उससे ही रज्जु निर्मित होती है जो बांधती है। तो तुम कोई ममत्व का भाव मत रखना और द्वेष मत रखना।
अब जिनको तुम संसारी कहते हो, जिनको तुम श्रावक कहते हो, इनका ममत्व
है काम-भोग में। तुम अपने संन्यासी को पूछो, उसका क्या है? उसका द्वेष है। अगर तुम्हें कोई नग्न तस्वीरों वाली किताब मिल जाये तो तुम छिपाकर उसे देख लोगे, या गीता का कवर चढ़ा दोगे ऊपर से और देख लोगे। बच न सकोगे। लेकिन उसी किताब को अगर तुम अपने मुनि महाराज के पास जाकर खोल दो, वह छलांग लगाकर खड़े हो जायेंगे, जैसे तुम सांप-बिच्छू की पिटारी ले आये! वह तुम पर चीखने-चिल्लाने लगेंगे कि यह तुमने क्या किया! भ्रष्ट कर दिया!
तुम्हारा ममत्व है, उनका द्वेष है। महावीर कहते हैं, दोनों ही खतरनाक हैं। कोई भी भाव बांध लेगा, फिर चाहे पक्ष का हो चाहे विपक्ष का हो। तुम संसार में निर्लिप्त, ऐसे जीना कि जैसे तुम्हारा कोई भाव नहीं है। जो हो रहा है, ठीक है। न तुम पकड़ने को उत्सुक हो, न तुम छोड़ने को उत्सुक हो। विनोबा के पास कोई पैसे ले जाये तो वे आंख बंद कर लेते हैं। पैसे से ऐसा क्या डर? पैसे में ऐसा क्या बल? और अगर पैसे में इतना बल है कि संतों को आंख बंद करनी पड़ती है तो फिर बेचारे ये संसारी अगर पैसे के बल से दबे हैं तो क्या आश्चर्य! किसी की आंख एकदम फैल के दोगुनी हो जाती है और किसी की बंद हो जाती है!
मैं एक सज्जन को जानता था। उनको अगर दूसरे का भी नोट हाथ में लग जाये
तो वह उसको ऐसा पुचकार के छूते थे, वैसा कलाकार मैंने नहीं देखा फिर दुबारा। बहुत लोग देखे।... मगर दूसरे के नोट को भी पुचकार के छूते थे। सम्मान तो होना ही चाहिए था। उसको उलट-पलटकर देखते, उसको ऐसे छूते जैसे प्रेयसी हो!
एक तरफ ये हैं कि पैसे को देखते से उनकी जीभ से एकदम लार टपकने लगेगी;
और दूसरी तरफ लोग हैं कि आंख बंद कर लेंगे। लेकिन फर्क क्या हुआ? पैसे ने दोनों पर प्रभाव रखा। पैसे ने दोनों से कुछ करवा लिया।
महावीर कह रहे हैं कि पैसे में ऐसा कुछ भी नहीं है--न तो लार टपकाने योग्य कुछ है और न आंख बंद करने योग्य कुछ है। जिस दिन न ममत्व, न द्वेष, दोनों नहीं रह जाते, न राग न विराग--उसी दिन वीतरागता उपलब्ध होती है। "वीतराग" महावीर का बड़ा बहुमूल्य शब्द है। न राग न विराग, न पकड़ना न छोड़ना, कोई चुनाव नहीं, न इस तरफ न उस तरफ, न घृणा न मोह! अपने में थिर हो जाना, अपने में रम जाना, कि बाहर से कोई भी घटना घटे, तुम्हारे भीतर पक्ष-विपक्ष में कोई भी विचार न उठे, भाव न उठे--ऐसी वीतराग दशा ही मोक्ष का द्वार है। महावीर इस दृष्टि को सर्वाधिक मूल्यवान कहते हैं।
तूफान से उलझ गए लेकर खुदा का नाम
आखिर निजात पा ही गये नाखुदा से हम
--मांझी से छुटकारा पा लिया खुदा का नाम लेकर! लेकिन महावीर ने खुदा से
भी छुटकारा पा लिया है। नाखुदा से तो छुटकारा पा ही लिया। किसी के पीछे तो वह चलते ही नहीं, कोई मांझी नहीं है; लेकिन खुदा से, परमात्मा से भी छुटकारा पा लिया। उन्होंने तो सीधा धर्म का विज्ञान निरूपित किया कि दृष्टि की शुद्धि ही तुम्हारी मार्गद्रष्टा है; वही सदगुरु है।
दृष्टि थिर हो जाये, अनुद्वेग सम्हल जाये, कोई उद्वेग न उठे। घृणा का, प्रशंसा का, सफलता-विफलता का, भोग और त्याग का कोई उद्वेग न उठे, तो तुम निर्वाण के करीब आने लगे।
"अनुद्वेगः श्रीयोमूलं!" हिंदू शास्त्र कहते हैं, अनुद्वेग ही श्रेय
का मूल है, निःश्रेयस का मूल है। यह अनुद्वेग दशा ही तुम्हें जल में कमलवत बना देगी। और धन्यभागी हैं वे जो सबके बीच रहकर और सबसे अछूते रह जाते हैं! आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
तीसवां प्रवचन

प्रेम है आत्यंतिक मुक्ति

पहला प्रश्नः
नरहरि कैसे भगति करूं मैं तोरी,
चंचल है मति मोरी!

भक्ति के मार्ग पर मन की चंचलता बाधा नहीं है। भक्ति के मार्ग पर मन
की चंचलता साधन बन जाती है। वही भक्ति और ज्ञान का भेद है।
ज्ञान के मार्ग पर चंचलता बड़ी बाधा है। क्योंकि ध्यान उपजाना होगा।
और ध्यान तो तभी उपजेगा जब मन की सारी कल्पनाएं, सारे विचार, सारी तरंगें सो जायें। ध्यान तो मन की अचंचल दशा का नाम है। तो ज्ञान के मार्ग पर चंचल मन शत्रु मालूम होता है। उससे संघर्ष करना होगा। लेकिन भक्ति के मार्ग पर चंचल मन से कोई विरोध नहीं है। जो लहरें मन की संसार के लिए उठती हैं उन्हीं लहरों को परमात्मा के लिए उठाना है। लहरें बनी रहें--बस परमात्मा के लिए उठने लगें! तरंगें उठती रहें, विचार हों, भावनाएं हों, कोई अड़चन नहीं है--लेकिन उन सभी भावनाओं और तरंगों और विचारों में परमात्मा का रूप समा जाये। चंचल मन भी उसके चरणों में समर्पित हो जाये
इसलिए भक्ति बड़ी सहज है, और ज्ञान असहज है। भक्ति तुम्हारे स्वभाव का उपयोग करती है। ज्ञान, तुम जैसे हो, उसे इनकार करता है; और तुम जैसे होने चाहिए, उसके आदर्श को निरूपित करता है। भक्ति कहती है, तुम जैसे हो, ऐसे ही भगवान को स्वीकार हो। तुम भर भगवान को स्वीकार कर लो, भगवान ने तुम्हें स्वीकार किया ही हुआ है। उसके स्वीकार के बिना तुम हो ही न सकते थे। बुरे भले, जैसे हो, तुम उसके चरणों में अपने को डाल दो। तुम उससे ही कह दो कि हमारे किए कुछ न होगा। कर-करके ही तो हम भटके। किया तो बहुत, कुछ भी न हुआ। अब तेरी मर्जी!
तो भक्ति और ज्ञान के फासले को समझ लेना। यह प्रश्न साधक का तो सम्यक
है, लेकिन शब्दावली भक्त की है।
"नरहरि कैसे भगति करूं मैं तोरी
चंचल है मति मोरी!"
यह शब्दावली तो भक्त की है। और यह प्रश्न साधक का है, भक्त का नहीं। इसे तुम स्पष्ट अलग-अलग कर लोगे तो सुलझाव हो जायेगा। अगर तुम साधक होने के मार्ग पर हो तो भक्ति का कोई सवाल नहीं है। "नरहरि" का कोई सवाल नहीं है। तब तो तुम हो और तुम्हें अपने प्राणों को अपनी ही ऊर्जा से शुद्ध करना है। तब तुम अकेले हो; कोई संग-साथ नहीं है।
लेकिन, अगर तुम भक्ति के मार्ग पर हो तो "नरहरि" तुम्हें घेरे खड़ा है; तुम्हारी श्वास-श्वास में छिपा है। तुम जब चंचल होते हो तब वही तुम्हारे भीतर चंचल हो रहा है। ये लहरें भी उसी की हैं, यह सागर भी उसी का है।
यह सागर और लहर में फासला क्यों करते हो? लहर हो सकती है सागर के बिना? सागर हो सकता है लहर के बिना? सागर होगा लहर के बिना तो मुर्दा होगा। उसमें प्राण ही न होंगे। उसमें जीवन का कोई लक्षण न होगा। और लहरें हो सकती हैं सागर के बिना? असंभव। न तो लहरें हो सकती हैं सागर के बिना; अगर होंगी तो किसी चित्र में चित्रित होंगी, वास्तविक न होंगी, कागजी होंगी। और सागर नहीं हो सकता लहरों के बिना; अगर होगा तो मुर्दा होगा। उसमें कोई जीवन न होगा। जीवन होगा तो हवाएं भी उठेंगी और जीवन होगा तो तरंगें भी उठेंगी। और जितना विराट सागर होगा उतने विराट तूफानों को झेलने की झमता होगी। ये लहरें भी उसी की हैं। यह मन भी उसी का! हम भी उसी के! यह तन भी उसी का!
भक्त की भाषा अलग है। इस प्रश्न में उलझन है। यह प्रश्न साफ नहीं है।
और जिसने भी ये दो पंक्तियां रची होंगी, उसके मन में भी साफ नहीं थी बात कि वह क्या कह रहा है। उसके मन में खिचड़ी रही। प्रश्न तो साधक का था, और भाषा भक्त की थी। ऐसी उलझन में जो भी पड़ेगा वह बड़े संकट में पड़ जाता है--

आत्मसंकट में। उसका मन दो खंड़ों में बंट जाता है। वह टिकिट तो लेता है कलकत्ता जाने की और ट्रेन में बैठ जाता है बंबई की। तो वह सोचता है, टिकिट भी मेरे पास है; और वह सोचता है टिकिट-चैकर मुझे परेशान क्यों कर रहा है! टिकिट उसके पास है, लेकिन उसे किसी और दिशा में जाना था। जहां वह जा रहा है, वहां की टिकिट उसके पास नहीं है।
ऋग्वेद में एक परम वचन हैः "ऋतस्य यथा प्रेत"; जो प्राकृतिक है, वही प्रिय है। जो स्वाभाविक है, वही शुभ है। स्वभाव के अनुसार जीवन व्यतीत करो। ऋतस्य यथा प्रेत! यही लाओत्सु का आधार हैः ताओ। पूरे ताओ को इस ऋग्वेद के एक छोटे-से सूत्र में रखा जा सकता हैः ऋतस्य यथा प्रेत।
जो प्राकृतिक, वही प्रिय। तुम श्रेय और प्रेय को तोड़ो मत। जो प्रीतिकर लग रहा है वही श्रेयस्कर है। प्रीतिकर लगना श्रेयस्कर की खबर है। कहीं पास ही श्रेय भी छुपा होगा। तुम श्रेय के द्वार को खोज लो। इसलिए वेदों का जो ऋषि है, वह कोई भगोड़ा नहीं है। उसने जीवन का निषेध नहीं किया है। जीवन का परम स्वीकार है। परमात्मा ने जो दिया है, वह प्रसाद है। वह उसकी भेंट है। उसका अस्वीकार कैसे हो? उसका त्याग कैसे हो?
त्याग का तो अर्थ ही होगाः कि तेरी भेंट हम... राजी नहीं होते तेरी भेंट से! तेरी भेंट, भेंट के योग्य नहीं! तूने जीवन दिया, यह ले वापिस! दोस्तोवस्की के बड़े प्रसिद्ध उपन्यास "ब्रदर्स करमाझोव" में एक पात्र नाराज होकर ईश्वर से कहता हैः यह अपनी टिकिट तू वापिस ले ले। यह जीवन हमें नहीं चाहिए! सम्हाल अपने जीवन को! जीवन को जो त्यागकर जा रहा है, वह यही कह रहा है कि ये फूल हमें न भाये, ये फूल हमें शूल सिद्ध हुए। यह तूने जो वर्षा की थी, यह अमृत की नहीं थी, जहर की थी। और यह तूने हमें जीवन दिया था, यह देने योग्य न था। तूने किसे धोखा देना चाहा?
त्यागी यह कह रहा है कि हम छोड़ते हैं तेरे जीवन को; हमें आवागमन से छुटकारा चाहिए। त्यागी प्रकृति के विपरीत चलता है। वह नदी की धार के विपरीत लड़ता है। वह गंगोत्री की तरफ बहता है; भक्त गंगासागर की तरफ। भक्त कहता है, जहां ले जाये गंगा! हम भी उसी के, गंगा भी उसी की, हवाएं भी उसी की। तो जहां भी पहुंचा देगा वहीं मंजिल होगी! और हम कौन हैं मंजिल को तय करें! तो अगर मन में तरंगें उठती हैं तो उन्हीं तरंगों में वह प्रभु के नाम को गुनगुनाता है।
इसलिए भक्त तुम्हें गुनगुनाता मिलेगा। ज्ञानी तुम्हें मौन मिलेगा। ज्ञानी बाहर से ही मौन नहीं है, भीतर से भी चुप है। शब्द उठा कि संसार उठा। वह संसार से ही नहीं डर गया, शब्द से भी डर गया है। भक्त तुम्हें बाहर भी गुनगुनाता मिलेगा, भीतर भी गुनगुनाता मिलेगा। लहरें उसे स्वीकार हैं। वह लहरों को बदलने की कीमिया जानता है। उसने लहरें भी परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दी हैं। वह इससे भयभीत नहीं होता। प्रकृति और उसके बीच कोई विरोध नहीं है। इनकार की भाषा उसे नहीं आती। वस्तुतः भक्त के लिए इनकार की भाषा में ही नास्तिकता छिपी है।
इसलिए ऐसा तो हुआ कि अनेक ज्ञानी नास्तिक हुए; लेकिन एक भी भक्त नास्तिक नहीं हुआ। यह तुम थोड़ा सोचना।
बुद्ध नास्तिक हैं। परमज्ञान को उपलब्ध हो गए, लेकिन नास्तिकता इससे नहीं छूटी है। महावीर नास्तिक हैं। परमज्ञान को उपलब्ध हुए, लेकिन परमात्मा की कोई जगह नहीं। क्योंकि जब पूजा की ही जगह न हो तो परमात्मा की कैसे जगह हो सकती है? जब प्रार्थना की ही जगह न हो तो परमात्मा की कैसे जगह हो सकती है?
तो एक अनूठी घटना घटी कि बुद्ध और महावीर जैसे परमज्ञानी नास्तिक हैं। जब पश्चिम को पहली दफा पता चला बुद्ध और महावीर का तो पश्चिम में तो ईसाई शास्त्री समझ ही न सका यह, कि धार्मिक और नास्तिक, यह हो कैसे सकता है! क्योंकि पश्चिम में इस्लाम, यहूदी, ईसाई, तीनों ही भक्ति के संप्रदाय हैं। वो ज्ञान के संप्रदाय, उनमें कोई भी नहीं है। तो उन्होंने एक ही तरह का ढंग जाना था--भक्त का। यह उनके लिए असंभव था कि भगवान के बिना भक्त हो कैसे सकता है! तो प्रथम-रूप जो किताबें लिखी गयीं जैन धर्म और बौद्ध धर्म पर, पश्चिम के लेखकों ने लिखीं, उन्होंने लिखाः ये नीतिशास्त्र की

व्यवस्थाएं हैं, धर्म नहीं हैं। मारल कोड्स! क्योंकि धर्म तो ईश्वर के बिना होगा कैसे? लेकिन धर्म ईश्वर के बिना हो सकता है। वस्तुतः साधक का धर्म ईश्वर के बिना ही होगा।
भगवान, भक्त के हृदय का आविर्भाव है। वह पूजा का ही सघन रूप है। वह प्रार्थना ही पर्त दर पर्त जमती जाती है, तब परमात्मा बनती है। वह लहरें, तरंगें अस्वीकार नहीं की गयीं, तभी सागर मिलता है। ज्ञानी तो धीरे-धीरे लहरों को अस्वीकार करके सागर को भी छोड़कर मरुस्थल में विराजमान हो जाता है।
ऋतस्य यथा प्रेत!
तो घबड़ाओ मत! उसने तरंगें दी हैं, उसी को समर्पित कर दो। और उसी की बात उसे लौटा देने में लगता क्या है?
सामवेद में भी एक वचन हैः देवस्य पश्य काव्यम्! यह जो दिखायी पड़ रहा है, यह परमात्मा का प्रगट काव्य है। छिपा है वही पीछे। यह जो गुनगुनाहट दिखायी पड़ती है प्रकृति के नाम से, इसके पीछे उसी का कंठ छिपा है। चाहे कोयल की कुहू-कुहू में और चाहे कौवों की शिकायत में--वही छिपा है। कांव-कांव हो कि कुहू-कुहू, अंधेरी रात हो कि प्रकाश से भरा हुआ दिवस हो, और जन्म हो कि मृत्यु हो--सब तरफ उसी के हाथ हैं। यह काव्य उसका है।
देवस्य पश्य काव्यम्! यह जो दिखाई पड़ रहा है संसार, यह उसी का प्रगट काव्य है। जैसे कवि तो छिपा है और हमें केवल कविता हाथ लग रही है। तुम्हारे भीतर भी जो तरंगें उठा रहा है वह वही है। तुम भी उसी की तरंग हो। तुममें उठी तरंगें भी उसी की तरंगें हैं।
तो यदि भक्त का तुम्हारे पास मन हो तो चिंता मत करो। उसने तरंगें उठाने योग्य तुम्हें समझा, इसके लिए धन्यवाद दो। उसने तुम्हें जीवन दिया। उसने तुम्हें रस दिया। उसने तुम्हें होने के हजार-हजार आयाम दिये। उसने तुम्हें प्रेम दिया, राग-रंग दिए। स्वीकार करो! और स्वीकार करते ही तुम पाओगे कि दंश चला गया। कांटा नहीं चुभता फिर। भक्त तो कहता हैः
पकड़े जाते हैं फरिश्तों के लिखे पर, नाहक
आदमी कोई हमारा दमे-तहरीर भी था?
भक्त तो भगवान से कहता है कि फरिश्तों ने जो हमारे संबंध में खबर दी हैं, उनका भरोसा मत करना। हमारे पाप-पुण्यों का जो लेखा-जोखा तुम्हारे फरिश्तों ने बताया है उसका भरोसा मत करना। "आदमी कोई हमारा दमे-तहरीर भी था?" अगर पूछना हो तो आदमियों से पूछना, क्योंकि आदमी ही समझ पाएंगे कि तुमने हमें ऐसा बनाया था। फरिश्तों को क्या पता कि तुमने कितना प्रेम भर दिया था हमारे रग-रेशे में? फरिश्तों को क्या पता कि कितना नाच और कितनी तरंगें तुमने दी थीं? नहीं, इनकी बात पर भरोसा मत करना। अगर हमने भूल-चूक की हो तो तुमने करवायी थी। और अगर गवाह चाहिए हो तो आदमियों से पूछना, क्योंकि वे हमें समझ सकेंगे। क्योंकि जैसे वे हैं वैसे हम हैं।
पकड़े जाते हैं फरिश्तों के लिखे पर, नाहक
आदमी कोई हमारा दमे-तहरीर भी था?
अगर कोई चश्मदीद आदमी हमारा गवाह हो तो ही बात का भरोसा करना।
ईसाइयत कहती है कि जीसस होंगे तुम्हारे गवाह। जीसस बाइबिल में जगह-जगह दो वचनों का उपयोग करते हैं। कभी-कभी वे कहते हैं, मैं हूं ईश्वर-पुत्र! लेकिन इससे भी ज्यादा बार वे कहते हैं, मैं हूं मनुष्य का पुत्र! सन आफ मैन! बड़ा जोर है उनका इस बात पर कि मैं आदमी का बेटा हूं; जैसे ईश्वर का बेटा होना नंबर दो है। और जीसस कहते हैं कि मैं तुम्हारा गवाह हूं। यह थोड़े सोचने जैसी बात है।
इस्लाम मुहम्मद को ईश्वर का अवतार नहीं मानता, न तीर्थंकर मानता है-- इतना ही मानता है, ईश्वर का भेजा हुआ दूत; लेकिन आदमी। यह बात महत्वपूर्ण है। यह महत्वपूर्ण इसलिए है कि आदमी ही आदमी का गवाह हो सकेगा। अगर राम तुम्हारे लिए गवाही देंगे तो गड़बड़ हो जायेगी, क्योंकि वे अपने मापदंड से सोचेंगे। उनके मापदंड बड़े कठोर हैं, अति कठोर हैं, अमानवीय हैं, असंभव हैं! कोई धोबी कह देता है अपनी पत्नी को कि "मैं कोई रामचंद्र नहीं हूं कि सालों सीता रावण के घर रही और फिर भी उसे स्वीकार कर लिया! एक रात भी अगर तू घर

नहीं रही, मैं स्वीकार करनेवाला नहीं हूं।" यह खबर काफी हो जाती है राम को सीता को त्याग देने के लिए।... मर्यादा!
अब ऐसा व्यक्ति अगर तुम्हारे बाबत गवाही देगा तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। इसकी गवाही का मापदंड बड़ा ऊंचा होगा, अमानवीय होगा। तुम तो इसके सामने हर हालत में पापी सिद्ध हो जाओगे।
इसलिए इस्लाम कहता है, मुहम्मद कोई ईश्वर के अवतार नहीं हैं। वे आदमी जैसे आदमी हैं। और आदमी की जो मुसीबतें हैं, उसकी मुसीबतें हैं। और आदमी की जो आंतरिक पीड़ाएं हैं! उनकी आंतरिक पीड़ाएं हैं। और आदमी के मन के जो भाव हैं, वेग हैं, वह उनके भाव, वेग हैं। उनकी गवाही का अर्थ है।
भक्त तो कहता है, तुमने जैसा बनाया वैसा मैं हूं। मैंने स्वयं को तो बनाया नहीं है। यह मन भी तुमने दिया है। मुझे तो सिर्फ मिला है। इसका कर्ता मैं नहीं हूं। इसलिए तुम जानो, तुम्हारी जिम्मेवारी है।
अगर भक्त को भगवान का स्मरण भी भूल जाता है तो भी वह बहुत चिंता नहीं करता। वह कहता है, तुम्हीं भुला रहे हो।
तू है तो तेरी फिक्र क्या,
तू नहीं, तो तेरा जिक्र क्या?
अगर तू है तो हमने तेरी फिक्र न भी की तो भी तू है! और अगर तू नहीं है तो तेरा जिक्र भी करते रहे तो क्या सार?
तू है तो तेरी फिक्र क्या,
तू नहीं, तो तेरा जिक्र क्या?
और निश्चित ही आदमी कमजोर है, असहाय है! क्षणभर भाव से भर जाता है; क्षणभर बाद भाव का तूफान उतर जाता है, ज्वार उतर जाता है, सब भूल जाता है। देखो मंदिर में आदमी को पूजा करते--कैसी पवित्रता झलकती है उसके चेहरे से! नमाज पढ़ते देखो किसी को--कैसा निर्दोष भाव आंखों में उतर आता है! चेहरे पर कोई अद्वितीय आभा आ जाती है। फिर इसी आदमी को बाजार में देखो, किसी से लड़ते-झग.ड़ते, दुकान चलाते, तो तुम भरोसा ही न कर सकोगे कि वही आदमी है! मन है प्रतिपल बदला जाताः अभी कुछ, अभी कुछ। मन तरंगायित है। चंचल होना मन का स्वभाव है। अगर उसकी याद भी आती है तो भी थिर नहीं हो पाती। किसी क्षण बड़े जोर से आती है, रोएं-रोएं को कंपा जाती है। और कभी भूल जाता है तो दिनों निकल जाते हैं और याद नहीं आती। जब तुम्हें याद आती है, तब तुम चौंकते हो, रोते हो कि अरे, इतने दिन भूला रहा!
लेकिन मनुष्य की यह नैसर्गिक स्थिति है। श्वास भीतर जाती है, फिर बाहर जाती है। तुम भीतर ही श्वास को रखना चाहोगे, मर जाओगे। भीतर जो आयी है वह बाहर जायेगी। बाहर जो गयी है वह फिर भीतर आयेगी। ऐसा प्रतिपल श्वास का आंदोलन चलेगा। सभी स्थितियों में विरोध रहेगा। दिन काम करोगे, रात सो जाओगे। एक क्षण तय करोगे, दूसरे क्षण निश्चय टूट जायेगा। ऐसे ही श्वास आती-जाती रहेगी। ऐसी ही लहरों पर नौका डोलती रहेगी।
अब दो उपाय हैं। एक तो ज्ञानी का उपाय है, जो कि बड़ा दुर्गम है; क्योंकि स्वयं से चेष्टा करनी पड़ेगी। अपने छोटे-छोटे हाथों से इस पूरे सागर को शांत करना पड़ेगा। इसलिए महावीर को अगर हमने महावीर कहा तो ऐसे ही नहीं कहा। बड़ी घनघोर तपश्चर्या थी! दुर्धर्ष! जन्मों-जन्मों की तपश्चर्या थी, तब कहीं जाकर वह क्षण आया सौभाग्य का कि लहरें शांत हुईं। यह बड़ी लड़ाई थी। हां, जिन्हें लड़ने का शौक है वे इस रास्ते पर जा सकते हैं। यह रास्ता भी पहुंचा देता है। भक्त ने तो प्राकृतिक रास्ते को चुना है।
और अगर तुम नैसर्गिक और स्वाभाविक ढंग से, बिना बहुत जद्दोजहद के, बिना व्यर्थ का संघर्ष किए पहुंच जाना चाहते हो तो भक्त का ही रास्ता है। उसी पर छोड़ दो। जो ज्ञानी जन्मों-जन्मों में कर पाता है, भक्त क्षण में कर लेता है। और जो क्षण में हो सकता है उसको जन्मों-जन्मों में करने की जिद्द, जिद्द ही है। जो क्षण में हो सकता हो, उसे जन्मों-जन्मों तक करके क्या करना है? इकट्ठा ही छोड़ सकते हो... ।
रामकृष्ण के पास एक आदमी आया। वह हजार सोने की अशर्फियां लाया। उसने उनके चरणों में रख दीं और कहा कि यह मुझे आपको देना है। रामकृष्ण ने कहा कि ठीक है, अब तू ले आया है तो लौटाऊंगा तो तुझे बुरा लगेगा, ले लिया। ये मेरी

हो गयीं। अब तू इतना काम कर दे मेरी तरफ सेः इनको ले जाकर गंगा में डाल आ। यह मेरी हो गयीं। अब तू इतना काम और कर दे मेरे लिए कि इनको जाकर गंगा में डाल आ।
वह आदमी गया तो, लेकिन लौटा नहीं, बड़ी देर होने लगी। तो रामकृष्ण ने कहा कि जाओ, देखो वह क्या कर रहा है! वह वहां एक-एक अशर्फी को बजा-बजाकर, खनका-खनकाकर फेंक रहा था पानी में। भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। चमत्कार हो रहा था कि यह आदमी भी क्या कर रहा है! और वह एक-एक को बजाता, परखता, देखता, फेंकता। तो देर लग रही थी। गिनती रखता--तीन सौ तीन, तीन सौ चार--ऐसा धीरे- धीरे जा रहा था! तो रामकृष्ण ने कहा, उससे जाकर कहो कि नासमझ, जब इकट्ठी करनी हों तो एक-एक अशर्फी को जांच-जांचकर, परख-परखकर गिनती कर-करके, खाते में लिख-लिखकर करना पड़ता है। जब पूरी फेंकनी हैं नदी में तो हजार हुईं कि नौ सौ निन्यानबे हुईं कि एक हजार एक हुईं! जब फेंकना है तो इकट्ठा फेंका जा सकता है; गिन-गिनकर वहां क्या कर रहा है?
भक्त कहता है, जब डालना ही है उसके चरणों में तो गिन-गिनकर क्या डालना, इकट्ठा ही डाल देंगे! और यह भी अहंकार क्यों करना कि पुण्य ही उसके चरणों में डालेंगे!
यह भक्त की महिमा है। वह कहता है, पाप भी उसी के चरणों में डाल देंगे!
यह भी अहंकार हम क्यों रखें कि हम पुण्य ही तेरे चरणों में चढ़ाएंगे, पाप न चढ़ाएंगे? इसमें भी बड़ी सूक्ष्म अस्मिता है छिपी हुई, कि मैं और पाप तेरे चरणों में चढ़ाऊं! नहीं, पहले पुण्य का निर्माण करूंगा, फिर चढ़ाऊंगा। मैं, और गलत तेरे चरणों में आऊं--नहीं! आऊंगा--सर्व सुंदर होकर, सर्वांग सुंदर होकर, महिमा से आवृत्त होकर--तब तेरे चरणों में रखूंगा! इसमें भी बड़ी अस्मिता है। भक्त कहता है, अब जैसा भी हूं, दीन-हीन, बुरा-भला, सुंदर-असुंदर, स्वीकार कर लो!
इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो
जमीन है न बोलती
न आसमान बोलता
जहान देखकर मुझे
नहीं जबान खोलता
नहीं जगह कहीं जहां
न अजनबी गिना गया
कहां-कहां न फिर चुका
दिमाग-दिल टटोलता
कहां मनुष्य है कि जो
उम्मीद छोड़कर जीया
इसीलिए अड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो
इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!
पुकार कर दुलार लो
दुलार कर सुधार लो!
भक्त कहता है, तुम्हीं...! पुकारकर दुलार लो, दुलारकर सुधार लो! तुम्हीं... !
भक्त की बड़ी अनूठी भाव-दशा है। भक्त को कुछ भी करना नहीं है, सिर्फ कर्तापन का भाव छोड़ना है। ज्ञानी को बहुत कुछ करना है--लंबी यात्रा है। और मजा यह है कि ज्ञानी कर-करके भी अंत में यही कर पाता है कि कर्तापन का भाव छोड़ पाता है। वह उसकी अंतिम सीढ़ी है। भक्त की वही प्रथम सीढ़ी है। इसलिए मैं बार-बार कहता हूं, ज्ञानी क्रमशः चलता है, भक्त छलांग लगाता है। ज्ञानी सीढ़ी से उतरता है; भक्त छलांग लगाता है।
इसलिए महावीर के वचनों में तुम्हें एक क्रमबद्धता मिलेगी, एक वैज्ञानिक शृंखला मिलेगी। एक कदम दूसरे कदम से जुड़ा हुआ है। एक-एक कदम

ब्योरेवार, साफ-साफ! सब इंगित-इशारे हैं। पूरा नक्शा है। जगह-जगह मील के पत्थर हैं। कितने आ गये, कितना आगे जाने को है--सब लिखा है।

महावीर ने चौदह गुणस्थान कहे हैं और पूरी यात्रा को चौदह खंडों में बांट दिया है। एक-एक खंड का स्पष्ट मील का पत्थर है। तुम पक्की तरह जान सकते हो कि तुम कहां हो, कितने चल गये हो और कितना चलने को बाकी है। चौदहवें गुणस्थान के बाद ही यात्रा पूरी होती है।
भक्त के पास कोई गुणस्थान नहीं है। भक्त के पास कोई नक्शा ही नहीं है। भक्त के पास कोई क्रमबद्ध सीढ़ियां नहीं हैं। भक्त को कुछ पता भी नहीं कि वह कहां है। वह इतना ही भर जानता है कि जहां भी हूं, उसी का हूं; जैसा भी हूं, उसी का हूं। बस इतना सूत्र उसके हृदय में सघन होता चला जाता है।
और यह निर्भर करता है तुम पर, चाहो तो एक क्षण में छलांग लग जाये, चाहो
तो तुम जन्मों-जन्मों तक छलांग का विचार करते रहो।
जो गणित से जीते हैं उनके लिए ज्ञान का रास्ता है। जो प्रेम से जीते हैं उनके लिए भक्ति का रास्ता है।
"नरहरि कैसे भगति करूं मैं तोरी
चंचल है मति मोरी!"
उस चंचल मति को उसके चरणों में रख दो! कहना, ले सम्हाल! फिर अगर वह कहे
कि नहीं, तुम्हीं सम्हालो मेरे लिए, तो जैसे रामकृष्ण ने उस आदमी से कहा था कि जा मेरे लिए गंगा में फेंक आ, तो तुम सम्हालना जब तक उसने तुम्हें दी है। वह अमानत है। तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। वह कहता है, सम्हाल मेरे लिए। अमानत है, तो तुमने सम्हाल ली है; जब मांगेगा तब वापस लौटा देंगे।

दूसरा प्रश्नः दो दिन पहले संध्या के दर्शन में आपने एक युवती से कहा
था, श्रद्धा करो। और मैंने भी आपकी बात पर श्रद्धा की कि जहां उत्कट प्यास होगी वहां पानी को आना ही पड़ेगा। अब पानी तो आ गया है, लेकिन क्या मैं तुरंत अंजलि भर के पीना शुरू करूं या पानी मुंह तक आ जाये, इसकी धैर्य से प्रतीक्षा करूं?

तुम्हारी जैसी मर्जी!
साधना के जगत में हर जगह भक्त और साधक का फर्क है। साधक तत्क्षण अंजलि भरकर पी लेगा। भक्त थोड़ी मान-मनौवल चाहता है। वह कहता है, भगवान कहे, "पीयो!" थपथपाए कि "चलो पीयो भी! माना कि बहुत देर प्यासे रहे, अब तो पी लो।" तो वह रूठकर खड़ा हो जाता है।
झुकाया तूने, झुके हम, बराबरी न रही
यह बंदगी हुई ऐ दोस्त! आशिकी न रही।
वह बड़े मान-मनौवल लेता है। वह कहता है, "झुकें? क्यों झुकें?" और वह यह इसीलिए कह पाता है, "क्यों झुकें", क्योंकि वह झुका तो है ही।
सब उसने छोड़ा है तो यह हक अर्जित किया है कि वह थोड़ा रूठने-मनाने का खेल खेल सकता है।
साधक के सामने जब पानी आता है तो वह तत्क्षण पी लेता है, क्योंकि ऐसे
ही तो बहुत प्रतीक्षा की उसने। और वह सदा डरा होता है कि कहीं छूट न जाये, आया हुआ कहीं खो न जाये। जिसने, इतने श्रम से आया है, इतनी लंबी यात्रा करके आया है, तब कहीं पानी के दर्शन हुए, वह तो एकदम झुक जाता है और पीने में लग जाता है। लेकिन भक्त को तो बिना कुछ किए मिलता है। वह कोई लंबी यात्रा करके आया नहीं है। "उसके" प्रसाद से मिलता है। "उसकी" अनुकंपा से मिलता है। उसने कुछ अर्जित किया, ऐसा नहीं है। उसने किसी योग्यता के बल पर पाया, ऐसा नहीं। उसने तो अपनी अपात्रता को जाहिर करके, उसके ही हाथ में सब छोड़कर पाया है। तो वह चाहे तो थोड़ी मान-मनौवल कर सकता है। रुक सकता है। वह कहता है, "आने दो, थोड़ा और जल को बढ़ने दो। इतना आ गया है तो ओंठ तक भी आ ही जायेगा। तब पी लेंगे। अंजुलि भी क्यों बांधें? और जिसने इतनी कृपा की है कि जल को ले आया है इतने करीब, वह इतनी और भी करेगा।"

उल्फत का जब मजा है कि वह भी हों बेकरार
दोनों तरफ हो आग बराबर लगी हुई।
और भक्त को तो जैसे-जैसे भक्ति में गहराई आती है, वैसे-वैसे यह बात दिखाई पड़ने लगती है कि मैं ही उसे नहीं खोज रहा हूं, वह भी मुझे खोज रहा है। सचाई भी यही है। प्यासा ही जलस्रोत को नहीं खोज रहा है, जलस्रोत भी प्रतीक्षा कर रहा है कि आओ। क्योंकि जब प्यासा जलस्रोत पर तृप्त होता है, तब जलस्रोत भी तृप्त होता है। प्यासे की ही प्यास नहीं बुझती, जलस्रोत की भी जन्मों-जन्मों की प्यास बुझती है। जलस्रोत का सुख यही है कि किसी की प्यास बुझे।
तुम ही खोज रहे हो परमात्मा को, अगर ऐसा ही होता और उसे कोई प्रयोजन नहीं है तुमसे, तो खोज पूरी भी होती, इसकी संभावना नहीं है। क्योंकि अगर उसको रस ही न हो खोजे जाने में, तो तुम कैसे खोज पाते? तुम खोज पाते हो, क्योंकि वह भी चाहता है तुम खोज लो। वह ऐसी जगह खड़ा होता है कि तुमसे मिलन हो जाये। वह ऐसे तुम्हारे पास ही आकर खड़ा हो जाता है कि तुम जरा ही खोजबीन करो कि मिलना हो जाये।
तुमने बच्चों को देखा है न, छिया-छी खेलते, बस वही खेल है! वे कोई ज्यादा दूर नहीं चले जाते कि फिर तुम खोज ही न पाओ। वहीं कमरे में बिस्तर के पीछे छिपे हैं, कि पलंग के नीचे चले गए हैं। तुमको भी पता है, उनको भी पता है।
जिसको पता है वह भी दो-चार चक्कर लगाकर बिस्तर के नीचे आ जाता है कि अरे! और इस तरह चमत्कृत होता है कि जैसे कुछ पता न था। हालांकि वह आंख बंद किये खड़ा था, लेकिन उसने थोड़ी-सी आंख खोलकर देख लिया था कि कहां जा रहे हो! सबको पता है।
इसलिए हिंदू इस जगत को लीला कहते हैं।... छिया-छी है।
परमात्मा भी तुम्हें खोज रहा है। तुम्हीं अकेले नहीं हो खोज में। यह तुम्हारा हाथ ही उसके हाथ की तरफ नहीं बढ़ा है, उसका हाथ भी तुम्हारे हाथ की तरफ बढ़ा है। शायद तुमने हाथ बढ़ाया, उससे पहले ही उसने हाथ बढ़ा दिया है।
तुम्हें जब से बनाया, तब से ही हाथ बढ़ाए खड़ा है। तुमने बड़ी देर कर दी है।
उल्फत का जब मजा है कि वह भी हों बेकरार
दोनों तरफ हो आग बराबर लगी हुई।
--आग दोनों तरफ बराबर लगी हुई है। प्यासा वह भी है कि तुम आओ।
वैज्ञानिक कहते हैं, सूरज निकलता है, फूल खिलते हैं। अब तक ऐसा ही समझा जाता रहा है कि यह एकतरफा लेन-देन हैः सूरज निकला, फूल खिले। सूरज तो बहुत कुछ देता है फूलों को। सूरज के बिना तो फूल खिल न सकेंगे। कवियों को सदा इस बात पर संदेह रहा है और अब कुछ वैज्ञानिकों को भी संदेह होना शुरू हुआ है। और वह संदेह यह है कि एकतरफा तो जगत में कुछ भी नहीं हो सकता। यहां तो सब लेन-देन संतुलित है। यहां तो दोनों तराजू समान होने चाहिए। अन्यथा अव्यवस्था हो जायेगी। सूरज देता रहे, फूल लेते रहें; सूरज देता रहे, फूल लेते रहें--तो एक दिन सूरज का दिवाला निकल जायेगा। और फूलों के पेट इतने बड़े हो जाएंगे कि वे अपने को सम्हाल न पाएंगे। नहीं, फूल भी कुछ दे रहे होंगे। और सुबह जब सूरज निकलता है तो फूल ही नहीं खिलते, सूरज भी फूलों को खिला देखकर खिलता होगा।
यह अब तक तो कविता रही है। लेकिन अभी इधर दस वर्षों में वैज्ञानिकों
को इस पर संदेह आने लगा है और शक होने लगा है कि यह कविता कहीं सच ही न हो। क्योंकि सब तरफ जीवन में लेन-देन बराबर है। तुम जिसे प्रेम देते हो, तत्क्षण उससे प्रेम पाते हो। अगर तुम ही प्रेम दे रहे हो और दूसरी तरफ से प्रेम नहीं लौटता, तुम जल्दी ही थक जाते हो। तुम उदास हो जाते हो। तुम अपने रास्ते पर लग जाते हो। तुम सोचते हो, यह द्वार अपने लिए नहीं। तुम अगर मित्रता बांट रहे हो और दूसरी तरफ से मित्रता के लिए कोई प्रतिसंवेदन नहीं होता, कोई संवाद नहीं उठता, दूसरे हृदय से कुछ खबर नहीं आती कि तुम्हारी मित्रता स्वीकार की गयी, अस्वीकार की गयी; चाही गई थी, नहीं चाही गई थी; दूसरा प्रसन्न हुआ कि नहीं प्रसन्न हुआ; दूसरा अगर तटस्थ ही खड़ा रहे उपेक्षा से--तो जल्दी ही मित्रता सूख जाती है। सींचना तभी संभव हो पाता है

जब दोनों तरफ से बह चले; आये भी जाये भी; लौटे। और जब तुम किसी को प्रेम देते हो और प्रेम वापस लौटता है तो हजार गुना होकर लौटता है। फिर तुम देते हो, फिर हजार गुना होकर लौटता है। दो प्रेमी एक-दूसरे को देकर इतना पा लेते हैं जितना उन्होंने दिया कभी भी नहीं था; क्योंकि दोनों की तरफ हजार गुना होकर लौटने लगता है।
दो प्रेमियों का जोड़ केवल जोड़ नहीं होता, गुणनफल होता है। जो अंतिम हिसाब है उसमें ऐसा नहीं होता कि तीन धन तीन = छह। उसमें ऐसा होता हैः तीन तीन से = नौ। गुणनफल की तरह चलती है, बढ़ती जाती है संख्या। बड़ा होता चला जाता है। दोनों प्रेमी छोटे हो जाते हैं और दोनों के आसपास आने- जानेवाला प्रेम बहुत बड़ा हो जाता है। दोनों प्रेमी दो तट की भांति हो जाते हैं और प्रेम की गंगा बड़ी होने लगती है। लेकिन यह तभी संभव है जब लौटता भी हो।
मेरी भी दृष्टि यही है कि फूल भी लौटाते हैं। और जिस दिन पृथ्वी पर एक
भी फूल न होगा, उस दिन सूरज ऊगना न चाहेगा। ऊगने का कोई अर्थ न रह जायेगा। किसके लिए?
मैं यहां बोल रहा हूं। तुम अगर समझते हो तो ही बोल सकता हूं। तुम्हारी आंख से, तुम्हारे भाव से, तुम्हारी मुद्रा से अगर समझ को लौटते हुए देखता हूं तो ही बोल सकता हूं। अन्यथा फिर दीवालों से बोलने में और तुमसे बोलने में कोई फर्क न रह जायेगा। फिर दीवालों से ही बोल ले सकता हूं। तुम दीवाल नहीं हो। इसलिए धीरे-धीरे मैंने भीड़ में बोलना बंद कर दिया, क्योंकि मैंने पाया कि वहां बड़ी दीवाल खड़ी है। भीड़ तो खड़ी होती है, लेकिन दीवाल की तरह खड़ी होती है। वहां संवेदनशील चित्त नहीं हैं। तो मैं बोलता हूं, लेकिन लौटता कुछ भी नहीं। और अगर लौटता न हो, कम से कम समझ न लौटती हो, आंखों की झलक न लौटती हो, जरा-सी रोशनी है, तुम्हारी आंख में कौंध जाती है, अगर वह न लौटती हो, तो बोलना व्यर्थ हो जाता है।
मैं कहता हूं, सूरज नहीं ऊगेगा, जिस दिन फूल नहीं खिलेंगे। यह तो हम जानते हैं कि फूल नहीं खिलेंगे अगर सूरज नहीं ऊगेगा। दूसरी बात भी इतनी ही सुनिश्चित है। फूलों की तरफ से किसी ने अभी बहुत गवाही नहीं दी। फूलों की तरफ से खोज नहीं हुई। फूल छोटे-छोटे हैं, सूरज बड़ा है।
लेकिन आदमी के जगत में उलटी हालत है। आदमी छोटा है और कहता है, हम परमात्मा को खोजते हैं। और परमात्मा बड़ा है, सूरज की भांति। परमात्मा तुम्हें खोज रहा है। तुम छोटे-छोटे फूल हो। वह तुम्हारी तलाश कर रहा है। उसकी किरणें तुम्हें आकर घेर लेना चाहती हैं, तुम्हारे साथ हवाओं में नाचना चाहती हैं। इसे अगर स्मरण रखा तो कोई डर नहीं है, थोड़ी देर रुक जाना। जो छाती तक आ गया है पानी, वह ओंठों तक भी आ जायेगा। वह तुम्हें डुबा लेना चाहता है अपने में। वह डूबकर बड़ा मस्त होगा। वह डुबाकर बड़ा मस्त होगा। वह तुम्हें अपने में आत्मसात कर लेना चाहता है। तुम उसी की ऊर्जा हो--दूर भटक गयी। वह तुम्हें पाकर वैसा ही प्रसन्न होगा जैसे कोई प्रेयसी, उसका पति खोया हुआ वापिस लौट आए; या कोई मां, उसका बेटा खोया हुआ वापिस लौट आए; या कोई बाप।
यह आनंद एकतरफा होनेवाला नहीं है। इस जगत में एकतरफा कुछ भी नहीं है। इसे तुम जीवन का बुनियादी सत्य समझो। यहां जहां भी एक तरफ तुम कुछ देखो, समझना कि दूसरी तरफ भी कुछ हो रहा है। यहां ताली एक हाथ से नहीं बजती।
तो भक्त अकेला ही ताली न बजा पाएगा। और भक्त अकेला भजन न कर पायेगा।
और भक्त अकेला कीर्तन न कर पायेगा। अगर पाए न कि भजन में वह भी सम्मिलित है, कहीं पीछे खड़ा वह भी गुनगुना रहा है, और कीर्तन में अगर पाए न कि वह भी नाच रहा है--कितनी देर भक्त अकेला चल पाएगा? ईंधन जल्दी ही चुक जायेगा। वही है जो ईंधन को डाले चला जाता है। इसलिए अगर साधक हो और बड़ी मेहनत से पहुंचे हो जलस्रोत पर, तो अंजुलि भरकर पीना ही पड़ेगा; तुम देर तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते। क्योंकि साधक मानता है, मैं ही खोज रहा हूं; परमात्मा मुझे नहीं खोज रहा है। परमात्मा का साधक को कोई बड़ा सवाल ही नहीं है। साधक सत्य खोजता है। सत्य का अर्थ होता हैः तटस्थ। भक्त भगवान खोजता है। भगवान का अर्थ होता हैः व्यक्ति, प्रेम से लबालब! सत्य रूखा शब्द है।

सत्य में तर्क की भनक है, गणित का स्वाद है। सत्य शब्द में कोई रसधार नहीं है, मरुस्थल जैसा है। अब तुम लगाओ सत्य को छाती से, तुमको पता चलेगा! तो तुम तो लगा रहे हो, लेकिन सत्य बिल्कुल हाथ नहीं फैला रहा। जैसे तुम किसी खंभे को छाती से लगा रहे हो, ऐसा सत्य छाती से लगेगा।
"भगवान!" भक्त यही कह रहा है कि अस्तित्व तुम्हारे प्रति तटस्थ नहीं है। इतना ही अर्थ है भगवान शब्द का। भगवान से कोई मतलब नहीं है कि कोई बैठा है आकाश में व्यक्ति की तरह। यह शब्द तो सूचक है। यह तो इतना कह रहा है कि अस्तित्व तुम्हारे प्रति उदासीन नहीं है। अस्तित्व तुम्हारे प्रति प्रेम से लबालब है, भरा हुआ है। यह सत्य नहीं है, बल्कि प्रेम है।
इसलिए जब जीसस ने कहा कि परमात्मा प्रेम है तो उनका यही अर्थ था। कह सकते थे, परमात्मा सत्य है। गांधी ने कहा ही हैः द्रुथ इज गाड; सत्य परमात्मा है। लेकिन सत्य बड़ा रूखा-सूखा शब्द है; जैसे किसी तर्क का, गणित का, हिसाब का शब्द है। इसमें भगवान का रस नहीं। सत्य को परमात्मा कहने का अर्थ है कि परमात्मा नहीं है, सत्य है। फिर सत्य को खोजना पड़ेगा। सत्य तुम्हें नहीं खोजेगा। सत्य को क्या पड़ी है? सत्य में तो कोई प्राण भी नहीं हो सकते। जब सत्य में प्राण होते हैं और भीतर ज्योति का दीया जलता है, तब वह परमात्मा हो जाता है, तब वह सत्य नहीं रह जाता। इसलिए जीसस ज्यादा सही हैं, जब वे कहते हैं परमात्मा प्रेम है या प्रेम परमात्मा है।
तो अगर तुमने भक्त की तरह से छलांग लगायी है तो कोई फिक्र नहीं, रुके रहना, ठहरे रहना--वह बढ़ेगा। तुम जितनी जिद्द करोगे उतनी तीव्रता से बढ़ेगा। तुम्हारी जिद्द भी तुम्हारे भरोसे की अभिव्यक्ति होगी। तुम्हारी जल्दबाजी अधैर्य की, तुम्हारी प्रतीक्षा तुम्हारे धैर्य की! खुद्दारियां यह मेरे तजस्सुस की देखना
मंजिल पर आकर अपना पता पूछता हूं मैं।
भक्त कहता है, देखो मेरी तलाश का स्वाभिमान कि मंजिल पर आ गया हूं और मंजिल पर आकर अपना पता पूछता हूं।... छिया-छी!
भक्त कभी-कभी बड़े स्वाभिमान से भी बात करता है। भक्त ही कर सकता है स्वाभिमान से बात, क्योंकि जिसका कोई अहंकार नहीं वही स्वाभिमान से बात कर सकता है।
महाराष्ट्र में प्यारी कथा है विठोबा के मंदिर की, कि एक भक्त अपनी मां की सेवा कर रहा है और कृष्ण उसे दर्शन देने आए हैं। उन्होंने द्वार पर दस्तक दी है। तो उसने कहा, अभी गड़बड़ न करो, अभी मैं मां के पैर दाबता हूं। लेकिन कृष्ण ने कहा, सुनो भी मैं कौन हूं! जिसके लिए तुमनेे सदा प्रार्थना की और सदा पुकारा, वही कृष्ण हूं। इतनी मुश्किल और इतनी प्रार्थनाओं के बाद आया हूं।" तो उसके पास एक ईंट पड़ी थी, उसने ईंट सरका दी, लेकिन उस तरफ देखा नहीं, और कहा, "इस पर बैठो, विश्राम करो, जब तक मैं मां के पैर दाब लूं।" वह रातभर पैर दाबता रहा और कृष्ण उस ईंट पर खड़े-खड़े थक गये और मूर्ति हो गये होंगे। तो विठोबा की मूर्ति है वह ईंट पर खड़ी है। मगर गजब का भक्त रहा होगा--गजब का भरोसा रहा होगा!
खुद्दारियां यह मेरे तजस्सुस की देखना!
--यह स्वाभिमान मेरी खोज का!
मंजिल पर आकर अपना पता पूछता हूं मैं।
कृष्ण को भी खड़ा रखा। कृष्ण को भी ईंट पर खड़ा कर दिया। भक्त का भरोसा इतना है, भक्त की श्रद्धा इतनी है कि जल्दी क्या है! बेचैनी क्या है! भक्त को भगवान मिला ही हुआ है। भगवान लौट जायेगा, यह तो सवाल ही नहीं उठता। लौट भी जायेगा तो जायेगा कहां!
इसलिए अगर भक्त की दशा हो और खेल थोड़ी देर और चलाना हो, तो जलस्रोत सामने फूट पड़े, तुम्हें छाती तक डुबा ले, तो भी खड़े रहना, कोई हर्जा नहीं। आएगा! वह भी आ रहा है, तुम्हें खोज रहा है। वह ओंठों तक भी आयेगा। लेकिन अगर बहुत चेष्टा से आए हो तो इतना धैर्य मत करना। क्योंकि जो चेष्टा से मिलता है वह क्षण में खो भी सकता है। मन की किसी भाव-दशा में जलस्रोत दिखाई पड़ता है; भाव-दशा बदल जाये, खो जायेगा। अगर मन की तरंगों पर कब्जा पाकर,

ध्यानस्थ होकर, उसके जलस्रोत की झलक मिली हो तो जल्दी पी लेना, क्योंकि तरंगों का क्या पता, विचार फिर आ जायें, फिर चूक जाओ!
साधक कई बार चूक जाता है पहुंच-पहुंचकर; क्योंकि साधक का पहुंचना मन
की एक खास दशा पर निर्भर करता है। वह दशा बड़ी संकीर्ण है और बड़ी कठिन है! उसे क्षणभर भी बांधकर रखना बहुत मुश्किल है। महावीर ने कहा है, अड़तालीस सैकिंड तुम ध्यान में रह जाओ तो सत्य की उपलब्धि हो जायेगी। अड़तालीस सैकिंड! अड़तालीस सैकिंड भी मन को ध्यान की अवस्था में रखना कठिन है। लेकिन भक्त तो चौबीस घंटे भी भगवान के भाव में रह सकता है। वह भूलता
भी है तो भी उसी को भूलता है; याद भी करता है तो भी उसी की याद करता है-- लेकिन उससे कभी नहीं छूटता। उसका भूलना भी उसी का भूलना है! अगर पीठ भी करता है तो उसी की तरफ करता है और मुंह भी करता है तो उसी की तरफ करता है। भक्त की बड़ी अनूठी स्थिति है!
तो तुम पर निर्भर है, पूछनेवाले पर निर्भर है। अगर बामुश्किल खोज पाए
हो तो जब पहुंच जाओ पास तो देर मत कर देना, एकदम पी लेना! कौन जाने, कहीं पास आया हुआ स्रोत फिर न खो जाये! हां, अगर भक्त हो तो थोड़ा मजा और खेल का ले सकते हो। और पहुंचकर खेल का जो मजा है वह और ही है! पहले तो हम तड़फते हैं, डरे हुए रहते हैं, परेशान रहते हैं, बेचैन रहते हैं!
इसलिए तुमने अकसर देखा, मंजिल पर जब लोग पहुंच जाते हैं तो सामने ही बैठ जाते हैं विश्राम के लिए! वैसे चलते रहे, बड़े मीलों चलकर आए होंगे, लेकिन ठीक जब द्वार पर आ जाते हैं तो सोचते हैं ठीक, सीढ़ियों पर बैठ जाते हैं विश्राम करने के लिए। अब कुछ देर नहीं, लेकिन अब पहुंच ही गए तो अब जल्दी भी क्या है!

तीसरा प्रश्नः आपके प्रति इतना प्रेम रहते हुए भी आपको सुनते वक्त कभी-कभी अकुलाहट और क्रोध क्यों उठने लगता है?

प्रेम है--इसीलिए।
तुम्हारा प्रेम क्रोध से मुक्त तो अभी नहीं हो सकता। तुम्हारे प्रेम में तो क्रोध अभी होगा ही। तुम्हारी दोस्ती में तुम्हारी दुश्मनी भी अभी होगी। क्योंकि तुम बंटे-बंटे हो। अभी तुम एकरस नहीं। अभी तो तुम जिससे प्रेम करते हो, उसी को क्रोध भी करते हो। अभी तो तुम जिस पर श्रद्धा करते हो, उसी पर अश्रद्धा भी करते हो। अभी तो तुम विरोधाभासी हो। अभी तो तुम्हारा चित्त एक द्वंद्व की अवस्था में है--जहां विपरीत से छुटकारा नहीं हुआ; जहां विपरीत मौजूद है। तो अगर तुम मुझे प्रेम नहीं करते तो जरूर कोई नाराजगी न होगी।
तुमने देखा, अगर किसी को दुश्मन बनाना हो तो पहले दोस्त बनाना जरूरी है। तुम बिना दोस्त बनाए किसी को दुश्मन बना सकते हो? कैसे बनाओगे? कोई उपाय नहीं। दोस्ती दुश्मनी में बदल सकती है, दुश्मनी दोस्ती में बदल सकती है; लेकिन सीधी दुश्मनी बनाने का कोई उपाय नहीं। हम नाराज उन्हीं पर होते हैं जिनसे हमारा लगाव है। अपनों से हम नाराज होते हैं, परायों से तो हम नाराज नहीं होते।
तो मुझसे अगर तुम्हारा लगाव है तो बहुत बार नाराजगी भी होगी। उससे कुछ घबड़ाने की जरूरत नहीं--वह प्रेम की छाया है। उससे कुछ चिंतित भी मत हो जाना। क्योंकि उससे अगर तुम चिंतित हुए तो खतरा है। खतरा यह है कि तुम अगर उस पर बहुत ज्यादा ध्यान देने लगे चिंतित होकर, तो कहीं वही तुम्हारे ध्यान से मजबूत न होने लगे। स्वीकार कर लेना कि ठीक है, प्रेम है तो कभी- कभी नाराजगी भी हो जाती है। लेकिन उस पर ज्यादा ध्यान मत देना। ध्यान देने से; जिस पर भी हम ध्यान दें वही बढ़ने लगता है। ध्यान भोजन है।
इसीलिए तो हम बहुत रस लेते हैं। अगर कोई तुम्हारे प्रति ध्यान न दे तो तुम कुम्हालने लगते हो। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बच्चे को अगर मां का ध्यान न मिले तो बच्चा, भोजन सब तरह से मिले, चिकित्सा मिले, सुविधा-सुख मिले, तो भी कुम्हला जाता है। ध्यान मिलना चाहिए। ध्यान पाने के लिए बच्चा तड़फता है, रोता है, चीखता है। तुमने देखा, बच्चे को कह दो, "घर में मेहमान आ

रहे हैं, शोरगुल मत करना"! वैसे वह शांति से बैठा था, खेल रहा था अपने खिलौनों से, मेहमान के आते ही वह शोरगुल मचाएगा। क्योंकि इतने लोग घर में मौजूद हैं, इनका ध्यान आकर्षित करने का मौका वह नहीं चूक सकता। और वह एक ही रास्ता जानता है ध्यान आकर्षित करने का कि कुछ उपद्रव खड़ा कर दे।
ध्यान भोजन है। इसीलिए तो लोग इतने आतुर होते हैं कि दूसरों का ध्यान आकर्षित कर लें। कोई राजनेता बनना चाहता है--वह कुछ भी नहीं है, आकांक्षा इतनी है कि हजारों लोगों का ध्यान मेरी तरफ हो। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री... तो करोड़ों लोगों का ध्यान मेरी तरफ हो।
तुमने देखा कि राजनेता जब तक पद पर होते हैं तब तक स्वस्थ रहते हैं; जैसे ही पद से उतरे कि बीमार पड़ जाते हैं! राजनेता जब तक सफल होता रहता है तब तक बिल्कुल स्वस्थ रहता है; असफल हुआ कि मरा, फिर नहीं जी सकता। क्या हो जाता है? जब तक ध्यान मिलता है तब तक भोजन। ध्यान ऊर्जा है। तुम जब भी किसी की तरफ देखते हो गौर से, तब तुम उसे ऊर्जा दे रहे हो। तुम्हारी आंखों से जीवन-स्रोत बहता है।
इसलिए जिन लोगों को ठीक-ठीक रास्ते से ध्यान नहीं मिल पाता वे उलटे उपाय भी करते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि राजनेताओं में और अपराधियों में कोई फर्क नहीं है। फर्क इतना ही है कि राजनेता समाज-सम्मत उपाय से ध्यान आकर्षित करता है; अपराधी, समाज-असम्मत उपाय से। हत्या कर देता है किसी की, अखबार में फोटो तो छप जाता है, चर्चा तो हो जाती है। लोग कहते हैं, बदनाम हुए तो क्या, कुछ नाम तो होगा! तुम भला सोचते होओ कि अपराधी को कैसा कठिन नहीं मालूम पड़ता होगा जब जंजीरें डालकर पुलिस के आदमी उसे जेलखाने की तरफ ले जाते हैं! तुम गलती में हो, तुम जरा फिर से गौर से देखना! जब किसी आदमी को जंजीर बांधकर पुलिसवाले ले जाते हैं तो तुम उसकी अकड़ देखना--वह किस शान से चलता है! बाजार में वह प्रतिष्ठित है, वह खास आदमी है! बाकी किसी के हाथ में तो जंजीरें नहीं और बाकी की तरफ तो चार-पांच पुलिसवाले आसपास नहीं चल रहे हैं, उसी के पास चल रहे हैं! जैसे राष्ट्रपति के आगे- पीछे पुलिसवाले, ऐसा अपराधी के आगे पीछे भी पुलिसवाले! जैसे राजनेता को भीड़ देखती है, वैसे अपराधी को भी देखती है।
मैंने सुना है, एक राजनेता मरा तो उसकी प्रेतात्मा अपनी अर्थी के साथ गयी। एक दूसरी प्रेतात्मा, एक पुराने भूतपूर्व राजनेता, वे भी वहां मौजूद थे मरघट पर। तो उस नये राजनेता की प्रेतात्मा ने उनसे कहा कि अगर मुझे पता होता कि मरने पर इतनी भीड़ इकट्ठी होगी, मैं कभी का मर गया होता। इतनी भीड़ इकट्ठी हुई, जिंदगी में कभी नहीं हुई थी! अगर मुझे पहले पता होता तो मैं कभी का मर गया होता!
भीड़ को इकट्ठा करने का बड़ा शौक है, बड़ा रस है। उसके पीछे मनोवैज्ञानिक सत्य है। अगर कोई भी उपाय न मिले तो आदमी उलटे-सीधे उपाय करता है।
एक आदमी ने अमरीका में इस सदी के प्रारंभ में अपने को प्रसिद्ध करने
के लिए आधे बाल काट लिए, आधी दाढ़ी-मूंछ काट ली। न्यूयार्क की सड़कों पर वह तीन दिन घूमता रहा। जहां गया वहीं लोगों ने चौंककर देखा कि क्या हुआ! सब अखबारों में उसका नाम छपा। तीन दिन में वह आदमी हर आदमी की जबान पर था। और जब उससे पूछा गया कि यह तुमने किसलिए किया है, तो उसने कहा कि इसमें क्या कुछ बताने की बात है! मैं मरा जा रहा था, कोई मुझे जानता ही नहीं! हम आए और चले! किसी की नजर भी न पड़ी! यह भी कोई जिंदगी हुई? और मुझमें कोई गुणवत्ता तो है नहीं; मैं कोई बड़ा कवि नहीं हूं, कोई बड़ा चित्रकार नहीं हूं कि लोग मुझे देखेंगे--तो मैंने कहा, कुछ तो करूं! यह मुझे सूझ गया। मगर अब चित्रकार मेरा चित्र उतारने को आ रहे हैं और कवि मेरे संबंध में कविताएं लिख रहे हैं।
ख्याल रखना, जिस पर भी तुमने ध्यान दिया वह मजबूत होता चला जाता है। आधुनिक विज्ञान ने जो बड़ी से बड़ी खोजें की हैं उनमें एक खोज बड़ी चमत्कारी है--और वह यह कि जब वैज्ञानिक निरीक्षण करता है परमाणुओं का, अणुओं का, गहरी खुर्दबीन से, तो एक बहुत अनूठी बात पता चली कि जब वह उनका निरीक्षण करता है तब उनका व्यवहार बदल जाता है। परमाणुओं का निरीक्षण करने से व्यवहार बदल जाता है! यह तो हद्द हो गयी। इसका तो यह अर्थ हुआ कि जब तुम गौर

से कुर्सी को देखते हो तो कुर्सी वही नहीं रह जाती, जब वह कोई नहीं देख रहा था, जैसी तब थी! यह आदमी के संबंध में तो समझ में आता है कि रास्ते पर तुम चले जा रहे हो, कोई भी नहीं है, तो तुम एक ढंग के आदमी होते हो। फिर रास्ते पर कोई निकल आया, दो आदमी निकल आए, तो तुम बदल जाते हो, तुम थोड़े सम्हलकर चलने लगते हो। और अगर दो स्त्रियां निकल आएं और अगर सुंदर हुईं, तब तो तुम बिल्कुल ही बदल जाते हो। तब तो तुम एकदम झाड़ देते हो अपने को; सब तरह से सुंदर होकर, टाई-वाई ठीक करके चल पड़ते हो! चेहरे पर रौनक आ जाती है, पैर में गति आ जाती है!
तुमने देखा, दस आदमी बैठकर बात कर रहे हों और एक स्त्री वहां आ जाये, बात का पूरा का पूरा रूप बदल जायेगा--तत्क्षण! अब वह दसों के बीच एक होड़ शुरू हो गयी कि इस स्त्री का ध्यान कौन आकर्षित करे!
स्त्री यानी मां! उसी से आंख का पहला संबंध है। उसी से पहला ध्यान मिला था। उसी की आंख से पहली जीवन की ज्योति पायी थी। जैसे ही स्त्री को देखा कि तत्क्षण वही ध्यान की ज्योति पाने की आकांक्षा जगती है। और दसों में प्रतिस्पर्धा हो जायेगी कि कौन इस स्त्री को आकर्षित कर लेता है। जो आकर्षित कर लेगा वह जीत गया, वह नेता हो गया, बाकी नौ हार गये।
वैज्ञानिक कहते हैं कि वस्तुएं तक वही नहीं रह जातीं निरीक्षण करने
के साथ, जैसी वह पहले थीं। उनमें भी रूपांतरण हो जाता है। यह तो हद्द हो गयी। परमाणु को देखने के साथ ही व्यवहार बदल जाता है--इससे एक बात सिद्ध होती है कि परमाणु भी आत्मवान हैं। वहां भी चैतन्य है। चैतन्य के अतिरिक्त तो ऐसा नहीं हो सकता।
तो तुम जब वृक्ष को गौर से देखते हो तो तुम यह मत सोचना कि वृक्ष वही रहा--बदल गया। इस पर बहुत प्रयोग हो रहे हैं। अगर तुम एक वृक्ष को चुन लो बगीचे में और रोज उसके पास जाकर उसको ध्यान दो, और ठीक उसके ही मुकाबले वैसा ही दूसरा वृक्ष हो उसको ध्यान मत दो, पानी दो, खाद दो, सब बराबर, सिर्फ ध्यान मत दो और एक वृक्ष को चुनकर तुम उसे रोज ध्यान दो, दुलराओ, पुचकारो, प्यार करो, उससे थोड़ी बात करो, थोड़ी गुफ्तगू अपनी कहो, थोड़ी उसकी सुनो--तुम अचानक हैरान होओगे, जिस वृक्ष को ध्यान दिया वह दुगनी गति से बढ़ता है। इसके अब तो वैज्ञानिक प्रमाण हैं। उसमें जल्दी फूल आ जाते हैं। और फूल उसके बड़े होंगे। खाद और पानी में कोई फर्क नहीं है। दोनों वृक्ष एक साथ रोपे गए थे, एक ऊंचाई के थे; लेकिन जल्दी ही, जिसको ध्यान दिया गया था वह बढ़ जायेगा, जिसको ध्यान नहीं दिया गया, उपेक्षित, दुर्बल, दीन रह जायेगा।
यही सत्य भीतर के संबंध में भी है। उन्हीं बातों को ध्यान दो जिन्हें तुम बढ़ाना चाहते हो। मुझसे तुम्हें प्रेम है, प्रेम को ही ध्यान दो। हां, बीच-बीच में छाया पड़ती है क्रोध की, ध्यान मत देना। क्योंकि जिसको तुम ध्यान दोगे वह बढ़ेगा। प्रेम को ही ध्यान देना! ध्यान देते-देते तुम पाओगे, क्रोध कम होने लगा। एक दिन ऐसी घड़ी आयेगी कि क्रोध की सारी ऊर्जा ध्यान में निमज्जित होकर प्रेम बन जायेगी। तब क्रोध की छाया भी न बनेगी। तब प्रेम शुद्ध होगा। और जहां प्रेम शुद्ध है वहीं प्रार्थना का जन्म हो जाता है।
"आपके प्रति इतना प्रेम रहते हुए भी, आपको सुनते वक्त कभी-कभी अकुलाहट
और क्रोध क्यों उठने लगता है?"
और भी कारण हैं। मैं जो कह रहा हूं, वह सभी से तुम्हें सांत्वना मिले, ऐसा जरूरी नहीं है। उसमें बहुत है जिससे तुम्हें सांत्वना न मिलेगी। उसमें बहुत है जिससे तुम्हारी धारणाएं टूटेंगी। उसमें बहुत है जिनके कारण तुम्हारे बंधे हुए विचार उखड़ेंगे। उसमें बहुत है जिनसे तुम्हारी अब तक की की गयी व्यवस्था में विघ्न-बाधा पड़ेगी। तो अकुलाहट भी होगी।
अगर तुम एक रास्ते पर चल रहे थे और सोच रहे थे कि सब ठीक है और मुझसे मिलना हो गया, और मैंने कहा कि कुछ भी ठीक नहीं है इसमें--तो अकुलाहट स्वाभाविक है।
एक सूफी मेरे पास लाया गया। तीस साल से निरंतर स्मरण-स्मरण परमात्मा
का कर रहा है, जिक्र कर रहा है। और ऐसी घड़ी आ गयी थी कि उसे अब सब जगह

परमात्मा दिखायी पड़ता है--वृक्षों में, पहाड़ों में, पत्थरों में। तो मैंने उससे कहा कि तीन दिन मेरे पास रहो और तीन दिन के लिए यह स्मरण बंद कर दो। उसने कहा, क्यों? मैंने कहा, तीस साल हो गए, अब इसका भी तो पता लगाना जरूरी है कि यह कहीं स्मरण ही तो नहीं है! यह कहीं आत्म-सम्मोहन तो नहीं है! क्योंकि बार-बार दोहरा-दोहरा-दोहराकर कहीं ऐसा तो नहीं तुमने ख्याल पैदा कर लिया है! तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता, सिर्फ भ्रांति हो रही है।
उसने कहा, यह बात तो ठीक है। वह थोड़ा डरा भी। लेकिन फिर भी उसने कहा, मैं कोशिश करूंगा। तीन दिन वह मेरे पास था। उसने परमात्मा का स्मरण छोड़ दिया, नमाज न पढ़ी। तीसरे दिन सुबह वह मुझ पर बहुत नाराज हो गया। उसने कहा, यह तो सब खराब कर दिया। तीस साल की मेरी साधना पर पानी फेर दिया! यह तुमने कैसी दुश्मनी की? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?
मैंने कहा, मैंने कुछ बिगाड़ा नहीं है, कोई दुश्मनी नहीं की है। एक तथ्य का तुम्हारे सामने उदघाटन हुआ। यह परमात्मा जो तुम सोच रहे हो कि तुम्हें दिखायी पड़ता है, अभी दिखायी नहीं पड़ा है। तुमने सिर्फ अपनी आंख में धुंध खड़ी कर ली है। तीस साल की मेहनत अगर तीन दिन में खो जाये, तो बचाने योग्य ही न थी। तीस साल में अगर वह घड़ी न आयी कि तुम्हारे बिना याद किए परमात्मा याद रहे तो कब आयेगी? तो कहीं कुछ भूल हो रही है। तुम्हारी याददाश्त में कहीं कोई भूल-चूक है। तुम्हारी प्रक्रिया भ्रांत है।
तो स्वाभाविक है कि वह मुझ पर नाराज हुआ। वह नाराज होकर चला गया। फिर कोई पंद्रह दिन बाद वापस लौटा। उसने कहा, क्षमा करना। शायद आप जो कहते हैं, ठीक है; यद्यपि मैं नाराज हुआ, क्योंकि मेरी सांत्वना छीन ली, मेरी सुरक्षा छीन ली। मैं सोचता था, एक सत्य मिल गया है और वह सत्य छीन लिया! यद्यपि अब मैं समझता हूं कि आपने छीना कुछ भी नहीं। मेरी मुट्ठी खाली थी। मैंने खोलकर न देखी थी। मैंने मान रखा था। अब मैं पूछने आया हूं कि क्या करूं।
तो ऐसा बहुत बार होगा कि सुनते-सुनते तुम्हें अकुलाहट होगी। क्योंकि तुम अपनी सारी मान्यताओं को घर नहीं छोड़कर आ गये हो। तुम उन्हें साथ ले आये हो। जब मैं कुछ बोल रहा हूं तो तुम्हारी मान्यताओं से सतत संघर्ष चल रहा है। एक शब्द तुम्हारे भीतर जाता है तो तुम्हारे हजार शब्दों की भीड़ उसे भीतर घुसने नहीं देती। बेचैनी खड़ी होगी, अकुलाहट खड़ी होगी और क्रोध भी उठेगा। लेकिन इसे समझने की कोशिश करना।
अकुलाहट तभी खड़ी होती है जब मेरे शब्द तुम्हें कुछ दृष्टि देते हैं
और वह दृष्टि तुम्हारी धारणाओं के विपरीत पड़ती है। तो जल्दी मत करना। सुनना, समझना। वह अकुलाहट तुम्हारे मन की तरकीब है धुआं खड़ा करने की, ताकि तुम समझ ही न पाओ। उस अकुलाहट में तुम चूक जाओगे। उस वक्त शांत रहकर सुन लेना। मन से कहना, घबड़ा मत, घर चलकर विचार कर लेंगे; पहले समझ लेने दे। तुझे तो हम समझते हैं, वर्षों तेरे साथ रहे हैं; इस बात को भी समझ लेने दे। फिर दोनों पर ठीक-ठीक तौलकर विचार कर लेंगे, तराजू में रख लेंगे, हिसाब-किताब लगा लेंगे। फिर जो ठीक होगा उसे मान लेंगे।
अगर तुमने ठीक से सुना तो फिर कोई अड़चन नहीं है। सत्य की एक खूबी है। तुम उसे ठीक से सुन लो, फिर तुम उससे बचकर भाग न सकोगे। उससे बचने का एक ही उपाय है कि तुम ठीक से सुनो ही न; सुनते वक्त ही तुम गड़बड़ कर दो तो ठीक है। अगर सुन लिया तो फिर असत्य उसके सामने टिक न सकेगा। अगर तुम्हारी धारणा ठीक होगी तो बचेगी; अगर ठीक न होगी तो गिर जायेगी। दोनों हालत में शुभ है। फिर मेरी बातें सुन-सुनकर तुम्हारे जीवन में रूपांतरण होंगे। वे रूपांतरण समाज को स्वीकृत होंगे, ऐसा नहीं है। समाज को धार्मिक व्यक्ति कभी स्वीकृत नहीं रहा, क्योंकि समाज अभी तक धार्मिक नहीं है। समाज को सांप्रदायिक व्यक्ति स्वीकृत हैं, क्योंकि समाज सांप्रदायिक है। हिंदू स्वीकृत है, मुसलमान स्वीकृत है, ईसाई स्वीकृत है; धार्मिक व्यक्ति किसी को स्वीकृत नहीं है। मैं न तुम्हें हिंदू बना रहा, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध। मेरी चेष्टा अनूठी है। मैं तुम्हें सिर्फ धार्मिक बनाना चाहता हूंः विशेषण-शून्य।

तो तुम जब लौटकर जाओगे, अगर मेरी बात तुम्हारे मन में गूंज गई, तुम्हारे हृदय को छू गई, तुम्हारे प्राणों का तार बज गया, तो तुम कुछ अन्यथा होने लगोगे। रूपांतरण शुरू होगा। तुम जहां हो, वहां अड़चन आएगी। तुम मुझ पर क्रोधित भी होओगे।
मुझको तो होश नहीं तुझको खबर हो शायद
लोग कहते हैं कि तुमने मुझे बर्बाद किया।
तो तुम मुझ पर नाराज होओगे। कहोगे कि इस आदमी न बर्बाद किया। भले-चंगे थे! अपना काम-धाम करते थे। यह सब गड़बड़ हो गया। ये गेरुए वस्त्र, यह माला-- लोग कहते हैं, पागल हो गये! लोग कहते हैं, सम्मोहित हो गये! अड़चन होगी दफ्तर में, दुकान में। मैं जानकर ही अड़चन खड़ी कर रहा हूं; क्योंकि उसी अड़चन के माध्यम से तुम बदलोगे, अन्यथा तुम बदल न सकोगे।
सुविधा से कोई बदलता नहीं--चुनौती से बदलता है। चुनौती कष्टपूर्ण होती है। प्रथम चरण में बड़ी पीड़ा होती है; लेकिन पीड़ा के बाद ही नया जन्म है।
तो तुम्हारी नाराजगी, तुम्हारा क्रोध एकदम अकारण है, ऐसा भी नहीं है। फिर जो मेरे प्रेम में पड़ गए हैं, काफी गहरे, जिनको समाज की भी चिंता नहीं है अब, उनको भी अड़चन है। उनको मेरे बिना खाली-खाली लगता है। वह भी नाराजगी का कारण है। वे मुझे न सुनें ज्यादा दिन तक तो बेचैनी होती है। तो जिस आदमी पर हमें निर्भर हो जाना पड़ता है, उस पर नाराजगी होने लगती है कि यह तो बात बुरी हुई। यह तो एक तरह की परतंत्रता हो गयी। अगर वह दो-चार महीने मेरे पास न आएं तो मन बड़ा-बड़ा वीरान हो जाता है; दौड़ होने लगती है आने की; हजार काम छोड़कर आने का मन होने लगता है। यह नशा ऐसा है। इसकी तलफ भी होगी। तो जैसी नाराजगी आनी शुरू होगी कि यह क्या मामला हुआ, यह तो हम जैसे किसी के वश में हो गए, जैसे कोई हमें खींचने लगा, कोई धागे बंध गए, जैसे प्रेम ने कुछ जंजीरें बना लीं! तो भी नाराजगी आती है।
तेरे बगैर किसी चीज की कमी तो नहीं
तेरे बगैर तबियत उदास रहती है।
सब हो तुम्हारे पास लेकिन अगर तुमने अपने हृदय में मुझे थोड़ी-सी जगह
दी तो मेरे बिना थोड़ी तबियत उदास रहने लगेगी। तो जो तुम्हें उदास कर रहा है, उससे तुम नाराज न होओगे तो क्या करोगे? यद्यपि यह उदासी संक्रमण काल की है। जल्दी ही यह उदासी भी चली जाएगी। और जल्दी ही ऐसी घड़ी भी आ जायेगी कि यहां भाग-भागकर आने की जरूरत न रहेगी। तुम जहां होओगे वहीं मैं चला आऊंगा। वह घड़ी आने के पहले यह उदासी की घड़ी गुजरेगी।
वीरां है मयकदा खुम-ओ-सागर उदास हैं
तुम क्या गए कि रूठ गये दिन बहार के।
तो अगर मेरे साथ तुमने अपनी बहार का संबंध जोड़ा--जो कि जुड़ ही जाएगा; अगर तुम्हारा नाच मेरे साथ पैदा हुआ, तो संबंध जुड़ ही जायेगा; अगर तुम यहां आकर खुश हुए, प्रसन्न हुए, आनंदित हुए, उत्साह जगा, उत्सव हुआ--तो घर लौटकर तुम उदास हो जाओगे। तो मन यहां की तरफ भागा-भागा रहेगा। करोगे कुछ, याद यहां की बनी रहेगी। पत्नी, बच्चे पराए मालूम होने लगेंगे। अपना ही घर धर्मशाला मालूम होने लगेगा। तो नाराजगी बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन यह संक्रमण की बात है। थोड़े और गहरे उतरोगे तो धीरे-धीरे तुम्हें पहली दफा पत्नी-बच्चे अपने मालूम होंगे।
मैं तुम्हें तोड़ने को नहीं हूं, किसी से भी तोड़ने को नहीं हूं! वही मेरी निष्ठा है। तुम्हें मैं किसी से भी तोड़ने की चेष्टा नहीं कर रहा हूं। तुम्हें जोड़ने की ही चेष्टा है। लेकिन इसके पहले कि असली जोड़ घटे, नकली जोड़ टूटेंगे। इसके पहले कि तुम अपने बच्चों को सच में प्रेम कर पाओ, वह जो झूठा प्रेम है--जो तुमने अब तक समझा है प्रेम है--वह जायेगा। वह जायेगा तो तुम बेचैन होओगे। तुम्हारे हाथ खाली लगने लगेंगे। तुम्हारा हृदय रिक्त होता हुआ मालूम पड़ेगा। लेकिन भरने की वह पहली शर्त है। तुम्हें पहले सूना करूंगा, खाली करूंगा, ताकि तुम भरे जा सको। तुम्हें काटना भी पड़ेगा, छैनी उठाकर तुम्हारे कई टुकड़े अलग भी करने पड़ेंगे--तभी तुम्हारी प्रतिमा निखर सकती है।

तो अकारण नहीं है, स्वाभाविक है। अगर समझ लिया तो बेचैन न होओगे। ये बेचैनी की घड़ियां बीत जायेंगी।
प्रेम कभी भी किसी को दुखी नहीं किया है। और प्रेम कभी किसी के लिए बंधन नहीं बना है। अगर मालूम पड़ता हो तो इतना ही समझना कि नया-नया है। यह स्वाद अभी जबान पर बैठा नहीं; एक दफा बैठ जायेगा तो तुम पाओगे, प्रेम ही स्वतंत्रता है।
प्रेम मुक्ति है। प्रेम से बड़ी कोई मुक्ति नहीं।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग एक
इकतीसवां प्रवचन

सम्यक दर्शन के आठ अंग

पहला सूत्रः "सम्यक दर्शन के आठ अंग हैंः निःशंका, निष्कांक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थिरीकरण, वात्सल्य और प्रभावना।" एक-एक अंग को बहुत ध्यान से समझना जरूरी है।
"निःशंका... "
सम्यक दर्शन का पहला अंग, पहला चरणः अभय। मन में कोई शंका न हो, कोई भय
न हो।
साहस! क्योंकि जो साहसी हैं वे ही केवल सत्य की खोज पर जा सकेंगे। सत्य की खोज में, समझ से भी ज्यादा मूल्य साहस का है। साहस का अर्थ होता हैः जहां कभी न गये हों, जिसे कभी न जाना हो, अपरिचित, अनजान, अज्ञेय--उसमें प्रवेश।
सत्य है अपरिचित। उसे अब तक जाना नहीं। जो जाना-माना है, उससे भय मिट जाता है; उससे हम परिचित हो जाते हैं। जिस रास्ते पर बहुत बार आये-गये, उस रास्ते पर फिर डर नहीं लगता। पहली बार, नये रास्ते पर, भय प्रतीत होता हैः पता नहीं, रास्ता कहां ले जाये, और पता नहीं रास्ते पर क्या घटे! और सत्य का रास्ता तो तुम कभी चले नहीं। जिस रास्ते पर तुम चले हो, वह है संसार का रास्ता। साहस के अभाव के कारण ही हम बार-बार संसार के रास्ते पर ही परिभ्रमण करते रहते हैं।
मनस्विद कहते हैं कि आदमी अपरिचित सुख से भी डरता है; परिचित दुख को
भी पकड़े रखता है, कम से कम परिचित तो है! कम से कम जाना-माना, अपना तो है! इतने दिनों का नाता तो है! अपरिचित सुख से भी भय लगता है, कि पता नहीं क्या हो, क्या घटे! और जो व्यक्ति सत्य की खोज में चला है, वह तो अत्यंत अपरिचित की खोज में चला है।
अकसर लोग सत्य की खोज नहीं करते, शास्त्र को पकड़कर बैठ जाते हैं। क्योंकि शास्त्र में कहीं जाना नहीं--शब्द का खेल है; बुद्धि की खुजलाहट है। तोते की तरह रट लेंगे, याद कर लेंगे और सोच लेंगे, पहुंच गये। जैसे कोई हिमालय के नक्शे को लेकर बैठ जाये, छाती से लगाकर रखे और सोचे कि पहुंच गये; लेकिन हिलेरी को या तेनसिंग को जब गौरीशंकर चढ़ना होता है तो यह छाती पर नक्शे लगाने जैसा नहीं है, यह जीवन को दांव पर लगाना है। साहस चाहिये! मृत्यु भी घट सकती है। जो है वह भी खो सकता है। और उसका तो कोई पता नहीं जो मिलने को है।
तो जिसके पास जुआरी जैसा दिल है कि जो है उसे दांव पर लगा दे, उसके लिये जो नहीं है, वही केवल सत्य की खोज में सफल हो पाता है। दुकानदार सफल नहीं हो पाते। हिसाबी-किताबी सफल नहीं हो पाते। इसलिये महावीर सम्यक दर्शन का पहला सूत्र कहते हैंः निःशंका। मन में जरा भी भय न हो, तो ही जा सकोगे। अभय का, वीरों का मार्ग है--कायरों का नहीं, भगोड़ों का नहीं।
अब यहां तो उलटी हालत घटी है। जैन धर्म को स्वीकार करनेवाले, जरा भी साहसी नहीं हैं। साहस से उनका कोई संबंध नहीं रहा है और उन्होंने अपनी कायरता को अच्छे-अच्छे शब्दों में ढांक लिया है... अहिंसा! अकसर मुझे ऐसा दिखाई पड़ा कि जो आदमी डरता है कि कोई उसकी हिंसा न कर दे, वह अहिंसक हो जाता है। इस भय से कि कहीं दूसरा मेरी हानि न कर दे, वह कहता है हानि किसी को पहुंचाना ही नहीं। वह स्वयं भी हानि नहीं पहुंचाता, क्योंकि हानि पहुंचाने में हानि उठाने का खतरा भी जुड़ा है। वह किसी को मारता भी नहीं है, क्योंकि मारने जाने में अपने मारे जाने की भी संभावना खुलती है। वह अहिंसा की बात करता है।
यहां ख्याल रखना, अहिंसा वीरों का वेश है--उनका नहीं जो अभी डर रहे हैं, भयभीत हो रहे हैं, घबड़ा रहे हैं। उनकी अहिंसा किसी काम की नहीं है। वह तो केवल लफ्फाजी है। वह तो ऊपर से थोप लिया आवरण है। वह तो अपने को छिपा लेना है, सुरक्षा है।

महावीर कहते हैं, निःशंका पहला चरण है। और जो संसार से ही घबड़ा गये हैं, वह सत्य की यात्रा पर क्या खाक निकल सकेंगे! जहां डरने जैसा कुछ भी न था, क्योंकि जहां खोने जैसा ही कुछ न था, वहां जो डर गये, वे सत्य की यात्रा पर कैसे निकल सकेंगे? इस भेद को ख्याल में लो।
सत्य की खोज के नाम पर तुम कहीं संसार से डरकर तो नहीं बैठ गये हो। जैन मुनियों को मैं देखता हूं तो ऐसा ही प्रतीत होता है। अधिक मौकों पर वे सत्य की खोज में नहीं गये, सिर्फ संसार की खोज से रुक गये हैं। संसार की खोज से रुक जाना अनिवार्य रूप से सत्य की खोज नहीं है। हां, सत्य का खोजी संसार की खोज से मुक्त हो जाता है, यह जरूर सही है। लेकिन संसार की खोज छोड़ देनेवाला सत्य की खोज पर निकल जाता है, यह आवश्यक नहीं है।
ऐसा समझो, एक आदमी गौरीशंकर चढ़ने जाता है--गौरीशंकर चढ़ने जायेगा तो पूना छूटेगा। लेकिन पूना छोड़कर कोई बैठ जाये, इससे गौरीशंकर नहीं पहुंच जायेगा। पूना छोड़कर बैठने के हजार उपाय हैंः पूना की ठीक सीमा पर बाहर बैठा रहे; जहां पूना का कारपोरेशन का क्षेत्र शुरू होता है, बस उसकी सीमा पर बैठा रहे। लेकिन इससे कोई गौरीशंकर पर नहीं पहुंच जायेगा। हां, गौरीशंकर की यात्रा पर जो गया है वह पूना से जरूर मुक्त हो जायेगा; उसे पूना छोड़ना ही पड़ेगा।
महावीर ने संसार छोड़ा, सत्य की यात्रा पर गये, इसलिये। बड़े साहस का कदम उठाया। लेकिन जैन मुनि! ... वह संसार से डरकर बैठ गया है। संसार से जो डर गया वह सत्य में तो जायेगा ही कैसे? परिचित से जो डर रहा है वह अपरिचित में तो जायेगा कैसे? दिखाई पड़नेवाले से जो डर रहा है वह अदृश्य की यात्रा पर तो कैसे कदम उठायेगा? जहां भीड़ है, संगी-साथी हैं, परिवार है, मित्र हैं, उस रास्ते पर, राजपथ पर चलने से डर रहा है, तो बीहड़ वनों में और पगडंडियों पर उतरेगा? सत्य की खोज पर तो जाना पड़ता है अकेले। वहां तो कोई साथी न होगा, कोई संगी न होगा। वहां तो शास्त्र भी छोड़ देने होंगे, शब्द भी छोड़ देने होंगे। वहां तो समाज से जो लिया है वह सब छोड़कर जाना होगा। भाषा भी छोड़ देनी होगी। इसलिये महावीर ने अपने संन्यासी को मुनि कहा था, कि वह भाषा का त्याग कर दे। क्योंकि भाषा तो समाज की ही देन है। गौर से देखें तो भाषा ही समाज है। जब तुम बोलते हो तभी समाज बनता है; जब तुम नहीं बोलते तो समाज नहीं बनता। तुम अगर चुप खड़े हो तो तुम अकेले हो; बोले, कि जुड़े।
थोड़ी देर को सोचो! एक गांव तय कर ले कि अब वाणी का त्याग करते हैं, पूरा गांव चुप हो जाये, तो उस गांव में अकेले-अकेले लोग रह जायेंगे। उस गांव में समाज न रहेगा, क्योंकि सेतु गिर जायेंगे। दो आदमियों के बीच जो सेतु हैं वे तो शब्द हैं। अगर सारा गांव तय कर ले कि अब हम चुप होंगे तो गांव मिट जायेगा; व्यक्ति रह जायेंगे, समूह न रह जाएगा। समूह तो जीता है भाषा पर। महावीर ने कहा कि तुम भाषा भी छोड़ोगे तो ही जा सकोगे सत्य तक। हां, जब सत्य को जान लो, तब चाहे भाषा का उपयोग करके लोगों को समझा देना। लेकिन जानते समय छोड़कर जाना होगा, मौन होना होगा, शून्य होना होगा। और जो भी तुम्हारे पास है उस सबको उसके लिए दांव पर लगा देना होगा, जिसको न तुम जानते, न कोई आश्वासन है जिसका कि पक्का है, मिलेगा। क्योंकि कोई दूसरा तुम्हें आश्वासन नहीं दे सकता। अगर मुझे कुछ मिला तो मैं लाख सिर पटकूं तो भी तुम्हें समझा नहीं सकता कि तुम्हें भी मिलेगा। कोई उपाय नहीं है। सत्य की अनुभूति आंतरिक है। वस्तुतः नहीं है सत्य, कि तुम्हें दिखा दूं हाथ में रखकर, कि यह रहा सत्य, ताकि तुम्हें भरोसा आ जाये। तुम छूकर तो न देख सकोगे, आंख से न देख सकोगे, कान से सुना न जा सकेगा। भरोसा करना होगा। उसी भरोसे को महावीर कहते हैंः निःशंका, ट्रस्ट। एक गहन श्रद्धा की जरूरत होगी; एक ऐसी श्रद्धा की, जिसमें जरा भी संदेह न हो, क्योंकि जरा भी संदेह हुआ तो संदेह पैर को पीछे खींच लेता है। संदेह पैर को आगे बढ़ने ही नहीं देता। अगर तुम्हें जरा भी डर रहा और पता, पता नहीं होगा ऐसा, न होगा ऐसा-- अगर ऐसी तुम आशंका में घिरे रहे, तो कदम उठेगा नहीं।
इसलिए पहला कदम महावीर कहते हैंः निःशंका। लेकिन हम तो बड़ी आशंका से भरे हैं। और हमारी आशंकाएं बड़ी अदभुत हैं! हमारी आशंकाएं ऐसी हैं कि जैसे कोई नंगा कहे कि मैं नहाऊं कैसे, क्योंकि नहा लूंगा तो फिर कपड़े कहां

निचोडूंगा, कपड़े कहां सुखाऊंगा! नंगा है, कपड़े हैं नहीं; लेकिन स्नान नहीं करता इस डर से कि कहीं कपड़े भीग न जायें। भिखारी है, डरता है कि कहीं चोर-लुटेरे न मिल जाएं। पास कुछ भी नहीं। लुटेरे मिल भी जाएंगे तो उन्हीं को लुटना पड़ेगा, कुछ देकर जाना पड़ेगा। लेकिन, भिखारी भी डरता है कि कहीं चोर-लुटेरे न मिल जाएं। हमारी दशा ऐसी ही है। हमारे पास कुछ भी नहीं और आशंका बहुत है कि कहीं खो न जाये।
कभी तुमने सोचा, क्या है तुम्हारे पास जो खो जायेगा? हाथ तुम्हारे खाली हैं, हृदय तुम्हारा रिक्त है, संपत्ति के नाम पर कुछ ठीकरे इकट्ठे कर रखे हैं जो मौत तुमसे छीन ही लेगी। तुम लाख उपाय करो तो भी अंततः मौत से तुम हारोगे। कितने ही बचो, इधर बचो उधर बचो, इधर छिपो उधर छिपो, एक न एक दिन मौत तुम्हारी गर्दन पकड़ ही लेगी।
अंततः मौत जीतेगी, तुम न जीत पाओगे--इतनी बात निश्चित है। बीच में कितनी देर तुम धोखा दे लेते हो, मौत को इससे क्या फर्क पड़ता है? अंततोगत्वा मौत तुम्हारी गर्दन पकड़ लेगी और तुम्हारे ठीकरों को उगलवा लेगी। जिसे तुमने इनकमटैक्स आफिस से बचा लिया होगा, उसको तुम मौत से न बचा सकोगे। जिसको तुमने चोरों से, डाकुओं से बचा लिया होगा, उसको तुम मौत से न बचा सकोगे।
यहां, पहली तो बातः तुम्हारे पास कुछ है नहीं, और जो तुम्हारे पास है
वह सब मौत छीन लेगी। तो गंवाने का डर क्या है? भय क्या है? लेकिन तुम बड़े भयभीत होते हो।
महावीर कहते हैं, ठीक से अपनी स्थिति को समझो तो आशंका का कोई कारण ही नहीं है। आशंका के लिए जरा भी कोई आधार नहीं है। आशंका कल्पित है और जब आशंका गिर जाये, और तुम देख लो खुली आंख से कि आशंका की तो कोई बात ही नहीं है, मेरे पास कुछ है नहीं... ।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के द्वार पर एक भिखारी आया। तो मुल्ला ने उसे देखते ही से कहा कि मालूम होता है गांव में नये-नये आये हो। उस भिखारी ने कहा, आप कैसे पहचान गए? बिल्कुल ठीक कहते हैं। मैं अभी स्टेशन से ही उतरकर चला आ रहा हूं। मगर आप पहचाने कैसे? आप कोई ज्योतिषी हो?
उसने कहा कि मैं कोई ज्योतिषी नहीं, लेकिन गांव के भिखारी जानते हैं
कि यहां कुछ मिलेगा नहीं।
भिखारी को भी देने योग्य हमारे पास क्या है! हमारे पास है ही कहां कुछ! लेकिन हम मानकर बैठे हैं, मान्यता है, और मान्यता में हम काफी रस लेते हैं। मान्यता के ढक्कन को उघाड़कर भी भीतर के खाली बर्तन को नहीं देखते। डर लगता है कि कहीं ऐसा न हो कि खाली ही हो! मुट्ठी हम बांधकर रखते हैं, खोलते नहीं, क्योंकि कहीं दिखाई न पड़ जाये कि खाली है। हम अपने को समझाये रखते हैं कि है, बहुत है। हम गुनगुनाते रहते हैं कि बहुत है। और फिर आशंका पैदा होती है कि कहीं छिन न जाये।
महावीर जब तुमसे कहते हैं, आशंका नहीं चाहिये, निःशंका की स्थिति चाहिये, तो वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम निःशंका को आरोपित करो। वे इतना ही कह रहे हैं कि तुम अपनी आशंका को जरा गौर से खोलकर, आंखों के सामने बिछाकर तो देख लोः वहां कोई कारण है? कोई भी कारण नहीं है! जिस दिन तुम्हें ऐसी दृष्टि उपलब्ध होगी कि डरने का कोई भी कारण नहीं है, खोने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि है ही नहीं, उसी क्षण तुम्हारे जीवन में एक नई ऊर्जा का आविर्भाव होगा। उस नई ऊर्जा को कहोः श्रद्धा, भरोसा, ट्रस्ट। उस नई ऊर्जा को कहोः निःशंका। तब तुम असंदिग्ध भाव से बिना पीछे लौटकर देखे, सत्य की खोज में निकल जाओगे। वह भाव तुम्हें, यह अनुभव कि मेरे पास कुछ भी नहीं है, ना-कुछ ही दांव पर लगाना है, मिला तो ठीक न मिला तो कुछ खोता नहीं--तो फिर दांव पर लगाने में तुम झिझकोगे नहीं। तुम सभी दांव पर लगा दोगे।
मैंने सुना है, एक आदमी अमरीका की एक कार बेचनेवाली दुकान में गया। वह जिस कार को खरीदना चाहता था, उसका मिलना मुश्किल था। दुकानदार ने कहा, "कम से कम साल भर रुकना पड़ेगा। लंबा क्यू है। और कोई उपाय नहीं अभी देने का।" वह आदमी बड़ा नाराज हो गया। उसने कहा कि सालभर! गुस्से में उसने अपने खीसे

से नोटों के बंडल निकाले और जो कचरा फेंकने की टोकरी थी, उसमें डालकर दरवाजे के बाहर हो गया। दुकानदार भी चकित हो गया। और बहुत धनी लोग देखे थे, मगर यह आदमी अदभुत है! हजारों डालर, ऐसे कचरे में डालकर चला गया। उसने जल्दी से नोट निकलवाये, गिनती करवाई; दुगने थे, जितने कि कार के दाम हो सकते थे। उसने फौरन अपने आदमियों को कहा कि जाकर कार उसके घर पहुंचा दो। कार घर पहुंचा दी। दूसरे दिन वह हैरान हुआ। भागा हुआ उस आदमी के घर गया और कहा, "महानुभाव! वह सब नोट नकली हैं।" उस आदमी ने कहा, नकली न होते तो हम कचराघर में फेंकते?
एक बार तुम्हें दिखाई पड़ जाये कि नोट नकली हैं, तो कचराघर में फेंकना
भी आसान है। अड़चन कहां है? वस्तुतः ढोना मुश्किल हो जायेगा। उस बोझ को तुम किसलिये ढोओगे! उस बोझ को किस कारण ढोओगे!
महावीर तुमसे श्रद्धा जन्माने को नहीं कहते। यही महावीर का और अन्य शिक्षकों का भेद है। महावीर कहते हैं, तुम अपनी आशंका को ठीक से पहचान लो, वह गिर जाएगी। जो शेष रह जायेगा, वही श्रद्धा है। इसलिये महावीर श्रद्धा शब्द का उपयोग नहीं करते। एक-एक शब्द ख्याल करना। यहां महावीर श्रद्धा कह सकते थे, लेकिन नहीं कहा; साहस कह सकते थे, नहीं कहा। नकारात्मक शब्द उपयोग कियाः निःशंका। कोई विधायक शब्द उपयोग न किया, क्योंकि विधायक की कोई जरूरत नहीं है। सिर्फ आशंका की समझ आ जाए कि व्यर्थ है, कोरी है, अकारण है-- जैसे ही आशंका गिर जाती है तो जो शंकारहित चित्त की दशा है वही श्रद्धा है, वही साहस है, वही अभय है। तुम्हारे भीतर एक अनूठी ऊर्जा का जन्म होगा। वह दबी पड़ी है। तुम्हारी चट्टान ने, आशंका की चट्टान ने उस झरने को फूटने से रोका है। हटा दो चट्टानः झरना अपने से फूट पड़ेगा! झरना तो है ही! झरना तुमने खोया नहीं है।
इसलिए महावीर नहीं कहते कि झरने को खोजो। महावीर नहीं कहते कि श्रद्धा को आरोपित करो। महावीर कहते हैं, सिर्फ आशंका को उघाड़ो।
दूसरा चरण हैः निष्कांक्षा। जो भी तुम करो सत्य की खोज में, उसमें कोई आकांक्षा मत रखना। क्योंकि आकांक्षा ही संसार है। अगर सत्य की खोज पर भी आकांक्षा लेकर गये, तो तुम अपने को धोखा दे रहे हो, तुम संसार में ही दौड़ रहे हो। तुम्हें भ्रांति हो गई है कि तुम सत्य की खोज पर जा रहे हो। सत्य की खोज पर वही जाता है जिसकी आकांक्षा गिर गई।
आकांक्षा को हम समझें। फिर नकारात्मक शब्द हैः निष्कांक्षा। आकांक्षा क्या है? जैसे हम हैं उससे हम राजी नहीं हैं। एक बड़ी गहरी बेचैनी है--कुछ होने की, कुछ पाने की, कहीं और होने की, कहीं और जाने की। जहां हम हैं वहां अतृप्ति! जैसे हम हैं वहां अतृप्ति! जो हम हैं उससे अतृप्ति! कुछ और होना था, कहीं और होना था। किसी और मकान में, किसी और गांव में! किसी और पति के पास, किसी और पत्नी के पास! कोई और बेटे होते! कोई और देह होती! कोई और तिजोड़ी होती! लेकिन कुछ और! "कुछ और" की दौड़ आकांक्षा है।
तुम थोड़ा सोचो! कहीं भी तुम होते, क्या इससे आकांक्षा की दौड़ रुक जाती? तुम सोचते हो, जिस महल में तुम्हें होना चाहिए था, उसमें कोई है, उससे तो पूछो! वह कहीं और होने की दौड़ में लगा है। तुम जिस पद पर नहीं हो और सोचते हो, होना चाहिए थे, उस पद पर भी कोई है। उससे तो पूछो! वह कहीं और जाने की तैयारी में लगा है। जिस गांव तुम पहुंचना चाहते हो, वहां भी कोई रहता है। उससे तो पूछो! वह बिस्तर-बोरिया बांधे बैठा है कि कब ट्रेन मिल जाये कि वह कहीं और चल पड़े।
यहूदियों में एक कहानी है। एक यहूदी धर्मगुरु ने--गरीब आदमी था--एक रात सपना देखा। सपना देखा कि देश की राजधानी में जो पुल है नदी के ऊपर, उसके एक किनारे बिजली के ठीक खंभे के नीचे बड़ा धन गड़ा है। उसने धन भी देखा-- हीरे-जवाहरात चमकते हुए! सुबह उठा, सोचा सपना है। लेकिन दूसरी रात सपना फिर आया, ठीक वैसा का वैसा। दूसरे दिन सुबह जागकर वह एकदम यह न कह सका कि सपना है, क्योंकि सपने इस तरह नहीं दुहरते। फिर भी उसने सोचा कि क्या भरोसा, कहां जाना! लेकिन तीसरी रात सपना फिर आया, तब रुकना मुश्किल हो गया। उसने कहा, कोई राजधानी इतनी दूर भी नहीं है, जाकर देख तो आऊं मामला क्या है! वह कभी राजधानी गया भी न था। जब वह गया तो चकित हुआ। ठीक जैसा पुल उसने

सपने में देखा था वैसा ही पुल राजधानी का है। तब तो उत्साह बढ़ा। तेजी से चलने लगा। दूसरी तरफ पहुंचा। ठीक बिजली का खंभा वहीं है जहां सपने में देखा था। ठीक वैसा ही बिजली का बल्ब लगा है--तब तो भरोसा और बढ़ा। लेकिन एक मुसीबत थी। सपने में उसने यह न देखा था कि एक पुलिसवाला वहां पहरा देता है। तो वह राह देखने लगा कि पुलिसवाला जाये तो मैं खोदकर देखूं। लेकिन पुलिसवाला तभी जाता जब दूसरा आ जाता, ड्यूटी बदलती। वह दो-तीन दिन ऐसे चक्कर मारता रहा। पुलिसवाले ने भी बार-बार इस आदमी को वहां चक्कर मारते देखा। उसे बुलाया पास और कहा कि सुनो, क्या मामला है? आत्महत्या करनी है पुल से कूदकर? क्योंकि इसीलिये वहां वह खड़ा रहता था कि कोई आत्महत्या न कर ले। मामला क्या है?
उस यहूदी धर्मगुरु ने कहा, अब आपसे छिपाना क्या है; एक सपने के चक्कर में पड़ गया हूं। वह पुलिसवाला हंसा और उसने कहा, ठहरो! इसके पहले कि तुम अपना सपना कहो, मैं भी तुम्हें कह दूं। तीन दिन से मैं भी एक सपना देख रहा हूं। मैं एक सपना देख रहा हूं कि फलां-फलां गांव में... । जो उसने नाम लिया तो वह धर्मगुरु बड़ा हैरान हुआ, वह तो उसी के गांव का नाम है! फलां-फलां गांव में फलां-फलां नाम का एक धर्मगुरु है।
उसने कहा, अरे ठहरो! यह मेरा नाम है और मेरे गांव का तुम पता ले रहे हो! मैं ही हूं वह धर्मगुरु।
वह पुलिसवाला बहुत हंसा। उसने कहा कि मैं तीन दिन से एक सपना देखता हूं कि जहां धर्मगुरु सोता है उसके बिस्तर के नीचे एक खजाना गड़ा है। मैं तो एक दिन तो सोचा सपना है, दूसरे दिन कैसे सोचूं कि सपना है! हीरे-जवाहरात सब साफ दिखाई पड़ते हैं। और आज तीसरी रात फिर सपना देखा है। और तुमसे इसलिए कह रहा हूं कि तुम्हारा चेहरा उस सपने में मुझे दिखाई पड़ता है। यह माजरा क्या है? तुम तीन दिन से यहां चक्कर भी लगा रहे हो।
उस धर्मगुरु ने कहा कि अब कुछ माजरा नहीं है। मैं कुछ और ही सपना देखा हूं। लेकिन अब मैं कुछ कहूंगा नहीं, अब मैं जाता हूं गांव अपने वापस।
वह भागा आया। उसने अपनी खाट के नीचे खोदा, पाया, खजाना था!
हसीद फकीर इस कहानी में बड़ा रस लेते हैं। क्योंकि यह कहानी जीवन की कहानी है। तुम सोच रहे हो, कहीं और खजाना गड़ा है, किसी राजधानी में, किसी पुल के पास। वहां जो खड़ा है वह सोच रहा है कि तुम्हारे घर खजाना गड़ा है। तुमने कभी देखा! कभी-कभी राह से चलते भिखमंगे को देखकर भी धनपति के मन में भी ईर्ष्या आ जाती है। कभी-कभी सम्राटों के मन में ईर्ष्या आ जाती है। क्योंकि जिस मस्ती से भिखारी चल सकते हैं उस मस्ती से सम्राट तो नहीं चल सकते। बोझ भारी है, चिंता बहुत है। रात सो भी नहीं सकते। कौन सम्राट सो सकता है भिखारी की तरह! राह के किनारे की तो बात दूर; सुंदरतम, सुविधा से सुविधापूर्ण कक्षों में भी, आरामदायक बिस्तरों पर भी नींद नहीं आती। चिंताएं इतनी हैं, मन ऊहापोह में लगा रहता है। और भिखारी राह के किनारे, अखबार को बिछाकर ही सो जाता है और घुर्राटे लेने लगता है। कभी-कभी सम्राटों के मन में भी ईर्ष्या उठती है कि ऐसा स्वास्थ्य, ऐसी निश्चिंतता, ऐसी शांति, ऐसे विश्राम की दशा काश, हमारी भी होती! भिखमंगा भी रोज महल के पास से निकलता है, सोचता है, काश, हमारे पास ऐसा महल होता!
आकांक्षा का अर्थ हैः तुम जहां हो वहां राजी नहीं। जो जहां है वहां राजी नहीं। कहीं और दिखाई पड़ता है जीवन का स्वप्न पूरा होता। वहां जो है, उसका भी जीवन का स्वप्न पूरा नहीं हो रहा है। यहां भिखमंगे तो पराजित हैं ही, यहां सिकंदर भी पराजित हैं। यहां भिखमंगे तो खाली हाथ हैं ही, यहां सिकंदर भी खाली हाथ हैं। जिस दिन तुम्हें आकांक्षा की यह व्यर्थता दिखाई पड़ जाती है, उसी दिन निष्कांक्षा पैदा होती है, निष्काम-भाव पैदा होता है। सत्य के जगत में तुम आकांक्षा से नहीं जा सकोगे। क्योंकि सभी आकांक्षा संसार में लौटा लाती है। तो महावीर कहते हैं, अगर तुम स्वर्ग की आकांक्षा से सत्य की खोज करो, चूक जाओगे। क्योंकि स्वर्ग की खोज फिर संसार की ही खोज है। परिमार्जित, सुधरे हुए संस्कार--संसार का ही संस्करण है वह। यहीं जो सुख नहीं मिल पाये हैं, उनका ही बढ़ा-चढ़ा रूप है, फैला विस्तार है। जो शराब यहां नहीं पी, वहां बहिश्त में उसके झरने बहाये हैं--वह तुम्हारी

ही कल्पना है। जो स्त्रियां यहां उपलब्ध नहीं हो सकीं, वहां अप्सराओं की तरह बैठी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं! इतना ही नहीं, अगर तुम किसी वृक्ष के नीचे ध्यान वगैरह करो, तो उर्वशी और मेनका आकर तुमको परेशान करेंगी। तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं बिल्कुल कि तुम कब करो तपश्चर्या कि वे आयें। यह वासना, अतृप्त वासना ही, नये-नये विक्षेप कर रही है। यह अतृप्त वासना का ही विस्तार है।
तो महावीर कहते हैं, किसी भी तरह के लाभ की आकांक्षा--वह स्वर्ग का ही लाभ क्यों न हो--संसार में लौटा लायेगी, सम्यक दृष्टि पैदा न होगी। निष्कांक्षा! कैसे निष्कांक्षा पैदा हो? आकांक्षा को समझने से; आकांक्षा की व्यर्थता को देख लेने से। जैसे कोई आदमी रेत से तेल निचोड़ रहा हो, और न निचुड़ता हो और परेशान हो रहा हो और कोई उसे बता दे कि "पागल, रेत में तेल होता ही नहीं; इसलिए तू लाख उपाय कर, तेरे उपायों का सवाल नहीं है, तेल निकलेगा नहीं; तू लाख सिर मार, तेरा सिर टूटेगा, गिरेगा, रेत से तेल निकलेगा नहीं।"
अकांक्षा से कभी सत्य नहीं निकला, क्योंकि आकांक्षा स्वप्नों की जननी है। आकांक्षा का जिसने सहारा पकड़ा, वह सपनों में खो गया; उसने अपने सपनों का संसार बना लिया। लेकिन सत्य उससे कभी निकला नहीं। वह रेत की तरह है; उससे तेल निकल नहीं सकता। तेल वहां है नहीं।
ध्यान रखना, महावीर की प्रक्रिया का यह अनिवार्य हिस्सा है कि वह जो
है उसे देखने को कहते हैं। आकांक्षा है तो आकांक्षा को देखो, पहचानो, परखो, चारों तरफ से अवलोकन, निरीक्षण करो, विश्लेषण करो। खोज करो कि इससे तुम जो चाह रहे हो वह हो भी सकता है? अगर नहीं हो सकता तो आकांक्षा गिर जायेगी। जो शेष रह जायेगी, चित्त की दशा, निष्कांक्षा, वही दूसरा चरण है सम्यक दृष्टि का।
तीसरा--निर्विचिकित्सा। जुगुप्सा का अभाव। अपने दोषों को तथा दूसरों
के गुणों को छिपाने का नाम है जुगुप्सा। प्रत्येक व्यक्ति उलझा है जुगुप्सा में। हम अपने दोष छिपाते हैं और दूसरों के गुण छिपाते हैं।
अगर तुमसे कोई कहे फलां आदमी देखा, कितनी प्यारी बांसुरी बजाता है, तुम फौरन कहते होः वह क्या बांसुरी बजायेगा! चोर, लुच्चा, लंपट! अब चोर, लुच्चा, लंपट से बांसुरी बजाने का कोई भी संबंध नहीं है। कोई चोर है, इससे बांसुरी बजाने में बाधा नहीं पड़ती। लेकिन तुम तत्क्षण दबा देते हो कि वह चोर है, वह क्या बांसुरी बजायेगा!
और तुम अपने दोषों को छिपाये चले जाते हो। तुम अगर क्रोध भी करते हो
तो जिस पर क्रोध करते हो उसी के हित के लिये करते हो, सुधार के लिये, एक तरह की सेवा समझो। अगर तुम बच्चे को पीटते भी हो, तो उसी के भविष्य के लिये। हालांकि कभी पीटने से, किसी का भविष्य बना नहीं, बिगड़ा भला हो। मां अगर बेटे को पीटती है, तो सोचती है, क्योंकि वह कपड़े खराब कर आया, धूल-धवांस में खेला, या गलत बच्चों के साथ खेला। लेकिन अगर भीतर खोज करे तो पायेगी कि वह क्रोध से उबल रही थी। पति से कुछ झंझट हो गई थी। पति पर न फेंक पाई क्रोध को, बच्चे की प्रतीक्षा करती रही। क्योंकि यह बच्चा कल भी उन्हीं बच्चों के साथ खेला था और कल भी यह धूल-धवांस से भरा लौटा था। बच्चे हैं--लौटेंगे ही। बच्चे बूढ़े नहीं हैं। और समय के पहले उन्हें बूढ़ा बनाने की चेष्टा बड़ी खतरनाक है। उनके लिये अभी कपड़ों का कोई मूल्य नहीं है--और शुभ है कि कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि जिस दिन कपड़ों का मूल्य हो जाता है उसी दिन अपने भीतर के सब मूल्य खो जाते हैं। अभी भीतर का आनंद पर्याप्त है, कपड़े गंदे भी हो जाते हैं तो चिंता नहीं; लेकिन भीतर का खेल शुद्ध रहता है, स्वच्छ रहता है। अभी भीतर की मौज इतनी बड़ी है कि थोड़ी धूल पड़ जाये तो बर्दाश्त कर लेती है। अभी बच्चे में प्रदर्शन का भाव नहीं जगा है और अभी थोथी वस्तुओं का मूल्य निर्मित नहीं हुआ है। अभी असली का मूल्य है। खेल का आनंद, रस मूल्यवान है। कपड़े इत्यादि अभी निर्मूल्य हैं। अभी इनका कोई, कोई अर्थ नहीं है। लेकिन कल भी वह ऐसा ही आया था, तब मां ने कुछ भी न कहा था। लेकिन आज टूट पड़ती है, पीटने लगती है। पूछो तो कहेगी, सुधार के लिये! लेकिन अगर गौर से निरीक्षण करे तो पायेगी कि पति पर नाराजगी थी। पति पर निकाल न सकी--पति

परमात्मा है! ऐसा पतियों ने ही समझाया हुआ है, तो उन पर नाराजगी निकाली भी नहीं जा सकती। वहां द्वार-दरवाजा बंद है।
तो जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है, ऐसा ही क्रोध भी अपने से कमजोर की तरफ बहता है। बच्चे से ज्यादा कमजोर और तुम क्या पाओगे? बच्चे से ज्यादा कोमल और तुम क्या पाओगे? पति अगर नाराज हो जाता है दफ्तर में मालिक से, तो घर पत्नी पर निकाल लेता है। पत्नी नाराज हो जाती है, बच्चे पर निकाल लेती है। बच्चे को तुमने देखा! जाकर अपने कमरे में बैठकर या तो किताब फाड़ डालेगा, या अपनी गुड़िया की टांगें तोड़ देगा, क्योंकि अब और कहां निकाले! सारा संसार वहां खतम हो जाता है।
हम अपने दोषों को भी बड़ी सुंदर व्याख्या देते हैं। हम दूसरों के गुणों को भी स्वीकार नहीं करते, अस्वीकार करते हैं। और हम अपने दोषों को भी बचाते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा उससे पूछ रहा था। एक आदमी मुसलमान था, हिंदू हो गया था। उसके बेटे ने पूछा कि पिताजी, इसको हम क्या कहें? उसने कहा, "क्या कहना, गद्दारी है! जो आदमी मुसलमान से हिंदू हो गया, यह गद्दारी है।" पर उसके बेटे ने कहा कि कुछ ही दिन पहले, एक आदमी हिंदू से मुसलमान हुआ था, तब आपने यह न कहा? उसने कहा कि वह धर्म-रूपांतरण था। उस आदमी को बुद्धि आई थी, सदबुद्धि का आविर्भाव हुआ था।
तो जब हिंदू मुसलमान बने, तो मुसलमान कहता है, सदबुद्धि; और जब मुसलमान हिंदू बन जाये तो गद्दार! यही हिंदू के लिए मूल्य है।
मैं एक जैन संत को जानता था। वे हिंदू थे और जैन हो गये। तो जैन उनसे बड़े प्रसन्न थे, हिंदू बड़े नाराज थे। हिंदू उनकी बात भी न करते। लेकिन जैन उन्हें बड़ा सम्मान देते, उतना सम्मान देते, जितना कि उन्होंने कभी जैन संतों को भी नहीं दिया था। क्योंकि इस आदमी का हिंदू से जैन हो जाना, इस बात का सबूत था कि जैन धर्म सही है। तब तो कोई हिंदू जैन होता है, नहीं तो क्यों होगा! तो जैनों से भी ज्यादा आदृत जैनों में वे थे; लेकिन हिंदुओं में उनका बड़ा अनादर था क्योंकि यह गद्दार था। इसने हिंदू धर्म की अवमानना की।
तुम इसे जरा गौर करना। हमारे जीवन में दोहरे मूल्य होते हैं। अपनी भूल को भी हम सोने से ढंक लेते हैं; दूसरे के सौंदर्य को भी हम मिट्टी से पोत देते हैं। इसको महावीर कहते हैं जुगुप्सा।
जुगुप्सा के अभाव का नाम हैः निर्विचिकित्सा।
यह बहुत बहुमूल्य सूत्र है। इसे अगर ख्याल में रखा तो ही तुम आत्म-रूपांतरण को पा सकोगे, अन्यथा नहीं। क्योंकि जो आदमी अपनी भूलें छिपाता है और दूसरों के गुण दबाता है, वह आदमी कभी गुणवान न हो सकेगा। दूसरे के गुण को देखना, पहचानना, स्वीकार करना; क्योंकि दूसरे में देखकर ही तो तुममें भी उसके जन्म का सूत्रपात होगा। किसी के मधुर कंठ को सुनकर ही तो तुम्हें भी ख्याल उठेगा कि मेरा कंठ भी मधुर हो सकता है। किसी कोयल की कुहू-कुहू सुनकर तो तुम्हारे भीतर भी रस का संचार होगा।
लेकिन तुमने कहा, "यह क्या कुहू-कुहू है? यह सब शोरगुल है! यह सब उत्पात है! यह कोई संगीत है?" अगर तुमने कुहू-कुहू को इनकार किया तो तुमने अपने भीतर भी कुहू-कुहू की संभावना को इनकार कर दिया।
तो दूसरे में जब कोई महिमा दिखाई पड़े तो सम्मान और समादर से, अहोभाव से, उसे स्वीकार करना। उस स्वीकृति में, तुम्हारे भीतर भी महिमा के जन्म का पहला बीजारोपण होगा। और अपने भीतर जब कोई दोष दिखाई पड़े तो उसे छिपाना मत, क्योंकि छिपाने से दोष मिटते नहीं, छिप जाते हैं, और भीतर-भीतर बढ़ते रहते हैं। जिसे तुमने छिपाया वह बढ़ेगा। अपना दोष हो तो उसे प्रगट कर देना; उसे स्वीकार कर लेना।
तुमने कभी ख्याल किया, दोष स्वीकार करते से ही तुम्हारे भीतर क्रांति घटित हो जाती है! उस दोष का तुम्हारे ऊपर कब्जा छूट जाता है।
ईसाइयों में कन्फैशन का बड़ा मूल्य है। उसी कन्फैशन की तरफ महावीर का इशारा है। कन्फैशन का अर्थ होता हैः अपनी बड़ी से बड़ी भूल को भी स्वीकार कर लेना। स्वीकार करते ही तुम हलके हो जाते हो। प्रगट करते ही तुम निर्विकार

हो जाते हो। छिपाया, दबाया, तो जो आज छिपाया है उसे कल भी छिपाना पड़ेगा। और मजा यह है कि जिसे तुम छिपाओगे, दूसरे उघाड़ने की कोशिश करेंगे। क्योंकि जो तुम उनके साथ कर रहे हो, वही वे तुम्हारे साथ कर रहे हैं। तुम उनके गुणों को दाब रहे हो, उनके दुर्गुणों को उघाड़ रहे हो--वे तुम्हारे गुणों को दाब रहे हैं, तुम्हारे दुर्गुणों को उघाड़ रहे हैं। तो तुम जो छिपाओगे, उसे लोग उघाड़ेंगे। और अगर तुमने छिपाया और न छिपा पाये और लोगों ने उघाड़ा तो भी दुख होगा, पीड़ा होगी, नाराजगी होगी, क्रोध होगा। इससे अंधेरा बढ़ेगा, प्रकाश घटेगा। जो हो गई हो भूल, उसे स्वीकार कर लेना।
चौथा चरण हैः अमूढ़दृष्टि। यह बहुत क्रांतिकारी चरण है।
महावीर ने कहा है, दुनिया में तीन तरह की मूढ़ताएं हैं, भ्रांत दृष्टियां हैं। एक मूढ़ता को वे कहते हैं, लोकमूढ़ता। अनेक लोग अनेक कामों में लगे रहते हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि समाज ऐसा करता है; क्योंकि और लोग ऐसा करते हैं। उसको महावीर कहते हैंः लोकमूढ़ता। क्योंकि सभी लोग ऐसा करते हैं, इसलिए हम भी करेंगे! ... सत्य का कोई हिसाब नहीं है--भीड़ का हिसाब है। तो यह तो भेड़चाल हुई।
एक स्कूल में एक शिक्षक ने पूछा एक छोटे बच्चे से कि तुम्हारे घर भेड़ें हैं, तो अगर तुमने अपने आंगन में दस भेड़ें बंद कर रखी हैं और उनमें से एक छलांग लगाकर बाहर निकल जाये, तो कितनी पीछे बचेंगी? उस बच्चे ने कहाः एक भी नहीं। उस शिक्षक ने कहा, "तुम्हें कुछ गणित का हिसाब है? मैं कह रहा हूं दस अंदर हैं, और एक छलांग लगाकर निकल जाये तो कितनी बचेंगी?" उसने कहा, "गणित की तुम समझो, भेड़ों को मैं अच्छी तरह जानता हूं। एक निकल गई तो सब निकल गईं। गणित का मुझे भला पता न हो, लेकिन भेड़ों का मुझे पता है।" भेड़चाल! भीड़ के पीछे चले चलना! यह भरोसा रखकर कि जहां सब जा रहे हैं ठीक ही जा रहे होंगे! और मजा यह है कि बाकी सबका भी यही भरोसा है। वह जो तुम्हारे पड़ोस में चल रहा है, तुम्हारी वजह से चल रहा है। कि तुम जा रहे हो तो ठीक ही जा रहे होओगे; और तुम जा रहे हो उसकी वजह से कि वह जा रहा है तो ठीक ही जा रहा होगा। इसको महावीर कहते हैंः लोकमूढ़ता।
और सत्य की तरफ केवल वही जा सकता है जो भेड़चाल से ऊपर उठे; जो धीरे- धीरे अपने को जगाए और देखने की चेष्टा करे कि जो मैं कर रहा हूं, वह करना भी था या सिर्फ इसलिए कर रहा हूं कि और लोग कर रहे हैं!
अकसर तुम कहते पाये जाते हो कि हमारे घर में तो यह सदा से चला आया है। हमारे पिता भी करते थे, उनके पिता भी करते थे, इसलिए हम भी कर रहे हैं। तुमने कभी यह भी पूछा कि इसके करने का कोई प्रयोजन है, कोई लाभ है? इसके करने से जीवन में कुछ संपदा, शांति, आनंद का अवतरण होता है? नहीं, तुम्हारे पिताजी भी सत्यनारायण की कथा करवाते थे, तुम भी करवा रहे हो; क्योंकि हमारे यहां सदा से होता चला आया है! और सत्यनारायण की कथा में सत्य जैसा कुछ भी नहीं है; मगर हो रही है कथा! क्योंकि न करवायें, तो तुम अकेले पड़ जाते हो, भीड़ से टूटते हो।
और भीड़ के साथ हम जुड़े रहते हैं--भय के कारण। अकेले होने में डर लगता है। मंदिर तुम चले जाते हो--पिताजी भी जाते थे; पिताजी के पिताजी भी जाते थे। उनसे भी अगर पूछा जाता, वे कहते, "हम क्या करें, हमारे पिताजी जाते थे, उनके पिताजी जाते थे।" ऐसे पंक्तिबद्ध मूढ़ता चलती रहती है।
हिम्मत होनी चाहिए साधक में, कि वह इस पंक्ति के बाहर निकल आये। अगर उसे ठीक लगे तो बराबर करे, लेकिन ठीक लगना चाहिए स्वयं की बुद्धि को। यह उधार नहीं होना चाहिए। और अगर ठीक न लगे, तो चाहे लाख कीमत चुकानी पड़े तो भी करना नहीं चाहिए, हट जाना चाहिए।
तुम झुक जाते हो पत्थर की मूर्ति के सामने जाकर, क्योंकि और सब भी कहते हैं कि भगवान की मूर्ति है। और तुम कभी भी नहीं सोचते कि भगवान की मूर्ति है! भगवान की कोई मूर्ति हो सकती है? क्योंकि समस्त ज्ञानी कहते हैं, वह अमूर्त, निराकार, निर्गुण, अनंत, असीम--उसकी मूर्ति हो सकती है? हां, अगर तुम्हें लगता हो, तुम्हारी अंतरप्रज्ञा कहती हो, हां, हो सकती है, तुम्हारे भाव में लगता हो कि हां, है--तो झुकना। फिर चाहे सारा संसार कहे कि नहीं है तो फिक्र मत करना। तो महावीर यह नहीं कह रहे हैं, वे तुम्हें

कोई स्पष्ट निर्देश नहीं दे रहे हैं कि तुम क्या करो। वे इतना ही कह रहे हैं कि जो भी तुम करो वह तुम्हारी अंतःप्रज्ञा की साक्षी से किया गया हो, बस। वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम मस्जिद जाओ कि मंदिर जाओ कि गुरुद्वारा कि चर्च। इससे कोई प्रयोजन नहीं है। जो तुम्हारी अंतःप्रज्ञा कहे, जो तुम्हारा बोध कहे, वही तुम करना; उससे अन्यथा मत करना, अन्यथा वह लोकमूढ़ता होगी।
दूसरी मूढ़ता को उन्होंने कहा--देवमूढ़ता, कि लोग देवताओं की पूजा करते हैं। कोई इंद्र की पूजा कर रहा है कि इंद्र पानी गिरायेगा; कि कोई कालीमाता की पूजा कर रहा है कि बीमारी दूर हो जायेगी। लोग देवताओं की पूजा कर रहे हैं।
महावीर कहते हैं, देवता भी तो तुम्हारे ही जैसे हैं! यही वासनायें, यही जाल, यही जंजाल उनका भी है। यही धन-लोलुपता, यही पद-लोलुपता, यही राजनीति उनकी भी है। तो अपने ही जैसों की पूजा करके, तुम कहां पहुंच जाओगे? जो उन्हें नहीं मिला है वह तुम्हें कैसे दे सकेंगे?

महावीर कहते हैं कि देवता का अर्थ हैः होंगे स्वर्ग में, सुख में होंगे, तुमसे ज्यादा सुख में होंगे; लेकिन अभी आकांक्षा से मुक्त नहीं हुए।
महावीर और बुद्ध ने मनुष्य की गरिमा को देवता के ऊपर उठाया। महावीर
और बुद्ध ने देवताओं को आदमी के पीछे छोड़ दिया। महावीर और बुद्ध ने कहा कि जो निर्विकार हो गया है, जो निष्कांक्षा से भर गया है, जो निष्काम हो गया है, देवता भी उसके पैर छुएं, देवता भी उसके चरणों में झुकें। हिंदू बहुत नाराज हुए, क्योंकि जैन कथायें हैं, बौद्ध कथायें हैं--ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी बुद्ध और महावीर के चरणों में झुका देती हैं। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो खुद ब्रह्मा आकर चरण छुआ। हिंदुओं को बड़ा कष्ट हो जाता है कि यह क्या बात हुईः "ब्रह्मा से पैर छुआ रहे हो! ब्रह्मा तो जगत का स्रष्टा है। उसने तो बनाया। और ब्रह्मा से पैर छुआ रहे हो!"
लेकिन जैनों और बौद्धों का कारण है।
वे कहते हैं, ब्रह्मा का जीवन तो उठाकर देखो। कथा है, कि उसने पृथ्वी
को बनाया, और वह पृथ्वी पर मोहित हो गया, कामातुर हो गया। कामांध होकर पृथ्वी के पीछे भागने लगा। पिता, बेटी के प्रति कामांध हो गया! बेटी घबड़ा गई कि इस पिता से कैसे बचे! तो वह अनेक-अनेक रूपों में छिपने लगी। वह गाय बन गई, तो ब्रह्मा सांड बन गया। और इस तरह सारी सृष्टि हुई।
जैन और बौद्ध कहते हैं कि ये तो देवता भी कामातुर हैं! तो तुम हिंदू देवताओं की कथायें पढ़ो। किसी ऋषि की पत्नी सुंदर है, तो कोई देवता लोलुप हो जाता है, काम-लोलुप हो जाता है, तो शड्यंत्र करके स्त्री के साथ कामभोग कर लेता है।
महावीर और बुद्ध कहते हैं कि यह तो देवमूढ़ता हुई। अगर पूजना है तो उनको पूजो, जिनके जीवन से सारी आकांक्षा चली गई है। अगर पूजना है, तो उनको पूजो, जिनके जीवन से सारे मल-दोष समाप्त हो गए हैं।
इन देवताओं का चरित्र तो देखो, महावीर कहते हैं! हम गौर से कभी देवताओं का चरित्र देखते नहीं, अन्यथा हम बड़े चकित होंगे कि इस चरित्र के रहते हुए, इनको देवता कहे जाने का कारण क्या है! दिव्यता तो कहीं भी मालूम नहीं पड़ती।
इंद्र के संबंध में कितनी कथायें हैं कि जब भी कोई तेजस्वी व्यक्ति, कोई तपस्वी, चैतन्य की ऊंचाइयों पर पहुंचने लगता है, सहस्रार के करीब उसकी ऊर्जा आती है, कि इंद्र का देवासन डोलने लगता है।
क्यों? क्योंकि उसे डर लगता है कि कोई प्रतिद्वंद्वी पैदा हुआ। प्रतिद्वंद्वी! यह तो कोई राजनीतिज्ञ की स्थिति हो गई, कि कोई राष्ट्रपति है, कोई प्रधानमंत्री है, और दूसरा चेष्टा करने लगा, और लोक में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी तो घबड़ाहट पैदा हो जाती है कि यह आदमी कुर्सी छीनने आ रहा है!

यह इंद्र देवता कैसा, जिसको अपने आसन के छिन जाने की इतनी चिंता और घबड़ाहट है; और फिर जो उस आसन को बचाने के लिये सब तरह के उपाय करता है--सही, गलत; भेज देता है मेनका को कि भ्रष्ट करो विश्वामित्र को! यह तो ऐसे ही हुआ जैसे राजनेता के पास किसी वेश्या को भेज दिया, और फिर चित्र निकलवा लिये और अखबारों में छाप दिये तो लोक में प्रतिष्ठा खतम हो गई! यह तो कोई सम्यक उपाय भी न हुआ। यह तो शुद्ध राजनीति भी न हुई। यह तो राजनीति का भी बड़ा गर्हित रूप हुआ। यह तो तरकीब बड़े वासनातुर चित्त की हो सकती है।
तो महावीर कहते हैं, पहली मूढ़ता--लोकमूढ़ता; दूसरी मूढ़ता--देवमूढ़ता। देवताओं से सावधान!
दिव्यत्व की पूजा करो--देवताओं की नहीं। और दिव्यत्व कभी-कभी घटता है--उन मनीषियों में, जिनके भीतर चैतन्य सब तरह से शुद्ध और निर्विकार हुआ। ध्यान की आखिरी ऊंचाई--समाधि--समाधि की पूजा करो! इसलिए जैनों ने महावीर की पूजा की, ऋषभ की पूजा की, नेमि की पूजा की; तीर्थंकरों की पूजा की, देवताओं की पूजा नहीं की। मनुष्यों की पूजा की, जो परमशुद्ध हो गए! बौद्धों ने बुद्ध की पूजा की, बुद्ध को भगवान कहा; लेकिन देवताओं को नहीं पूजा। यह बड़ी क्रांतिकारी घटना थी। यह बड़ी गहरी दृष्टि थी। इस दृष्टि से बड़े रूपांतर हुए। धर्म का नया रूप प्रगट हुआ।
और तीसरी मूढ़ता, महावीर कहते हैं--गुरुमू.ढ़ता। लोग हर किसी को गुरु बना लेते हैं! जैसे बिना गुरु बनाए रहना ठीक नहीं मालूम पड़ता--गुरु तो होना ही चाहिए! तो किसी को भी गुरु बना लेते हैं। किसी से भी कान फुंकवा लिए! यह भी नहीं सोचते कि जिससे कान फुंकवा रहे हैं उसके पास कान फूंकने योग्य भी कुछ है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम पहले गुरु बना चुके हैं, तो आपका ध्यान करने से कोई अड़चन तो न होगी? मैंने कहा, "अगर तुम्हें पहले गुरु मिल चुका है तो यहां आने की कोई जरूरत नहीं।" वे कहते हैं, "मिला कहां!" वह तो गांव में जो ब्राह्मण था, उसी को बना लिया था।
अभी उसको खुद ही कुछ नहीं मिला। तो तुम सोचते तो थोड़ा कि जिसे तुम गुरु बनाने जा रहे हो, वह कम से कम तुमसे एक कदम तो आगे हो! लेकिन गुरु होना चाहिए! ... बिना गुरु के कैसे रहें! तो किसी को भी गुरु बना लेते हो! जो मिल गया वही गुरु हो गया। पिता के गुरु थे तो वही तुम्हारे गुरु हो गये, पति के गुरु थे तो वही पत्नी के गुरु हो गये। बिना इस बात का विचार किए कि यह बड़ी महिमापूर्ण बात है, यह जीवन की बड़ी चरम खोज है--गुरु को खोज लेना!
गुरु को खोज लेने का अर्थ, एक ऐसे हृदय को खोज लेना है जिसके साथ तुम धड़क सको और उस लंबी अनंत की यात्रा पर जा सको।
तो महावीर कहते हैं, ये तीन मूढ़ताएं हैं और इन मूढ़ताओं के कारण व्यक्ति सत्य की तरफ नहीं जा पाता। या तो भीड़ को मानता है, या देवी-देवताओं को पूजता रहता है। कितने देवी-देवता हैं! हर जगह मंदिर खड़े हैं। हर कहीं भी झाड़ के नीचे रख दो एक पत्थर और पोत दो लाल रंग उस पर, थोड़ी देर में तुम पाओगे, कोई आकर पूजा कर रहा है! तुम करके देखो! तुम सिर्फ बैठे रहो दूर छिपे हुए, देखते रहो। तुमने ही पत्थर रख दिया है और सिंदूर पोत दिया है; थोड़ी देर में कोई न कोई आकर पूजा करेगा। बड़ी मूढ़ता है।
मैंने सुना है, जिस आदमी ने अमरीका में पहला बैंक खोला, उससे बाद में
जब पूछा गया, कि तुमने यह बैंक खोला कैसे? उसने कहा कि कोई काम-धाम न था मेरे पास, कुछ और न सूझा मेरे लिए तो मैंने एक तख्ती लटका दी अपने घर के सामने, "बैंक" उस पर लिख दिया। थोड़ी देर में देखा कि एक आदमी आकर ढाई सौ डालर जमा करवा गया। तो मैं खुद भी चमत्कृत हुआ। यह मैंने सोचा न था। दूसरे दिन देखा कि एक दूसरा आदमी आया और वह भी कोई सौ डालर जमा करवा गया। फिर तो मेरी इतनी हिम्मत बढ़ गई कि मेरे पास जो पच्चीस डालर थे वे भी मैंने जमा कर दिये। बैंक चल पड़ा!
तुम अगर थोड़ी देर किसी पत्थर पर, सिंदूर पोतकर बैठ जाओ, तो शाम होते- होते तुम खुद ही पूजा करोगे। क्योंकि तुम देखोगे कि इतने लोग पूजा कर रहे हैं, सभी गलत थोड़े ही हो सकते हैं! माना कि तुम्हीं ने रंग पोता था, लेकिन जरूर कुछ बात होगी, कुछ राज होगा। शायद तुमने ठीक पत्थर पर रंग पोत दिया

है। अनजाने सही। तुमने परमात्मा की किसी प्रतिमा पर रंग डाल दिया, इतने लोग पूज रहे हैं!
यह मूढ़ता छूटनी चाहिए।
... तो महावीर कहते हैं अमूढ़दृष्टि पैदा होती है।
अमूढ़दृष्टि चौथा चरण है सम्यक दर्शन का।
पांचवां चरण हैः उपगूहन।
उपगूहन का अर्थ हैः अपने गुणों और दूसरों के दोषों को प्रगट न करना।
यह जुगुप्सा के ठीक विपरीत है। अपने गुण प्रगट न करना और दूसरे के दोष प्रगट न करना। हम तो करते हैं उलटा हीः अपने गुण प्रगट करते हैं, जो नहीं हैं वे भी प्रगट कर देते हैं; और दूसरे के दोष प्रगट करते हैं, जो नहीं है वे भी प्रगट कर देते हैं, जो हैं उनकी तो बात ही छोड़ दो।
महावीर कहते हैं, जिसको सत्य की खोज पर जाना है, उसे ये सारे संयम, ये अनुशासन, ये मर्यादाएं, अपने जीवन में उभारनी पड़ेंगी। अपने गुणों को मत कहना, दूसरों के दोषों को मत कहना। तुम्हारा क्या प्रयोजन है? दूसरे का दोष है--दूसरा जाने। और तुम जान भी कैसे सकते हो, क्योंकि तुम दूसरे के स्थान पर खड़े नहीं हो सकते। दूसरे की परिस्थिति का तुम्हें पता नहीं है। दूसरे ने किस परिस्थिति में ऐसा दोष किया, इसका तुम्हें कुछ पता नहीं है। अगर वैसी ही ठीक परिस्थिति तुम्हारे जीवन में भी होती तो शायद तुम भी न बच सकते।
कोई भूखा है, और किसी ने चोरी कर ली; किसी की मां मर रही है और दवा नहीं है, और किसी ने किसी का जेब काट लिया--तुम भी उसकी परिस्थिति में अपने को रखकर देखो, तो शायद तुम भी यही कर लेते।
लेकिन हम परिस्थिति से तोड़ लेते हैं तथ्यों को अलग। हम कहते हैं, यह आदमी चोर है! और हम परिस्थितियों की बात ही भूल जाते हैं। यह किन परिस्थितियों में चोर था?
मनोवैज्ञानिक पश्चिम में बहुत अध्ययन कर रहे हैं अपराध के ऊपर। और उनके जो नतीजे हैं वे बहुत घबड़ानेवाले हैं। आनेवाली सदी में, अगर उनके नतीजे स्वीकार किये गये तो अदालतों को विदा हो जाना पड़ेगा। अदालतों के ज्यादा दिन नहीं हैं--दिन लद गये! क्योंकि अदालतें बुनियादी गलती पर खड़ी हैं। मजिस्ट्रेट इस तरह से बैठकर निर्णय करता है जैसे कि चोर होना कोई सारी परिस्थितियों से टूटा हुआ अलग तथ्य है। उन्हीं परिस्थितियों में यह मजिस्ट्रेट भी चोरी करता।
मनस्विद कहते हैं कि अपराध की जितनी समझ बढ़ती जा रही है, उससे पता चलता है कि लोग मजबूरी में अपराध करते हैं।
दो तरह के अपराधी हैं। एक तो अपराधी हैं जो इस तरह मजबूर हो जाते हैं,
इस तरह मजबूर किये जाते हैं, सारी समाज की परिस्थिति उन्हें ऐसी जगह ले आती है, जहां अपराध किये बिना वे जी नहीं सकते। जहां अपराध करना ही उनके बचने का एकमात्र उपाय रह जाता है। अगर अपराध न करना हो तो मरने के सिवा उनके पास कोई सुविधा नहीं है। और मजा यह है कि इस समाज में मरना भी अपराध है। यहां आत्महत्या करना भी अपराध है। अगर करते पकड़े गये तो सजा पाओगे। यहां जीना तो मुश्किल है ही, यहां मरना भी मुश्किल है। यहां जीने भी नहीं देते ठीक से, यहां मरने की भी आज्ञा नहीं है।
तो ऐसी परिस्थिति में कुछ लोग हैं, जो अपराध करते हैं। और कुछ दूसरा
एक वर्ग है जो किसी मानसिक रोग के कारण अपराध करता है। उसकी परिस्थिति नहीं थी अपराध करने की। जैसे क्लिप्टोमैनिया है। कुछ लोग हैं जिनको चोरी का रोग होता है। अपराध नहीं। उनको चोरी करने में मजा आता है। उनको कोई कमी नहीं है। वे लखपति हो सकते हैं, और ऐसी चीजों की चोरी कर सकते हैं जिनका कोई मूल्य भी नहीं है; जैसे कि माचिस की डिबिया उन्होंने खीसे में रख ली। कोई कारण नहीं है, क्योंकि उनके पास खूब है। और माचिस की डिबिया का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन उनको कुछ मानसिक रोग है।
मैं एक प्रोफेसर को जानता हूं। उनको इस तरह का रोग था। उनकी पत्नी ने मुझे कहा कि आप कुछ करिये। वे कोई ऐसी चीज भी चुराकर नहीं लाते हैं कि कोई अपराध कहा जा सके। किसी के घर बैठे हैं, पैंसिल दिख गई, वह खीसे में सरका

ली। किसी के यहां भोजन करने गये हैं, चम्मच ही डाल लिया। पत्नी परेशान कि यह आज नहीं कल, यह झंझट... । और उसने मुझसे कहा कि आपसे उनका लगाव है; शायद... ।
तो मैं उनसे धीरे-धीरे बात किया। मैंने उनकी बड़ी प्रशंसा की, क्योंकि मैं समझा कि उनको कोई कमी तो है नहीं। धनपति घर से हैं, अच्छी नौकरी पर हैं। पत्नी भी नौकरी पर है, खुद भी नौकरी पर हैं। सब कुछ है। तो कोई चम्मच चुराने का कोई परिस्थिति में तो कारण नहीं है। तो जरूर कुछ मन में कारण होगा। तो मैंने कभी उनकी चोरी का विरोध नहीं किया। इस ढंग से उनको फुसलाया कि उनको लगे कि शायद मैं भी उसी रोग का बीमार हूं। उनको मैंने इसी तरह बात की कि जैसे मैं भी चम्मचें उठा लाता हूं। तो उन्होंने कहा, "अरे! यह तो अच्छा हुआ; आपसे दिल खोल सकते हैं। आपको मैं दिखाऊंगा, घर चलिए।" उन्होंने एक अलमारी में, जितनी चीजें चुराई थीं वे सब सजा रखी थीं। उस पर चिटें भी लगा रखी थीं कि किसके घर से कब लाए। और उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से दिखाईं। उनका इलाज करना पड़ा। वे मानसिक रूप से रोगी थे। चोरी के माध्यम से, वे
यह सिद्ध कर रहे थे कि वे दूसरों से ज्यादा कुशल हैं। दूसरे उनकी चोरी नहीं पकड़ पाते, वे कर जाते हैं। यह चोरी में चोरी कारण नहीं थी--अपनी कुशलता, अपनी होशियारी, सिद्ध करने की चेष्टा थी।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, इस तरह का बीमार चिकित्सा चाहता है। उसको मनोचिकित्सा चाहिए। और जिसने परिस्थितिगत रूप से चोरी की हो, उसकी परिस्थिति में रूपांतरण चाहिए। अपराध समाप्त हो जाते हैं। या तो कोई परिस्थिति के कारण चोर है तो परिस्थिति बदलनी चाहिए; और या कोई मानसिक रोग के कारण चोर है, तो मानसिक रोग का इलाज होना चाहिए। जेलखाने खाली हो जाते हैं। जेलखाने में बस दो तरह के लोग पड़े हुए हैं।
महावीर कहते हैं, दूसरे के दोष को बताना ही मत। तुम्हें क्या पता, किस मजबूरी में, किस कठिनाई में उसने किया हो? और तुम्हें क्या पता उसके जन्मों-जन्मों की जीवन-कथा का? लंबी यात्रा है। उस लंबी यात्रा में कहां उसने किसी दोष को अर्जित कर लिया हो, अनजाने सीख लिया हो!
और फिर तुम कौन हो निर्णायक?
जीसस ने भी यही बात कही है। कहा है कि निर्णायक मत बनना, "जज ई नाट!" दूसरे के न्यायाधीश मत बनना। दूसरा स्वयं जिम्मेवार है अपने कृत्यों के लिए; अपने कृत्यों का फल स्वयं पा लेगा। तुम बीच में निंदा, तुम बीच में विरोध और व्याख्या मत करना। और ध्यान रखना, जैसे दूसरे के गुणों को देखना जरूरी, दुर्गुणों को देखना जरूरी नहीं--अपने दुर्गुणों को देखना जरूरी है, अपने गुणों को देखना जरूरी नहीं है। क्योंकि जो व्यक्ति अपने गुणों को बहुत देखने लगता है, वह फूलने लगात है गुब्बारे जैसा। उसका अहंकार मजबूत होने लगता है। तो अपने गुब्बारे को, अहंकार के गुब्बारे को दोषों को देख-देखकर फोड़ते रहना, ताकि अहंकार बड़ा न हो। और अपने गुणों की कोई चर्चा मत करना। क्योंकि अगर वे हैं तो उनकी सुगंध अपने से पहुंच जाएगी। अगर वे नहीं हैं तो चर्चा करने से कुछ सार नहीं।
"उपगूहन" के बाद छठवां हैः स्थिरीकरण। महावीर कहते हैं कि जीवन की, सत्य की इस यात्रा में बहुत बार चूकें होंगी; बहुत बार पांव यहां-वहां पड़ जायेंगे; बहुत बार तुम भटक जाओगे। तो उसके कारण व्यर्थ परेशान मत होना और अपराध भाव भी मत लाना। यह स्वाभाविक है। जब भी तुम्हें स्मरण आ जाए, फिर अपने को मार्ग पर आरूढ़ कर लेना। उसका नाम हैः स्थिरीकरण। फिर अपने को स्थिर कर लेना।
जैसे तुमने तय किया, क्रोध न करेंगे; समझ आई कि क्रोध न करेंगे; देखा, बार-बार क्रोध करके कि सिवाय दुख के कुछ भी न हुआ; देखा क्रोध करके कि अपने लिये भी नर्क बना, दूसरे के लिये भी नर्क बना--तय किया, अब क्रोध नहीं करेंगे। ऐसी समझपूर्वक एक स्थिति बनी क्रोध न करने की। लेकिन फिर भी चूकें होंगी। किसी आवेश के क्षण में पुनः क्रोध हो जाएगा। लंबी आदत है। जन्मों-जन्मों के संस्कार हैं; इतनी जल्दी नहीं छूट जाते। फिर-फिर पकड़ लिये जाओगे। तो जब याद आ जाए, जैसे ही याद आ जाए, अगर क्रोध के मध्य में याद आ जाए, तो पुनः अपने को अक्रोध में स्थिर कर लेना। अगर गाली आधी निकल गई थी,

तो बस आधी को पूरा भी मत करना। यह भी मत कहना कि अब पूरी तो कर दूं। बीच से ही रोक लेना। वहीं क्षमा मांग लेना। वहीं हाथ जोड़ लेना। कहना, माफ करना, क्षमा करना, भूल हो गई। वापस लौट आना। फिर स्थिर हो जाना।
स्थिरीकरण बहुत उपयोगी सूत्र है। और जिनको जीवन को साधना है, उनके लिए निरंतर उसका उपयोग करना होगा, क्योंकि भूलें तो होंगी ही। फिर भूलों को लेकर मत बैठ जाना और उनमें बहुत रस मत लेने लगना, कि भूल हो गई, अपराध का भाव, और गिल्ट... । क्योंकि वह भी गलत है। वह भी नाहक अपने घाव को कुरेद-कुरेदकर खराब करना है। हो गई भूल, याद आ गई, वापस लौट जाए।
तुम ध्यान करने बैठते हो, थिरता टूट जाती हैः किसी विचार के पीछे चल पड़े। कभी-कभी ऐसे विचार, जिनसे तुम्हें जाने का कोई संबंध न था--तुम ध्यान करने बैठे, एक कुत्ता भौंकने लगा; अब कुत्ते के भौंकने से तुम्हारा कोई लेना-देना न था, लेकिन कुत्ते के भौंकने से तुमको अपने मित्र के कुत्ते की याद आ गई। मित्र के कुत्ते की याद आई तो मित्र की याद आ गई। मित्र के साथ कभी दो साल पहले कोई सुंदर दिन बिताया था पहाड़ों पर, वह याद आ गया--चल पड़े! जब याद आ जाये कि अरे! तब तत्क्षण स्थिर हो जाना। फिर वापस लौट आना। फिर इसको लेकर परेशान मत होना, कि यह मैंने क्या कर लिया, क्योंकि वह परेशानी भी फिर ध्यान में न लगने देगी। तो जैसे ही याद आ जाए, स्मरण हो, चुपचाप अपने को स्थिर कर लेना। नहीं तो लोग क्या करते हैं--पहले गलती करते हैं, फिर गलती के संबंध में पश्चात्ताप करते हैं, फिर रोते हैं, अपराध अनुभव करते हैं--तो गलती से भी ज्यादा गलती हो गई। गलती तो एक जगह होकर पूरी हो गई फिर उसका सिलसिला चल पड़ा। अब उसका पश्चात्ताप करो। अब रोओ। अब कहो कि भूल हो गई, डिग गया अपने पथ से, पापी हो गया!
महावीर कहते हैं, इस सब में पड़ने की इतनी ऊर्जा खराब मत करना। आया स्मरण, कि भूल के रास्ते पर चले गये थे, तत्क्षण चुपचाप वापस लौट आना। ऐसा बार-बार स्थिरीकरण होते-होते, होते-होते, जिसको कृष्ण ने स्थिति भी कहा है, स्थितिप्रज्ञ कहा है--वह स्थिति घटेगी। कभी ऐसी घड़ी आ जाती है कि फिर कोई भूल नहीं होती। तुम्हारी थिरता शाश्वत हो जाती है। तुम्हारी लौ अकंप हो जाती है।
सातवांः वात्सल्य। इसे समझना।
भक्ति के संप्रदाय, प्रार्थना को मूल्य देते हैं। तो तीन शब्द समझ लेना, तो ही वात्सल्य समझ में आयेगाः प्रार्थना, प्रेम, वात्सल्य। प्रार्थना होती है, जो अपने से बड़ा है--परमात्मा, उसके प्रति। प्रार्थना में एक मांग होती है। प्रार्थना शब्द में ही मांग छिपी है। इसलिए मांगनेवाले को हम प्रार्थी कहते हैं। मांगा उससे जा सकता है जिसके पास हमसे ज्यादा हो, अनंत हो। तो प्रार्थना सिर्फ भगवान से की जा सकती है। लेकिन महावीर की व्यवस्था में भगवान की कोई जगह नहीं है--प्रार्थना की कोई जगह नहीं।
फिर दूसरा शब्द हैः प्रेम। प्रेम होता है सम अवस्था, सम स्थितिवाले लोगों में--एक स्त्री में, एक पुरुष में; दो मित्रों में, मां में, बेटे में; भाई-भाई में--ऐसा समस्थिति! परमात्मा ऊपर है, प्रार्थी नीचे है। लेकिन प्रेमी साथ-साथ खड़े हैं। परमात्मा से सिर्फ मांगा जा सकता है, उसको दिया तो क्या जा सकता है! देने को हमारे पास कुछ भी नहीं है। उसके सामने हम निपट भिखारी हैं, समग्ररूपेण भिखारी। देंगे क्या? देने को कुछ भी नहीं है। अपने को भी दें तो भी वह देना नहीं है, क्योंकि हम भी उसी के हैं तो देना क्या है? उससे हम सिर्फ मांग सकते हैं, सिर्फ मांग सकते हैं। उसके सामने हम सिर्फ भिखारी हो सकते हैं।
इसलिए महावीर कहते हैं, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि परमात्मा के कारण सारा संसार भिखारी हो जाता है।
प्रेम में हम लेते हैं, देते हैं, क्योंकि दोनों समान हैं। जिसको तुम प्रेम करते हो, तुम देते भी हो; लेकिन देते तुम इसीलिए हो कि मिले। जो तुम्हें प्रेम करता है, वह भी देता है; लेकिन देता इसीलिए है कि मिले, वापिस हो। तो प्रेम में लेन-देन है। परमात्मा की तरफ से इकतरफा है; सिर्फ मिलता है; देने को हमारे पास कुछ भी नहीं है। प्रेमी लेते-देते हैं।

वात्सल्य ठीक प्रार्थना का उलटा है। वात्सल्य का अर्थ हैः तुम दो। इसलिए हम कहते हैं, मां का वात्सल्य होता है बेटे की तरफ। बेटा क्या दे सकता है? छोटा-सा बेटा है, अभी पैदा हुआ, चल भी नहीं सकता, बोल भी नहीं सकता, कुछ लाया भी नहीं, बिल्कुल नंग-धड़ंग चला आया है। हाथ खाली है। वह देगा क्या? इसलिए समान तल तो है नहीं मां का और बेटे का। और मांग भी नहीं सकता, क्योंकि मांगने के लिए भी अभी उसके पास बुद्धि नहीं है। तो मां का वात्सल्य है। मां उसे जो प्रेम करती है वह सिर्फ देने-देने का है। मां देती है, वह लौटा भी नहीं सकता। उसको अभी होश ही नहीं लौटाने का। वात्सल्य का अर्थ हैः तुम दो जैसे मां देती है।
तो महावीर कहते हैं, प्रार्थना नहीं, प्रेम नहीं--वात्सल्य। तुम तो लुटाओ, जो तुम्हारे पास है दिये चले जाओ। इसकी फिक्र ही मत करो कि किसको दिया। बस इसकी फिक्र करो कि दिया। तो जो तुम्हारे पास हो, वह तुम देते चले जाओ। कुछ तुम्हारे पास बाहर का देने का न हो तो भीतर का दो। वस्तुएं न हों तो अपना प्राण बांटो, अपना अस्तित्व बांटो, पर दो और देते रहो!
तो जैसे भक्ति के रास्ते पर प्रार्थना सूत्र है, ठीक उससे विपरीत, ध्यान के रास्ते पर वात्सल्य सूत्र है। भक्ति के रास्ते पर तुम भिखारी होकर भगवान के मंदिर पर जाते होः ध्यान के रास्ते पर तुम सम्राट होकर, तुम बांटते हुए जाते हो, तुम देते हुए जाते हो! तुम मांगते नहीं। क्योंकि मांग में तो आकांक्षा है--वह तो पहले ही चरण में समाप्त हो गई।
अब तुम्हारे पास कुछ है, तुम उसे बांटते हो--और जब तुम बांटते हो, तब तुम पाते होः और आने लगा! अनंत ऊर्जा उठने लगी! तुम्हारे सब जलस्रोत खुल जाते हैं। तुम्हारे झरने सब फूट पड़ते हैं। जितना तुम्हारे कुएं से पानी उलीचा जाता है, तुम पाते होः उतना ही नया पानी आ रहा है। सागर तुममें अपने को उंडेलने लगता है।
तो लुटाओ! दोनों हाथ उलीचिए, यही सज्जन को काम। कबीर ने कहा हैः उलीचो! महावीर का वात्सल्य वही है जिसको कबीर कहते हैंः उलीचना।
और प्रभावना!
और आठवां चरण है सम्यक दर्शन काः प्रभावना। यह महावीर का अपना शब्द है। इसके लिए कहीं तुम्हें पर्याय न मिलेगा। प्रभावना का अर्थ होता हैः इस भांति जीयो कि तुम्हारे जीने से धर्म की प्रभावना हो। इस ढंग से उठो- बैठो कि तुम्हारे उठने-बैठने से धर्म झरे। और जिनके जीवन में धर्म की कोई रोशनी नहीं है, उनको भी प्यास पैदा हो। तुम्हारा चलना, तुम्हारा व्यवहार, तुम्हारे जीवन की शैली--सभी प्रभावना बन जाए। प्रभावना--धर्म की, सत्य की। तुम एक ज्योतिर्मय व्यक्तित्व बन जाओ कि जिनके भी पास ज्योति नहीं है, उनको भी ज्योति होनी चाहिए! और यह जीवन--अंधेरे का भी क्या कोई जीवन है, ऐसा भाव उठे! तुम जहां से गुजर जाओ, वही लोगों के हृदय में एक लहर दौड़ जाए। और लोगों का जीवन सत्य की तरफ उन्मुख हो।
महावीर कहते हैं, इस सत्य की खोज का आठवां अंग हैः प्रभावना। क्योंकि तुम जब सत्य को खोजने चले हो, तो अकेले नहीं। उसमें भी कंजूसी मत कर बैठना। नहीं तो वह भी स्वार्थ हो जायेगा। तो जिसकी खोज पर तुम चले हो और जो तुम्हें मिलने लगा है, उसकी खोज पर औरों को भी लगा देना। लेकिन ख्याल रखना, महावीर बड़े अनूठे शब्दों का उपयोग करते हैं। वे यह नहीं कहते, तुम लोगों को उपदेश देना। वे यह नहीं कहते, तुम लोगों को आदेश देना। वे कहते हैं, प्रभावना!
तुम्हारे होने के ढंग से ही उनको उपदेश मिल जाए। तुम्हारे होने के ढंग से उनको आदेश मिल जाए। तुम्हारा होने का ढंग ही उनको पकड़ ले और एक नये नृत्य में डुबा दे और एक, एक नई मस्ती से भर दे! तुम्हारा होना ही, तुम्हार अस्तित्व मात्र, तुम्हारा उनके पास से गुजर जानाः एक नए जगत का प्रवेश हो जाए उनके जीवन में! तुम्हारा उनके पास आ जाना, तुम्हारा सत्संग, तुम्हारी मौजूदगी, उन्हें रूपांतरित कर दे! उनकी आंखें उस तरफ उठ जायें जहां कभी न उठी थीं। लेकिन इसके लिए वे जो शब्द उपयोग करते हैं, वह बड़ा अनूठा हैः प्रभावना! तुम उन्हें प्रभावित भी करने की चेष्टा मत करना। तुम्हारा होना

प्रभावना बने! वे प्रभावित होंः तुमसे नहीं--धर्म से; तुमसे नहीं--सत्य से; जो तुममें घटा है--उससे; वह जो पारलौकिक तुममें उतरा है--उससे।
ये आठ अंग स्मरण हों तो सम्यक दर्शन निर्मित होता है।
यह पहला सूत्र हैः
निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढ़दिट्ठी य।
उवबूह थिरीकरणे, वच्छल पभावणे अट्ठ।।
ये आठ बातें सम्यक दर्शन के आठ अंग हैं।
दूसरा सूत्रः "जब कभी अपने में दुष्प्रयोग की प्रवृत्ति दिखाई दे तो उसे तत्काल मन, वचन, काया से धीर (सम्यक दृष्टि) समेट ले; जैसे कि जातिवंत घोड़ा रास के द्वारा शीघ्र ही सीधे रास्ते पर आ जाता है।"
और महावीर इस बात को बार-बार दोहराते हैं कि तुम कभी ऐसा मत समझ लेना
कि सिद्ध हो गये। क्योंकि इस अनंत की खोज के मार्ग पर बहुत ऐसे पड़ाव आते हैं जहां यह भ्रम पैदा होता है कि हो गये सिद्ध। सिद्ध होने का भ्रम बड़ा आसान है, क्योंकि अहंकार को ब.ड़ा भाता है, कि हो गये सिद्ध, पहुंच गये!
तुम ध्यान रखना कि ऐसा भाव जब भी तुम्हें आएगा कि पहुंच गए, तभी तुम तत्क्षण पाओगे कि कुछ विकृति घटी, कुछ दुष्प्रयोग हुआ, कहीं कोई भूल हुई। तो स्मरण रखना कि भूल होती रहेंगी अंतिम क्षण तक। निर्वाण के आखिरी क्षण तक भूल होती रहेंगी। समाधि के परम फूल के खिलने तक भूल होती रहेंगी। भूल मनुष्य का स्वभाव है। और भूलों का जन्मों-जन्मों का इतिहास है। इसलिए जहां भी कहीं ऐसा लगे, कि दुष्प्रयोग में प्रवृत्ति दिखाई दे, उसे तत्काल मन, वचन और काया से (सम्यक दृष्टि) धीरपुरुष समेट ले; जैसे कि जातिवंत घोड़ा रास के द्वारा शीघ्र ही सीधे रास्ते पर आ जाता है।
तो अपनी लगाम को कभी भी छोड़ मत देना। जब तक घोड़ा है, तब तक लगाम को हाथ में रखना। घोड़ा यानी मन। जब तक मन है, तब तक लगाम मत छोड़ देना। मन पर भरोसा मत कर लेना। क्योंकि बहुत बार घोड़ा बिल्कुल ठीक-ठीक चल रहा है, घंटों तक ठीक-ठीक चल रहा है और तुम्हारा मन होता है, अब लगाम की क्या जरूरत है, रख दो ताक पर; अब तो सब ठीक चल रहा है, अब होश की क्या जरूरत है, अब निरंतर स्मरण की क्या जरूरत है, घोड़ा तो ठीक अपने-आप ही चल रहा है! ऐसा भरोसा मत करना। लगाम के रखते ही तत्क्षण घोड़ा अपने स्वभाव के अनुकूल बरतने लगेगा। लगाम तो हाथ में रखनी पड़ेगी जब तक घोड़ा है। जब तक मन न मर जाए, जब तक कि मन से परिपूर्ण मुक्ति न हो जाए, जब तक तुम्हारे भीतर विचारों की तरंगें उठती हैं--तब तक लगाम का ख्याल रखना। और जैसे ही तुम्हें लगे कि कहीं घोड़ा गलत रास्ते पर जाने लगा, मार्ग से च्युत हुआ, दुष्प्रयोग में लगा, कहीं कोई प्रवृत्ति उठने लगी, फिर आंख गलत पर पड़ी, फिर कान ने गलत को सुना, फिर हाथ गलत की तरफ बढ़े, फिर विचार में गलत की छाया पड़ी--तत्क्षण मन, वचन, काया से धीरपुरुष अपने को फिर ऐसे समेट ले... मन, वचन, काया से--शरीर को तत्क्षण हटा ले वहां से।
शरीर को हटाने का अर्थ समझना। जब भी तुम्हारे मन में कोई तरंग उठती है, तत्क्षण शरीर में भी समानांतर तरंग उठती है। अगर तुम्हारे मन में कामवासना उठी, तो तत्क्षण शरीर कामवासना के लिये तत्पर होने लगता है, तरंग उठती है। और जब भी तुम्हारे मन में कोई तरंग उठती है, और शरीर में तरंग उठती है, तो तुम्हारे भीतर भाषा और वचन निर्मित होता है। रूप बनता है विकार का। प्रतिमायें उठती हैं। स्वप्न निर्मित होता है।
वचन से अर्थ हैः विचार; मन की कल्पना का जाल। और मन, शरीर, वचन, तीनों में एक साथ लहर आती है। तीनों को एक साथ खींच लेना! किसी एक को खींच लेने से काम न चलेगा। तुम, हो सकता है शरीर को खींचकर दरवाजा बंद करके बैठ जाओ, इससे कुछ फर्क न पड़ेगा। बहुत-से जैन मुनि शरीर को खींचकर बैठ गए हैं, लेकिन मन और वचन में तरंगें उठती रहती हैं। शरीर को खींच लेना बहुत आसान है। शरीर को खींच लेने में बहुत कठिनाई नहीं है। शरीर बहुत स्थूल है। उससे भी गहरा वचन है। विचार में भी तरंग न उठे।
लेकिन बहुत-से लोग विचार को भी खींचकर बैठ जाते हैं। फिर भी मन में तरंग उठती है। मन यानी अचेतन। तो दिनभर याद नहीं आते, लेकिन रात सपने में याद आ जाते हैं। दिनभर तुम सम्हाले रहते हो। कोई विचार नहीं उठने देते।

लेकिन स्वप्न में विचार आ जाते हैं। तो भी, दुष्प्रवृत्ति हो गई। तो भी, तुम च्युत हुए। इन सबसे धीरपुरुष अपने को खींचता रहता है।
"तू महासागर को तो पार कर गया है, अब तट के निकट पहुंचकर क्यों खड़ा है? उसे पार करने में शीघ्रता कर हे गौतम, क्षणभर का भी प्रमाद मतकर!"
यह तीसरा सूत्र है आज के लिए। यह महावीर ने अपने महानिर्वाण के क्षणभर पहले कहा था। यह अपने पट्ट शिष्य गौतम के लिये कहा था।
गौतम महावीर का प्रथम गणधर है--उनका सबसे ज्यादा निकट का शिष्य। लेकिन विडंबना भाग्य की, कि वह आया था सबसे पहले, लेकिन मुक्ति का स्वाद न ले सका। वह महावीर के पास वर्षों रहा, फिर भी उस परम दशा को न पहुंच सका, जिसको हम कैवल्य कहें, समाधि कहें। मन मिट न सका। और उसने कुछ छोड़ा हो करने में, ऐसा भी नहीं है। उसने सब किया जो महावीर ने कहा। लेकिन एक छोटा-सा राग पैदा हो गया--वह राग था महावीर के प्रति। वह राग था महावीर के चरणों का। उतने ही राग ने रोक लिया। एक प्रेम लग गया महावीर से। महावीर के बिना उसे तकलीफ होने लगी। दिन को भी कहीं जाता तो बस महावीर की ही याद आती रहती। महावीर ने उसे कई बार कहा कि तूने सब छोड़ दिया, अब मुझे क्यों पकड़ लिया है? क्योंकि असली सवाल छोड़ने का नहीं--असली सवाल तो पकड़ ही छोड़ देने का है। तुमने कुछ पकड़ा, किसी ने कुछ और पकड़ा, किसी ने कुछ और पकड़ा--लेकिन पकड़
तो जारी रहती है। किसी ने धन पकड़ा, किसी ने धर्म पकड़ा। किसी ने पत्नी पकड़ी, किसी ने गुरु पकड़ा--लेकिन पकड़ तो जारी रहती है।
और महावीर बड़े कठोर हैं इस दृष्टि से। क्योंकि उनका पूरा राग से ही विरोध है। वह पूरा रास्ता ही वीतराग का है। तो यह गौतम सब छोड़ आया। पत्नी होगी, बच्चे होंगे, घर-द्वार होगा, मित्र-परिजन होंगे, धन-संपत्ति होगी, पद-प्रतिष्ठा होगी--सब छोड़ आया! यह बड़ा पंडित था, ब्राह्मण था। इसने सब शास्त्र वेद, उपनिषद, सब छोड़ दिये। लेकिन उस सबको छोड़कर महावीर के चरणों को पकड़कर बैठ गया। यह अब महावीर का दीवाना बन गया। तो महावीर उससे बार-बार कहते रहे कि तू मुझे भी छोड़। यह बात ही सुनकर उसको कष्ट होता। यह बात ही कल्पना के बाहर थीः महावीर को छोड़ो! वह सब छोड़ने को तैयार था महावीर के लिए। सब छोड़ा ही महावीर के लिए था। अब यह तो बात जरा ज्यादा हो गई कि महावीर को भी छोड़ो। तो फिर सब छोड़ा ही किसलिए था! वह महावीर के लिए ही छोड़ा था। वह मुक्त न हो सका।
महावीर ने जिस दिन देह छोड़ी, उसे सुबह ही दूसरे गांव में उपदेश के लिए भेजा। शायद जानकर ही भेजा हो। क्योंकि वह पास रहेगा तो बहुत दुखी होगा। यह मृत्यु उसके सामने, कहीं उसे विक्षिप्त न कर दे। उसका लगाव बहुत था। फिर पीछे से खबर मिलेगी तो बात आई-गई हो जाएगी। फिर धीरे-धीरे सम्हल जाएगा। आघात मृत्यु का सीधे, महावीर को अपने सामने ही, मरा हुआ देखना, देह से छूट जाना देखना--शायद उसके प्राणों को तोड़ दे, शायद वह सह न पाये! तो उसे दूसरे गांव भेज दिया। जब वह सांझ को लौट रहा था दूसरे गांव से तो राहगीरों ने रास्ते में उससे कहा कि गौतम, तुम्हें कुछ पता है, महावीर जा चुके! अब तुम कहां जा रहे हो? अब वह सत्पुरुष न रहा!
तो वह वहीं रोने लगा। वहीं छाती पीटकर चिल्लाने लगा। भरी आंखों से, टपकते आंसुओं से, उसने उन लोगों से पूछा कि "एक बात मुझे पूछनी है कि यह कैसा हुआ? यह उन्होंने कैसा अन्याय किया? जीवनभर मैं उनके साथ रहा। तो आज तो कम से कम मुझे बाहर न भेजते, दूर न भेजते! यह उन्होंने कौन-सा बदला लिया! एक ही बात पूछनी है मुझेः मरते समय मुझे याद किया था? मरने के पहले मेरे लिये कोई इशारा छोड़ा? क्योंकि मैं तो अभी भी अंधेरे में भटक रहा हूं। मेरा क्या होगा? दीया बुझ गया--अब मेरा क्या होगा?" तो उन लोगों ने... यह सूत्र महावीर ने गौतम के लिए कहा है, इसलिए गौतम का नाम इस सूत्र में आता है... उन लोगों ने गौतम को कहा, महावीर ने तुझे याद किया था। वे यह सूत्र तेरे लिये छोड़ गए हैंः "तू महासागर को तो पार कर गया है, अब तट के निकट पहुंचकर क्यों खड़ा है? उसे पार करने में शीघ्रता कर! हे गौतम, क्षणभर का भी प्रमाद मत कर!" तिण्णो हु सि अण्णवं महं, कि पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम्! मा पमायए।।

"हे गौतम! तू पूरा भवसागर पार कर गया, सारा संसार छोड़ दिया, सब तरफ से राग की जड़ें उखाड़ लीं--और अब तू किनारे को पकड़कर क्यों रुका है?"
किनारा यानी महावीर। ऐसा समझो कि तुम उस दूर के किनारे को पाने के लिए सारी नदी पार करते हो, निश्चित ही उस किनारे जाने के लिए ही नदी पार करते हो। फिर इस नदी के सारे कष्ट उठाते हो--तूफान, झंझावात, धार के उपद्रव, मृत्यु का डर, डूब जाने का भय--यह सबको तुम पार कर जाते हो। फिर उस दूसरे किनारे को पकड़कर रुक जाते हो। रुके हो नदी में ही। किनारे को पकड़कर रुके हो! तुम कहते हो, इसी किनारे के लिए तो सारी नदी पार की, वह किनारा छोड़ा, नदी छोड़ी, इतना संघर्ष झेला--अब इस किनारे को न छोड़ेंगे!
तो महावीर कहते हैं, यह तो कुछ लाभ न हुआ। रुके तुम अब भी नदी में हो।
अब इस किनारे को भी छोड़ो, बाहर निकलो! अब पार हो गए, नदी छूट गई, किनारे को भी छोड़ो!
तो गुरु का उपयोग दूर के किनारे की तरह है। नदी को पार करने में निमित्त बना लेना, लेकिन जब नदी पार हो जाए, तो गुरु को पकड़कर मत रुक जाना। महावीर कहते हैं, क्षणभर का भी प्रमाद मत कर, और इसमें क्षणभर की देर मत कर, आलस्य मत कर--क्योंकि समय बीता जाता है, फिर लौटकर न आएगा!
और जो महावीर के जीते-जी न हो सका, वह महावीर की मृत्यु के कारण हो गया। गौतम को वह चोट भारी पड़ी। किनारा उसने नहीं छोड़ा, किनारा खुद ही जा चुका था अब। अब पकड़ने को कुछ था भी नहीं। जो जीवनभर महावीर के साथ रहकर बोध न हुआ, वह महावीर के मरने के एक दिन बाद... गौतम समाधि को उपलब्ध हो गया। उसने जान लियाः संसार ही असार नहीं है, यहां सदगुरु के चरण भी छूट जाते हैं! यहां संपत्ति ही नहीं छूटती, सदगुरु भी छूट जाता है। यहां सभी कुछ असार है। यहां अपने में ही लौट आने में सार है।
ऐसा समझ कर... और तो सब छोड़ ही चुका था, यह महावीर के प्रति लगाव था, यह
भी छूट गया और यह लगाव बिल्कुल मानवीय है, समझ में आता है। महावीर जैसा प्यारा पुरुष हो तो किसे लगाव न हो! गौतम की अड़चन समझ में आती है। महावीर ही कठोर मालूम होते हैं। गौतम का भाव तो ठीक ही है; समझ में पड़ता है। इतना प्यारा पुरुष कभी-कभी होता है। और ऐसे प्यारे पुरुष के पास पकड़ लेने का मन किसके मन में न होगा! और एकबारगी ऐसा भी होता है कि छोड़ो मोक्ष, छोड़ो बैकुंठ--यही चरण काफी है! ऐसा ही गौतम को हुआ होगा। सब संसार छोड़ने की हिम्मत की थी, लेकिन ये चरण न छोड़ सका। लेकिन फिर ये चरण एक दिन छूट गए। जो भी बाहर है, वह छूट ही जाएगा।
इसलिए महावीर कहते हैंः आत्मा में ही रमण करो। सब तरफ से अपने में ही लौट आओ! अपने में ही लीन हो जाओ! उस आत्मलीनता को ही महावीर ने मोक्ष कहा है।
यह जो निमंत्रण गौतम के लिए है, यही निमंत्रण तुम्हारे लिए भी है।
पोत अगणित इन तरंगों ने
डुबाए, मानता मैं
पार भी पहुंचे बहुत से
बात यह भी जानता मैं
किंतु होता सत्य यदि यह
भी, सभी जलयान डूबे
पार जाने की प्रतिज्ञा
आज बरबस ठानता मैं
डूबता मैं, किंतु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा
हों युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन
तीर पर कैसे रुकूं मैं
आज लहरों में निमंत्रण!
महावीर दूर अनंत के सागर की लहरों का निमंत्रण हैं। और निमंत्रण ही नहीं, उस दूर के सागर तक पहुंचने का एक-एक कदम भी स्पष्ट कर गए हैं। महावीर ने अध्यात्म के विज्ञान में कुछ भी अधूरा नहीं छोड़ा, खाली जगह नहीं है।

नक्शा पूरा है। एक-एक इंच भूमि को ठीक से माप गए हैं और जगह-जगह मील के पत्थर खड़े कर गए हैं।
ये आठ सूत्र सम्यक दर्शन के सध जाएं तो सब सध गया। ये आठ सध जाएं तो समाधि सध गई, क्योंकि इन आठ के सधते ही सारी समस्याएं तिरोहित हो जाती हैं। जो शेष रह जाता है, वही समाधान है।
महावीर के निमंत्रण को अनुभव करो! उनकी पुकार को सुनो! ऐसे खाली नाममात्र को जैन होकर बैठे रहने से कुछ भी न होगा। ऐसी नपुंसक स्थिति से कुछ लाभ नहीं। उठो! अपने का जगाओ! बहुत बड़ी संभावना तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। खतरा है! इसलिए महावीर कहते हैंः अभय, साहस चाहिए!
खतरा यही हैः
पोत अगणित इन तरंगों ने
डुबाए, मानता मैं
--बड़ा है, विराट है सागर! और न मालूम कितने पोत डूब चुके हैं!
पोत अगणित इन तरंगों ने
डुबाए, मानता मैं
पार भी पहुंचे बहुत से
बात यह भी जानता मैं।
लेकिन कुछ हैं जो पार भी पहुंच गए हैं। कोई महावीर, कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई मुहम्मद पार भी पहुंच गये हैं। बहुत-से खो भी गये हैं। अनंत खो गए हैं।
कहते हैं, हजार बुलाए जाते तो सौ पहुंचते हैं। सौ जो पहुंचते हैं, उनमें से दस चलते हैं। और दस चलते हैं, एक कहीं सिद्धावस्था को उपलब्ध हो पाता है।
किंतु होता सत्य यदि यह
भी, सभी जलयान डूबे
पार जाने की प्रतिज्ञा
आज बरबस ठानता मैं
लेकिन, अगर यह भी सत्य होता कि जो भी गया, सभी डूब गए, तो भी--
पार जाने की प्रतिज्ञा,
आज बरबस ठानता मैं
--क्योंकि यहां इस किनारे कुछ भी तो नहीं है। यहां बचे भी, तो भी तो कुछ बचने जैसा नहीं है। और सागर में अगर डूबे भी तो डूबकर भी कुछ मिलता है। डूबता मैं किंतु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा।
तुम तो डूब जाओगे, लेकिन आत्मा उतराएगी। तुम तो डूबोगे तभी आत्मा उतराएगी। तुम तो आत्मा में पत्थर की तरह हो। तुम्हारी वजह से आत्मा तैर नहीं पाती, तिर नहीं पाती।
हों युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन
तीर पर कैसे रुकूं मैं
आज लहरों में निमंत्रण।
सुनो इस निमंत्रण को! करो हिम्मत! चलो थोड़े कदम महावीर के साथ! थोड़े
ही कदम चलकर तुम पाओगे कि जीवन की रसधार बहने लगेगी। थोड़े ही कदम चलकर तुम पाओगे, संपदा करीब आने लगगी। आने लगीं शीतल हवाएं--शांति की, मुक्ति की! फिर तुम रुक न पाओगे। फिर तुम्हें कोई भी रोक न सकेगा। थोड़ा लेकिन स्वाद जरूरी है। दो कदम चलो, स्वाद मिल जाए; फिर तुम अपने स्वाद के बल ही चल पड़ोगे।
लाओत्सु ने कहा है, एक कदम तुम उठा लो, फिर फिक्र नहीं। बस एक कदम तुम न उठाओ तो बड़ी फिक्र है। पहला कदम तुम उठा लो तो बस, दूसरा तुम उठाओगे ही। क्योंकि पहले को उठाने में ही ऐसा रस बरस जाता है, फिर कौन पागल होगा जो दूसरा कदम न उठाए! और एक-एक कदम चलकर हजारों मील की यात्रा भी अंततः पूरी हो जाती है! दो कदम तो कोई एकसाथ चल भी नहीं सकता। एक कदम! छोटा कदम! जितनी

तुम्हारी सामर्थ्य में आता हो, इतना बड़ा कदम! लेकिन उठाओ! बैठे-बैठे बहुत जन्म खोए--और मत खोओ!
धम्मपद में बुद्ध ने कहा हैः "उत्तिट्ठे!" उठो! "न पमज्जेय्य!" उठो! प्रमाद मत करो! सोये मत रहो! आलसी मत रहो! जो उठता है, वही पाता है। जो सोया रहता, वह सभी कुछ खो देता है।
आज इतना ही।